

# बीजक

## टीका मनोरमा

# बीजक टीका मनोरमा

टीकाकार
**आचार्य गंगाशरण शास्त्री**
मूलगादी, श्री सद्गुरु कबीर मन्दिर
कबीरचौरा मठ, वाराणसी



**कबीर वाणी प्रकाशन केन्द्र**
**वाराणसी**

प्रकाशक :
कबीर वाणी प्रकाशन केन्द्र
श्री सद्‌गुरु कबीर मन्दिर
सी० २३/५ कबीरचौरा मठ,
वाराणसी–१


प्रथम संस्करण–१००० प्रतियाँ
चैत २१–२०४६ वि०
अप्रैल १९८९ ई०

मूल्य : १२५ रुपये

मुद्रक :
वर्द्धमान मुद्रणालय
जवाहरनगर कालोनी, वाराणसी

यह कीर्ति उत्तम आपकी, करता समर्पण प्रेम से ।
स्वीकार इसको कीजिए, राखो जगत में क्षेम से ॥



# काशी कबीरचौरा मठ की गुरु प्रणाली

दो०—काशी जी शुभ नगर में, कबीर चौरा स्थान।
काहू से छीप्यो नहीं, जानत सकल जहान ॥१॥
जेते भये महन्त तहँ, वर्णन करो निदान।
आदर पूर्वक राखियो, सुनहुँ ज्ञान निधान ॥२॥

हरि०—है सामवेदाभिज्ञ गाते यज्ञ में जिस देव को।
एकान्त में यति ध्यान धरते प्राप्त कर निज भेव को॥
गुरुदेव-देव कबीर-परमाचार्य-पद आराधना।
तन-कर्म से, मन से, वचन से, सतत हो शुभ साधना ॥१॥
कारुण्य पारावार बुधवर साधुजन सत्कार्य के।
बीजक-विचार-प्रचार कर उद्धार कर्ता आर्य के॥
योगीन्द्र 'श्रुति गोपाल साहब' वेद शास्त्राचार्य के।
पद पङ्कजों में प्रणत हैं हम दूसरे आचार्य को ॥२॥
गुरु तीसरे 'श्री ज्ञान साहब' ज्ञान-करुणाधार को।
आचार्य चौथे 'श्याम साहब' साधुजन आधार को॥
लावण्यनिधि 'श्री लाल साहब' पाँचवें आचार्य को।
करबद्ध हम बन्दन करें गुरुदेव-पथिकाचार्य को ॥३॥
आचार्य छठवें पूज्यवर 'हरिसुख' महोदय मान्य के।
फिर सातवें आचार्य 'श्री शीतल' यतीश वदान्य के॥
अरु आठवें आचार्य 'सुख' साहब' दयामय धीर के।
पद जलज में हम प्रणत होते ज्ञान-सिन्धु गम्भीर के ॥४॥
नवमें 'हुलासाचार्य' साहब' मोक्षप्रद सम्मानिये।
आचार्य साहब दशम 'माधव' मान्यवर को जानिये॥
फिर ग्यारहवें 'कोकिल' महोदय दीनबन्धु बखानिये।
निज भक्तजन सन्मार्ग दर्शक प्रणतिपात्र प्रमानिये ॥५॥
'श्री राम साहब' राम सम आचार्य बारहवें मुनी।
साहब 'महा' महनीयतम आचार्य तेरहवें गुनी॥
आचार्य 'हरि' साहब चतुर्दश पूज्यपाद सुजान को।
मम प्रणति बारम्बार है गुरुदेव ज्ञान-निधान को ॥६॥

श्री 'शरण साहब' पञ्चदश आचार्य बुध जन भूप को।
आचार्य षोडश पूज्य 'पूरण' पारब्रह्म स्वरूप को॥
पुनि सप्तदश आचार्य गुरु "निर्मल" बिमल मतिमान को।
मम प्रणति बारम्बार है गुरुदेव परम-प्रमाण को॥७॥
आचार्य अष्टादश महामति 'रङ्गि साहब' मानिये।
उन्नीसवें आचार्य 'गुरुप्रसाद' साहब' जानिये॥
मम बीसवें आचार्य श्री गुरु 'प्रेम साहब' को तथा।
श्रद्धा समेत प्रणाम है अरु ध्यान उनका सर्वथा॥८॥
इक्कीसवें सत्पथ प्रदर्शक बन्धभेदक आर्य के।
संयम-नियम परिपूत मानस दिव्य पथिकाचार्य के॥
सम्मान्य 'रामबिलास साहब' दीनबन्धु दयाल के।
पादारविन्दों में प्रणति है नमन करनिज भाल के॥९॥
बाईसवें श्री 'अमृत साहब' साधु सेव्य महान को।
शम-दम-निरत वैराग्ययुत् बुध वृन्द वन्द्य प्रधान को॥
गुणवान परम सुजान यति मतिमान शील निधान को।
मम नमन बारम्बार है आचार्य परम प्रमान को॥१०॥
तेईसवें सन्मार्ग दर्शक वर्तमानाचार्य हैं।
'गंगाशरण साहब' सुधीश्वर विवुधजन सत्कार्य हैं॥
कारुण्यरत्नाकर विमल मन सुजन मान्य महान हैं।
कवि कर्म पटुतर यति धुरन्धर वन्दनीय प्रधान है॥११॥
काशी पुरीस्थ कबीरचौरा - धाम पथिकाचार्य का।
वन्दन पुरःसर नाम संकीर्तन सुखद है आर्य का॥
'रामेश्वरानन्देन' रचितं पद्यवृन्दं शोभनम्।
आचार्य-भक्त्याचात्मतुष्टये भक्तजन परितोषणम्॥१२॥

गुरु प्रणाली समाप्त

●

# शुभाशंसनम्

( १ )

श्लोक-अस्त्येतद् विदितं सुवेदविदुषां यज्ज्ञानमेवात्मनः ।
शुद्धानन्दकरं च दुःखदमने शक्तं सतां सम्मतम् ॥
तत्प्राप्तिर्हरिभक्तियोगबलतः श्रद्धावतां सर्वथा ।
शान्तस्वान्त मुमुक्षुभिश्च सुलभा सर्वेष्टसंसाधिका ॥

दोहा-वेद विज्ञ जन विदित है, आत्मज्ञान निर्भ्रान्ति ।
नित्यनिरतिशय सौख्यप्रद, नाशक दुःख नितान्त ॥१॥
तत्प्रापक हरि भक्ति है, योग अंग से युक्त ।
श्रद्धालु शश्वत्सुलभ, सर्व इष्ट संयुक्त ॥२॥

वेद विशेषज्ञों को यह विदित है कि समस्त दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति तथा नित्य निरतिशय परमानन्द की प्राप्ति एक मात्र आत्मज्ञान से ही हो सकती हैं उपायान्तर से नहीं और आत्मज्ञान का परम साधन सर्वेष्ट संसाधक योगशक्ति सहित हरिभक्ति ही है और वह जिनका मन निर्मल है ऐसे श्रद्धालु मुमुक्षुओं को सर्वथा सुलभ है अर्थात् ज्ञान का उत्तम साधन हरि भक्ति है ।

( २ )

श्लोक-एतद्वीक्ष्य मनीषिणः श्रुतिविदो ग्रन्थान् सुबोधप्रदान् ।
चक्रुर्योगसमन्वितान् सुमतिदान् वैराग्यवाणीयुतान् ॥
ते सर्वे सुरभाषया विरचिताः सर्वज्ञकल्पैर्बुधैः ।
दुर्बोधा अतिविस्तृता न सुगमाः स्वल्पज्ञबोधेऽक्षमाः ॥

दोहा-इस विचार से विज्ञजन, श्रुतिविद सहित विवेक ।
विरति सुमति शुभ भक्तिमय, विरचे ग्रंथ अनेक ॥३॥
सुर भाषा से वे सभी, निर्मित ज्ञान गभीर ।
वितत सुगम नहिं स्वल्प मति, समझें थोड़े धीर ॥४॥

इस बात का भलीभाँति विचार कर शास्त्रज्ञ मनीषिमंडल ने बोधप्रद अध्यात्म ग्रन्थों का निर्माण किया है जिसमें वैराग्य सहित भक्ति योग को साधन रूप से वर्णित किया गया है जिनसे आत्मज्ञान के लिये निर्मल मति की प्राप्ति होती है परन्तु वे सब ग्रंथ संस्कृत भाषा में सर्वज्ञ कल्प पंडितों द्वारा रचे गये हैं

तथा अति विस्तृत हैं इसलिये साधारण लोगों के लिये दुर्गम हैं, सुगम नहीं है अतः अल्पज्ञ मुमुक्षुओं को उनके ज्ञान द्वारा इष्ट सिद्ध नहीं हो पाता है।

( ३ )

श्लोक–आप्तः सत्यकबीर साहब गुरुः सिद्धो महायोगिराट्।
लोकोद्धारचिकीर्षया करुणया हिन्द्या गीरा शोभितम्॥
ग्रन्थं बीजक नामकं प्रतिभया वेदादिसारं शुभम्।
प्रत्यक्तत्त्वनिरूपकं रचितवान् जिज्ञासुसौख्यप्रदम्॥

दोहा–करुणा वश यह समझकर, जन तारक मतिधीर।
ऋतंभरा प्रज्ञा सहित, साहब सत्यकबीर॥५॥
वेदादिक का सार जो, आत्मबोध का पन्थ।
हिन्दी भाषा में रचा, बीजक नामक ग्रन्थ॥६॥

इस विचार से स्वयं सिद्ध योगिराज यथार्थवक्ता सद्गुरु कबीर साहब ने करुणा के कारण लोगों को अज्ञान अन्धकार से उद्धार करने के लिए अपनी प्रतिभा द्वारा (ऋतंभरा प्रज्ञा द्वारा) वेदादि के निर्मल सार सिद्धान्त को बोध कराने वाले अन्तरात्म तत्त्व के निरूपक बीजक नामक ग्रंथ को हिन्दी भाषा में बनाया।

( ४ )

श्लोक–ग्रन्थेऽस्मिन् हरिभक्तिरात्मनिरतिर्योगाङ्गसम्मण्डिता।
दम्भाचारविवर्जितातिविमला संवर्णिता युक्तितः॥
शुक्लंकर्मकदम्बकं सुविहितं निष्कामबुद्ध्या कृतम्।
आत्मज्ञानसुसाधकं हि सकलं संशोधकं चेतसः॥

दोहा–इसमें हरि गुरु भक्ति शुभ, कथित योग से युक्त।
दम्भाचार विहीन जो, आत्मनिरति संयुक्त॥७॥
पुण्य कर्म समुदाय भी, विहित सदा निष्काम।
साधन सब निज बोध के, मन शोधक अभिराम॥८॥

इस बीजक ग्रंथ में पाखण्ड रहित योग के अंगों से युक्त आत्म निष्ठा रूप भक्ति का युक्ति पूर्वक वर्णन किया गया है और भक्ति के साधन अन्तःकरण के शोधक निष्काम सत् कर्मों का भी विधान है परन्तु ये सभी ज्ञान के साधन रूप में स्वीकृत किये गये हैं अर्थात् आत्मज्ञान ही साक्षात् सर्वोपरि मोक्ष का साधन है।

( ५ )

श्लोक–आत्मा गूढ़तमः सुयोगिविदितस्तद्‌बोधका दुर्गमाः।
ग्रन्थाः सूरि सुबोधिताश्च सुगमा व्याख्यान्विताःसर्वथा॥
इत्यालोच्यविचक्षणैः सुविहिताः टीका सुबोधक्षमाः।
सर्वेषामुपकारिकाश्च विशदा भावार्थयुक्ताः शुभाः॥

दोहा–आत्मतत्त्व अति गूढ़ है, योगि बुद्धि विज्ञात।
तद्‌बोधक सब ग्रन्थ भी, दुर्गम जन अज्ञात॥९॥
सरल सभी होते वही, बुध बोधित व्याख्यात।
सुगम करण गुरु युक्ति है, सर्व भाँति प्रख्यात॥१०॥
व्याख्याता यह समझकर, टीका विविध प्रकार।
बोध विशद निर्मित किए, भाषा भाव सुधार॥११॥

प्रत्यगात्म तत्त्व नितान्त निगूढ़ है। योगिजनों से ही यथा कथंचित् जानने योग्य है अतः इस तत्त्व के निरूपक ग्रन्थ भी दुर्गम हैं। यदि वे विशेषज्ञों द्वारा व्याख्यात हों तो सुगम भी हो जाते हैं, इस विचार से विचक्षण लोगों ने सर्वोपकारक युक्ति युक्त विशद टीकाएँ लिखी हैं जिनमें मूलार्थ भावार्थ आदि भलीभाँति वर्णित हैं।

( ६ )

श्लोक–टीका यद्यपि सन्ति साधुरचिता अन्या अपीहाधुना।
तासां दुर्गमतां गताश्च वितताः काश्चित् सुविज्ञैर्मताः॥
काश्चिन्मूल विसंगितार्थसहिताः स्वल्पज्ञलोकैः कृताः।
गूढं बीजकसारशब्दनिकरं ज्ञातुं न शक्तं ततः॥

दोहा–बीजक की टीका विविध, यद्यपि हैं उपलब्ध।
वे तथापि सब सुगम नहि, सर्व सुजन संबुद्ध॥१२॥
इनमें कुछ अति विस्तृता, भाषा भाव अगम्य।
कतिपय जनमति गम्य है, साधारण दुर्गम्य॥१३॥
कई टीका स्वल्पज्ञकृत, मूल विसंगति युक्त।
बीजक सार निबोध में, हो न सकीं उपयुक्त॥१४॥

बीजक ग्रंथ की भी यद्यपि इस समय अनेक टीकाएं निर्मित प्रकाशित उपलब्ध हो रही हैं तथापि उनमें कई टीकाएं अति दुर्गम हैं तथा अति विस्तृत हैं उनमें भाषा भाव की भी कठिनता है इसलिये वे टीकायें बहुत थोड़े लोगों के बोध के उप-

योगी हैं। अधिक लोग उन टीकाओं से लाभ नहीं उठा पाते हैं और कई टीकाएँ तो बहुत थोड़ा पढ़े लिखे लोगों द्वारा बनाई गई हैं इसलिये मूलार्थ से असंगत हैं। मूल में कुछ अर्थ है तो टीका में उससे विपरीत असंगत अर्थ निकलता है। इसलिये उनसे बीजक के सार शब्दार्थ को समझना अति कठिन हो गया है।

( ७ )

**श्लोक–श्री मद्रामबिलास साहब गुरोः शिष्येण मेधाविना।**
**श्री गंगाशरणेन युक्तिसहिता मूलार्थसबोधिका॥**
**एषा सर्वहितावहा च सरला शब्दार्थसंभूषिता।**
**टीका सद्गुरुबीजकस्य विहिता बोधप्रदासन्मता॥**

**दोहा**–सद्गुरु रामविलास श्री साहब परम महान।
तिनके शिष्य सुविज्ञवर, सहित युक्ति मतिमान॥१५॥
श्रीयुत गंगाशरण जी, साहब ने अति भव्य।
बीजक की टीका लिखी, मूल बोधिनी नव्य॥१६॥
शब्द अर्थ भावार्थ युत, साधारण जन ज्ञेय।
सरल विशद हित बोधिका, सुज्ञ मान्य जन नेय॥१७॥

इसलिये काशी कबीर चौरा पीठाधीश्वर भूतपूर्व आचार्य अनन्त श्री रामबिलास साहब के मेधावी विद्वान् शिष्य श्री गंगाशरण साहब ने बीजक की एक नवीन अत्यन्त सरल टीका लिखी है जिससे अति सुगमता से मूलार्थ अच्छी प्रकार समझ में आ जाता है। शब्दार्थ, भावार्थ से संविभूषित यह टीका साधारण व्यक्तियों के लिये भी हितकर है और विद्वान् संतों को भी अच्छी लगती है।

( ८ )

**श्लोक–अस्यां वै 'कबिरा', 'कबीर' कबिरेत्यादिप्रयुक्ताः समे।**
**टीकाकार महोदयेन सुधिया शब्दाः समानार्थकाः॥**
**निर्णीताः हि सुयुक्ति बुद्धिवलतश्चन्यासु भिन्नार्थकाः।**
**टीकासु प्रथिताः कबीरपथिके लोकेनिरूढ़ि गतां॥**

**दोहा**–इस टीका में युक्ति से, 'कबिरा', 'कबिर', 'कबीर'।
प्रभृति शब्द एकार्थ ही, सिद्ध किए बुध वीर॥१८॥
छन्द दृष्टि या नम्रता, के कारण कुछ भिन्न।
बोले जाते हैं विकृत, अर्थ समस्त अभिन्न॥१९॥
अन्य रचित टीका लिखे, भिन्नार्थक पथ रूढ़।
जीव, कवि, सद्गुरु परक, विविध अर्थ अति गूढ़॥२०॥

इस टीका में कई विशेषताएँ हैं जैसे कि मूल बीजक में प्रयुक्त 'कबीर', कबिरा', 'कबीर', 'कबीरा' इत्यादि पद समानार्थक निर्णीत हुए हैं। कहीं छन्द की सुविधा के लिये दीर्घ 'ई' कार ह्रस्व 'इ' कार रूप से और कहीं ह्रस्व 'अ' कार दीर्घ 'आ' कार रूप में प्रयुक्त हुआ है और कहीं नम्रता के कारण ह्रस्व 'अ' कार दीर्घ 'आ' करके रूप में उच्चारित हुआ है परन्तु सभी का अर्थ एक ही है अर्थात् 'कबिर', 'कबिरा', 'कबीर', 'कबीरा', आदि सभी पद ग्रंथकार सद्गुरु कबीर वाचक हैं। इसलिये 'अ' कार 'इ' कार आदि ह्रस्व हों या दीर्घ हों सभी पदों का एक ही अर्थ है ऐसा टीकाकार ने सिद्ध करने का प्रयास किया है।

दूसरे कबीरपंथी टीकाकारों ने पूर्वोक्त पदों को भिन्नार्थक लिखा है। ये सब शब्द कबीरपंथ में विभिन्न अर्थों में रूढ़ से हो गये हैं। कहीं जीववाचक, कहीं कविवाचक कहीं सद्गुरु वाचक माने गये हैं।

( ९ )

श्लोक–इत्यस्याः सुविशिष्टता समभवत् पश्यन्तु तां सज्जनाः।
श्रुत्वाहं शुभसारमंशममलं 'रामेश्वरानन्दकः'॥
आशासे यदिमां पठन् सुमनुजो ध्यायन् परेशं गुरुम्।
हित्वाक्लेशमशेषमात्मनिरतः प्रेयात्पदं शाश्वतम्॥

दोहा-यह इसकी सुविशिष्टता, प्रकटी परम न वीन।
इसी तरह कुछ और भी, समझें विमल प्रवीन॥२१॥
सार अंश मैंने सुना, कहीं कहीं भावार्थ।
प्रमुदित मन मेरा हुआ, बीजक भाव यथार्थ॥२२॥
इसको पढ़कर जो मनुज, करि हरि गुरु का ध्यान।
पंच क्लेश को त्याग कर, आत्मनिरत मतिमान॥२३॥
होकर सो निज बोध से, पावे परमानन्द।
ऐसी आशा कर रहा, 'रामेश्वर' सानन्द॥२४॥

इस टीका की यह विशेषता सम्पन्न हुई है इस पर सज्जन लोग विचार करें यह मेरी प्रार्थना है। इस टीका का कुछ सार भाग मैंने सुना। टीकाकार श्री गंगाशरण साहब ने सुनाया। मुझे अच्छा लगा। प्रसन्नता हुई। मैं आशा करता हूँ कि इसको पढ़ने वाले मनुष्य सद्गुरु परमात्मा का ध्यान कर ज्ञान द्वारा अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन पाँच क्लेशों को त्याग कर आत्मनिष्ठ होकर शाश्वत परमपद को प्राप्त कर सकेंगे—

**रामेश्वरानन्द**
श्री कबीर मंदिर, पानी दरवाजा, बड़ोदरा।



## बीजक ग्रन्थ का मुख्य प्रयोजन

केवल आत्मज्ञान प्रतिपादन इस बीजक ग्रन्थ का मुख्य विषय है। सभी प्रकार के अनर्थों की निवृत्ति एवं परमानन्द की प्राप्ति रूप प्रयोजन हैं तथा आत्मसाक्षात्कार करने का साधन है। विषय निवृत्ति आत्मज्ञान की प्राप्ति का कथन है। विवेक, वैराग्य, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान एवं मुमुक्षा वाले इस बीजक ज्ञान के अधिकारी हैं। यही बीजक ग्रंथ का संक्षिप्त अनुबन्ध चतुष्टय है अधिक विस्तार भय से उक्त विषय को संक्षेप में दिग्दर्शन कराया जाता है।

●

# प्राक्कथन

किसी भी महापुरुष को परिस्थितियां उत्पन्न करती हैं। देशकाल के अनुसार उसके कार्य कलाप होते हैं। जिस समय सद्गुरु कबीर का प्राकट्य हुआ था वह काल बहुत ही विषम और ऊहा-पोह का काल था। देश परतन्त्र था, दासता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था इस भारत भूमि पर सातवीं शताब्दी से ही विदेशियों का आक्रमण होते रहा। भारतीय संस्कृति का मानमर्दन होते रहा। हिन्दू जनता अपने सभी प्रकार के अधिकारों से वंचित कर दी गयी थी। देशी राजे-महाराजे भी अनेकता के आखेट हो रहे थे। जिसका लाभ आक्रमणकारियों को खूब मिला। भारतीय शासन का केन्द्र भी राजा जयचन्द के कारण निर्बल हो चुका था। भारत की अधिक निर्बलता को देखकर विदेशियों के पांव यहाँ पर सहज में ही जम रहे थे। अनेक लड़ाईयों के पश्चात् भी भारत पराजय का मुख देख चुका था। विदेशी शासक सर्वप्रथम तो देश को लूट कर पलायित हो जाते थे परन्तु पश्चात् भारत में शासन करने की उनकी लिप्सा बढ़ती ही गयी। येनकेन प्रकारेण देश की राजगद्दी पर विदेशियों का आरोहण हो गया। बड़ी क्रूरता के साथ देशवासियों का दमन होने लगा। भारत के मठ और मंदिर जो भारतीय संस्कृति के केन्द्र थे। उनको धराशायी करने का उपक्रम चल पड़ा। विद्यालय और विश्वविद्यालय ध्वस्त होने लगे। भारत में इतनी क्षमता न रही कि वह अपनी संस्कृति को बचा सकता। भारतीय संस्कृति के स्थानों पर विदेशी संस्कृति की स्थापना होने लगी। परिणामस्वरूप देश में हलचल-सी मच गयी। बलात् धर्म परिवर्तन होने लगे। लोग किसी धार्मिक एक ईकाई के न होने से सोचने में किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये थे। कोई भी विदेशी शासक भारत के साथ इसको बचाने की सुविधा नहीं दी। देश के राजे-महाराजे अपनी विलासिता के कारण कुछ करने में व देश बचाने के बारे में कुछ सोच नहीं सकते थे। यहाँ तक कि जिस एक स्त्री के अपहरण के कारण अपहरण करने वाले को समूल नष्ट कर दिया गया था। वहीं पर अनेक स्त्रियों को, बहु-बेटियों को आक्रमणकारी अपनी रखेल और निजी भोग के लिए अपहरण करते रहे। हिन्दुओं में पूर्णरूपेण एकता का अभाव था। जाति-पाति इतनी बढ़ गयी थी कि एक हिन्दू का छुआ जल दूसरा हिन्दू नहीं पीता था। इसी प्रकार से जो कभी यहाँ पर 'कृण्वन्तोविश्वमार्यम्' की घोषणा की गयी थी वहीं पर अनेक सम्प्रदाय और अनेक पंथ चल पड़े थे जिसके संकेत पर देश का शासन चलता था जो मंत्रित्व के द्वारा देश के शासन

को मंत्र देता था और धर्म का गुरु भी था। वह अग्रजन्मा ब्राह्मण भी मूर्खता और अशिक्षा के कारण देश का शत्रु बन बैठा। क्षत्रिय वर्ग भी जो देश के रक्षक के रूप में विख्यात था वह भी लोभ के वशीभूत होकर विदेशियों को आक्रमण करने के लिए आहूत करता था। और एक उत्ताल तरङ्गित समुद्र की भाँति भारत क्षुब्ध हो उठा था। सारी मान्यतायें समाप्त हो चुकी थीं। एक ही ब्रह्मा की सन्तान भारतीयों में अनेक ब्रह्मा की संतान हो रही थी। भाई को ही भाई नीच मानता था। जिसके कारण भी विदेशियों को फूट डालने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ और जिसकी अत्याचार की कहानी भारतीय इतिहास के पृष्ठों पर अंकित है। सद्गुरु कबीर का काल विदेशी शासन का मध्य काल था। उस समय दिल्ली पर बहलोल लोदी का पुत्र सिकन्दर लोदी शासन करता था जो बहुत ही क्रूर एवं कठोर दण्डदाता था। सद्गुरु कबीर को उपयुंक्त परिस्थितियाँ ही भारत में प्रकट किया। जहाँ पर एक धर्म को दूसरा धर्म गाली देता था। ऐसी परिस्थिति में कबीर साहब का अद्भुत शक्ति के रूप में अवतरण हुआ। उक्त अनिश्चय के वातावरण में सद्गुरु कबीर नीरु और नीमा के द्वारा पालित हुए तथा स्वामी रामानन्दजी के द्वारा दीक्षित हुए थे। युवावस्था में ही देश की परिस्थिति को देखकर आप आक्रान्त हो गये। वे यावत् जीवन हिन्दू और मुसलमानों को एकता की राह पर चलने के लिए कहते रहे। उनका कहना था कि मानव का धर्म सत्य, अहिंसा, ऋजुता, क्षमा, सत्य शील ही धर्म है। वे कहते थे कि इस संसार का निर्माण करने वाला एक ही तत्त्व है। चाहे उसको ब्रह्मा कहो, चाहे उसको आदम कहो, चाहे उसको ईश्वर कहो, चाहे उसे अल्लाह कहो वह एक ही है। 'राम खुदाय सक्ति सिव एकै' की बात कहकर सभी को समझाते रहे। परिणाम यह हुआ कि जो लोग दूसरी संस्कृति को ग्रहण करते जा रहे थे वे लोग पुनः भारत की उदार संस्कृति की ही उपासना करने लगे। कुछ एकता और भाई-चारे की लहर देश में दौड़ गयी परन्तु उसका मूल्य कबीर साहब को बहुत चुकाना पड़ा। कारण कि धर्म के और संस्कृति के अन्ध परं-पराओं को सद्गुरु कबीर साहब ने नकार दिया। जिस पर कट्टर विदेशी पुरोहित और मौलवी लोग सद्गुरु पर अति क्रुद्ध हो उठे। इसी प्रकार से हिन्दू पुरोहित ब्राह्मण भी अपना पोल खुलते देखकर कबीर साहब पर टूट पड़े। इसी प्रकार से शैव और शाक्त भी कबीर साहब को अपना कोपभाजन बनाते रहे। परिणाम स्वरूप सिकन्दर लोदी के समक्ष भी सद्गुरु कबीर साहब को उपस्थित किया गया परन्तु वहाँ भी जीत सद्गुरु कबीर साहब की हुई। सिकन्दर को मानना पड़ा कि कबीर साहब का विचार सत्य पर आधारित है। इसलिए वह भी इनकी ओर से अपने मन को हटा लिया। यद्यपि मौलवी और हिन्दू पुरोहित आजन्म इनका

पीछा करते रहे। उक्त बात की पुष्टि इनके एक दोहे से हो जाती है—

जेते तारा रैन के, तेते बैरी मुझ्झ।
सिर सुली धर कांगुरे, तउ न विसारो तुझ्झ॥

उक्त साखी से ही उनके विरोधियों की संख्या का पता चल जाता है परन्तु बड़े अदम्य साहस के साथ वे अपने अभियान को चलाते रहे और अन्ततः सफलता भी उनको वरण की।

विक्रम सम्वत् १४५६ ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन अवतरित होकर १५७५ वि० सं० माघ सुदी एकादशी के दिन इस लोक से परिगमन किये।

## प्रामाणिक वाक्य

सद्गुरु कबीर की वाणी वचनों पर बहुत खोज हुई है। जिनके ग्रंथों की संख्या लगभग दो सौ तक पहुँच गयी है परन्तु आज भाषा वैज्ञानिकों की खोज के अनुसार इतने विपुल साहित्य में केवल दो चार ग्रन्थ ही प्रामाणिक सिद्ध हुए हैं। भारत में परम्परा रही है कि किसी महापुरुष के नाम पर ग्रन्थ बना देना, कुछ उसमें मिला देना यह कोई नवीनतम बात नहीं है। यह वेद काल से ही सुना जाता है कि वेद एवं उपनिषदों में तथा महाभारत और रामायण में भी बहुत प्रक्षेप मिलाये गये हैं। इसी प्रकार से पुराणों को तो प्रक्षेपों का भंडार ही कहा जाता है और वशिष्ठ, व्यास के नाम पर उनकी स्मृतियों में बहुत मनगढ़न्त प्रक्षेप मिलाये गये हैं। प्रक्षेपों के कारण सत्यता लुप्त हो जाती है क्योंकि विरोधाभास उपयुंक्त ग्रन्थों में परिलक्षित होता है। इसी प्रकार से सद्गुरु कबीर के नाम पर अपार वाणियों का सृजन हुआ है और आज भी यदा-कदा लोग करते जा रहे हैं। वाणियों के सागर में सद्गुरु के वचन रूपी रत्नों को निकालना बड़ा कठिन हो गया है तो भी भाषाविदों ने बहुत खोजबीन कर कुछ वाणियों का निश्चय किया कि यही कबीर साहब की वाणी है जैसे 'बीजक' 'कबीर ग्रन्थावली', 'गुरु ग्रन्थ' की कुछ वाणियाँ भी हैं कुछ प्रक्षेपकों के साथ 'चौरासी अंग की साखी' इसी प्रकार से कुछ शब्दावली में भी कबीर साहब के पद मिलते हैं। सद्गुरु कबीर की भाषा मध्यकाल की भाषा रही है। मध्यकाल में भाषा इतनी परिमार्जित नहीं हो पाई थी। वह भी प्राकृत से प्रसूत थी। डिंगल आदि कई भाषाओं का सम्मिश्रण तत्कालीन समय में हो चुका था जो पूरे देश की भाषा की शब्दावली को आत्मसात् कर चुकी थी। यों तो भाषा का निर्णय कर पाना बड़ा कठिन काम है। भाषा का एक रूप कहीं नहीं मिलता। देश काल के अनुसार उच्चारण की शैली भी भिन्न-भिन्न रही है और सबसे जबरदस्त दोष यह था कि एक-दूसरे प्रान्त के लोग वहाँ के महापुरुष की वाणी को अपने मुहावरे में लिखते थे और उच्चारण अपनी भाषा का दे-

देते थे। इसे भाषा की दृष्टि से देखा जाय तो 'कबीर ग्रन्थावली' एक राजस्थानी, पंजाबी मिश्रित ग्रन्थ बन चुका है। यद्यपि भाव-भंगिमायें कबीर साहब के अनुकूल हैं परन्तु भाषा और विन्यास को देखने से लगता है कि यह कबीर कृत नहीं है। प्रत्युत उनके नाम पर रचा हुआ ग्रन्थ है परन्तु खोजबीन के आधार पर 'कबीर ग्रन्थावली' कबीर साहब का ग्रन्थ मान लिया गया है। क्योंकि 'कबीर ग्रन्थावली' के कुछ ही पद स्वतन्त्र हैं। शेष पद 'गुरुग्रन्थ साहब' में एवं 'बीजक' में तथा 'अंग की साखियों' में मिल जाते हैं। इसलिए 'कबीर ग्रंथावली' को कबीर साहब की वाणी मानने में कोई आपत्ति नहीं है और जो उसमें लिपि आदि का दोष है वह लिपि कर्त्ता की कृपा का फल है। इसी प्रकार से 'बीजक' की भाषा भी अधिकतर भोजपुरी प्रान्त की है जिसमें भोजपुर, सीवान, छपरा, मुजफ्फरपुर की बोलियां शामिल हैं। जब सद्गुरु कबीर वाराणसी के थे तो वाराणसी के आसपास की भाषा होनी चाहिए थी परन्तु भोजपुरी में 'बीजक' ग्रन्थ कैसे हो गया इस बात का निर्णय करना कठिन है परन्तु किंवदन्तियों के आधार पर यह माना जा सकता है कि कबीर साहब का प्रचार क्षेत्र अधिक तत्कालीन भोजपुर प्रान्त ही था। इसलिए उधर के संकलन कर्त्ता स्वयं अपनी भाषा में ही तोड़-मरोड़ कर 'बीजक' का संकलन किया हो। जिससे 'बीजक' अपनी मूल भाषा से बहुत दूर हो गया हो। इसलिए अनेक विद्वानों ने इस पर संदेह व्यक्त किया है कि यह 'बीजक' ग्रन्थ कबीर अनुवर्ती किसी सन्त की कृति है परन्तु किसी सन्त की कृति कहने से 'बीजक' की प्रामाणिकता समाप्त नहीं हो जाती है इसके लिए और भी आधार होने चाहिए। दूसरी बात यह कि जितने भी महापुरुष हुए हैं वे अपने उपदेश को अधिकतम जनभाषा में ही कहा है। जहाँ के लोग जिस भाषा को समझते थे उन क्षेत्रीय भाषाओं में भी महापुरुषों के द्वारा उपदेश दिया गया है। भगवान बुद्ध और महावीर स्वामी ने भी जनभाषा और प्राकृत के माध्यम से अपनी बात कही है। इसलिए 'बीजक' में भोजपुरी का आना कोई आश्चर्य नहीं है। दूसरी बात बनारस भी बहुत पहले भोजपुरी से आवृत सुना जाता है। यों तो बनारस की भाषा काशिका रही है। जो वज्जिका से मिलती-जुलती रही परन्तु भ्रमणशील होने के कारण 'बीजक' में वाराणसी की भाषा के शब्द कम आ पाये। उच्चारण भी अन्य प्रदेशों का ही रहा। अनुमान से कुछ बातें पकड़ी जा सकती हैं। सीधा 'बीजक' नाम का उल्लेख बहुत पहले कम मिलता है परन्तु 'बीजक' के प्रकरणों का उल्लेख बहुत पुराना है। 'भक्त-माल' के रचयिता स्वामी श्री नाभादास जी ने सर्वप्रथम रमैनी, शब्द, साखी कहकर 'बीजक' की प्रामाणिकता बना देते हैं। उनके कथनानुसार 'बीजक' का रमैनी प्रकरण प्रथम है और द्वितीय शब्द प्रकरण क्रमानुसार ही है। जो 'संतों भक्ति

सतोगुर आनी' से हिंडोला तक पहुँच जाता है। उसके पश्चात् ३५३ साखियों का स्थान आता है। वास्तव में 'बीजक' तीन ही प्रकरण में आख्यायित है। 'बीजक' की एक साखी है उसमें साफ-साफ बीजक नामांकन हुआ है। इसलिए 'बीजक' नाम भी बहुत पुराना लगता है।

'बीजक वित्त बतावई, जो वित्त गुप्ता होय।' इससे यह सिद्ध होता है कि सद्गुरु कबीर ने स्वयं इस ग्रंथ का नाम 'बीजक' रखा था जो आज पर्यन्त 'बीजक' के नाम से प्रसिद्ध होता रहा है। इसलिए 'बीजक' निर्विवाद सद्गुरु कबीर साहब का प्रामाणिक ग्रन्थ है इसमें संदेह का स्थान नहीं है। कुछ शब्दों को लेकर यद्यपि बाहर के विद्वानों ने 'बीजक' के कुछ पदों पर संदेह व्यक्त किया है परन्तु भाषा की कसौटी पर 'बीजक' की वाणियाँ एक ही व्यक्ति की कही हुई लगती हैं। इसलिए 'बीजक' के किसी पद पर संदेह करना और 'बीजक' कबीर साहब का नहीं है यह कहना बहुत बड़ी भूल होगी। यदि 'बीजक' कबीर साहब का ग्रन्थ नहीं है और 'कबीर ग्रन्थावली' भी कबीर साहब की कही हुई नहीं है इसी प्रकार से 'अंग की साखी' भी उनकी नहीं है तो किस ग्रन्थ को कबीर साहब का ग्रन्थ माना जाय इसका उत्तर किसी के पास नहीं है और न किसी को किसी ग्रन्थ की भाषा ही साक्ष्य देती है। दूसरी ओर कबीर पंथ में अभी सैकड़ों 'बीजक' के अनुलेख भरे पड़े हुए हैं जो सैकड़ों वर्ष पुराने हैं और उनकी भाषा भी मध्यकाल को भाषा है। मध्यकाल में जिस ग्रामीण भाषा में शब्दों का प्रयोग होता था उसी उन्मुक्त भाषा का प्रयोग 'बीजक' में भी हुआ है। जैसे मुक्त का मुकुति, भक्ति का भगति, नाम का नाऊं, ग्राम का गाँव, नगर का नग्र इत्यादि अपभ्रंश ग्रामीण उच्चारण ज्यों के त्यों मध्यकाल के भरे पड़े हैं जिस पर काम भी हुआ है। इधर भले ही कुछ विद्वान् लोग भूल से भाषा की न जानकारी के कारण तद्भव से तत्समीकरण की ओर 'बीजक' को खीचा है। कबीर को सुशिक्षित बनाने के लिए आज की भाषा से मिलता-जुलता विचार रखने के लिए उपक्रम किया गया है। पहले भाषा में तालव्य 'श' का उच्चारण नहीं था न 'ट' वर्गीय 'ण' का उच्चारण था। इसी प्रकार से 'ल्ह' और 'ऋ' का भी उच्चारण नहीं था और मूर्धन्य 'ष', 'ष' और 'ख' दोनों का काम करता था। ख भी मध्यकाल में विद्यमान था। तालव्य 'श' का काम मूर्धन्नी 'ष' और श का काम केवल दन्तीय 'स' से ही हो जाता था। संयुक्त 'क्ष' भी भाषा में नहीं था। इसी प्रकार से संयुक्त 'ज्ञ' भी भाषा में नहीं था। 'त्र' का भी अभाव था इनके स्थान पर दो अक्षरों के संयोग होते थे। उसी से भाषा और उच्चारण का काम हो जाता था और अर्थ का बोध भी लोग कर लेते थे परन्तु बात को न समझकर लगभग ड़ेढ़ सौ वर्ष के आसपास से लोग 'बीजक' की भाषा की सुधार के नाम पर बिगाड़ना प्रारम्भ कर

दिये हैं और जहाँ-जहाँ अतुकान्त था वहाँ-वहाँ पर तुकान्त भी गढ़ा गया। ये सब अनर्थ जो लोग किये हैं वे लोग बिल्कुल भाषा विज्ञान से अपरिचित थे। इसलिए 'बीजक' की भाषा संदेह की दृष्टि से देखी जाने लगी ऐसी बात नहीं है। ये सब दोष बाद के लोगों का है। 'बीजक' की भाषा वही भाषा है जो मूलगादी से 'बीजक' प्रकाशित है। जिस पर कुछ विद्वानों ने काम भी किया है। जिसमें हंसदास शास्त्री, उदय शंकर शास्त्री तथा महावीर शास्त्री और श्री विचार दास जी साहब ने भी 'बीजक' पर काम किया है और कुछ बाहर के भी लोग भी 'बीजक' पर काम किये हैं। मध्यकाल के अनुसार 'बीजक' का सम्पादन भी उक्त व्यक्तियों ने किया है। इसलिए 'बीजक' की भाषा मध्यकाल की भाषा है और यह ग्रंथ भी मध्यकाल की एक देन है और इस पर आज तक बहुत सी टीकायें भी हो चुकी हैं। जिसमें की गयी टीकायें जन साधारण की समझ मे नहीं आती हैं। विद्वानों की टीकायें पाण्डित्यपूर्ण होने से जन सामान्य समझन में असमर्थ रहा है इसलिए सरल सुगम 'बीजक' की टीका की आवश्यकता जान पड़ी। जिसके कारण यह टीका व भाष्य आपके सामने प्रस्तुत है। अब टीकाओं के गुण दोष पर विचार करना कुछ जान पड़ता है। सद्गुरु कबीर साहब किस सिद्धान्त को मानते थे, क्या उनका सिद्धान्त था ? पहले निश्चय इसी बात का होना चाहिए। तो यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि वे आस्तिक, एक ईश्वरवादी सन्त थे, ईश्वर की उपासना के द्वारा अद्वैततत्त्व की प्राप्ति उन्होंने बताई है। यद्यपि उन्होंने मुक्ति के अनेक मार्गों का दिग्दर्शन कराया है। तथापि सबका लक्ष्य अभेद को प्राप्त होना है। भक्ति और उपासना में यहाँ द्वैतवाद की आवश्यकता होती है। उन्होंने इसके लिए भक्ति और उपासना का निर्देश दिया है। योग ध्यान की भी चर्चा की है। इस प्रकार से परमतत्त्व की प्राप्ति के लिए सनातन मर्यादा के अनुसार और उपनिषदीय विचारों के अनुसार उन्होंने अपना विचार रखा है परन्तु अशिक्षा के कारण और ग्रन्थ दुरूहना के कारण बहुत से टीकाकारों उक्त मान्यताओं से परे विचार किया है और एक नये सिद्धान्त की सर्जना भी की है। जिनका लक्ष्य केवल जीववाद है और सारी मान्यताओं का विखण्डन करना है। वे जगत को सत्य मानते हैं और जीव को भी सत्य मानते हैं। ऐसे टीकाकारों में श्री पूरनदास जी साहब, श्री मेहीदास जी साहब, श्री महाराज राघवदास जी साहब, श्री प्रयागदास जी साहब आते हैं। इसी कोटि में महन्त श्री रामस्वरूप दास जी भी आते हैं जो बहुत विशाल एक महाभाष्य नामक टीका लिखी है। जो निम्नोक्त कहावत को चरितार्थ करती है। 'खोदे पहाड़ निकली चुहिया' वाली बात है। जो विद्या बुद्धि का बहुत बड़ा दुरुपयोग किया गया है। इसलिए बहुत से लोगों को

भरमाने के लिए और कबीर साहब के सही सिद्धान्त से लोगों को दूर करने के लिए ऐसे उपक्रम किये गये हैं। कबीर साहब की वाणी दो प्रकार से समझी जा सकती है और उनकी वाणियों पर चिन्तन-मनन भी होना परम अनिवार्य है। साथ ही अनुभूति भी होना नितान्त आवश्यक है। तभी कबीर साहब और उनकी वाणी समझ में आ सकती हैं इन सभी बातों पर विचार कर टीकाओं पर ज्यादा विश्लेषण न करना ही ठीक है। क्योंकि पाठक वृंद उक्त टीकाओं को पढ़कर समझ सकते हैं। इन टीकाओं पर पुनः आगे विचार किया जायेगा।

कबीर साहब का दर्शन एक समन्वयकारी दर्शन है जिस पर बहुत विचार हो चुका है। यद्यपि कुछ लोग उनको सूफियों से प्रभावित बतलाते हैं, कुछ लोग अन्य स्रोतों से प्रभावित बताते हैं। बौद्धों का कथन है कि कबीर साहब का दर्शन बौद्ध धर्म से निःसृत है। जिसमें कुछ कबीर साहब की पंक्तियों को लेकर अपनी ओर कबीर साहब को खींचते हैं। बौद्ध विद्वानों का कहना है कि शून्य और निरंजन शब्द बौद्धों की देन है और इन शब्दों पर कबीर साहब ने अधिक बल दिया है। उनका कहना है कि वे कहते हैं कि **सून्य सहज मन सुमिरते प्रगट भई एक जोति', 'सून्न सनेही राम बिना'** और इसी प्रकार से निरंजन की भी चर्चा 'कबीर ग्रंथावली' और 'बीजक' में भी स्थल-स्थल पर हो चुकी है। जिसको लेकर बौद्ध गण कहते हैं कि कबीर साहब का विचार बौद्धों से निःसृत है और बौद्धों की देन है। इसी प्रकार से स्वामी महावीर के अनुयायी भी बौद्धों से पीछे नहीं रहे हैं। वे भी कबीर साहब को अपनी परम्परा का सन्त मानते हैं। इसी प्रकार सिद्ध सम्प्रदाय एवं नाथ योगी भी कबीर साहब को अपना उद्धारक मानते ही हैं। इसी प्रकार अद्वैतवादी, द्वैत-वादी, द्वैताद्वैतवादी लोग भी कबीर साहब को अपना अनुयायी मानते हैं। इस दिशा में विज्ञात हो कि कबीर साहब इतने व्यापक रहे हैं कि ईसाई एवं इस्लाम के लोग भी उन्हें अपना अनुवर्त्ती मानते हैं। प्रत्युत कबीर साहब क्या हैं। उनका दर्शन क्या है? निम्नोक्त पंक्तियों से पता चलेगा कि कबीर साहब का दर्शन जहाँ एक ओर वेदों के अद्वैतवाद तथा उपनिषदों के एकात्मवाद से मिलता है। वहीं मुसलमानों का एकेश्वरवाद, ईसाईयों का शब्दवाद, सांख्य का प्रकृति-पुरुषवाद, दक्षिणी सम्प्रदाय एवं निर्गुणवादियों का निर्गुणवाद मीमांसकों का तत्त्ववाद वा कर्मवाद तथा योगियों के योगवाद को भी आत्मसात् करता हुआ बुद्ध के कारुण्यवाद और पश्चिम के मानववाद के समकक्ष एक विशेष प्रकार का जीवन दर्शन प्रस्तुत करता है। 'बीजक' ऋग्वेद के **'एकं सद् विप्राः बहुधा बवन्ति'**। के अनुसार जिस एक सत्य को पंडित लोग अनेक नामों से पुकारते हैं। वहीं पर बीजक वेद मंत्र का अनुगमन करता हुआ कहता है कि—

**'राम खुदाय सक्ति सिव एक हि'**—अर्थात् वह अनेक नामों वाला पुरुष एक ही है। क्योंकि 'बीजक' यह भी कहता है **'दो जगदीश कहाँ ते आये' वेद पुराण कितेब कुराना, नाना भांति बखाना'** परन्तु कबीर साहब का यह ब्रह्म जहाँ उपनिषदों की तरह **'एकोऽहम् द्वितीयो नास्ति'** की व्याख्या करता है। वहीं पर वैष्णव निर्गुणवादी सन्तों के 'अलखनिरंजन' का भी अनुयायी है। निम्नोक्त पदों से स्वयं ज्ञात हो जाता है।

**वाको नाम का कहि लीजै, ना वाके वरण न रूपा।**
**थूल-स्थूल पवन नहीं पावक, रवि ससि धरनि न नीरा ॥**
**जोति स्वरूप काल नहिं उहवाँ, वचन न आहि सरीरा।**
**करम धरम किछो नहिं उहवाँ, न वह मंत्र न पूजा ॥**
**संयम सहित भाव नहो उहवाँ, ना वह वेद विचारा ॥**
**हरि हर ब्रह्मा नही सिव सक्ति, ना वहां तीरथ अचारा ॥**
**माय बाप गुरु जा के नाहीं, सो धौ दूजा की अकेला ॥**

यही अक्षर ब्रह्म है। इसी को निक्षर ब्रह्म भी कहते हैं। जिसका वर्णन गीता इस प्रकार करती है।

**परमं अक्षरं ब्रह्म, स्वभायोऽध्यात्ममुच्यते।**
**भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्म संज्ञीतः ॥**

कबीर साहब स्वयं कहते हैं।

**'जहाँ बोल तहाँ अक्षर आया' जह अक्षर तहँ मन ही दृढ़ाया।**
**बोल अबोल एक हो जाई, जिन्ह यह लखा सो बिरला होई ॥**

यह ब्रह्म सभी जीवों में निर्गुण रूप में परिव्याप्त है। **'एको देवो सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापि, सर्वभूतान्तरात्मा साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च।'**

परन्तु कबीर साहब कागज की लेखी पर विश्वास नहीं करते। वे आंखिन की देखी एवं स्वानुभूति पर विश्वास करते हैं। इसे कुछ विद्वान उन्हें अनामपंथी, अनुभवपंथी अथवा जीववादी अथवा पारख सिद्धान्तवादी भी कहते हैं परन्तु जीववादी दर्शन एवं पारखवादी सिद्धान्त दर्शन केवल कबीर साहब के नाम पर थोपा जाता है। क्योंकि उन्हीं वाणियों पर विवेचन करने पर पूर्णरूपेण उपनिषद्-दर्शन की ओर आकृष्ट होना पड़ता है। उस ब्रह्म का दर्शन कबीर साहब हृदय स्थली में करते हैं। क्योंकि उनका ब्रह्म व उपास्य देव हृदय में ही निवास करता है। उनका ब्रह्म तीरथ, व्रत में तथा मंदिरों में व मस्जिदों में नहीं अपितु घट-घट में निवास करने वाला है। वे कहते हैं कि दिल में खोजने के लिए साधना करो।

**'दिल में खोज दिल हि मा खोजो, इहै करीमा रामा।'**

जो सभी प्राणियों में परिव्याप्त है परन्तु उनका यह राम व ब्रह्म दासरथी राम नहीं है क्योंकि वे कहते हैं **'दशरथ सुत तिहुँ लोकहि जाना, राम नाम का मर्म है आना।'** अब प्रश्न यह उठता है कि यह राम दशरथसुत नहीं है तो वह राम कौन है। इस पर कबीर साहब उत्तर देते हैं। वे कहते हैं कि वह राम अनादि अखिल ब्रह्माण्ड की रचना करने वाला है। उसी की शक्ति से शक्तिमान होकर कार्य ब्रह्म सृष्टि की रचना करता है। क्योंकि वे स्वतः कहते हैं—

**'जब हम रहल रहल नहिं कोई, हमरे माह रहल सब कोई।**, यही अनादि ब्रह्म जिसमें समस्त जगत समाविष्ट है। जगत का कर्ता परमतत्त्व है। जिसके अंश भूत कार्य ब्रह्म अपनी इच्छानुसार एक से अनेक हो जाता है। **एकोऽहम् बहुस्याम् प्रजायेय'** जिसको कबीर साहब कहते हैं कि **'एक ते अनन्त अनन्त एक हो आया। परिचय भये जब एक ते, तो अनंतो एकै मांहि समाया'।** ब्रेडले भी इस निरपेक्ष तत्त्व को स्वीकार करता है। इस प्रकार कान्ट महोदय भी ईश्वर को आदि कारण से समीकृत नहीं मानते उनका सर्वोच्च कर्ता भिन्न है। कान्ट के विचार में कारण आदि की धारणा मूर्त जगत यानी व्यवहार जगत पर ही लागू होती है। उससे ईश्वर आदि अतिइन्द्रिय पदार्थों पर लागू नहीं किया जा सकता। बौद्धवादी भी अपने निर्वाण को इसी उच्चतम तत्त्व को अथवा निरपेक्ष परमतत्त्व को या प्रत्यय के समकक्ष मानते हैं। नागार्जुन ने (आध्यात्मिक) कारिका में जो मोक्ष-निर्वाण का वर्णन किया है। यह उसी प्रकार का है जिस प्रकार उच्चतम प्रत्यय के सम्बन्ध में भारतीय अध्यात्मवादियों का विचार है। जैसा कि विरोधहीन, उत्पादनहीन, नाशहीन अशाश्वतः, अनेकार्थ नानार्थ अगमन-हीन, निर्गमनहीन आदि विशेषणों का प्रयोग किया है। पश्चात् दार्शनिक प्लेटो भी जाति प्रत्यय में गुफा रूपक के द्वारा यह बतलाने का प्रयास किया है कि इस संसार की चीजें अर्थहीन या सारहीन मात्र हैं। हमें उधर से अपना चित्त खींचकर प्रत्यय जगत की ओर लगना चाहिए। वेदान्तियों ने भी कहा है कि **'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'** और कबीर साहब कहते हैं कि यह संसार माया का है। एवं झूठ है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश सभी का अभाव हो जाता है। **'झूठ-झूठा कर डारहु मिथ्या यह संसार' 'एके नारी जाल पसारा, जग में भया अंदेसा।' खोजत खोजत काहू अन्त न पाया ब्रह्मा विष्णु महेशा।'** ब्रह्म बहुत प्रकार के चित्रों को बनाकर रास रचता है परन्तु कबीर साहब कहते हैं कि ये पुण्य-पाप करने वाले प्राणी वर्ग सूर साधक जगत प्रपंच ही नहीं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, सूर्य

चन्द्र नाग लोक से लेकर विष्णुलोक तक सब क्षण मात्र में गल पच कर विनष्ट: हो जाते हैं।

**विष्णु लोक बिनसे क्षिण माहीं, हौं देखा प्रलय की छाहीं।**, कबीर साहब का यह परमतत्त्व अन्य ईश्वर आदिक अर्थात् कार्य ब्रह्म से भिन्न है। वह न तो अयोध्या का राम है, और न तो गोकुल का कृष्ण है न तो अन्य कोई देवी देवता ही है। और नहीं विष्णु है। और नहीं महेश है। वह चौबीस अवतारों में भी कोई अवतार नहीं है। अर्थात् सभी अवतारों को भी कबीर साहब उस ब्रह्म से अलग मायावी मानते हैं अथवा अस्वीकार कर देते हैं। क्योंकि उनकी दृष्टि में '**दस अवतार ईश्वरी माया कर्ता कै जिन पूजा, दसरथ कुल औतरि नहिं आया, नहिं लंका के राव सताया, नहिं देवकी के गर्भहि आया, नहिं जसोदे गोद खेलाया, पृथ्वी रमन धमन नहिं करियां, पैठि पताल नही बलि छलिया। ई सब काम साहब कै नाहिं, झूठ कहै संसारा**' इत्यादि प्रकार की वाणियाँ 'बीजक' में भरी पड़ी हैं। जो पूर्ण रूप से अवतारवाद का बहिष्कार करती हैं। उक्त प्रकार के वाक्यों को उद्धृत करके कबीर साहब ने अवतारवाद का निषेध कर दिया है। इसमें थोड़ी सी विवेचना की और जरूरत है यद्यपि बाह्य दृष्टि से ऐसा ही लगता है कि कबीर साहब अवतारों को बिल्कुल अस्वीकार कर दिये हैं। पर ऐसी बातें नहीं है। उनके कहने का मूल भाव यह है कि सृष्टि का आदि मूल कारण अवतार नहीं है। क्योंकि '**एक अण्ड ओंकार से सब जग भया पसार**' और ये दस अवतार उनकी माया का विस्तार यानी उनसे भिन्न हैं। '**दस अवतार ईस्वरी माया।**'कह कर भी अवतारों को मूल तत्त्व नहीं माना है। कबीर साहब की दृष्टि में इस जगत का कर्त्ता। इस सृष्टि का कर्त्ता-धर्त्ता गुण रहित निर्गुण निरंजन है। अर्थात् चेतन के बिना माया कुछ करने में असमर्थ है और अवतार सगुण है। ऐसो दशा में सगुण और निर्गुण एक नहीं हो सकते। क्योंकि नीचे की सूक्ति कहती है कि '**वै निर्गुणियाँ तै गुणवन्ता मति एकै मे सान।**' अर्थात् निर्गुण और सगुण को एक करके मत देख क्योंकि एक मायातीत है। दूसरा मायिक है। इसलिए दोनों में तालमेल नहीं हो सकता क्योंकि **एकोऽहम् द्वितीयोनास्ति**' विचारधारा के कबीर साहब उपासक थे। उनका कहना था कि जिसकी उपासना होती है। जिसका चिन्तन होता है। वह एक ही तत्त्व है। वे कहते हैं कि उसी एक तत्त्व के साधने से सभी की सिद्धि हो जाती है। तो फिर अनेक की साधना से क्या आवश्यकता है। **एक साधे सब साधिया, सब साधे एक जाय**" इसी प्रकार से ब्रेडले भो निरपेक्ष तत्त्व और ईश्वर में भेद माना है। ब्राह्मण ग्रन्थ भी इस प्रकार की बात को स्वीकार करते हैं।

'आद्रष्टो दृष्टाऽश्रुतः श्रोता तोऽस्ति। विज्ञातै सत आत्मान्तर याऽमा मृतो-ऽतोन्य उर्वातम्।" इस अन्तंयामी को न कोई देख सकता है, न सुन सकता है। न मन और बुद्धि से जाना जा सकता है। क्योंकि इसके अतिरिक्त देखने वाला सुनने वाला जानने वाला कोई नहीं है। वही सबको देखता है, वही सबको सुनता है। इसलिए यही तुम्हारा अन्तंयामी आत्मा इससे भिन्न ईश्वर आदि ख पुष्प के समान है। इस प्रकार का उद्घोष वृहदारण्यक ब्राह्मण करता है परन्तु कबीर साहब तो इतना ही कहते हैं कि ये लोग कर्ता नहीं हो सकते। ये विस्तार करते हैं। क्योंकि गीता में इस विचारधारा को और स्पष्ट कहा गया है।

'यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके। तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः' जैसे अनेक छोटे-छोटे जलाशयों में स्नान आदि रूप जितने अर्थ प्रयोजन होते हैं। और सर्वत्र व्याप्त पूर्ण जल वाले एक गंगा आदि के रहने पर उतने प्रयोजन एक ही जलाशय से सिद्ध हो जाता है। वैसे ही कर्मकाण्ड रूप सब वेद से विहित अनेक कर्मों के करने से जितना फल मिलता है। अर्थात् इन भिन्न कर्ममय सगुण अवतारों के पूजने से जितना फल मिलता है। सो निष्काम ब्रह्मनिष्ठ को एक ब्रह्मनिष्ठ से प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार से सूरदास जी भी कहते हैं कि— 'परम गंगा को छाड पिआसी दूरमति कूप खनायो, कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावे।' एक अनन्त को छाड़ि के और देव को धावे। इसी प्रकार से कबीर साहब उस एक परम पुरुष की उपासना बताते हैं जो हृदयाकाश में स्थित है। दूसरी बात यह है कि ये त्रयदेव, ब्रह्मा, विष्णु, महेश उसी परमब्रह्म के अंश हैं। इच्छा स्वरूपी गायत्री नामक नारी से वह ब्रह्म स्वयं इनकी उत्पत्ति करता है। अब यहाँ थोड़ा-सा गायत्री प्रकृति और ब्रह्म के संबंध को जान लेना आवश्यक जान पड़ता है। क्योंकि माया और प्रकृति में आंशिक भेद है। और इन देवताओं का सम्बन्ध गुणात्मक प्रकृति से ही है। और वह ब्रह्म निर्गुण निर्विशेष है। यह ब्रह्म सृष्टि में ज्योर्तिमय चेतन सब में वर्तमान है। "जीव रूप एक अन्तरवासा, अन्तर जोति कीन्ह परगासा" वह अपनी अन्तर ज्योति का विस्तार कर गायत्री को पैदा किया। श्रुति भी कहती है कि सत्व, रजस तमासां साम्या अवस्था प्रकृतिः। तीनों गुणों की साम्यावस्था प्रकृति है। न कि तीनों गुण प्रकृति प्रतिद्वन्दी माया से उत्पन्न हुए हैं। प्रत्युत इन्हीं तीनों गुणों के साम्यावस्था से माया प्रतिद्वन्दी प्रकृति अभिव्यक्त होती है। 'चिदानन्दमय ब्रह्म प्रतिबिम्ब समन्विता तमो रजः सत्वगुणा प्रकृति द्विविधा चस।' जबकि विद्वत् वृन्द मानते हैं कि इसी माया से सत्व, रज, तम की प्रधानता के कारण ब्रह्मा विष्णु और महेश की सृष्टि हुई है। क्योंकि कैवल्य श्रुति का यह वचन है। कि 'स ब्रह्मा स विष्णु स रुद्रश्चेत।' तीनों गुणों की साम्यावस्था प्रलयकाल में होती है इसलिए प्रकृति

और माया एक ही नहीं है प्रकृति और पुरुष माया से पृथक् है माया उसकी अविद्यारूपी अष्ठधा प्रकृति है। अस्तु इसे हम प्रकृति की पुत्री कह सकते हैं। क्योंकि ऋग्वेद और वेदान्त का पुरुष ही महादेव है वही ब्रह्मा है वही विष्णु है। ऋग्वेद में पुरुष के लिए हिरण्यकपुरुष हिरण्यगर्भ त्रिपाद विष्णु प्रतिद्वन्दी अंगुष्ठ ब्रह्म आदि विशेषण का प्रयोग मिलता है जिनका सम्बन्ध सूर्य से है। जिसको कबीर साहब कहते हैं कि **'राम खुदाय सक्ति सिव एकै', 'वही महादेव वही मुहम्मद आदम ब्रह्मा कहिये।'** वेदान्त के इसी महापुरुष को महादेव भी कहा गया है।

**वेदान्तेषु यमाहुदेकं पुरुषं व्याप्य व्यवस्थितं यस्मिन्ननश्वर: इत्य नमभ्य: विषय: शब्देह: यथाक्षर: सुलभो नि:श्रेय: समास्तु रोदसी** अर्थात् यह महादेव तुम लोगों को मुक्ति प्रदान करें जो वेदान्त में एक पुरुष कहा जाता है। और उस पुरुष का सम्बन्ध माया से नहीं प्रत्युत प्रकृति से है। वही प्रकृति गायत्री है गायत्री के सम्बन्ध में जैसा कि तथ्य है कि यह तीनों गुणों की साम्यावस्था से उत्पन्न होती है। इसलिए यह भी सगुण ही है इससे स्पष्ट यह होता है कि यह भी मूल प्रकृति नहीं है। क्योंकि सांख्य के पुरुष के साथ विद्या और अविद्या नाम ध्येय दो प्रकृति हैं। विद्या विशुद्ध और अविद्या विकार युक्त प्रकृति है विद्या सर्वथा कुमारी रहती है इसलिए ब्रह्मा विष्णु महेश गायत्री यानी माया के पुत्र कहे जायेंगे। **'इच्छा रूप नारी अवतरी, तासु नाम गायत्री धरी। तेहि नारि के पुत्र तिन भयऊ ब्रह्मा विष्णु महेसर नाऊँ।** इसके पूर्व विचार किया गया है कि तीनों गुणों से ब्रह्मा, विष्णु और महेश उत्पन्न हुए हैं। जिनको सद्गुरु साहब कहते हैं। **रजोगुण ब्रह्मा, तमोगुण संकर सतोगुणी हरि होई। कहहिं कबीर राम रमि रहिये, हिन्दु तुरुक न कोई।'** इस सन्दर्भ से स्पष्ट होता है कि गायत्री से यानी माया से ही इन तीनों देवताओं का सम्बन्ध है। गायत्री उस चेतनता की स्वेच्छा पुत्री है। जो उस प्रलयकाल में अथवा ब्रह्माण्ड पिण्ड के निर्माण के पूर्व पुरुष की पुत्री थी। जो अन्तर ज्योति के रूप में वर्तमान था। और जो हृदयस्थ जो पुरुष है। वह आत्मा पुरुष कौन है। जो ज्ञान रूप से इन्द्रिय और प्राणों के समीप रहता हुआ हृदयस्थ बुद्धि में स्वयं प्रकाश रूप से वर्तमान है। इसी को आत्मा के रूप में सब में निवास करने वाला सद्गुरु मानते हैं। **'अन्तर जोति सब्द एक नारी'** वृहदारण्यक ब्राह्मण इसे अक्षर एवं ज्योति पुरुष मानता है। जिसको दूसरी रमैनी में **'जीव रूप एक अन्तर बासा, अन्तर जोति कीन्ह परगासा।'** को मुख्य रूप में सद्गुरु ने वर्णन किया है। इसी को बाइबिल में शब्द ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया गया है। अब प्रश्न उठता है कि वेदों अथवा वैदिक ग्रंथों में वह अन्तर ज्योति किस रूप में वर्तमान है। विश्वात्मा ज्योतिर्मय पुरुष हिरण्यगर्भ

के रूप में वर्तमान था। जिसने एको अहं बहुश्याम की इच्छा प्रकट की वह एक से अनेक हो गया श्रुति इस बात को कहती है। और कबीर साहब भी कहते हैं। एक से अनन्त भये, हिरण्यगर्भ द्वारा उस गायत्री की उत्पत्ति की कल्पना उस श्रुति में मिलती है वस्तुतः यह हिरण्यमय पुरुष ही है। क्योंकि पुरुष अकेले ही सृष्टि नहीं कर सकता था इसलिए उसने माया रूपी गायत्री का सृजन किया। दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि गायत्री भी एक मंत्र है। जिसका प्रयोग वैदिक काल से ही सूर्य की त्रिकालिक उपासना के लिए किया जाता रहा है। पुराणों के अनुसार भी गायत्री का वही अर्थ होगा जिसको 'बीजक' स्वीकार करता है। पुराणों में गायत्री की जो कथा लिखी गई है। जिसका अर्थ होगा इन्द्रियों के स्वामी आत्मा की वह चेतना शक्ति जो गायत्री के रूप में परिवर्तित हुई है। इससे स्पष्ट होता है कि गायत्री का सम्बंध सूर्य से है। और इसी सूर्य का सम्बंध ऋग्वेदीय पुरुष अथवा त्रिपाद विष्णु से है। जो कहीं से दृष्टिगोचर नहीं होता सूर्य से गायत्री का सम्बंध होने से वह न तो स्त्रीलिंग ही रह जाती है न पुल्लिग ही प्रत्युत नपुंसक लिंग बन जाती है। अस्तु गायत्री स्त्री भी है पुरुष भी है और नपुंसक भी है। यह प्रकृति कैसे उत्पन्न हुई अन्तर ज्योति की स्वेच्छा से नहीं सत, रज और तम तीनों गुणों की साम्यावस्था में आने से इस प्रकृति अथवा गायत्री का जन्म हुआ। जिसको कबीर साहब इच्छा रूप नारी की संज्ञा दी उसके साथ ही अन्तर ज्योति भी है जिसको वेदों में पुरुष कहा गया है। वही पुरुष विश्वात्मा है। उसी के प्रकाश से ब्रह्मा विष्णु महेश सभी देवादि प्रकाशित होते हैं। उसी को शैव आदि शिव के रूप में बौद्धवादी बुद्ध के रूप में वेदान्ती ब्रह्म के रूप में वर्णन करते हैं। इसी को बौद्ध महाशून्य निर्वाण पद भी कहा है। और जैनी लोग इसी को परमतत्व कहा है। यद्यपि कुछ भारतीय दर्शन एवं कुछ पाश्चात्य दर्शन उपर्युक्त विषय को अंगीकृत नहीं करते। भारत में वृहस्पति के नाम से द्वादश सूत्र ऐसे मिलते हैं। जो कोरे भौतिकवादी दीखते हैं। उक्त सूत्र किन वृहस्पति के हैं। इसमें विद्वानों में अनेक मतभेद है क्योंकि वृहस्पति नाम के कई विद्वान हुए हैं। इसी प्रकार से चर्वाचार्य व चार्वाक भी उन्हीं सूत्रों के पोषक हैं। वे द्वादश सूत्र वैदिक मान्यताओं को बिल्कुल अस्वीकार करते हैं। जिनके तर्क भी सहज नहीं हैं। जिनके पोषक चार्वाक न परलोक को स्वीकार करते हैं और न ही वैदिक मान्यताओं को ही महत्त्व देते हैं। उनका मूल मंत्र है कि जब तक जीओ सुख से जीओ उनकी युक्ति कार्लमार्क्स जैसे दार्शनिक करते हैं। जिनके कारण संसार में दर्शन के दो अयाम हो गये हैं। एक अस्तित्ववादी दर्शन दूसरा अनस्तित्ववादी दर्शन बुद्धि विद्या यदि गहन विचारों की नहीं है तो भ्रम होना स्वाभाविक है। जिसके चलते धार्मिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में भी बहुत बड़ी

विभाजन रेखा खींच गई है। ऐसी परिस्थिति में कबीर साहब कहाँ तक अस्तित्व-वाद का समर्थक हो सकते हैं। इस पर विचार करना है। यद्यपि हेगल के शब्दों में धर्म श्रद्धा का विषय है। तर्क से धर्म की सिद्धि नहीं की जा सकती यह बात वास्तविक भी हो सकती है परन्तु करोड़ों-करोड़ मनुष्य शून्य अस्तित्ववाद के उपासक हैं। प्राचीन से अर्वाचीन तक पाश्चात्य से प्राच्य तक अधिक संख्या में दर्शन अस्तित्ववाद के सम्पोषक हैं। उसी का लक्ष्य लेकर उपर्युक्त विचार किया गया है दूसरी बात यह है कि कबीर साहब मनुष्य को जिस प्रकार से शांति के लिए मार्ग दर्शाया है उसी का प्रतिपादन किया गया है। वे कहते हैं कि मैं बीजक के माध्यम से कोई नयी बात नहीं कह रहा हूँ। जिसका पहले ऋषि मुनि अन्वेषण किया था। उसी को मैं कहता हूँ। पार्थक्य इतना ही है कि वह पुरानी शैली में हैं। मैं नयी शैलो में कहता हूँ अर्थात् उसको और अधिक स्पष्ट करके कहता हूँ।

**"बोहरा तो नूतन भया, पबहि न चिन्हें कोय।**
**जिन यह सब्द विवेकिया, छत्र धनी है सोय।।"**

इसी प्रकार से इस तथ्य को भगवान् बुद्ध भी स्वीकार किया है। वे भी कहते हैं कि जो मेरा चार सत्य है। वह पहले ही आर्यों द्वारा कहा गया था। इससे सिद्ध होता है कि संसार का बड़े से बड़ा महात्मा वा महापुरुष सत्य का अपलाप नहीं किया है। वह उन सभी बातों को स्वीकार किया है जो मनुष्यों के हित में सन्निहित हैं। धर्म एवं दर्शन समकालिक होते हैं। जिस काल में जैसी आवश्यकता होती है। वैसा ही विग्रह धारण कर लेते हैं। इसलिए परिवर्तन-शील संसार में धर्म एवं दर्शन की परिभाषा एवं व्याख्या मुखरित होनी चाहिए। अन्यथा विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। किसी काल में यज्ञ-याग सही माने जाते थे। जिसके द्वारा मनुष्यों को शांति मिलती थी परन्तु जब उनमें कृच्छता आ गयी और प्राणियों का अहित होने लगा। तब बहिष्कार की भावना उत्पन्न हुई और विकासवाद का उपनिषदों के रूप में और सुकरात के रूप में अवतरण हुआ कारण कि आज से सहस्राब्दियों से पूर्व के दर्शन उस परिप्रेक्ष्य में से थे। जब उसकी समसामयिकता थो परन्तु आज उन दर्शनों में सभी बातें उपयुक्त नहीं मानी जा सकतीं। जिन ग्रह नक्षत्रों को हम ईश्वर मानते थे। उनका भी अन्वेषण हुआ और यह पता चला कि ये सब प्राकृतिक दृश्य हैं। इनसे परे अन्य कोई सत्य है। इस दिशा में आर्य भट्ट और भाष्कराचार्य जैसे मनीषियों ने बहुत बड़ी आँखें दीं। उनके पश्चात् पश्चिम में उक्त ग्रह तत्त्वों की खोज की होड़ सी लग गयी। इसलिए देखना यह है कि धर्म की कौन सी

बातें अन्धविश्वास से परे हैं और कौन सा विचार धर्म को सही कहता है। इस प्रकार से भौतिकवादी दर्शन भी बहुत सी बातें सही कहा है। यह तो सर्वविदित ही है कि धर्म की जकड़न ने ही भौतिकवाद को जन्म दिया। इसलिए भी अन्य दर्शनों का पदार्पण हुआ और जगत में हलचल सी मच गयी। भौतिकवाद और अन्धविश्वासी दर्शन के चलते ही कबीर साहब का प्राकट्य हुआ कुछ दर्शन पूर्ण-रूपेण अन्धविश्वास पर खड़े थे। कुछ दर्शन बिल्कुल भौतिकवादी थे। सद्‌गुरु कबीर दोनों पर गहन विचार किया। तदुपरान्त एक ऐसे दर्शन का सर्जन किया। जो सर्वजनीन सर्व उपकारी अन्धविश्वास और भौतिकवाद से परे कहा गया। उनका कहना था कि **'माझ मझरिया बसे सो जाने, जन होइहैं सो थीरा हो।'** 'माझ का अर्थ मध्य होता है। सद्‌गुरु कबीर साहब का कहना था कि धर्म में अत्यधिक विश्वास भी खतरनाक है और अत्यधिक भौतिकवाद भी हानिकर है इसलिए उन्होंने मध्य मार्ग का चयन किया। जबकि उनके पूर्व भगवान् बुद्ध मज्झिम निकाय की रचना कर डाली। भगवान् बुद्ध भी कहते थे कि अति और अनति से दूर होकर मध्य मार्ग को पकड़ना चाहिए। यद्यपि कबीर साहब के दर्शन से भगवान् बुद्ध के दर्शन से बहुत अन्तर है। भगवान् बुद्ध का दर्शन नास्तिक दर्शन के रूप में विख्यात है जो वैदिक दर्शन को पूर्ण-रूपेण नकारता है। परन्तु कबीर साहब भारतीय वैदिक धर्म में संशोधन करते हैं। उसमें जो काम की बातें हैं। उसको अपनाते हैं। सद्‌गुरु कबीर केवल कृच्छ व्रत, उपवासों का एवं वेद के हिंसा युक्त वचनों का परित्याग करते हैं। परन्तु वेद का आत्मवाद जिसका कथन उपनिषद के रूप में हुआ है। उसको वे लगभग स्वीकार करते हैं इसलिए किसी भी दर्शन का सर्जन किया जाय तो बहुत सोच समझकर किया जाय। उसमें मानव का हिताहित देखकर ही कथन किया जाय तो बहुत सोच समझकर किया जाय। यद्यपि कबीर साहब के दर्शन से कई सिद्धांत निकल पड़े हैं। जिनमें बहुत से छोटे-मोटे आयाम हो गये हैं। जो नीचे की पंक्तियों में दिग्दर्शन कराया जा रहा है। कुछ लोग कबीर साहब को पूर्ण रूप से वेदान्त की ओर खींचते हैं। कुछ लोग द्वैतवाद की ओर ले जाते हैं। कुछ लोग अद्वैतवाद की ओर ले जाते हैं। इस प्रकार विशिष्टाद्वैतवादी भी सद्‌गुरु कबीर को अपनी परम्परा का सन्त मानते हैं। इस प्रकार से उन आयामों में एक परम्परा का दर्शन प्रस्फुटित हुआ है जिसको जीववाद या पारख दर्शन कहते हैं। जो प्रच्छन्न रूप में भगवान् महावीर के दर्शन से और भगवान् बुद्ध के दर्शन से और लोकायत दर्शन चार्वाक से प्रभावित हैं। जिस प्रकार से उन दर्शनों में अधिक चार तत्त्व की व्याख्या की गयी है। उसी प्रकार से पारख दर्शन में भी अकाश तत्त्व का बहिष्कार कर दिया गया है। पारख दर्शन पश्चात्

दर्शन, भौतिक दर्शन से भी सम्बद्ध रखता है जो कबीर साहब की विचारधारा के बिल्कुल विपरीत परिलक्षित होता है। जो ईश्वरवाद परलोकवाद को पूर्ण-रूपेण अस्वीकार करता है। ऐसे लोग अपने को कबीर साहब का सच्चानुयायी सिद्ध करते हैं। पारख दर्शन आत्मवाद का ब्रह्मवाद का विरोध करता है। उनका दर्शन 'बीजक' के कुछ पंक्तियों के आधार पर जीववाद की स्थापना करता है जैसे :—'**जो जानहु जीव आपना, करहु जीव से साथ।**' इत्यादि प्रकार की कुछ पंक्तियां और हैं जो विस्तार भय से उद्धृत नहीं की जा रही हैं। ये पारखी दर्शन ब्रह्म ज्ञान और ईश्वर को वेद का विगुर्चा सिद्ध करके एक नया दर्शन खड़ा करने का प्रयत्न करते हैं। वास्तव में पारख दर्शन का मुख्य आधार जैन एवं वैभासिक तथा मीमांसा और सांख्य दर्शन हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पारख दर्शन जैनवाद का सुसंस्कृत रूप है जिसमें ईश्वर खुदा को कल्पित और मिथ्या कहा गया है केवल जीव को ही सत्य माना गया है। इसी प्रकार से वेद और कुरान की वाणियों को शब्द जाल मात्र और काल्पनिक मानते हैं। यह पारख दर्शन अपने आप में परस्पर विरोधी दर्शन ही नहीं अपितु भाषा व्याकरण की दृष्टि से बिल्कुल अनभिज्ञ दर्शन है। क्योंकि यह दर्शन किसी प्रकार के तर्क पर आधारित नहीं है उसकी भाषा भी अशिक्षित जैसी भाषा है जो लोग पारख दर्शन को खड़ा किये है। वे लोग परिष्कृत विचार के नहीं दीखते भारतीय दर्शन की बारीकी में न जाकर मोटी-मोटी बातों का विरोध करते हैं वे सब कुछ प्रत्यक्ष ही देखना चाहते हैं। अप्रत्यक्ष को अमान्य करते हैं। न्याय नामा नामक ग्रंथ में सब कुछ कल्पित माना गया है परन्तु विश्व की विभिन्नता को देखकर उसका कहना है कि ईश्वर ने सृष्टि में एक रूपता क्यों नहीं स्थापित की दूसरी बात आश्चर्य की यह है कि परलोक को नकारने वाला पारख दर्शन नरक और चौरासी लाख योनियों और पाप पुण्य को स्वीकार करता है, जबकि सब योनियाँ और नर्क स्वर्ग-प्रत्यक्ष रूप में नहीं हैं इस पर भी कभी विचार नहीं करता की चौरासी लाख योनि कैसे बन गई और नरक कहां से आ गया इत्यादि बातों पर विश्वास किया जाय तो पारख दर्शन स्वयं खंडित हो जाता है और अनेक बातें पारख दर्शन में हैं। जो सत्य की कसौटी पर स्थिर नहीं रहती हैं यदि जीव पर वश न होता तो स्वयं अपने आप होता तो शरीर का परित्याग नहीं करता क्योंकि एक भी प्राणी मरना नहीं चाहता न रोगी होना चाहता है इसलिए यह पारख दर्शन आदि से अन्त तक परस्पर विरोधी दर्शन है जिसका कहीं स्वतंत्र विश्लेषण किया जा सकता है। कबीर साहब इस प्रकार के छुद्र विचारों और दर्शन के जन्मदाता नहीं हो सकते वे प्रत्येक सुधारक की भांति जीवन की प्रारंभिक अवस्था में जन सामान्य की तरह

सामाजिक रूढ़ियों और धार्मिक अन्धविश्वासों एवं कुछ अनुष्ठानों एवं मंदिर और मस्जिद की हिंसात्मक कार्यवाही के बहिष्कार करते हैं। कुछ आलोचक कबीर साहब के विचार को गलत भावना से प्रेरित मानते हैं। परन्तु कबीर साहब में ऐसी बात कहीं नहीं दीखती कबीर साहब मुख्य रूप से अध्यात्मवाद की बात करते हैं। और पदे-पदे मनुष्य को जन्म-मरण से परे होने की बात कहते हैं। कबीर साहब की सामाजिक चेतना उसी प्रकार की है। जिस प्रकार से सुकरात कहते फिरते थे की कि तू सत्य को समझो सुकरात से कोई प्रश्न करता था तो अधिक न कहकर यही कहते थे की तू सत्य को चीन्हो इसी प्रकार से कबीर साहब का व्यक्तित्व एवं कृतित्व एक सा था उनको धर्म सुधारक और समाज सुधारक दोनों कहा जा सकता है। उनको किसी सम्प्रदाय की परिधि में रखना उचित नहीं होगा क्योंकि जो संत होता है वह न तो सम्प्रदाय चलाता है। और न तो किसी सीमा में आबद्ध रहता है। और नहीं असत्य को सहन कर सकता है। इस प्रकार से किसी प्रकार का अनाचार दुष्टाचार का वह समर्थक नहीं बन सकता। कबीर साहब उसी धर्म को सही मानते थे, उसी समाज को सही मानते थे। जो दूसरे का दुःख समझता हो जो दूसरों के साथ सहानुभूति रखता हो। नरसी मेहता के वचन में कबीर साहब को समझा जा सकता है। वैष्णव जन तो तैंने कहिए जो **पीर पराई जाने रे**। कबीर साहब सामाजिक समता के पोषक थे। उनकी दृष्टि में न कोई बड़ा है, न कोई छोटा है। सभी में एक ही प्रकाश है। वे बीजक के अतिरिक्त एक जगह कहते हैं कि अल्लह **एकहि नूर उपाया-ताकी कैसी निन्दा वहो नूर से सब जग उपजा कौन भला को मंदा** बीजक में **एकै-मटिया एक कुम्हारा, एक सबन का सिरजन हारा।** कहकर वे सामाजिक ऐक्य स्थापित करना चाहते थे। वे समाज की बुराइयों को दूर करने में सतत् प्रयत्नशील थे। जैसे छुआ छूत ब्राह्मण अब्राह्मण सब में समान भावना रखते थे। वें दिखावटी धर्म के बाह्य वेश को उतना महत्व नहीं देते थे वे कहते थे कि **जियत बाप को मारहिं डण्डा। मुये पीछे ले घालहिं गंगा।** कहने का तात्पर्य यह है कि यदि पिता को एवं गुरुजनों को सुख देना है तो जीवित जीवन में सुख दो मुये पीछे कुछ करना दिखावटी है। इसी प्रकार से कुरीतियों को भी लताड़ते रहे हिन्दू-मुसलमान को फटकारते रहे ऊँच-नीच बनने वालों को कहते रहे कि **जो तू ब्राह्मण ब्राह्मणी को जाया, तो आन राह दै काहे न आया। जो तू तुरुक तुरकनिहि जाया तो सुनति काहे न आया।** इस प्रकार की बातें कहकर शुद्ध समाज देखना चाहते थे वे पुर्ण अहिंसा के सर्व श्रेष्ठ उपासक थे वे कहते हैं। **जीव मत मारो बापुरा, सबका एकै प्राण, हत्या कबहुं न छुटिहैं, कोटिन सुनहुं पुराण।** इस प्रकार की बातों को कहकर वे सभी प्राणियों के प्रति करुणा दृष्टि

रखते हैं। इसी प्रकार से पूर्ण ब्रह्मचर्य को महत्व देते थे। उनका कहना था कि **मूदे मदन काटि कर्म कस्मल, संतत चुअत अंगारी।** तात्पर्य यह है कि पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए मूदने का अर्थ ही बन्द करना होता है। वीर्य की रक्षा करना और सात्त्विक वृत्ति को धारण करना उनका मुख्य उद्देश्य था। वे पुनः कहते हैं। **तबहिं विष्णु कहा समुझाई मैथुन अष्ट तुम जीतहू जाई।**

वे बिना ब्रह्मचर्य के तत्त्व की प्राप्ति नहीं मानते थे उनकी दृष्टि में ब्रह्मचर्य हीन व्यक्ति कुछ प्राप्त नहीं कर सकता। इसी प्रकार से सत्य ग्रहण का बहुत बड़ा महत्त्व देते हैं। **'सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप। जाके हृदय सांच हैं, ताके हृदय आप॥** वे सत्य को परमेश्वर का रूप मानते हैं। उनका कहना है कि सत्य के पालक व्यक्ति का कभी नाश नहीं होता है। वे वाणी पर भी बहुत संयम करने की बात कहते हैं। उनका कहना है कि **जिभ्या को तो बंद दे बहु बोलन निरवार,** वे मित भाषिता को महत्त्व देते हैं जिससे वाणी में शक्ति आती है और धारण शक्ति बढ़ जाती है। वे मीठा बोलने की भी सलाह देते हैं। **मधुर बचन है औषधी, कटुक वचन है तीर, श्रवण द्वार हो संचरे, सालत सकल सरीर** वे सबसे बोलने का भी विरोध करते हैं वे कहते हैं सबसे मत बोलो क्योंकि सबसे बोलने से तत्त्व का नाश होता है—**बोलना कासो बोलिये रे भाई, कोलत ही सब तत्त्व नसाई।** दूसरी बात अधिक बोलने वाला झूठ भी बोलता है इसलिए बोली पर अधिक निषेध किया है वे बिना आत्मज्ञान के मुक्ति नहीं मानते—**जब लग तारा जगमगे, तब लग उगे न सूर, तब लग जीव कर्म बस डोले, जब लग ज्ञान न पूर** और यह भी कहते हैं कि सभी तत्त्ववेत्ताओं का एक ही विचार है, एक मत है जो तत्त्व-दर्शी होता है वह सब में तत्त्व का दर्शन करता है उसमें विद्वेष की भावना और द्वैत की भावना नहीं रह जाती है **समझे की गति एक है जिन समझा सब ठौर, कहैं कबीर ये बीच के बलकहिं और की और** जो तत्त्वदर्शी नहीं है जो पूर्ण तत्त्व को प्राप्त नहीं है। वे ही लोग दूसरे धर्म की निन्दा करते हैं दूसरे धर्मवेत्ताओं की आलोचना करते हैं। परन्तु जो तत्त्व को प्राप्त कर लिए हैं वे समदर्शी हो जाते हैं। उनके मत से विद्वेष भाग जाता है क्योंकि विद्वेष द्वैत में होता है एक में नहीं होता है जो विद्वेषी हैं वह ज्ञानी नहीं कहा जा सकता। वे शास्त्र के ज्ञान को उतना महत्व नहीं देते थे जितना अनुभूति को, वे कागज के लेखी पर विश्वास कम करते थे आँखिन की देखी पर बल देते थे—**बैठा पण्डित पढ़े पुरान, बिन देखै का करै बखान। तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी।** वे नाम जप पर भी बड़ा जोर देते थे वे कहते थे—**राम बिना नर होइहो कैसा,**

**बाट मांझ गोवरौरा जैसा। राम नाम ले जाहु पराई। राम नाम का सेवहु बिरा** इत्यादि पदों को कहकर वे ईश्वर में पूर्ण आस्था व्यक्त करते हैं परन्तु उनका ईश्वर कहीं बाहर नहीं है वह सबके अन्दर विराजमान है—**हृदया बसे तेहि राम न जाना।** कहकर हृदयस्थ तत्त्व की उपासना पर बल देते हैं उनका कहना है कि राम नाम के जप से चित्त शांत हो जायेगा। जब तक चित्त चंचल रहेगा, तब तक अधम कर्म करता रहेगा। इसलिए कहते हैं कि—**चंचल मन के अधम काम, कहैं कबीर भजु राम नाम** यह निश्चित है कि चंचल मन अधम काम करता है इसलिए उसको शांत रहने के लिए राम नाम का जप करना चाहिए। वे चित्त शांति के लिए और आत्म प्राप्ति के लिए ध्यान पर भी बल देते हैं।

**सहज ध्यान रहु सहज ध्यान रहु, गुरु के वचन समाई हो।**

वे गुरु निर्दिष्ट मार्ग पर ही बल देते हैं। ध्यान के विषय में सद्गुरु कबीर कई स्थलों पर उल्लेख किया है। वे कहते हैं कि—**त्रिकुटी संगम स्वामी बसई।** अर्थात् त्रिकुटी पर ध्यान लगाना चाहिए जहाँ स्वामी का निवास है। इसी प्रकार से हृदय देश में भी ध्यान की बात कहा है—**हृदय बसे तेहि राम न जाना।** जानने का तात्पर्य ध्यान द्वारा राम की प्राप्ति से हृदयस्थ राम को सभी प्राणी में देखना एवं चिन्तन करना यह भी ध्यान है। इसी प्रकार से मुक्ति एवं चित्त शांत करने के लिए योग युक्ति की बात भी करते हैं। वे कहते हैं कि **भोगहु भोग भुक्ति जनि भूलहु, जोग जुक्ति तन साधहु हो।** तात्पर्य यह है कि संसार में रहते हुए संसार के सुखों में भूलना न चाहिए। शरीर निर्वाह के लिए कर्म करते हुए योग युक्ति भी करना चाहिए। वे कहते हैं कि योग से सभी पापों का क्षय हो जाता है और कुण्डलिनी जग जाती है, कुण्डलिनी के जागने पर आनन्द की वर्षा होती है। जो सहस्रार से निःस्रित पीयूष रस गिरता है। उसे योगी पान करके अमर हो जाता है। और यह भी कहते हैं कि प्राणायाम के करने से अन्तर मन के पाप धुलते हैं।—**पनिया आदर धरनि लोय, पौन गहे कसमलिन धोय।** यहाँ पर प्राणायाम पर भी जोर देते हैं। वे कहते हैं कि प्राणों का निरुद्ध करो जब प्राण निरुद्ध हो जायेगा तब चित्त शांत होकर अन्तरमुखी बन जायेगा इसलिए प्राणायाम नित्य करना चाहिए उनका कहना है कि किसी कार्य के आरंभ करने के पूर्व विवेक विचार करना श्रेयस्कर है जिसके द्वारा मनुष्य सत्य तक पहुँच सकता है। परन्तु कोई विवेक विचार करता नहीं है। सभी लोग संसार का तमासा देखते हैं। **विवेक विचार करै न कोय सब खलक तमासा देखै लोग।** कहते हैं कि इस कलियुग में मनुष्य को अनेक प्रकार के संकट घेरे रहते हैं। इसके कारण मानव की

चिन्ता अत्यधिक बढ़ जाती है और उसका पतन भी हो जाता है जिससे उसमें नीचता आ जाती है मानसिक दुर्बलता के कारण अनेक प्रकार की बीमारियाँ, व्याधियाँ शरीर में व्याप्त हो जाती हैं तब मानव का चित्त अशान्त हो जाता है। मानव शान्ति के लिए कहा जा रहा है कि जहाँ पर अच्छे लोग हों अच्छी संगति हो वहाँ जाने से मन में निर्मलता आयेगी और शान्ति मिलेगी—**संकट सोच-पोंच बहुकलिमा बहुतक व्याधि सरीरा। जहां धीर गंभीर अति निस्चल, तहां उठी मिलहु कबीरा।** वे कहते हैं कि हे मनुष्यों तुम विचार करके बुराइयों का त्याग करो जब तेरे अन्दर से बुराइयां भाग जायेंगी और तुम भगवत भजन करेगा तो अवश्यमेव भवसागर से तर जायेगा "**कर विचार विकार परिहर तरन तारण सोय कहैं कबीर भगवन्त भज नर दुतिया और न कोय**" विवेक और भगवत भजन पर बहुत अधिक जोर दिया गया है और यह भी कहा गया है कि एक ईश्वर के अतिरिक्त दूसरे की उपासना मत कर बहुदेव वाद का विरोध उन्होंने स्पष्ट किया है। उनका कहना है कि एक परमेश्वर का ही भजन करना चाहिए। उसी की उपासना में लगनी चाहिए। यदि परमेश्वर को छोड़कर अनेक ईष्टों की उपासना करेगा तो उसमें विचार का दोष लगेगा जिस प्रकार से दुःसला स्त्री एक पति को त्यागकर बहुतों का साथ करती है तो भला वह मरण काल में किसके साथ सती होगी इसी प्रकार से मानव मन एक है उसका उपास्य भी एक होना चाहिए— "**रही एक की भई अनेक की वेश्या बहुत भतारी, कहैं कबीर काके संग जरिहैं बहु पुरुषन की नारी**" इसी प्रकार से सद्गुरु कबीर ने मानव के ऊंच-नीच पर विचार किया है। न कोई छोटा है न कोई बड़ा है संसार के सभी मनुष्य एक समान हैं उनका कहना है कि **एकहि जनी जना संसारा, कौन ग्यान ते भयउ निरारा।** सृष्टि के आरंभ में सभी की माता एक है उसी एक से सारे संसार का विस्तार हुआ है। शरीर के जन्म दाता ब्रह्मा भी एक है इसलिए ब्रह्मा की सारी संतान एक समान हैं उनमें किसी प्रकार का भेद भाव नहीं है जो मानव में भेदभाव करते हैं उन्हें मानव का शत्रु समझना चाहिए। क्योंकि मानव का महत्त्व केवल मानवीय गुणों से होता है यदि मानव में मानव के गुण नहीं हैं तो वह पशु के समान है चाहे वह ब्राह्मण हो, चाहे वह क्षत्रिय हो, चाहे वह वैश्य हो, चाहे वह शूद्र हो यदि वह गुणविहीन है तो पशु के समान है क्योंकि—**मानव तेरा गुन बड़ा मांसु न आवे काज, हाड़ न होते आभरन त्वचा न बाजन बाज, काह रे बड़े कुल ऊपजे जोरे बडी बुधि नाहिं। जैसे फूल उजारि का मिथ्या लगि झरि जांहि, काह खजूर बड़ाई तेरी, छाया काम न आवे।** मानव यदि गुण विहीन है तो पशु से भी निम्न श्रेणी का है क्योंकि न मानव के चमड़े का वाद्य ही बनता है और न ही उसके हड्डियों का कोई गहना ही बनता है उसका मांस भी कोई नहीं खाता है

इसलिए पशु से भी गिरा हुआ कहा गया है यदि कोई बड़े कुल का अभिमान करता है और उसमें बड़ा गुण भी नहीं है और बड़ी बुद्धि भी नहीं है तो बड़े कुल में जन्मने से क्या होता है। जिस प्रकार से जंगल में टेसू का फूल फूलता है देखने में बहुत सुन्दर लालिमा लिये होता है परन्तु किसी देवता के ऊपर नहीं चढ़ता उक्त फूल फूलकर वृक्ष से झड़ जाता है। किसी अर्थ का नहीं होता। यदि इसी प्रकार से बहुत बड़ा धनी-मानी हैं, बहुत बड़े कुल वाला है यदि उसकी बुद्धि और उसका धन परोपकार में नहीं लगता है तो उसके द्वारा समाज का सुधार नहीं होता है, किसी प्रकार से समाज उससे लाभान्वित नहीं होता है तो वह उसी प्रकार का है जैसे खजूर का वृक्ष न उसके फल ही काम में आते हैं नहीं किसी को छाया ही दे सकता है इसलिए सद्गुरु कहते हैं कि यदि तेरे पास धन है, कहीं से लक्ष्मी आती है तो उसको सत् कर्मों में लगाते जा, पर उपकार में खरचते जा यदि उसको इकट्ठा करोगे तो उसका परिणाम भयंकर होगा सदैव अपरिग्रह की भावना रखो अधिक धन संचय से आपत्ति बढ़ती है बहुत से लोग शत्रु बन जाते हैं। इसलिए कहते हैं कि—**कहैं कबीर सुनो हो सन्तो, ज्यो आवै त्यों फेरो हो।** रुपया कमाना बुरा नहीं है उसके द्वारा बुरा काम करना बुरा है क्योंकि यदि पास में लक्ष्मी न हो तो कोई पुरुषार्थ भी नहीं बनता है और नहीं कोई का उपकार ही कर सकता है इसलिए द्रव्य का होना और उसका संचयन भी सत् कार्य के लिए उत्तम है क्योंकि **द्रव्यहीन जैसे पुरुषारथ मनही माँहि तवाई हो** इसलिए सर्वथा द्रव्य का अभाव भी दुखदाई होता है इसलिए मनुष्य को अपने बाहुबल से कमाकर स्वालम्बित होना चाहिए किसी की आशा में आलसी बनकर न पड़ा रहना चाहिये कि वह मुझे देगा, वह मुझे खिलायेगा, वह मेरा निर्वाह कर देगा ये विचार उत्तम नहीं हैं, जो स्वयं शक्तिमान है, जो स्वयं सक्षम है, उसको पराश्रित नहीं होना चाहिए क्योंकि–**कर बहियां बल आपनी छाड़ बिरानी आस, जाके अंगना, नदी बहे सो कस मरे पियास** इसी प्रकार से मनुष्य को सर्वप्रथम अपना सुधार करना चाहिए, अपनी तृप्ति करनी चाहिए क्योंकि अपने अन्दर खोखलापन है कुछ है नहीं दूसरे को उपदेश देते फिरता है **पानी पचावहु आपना पनिया मांगि न पीठ। पानी पियावत का फिरो घर-घर सायर बारि** अर्थात् दूसरे को तृप्त करने से पहले अपने तृप्त हो जाओ अपनी रक्षा की उपाय पहले करो तब दूसरे के लिए सोचो सभी मनुष्य समझदार हैं सभी भला बुरा का ज्ञान रखते हैं जल स्वरुपी ज्ञान सबके अन्दर भरा हुआ है केवल उसका उपयोग करना चाहिए मैं कबीर कोई नई बात नहीं कहता हूँ। जिस बात को जिस सत्ता का अन्वेषण ऋषि मुनि सर्वप्रथम किये थे उन्हीं बातों को मैं भाषा के माध्यम से आप लोगों को सुना रहा हूँ।

**जाको मुनिवर तप करे, वेद थके गुन गाय। सोई देव सिखापना, कोई नहीं पतियाय॥**

लोग कहते हैं कि कबीर नास्तिक है वेद शास्त्र को नहीं मानते हैं भारतीय मान्यता को ठुकराते हैं परन्तु मेरे आशय को कोई समझता नहीं है। मैं उन्हीं की बातों का विरोध करता हूँ। जो वेद-शास्त्र के नाम पर अत्याचार करते हैं और दुराचार करते हैं मैं तो कहता हूँ—वेद-कितेब कहो किन झूठा, झूठा जो न विचारे वे लोग झूठे हैं जो वेद तत्त्व के गहन विषय को नहीं समझते, वेद की अच्छी बातों पर नहीं चलते केवल वेद का नाम लेकर लोगों को ठगते हैं। दान-दक्षिणा की बात करते हैं और जो वेद में तत्त्व ज्ञान भरा हुआ है उसको नहीं समझाते वेद कहता है कि तत् पश्यत तद भवत तदाशीत पुनः कहता है तत्र कहमोहः कहशोकः एकत्वमनु पश्यतः अर्थात् सबमें जो एक आत्मा है जो एक तत्त्व है उसी को जानना चाहिए जो एक तत्व को जानता है। वह शोक मोह से परे हो जाता है उस एक तत्त्व को विचारते-विचारते देखते-देखते मनुष्य स्वयं परमात्मतत्त्व को प्राप्त हो जाता है क्योंकि यह मानव उसी परमात्मतत्त्व का अंश है इसलिए उसके चिन्तन से वही बन जाता है परन्तु उपर्युक्त बात को वेदज्ञ लोग जनता के समक्ष नहीं रखते उसको छुपाये रहते हैं केवल अपने उदर भरने के लिए वेद के कर्मकाण्ड परक वचनों को ही सुनाते हैं मैं तो करता हूँ कि वेद का ज्ञान दर्पण के समान है। वेद ज्ञान से अपने स्वयं को जाना जा सकता है। इसी प्रकार से वेद परिमल के समान है उसमें चतुर्दिक सुगन्धि है अर्थात् वेद ज्ञान से दुर्गन्ध रूपी अज्ञान का नाश होता है परन्तु गधे पर चन्दन को लाद दिया जाय तो वह भार ही समझेगा उसको गंध से और चन्दन के गुण से गधे को कोई लाभ नहीं होता। उसी प्रकार से अन्धे मनुष्य के हाथ में दर्पण दिया जाय तो अपने स्वरूप को क्या कभी देख सकता है ? जिसके पास अन्तःचक्षु नहीं हैं। विवेक बुद्धि नहीं है वह भला वेद पढ़ के क्या कर सकता है उसके लिए तो वेद बोझ ही बन जाते हैं। अन्ध सो दर्पण वेद पुराना, दर्बी कहा महा रस जाना। जस खर चन्दन लादे उ भारा परिमल बासु न जनु गंवारा ॥ इत्यादि विचारों को जानना चाहिए तब किसी की आलोचना करनी चाहिए संसार का कोई भी महापुरुष राग द्वेष से परे होकर उपदेश करता है उसके समक्ष जो भली-बुरी बातें आती हैं मात्र उनका वह विश्लेषण करता है।

## कबीर साहब

इसी प्रकार से कुछ लोग कबीर साहब को त्यागी संत नहीं मानते उनको एक बुनकर जुलाहा मानते हैं आजकल इस संसार में जिस प्रकार के लोग रहते हैं, उसी प्रकार की कल्पना दूसरों के लिए भी करते हैं।

कबीर पंथ के अनुसार कबीर साहब बाल यति थे और ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही उनके ज्ञान चक्षु खुल गये थे जो ब्रह्मानन्द के रस में निमग्न थे वे सदा निवृत्ति की बात करते थे क्योंकि प्रवृत्ति में मानव का कल्याण नहीं मानते थे वे सदैव संसार में आसक्ति का छेदन करते थे। वे इतने निराले सन्त थे कि देह गेह के नाम को पूर्णरूपेण असार बताया उनका कहना था कि **को काको पुत्र कवन काकि नारी अकथ कथा जम दृष्टि पसारी। को काको पुत्र कवन काको बापा को रे मरै को सहे सन्तापा।।** भला जो स्त्री पुरुष के सम्बंध को निरर्थक बतला रहा है पिता पुत्र के सम्बन्ध को झूठा बतला रहा है पिता से पुत्र के बिछोह के कारण होने वाले सन्ताप को निरर्थक कहा जा रहा है तात्पर्य यह है कि आत्मा न किसी का पुत्र होता है न आत्मा किसी का बाप होता है न आत्मा किसी की स्त्री होती है, न आत्मा किसी का पति होता है जो मानव मात्र में एक दृष्टि रखता है जो बिना आत्म प्राप्ति के शांति नहीं मानता है वह किस प्रकार से संसार बसाने की मंत्रणा देगा और स्वयं संसार को बसायेगा, जो लोग संसार में स्वयं रचते पचते हैं वही लोग इस तरह के बकवास करते हैं कुछ लोगों की एक तो आदत बन गई है कि कबीर जुलाहे थे कबीर बुनकर थे कबीर शादी शुदा वाले थे यह उनके गंदे मन की उपज है जो व्यक्ति साधुत्व बचाने के लिए सदा साधुओं को स्त्री से दूर रहने की बात करता है। वह व्यक्ति स्वयं अपने स्त्री रखकर दम्भी नहीं बन सकता है कबीर साहब जैसे विचारक दो मुखी बातें नहीं कर सकता जो स्वयं कहता है कि **सुन्दरी ना सोहे सनकादिक के साथ। कबहुंक दाग लगावै कारी हाड़ी हाथ। कनक कामनी देखि के तू मत भूल सुरंग। मिलन बिछुरन दुहेलरा जस केंचुलि तजत भुवंग।।** जो कनक कामिनी की सदा अवहेलना कर रहा हो जो सदा विषय भोग को नकारता हो। जो विषय भोग आत्म ज्ञान के लिए परम विरोधी है। उसको कबीर जैसे सन्त किस-प्रकार से उसका समर्थन कर सकते हैं। यह समझ में नहीं आता।

इसी प्रकार से कुछ लोगों द्वारा कबीर साहब को श्रमजीवी कहा जा रहा है। श्रम का क्या अर्थ होता है उस कहने वालों को यदि श्रम का ज्ञान होता तो वह गड़बड़ घोटाला नहीं बतियाया। श्रम तीन प्रकार के होते हैं। कायिक वाचिक-मानसिक संसार का महान पुरुष जो भी हुआ है। वह मानसिक और वाचिक श्रम सबसे अधिक किया है। वह यदि हलवाह का काम करता कुली कवाड़ियों का काम करता, वह घर में केवल परिवार पोंसने के लिए करघा चलाता तो आज उसको कोई नहीं जानता। इसलिए केवल उनको कायिक श्रम की बात करना विशद बुद्धि का परिचायक है। सद्गुरु कबीर अवस्था के अनुसार देश काल के अनुसार तीनों प्रकार के श्रम करते थे परन्तु कायिक श्रम कुछ दिन

के बाद उनका स्वयं छूट जाता है। प्रिय दास के शब्दों में छाड दियो तानो बानो हियो सरमानो राम कैसो को बखानो वह रीति कछु न्यारी है। जब मानव नीचले स्तर से ऊपर को उठता है। तो उसके सारे भौतिक कार्य स्वयं छूट जाते हैं, छोड़ना नहीं पड़ता है। जो राम रस में मात जाता है। जो ब्रह्मानंद का रस पीने लगता है। जिस मानव की अति उच्च विकास स्थिति हो जाती है। जो सदैव समाधिस्थ रहता है। भला उसको किस श्रम का ज्ञान रहता है। वह सचेत होने पर दो चार बात मानव हित में कह कर मौन हो जाता है। जो सद्गुरु कबीर मानव हित में और बुराईयों के लिए जीहाद छेड़ा था। जिन्हें अनेक मोर्चों पर जंग लड़नी पड़ी थी जो देश विदेश में घूमकर ढोंगो पाखण्डियों अन्धविश्वासियों से संघर्ष छेड़ा था। क्या वे नीरू टीला में बैठकर दिन-रात कपड़ा बुनते थे और लोई रमजनियाँ से क्रीडा करते थे ? यह बात विरोधियों के द्वारा गढ़ी गयी कहानी है। जब व्यक्ति अपने स्वयं गिर जाता है। बड़े पुरुष से पार नहीं पाता है तो उसको नीचा दिखलाने के लिए अनेक प्रकार की कथा कहानियों को गढ़कर लोगों में प्रचार करता जिन मौलनाओं को सद्गुरु कहते थे कि तुम्हारा नियम क्या है ? तुम्हारी किताब क्या है ? तुम्हारे रोजे और बंग निमाज क्या हैं ? तुम्हारी किताब संसार में हिंसा फैलाने की राय देती है। तुम किसको काफर मानते हो। तू किसको ईमान वाला मानते हो। जब तुम्हारी किताब में लिखा है, कि खुदा जर्रे-जर्रे में व्याप्त है। और तुम हिंसा कर रहे हो। अपनी जिह्वा के स्वाद के लिये कलमा पढ़कर जीवों की हत्या करते हो। दूसरे को काफर कहकर उसका कतल करते हो। संसार में अशान्ति फैलाते हो। दिन को रोजा रहते हो, रात की गाय मारते हो। क्या इस पर तेरा खुदा तुझ पर खुश होगा ? दिन को रहत हैं रोजा रात हनत है गाय, ये खून वे बंदगी क्यों कर खुसी खुदाय।

'झूठा रोजा झूठी ईद' जो इस प्रकार की बात कहकर किसी मौलवी को किसी काजी को फटकारता होगा, तो वे लोग भी उनको सीधे में हो नहीं छोड़े होंगे। वे भी उन्हें गिराने के लिए, नीचा दिखाने के लिए लोई एवं रजमनियाँ की जाल रचे होंगे। और कमाल कमाली की उत्पत्ति उनके द्वारा दिखाये होंगे। इसी प्रकार से जो हिन्दू के पुरोहितों को उनके गुरुओं को कहता था कि—"ये कलि गुरु बड़े परपंचो, डार ठगौरी सब जग मारा" संतो पांडे निपुन कसाई, बकरा मारि भैंसा पर धावैं। "माटी के करि देवी-देवा काटि-काटि जीव देइया जी।" जो तू ब्राम्हण ब्राम्हणी के जाया, और द्वार होय काहे न आया। "पहिर जनेऊ जो ब्राम्हण होना, मेहरिहि का पहिराया।" तू कत ब्राम्हण, हमकत शूद्र। एकै रुधिर

हाड़ मल मूत्रा, एक रुधिर एक गूदा। ऐसे कहने वाले को क्या ये ब्राह्मण गण अपनी शक्ति भर बक्से होंगे। कदापि नहीं बक्से होंगे।

आज जो कबीर साहब के चरित्र के विरुद्ध कहानियाँ प्रचारित की गयी हैं: जिन्हें विधवा ब्राह्मणी का लड़का बताया जाता है। जिन्हें साधुओं को भोजन कराने के लिए लोई को कन्धे पर बैठाकर किसी सेठ के यहाँ ले जाने की बात कही जाती है। भला ये कहानियाँ किसके द्वारा गढ़ी गयी होगी ये कहानियाँ और ये गाथाएँ मौलाना और ब्राह्मण मिलकर गढ़े होंगे वही लोग जब कबीर साहब से वाग्युद्ध में हार गये होंगे किसी प्रकार से पार नहीं पाये होंगे तब वही लोग कबीर को मूर्ख बनाना, ऊटपटांग बोलने वाला, शूद्र, म्लेच्छ आदि कहना और लोदी सिकन्दर तक उनकी शिकायत करना। यह सब विरोधियों का ही काम था। और आज भी उन विरोधियों के वंशज जीवित हैं। आज भी वे लोग कबीर साहब को सभी घरों में जाने से रोकते हैं। वे कबीर साहब को अपना कट्टर शत्रु मानते हैं क्योंकि कबीर साहब पण्डा-पुरोहितवाद के खिलाफ सदा आवाज लगाये हैं। वे मानव को सदा शोषण से बचाना चाहते हैं। जिसके कारण शोषण करने वाले उनसे सदा क्षुब्ध रहते थे। आज भी उनका कहना नहीं छूटा है। आज भी वे येन केन प्रकारेण कबीर साहब की आलोचना कर ही बैठते हैं। कबीर जुलाहा है, निम्न जाति का अपठित है। उसके पद, उसके छन्द, विद्या हीनता के कारण अशुद्ध हैं। कबीर के पदों में छन्द भंगता बहुत है। वे कूप को टेढ़ा देखते हैं। नदी को टेढ़ा देखते हैं। उसके जल को सर्वोपकारी नहीं मानते। इसी प्रकार से कबीर साहब के पदों में दोष लगाते हैं। उनकी भाषा को पंचमेल कहते हैं। खिचड़ी कहते हैं परन्तु उसमें जो सदुपदेश हैं, जिससे मानव का कल्याण होने वाला है। उस पर विचार नहीं करते। सद्गुरु स्वयं कहते हैं कि—पर्वाहि न चीन्हे कोय, शब्द विमुखा होय। इत्यादि।

सद्गुरु की वाणी दर्शन के समान है। दर्शन ग्रन्थ में केवल सूत्र होते हैं। उनमें ललित छन्दोबद्ध काव्य नहीं होते, उनकी व्याख्या करनी पड़ती है। उसी प्रकार से कबीर साहब के ग्रन्थ काव्य ग्रन्थों की अपेक्षा सूत्र ग्रन्थ के समान दर्शन ग्रन्थ हैं। दर्शन ग्रन्थ में काव्य की सौन्दर्यता देखना, दर्शन के न समझने के समान हैं। सद्गुरु कबीर मानव का कल्याण करने आये थे। उन्होंने जो भी उपकारी बातें देखी उसे किसी न किसी रूप में कह दिया। चाहे वे तुकान्त हो चाहे अतुकान्त हो जाय। उन्हें इसकी चिन्ता व परवाह नहीं थी। चिन्ता तो उसे होती है जो कलम-लेखनी से अपना यशगान करता है। कुछ लोग कहते हैं कि कबीर साहब पढ़े-लिखे नहीं थे। इसलिए दूसरे धर्मों पर आक्षेप किया है। यह

मान्यता पूर्णरूपेण अस्वीकार की जाती है। कबीर साहब आत्म अनुभव के विद्वान् थे और भाषा के भी विद्वान् थे। उन्हें ककहरा का पूर्ण ज्ञान था। जिसका साक्षी 'बीजक' का 'ज्ञान चौंतीसा' है। जो नहीं पढ़े हैं वे अच्छी प्रकार से पढ़कर देख लें। वे सतसंग से विद्या सुनी थी। कोई विद्यालय में जाकर पढ़ता है। कोई गुरु के समीप रहकर ज्ञानार्जन करता है। इसलिए कबीर साहब एक अच्छे अनुभवी विद्वान थे। रही बात किसी धर्म की आलोचना की। तो कबीर साहब संसार के सभी धर्मों के मूल्य और मान्यतत्व को नकारा नहीं। उन धर्मों में जो दोष आ गये थे। उस दोष को धर्म से बाहर करना चाहते थे। जैसे भारतीय वैदिक धर्म में जो शोषणवाद और हिंसावाद आ गया था। धर्म के नाम पर मानव बलि एवं पशु बलि होती थी और राज्य का समस्त मूल्यवान पदार्थ दान-दक्षिणा में ले लिया जाता था। कई राजाओं के सभी कोष खाली हो जाते थे। साधारण जनता भूखों मरती थी। उसको कोई पूछता नहीं था। शूद्र के नाम पर मानव को विद्या, बुद्धि से दूर रखा जाता था। पुरोहित वर्ग माले-माल हो रहा था। वह देश के शासक पर आधिपत्य जमा लिया था। सारे विधान अपने लिए पुरोहित वर्ग बना दिया था। शूद्र कहे जाने वाली जनता की बात सुनी नहीं जाती थी। उल्टे उसके लिए कठोर दण्ड संहिता बनायी गयी थी। शूद्र के लिए बोलने के लिए कोई अधिकार नहीं थे। वह किसी प्रकार से अपना दुःख राजा को एवं पुरोहित को नहीं सुना सकता था। वह विद्यालय में पढ़ नहीं सकता था। वह वेद पढ़ने का अधिकारी नहीं था। उसके लिए मंदिर के द्वार नहीं खुले थे। वह कहीं वेद सुन लेता तो उसकी जिह्वा काट ली जाती। कान में शीशे पिला दिये जाते थे। मृत्यु-दण्ड अकारण में ही दिया जाता था। उसके मार्ग अलग होते थे। जिस मार्ग से पुरोहित जाता था। ब्राह्मण जाता था उस मार्ग से शूद्र नहीं जा सकता था। जिस कूप-तड़ाग में ब्राह्मण पानी पीता था और नहाता था। वह शूद्र के लिए और अन्त्यज के लिए प्रतिबंधित होता था।

आज भी गाँव में यह दृश्य देखा जा सकता है। ब्राह्मणों का राज्य शासन पर पूर्ण अधिकार था। वे जिसे जो चाहते थे उसे वह दण्ड दिलवाते थे। इसी प्रकार से शूद्रों के सारे अधिकार छीन लिये गये थे। शूद्र कितना भी प्रवीण हो, कितना भी बड़ा ज्ञानी हो। उसका कोई महत्व नहीं था। जितने भी आय के स्रोत थे। आय के धन्धे थे। वह सब ब्राह्मणों के हाथ में थे। जन्म से मरण तक राज्यसभा से देवमंदिर तक प्रसूतिका गृह से लेकर श्मशान घाट तक ब्राह्मणों का बोलबाला था। देश के प्रथम आय का भोक्ता ब्राह्मण होता था। इसी प्रकार से इस्लाम धर्म में भी धर्म के नाम पर दूसरे धर्म वालों को काफर कहा जाता था। और काफरों को जिस प्रकार से हो, कत्ल करने का आदेश दिया जाता था।

मुस्लिम शासक भी हिन्दूओं के सारे अधिकार छीन लिये थे। हिन्दू धर्म पर अनेक प्रकार के प्रतिबंध लगा दिये गये थे। हिन्दू विवाह कार्य में व उत्सव कार्य में मस्जिद के सामने बाजे-गाजे के साथ गुजर नहीं सकते थे। इसी प्रकार से दूसरे धर्म के देवगृह व देवालय मुसलमानों द्वारा धराशायी किये जाते थे। प्रमाण के लिए आज भी अयोध्या की राम जन्मभूमि, मथुरा की श्रीकृष्ण जन्मभूमि, द्वारिका का सोमनाथ मंदिर, काशी का विश्वनाथ मंदिर, स्वामी रामानन्द के आश्रम का मंदिर जो पंचगंगा घाट पर अवस्थित था। इन सबों को तोड़कर मस्जिदें बनायी गयीं और जो विश्व का उपकार करने वाला नालन्दा जैसा विश्वविद्यालय था, जो आयुर्वेद का महान विश्वविद्यालय तक्षशिला था और जो ज्योतिष का महान विश्वविद्यालय विक्रमशिला में था। इन सबको नाश करने वाला क्या बख्त्यार खिलजी नहीं था ?

इस प्रकार के जो धर्म में उन्माद आ गये थे। उन उन्माद पर भला कोई अंगुली नहीं उठाता। इसी प्रकार से बौद्ध मंदिरों में भिक्षुणियाँ विलास की वस्तु बन गयी थी। जिस स्थान पर भगवान बुद्ध समाधि की बात करते थे, निर्वाण की बात करते थे। क्या वे स्थान ऐश आराम के भवन नहीं बन गये थे। इसी प्रकार से जैनियों में भी अनेक भ्रष्टाचार सुने जाते हैं। इसी प्रकार से शैव और शाक्त भी किसी से पीछे नहीं थे। मात्र वैष्णव धर्म के प्रवर्तक स्वामी गुरु रामानन्दाचार्य ने धर्म की बुराइयों के खिलाफ अकेले जूझ रहे थे। जिनका सहयोग देने के लिये सद्गुरु कबीर एवं संत रविदास जी आदि महात्माओं ने देश में घूम-घूमकर उक्त धर्म द्रोहियों के उक्त धर्मान्धों के विरोध में आवाज बुलंद करते थे। उक्त बुराइयों के खिलाफ सद्गुरु कबीर आजीवन संघर्षरत रहे उनका कहना था कि—**"ये कलिगुरु बड़े परपंची, डारि ठगौरी सब जग मारा।"** **घर के खसम बधिक वै राजा, परजा का धौं करै विचारा। "राजा देस बड़ो परपंची, रैयत रहत उजारी। इतते उत इत जम की साटि सवारी।"** उक्त पदों से कबीर साहब कालिन परिस्थितियाँ जानी जा सकती हैं। उन्हें किसी के धर्म का खण्डन करके से क्या लेना-देना था ? वे तो स्वयं धार्मिक थे। किसी धर्म की अच्छी बात को स्वयं मानते थे। वे कहते थे—**"धरम करै जहाँ जीव बधतु हैं, अधरम करै मोरे भाई।** धर्म के नाम पर लोग अधर्म करते थे। इसलिए उनसे रहा नहीं गया। जन साधारण की रक्षा के लिए उन्होंने अहिंसक तरीके से धर्म ध्वजियों के पाखण्ड और आडम्बर की आलोचना की है न की धर्म के मूलतत्त्व को। आज भी उन धर्म ध्वजियों के वंशज हैं। जिन्हें कबीर साहब की वाणी सुनकर बड़ी पीड़ा होती है ये धर्म ध्वजी लोग जितने मानव थे। उतनी जाति बना डाले। उतने स्थान पर मनुष्यों को बैठा दिया। इसलिए सद्गुरु कबीर को कहना पड़ा

कि अरे भाई। कुम्हर रूपी कर्ता एक ही है और बनाने का चक्र दण्ड एक ही है "एकै मटिया एक कुम्हारा। एक सबन का सिरजनहारा।" इत्यादि वाणियों को कहकर उन्होंने मानव में एकता स्थपित की और धर्म ध्वजियों की आलोचना की परवाह नहीं किया। धर्म ध्वजी लोगों को यदि अच्छी बात कही जाय तो वे अपनी आलोचना समझते हैं। धर्म के मूलतत्त्व को समझने की कोशिश नहीं करते। केवल कबीर साहब के नाम पर हल्ला मचाते हैं और तरह-तरह के उनके नाम पर कहानियां गढ़ते रहते हैं।

यदि आज कबीर साहब की बात मान ली जाय तो कदाचित देश में कोई समस्या रह जाय क्योंकि कबीर साहब के यहाँ न कोई जाति है न कोई पांति है। न कोई ऊँच नीच है न छूआछूत है न पूँजीवाद का समर्थन है। वे कहते हैं— "जेता तन तेती भूमि लीजं।" "ते ते पांव पसारिये जेती लम्बी सौर।" तात्पर्य यह कि आवश्यकता के अनुसार जितने से अपने समाज का काम काज चल जाय उतना ही धन अपने पास रखो। जितना धन तुम्हारे पास हो, उसी में काम चलाने की बात सोचो। और भगवान से कामना करो कि हे प्रभु। मुझे उतना ही धन चाहिए। उतनी ही सम्पत्ति चाहिए जितने से परिवार का काम चल जाय। और आया हुआ अतिथ्य भी भूखा न जाय। "साईं इतना दीजिए जामे कुटुम्ब समाय। मैं भी भूखा न रहूँ साधु न भूखा जाय॥" इसी प्रकार से उन्होंने त्याग पर भी बड़ा बल दिया है और आत्म समर्पण पर भी जोर डाला है। "त्याग तो ऐसा कीजिए सब कुछ एकै बार। सब कुछ प्रभु का है, मेरा नहीं विचार।" वे कहते हैं तुझे जब परम सुख की चाहना है और परम प्रभु को चाहते हो तो संसार से सभी प्रकार का नेह नाता तोड़ दो। क्योंकि मैं आज जो सुखी हूँ संसार से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया हूँ। "हम घर जारा आपना लिये लुकाठी हाथ। अब घर जारौं तासु का जो चले हमारे साथ॥" "जो तू चाहो मुझको छाड़ सकल की आस। मुझही ऐसा होय रहो सब सुख तेरे पास॥" इसी प्रकार से वे साधु सन्तों से भी कहते हैं कि यदि तू भगवान के चरणार्विन्दों में अपने को समर्पित कर दोगे। और उनके नाम जप के द्वारा मतवाला हो जाओगे तो तुम्हारी बराबरी देवराज इन्द्र भी नहीं कर सकेंगे। "आठ गांठ कोपिन को साधुन माने शंक, नाम अमले माता रहे गिने इंद्र को रंक।" इसी प्रकार से उदार पुरुषों के लिये भी वे सलाह देते हैं कि "नाव में बाढ़े पानी घर में बाढ़े दाम, दोनों हाथ उलीचिये यही सयानो काम।" यदि तुम्हारे पास धन है तो उससे परमार्थ करो। परोपकार करो। यदि धन नहीं है और शरीर स्वस्थ है तो प्रभु का भजन करो। यदि तू बुद्धिमान हैं तो पराये की भलाई करो। यदि द्रव्यमान है तो तू अकिंचनों को दो

हाड़ बड़ा हरिभजन कर, द्रव्य बड़ा कछु देह। अकल बड़ी उपकार कर, जीवन का फल येह।" यदि तुम्हारे दरवाजे पर साधु-सन्त आ जाँय। सज्जन पुरुष आ जाँय तो उनकी अच्छी प्रकार से सेवा करो। उन्हें आदर पूर्वक एक दिन रखकर उनसे भजन सतसंग सुनो। उससे तेरा कल्याण होगा। परिवार की बुद्धि सुधरेगी सब में सद्भावना जगेगी। "जेहि घर साधु न पाहुना, नहिं सतगुरु मिजमान। सो घर मरघट जानिये, जीवत भया मसान। साधू आया पाहुँना, माँगे चार रतन। धुनी पानी साथरा श्रद्धा सेती अन्न।" साधु दरवाजे पर आ जाँय यदि ठंढ़क का दिन हो। तो उन्हें अग्नि तपाओ। धुनी लगाओ पश्चात् जल देओ, पैर धोओ, आसन देओ श्रद्धा के अनुसार भोजन देओ। इस प्रकार का सत्कार आये हुए अतिथि सन्तों का करो। इसी से तुम्हारा कल्याण होगा। साधुओं का कल्याण हरि भजन से होगा। आत्मज्ञान से होगा। गृहस्थों का कल्याण साधु सेवा से होगा। इसलिए दोनों को चाहिए कि जिसका जो धर्म है उस पर अटल रहे। तभी सभी का कल्याण होगा और सभी मोक्ष के भागी बनेंगे।

यह बीजक ग्रंथ मानव मात्र का ग्रंथ है और सभी का मार्ग दर्शक भी है तथा सभी के अधिकारों की रक्षा करने वाला ग्रन्थ है। इसमें न कोई शुद्र है, न कोई ब्राह्मण है, न कोई वैश्य है, न कोई क्षत्रिय है। इस ग्रन्थ में केवल मानव है। और मानव मात्र के लिए कहा गया है। यह ग्रंथ सद्गुरु कबीर की मूल वाणी के रूप में विख्यात है यद्यपि सद्गुरु कबीर इसको जनभाषा में कहा था परन्तु कुछ बातें कुछ वाणियां इतनी जटिल हैं। इतनी कठिन हैं कि जन साधारण से लेकर प्रबुद्ध वर्ग भी समझ नहीं पाता है। उक्त कठिनाईयों को देखते हुए बहुत से महात्मा एवं विद्वानों ने इस 'बीजक' ग्रंथ पर टीका और भाष्य लिखे हैं। अब तक लगभग १४-१५ टीकायें हो चुकी हैं। सभी ने अपने-अपने विचारानुसार 'बीजक' पर टीकायें लिखी हैं। टीकाओं को ३ वर्ग में बाँटा जा सकता है। प्रथम वर्ग की टीका रीवां नरेश श्री विश्वनाथ सिंह जी की है। जिन्होंने टीका को सगुणराम परक किया है। उनका कहना है कि कबीर साहब के राम दाशरथी राम ही थे। टीका सबसे पुरानी होते हुए भी बड़ी महत्वपूर्ण है और टीकाकार भी किसी विद्वान से कम विद्या वाला नहीं दिखता। शास्त्रों के सूक्ष्म वाक्यों को भी उद्धृत किया गया है परन्तु सद्गुरु की विचारधारा से बिल्कुल अछूती तो नहीं कही जा सकती लेकिन टीका के अधिकांश अवतरण कबीर साहब के भाव से अछूते हैं। ऐसे टीका बड़े ढंग की है। जिस भावना और भाव से लिखी गयी है। उन लोगों के लिए लाभप्रद भी है परन्तु कबीर साहब के विचारधारा से एकदम हटकर टीका की गयी है।

इसी प्रकार से एक टीका परम वैष्णव सन्त श्री जयराम दास जी ने 'बीजक' पर लिखा है। दाशरथी रामवादी होते हुए भी श्री जयराम दास जीने पाठ में कोई हेर-फेर नहीं किया है टीका बहुत अच्छी है। रीवां नरेश की टीका से स्पष्ट है और स्थल-स्थल पर बहुत गम्भीर अर्थ किया गया है। ये साधक महात्मा थे। अयोध्या निवासी थे। पवित्र हृदय के सन्त थे। इसीलिए टीका भी इनकी बड़ी पवित्र है। सगुण परक होते हुए भी टीका में निर्गुण सगुण की एकता करने का प्रयत्न किया गया है इनकी टीका पढ़ने योग्य है। हृदय के सहज भाव के द्वारा टीका रची गयी है। इसलिए ये महात्मा अधिक प्रशंसा के पात्र हैं।

दूसरे वर्ग की टीका श्री पूरण साहब की साधु शाही टीका है और उनका अपना विचार खूब है मूल 'बीजक' में कहीं भी चार मुख का उल्लेख नहीं है परन्तु श्री पूरण साहब कल्पना के आकाश में लम्बी छलाग मारकर जीवमुख, मायामुख, गुरुमुख, ब्रह्ममुख एक ही कबीर साहब के मुख से कहलवाया गया है कहीं-कहीं एक ही पद में कई-कई मुख आ गये हैं पूरण साहब का मुख्य उद्देश्य जीववाद की स्थापना पर है। वे वेद शास्त्र की मान्यता, वेद शास्त्रों के द्वारा निरुपित सिद्धान्तों की मान्यता धोखा घड़ी बताते हैं परलोक की मान्यता और ईश्वर की मान्यता को भी झूठी कल्पना की संज्ञा देते हैं। वे छः अथवा चार प्रमाणों में केवल प्रत्यक्ष प्रमाण को ही मानते हैं। परन्तु कबीर साहब को भी शब्द प्रमाण के द्वारा मानते हैं। जब कि कबीर साहब को वे देखे नहीं थे। फिर भी उस जन श्रुति को मान्यता देते हैं टीका बड़ी उटपटांग है शब्द चयन भी और शब्द-प्रयोग भी अनगढ़ा जैसे है मुक्ति के बारे में पूरण साहब का कहना है कि स्वरूप ज्ञान से मुक्ति संभव है परन्तु स्वरूप की स्थिति कहाँ रहेगी ? यह बताने में असमर्थ हैं इसी प्रकार से प्रारब्ध का फल भी मानते हैं परन्तु फल दाता कोई नहीं है यह भी उनकी पुकार है जब कि प्रारब्ध जड़ है कर्म भी जड़ हैं स्वयं फल देने में समर्थ नहीं ऐसा कोई लोक में दृष्टान्त भी नहीं है कि अपराधी पुरुष अपना कर्म फल स्वयं भोगना चाहता हो और पुण्यात्मा पुरुष भी अपनी इच्छानुसार अपने पुण्यों का फल नहीं प्राप्त कर सकता। इत्यादि प्रकार की बातें बहुत अनमेल हैं पूरण साहब की त्रिज्या टीका में ब्रह्म को कहा गया है कि वह न जिमी में है मन असमान में है वह ऊंट के पाद के समान है इसी प्रकार से उन्होंने दन्तताली भी गिनाया है और ९ व्याकरण का नाम जो गिनाया है वह भी उनकी बुद्धिविद्या का परिचायक है और भी उनकी अनेक आलोचना के विषय हैं परन्तु महात्मा की वाणी जानकर क्षमा के पात्र हैं।

इसी प्रकार से काशी कबीरचौरा में मेही दास जी साहब हुए हैं जिन्होंने

'बीजक' पर टीका लिखी है उनकी टीका भी पूरण साहब की टीका की छोटी बहन है अश्लील शब्दों का अधिक प्रयोग है। पढ़ाई लिखाई में पूरण साहब से कम दीखते हैं तद्वत् टीकाकार व भाष्यकार बुरहानपुर के महंत नागझिरी स्थान के निवासी रामस्वरूप साहब हैं जिन्होंने बड़ा परिश्रम करके 'बीजक महाभाष्य' लिखा है उनका परिचय अधिक न देकर केवल श्री गुरुवेनमः का भाष्य जो लिखा है। उसी से उनकी विद्या बुद्धि का पता चल जाता है। ग्रंथ बहुत विशाल हैं तीन भाग में विभाजित है रमैनी भाग, शब्द भाग और साखी भाग विवेचना की दृष्टि से इतना ही है कि श्री पूरण साहब की टीका का विस्तार मात्र है बातें सब वही चार-पांच मुख वाली हैं दूसरे मतों का एवं दूसरे धर्म का खण्डन बहुत जोर-शोर से है इनकी दृष्टि में कबीर साहब से पहले कोई मुक्त नहीं होता था भव बंधन की निवृत्ति की शुरुवात ये सद्गुरु कबीर से ही मानते हैं और अश्लील शब्दों का स्थल-स्थल पर प्रयोग है अधिकतर दूसरे मत पंथों पर आक्षेप ही है वेद शास्त्रों की खूब जमकर पिटाई की गई है परन्तु जो कबीर का मान्य सिद्धान्त है दया, क्षमा, अहिंसा, सत्य विचार, विवेक, बाह्य भीतर की शुद्धि पूर्ण अहिंसा, ऋजुता, शीतलता, विनम्रता, अहं रहिता आदि बातें और विचार कबीर साहब से पहले भी भारतीय वाङ्मय में विद्यमान थे एवं शमदम, उपरति, श्रद्धा, गुरुभक्ति, तितिक्षा, आत्मचिंतन भी कबीर साहब से पहले श्रुतियों में विराजमान थे स्वयं कबीर साहब भी कहा है कि जिस तत्त्व की उपासना ऋषि मुनियों द्वारा की जाती थी उसी तत्त्व का निर्देश मैं भी कर रहा हूँ केवल ऋषि मुनि अपनी भाषा में विचार किये थे मैं उसे जनभाषा में व्यक्त कर रहा हूँ।

जाको मुनिवर तप करे, वेद थके गुन गाय।
सोई देउ सिखापना, कोई नहीं पतियाय ॥
राउर के पिछवारे, गावे चारिउ सेन।
जीऊ परा बहु लूट में, ना कछु लेन न देन ॥

इत्यादि वाक्यों का अर्थ निम्न प्रकार का है चारों वेदों के द्वारा जिस आत्म तत्त्व की प्राप्ति के लिए वेदों के द्वारा संकेत किया जा रहा है उसी का उद्घोष मैं भी कर रहा हूँ परन्तु भाषा में होने के कारण लोगों को विस्मय हो रहा है। जब सद्गुरु के मूल उपदेश वेद शास्त्रों के हैं। इसको कोई पारखी नहीं नकार सकता है कि दया, क्षमा, सत्य, अहिंसा, शील, विवेक, सद्बुद्धि, परोपकार आदि सद्गुण वेदकाल में नहीं रहे ऐसा कहने के लिए किसी पारखी के पास साहस नहीं है। केवल अनर्गल प्रलाप करके संसार को धोखा देना है अपने भी धोखा में जाना है। पारखी लोग राम नाम ॐ नाम लेने पर बहुत चिढ़ते हैं। उक्त नाम

लेने वाले को भ्रामिक एवं अज्ञ मानते हैं जबकि अपने सद्गुरु-सद्गुरु जपते व मुख से निकालते रहते हैं सद् शब्द का अर्थ पारखियों को ज्ञात नहीं है। नहीं तो गुरु में चित्त नहीं लगाते।

इसी प्रकार से पारखी संत श्री अभिलाष दास जी भी और पारखी संत हरि दास जी भी अपनी-अपनी टीकायें बीजक पर की हैं। परन्तु सब के सब एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं और पूरण साहब के अर्थ के विस्तारक हैं। यद्यपि पारखी संत अभिलाष दास जी कुछ विचार रखते हैं परन्तु अन्ध परम्पराओं के कारण आंख नहीं खोलते कि दुनियाँ कहाँ गयी और मैं कहाँ हूँ। कबीर साहब क्या कहा और मैं क्या कहूँ ये सज्जन भी ईश्वर परमात्मा से बहुत डरते हैं और वेद शास्त्रों के निन्दा में और तीर्थों के आलोचना में किसी से पीछे नहीं हैं। ये भी जीव तत्त्व को ही स्वीकार करते हैं जिन कबीर साहब ने पांच तत्त्वों को माना था उनमें से उन्होंने आकाश तत्त्व को नकार दिया। इनका कहना है कि आकाश तत्त्व कोई द्रव्य नहीं है जब की शास्त्रों में लिखा है कि "शब्द का गुण आकाश" है परन्तु उनकी समझ में जो पहले से घस गया है वही ढोते आ रहे हैं। ऐसे श्री अभिलाष-साहब अब सुधार को ओर चल पड़े हैं ऐसे वे सुधारवादी एवं चतुर बहुत हैं। क्षमता से अधिक काम कर रहे हैं।

इसी धारा में इसी परम्परा के संत पंडित महाराज राघव दास जी भी काशी कबीर चौरा में हुए हैं। जिन्होंने 'बीजक',। 'पञ्चग्रन्थी', 'कबीर परिचय' 'निर्णय सार' आदि कई ग्रन्थों पर टीकाएँ लिखी है ये पढ़े-लिखे व्यक्ति थे अच्छे विद्वान् थे परन्तु पारखियों से प्रभावित होने के कारण इनकी भी टीका जीव परक ही है। यद्यपि अन्य पारखियों से इनकी टीका उत्तम है और बहुत कुछ सोच समझ कर लिखा गया है। 'चौरासी अंग की साखी' टीका करते समय इन्होंने पूर्णरूपेण पारख सिद्धान्त का बहिष्कार कर दिया। क्योंकि पढ़े-लिखे व्यक्ति थे। इसलिए इन्होंने पुनः विचार किया। फलस्वरूप 'चौरासी अंग की साखी' में आते-आते अस्तित्ववादी बन गये और 'चौरासी अंग की साखी' की टीका मितक्षरा के रूप में की गई है परन्तु ठीक किया। पारखियों की टीका यहाँ तक हो जाती है शेष बचे हुए पारखी राम स्वरूप दास जी साहब और श्री अभिलाष दास जी साहब बचे हैं। अभी कबीर साहब के साथ और जनता के साथ कितना अन्याय ये लोग करते हैं। देखना है अधिकतर पारखी अनपढ़ होते हैं जिसके कारण उनसे बातें नहीं होती क्योंकि दूसरे की बातों को वे नहीं सुनते।

अब 'बीजक' टीका की नई विचारधारा का एक गरीब दासी सन्त के द्वारा शुरु होती है जिन्होंने संस्कृत भाषा में सर्व प्रथम टीका लिखी थी परन्तु आज

वह टीका अप्राप्य है केवल इतना ही सुना जाता है कि वह टीका अद्वैत सिद्धान्त पर आधारित थी।

इसी प्रकार से अहमद साह पादरी भी 'बीजक' की एक टीका लिखी थी। जो अंग्रेजी भाषा में हैं। उनका भी अर्थ मिला जुला है कोई सिद्धान्त निश्चित नहीं किये हैं। मात्र 'बीजक' का उलथा जैसा है इसी प्रकार की एक टीका और जो महर्षि श्री शिवव्रत जी के द्वारा लिखी गयी है। जो महत्वपूर्ण कही जा सकती है वह टीका अभी सद्गुरु कबीर पुस्तकालय में विद्यमान है। महर्षिजी की टीका अधिकतर राधा स्वामी सिद्धांतानुसार लिखी गयी है। शब्द सुरति योग पर अधिक बल दिया गया है यों कहिए टीका योग परक है टीका दो-तीन भागों में विभाजित है। साइज भी मझौला है जो राधा स्वामियों ने सिद्धान्त प्रस्तुत किया था उसी सिद्धान्त को पकड़कर शिवव्रत लाल जी ग्रहण कर लिये स्मरण रहे कि राधा स्वामियों ने सद्गुरु कबीर की वाणी का जितना नुकसान किया है उतना कोई भी नुकसान नहीं किया जितने पद कबीर साहब के राधा स्वामियों ने छपवाये हैं वेलवेडियर मुद्रणालय से या अन्य कहीं से सभी में पाठ भेद कर दिया गया है कुछ पद तो नया बना कर जोड़ दिया गया है विश्व में यदि कहीं सम्प्रदाय वाद मिलेगा तो भारत में राधा स्वामी के रूप में मिलेगा जिस किसी सन्त महात्माओं के पद राधा स्वामी मत की ओर से छपे हैं उन सभी में अपने मनचाहा हेर फेर किया गया है—इसी प्रकार से कुछ कबीर पन्थी विद्वान् भी नाम के पीछे दिवाना हुए हैं जिन्होंने राम नाम के स्थान पर अपनी सम्प्रदाय वादिता एवं रूढ़ि वादिता का परिचय दिया है जो सतनाम लिखकर बवेला खड़ा कर दिया है—युगलानन्द जी की छपी साखी एवं सियाबाग बड़ौदा की छपी श्री प्रकाशमणी नाम की साखी को देखा जा सकता है इसी प्रकार से धर्म के स्थान पर धर्मदास भी सिद्ध किया गया है। यह सम्प्रदायवाद नहीं है तो और क्या है। 'बीजक' पर एक टीका श्री सदाफल देव जी द्वारा लिखी गयी है। जिन्होंने 'बीजक' पाठ के साथ बहुत बड़ा अन्याय किया है। प्रथम की कई रमैनियों की कई पंक्तियाँ लुप्त कर दी गई हैं। और मनमाना पाठ भी सम्पादन किया गया है सद्गुरु के कबीर प्रिय नाम राम नाम को हटाकर सत नाम रख दिया गया है कहीं कहीं कुछ दूसरे शब्द भी राम नाम को हटाकर रख दिये गये हैं। उनकी टीका भी संदिग्धावस्था में पड़ी हुई है। उनका प्रयास अधिकतर बड़ैया गादी जौनपुर के अनुसार ही टीका की गयी है। बल्कि टीका न कहकर उसका नाम भाष्य रखा गया है और सार शब्द की व्याख्या करने की चेष्टा भी की गयी है परन्तु पाठ भ्रष्ट के कारण उसका कोई महत्व नहीं है इसलिए उसके विषय में अधिक कुछ लिखना उत्तम नहीं होगा।

इसके पश्चात् एक टीका श्री विचारदास जी साहब खरसिया के द्वारा लिखी

गयी है। जिसकी भाषा हिन्दी बहुत स्पष्ट है। अधिक स्थलों पर अर्थ, न्यायसंगत है परन्तु जहाँ-तहाँ साम्प्रदायिक अर्थ भी घींच घांच कर किया गया है। सिद्धान्त कोई निश्चित नहीं है। कहीं ईश्वरवाद की भी झलक मिलती है कहीं आत्मवाद की बात कही गयी है कहीं पर जीववाद का भी संकेत है। ऐसे टीका अभी तक की अन्य टीकाओं से ठीक ही कही जायेगी इसी टीका का विस्तार श्री ब्रह्मलीन मुनि ने भी किया है। आकार में बड़ी है उनकी टीका मात्रा श्री विचार साहब की टीका का विस्तार है अधिक झुकाव अद्वैत वेदान्त की तरफ है एक अधूरी टीका सुकृत दास बरारी ने भी किया है। उनका भी सिद्धान्त अधिकतर साम्प्रदायिक है। टीका भी कोई खास महत्त्व वाली नहीं दीखती। जिस प्रकार ब्रह्मलीन की टीका "घटाटोप भयंकरा" है। अन्दर में खोखलापन दीखता है। उसी प्रकार की टीका सुकृत दास बरारी की भी है। बल्कि उससे भी ओछी टीका है।

एक टीका बीजक की आचार्य लालमुनि दास द्वारा छपरा (बिहार) की ओर से की गयी है। जिसमें दो हिस्से 'बीजक' के पद हैं। एक हिस्सा यत्र-तत्र से पद लिये गये हैं यद्यपि उसको बीजक की टीका नहीं कहा जा सकता है परन्तु उन्होंने 'बीजक' आलोक नाम रखा है। 'बीजक' टीका का सिद्धान्त गुरुमत वादी सिद्धान्त रखा गया है परन्तु जिस प्रकार से सदाफल देव ने 'बीजक' के पाठ को भ्रष्ट किया है उसी प्रकार से और उससे चतुर्थ गुणा 'बीजक' के पाठ को भ्रष्ट किया गया है अभी तक 'बीजक' पर इतनी गंदी कलम किसी ने नहीं उठायी थी मन माना शब्द को हेर फेर किया गया है। राम गोबिन्द और हरि शब्दों के स्थान पर गुरु नाम, सत्यनाम रख दिया गया है। ऐसे सपूत लोगों ने गुरु वाणी की न मर्यादा रखी है और न 'बीजक' की मर्यादा रखी है। ऐसे ही लोग पहले भी 'बीजक' को भ्रष्ट करने का प्रयत्न किया था और आज भी कर रहे हैं। जिसके कारण कबीर पन्थी बहुत बदनाम हो चुके हैं इन लोगों के लिए कोई शब्द ऐसा नहीं है कि जिसके द्वारा आलोचना की जाय। ये लोग न मनुष्य में हैं, न पशु में हैं। ऐसे लोगों को प्रेत की संज्ञा दी जा सकती है। जो गुरु वाणी के साथ महा अन्याय किया है।

इस प्रकार से पूरे 'बीजक' पर तो नहीं 'बीजक' की रमैनी भाग पर और शब्द भाग पर ज्ञान चौंतीसा से लेकर हिंडोला तक एक टीका कबीर साहब के पदों पर डॉ० जयदेव सिंह के द्वारा की गयी है जिनके सहयोगी डॉ० वासुदेव सिंह भी हैं। टीका बहुत सुन्दर है। पठनीय है। कबीर साहब के सिद्धान्त के अधिक नजदीक है परन्तु पाठ को जहाँ-तहाँ भ्रष्ट किया गया है। अर्थ की संगति बैठाने के लिए मन माना पाठ भेद भी किया गया है—

**अब कहु राम नाम अविनासी,** की जगह पर **अब कहु सत्य नाम अविनासी,** पाठ रख दिया गया है और भी बहुत स्थानों पर न समझने के कारण शब्दों में बहुत सा हेर-फेर किया गया है। जहाँ तक अर्थ की संगति का प्रश्न है। अभी तक की टीकाओं से सबसे उत्तम है। डॉ० साहब की टीका अच्छी कही जा सकती है।

इसी प्रकार से श्री सुभद्रदास जी साहब के द्वारा पता चला है कि एक टीका फतुहा के सन्त श्री प्रयाग दास जी साहब के द्वारा लिखी गयी थी। जो अब अप्राप्य है। उनके कहे अनुसार टीका पारख सिद्धान्त पर अवस्थित थी। मैं उस टीका को देख नहीं सका हूँ। यदि कहीं देखा भी होगा तो स्मरण नहीं है।

अब एक ऐसे टीकाकार की बात करना चाहता हूँ जिन्होंने 'बीजक' पर टीका करके विद्वानों का मन 'बीजक' की तरह खींचा है। 'बीजक पर बड़े परिश्रम से संस्कृत वाङ्मय से प्रमाणिक करके टीका लिखी गयी है और आपके द्वारा 'बीजक' पर एक ही टीका नहीं है। लगभग ४-५ टीकायें आपने बीजक पर की है। आप हैं संस्कृत जगत के और कबीर पंथी जगत के मनीषी विद्वान स्वामी श्री हनुमान दास जी साहब जो निर्वाण पद को प्राप्त हो चुके हैं। अभी तक बीजक पर इतना परिश्रम कोई नहीं किया था। आपकी निष्ठा बीजक में अत्यधिक है। टीका पाण्डित्य पूर्ण होने के कारण जन साधारण के वश की नहीं है। सिद्धान्त भी आपका अद्वैत वेदान्त का ही है। जब से आपकी टीका हुई है। तब से कबीर पंथ में दो धारा बह चली है। एक आस्तिकवाद की धारा जो आपके द्वारा प्रतिपादित की गयी है। दूसरी नास्तिक धारा जो पहले से चली आ रही थी। आपने बीजक का अर्थ करके एक नया मोड़ दिया है। यद्यपि टीका बहुत दुरूह है। तद्यपि उससे किसी का नुकसान नहीं है। उससे अभी तक आस्तिक भाव की अभिवृद्धि होती है।

**अप्रकाशित टीकायें :—**एक टीका श्री महन्त मुनेश्वर गोस्वामी धनौती के द्वारा लिखी गयी है। जो अभी प्रकाशित नहीं हो सकी है। टीका पूरी पढ़ी न जाने के कारण सिद्धान्त का पता नहीं चला है। जब तक छप नहीं जाती तब तक उस टीका के बारे में कुछ कहना ठीक नहीं है।

एक टीका स्वामी गैवानंद की सुनी जाती है जो देखने को नहीं मिली है। क्योंकि अभी प्रकाशित नहीं है। इतना ही सुना जाता है कि जीववादी टीका है।

इसी प्रकार से एक टीका जो अभी अप्रकाशित है। हमारे स्थान के और झोपड़ा के विद्वान स्व० पं० श्री रामानन्द साहब द्वारा लिखी गयी है। जो दुर्भाग्य वश असमय में ही हम लोगों को छोड़कर चले गये टीका अभी प्रकाशित नहीं

हुई है । वह टीका भी कबीर चौरा मठ में सुरक्षित है । उनके शिष्य श्री महेश-दास जी साहब को मैं अवगत करा दिया हूँ । आपका सिद्धान्त मज्झिम निकाय की तरह है । चेतन परक है । आत्मा परक है । पाठ में कोई गड़बड़ी नहीं है । पाठ कबीर चौरा का ही है और विचारधारा भी उत्तम है । इस प्रकार से और भी बहुत लोग बीजक के कुछ पदों पर अर्थ किये हैं । जो प्रशंसनीय हैं और प्रशंसा के पात्र हैं । जिन्होंने जितनी सद्‌गुरु की सेवा की है । वे उतना ही श्लाघनीय हैं । वंदनीय है ।

अब प्रश्न उठता है कि जब बहुत सारे लोग इतनी टीका कर चुके थे तो इस 'बीजक टीका मनोरमा' की आवश्यकता क्यों पड़ गयी । इसके उत्तर में कुछ टीकाओं को छोड़कर अधिक टीकायें एकांगी हैं : अर्थ भी बहुत खींच-तान कर किया गया है और भाषा भी बड़ी दुरूह है । स्मरण रहे कि कबीर साहब किसी एक सिद्धान्त में, किसी एक वाद में बंधे नहीं थे । वे मुक्त जीवन महात्मा थे । उनके लिए न कोई सिद्धान्त बुरा था न भला था । जिस किसी धर्म में जो अच्छी बातें उन्होंने पायी । जिस किसी सिद्धान्त में मानव कल्याण की बात उनको दिखाई दी । जिस पर उनका अनुभव सही उतरा । चाहे वे अद्वैत सिद्धान्त हो, चाहे एकेश्वरवाद हो, चाहे योग ध्यान हो, चाहे भक्ति भाव हो, चाहे वह शैवों का मत क्यों न रहा हो । जैन बौद्धों का मत क्यों न रहा हो । नाथ सम्प्रदाय का मत क्यों न हो । इसी प्रकार से इस्लाम ही क्यों न रहा हो । उक्त मत पथों में जो बातें उनको सुन्दर जंची । उन सब बातों का उल्लेख अपनी वाणियों में किया है । उनकी वाणी में उनके 'बीजक' में, एक ईश्वर वाद भी है । योग भी है, भक्ति भी है, ध्यान भी है । अद्वैतवाद भी है, वे सबके द्वारा मानव कल्याण समझते हैं । उनका दुराव किसी मत-पथ से नहीं था । केवल जो मत पंथों में बुराईयाँ आ गयी थीं । अन्ध विश्वास घर कर लिया था । उन्हीं सभी बातों का उन्होंने बहिष्कार किया और संसार के सभी आत्मज्ञानियों के मान्य बातों का उन्होंने समर्थन किया ।

समझे की गति एक है, जिन्ह समझा सब ठौर ।
कहँ कबीर ये बीच के, बलकहिं और की और ॥

के अनुसार तत्त्ववेत्ताओं के एक विचार हैं । ओछे लोगों के अनेक विचार होते हैं । इसलिए सद्‌गुरु कबीर को एक वाद में बांधना उनके साथ अन्याय करना है । उनका सिद्धान्त केवल सत्य सिद्धान्त है । सत्य की प्राप्ति और सत्य तक पहुँचना उनका मुख्य लक्ष्य है । उस परम सत्य के पास पहुँचने का अनेक मार्ग हैं । अनेक उपाय हैं । किसी भी अच्छे मार्ग से अहिंसक मार्ग से उस परम सत्य तक पहुँचा जा सकता है और उसकी प्राप्ति की जा सकती है । मेरा

पंथ अच्छा है, उसका पंथ बुरा है, यह सम्प्रदायवाद का काम है। किसी अच्छे सन्त महात्मा ज्ञानी का काम नहीं है। ज्ञानी सभी मनुष्यों की आत्मा में अपनी आत्मा को देखता है। और अपने में सम्पूर्ण आत्माओं को देखता है। इसलिए उसमें राग द्वेष नहीं होते। राग-द्वेष की उत्पत्ति द्वैतवाद में होती है। इसलिए सद्गुरु कबीर का सत्य सनातन सिद्धान्त एक है। टीका की भाषा कहीं-कहीं खटकेगी कारण कि मैं स्वयं अपने हाथ से लिखा नहीं हूँ में केवल बोलते गया हूँ और लिखने वाले भी अनेक थे कुछ कम बोध के कारण ठीक से लिख नहीं पाते थे, कुछ व्याकरण का दोष रह गया है दूसरे धारा प्रवाह में बोला गया है बहुत से शब्द वाक्य कुछ के कुछ लिखा गये हैं और उतारने के बाद व कापी करने के बाद भी ध्यान से देखा नहीं गया इसलिये भाषा जन्य त्रुटियाँ अधिक रह गई हैं पाठक वृन्द क्षमा करेंगे। अगले संस्करण में भाषा पर ध्यान दिया जायगा।

इस मनोरमा टीका में सद्गुरु कबीर के सत्य सिद्धान्त की व्याख्या अपनी पहुँच के अनुसार की गयी है। जिस पंक्ति का जो अर्थ था। जहाँ तक सम्भव हुआ है वहाँ तक वही अर्थ निकाला गया है और सरल भाषा के द्वारा उसको व्यक्त किया गया है और लक्ष्य यही था कि सद्गुरु की वाणी का अर्थ ज्यों का त्यों जन भाषा में एवं सरल भाषा में गाँव की भाषा में किया जाय। क्योंकि जन सामान्य की बहुत शिकायत थी कि 'बीजक' की टीकायें भी समझ में नहीं आती हैं। लोगों का कहना है कि कुछ टीकायें मूल से भी कठिन हो गयी हैं। और कुछ टीकायें अर्थ से भी दूर भाग गयी हैं। जिन वाणियों के अर्थ जिन पंक्तियों के भाव जन साधारण समझ लेते हैं। उसके अर्थ और भाव कुछ टीकाकारों ने खींच-तानकर विपरीत कर दिया है। और भाषा की दुरूहता से भी उनके अर्थ समझ में नहीं आते हैं। इन सब अभावों को देखते हुए बीजक टीका मनोरमा की आवश्यकता जान पड़ी।

सर्व श्री आचार्य महन्त श्री अमृत साहब जी की प्रेरणा हुई की एक टीका तुम-लिखो। मुख्यतया उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर और अपनी आत्मा की पुकार पर उक्त टीका को आरम्भ किया गया। टीका में बहुत समय लगा। यह टीका सन् १९८५ में ही आरम्भ की गयी। सन् १९८५ में चार-पाँच महीने परिश्रम करके गंगा नदी रूपी रमैनी प्रकरण को पार किया गया और शब्द रूपी नद में लगभग ३०-४० पदों के अर्थ होते-होते-एकाएक फंलेरिया का अटेक हुआ जिसके कारण वर्षों दिन स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहा। और पश्चात् स्थानीय कार्य भी बहुत रहे। इसलिए लगभग अढ़ाई वर्ष तक टीका का काम बंद रहा। पश्चात् बहुत मित्रों के उत्प्रेरणा से पुनः टीका में प्रवृत्ति जगी। अनवरत कार्यरत होने से चार-पाँच महीने में पूरा हो गयो। यदि स्वास्थ्य खराब न हुआ होता तो टीका में सब

मिलाकर १०-११ महीने का समय लगता। परन्तु स्वास्थ्य की गड़बड़ी से सवा तीन वर्ष लग गये।

टीका के लेखन में सहयोग देने वाले प्रथम कापी तैयार करने में सवं श्री महेशदास जी व्याकरणाचार्य एवं श्री विचार दास जी एम० ए०, श्री विवेक दास जी व्याकरणाचार्य, डॉ० श्री नारायण दास जी, डॉ० श्री जय शंकर दीक्षित, डॉ० श्री सत्यनाम दास जी, श्री गोपाल दास जी, श्री देवशरण दास जी, श्री व्यासमुनि दास जी, शिवराज दास आदि सन्त विद्वानों ने अत्यधिक सहयोग दिया। यदि इन लोगों का सहयोग न होता तो 'बीजक' की टीका केवल मेरे वश की नहीं थी। क्योंकि टीका में बहुत घोर परिश्रम करना पड़ता है। यह सब विद्वानों को ज्ञात है जितना परिश्रम मूल पुस्तक लिखने में नहीं होता है। उससे अधिक परिश्रम किसी ग्रंथ की टीका करने में होता है। इस टीका में सबसे अधिक सहयोग डॉ० सुरेन्द्रनाथ मिश्र मेंटल विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का रहा है। यदि वे सहयोग न करते तो भी टीका अधूरी ही रह जाती। उनका सहयोग शरीर को स्वस्थ्य करने में रहा। अस्वस्थता में उन्होंने हमारी बड़ी मदद की। और रोग का बड़े परिश्रम से निरीक्षण किया। जिससे यह काम सम्भव हुआ। इसलिए जितने भी जान अनजान में सन्त सज्जन वृन्द और विद्वत् वृन्द सहायता पहुँचाये हैं। उन सबों को हृदय से मैं नमस्कार करता हूँ। अन्तर कथा श्रीमान् स्वामी हनुमान दास जी साहब षट् शास्त्रो के बीजक की टीका से ली गई हैं।

अन्तर कथाओं की भाषा मेरी नहीं है भाषा स्वामी जी साहब की ही है मैंने उनकी भाषा को छेड़-छाड़ करना उत्तम नहीं समझा क्योंकि किसो महापुरुष की कृति में अपनी बात मिलाना अच्छा नहीं होता है अस्तु सादर साहब वन्दगी के पश्चात मैं आचार्य श्री अमृतदास जी साहब को सादर बंदगो समर्पित करता हूँ। और स्थान के सभी सन्त महात्माओं को भी बंदगी करता हूँ। जिनकी कृपा से यह बीजक टीका सम्पूर्ण हुई है। इसलिए साहब बंदगी के पश्चात् इति अलम्।

आचार्य गंगाशरण शास्त्री

बीजक शब्द संख्या १०३ में मलूकदास कृत कबीर वाणी में २ पंक्ति और हैं।

राम भगति परि जाको हित चित, ताको अचरज काहा।
गुर प्रसाद साध की संगति, जग जीते जाइ जुलाहा ॥

'बीजक शब्द संख्या ३८ में श्री मलूक दास कृत कबीर वाणी संग्रह में २ पंक्ति और है।

बार पार की खबरि न जानी फिरयो, सकल बन ऐसे।
यहु मन बोहिथ के कउवा ज्यु, रहयो ठग्यो सौ वैसे ॥

'बीजक' शब्द संख्या ९९ पद में २ पंक्ति मलूक दास कृत कबीर वाणी में और है।

चोवा चंदन चरचत अंगा सो तन, जरै काठ के संगा।
दास कबीर यह कीन्ह विचारा, इक दिन छौ हैं हाल हमारा ॥

बीजक शब्द संख्या ९१ में मलूक दास कृत कबीर वाणी में ४ पंक्ति और है।

सांच कहौं तो कोइ न मानै, झूठ कहा नहिं जाई हो।
ब्रह्मा विस्नु महेसर दुखिया, जिन यह राह चलाई हो ॥
अवधू दुखिया भूपति दुखिया, रंक दुखी विपरीती हो।
कहैं कबीर सकल जग दुखिया, संत सुखी मन जीती हो ॥

कहरा ८ में मलूकदास की प्रति में दो पंक्ति और है।

माया मोह मद मय पिया मुगुध कहे येहु मेरी रे
दिवस चारि भलै मन रंजे एहु नांहि किस केरीरे ॥

रमैनी ६९ में मलूक दास की प्रति में २ पंक्ति और है

उतपति व्यंद कहां थै आया, जौधरि अरू लागी माया।
नहीं को ऊँचा नहीं को नीचा, जाका प्यंड ताही का सींचा ॥

बीजक शब्द २ में मलूक दास की प्रति में ४ पंक्तियां और हैं।

डाल गहयया थे मूल न सूझे, मूल गहयां फल पावा।
बंबई उलटि शरप को लागी, धरणि महारस खावा ॥
अंबर वरसै धरती भीजै, यहु जांणै सब कोई।
धरती बरसै अंबर भीजै, बूझै बिरला कोई ॥

फिरहु का फूले फूले में दो पंक्तियां इस प्रकार हैं मलूक दास की प्रति में।

ज्यू घट नारी संग देखि करि, तब लग संग सुहेलो।
मरघट घाट खैंचि करि राखे, वह देखहु हंस अकेलें।

बीजक शब्द ३५ में मलूक दास की प्रति में १ पंक्ति अधिक है।

सासू कह काति बहू ऐसे, बिन कातें निस तरिबौ कैसे

बीजक शब्द ६८ में पारसनाथ तिवारी में १ पंक्ति अधिक है।

जल जाइ थल अपनी, आई नगर में आप।

बीजक शब्द ३७ में तिवारी की प्रति में हम सुं प्रिती बसाये। इतना और है।

मलूकदास की प्रति में एक बोली इस प्रकार है।

राम गुन बेलड़ी रे अवधू गोरख नाथ जानी ॥
नाति सरूप न छाया जाकै, बिरध करै बिन पानी ॥
बेलड़िया द्वै अनी पहुंती, गगन पहुंती सैली।
सहज बेलि जब फूलन लागी, डाली कूपल मेल्ही ॥
मन कुंजर जाई बाड़ी बिलंबा सतगुर बाही बेली।
पंच सखी मिलि पवन वयंप्या, बाड़ी पानी मेल्ही ॥
काटत बेली कूपन मेल्हा, सीचत ही कुम्हिलानी।
कहैं कबीर ते बिरला जोगी, सहज निरन्तर जानी ॥

श्री मलूकदास जी कृत संग्रहित कबीर वाणी में एक हिंडोला और प्राप्त हुआ है जिसको नीचे दिया जा रहा है।

हिंडोलना तहां झूलै आतम राम।
प्रेम भगति हिंडोलनां, सब संतनि कौ बिसराम ॥
चंद सूर दोइ खंभवा, बंक नालि को डोरि।
झूले पंच पियारियां, तहं झूले जीय मोर ॥
द्वादस गम के अंतरा, तहां अमृत को ग्रास।
जिनि यह अमृत चाखिया, सो ठाकुर हंस (हम) दास ॥
सहज सुंनि को नेहरौ, गगन मंडल सिरिमौर।
दोउ कुल हम आगरी, जो हम झूलै हिंडोल ॥
अरध उरध को गंगा जमुना मूल कंवल को घाट।
षट चक्र को गागरी, त्रिवेणी संगम बाट ॥
नाद बिन्द को नावरो, राम नाम कनिहार।
कहैं कबीर गुन गाइले, गुरगमि उतरौ पार ॥

●

# अनुक्रमणिका

# मंगलाचरण

## दोहा

दीनबन्धु करुणानिधी, सद्गुरुदेव कबीर।
शक्ति मुझे अब दीजिए, टीका हेतु सुधीर॥ १॥
तव वाणी गंभीर अति, मति नहिं पहुँचत तात।
ताते बल मैं चाहता, कहुँ सही सब बात॥ २॥
तव आशय अति गूढ़ है, मम मतिबल कछु नाहिं।
मम मेधा में वास कर, जैसे जो हो आहिं॥ ३॥
तुम गोविन्द वाणी अमल, करि मुख मंगल रूप।
विघ्न सकल बाधा हरो, भाव होय तद् रूप॥ ४॥
जो है सबकी आतमा, देश काल से भिन्न।
ताकी करता वन्दना, मन नहिं होवे खिन्न॥ ५॥

देव दनुज नर नाग सब, जेते खानि बखान।
सबकी बिनती मैं करूँ, देहु मोहि वरदान ॥ ६ ॥

टीकाकरण मनोरमा, मन में सोहे सोय।
अर्थ कोइ छूटे नहीं, गुप्त प्रकट जो होय ॥ ७ ॥

सन्त, महन्त, महात्मगण, भक्त जगत जो कोय।
ते सबहीं मंगल करें, काम बने शुभ सोय ॥ ८ ॥

गंगाशरण विहीन मद, शुरू करत यह काज।
गुरु वाणी टीका करत, रंच न आवे लाज ॥ ९ ॥

ग्राम्य जनन के हेतु यह, टीका सरल सुभाव।
बुद्धिमान भी अर्थ लह, जो नहिं करे दुराव ॥१०॥

टीका और अनेक हैं, अर्थ भाव बहु भिन्न।
जिसका जो सिद्धान्त है, सोइ अर्थ लिख दिन्ह ॥११॥

पटुता पूर्ण विचार है, जन नहिं समझत ताहि।
मूलहु ते अति कठिन है, समझत हैं बहु नाहि ॥१२॥

कोई मूलहीं त्यागि कै, हुये अदिष्ट महान।
ताते मैं यह श्रम किया, सत्य अर्थ को आन ॥१३॥

बहुजन लहै अपार सुख, समझत होय न देर।
ताते यह टीका करत, बहुत भाव मैं हेर ॥१४॥

कृपा बड़ी जिनकी हुई, सद्गुरु रामविलास।
नाश करहिं सब विघ्न को, करत दास यह आस ॥१५॥

हो प्रसन्न मम ऊपरे, सो आशीष सुदीन।
ताते यह सब सफल भा, करत वन्दगी तीन ॥१६॥

कान कुब्ज ब्राह्मण विमल, रज्जू है उपनाम।
उपाध्याय विद्या गुरुहिं, सन्तत मोर प्रनाम ॥१८॥
तिरवेनी पण्डित प्रवर, जन्म भूमि के पास।
जो हमको साक्षर किये, तेहि समान नहिं भास ॥१९॥

❀ ओंम् सत्य कबीराय नमः ❀

# बीजक टीका मनोरमा

## सृष्टि प्रकरण

## रमैनी १

**अंतर जोति सब्द एक नारी । हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी ।।**
**ते तिरिये भग लिंग अनंता । तेउ न जाने आदिउ अंता ।।**

**शब्दार्थ**—अंतर–भीतर, अन्तःपुर, हृदय स्थान। जोति–प्रकाश, ज्योति, आत्मतत्त्व । सब्द–ध्वनि, स्पंदन, स्फोट, प्रणव, ओंम् । एक–वह अद्वितीय तत्त्व। नारी–माया, प्रकृति, 'नृ' धातु से नारी शब्द की उत्पत्ति हुई है जो गर्भ को धारण करे वह नारी। हरि–विष्णु, ईश्वर। ब्रह्मा–विधाता, लोक पितामह, हिन्दू धर्म के अनुसार सृष्टि का आदिपुरुष। त्रिपुरारी–दैत्यों की पुरियों को नाश करने वाला, त्रिपुरा नामक दैत्य का भंजन करने वाला, महादेव, शंकर। ते–वे सब। तिरिये–तीनों भाई। भग–स्त्री का गुप्तांग, स्त्री। लिंग–पुरुष का गुप्तांग, पुरुष। अनंता–अनेक, बहुत। तेउ–वे भी। न–नहीं। जाने–ज्ञात। आदिउ–प्रारम्भ। अंता–अन्त, अवसान, सीमा, परिधि।

**मूलार्थ**—अखिल ब्रह्माण्ड में दो सत्ता का अस्तित्व अनादिकाल से चला आ रहा है। प्रथम सत्ता ज्ञानस्वरूप चैतन्य सत्ता है जिसको परमात्म शक्ति के रूप में लिखा गया है। जो ध्वन्यात्मक कला से परिपूर्ण है तथा ज्योतियों की ज्योति भी उसी को कहते हैं। एवं द्वितीय सत्ता एक नारी रूपा माया प्रकृति है। जिसके भीतर में प्रथम सत्ता जो चिति स्वरूप से जानी जाती है जो सबके भीतर विद्यमान है। जिसको 'अमृत उपनिषद्' में शब्द के रूप में ओंकार नाम वाला बताया गया है। वही चैतन्य सत्ता अखिल ब्रह्माण्ड का संचालन करने वाली परम सत्ता है। जो प्रकृति

के भीतर छिपी हुई है। उसी चित-अचिति अन्तर ज्योति एवं प्रकृति के संयोग से प्रथम, सृष्टि के आधारभूत तीनों देव सर्वप्रथम उत्पन्न हुए। जिनको ब्रह्मा, विष्णु, महेश के नाम से जाना जाता है। पश्चात् इन तीनों भाईयों ने अनेक स्त्री-पुरुषों की रचना की। परन्तु सब कुछ करने के बाद भी वे लोग उस अन्तर ज्योति पुरुष का आदि और अन्त नहीं जान सके। क्योंकि वह चिति पुरुष असीम है और मानव बुद्धि से परे है। इसलिए कोई भी देहधारी मानव एवं देव उस अनन्त सत्ता का पार नहीं पा सकता है और नहीं पाया है और न पायेगा। क्योंकि वह असीम एवं अनन्त है। तथा देश काल से परे है। उसका केवल अनुभव किया जा सकता है। क्योंकि वह कोई स्थूल पदार्थ नहीं है। एक परिधि में रहने वाला नहीं है। वह अखिल ब्रह्माण्ड को आच्छादित करके स्वयं सबसे ऊपर है और सबको ढ़के हुए है। जिसके आभास से प्रकृति में स्पंदन और विस्फोट होता है। उस विश्वात्मा पुरुष के भीतर सारा ब्रह्माण्ड समाविष्ट है और वह पुरुष अखिल ब्रह्माण्ड के बाहर-भीतर विराजमान होकर स्थिर है। ब्रह्मा आदि उसके एक अंशमात्र होने से भला उसको कैसे जान सकते हैं। इसलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं कि ब्रह्मा आदि तीनों भाई उस परमपुरुष का आदि-अन्त जानने में असमर्थ हैं। इसलिए ब्रह्मा ने वेदों में उसको सीमातीत बताया है।

यहाँ पर कोई शंका कर सकता है कि ग्रन्थ के आदि में, आरम्भ में कबीर साहब 'मंगलाचरण' नहीं किये हैं। इसलिए वे आस्तिक नहीं हैं तो यह शंका पूर्णरूपेण निर्मूल है। सद्गुरु कबीर आत्मज्ञानी थे, ब्रह्मज्ञानी थे। वे "वस्तु-निर्देश रूप" मंगलाचरण किये हैं। उनका संकेत सर्वप्रथम 'अन्तर-ज्योति' की ओर है। क्योंकि 'अन्तर-ज्योति' ही सर्व मूलतत्व है। उसका स्मरण करना ही मंगलाचरण है और ग्रन्थ के भीतर भी अधिक 'वस्तु-निर्देश' ही मंगलाचरण है। अन्य दो मंगलाचरण भी 'शब्द प्रकरण' और 'हिण्डोला' में मिल जाते हैं। इसलिए कबीर साहब पूर्ण आस्तिक हैं। उनमें किसी प्रकार की कमी नहीं है।

**विशेषार्थ**—कोई बात अकारण ही नहीं होती, उसी प्रकार सृष्टि भी अकारण ही नहीं हुई है। उसका अनादि प्रवाह चक्र प्रवाहित रहता है। इसी को हम अनादि भी कहते हैं। इसमें सदा संकोच विकास भी होता रहता है। कभी-कभी इस जगत का स्वरूप परिवर्तित भी हो जाता है, जैसे हिम से जल, जल से हिम। वह परिवर्तित जगत उस परम सत्ता में ही होता है, जो आदि और अन्त से हीन है। इधर जीवों के क्रम भी अनादि काल से चले आ रहे हैं। बिना आत्मज्ञान के कर्मों का फल भी समाप्त नहीं होता है। इसलिए परम सत्ता का सृष्टि क्रम पुनः आवश्यक हो जाता है और अपनी प्रकृति में प्रवेश करके सृष्टि का सर्जन करती रहती है। जिससे जीवों को पुनः क्रम प्रवाह से छुटकारा मिल सके। परम सत्ता एक ऐसा पुरुष उत्पन्न करती है जिसमें रज, सत, तम, गुण विद्यमान रहते हैं। उस उत्पन्न पुरुष को तीनों गुणों से युक्त होने के कारण तीन देव भी कहा जाता है, परन्तु ऐसा नहीं है, गुणों के कारण उपर्युक्त तीन नामों की घोषणा हुई है। वह प्रथम पुरुष अपने सद्गुणों में समाहित होकर बद्ध जीवों को मुक्त करने के लिए ऋषि, मुनियों के अन्तःकरण में ज्ञान का प्रकाश करता है, जो वेदों के रूप में सामने आते हैं। रजगुण से युक्त होकर सृष्टि का विस्तार करता है। इसी प्रकार तमोगुण से युक्त होकर संसार का पराभव भी करता है। इस प्रकार से उक्त पुरुष तीनों गुणों से मण्डित होने के कारण पुराणों में तीन नामों से उल्लेख किया गया है। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। प्रभु किसी को अच्छे-बुरे कर्म की ओर प्रवृत्त नहीं करता। जैसे सूर्य केवल प्रकाश करता है अपने तेज द्वारा मनुष्यों को कर्म की प्रेरणा देता है उसी प्रकार से अविद्या ग्रसित अज्ञ जीव परम सत्ता युक्त पुरुष के तेज से शुभ और अशुभ कर्म की ओर प्रेरित होते हैं। इसलिए परमसत्ता शुभ और अशुभ कर्मों को करने में सहायक भी कही जाती है। परन्तु ऐसा नहीं कि जान बूझ कर जीवों को शुभा-शुभ कर्म की ओर प्रेरित करे। ऐसा करने पर उसकी सर्वज्ञता सिद्ध नहीं होगी। जीवों में अपनी स्वयं

प्रकृति होती है। परमसत्ता केवल सत्ता स्फूर्ति प्रदान करती है। जीवों के कर्म के फल देने में वह स्वयं हाथ बटाती है। नियम विधान वह बना दिया है आपको उसी मार्ग पर चलना अभीष्ट है। यदि आप उसका उल्लंघन करते हैं तो उसके विपरीत फल मिलेंगे। जैसे लोक में देश का राजा नियम बना देता है यदि उसके निर्धारित नियमों से विरत हो जाते हैं तो वह न्यायालय द्वारा दण्डित कराता है। परन्तु वह आपको शुभा-शुभ करने को नहीं कहता, आपके शुभा-शुभ कर्म करने के बाद ही फल देता है। उसी प्रकार परमसत्ता परमेश्वर भी शुभा-शुभ कर्म करने के बाद ही सुख-दुख का भागी बनाता है। तद्धेतु सृष्टि का सृजन व संहार करता है। यदि आप उस प्रभु की ओर उन्मुख होते हैं तो वह भो अपनी ओर आकर्षित करता है और वह दयामय प्रभु कृपा करके भव चक्र से मुक्त कर देता है। आपके उद्धार के लिए ही जगत की रचना होती है, अन्यथा कोई कारण नहीं कि वह जगत को बनाकर क्लेश में डाले। इसलिए संसार उत्पन्न होने का कारण जीव ही है। परमेश्वर नहीं। आपको चाहिए कि परमेश्वर की ओर प्रवृत्त होकर संसार का अभाव करें, अन्यथा जन्मते मरते रहेंगे।

**वाखरि एक विधातै कीन्हा। चौदह ठहर पाठ सो लीन्हा ॥**

**शब्दार्थ**—वाखरि–अखिल ब्रह्माण्ड। विधातै–कार्यब्रह्म व ईश्वर। चौदह–चर्तुदश। ठहर–स्थान। पाठ[1]–पाट का पर्याय वाची पाठ, सीख, गुरु से किसी विषय को जानने के लिये कुछ अंश को अनुदिन पढ़ना, पट्ट, पाट, वस्त्र, कपड़ा, रेशमी वस्त्र, विस्तार, चौड़ाई, फैलाव, पीढ़ा, पट्टी, राज्य, गद्दी। सो–वह। लीन्हा–स्थापित किया।

**भावार्थ**—कार्य ब्रह्म ब्रह्माण्ड रूपी वाखरि की रचना किया। जिसका चौदह भागों में विभाजन किया और उन चौदह स्थानों पर अपना शासन स्थापित किया। जिसमें सात लोक ऊपर और सात लोक नीचे बताये गये हैं। जो निम्न प्रकार के हैं—

---

१. पाट = बनाना, जयदेव सिंह के मत से।

ऊपर के लोक : भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, जनलोक, तपलोक, महर्लोक, सत्यलोक।

नीचे के लोक : सुतल, महातल, रसातल, पताल, अतल, वितल, तल।

वाखरी का यह भो अर्थ है कि लोक पितामह ब्रह्मा ने एक वाणी रूपी वेद को प्रकट किया और उसको चौदह विद्याओं में विभाजन किया परन्तु 'ठहर' स्थान वाचक होने से चौदह लोक ही अर्थ होंगे।

**हरि हर ब्रह्मा महन्तो नाऊ। तिन पुनि तीन बसावल गांऊ॥**

**शब्दार्थ**—हरि–सद्गुण। हर–तमोगुण। ब्रह्मा–रजोगुण। महन्तो–महापुरुष व सम्राट। नाऊ–नाम वाला। तिन–तीन (मृत्युलोक, पाताल-लोक, स्वर्गलोक)। पुनि–पुनः। बसावल–बसाया। गांऊ–ग्राम।

**भावार्थ**—तीनों गुणों से युक्त विश्व रचयिता सम्राट पुरुष पुनः चौदह स्थानों की व्यवस्था के लिए तीन खण्ड बनाया। मृत्युलोक, पाताललोक और स्वर्गलोक।

**तिन्ह पुनि रचल खण्ड ब्रह्मण्डा। छव दर्सन छानवे पाखण्डा॥**

**शब्दार्थ**—तिन्ह–वह। पुनि–पुनः। रचल–रचा। खण्ड–भाग। ब्रह्मण्ड–इक्कीस ब्रह्माण्डा। छव–६ संख्या। दर्सन–देखना। पाखण्डा–कर्मकाण्ड युक्त व्यवहार।

**भावार्थ**—इसके बाद वह कार्य पुरुष उपखण्ड ब्रह्माण्डों की रचना की, जिसमें अनेक प्रकार के प्राणियों की सृष्टि की। जिनकी व्यवस्था के लिए छव दर्शन और षटाश्रमों की व्यवस्था हुई। उन छव आश्रमों से भी छानवे शाखायें उत्पन्न की गई। जिससे संसार का कार्य नियत रूप से चल सके।

**टिप्पणी**—सांख्य–कपिल, मीमांसा–जैमिनि, वैशेषिक–कणाद, न्याय–गौतम, योग–पतंजलि, और वेदान्त–वेदव्यास ये छौ दर्शन हैं।

**छानबे पाखण्ड**–दश सन्यासी, बारह योगी, चौदह शेष बखान।

ब्राह्मण अठारह, अठारह जंगम, चौबिस सेबड़ा परमान ॥
(पंचग्रंथी मानुष विचार)

- गिरी, पुरी, भारती, वन, पर्वत, आरण्य, सरस्वती, सागर, आश्रम, तीर्थ—नाम से दश सन्यासी हैं। औघड़, नाथ आदि भेद से बारह योगी हैं। सिया, सुन्नी, शेष, दरवेस आदि भेद से चौदह मुसलमान हैं।

- पूज्य, द्विज, श्रोत्रिय, पंक्तिपावन, गुरु, आचार्य, उपाध्याय, ऋत्विक, पण्डित, ऋषि, क्षात्र ब्राह्मण, वैश्य ब्राह्मण, शूद्र ब्राह्मण, विडाल व वक ब्राह्मण, म्लेक्ष ब्राह्मण, चाण्डाल ब्राह्मण, राक्षस ब्राह्मण, अधमाधम ब्राह्मण—ये अठारह ब्राह्मण हैं।

- शिव, पशुपति, मृत्युंजय, त्रिनेत्र, कृतिवास, पंचवदन, शितिकण्ठ, खण्ड परसू, प्रथमाधिप, गंगाधर, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह, संसार वैद्य, सर्वज्ञ, परमात्मा और कपाली—ये शिव के नाम हैं। जंगम शिव उपासक होते हैं और कहा जाता है कि अठारह भेदों वाले होते हैं।

- ऋषभदेव अजितनाथ संभवनाथ अभिनंदननाथ सुमतिनाथ पद्मप्रभु सुपार्श्वनाथ चन्द्रप्रभु सुविधिनाथ शीतलनाथ श्रेयांसनाथ वासुपूज्य विमलनाथ अनन्तनाथ धर्मनाथ शान्तिनाथ कुन्थुनाथ अरहनाथ मल्लिनाथ मुनिसुव्रतनाथ नमिनाथ नेमिनाथ पार्श्वनाथ महावीर स्वामी—जैनियों के ये चौबीस तीर्थंकर हैं।

- दूसरी भाँति छानबे पाखण्डों का वर्णन इस प्रकार हो सकता है— दश सन्यासी, अठारह ब्राह्मण, अठारह जंगम, चौबीस जैनी (इसका विवरण ऊपर दिया जा चुका) हठयोगी और राजयोगी इस प्रकार दो प्रकार के योगी और चौबीस पैगम्बर—आदम, शीश, नूह, इब्राहीम, याकूब, इसहाक, यूसुफ, इस्माइल, जकरिया, यहया, यूनुस, दाऊद, अयूब, लूत, सुलेमान, स्वालह, शुएब, ईशा, मूसा, इलयास, हार, यूसआ, जिलकिल्प तथा मुहम्मद।

**चौदह विद्यायें—**

> पुराण न्याय मीमांसा धर्मशास्त्राङ्ग मिश्रिता ।
> वेदास्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ।।

**अर्थ**—पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, छः वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, ज्योतिष, व्याकरण, निरुक्त, छन्द) तथा चारो वेद—ये चौदह विद्यायें हैं ।

चौदह विद्याओं का दूसरा प्रकार—

> ब्रह्मज्ञान रसायनं च कविता वेदस्तथा ज्योतिषं ।
> व्याकरणं धनुर्धरं जलतरं सङ्गीतकं वैद्यकम् ।।
> अश्वारोहण कोकशास्त्र निपुणं, नाट्यं तथा चातुरी ।
> विद्या नाम चतुर्दश प्रतिदिनं शेषाः कलाः कीर्तितः ।।

ब्रह्मज्ञान, रसायन, काव्य, वेद, ज्योतिष, व्याकरण, धनुर्विद्या, जलतरण, संगीत, वैद्यक, अश्वारोहण, कोकशास्त्र में प्रवीणता, नाटक-चाटक तथा चातुरी ये चौदह विद्यायें हैं ।

**पेटहि काहु न वेद पढ़ाया । सुनति कराय तुरक नहिं आया ।।**

**शब्दार्थ**—पेटहि–उदर । काहु–कोई । वेद–शास्त्रज्ञान । पढ़ाया–पढ़ाया गया । सुनति–शिश्नोच्छेदन या मुहम्मदीय जाति संस्कार । कराय–करके । तुरक–मुसलमान । आया–उत्पन्न हुआ ।

**भावार्थः**—तात्पर्य यह कि संसार की व्यवस्था चलाने के लिए बड़े-बड़े ऋषि मुनियों को प्रकट किया, जो गुरु के रूप में संसार के जीवों को सदुपदेश देकर सुमार्ग पर ला सके । क्योंकि कोई भी मनुष्य गर्भ से ही वेद शास्त्रों का अध्ययन करके नहीं आया, और नहीं दूसरे धर्मों में ऐसी बात देखी जाती है कि उसके यहाँ माता के उदर से सुनति होकर आती हो । तात्पर्य यह कि लोक के जितने भी ज्ञान हैं वह मनुष्यों के संसर्ग से होते हैं, सारे प्राणियों का गुरु मनुष्य है ।

उक्त चौपाई में छानबे पाखण्ड का खण्डन भी दीखता है, जिसमें वर्णाश्रम की व्यवस्था भी निर्मूल लगती है। कोई भी मनुष्य संसार में आने पर ही उत्तम मध्यम बन सकता है।

**नारी मोचित गरभ प्रसूती। स्वांग धरे बहुतै करतूती ॥**
**तहिया हम तुम एकै लोहू। एकै प्रान वियापै मोहूँ ॥**

**शब्दार्थ**—नारी–स्त्री। मोचित–छुटकारा। गर्भ–प्रजनन स्थान। प्रसूती–बाहर किया। स्वांग–भेष। धरे–धारण। बहुतै–बहुत। करतूती–कर्म। तहिया–उस समय। हम तुम–मैं और तुम। (हिन्दू, मुसलमान) लोहू–रक्त। प्रान–जीव। वियापै–व्याप्त। मोहू–हमारे और तुम्हारे में।

**भावार्थ**—उपर्युक्त पक्तियों में कहा जा चुका है कि माता के गर्भ से कोई ज्ञानी या मूर्ख बनकर नहीं आता है। जब माता के गर्भ से बाहर आता है उससे छुटकारा पाने के पश्चात ही मनुष्य नाना प्रकार के भेष धारण करता है। कोई ब्राह्मण, कोई क्षत्रिय, कोई वैश्य, कोई शूद्र का भेष धारण कर, उक्त वर्णाश्रम के अनुसार अनेक प्रकार के कर्म करने को अग्रसर हो जाता है, और अपने को बहुत श्रेष्ठ मानने लगता है तथा उक्त वर्णाश्रम के अभिमान में दूसरे मनुष्यों को अपने से नीचा देखता है। कबीर साहब कहते हैं कि गर्भस्थ शिशु सब एक होते हैं। क्योंकि सबमें एक ही प्राण अर्थात् एक ही जीव चैतन्य आत्मा व्याप्त है। एक चेतन होने से न कोई नीचा कहा जा सकता है और न कोई ऊँचा कहा जा सकता है। हम ऊँच हैं, तुम नीच हो यह अभिमान मनुष्यों के लिए कर्त्तव्य नहीं है। इसलिए उपर्युक्त बातों पर विचार कर सभी मनुष्यों में सम, भावना रखनी चाहिए।

**एकै जनी जना संसारा। कौन ज्ञान ते भयऊ निनारा ॥**
**भव बालक भग द्वारे आया। भग भोगी के पुरुख कहाया ॥**

**शब्दार्थ**—जनी–स्त्री। जना–उत्पन्न किया। कौन–किस। ज्ञान–बुद्धि से। भयऊ–हुए। निनारा–पृथक। भव–हुआ व संसार। बालक–पुत्र।

भग–प्रसव द्वार। आया–प्रकट हुआ। भोगी के–स्त्री के। पुरुख–पुरुष, पति। कहाया–कहलाया।

**भावार्थ**—सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि एक ही स्त्री ने सारे संसार को जन्म दिया है। भला बताओ तुम किस ज्ञान से पृथक हुए हो। तुम सभी माता के योनि स्थान से ही संसार में प्रकट हुए हो और पुनः उससे सम्वन्ध करके उसका पुरुष कहाते हो। यह समझ में नहीं आ रहा है कि जो तुम्हें ऊँच-नीच का ज्ञान हुआ है वह किस हेतु से हुआ है, क्योंकि सभी बातें एक सी हैं। किसी के शरीर में किसी वर्णाश्रम के चिन्ह नहीं है। मूल स्वरूप में सारे मनुष्य एक हैं। क्योंकि संसार को उत्पन्न करने वाली एक ही प्रकृति माया है। इसलिए प्रकृति-माया जन्य प्राणियों में यह नहीं देखा गया है कि दुख-सुख का ज्ञान या भले बुरे के ज्ञान से कोई मनुष्य भिन्न है। अर्थात् संसार के सभी गुणों से सभी अवगत हैं। इसलिए मनुष्यों में भेद मानना अज्ञान मूलक है। संसारी जीव जब एक ही द्वार से उत्पन्न हुए हैं, और उत्पन्न होने पर ही किसी स्त्री से सम्वन्ध करके पति पत्नी कहलाते हैं। यह सारा ज्ञान व्यवहार जगत् में ही होता है इसलिए संसार के वर्णाश्रम को सत्य नहीं मानना चाहिए। यह सब मायिक प्रपंच से उत्पन्न है।

**अविगति की गति काहु न जानी। एक जीभ कित कहौं बखानी॥**
**जो मुख होय जीभ दस लाखा। तो कोई आय महन्तो भाखा॥**

**शब्दार्थ**—अविगति–गति से परे। गति–भेद व चाल। काहु–कोई। जीभ–जिह्वा। कित–कहाँ। कहौं–कैसे। बखानी–वर्णन। महन्तो–महा-पुरुष, महान। भाखा–कहा।

**भावार्थ**—माया में लिपटा हुआ संसारी जीव उस परम सत्ता को जो मन बुद्धि से परे है, उस असीमित सत्ता को जिसका वारापार नहीं है उसके भेद को कोई भी जानने में असमर्थ रहा है। जिसने इस विचित्र संसार को रचा है और अनेक खण्ड-ब्रह्माडों की रचना किया है। नाना प्रकार के जीव-जन्तुओं को प्रकट किया। परन्तु कैसे प्रकट किया? इस भेद

को कोई जान नहीं पाया और न ही जान सकता है। भला उसके अनन्त गुणों को अनन्त सामर्थ्य को इस एक जिह्वा से कौन वर्णन कर सकता है। वह प्रभु तो महान है, उसकी महानता व महिमा को वही महापुरुष कह सकता है, जिसके मुख में दश लाख जिह्वायें हों।

साखी

**कहै कबीर पुकारि के, इ लेऊ व्यवहार।**
**राम नाम जाने बिना, भव बूड़ि मुवा संसार ॥**

**शब्दार्थ**—पुकारि के–जोरों से चिल्लाकर। इ–यह। लेऊ–नीचा, विभत्स, भ्रष्ट, लय होने वाला। व्यवहार–लोक व्यवहार। राम–व्यापक तत्व। भव–संसार (जीव)। मुवा–मर गया। संसार–जो सरकता जाय, चलायमान।

**भावार्थ**—सद्गुरु कबीर जोरों से उद्घोष करके कहते हैं कि इस संसार का सारा व्यवहार स्वार्थ मूलक है। जिसमें अज्ञ जीव लगे हैं। क्योंकि स्त्री, पुरुष, धन, दौलत व संसार की सारी सुख की मान्यतायें क्षणिक हैं। इसमें महान क्लेश दीखता है इसलिए यह नीचा है। इसके बिना त्याग के सुख सम्भव नहीं है। जो सब सुखों का आधार भूत सर्वात्मा राम है। उसकी प्राप्ति के बिना अर्थात् उसके भजन के बिना सारे मनुष्य दुखी रहते हैं और बार-बार इस संसार समुद्र में जन्मते-मरते हैं। दुख से छुटकारा के लिए और संसार से तरने के लिए केवल राम का नाम ही है जो तुम्हें ऊबार सकता है, उसी का भजन चिन्तन सारे मनुष्यों को करना चाहिए। क्योंकि यह संसार लय अर्थात् प्रलय होने वाला है ऊपर जो कथन किया गया है वह विनाशशील है।

**अन्तर्कथाएँ :**

ब्रह्मा—सृष्टि करने वाले देवता। मनुस्मृति के अनुसार स्वयंम्भू भगवान् ने जल की सृष्टि करके उसमें जो बीज फेंका उसी से ज्योतिर्मय अण्ड उत्पन्न हुआ। जिसके भीतर से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। भागवत आदि

पुराणों के अनुसार भगवान् ने योगनिद्रा में पड़ कर जब शयन किया तब उनकी नाभि से एक कमल निकला जिससे ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई।

विष्णु—हिन्दुओं के प्रमुख तीन देवताओं में से एक। इनके ऊपर सृष्टि की रक्षा का भार है। प्रजापति कश्यप के औरस और अदिति के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई है। यह सृष्टि के कल्याण के लिए प्रत्येक युग में उत्पन्न होते हैं।

महेश—प्रमुख तीन देवताओं में से एक। इनपर सृष्टि के संहार का भार है। इनके सिर पर गंगा, मस्तक पर चन्द्रमा तथा तीसरा नेत्र, गले में साँप और नरमुण्ड की माला, शरीर में भस्म, परिधान व्याघ्रचर्म तथा साथ में पार्वती हैं। इनका निवास स्थान कैलाश है।

## रमैनी २

**जीव रूप यिक अन्तर वासा। अन्तर जोति कीन्ह परगासा॥**
**इच्छा रूप नारि अवतरी। तासु नाम गाइत्री धरी॥**

**शब्दार्थ**—जीव-चैतन्यस्वरूप सर्वात्मा राम। यिक-ब्रह्म वाचक, इससे प्रणव का बोध होता है। वासा-स्थित है। अन्तर-भीतर। अन्तर जोति-प्रकाश स्वरूप। परगासा-प्रकाश करने वाला। इच्छा-कामना। तासु-उसका। गायत्री-आदि देवी। धरी-रखा गया।

**सम्बन्ध**—पहली रमैनी में सृष्टि का वैज्ञानिक रूप से वर्णन किया गया है, अब दूसरी रमैनी में पौराणिक मत के अनुसार भी उसी का समर्थन एवं स्पष्ट किया गया है।

**भावार्थ**—प्रत्येक प्राणियों के अन्दर एक अखण्ड चिदानन्द घन-स्वरूप सभी का प्रकाशक ज्ञान स्वरूप चैतन्य जागृत रूप में विद्यमान है, जो सारे प्राणियों को सत्ता स्फूर्ति देता रहता है। बिना उसके प्रकाश के कोई लोक प्रकाशित नहीं होते। यहाँ तक कि अन्तःकरण हीन सारे पदार्थों में वह सत्ता विद्यमान है, और सभी के भीतर संचालन क्रिया उसी के द्वारा होती है। उसी परम सत्ता की इच्छा से सृष्टि के आदि में

एक स्त्री उत्पन्न हुई। जिसका नाम गायत्री देवी पड़ा। जो जगद्धातृ कहलाई।

इस कथा का उल्लेख पुराणों में विस्तार पूर्वक किया गया है।[1]

**तेहि नारी के पुत्र तिन भाऊ। ब्रह्मा विष्नु महेसर नाऊँ॥**
**तब ब्रह्मा पूछ्ल महतारी। को तोर पुरुख केकरि तुम नारी॥**

**शब्दार्थ**—तेहि–गायत्री। पुत्र–लड़के। भाऊ–उत्पन्न हुए। तब–उपरान्त। पूछल–प्रश्न किया। महतारी–माता से। को–कौन। तोर–तेरा। पुरुख–पति। तुम–आप। केकरि–किसकी। नारी–पत्नी।

**भावार्थ**—उस जगतधात्री गायत्री देवी से विशेष गुण वाले तीनों पुत्र उत्पन्न हुए, जिनका नाम ब्रह्मा, विष्णु, महेश पड़ा। अतएव माता को अकेली देखकर रजोगुण से युक्त ब्रह्मा ने प्रश्न किया कि हे मातेश्वरी! आपका पति कौन है, जिसके द्वारा हम तीनों को आपने जन्म दिया? पुत्र के प्रश्न को सुनकर अगली पंक्ति में माता गायत्री दार्शनिक विवेचन के साथ उत्तर दे रही हैं।

**तुम हम हम तुम और न कोई। तुमहिं से पुरुख हमहिं तोरि जोई॥**

**शब्दार्थ**—तुम हम–तुम और मैं। और–दूसरा। न–नहीं। तुमहिं–पुरुष। हमहिं–मैं। तोरि–तेरी। जोई–पत्नी। तुम–चैतन्य। मैं–माया, अष्टधा प्रकृति–भूमि, जल, पवन, अग्नि, अहंकार आदि।

**भावार्थ**—गायत्री का उत्तर—पुत्रों के उक्त प्रश्न के उत्तर में गायत्री देवी ने कहा कि तुम चैतन्य और हम माया दो ही हैं। हमारे तुम्हारे से भिन्न कोई पदार्थ नहीं है। अर्थात् मूल स्वरूप में जड़ और चेतन दो ही तत्व हैं। तुम चेतन से ही सारी सृष्टि का हमारे संयोग से विस्तार हुआ है। इसलिए मैं माया तुम्हारी स्त्री हूँ क्योंकि बिना चैतन और प्रकृति के संयोग से सृष्टि का उद्भव होना सम्भव नहीं है। जब हमारे में तुम्हारा प्रकाश पड़ता है तो मेरे में स्पंदन होता है। उस स्पन्दन के बाद मैं गर्भ

---

१. ब्रह्म पुराण आदि में।

वाली होती हूँ, उपरान्त सारे विश्व को उद्भव करती हूँ। तुम्हारी सहायता से ही मैं जगत का पालन एवं सर्जन तथा विनाश करती हूँ। तुम परा शक्ति हो मैं अपरा शक्ति हूँ। हम श्री, कीर्ति, मेधा, धृति, क्षमा सभी हूँ। तुम अपने तेज से क्रियाशील बनाते हो। इसलिए तुम पुरुष हो और मैं स्त्री हूँ। पिता-पुत्र, पुत्र-माता का सम्बन्ध केवल व्यवहारिक है। आध्यात्मिक में न कोई पुत्र है न कोई पिता है न कोई माता है न कोई स्त्री है। सबमें एक देश काल से परे प्रत्येगात्मा चैतन्य ही है। जिसकी प्राप्ति के बिना मनुष्य दुःख के अथाह समुद्र में गोता लगाते रहता है।

साखी

**बाप पूत की एकै नारी, एकै माय बियाय।**
**ऐसा पूत सपूत न देखा, बापहिं चीन्है धाय ॥**

**शब्दार्थ**--बाप–समसत्ता चैतन्य। पूत–जीव। एकै–एकहि। नारी–पत्नी। ऐसा–इस प्रकार का। पूत–लड़का। सपूत–सुबुद्धि वाला। न–नहीं। देखा–देखने में आया। बापहि–समसत्ता परम ब्रह्म। चीन्है–प्राप्त। धाय–दौड़कर।

**भावार्थ**—सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि समसत्ता परमब्रह्म और अविद्या युक्त जीव को अलग करने वाली एक ही प्रकृति माया है। जो दोनों को दो रूपों में विभाजित करती है। वही चेतन माया से परे होने के कारण ब्रह्म कहलाता है। वही चेतन माया की उपाधि से विभूषित होने के कारण ईश्वर कहलाता है। वही चेतन अविद्या से ग्रसित होने के कारण जीव कहलाता है। परन्तु मूलतः चेतन एक है यह विभाजन रेखा अनादि काल से चली आ रही है। सृष्टि के प्रथम से ही जीवों का अस्तित्व अलग रहा है। क्योंकि यदि अलग न रहा होता तो पुनः अलग होने का प्रश्न हो नहीं उठता। कबीर साहब की दृष्टि में यह विभाजन वास्तविक रूप में अनादि काल से चला आ रहा है। परन्तु आश्चर्य यह है कि कोई सुबुद्धि वाला ऐसा योग्य मनुष्य नहीं दिखाई दे रहा है कि

जो समसत्ता को शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त कर ले, जो अपना वास्तविक स्वरूप है। क्योंकि मानव शरीर पुनः कब मिलेगा, कोई निश्चित नहीं है। यदि इस शरीर में पिता को नहीं पहचान पायेगा तो पुनः तम स्वरूप अनेक योनियों में भ्रमण करता रहेगा। कारण कि माया के फन्द में पड़कर अपने मूल स्थान को त्याग कर मायामय शरीर को ही अपना स्वरूप मान लिया है। तभी तो इस परमतत्व को जानने में असमर्थ बना हुआ है। मैं तो यही कहूँगा कि हे मनुष्यों ! उस परमतत्व की ओर अवश्य अग्रसर हो।

## रमैनी ३

**प्रथम अरम्भ कौन को भाऊ। दूसर प्रगट कीन्ह सो ठाऊ ॥**
**प्रगटे ब्रह्मा विस्नु सिव सकती। प्रथमहिं भगति कीन्ह जीउ उक्ति ॥**
**प्रगटे पवन पानी औ छाया। बहुविस्तार कै प्रगटी माया ॥**

**शब्दार्थ**—प्रथम–सबसे पहले। आरम्भ–श्री गणेश, शुरुआत व जन्म। कौन–किसका। भाऊ–हुआ। दूसर–द्वितीय। प्रगट–स्थान। कीन्ह–किया। सो–वह। ठाऊ–ठौर, स्थान। सकती–शक्ति व गायत्री। प्रथमहिं–पहले। जीउ–जीव। उक्ति–युक्ति। छाया–अग्नि व तेज। माया–अनेक प्राकृतिक सामग्री।

**सम्बन्ध**—दूसरी रमैनी में प्रकृति एवं पुरुष दो ही तत्व हैं जिसको गायत्री देवी ने तीनों पुत्रों को बताया और यह जोर देकर कहा कि उस परम सत्ता को मनुष्यों को प्राप्त करना चाहिये। अब नीचली रमैनी में जिज्ञासा होती है कि सबसे प्रथम किस तत्व की उत्पत्ति हुई है।

**भावार्थ**—सद्गुरु कबीर समाधिस्थ होकर परमसत्ता से प्रश्न करते हैं कि सर्व प्रथम कौन उत्पन्न हुआ और उस उत्पन्न होने वाले का कौन दूसरा स्थान है, जहाँ से वह प्रकट हुआ, अर्थात् जो प्रगट हुआ उसका अधिष्ठान कौन है। उत्तर यह हुआ कि सबसे पहले शक्ति उत्पन्न हुई,

फिर उसके बाद ब्रह्मा, विष्णु, महेश उत्पन्न हुए, जिन्होंने सर्वप्रथम उस परम सत्ता की जीवभाव से उपासना की युक्ति विचारी तथा सृष्टि के विस्तार के लिए घोर तपस्या किये। यद्यपि शास्त्र के अनुसार सबसे पहले आकाश, वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी उत्पन्न हुए उसके बाद अनेक प्रकार से सृष्टि का विस्तार हुआ। परन्तु उक्त चौपाई में पहले ब्रह्मा विष्णु शक्ति की उत्पत्ति बतलाई गयी है। सम्भव है कि चौपाई ऊपर की नीचे हो गयी हो, क्योंकि क्रम व्यतिक्रम है। तो भी अर्थ में कोई फर्क नहीं है। पवन पानी और अग्नि की उत्पत्ति बतलाई गयी है ब्रह्माण्ड में बहुत बड़ा विस्तार हुआ और माया की महिमा चतुर्दिक फैल गयी।

**प्रगटे अण्ड पिण्ड ब्रह्मण्डा। पृथवीप्रगट कीन्ह नौ खण्डा ॥**
**प्रगटे सिद्ध साधक सन्यासी। ई सभ लागि रहे अविनासी ॥**
**प्रगटे सुर नर मुनि सभ झारी। ताहि के खोज परे सब हारी ॥**

**शब्दार्थ**—अण्ड–हिरण्यगर्भ व अण्डज। पिण्ड–देहज गर्भ, पिण्डज गर्भधारण का स्थान। ब्रह्मण्डा–तमाम लोक लोकान्तर। पृथ्वी–पृथ्वी। प्रगट–उत्पन्न, नौ खण्डा–नौ खण्ड ( भारत, ईलावृत, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य, कुश )। सिद्ध–जो साधन करके सिद्ध हो गया हो। साधक–जो साधन करता हो। सन्यासी–जो सब कुछ त्याग कर साधु बन गया हो। ई–ए। सभ–सभी। लागि–लागे। अविनासी-जिसका नाश न हो। झारी–सम्पूर्ण। ताहि–उसी के। खोज–अन्वेषण में। परे–लगे रहे। सब--सभी लोग। हारी–परेशान, विकल।

**भावार्थ**—उसी प्रकार से अण्डज पिण्डज एवं अनेक ब्रह्माण्डों को रचना हिरण्यगर्भ के द्वारा की गयी तथा भारत ईलावृत आदि नव खण्डों में यह पृथ्वी भी उत्पन्न की गयी उसके बाद तमाम साधक, सिद्ध एवं सन्यासी भी इस संसार में उत्पन्न हुए। जो परमतत्व शाश्वत की प्राप्ति के लिए लगे रहे। पुनः देवता, मनुष्य, मननशील मुनि सब के सब प्रगट हुए अतः उपर्युक्त सभी लोग परमतत्व अविनाशी की खोज में पड़ गये कि वह कौन पुरुष है जो सारे विश्व का सर्जन किया है। वह कहाँ रहता

है इस प्रकार की चिन्ता में ऋषि लोग एवं साधु सन्त सन्यासी लगे रहे परन्तु उस असीम सत्य की सीमा न जानकर सभी थक गये।

साखी

**जीउ सीउ सब प्रगटे, वै ठाकुर सब दास।**
**कबीर और जाने नहि, एक राम नाम की आस ॥**

**शब्दार्थ**—जीउ-अविद्या ग्रसित चेतन। सीउ-कार्य ब्रह्म। वै-वे, वह। ठाकुर-स्वामी। दास-भक्त। कबीर-सद्गुरु कबीर। राम नाम-माया रहित, पूर्ण ब्रह्म।

**भावार्थ**—कबीर साहब कहते हैं कि ये जीव एवं कार्यब्रह्म ईश्वर सब प्रगट हुए और ईश्वर स्वामी हुआ। सब उसके दास हुए मुझे इन उपर्युक्त बखेड़ों में पड़ने की जरूरत नहीं है क्योंकि यह सारी सृष्टि प्रपंचकृत है इसलिए मैं इसको सार वस्तु नहीं मानता। मैं तो केवल एक राम नाम की आशा करता हूँ जो इन सारे विस्तारों के ऊपर है।

**विशेषार्थ**—अब विचारणीय विषय यह है कि उक्त तीनों रमैनियों में लगभग सृष्टि का क्रम वही है जो एक दूसरे में है। तब शंका उठती है कि एक ही बात तीन रमैनियों में क्यों कही गयी है। क्योंकि पहली रमैनी में ब्रह्मा, विष्णु प्रगट हुए दूसरी रमैनी में भी ब्रह्मा, विष्णु प्रगट हुए। तीसरी रमैनी में भी ब्रह्मा, विष्णु प्रगट हुए। ये सभी तथ्य लगभग एक ही रमैनी में आ गये तब यह पुनरुक्ति दोष क्यों लाया गया ? इसका तात्पर्य यह है कि सृष्टि को सद्गुरु कबीर साहब ने मिथ्या कहा है और उसके एक रूप नहीं होते। मिथ्या के अनेक रूप होते हैं ? इसी प्रकार से यह सृष्टि एक ही प्रकार से प्रत्येक बार नहीं उत्पन्न हुई है। सदैव व्यतिक्रम रहा है। कारण कि यह असत्य है।

वेदों एवं शास्त्रों में भी सृष्टि के उत्पन्न होने का एक ही प्रकार नहीं है। कभी हिरण्यगर्भ से उत्पन्न होती है कभी सूर्य से, कभी ब्रह्मा से उत्पन्न होती है, कभी विष्णु से उत्पन्न होती है। अर्थ यह कि कभी भी इस सृष्टि में एकरूपता नहीं रही है। इसलिए भी यह असत्य है, सद्गुरु इसकी असत्यता प्रदर्शित करने के लिए एक ही बात को कई एक

बार कहा है। सृष्टि विषयक वर्णन का अन्त करते हुए वे कहते हैं कि मैं इन प्रपंचों को सत्य नहीं मानता, क्योंकि ये चिर स्थायी नहीं हैं। मैं तो इसी का विश्वास करता हूँ जो निरन्तर इन सभी प्रपंचों के भीतर बाहर में निवास करता है जिसकी प्राप्ति के बिना संसार के सारे भोग पदार्थ तुच्छ हैं। इसलिए हे मनुष्यों ! इस विश्व की विचित्रता में मत भूलो जो सबका स्वामी है उसी की ओर चलो। सत्कर्म के साथ निरन्तर उसका सुमिरन भजन करो।

# रमैनी ४

## कर्ता एवं कर्म प्रकरण

**प्रथम चरन गुरु कीन्ह विचारा। कर्ता गावै सिरजन हारा ॥**
**करमै कै कै जग बौराया। सकति भगति कै बाधिनि माया ॥**
**अद्बुद रूप जाति कै बानी। उपजी प्रीति रमैनी ठानी ॥**
**गुनी अनगुनी अर्थ नहिं आया। बहुतक जनै चीन्ह नहिं पाया ॥**
**जो चीन्हें ताको निर्मल अंगा। अन चीन्हे नर भये पतंगा ॥**

**शब्दार्थ**—प्रथम–सबसे पहले। गुरु–सद्गुरु। चरन–सतयुग में। विचार–मंथन किया। करता–सबको उत्पन्न करने वाला। गावै–कहा। सिरजन हारा–पालन करने वाला। करमै–कर्मों को। कै कै–कर कर के। जग–संसार के लोग। बौराया–पगलाया। सकति–शक्ति की। भक्ति–भक्ति। कै–की। बाधिनि–बंधान, विधान किये। माया–माया जन्य, महिमा। अद्बुद–अद्भुत। रूप–प्रकार। कै–को। बानी–ब्रह्म विषयक वक्तव्य। उपजी–उत्पन्न। प्रीति–निष्ठा। रमैनी–कथा, गाथा, रमण करने वाली बात। ठानी–अनुष्ठान, आरम्भ किया, करी। गुनी–गुण वाला, बुद्धिमान सगुणोपासक। अनगुनी–निर्बुद्धि, अपठित, निर्गुणोपासक। अर्थ नहीं आया–समझ में नहीं आ सका। बहुतक–बहुत से। जना–लोग। चीन्ह–समझ। अंगा–शरीर, अन्तःकरण। पतंगा–हलका, तुच्छ पतंग।

**सम्बन्ध**—पूर्व की तीनों रमैनियों में तीन प्रकार से सृष्टि का वर्णन करते हुये और उनके मिथ्यात्व को दर्शाया गया है क्योंकि कालान्तर में यह

भी न होने वाला है इसलिये इसको सार नहीं समझना चाहिये । संसार के व्यवहार में अनासक्त भाव से रहते हुये प्रभु चिन्तन व आत्म-ज्ञान की प्राप्ति करना अभीष्ट है । अब प्रश्न उठता है कि प्रथमारंभ में गुरु ने क्या कहा ?

**भावार्थ**—सबसे पहले सतगुरु ने अत्यधिक विचार मन्थन किया कि मनुष्यों को सुमार्ग पर ले आने का कौन सा मार्ग है । समाधिस्थ सद्गुरु ने पाया कि सभी विघ्न-बाधाओं को दूर करने वाला वह जगदीश्वर है जिसने इस जगत का निर्माण किया है । उस कर्ता से भिन्न कोई दूसरा इसका सृजनहार नहीं है इसलिए मनुष्यों का कर्तव्य है कि उसी का सुमिरन भजन करें, परन्तु सद्गुरु के बताये हुए मार्ग व उपदेश को संसारी जीवों ने नहीं माना । संसारी लोग नाना प्रकार के कर्म-क्रिया-कलापों में अपने जीवन को खो दिया । तमाम तरह के उन यज्ञों को व षटकर्मों को करने लगे जो नरमेध, गोमेध, अजमेध आदि नामों से प्रसिद्ध है और निर्जीव प्रतिमाओं के सामने तमाम निर्दोष प्राणियों की बलि देने लगे । यहाँ तक कि प्रपंचियों ने मनुष्यों को शक्ति की भक्ति का विधान बनाकर उसी में फँसा दिया । कर्मकाण्ड के अनेक धर्मग्रन्थ बनाये गये । जिनकी वकालत बड़े-बड़े धुरन्धर पण्डित करने लगे, यहाँ तक कि जैमिनी जैसे ऋषि ने भी उक्त कर्मकाण्ड का भरपूर समर्थन किया । अपने विवेच्य दर्शन में उन्होंने जो कर्मकाण्ड का बखेड़ा खड़ा किया, वेद में अमुक का अधिकार है अमुक का अधिकार नहीं है यह दिखाकर समाज को तितर-वितर कर दिया । सद्गुरु कबीर कहते हैं कि मैं तो इस अद्भुत परमसत्ता की बात करता हूँ जिसकी उपलब्धि मुझे हुई है । उसकी प्राप्ति की जो आनन्दानुभूति हुई है उसी की प्राप्ति में मैं रमैनी का अनुष्ठान किया हूँ । परन्तु मेरी इस बात को पठित और अपठित समझ नहीं पाये । बहुत लोग उसके समझने से वंचित रह गये । जो मनुष्य मेरी बात का अर्थ समझ गया है जो प्रभु के चिन्तन-मनन में लग गया है उसका अन्तःकरण निर्मल हो गया है । जो नहीं चीन्ह पाया वह हल्का का हल्का ही रह गया उसमें रंचमात्र भी गम्भीरता नहीं आयी, वह पतंगवत आकाश में उड़ता रहा ।

साखी

**चीन्ह चीन्ह का गावहु बौरे, बानी परी न चीन्ह।**
**आदि अन्त उत्पत्ति परलय, आपै कहि कहि दीन्ह ॥**

**शब्दार्थ**--चीन्ह चीन्ह–समझ समझ कर। गावहु–गाइये। बौरे–बावरे, भटके हुए लोगों। वानी–वक्तव्य। परी–जानकारी। न–नहीं। चीन्ह–जानने में। आदि–प्रारम्भ। अन्त–समापन। उत्पति–सृष्टि काल। परलय–अवसान काल। आपै–आपहिं। कहि–कह। दीन्ह–दिया।

**भावार्थ**—साहब कहते हैं हे भटके लोग व हे बौरे लोग जरा समझ समझ कर गावो। क्योंकि मेरे आशय को तूँ समझ नहीं पाया इसलिए प्रथम सद्गुरु की बात समझो, तब उसका चिन्तन-मनन करो, क्योंकि जिसको मैं कहता हूँ वह तत्व सनातन है। वह आदि में और अन्त में उत्पत्ति और प्रलय में एक सा रहता है वह सनातन पुरुष सन्तों के हृदय में प्रकाश करके अपना संकेत स्वयं देता है। जब तक तुम कर्मकाण्ड रूपी जाल को नहीं काटोगे, सकाम कर्मों में लगे रहोगे, तब तक उस परम तत्व स्वात्मा प्रभु की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। इसलिए तुम सदा सब बखेड़ों को छोड़कर सत्कर्म करते हुए उसका चिन्तन मनन करो।

## रमैनी ५

**कह लौं कहौं जुगन की बाता। भूले ब्रह्म न चीन्हे बाटा ॥**
**हरिहर ब्रह्मा के मन भाई। बिबि आखर ले जुगति बनाई ॥**
**बिबि आखर का कीन्ह बंधाना। अनहद सब्द जोति परमाना ॥**
**अक्खर पढ़ि गुनि राह चलाई। सनक सनन्दन के मन भाई ॥**
**वेद कितेब कीन्ह विस्तारा। फैलि गैलि मन अगम अपारा ॥**

**शब्दार्थ**—कहलौं–कहाँ तक। जुगन–युगों की। बाता–वार्ता। भूले–भूल। ब्रह्म–ब्रह्म को। बाटा–मार्ग। मन भाई–प्रिय लगी। बिबि–दो। युक्ति–उपाय। अक्खर–अक्षर। बन्धाना–विधान। अनहद–अनाहद।

परमाना–प्रमाण। कितेब–पुस्तक व कुरान। गैलि–गया। अगम–अथाह।

**सम्बन्ध**—चौथी रमैनी में कहा गया कि सर्वप्रथम गुरु ने विचार करके कहा कि सृष्टि का कोई कर्ता अवश्य है। परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि कहाँ तक अनेक युगों की बात कहूँ क्योंकि यह जीव अनादि काल से अपने स्वामी को भूलते आ रहा है।

**भावार्थ**—पहले सद्गुरु ने कहा कि कर्मकाण्ड में फँसकर लोग उस अद्भुत स्वरूप तत्व को चीन्ह नहीं पाये। वे कहते हैं कि वर्तमान काल की बात नहीं है, मैं युगों-युगों की बात कहता हूँ उस परम तत्व की प्राप्ति का जो मार्ग है उसको लोग भूलते आये हैं। जीवों को सुमार्ग पर लाने के लिए जब-जब सृष्टि होती है, तब-तब ब्रह्मा विष्णु, महेश्वर को जो मार्ग उत्तम जँचा उसी मार्ग का जीवों को उपदेश दिया। वह मार्ग कौन था ? जो दो अक्षर का था, वह दो अक्षर राम नाम था या प्रणव था। उसकी प्राप्ति के लिए दो अक्षर अर्थात् राम नाम का ही विधान बनाया। वह राम नाम अपनी आत्मा से भिन्न नहीं है। वह आत्म स्वरूप ही है उसके जप से ब्रह्मरन्ध्र में अनाहत शब्द श्रवण होते हैं और परम ज्योति निज स्वरूप के दर्शन भी होता है। परमतत्व की प्राप्ति का यही प्रमाण है। उसी दो अक्षर को समझ-बूझकर अर्थात् पढ़ गुन कर आगे के लिए तीनों महापुरुषों ने मार्ग का प्रचलन किया। उन ब्रह्मा, विष्णु, महेश के उत्तम विचारों को सनक-सनन्दन ने भी समर्थन किया एवं अपने उद्धार के लिए हृदयंगम किया और वेद-शास्त्रों में उसी राम नाम एवं निज स्वरूप का बहुत बड़ा विस्तार किया और जब उसकी प्राप्ति हो गयी तो वह अगम, अपार, असीम ज्ञात हुआ।

**चहुँ जुग भगतन बाँधलि बाटी। समुझि न परल मोटरी फाटी॥**
**भय भय पृथवी दहु दिसि धावै। अस्थिर होय न औखधि पावै॥**
**होय भिस्त जउ चित न डोलावै। खसमहिं छोड़ दोजख को धावै॥**
**पूरब दिसा हंस गति होई। है समीप सन्धि बूझै कोई॥**
**भक्ता भक्ति कीन्ह सिंगारा। बूड़ि गैल सब माझल धारा॥**

**शब्दार्थ**—चहुँ–चारो। भगतन–भक्तों ने। बाँधलि–बन्धान किया, व विधान किया। बाटी–मार्ग। परल–जानकारी। मोटरी–गठरी, शरीर। फाटी–स्फुटित, विनष्ट। भय-भय–व्याकुल होकर। धावै–दौड़े। भिस्त–(वहिस्त) मुक्ति। खसमहिं–परमतत्व, परमात्मा। दोजख–नरक। पूरब–हृदय। हंस–सद्बुद्धि सन्त। सन्धि–रहस्य भेद। सिंगारा–श्रृंगार। गयल–गया। माझै–मध्य।

**भावार्थ**—उस परमतत्व का सन्त भक्तों के द्वारा कथन किया गया है उसकी प्राप्ति के लिए सद्‌मार्ग का बन्धन भी किया गया है परन्तु अज्ञानी मनुष्य उपर्युक्त महापुरुषों के विचार को न समझ पाने के कारण अपने जीवन को व्यर्थ में ही गवाँ दिया। शरीर रूपी मोटरी का नाश हो गया। कुछ हाथ न लगा। इसकी प्राप्ति के लिए सद्‌गुरु विहीन मनुष्य दसों दिशा में पृथ्वी का भ्रमण किया। चंचल चित्त के कारण स्थिरता न आयी और न ही अमरत्व की प्राप्ति के लिए कोई औषधि ही मिली, इसलिए बार-बार जन्मते मरते रहा। मुक्ति उसको अवश्य मिल जाती यदि चित्त को न डोलाते। क्योंकि वह खसम अर्थात् सर्वात्मा राम स्वामी को छोड़कर नरक में जाने वाले काम्य कर्मों को करने के लिए दौड़ने लगे। वह प्रभु तो अपने हृदय रूपी पूर्व दिशा में ही अवस्थित है। हृदय निवासी राम की प्राप्ति से ही जीव की गति हो सकती है क्योंकि वह बहुत समीप है। इस रहस्य और भेद को कोई विरले ही समझ सकता है वह न किसी तीर्थ में है न किसी मूर्ति में है। न किसी देवालय में है न किसी काल में है, वह सभी देश काल से परे प्रत्येक चेतनात्मतत्व प्राणियों के हृदय में एवं सभी देश काल में विराजमान है। उसकी प्राप्ति केवल सद्‌गुरु के द्वारा बताये हुए मार्ग से ही हो सकती है। अन्यथा पुरुष भगत् बन करके स्त्री भगतिन बन करके कितना भी धार्मिक श्रृंगार करे परन्तु उस हृदय निवासी राम की प्राप्ति के बिना संसार रूपी समुद्र के मध्य में अज्ञ जीव डूब गये।

साखी

**बिनु गुरु ग्यान दुंदि भई । खसम कही मिलि बात ।**
**जुग जुग सोइ कहवाइया । काहूँ न मानी बात ।।**

**शब्दार्थ**—दुन्दि–अनिश्चित अन्धकार, ऊहापोह की स्थिति । कहवाइया–कहवाया गया व कहा गया । जुग जुग–सत्ययुग त्रेता आदि ।

**भावार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि धर्म के पाखण्डी लोग गुरु विमुख मिथ्या भक्ति का अभिमान करके और नाना प्रकार के वेष धारण करके संसार सागर में डूब गये । डूबने का कारण था कि उनको सद्गुरु नहीं मिला और वंचक गुरुआं ने जो ज्ञान दिया वह अन्धकार जैसा ही रहा । यह निश्चय नहीं हो पाया कि सही है या गलत है मैं तो जुग-जुग से उस परम तत्व की बात लोगों से गिलकर कहता हूँ । पर मेरी बात कोई मानने के लिए तैयार नहीं है । लोग कहते हैं कि कबीर नई बात सुना रहे हैं । मैं फिर भी कहूँगा कि मेरे एवं सद्गुरुओं के बताए हुए उपदेश पर आचरण करो । तभी कल्याण होगा अन्यथा कोई मार्ग नहीं है ।

## रमैनी ६

### "ब्रह्म स्वरूप प्रकरण"

**बरनहु कवन रूप औ रेखा । दोसर कवन आहि जो देखा ।।**
**वो वोंकार आदि नहिं वेदा । ताकर कहहु कउन कुल भेदा ।।**
**नहिं तारागन नहिं रवि चन्दा । नहि कछु होत पिता के बिन्दा ।।**
**नहिं जल नहिं थल नहिं थिर पौना । को धरै नाम हुकुम को बरना ।।**
**नहिं कछु होत दिवस निजु राती । ताकर कहहु कवन कुल जाती ।।**

**शब्दार्थ**—बरनहु–कहुं । औ–और । रेखा–आकार । आहि–है । वो–वह । कुल–जाति । बिन्दा–वीर्य । थिर–आकाश । बरना–वर्ण ।

**सम्बन्ध**—इसके पहले परब्रह्म के भूलने की बात कही गयी अब कहा

जा रहा है कि उस अनादि पुरुष को किस रूप में वर्णन करूँ क्योंकि नाम और रूप से भिन्न है।

**भावार्थ**—बहुत से लोग कहते हैं कि वह परमतत्व किसी देश विशेष में रहता है और उसके इतनी भुजायें हैं, इतने शिर हैं। भला यह बात कितनी हास्यास्पद हैं कि मनुष्य उस परम प्रभु को भी अपने जैसा अनुमान कर लेता है। जब वह देश काल से परे हैं तब उसके स्वरूप का क्या वर्णन किया जाय। भला उसका क्या रूप रेखा कहा जा सकता है और दूसरा वह व्यक्ति कौन है जिसने उसको देखा है। मैंने जो अनुभव किया है वह इस प्रकार है कि उसके विषय में वेद भी मौन रहते हैं क्योंकि वह मात्र ओंकार नाम वाला कहा जा सकता है। जब उसको वेद नहीं जान सके तब उसको क्या जाति है क्या भेद है; कैसे तुम जान सकते हो, वह सबसे पुरातन पुरुष है। अन्य तारागण, सूर्य, चन्द्रमा सब उसके बाद के हैं जब माता-पिता के द्वारा सृष्टि भी नहीं हुई थी। जब न ही पृथ्वी हुई थी न आकाश था, पवन भी नहीं रहा और जल भी नहीं रहा जब ये सब कुछ रहे हीनहीं, उस समय भला कौन नाम रखा, किसने कहा कि उसका अमुक वर्ण है, अमुक स्वरूप वाला है। उस समय दिवस रात्रि का कुछ ज्ञान भी नहीं था। तब तुम कैसे कह सकते हो कि वह ब्राह्मण है, क्षत्रिय है, शूद्र है, वह तो इन नामधारियों के अन्तःकरण में एक-सा विराजमान है। उसकी प्राप्ति तो मनुष्य को तब होती है जब मनुष्य को इंगला पिंगला का अभाव होकर अर्थात् दिवस रात्रि का ज्ञान नहीं रह जाता है। जब सुषुम्ना प्रज्वलित होती है तभी उसको उपलब्धि सम्भव है।

साखी

**सुन्न सहज मन सुम्रते, प्रगट भई एक जोति।**
**ताहि पुरुख की हौं बलिहारी, निरालंब जो होति॥**

**शब्दार्थ**—सुन्न–सहजावस्था, निर्विकल्प समाधि, अत्यन्त एकाग्रचित, एकान्त। जोति–प्रकाश। ताहि–उसकी, बलिहारी–धन्यवाद, प्रशंसा। निरालंब–वासना रहित चित्त, अवलम्बन विहीन।

**भावार्थ**—ध्यान देने की बात है कि दिवस रात्रि का अभाव होनेपर न प्रकाश रहता है न अन्धकार रहता है। दोनों से विहीन अवस्था को शून्य कहते हैं। शून्य अवस्था तब आती है जब चित्त पूर्णरूप से शुद्ध होकर एकाकार हो जाता है। और उस अवस्था में जो ध्यान सुमिरन किया जाता है उसके प्रभाव से परमज्योति का प्रकाश होता है। वह परमज्योति कोई दूसरी वस्तु नहीं है। तुरीय स्थिति निज स्वरूप है जब मन के सारे द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं। तब वह सहज में ही स्वस्वरूप को प्राप्त कर लेता है तथा सदा के लिए लीन हो जाता है।

सद्‌गुरु कबीर साहब कहते हैं कि उस पुरुष की मैं प्रशंसा करता हूँ व धन्यवाद देता हूँ जो मन की वृत्तियों को निरालम्ब बनाकर स्वस्वरूप में स्थित हो जाता है। स्मरण रहे कि उक्त शून्य शब्द पर प्रत्येक टीका-कार ने अपना-अपना मत व्यक्त किया है। मेरी टीका का उद्देश्य थोड़े में बहुत अर्थ को देना है, बहुत विस्तार की भावना नहीं है। अर्थ बहुत हो विस्तार कम हो मेरा प्रयास यही है। इसलिए शून्य पर अधिक न लिखकर जो सहज स्वाभाविक अर्थ है, वह लिखा गया है, आगे भी मेरा प्रयत्न यही रहेगा। सद्‌गुरु के कहे अनुसार मनुष्यों को चाहिए कि इस परम शून्य की प्राप्ति के लिए चेष्टा करें।

## रमैनी ७

**तहिया होते पौन नहिं पानी। तहिया सिस्टि कउन उतपानी॥**
**तहिया होते कली नहिं फूला। तहिया होते गरभ नहिं मूला॥**
**तहिया होते बिद्या नहिं बेदा। तहिया होते सबद नहिं स्वादा॥**
**तहिया होते पिंड नहिं बासू। नहिं धर धरनी न गगन अकासू॥**
**तहिया होते गुरु नहिं चेला। गम्य अगम्य न पंथ दुहेला॥**

**शब्दार्थ**—तहिया—तब, उस दिन। उतपानी—उत्पन्न। कली—पुष्प होने के पहले की अवस्था। फूल—पुष्प। मूल—बिम्भ, गर्भस्थान। विद्या—

अपरा विद्या, वेद-शास्त्र, अनेक शिल्प कलायें। वेदा–वही वेद, ज्ञान। सबद–व्यक्त करने की शक्ति। स्वादा–रस, स्वाद। पिंड–शरीर व हिरण्य-गर्भ। वासू–निवास स्थान। धर–स्तम्भन स्थान। धरनी–पृथ्वी। गगन–अन्तरिक्ष में गमन करने की क्रिया का मार्ग। अकासू–आकाश, शून्य स्थान। गुरु–शिक्षक। चेला–उपदेश को धारण करने वाला। गम्य–प्रवेश, अन्दर जाने का मार्ग। अगम्य–जहाँ मार्ग न हो। पंथ–मार्ग। दुहेला–दुर्लभ। कठिन–दुसाध्य।

**सम्बन्ध**—ऊपर छट्ठी रमैनी में कथन किया गया कि वह तत्व नाम और रूप से परे है अब कहा जा रहा है कि वह परम पुरुष सबसे पूर्व का है उससे पूर्व का कोई तत्व नहीं है।

**भावार्थ**—जब साधक को आत्म तत्व की प्राति हो जाती है तो वह सहजावस्था में स्थित हो जाता है। सहजावस्था को ही निर्विकल्पक समाधि कहा गया है जब निर्विकल्पक समाधि लग जाती है तब उस साधक के लिए भौतिक तत्वों का अभाव हो जाता है। न वहाँ पवन की आवश्यकता होती है न वहाँ पानी की आवश्यकता होती है। जब मन से संसार की वासना उठ गयी तब उस दशा में सृष्टि का उत्पादन कौन कर सकता है। सृष्टि के अभाव में न तो गर्भ रूपी कली ही निकलती है और न ही शरीररूपी पुष्प ही खिलते हैं। जो गर्भ के मूल पंचप्राण हैं उनसे भी वृत्ति पराङ्मुख हो जाती है। अर्थात् गर्भ का मूल कामदेव भी समूल नष्ट हो जाता है। जब वृत्ति पराङ्मुख हो जाती है, तब भला विद्या और वेद का ख्याल कौन करता है, विद्या वेद तो गुणों के धर्म हैं। गुणों के नष्ट होने पर जगत के सारे प्रपंच भी नष्ट हो जाते हैं। तब वक्तव्य भी समाप्त हो जाता है वह किसी से दो शब्द भी नहीं बोल सकता। पंच-ज्ञान इन्द्रिय के कार्य भी बन्द हो जाते हैं। आत्मज्ञ पुरुष के लिए स्वादास्वाद भी कैसे रह सकता है? और पिंड रूपी शरीर में रहते हुए भी वह अनासक्त रूप से निवास करता है। क्योंकि स्तम्भन या ठहरने का स्थान उसका पृथ्वी नहीं रहती है। इस धरातल से ऊपर उठ चुका

होता है। मन के गमन करने की क्रिया भी समाप्त हो चुकी होती है। जो आकाश विल्कुल ही शब्द का स्थान है वह भी उसके लिए नहीं रह जाता है। उस दशा में न उसका कोई गुरु है न कोई चेला। क्योंकि सारे प्राणियों में अभेद होने पर एक आत्मतत्व का ही दर्शन करता है और गम्य-अगम्य, सुगम-असुगम मार्ग भी समाप्त हो जाते हैं। उसको न कहीं गमन करने की जरूरत है न कहीं अगम है। जो संसारी मनुष्यों के लिए दुर्लभ पन्थ था वह उसके लिए दुर्लभ नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब मनुष्य परागति को प्राप्त हो जाता है तो वह स्वयं प्रकाशस्वरूप हो जाता है। उसके लिए किसी तत्व एवं प्रकाशक की जरूरत नहीं होती। वह सदा-सदा के लिए जागतिक प्रपंच से अपना सम्बन्ध तोड़ लेता है।

साखी

**अविगति की गति क्या कहौं, जाके गाँव न ठाँव।**
**गुनहि बिहूना पेखना, का कहिं लीजै नाँव ॥**

**शब्दार्थ**—अविगति–गति विहीन, निरालम्ब। गति–भेद। बिहूना–रहित। पेखना–देखिये।

**भावार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि उस परमतत्त्व की गति क्या कहूँ क्योंकि न उसका कहीं ग्राम है और न उस ग्राम में रहने का कहीं ठाँव है। वह सतगुण, रजगुण और तमगुण से रहित है। उसका नाम भी नहीं है जिसको लेकर पुकारा जाय अर्थात् वह परमतत्व के जितने भी नाम रूप कथन किये गये हैं वे सब कल्पित हैं। कल्पना केवल साधकों की साधना के लिए ही की गयी है क्योंकि सर्वप्रथम साधक के मन को रोकने के लिए कोई अवलम्बन चाहिए। सन्त महात्माओं या ऋषि मुनियों से प्रणव अथवा ओंकार जो उसका नामकरण है वह केवल साधना के लिए ही है क्योंकि जब वह वाणी से परे तत्त्व है तो उसका क्या नाम हो सकता है, रूप क्या हो सकता है? दूसरी बात सर्वव्यापक होने के

कारण कोई देश, नगर व ठहरने का स्थान भी नहीं कहा जा सकता है। वह सभी जगह पहले से ही वर्त्तमान रहता है। गाँव, नाम और ठाँव किसी एक देशी वस्तु पुरुष का ही होता है। वह परम पुरुष तो अविगति है। उसकी गति किसी को मालूम नहीं है। वह सबकी गति जानता है। इसकी पुष्टि के लिए सद्गुरु कबीर अगली रमैनी में प्रमाण स्वरूप अपने से पूर्व ऋषियों का उदाहरण देने जा रहे हैं। कुछ टीकाकारों ने उक्त साखी का अर्थ यह भी किया है कि जब साधक सहजावस्था को प्राप्त कर लेता है तब उसका गाँव, ठाँव, नाम, गति सब लुप्त हो जाते हैं पर ज्यादा समीचीन जो किया गया है वही है। टीका कबीर साहब ने किसी को पढ़ाया नहीं है जिसकी जैसी बुद्धि होती है या जिसका जो सिद्धांत होता है उसी के अनुसार अर्थ करते हैं। ध्यान देने की बात है कि सद्गुरु कबीर ने किसी सिद्धांत की अवधारणा नहीं किया था। उनके सामने जो-जो तथ्य आते गये उन-उन तथ्यों को अपनी वाणियों में उल्लेख करते गये क्योंकि एक ही रमैनी में एक पद में अनेक तरह की बातें मिलती हैं। यदि अर्थ की संगति बैठाना है तो सही अर्थ की उपलब्धि होना सम्भव नहीं है जिन पंक्तियों के जो अर्थ हैं वह अलग रहे हैं। मेरा प्रयत्न यही है कि वही अर्थ किये जाँय। आज का पठित समाज बहुत आगे बढ़ चुका है उसको भुलावा देना सरल नहीं है।

## रमैनी ८

### महावाक्य उपदेश

**तत्तुमसी इनकै उपदेसा। ई उषनिषद् कहहिं संदेसा॥**
**ई निहचै इनके बड़ भारी। वाहि कै बरनन करैं अधिकारी॥**
**परम तत्तु का निजु परमाना। सनकादिक नारद सुक माना॥**
**जागबलिक औ जनक संवादा। दत्तात्रेय वोहि रस स्वादा॥**

**शब्दार्थ**—तत्तुमसी–वह मैं ही हूँ। ई–यह। उपनिषद्–समीप।

संदेसा–संदेश। इनके–इनका। निश्चय–अटल, निश्चित। बड़–श्रेष्ठ। भारी–ओजस्वी, महिमापूर्ण। वाहि–उसी का। बरनन–कथन। अधिकारी–ज्ञानी पुरुष। परम तत्तु–श्रेष्ठ तत्व। निजु–अपनी। परमाना–प्रमाण। सनकादिक–ब्रह्मा के चार मानस पुत्र। नारद–ब्रह्मा के पुत्र। माना–समर्थन किया, जागबलिक–याज्ञवल्क्य। जनक–मिथिला के राजा। संवादा–वार्तालाप। दत्तात्रेय–अत्रि ऋषि के लड़के। वोहि–वहीं। स्वादा–स्वादन किया।

**भावार्थ**—ऊपर जो सद्‌गुरु के द्वारा बात कही गयी है उस पर किसी को यह संदेह न हो कि कबीर कोई नई बात कर रहे हैं, वह केवल मनगढ़न्त नहीं। वे कहते हैं कि मेरे अतिरिक्त पूर्व के ऋषि कह चुके हैं। वह जो परमतत्व है। वह तुम्हीं हो ऐसा ऋषियों ने उपदेश दिया है। अभी ग्रन्थ रूप में उपनिषद् उक्त संदेश के साक्षी हैं। यही नहीं आत्मा-परमात्मा की एकतावाला सिद्धांत ही, ऋषियों के यहाँ अटल एवं सर्वोत्कृष्ट गरिमा वाला है। उन्हीं ऋषियों के सिद्धांत को, जो भी अधिकारी ज्ञानी पुरुष हुए हैं, उसी का कथन व वर्णन किया है। उस परम तत्व का मेरा भी अपना कथन प्रमाण है अर्थात् अपनी प्राप्ति का प्रमाण भी वही है। सनक, सनन्दन सनत कुमार और ऋषि नारद तथा शुकदेव जी भी उसी सिद्धांत को मानकर सुख माना है। उसी सिद्धांत पर महर्षि याज्ञवल्क्य एवं महाराजाधिराज जनक का भी संवाद है। महर्षि दत्तात्रेय ने भी उसी महारस का आस्वादन किया है। वह रस कोई नया नहीं है। पुराना है और अकथनीय है।

**वोहे बात राम वसिस्ट मिलि गाई।**
**वोही बात क्रिस्न ऊधो समुझाई॥**
**वही बात जे जनक दिढ़ाई।**
**देह धरै विदेह कहाई॥**

**भावार्थ**—मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के संशय उत्पन्न होने

पर महर्षि वशिष्ठ ने भी उक्त तत्वमसि महावाक्य का उपदेश किया था और प्राप्ति के उपरान्त भगवान राम ने गुरु का समर्थन किया। उसी परमतत्व का उपदेश भगवान श्रीकृष्णचंद्र ने उद्धव जी को भी समझाया था और उसी परमतत्व को याज्ञवल्क्य जी ने जनक और मैत्रेयी के प्रति उपदेश किया था जिसके बाद महाराजाधिराज जनक परम हंस गति को प्राप्त हुए और विदेह कहलाने लगे।

साखी

**कुल मरजादा खोय कै, जीयत मुवा नहीं होय।**
**देखत जो नहिं देखियाँ, अदिस्ट कहावै सोय।।**

**शब्दार्थ**--कुल-कुल परम्परा का।

**भावार्थ**—यहाँ तक कि महाराजा जनक के बारे में कथा है कि जातीय या क्षत्रियत्व के मर्यादा को खो दिया। जीवित दशा में अपने को मृतवत् बनाये रहे अर्थात् अहंकार से बिल्कुल परे अपने को रखे उनके अन्दर संसार के कोई सम्बन्ध नहीं रह गये थे, जो वस्तु देखने में नहीं आती थी, जो अदृष्ट कहलाती थी, उसको ज्ञानी राजा जनक ने देखा अर्थात् अनुभव किया। जनम-मरण से मुक्त हो गये। सद्गुरु इन महापुरुषों का दृष्टांत देकर उपदेश करते हैं कि तुम मनुष्य का देह पाये हो तुम्हारा भी कर्त्तव्य होता है कि तुम उस परमतत्व को प्राप्त करो क्योंकि वह मनुष्य देह में ही प्राप्त हो सकता है इसलिए सावधान हो जाओ।

**अन्तर्कथाएँ**

तत्त्वमसि—इस कथा का आशय छान्दोग्य उपनिषद् में इस प्रकार है—अरुण का पौत्र जो श्वेतकेतु नाम का था। वह पिता की आज्ञा से बारह वर्ष की उम्र में गुरुकुल जाकर सब वेदों का ज्ञान प्राप्त कर पिता के पास आया। लेकिन आत्मज्ञान के बिना दम्भी रहा सो सब ज्ञात कर ज्ञानी पिता 'उद्दालक' जी ने पूछा, तुम इतने अभिमानी क्यों हो ? क्या वह उपदेश अपने गुरु से नहीं पूछा जिसे सुनने मात्र से अश्रुत भी श्रुत

होता है ? पुत्र ने कहा वह उपदेश कैसा है ? तब पिता ने कहा जिस प्रकार से मृत्पिण्ड के ज्ञान से उसके कार्य ज्ञात हो जाते हैं क्योंकि विकारवाणी मात्र है, मिट्टी के ज्ञान से उनका ज्ञान हो जाता है, तब पुत्र ने कहा यह उपदेश हमारे गुरु जी नहीं जानते थे अगर उनको ज्ञात होता तो अवश्य बताते। इसलिये कृपा करके आप ही बताइये। तब पिता ने आत्मा को सत्य मानकर और संक्षेप में सृष्टि का वर्णन किया, और कहा वही सत्य सबका मूल कारण है, वही सत्य है। उसी का ज्ञान हो जाने से सबका ज्ञान हो जाता है। इसलिए परम सूक्ष्म कारण रूप ही यह सृष्टि है। इस प्रकार हे श्वेतकेतो ! तुम भी वही सत्यात्मा हो अर्थात् तेरी आत्मा भी सत्य है इस प्रकार पूछने पर कई बार पुनः पुनः समझाया।

● छान्दोग्य के अ० ७ में कथा है कि ज्ञान पाने हेतु नारद जी सनत्कुमार जी के पास में गये और उपदेश सुनाने को कहा, तब सनत्कुमार जी ने कहा कि आत्मा-विषयक जो कुछ आप जानते हो सो कहो उसके बाद जो नहीं जानते हो वह मैं कहूँगा। तब नारद जी ने सभी वेद इत्यादि का वर्णन किया और कहा केवल मन्त्रादिरूप शब्दों को ही जानता हूँ, आत्मज्ञान को नहीं जानता। जिसे जानकर आत्म-ज्ञानी शोक रहित हो जाता है लेकिन मैं अज्ञानी होने से सोचता हूँ, ताप से युक्त हूँ इसलिए आप शोक रहित कीजिए। तब सनत्कुमार जी ने वेदादि को नाम रूप बताकर अन्न में ब्रह्म को भेदरहित बताया है। आत्मा ही सर्वत्र हैं उससे भिन्न सब विनाशकारी तथा तुच्छ हैं इत्यादि॥

● नारदीय पु० अ० ३३ में कथा है कि—नारद जी ने सनक जी से पूछा कि किस कर्म से योगियों को योग की सिद्धि होती है तब सनक जी ने उत्तर दिया कि तत्त्व के चिन्तन करने वाले को उत्तम मोक्ष की प्राप्ति होती है और वह ज्ञान भक्तिजन्य होता है। अच्छे कर्म वाले को भक्ति प्राप्ति होती है जो हजारों जन्मों में दान यज्ञ नाना

प्रकार का शुभ कर्म किया है उसी की हरि में भक्ति होती है। थोड़ी सी भक्ति ही परम धर्म है, उत्तम श्रद्धा से सब पाप नष्ट होता है, पाप नष्ट होने से बुद्धि निर्मल तथा ज्ञान प्राप्ति का हेतु है, ज्ञान मोक्षप्रद कहा जाता है और ज्ञान केवल योगी को ही होता है। क्रियायोग के बिना ज्ञान नहीं होता, इसलिए मन वचन कर्म से परपीड़ा रहित होकर विभु विष्णु की भक्ति करें। सभी गुण सम्पन्न सबके आत्मा विष्णु हैं। ऐसा समझ कर योगाभ्यास करें। जो अपने समान सभी प्राणी को मानते वह विष्णु के प्रभाव को जानते हैं। यदि क्रोध से युक्त दम्भी मन वाला देवपूजा करता है तो वह व्यर्थ है इसलिए सम, दम साधन में तत्पर होकर विष्णु की पूजा करें, मन वचन कर्म से सबका हित करे, सोई क्रियायोग ( कर्मयोग ) कहा जाता है।

●योगवासिष्ठ प्रकरण २ सर्ग एक में कथा है कि शुकदेव जी अपने आप परम तत्त्व को समझे थे परन्तु अपने आप से विश्वास न होने से व्यास जी से पूछा कि संसार का प्रपंच कैसे उत्पन्न हुआ, और कैसे नष्ट होता है तब व्यास जी ने यथार्थ का उपदेश दिया और संसार को कल्पित-मिथ्या बताया। तब भी शुकदेव जी को पूर्ण विश्वास नहीं हुआ, उसके बाद व्यासजी पुत्र के आशय को समझ कर बोले कि, मैं ज्ञान को पूरा नहीं जानता हूँ। राजा जनक अच्छी तरह जानते हैं उनके पास जा। तब सुमेरू पर्वत से शुकदेव जी जनकपुर पहुँचे। तब जनक जी ने उनके ज्ञान की परीक्षा कर पूछा कि आपने संसार के समस्त कार्य को समाप्त किया है, सब मनोरथ को प्राप्त किया है, आपकी जो इच्छा है, शीघ्र कहो, स्वागत करके जनक जी नेकहा, शुकदेव भी बोले कि जिसका उत्तर व्यास जी ने दिया था सोई आपने भी दिया। इस तत्त्व को स्वयं मैं विवेक से समझा था जो पिता ने कहा सोई आप ने कहा और वही शास्त्र भी कहता है।

●देवी भागवत स्कन्ध १ अ० १० अ० १४ आदि में कथा है कि— कलविंक पक्षी के आनन्द को देख कर पुत्र के लिए सौ वर्ष तप करने

के बाद, अग्नि के लिए लकड़ी मन्थन व्यास जी किया करते थे उसी समय घृताची नामक कन्या (अप्सरा) आयी, उसे देखते ही व्यास जी कामातुर हो गये। इन्हें काम से मोहित जानकर अप्सरा शुकी रूप होकर वहाँ से चली गयी। तो भी काम को रोक न सके, उनका वीर्य अरणी में ही स्खलित हुआ जिससे शुकदेव जी का जन्म हुआ, और वृहस्पति से सब शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया। जनक जी के कहने पर विवाह भी किया, पुनः योग में स्थित होकर पिता को त्याग दिये। तब पुत्र के वियोग से अत्यन्त व्याकुल व्यास जी को देखकर छाया का शुकदेव बनाकर नारद जी ने व्यास को शान्त किया।

यही कथा महाभारत शान्तिपर्व में है कि व्यास जी ने पुत्र के लिए शंकर भगवान एवं पार्वती की तपस्या की, जिससे खुश होकर भगवान ने कहा जाओ तुम्हें एक तेजस्वी पुत्र होगा। वही पुत्र शुकदेव जी थे। मोक्ष प्राप्ति के हेतु शुकदेव जी व्यास के पास गये, तो उन्होंने जनक के पास भेज दिया। वहाँ ज्ञान प्राप्ति के बाद शुकदेव जी उत्तराखण्ड को चले गये।

● याज्ञवल्क्य और जनक का संवाद वृहदारण्यकोपनिषद् अ० ४ में है। प्रथम अ० ३ में कथा है कि—राजा जनक बहुत दान वाला 'अश्वमेध' यज्ञ से यजन किया, उसमें कुरू पंजाब के बहुत ब्राह्मण एकत्रित हुए। राजा को यह जानने की इच्छा हुई कि इसमें सबसे ज्यादा विद्वान् कौन है। इसे जानने के लिए राजा गौओं की एक-एक सींग में पाँच पाद सुवर्ण बाँध कर, हजारों गऊ उनके सामने गोष्ठ में रखवाये और प्रणाम करके बोले आप सब भगवान रूप ब्राह्मण हैं। परन्तु जो इसमें अतिशय ब्रह्मनिष्ठ है सो इन गौओं को ग्रहण करे। जब कोई उनके लिए नहीं प्रवृत हुआ, तब याज्ञवल्क्य जी ने शिष्य को कहा कि, इन गौओं को ले चलो। फिर अन्य ब्राह्मणों ने अपना अपमान समझकर बहुत विवाद, प्रश्न किये, परन्तु सब याज्ञवल्क्य जी से पराजित हुए, और यथायोग्य उत्तर पाये।

यह कथा वायु पु० अ० ६० में भी है। याज्ञवल्क्य जी ने सबका

उत्तर दिया है, लेकिन याज्ञवल्क्य जी का उत्तर कोई न दे सका। गार्गी ने प्रश्न कर याज्ञवल्क्य जी के महत्व को समझ कर ब्राह्मणों को समझाया कि कोई इनसे विवाद न करे, तो भी शाकल्य ने बहुत प्रश्न किए, मुनि ने उत्तर दिया, और मुनि का एक प्रश्न का भी शाकल्य उत्तर न दे सका, जिससे उसका सिर फट गया, क्योंकि ऐसा ही शर्त करके मुनि ने प्रश्न किया था। यदि मेरा जवाब नहीं दोगे तो शिर फट जायेगा, अन्त में सबको वास्तविकता समझाया है। इसके बाद चतुर्थ अध्याय में कथा है कि याज्ञवल्क्य जी स्वयं राजा के पास गये हैं और उनके प्रश्न के अनुसार स्वयं आत्मा का वर्णन किया है। शरीर जीव के कर्मानुसार गति बताकर, निष्काम ज्ञानी मुक्ति का वर्णन किया। भेद रहित आत्मा मन से समझने योग्य है, आत्मा में भेद मानने वाला बार-बार मृत्यु को प्राप्त होता है इसलिये यह आत्मा ही अजर अमर है, जो इस प्रकार जानता है वह अभय ब्रह्म ही होता है।

●दत्तात्रेय जी की कथा मार्कण्डेय पुराण अ० १६ आदि में है कि— प्रतिष्ठानपुर में कोई कौशिक नामक ब्राह्मण था। सो पूर्व जन्म के पाप से कुष्ठ रोग वाला और क्रोधी था। परन्तु उसकी स्त्री पतिव्रता थी, सब प्रकार से सेवा, आज्ञा पालन करती थी, उस कामी ब्राह्मण ने किसी दिन एक वेश्या को देखा और रात को उसके पास जा नहीं सकता था। तब स्त्री से कहा मुझे उस वेश्या के पास पहुँचाओ, कम-से-कम उसे देखूँगा वह मुझे देखेगी। तब पतिव्रता ने काँध पर बैठा कर वेश्या के पास चली, और माण्डव्य नामक ऋषि चोर न होते हुए भी चोर की शंका से शूली पर चढ़ाये गये थे। सो उसी रास्ते में जिन्दा कष्ट में थे। रात्रि के समय अन्धकार होने से, उस पतिव्रता का पैर उसके शरीर में लग गया। तब माण्डव्य ने शाप दिया कि जिसका पैर लगा है वह सूर्य देखते ही मर जायेगा, तब उसने कहा सूर्य उदय ही नहीं होगा जिससे मेरा पति मरेगा। तत्पश्चात् वैसा ही हुआ, अब सदा रात्रि रहने से यज्ञादि कर्म बन्द हो गये। तब सभी देवता चिन्तायुक्त हुए तब ब्रह्मा ने कहा एक

तेज दूसरे तेज को शान्त करता है। इसमें अत्रि मुनि की स्त्री अनुसूइया से ही फिर सूर्योदय होगा। इस वचन को सुन देवताओं ने अनसूइया की प्रार्थना की। तब उसने समझाया कि दिन होने के बिना देवताओं को बड़ी घबराहट है इसलिए सूर्य निकलने दो मैं तेरे पति को जिला दूँगी। तब उसने स्वीकार किया और पति मर कर जीवित हुआ। इससे देवता लोग अनुसूइया के पास आकर वर माँगने को कहा, तो उसने कहा आप तीनों मेरा पुत्र होवें, यही मेरी इच्छा है। फिर ब्रह्मा चन्द्रमा, विष्णु दत्तात्रेय, तथा शिव दुर्वासा हुए। यही चन्द्रमा ने गुरुपत्नी से बुद्ध को उत्पन्न किया और दत्तात्रेय जनसमूह को छोड़ कर जल में रहने लगे और तप करने लगे। परन्तु साधु स्वभाव के कारण ब्राह्मण बालक उनका साथ नहीं छोड़ते थे, तब मायामयी स्त्री को साथ लेकर निकले, तब साथ न छोड़ने पर कल्पित मदिरा पीने लगे। तब सब साथ छोड़ दिये। दत्तात्रेय की पूजा से सहस्त्रार्जुन सिद्धि पाया था, तथा मन्दालसा का चौथा पुत्र अलार्क ज्ञान पाया था।

भविष्य पुराण पर्व ३ अ० १७ में कथा है कि—अनसूइया सहित अत्रि ऋषि तप करते थे, तब ब्रह्मा आदि तीनों देव ऋषि से वर माँगने के लिए कहने गये। ऋषि कुछ नहीं बोले, तब उनकी स्त्री के पास जाकर तीनों देव कुचेष्टा करते हुए, रति के लिए कहे और बलात्कार करना चाहे। ऋषि पत्नी ने श्राप दिया कि, तुम तीनों मेरा पुत्र होगे और तपोबल से पुत्र बनाया।

● वसिष्ठ और राम मिलकर जो गाये, वह योगवासिष्ठ में इस प्रकार है कि—श्री रामचन्द्र जी गुरुकुल में सब विद्याओं का ज्ञान प्राप्त कर घर आये और वहाँ आकर तीर्थयात्रा के लिए, श्री दशरथ जी से आज्ञा माँग कर, शुभ दिन में भाइयों के साथ यात्रा किये, चारों दिशाओं का भ्रमण कर आये। सुख पूर्वक घर में रहने लगे। बाद में भरत अपने मामा के घर रहने लगे, अन्य तीनों भाई साथ घर रहने लगे और विराग भावना से चिन्तित एवं दुखी हो गये। उस समय १६ वर्ष से कम

उम्र थी चिन्ता दुःख के कारण सभी कर्मों से उपराम हो गये, जिसके कारण माता पिता दुखी हुए और पूछने पर भी नहीं बताते। तब दशरथ जी ने वशिष्ठ जी से राम के दुःख का कारण पूछा कि राम के दुःख का कारण क्या है ? तब वसिष्ठ जी ने सोच विचार कर कहा कि हे राजन ! इसमें भारी कारण है, अल्प कारण से सन्त लोग हर्ष दुःख के बस में नहीं होते, परन्तु आपको दुःख की कोई बात नहीं है। इस बात को सुन दशरथ जी चुप होकर दुःख सहित समय बिताने लगे, और सुख समय की प्रतीक्षा करने लगे। इसी समय यज्ञ करने में राक्षस लोग विघ्न उत्पन्न करने लगे, यज्ञ की रक्षा हेतु विश्वामित्र जी राजा के पास आये राजा ने विश्वामित्र को पूजा आदि करके, आने का कारण पूछा कि श्रीमान किस कार्य के लिए आये हैं सो आप कहें मैं अवश्य पूरा करूँगा, आप उत्कृष्ट ऋषि हैं। तब ऋषि जी खुशी होकर बोले कि आपका यह वचन उचित ही है मेरा कार्य यह है कि सिद्धि के लिए मैं यज्ञ करता हूँ, उसमें राक्षस विघ्न करते हैं और यह कर्म ऐसा है कि शाप देना उचित नहीं है। आपकी सहायता से यह कार्य पूर्ण हो सकता है, आपका बड़ा पुत्र राम राक्षसों का नाश कर सकता है उन्हें ही आप मुझे दो। हमसे रक्षित होकर वही नाश करेंगे, और भी उनका बहुत कल्याण करूँगा, जिससे वे तीनों लोकों में पूज्य होंगे। राजा इस बात को सुन एक क्षण दुःखी होकर बोले कि—राम अभी युद्ध योग्य नहीं हैं, अन्य मन्त्री योद्धा हैं उन्हें ले जाइये। इनके सहित मैं इन्द्र से भारी योद्धाओं के साथ युद्ध करूँगा और दूसरी बात यह है कि राम स्वयं कृशकाय हैं राक्षसों के साथ युद्ध करना बड़े बलियों का काम है, इससे मैं राम को नहीं दूंगा। इस बात को सुन कर ऋषि कुपित हुए, जिससे हलचल हो गयी। सो देखकर वसिष्ठ जी ने विश्वामित्र जी के प्रभाव को राजा से बताया तथा देने में ही राजा से लाभ बताया। तब राम लक्ष्मण दोनों भाई बुलाए गये। थोड़ी देर में प्रतिहारी ने आकर राम के विषाद को बताया। फिर विश्वामित्र ने कहा अगर ऐसी बात है तो राम जी को शीघ्र बुलाओ। यह रघुपति का मोह आपत्ति रागादि से नहीं है। यहाँ

पर हम क्षण भर में मोह दूर कर देंगे, तब दशरथ जी ने दूत भेजा इसके पहले ही राम जी भाइयों के साथ चल दिये थे। आकर पिता और मुनि को प्रणाम करके नीचे बैठ गये, पिता जी बोले, तुम ज्ञानी हो दुःखी न होवो, तुम्हारे समान लोक विप्र वृद्ध गुरु से कथित अच्छा स्थान को पाते हैं। तब वसिष्ठ जी बोले तुम वीर हो, कठिन विषम शत्रुओं को जीतो, अज्ञ तुल्य मोहसागर में क्यों डूबे हो। विश्वामित्र जी ने कहा तुम इन्द्रियों की सारी चंचलता एक कर बोलो तुम विषयों में मोहित कैसे हो? कहने से अपना इष्ट शीघ्र पावोगे। इस उचित वचन को सुन कर राम ने दुःख को त्याग दिया और बोले कि हे भगवन! आपके कहने पर सत्य ही इस समय सब कहूँगा। सत्य पुरुष के वचन का उल्लंघन कौन करेगा। ऐसा कह कर राम संसार के दुःख आदि का वर्णन किया और पूछा कि वह कौन स्थान है जहाँ शोक नहीं है, जीव-मुक्त कैसे रहते हैं? तब मुनि जी ने कहा कि तुम स्वयं सूक्ष्मरूप से सब बात को जानते हो, केवल अभ्यास मात्र की जरूरत है। फिर कहा रघुवंशी के कुलगुरु वसिष्ठ हैं इनसे ज्ञान के लिए युक्त बात कहो इत्यादि। तब बसिष्ठ जी ने अनेक प्रकार से आत्मा का उपदेश दिया। इसी प्रकार से सांख्य-वादी मत, योगवादी मत, ईश्वरवादी मत, सब आत्मज्ञानी के आत्मा हैं।

● श्रीकृष्णजी नेउद्धव जी को जो समझाया है, सो कथा श्रीमद्भागवत् स्कन्ध ११ अ० २७-२८ में है। उद्धव के पूछने पर अध्याय २७ में क्रिया योग का वर्णन किया है। जिसमें वैदिक तान्त्रिक मन्त्रों द्वारा द्विजो के कर्तव्य रूप पूजा का वर्णन किया है और मूर्ति देव प्रतिष्ठा आदि का वर्णन किया गया है।

अ० २८ में कहा कि प्रकृति और पुरुष के साथ विश्व को एक स्वरूप देखता हुआ दूसरे के स्वभाव कर्म की प्रशंसा निन्दा न करे, क्योंकि जो दूसरे के कर्म स्वभाव की निन्दा करता है सो असत्य में अपने स्वार्थ से गिर जाता है। निद्रा से प्राप्त तैजस में जैसे शरीरस्थ पुरुष मिथ्या स्वप्न देखता है नष्ट चेतनवाला मूर्छित प्राणी माया वा मृत्यु को

प्राप्त होता है। तैसे ही नाना अर्थ को सत्य देखने वाला संसार स्वप्न को माया मरण को प्राप्त होता है। अवस्तु (मिथ्या) द्वैत का कितना कौन वस्तु भद्र (शुभ) है और कितना कौन अभद्र है, क्योंकि जो वचन से कहा जाता है। मन से ध्याता है, सो मिथ्या है और छाया के व्यापारादि तुल्य भ्रमरूप असत् है, तो भी संसार में कार्य करने वाला है। ऐसे ही देहादि असत् होते भो मृत्यु मोक्ष पर्यन्त भय देते हैं। वस्तुतः आत्मा ही माया द्वारा विश्व रूप से प्रगट होता है प्रभु होकर प्रकट करता है, रक्षित होता है, रक्षा करता है वही विश्वात्मा हरा जाता है, ईश्वर होकर हरता है। तिससे आत्म स्वरूप से भिन्न कोई पदार्थ नहीं है। अध्यात्मिक पदार्थों की प्रतीति भी आत्मा में मिथ्या ही है। इसे माया कृत समझो। मुझसे वर्णित इस ज्ञान विज्ञान की निपुणता को जानने वाले, किसी की निन्दा स्तुति नहीं करते हैं। किन्तु लोक में सूर्य के समान असङ्ग हो कर विचरते हैं। इसलिए प्रत्यक्ष और अनुमान से अलग अपने ज्ञान से आदि अन्त वाली सब वस्तु को असत् जानकर, यहाँ असंग हो कर विचरे।

फिर उद्धव जी ने पूछा कि स्वयं प्रकाश द्रष्टा आत्मा को वा अनात्म दृश्य देह को जन्म दुःखादि संसार नहीं है, फिर किसका है, जो दीखता है। अव्यय निर्गुण स्वयंप्रकाश अनावृत आत्मा है सो अग्नि तुल्य है जब तक देहेन्द्रिय प्राण के साथ सम्बन्ध आत्मा का है तब तक ज्ञान हीन को मिथ्या संसार भी सत्य है, सो स्वप्न समान है, सत्य अर्थ के न रहते भी विषयों के ध्यान करने वालों का संसार निवृत नहीं होता है। जैसे स्वप्न में अर्थ बिना भी अनर्थ प्राप्त होता है। जागने से स्वप्न की निवृति के समान आत्मज्ञान से सब अनर्थों की निवृति होती है।

● राजा जनक का विदेह कहलाने की कथा, विष्णुधर्मोत्तर पुराण खण्ड १ अ० ११७ में है कि—निमि नामक राजा के पहले वसिष्ठ जी पुरोहित थे। राजा के निरन्तर याग से उपराम हो कर विश्राम करना चाहते थे। राजा यज्ञ कराने को कहा तब ऋषि ने विश्राम लेने को कहा फिर राजा बोला कि पारलौकिक कर्म में समय की प्रतीक्षा उचित

नहीं है इससे यदि आप नहीं यज्ञ करा सकते तो अन्य पुरोहित बनाकर, उनके द्वारा यज्ञ करूँगा। इस बात को सुनकर वसिष्ठ जी ने शाप दिया कि मुझको छोड़ कर अन्य पुरोहित करना चाहते हो, इसमें तुम विदेह होओगे (मरोगे)। फिर निमि भी शाप दिया था कि, धर्म कार्य में विघ्न करते हो और दूसरा पुरोहित भी नहीं चाहते हो, इससे तुम भी विदेह होगे। फिर विदेह हो कर दोनों ब्रह्मा जी के पास चले गये। तब ब्रह्मा जी ने निमि को सब जीवों के नेत्रों में वास दिया। और वसिष्ठ जी फिर मित्रावरुण के पुत्र हुए।

देवी भागवत स्कन्ध ६ अ० १५ में भी यह कथा है कि–वसिष्ठ जी के शाप से निमि राजा विदेह हुए, और इससे उनके वंशज विदेह कहाये, तो भी जनक जी में ज्ञान के प्रभाव से देहाभिमान के अभाव से उनमें विशेष विदेहता का वर्णन किया है और उनके ज्ञान का प्रभावशास्त्र तथा लोक में भी प्रसिद्ध है।

## रमैनी ९

### सिद्धि सम्पदादि बन्धन स्वरूप प्रकरण

**बांधे अस्ट कस्ट नउ सूता। जम बांधे अजनी के पूता॥**
**जम के बाहन बांधे जनी। बांधे सिस्टि कहाँ लै गनी॥**
**बांधेउ देउ तैंतीस करोरी। संवरत लोहबन्द गौ तोरी॥**
**राजा संवरे तुरिया चढ़ी। पंथी संवरे नाम लै बढ़ी॥**
**अरथ विहूना संवरे नारी। परजा संवरे पुहुमी झारी॥**

**शब्दार्थ**—अस्ट–आठ सिद्धियाँ (अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, महिमा, ईशत्व, वशित्व, सर्वकामवशायिता)। नउ–नव निद्धियाँ (पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कन्द, नील, खर्व)। कस्ट–क्लेश (अस्मिता, अविद्या, राग, द्वेष, अभिनिवेश, पंच क्लेशाः)। सूता–सूत्र,

बाँधने की रस्सी। जम–कर्मफल दाता। अजनी–जन्म से रहित, माया। पूता–पुत्र। वाहन–बन्धन, सवारी। जनी–नहीं। बाँधे–बन्धो। गनी–गणना। करोरी–करोड़। संवरत–स्मरण। लोहबन्द–साकल। गौ–दिया। तोरी–तोड़ा। राजा–त्रिभुवनपति। संवरे–सुमिरे। तुरिया–चतुर्थी अवस्था (जहाँ पर आत्मनिवास)। चढ़ी–पहुँची। पंथी–राहगीर, पथिक, अध्यात्म-मार्गी। नाम–प्रभु का नाम। लै–लेकर। वढ़ी–आगे गयो। नारी–आत्मकल्याण चाहने वाला भक्त। पुहुमी–पृथ्वी। झारी–समस्त।

**भावार्थ**—प्रथम आत्मतत्व का निर्देश किया गया। उसके प्रमाण में पूर्ववर्त्ती ऋषियों का उल्लेख किया गया अब सद्गुरु ने साधकों को साधना के अन्तर्गत विघ्न स्वरूप आठ सिद्धि और नव निद्धियों का उपस्थित होना वाधक माना है जिन सिद्धियों से राग द्वेषादि पंच क्लेश उत्पन्न होते हैं जिनके कारण यह जीव भगवान दण्डधर के बन्धन में वार-वार पड़ता है। बन्धन में पड़ने का कारण यह है कि जीव माया-जनित सिद्धियों से अभिभूत होकर माया का पुत्र बना हुआ है जिसके कारण वह बार-बार यम का शिकार होता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे मनुष्यों! इन ऋद्धि सिद्धि के कारण तुम यम के बन्धन में मत बँधो क्योंकि इन ऋद्धि सिद्धियों से केवल संसार का सुख मिल सकता है और साधक मान बड़ाई में पड़कर निर्विकल्प समाधि से वंचित रहता है। इन ऋद्धियों सिद्धियों के कारण सृष्टि के कितने साधक लोग बँधे जिनकी गणना नहीं की जा सकती। यहाँ तक कि दिव्य देहधारी ऋद्धि सिद्धि के कारण तैंतीस करोड़ देवता भी कालान्तर में यम के द्वारा बाँधे गये। जो बुद्धिमान साधक उपर्युक्त ऋद्धि सिद्धि के चक्र में नहीं पड़ता है निरन्तर प्रभु का नाम सुमिरता है, प्रभु की किसी भी माया से दुर रहता है वह यमराज के लोह के सीकड़ रूपी मोह के बन्धन को तोड़ डालता है। उस तीन लोक के राजा परमेश्वर का जो सुमिरन करता है वह तुरीय अवस्था को अवश्य प्राप्त होता है। अहर्निश उसकी उन्मनी स्थिति बनी रहती है। वह ब्रह्मरन्ध्र में स्थित होकर जगत का द्रष्टा बन जाता है। अध्यात्म मार्ग का पथिक प्रभु नाम सुमिर कर अवश्य आगे बढ़ जाता

है। वह कल्याणकामी नारी रूपा भक्त अर्थविहूना अर्थात् निष्काम हो करके जब सुमिरन करता है तो वह निश्चय ही अमरतत्व को प्राप्त कर लेता है। पुनः अर्थात् साधक को चाहिए कि बिना स्वार्थ के प्रभु की भक्ति करे एवं उनके नाम की भक्ति करें। इसी प्रकार पृथ्वी के सारे प्रजाजनों को चाहिए कि निष्काम भाव से प्रभु का सुमिरन करे जिससे लोहबन्ध टूट सकें।

### साखी

**बन्दि मनावै ते फल पावै, बन्दि दिआ सो देय।**
**कहैं कबीर सो ऊबरे, जे निसु वासुर नामहि लेय॥**

**शब्दार्थ**—बन्दि–बन्दना, बन्धन। मनावै–करे, चाहे। दिआ–प्रदान किया। निसु–रात्रि। वासुर–दिन।

**भावार्थ**—पहले बताया गया कि निष्काम भाव होकर जो प्रभु का सुमिरन भजन करता है वह निश्चित रूप से भवसागर को तर जाता है। साखी में कहा गया है कि जो सकाम भक्ति के द्वारा फल चाहता है उसको ऋद्धियाँ सिद्धियाँ अवश्य मिलती हैं परन्तु उन सिद्धियों के द्वारा यम बन्धन में पड़ जाता है। साहब कहते हैं कि वही मनुष्य उबर सकता है जो रात दिन प्रभु का नाम लेता है अर्थात् आत्मचिन्तन में अहर्निश लगा रहता है।

## रमैनी १०

**राही लै पिपराही बही। करंगी आवत काहु न कही॥**
**आई करंगी भौ अजगूता। जनम जनम जम पहिरे बूता॥**
**बूता पहिरि जम करै समाना। तीन लोक मो करै पयाना॥**

**शब्दार्थ**—राही–पथिक। लै–लेकर। पिपराही–पीपर वन। वही–चंचल बहाव। करंगी–घटाटोप, चतुर्दिक् बादलों का घेरा, बाढ़। आवत–

आते समय। काहु–कोई। आई–उपस्थित। भौ–हुआ। अजगूता–आश्चर्य। बूता–शक्ति। पहिरे–धारण किये। समाना–समक्ष होना। पयाना–यात्रा करना।

**भावार्थ**—नवीं रमैनी की साखी की अन्तिम पंक्ति में नाम लेने वाला ही उबर सकता है। अन्य राही अर्थात् धर्ममार्गावलम्बी, कर्मकाण्डी जो जरा सी आपत्ति-विपत्ति में पीपल के पत्ते के समान चंचल हो जाते हैं और अज्ञान का घेरा कब आता है यह भी नहीं जान पाते हैं क्योंकि दिन में ही बादलों के घिरने पर चारों तरफ, अन्धकार ही अन्धकार दीखता है। इसी प्रकार से सकामी भक्त दिन रूपी धर्म का चोला पहनने पर भी वास्तविक भेद न जानने के कारण धार्मिक होने पर भी अज्ञान का घेरा घेर लेता है। आश्चर्य तो यह है कि धार्मिक पुरुषों को भी अन्धकार रूपी करंगी चारों ओर से घेर लेती है। ज्ञान रूपी सूर्य छिप जाता है। ज्ञान न होने पर बार-बार जन्म-मरण होते रहता है और उनको पकड़ने के लिए यमराज अपनी शक्ति धारण कर जीवों को पकड़ने के लिए सामना करता है। यहीं तक नहीं तीन लोक में भी भगवान् दण्डधर की यात्रा होती है।

**बांधेऊ ब्रह्मा विस्तु महेसू। सुर नर मुनि अउ बाँधु गनेसू॥**
**बांधे पौन पावक थल नीरू। चांद सूरज बांधे दोउ बीरू॥**
**सांच मंत्र बांधे सभ झारी। अम्रित वस्तु न जानइ नारी॥**

**शब्दार्थ**—ब्रह्मा–गायत्री का पहला पुत्र। विस्तु–गायत्री के दूसरे पुत्र। महेसू–गायत्री के तीसरे पुत्र। गनेसू–शंकर जी के पुत्र कहे जाने वाले। थल–पृथ्वी। नीरू–नीर, जल। दोऊ–दोनों। बीरू–वीर, योद्धा। सांच मंत्र–सावर मंत्र।

**भावार्थ**—उस यात्रा के दौरान सृष्टि के अग्र जन्मे भगवान् ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, भगवान् महेश्वर भी अवधि के बीतने पर शरीर से अभाव को प्राप्त होते हैं अर्थात् उनका भी सशरीर परलोक गमन हो जाता है इसी प्रकार से ऋषि, मुनि, देवता, मनुष्य और बड़े देवताओं में गणेश जी भी कालान्तर में दण्डधर के बन्धन में आ जाते हैं। यही लोग नहीं

प्रलयंकारी प्रलय के आने पर पृथ्वी, पवन, पानी और अग्नि, एवं सूर्य, चन्द्र जो दोनों बहुत बड़े वीर कहलाते हैं जो सभी देवों में प्रत्यक्ष देव माने जाते हैं वे भी समय के चक्र में पड़कर उस परमसत्ता में विलीन हो जाते हैं अर्थात् कार्य कारण रूप में लय हो जाता है और जो अपने को सच्चे मंत्रों के जापक मानते थे और जो कहते थे कि मेरे मंत्रों को जपने वाला काल के चक्र में नहीं पड़ता। वे सभी, सबके सब आज दिखाई नहीं दे रहे हैं अर्थात् ज्ञान न होने पर बड़ा से बड़ा मनुष्य चाहे वह ब्रह्मा के समान हो चाहे विष्णु के समान हो चाहे महेश के समान हो। बहुत बड़े पण्डित गणेश के समान क्यों न हो चाहे वह पंच महाभूतों के अधिष्ठात्री देव ही क्यों न हो ये सभी यमराज के बन्धन में आ जाते हैं। इसका कारण है कि अमृत वस्तु जो आत्मज्ञान है वे नहीं जानते। उपासकों या भक्तों को स्त्री इसलिए कहा गया है कि उनमें कामना बनी रहती है जो दूसरे से फलों की आशा करता है, जो दूसरे के आशरे जीता है, वे सब नारी कोटि में गिने जाते हैं। वे नारीत्व स्वभाव वाले भक्त आत्मतत्व को एवं प्रभु की भक्ति को नहीं जाते। झूठाही ऋद्धि-सिद्धि मान सम्मान में सभी लोग मगन हो गये।

साखी

**अम्रित वस्तु न जानै, मगन भया सभ लोय।**
**कहैं कबीर कामों नहीं, जीवहिं मरन न होय॥**

**शब्दार्थ**—अम्रित–सुधा। वस्तु–चीज। नारी–भक्त। मगन–अलमस्त, प्रफुल्लित। कामों नहीं–किसी में भी नहीं।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि ये उपर्युक्त लोग जो परमतत्व को नहीं जानते। वे किसी अर्थ में नहीं हुए न उनका जीवन ही स्थिर रहा है न वे मर ही रहे हैं उनकी अधमरे की दशा हो रही है, जैसे कण्ठ प्राणगत होने पर मनुष्य को घोर यातना होती है। वह अपने दुःखों को कहने की शक्ति नहीं रखता है। उसी प्रकार से अज्ञानी पुरुष न संसार का होता है, न परलोक का होता है। वह तब तक अधर में लटका रहता है जब तक अमृत वस्तु को नहीं जानता। इसलिए सभी मनुष्यों को चाहिए कि सभी

मान बड़ाई पद प्रतिष्ठा छोड़कर प्रभु का सुमिरन करें और आत्म-ज्ञान के लिए प्रयत्न करें।

## रमैंनी ११

### अज्ञानमय सृष्टि प्रकरण

**आंधरि गुस्टि सिस्टि भौ बौरी। तीन लोक मौं लागु ठगौरी॥**
**ब्रह्मा ठग्यो, नाग कहं जारी। देवता सहित ठग्यो त्रिपुरारी॥**
**राज ठगौरी वेस्नु पर परी। चउदह भुवन केर चउधिरी॥**
**आदि अंत जाकि जलकन जानी। ताकी डर तुम काहे कै मानी॥**
**वै उतंग तुम जाति पतंगा। जम घर कियेउ जीउ को संगा॥**

**शब्दार्थ**—आंधरि–नेत्रहीन। गुस्टि–वार्ता। सिस्टि–सृष्टि। भौ–हुई। बौरी–पगली, दिग्भ्रमित। मौं–में। लागु–लगी। ठगौरी–ठगाई। नाग–शेषनाग, नागवंशी क्षत्रिय। जारी–जलाया (जनमेजय के नाग यज्ञ में नागवंशियों का नाश किया गया) राज–ब्रह्माण्ड। ठगौरी–बड़ी ठगीरी। केर–के। चउधिरी–मुखिया, प्रधान। जाकि–जिसकी। जलकन–फेन, बुदबुदा, जलकण के समान। जानी–जानते हो। काहे कै–किस लिए। उतंग–ऊँचा शिखर। पतंगा–तुच्छ, हल्का। कियेउ–किये।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि इस सृष्टि की वार्ता अज्ञानमूलक है जिसके कारण सृष्टि के सारे प्राणी दिग्भ्रमित हो रहे हैं। बुद्धि स्थिर न होने से तीनों लोक के सारे प्राणी ठगे जा रहे हैं। सृष्टि को अन्धी इसलिए कहा गया है कि समस्त मनुष्य केवल पुत्र, कलत्र, धन-दौलत में ही पड़े रहते हैं और मान बड़ाई के पीछे आगे की बात कुछ नहीं स्मरण करते। कोई पुत्र के लिए तप करता है, कोई धन के लिए करता है अधिक कोई सोचता है तो स्वर्ग के सुख के लिए तप करता है। सृष्टि के मनुष्यों के सारे प्रयत्न सुख-सुविधा के लिए ही होते हैं। मृत्युलोक के ही मनुष्य नहीं जिनको हम ब्रह्मलोक कहते हैं वहाँ भी मान सम्मान के लिए देवताओं में झगड़े होते रहते हैं। उसी प्रकार से पाताल लोक में भी अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष चलते रहते हैं जिसके कारण ब्रह्मलोक में

रहने वाले ब्रह्मा भी ठगे जाते हैं। पुराणों के अनुसार लोक पितामह ब्रह्मा को बहुत बड़ा क़लंक लगा है। नागवंशियों की दुष्ट बुद्धि के कारण जनमेजय के संग्राम में उनका नाश हुआ है या शेषनाग तीन लोकों के भार को लेकर ठगे गये हैं। आये दिन तो देवता लोग भी ठगे जाते हैं। भगवान त्रिपुरारी भी विश्वमोहिनी के द्वारा ठगे गये हैं। दूसरी ठगाई उनके साथ संहारक पद देकर की गयी है। यह बड़ी ठगौरी अर्थात् राज ठगौरी जगत-पालक भगवान विष्णु पर भी सवार हुई है जो चौदह भुवनों के प्रधान हैं। उनकी ठगौरी यह है कि रात-दिन प्राणियों के संरक्षण के लिए चिन्तित रहते हैं और भक्तों के लिए बैकुण्ठ छोड़कर भागे जाते हैं। उस परमसत्ता को भी चैन नहीं दिखता। बात तो वास्तविक में यह है कि जिससे लोग ठगे जा रहे हैं वह जलकन के समान हैं। उसका कोई अस्तित्व नहीं है वह माया जरूर है पर उसका अस्तित्व शाश्वत नहीं है। तुम्हारे अस्तित्व का कभी नहीं अभाव होता है तुम चेतन हो। तुम्हारा स्वरूप सबल है। तुम सिंह के समान हो। वह घटाटोप, भयंकर केवल देखने मात्र में है। भला उस नर्तकी से तुम क्यों डर रहे हो ? किसलिए उससे भयभीत हो, वह तो छायामात्र है। तुम अपने अज्ञान के कारण इस सृष्टि के मिथ्या व्यवहार के कारण एवं सृष्टि के व्यवहार के चलते उस माया को अपने से सबल एवं श्रेष्ठ मान रहे हो। अपने सबल होते हुए पतंगवत् हल्का मान रहे हो जिसके कारण अपने प्राणों को यमराज के घर में भेजते रहते हो। अर्थात् यम के घर से सदा संग बनाये हो यह सृष्टि ही यम का घर है इसमें बार-बार आते जाते रहते हो।

**नीम कीट जस नीम पिआरा। विख को अम्रित कहै गँवारा ॥**
**विख के संग कउन गुन होई। किंचित लाभ मूल गौ खोई ॥**
**विख अम्रित गौ एकै सानी। जिन्ह जानी तिन विख कै मानी ॥**
**काह भये नर सुद्ध वेसुद्धा। विनु परिचै जग बूड़ल बुद्धा ॥**
**मति के हीन कउन गुन कहई। लालच लागे आसा रहई ॥**

**शब्दार्थ**—नीम–एक तिक्त वृक्ष जिसको लोक में नीम कहते हैं। कीट–सूक्ष्म कीटाणु। पिआरा–प्रिय। गँवारा–मूर्ख। गुन–लाभ। किंचित–थोड़ा। मूल–मूलतत्व। गौ–गया। काह–कहाँ; कैसे। भये–हुए। सुद्ध बेसुद्धा–विशेष निर्मल। बुद्धा–बुद्धिमान, पठित। मति–बुद्धि। कै–के। लालच–लोभ। आसा–आस।

**भावार्थ**—क्या कहूँ ? तुम मेरी बात पर ध्यान नहीं कर रहे हो। तुम्हारा प्रिय भोजन मधुर मिश्री होना चाहिए था अर्थात् तुम्हें अच्छी बातों से प्रेम करना चाहिए था जिससे तुम्हारा उद्धार होता परन्तु तुम सांसारिक विषय वासना रूपी नीम अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह से ही प्यार करने लगे हो। अरे ! भाई यह तो विष है। यह तुम्हारा प्राण लेने वाला है इसको अमृत क्यों कह रहे हो ? यह अमृत नहीं है यह तो विष है। इसका संग करके तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। प्रथम विषय संयोग से किञ्चित् सुख तुमको ज्ञात होता है पर तुम्हारा जो मूल तत्व आत्मतत्व है अर्थात् जो सुखमय जीवन है वह विष के संग करने से नष्ट हो जाता है। यहाँ पर अधिक आशय स्त्री-सुख की ओर लगता है क्योंकि सभी विषयों में अत्यधिक हानिकारक स्त्रो सुख बताया गया है क्योंकि स्त्री सुख के चलते लोक में बहुत बड़े-बड़े संघर्ष हुए हैं और राष्ट्र के राष्ट्र नष्ट हो गये हैं। यह संसारी मनुष्य विषय-वासना रूपी विष को और आत्मज्ञान रूपी अमृत को एक ही में सान दिया है अर्थात् एक ही में मिला दिया है और अहर्निश दोनों को एक समझने की धारणा बना रखा है जो विवेकी मनुष्य यह निर्णय कर चुका है कि विषय-बासना विष है अर्थात् संसार के सारे सुख विष के समान है तो वह उक्त सुख को विष ही समझता है। इसी प्रकार से आत्मतत्व को अमृत समझता है परन्तु जो मनुष्य विष अमृत को एक ही मान रखा है वह भला कैसे शुद्धता को प्राप्त हो सकता है ? वह अज्ञ मनुष्य बिना विवेक के संसार में डूब मरता है। परन्तु जो बुद्ध लोग हैं वह विवेक के द्वारा संसार से तर जाते हैं। कहीं-कहीं पर पाठ बुद्धा का बुज्झा भी है। बुज्झा पाठ

करने पर होगा कि बिना सत्य असत्य के परिचय के भव-चक्र में डूब गया क्योंकि पहले समझने-बूझने का प्रयत्न नहीं किया। बुद्धिहीन मनुष्य कौन गुन कह सकता है क्योंकि वह अमृत न चखा है और न अमृत चखने की बात ही सोचता है। वह मतिहीन मनुष्य सदा लालच में लगा रहता है और संसार की विषय-वासना की प्राप्ति की आशा करता है।

साखी

**मूवा है मरि जाहुगे, मुये की बाजी ढोल।**
**सपन सनेही जग भया, सहिदानी रहिगौ बोल ॥**

**शब्दार्थ**—सहिदानी–चिह्न। सनेही–प्रेमी। बोल–व्यवहार।

**भावार्थ**—जिसके चलते सदा मरते आया है और जब तक विषयों का त्याग नहीं करेगा मरते रहेगा। वह अज्ञानी मनुष्य के मरने की ढोल भी बज गई है। हे मूर्ख ! तुम लोग मरोगे। उसके लिए संसार स्वप्न के समान है अर्थात् वह सदा स्वप्नवत् संसार के सुख से स्नेह करता है। मनुष्य चला जाता है उसका सर्वस्व नाश हो जाता है केवल यही रह जाता है कि अमुक आदमी कुछ कर गया। वह पण्डित था, वह क्षत्रिय था इत्यादि। साहब कहते हैं कि हे संसार के मनुष्यों ! यदि तुम मरना नहीं चाहते हो तो गुरु देवता की शरण में जाकर उपर्युक्त विष अमृत का पहचान करो और आत्म तत्व का अन्वेषण करो जो तुम्हें मरने और जन्मने से रोक सकता है।

## रमैनी १२

**माटी के कोट पखान के ताला। सोइक बन सोइ रखवाला ॥**
**सो बन देखत जीउ डिराना। ब्राह्मन वैस्नव एकै जाना ॥**
**ज्यूँ रे किसान किसानी करई। उपजै खेत बीज नहिं परई ॥**
**छाँड़ि देउ नर झेलिक झेला। बूड़े दोऊ गुरु औ चेला ॥**

**शब्दार्थ**—माटी–मिट्टी। कोट–किसी राजा के रहने का गढ़,

राजमहल । पखान–पाषाण, पत्थर । ताला–ताली, यंत्रिका । सोइक–वही का । वन–जंगल, पानी, जल, घर, समूह आदि । रखवाला–रक्षक । डिराना–भयभीत होना । वैस्नव–वैष्णवी सम्प्रदाय का । झेलिक झेला–ठेलम ठेला । अउ–और ।

**भावार्थ**—ग्यारहवीं रमैनी की साखी में सबको मरने वाला इसलिए कहा गया कि स्वप्नवत् संसार से स्नेह बना हुआ है। यह शरीर मिट्टी का गढ़ है और पाषाण रूपी अज्ञान का ताला इसमें लगा हुआ है जिसके कारण अन्दर में रहने वाले का पता नहीं चलता क्योंकि जब कोट अथवा गढ़ होता है तो इसमें कोई शासक भी होता है यहाँ पहले घर नहीं कहा गया कोट कहा गया। कोट को गढ़ कहते हैं और वह गढ़ राजाओं का होता है। उस गढ़ में राजा रहकर सम्पूर्ण राज्य का देखभाल करता है और उसने स्वयं उस गढ़ को बनाया है। यहाँ पर बन शब्द है। बन बहुअर्थक है। यदि यहाँ बन का अर्थ जंगल किया जाय तो कोट से सम्बन्ध नहीं हो पायेगा। इसलिए यहाँ पर बन का अर्थ घर है जो गढ़ में रहता है उसने ही इस घर को बनाया है। वही इसका रक्षक है। परन्तु जीर्णावस्था को प्राप्त होने पर उस घर को देख करके भय होता है कि अब हम इस घर को छोड़कर चले जायेंगे अर्थात् मेरी मृत्यु हो जायेगी क्योंकि ताला खोलने वाला कोई भेदिया सद्गुरु नहीं मिला। जब तक ताला खुल नहीं पाता। तबतक वह अन्तःपुर में प्रवेश नहीं कर सकता। ताला खोलने का प्रयत्न बहुत किया गया परन्तु ताला खुल नहीं पाया। वृद्धावस्था आ गई। अत्यधिक चिन्ता के कारण व्याकुल हो गया। ताला खोलने का उपाय धर्म के गुरु ब्राह्मण से, धर्म के गुरु वैष्णव से प्रश्न किया कि मेरा ताला कैसे खुलेगा? यह शरीर जा रहा है। ब्राह्मण, वैष्णवों ने एक ही बात की ओर इशारा किया कि तुम अब जा रहे हो अथवा जाओगे तो दान पुण्य कर लो। तीर्थों का भ्रमण कर लो। देवता, देवियों का मन्दिर बना लो। पूजा-पाठ विधि-विधान से करो। ताला खुल जायेगा। वे दोनों यही जानते हैं कि मरणोपरान्त वैतरणी नदी

पार करने के लिए गाय पार कर देगी अथवा जो अन्तिम करोगे वही तुम्हारे साथ जायेगा। सद्गुरु कहते हैं कि बात तो ठीक बताई गई परन्तु असली भेद का पता नहीं चल सका। प्रश्न उठता है कि क्या दान-पुण्य उपर्युक्त कर्मों के फल नहीं होते। साहब कहते हैं होते हैं बहुत योग, यज्ञ करने से सिद्धियाँ एवं ऋद्धियाँ प्राप्त होती हैं पर उनके द्वारा निर्विकल्प समाधि नहीं हो पाती। जैसे कोई किसान किसानी करता है। काफी खाद-गोबर डालता है और खेत की उपज अर्थात् डंठल बहुत उपज जाते हैं परन्तु उसमें बीज नहीं पड़ते। जलाभाव में वायु के प्रकोप के कारण बालें सूख जाती हैं। अन्न में परिपक्वता नहीं आती। इसी प्रकार से दान-पुण्य करने से बहुत नाँव-गाँव हो जाता है। मान-सम्मान मिल जाता है। परन्तु वास्तविक फल नहीं मिलता। साहब मनुष्यों से कहते हैं कि हे मनुष्यों ! तुम झेलिक-झेला अर्थात् ठेलम-ठेला छोड़ दो। यह तुम्हारी धाँधली काम नहीं आयेगी। यदि सही उपदेश तुम लोग शिष्यों को नहीं करते हो तो दोनों गुरु-चेला संसार रूपी अथाह जल में डूब जाओगे।

**तीसर बूड़े पारथ भाई। जिन्ह बन डाहो दवा लगाई ॥**
**भूंकि-भूंकि कूकुर मरि गयेऊ। काज न एक सिआर से भयऊ ॥**

**शब्दार्थ**—तीसर–वह धर्माचार्य। पारथ–सेना नायक, धर्म नेता। जिन्ह–जो। डाहो–जलाया। दवा–अग्नि। लगाई–लगाया। भूंकि-भूंकि–चिल्ला चिल्ला कर। कूकुर–कुत्ता, दुष्ट स्वभाव के बकवादी। गयेऊ–गये। काज–कार्य। सिआर–श्रृंगाल, भगोड़ा मनुष्य, देखा-देखी करने वाला। भयऊ–हुए।

**भावार्थ**—पहली पंक्ति में कहा जा चुका है कि वास्तविक सिद्धान्त न जानने के कारण दोनों गुरु चेला डूब गये अब तीसरे डूबने की बात उस आचार्य को कही गयी है जिसने सिद्धान्तहीन सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन किया जो सबसे पहले काम क्रोध जलाने के लिए शरीर रूपी घर में ज्ञान रूपी अग्नि लगाने की बात कही। परन्तु सही ज्ञान के बिना अर्थात्

आत्म-परिचय के बिना वन रूपी शरीर में रहने वाले काम, क्रोध, जल नहीं सके। वास्तविक ज्ञान के बिना थोथा ज्ञान के पीछे गलत उपासकों ने भूंक-भूंककर अर्थात् रट-रट कर मर गये और जन्म-मरण दूर करने वाला जो कार्य था वह कायर सियार पुरुषों से अर्थात् वंचक गुरुओं से सिद्ध नहीं हो सका। कबीर साहब कहते हैं कि—

गुरुआ तो सस्ता भये, पैसा केरे पचास ।
राम नाम धन बेची के, करैं शिष्य की आस ॥

भला इन व्यवसायिक गुरुओं से जो शृंगाल के सदृश हैं इनसे जीवों का क्या उपकार हो सकता है ? ये झूठा इशारा देकर भाग जाते हैं और चेला की विपत्ति में काम नहीं आते। क्या इनसे अज्ञानरूपी ताला खुल सकता है ? क्या ये मोक्ष दे सकते हैं ?

साखी

**मूस विलाई एक संग, कहु कैसे रहि जाय ।**
**अचरज एक देखो हो सन्तो, हसती सिंघहि खाय ॥**

**शब्दार्थ**—मूस–मूसक, जीव। विलाई–बिल्ली, माया। कहु–कहो। अचरज–आश्चर्य। हसती–माया। सिंघहि–जीव।

**भावार्थ**—सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि भला मूस-विलार कैसे एक संग रह सकते हैं ? ये विलारीवत् बंचक गुरु निर्बल मूसवत् शिष्य को खा नहीं जायेंगे। कहो यदि गुरु लोभी और शिष्य लालची हों तो एक साथ कैसे रह सकते हैं। हे संत जनों यह एक आश्चर्य तो देखो कि अज्ञान अविद्या रूपी माया जीव रूपी सिंह को खा रही है। अज्ञान तो निर्जीव था भला सजीव को कैसे नष्ट कर सकता है ? कहने का तात्पर्य यह है कि सही ज्ञान न मिलने के कारण घटाटोप वाली माया जिसमें प्राण नहीं है अर्थात् संसार को धन सम्पत्ति स्त्री पुत्र कलत्र रूपा माया जो सबको सत्ता स्फूर्ति दे रहा है उस चेतन पर आवरण डाले हुए हैं जिसके कारण अपनी चैतन्यता को त्यागकर यह जीवत्व भाव को प्राप्त हुआ है। यही बहुत

बड़ा आश्चर्य है कि इस माटी के कोट में पड़ा हुआ प्राणी अनेक संकटों का सामना कर रहा है और जो सुख स्वरूप अन्दर विराजमान है अज्ञान के कारण उसको जान नहीं पा रहा है। मनुष्यों को चाहिए कि सर्वंप्रथम सच्चे गुरु की तलाश करें और उसकी सेवा वन्दगी करके परम तत्व की प्राप्ति करें और जो अज्ञान का ताला लगा हुआ है उसको खोलकर सहस्रार में प्रवेश करें तभी जन्म-मरण से परे हो सकते हैं।

## रमैनी १३

### अविश्वास प्रकरण

**नहिं परतीत जो यह संसारा। दरब की चोट कठिन कै मारा ॥**
**सो तो सोखै[1] जाइ नुकाई। काहू के परतीत न आई ॥**
**चले लोग सभ मूल गवाई। जम की बाढ़ि काटि नहिं जाई ॥**
**आजु काज जे कालिह अकाजा। चले लादि दिगंतर राजा ॥**
**सहज विचारे मूल गमाई। लाभ तै हानि होय रे भाई ॥**
**ओछी मति चंद्रमा गौ अथंइ। त्रिकुटी संगम सामी बसई ॥**

**शब्दार्थ**—परतीत–विश्वास। दरब–धातु, धन रुपये पैसे। चोट–अघात। सोखै–शोषण, सूखना। नुकाई–छिपाई। कहू–किसी को। बाढ़ि–रस्सी, वृद्धि, प्रभाव। दिगंतर–देशान्तर, जन्मान्तर। सहज–व्यर्थ, ओछी–हलकी, नीची। अथई–अस्त। संगम–त्रिवेणी। बसई–निवास।

**भावार्थ**—साहब कहते हैं कि जो ऊपर मैं वंचक विषयक बातें अनेक प्रतीकों द्वारा कहा हूँ उसपर ये संसारी जीव विश्वास नहीं करते। ये गतानुगत लोक वाली बात पर सदा आचरण करते आये हैं। वे अपनी पुरानी परम्परा को छोड़ना नहीं चाहते। उनको मैं गलत परम्परा को छोड़ने को कहता हूँ। तो वे बहुत दुःखी हो जाते हैं। जैसे किसी का धन चोरी चला जाय। कोई लूट ले जिसके आघात से वह मर जाता है।

१. पाठान्तर : सेखो।

वही बात उन अज्ञानी मनुष्यों की है। उनको मैं बुलाकर कहता हूँ तो मेरी बात सुनकर सूख जाते हैं और मेरे सामने न आकर पुनः उसी दम्भी धार्मिक गुरु के पीछे लुका जाते हैं। प्रश्न उठता है कि कोई भी आपकी बात नहीं माना। कहते हैं भाई सभी उक्त ज्ञान में सराबोर हैं। एक भी मेरी बात पर प्रतीति नहीं कर रहा है जिसके कारण जो लोगों का मूलधन आत्मज्ञान है उसको गँवाकर अर्थात् उसको नष्ट कर चलते भये। वास्तविक ज्ञान न होने के कारण भगवान यमराज की जो मृत्यु की डोरी थी, जो प्राणियों को वश में करने का उनका प्रभाव था वह दूर नहीं हो सकी। आत्मज्ञान की प्राप्ति के बिना बार-बार यमराज के प्रभाव में पड़ता गया। आज अर्थात् इस मनुष्य शरीर में ही कार्य हो सकता था। इसी में तू अपने स्वरूप को पहचान सकते थे। परम शाश्वत की प्राप्ति हो सकती थी। परन्तु तू ऐसा कर न सका। काल अर्थात् जब दूसरी योनियों में जाओगे परवश हो जाओगे कुछ कहने-सुनने की शक्ति नहीं रह जायेगी। तब तुम्हारा कार्य सम्भव कैसे हो सकता है। ज्ञान का अधिकारी तो केवल मनुष्य योनि में ही है। पशु योनी में कहाँ सुख सम्भव है। कर्म रूपी गठरी को लादकर जब यह आत्मा दिगन्तर अर्थात् इस मनुष्य देश से पशु देश में चला जाता है जहाँ दुःख ही दुःख प्राप्त होते हैं। क्या कहुँ पश्चाताप है सहज अर्थात् व्यर्थ के विचार में ही आत्मतत्व को गँवा दिया। हे भाई ! सांसारिक वस्तुओं के लाभ से तो हानि होती है। उसकी चाहना क्यों करते हो भला कहो ! यह धन सम्पत्ति, पुत्र, कलत्र बन्धु-बान्धव, नाता-गोता किसको सुख दिये। इनकी वृद्धि के विचार से तो सभी मनुष्यों का नुकसान हुआ है। यदि तुम्हें मेरी बातों में विश्वास है तो रास्ते पर आ जाओ और मेरे कहे हुए मार्ग का अनुसरण करो। जो तुम्हारी ओछी बुद्धि है वह भग्न चन्द्रमा के समान है। यदि तू मेरी बात को मानता तो उस ओछी बुद्धिवाला चन्द्रमा रूपी मन का अवश्य नाश हो जायेगा। देखो तुम्हारा स्वामी जो है वह तुम्हारे ही भीतर त्रिकुटी संगम में निवास करता है जहाँ पर इंगला, पिंगला एवं सुषुम्ना का मिलन है इसी की सन्धि में अपने

स्वामी का निवास है जो अहर्निश ध्यान करेगा तो वह स्वामी का दर्शन कर लेगा ।

**तबही बेस्नु कहा समुझाई । मैथुन अस्ट तुम जीतउ जाई ।।**
**तब सनकादिक तत्तु विचारा । जैसे रंक परा धन पारा ।।**
**भौ मरजाद बहुत सुख लागा । यहि लेखे सभ संसै भागा ।।**
**देखत उतपति लागु न वारा । एक मरै एक करै बिचारा ।।**
**मुये गये की काहु न कही । झूठी आस लागि जग रही ।।**

**शब्दार्थ**—तबही–उस समय । अस्ट–आठ । मैथुन–स्त्री-प्रसंग (आठ प्रकार के) काम की दृष्टि से स्त्री की ओर देखना, गुणानुवाद सुनना, उसकी बात करना । १. श्रवण २. कीर्तन ३. सुमिरन ४. चिन्तन, ५. एकान्त ६. वार्त्तालाप ७. दृढ़ संकल्प ८. प्राप्ति । एकान्त में मिलना, उसकी चाहना करना, उसके लिए प्रयत्न करना, उसके साथ रति करना, उसकी संगति करना । तत्तु–तत्व । रंक–गरीब अकिंचन । परा–गिरा हुआ । भौ–हुआ । मरजाद–सम्मान ।

**भावार्थ**—आत्म तत्व की प्राप्ति का बड़ा महत्व है । एक बार भगवान विष्णु के पास ब्रह्मा के चार मानस पुत्र आत्मज्ञान के लिए पधारे । कुमार ऋषियों ने जगन्नियत्ता भगवान विष्णु से प्रश्न किये कि प्रभो ! मुझे आत्मज्ञान चाहिए । इस पर भगवान विष्णु ने सनकादिकों से कहा कि पहले तुम लोग संयम, नियम करो और आठ प्रकार के मैथुनों का त्याग करो । अब सनकादिकों ने प्रयत्नपूर्वक आठ प्रकार के मैथुनों का त्याग किया और शम, दम आदि तितीक्षा का अनुसरण किया । तदुपरान्त आत्मतत्व का विचार किया । उन्हें आत्मतत्व प्राप्त हुआ । उन्हें आत्म-तत्व प्राप्त होने पर ऐसा लगा जैसे मार्ग में कहीं पर गिरा हुआ धन किसी गरीब मनुष्य को मिल जाय । जो कभी धन का मुख भी नहीं देखा हो भला उसकी खुशी का ठिकाना रहेगा । जब सनकादिकों को आत्मज्ञान हुआ तब लोक में उनका बड़ा सम्मान हुआ, और लोग उनकी बड़ी

प्रशंसा करने लगे और उस आत्मज्ञान से वे लोग सदा सुखी रहने लगे। आत्मज्ञान के प्राप्त होने पर सभी प्रकार के संशय भाग गये। अब कोई संशय शोक नहीं रहा। इसलिए सृष्टि के सारे रहस्य को एवं सृष्टि की उत्पत्ति को उन्हें समझने में देर नहीं लगा। वे लोग देखते-देखते सृष्टि को समझ गये। क्या देखा ! ये अज्ञानी मनुष्य असत्य संसार के व्यवहार में फँसकर मरते जा रहे हैं और दूसरे उसका विचार करते हैं कि मेरी भी बारी आयेगी। यह विचार करते-करते पुनः सांसारिक विषयों में फँस गये। ये मूर्ख नहीं सोचते हैं कि कितने मर गये जिनके बारे में क्या कहा जाय ? कहना सम्भव नहीं है और किसी ने उनका स्थान भी नहीं बताया कि किस स्थान में है। यह संसारी जीव झूठी संसार की आशाओं में लगा रहता है। भला बिना इसके त्याग के कैसे ऊबर सकता है ? इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि सनकादिकों का अनुसरण करें और आत्मतत्व की प्राप्ति कर जन्म-मरण से रहित हो जाय।

साखी

**जरत जरत तैं बाचिहो, काहे न करऊ गोहार।**
**विष विषै के खायहु, राति दिवस मिलि झारि।।**

**शब्दार्थ**—जरत-जलते हुए। गोहार-सहायता के लिए आह्वान। झार-समस्त।

**भावार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि तुम जो इस संसार में जल रहे हो इस जलने से तभी बचोगे जबकि तुम प्रभु के नाम को लेकर पुकारोगे। क्योंकि प्रभु बड़ा दयालु है वह तेरी पुकार सुनेगा और संसार में जलते हुए तुझे बचा लेगा। यद्यपि उसके नाम रूप नहीं हैं पर वह जानता है कि लोग मुझे ही पुकारते हैं। यदि इस जलते हुए संसार में उस परमात्मा का ध्यान नहीं करोगे तो तुम्हारा कल्याण नहीं हो सकता क्योंकि तुम विषयरूपी विष को खाये हो, रात-दिन उसी सांसारिक विषयों में मिलकर निवास भी करते हो। इसलिए तुझे अमृतरूपी अच्छी

बातें पहले अच्छी नहीं लगती। भलाई इसी में है कि तुम सारी बुराइयों को त्यागकर सत्कर्म में लग जाओ।

**अन्तर्कथा**

'मुये गये कि' कथा कठ उपनिषद् में है। कि प्राणो का यह आत्मा मारने से नहीं मरता है, न जन्मता है। यह अज नित्य है तो भी उपाधि से भिन्न के समान होकर छाया और आतप के समान विचित्र हुआ है। शरीर रूप रथ का स्वामी है, जिसमें बुद्धि सारथी है, मन लगाम है इन्द्रिया घोड़े, विषय सड़क है। अज्ञानी की इन्द्रियाँ वश में नहीं रहती हैं, इससे मरने पर संसार में कर्म के अनुसार प्राप्त होता है। विज्ञानी इन्द्रियों को वश में करके संसार मार्ग के अन्त तक पहुँचता है।

# रमैनी १४

## व्यवस्थावादी प्रकरण

**बड़ सो पापी आहिं गुमानी। पाखंड रूप छलेउ नर जानी ॥**
**बामन रूप छलेउ बलि राजा। ब्राह्मन कीन्ह कवन को काजा ॥**
**बाम्हनहीं सभ कीन्हें चोरी। बाम्हनहीं को लागल खोरी ॥**
**बांभन कीन्हो वेद पुराना। कैसहुँ के मोहि मानुष जाना ॥**

**शब्दार्थ** :—पापी–कुकर्मी। गुमानी–अहंकारी, अभिमानी। पाखंड–धूर्त। छलेउ–छला। जानी–जाना। बामन–छोटा। बलि–पाताल का राजा। खोरी–दोष। कैसहुँ–किसी प्रकार से।। जाना–जाने। कै–मुझे।

**भावार्थ**—पूर्व रमैनी में संयम के द्वारा आत्मतत्व की प्राप्ति बताकर संसार में जलते हुए मनुष्यों को बचने के लिए सहायता माँगने की बात कही गयी है और विषय रूपी विष से बचने के लिए सावधान किया गया है। अब इस चौदहवीं रमैनी में व्यवस्थावादियों के बारे में उल्लेख किया गया है।

स्मरण रहे कि यहाँ ब्राह्मण वर्ण से तात्पर्य नहीं है। ब्राह्मण जाति की जो पुरोहिती व्यवस्था है उसी से कहने का तात्पर्य है क्योंकि जैनी एवं इस्लामी लोग मुसलमान ब्राह्मण नहीं होते। परन्तु उन धर्मों के व्यवस्थापकों को भी ब्राह्मण करमी माना गया है। जैसे यहाँ पर हिन्दू धर्म में ब्राह्मणों का पौरोहित्य कर्म है उसी प्रकार संसार के अन्य धर्मों में भी पौरोहित्य कर्म होता है। यहाँ पर ब्राह्मण शब्द मात्र-प्रतीक है और आलोचना केवल व्यवस्था की ही की गयी है। ये व्यवस्थावादी बड़े क्रूरकर्मी होते हैं और अभिमान तो इतना होता है कि अपने को अचिन्त्य सत्ता के मुख से होना बताते हैं और किसी पापकर्म से डरते नहीं। पाखण्डी का रूप धारण कर अनेक मनुष्यों को छलते-फिरते हैं यहाँ तक कि राजा बलि को छलने के लिए भगवान विष्णु ने भी इन्हीं छलियों के रूप को धारण किया था अर्थात् भगवान विष्णु ने भी ब्राह्मण रूप में आकर छल किया था जिसके कारण उन्हें उक्त कलंक लगा था। यह कथा पुराण में प्रसिद्ध है। तात्पर्य यह है कि याचक रूप व्यवस्थावादियों का कार्य बड़ा घृणित है। इन छली व्यवस्थावादियों ने किसकी भलाई वाला कार्य किया ? ये छली व्यवस्थावादियों ने सभी प्रकार की चोरियाँ की हैं जिसके कारण इन व्यवस्थावादी ब्राह्मणों को दोष भी लगा है। इन्होंने अनेक मनमाने विधान बनाये जिनमें मनुष्यों का विभाजन किया और विधानों का नाम वेद, पुराण रखा और उन वेद-पुराणों को मनुष्य कृत न कहकर ईश्वर कृत बताया। इन व्यवस्थावादी छली ब्राह्मणों का यह भी आशय था कि वेद-शास्त्रों को बनाने में मनुष्यों में मेरी अधिक ख्याति होगी और ये मनुष्य लोग मेरे को माने कि हम देवता हैं। मुझे ईश्वर ने अधिकृत किया है।

**टिप्पणी**—१. सभ चोरी : भारतवर्ष के पतन में एक यह भी बहुत बड़ा कारण है कि देश की एक बड़ी जनसंख्या को शूद्र नाम देकर उनके विद्या और शास्त्र अधिकार को छीनकर उन्हें सहस्रो वर्षों से अन्धकार में रखा गया। इसके मूल में स्वार्थ भावना ही काम कर रही

थी। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। "ब्राह्मण बिना सोचे-विचारे शूद्र का धन ले लेवें क्योंकि शूद्र का धन पर किंचित अधिकार नहीं है। उसपर अधिकार स्वामी (ब्राह्मण) का ही है।"

( मनुस्मृति ८/४१७ )

"बिल्ली, नेवला, नीलकण्ठ, पक्षी, मेढक, कुत्ता, गोह, उल्लू और कौवा को मारकर शूद्र हत्या का प्रायश्चित करे अर्थात् बिल्ली आदि को मारने में जितना पाप है उतना ही पाप शूद्र को मारने में है।"

( मनु० ११/१३१ )

"जो शूद्र को धर्मोपदेश करता है, व्रत बतलाता है, वह उसके साथ ही 'असंवृत' नाम के नरक में प्रवेश करता है।"

( मनु० ४/८१ )

"ब्राह्मण बुरे आचरण वाला हो तो भी पूजनीय है, शूद्र जितेन्द्रिय होने पर भी पूज्य नहीं, क्योंकि कौन ऐसा मूर्ख है जो दुष्ट गौ को छोड़ कर सुशीला गधी को दूहे।" ( पाराशर स्मृति ८/३३ )

"अग्नि चाहे शास्त्रविधि से संस्कारित हो चाहे संस्कारहीन, वह महान देवता है। वैसे ब्राह्मण चाहे मूर्ख हो चाहे विद्वान् वह महान देवता है।"

( मनु० ९/३१७

"यदि शूद्र ब्राह्मण को गर्व के साथ कुछ बातें करें तो राजा शूद्र के मुख में गरम तेल भरवा दे, यदि शूद्र किसी उच्च जाति वाले का अपमान से नाम ले तो उसकी जीह्वा में दश अंगुल की कील लाल करके गाड़ दे।" (विष्णु स्मृति अ० ५ सू० १९-२५। स० ५।१९५०)

"यदि शूद्र जान-बूझकर वेद को सुने तो उसके कान में गला हुआ शीशा अथवा लोहा डाल दे, यदि वह वेदोच्चारण करे तो जीह्वा काट ली जाये, यदि वह वेद-मन्त्र को स्मरण रखे तो उसके दो टुकड़े कर दिये जाँय।" ( गौतम धर्म सूत्र अ० २०/सूत्र० ४-६। स० ५।१९५०)

"जो शूद्र अपने प्राण, धन, स्त्री इत्यादि सब ब्राह्मण को समर्पण कर दे, उस शूद्र का अन्न ब्राह्मण ग्रहण करे अन्य शूद्र का नहीं।"

(विष्णु स्मृति अ० ५/११)

"एक ब्राह्मण का पुत्र मर गया। ब्राह्मण बिलखता हुआ श्रीराम के दरबार में गया। ब्राह्मणों ने कहा किसी धर्मवान राजा के राज में पिता के रहते पुत्र का मरण नहीं होता, निश्चय ही कोई शूद्र तपस्या कर रहा है। राम धनुष-बाण लिए और खोजते हुए वन में पहुँचे। वहाँ एक शंबूक नाम का शूद्र तपस्या कर रहा था। राम ने कहा दुष्ट! तू शूद्र होकर तपस्या क्यों कर रहा है? उसने कहा स्वर्ग के लिए। राम ने कहा—तू शूद्र है। तपस्या करने का अधिकारी नहीं है। राम ने तुरन्त शंबूक को मार डाला। देवता फूल बरसाये और कहे धन्य श्रीराम। आपके बिना यह उत्तम काम कौन करे। यह शूद्र सदेह हमारे स्वर्ग में आना चाहता था। इससे तो हमारा स्वर्ग भी छूवा जाता। उस शूद्र के मरते ही इधर ब्राह्मण-पुत्र जी उठा।" (वाल्मीकी रामायण : उत्तरकाण्ड)

उपर्युक्त स्मृति एवं रामायण के उल्लेख से स्पष्ट हो जाता है कि व्यवस्थावादी ब्राह्मणों ने दूसरे मनुष्यों को अधिकार से कितना वंचित कर दिया है। मरण से जन्म तक सारी क्रियायें अपने अधिकार में रख लीं। जिन लोगों ने इनकी बात नहीं मानी उनको वर्ण च्युत कर दिया। सभी अधिकारों से उनको वंचित कर दिया। सत्व के अपहरण से उनका सब कुछ छीन गया। इसीलिए सद्गुरु कबीर ने कहा कि ब्राह्मणों ने सभी प्रकार की चोरियाँ कीं। इन लोगों ने किसी का कार्य नहीं किया जिसके कारण सबसे बड़े दोषी ये समाज के अगुवा लोग हैं। इनको व्यवस्थावादी इसलिए कहा गया कि ये सारे धर्म की व्यवस्था देते हैं। यदि कोई बात धर्मशास्त्र में नहीं लिखी होती है तो कोई अड़चन आने पर पुरोहित ब्राह्मण ही फतवा दे देते हैं। किसका हित होगा, किसका नहीं होगा उसका विचार नहीं करते हैं जो मन में आता है वही आदेश दे डालते हैं।

स्मरण रहे कि फतवा शब्द मुसलमानों के यहाँ व्यवहृत होता है। व्यवस्था न बदले इसलिए यहाँ भी फतवा की बात कही गई है। पूर्ण स्वत्वहरण की बात जानने के लिए जिज्ञासुओं को चाहिए कि मनुस्मृति, पराशरस्मृति, विष्णुस्मृति, गौतमस्मृति, और व्यासस्मृति विशेष रूप से देखें। क्या-क्या अनाचार इन स्मृतियों में लिखे गये हैं जो मनुष्य-कृत नहीं कहे जा सकते। उक्त स्मृतियों के लेखक मनुष्य के रूप में पिशाच अवश्य रहे होंगे। क्योंकि इन मानव-पिशाचों ने हिन्दू-समाज के बहुत बड़े भाग को अलग-थलग कर दिया है। उक्त अपराधियों को आनेवाली पीढ़ी कभी क्षमा नहीं करेगी। सज्जन लोग पुरानी बातों का न ध्यान कर नये सिरे से समाज का निर्माण करें और इन नर पिशाचों के बहकावे में न आवें। मनुष्यों में न कोई शूद्र है न कोई ब्राह्मण है। ये सब बाह्य बात के बखेड़े हैं। गुरूघंटाल लोगों ने अपने जीने-खाने और पूजाने के लिए सारी बातों की रचना की। मनुष्य का सच्चा धर्म वही हो सकता है जिसमें न कोई ऊँच है, न कोई नीच है। मानवमात्र एक है और सबके लिए सत्कर्म करने का अधिकार है। सभी लोग इस नर-तन में मुक्त होने के अधिकारो हैं। मुक्ति किसी के बाबा-दादा की देन नहीं है जो किसी पर रोक लगा सके। इसलिए सभी लोग भगवान कबीर के उपदेश पर आचरण करें।

**एक से ब्रह्मै पंथ चलाया। एक से हंस गोपाले गाया।**
**एक से संभू पंथ चलाया। एक से भूत प्रेत मन लाया॥**
**एक से पूजा जेनि विचारा। एक से निहुरि निवाज गुजारा॥**
**कोइ काऊ का हटा न माना। झूठा खसम कबीर न जाना॥**

**शब्दार्थ**—ब्रह्मै—ब्राह्मण व्यवस्थावादियों ने। संभू—शैव व्यवस्थावादियों ने। जैनि—जैनियों ने, निहुरि—झुककर। गुजारा—चलाया। निवाज—प्रार्थना। काऊ—किसी का। हटा—रोक व रुकावट आदेश। खसम—स्वामी।

**भावार्थ**—इन व्यवस्थावादी ब्राह्मणों ने संसार में अनेक पंथ चलाये,

अनेक सम्प्रदाय चलाये और किसी को हंस की उपासना बताये और किसी को भगवान गोपाल की उपासना बतलाये अर्थात् किसी ने भगवान कृष्ण के नाम पर सम्प्रदाय चलाया—और उनके नाम का सुमिरण बताया। किसी व्यवस्थावादी ने शैव सम्प्रदाय चलाया अर्थात् शिव के नाम पर पंथ खड़ा किया, और किसी ने अनेक भूत प्रेत जंत्र-मंत्र में मन लगवाया तथा सभी को भगवान शंकर का गण बताया। इसी प्रकार से जैनी व्यवस्थावादी ब्राह्मणों ने अर्हन्त को खुश करने के लिए उनकी मूर्तियों को पूजने के लिए बताया। इसी प्रकार से इस्लाम के व्यवस्था-वादी ब्राह्मण कर्मियों ने अल्लाह् के सामने झुक-झुक कर निवाज प्रार्थना करने को बताया और तमाम हदीश पुराणों का निर्माण किया। जिसमें तरीकत (ज्ञानकाण्ड), शरीयत (कर्मकाण्ड) हकीकत, मारिफत का उल्लेख किया और तमाम कर्मकाण्ड का बवेला खड़ा किया। बलि पर्वों पर करोड़ों प्राणियों की बलि देकर अल्लाह् को खुश करने लगे। भला यह भी कोई धर्म है। प्राणियों को काटकर ईश्वर को चढ़ाया जाय। मूर्तियों को न मानकर मजारों एवं मसजिदों को खुदा का घर बताना इस्लामियों के यहाँ निश्चित किया गया है। इसी प्रकार से हिन्दू धर्मावलम्बी व्यवस्थावादी ब्राह्मणों ने तमाम प्रकार के कर्मकाण्ड रूपी जाल को पसारा। अनावश्यक नियम बनाये। जिन नियमों से मनुष्यों का कोई लाभ नहीं है। हिन्दूओं के स्मृति ग्रन्थ पढ़ने से लोगों के दाँत खट्टे हो जायेंगे। हिन्दू व्यवस्था-वादी ब्राह्मणों ने यहाँ तक लिखा है कि शूद्रों से बात करने पर स्नान करके भगवान भास्कर का दर्शन करने से शुद्ध हो सकता है। इस प्रकार की अनेक गपोड़ चउथक बातें लिखी गयी हैं जिनका कोई सिंग पूँछ नहीं है। जैसे जैन लोग भी अपने को पूर्ण अहिंसक मानते हैं पर उनके पुराणों की बात बुद्धि से परे है। जो बात जैनी पुराणों में लिखी गयी है मुझे तो लगता है कि सब भाँग खा-खा करके लिखे हैं। जिन सज्जनों को देखना है तो जैन पुराण देख सकते हैं। इन धर्मों की बातें यदि लिखी जाय तो चार-छः पृष्ठों में नहीं आने को हैं। इसलिए यहाँ पर इतना विस्तार

करना युक्ति-युक्त नहीं है। सद्‌गुरु कहते हैं कि ये व्यवस्थावादी नित्य आपस में संघर्षरत रहते हैं और एक दूसरे को अपने समान नहीं समझते हैं। इसलिए एक दूसरे की बात दूसरा नहीं मानता है। सद्‌गुरु कहते हैं कि इन झूठे धर्मस्वामियों को मैं कुछ नहीं जानता अर्थात् जिनका गलत सही सिद्धान्त है उसकी मान्यता मैं नहीं देता और इनके द्वारा जो कल्पित स्वामी है वह भी मेरी समझ में नहीं आता।

**टिप्पणी**—१. "सभ चोरी" का तात्पर्य यह है कि जो मनुष्यों का अधिकार होता है जिसको 'स्वत्व' भी कहते हैं उस अधिकार या स्वत्व को उसको न बताना, न देना, यह चोरी है। दूसरी बात यह है कि हिन्दू धर्म में ही चार वर्ण हैं और धर्म सबका एक है। परन्तु व्यवस्थावादी ब्राह्मणों ने जो धर्म के संस्थापक थे, आत्मतत्व के ज्ञाता थे, उन सबको तीन वर्णों से अलग रखा। यही स्वत्व की चोरी है पूरे मनुष्यों का लक्ष्य भव बन्धन से छूटना है और उस भव बन्धन छूटने वाले ज्ञान का ब्राह्मणों ने अपहरण किया, इसलिए कबीर साहब चोरी ब्राह्मणों ने की है कहते हैं। अगर लौकिक चोरी से अर्थ लिया जायेगा तो दूसरे लोग अधिक चोरी किये हैं।

**तन मन भजि रहु मोरे भगता। सत्त कबीर सत्त है बक्ता।।**
**आपुहि देउ आपुहीं पांती। आपुहिं कुल आपु है जाती।।**
**सरबभूत संसार निबासी। आपुहिं खसम आपु सुख बासी।।**
**कहइत मोंहि भयल जुगचारी। काके आगे कहौं पुकारी।।**

**शब्दार्थ**—भगता-उपासक, मेरे शिष्यों। सत्त-सच्चा। सत्त-सच बोलने वाला। आपुहि-आपे, आप। देउ-देवता। पांती-फूल पत्ती। कुल-खानदान वाला। आपु-आप। जाती-वर्ण वाला। वासी-स्थान, निवास। कहइत-कहते। मोहि-मुझे। भयल-हुए। काके-किसके।

**भावार्थ**—आपका कहना है कि हे मेरे अनुयायी भक्तों! जिस सत्य की मैं बात करता हूँ उस सत्य की उपासना आप लोग तन मन से करें

क्योंकि मैं सत्य बोलने वाला हूँ और मेरा सत्य जो आत्मतत्व है वह निरन्तर रहने वाला है। उसी का चिन्तन मनन एवं सुमिरन करना चाहिए। वह परमदेव अपने आप में देवता है और सर्वव्यापक होने के कारण उसपर चढ़ने वाला फूलपत्ती भी आप ही हैं। वह एक तत्व कुल और वर्णों में भी निवास करता है। इसलिए उन सबकी जाति आपही हैं। यहीं तक नहीं वह संसार के सभी भूतों में निवास कर रहा है। वही परमतत्व स्वयं अपना स्वामी है। उसका कोई नियामक नहीं है और वही सुख का स्थान भी है। वह सबकी आत्मा होने के कारण सब वही है। उससे भिन्न कोई दूसरा तत्व नहीं है। वह सारे प्राणियों के हृदय में जीव रूप से भी बैठा है और उपाधि-भेद से ईश्वर होकर भी बैठा है एवं उपाधि से रहित होने के कारण ब्रह्म होकर सभी भूतों में निवास करता है। इसलिए हे मनुष्यों ! उसी का सुमिरन भजन करो। उस परमतत्व को समझाते हुए मुझे चार युग हो गये परन्तु ये अज्ञानी मनुष्य समझ नहीं पा रहे हैं। भला मैं किसके आगे पुकार कर कहूँ। महात्माओं की बात कोई मानने के लिए तैयार नहीं है।

**विशेष** : यहाँ पर कबीर साहब ने अपने को चारो युगों में आने की बात किया है। कबीरपंथी गाथा-ग्रन्थों के अनुसार तो कहा जा सकता है कि कबीर साहब चारो युगों में आते हैं। जिस प्रकार से भगवान कृष्ण ने अपने को चारो युग में आने की बात कही है। कुछ टीकाकारों ने उक्त पंक्ति का अर्थ चारो युगों में अनेक महात्माओं के उपदेशों से लिया है। बात जो भी हो रूढ़ि बलिष्ठ होती है। मेरा अपना मत है कि जो युक्त योगी हैं वे अभाव को प्राप्त नहीं होते। वे इच्छा रूपी होते हैं। उनका कभी भी प्रगट होना असम्भव नहीं है। वे उस प्रकार से मुक्त नहीं हो जाते कि उनका अभाव हो जाता है। वे सदा ज्ञान अवस्था में अवस्थित होते हुए भी संसार के हितार्थ अनेक नाम रूपों में प्रगट होते रहते हैं। आने वाली बात को कबीर साहब ने कई एक बार कहा है जिसका उल्लेख स्थान-स्थान पर इसी 'बीजक' ग्रन्थ मेंहुआ है।

**साखी**

**साचहिं कोइ न मानैं, झूठहिं के संग जाय।**
**झूठहिं झूठा मिलि रहा, अहमक खेहा खाय ॥**

**शब्दार्थ**—साचहिं–सच्ची बात। झूठहिं–झूट्ठों के, अहमक–गँवार, खेहा–धूलि।

**भावार्थ**—पहले सद्गुरु ने कहा कि मैं चारों युगों से कहते आ रहा हूँ पर मेरी सच्ची बात को कोई मानने को तैयार नहीं है क्योंकि ये झूठ बोलने वाले झूट्ठों के साथ ही जाकर मिल जाते हैं और ये दोनों झूट्ठे मिल करके व्यवस्थावादी पंथ के राही हो जाते हैं जिसके कारण इन्हें कुछ हाथ नहीं लगता है और अन्त में ये मूर्ख लोग धूल फाँककर रह जाते हैं। इनको चाहिए कि अमृत चखने के लिए कुसंगियों का साथ छोड़ दें।

**अन्तंकथा**

● वामन अवतार की कथा विष्णु धर्मोत्तर पुराण खं० १ अ० २१ में है कि—प्रथम स्वयंभुवः मन्वंतर में विश्वभुग् देवेन्द्र हुए। उनके कुल के लोग घोर असुर हुए और उनका राजा वाष्कलिनामा असुर हुआ, सो इन्द्र के राज्य को वलात् से हर लिया। तब इन्द्र ब्रह्माजी के पास गये, ब्रह्मा जी इन्द्र समेत विष्णु के शरण में गये, और सब कथा सुनाये। तब भगवान बोले, कि मैं इन्द्र के राज्य को लौटाऊँगा। आप अपने लोक में जाइये। मैं वामनरूप से वाष्कलि के पास जाऊँगा। वह देखकर विस्मित होगा। उसी समय इन्द्र भी जाकर याचना करें, कि हे वाष्कले, तुम मेरा तीनों लोक बल से जीत लिये हो, मुझे अग्नि स्थापन के लिए वामन के पैर से तीन पग जमीन दो। इस प्रकार कहने पर वह अवश्य तीन पग जमीन देगा। ऐसा कहने पर ब्रह्मा जी अपने घर गये। भगवान वामन रूप से वाष्कली के पास गये। वह भगवान को देख कर आश्चर्य में था हो तभी इन्द्र भी पहुँचे। वाष्कलि ने इन्द्र का सत्कार किया, आने का

कारण पूछा, तो इन्द्र ने कहा दूसरे की भूमि में नहीं रहना चाहता, इससे अग्नि स्थापन के लिए इस वामन के पग से तीन पग भूमि दो, अच्छा तीन पाद लेकर सुखी रहो। फिर भगवान ने पग बढ़ा कर तीनों लोक नाप लिए।

यही कथा पद्मपुराण में कुछ भेद से है। यहाँ स० १ अ० ३ में अदिति के गर्भ से भगवान के जन्म का वर्णन है और मत्स्यपुराण अ० २२४ इत्यादि में भी यह कथा है। वहाँ भी अदिति के गर्भ से प्रगट होने का वर्णन है और विरोचन के पुत्र बलि से इन्द्र का राज्य लौटाया है, इसी से कबीर साहब भी कहते हैं—'वामनरूप छल्यो वलिराजा'।
श्रीमद्भागवत अष्टम स्कन्ध अ० १८ में वामन भगवान का जन्म देवमाता अदिति से ही लिखा है। असुरों से पुत्रों का राज्य हरण होने पर अदिति दुःखी हुई और अपने पति से दुःख की बात सुनाई,। तब उन्होंने एक व्रत बताया जिससे भगवान विष्णु अदिति को दर्शन दिये, और उसी के गर्भ से जन्म लेकर बलि के यज्ञ में गये, और स्वयं अ० १९ में तीन पाद भूमि माँगा है। फिर बलि ने और माँगने के लिए कहा, तब भगवान ब्राह्मण के सन्तोष धर्म इत्यादि का वर्णन किया, बलि देने के लिए वचन दे चुका था उसके बाद कुल गुरु कहने लगे, ये देव पक्षपाती विष्णु हैं, दो पग में ही सब लोक ले लेंगे, तीसरे पग के लिए क्या गति है, अपार दुःख होगा। बलि ने सोच विचार कर कहा कि झूठ से बड़ा कोई पाप नहीं है अतः दुःख सहना स्वीकार है परन्तु न नहीं कह सकते हैं। इसके बाद गुरु ने शाप दिया, तो भी बलि ने दान दिया। भगवान दो पैर से तीनों लोक नाप दिये, एक पैर से देह नाप लिये, सुवल लोक हर्ष पूर्वक भेज दिये। इन्द्र को स्वर्ग में स्थिर किए।

● हंसावतार की कथा विष्णुधर्मोत्तर पुराण खण्ड २ अ० २२६ में है कि—कृतयुग (सत्ययुग) में प्रजा ज्ञान निष्ठ थी, सर्वगुण सम्पन्न थी, फिर सत्ययुग के बाद परिग्रह में प्रवृत्त हुई। जिससे लोभ द्वेष बढ़ने लगा ज्ञान लुप्त हो गया और धर्म का नाश हुआ, धर्म ह्रास से लोक भी नाश हुए,

फिर नष्ट होते देख कर भगवान हंस रूप होकर जमीन पर विचरने लगे। किसी देश में ऋषियों को ज्ञान बिना मोह-युक्त देखकर कुशल पूछा। ऋषि लोग बोले ज्ञान बिना कुशल कैसे हो। हंस भगवान बोले मैं ज्ञान दूँगा। ज्ञान के बिना संसार का नाश न हो जाय, इसलिए रक्षा हेतु ज्ञान दीजिये, और अपने स्वरूप का भी परिचय दीजिये, आप कौन हैं ? तब प्रकट होकर ज्ञान दिया, तब ऋषियों ने शिष्यों को ज्ञान दिया।

## रमैनी १५

### मार्ग अनभिज्ञ प्रकरण

**बोनई बदरिया परि गौ संझा। अगुआ भूले बनखंड मंझा॥**
**पिअ अंतै धनि अंतै रहई। चउपरि कामरि माथे गहई॥**

साखी

**फुलवा भार न लै सकै, कहै सखिन सो रोय।**
**ज्यों ज्यों भीजैं कामरी, त्यों त्यों भारी होय॥**

**शब्दार्थ**—बोनई–झुक गयी। बदरिया–बादल, मेघ, अज्ञान। परिगौ–हो गयी। संझा–सन्ध्या, वृद्धावस्था। अगुवा–नेता, धर्मप्रवर्त्तक। वनखंड–जंगल के किसी एक भाग में। मंझा–मध्य में। पिऊ–स्वामी, पति, परमात्मा। अंतै–अन्यत्र। धनि–पत्नी, उपासिका, भक्त। रहई–रहती है। चउपरि–चार परत वाली। कामरि–कम्बल। माथे–सिर पर। गहई–ग्रहण किया, ओढ़ा। फुलवा–निर्बल, अल्पज्ञान वाला जीव, पुष्प। भार–गुरुत्व, वजन, कर्म। सकै–शक्य, समर्थ। सखिन–मित्र जन से।

**भावार्थ**—ऊपर कहा जा चुका है कि गलत लोगों की संगत में मिलकर एक हो गया अर्थात् झूट्ठे गुरु झूट्ठे शिष्य मिलकर एक हो गये, सत्य मार्ग उनको अच्छा नहीं लगा इसलिए वे अज्ञानी मनुष्य खेह खा-धूल फाक रहे हैं। यावत् जीवन कुछ प्राप्त नहीं हुआ। वृद्धावस्था के आने पर अज्ञानरूपी

बदली चारों तरफ से घेर लिया। दिन के अन्त स्वरूप वृद्धावस्था रूपी सन्ध्या आ गई। परिणामस्वरूप अज्ञान के पर्दे नहीं फटे। निराशा हाथ लगी क्योंकि अगुआ ठीक नहीं था। वह स्वयं मार्ग का जानने वाला नहीं था। संसाररूपी वनखण्ड के मध्य में स्वयं भूल गया। मिलना था जिससे वह प्रियतम अन्यत्र था और मिलने वाली भक्तिन सकामी पुरुष अन्यत्र रहा क्योंकि जो उपदेशक था उसको स्वयं मार्ग का ज्ञान नहीं रहा इसलिए प्रेमी और प्रियतमा से सम्बन्ध नहीं हो सका। अन्त में चार अवस्थारूपी अर्थात् बाल्य, युवा, यौवन, वृद्धा के चार परतवाली कम्बल वृद्धत्व को प्राप्त होने पर सिर का बोझ हो गया। सकाम कर्मों का भार बहुत बड़ा था।

निर्बल बुद्धि एवं निर्बल जीवात्मा ढो नहीं सका। मरने के समयसबसे रो-रोकर कहने लगा कि हाय ! कुछ हाथ नहीं लगा।

**रूपकार्थ**—कोई मनुष्य जो किसी समाज का नेता था किसी वनखंड में जा रहा था। रास्ता मालूम नहीं था। चारों तरफ भटक रहा था। इसी बीच में बादल चारों तरफ से घिर गये। दिन के रहते हुए बादलों के घिरने से सन्ध्या मालूम होने लगी। अन्धकार के घिर जाने के कारण जिससे मिलना था वह कहीं अन्यत्र ही था खोजने वाला भी अन्यत्र ही था। इसी बीच में वर्षा होने लगी। वह समुदाय का नेता वर्षा से अपने बचने के लिए साथ की कमरी को चार परत कर ओढ़ लिया परन्तु इतनी वारीश हुई और कम्बल में इतना पानी भर गया कि जिसका बोझ या भार फूल के सदृश वह सुकुमार व्यक्ति सह नहीं सका। आस-पास के लोगों से अपने दुःख को कहने लगा। इसी प्रकार से मनुष्यों का सही नेतृत्व करने वाला नहीं मिलता तो वह भी संसाररूपी वन में परेशान हो जाता है और जिस वस्तु की उसकी चाहना होती है चाहे वह लोक का सुख हो, चाहे पर लोक का सुख हो, चाहे आत्मज्ञान का सुख हो, वह उसमें हाथ नहीं लगता। अन्ततः अज्ञान के कारण जो दुःख होते हैं वही वर्षा है। शरीर ही मनुष्य का कम्बल है। वह चौथी अवस्था आने पर इतना भारी हो जाता है कि उठना-बैठना सुख से रहना दुष्कर हो जाता है और अपने समाज के

लोगों से अप्राप्त की कथा कहकर पश्चाताप करता है एवं ज्यों-ज्यों दुःख रूपी पानी से कमरीरूपी शरीर भींगती है त्यों-त्यों उसके सिर का बोझ बढ़ता जाता है। यह दुःख रूपी बोझ सिर से तभी टलेगा जब वह सच्चे सद्गुरु की प्राप्ति कर लेगा अन्यथा बार-बार संसार में जन्म-मरण रूपी दुःख से भींगीं हुई कमरी ढोते रहेगा।

## रमैनी १६

**चलत चलत अति चरन पिराना। हारि परे तँह अति रे सेयाना॥**
**गन गंधर्ब मुनि अंत न पाया। हरि अलोप जग धंधे लाया॥**
**गहनी बंदन बान न सूझा। थाकि परे तहँ किछउ न बूझा॥**

**शब्दार्थ**—अति–बहुत। पिराना–दुखने लगा। चरन–पैर। हारि–थक गये। रे–हे। सेयाना–बड़े-बड़े चतुर मनुष्य। गंधर्व–गाने-बजाने वाले। गन–समूह। अलोप–गुप्त। गहनी–ग्रहण, पकड़। बंदन–बन्धन। बान–ज्ञान, बात, वार्त्ता। सूझा–दीख पड़ा, समझ। किछउ–कुछ भी। बूझा–समझा।

**भावार्थ**—शरीररूपी कम्बल के भींगने से पंथ चलना कठिन हो गया। चलते-चलते पैरों में बहुत पीड़ा होने लगी। बहुत बड़े-बड़े शक्तिशाली चलवैया[1] ज्ञानी जन सकामकर्मी भवरूपी पंथ में चलते-चलते थक गये। गन, गंधर्व, मुनि, ऋषि-समाज, पंडित समाज, वेदुआ-समाज (वेदज्ञ व वेदपाठी), योगी-समाज, भक्त-समाज जिनको वास्तविक ज्ञान नहीं मिला वे सब ऊपरी क्रिया-कलापों को करते-करते थक गये। उस परमतत्त्व अविनाशी को जिसने जगत का सृजन किया है संसाररूपी धंधे को चलया है, जो अपने हृदयस्थली में विराजमान है उस गुप्त रहने वाले हरि को पास में होने पर भी उपर्युक्त लोगों ने नहीं पाया। सकाम कर्म करते-करते अर्थात् बिना गुरु के मार्ग-दर्शन कराये हुए जिसके जो मन आया वही मार्ग अपना लिया। किसी को यह पता नहीं था कि यह टेढ़ा-मेढ़ा

१. चलने वाला।

रास्ता घनघोर जंगल में किधर गया है। इसलिए इस संसाररूपी जंगल में सब भटक-भटक कर मर गये। भटकने का कारण सबसे बड़ा यह था कि जो बन्धन था अर्थात् जिन काम्य-कर्मों से सारे मनुष्य बँधे हुए हैं उन्ही बन्धनों को सभी संसारी जीव पकड़े हुए हैं क्योंकि उन्हें गुरु-ज्ञान रूपी वाणी सूझ नहीं पड़ी। उस पर ध्यान नहीं दिया जो बन्धन का मार्ग था, जहाँ पर अज्ञानरूपी बादल घिरे हुए थे उस मार्ग पर चलते-चलते थक गये क्योंकि पहले किसी भेदिया से सही मार्ग की जानकारी नहीं की गयी।

**भूलि परे जिअ अधिक डेराई। रजनी अंधकूप होय आई॥**
**माया मोह उहाँ भरपूरी। दादुर दामिनि पौन अपूरी॥**
**बरसै तपै अखंडित धारा। रैनि भयावनि किछु न अधारा॥**

**शब्दार्थ**—जिअ–जीव। रजनी–रात्रि, अज्ञान दशा। अन्धकूप–अन्धकार युक्त मार्ग। माया–सांसारिक वैभव। उहाँ–उस सकाम कर्म में। दादुर–अल्प संतोषी प्राणी, मेढ़क। दामिनि–बिजली, क्षणिक ज्ञान। अपूरी–अपूर्ण। भयावनि–भयदाई। अखंडित–अविच्छिन्न।

**भावार्थ**—जिसके कारण पथिक रास्ता को भूल गया। जब रास्ता अनिश्चित हो गया तो जी में अधिक भय होने लगा। कारण कि अज्ञान रूपी रात्रि घिर आयी थी और मार्ग अन्धकारमय हो गया था। अर्थात् अज्ञान के कारण संसार बढ़ाने वाले मार्ग में इतना तल्लीन हो गये कि संसार से परे किसी वस्तु का ध्यान ही नहीं रहा। सकामकर्मों के द्वारा माया खूब बटोरी गयी जिसके रख रखाव के लिए भरपूर चेष्टा भी रही जिसका मोह इतना बढ़ गया कि उस भव-पंथ को छोड़ना कठिन हो गया। मार्ग के अगल-बगल अज्ञान रूपी मार्ग के कारण छिछले ज्ञानी यत्र-तत्र टर-टर करते रहे और विद्युतवत् क्षणिक प्रकाश भी देते रहे परन्तु विघ्न रूपी पवन का झकोरा इतना प्रबल था कि वे सब जुगनूवत्

ज्ञान छिन्न-भिन्न होते रहे। इसपर पवन की तीव्रता के साथ-साथ भयानक वर्षा भी हो रही थी। वह वर्षा ज्येष्ठ, आषाढ़ जैसी वर्षा थी। उस जल से शीतलता के बजाय तपन की अजस्र धारा ही वरस रही थी अर्थात् माया मोह से व्याप्त संसारी जीव के ऊपर दैहिक, दैविक, भौतिक ताप रूपी वर्षा हो रही थी जिसको धन के द्वारा कभी सुख नहीं मिला। उसपर भी वर्षा के कारण रात्रि बड़ी भयावनी हो गयी थी। इन उपर्युक्त विपत्तियों से बचने के लिए कोई आधार भी नहीं था अर्थात् अज्ञान रूपी रात्रि इतनी भयावह होती है कि कुछ भी सत्कर्म आदि मनुष्य करने में असमर्थ होता है। ऐसी दशा में दुःखों से छुटकारा के लिये भला कौन सहारा दे सकता है ?

साखी

**सभै लोग जहड़ाइया, अन्धा सभै भुलान ।**
**कहा कोई न मानै, एकै माँहि समान ।।**

**शब्दार्थ**—जहड़ाइया–ठगे गये, भूल गये, यत्रतत्र छितरा गये। अन्धा–अज्ञानी। सभै–सभी। माँहि–में।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि उक्त पंथ के जितने भी पथिक थे सही दिशा की जानकारी के बिना सभी जहड़ा गये। वंचक गुरुओं ने ठग लिया। कारण कि ज्ञान रूपी नेत्र किसी के पास नहीं थे। इसलिए सब के सब संसार रूपी जंगल में भूल गये। मैं सही बात कहता रहा परन्तु कोई मानने के लिए तैयार नहीं है जितने लोग हैं वे सब जंगल रूपी संसार में समाये हुए है अर्थात् जो वंचक गुरुओं के भ्रामक उपदेश हैं उसी में सब समाये हुए हैं। अनेक प्रकार के भूत, भवानी, देवता, पित्तर की उपासना में लगे हुए हैं जिसके कारण सुख के दर्शन कभी नहीं हो पाते। इन मनुष्यों को चाहिए कि सही सद्गुरु की खोज करें जो वास्तविक गन्तव्य का मार्ग है उसकी जानकारी करें। तब उस आत्म-पथ की ओर अग्रसर होवें।

# रमैनी १७

## जिज्ञासु एवं वंचक गुरु प्रकरण

**जस जिउ आपु मिलै अस कोई। बहुत धरम सुख हृदया होइ ।।**
**जासों बात राम के कही। प्रीति न काहू से निरबही ।।**
**एकै भाऊ सकल जग देखी। बाहर परै सो होय विवेकी ।।**
**विखै मोह के फंद छुड़ाई। तहाँ जाय जहाँ काटु कसाई ।।**

**शब्दार्थ**—जस–जिस प्रकार। आपु–निज। अस–इस प्रकार। धरम–धर्म पुण्य, आध्यात्मिक भाव। जासो–जिससे। निरबही–निर्वहण, निवहो। भाऊ–भावरूप। कसाई–पशु का गर्दन काटने वाला, गड़ासा, वंचक गुरु।

**भावार्थ**—ऊपर की रमैनी में वंचक गुरुओं से सावधान रहने को कहा गया है। सावधान न होने पर जो दुर्दशा होती है उसका वर्णन भी किया गया है अब साहब कहते हैं कि जिस प्रकार से मैं हूं अर्थात् जिस प्र कार से सुगुरु होता हैं उसी प्रकार से यदि जिज्ञासु भी हो तो बहुत सधर्म की वृद्धि होती है। सधर्म की वृद्धि से और अच्छा जिज्ञासु के मिलने पर हृदय में बहुत बड़ा आनन्द होता है परन्तु उस प्रकार विवेकी जिज्ञासु नहीं मिलने के कारण जिससे मैं राम-तत्त्व प्रत्येक चेतन आत्मा की बात कहता हूँ उससे प्रेम का सम्बन्ध नहीं हो पाता। लौकिक सुख चाहने वाले शिष्यगण राम-नाम की महिमा सुनकर रंच मात्र प्रभावित हो जाते हैं परन्तु उस परम प्रभु सर्वात्मा राम से सकाम्यता के कारण स्थिर प्रीति नहीं रहने पाती। साहब कहते हैं कि इस तरह के भाव रखने वाले भक्तों को पूरे संसार में देख रहा हूँ जो लोक के सुख की ज्यादा चाहना रखते हैं। यदि कोई मनुष्य या जिज्ञासु वंचक गुरुओं के बताये हुए मार्ग से लोक-सुख से बाहर हो जाय विवेक करके और परम-तत्त्व में लग जाय तो वही पुरुष सही विवेकी है। जो सत्य असत्य का निर्णय करके संसार के विषयों का त्याग कर देता है। अन्य लोग तो ऐसे

हैं कि किसी प्रकार वेद शास्त्र की बातें सुनकर व सन्त महात्माओं के संसर्ग से संसार के विषयों से उपराम होकर सही दिशा चाहते है कि अब मुझे परम शान्ति मिले। सत्य मार्ग की तलाश में संसार की मोह-माया छोड़कर जाते हैं, वहीं जाते हैं जहाँ पर बहुत से टीम-टाम देखते हैं। जहाँ पर वंचक गुरु इस ताक में रहते हैं कि कोई शिकार ऐसा आ जावे कि हम चट उसको मूड़ लें और अपने पंथ का राही उसको भी बनावें। वह अधकचरा जिज्ञासु बेचारा जाकर बिना सोचे-समझे सिर कटा लेता है और जन्म भर के लिए बंचक का दास बन जाता है और वही वंचकई वह भी सीख लेता है।

**टिप्पणी**—कतिपय पंथाग्रही टीकाकारों ने धर्म शब्द का अर्थ धर्मदास किया है। भला ऐसे लोगों से क्या आशा की जा सकती है कि कबीर साहब के वाक्यों का सही अर्थ कर सकते हैं। जो अविधाओं को ज्यों का त्यों अर्थ न करके अपने मन्तव्यानुसार अर्थ करते हैं वह विद्या का दुरु-पयोग करना क्या उनके लिए शोभनीय है ?

**अहै कसाई छूरी हाथा। कैसेहुँ आवैं काटौं माथा ॥**
**मानुख बड़ो बड़ा होय आया। एकै पण्डित सभै पढ़ाया ॥**
**पढ़ना पढ़उ धरउ जनि गोई। नहिं तो निहचै जाऊ बिगोई ॥**

**शब्दार्थ**—अहै–है। कैसेहु–किसी प्रकार से। पढ़ना–पठनीय, आत्म-तत्त्व। गोई–गुप्त। बिगोई–विनष्ट व नरक।

**भावार्थ**—क्योंकि वंचक गुरु पूर्ण रूप से कसाई का काम करने से कसाई होता है। स्वार्थरूपी छुरी उसके हाथ में सदा विराजती है वह किसी प्रकार से आने वालो की प्रतीक्षा में लगा रहता है। अपने उपदेश के द्वारा स्वर्ग-नरक का भय दिखाकर एवं अन्य उपायों से भी अपने यहाँ लोगों को एकत्रित करता है। खड़ेश्वरी होकर, उर्ध्व बाहु होकर, पंचाग्नि तापकर, योगी होकर, संभोग से समाधि की साधना करने वाले, स्वयं भगवान कहलाने वाले, दूध पीकर, फल खाकर, मैं अन्न नहीं

खाता इत्यादि रूपकों के द्वारा लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने का उपक्रम रचते रहता है। स्मरण रहे कि विवेक वैराग्य, क्षमा, संतोष, मैत्री, आत्मज्ञान का हनन अपने प्रपंचों के द्वारा जो करता है वह पशु कसाइयों से हजारों गुना बड़ा कसाई है। माथा ऊँचा होता है सद्गुणो से। जो सद्आचरण है वही मनुष्यों का मस्तक है। जो सदा उस ताक में रहता है कि जो कोई आवै उसका माथा मैं काटूँगा तो वही कसाई के समान है। सद्गुरु कहते हैं कि हे भाई! छोटे-मोटे मनुष्यों की बात नहीं है कि उन्हीं को अज्ञान रूपी छुरी से काटा जाता हो इसमें तो बहुत बड़े-बड़े मनुष्य भी शिरोच्छेद करा लेते हैं जो शास्त्रों के ज्ञाता हैं जिनके सामने कोई चतुर नहीं है वे सब के सब वंचकों के द्वारा ठगे जाते हैं। क्योंकि मनुष्यों के जन्म के साथ ही वंचकों के पहरे पड़ जाते हैं वही एक ही विद्या सबको पढ़ाते हैं। जिससे मनुष्यों को लोक में आनन्द मिलता है अर्थात् बाल अवस्था के बाद गृहस्थी में प्रवेश कराते हैं। जिस मार्ग पर अपने रहते हैं—आजन्म मनुष्यों को सिखाते व पढ़ाते रहते हैं। सद्गुरु निर्देश करते हैं कि पढ़ने वाली विद्या पढ़ो जिससे तुम्हारा उद्धार हो सके। जो मैं सुनाता हूँ उसका मनोयोग से अध्ययन करो। परन्तु उस आत्मज्ञान को अपने ही तक गुप्त न रखो जितने भटके हुए लोग हैं उन सभी तक पहुँचाओ। वंचकों के जाल से सभी को छुड़ाओ नहीं तो निश्चित रूप से तुम नष्ट हो जाओगे अर्थात् आत्मधन रूपी विद्या के छिपाने से तुम्हारा विगोपन हो जायेगा।

साखी

**सुमिरण करहु राम कै, छाड़हु दुक्ख की आस।**
**तर ऊपर धै चापिहैं, कोल्हू कोटि पचास॥**

**शब्दार्थ**—सुमिरण–स्मरण चिन्तन, ध्यान। धै–पकड़कर। चापिहैं–दबाई है। कोल्हू–गन्ना पेरने का एक यन्त्र, पचास वर्ष पहले गन्ना पेरने वाला पत्थर का एक यन्त्र, जिसमें पचीस हाथ की जाट लगती थी और बैलों द्वारा खींची जाती थी। कोटि–कूटि, करोड़, जो ऊख के टुकड़े

कोल्हू में डालते थे, डालने की पहली क्रिया, काष्ठ की हथौड़ी से उसको अधकचरा कर डालते थे। पचास–अंगारी, गेड़ी, समूह, वाट मापक संख्या, आठ अंगुल वाले गन्ना के टुकड़े का नाम पचास है जो कूचने के बाद कोल्हू में डाला जाता है पचास की संख्या। पगली, घण्टी, कोल्हू का पत्थर थाजो कोल्हू पर वजन के लिये रखा जाता था।

**भावार्थ**—साहब कहते हैं कि हे भाई! राम नाम का सुमिरन करो अर्थात् उस परमात्मा राम का जो तुम्हारे हृदय में निवास करता है चिन्तन करते रहो और जिन वस्तुओं से तुम्हें दुःखित होने की आशा है उन संसार के नाता-गोता, माया-मोहों, पुत्र-कलत्रों एवं धन-धान्य से उपराम होकर अर्थात् अनासक्त होकर भगवान का चिन्तन करो नहीं तो यह संसारी दुःख तुम्हें उसी प्रकार से धर दबोचेगें जैसे गन्ना पेरने वाली कोल्हू में पचास (अंगारी) आठ अंगुल के टुकड़ों को डालकर पेरते हैं। कुछ टीकाकारों ने पचास के अर्थ को संख्या ५० किया है और कोटि का अर्थ संख्या करोड़ किया। जिसका अर्थ होगा राम नाम का सुमिरन करो। संसार की दुःखदाई आशाओं को छोड़ दो नहीं तो यह संसारी दुःख जन्य विषय तुम्हें नीचे ऊपर पकड़कर उसी प्रकार चापेंगे जिस प्रकार पचास करोड़ कोल्हूओं का भार पृथ्वी पर रखकर किसी को डाल दिया जाय। परन्तु तर ऊपर चापने की क्रिया और कोल्हू के प्रसंग को लेकर कोटि और पचास संख्या न होकर कोटि दरकचने अर्थात् कूटने के अर्थ में पचास उस आठ अंगुल वाला टुकड़ा के अर्थ में है। ये देशज शब्द हैं इसमें किसी को सन्देह नहीं करना चाहिए। सम्भव है कि न समझने के कारण कोटि का कोट और पचास का अर्थ संख्या वाचक हो गया है। सार बात यह है कि जो प्रभु का सुमिरन-भजन नहीं करेगा वह मनुष्य अनेक दुःखों का भागी होगा। इसलिए सभी मनुष्यों को राम का सुमिरन करना चाहिए। बिना राम के भजन के भव-फन्द छूटना कठिन है।

पचासा उस पत्थर को भी कहते हैं जो सरसों पेरने वाली कोल्हू पर

भी रखा जाता है जिसपर तेली लोग बैठकर बैलोंको हाँकते हैं। यदि यहाँ पर पचासा का अर्थ तेली के कोल्हू से सम्बन्धित है तो अर्थ वही यातना वाला होगा जो गन्ने के टुकड़े को काट कर एवं कूँच कर पचासा के रूप में गन्ने वाले कोल्हू में डालकर पेरा जाता था। तेलीवाला पचासा केवल वजन के लिए है जो कातर से सम्बन्धित रहता है, यातना में थोड़ा अन्तर है। सरसों खड़ी डाल दी जाती है और ऊख की गिल्ली कूँचकर अर्थात् अधकचरा कर कोल्हू में डालते थे। उस कूचने को कूटकर कहा गया है जो कोटि संख्या का रूप ले लिया है। ऊपर कहा जा चुका है कि कोटि संख्या न होकर कष्ट की संख्या वृद्धि के लिए है। जिज्ञासु-जन दोनों के अर्थ समझ सकते हैं।

## रमैनी १८

**अद्‌बुद पंथ बरनि नहिं जाई। भूले राम भूलि दुनियाई॥**
**जउ चेतहु तो चेत रे भाई। नहिं तो जीवहिं जम ले जाई॥**
**सबद न माने कथै गियाना। ताते जम दिये हैं थाना॥**
**संसै सावज सकल सरीरा। ते खाये अनवेधल हीरा॥**

**शब्दार्थ**—अद्‌बुद-अद्‌भुत, आश्चर्यकारी, जो बुद्ध नहीं है। बरनि-कहने में। राम-स्वामी। भूलि-भूले। दुनियाई-संसारी लोग। जउ-जो। जीवहिं-जीव को। सबद-उपदेश को। कथै-कहता है। गियाना-ज्ञान। जम-यम। ताते-इसलिए। थाना-स्थान। सावज-शिकार। अनवेधे-बिना शोधा। हीरा-कीमती पत्थर जिसमें छिद्र नहीं होता है, आत्मा।

**सम्बन्ध**—पहले वंचक गुरुओं के द्वारा लोगों को ठगे जाने की बात बताकर, उससे मिलने वाले कष्ट का दर्शन भी कराया गया है।

**भावार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि वंचक कसाई गुरुओं का जो मार्ग है वह अद्‌भुत है आश्चर्यकारी है। वह आत्मदर्शी महापुरुषों का बनाया हुआ नहीं

है। उस पंथ को जो बुद्ध नहीं है अर्थात् जो पण्डित नहीं है उन्हीं लोगों ने निर्माण किया है। वह पंथ कितना उलटा-सीधा है कि कहने में नहीं बनता। ये संसारी जीव इससे उस पंथ में अनुरक्त रहे कि संसार के सुख के चलते सर्वसाक्षी अन्तरात्मा को भूल गये जो सबका पालन-पोषण करता है जिसकी प्राप्ति से भव बन्धन छूट सकता है। वह भी इन आत्मचिन्तन विहीनों को भूल गया अर्थात् वह भी इनकी ओर ध्यान नहीं दिया। सद्गुरु कहते हैं कि हे भाई! यदि तुम चेतते हो तो चेत ले। वंचक गुरुओं का साथ छोड़कर प्रभु के भजन में लग जा। यदि तूँ नही चेतेगा अर्थात् मेरी बात न मानोगे तो निश्चय ही तुम्हें यमराज पकड़ कर ले जायगा। अर्थात् तुम्हारे जीव को यमराज अपने कैदखाने में रखेंगा। परन्तु आश्चर्य है कि मेरी बात को नहीं मान रहा है। अच्छे गुरुओं की बात नहीं सुन रहा है। उलटे अपना ज्ञान मुझे सुनाने लगता है। इसलिए जन्म-जन्म भगवान दण्डधर उसके घर में डेरा डाले रहते हैं। जब तक मनुष्यों में घोर अज्ञान का तिमिरान्ध छाया रहता है तब तक वह अच्छी बातों को समझ नहीं पाता है। उलटे जिस मार्ग को पकड़े रहता है उसे अनेक युक्तियों को देकर सही बोलने वाले का मुख बन्द कर देता है। साहब कहते हैं कि एक-दो की बात नहीं है। यह सारे मनुष्यों को बात व गति है। जो संशयरूपी काल के शिकार हो रहे हैं। इसका कारण यह है कि लोग बिना शोधे, बिना सोचे-समझे हीरारूपी ज्ञान को खा गये हैं। लोक में अर्थात् आयुर्वेद में हीरा भस्म बनाने की विधि लिखी है और यह भी लिखा है कि यत्किञ्चित हीरा कच्चा रह जायेगा तो खाने वाले का शरीर छेद देगा जिसके कारण अनेक प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार से आत्मज्ञान रूपी हीरा को बिना पहुँचे हुए सद्गुरु के बताये हुए केवल शास्त्रों के पढ़ने मात्र से 'अहं ब्रह्मास्मि' पुकारने से कोई लाभ नहीं होता है। शास्त्रज्ञान मनुष्यों को धोखा ही देते हैं जिसके कारण वह अनबेधे हीरा के समान खाकर मर जाता है। अर्थात् कोई लाभ नहीं हो पाता।

**टिप्पणी**—कतिपय टीकाकारों ने 'अद्‌वुद पंथ बरनि नहिं जाई' का अर्थ कबीर साहब का अपना पंथ किया है जो समीचीन नहीं है। लोगों को ऊपर का आशय देखना चाहिए वहाँ पर कसाई का उल्लेख हुआ है इसलिए कबीर साहब का अपना अर्थ पंथ नहीं है।

साखी

**संसै सावज सरीर में, संगै खेलै जुआरि।**
**ऐसा घायल बापुरा, जीवहिं मारे झारि॥**

**शब्दार्थ**—जुवारि–जुवारी, द्यूत खेलने वाला, जूवा खेलने की क्रिया। बापुरा–बेचारा, चतुर पागल। घायल–चोटीला, चोटवाला, जिसके शरीर में तीर विंध गये हों। झारि–सम्पूर्ण।

**भावार्थ**—कारण कि संशय अर्थात् अविद्या रूपी काल सम्पूर्ण मनुष्यों के शरीर में व्याप्त है जिन्हें सुगुरु नहीं मिला है वे लोग सदा संशय के शिकार होते रहते हैं। अविद्या के रहते जूवारूपी जग-व्यवहार में लगे रहते हैं और उसके द्वारा वार-वार ठगे जाते हैं। तात्पर्य यह है कि अज्ञानी गुरु के संग से मनुष्यों को कभी लाभ नहीं होता उसके साथ ज्ञान का सौदा अर्थात् ज्ञान वार्तालाप करना उन जुवारियों जैसा है जिसमें खेलने-वाला और खिलाने वाला साथ में रहते हैं तथा सदा एक-दूसरे के द्वारा ठगे जाते हैं। इन चतुर पागलों की ऐसी घायल दशा है। हारने पर सदा पश्चात्ताप करते रहते हैं तथा कहते हैं कि अब यह खेल नहीं खेला जायेगा किन्तु बुरी आदत कुअभ्यास के कारण संसाररूपी जूवा का खेल छूटता नहीं है जिसके चलते संसार के सम्पूर्ण जीव मारे जाते हैं। मनुष्यों को चाहिए कि प्रभु प्राप्ति के लिए अविद्याजन्य बुद्धि का परित्याग करे तथा प्रभु प्राप्ति के लिए अच्छे गुरुओं की तलाश करें।

**टिप्पणी**—संशय सावज बसे शरीरा। ते खाये अनबेधल हीरा॥

इस चौपाई का अर्थ बहुत से टीकाकारों ने निम्न प्रकार से लिखा है। संशय रूपी काल सबके शरीर में बसा हुआ है जो आत्मा रूपी अबेद्ध

हीरा को खा जाता है। यहाँ हीरा शब्द में बहु व्यंजना है। संशय काल है सावज आत्मा है जो जन्म-जन्म से संशय का शिकार होते आया अर्थात् संशय के करण उस अछिद्र आत्मतत्व को प्राप्त नहीं कर सका। यह भी अर्थ श्रेष्ठ है। दोनों अर्थों में कोई खास भिन्नता नहीं है। ऊपर वाला अर्थ अधिक संगत है। शाब्दिक अर्थ अनबेधल का बिना छिद्र वाला होगा परन्तु वाक्याशय वही बिना शोधा हुआ हीरा है।

# रमैनी १९

## भटके हुए योगी प्रकरण

**अनहद अनभौ का करि आसा। ई विपरीत जु देखहु तमासा॥**
**इहै तमासा देखहु रे भाई। जँह्वा सुन्नि तहाँ चलि जाई॥**
**सूने बंछे सुन्ने गयऊ। हाथा छोड़ि बेहाथा भयऊ॥**
**संसै सावज सकल संसारा। काल अहेरी सांझ संकारा॥**

**शब्दार्थ**—अनहद–अनाहत, कानों को मूंदकर जो शब्द सुना जाता है। अनभौ–अनुभव प्राप्ती। का–क्या। करि–करना। आसा–भरोसा। ई–यह। विपरीत–बिना अर्थ का, जो अनुकूल नहीं है। तमासा–खेल, क्रीड़ा। इहै–यह। रे–हे। जहंवा–जहाँ। सुन्नि–जहाँ कुछ नहीं। सूने–शून्य की, शून्य में। बंछे–इच्छा, कल्पना। वेहाथा–अप्राप्त। सावज–शिकार, मृग शावक, जीव। काल–मृत्यु, समय। अहेरी–आखेटक, शिकारी, यम। सांझ संकारा–प्रातः-सायं, सुबह-शाम, जन्म से मरण तक।

**भावार्थ**—इसके पूर्व की रमैनी में संशय रूपी काल के सभी मनुष्य आखेट हुए हैं। चाहे वे पण्डित हों, चाहे वे योगीं हों, चाहे वे शास्त्र के कितने बड़े ज्ञानी क्यों न हों, संशयालु होने के कारण सबके सब भगवान रवितनय के आहार होते हैं। यहाँ पर सद्गुरु कबीर उन अनाहत उपासी योगियों की चर्चा करते हैं जो लोग आँख, नाक, कान मुख को बन्दकर

अनाहत नाद का श्रवण करते हैं, उसी के सुनने से मुक्ति होने की आशा भी करते हैं। साहब कहते हैं कि उसकी क्या आशा कर रहे हो। वह तो वायु का गुंजन मात्र है जिसको तुम सर्वेसर्वा मान रहा है। यहाँ पर स्मरण रहे कि अनाहत नाद दो प्रकार के होते हैं—प्रथम अनाहत नाद जो नाक, कान, मुख बन्द करके सुना जाता है जो निरर्थक है। दूसरा अनाहत नाद तब होता है जब कुडलिनी शक्ति का जागरण होता है। कुंडलिनी शक्ति में जब जागरण होने को होता है तो बहुत बड़ा विस्फोट होता है। वह विस्फोट भयंकर नाद केवल साधक को ही श्रवण होता है। उस महानाद के होने के पश्चात् योगी परम शून्य अवस्था को प्राप्त हो जाता है। कुण्डलिनी शक्ति जो मूलाधार चक्र में अग्निकोण में स्थित शिवलिंग में तीन वलय में लिपटी हुई रहती है उसको योगी अनेक युक्तियों के द्वारा जब जागृत कर लेता है तब वह महाशक्ति घोर गर्जना करते हुए सहस्रार में पहुँच जाती है। कुण्डलिनी के ब्रह्माण्ड में पहुँचने के पश्चात् योगी की अहर्निश उन्मुनि दशा अर्थात् स्वरूपाकार वृत्ति हो जाती है और उसके काम, क्रोध, लोभ, मोह विदा हो जाते हैं। उस योगी के लिए कोई भव-बन्धन अब शेष नहीं रह जाते हैं। इस नाद को कच्चे योगी न सुनकर केवल कुछ इन्द्रियों को रोककर नाद सुनते हैं। वे वास्तविक योगी नहीं है। हे भाई! इनकी यह विपरीत खेल तो देखो या तमाशा अर्थात् क्रीड़ा यह है कि जहाँ पर शून्य है अर्थात् कुछ नहीं है वहीं पर ये कच्चे योगी ध्यान लगाते हैं। ये शून्न रूपी अनाहत के सुनने वाले और उसके चाहने वाले शून्न में ही चले जाते हैं जहाँ कुछ नहीं है। वे हाथ की वस्तु को त्यागकर बिना हाथ वाले वस्तु की इच्छा करते हैं। यदि उन्हें अनाहत नाद सुनना ही था तो किसी अच्छे गुरु से कुंडलिनी महाशक्ति को जगाने की विधि जानना चाहिए था परन्तु ऐसा न करके ऊहा-पोह की स्थिति में पड़े रहे। अन्त में सन्देह नहीं मिटा और वह सन्देह काल रूप में उपस्थित हो गया। जिसका शिकार सारा संसार है जिसके कारण इन अज्ञानी योगियों को एवं जो संसार में फँसे हुये लोग हैं उनका शिकार काल भगवान सुबह से शाम तक करते रहते हैं।

साखी

**सुमिरन करहु राम कै, काल गहे है केस ।**
**ना जानौ कब मारहैं, का घर का परदेस ॥**

**शब्दार्थ**—राम कै–राम का। केस–बाल। ना जानौ–पता नहीं ।

**भावार्थ**—उस काल अर्थात पराभव से बचने के लिए कहा गया है कि राम नाम का सुमिरन करो । क्योंकि तुम्हारे केस को मारने के लिए मृत्यु अपने हाथों से पकड़े हुए है। यह पता नहीं है कि वह तुम्हारे घर पर मारेगी या किसी परदेश में मारेगी। इसलिए उस सर्वात्मा राम का जो सबके हृदय में स्थित है उसी का अहर्निश सुमिरन–भजन करो तभी काल से बच सकते हो ।

**आशय :** बीजक में कई स्थलों पर शून्य का उल्लेख हुआ है । अधिक समीप शून्य का अर्थ बौद्धों से जान पड़ता है। क्योंकि शब्द प्रकरण में सद्गुरु कहते हैं कि 'केते बौद्ध निकलंकी कहिए तिन भी अन्त न पाया' इसी प्रकार से एक स्थान पर रमैनी में भी कहते है 'सून्य सनेही राम बिन चले अपुनपौ खोय। सद्गुरु कबीर से पहले बौद्धों में शून्यवाद का अत्यधिक बोलबाला था और बौद्ध शून्य के उपासक भी थे। यह सर्वविदित है कि बौद्ध लोग ईश्वर की सत्ता नहीं मानते थे इसलिए कबीर साहब को कहना पड़ा कि ये शून्य उपासी बिना राम के अस्तित्व स्वीकार किये वास्तविकता से परे रहे। यहाँ भी उन्नीसवीं रमैनी में बौद्ध जनों का ही लक्ष्य लेकर उल्लेख किया गया है। विद्वानों के मतानुसार सिद्ध सम्प्रदाय एवं नाथ सम्प्रदाय व तांत्रिक समूह बौद्धों से ही निःसृत है। उन्हीं सिद्ध सम्प्रदायों में ही अनाहत नाद का विशेष उल्लेख किया गया है। गोरख वाणी में स्थान स्थान पर अनाहत नाद का प्रसंग मिलता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि शून्यवाद के अनुसार ही ये गोरखनाथी लोग भी आते हैं। क्योंकि बौद्धों की शब्दावलियों को ज्यों का त्यों नाथों ने ग्रहण

किया जैसे : निरंजन, सहजशून्य आदि शब्द सिद्ध सम्प्रदाय में मिलते हैं। निरंजन एवं शून्य शब्द का कबीर साहब भी उल्लेख किया है परन्तु वे शब्द ईश्वर से जुड़े हुए हैं। इसलिए कबीर साहब का शून्य और निरंजन बौद्धियों के निरंजन एवं शून्य से भिन्न हैं। शून्य और निरंजन शब्द को ही लेकर बौद्ध मतावलम्बी कबीर साहब का बौद्ध सम्प्रदाय से सम्बन्ध जोड़ते हैं जो कभी भी सम्भव नहीं है। क्योंकि कबीर साहब वैष्णव सन्त स्वामी रामानन्द की परम्परा में आते हैं। ऐसे तो बौद्धों का कहना है कि भगवान बुद्ध के बाद ही वैष्णव सम्प्रदाय उत्पन्न हुआ है और बहुत सी बात बौद्धों की वैष्णवों ने ज्यों की त्यों ग्रहण किया है परन्तु ऐसी बात नहीं है। हिन्दू शास्त्र के अनुसार वैष्णव सम्प्रदाय का आरंभ बहुत प्राचीन माना जाता है। इसलिए वैष्णवों का सम्बन्ध बौद्धों से जोड़ना केवल कुछ वाक्यों को लेकर किया जाता है पर ऐसी बात नहीं है। वेद-विश्रुत सनकादिक ऋषि हैं। जिनके विचारों में वैष्णव तत्त्व झलकते हैं और वैष्णव लोग उन्हीं को अपना आचार्य मानते है यों तो ऐतिहासिक वृषणी जो बंगाल के निवासी माने जाते हैं वे बहुत प्राचीन हैं जिन्होंने वैष्णव धर्म का अधिक प्रचार किया। यों तो वैष्णव धर्म दक्षिण में उनसे भी बहुत पहले विद्यमान दीखता है जिसकी प्रतिमूर्ति आचार्य शट्कोप हैं। संभव है कि शट्कोप बुद्ध से बाद में हुए हैं परन्तु भगवान बुद्ध की विचारधारा शट्कोप में दीखती नहीं हैं इसी को लक्ष्य कर कबीर साहब ने वैष्णवी भक्ति को स्वामी रामानन्द के द्वारा दक्षिण से लायी बताते हैं। इसलिए कबीर साहब वैष्णव के अन्तर्गत रहकर बौद्ध मत का खण्डन किया है।

# रमैनी २०

## भवबन्धन विभंजन प्रकरण

**अब कहु राम नामु अभिनाशी । हरि छोड़ जिअरा कतहुँ न जासी ।।**
**जहाँ जाहु तहँ होहु पतंगा । अब जनि जरहु समुझि विखसंगा ।।**
**राम नामु लौलायसु लीन्हा । भ्रींगी कीट समुझि मन दीन्हा ।।**
**भौ अस गरुवा दुख के भारी । करु जिय जतन जो देखु विचारी ।।**
**मन की बात है लहरि वेकारा । ते नहिं सूझे वार न पारा ।।**

**शब्दार्थ**—अब–सम्प्रति, निकट, वर्त्तमान। अभिनासी–जिसका कभी नाश नहीं होता। कहुँ–उसी को जपो। जिअरा–जीव। कतहुँ–कहीं। जासी–जाओ। हरि–जो सब पाप तापों को हर लेता है। जाहु–जाओगे। होहु–होओगे। पतंगा–हल्का, तुच्छ, बिना तत्त्व का। समुझि–जानकर। जरहु–जल्यो। विख–संसार के विषय वासना का सुख। लौलायसु–लव लगाओ, प्रेम करो। भ्रींगीं–एक प्रकांर का भ्रमर जिसमें वह गुण होता है जो छोटे कीड़ो को अपना शब्द सुनाकर अपनी जाति बना लेता है। कीट–छोटा कोटाणु। दीन्हा–दीजिए। भौ–हुआ। गरुवा–गूरुत्ववाला, गम्भीर, भारी। भारी–बोझिल। करु–करो। जिय–जो में, मन में। विचारी–विचार कर। लहरि–मन की दौर। वेकारा–खराब अच्छा नहीं, अशुभ। बार–इस पार का किनारा। पारा–उस पार का किनारा। ते–उसको, तिसको। सूझे–दीखे नहीं।

**भावार्थ**—उसी राम की बात इस बीसवीं रमैनो में भो कही जा रही हैं। सद्गुरु कहते हैं कि हे भूले हुए मनुष्यों एवं अनाहद वादी योगियों अब इस मानव देह को पाकर उस राम का जप करो जो भूत भविष्य वर्त्तमान में एक सा रहता है जिसका कभी नाश नहीं होता। उस परम प्रभु हरि को छोड़कर अर्थात् त्यागकर अन्यत्र कहीं न जाओ। सभी इन्द्रियों के धर्मों को त्यागकर उसी के शरणापन्न हो जाओ। राम नाम के जप का शास्त्रों में बहुत बड़ा महत्त्व है। विशेष कर वैष्णव सम्प्रदाय में इस नाम

पर बहुत बल दिया गया है। परन्तु यहाँ पर वैष्णवों के राम, कबीर साहब के राम नहीं दीखते। कबीर साहब का राम किसी देश विशेष में नहीं रहता। वह मनुष्यों के हृदय में रहता है। उसके जप की विधि भगवान पतंजलि के शब्दों में इस प्रकार है: 'तज्जपदतदर्थभावनम्' उसके नाम का जप करना चाहिए और उसके नाम के अर्थ की भावना करनी चाहिए। 'रा' प्रकाश स्वरूप है और उसमें 'अकार' अग्नि के समान तेजस्वी है। 'म' जो है वह चन्द्रमा के समान शीतल है जो जपने वाले के तीनों तापों को शान्त करता है और वह राम सभी प्राणियों के हृदय में निवास करता है। वह सब फलों को देनेवाला है और जीवों को बंधन से छुड़ाता है। इत्यादि प्रकार की भावना करते हुए उसका जप करना चाहिए। यद्यपि भगवान पतंजलि ने उसका नाम प्रणव कहा है। 'तस्यवाचकः प्रणवः' परन्तु ईश्वर नाम रूप में राम और प्रणव में कोई खास अन्तर नहीं है। प्रणव बहुत पहले से चला आ रहा है और राम नाम शब्द बाद में ऋषियों के द्वारा अन्वेषित किया गया है। यद्यपि ईश्वर का न कोई नाम है और न कोई रूप है परन्तु साधना के लिए नाम रूप की कल्पना सार्थक होती है और की जाती है। यदि नाम रूप को छोड़ दिया जाय तो साधक को सफलता मिलना सम्भव नहीं है। सर्वज्ञ होने के कारण ईश्वर यह जानता है कि अमुक व्यक्ति अथवा अमुक भक्त मुझे ही पुकारता है इसलिए उसके द्वारा फल भी प्राप्त होता है। कुछ लोग कहते हैं कि बिना नाम रूप के उपासना सम्भव है पर यह संसार के किसी भी धर्म में नहीं देखी गयी है। प्रत्येक धर्म वालों का अपना-अपना नाम है। किसी का अल्लाह, किसी का गाड किसी का, अहुरमज्द या अहोबा देवी आदि नाम प्रत्येक धर्मों में पाये जाते हैं। संसार के सभी ऋषियों ने सर्वमान्य रूप में नाम रूप को स्वीकार किया है इसलिए प्रभु के किसी नाम के द्वारा सुमिरन भजन करना सार्थक है। कबीर साहब ने उसी परमसत्ता को राम नाम से उद्घोषित किया है। वे कहते हैं कि उस परम नाम को मत छोड़ो। उसको छोड़कर यदि तुम दीपशिखा के समान

इस संसार में फँसते हो, कहीं संसार के भोगों में रत रहते हो तो तुम पतंग के समान संसार की दीपशिखा में भष्म हो जाओगे। तुम इतने नि:सार हो जाओगे कि लोग तुमको पतंग के समान तुच्छ समझेंगे। तुम्हें कोई पूछने वाला नहीं रहेगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि तुम सांसारिक विषय के साथ होकर न जलो और यह समझो कि यह हमें भष्म कर देगा अर्थात् मुझे बार-बार यह संकटों में डालेगा तुम इस संसार के विषय को विषवत् समझकर उसका त्यागकर राम-नाम में लौ लगाओ, अर्थात् उसके नामों का जप करो। उस प्रभु में इस प्रकार अपने चित्त को लगा दो जैसे भ्रींगी में कीट अपना हित समझकर अपने तन-मन को लगा देता है पश्चात् वह भी कीट से भ्राग हो जाता है। उसी प्रकार से राम में पूर्णरूपेण समर्पण कर दोगे तो तुम भी राम हो जाओगे अर्थात् 'तत्पश्यति तद्भवत तदासीत' (यजुर्वेद) तुम राम रूप ही हो। तुझे केवल भ्रम है। उस राम का चिन्तन करते-करते तू निश्चय ही राम हो जायेगा। जब तू राम हो जायेगा तो तुम्हारे सारे दु:ख का नाश हो जायेगा जो तुम जन्म-मरण रूपी महान दु:ख से लदे हुए हो वह सब दु:ख तेरे ऊपर से उतर जायेगा। अर्थात् जब तू समझने लगेगा कि जन्म-मरण मेरा धर्म नहीं है। तब तेरे को कोई दु:ख नहीं सता सकेगा। तू अपने मन में विचार कर देखो और उस महान बोझिल दु:ख से बचने का उपाय करो। वह उपाय राम-नाम हो है। तू इस मन के फेर में न पड़ो। इसमें जो लहरें आती हैं, जा भावनाएँ उत्पन्न होतो हैं वह सब विकार हैं उनसे कोई काम होने वाला नहीं है। उन लहरों का संसार रूपी समुद्र में वारा-पार नहीं है। संसार समुद्र के बीच में खड़ा होकर देखो तो न यह तट दिखाई पड़ेगा और न वह तट। अर्थात् इस मन की इतनी चाहनाएँ हैं कि उसकी पूर्ति कभी होने वाली नहीं है। मन कभी राजा बनने की चाहना करता है और कभी बहुत बड़ा योद्धा बनने की चाहना करता है, कभी योगी, कभो साधु, कभी इन्द्र पद की चाहना करता है पर उसकी इच्छा एक भी पूरी नहीं होती है।

साखी

**इच्छा करि भौ सागर, वोहित राम्रु अधार।**
**कहैं कबीर हरि सरन गहु, गोखुर बछ बेस्तार।।**

**शब्दार्थ**—वोहित-नाव, वोहिथ्य, जल में चलने वाला यांत्रिक नौका। इच्छा-चाहना, आप रूपी। करि-करके। भव-सागर, समुद्र, संसार। अधार-आश्रय। गहु-पकड़ो। सरन-शरणापन्न। गोखुर-गाय के बच्चे के पैर के टाप के समान। बछ-वत्स, बछड़ा। बेस्तार-वहुत वड़ा।

**भावार्थ**—इच्छा रूपी संसार जो जीवों के कर्म भोगाने के लिए उसकी इच्छा से उत्पन्न हुआ है जो महान सागर के समान है जिसको जीवों ने स्वयं उत्पन्न किया है अर्थात् संसार की विषय वासना के कारण संसार-सागर में बार-बार विषय-वासना भोगते आया है। यदि जीवों में लौकिक सुख भोगने की इच्छा नहीं होती तो यह संसार भी नहीं उत्पन्न होता। कारण द्वारा विकार्य उत्पन्न होता है। कारण सुख भोग की इच्छा, कार्य संसार। इसलिए जीव के इच्छा से ही संसार समुत्पन्न हुआ है सद्गुरु कहते हैं कि इस अथाह संसार सागर से पार जाने के लिए अर्थात् जन्म-मरण सभी दुःखों से पार होने के लिए केवल राम-नाम जल-जहाज है। हे मनुष्यों! तुम प्रभु के शरण को ग्रहण करो अर्थात् उसके अस्तित्व को स्वीकार करो और उसका भजन करो तव यह संसार सागर जो महा विस्तार वाला दिखाई दे रहा है वह गाय के बच्चे के पद के समान बहुत छोटा हो जायेगा और तुम सहज में ही संसाराब्धि को पार कर लोगे। इसलिए सभी माया मोह को छोड़कर सत् चित् आनन्द घन का सुमिरन करो। वह सुमिरन दो प्रकार का होता है प्रथम जिह्वा से जपा जाता है दूसरा मन से जपा जाता है जिसको अजपा जप कहते हैं। वही जप या सुमिरन सर्वश्रेष्ठ है।

## रमैनी २१

**बहुत दुःखहि दुख दुख कै खानी। तब बचिहो जब रामहिं जानी।**
**रामहिं जानि जुगुति जौ चलई। जुग्तिहुँ ते फंदा नहिं परई॥**
**जुगतिहिं जुगुति चला संसारा। निहचै कहा न मानु हमारा॥**

**शब्दार्थ**—बहुत–अधिक। दुख–कष्ट, यातना, पीड़ा। कै–की। खानी–कोष, राशि, खजाना। जुगुति–उपाय। जौ–जो। फंदा–बंधन। परई–पड़ेगा। संसारा–संसार के लोग, मनुष्य।

**भावार्थ**—पहले कहा जा चुका है कि यह जो अगाध समुद्रवत् संसार है जिसको पार करने में अति दुस्तरता है परन्तु राम रूपी नौका पर आरूढ़ होने पर सहज में ही तर जायेगा। यदि राम का पूजन स्मरण नहीं करोगे तो बहुत बड़े दुःख के सागर में पड़ जाओगे क्योंकि यह संसार दुःख का खजाना ही है। नाना प्रकार के शोक, मोह इसमें व्याप्त हैं। यहाँ दुःख का तीन बार प्रयोग हुआ है और उसके साथ बहुत शब्द लगा हुआ है। तीन बार दुःख का प्रयोग होने का तात्पर्य दैहिक दुःख जो देह में पीड़ा, रोग उत्पन्न करते हैं, दैविक दुःख गर्मी, सर्दी, वर्षा, तूफान, ग्रह चक्र आदि। भौतिक दुःख जो संसार के प्राणियों के द्वारा क्लेश पहुँचाये जाते हैं जैसे राजा के द्वारा, चोर के द्वारा, डकैतों के द्वारा, भूत प्रेतों के द्वारा, चेचक महामारी के द्वारा, बाघ सिंह कुत्ता बिलार के द्वारा एवं अन्य हिंसक पशुओं के द्वारा जो दुःख दिए जाते हैं वे भौतिक दुःख कहे जाते हैं। इसी के साथ कायिक दुःख वाचिक दुःख और मानसिक दुःख आते हैं। किसी प्रकार से काया में जो भयानक वेदनाएँ उत्पन्न होती है वे कायिक दुःख कहलाती हैं और तमाम लोगों के वाक् वाणों से जो विद्ध किये जाते हैं जैसे—स्त्री की ओर से, पुत्र की ओर से, पिता की ओर से, माता की ओर से जो वचन के द्वारा दुःख दिये जाते हैं वे वाचिक दुःख कहे जाते हैं। मानसिक दुःख वह कहे जाते हैं जो राग द्वेष से उत्पन्न होते हैं। कामनाओं की अप्राप्ति से जो ताप उत्पन्न होते हैं एवं पदादि की स्पर्धा में

पराजय होने पर जो मन में क्लेश उत्पन्न होते हैं। ये सब मानसिक दुःख कहलाते हैं। इसी प्रकार लोभ, मोह, काम, क्रोध की उद्विग्नता के कारण जो दुःख उत्पन्न होते हैं वे भी मानसिक दुःख कहलाते हैं। इन तमाम दुःखों के कारण प्राणी-मात्र अशान्त रहते हैं। साहब कहते है कि उपर्युक्त दुःखों से तभी बच पाओगे जब तुम राम को जानोगे। राम का जानना यह है कि अभेद हो जाना। सभो में एक आत्मा का दर्शन करना अर्थात् सम्पूर्ण भूतां में व प्राणीमात्र में एक अन्तरात्मा विराजमान है इस प्रकार राम को जान करके दुःखों से छुटकारा पाया जा सकता है। दुःख तो अनेकता में होता है। जब अनेकत्व का समापन हो जाता है तब मनुष्य में राग-द्वेष स्वतः शान्त हो जाते हैं जो इस प्रकार से राम को जान करके युक्ति से अर्थात् उपायपूर्वक चलता है व संसार का व्यवहार करता है। उक्त युक्ति के द्वारा वह पुनः बन्धन में नहीं पड़ता। युक्ति उस उपाय को कहते हैं जिससे तमाम कष्टों से छुटकारा मिल जाय। वह युक्ति यही है कि सबमें भगवान का दर्शन करना। परन्तु संसार के लोग हमारी इस युक्ति को नहीं मानते। वे फन्दा से छूटने के लिए अनेक प्रकार की युक्तियों का अन्वेषण किये जिसमें यज्ञ, दान, तीर्थ भ्रमण व धन जन पुत्र कलत्र बढ़ाने की युक्ति लोग करते रहे। ये सब युक्तियाँ बन्धन का हेतु हैं जिसके कारण उपर्युक्त दुःखों के आखेट लोग होते रहे हैं। निश्चित रूप से मैं कहता हूँ कि इन संसारी लोगों ने सन्त महात्माओं की व मेरी बातों को नहीं माना।

**टिप्पणी**—युक्ति का अर्थ बचने के लिए तंत्र-मंत्र एवं अनेक प्रकार के अनुशासन भी है। संकट की घड़ियों में मानव अपने रक्षार्थ अनेक युक्तियों का अनुष्ठान करता है परन्तु वे युक्तियाँ अधूरी होने के कारण काम नहीं करती। अन्त में जीव यमलोक में चला जाता है।

**कनक कामिनी घोर पटोरा। संपति बहुत रहैं दिन थोरा ॥**
**थोरी संपति गौ बउराई। धरमराय के खबरि न पाई ॥**
**देखि त्रास मुख गौ कुम्हिलाई। अम्रित धोखे गौ विख खाई ॥**

**शब्दार्थ**—कनक–सोना। कामिनी–कमनीय, सुन्दर स्त्री। घोर–अश्व, घोड़ा, रथ, बैल अन्य पशु। पटोरा–रेशम के बहुत प्रकार के वस्त्र, रेशमी चादर। थोरी–कम, अल्प। संपति–धन। गौ–गाय। बउराई–उन्मत्त, पागल। धरमराय–जो धर्म के अनुसार निर्णय करते हैं। खबरि–पता। पाईन–मिली। त्रास-कष्ट। कुम्हिलाई–मूर्च्छित होना, बेखबर, बेहोश, संज्ञाशून्य। अम्रित–सुधा।

**भावार्थ**—अनेक उपायों के द्वारा कनक व धन संवर्द्धन किये, रूपवती स्त्रियों का संग्रह किये, ऐशो आराम के लिए घोड़ा, बग्गी, रथ व अनेक प्रकार के वाहनों का संग्रह किया, शरीर को सजाने के लिए रेशमी दुपट्टा, अंगरखा व अनेक प्रकार के सजावट के सामानों का संग्रह किया ठगी, बेईमानी के द्वारा बहुत बड़ा सम्पत्ति इकट्ठा किया। इतनी बड़ी सम्पत्ति का अम्बार लग गया कि भोगने के दिन बहुत थोड़े रह गये। भोग की इच्छा की पूर्ति नहीं हुई। आयु के घटने के साथ ही पश्चाताप बढ़ते गया। कितनी भी सम्पत्ति अपने जीवन में मनुष्य अर्जित कर ले पर वह सम्पत्ति भगवान कुबेर की सम्पत्ति को अपेक्षा अत्यल्प ही कही जायेगी परन्तु यह संसारी जीव उक्त हाथो, घोड़ा, कामिनी, कनक, पाटाम्वर को देखकर पागल हो गया और यह नहीं जान पाया कि इन संसारी भोगों को भोगने का फल क्या होगा ? जो मैं अनेक दुष्कर्मों को करके यह सम्पत्ति बटोरी है भला इन दुष्कर्मो का दण्ड देने वाला कोई है कि नहीं। यदि जानता कि कर्म के अनुसार निर्णय करके दण्ड देने वाला धर्म का कोई राजा है तो कदाचित् अवैध रूप से सम्पत्तियों का अर्जन नहीं करता। परिणामस्वरूप यमराज के द्वारा जब दूसरे दुष्कर्मियों को दण्डित करते देखा तो घबडा गया अर्थात् सांसारिक सुख भोगते-भोगते अवस्था समाप्त हो चली। प्राण कण्ठगत हो गये। यमराज के दूत घर पर आ पहुँचे। यम दूतों के भयंकर रूप को देखकर कुम्हिला गया। मुख सूख गया। किसी से कुछ कहते नहीं बना मनुष्य जीवन में भूल बहुत बड़ी हुई जो विष को अमृत समझकर खा गया। परिणाम यह हुआ कि सम्पत्ति

का अम्बार ज्यों का त्यों बना रहा। विषय इतना भोगे गये कि आयु क्षीण हो गयी और भोग की वासना निवृत्त नहीं हुई। अन्त में यमराज के किंकरों ने आकर धर दबोचा और उसके प्राण-पखेरू को भगवान धर्म-धीश्वर के पास ले गये।

साखी

**मैं सिरजौं मै मारौं, मैं जारौं मैं खांउ।**
**जल थल महियां रमि रहौ, मोर निरंजन नांउ॥**

**शब्दार्थ**—मैं–यमराज व सर्व समर्थ। सिरजौ–सर्जन। मारौ–मृत्यु देना, शरीर से अलग कर देना। जारौ–नरक में लोह आदि पिण्डों से, तप्त करना या जलाना। खांउ–खाता हूँ, अपहरण कर लेता हूँ। जल–पाताल में। थल–पृथ्वी पर। महियां–में मध्य, नभ, आकाश। रमिरहौं–व्यापक, व्याप्त, भ्रमण। मोर–मेरा। निरंजन–निराकार, निर्लेप, माया से रहित। नांउ–नाम।

**भावार्थः**—जब यमराज के दूतों ने विषय भोगी प्राणी को यमराज के सामने खड़ा किया और लेखा-जोखा देखा गया तो कोई सत्कर्म नहीं निकले तब डाँटते हुए व आँख दिखाते हुए भगवान यम ने कहा—ऐ पापात्मा ! मैं विष्णु रूप में इस सृष्टि का सृजन करता हूँ और रुद्र रूप में इस सृष्टि का नाश करता हूँ और यम रूप में तुम पापात्माओंको अग्नि आदि नरकों में डालकर जलाता हूँ और माया विशिष्ट होकर सबको अपने में लय कर लेता हूँ अर्थात् खा जाता हूँ। हे पापात्मने ! मैं ब्रह्म होने के कारण जल थल व आकाश में व्याप रहा हूँ। मेरी सत्ता से कोई स्थान खाली नहीं है और माया से परे होने के कारण मुझे निरंजन नाम से लोग पुकारते हैं अर्थात् मुझे माया स्पर्श नहीं करती। इसलिए मेरा नाम निरंजन है। तात्पर्य यह है कि एक ही परमात्मा उपाधि—भेद से इस सृष्टि के प्रत्येक क्रिया कलापों का सम्पादन करता है। ऋग्वेद के अनुसार वही यम है वही वरुण है, वही विष्णु है, वही रुद्र है,

वही शिव है। कुछ टीकाकारों ने यमराज का अर्थ 'कर्म' किया है जो जीव की सत्ता से भिन्न कोई सत्ता नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि कर्म रूपी यम ही दण्ड देता है परन्तु उनका अर्थ अत्यन्त दुरान्वयी होने के कारण समीचीन नहीं है। दूसरी बात यह है कि संसार के प्रत्येक धर्मों में एक दण्डधर माना गया है जो जीवों के शुभाशुभ कर्मों का फल देने वाला है इस्लाम, यहूदी एवं ईसाईयों में परमेश्वर नाम से जो सत्ता है वही दण्ड देती है परन्तु हिन्दू धर्म में परमसत्ता को अछूता छोड़ दिया गया है। उसके तमाम प्रतिनिधि हैं जिनको यम, वरुण, ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु नाम से जाना जाता है। सबके कार्यों का विभाजन है। सब अपना-अपना कार्य करते हैं। प्राणियों को धर्माधर्म के अनुसार जो पदाधिकारी जीवों के कर्म के अनुसार फल देता है उसे ही यमराज व धर्मराज कहा गया है।

# रमैनी २२

## पराधीन जीवन प्रकरण

**अलख निरंजन लखे न कोई। जेहि बंधे बंधा सभ लोई ॥**
**जेहि झूठे सभ बंधु अयाना। झूठी बात सांच कै माना ॥**
**धन्धा बंधा कीन्ह बेवहारा। करम वेवर्जित बसे निनारा ॥**
**खट आस्रम छौ दरसन कीन्हा। षट्रस बास खटै वस्तु चीन्हा ॥**

**शब्दार्थ**--अलख-चर्मचक्षुओं से परे जो देखने में न आवे। निरंजन-माया रहित। लखे-देखे। जेहि-जिसके। बँधे-बंधन। बंधा-बंधायमान, बधुआ। लोई-लोग। बन्धु-बाधे गये। अयाना-अज्ञानी लोग। झूठी-निरर्थक। धंधा-कार्य, सकाम कर्म। बंधा-बांधा गया। बेवहारा-व्यवसाय। वेवर्जित-रहित। बसे-रहे। निनारा-न्यारा, अलग। खट-छव। आस्रम-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास, हंस, परमहंस। छौ-छः। दरसन-सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा

वेदान्त (योगी, जंगम, सेवड़ा संन्यासी दरवेश। षटरस–छव रस (मधुर, लवण, तिक्त, अम्ल, कटु, कषाय) वास–आसक्ति। खटैवस्तु–छव रस।

**सम्बन्ध**—इक्कीसवीं रमैनी में कहा गया कि अचेते मनुष्यों को दण्ड दिया जाता है। दण्ड देने वाला स्वयं परमेश्वर ही है परन्तु दण्ड देने से वह निर्दोष रहता है। उसे माया एवं काल-कर्म स्पर्श नहीं कर सकते।

**भावार्थ**—अव सद्गुरु कहते हैं कि जो शुभाशुभ फलों को देने में समर्थ है वह अलख है उसको कोई देख नहीं पाता क्योंकि वह निरंजन है। इन चर्म-चक्षुओं से केवल मायिक दृश्य पदार्थ ही देखे जा सकते हैं जिसकी व्यवस्था में संसार के समस्त प्राणी बाँधे हुए हैं और जो पुण्य और पाप के फलों का नियमन करता है और उसके अनुसार ही दण्ड प्रदान करता है। वह प्रभु मनुष्यों की बुद्धि से परे है। प्रभु अपनी ओर से किसी को बाँधता नहीं है अयान अर्थात् अज्ञानी लोग उसकी झूठी माया के बन्धन में बँध गये हैं और जो मायाकृत झूठा प्रपंच है उसको साँच मान लिए है अर्थात् स्त्री, पुत्र, धन, जन के द्वारा जो सुख है वह झूठ है अस्थायी है परन्तु पामर मनुष्य उसी को सांच मानकर माया की दासता की बेड़ी को पहन लिए हैं क्योंकि इन संसारी मनुष्यों का जो धन्धा रूपी व्यवहार है वही इन अज्ञ मनुष्यों को बाँध रखा है। ये अज्ञानी मनुष्य स्वयं कर्म करते हैं स्वयं कर्मों के बन्धन में पड़े रहते हैं परन्तु जो कर्म विवर्जित अर्थात् कर्मों के वश में नहीं पड़ता है जिसे क्लेश, कर्म, विपाक, आशय आदि नहीं बाँध सकते हैं उस परम प्रभु को ये संसारी मनुष्य भूला दिये हैं। वह इनको कदापि नहीं बाँधता है। वे स्वयं बँधे हुए हैं। ये अपने धन्धा रूपी जाल को खूब बढ़ाये हुए हैं। इसी व्यवहार में छव आश्रमों का और छव दर्शनों का निर्माण किये है उक्त आश्रमों में रहकर छव दर्शनों का खूब अध्ययन करते हैं और दूसरों को भी अध्ययन कराते हैं परन्तु दर्शनों, के सदुपदेश पर न चलकर मनुष्यों की भोग इन्द्रियाँ षट्रस में ही वास करती हैं और इस संसार

में इन्हीं षट् वस्तुओं को सार मान बैठे हैं अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध में ही अहर्निश फँसे रहते हैं जिसके कारण कर्म विवर्जित को चीन्ह नही पाते।

**चारि वृच्छछउ[1] साखबखानी। विद्दा अगिनत गनै न जानी॥**
**अउरो आगम करै विचारा। ते नहिं सूझै वार न पारा॥**
**जप तीरथ व्रत कीजै पूजा। दान पुन्नि कीज बहु दूजा॥**

**शब्दार्थ**—चारि वृच्छ-चारो वेद (ऋक साम, यजु, अथर्वन। छउ साख-वही न्याय आदि छ वेदाङ्ग छन्द निरुक्त आदि। विद्या-अपरा ज्ञान। अगिनत-असंख्य। आगम-शैव आगम, तन्त्र आगम, आगम इन शास्त्रों को कहते हैं जो वेद के बाद लिखे गये हैं जो वेदसम्मत कहे जाते हैं। इनकी संख्या अनेक हैं जिनमें धर्माधर्म का बाहुल्य विचार हुआ है। वार-किनारा। पार-पास (उस पार का किनारा)। सूझै-दिखाई दे। जप-जिह्वा में मंत्र आदि का रटन। तीरथ-तीर्थ, देवस्थान, देवधाम। व्रत-उपवास, अनुष्ठान। पूजा-माता, पिता, देव आदि की अर्चना, फूल पत्ती चढ़ाकर आरती उतारना। दान-जो श्रद्धा के साथ उत्तम लोगों को दिया जाता है। पुन्नि-पुण्य, शुभकर्म। दूजा-इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के सत्कर्म। जप, रसना से रटने वाला। तीरथ-तारने का स्थान।

**भावार्थ**—इन अज्ञानी मनुष्यों को संसार के विषय-वासना से छुड़ाने के लिए अर्थात् जन्म-मरण से मुक्त करने के लिए लोक पितामह ब्रह्मा ने चार वेदों का सृजन किया और इन संसारियों को भय ताप से मुक्त होने के लिए कणादि, गौतम, कपिल, जैमिनि, व्यास ने अपनी सूझ-बूझ के साथ छव शास्त्रों का निर्माण किया। इसके अतिरिक्त इन मनुष्यों का उद्धार करने के लिए अनगिनत विद्याओं का प्रगटीकरण भी किया गया। विद्याओं से तात्पर्य यहाँ जितने भी अध्यात्म-ज्ञान की निर्देशकीय

---

१. छौ साख-छ वेदाङ्ग-शिक्षा, कल्प, निरुक्त छन्द, ज्योतिष, व्याकरण इत्यादि छौ साख के अर्थ हैं।

बातें हैं वे सभी विद्याएँ हैं। इन भव-बन्धन-ग्रसित मनुष्यों को छुड़ाने के लिए आगम शास्त्रों ने बहुत विचार किया। आगमों ने इतना बिचार किया कि जिनका वारा-पार नहीं है। इन आगमों में लगभग एक लाख के ऊपर तन्त्र के ग्रन्थ हैं। स्मृतियों की संख्या भी सौ से अधिक है। पुराण भी अनगिनत हैं। कर्मकाण्ड के भी हजारों ग्रन्थ हैं। उपासना के भी बहुत ग्रन्थ है और सभी लोग जीवों के उद्धार के लिए करोड़ों उपाय सूझाये हैं परन्तु ये अज्ञानी मनुष्य एक भी आचरण में नहीं लाये। इधर कलियुग में मंत्र आदि के जप, तीर्थ के भ्रमण, ब्रत, उपवास, देव-अर्चना, पवित्र आत्माओं को दान बहुत से सत्कर्म इसके अतिरिक्त दूसरा उपाय, मानसिक पूजा व मानसिक जप, तप बताये गये तो भी ये संसारा-सक्त प्राणी जाग नहीं सके अर्थात् उपर्युक्त अध्ययन-अध्यापन जप-तप जो भी किये गये वे सब सांसारिक सुख के लिए ही किये गये। उनमें निष्कामता कभी नहीं हुई। इसलिए पूरे के पूरे उपाय निरर्थक प्रमाणित हुए।

साखी

**मन्दिल तो है नेह का, मति कोइ पैसे धाय।**
**जौ कोई पैसे धाय कै, बिनु सिर सेती जाय॥**

**शब्दार्थ**—मन्दिल–मन्दिर, देवालय। तो–वह। नेह–प्रेम, तृष्णा, आसक्ति, मोह। मति–नहीं। पैसे–पैठे, घुसे। धाय–दौड़कर। सेती–बिना मूल्य का, व्यर्थ का।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि इस संसार का सुख एक मोह मन्दिर है। इस मोह मन्दिर में अर्थात् केवल संसार के सुख के लिए शीघ्रातिशीघ्र इसमें मत घुसो। यदि बिना सोचे-समझे बिना विवेक किये क्या सत्य है, क्या असत्य है इसमें लाभ है कि हानि है इसके बिना जाने कोई प्राणी घुसपैठ करता है तो यह जान लो कि इस मोह मन्दिर रूपी शरीर में आसक्त रहने से अर्थात् यह शरीर ही आत्मा है ऐसा समझकर इसका

भरण-पोषण करने पर जो तेरा जीवन है वह संत, ही में चला जायेगा। साहब सावधान करते हैं कि हे भाई मनुष्यों! मोह रूपी मन्दिर में दौड़कर न जाओ क्योंकि उसमें प्रवेश करने से सर्वनाश हो जायेगा।

## रमैनी २३

**अलप सुक्ख दुख आदिउ अंता। मनु भुलान मैंगर मैमंता॥**
**सुख विसराय मुकुति कहं पावै। परिहरि सांच झूठ निज धावै॥**
**अनल जोत डाहै एक संगा। नैन नेह जस जरै पतंगा॥**

**शब्दार्थ**—अलप–थोड़ा। मैंगर–मदकण, मदोन्मत्त हस्ती। मैं मंता–मद से चूर्ण। कहँ–को। विसराय–भुलाकर। परिहरि–त्यागकर। अनल–अग्नि। जोत–अग्नि सीखा। डाहै–जलावै। संगा–साथ ही। नैन–आँख। नेह–प्रेमाशक्ति। जस–जैसे। पतंगा–शलभ, फतिंगा।

**भावार्थ**—ऊपर कहा जा चुका है कि संसार मोह-मन्दिर है और संसार के सुख सब भव-बन्धन है। वे प्राणियों को अनादि काल से बाँधे हुए हैं इसलिए उससे सावधान हो जाओ क्योंकि सांसारिक विषय वाला सुख बहुत थोड़ा है और उस सुख का परिणाम दुःख आदि से अन्त तक है अर्थात् जन्म से मरण तक मनुष्यों को यह संसार सुख दुःख के रूप में घेरे रहता है परन्तु मनुष्यों का मन उसी प्रकार से बेखबर है जैसे काल बूत को देखकर जंगल का मदमस्त हाथी उस प्रतिमा की हस्ती मे जाके भिड़ता है और यह नहीं जानता कि उसके नीचे भयानक गड्ढ़ा है। अपनी बेखबरी के कारण उक्त गड्ढ़े में गिरकर मतवाला हस्ती फँसाने वाले के हाथ में पड़ जाता है उसी प्रकार मनुष्य भी संसार रूपी सुख के गर्त्त में गिरकर अपने को नष्ट कर देता है। साहब कहते हैं कि मनुष्य भव-बंधन से छूट सकता है परन्तु सांसारिक सुखों को विस्मृत करना होगा तब वह मुक्ति का पात्र हो सकता है क्योंकि मुक्ति पाने में लोक वासना ही बन्धन है परन्तु यह संसारी मनुष्य सच्ची बातों का त्याग कर

देता है और झूठे विषय वासना रूपी सुख पाने के लिए दौड़ता है। इस संसार का सुख दीपशिखा के अग्नि की ज्वाला के समान है। मनुष्यों के अन्तःकरण के साथ ही लगा हुआ है उसकी पूर्ति न होने पर क्रोध से युक्त होकर उसी रूप से जलाता है जैसे दीपशिखा को अपने नेत्रों से देखकर अपना भक्ष जानकर पतिंगा जाकर भस्म हो जाता है अर्थात् संसार का सुख कालाग्नि के समान है और मनुष्य पतंग के समान है जिसकी चाहना करने पर जड़ मूल से नाश को प्राप्त होता है।

**करउ विचार जो सभ दुख जाई। परिहरि झूठी केर सगाई॥**
**लालच लागे जनम सिराई। जुरा मरन नियरायल आई॥**

**शब्दार्थ**—करउ–करिये। केर–का, के, की। सगाई–मित्रता, सम्वन्ध। लालच–लोभ। सिराई–नष्ट, अन्तिम अवस्था। जुरा-बृद्धावस्था। मरन–मृत्यु। नियरायल–निकट, समीप। आई–आ गई।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि उक्त कालाग्नि से वचने का उपाय है। यदि तू विचार कर देखो कि संसार का सुख दुःखदायी है और प्रभु-प्राप्ति सुख का हेतु है। इस प्रकार का विचार करके तुम सत्य पर आरूढ़ हो जाते हो तो तेरे सभी प्रकार के दुःख भाग जायेंगे। अर्थात् दैहिक, दैविक और जितने भी प्रकार के भौतिक ताप हैं हरि-भजन से वे सब दुःख तिरोहित हो जायेंगे। इसलिए तू जो यह मिथ्यावत् संसार है जिसमें अनेक प्रकार की कलह-कल्पनाएँ उत्पन्न होती रहती हैं जिसके साथ तुम्हें कभी सुख का अनुभव नहीं होता है उस संसार के झूठे सुख की मित्रता छोड़ दो। यदि तू इस संसार के भोग की लालच में लगे रहोगे तो तेरा जन्म निश्चय ही सिरा जायेगा क्योंकि संसार-सुख की पूर्ति की चाहना करते-करते बृद्धावस्था मरन धर्मावली पास में आ गयी है। इसलिए तू सावधान हो जाओ और आत्म चिन्तन में लग जाओ। संसार के सारे भोग, रोग के रूप ही हैं।

साखी

**भरम के बांधल ई जग, यहि विधि आवै जाय ।**
**मानुख जनम पाय नर, काहे के जहड़ाय ।।**

**शब्दार्थ**—भरम–अज्ञान, विस्मृति । बाँधल–बँधा हुआ । ई–यह । काहे–किसलिए । जहड़ाय–नष्ट, भुलाय, ठगाय ।

**भावार्थ**—यह जगत अज्ञानरूपी रस्सी से ही बँधा है अर्थात् संसार के सभी मनुष्य भ्रम की डोरी में बंधे हुए हैं और बंधे ही आते-जाते हैं साहब कहते हैं कि हे मनुष्यों ! भला इतना दुर्लभ नर-तन प्राप्त कर क्यों नष्ट कर रहे हो ? तुम सावधान हो जाओ और तुम्हारा जो गन्तव्य स्थान है उस पर पदार्पण करो और संसार की मोह-माया को छोड़कर हरि-परायण हो जाओ ।

# रमैनी २४

## मिथ्या मोह प्रकरण

**चंद चकोर अस बात जनाई । मानुख बुधि दीन्ह पलटाई ।।**
**चार अवस्था सपनेउ कहई । झूठा फूरो जानत रहई ।।**
**मिथा बात न जानै कोई । यही विधी सभ गयेल विगोई ।।**

**शब्दार्थ**—चकोर–एक प्रकार का पक्षी जो चन्द्रमा से प्रेम करता है । अस–जैसे । जनाई–बताई । बात–विचार, उपदेश । पलटाई–उलटाई, घुमाई । चार अवस्था–बाल, किशोर, जवानी, बुढ़ापा । सपनेउ–स्वप्नवत् । कहई–कहा गया है । फूरो–सत्य, सांच । मिथा–झूठा, असत्य । गयेल–गये । बिगोई–विनष्ट ।

**भावार्थ**—तेइसवीं रमैनी में संसार के सुख को अल्प बताया है और उसके परिणाम को आदि से अन्त तक दुख कहा है और यह अज्ञान से आवृत है तथा अज्ञान की ही दशा में संसार के प्राणी बार-बार जन्म लेते

है। संसार के सुख से किस तरह का लगाव संसारी मनुष्यों को है जिस प्रकार से चन्द्रमा और चकोर का सम्बन्ध बताया गया है। चकोर अग्नि को चन्द्रमा समझकर चबा जाता है उसी प्रकार से संसारी मनुष्य संसार रूपी चन्द्र निसृत सुख को अमृत समझ कर चाट रहे हैं। जिसके कारण समस्त मनुष्यों की बुद्धि विपरीत हो गयी है। संसार के सुख से तृप्ति नहीं हो सकी। चारों अवस्थायें स्वप्न के समान बीत गयीं। क्योंकि झूठी बातों को अर्थात् झूठे सुखों को साँच मान बैठा है। चकोर की तरह उससे विरत नहीं हो पा रहा है। उपरोक्त झूठे सुख को अथवा झूठी बात को कोई जान नहीं रहा है और न उसके जानने का प्रयत्न ही कर रहा है जो मिथ्या उपदेश परम्परा से चला आ रहा है। उसी में सन्तोष मानकर सभी लोग चल रहे हैं। साहब कबीर कहते हैं कि इसी प्रकार से सभी मनुष्यों का विगोपन हो गया। अर्थात् इस मनुष्य तन को झूठी आशा-पासों में नष्ट कर दिया।

**आगे दै दै सभन्हि गमाया। मानुख बुधि सपनेहु नहिं पाया॥**
**चउतिस आखर सो निकलै जोई। पाप पुन्नि जानेगा सोई॥**

**शब्दार्थ**—आगे–पहले, प्रथम। दै दै–दे दे कर। सभन्हि–सभी लोग। गमाया–आत्म तत्त्व को खो दिया। मानुख–मानवता। चउतिस आखर–क वर्ग च वर्ग ट वर्ग त वर्ग प वर्ग य, र, ल, व, श, ष, स, ह, क्ष। जोई–जो।

**भावार्थ**—क्योंकि ये मनुष्य अपनी परम्परा के अनुसार पहले से ही उपर्युक्त मोह माया में चित्त देकर अपने को गंवा दिये। अनेक देवी-देवता की पूजा और उनके द्वारा भविष्य में फल प्राप्ति की कामना ने कुछ उनको हाथ लगने नहीं दिया। उनके गुरुजनों ने जो उनको उपदेश दिया उस पर वे अटल रहे। इसलिये मानवता की जो बुद्धि थी, जिसके द्वारा आत्मतत्त्व की प्राप्ति होनी थी और प्रभु प्राप्ति भी सम्भव थी। उस बुद्धि को स्वप्न में भी ये लोग प्राप्त नहीं कर सके। रात-दिन चौंतिस अक्षर तथा वेद शास्त्र एवं आगम पुराणों में लगे रहे और उसी पर विश्वास करके

संसार से पार जाना चाहते हैं। सद्गुरु कहते हैं कि इन चौंतिस अक्षरों के अन्तर्गत जो कथनी करनी है उस वातावरण से जो मनुष्य बाहर निकल आयेगा वही जान सकेगा की पाप क्या है ? और पुण्य क्या है ? जब तक मनुष्यों को शुभाशुभ का ज्ञान नहीं होगा तब तक मानव बुद्धि प्राप्त नहीं हो सकेगी क्योंकि कुछ ऐसे पुण्य हैं जिनमें पाप है, कुछ ऐसे पाप हैं जिनमें पुण्य है, जो प्राणियों की बलि देकर पुण्य कमाया जाता है जो दूसरों को सता कर पुण्य किया जाता है, उस पुण्य में पाप है। जो लोग संसार की सम्पत्ति का दुरुपयोग कर रहे हों उसको छीनकर गरीबों को बाँट दे उसमें पुण्य है। जो छीनना रूप पाप है, वह पुण्य के रूप में परिवर्तित हो जाता है। यह मानुसी बुद्धि है। जब इस प्रकार का विवेक होगा तभी मनुष्य समझ सकेगा कि क्या पुण्य है क्या पाप है।

साखी

**सोई कहंता सोइ होउगे, निकरि न बाहिर आउ।**
**हौं हजूर ठाढ़ कहत हौं, ते काहे धोखे जनम गंमाय ॥**

**शब्दार्थ**—सोई–वह। कहंता–कहने वाला। होउगे–हो जाओगे। हौं–मैं। हजूर–उपस्थित, स्वामी। ठाढ़–खड़ा हुआ। कहत–कहता हूँ। ते–तुम। काहे–किसलिये।

**भावार्थ**—यदि तू कहते हो की वेद शास्त्रों में लिखा है कि तुम जीव नहीं ब्रह्म हो क्या ऐसा कहने से तुम ब्रह्म हो जायेगा। जब तक की वेद शास्त्रों के उत्तम उपदेशों का तुम आचरण नहीं करोगे। केवल वक्तव्य से या वाणी मात्र कहने से कोई लाभ नहीं होगा। इसलिये तुम इन चौंतिस अक्षर के बाग्जाल से बाहर निकल आओ अर्थात् क्यों नहीं बाहर आ जाता है ? मैं प्रभु की प्राप्ति कर या आत्मतत्त्व का उपदेश तुम्हारे समक्ष खड़ा होकर कह रहा हूँ उसको क्यों नहीं ग्रहण करता है ? तुम मिथ्या के बकवाद में नर-तन को धोखा दे रहा है। यदि तुम्हें वास्तविक शान्ति की चाहना है तो मुझ स्वामी की बात पर ध्यान दें।

# रमैनी २५

## 'चौंतिस अक्षर प्रकरण'

**चउतिस अक्खर का इहै विसेखा । सहसो नाम याहि में देखा ।।**
**भूलि भटकि नर फिर घट आया । होत अजान सो सभन गवाया ।।**
**खोजहि ब्रह्मा वेस्नु सिउ सकती । अनंत लोग खोजहि बहु भगती ।।**
**खोजहिं गन गंधर्व मुनि देवा । अनन्त लोग खोजहि बहु भेवा ।।**

**शब्दार्थ** :—विसेखा–विशेषता । सहसो–अनेको । घट–शरीर, रास्ता, स्थान । भटकि–भ्रमकर । भूलि–भूलकर । अजान–अज्ञान युक्त । सो–वह । सभन–सभी, ब्रह्मा विष्णु शिव शक्ति–इनकी सहायता । अनन्त–अनेक । लोग–समूह, लोक । भेवा–रहस्य । बहु–बहुत प्रकार के ।

**सम्बन्ध**—चौबीसवीं रमैनी में चौतिस अक्षरों से बाहर निकलने को कहा गया है अर्थात् वेद शास्त्रों के लुभावने क्रिया–कलापों को छोड़ने को कहा गया है जो सदैव लोगों के चित्त को संसार में लगाये रहते हैं ।

**भावार्थ**—यहाँ पर चौंतिस अक्षरों का महत्त्व बताया जा रहा है उन चौंतिस अक्षरों की विशेषता यह है कि जितने भी संसार में शब्दों की संज्ञाएँ हैं वे सभी संज्ञाएँ इन चौंतिस अक्षरो में अंकित हो जाती हैं । अर्थात् कोई भी शब्द वाक्य या शब्द योजना इन चौंतिस अक्षरों से भिन्न नहीं होती । यही इनकी विशेषता है कि वे संसार के सभी वाक्यार्थो को अपने में समेटे रहते हैं, और इन्हीं चौंतिस अक्षरों में समस्त वेद शास्त्र एवं संसार की सभी प्रकार की पुस्तकें लिखी गयी हैं। यह स्वाभाविक है कि इन चौंतिस अक्षरों में मनुष्यों का सहज सम्बन्ध क्यों न हो जाय ? यह मनुष्य अनेक योनियों से भूल-भटक कर फिर मानव तन को प्राप्त करता है और सचेत होने पर विशेष बात न जानने के कारण उन्हीं चौंतिस अक्षरों के वेद शास्त्र में लग जाता है । अर्थात् जो यज्ञ, उपनयन या दान-पुण्य इनमें अंकित किये गये हैं। उन्हीं को करते-करते अपनी

सारी अवस्था को बिता देता है या गंवा देता है। जब इन कृत्यों से शान्ति सन्तोष नहीं पाता, तब हार कर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति अर्थात् देवी की खोज में लग जाता है और उनके द्वारा अपनी मदद भी चाहता है। ये संसार के अनन्त लोग इन देवताओं की प्राप्ति के लिए बहुत प्रकार की भक्ति को भी खोज करते हैं। जिसके द्वारा उपर्युक्त देवताओं को रिझाने की कोशिश करते हैं इतना ही नहीं जब उधर असफल होते हैं तो 'गन' अर्थात् 'देवगणों' के समूह को, गन्धर्वों के समूह को, मननशील मुनियों के समूह को और बहुत प्रकार के देवताओं के अन्वेषण में लग जाते हैं तथा बहुत लोग इन सब प्रकार के 'भेवा' कहिये रहस्यों की खोज में लग जाते हैं। परन्तु इन वाह्य अन्वेषणों के द्वारा भूत भौतिक सृष्टि के अतिरिक्त क्या कुछ हाथ लग सकता है? खोजना तो अन्दर चाहिए था जहाँ पर सभी देवी-देवता, उपास्यगणों से भेंट हो जाती। परन्तु ऐसा न करके अपनो खोज को आगे बढ़ाते गये। ये सब तमाम बातें उक्त चौंतिस अक्षरों की देन है, जिनके चक्र में मनुष्य पुनः पुनः घूम-फिर कर लगा रहता है।

साखी

**जती सती सभ खोजहीं, मनहिं न मानैं हारि।**
**बड़-बड़ जीउ न वाचिहैं, कहैं कबीर पुकारि॥**

**शब्दार्थ**—जती–साधु, संन्यासी। सती–पतिव्रता स्त्री या सत्य वक्ता। खोजहीं—खोजते हैं। मनहिं–मन में। मानैं–सन्तुष्ट, संतोष। हारि–क्लान्ति नहीं। बड़-बड़–बड़े-बड़े, श्रेष्ठजन। जीउ–लोग। वाचिहै–उबरेंगे।

**भावार्थ**—ऊपर कहा गया है कि पुनः-पुनः लोग भूत भौतिक सृष्टि के अन्दर अन्वेषण करते-करते थक जाते हैं। साखी में सद्गुरु कहते हैं कि यह सामान्य लोगों की ही बात नहीं है बड़े-बड़े संन्यासी, नागा, निर्वानी, सत्यवक्ता, सती स्त्रियाँ ये सब उस परमतत्त्व की खोज में लगे

हुए हैं। उसके खोजने में इतने तल्लीन हैं कि यत्किंचित् भी मन में हार नहीं मानते हैं। परन्तु प्राप्ति न होने पर अर्थात् परमतत्त्व के न जानने पर ये बड़े-बड़े जीव जन्म मरण से वंचित नहीं हो सकेंगे। इस बात को कबीर साहब पुकार कर कहते हैं कि हे भाई! यदि चेतना हो तो चेत लो इन चौंतिस अक्षरों वाले वेद शास्त्रों के व्यामोह में न पड़ो। वह तत्व तुम्हारे हृदय में है। उसको किसी अच्छे सद्गुरु से प्राप्त कर सकोगे।

## रमैनी २६

### ईश्वर महिमा प्रकरण

**आपुरे करता भये कुलाला। बहु बिधि वासन गढ़ै कुम्हारा॥**
**विधनैं सभै कीन्ह एक ठाऊं। अनेक जतन के बने बनाऊ॥**
**जठर अगिनि मैं दीन्ह प्रजारी। तामे आपु भये प्रतिपाली॥**
**बहुत जतन कै बाहर आया। तब सिउ सकती नाम धराया॥**

**शब्दार्थ**—आपुरे–स्वयं, आपुहि। करता–करने वाला। कुलाला–कुम्भकार। बहुबिधि–बहुत प्रकार का। वासन–वर्तन, शरीर। गढ़ै–निर्मित किया। कुम्हारा–कुम्भकार। विधनैं–ब्रह्मा ने। ठाऊँ–स्थान। जतन–यत्न, पालन। बनाऊ–सिद्ध कार्य। जठर–माता का गर्भाशय रूपी अग्नि। प्रजारी–पकाया। तामे–उसमें। आपु–आपही। प्रतिपाली–पालन कर्ता, संरक्षक। जतन–प्रयत्न, पालन करने के बाद। सिउ–पुरुष। सकतो–स्त्री। नाम–संज्ञा।

**सम्बन्ध**—ऊपर चौंतिस अक्षरों की बातें विस्तारपूर्वक कही गयी है जिसका महत्त्व भी दर्शाया गया है। परन्तु सच्चे सद्गुरु की प्राप्ति के बिना चौंतिस अक्षरों से बने वेद शास्त्र मनुष्य को वास्तविकता तक नहीं पहुँचा सकते। इसलिये प्रभु प्राप्ति नहीं हो पाती है।

**भावार्थ**—जिस परमतत्त्व की बात मैं करता हूँ, वह सर्वोच्च स्थान

वाला है। इस सृष्टि को वहीं बनाने वाला है। कुम्भकार के रूप में वह वासन रूपी अनेक प्रकार के योनियों का निर्माण किया है। उस परमात्मा रूपी 'विधना' ने सभी मनुष्यों एवं मनुष्येतर प्राणियों को एक ही स्थान पर निर्मित किया है। यह सृष्टि रूपी कार्य कुलाल रूपी परमेश्वर ने बहुत जतन से बनाया है और सभी मनुष्यों एवं प्राणियों को बनाकर माता के जठराग्नि में पकाया है, और उस जठराग्नि रूपी माता के गर्भाशय में सभी प्राणियों की रक्षा भी करता है। बहुत सुरक्षा के वाद यह प्राणी समूह माता के गर्भाशय से जब बाहर आते हैं तभी कोई पुलिङ्ग होने पर पुरुष कहलाता है। स्त्रीलिङ्ग होने पर स्त्री कहलाती है। सद्गुरु द्वारा यह बहुत अनूठा कुम्भकार का रूपक है। परमेश्वर को कुम्भकार की संज्ञा दी गयी है। इसलिये कि कुम्भकार बहुत सावधान होकर वर्तनों को बनाता है। बढ़िया मिट्टी, जल मिलाकर चाक पर चढ़ाता है और मधुर धूप में सबको सुखाकर सामान्य अग्नि में पकाता है। कुम्भकार हर एक अवस्था में बर्तन को नुकसान होने से बचाता है। इसी प्रकार से वह दयामय परमेश्वर प्राणियों के शरीररूपी बर्तन बनाकर माता के गर्भाशय में बहुत सुरक्षित रूप से नौ महीने तक रखता है। आतप-बात से जब नष्ट होने की सम्भावना नहीं रहती है तभी प्राणियों को बाहर करता है कहने का तात्पर्य यह है कि वह दीनवत्सल जीवों के कर्मानुसार सृष्टि रचता है और कुम्भकार की भाँति सभी जीव जन्तुओं की रक्षा करता है। प्राणियों के बाहर भीतर का वही रक्षक है। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि दुनियाँ के बकवास में न पड़कर उस उपासक हरि का चिंतन करें।

**घर का सुत जौ होय अयाना। ताके संग न जाहू सेआना ॥**
**सांची बात कहौं मैं अपनी। भया दिवाना अउर की पूनी ॥**
**गुप्त प्रगट है एकै दूधा। काको कहिये ब्राह्मन सूद्रा ॥**
**झूठे गरब भूलै मति कोई। हिन्दू तुरक झूठ कुल दोई ॥**

**शब्दार्थ**—सुत-पूत्र, जाया। जौ-जो। अयाना-अज्ञानी। होय-हो।

सेआना–बुद्धिमान। ताके–उसके। कहौं–कहूँ। अपनी–निजी। भया–हुआ। दिवाना–देखकर, प्रमत्त, उन्मत्त। पूनी–पुण्य, दूसरे के साथ, पुनः दूसरे का सुनकर। गुप्त–गुह्य, अन्दर की। दूधा–दुग्ध। काको–किसको। गरब–अभिमान, गुमान। कुल–जाति, वर्ग। दोई–दो।

**भावार्थ**—ऊपर की चौपाई में प्रभु का महत्त्व दर्शाया गया है और उसी से साथ करने की बात कही गयी है। यदि उसका साथ करने में अर्थात् सत्य मार्ग के आचरण में परिवार के सुत-कलत्र, संगी और साथी लोग अज्ञानवश विरोध करें तो उनकी बात नहीं मानना चाहिए। सत्संगियों के अतिरिक्त कुसंगियों का साथ कभी नहीं करना चाहिए। साहब कहते हैं कि यह मैं निज की, खुद की बात कह रहा हूँ कि तुम भले मनुष्यों का साथ करो और परमार्थ का चिन्तन करो। परन्तु ये संसारी मनुष्य अन्य की बात सुनकर दीवाना हो रहे हैं। जो लोक में प्रचलित बात है उन्हीं बातों की ओर ज्यादा ध्यान देते हैं। मैं तो कहता हूँ गुप्त प्रगट दूध रूपी एक ही चेतन सब में विराजमान है। सम्पूर्ण सृष्टि के प्राणियों में एक सत्ता के विद्यमानता के कारण किसको ब्राह्मण कहा जाय किसको शूद्र कहा जाय। यह सब लोक मान्यतायें हैं। हे भाई मनुष्यों! इस जाति-पांति के झूठे अभिमान में कोई मत भूलो संसार में जो हिन्दू और मुसल-मान दो जातियाँ दिखाई दे रही हैं ये सब मनुष्य हैं। उनमें कोई जातोय चिन्ह नहीं हैं। इसलिए जातिवाचक सभी संज्ञायें झूठी हैं।

**साखी**

**जिन यह चित्र बनाइया, सांचा सो सूतधार।**
**कहैं कबीर ते जन भले, चितवंतहि लेइ निहार॥**

**शब्दार्थ**—जिन–जिसने। चित्र–संसार, शरीर। बनाइया–निर्माण किया। सो–वही। सूतधार-सूत्रधर। चित्रवंतहिं–चित्र बनाने वाले को। निहार–देख कर।

**भावार्थ**—सच्चा वही है जिसने इस संसार का निर्माण किया है।

उसी के हाथ में सारे मनुष्यों के सम्पर्क सूत्र हैं। सद्गुरु कहते हैं वही लोग अच्छे है, भले हैं जो लोग उक्त जाति-पाँति वर्णाश्रम को भुलाकर, चित्र बनाने वाले को सभी की आत्माओं में देखते हैं।

सूत्रधार का दृष्टान्त यह है कि जैसे एक सौ आठ दाने की माला होती है उसमें एक सुमेरू होता है। जैसे सबके होते हुए अन्त में सुमेरु के साथ में मनके लगे होते हैं, उसी प्रकार से अनेक योनियों के प्राणी माला की मणियाँ हैं। जो चेतन सत्ता है, वह सुमेरु रूपी परमेश्वर के हाथ में लगो होती है। सबका संचालन वही करता है।

## रमैनी २७

**ब्रह्मा को दीन्हों ब्रह्मण्डा। सात दीप पुहुमी नाउ खंडा॥**
**सत्त सत्त कहि वेस्नु दिढ़ाई। तीनि लोक मा राखिनि जाई॥**
**लिंगरूप तब संकर कीन्हा। धरती खोलि रसातल दीन्हा॥**
**तब अस्टंगी रची कुमारी। तीनि लोक मोहिन सभ झारी॥**
**दुतिया नाम पारबती भयेऊ। तब करता संकर कह दियऊ॥**
**एकै पुर्ख एक है नारी। ताते रची खानि भौ चारी॥**
**सरमन बरमन देउ अउ दासा। रज सत तम गुन धरती अकासा॥**

**शब्दार्थ**—ब्रह्मा-विधाता, सृष्टि बढ़ाने वाला। पुहुमी-पृथ्वी। नउ-खंडा-नवखंड भारत, इलावृत्त, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य, कुश। सात दीप-जम्बू, कुश, प्लक्ष, क्रोच, शक, पुष्कर, शाल्मली। ब्रह्मण्डा-समूह, अखिल, समस्त, भूत भौतिक सृष्टि। सत्त सत्त-सत्य। दिढ़ाई-उपदेश दिया। मा-में। राखिनि-राखा। जाई-जाकर। लिंगरूप-चिन्ह, प्रतीक, शासन। खोलि-आकाश से पाताल तक केलि क्रीडा। अस्टंगी-आठ अंगवाली, आद्याशक्ति, गायत्री। कुमारी-अविवाहित, बिना पति की। मोहिन-मोह, मोहित किया। झारी-समस्त, सम्पूर्ण। दुतिया-दूसरा। नाम-संज्ञा। पारबती-पार्वती, शैलजा, पर्वतीय राजा की लड़की। भयेऊ-

हुआ। करता–कार्य ब्रह्म, ईश्वर, ब्रह्मा, शिवजी। कह–को। दियऊ–दिया। एकै पुर्ख–एक ओंकार। एक है नारी–आद्याशक्ति प्रकृति। ताते–इसलिये, उससे। रची–रचा। खानि–राशि, जाति, केन्द्र, अण्डज, स्वेदज, जरायुज, उद्भिज। भौ–हुई, संसार। सरमन–शर्मा, ब्राह्मण। बरमन–वर्मा, क्षत्रिय। देउ–वैश्य, वणिक। दासा–शूद्र, सेवक। रज–क्रियाशील-शक्ति। सत–सात्त्विक, सत्य। तम–अंधकार शक्ति। गुन–रज, सत, तम।

**सम्बन्ध**--पहले कहा जा चुका है कि स्वयं परमसत्ता जगदीश्वर ने ही संसार रूपी बर्तन की सृष्टि की है और उस बर्तन बनाने वाले को जो चीन्ह लेता है अथवा जो उसकी प्राप्ति कर लेता है वह श्रेष्ठ मनुष्य है। क्योंकि वह हरि सर्व समर्थ है। उसी के द्वारा सारे संसार का सर्जन होता है।

**भावार्थ**—उस कुलाल रूपी परमेश्वर ने अखिल ब्रह्माण्ड की रचना करने के बाद ब्रह्मा को उस ब्रह्माण्ड का कार्यभार सौंपा, जिसमें सात द्वीप और पृथ्वी के नौ खण्ड वर्तमान हैं। प्रथम तो सर्जन क्रिया आपने स्वयं किया। पश्चात् प्रतिनिधि के रूप में उस क्रिया को ब्रह्मा को सौंपा। उसके बाद ब्रह्मा द्वारा रचित सृष्टि का जिसमें भूत भौतिक सृष्टि सम्मिलित है। उसके पालन के लिए सात्त्विक गुण से युक्त, सत्य-वक्ता विष्णु को सौंपा। क्योंकि सात्त्विक गुण उत्पन्न होने पर ही दया उत्पन्न होती है। इसलिए वह अखिल ब्रह्माण्ड का जो स्वामी है, सद्गुण से विभूषित कर पालन कार्य विष्णु को दिया और यह दृढ़ाया कि सब पर दया दृष्टि समान होनी चाहिए। इसके पश्चात् भगवान विष्णु ने तीनों लोकों में अपनी दया दृष्टि का प्रस्थापन किया और सभी प्राणियों के संरक्षण में लग गये। तत्पश्चात् अखिल ब्रह्माण्डाधीश चेतन पुरुष ने लिङ्ग रूप में शंकर को उत्पन्न किया और धरती से लेकर रसातल तक तथा आकाश में जितने भी लोक स्थित है, कर्मानुसार शासन का कार्य दिया। अर्थात् शंकरजी को सृष्टि को सम रूप अर्थात् सीमित रूप में रखने का आदेश दिया। इसके बाद वह विश्वपितामह ने एक आठ

अंग वाली कुमारी की रचना किया जो अत्यन्त सुन्दरी थी, जिसको देखकर तीनों लोकों के समस्त प्राणी मोहित हो गये। उसी का नाम पश्चात् में पार्वती हुआ। जिसको विश्वकर्ता ने शंकर जी के साथ लगा दिया। एकै पुरुष अर्थात् कार्यब्रह्म और आठ अंगवाली वह प्रकृति, भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार से युक्त उस स्त्री से और उस पुरुष से चार प्रकार की खानियों की रचना हुई। जिसमें अण्डज, पिण्डज, जरायुज, उद्भिज सब ओत-प्रोत हैं। फिर मनुष्यों में चार भाग हुआ, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। धरती से आकाश तक जितने प्राणी हैं सबमें रज, सत, तम गुणों का प्रवेश हुआ। जिसके अनुसार मानव अपने कार्य में लग गये।

**विशेष :** पुराणों में एक कथा आती है कि जव ईश्वर ने ब्रह्मा को अखिल ब्रह्माण्ड का कार्यभार सौंपा और भगवान विष्णु को तीनों लोकों के रक्षा का भार सौंपा, तब इन दोनों के मन में यह अभिमान हुआ कि हमसे परे कोई नहीं है। हम ही सर्वे-सर्वा हैं। जब इन दोनों को अपने कर्तव्य का अभिमान हुआ। तब कार्यब्रह्म ने शंकर नाम के एक देवता की उत्पत्ति की और कहा कि तुम इन दोनों के अभिमान को तोड़ो। तब भगवान शंकर ने अपनी उपस्थ इन्द्रिय को इतना बढ़ाया कि आकाश से पाताल तक खोल दिया, और ब्रह्मा तथा विष्णु से कहा कि तुम लोग इस लिङ्ग का पता लगाओ कि यह लिङ्ग कहाँ तक गया है। दोनों दो दिशा में चल पड़े, पता किसी को नहीं चला। पुनः दोनों ने शंकरजी से क्षमा याचना किया। फिर शंकर जी को अभिमान हुआ। तब विश्व रचयिता एक बहुत सुन्दर स्त्री को प्रकट किया। वह सुन्दर स्त्री शंकर जी के लिङ्ग को शोषण कर गयी। फिर शंकर जी का अभिमान जाता रहा। भाव यह है कि परमेश्वर ने बहुत बड़े से बड़े लोगों को बनाया और वे लोग परमेश्वर की महिमा को विस्मृत कर दिये। तब परमेश्वर ने अपनी माया के द्वारा सभी के मान को मर्दन किया। सद्गुरु कहते हैं कि ये नाम रूपधारी जो देव हैं उस परमेश्वर के सामने कुछ नहीं हैं।

परमेश्वर ही एक पुरुष है और अष्टधा प्रकृति ही उसकी एक स्त्री है। अर्थात् दोनों के संयोग से इस सारी सृष्टि की रचना हुई है। जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अपने को श्रेष्ठ प्रदर्शन करते हैं। परन्तु धरती से आकाश तक जितने प्राणी हैं उन सबमें रज, सत, तम तीनों गुण विद्यमान हैं। अर्थात् सभी में समान रूप से काम, क्रोध, लोभ, मोह विद्यमान है। इसलिए न कोई छोटा है न बड़ा। इस रमैनी में उस महापुरुष का महत्त्व दिखा करके उसी का प्रतिपादन किया गया है। वास्तव में वही सर्वे-सर्वा है, अन्य देहधारी देव, दनुज, मनुष्य उसके सामने कुछ नहीं हैं।

साखी

**एक अडं ओंकार ते, सभ जग भया पसार।**
**कहैं कबीर सभ नारि राम की, अविचल पूर्ख भतार॥**

**शब्दार्थ**—अण्ड–बीज, शुक्र, वीर्य। ओंकार–प्रणव, कार्य ब्रह्म। ते–से। भया–हुआ। पसार–विस्तार। नारि–प्राणी समूह, कामी पुरुष, कामना से आवृत्त। अविचल–जो चलायमान न हो। पूर्ख–पुरुष। भतार–पूर्ति करने वाला, भरण करने वाला, भर्तार।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि यह संसार किसी देवी देवा से नहीं उत्पन्न हुआ है। यह केवल कार्य ब्रह्म ओंकार से उत्पन्न हुआ है उसी परमेश्वर के द्वारा सारे संसार का विस्तार हुआ है। ये सारे भूत भौतिक प्राणी जो कामना से युक्त हैं उसी कार्य ब्रह्म राम की पूजा करते हैं। वह पुरुष अविचल है कभी चलायमान नहीं होता। वह सभी का भरण-पोषण भी करता है।

**विशेष**—यहाँ यह सिद्ध हुआ कि वास्तव में ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर ईश्वर नहीं हैं। इनके अतिरिक्त ईश्वर दूसरा है जिसने सृष्टि चलाने के लिए उक्त तीनों महापुरुषों को तीन लोक सौंपा, और कर्त्तापन का अभिमान होने पर अपनी शक्ति का प्रदर्शन भी किया। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि जो सभी देवा-देवियों से परे है, उसी एक की उपासना करें।

**अन्तर्कथा**

ब्रह्मा, विष्णु, ईश्वर, शिवलिङ्ग की प्रगटता की अनेक प्रकार की कथा है। भविष्य पुराण सं० १ अ० १५३ में कथा है कि—कल्प के आदि में सृष्टि का पालन करते हुए ब्रह्मा, विष्णु, शिव तोनों को अभिमान हुआ कि, मैं ही महान हूँ। अनेक प्रकार के विवाद हुए कि मैं ही महान हूँ। इतने में मोह रूप से तम अज्ञान का प्रवेश हुआ, तब ब्रह्मा आदि व्याकुल हुए। फिर दर्प नष्ट होने पर, सूर्य स्वरूप ज्ञान प्रगट हुआ उसका अन्त खोजने के लिए ब्रह्मा ऊपर गये, शिव नीचे, विष्णु चारो तरफ गये। पता नहीं लगने पर उस तेज स्वरूप को प्रणाम कर स्तुति करने लगे।

लिङ्गपुराण अ० १७ में ब्रह्माजी का कथन है कि उस कमलेक्षण विष्णु को सोया हुआ देखकर हाथ से मार कर मैंने पूछा कि तुम कौन हो, तब जग कर विष्णु बोले कि वत्सपितामह, तेरा स्वागत है, तब मैंने कहा कि जगत कर्ता तुम मुझको पुत्र शिष्य के समान क्यों कहते हो। तब विष्णु बोले मैं जगत का कर्ता धर्ता हूँ, तुम मेरे अंग से उत्पन्न हुए हो, परन्तु मुझे भूल गये हो। इसके बाद दोनों का युद्ध होने लगा, तब दोनों के सामने लिंग प्रकट हुआ, उसके तेज से विष्णु मोहित हो गये और बोले कि, इसकी परीक्षा करें मैं नीचे जाता हूँ, आप ऊपर जाओ वराह हँस रूप से ऐसा ही किया गया। पता न लगने पर चिन्ता ग्रस्त दोनों को समझाने के लिए, ओंकार और वेद प्रगट हुए, जिससे विष्णु और ब्रह्मा परमेश्वर को समझ सके और स्तुति करने लगे।

अ० १९ में है कि शिवजी प्रसन्न और प्रगट होकर बोले हैं कि अ० २० में ब्रह्मकल्प कथा है भगवान विष्णु शेष पर सोये थे वहाँ दैव योग से ब्रह्माजो आये, विष्णु से बोले कि इस समुद्र में सोने वाले आप कौन हैं ? विष्णु अपने को जगत कर्त्ता बताकर, ब्रह्मा से पूछे कि आप कौन हो ब्रह्मा बोले जैसे आप कर्त्ता हो वैसे मैं भी कर्त्ता हूँ। मेरे अन्दर

सब संसार है देखो। फिर विष्णु ब्रह्मा के मुख में बैठकर सब जगत को देख कर बाहर चले आये और ब्रह्मा को अपने मुख में बैठने के लिए कहे। जब ब्रह्मा मुख में बैठे तब विष्णु सब द्वारों को बन्द करके सो गये। फिर ब्रह्मा सूक्ष्मरूप होकर विष्णु के कमल नाभि से निकले। फिर दोनों का विवाद होने लगा तब शिवजी आये।

कूर्म पुराण अ० २५-२६ में कथा है कि—उपमन्यु के बताने से कृष्ण भगवान पुत्र के लिए शिव का तप किया। फिर प्रकट होकर पार्वती शिव वर दिये, उसके बाद कृष्ण शंकर के साथ कैलाश गये, और वहाँ कुछ दिन ठहरे, फिर नारद द्वारा पता लगने पर गरुड़ के द्वारा द्वारिका लाये। तब भगवान के दर्शन के लिए ऋषि लोग आये, वहाँ शिवजी की पूजा करते हुए देखकर मारकन्डे ऋषि बोले कि यह लिंग क्या है ? तब भगवान ने कहा कि पहले एकार्णव काल में विष्णु रूप में सोया हुआ था इतने में ब्रह्मा को देखा, दोनों में ईश्वर के प्रति विवाद होने पर एक लिङ्ग प्रकट हुआ, और आकाश वाणी हुई कि, विष्णु नीचे जाये और ब्रह्मा ऊपर जायें। जो इसका पता लगा लेगा वहीं ईश्वर होगा। वैसा ही करने पर दोनों को पता नहीं लगा। फिर शिवजी अपने जटिल वेष से प्रकट हुए और सृष्टि पालन के लिए वर दिया, स्वयं ब्रह्माजी का पुत्र होने के लिए आशीर्वाद दिये।

शिव पुराण सं० १ अ० ६ इत्यादि में भी ब्रह्मा विष्णु का विवाद युद्ध का वर्णन है। भयानक युद्ध से घबराकर देव सब शिव के शरण गये। शिव ने गणेशादि को युद्ध स्थल में भेजा। परन्तु ये लोग कुछ कर न सके। इन तीनों अस्त्र से अग्नि उत्पन्न हुई, तब फिर अग्नि को दबाने वाला ज्योतिर्मय लिङ्ग दोनों के मध्य प्रकट हुआ। उसे देख कर दोनों विचार किये, इसके आदि अन्त को समझना चाहे। अन्त न पाने पर सत्य बोलने से विष्णु पूज्य हुए और झूठ से ब्रह्मा अपूज्य। इसके बाद सकुटुम्ब ब्रह्मा, विष्णु शिवलिङ्ग की पूजा किये। तब शिवजी प्रसन्न होकर उस रात्रि का नाम शिवरात्रि रखा और अपने को व्यापक

ब्रह्मरूप समझाया, तथा ओंकार रूप का उपदेश दोनों को दिया। वायु पुराण में भी अ० ५५ में लिङ्गरूपता का वर्णन है और २४ में भी अन्य रूप से यह कथा है।

पार्वती जी से शंकर जी मोहित हुए सो बात स्कन्ध पुराण खण्ड २/२ अ० २० में है।

देवी भागवत स्कन्ध ४ अ० ९१ विष्णु भगवान स्वयं ब्रह्माजी से मायाजन्य अपने मोह का वर्णन किया है।

स्कन्ध ५/१५/६ में माया की उक्ति है और स्कन्ध ५ अ० ३३ में ब्रह्मा आदि ने माया की अधीनता की और लिङ्ग प्रादुर्भावादि का वर्णन है। इससे कहा गया है कि तीनि लोक मोहिन सभ झारी।

## रमैनी २८

**अस जोलहा कोउ मरम न जाना। जिन्ह जग आनि पसारिन ताना**
**धरति अकास दोउ गाड़ खनाया चांद सूर्य दोउ नरी बनाया॥**
**सहस तार ले पूरनि पूरी। अजऊं बिने कठिन है दूरी॥**
**कहैं कबीर करम ते जोरी। सूत कुसूत बिने भल कोरी॥**

**शब्दार्थ**—अस–इस प्रकार की। जोलहा–कपड़ा बुनने वाला, तन्तुवाय, परमात्मा। कोउ–कोई। मरम–भेद, रहस्य। जिन्ह–जो। आनि–आकर। पसारिन–फैलाया, विस्तार किया। ताना–सूतों को लम्बा करके सांचों में सुसंगठित करना, कपड़ा बुनने के लिए सुसज्जित करना। दोउ–दो। गाड़–गड्ढा। खनाया–खोदाया। चांद–चन्द्रमा, इड़ा नाड़ी। सूर्य–रवि, पिङ्गला नाड़ी। नरी–जिसमें बिनने के लिए सूत लपेटे जाते हैं, नरिका-ढ़रकी के भीतर की नली जिस पर तार या सूत लपेटा रहता है। सहस–अनन्त, हजार। तार-सूत। ले–लेकर। पूरनि–बुनाई, कार्यसिद्धि, पूर्ण, भरना, पूर्ति करना, भरपूर, यथेच्छ। पूरी–पूर्ण, अधिक, काफी।

अजहुँ–आज भी। बिने–बुनना। कठिन–दुस्तर, अपार। दूरी–अन्तहीन। करम–कर्म। जोरी–गठित किया, एक में मिलाया। सूत–अच्छा। कुसूत–बुरा, अशुभ। भल–अच्छा। कोरी–परमात्मा, जोलाहा, कबीर साहब।

**सम्बन्ध**—सत्ताइसवीं रमैनी में सदगुरु कबीर ने केवल एक ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया है और उसी के द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि का विस्तार होता है।

**भावार्थ**—अब कहते हैं कि उस परमात्मा रूपी जुलाहे का कोई रहस्य जान नहीं पाया कि इन भौतिक पदार्थों की जिनसे सृष्टि की रचना किया है, वह कहाँ से लाया ? और पंच तन्मात्राओं सहित ये पंच महाभूत कहाँ थे ? जिनके द्वारा उसने इस जगत में सृजन क्रिया का प्रसार किया। यह जो ताना उसने प्रस्तुत किया है यहीं उसका अभेद रहस्य है। वह परमात्मा पृथ्वी और आकाश रूपी दो गड्ढा खोदा, जिसमें बैठकर सृष्टि रूपी करघा का संचालन किया। उस प्रभु ने चाँद और सूर्य रूपी दो ढ़रकी बनाया। जिसमें सृष्टि के सारे ताने बाने को लपेटा अर्थात् पीरोया। स्मरण रहे कि प्राणवायु को संचालन करने के लिए शरीर रूपी वस्त्र के दो नाशा छिद्रों इंगला और पिंगला को स्थित किया। जिसके द्वारा जीवनी शक्ति का संचार होता रहता है। उसके बाद उसने मूलाधार में नाड़ियों का समूह रूप एक कन्द की स्थापना किया। जिनकी संख्या बहत्तर हजार है। इन नाड़ियों के द्वारा पूरे शरीर की रचना की और आज भी वह परमेश्वर इन पंच भूत सामग्रियों के द्वारा शरीर रूपी ताने-बाने को बीन रहा है। वह इस शरीर अर्थात् सृष्टि का कब तक बुनना चालू रखेगा, यह कहना कठिन है, और बहुत दूर है। इसका कुछ ठीक-ठिकाना नहीं है। सद्गुरु कबीर कहते हैं परमेश्वर का ताना-बाना मनुष्यों के कर्म के कारण चालू है और उन्हीं कर्मों से वह एक तार को दूसरे तार से जोड़ते रहता है। अर्थात् प्राणियों के शुभा-शुभ कर्मों के अनुसार इस सृष्टि को बीना करता है। वह परमात्मा रूपी कोरी बड़ा

विलक्षण है और दक्षता के साथ सूत-कुसूत अर्थात् शुभा-शुभ या पाप-पुण्य के अनुसार प्राणियों के शरीर का निर्माण करते रहता है ।

## रमैनी २९

**बज्रहु ते त्रिन खिन मा होई । त्रिन सो बज्र करै फुनि सोई ॥**
**नीझरू नीरू जानि परिहरे । करमक बांधल लालच करे ॥**
**करम धरम मति बुधि परिहरिया । झूठा नाम सांच लै धरिया ॥**
**रजगति त्रिविध कीन्ह परगासा । करम धरम बुधिकेर बिनासा ॥**

**शब्दार्थ**— वज्रहु–वज्र से कुलिश, कठोर। ते–से। त्रिन–तृण, घास का कण। खिन–क्षण, पल। मा–में। फुनि-पुनि। नीझरू–नीझर' झरना, जो पहाड़ों से अनवरत स्रोत बहते रहते हैं। नीरू–जल। परिहरिया–त्याग दिया। करमक–कर्म के। मति–बुद्धि, जो भविष्य तक देखती है। बुधि–समान बुद्धि। परिहरै–त्याग कर दिया। नाम–संज्ञा, सम्मान। धरिया–धारण किया। रजगति–रजोगुण के तीन स्वरूप होते हैं सामान्य गति, मध्यगति, श्रेष्ठगति। परगासा–प्रकाश, प्रेरणा।

**सम्बन्ध**—पहले साहब ने कहा परमात्मा रूपी जुलाहे का रहस्य कोई जान नहीं पाया। शुभा-शुभ कर्मों के अनुसार प्राणियों के शरीर रूपी कपड़े को बिनते रहता है।

**भावार्थ**—इस उन्नीसवीं रमैनी में उस परमात्मा की विशेष महिमा को बताते हुए सद्गुरु कहते हैं कि वह प्रभु क्षणमात्र में बज्र को तृणवत्, बहुत तुच्छ बना देता है और तृण को पलक मारते-मारते बज्रवत् महान बना देता है। क्योंकि कर्त्तापन का दोष उत्पन्न होने पर ब्रह्मादिकों को त्वरित समान बना दिया। परन्तु यह अज्ञानी जीव उस प्रभु को समझ नहीं पाया। जो सरल था, और झरने के जल के समान बिना परिश्रम के उपलब्ध होने वाला था। उसको महत्त्व हीन जानकर संसारी प्राणियों ने उसका परित्याग कर दिया और कर्म के जो बन्धन थे अर्थात् जिन

काम्य कर्मों से मनुष्य बंधे हुए हैं। उन्हीं काम्य कर्मों में लालच करने लगे। अर्थात् सकाम कर्मी पुरुष परमेश्वर को छोड़कर नाना प्रकार के देवताओं की आराधना में लग गया और उनके द्वारा प्रदत्त फल के लोभ में यावद् जीवन लगा रहा, तात्पर्य यहाँ यह है कि परमेश्वर के अतिरिक्त जितने भी देवी देवता हैं। वे सब परमेश्वर के अधीन हैं और सब कर्मो में बंधे हुए हैं। तब भला वे अपने उपासकों को कैसे कर्म-बन्धन से मुक्त कर सकते हैं? जिसके कारण जो आत्मप्राप्ति का कर्म एवं धर्म था, जो मति अग्रगामी थी, जो भविष्य की रचना करने वाली थी तथा जो बुद्धि समान रूप से सत्य असत्य का विवेक करने वाली थो, अल्प लाभ के चलते उस परमात्म प्राप्ति बुद्धि को संसारी मनुष्यों ने त्याग दिया। अर्थात् जिस मति से आत्मज्ञान की बुद्धि उत्पन्न होने वाली थी, भव-भोग की लिप्सा में अज्ञ प्राणियों ने उसको छोड़कर झूठे नाम रूप को सांच समझकर धारण कर लिया। यहाँ नाम का तात्पर्य मान बड़ाई सम्मान से है। दूसरा अर्थ यह भी है कि नाम झूठा होता है किसी व्यक्ति का नाम कल्पित किया जाता है, पर व्यक्ति सत्य होता है। तो सत्य आत्मा का ज्ञान न होने के कारण केवल राम नाम कहने से कार्य सिद्ध होने वाला नहीं है। तात्पर्य यह है कि जब अर्थ के सहित नाम लिया जाता है तब सफलता मिलती है। "तज्जपस्तदर्थभावनम्" यो० द० समा० सू० २८–इस प्रकार से नाम जप न करके रजोगुण की जो तीन वृत्तियाँ हैं उन्हीं वृत्तियों के प्रकाश में संसार के सारे मनुष्य फल स्वार्थ की सिद्धि में लगे रहे। क्योंकि देवी-देवताओं की उपासना से ही रजोगुण का विकास होता है और जब रजोगुण विकसित होता है तो मनुष्य की वृत्ति बहिर्मुखी हो जाती है। जिसके कारण मनुष्य कभी आत्मतत्त्व का अधिकारी नहीं हो सकता है। क्योंकि वह बाँधने वाले कर्मों को करते रहता है। जब रजगति की तीनों वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं, तब सात्त्विक बुद्धि के कर्म-धर्मों का विनाश हो जाता है।

**रवि के उदै तारा भौ छीना। चर बीहर दूनों मा लीना॥**
**विख के खाये विख नहिं जावै। गारुर सो जो मरत जिआवै॥**

**शब्दार्थ**—रबि–सूर्य, प्रकाश, ज्ञान, रजगुण। उदै–प्रकट। तारा–उड़गन समूह। भौ–हुए। छीना–क्षय, लुप्त, अन्तर्ध्यान। चर–जंगम प्राणी, चलने-फिरने वाले। बीहर–स्थावर, जो चलायमान न हो, बिहरने वाले। मा–में। लीना–लय हो गये। गारुर–संजीवनी विद्या जानने वाला मान्त्रिक, गरुड़, गारुड़ि। जिआवै–जीवित करे।

**भावार्थ**—पहली पंक्ति में कहा गया है कि रजोगुण बंधन का हेतु है उसका नाश तभी हो सकता है जब मनुष्यों को अपने स्वरूप का साक्षात्कार हो जाय। जब आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है, तब रजोगुण के जितने कर्म हैं वे उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार से सूर्य के उदय होने पर आकाश के समस्त तारे विलीन हो जाते हैं परन्तु सद्गुरु कहते हैं कि विष के खाने से विष नहीं जाता है। जो मनुष्य संसार के विषय-वासना रूपी विष को खा लिया है वह चाहे कि सकाम कर्मों के द्वारा संसार के विषय-वासना को दूर कर लें तो यह सम्भव नहीं है। क्योंकि सकाम कर्म विष इसलिए हैं कि उनके द्वारा लोकसुख प्राप्त होता है। इसलिए विषय रूपी विष देव उपासना आदि से नहीं जा सकते हैं। अर्थात् वंचक गुरुओं के द्वारा अज्ञान रूपी विष का शमन नहीं हो सकता है। अज्ञान रूपी विष उसी गारुड़ी गुरु से जा सकता है जो मरते हुए प्राणियों को जिलाता है। अर्थात् अज्ञान में फँसे हुए मनुष्यों को जो अपने सद्ज्ञान द्वारा बंधन से मुक्त करता है वही असली गारुड़ी गुरु हैं।

साखी

**अलख जो लागी पलक में, पलकहिं में डँसि जाय।**
**विखहर मंत्त न माने, गारुड़ काह कराय॥**

**शब्दार्थ**—अलख–अदृश्य। पलक–क्षण में। डंसि–दंश। विखहर–विषधर, विष उतारने वाला। मंत्त–मंत्र, गुप्त भाषण। गारुड़–मंत्र झारने वाला। काह–क्या। कराय–कर सकता है।

**भावार्थ**—अज्ञान का पट बहुत सूक्ष्म है, थोड़ी सी असावधानी में ज्ञान को ढक लेता है। जब अज्ञान का पर्दा हृदय पटल पर पड़ जाता है।

अर्थात् जब मनुष्य की बुद्धि अज्ञान युक्त हो जाती है, तभी काम, क्रोध, लोभ रूपी सर्प से डँस लिया जाता है। जब उस मनुष्य को काम, क्रोध, लोभ, मोह घेर लेते हैं, संसार में बिल्कुल आसक्त हो जाता है उस दशा में सद्गुरु रूपी गारुड़ी का मंत्र रूपी सदुपदेश या आत्मज्ञान रूपी सदुपदेश अज्ञानी मनुष्यों पर असर नहीं करता। भला जो संसार में पूर्ण रूप से आसक्त है जो माया के रस को चख लिया है, जो मान-सम्मान में अनुरक्त है, उसको सद्गुरुदेव क्या कर सकते हैं ? अर्थात् उसका उद्धार कैसे कर सकते हैं ? इसलिए मनुष्य को चाहिए कि जितने भी बन्धन कारक कर्म हैं उनका परित्याग करके परमेश्वर का चिन्तन करे और अच्छे गुरुओं के द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति का सतत् प्रयत्न करे।

## रमैनी ३०

### खट्दर्शन प्रकरण

**अउ भूले खट दरसन भाई। पाखंड भेख रहे लपटाई ॥**
**जीउ सीउ के आहि नसौना। चारिउ वेद चतुर गुन मौना ॥**
**जैनि धरम का मरम न जाना। पांती तोरि देउ घर आना ॥**
**दौउना मरुआ चंपा के फूला। मानउ जीउ कोटि समतूला ॥**

**शब्दार्थ**—अउ–और, अब, सम्प्रति, वर्तमान में। खट–छः। दरसन–योगी, जंगम, सेवड़ा, संन्यासी, दरवेष, ब्राह्मण। पाखंड–बनावटी, दम्भ। भेख–स्वांग। लपटाई–लिपटे, लटपट, अरुझ जाना। आहि–है। नसौना–नाश करने वाला। चारिउ–चार। चतुर–चतुर्थ। गुन–धर्म (राजस, तामस, सात्विक)। मौना–चुप, समाप्त, गूंगा। जैनि–जिन से सम्बन्धित अर्थात् ऋषभदेव, महावीर, पार्श्वनाथ का चलाया हुआ धर्म। मरम–भेद रहस्य। पांती–पत्ती, पाती, पल्लव। देउ घर–देवालय। दौउना–दौनक, एक पौधा जिसकी पत्तियों में तेज गंध कुछ कड़ुवाहट लिए होती है। मरुआ–वन तुलसी, ममरी। चंपा–चंपक, जो हलके पीले रंग के फूल होते हैं। मानउ–मानिये कि। कोटि–करोड़ों जीव। समतूला–समान।

**सम्बन्ध**—इसके पूर्व की रमैनी में कहा गया कि सच्चे गुरु के न मिलने से विषय रूपी विष का शमन नहीं हो सकता। क्योंकि संसारी लोग सकाम कर्मों में लगे हुए हैं। जिसके कारण जन्म-मरण के चक्र में जीवन भर पड़े रहते हैं।

**भावार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि सामान्य लोग ही नहीं भूले हैं। सामान्य लोगों के अतिरिक्त ये सब दर्शन वाले भी भूल गये हैं। वे भी सच्चाई को छोड़कर नाना पाखण्डों का वेष धारण करके संसार की विषय-वासना में लिपटे हुए हैं। जिसके कारण यह जो जीव शिव का स्वरूप है उसका विनाश हो गया। अर्थात योगी लोग केवल सिद्धियों में अरुझाये रहे। जिसके कारण मान बड़ाई के चक्र में पड़े रहे। जंगम जो लिङ्गायत शैव हैं, यह संन्यासियों की एक संज्ञा है। जो सदा देशाटन करते रहे हैं। गले में शिवलिङ्ग लटकाये रहते हैं। एक रात्रि से अधिक किसी स्थान पर नहीं रहते हैं। वे भी अपने त्याग के अभिमान में परमतत्त्व को भूल गये। इसी प्रकार से एक सेवड़ा साधुओं की जाति है जो जैनियों के अन्तर्गत माने जाते हैं। एक प्रकार के साधु, संन्यासी हैं वे भी अपने दिगम्बरी वेष में भूल जाते हैं। इसी प्रकार से शैव संन्यासी 'अहंब्रह्मास्मि' कहने मात्र से अपने को नारायण मानने लगते हैं। इसी प्रकार से दरवेश मुसलमानों में फकीरों का एक सम्प्रदाय है, जो सूफियों के अन्तर्गत आता है। जो अनलहक की आवाज लगाते हैं। वास्तविक ज्ञान न होने के कारण वे भी भ्रम में पड़े रहते हैं। छठे दर्शन में ब्राह्मण आते है जिनकी करतूति समस्त संसार को विदित ही है। कहने का तात्पर्य यह है कि उक्त छः दर्शन वाले मिथ्या मान बड़ाई में लगे रहने के कारण आत्मतत्त्व को नहीं पहचान सके। जिसके कारण शिव स्वरूप जीवात्मा का विनाश हो गया। अर्थात् मानव योनि से दूसरी योनि में चला गया। इसी प्रकार से चारो वेदों को न मानने वाले चार्वाक, बौद्ध, जैन और शाक्त भी श्रेष्ठ गुणों से मुक्त रहे। अर्थात् इन विछुड़े हुए लोगों का चारो वेदों का ज्ञान कुछ सुधार नहीं कर सका और न वेदों की चतुराई ही उनके सामने चल

सकी। क्योंकि सत्‌गुण एवं रजगुण तथा तमगुण इतने ग्रस लिये कि ये लोग वेद के श्रेष्ठ ज्ञान से दूर ही रहे। कुछ कर नहीं सके। जैनधर्म के लोग अपने को बहुत बड़ा अहिंसक मानते हैं पर वे भी अहिंसा का भेद नहीं जान सके। क्योंकि जिन पत्तियों को तोड़कर अपने देवता को चढ़ाते हैं। सूक्ष्मता से देखा जाय तो उन पेड़ पौधों में भी चेतन तत्त्व विद्यमान है और अपने पितरों को प्रसन्न करने के लिए अच्छे-अच्छे पुष्पों की माला बनाते हैं। जिसमें चम्पा, दवना, मरुआ के फूल लगे होते हैं। उन फूलों में यदि आप मानिये तो करोड़ों जीव विद्यमान रहते हैं। अर्थात् उन पुष्प पत्तों की सुगन्ध की वास लेने के लिए सूक्ष्म कीटाणु उसमें लिपटे रहते हैं। इसलिए वे सूखे पत्ते भी करोड़ों जीव के समान हैं।

**अउ प्रिथ्मी के रोम उचारै। देखत जनम आपनउ हारै॥**
**मनमथ विंद करै असरारा। कलपै विंद खसै नहिं द्वारा॥**
**ताकर हाल होय अधकूचा। छौ दरसन मैं जैनि विगुर्चा॥**

**शब्दार्थ**—उचारै-उखाड़े, लुंचन करे। मनमथ-कामदेव, मनसिज। विंद-वीर्य, शुक्र। असरारा-पतनोन्मुख, हठ, वज्रौली क्रिया, इंगला। कलपै-कम्पायमान, चलित। खसै-गिरै। द्वारा-योनिद्वार। ताकर-तिसका, उसका, उसके। हाल-दशा। अधकूचा-अधमरा, अधकचरा। विगुर्चा-विंगुचन, असमंजस, अनिश्चय।

**भावार्थ**—यहीं तक नहीं जैनी लोग पृथ्वी रूपी सिर के बाल को भी उखाड़ते हैं। अर्थात् उनके यहाँ एक परीक्षा होती है जो साधना पूरी होने पर देखा जाता है कि वह सिद्ध हुआ है या नहीं। वह परीक्षा यह है कि साधक के सिर के बाल हाथ से उखाड़े जाते हैं, यदि बाल उखाड़ते समय वह विचलित होता है तब उस व्यक्ति की साधना पूरी नहीं मानी जाती है। उसको पुनः साधना के लिए वापस कर दिया जाता है। ये जैनी लोग देखते-देखते एवं साधना करते-करते अपने जन्म को गँवा देते हैं अर्थात् जीवन भर साधना करते-करते हार जाते हैं। परन्तु वे सिद्धि को प्राप्त नहीं हो पाते यदि कोई जैनी योगी बाल उखाड़ने की क्रिया में

सिद्ध हो जाता है तो उसके बाद बज्रौली क्रिया भी उसको सिखाई जाती है। बज्रौली क्रिया की सिद्धि यह है कि किसी नवयुवती स्त्री के साथ सम्भोग कराया जाता है। उसमें यह परीक्षा ली जाती है कि सम्भोग क्रिया में उसका वीर्यपात होता है या नहीं। यदि रति काल में वीर्यपात हो जाता है तो उसको सिद्ध नहीं मानते। पुनः उसको तेल, जल, आदि उपस्थ इन्द्रिय से खिचवा कर सशक्त बनाते हैं। बज्रौली क्रिया के द्वारा सम्भोग काल में उपस्थ के द्वारा मूलाधार का संकोच करके स्त्री के रज को खीचते हैं। इस प्रथा से कई एक स्त्रियों के रज को खीचकर अपने को हृष्ट-पुष्ट बना लेते हैं और असरारा हठ करके उक्त क्रिया की सिद्धि में लगे रहते हैं। साहब कहते हैं कि उक्त क्रिया करने के समय बिन्दु मस्तक से खिसक कर अण्डकोश में आ जाता है और गिरने की स्थिति में हो जाता है। परन्तु कुम्भक प्रबल होने के कारण स्त्री के योनिद्वार में गिरने नहीं पाता। योगी को सम्भोग की इच्छा होने पर भी अपनी सिद्धि साबित करने के लिए सम्भोग नहीं कर पाता। उस समय उसकी दशा उसी प्रकार की हो जाती है जैसे किसी साँप को कूंच दीजिए और वह कूचन वेदना से इतना व्याकुल हो जाय कि न वह जी सके, न मर सके। अर्थात् वह योगी सम्भोग के सुख से वंचित हो जाता है और मिथ्या सिद्धियों के धोखे में जन्म गवाँ देता है। उक्त छः दर्शनों में जैनी लोग इतना अरझुरा गये हैं कि बन्धन से छूटना उनके लिए दुर्लभ है। साहब कहते हैं कि इन जैनियों की अहिंसा किस प्रकार की है एक ओर तो मुख पर पट्टी बांध कर जीवों की रक्षा करना चाहते हैं। मूत्र तक ठण्ढ़ा करके फेकते हैं दूसरी तरफ कमल आदि वनस्पतियों का फूल पत्ता तोड़कर देवताओं पर चढ़ाते हैं क्या यह हिंसा नहीं है, क्या यह पाखण्ड नहीं हैं? इन पाखण्डों के चलते सबके सब आत्म तत्त्व से वंचित रह जाते हैं।

साखी

**ग्यान अमर पद बाहिरै, नियरै ते है दूरि।**
**जो जानै तौ निकट है, रह्यो सकल घट पूरि ॥**

**शब्दार्थ**--ग्यान–आत्मज्ञान, प्रकाश। अमरपद–मुक्तावस्था, तुरीयवस्था। बाहिरै–बाहर। नियरै–निकट। ते–से। दूरि–दूर। रह्यो–रहा। सकल–सारा। घट–हृदय, शरीर। पूरि–पूर्ण, व्याप्त।

**भावार्थ**—क्योंकि जो ज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान है जिसके द्वारा मुक्ति पद प्राप्त होता है वह उपर्युक्त क्रियाकलापों से बाहर या परे है। वह आत्मज्ञान उपर्युक्त क्रिया-कलापों से कभी प्राप्त नहीं हो सकता है। है तो वह नजदीक में परन्तु पाखण्डियों के लिए बहुत दूर है जो सद्‌गुरु के द्वारा उस तत्त्व को जान गया है तो वह तत्त्व उसके लिए बहुत समीप है। साहब कहते हैं कि वह परमेश्वर रूपी परमतत्त्व सभी मनुष्यों के हृदय रूपी घट में विराजमान है परन्तु जो उसके अधिकारी हैं वहीं उसको प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि छौ दर्शन के पाखण्ड में न पड़ कर अच्छे संत सद्‌गुरु की खोज करें और उसके बताये हुए मार्ग पर चल कर परमतत्त्व की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करें।

# रमैनी ३१

## ब्राह्मण दर्शन प्रकरण

**सुम्रित आहिं गुनन कै चीन्हा। पाप-पुन्नि का मारग कीन्हा॥**
**सुम्रित वेद पढ़ै असरारा। पाखंड रूप करै हंकारा॥**
**पढ़ै वेद अउ करै बड़ाई। संसै गाठि अजहू नहिं जाई॥**
**पढ़ि के सास्तर जीउ वध करई। मूड़ि काटि अगुमन कै धरई॥**

**शब्दार्थ**—सुम्रित–स्मृति शास्त्र, धर्मशास्त्र आहिं–है। गुनन–गुणों के, उपदेशों के, धर्मों के। कै–के। पाप-पुन्नि–शुभाशुभ का मार्ग दर्शाया। असरारा–सर-सर, निरन्तर, लगातार, बराबर, हठ, दुराग्रह शौक। अगुमन–आगे। सास्तर–शास्त्र।

**सम्बन्ध**—पहले षट्‌दर्शन के विषय में विस्तार पूर्वक कहा गया है। षट्‌दर्शनी लोग मिथ्या मान-सम्मान के लिए पाखण्ड का स्वांग धारण

करते हैं। जिसके कारण भव-बन्धन से परे नहीं हो पाते।

**भावार्थ**—इस इकतीसवें रमैनी में विशेषकर ब्राह्मण दर्शन की चर्चा हुई है। इसमें कहा गया है कि जो ब्राह्मणों के स्मृति ग्रन्थ हैं। जिसको धर्म ग्रन्थ भी कहते हैं, उनके गुणों पर विचार किया गया है। उनके स्मृति ग्रन्थों का चिन्ह यह है कि पाप क्या है, पुण्य क्या है? इन दोनों के मार्ग का निदर्शन किया गया है। हिन्दू समाज की सारी धर्म व्यवस्थाओं की निर्देशिका स्मृति ग्रंथ माने जाते हैं जिसमें मनुस्मृति, पराशरस्मृति, व्यास स्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, हरित स्मृति, वशिष्ठ स्मृति प्रधान हैं। यों तो स्मृतियों की संख्या किसी के मत में १८ हैं, किसी के मत में २२ हैं, लेकिन मेरी खोज के अनुसार स्मृतियों की संख्या लगभग सौ हैं। प्रायः एक ही बात घटा बढ़ा कर सभी स्मृतियों में आयी हैं। हिन्दू जाति के लिए सबसे घातक पराशर स्मृति, मनुस्मृति एवं व्यासस्मृति हैं। पराशर एवं व्यास स्मृति में तो शूद्र वर्णो की पशुओं से तुलना की गयी है। तो भी ये ब्राह्मण लोग स्मृति एवं वेद शास्त्रों को रूचि के साथ निरन्तर पढ़ते-लिखते रहते हैं और पाखण्ड करके बहुत बड़ा अभिमान करते हैं। कि हम बहुत बड़े पंडित हैं एवं धर्म शास्त्र के ज्ञाता हैं। अमुक स्मृति यह कहती है, अमुक स्मृति यह कहती है। इन स्मृतियों में वर्ण आदि की व्यवस्था बहुत विशद रूप में की गयी है। जिसका अहंकार ब्राह्मणों को अत्यधिक है। ये ब्राह्मण लोग वेद शास्त्र को पढ़ते हैं और उसके ज्ञान की बहुत बड़ाई भी करते हैं परन्तु जो संशय की ग्रन्थि है आज भी ज्यों की त्यों जकड़ी हुई है। उनका संशय इसलिए नहीं जाता है जो वेदशास्त्रों में उत्तम ज्ञान है उस पर विचार नहीं करते और न आचरण ही करते हैं। ये व्यवस्था-वादी ब्राह्मण देवता स्मृति शास्त्र एवं कर्म काण्ड के ग्रन्थों को पढ़कर बकरा, भैंसा आदि का वध करते हैं। तथा देव मूर्तियों के सामने काटकर उनके शिर को चढ़ाते हैं। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए निर्बल पशुओं की बलि देते हैं। उसके द्वारा अनेक फल सिद्धियों की कामना करते हैं।

साखी

**कहै कबीर ई पाखंड, बहुतक जीउ सताव ।**
**अनभौ भाउ न दरसे, जियत न आपु रखाव ॥**

**शब्दार्थ**—बहुतक–बहुत से । पाखंड-ढ़ोंग, आडम्बर, धूर्तई । अनभौ–अनुभव, जानकारी । भाउ-भेद, रहस्य । दरसै–दीखे । जियत–जीवित ।

**भावार्थ**—सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि उपर्युक्त ब्राह्मण ग्रन्थ जिनको स्मृति कहते हैं वे सब ब्राह्मण देवताओं के द्वारा पाखण्ड का सर्जन किया गया है जो ढ़ोंग-ढ़कोसला से परिपूर्ण हैं उन स्मृतियों की आड़ में बहुत से प्राणियों को सताते हैं जब जो चाहते हैं वह आदेश दे डालते हैं । धर्म के नाम पर अधर्म का काम करते हैं । भला हत्या करके भी कोई पुण्य कमाया जा सकता है । यदि समाज में हत्या, लूट, घृणा, मनुष्यों से दुराव भी धर्म है तो अधर्म क्या है ? ये ब्राह्मण देवता लोग यह अनुभव नहीं करते कि जो हम करते हैं वह पाप है या पुण्य है उस अपने किये हुए कर्म के रहस्य को परखने का प्रयत्न भी नहीं करते । कुत्सित पापों के करने से ये व्यवस्थावादी अपनी रक्षा नहीं कर पाते हैं । इनको चाहिए कि जो इनके धर्म शास्त्रों में अधर्म युक्त बातें हैं उनको छोड़कर अपना आत्म कल्याण करें । कुत्सित कर्मों का परित्याग कर धर्म-मार्ग का आचरण करें ।

## रमैनी ३२

**अंध सो दरपन वेद पुराना । दरबी कहा महारस जाना ॥**
**जस खर चंदन लादेउ भारा । परिमल बास न जानु गवांरा ॥**
**कहै कबीर खोजै असमाना । सो न मिला जो जाई अभिमाना ॥**

**शब्दार्थ**—अंध–नेत्रहीन, विवेक हीन । सो–वह । दरपन–आइना । दरबी–करछी, कलछुल, जो दाल परोसने के काम में आती है । महारस–मधुर रस । जस–जैसे । खर–गर्दभ । परिमल–मलयागिरि व चन्दन । वास–सुगन्ध । गवांरा–मूर्ख । खोजै–अन्वेषण । असमाना–आकाश, व्योम ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा जा चुका है कि स्मृति ग्रन्थ जो पाप पुण्य की व्यवस्था देते हैं जिनको पढ़कर व्यवस्थावादी ब्राह्मण गुरु अत्यधिक अभिमान करते हैं उस अभिमान के चलते उनका सर्वनाश हो जाता है। क्योंकि संशय इनके मन मस्तिष्क को घेरे रहते हैं।

**भावार्थ**—अब प्रश्न यह उठता है कि क्या वेद शास्त्र बिल्कुल निरर्थक हैं। इनके द्वारा समाज का कोई कल्याण नहीं हो सकता है। तो इस पर कहा गया है कि वेद शास्त्र गलत नहीं है। उनके पढ़ने वाले स्वयं विवेकी नहीं हैं। इसलिए ये वेद शास्त्र के सत्यज्ञान से न कोई लाभ उठा सके न जनता का कोई हित कर सकें। उसी प्रकार से जैसे नेत्रहीन मनुष्य के लिए दर्पण से क्या लाभ हो सकता है। अर्थात् अन्धा मनुष्य दर्पण के द्वारा अपने रूप को क्या देख सकता है ? अर्थात् नहीं देख सकता है। जैसे कलछुल भोजन के मधुर स्वाद को कुछ भी अनुभव नहीं कर सकती है। वह अकारण अग्नि में तपती है। केवल तपकर दुख की भागिनी होती है। पर षट् प्रकार के रसों का स्वाद उसको कुछ भी नहीं हो पाता। जैसे गदहे पर चन्दन के गट्ठर को लाद दिया जाय, विवेक बुद्धि न होने से उस गर्दभ को केवल गट्ठर का भार ही ज्ञात होता है। जिसके द्वारा उसको महान कष्ट होता है। नासिका हीन अर्थात् विवेक हीन गर्दभ बेचारा उस मलयागिरि चन्दन के अच्छे सुगन्ध को क्या अनुभव कर सकता है। इसी प्रकार अच्छी बुद्धि के बिना, विवेक विचार के बिना ये ब्राह्मण व्यवस्थावादी लोग नाना वेद शास्त्रों को पढ़कर श्रम उठाते हैं, जिह्वा दुख जाती है, शरीर थक जाता है परन्तु जो वेद का महान ज्ञान है जिसको महारस कहा गया है। गँवारपन के कारण उसका लाभ इन्हें नहीं मिल पाता है। खर के समान केवल वेद शास्त्र की वाणी अपने शिर पर लादे रहते हैं सद्गुरु कहते हैं कि वेदों में लिखा है कि वह परमप्रभु परमतत्त्व तुम्हारे हृदय में विराजमान है परन्तु ये ब्राह्मण देवता वेदज्ञ लोग असमाना अर्थात् आकाश की ओर खोजते हैं। जहाँ कुछ नहीं है जहाँ अन्तःकरण का अभाव है। उसी शून्य में उस प्रभु को पाने की कामना

करते हैं। साहब कहते हैं कि वह इसलिए नहीं मिला कि ये ब्राह्मण लोग अभिमान में चूर्ण हैं। अपने को इतना बड़ा मानते हैं कि भगवान राम एवं कृष्ण चन्द को ईश्वर मानते हुए भी उनसे अपना चरण धुलवाते हैं।

**विशेष**—इस रमैनी में वेद शास्त्र की महिमा गायी गयी है। लोग कहते हैं कि कबीर साहब ने वेद शास्त्रों की निन्दा की है परन्तु इस रमैनी से साफ जाहिर है कि वेद शास्त्र गलत नहीं हैं। इनके पढ़ने-लिखने वाले स्वयं अयोग्य हैं। वेद को यहाँ पर दर्पण, परिमल और मलयागिरि से उपमित किया गया है और बुद्धिहीनों को अन्धा, दर्वी और खर की संज्ञा दी गयी है। क्योंकि वेद में आत्मज्ञान की कमी नहीं है। वेद तो आत्म-ज्ञान से भरा पड़ा है, परन्तु अनधिकारी लोग अपनी अयोग्यता के कारण उससे कोई लाभ नहीं ले सके। इससे विदित हुआ कि वेद शास्त्र केवल ब्राह्मण जातिमात्र से ही समझ में नहीं आ सकता। उसके साथ वेद शास्त्र पढ़ने की योग्यता भी होनी चाहिए।

## रमैनी ३३

**वेद कै पुत्री सुम्रित भाई। सो जेंवरि कर लेतहिं आई॥**
**आपुहिं बरी आपन गर बंधा। झूठा मोह काल कै फँदा॥**
**बंधवत बांध छोरि नहिं जाई। बिखै सरुप भूलि दुनिआई॥**
**हमरे देखत सकल जग लूटा। दास कबीर राम कहि छूटा॥**

**शब्दार्थ**—वेद–ऋक, साम, यजु, अथर्व। सुम्रित–स्मृति। भाई–साधु, सन्तों, बन्धु। जेंवरि–रस्सी, काम्य कर्म। कर–हाथ। लेतहिं–लेकर। आपुहिं–अपने आप। बरी–बटकर (एक में मिलाकर)। गर–गला, गाल, काल, मृत्यु, समय। बंधवत–बंधन स्वरूप। बाँध–बंधन। बिखै–विषय। सरूप–स्वरूप, तद्रूप। दुनिआई–संसारी लोग। छूटा–बंधन मुक्त। कहि–जपि।

**सम्बन्ध**—बत्तीसवीं रमैनी में अज्ञ मनुष्य के लिए वेद शास्त्र पढ़ना निरर्थक है क्योंकि जिसके पास शुद्ध प्रज्ञा नहीं है उसके लिए वेद शास्त्र उसी प्रकार से निरर्थक हैं जैसे गर्दभ के पीठ पर चन्दन की गठरी। यह कहकर अनधिकारियों के प्रति अनास्था व्यक्त की गयी है।

**भावार्थ**—अब यहाँ पर वेद की पुत्री स्वरूप स्मृतियों की चर्चा की गयी है व्यवस्थावादियों के अनुसार स्मृतियाँ वेद सम्मत हैं और वे स्मृतियाँ वेद के अनुसार बनाई गयी हैं। इसलिए यहाँ पर उन–स्मृतियों को वेद की पुत्री कहा गया है। सो वे स्मृतियाँ अपने हाथ में मनुष्य को बांधने के लिए नियम या व्यवस्था रूपी रस्सी लेकर आयी हैं अर्थात् समाज को स्थिर रखने के लिए स्मृति ग्रन्थों में बहुत प्रकार के विधि-विधान बनाए गये हैं जिनमें अनेक प्रकार के यज्ञ-याज्ञ, षट्कर्मों की व्यवस्था की गयी है। व्यवस्थावादी धर्म गुरुओं ने उक्त स्मृतियों को अपने आप बरा अर्थात् रचा है और नियम रूपी रस्सी से अपने गले को बांध दिया है यदि इन व्यवस्थावादियों को कहा जाता है कि तुम्हारे स्मृति ग्रन्थ बंधन कारक है इनके द्वारा मनुष्यों का कल्याण होनेवाला नहीं है। परन्तु ये व्यस्थावादी के वंशज लोग झूठे व्यामोह में पड़कर सद्गुरु की बात को नहीं मान रहे हैं, यह जो इनका झूठा मोह है अपने धर्म ग्रन्थों के प्रति यही इनके काल का फंदा है। इतने जोरों से स्मृतियों के नियम रूपी बन्धन में जकड़ गये हैं कि वह परम्परागत बंधन छोड़ने पर भी नहीं छूट रहा है। वास्तव में स्मृतियों का कथ्य विषय बन्धन स्वरूप ही है क्योंकि अधिकतर स्मृतियों में सकाम कर्म की चर्चा की गयी है। जिसमें यह सारा संसार भूल गया है। सद्गुरु कहते हैं कि हमारे देखते-देखते सारा संसार लूटा जा रहा है हिन्दू लोग स्मृति के द्वारा लूटे जा रहे हैं मुसलमान लोग हदीश के द्वारा लूटे जा रहे हैं। इसी प्रकार से समस्त धर्मों के लोग मिथ्या आडंबरों के चलते पाखण्डियों के द्वारा लूटे जा रहे हैं। सद्गुरु कहते हैं इन स्मृतियों पर हमारा विश्वास नहीं है मैं तो केवल राम नाम का जप कर इस संसार से छूट गया हूँ।

साखी

**रामहिं राम पुकारते, जिभ्या परिगो रोस ।**
**सूधा जल पीवै नहीं, खोदि पिवन की हौंस ।।**

**शब्दार्थ**—पुकारते–चिल्लाते । रोस–घट्ठा, रगड़, रघारी । सूधा–शुद्ध । हौंस–इच्छा, कामना ।

**मूलार्थ**—अब यहाँ विचारणीय विषय यह है कि केवल राम नाम पुकारने या जपने से छुटकारा मिल सकता है ? नहीं जोरों से राम नाम पुकारने पर जिह्वा में घट्ठे पड़ जाते हैं । जिह्वा दुखने लगती है मनुष्य शुद्ध जल नहीं पीता जो सहज में मिल जाता है । जो कठिनाई से अर्थात् कूप खोदने से जो जल मिलने वाला है उस जल को पीने की इच्छा करता है ।

**भावार्थ**—ऊपर की पंक्ति में साहब कहते हैं कि हम राम नाम जपकर छुटकारा पा लिए वह राम सहज में मिलने वाला नहीं है वह राम तन-मन एक कर जपने से प्राप्त हो सकता है वह सबकी आत्मा है और आत्माओं की भी आत्मा है । मेरा जप केवल जिह्वा से नहीं होता । हम उस राम को मन से चिन्तन करते हैं । इतना सरल शुद्ध वह राम है कि अविवेकी लोग उसको नहीं भजते । अर्थात् तन मन एक कर उसकी प्राप्ति की इच्छा नहीं करते । प्रत्युत् अपने से पृथक् समझकर किसी लोक विशेष में हैं । ऐसा मानकर जोर-जोर से चिल्लाते हैं । उस जोर-जोर से चिल्लाने से जिह्वा में घाव हो जाता है । वास्तविक तत्त्व हाथ नहीं लगता है । वह किसी देश विशेष में नहीं है । वह अपने हृदय रूपी गुफा में स्थित है । वह सरलता से ही मिलने वाला था । परन्तु अज्ञानी लोग उसको तटस्थ समझ कर जप के द्वारा प्राप्त करने की कामना करते हैं । वे लोग उसी प्रकार के हैं जैसे कोई प्यासा मनुष्य शुद्ध झरने का जल छोड़कर कूप खोदकर पाताल का जल पीना चाहता है ।

**विशेषार्थ**—तात्पर्य यह है कि अज्ञानी लोग भगवान् को दूर समझकर

जोर-जोर से चिल्लाते हैं, परन्तु बहिरंग वृत्ति के कारण वह दूर होता जाता है। यहाँ पर राम जप का विरोध नहीं हैं। केवल भाव का विरोध है। राम नाम का जप करना चाहिए। परन्तु उस राम को अपने हृदय में समझकर तादात्म्य भाव से सुमिरन करना चाहिए अन्यथा परिश्रम बेकार जायेगा। इसलिए सभी मनुष्यों को चाहिए कि अपने हृदय में ही प्रभु का अन्वेषण करें तभी उसकी प्राप्ति से भव-बन्धन छूट सकता है।

## रमैनी ३४

**पढ़ि-पढ़ि पंडित कर चतुराई। निज मुकुती मोहिं कहु समुझाई॥**
**कहँ बसै पुर्ख कवन सो गांऊँ। पंडित मोहिं सुनावहु नाऊँ॥**
**चारि वेद ब्रह्मै निज ठाना। मुकुति का मरम उनहुँ नहिं जाना॥**

**शब्दार्थ**—चतुराई-क्षमता, चालाकी। निज—अपनी। कह—किस स्थान पर। पूर्ख—पुरुष परमात्मा। सो—वह। गांऊँ—ग्राम। सुनावहु—सुनाइये बताइये। नाऊँ—नाम। ब्रह्मै—ब्राह्मणों ने, व्यवस्थावादियों ने। ठाना—अनुष्ठान किया, अध्ययन किया। मरम—रहस्य भेद।

**सम्बन्ध**—ऊपर स्मृतियों की निरर्थकता बताई गयी है क्योंकि वे स्मृतियाँ मनुष्यों को बांधने वाली हैं उनके नियम या विधान सर्व देश कालिक नहीं हैं इसलिए ये सर्वमान्य भी नहीं है और यह भी कहा गया है कि स्मृतियों का परित्याग कर सर्वात्मा राम का स्मरण करना चाहिए।

**भावार्थ**—उपर्युक्त सद्गुरु की बात पर व्यवस्थावादी पण्डितों ने असहमति प्रकट की। उस पर आप कहते हैं कि हे पण्डित जन! आप उन स्मृति ग्रन्थों को पढ़-पढ़ कर बहुत चतुराई एवं तर्क के साथ उन स्मृतियों की बात की सिद्धि कर रहे हैं। पर मैं आप से पूछता हूँ कि जिससे आप की मुक्ति होने वाली है वह कौन सा ज्ञान है उसको मुझे समझाकर जरा बताइये। इन धर्म ग्रन्थों के द्वारा जो आप स्वर्गादि की यात्रा करना चाहते हैं। वह स्वर्ग कहाँ है उसका नाम क्या है उसमें रहने वाला पुरुष

कहाँ है ? हे पण्डित जो उस कल्पित ग्राम में रहने वाले पुरुष का नाम क्या है ? जरा मुझे सुनाइये। मैं भी सुनूँ कि वह सही है या गलत है। मैं तो कहता हूँ कि आप की तटस्थता की सारी मान्यतायें निरर्थक हैं। उससे कोई लाभ होने वाला नहीं है। दूसरी बात यह है कि आप ब्राह्मणों ने चारों वेदों का अनुष्ठान कर रखा है। रात-दिन प्रातः सायं वेद पाठ में अनुरक्त हैं परन्तु जो पाठ मात्र से मुक्ति मान रहे हैं सो वह कभी होने वाली नहीं है। क्योंकि मुक्ति का जो रहस्य था वह आप लोगों ने नहीं जान पाया। क्योंकि वेद के वास्तविक रहस्य का आप को पता नहीं चला।

**दान पुन्नि उन बहुत बखाना। अपने मरन की खबरि न जाना ॥**
**एक नाम है अगम गंभीरा। तहवाँ अस्थिर दास कबीरा ॥**

**शब्दार्थ**—दान–जो पवित्र मनुष्यों को दिया जाता है। पुन्नि–पुण्य, सत्कर्म। बखाना–वर्णन किया। उन–वे, वेदशास्त्र पढ़ने वाले। मरन–मृत्यु। खबरि–पता, जानकारी, समाचार। नाम–ईश्वर, परमतत्त्व, परम-ब्रह्म। अगम–जिसमें गमन गति न हो। गम्भीर–शान्त चित्त, अचंचल। तहवाँ–वहाँ पर। अस्थिर–अड़िग, स्थित। दास–सेवक। कबीरा–कबीर साहब।

**भावार्थ**—आप के धर्मग्रन्थों में बहुत प्रकार से दान-पुण्य का वर्णन किया गया है। उसी दान पुण्य का समाज के सामने बखान आप भी करते हैं और आप यह नहीं जान पाते कि हम इन दान पुण्यों के फलों से पाप ताप से बच जायेंगे। क्या उसके कुछ फल होते हैं, हम तो यहाँ तक कहते हैं कि आप को यह भी पता नहीं है कि हम कब यहाँ से प्रस्थान करेंगे। अर्थात् आप की मृत्यु कब होगी क्या इसको आप जानते हैं ? यहाँ पर मृत्यु में श्लेष है। मृत्यु का अर्थ यह भी है कि बाह्य क्रिया-कलापों से एवं दान-पुण्य करने मात्र से आत्मज्ञान उपलब्ध नहीं होता है जिसको आत्म ज्ञान हो जाता है उसको पुनः भव-चक्र में नहीं आना पड़ता। कहने का

तात्पर्य यह है कि क्या आप को यह पता है कि हम अबकी मरने के बाद पुनः अब नहीं मरेंगे। यदि आप संशय से रहित हो गये होते तो निश्चय आप को पता होता कि हम मृत्यु को प्राप्त नहीं होंगे। ऐसा देखने में नहीं आता है। क्योंकि आप केवल कर्म-काण्ड में लगे हुए हैं जो अमृत पद है उसकी ओर आप का ध्यान नहीं है। इसके विपरीत एक नाम ऐसा है जो अथाह है, असीम है, बहुत गम्भीर है वह नाम हृदय में निवास करता है और उसकी पूर्ण सत्ता इस संसार में विद्यमान है। सहज योग के द्वारा इस गगन मण्डल में जो भवंर गुफा के पार में है मैं उसी में सदा के लिए स्थिर हो गया हूँ। वहाँ पर केवल योगाभ्यास एवं ध्यान के द्वारा ही पहुँचा जा सकता है। अन्य सकामी पुरुषों के लिए वह स्थान दुर्लभ है।

साखी

**चिउटी जहां न चढ़ि सकै, राई ना ठहराय।**
**आवागमन की गमि नहीं, तहं सकलो जग जाय।।**

**शब्दार्थ**—चिउंटी–पिपिलीका, सुरति। जहां–जिस स्थान पर। चढ़ि सकै–जा न सके। राई–सरसो को एक छोटी जाति, मन। ठहराय–रुके नहीं। आवागमन–जहां आने जाने का मार्ग नहीं है। गमि–गति, चलने की क्रिया। सकलो–सभी।

**भावार्थ**—जहां पर सद्गुरु स्थित हैं वह स्थान सर्वोपरि है। उस स्थान की प्राप्ति होने पर आवागमन की गम नहीं है। अर्थात् उसकी प्राप्ति होने पर मनुष्य जन्म-मरण से परे हो जाता है। वह स्थान सहस्रार में स्थित है। वहां पर सुरति रूपी चिउटी बड़ी कठिनाई से भी नहीं चढ़ सकती और नही राई रूपी मन ही उस स्थान पर अस्तित्व वाला रह जाता है। कारण रूप में मन वहां लय हो जाता है। सुरति भी अलग अस्तित्व नहीं रख पाती है। जाय शब्द आदेश है। उस परमपद रूपी सहस्रार को प्राप्त करना चाहिए। अर्थात् उस स्थान पर योगाभ्यास द्वारा सभी को जाना चाहिए।

**वाह्यार्थ**—ऊपर की पक्ति में सहस्रार के अन्तर्गत अपनी स्थिति बताकर सकामी पुरुषों की भावना का वर्णन किया जा रहा है। ये सकामी पुरुष व्यवस्थावादी जिस मार्ग में चिउंटी नहीं चढ़ सकती है जहां पर राई अर्थात छोटी सरसो भी नहीं टिक सकती, और जहां पर आने जाने का कोई मार्ग भी नहीं है ये संसारी लोग उन्हीं आकाशीय लोकों की ओर जाने की कामना करते हैं। भला आकाश में जहां ये जाना चाहते हैं वहाँ पर कौन लोक है? वहाँ तो शून्य ही शून्य है परन्तु ये अपनी अज्ञानता के कारण सन्त सद्गुरुओं की बात नहीं मानते। केवल ऊपर चढ़ने की आशा करते हैं।

**टिप्पणी**—कुछ टीकाकारों ने चिउटी जहाँ न चढ़ि सके, राई ना ठहराय का अर्थ तुरीयावस्था किया है और सुषुप्ति काल में सभी मनुष्य वहाँ जाते हैं। इस अर्थ से मुझे कोई आपत्ति नहीं है परन्तु सभी पंक्तियों को मिलान करने पर अर्थ युक्ति-युक्त नहीं जँचता है। वहाँ पर सद्गुरु का व्यंग्य है कि अज्ञानी मनुष्य वास्तविकता को न समझकर केवल बाह्य लोक लोकान्तरों में ध्यान लगाता है इसलिए उपर्युक्त अर्थ ही समीचीन है।

## रमैनी ३५

**पंडित भूले पढ़ि गुनि वेदा। आप अपन पौ जानु न भेदा॥**
**संझा तरपन अउ खट करमा। ई बहु रूप करे अस धरमा॥**
**गायत्री जुग चारि पढ़ाई। पूछउ जाइ मुकुति किन पाई॥**

**शब्दार्थ**—पंड़ित–जो वेद शास्त्रों को पढ़ा हो, पठित। भूले–विस्मृत हो गये। गुनि–चिन्तन। अपन–निज। पौ–पद, आत्मज्ञान स्वस्वरूप, परमात्मा। संझा–सन्ध्या। तरपन–तर्पण, ( उस क्रिया को कहते हैं जो सन्ध्या और प्रातः कालीन पूजा करते समय देवताओं एवं पित्रों के प्रति अंजुलिगत जल के द्वारा समर्पण किया जाता है। खट करमा–स्नान, सन्ध्या, पूजा, होम, तर्पण, जप, दूसरे जो योगियों के षटकर्म कहे जाते हैं

धोती, नेती, वस्ती, नेवली, त्राटक, कपाल भाँति। तीसरे ब्राह्मणों के षटकर्म यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह, स्मृति के अनुसार छः काल जिसके द्वारा आपत काल में ब्राह्मण अपनी जीविका प्राप्त कर सकता है, उञ्छ वृत्ति ( कटे हुए खेत से किसानों के अनाज ले जाने के बाद छूटे हुए अन्न को ग्रहण करना तथा उसके द्वारा अपनी जीविका चलाना यह वृत्ति कहलाती है। उञ्छदान लेना, याचना करना, कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा ये ब्राह्मण के छः कर्म आपत काल के लिए विहित किये गये हैं। करमा–कर्म। ई–यह। रूप–प्रकाश। अस–इस। गायत्री–वेदों का एक मन्त्र जो चौबीस अक्षरों से युक्त है, जिसको ब्राह्मण लोग प्रातः सायं एवं अपराह्न छः बजे जपते हैं। जुग त्रारि–चार युग ( सतयुग, द्वापर, त्रेता, कलयुग )। पूछउ–पूछिये। किन–कौन।

**सम्बन्ध**—चौतिसवीं रमैनी में केवल वेद शास्त्र रटने मात्र से और अपनी जीविका के लिए चतुराई की बात करना वहुत प्रकार के दान-पुण्य का विधान करना दिखाया गया है परन्तु उक्त वाचक ज्ञान से कोई लाभ नहीं होता है, लाभ तो वास्तविकता जानने पर ही हो सकता है।

**भावार्थ**—पुनः उन्हीं पंक्तियों को लक्ष्य करके कहा जा रहा है कि ये पण्डित लोग वेद का अध्ययन किये और उसके अर्थ पर भी विचार किये, परन्तु जो उसमें सत्य रहस्य था उसको न समझ कर केवल वेद पढ़-लिखकर भूल गये। वेद को तो पण्डित जी ने पढ़ा। परन्तु जो अपना पद था, जहाँ पर उनकी स्थिति होनी चाहिए अर्थात् जो अमृत तत्त्व परमात्म ज्ञान था जिसको जान कर भव-बन्धन छूट सकता था। उस भेद को तो हे पण्डित जी आप समझ नहीं पाये। आप तो मात्र प्रातः सायं देव तर्पण एवं षट् कर्मों में लगे रहे। यह षट्कर्म तो बहुत प्रकार का है, भला इस धर्म से आप को लाभ हो सकता है क्या ? चारों युग से गायत्री मन्त्र को हिन्दू समाज को पढ़ाते आ रहे हैं। हम आप से पूछते हैं कि क्या मात्र गायत्री जाप से किसी की मुक्ति हो सकती है। या आप ही जाकर पूछिये कि जो लोग गायत्री मन्त्र के पढ़ने वाले थे जो आज नहीं हैं क्या वे मुक्त

हो गये हैं ? मेरा तो कहना है कि मात्र षट् कर्म से या गायत्री जप से उतना लाभ नहीं है जितना कि आत्मज्ञान से लाभ हो सकता है।

**अउर के छुये लेत हो छींचा। तुमसे कहउ कवन है नीचा ॥**
**ये गुन गरब करउ अधिकाई। अधिक गरब न होई भलाई ॥**
**जासु नाम है गरब प्रहारी। सो कस गरवहिं सकै संहारी ॥**

**शब्दार्थ**—अउर–दूसरे। छुये–स्पर्श करने पर। लेत–लेने पर। छीचां–स्थान, जल से पवित्र करना। तुमसे–तुमसे। कहउ–कहो। ये–यह। गुन–वड़ाई, बड़प्पन। गरब–अहंकार, अभिमान। करउ–करते हो। अधिकाई–अन्याय, विशेष, जबरदस्ती। जासु–जिसका। प्रहारी–नष्ट करने वाला। सो–वह। कस–कैसे। सकै–कर सकै। संहारी–सम्हारी, सहन, क्षमा।

**भावार्थ**—यदि आप में सन्ध्या, तर्पण एवं षट् कर्मों से व गायत्री के जप से पवित्रता आयी होती, तो आप का मन निर्मल हो गया होता तो सब में आप प्रभु के दर्शन करते, अर्थात् सब में आपको अपनी आत्मा ही दिखाई देती परन्तु आप के व्यवहार से यह लगता है कि उक्त षट् कर्म आदि आप को कुछ भी शुद्ध नहीं कर सके नहीं तो आप ब्राह्मणेतर लोगों के छू लेने पर शरीर पर जल का छींटा क्यों देते ? अर्थात् शूद्रों के छू लेने पर आप स्नान क्यों करते ? हम आपसे पूछते हैं कि आपसे ब्राह्मणेतर लोग कैसे नीचे हैं अथवा आप ही बताइये कि आप से कौन नीचा हैं ? क्योंकि ब्राह्मणेतर जातियों में भी अच्छे-अच्छे महापुरुष हुए हैं और आज भी उनमें अच्छे सत्कर्म करने वाले हैं। यदि आप कहिये सभी ब्राह्मण पवित्र हैं, तो ऐसा सम्भव नहीं है। ब्राह्मणों में चोर, डकैत, लुटेरे, परस्त्रीगामी हुए हैं और हैं भी। इसी प्रकार दूसरे वर्णों में भी चोर, डकैत और परस्त्रीगामी होते हैं। किस अर्थ में आप दूसरे लोगों से श्रेष्ठ हैं। यह जो ऊँच-नीच का गर्व बिना सोचे विचारे आप कर रहे हैं। यह आप की अधिकाई हैं, अन्याय है और जबरदस्ती है यदि आप मनुष्यों में ऊँच-नीच मानते हैं तो बहुत अधिक गर्व करने से एवं मिथ्याभिमान करने

से आप की भलाई नहीं हो सकती है। आप को ज्ञान होना चाहिए कि जिसका नाम गर्व प्रहारी है जो बड़े-बड़े देव दानवों के गर्व को नष्ट कर दिया है भला वह किस प्रकार से आप के झूठे अभिमान को सहन कर सकता है। क्योंकि आप सबमें रहने वाले प्रभु का तिरस्कार करते हैं। यदि आप को वेद पढ़ने से यह बोध हुआ होता कि ईश्वर सबमें है और सबकी आत्मा एक है। तब आप ऐसा नहीं करते। परन्तु आपने मिथ्या वाग्जाल में पड़कर अपने को गवां दिया है।

साखी

**कुल मरिजादा खोय के, खोजिन पद निरबान।**
**अंकुर बीज नसाय के, नर भये विदेही थान॥**

**शब्दार्थ**—कुल–जाति, वर्ण, समस्त। मरिजादा–मर्यादा, कुल परम्परा। खोयके–छोड़ कर, नष्ट कर। खोजिन–खोजा, खोजिए। निरबान–मुक्ति पद, आत्म ज्ञान। अंकुर–अंखुवा, अहंकार, इच्छा, गाभ। बीज–जनन शक्ति। नसाय–नाश करके। नर–मनुष्य। विदेही–विदेहावस्था। थान–स्थान।

**भावार्थ**—अब सद्गुरु कहते हैं कि हे षट्कर्मी पंडित लोग आप लोगों की भलाई इसी में है कि सब प्रकार की कुल मर्यादा को छोड़कर जो परमपद है उसकी खोज करिये। वह परमपद तभी मिल सकता है, जब संसार के विषय बासना को उत्पन्न करने वाले बीज का नाश हो जायगा एवं जब मिथ्या अहंकार रूपी बीज में पुनः अंकुरण शक्ति उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं रह जायेगो तभी आप लोग उस विदेह अवस्था का जो स्थान परमपद है पा सकते हैं। अर्थात् जो भी मनुष्य अपने कुल अभिमान एवं लोक बड़ाई को छोड़ दिया है। सभी विकारों को त्याग दिया है, वही मनुष्य मुक्ति स्थान को प्राप्त कर सकता है।

**टिप्पणी**—उपर्युक्त साखी नागरी प्रचारणी के हस्तलेख में निम्न प्रकार से मिलती है जिससे ऊपर वाली साखी का अर्थ स्पष्ट हो जाता है—

कुल अभिमान विचार तजि, खोजो पद निरवान।
अंकुर बीज नशाइगा, तब मिले विदेही थान॥

ऊपर जो पण्डित शब्द आया है वह बीजक में दो प्रकार से मिलता है। पहला पंडित वह है जो आत्म ज्ञानी व संयमी है, सभी प्रकार से पवित्र आत्म दर्शी है। जिसको गीता में भगवान् कृष्ण चन्द—"विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।"

शून्ये चैव श्वपाके च, पंडिताः समदर्शिनः। कहा है।

दूसरा पंडित वह है जो केवल वेद शास्त्र का अध्ययन किया है। उस पर आचरण नहीं करता। जिसको नोतिकार ने भारवाही कहा है। इन्हीं निम्नोक्त पंडितों का कवोर साहब ने विशेष उल्लेख किया है। ऐसा एक स्थान पर उन्होंने कहा है।

पंडित से बोलिए हितकारी, मूरख से रहिये झखमारी।

यह पंडित गीता वाला पंडित है।

## रमैनी ३६

### ज्ञान योग प्रकरण

**ग्यानी चतुर विचछ्छन लोई। एक सेआन सेआन न होई॥**
**दोसर सेआन कै मरम न जाना। उतपति परलैरैनि विहाना॥**
**वानिज एक सभन मिलि ठाना। नेम धरम संजम भगवाना॥**
**हरि अस ठाकुर तेजि न जाई। बालन भिस्ति गावै दुलहाई॥**

**शब्दार्थ**—ग्यानी-जो वेद शास्त्र का पूर्ण अध्ययन कर चुका है, तत्वज्ञ। चतुर-दक्ष। विचछन-अद्वितीय, सूक्ष्मदर्शी, सूक्ष्म बुद्धि वाला। लोई-लोग। एक-पहला। सेआन-वुद्धिमान, आत्म चिन्तक। दोसर-दूसरा। सेआन-शुभ इच्छा वाला, मूलाधार में ध्यान लगाने वाला। परलै-प्रलय,अन्तिम समय। रैनि-रात्रि, मध्य रात्रि। बिहाना-प्रातःकाल।

वानिज–व्यापार, व्यवसाय, धर्म प्रचार, गुरु चेला का संवंध। ठाना–अनुष्ठान, तैयार किया, निश्चय। नेम–पवित्रता, सन्तोष, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान (ये पाँच नियम है)। धरम–किसी आचार द्वारा लोक परलोक बनाने के लिए या लोक परलोक में सुखी रहने के लिए बनाया हुआ नियम। ऐसे 'धा' धातु से धर्म की निष्पत्ति होती है जिसका अर्थ धारण करना होता है। संजम–रोक, बन्धन, धारणा, ध्यान, समाधि का ध्यान इन्द्रियों को वश में रखने की क्रिया का भाव, बुराईयों से चित्तवृत्तियों का निरोध। भगवाना–ईश्वर, हरि जो सब पापों को हर ले, 'हृ' धातु से इसकी निष्पत्ति होती है। अस–इस प्रकार का। ठाकुर–स्वामी। तेजि–तज, त्याज्य। बालन–बहुवचन स्त्रियां, ज्ञानी भक्त समूह। भिस्ति–वहिस्त, मुक्ति। गावै–कहे। दुलहाई–दूल्हा, कन्या का वर, जगत का स्वामी।

**सम्बन्ध**—पैंतोसवों रमैनी में मात्र वेद अध्ययन से एवं गायत्री के जप मात्र से पूर्णत्व की प्राप्ति सम्भव नहीं है। समस्त अभिमानों को छोड़ने के बाद ही विदेह पद को प्राप्त हो सकता है।

**भावार्थ**—अब छत्तीसवीं रमैनी में सद्‌गुरु लोगों से कहते हैं कि जो तत्व वेत्ता ज्ञानी जन हैं वे बहुत चतुर और विलक्षण बुद्धि के होते हैं अर्थात् यौगिक साधन में जब शक्ति का जागरण प्रारम्भ होता है तब योगी को विलक्षण वुद्धिप्राप्त हो जाती है और वह सूक्ष्मता से अन्दर की वस्तुओं को देखने लग जाता है उसमें स्वच्छता का निरन्तर संचार होने लगता है। परन्तु सद्‌गुरु कहते हैं कि शक्ति उद्रेक में केवल बुद्धि बारीक मात्र रह जाती है परन्तु वास्तविक सयानापन वह नहीं है उसके बाद का जो स्वाधिष्ठान चक्र है जब उस पर योगी ध्यान को स्थिर करता है जहाँ से अनेक सिद्धियों का अवतरण होने लगता है और जिसमें योगी जन भूलकर रह जाते हैं और उसके परिणाम को भी नहीं जान पाते स्वाधिष्ठान तक ही रहने पर अर्थात् सिद्धियों के चक्र में पड़े रहने पर योगी की उत्पत्ति, प्रलय होती रहती है और मध्य रात्रि के समान जो महा अज्ञान की दशा है वह उक्त योगी से तब तक दूर नहीं होती। जब

तक अज्ञान का अन्त न होकर प्रातः न हो जाय। प्रातः काल अर्थात् ज्ञान रूपी सूर्य का उदय न हो जाय। परन्तु जितने भी साधक हैं वे सभी इन सिद्धियों के लिए लालायित रहते हैं जिन उपायों से उसी व्यवस्था को करने की चेष्टा में लगे रहते हैं। साहब कहते हैं कि इन सिद्धियों की प्राप्ति वाला जो मार्ग है उसको त्याग कर नियम पूर्वक स्वधर्म के साथ संयम की पूर्ण रीति से भगवान की आराधना करनी चाहिए। अर्थात् बिना इन्द्रिय संयम के और बिना अभ्यास के और बिना धार्मिक भावना के भगवान की प्राप्ति होना सम्भव नहीं है। हे मनुष्यों वह हरि ऐसा ठाकुर है जिसको छोड़ना अर्थात् उसका त्याग करना श्रेष्ठ नहीं है। सभी भक्त ज्ञानी लोग दुलहाई--कहिये जो सबका स्वामी है, जो प्रकृति रूपी स्त्री का पति है उसी की प्राप्ति से मुक्ति हो सकती है इस बात को समस्त संसार के सन्त भक्तों ने कहा हैं तात्पर्य यह है कि जो इन्द्रियों का नायक है जो अपने अन्दर में विराजमान है उसी की प्राप्ति से भव-बन्धन छूटने की बात सभी भक्त एवं सन्त लोगों ने कही है।

साखी

**ते नर मरि के कहां गये, जिन दीन्हों गुर घोंटिं।**
**राम नामु निजु जानि के, छाड़ि देउ वस्तु खोटि॥**

**शब्दार्थ**—ते–वे लोग,। जिन–जिन्होंने,। घोंटि–घुट्टी, उपदेश, मार्ग दर्शन। खोटि–विकार, दोष, मायिक प्रपंच,।

**भावार्थ**—साहब कहते है कि जो सत्य मार्ग में शरीर छोड़ते हैं वे अन्य योनियों में जो नरक स्वरूप हैं उसमें नहीं जात हैं उनका साक्षात्कार आत्मा से हो जाता है जिनको सद्गुरु ने सही उपदेश दिया है वे सब लोग मुक्त हो जाते हैं उनके लिए भव–बंधन नहीं रह जाता है इसलिए हे मनुष्यों ! राम नाम जो निज वस्तु है उसको जान लो वह तुम्हारे हृदय में विराजमान है वह सबकी आत्मा है ऐसा जानकर किसी को दुख मत दो जो संसार की अन्य बुराइयाँ हैं, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अशौच, अदाया,

हिंसा, चोरी, पर निन्दा, परअपवाद, परस्त्री गमन, वे सब खोटी वस्तुएँ है इनको विवेक करके तुम परित्याग कर दो और राम नाम के अतिरिक्त दूसरे को जानने की चेष्टा न करो।

**विशेषार्थ**—तात्पर्य यह है कि जिसको अच्छा सद्गुरु मिल गया जिनको सही उपदेश सद्गुरु के द्वारा प्राप्त हो गया हो वे मर कर कहां गये अर्थात् मरणोपरान्त वह परमसत्ता में विलीन हो जाते हैं उनका आना जाना कहीं नहीं होता है। इसलिए मनुष्यों और साधकों को चाहिए की सिद्धि के फेर में न पड़कर परम प्रभु का सुमिरण भजन करें, जो सिद्धियाँ बन्धन कारक हैं उन सबका त्याग कर हरि सुमिरन करें।

## रमैनी ३७

**एक सेआन सेआन न होई। दोसर सेआन न जाने कोई॥**
**तीसर सेआन सेआनहिं खाई। चउथे सेआन तहाँ ले जाई॥**
**पंचये सेआन न जानै कोई। छठये मां सभ गैल विगोई॥**
**सतये सेआन जउ जानहु भाई। लोक वेद मह देउ देखाई॥**

**शब्दार्थ**—एक सेआन–मूलाधार चक्र, शुभेच्छा,। दोसर सेआन –स्वाधिष्ठान चक्र, सुविचारणा,। तीसर सेआन–मणिपूरक चक्र, तनु-मानसा। चउथे सेआन–अनाहद चक्र, सत्वापत्ति। पंचवे सेआन–विशुद्ध चक्र, असन शक्ति। छठयें सेआन–आज्ञाचक्र, पदार्थाभाविनी। सतये सेआन –सहस्रार, तुरीय।

**सम्बन्ध**—अगली रमैनी में सद्गुरु ने सिद्धावस्था का विरोध करते हुए भक्तिभाव का समर्थन किया है और राम नाम को जानकर सभी दुखदाई खोटी वस्तुओं का परित्याग बताया है।

**भावार्थ**—अब साधकों को व ज्ञानी पुरुषों के लिए ज्ञान की सप्त भूमिका का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि मूलाधार चक्र से जब भक्ति का जागरण होता है। तब साधकों में शुभेच्छा का संचार होता

है और सत्कर्मो की ओर उसको अधिक प्रवृत्ति हो जाती है। जब यौगिक क्रियाओं के करने पर स्वाधिष्ठान चक्र में शक्ति का प्रवेश होता है तब योगी के मन में सुविचारणा शक्ति उत्पन्न होती है। जो सत्य क्या हैं, असत्य क्या है ऐसा जानकर सत्यमार्ग का अवलम्बन करता है। साहब कहते हैं कि यह भी वास्तविकता तक पहुँचने की बात नहीं है। जब साधना के द्वारा योगी तीसरे चक्र मणिपूरक में प्रवेश करता है तब तनुमानसा की स्थिति उत्पन्न होती है। तीसरे चक्र पर पहुँचने पर मन मूल वस्तुओं का दर्शन करने लगता है जब तीसरे चक्र से योगी साधना के द्वारा अनाहत् चक्र पर पहुँचता है तब सत्वापति ज्ञान की भूमिका उत्पन्न होती है। चौथे चक्र पर पहुँचने पर योगी आत्म तत्त्व की ओर अग्रसर हो जाता है संसार से उसकी वृत्ति पूर्ण रूप से हटने लगती है। इसी चौथे चक्र से योगी की सूरत ऊर्ध्वंगति होने लगती है जब योगी चौथे अनाहत चक्र से साधना करके पाँचवे चक्र विशुद्धि चक्र पर पहुँचता है तो असनशक्ति नाम की ज्ञान की भूमिका उत्पन्न होती है। असनशक्ति की भूमिका उत्पन्न होने पर योगी का मन एकदम संसार से उपराम होने लगता है। रंचमात्र ही उक्त योगी संसार से सम्बन्ध रखता है। अर्थात् थोड़ा-थोड़ा संसार का संचरण उसके मन में कभी-कभी हो जाया करता है। यहीं से योगी की निर्विकल्पक समाधि उत्पन्न होती है। जब योगी विशुद्धि चक्र से साधना करके आज्ञा चक्र में पहुँचता है तो पूर्ण रूप से संसार की सभी दुर्वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं। अर्थात् छठवें आज्ञा चक्र पर पहुँचने पर योगी को पदार्थाभाविनी ज्ञान की भूमिका उत्पन्न हो जातो है। जहाँ पर सभी जागतिक पदार्थों का अभाव हो जाता है। छठवें चक्र में पूर्ण रूप से योगी को निर्वीज समाधि की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। संसार में अधिकतर योगी यहाँ से आगे नहीं बढ़ते हैं छठी भूमिका वाला योगी बहुत काल तक इस संसार में नहीं रह सकता है। वह अहर्निश समाधि में तल्लीन रहता है। उसके शरीर के व्यवहार समाप्त हो चुके होते हैं। किसी-किसी के मत में छठी

भूमिका के योगी को पुनः संसार में आने की सम्भावना रहती है परन्तु जब आत्मा के अतिरिक्त सभी पदार्थों का अभाव हो गया तब योगी का आना जाना सम्भव नहीं होता है। सद्‌गुरु कबीर सातवें स्थान के बारे में कहते हैं कि वह दिखाई नहीं देता है यदि कहीं वह लोक वेद में हो तो उसको दिखाओ। अर्थात् सहस्रार में पहुँचा हुआ योगी जो जीवन मुक्त की अवस्था में रहता है जिसको कबीर पंथ में तुरीयातीत भी कहते हैं। परन्तु ऐसी बात नहीं है। वह सातवीं भूमिका तुरीया की है। जिसको प्राप्त करने के बाद योगी को निर्विकल्पक समाधि भी बनी रहती है, और संसार का भी ज्ञान उसको बना रहता है। अर्थात् युक्त योगी संसार का सारा व्यवहार करते रहने पर भी संसार के बन्धन में नहीं पड़ता। वह योगी संसार का बहुत बड़ा उपकार भी कर सकता है। इस प्रकार के योगियों में सद्‌गुरु कबीर, भगवान कृष्ण, भगवान बुद्ध, महात्मा ईसा, स्वामी ऋषभदेव को कहा जा सकता है। अन्य भी बहुत से सन्त हुए हैं जो जीवन्मुक्ति की दशा में सदैव संसार का उपकार करते आये हैं। सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि अधिक योगी छठी भूमिका तक अर्थात् आज्ञा चक्र तक ही रह जाते हैं। छठी ज्ञान की भूमिका वाले योगी अपना उद्धार तो कर लेते हैं। परन्तु उनकी वृत्ति सदा आत्माकार होने पर संसार को कुछ देने में समर्थ नहीं होती। स्मरण रहे कि छठी अवस्था के योगी संसार में ज्यादा दिन तक जीवित नहीं रहते हैं।

साखी

**बीजक बतावै वित्त को, जो वित्त गुपुता होय।**
**ऐसे सबद बतावे जीउ को, बूझै बिरला कोय ॥**

**शब्दार्थ**—बीजक—जो किसी गुप्त वस्तु को बताने की सूची हो, या किसी गड़े हुए धन की बही। वित्त–धन, सम्पत्ति। गुपुता–जो भूमिगत हो। ऐसे सबद–इस प्रकार के शब्द, (बीजक) गुरु उपदेश। जीउ–चेतन मनुष्य। बूझै–समुझे। विरला–कोई एक।

**भावार्थ**—उक्त आत्म ज्ञान व पूर्ण प्राप्ति का उपदेश देकर सद्गुरु कहते हैं कि जैसे व्यापारियों के पास बीजक होता है और लिए दिए धन की भी सूची उसमें होती है अथवा कहीं गड़ा हुआ धन हो जिसको दूसरे न जानते हो उसकी सूची भी उस बीजक में रहती है व्यापारी के न रहने पर उसके पुत्र आदि उस बीजक द्वारा खादुकां से धन बसूल लेते हैं एवं जो कहीं पिता छिपा कर धन रखता है उस बीजक के द्वारा उसको भी प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार से सद्गुरु कहते हैं कि जो मेरा यह बीजक है वह ऐसे आत्म शब्द को बतलाता है। जिस शब्द से जीव का सम्बन्ध अनादि काल से अटूट चला आ रहा है। यहाँ पर शब्द आत्मा का वाचक है। तथा शब्द को परमतत्त्व भी कहते हैं। साहब कहते हैं कि यह जो जीव का परमतत्त्व जिसकी प्राप्ति से यह जीव भव दुःख से मुक्त हो जाता है जिसको मैं ऊपर कह आया हूँ। उस उपदेश को कोई विरला मनुष्य समझ पायेगा क्योंकि वह साधना का विषय है।

**विशेषार्थ**—यहाँ पर सद्गुरु का तात्पर्य यह है कि साधक के मन में सबसे पहले शुभेच्छा का उदय होता है। तत्पश्चात् गुरु उपदेश की ओर चिन्तन करने लग जाता है। जब मन चिन्तन करने लग जाता है तो उसमें जो दोष होता है वह क्षीण होने लगता है सत वस्तुओं को ग्रहण करने लगता है बुद्धि तीव्र हो जातो है उसमें धारण की योग्यता बन जाती है तव उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। वृत्ति अन्तःकरण प्रधान हो जाती है और सतगुण का उदय हो जाता है रजगुण एवं तम-गुण समाप्त हो जाते हैं। उसके बाद संसार की सारी आसक्तियाँ दूर हो जाती हैं। उसी को असन शक्ति ज्ञान की भूमिका कहा गया है। असन शक्ति के उत्पन्न होने पर योगी परब्रह्म के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु को नहीं देखता। उसकी वृत्ति निरन्तर आगे बढ़ती जाती है अन्त में तुरीयावस्था को प्राप्त हुआ योगी सम्पूर्ण जगत को ब्रह्ममय देखने लग जाता है। स्मरण रहे कि अब योगी मूलाधार में ध्यान को केन्द्रित

करता है पूर्ण ध्यान केन्द्रित होने पर मूलाधार चक्र को छेद देता है अर्थात् मूलाधार चक्र के परदे फट जाते हैं। इसी प्रकार से ध्यान करता हुआ योगी प्राणायाम पर भी जप के साथ स्वाधिष्ठान चक्र का भी भेदन करते हुए मणिपूरक को भी ध्यान जप के द्वारा छेद डालता है मणि पूरक छेदने के बाद पुनः योगी अनाहत चक्र में पहुँचता है अनाहत चक्र को योगी ध्यान जप के द्वारा भेदन करते हुए विशुद्धि चक्र में पहुँच जाता है। उक्त क्रिया के द्वारा विशुद्धि चक्र का भेदन करता हुआ योगी आज्ञा चक्र में प्रवेश करता है आज्ञा चक्र को भेदन करने के बाद योगी सातवें चक्र सहस्रार में पहुँच जाता है। जहाँ पर पूर्ण कुम्भक की सिद्धि हो जाती है भंवर गुफा में प्रवेश कर हृदयाकाश में सदा समाहित हो जाता है उक्त अवस्था में पहुँचने पर योगी संसार की सारी बुराईयों से परे हो जाता है और भूत भौतिक सृष्टि के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेता है इसी ज्ञान को बताने वाली विधि को सद्गुरु कबीर ने बीजक कहा है। यहीं बीजक रूपी विधि जो जीव का अपना गुप्त स्वरूप है अर्थात् आत्मतत्त्व है उसको बताता है। इसलिए सभी मनुष्यों को चाहिए की सद्गुरु के इस बीजक ग्रन्थ का अच्छे गुरुओं के निर्देशन में अहर्निश अध्ययन करें।

## रमैनी ३८

**यहि विधि कहौं कहा नहिं माना। मारग माहिं पसारिनि ताना॥**
**राति देवस मिलि जोरिन तागा। ओटत कातत भरम न भागा॥**
**भरमहिं सभ घट रहा समाई। भरम छोड़ि कतहुँ नहिं जाई॥**

**शब्दार्थ**—यहि–इस। विधि–प्रकार, क्रमानुसार। कहौं–कहा। माहिं–में। पसारिनि–पसारा, फैलाना। ताना–ताना उसको कहते हैं जो सूत कपड़ा बुनने के लिए तैयार किया जाता है पूरे थान तक लम्बाई खींच दी जाती है। जोरिन–जोड़ा। तागा–सूत, तार, रुई से बना हुआ बारीक

ताना। ओटत–ओटना, सूत कातने के पहले चरखी पर रुई के बीज को ओर तूल को अलग-अलग करने को क्रिया का नाम ओटना है। कहना–बार-बार विवाद करना, एक ही बात को सदैव कहते रहना। कातत–कातना। सूत–सूत निर्मित करने की क्रिया, सूत की कताई। भरम–अज्ञान। घट–शरीर, प्रत्येक मनुष्यों में। समाई–समाविष्ट।

**सम्बन्ध**—पहले कहा जा चुका है कि केवल आत्म ज्ञान से ही मुक्ति को प्राप्ति हो सकती है और वह आत्मज्ञान योग और ध्यान के द्वारा तथा सद्‌गुरु के द्वारा संभव हो सकता है। जब तक अच्छे सद्‌गुरु नहीं मिलेगें और सही मार्ग नहीं बतायेंगे तब तक मनुष्यों का उद्धार नहीं हो सकता है। जिस बात से मनुष्यों का कल्याण होने वाला है वही बात मैं कहता हूँ।

**भावार्थ**—उक्त प्रकार से मैं सभी मनुष्यों को समझाता हूँ कि आप लोग मेरी बात पर विश्वास करें जिसके द्वारा आपको सतमार्ग का दर्शन अवश्य होगा परन्तु ये परम्परावादी अज्ञानी मनुष्य मेरी बात को मानने के लिए प्रस्तुत नहीं हो रहे है उल्टे ही जिस मार्ग का मैं दिग्दर्शन करा रहा हूँ उस सत्यज्ञान का ये मूर्ख मनुष्य घोर विरोध कर रहे हैं अर्थात् मेरे बताये हुए सत्य उपदेश की राह में अपने सिद्धान्त रूपी ताना-बाना को फैलाकर उस मेरे सत्यकथित ज्ञान का अवरोध कर रहे हैं। जितने भी ये सकामी पुरुष मेरे विचारधारा के विरोधी लोग हैं वे अहर्निश मिल कर अपने सिद्धान्त रूपी तागे को जोड़ने में लगे हुए हैं। मैं तो राम भक्ति का उपदेश कर रहा हूँ। जिसके द्वारा मनुष्यों का कल्याण हो सकता है एवं आत्मज्ञान की चर्चा कर रहा हूँ, योग ध्यान की बात कर रहा हूँ। ये जुलाहे रूपी कर्मी जीव रात-दिन जिन कारणों से शरीर का निर्माण हुआ है, जिन सकाम कर्मों के द्वारा संसार की रचना हुई है, उन्हीं काम्य कर्मों के जोड़ने में अर्थात करने में यावत् जीवन लगे रहते हैं। ये कर्मकांडी अनेक उपासक लोग अपने सिद्धान्त के ओटने में अर्थात् कहने में नित्य लगे हुए हैं और विचार रूपी चर्खी में रूई रूपी

कर्म और बनौला रूपी ज्ञान को अलग-अलग कर रहे हैं। रूई बहुत हल्का होता है इसलिए कर्मकांड के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है कपास रूपी कर्म को ओटने के बाद सिद्धान्त रूपी सत् ये मनुष्य कात रहे हैं।

स्मरण रहे कि जब तक कर्म करना बन्द नही होगा, तब तक शरीर का निर्माण एवं संसार का निर्माण चलता रहेगा। ये अज्ञानी मनुष्य अनेक जन्मों से सिद्धान्त रूपी रूये को ओटते कातते आ रहे हैं परन्तु काम्य कर्मों के द्वारा भ्रम नष्ट नहीं हो सका। अर्थात् सकाम कर्म के द्वारा भ्रम का कभी अन्त नहीं हो सकता। साहब कहते हैं कि एक ही मनुष्य की बात नहीं है सभी मनुष्यों के भीतर व घट में अज्ञान रूपी भ्रम समाया हुआ है और अपनी परम्परा के कारण उक्त भ्रम को छोड़कर ये मूर्ख मनुष्य कहीं जा नहीं सकते। यदि कोई सन्त महात्मा ज्ञानी पुरुष सच्ची बात सुनाता है तो ये सकाम कर्मी मनुष्य अपनी बात को ही ओटते रहते हैं।

**परै न पूरि दिनहु दिन छीना। तहां जाइ जहां अंग विहूना॥**
**जो मत आदि अन्त चलि आई। सो मत सभ उन्ह प्रगट सुनाई॥**

**शब्दार्थ**—परे–पड़ा। पूरि–पूर्ण। दिनहु–दिन। छीना–क्षय, क्षरण, कमी। अंग–शरीर का एक भाग, किसी वस्तु का एक भाग, शरीर। विहूना–रहित, मुक्ति। मत–सिद्धान्त। चलि आई–चला आया।

**भावार्थ**—परन्तु इनका सिद्धान्त इतना अधूरा है कि इनके अर्थ की पूर्ति कभी नहीं होती और इनकी आशाएँ दिनो-दिन क्षीण होती जाती है एवं अपनी आशाओं की पूर्ति के लिए वहीं पर ये जाते हैं जहां इनको पूर्ण ज्ञानी नहीं मिलता। अर्थात् ऐसे अनभिज्ञ उपदेशकों के यहां जाते हैं जो स्वंय विवेक, वैराग्य, सत्य, अहिंसा, दया, आर्जव आदि गुणों से विहीन होते हैं। वह अंग विहीन वही बात कहता है जो इसका मत आदि अन्त से चला आ रहा है। जिस मत को उसके गुरुओं ने आरम्भ से अन्त तक चलने के लिए निर्देश दिया है। वही स्वर्ग एवं परलोक में मुक्ति होगी अथवा अनेक प्रकार के दान

दक्षिणा यज्ञ से तुम्हारा कल्याण होगा। जो कि अंग बिहुने का सिद्धान्त है। उसी अपने सिद्धान्त व मत को प्रकट करके सुनाता है।

साखी

**उहै सनेसा फुर के मानउ, लीन्हों सीस चढाय।**
**संतो है संतोख सुख, रहउ तो हृदै जुड़ाय॥**

**शब्दार्थ**—उहै–उसी को,। सनेसा–सन्देश, सिद्धान्त, समाचार। फुर–सत्य मानउ–मान लो, लीन्हों–लिए। सोस–शिर, मस्तक। संतो–संतजन संतोख–संतोष, सन्तुष्टि कारक। सुख–आत्म सुख। रहउ–रहिए, तो–तन तयी। हृदै–उर। जुड़ाय–शीतल होना, ठंढ़ाय।

**भावार्थ**—और यह भी कहा है कि इस मेरे उपदेश को आप लोग सत्यी मानिए। उक्त गुरु की बात सुनकर सभी अंग विहुने शिष्यों ने उनके बात को हृदयंगम किया। सद्गुरु कहते हैं कि सत्य ज्ञान व आत्म विहूनो से कल्याण नहीं होने वाला है। क्योंकि ये अपूर्ण हैं। सम्पूर्ण तत्व की जानकारी इनको नहीं है।

यहाँ 'अंग विहूना' में बहुव्यन्ज्ञना है, साथ ही रूपक भी है।

**आशय**—किसी विषय के आचार्य को चाहे वह अध्यात्म का आचार्य हो, चाहे वह आयुर्वेद का आचार्य हो, चाहे समाजशास्त्र का आचार्य हो यदि वह अपने विषय में स्वत्रं पारंगत नहीं है तो वह अपने शिक्षार्थीं शिष्यों को उक्त विषयों का ज्ञान पूर्ण रूप से करा नहीं सकता। इसी प्रकार से ये अज्ञानो मनुष्य सत्पुरुषों की बात न समझने के कारण सांसारिक सुख-सुविधा के लिए व स्वर्ग सुख के लिए यों कहिये आत्म कल्याण के लिए उस आचार्य के पास जाते हैं जो स्वयं अपने विषय का विज्ञ नहीं है। यदि शास्त्र पढ़ा है तो वाचक ज्ञान है, आत्म ज्ञान नहीं है। बहुत लम्बा-चौड़ा व्याख्यान करता है, तो इन्द्रियों का दमन नहीं है। यदि व्रत उपवास करता है तो मन में सन्तुष्टि नहीं है। यदि किसी सद्गुरु से कल्याण

की बात सुना तो धारण नहीं किया। इन उपर्युक्त कमियों के कारण वह अंग विहून है। इसीलिए उसके यहाँ कोई आत्म कल्याण के लिए जाता है तो भला उसकी पूर्ति वह कैसे कर सकता है ? इस पर सद् गुरु कहते हैं कि मनुष्यों को सन्तों के यहाँ जाना चाहिए। क्योंकि संत लोग ही अपने सत्य ज्ञान के द्वारा व सत्योपदेश के द्वारा किसी को सन्तुष्ट कर सकते हैं और सन्तुष्टि रूपी सुख उन्हीं सन्तों के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। यदि सन्तो की शरण में धैर्य के साथ निवास करोगे उनकी सेवा पूजा करोगे तो निश्चय तुम्हारा हृदय जो संसार के तापों से तप्त हो रहा है वह अवश्य शीतल हो जायेगा अर्थात् जुड़ा जायेगा।

**विशेषार्थ**—तात्पर्य यह है कि अज्ञानी मनुष्य के सामने अच्छी बात कही जाती है तो वह अपनी ही बात दुहराने लगता है। जो कहीं से ड़ पड़ी बातें सुन लेता है उसी को सत्य मानकर सच्चे पुरुषों की बातों पर विश्वास नहीं करता। यदि कभी संसार से घबड़ाते हैं तो ऐसे धर्मोपदेशकों के पास जाते हैं जो स्वयं अपूर्ण रहते हैं। उन अज्ञानी उपदेष्टाओं की बात से लाभ के अतिरिक्त हानि की ही सम्भावना अधिक रहती है। कारण कि सही बात की जानकारी न होने से सभी मनुष्यों को भ्रम घेरे हुए हैं। सच्चे गुरु के न मिलने से वह भ्रम भी दूर नहीं होता है। संसारियों को दुखी देखकर सद्गुरु कहते हैं कि यदि तुम्हें सच्चे सुख की कामना है तो सन्त महात्माओं एवं अच्छे गुरुओं के पास जाकर सत्य मार्ग की जानकारी करो जिससे तुम्हें शान्ति उपलब्ध हो सके।

## रमैनी ३९

### मुस्लिम मत समीक्षा प्रकरण

**जिन्ह कलिमा कलि माँहि पढ़ाया। कुदरत खोजि तिनहुं नहिं पाया।**
**करमत करम करै करतूता। बेद कितेब भया सभ रीता॥**

**करमत सो जग भौ औतरिया। करमत सो निमाज को धरिया ।।**
**करमत सुन्नति अउर जनेऊ। हिन्दू तुरक न जाने भेऊ ।।**

**शब्दार्थ**—जिन्ह–जिन्होंने। कलिमा–कलमा, वह वाक्य जो इस्लाम धर्म का मूल मंत्र माना जाता है, जो पांच बार नमाज के रूप में पढ़ा या पढ़ाया जाता है।

ला इलाह इल्लिल्लाह मुहम्मदुर्रसूल्लिाह ला' ला—नही'-इल—विना, शिवा, ईलाह—पूजा के योग्य, रसूलअल्लाह का भेजा हुआ देवदूत, पैगम्बर।

क़ुदरत—परमेश्वर, ईश्वर की महिमा, ईश्वरीय शक्ति। खोजि—अन्वेषण। करमत–कर्मपंथी, कर्म पंथ, कर्म करने वाला, कर्म से, कर्म के द्वारा, कर्त्तव्यपरायण, कर्मगति। करतूता–करतूती, आश्चर्यकारों कर्म, लोक बहिष्कृत कर्म, विस्मृत कर्म। वेद–ऋक्, साम आदि। कितेब–किताब, पुस्तक, कुरान शरीफ। भया–हुआ। रीता–रिक्त, खाली, निरर्थक। करमत–कर्म बुद्धि से। जग–जो गतिमान सदैव रहता है। भौ–हुआ। औतरिया–जन्म लिया। निमाज–मुसलमानों की पाँच समय की पूजा। सुन्नति–शिश्नोच्छेदन, खतना। जनेऊ–उपवीत संस्कार। हिन्दू–आर्य, ब्राह्मण। तुरक–तुर्क, इस्लाम को मानने वाला मुसलमान। भेऊ–भेद, रहस्य।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा जा चुका है कि सत्य बात का सदा विरोध होता आया है और सत्य विरोधी लोग अपनी मिथ्या बातों को ही अनेक तर्कों से सिद्ध करने में जुटे रहते हैं परन्तु उसका परिणाम अन्त में भयंकर होता है।

**भावार्थ**—अब यहाँ पर यह दिखाया गया है कि केवल ऊपरी क्रिया-कलापों से प्रभु बहुत दूर रहता है और दिखावटी पूजा-पाठ वाले उस परमेश्वर की गति या महिमा को जान नहीं पाये, जिसको संसारी लोग बहुत सस्ता समझ लिए हैं, क्योंकि यह किसी एक धर्म की बात नहीं हैं। संसार में बहुत महत्त्वपूर्ण व्यक्ति श्रीमुहम्मद साहब माने जाते हैं।

जिन्होंने इसी युग में अपना एक धार्मिक संप्रदाय चलाया और कलमा नामक मूल मंत्र अपने संप्रदाय वालों को पढ़ाया। अर्थात् उक्त मंत्र के द्वारा प्रभु प्राप्ति की बात बताई गयी है परन्तु सम्माननीय श्रीमुहम्मद साहब भी उस परम प्रभु अल्लाहताला की महिमा नहीं जान सकें।

यहाँ 'जिन्ह' में श्लेष है और 'कुदरत' में व्यञ्जना। 'जिन्ह' शब्द मुहम्मद साहब के लिए प्रयुक्त हुआ है। मुहम्मद साहब ने अपने को अल्लाह का नजदीकी बताया है। अल्लाह के अत्यन्त नजदीक होने के बावजूद सद्गुरु कहते हैं कि वे मुहम्मद साहब भी उस कुदरत के खेल को नहीं समझ पाये। यहाँ कुदरत शब्द प्रकृति के अर्थ में प्रयुक्त है जिसका अर्थ सभी टीकाकारों ने ईश्वरीय शक्ति या प्रकृति किया है, परन्तु जन-सामान्य में 'कुदरत' ईश्वर का वाचक हो गया है। ऐसा नहीं कि सद्गुरु कबीर न जानते हों कि कुदरत का अर्थ प्रकृति होता है।,

एक मत यहाँ कुदरत का अर्थ ईश्वर लिया है। अल्लाह असीम है। वह सभी सीमाओं से परे है। उसके रहस्य को अरबों-खरब बड़े से बड़े मनुष्य नहीं जान सके। चाहे वे मुहम्मद साहब हो या और कोई हो। साहब कहते हैं कि मनुष्य उस प्रभु के भेद को न जान कर अपनी कर्म-बुद्धि से जो उसके अनुकूल होता है, उस कर्म को सतत् करता रहता है। तत्पश्चात् उसकी करतूती संसार में चल पड़ती है। मनुष्यों की करतूती या कर्तव्य सब अपने विचार के होते हैं। उन्हीं विचारों का बाद में वेद, शास्त्र एवं कितेब कुरान नाम पड़ जाता है। जो मनुष्य बाद में अपने नये-नये विचारों के अनेकानेक ग्रन्थ बनाते जाते हैं वे अपनी वाणी के सामने वेद और कुरान की बातों को महत्व नहीं देते हैं अर्थात् कर्मकाण्डी पाखण्डियों की कल्पना के आगे वेद, शास्त्र सब खाली हो जाते हैं। उन पाखण्डी कर्मकाण्डियों के ज्ञान से वेद, शास्त्र सब शून्य-से रहते हैं अर्थात् जो कुछ वे कहते हैं वह वेद, शास्त्र से मेल नहीं खाता है क्योंकि इन्हीं कर्मकाण्डी सकामी पुरुषों के द्वारा संसार का सारा कर्म जाल रचा गया है। यों कहिये उस कर्म

जाल के द्वारा ही संसार का अवतरण हुआ है अर्थात् पाप-पुण्य के चलते ही मनुष्यों का जन्म-मरण बार-बार होता रहता है। कर्म बुद्धि से ही पाँच समय के नमाज का विधान भी किया गया है। जिसका धारण इस्लाम के लोग किये हुए हैं अर्थात् उस नमाज रूपी पूजा के द्वारा पाँच बार प्रभु प्राप्ति के लिए प्रार्थना करते हैं। वाणी के द्वारा प्रार्थना करने के कारण यहाँ पर कर्म कहा गया है। इसी प्रकार की कर्म बुद्धि से ही शिश्नोच्छेदन जातीय संस्कार भी किया जाता है तत्पश्चात् मुस्लिम वर्ग में उसकी गणना होने लगती है। इसी प्रकार से हिन्दू धर्म में भी कर्म बुद्धि द्वारा षोडश प्रकार के संस्कारों में एक उपवीत संस्कार भी है जो जातीय संस्कार भी कहा जाता है। अपनी कर्म-बुद्धि के अनुसार कर्मकाण्डियों ने अपने-अपने वर्णों की व्यवस्था तो किया परन्तु ये हिन्दू और मुसलमान लोग यह भेद नहीं जान पाये कि उपर्युक्त मेरे कर्मों का क्या फल होगा? क्या मेरे उपर्युक्त कर्म को ईश्वर स्वीकार करेगा क्या ईश्वर मेरे कर्मों से प्रसन्न होगा? यह भेद या रहस्य न हिन्दू जान सके और न मुस्लिम।

साखी

**पानी पौन संजोय के, रचिया यह उतपात।**
**सुन्नहि सुरति समोय के, कासो कहिये जात॥**

**शब्दार्थ**—पानी–वीर्य, जल। पौन–प्राण वायु। संजोय–मिलाकर संयुक्त कर। रचिया–रचा गया। उतपात–उत्पत्ति, अवतरण, कष्ट पहुँचाने वाली आकस्मिक घटना, उपद्रव। सुन्नहि–शून्य से। सुरति–मन की वृत्ति, योगियों की एक वृत्ति जो आत्मा को धारा से लगी रहती है। समोय–समायकर, समाविष्ट होकर। कासो–किससे। जात–जाति।

**भावार्थ**—उस प्रभु का भेद आर्य एवं अनार्यों में कोई नहीं जान पाया जिसने पानी, पवन, आकाश, पृथ्वी, अग्नि को एक करके संसार की रचना की उक्त पंच भूतों से जिसने मनुष्य का निर्माण किया है अर्थात् भूत-भौतिक सृष्टि की रचना किया है वह प्रभु तभी मिल सकता है जब तुम

सहस्रार में अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र में सुरति को प्रेषित करके दशवें द्वार में जहाँ पर प्रभु रहता है मिलाओगे, तब तुम उस परमेश्वर का उक्त चिदाकाश में दर्शन कर पाओगे। जब तुम्हारी सुरति स्वस्वरूप परमेश्वर में समाविष्ट हो जायेगी, तब तुम मौन हो जाओगे तब तुम उस रहस्य को किसी से कहने में समर्थ नहीं हो पाओगे। क्योंकि उस समय तुम्हारा और प्रभु का एकीकरण हो जायेगा और तुम इस भव-चक्र से छुटकारा पा जाओगे। सदा-सदा के लिए आनन्द-सिन्धु में समाविष्ट हो जाओगे।

**विशेष**—चाहे कलमा पढ़ाने वाले हो, चाहे गायत्री पढ़ाने वाले हो दुनिया के चाहे कोई भी धर्माचार्य अपने मूल मंत्र को पढ़ाने वाले हों परन्तु ये ईश्वरीय खेल को जानने में सदा विफल रहते हैं। चाहे उसको जानने के लिए कितने प्रकार के कर्म करें, कोई भी करतूती करें, चाहे उनके अद्भुत चमत्कारों से वेद, पुराण या धर्म-ग्रन्थ शून्य रहे तो भी वे परम प्रभु से दूर रहेंगे। जब तक ये मनुष्य सकल कर्मों को रजगुण से युक्त होकर करते रहेंगे तब तक यह संसार प्रकट होता रहेगा। चाहे वे नमाज पढ़े या सुन्नति करावें। जनेऊ पहने, चाहे नाक छेदावें, चाहे कान कटावें, कोई भी वर्णाश्रम का संस्कार कराकर उत्तम बनें परन्तु ये आर्य एवं अनार्य लोग उस प्रभु के भेद को नहीं जान सकेगें। जिसने पंच महाभूतों को मिलाकर विश्व की रचना की है। उसको वही लोग पा सकते हैं जिनके संसार के सारे दोष विनष्ट हो जाते हैं। अर्थात् जो संसार के सारे दोषों से शून्य हो जाते हैं। जिनकी मनोवृत्ति परम प्रभु में समाविष्ट हो जाती है। वह फिर संसार में लौट कर नहीं आ सकते हैं। उनको किसी से कोई बात कहने की नहीं रहती है।

## रमैनी ४०

**आदम आदि सुधी नहिं पाई। मामा हवा कहां से आई॥**
**तब नहिं होते तुरुक अउ हिन्दू। माइ के रिधुर पिता के विन्दू॥**

**तब नहिं होते गाइ कसाई । तब विसमिल्ला किन फुरमाई ॥**
**तब नहि होते कुल अउ जाती । दोजक भिस्त कउन उतपाती ॥**
**मन मसले की सुधी न जाना । मति भुलान दुइ दीन बखाना ॥**

**शब्दार्थ**—आदम–यहूदो ईसाई तथा मुसलमानों के मत के अनुसार सृष्टि का आदि पुरुष । आदि–आरम्भ, शुरु । सुधी–स्मरण, स्मृति । पाई–प्राप्ति । मामा–माता । (का०) हवा–आदम की धर्मपत्नी का नाम । ते–से । होते–होता । होत रिधुर–माता का रज । विन्दू–पिता का विन्दु, वीर्य । गाई–गौ । कसाई–पशु को काटने वाला । विसमिल्ला–बलि देने वाला ( जो बलि के समय कलमा पढ़ाते समय वाक्य उद्धृत करते हैं वह विसमिल्ला), बलि, हत्या, जबह । किन–किसने । फुरमाई–आदेश । कुल–खानदान, वंश मूल, वर्ण, जाति । दोजक–नरक । भिस्त–मुक्ति, वहिस्त । उत्पाती–उत्पन्न । मन मसले–मन की गति । व्यवहार, रहस्य, समस्यायें । सुधी–जानकारी, स्मरण । दुई–दो । दीन–धर्म । बखाना–कथन किया । मति–बुद्धि । भुलान–भुला गयी ।

**सम्बन्ध**—ऊपर की रमैनी में ईश्वरीय शक्ति को महान बताया गया है तथा कल्पित कर्म-धर्मों को सारहीन कहा गया है । जिसने संसार की रचना की है, हिन्दू-मुसलमान उसके भेद को नहीं जान पाये, सबको छोड़कर जो लोग उसके शरणागत होते हैं उन्हीं का जीवन सुखमय बीतता है ।

**भावार्थ**—पहले तो कहा गया कि संसार के कोई भी धर्माचार्य ईश्वरीय शक्ति को जानने में असमर्थ रहे हैं ऐसी बात नहीं । उनसे भी पहले जो मूल पुरुष हुए हैं जिनको अल्लाहताला या परमेश्वर अपने सत्य संकल्प से स्वयं उत्पन्न किया है वह आदम बाबा उस आदि की सुधि नहीं पाये अर्थात् जो मूल पुरुष है उसकी जानकारी बाबा आदम को भी नहीं हो पायी । उसका ओर-छोर कहाँ से कहाँ तक है । यहाँ तक कि बाबा आदम उस पूजनीय माता हौवा को भी नहीं जान सके, कि वह कहाँ से उनके पास आ गयी ? जब कि माता हौवा को इन्जील के अनुसार प्रभु ने

स्वयं बाबा आदम की बायी पसली से कुछ अंश निकालकर स्त्री के रूप में परिवर्तित कर दिया। यह कथा ठीक मनु-शतरूपा की कथा से मिलती-जुलती है। इसका प्रसंग यहाँ नहीं है इसलिए लिखना समुचित नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि माता हौवा, बाबा आदम का अंश होने पर भी उसको नहीं जान सके तो दूसरे की क्या बात कही जाय ? जब प्रभु ने आदम एवं ब्रह्मा को सत्य संकल्प के द्वारा उत्पन्न किया, तब न हिन्दू थे, न मुसलमान थे। अर्थात् उस समय हिन्दू-मुसलमान की संज्ञायें व वर्ण नहीं बन पाये थे। उस समय तो माता का रज भी उत्पन्न नहीं हो पाया था और पिता के शरीर में वीर्य भी नहीं था। अर्थात् प्रारम्भ में यह सृष्टि रज, वीर्य विहीन पुरुष प्रकृति के संयोग से उत्पन्न हुई। पुरुष ने जब संकल्प किया तब यह सृष्टि उत्पन्न हुई। उस समय रज वीर्य का पूर्ण अभाव था। उस समय न तो गाय की उत्पत्ति हुई थी, और न तो कोई कसाई ही जन्म लिया था। अर्थात् जब प्रभु ने सृष्टि के आरम्भ में आदम-हौवा, ब्रह्मा एवं सरस्वती को उत्पन्न किया। तो उस काल में न गाय उत्पन्न हुई और न कसाई ही उत्पन्न किये गये थे। तब भला कहिये परमेश्वर ने विसमिल्ला बलिदान की प्रथा किससे फुरमाई थी ? अर्थात् किसको आदेश दिया। या उस समय तो वर्ण और जाति का विभाजन भी नहीं हो पाया था। सृष्टि काल में तो सब मनुष्य एक थे उस समय कुल अर्थात् वर्ण क्षत्रिय, ब्राह्मण, शेख-सैयदों की उपाधि नहीं मिली थी। उस समय सभी सत्कर्म में आरूढ़ थे। सभी लोग सत्य में समाहित थे। न दोजख का निर्माण हुआ था न मुक्ति की उत्पत्ति हुई थी। अर्थात् जब मनुष्य विषय-वासना से मुक्त रहता है जब उसमें किसी प्रकार के दुर्गुण घर नहीं कर पाते तो उसके लिए न दोजख होता है और न बहिस्त की जरुरत पड़ती है। यह सब नरक और स्वर्ग बाद के मनुष्यों ने अपने कर्म के द्वारा सृजन किया। जिसके द्वारा सृजन हुआ है वह है मन। यह मन की जो समस्या है, जो इसका व्यवहार है उसकी सुधि अर्थात् जानकारी किसी को नहीं है। यह पलक मारते-मारते अनेक प्रकार के कर्म बन्धनों

के जाल रच डालता है। मन क्या करता है और क्या करेगा इसकी जानकारी मनुष्य को नहीं हो पाती। मन के सारे कार्य अज्ञानमूलक है। जिसके कारण मनुष्य की बुद्धि भूल में पड़ गयी है और उसी भूल में दो धर्म या अनेक धर्मों का बखान किया गया है।

साखी

**संयोगे का गुन रवै, विजोगे का गुन जाय।**
**जिभ्या स्वारथ कारने, नर कीन्हें बहुत उपाय ॥**

**शब्दार्थ**—संजोगे-संयोग, अकस्मात, मिल-जुलकर, मेल-मिलाप कर, संघ बनाकर। गुन-ज्ञान, व्यवहार, विधान, नियम, व्यवस्था। रवै-कहे, फैलावे, प्रचार करे, प्रसिद्ध करे। विजोगे-बिना योग का, अकेला, अयोग्य, अनभिज्ञ। गुन-ज्ञान, ज्ञानी। जिभ्या-जीभ। स्वारथ-स्वाद, हित, स्वहित। कीन्हें-किये। उपाय-यत्न।

**भावार्थ**—मनुष्य भूल के चलते ही अनेक धर्मों की कल्पना किया करता है। और अपने धर्म-देवता को प्रसन्न करने के लिए, अनेक प्रकार के कर्मों का अनुष्ठान मिल जुलकर या संगठित होकर करता है। उन्हीं नियमों एवं विधानों का अपने समाज के मनुष्यों में बड़े जोर-शोर के साथ प्रचार किया, जो मनुष्य उस संघ में नहीं शामिल हुआ अर्थात् जिससे उनका मेल-मिलाप नहीं हो पाया, उनका गुण, ज्ञान दूसरों के लिए काम का नहीं रहा। मनुष्यों ने अपने जिह्वा के स्वाद के लिए बहुत प्रकार के उपाय किये। किसी ने मिलकर बकरीद के दिन बिस्मिल्ला कहकर जीवों की हत्या की, किसी ने काली भैरव की पूजा के नाम पर देवताओं के आगे उनको प्रसन्न करने के लिए जीवों को काटकर अग्नि-कुण्ड में हवन किया। किसी ने पक्षियों को पकड़ कर अपने परमेश्वर के नाम पर जबह किया। पहले कहा जा चुका है कि ये सब संयोगी लोग अपने सम्प्रदाय का खूब प्रचार किये और जो अपनी रुचि की बात लगी उसी का पालन कराया। षट् रसों का स्वाद लेने के लिए प्राणियों का मांस धर्म के अन्दर मिलाकर खाने की प्रथा चालू की।

**विशेषार्थ**—इस सृष्टि के रहस्य का पता उन मूल पुरुषों को भी नहीं लगा जो ब्रह्मा एवं आदम के नाम से विख्यात हैं। तब ये भला साधारण मनुष्य क्या जान सकेंगे ? जिन्होंने अनेक कल्पना करके जाति-पांति का बखेड़ा खड़ा किया, और प्रभु को खुश करने के लिए निर्बल पशुओं की हत्या का विधान बनाया। इन्हीं अज्ञानी मनुष्यों ने स्वर्ग-नरक एवं जाति-पांति की रचना किया। बहुत प्रकार के धर्म सम्प्रदाय चलाये, और सभी ने मिल-जुलकर अपनी रोजी-रोटी कमाने एवं खाने के लिए गाय, भैंस, बकरा, बैल काटने का उपाय रचा। साहब कहते हैं कि ये संसार के अज्ञानी मनुष्य सदा छल-छिद्र में लगे रहते हैं और उदर-पूर्ति के लिए कोई भी कर्म नहीं छोड़ते। इनका कल्याण तभी हो सकता है जब ये दुष्कर्म से परे हो जाय।

# रमैनी ४१

## दिव्य देहधारी देव आस्तिक प्रकरण

**अम्बुकि रासि समुद्र की खाई। रवि ससि कोटि तैतीसो भाई॥**
**भौर जाल मंह आसन माड़ा। चाहत सुख दुख संग न छाड़ा॥**
**दुख के मरम न काहू पाया। बहुत भांति के जग भरमाया॥**
**आपुहि बाउर आपु सेआना। हिर्दया बसे तेहि राम न जाना॥**

**शब्दार्थ**—अंबु–जल। रासि–भण्डार, कोश। समुद्र–सागर। खाई–खाड़ी, किसी राजा के नगर के चतुर्दिक रक्षा के निमित्त खोदी गयी नहर। रवि–सूर्य। ससि–चन्द्रमा। कोटि–करोड़। तैतीसो–तैतीस देवता। भाई–सहोदर, एक माता-पिता की सन्तान। ऋग्वेद में केवल तैतीस देवताओं का उल्लेख है। जो शतपथ ब्राह्मण में इस प्रकार गिनाये गये हैं—आठ वसु, ग्यारह रूद्र, बारह आदित्य, इन्द्र और प्रजापति। उस ऋग्वेद में एक स्थान पर तैतालिस सौ उन्तालिस संख्या गिनायी गयी है। भौर–आवर्त, नदियों के अथाह जल में जहाँ पर जल चक्रवात की भाँति घूमता रहता है। जाल–सूत एवं तार से बुना हुआ छिद्रदार मछली आदि

फँसाने के लिए फाँसा। जल भी इसका अर्थ है। मंह—में, मध्य, आसन–बैठने के लिए जगह सुरक्षित करना। माड़ा–मारा, जमाया स्थिर किया। भाँति–प्रकार। मरम–रहस्य। काहू–कोई। भरमाया–भ्रमित किया। आपुहि–अपने आप। बाउर–बुद्धिहीन, पागल, अल्पबुद्धि।

**सम्बन्ध**—पहले कहा जा चुका है कि उस परमात्मा की गति कोई जान नहीं सका। जितने भी कर्म-धर्म, जाति-पांति हैं वे सब मनुष्य के द्वारा खड़े किये गये हैं अपने स्वार्थ के लिए मनुष्यों ने बहुत प्रकार का स्वार्थ सिद्धि की बात रची है और रोचक, भयानक तथा यथार्थ दिखाकर नरक-स्वर्ग की भयावह स्थिति बतायी है।

**भावार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि संसारी मनुष्यों की ही बात नहीं है कि ये संसारिक भोग लिप्सा में लिपटे हुए हैं प्रत्युत अखिल ब्रह्माण्ड के निवासी देव दानव गण सभी अपने-अपने विषय भोग के लिए अहर्निश प्रयत्न में लगे हुए है और वह विषय-सुख इस प्रकार से मनुष्यों एवं देव-दानवों को घेरे हुए हैं जिस प्रकार समुद्र की जल राशि पृथ्वी के चारों ओर के भूभाग को घेरे हुए हैं। इस विषय-सुख को पार करना इतना दुस्तर है कि वह खांई अर्थात् गड्ढा के सदृश है। जैसे रक्षा के लिए कोई राजा अपने राज्य के चारों ओर एक खांई खोदवा कर उसमें जल भरवा दे तथा उसका निष्कासन गढ़ की ओर हो तो उस समुद्रवत खांई को गढ़ के अन्दर के लोग बिना साधन के पार करने से समर्थ नहीं हो सकते, उसी प्रकार से खांई के बाहर के लोग भी अन्दर नहीं आ सकते। इसी प्रकार प्रभु की माया समस्त देव, दानव, मनुष्य, पिशाच तथा जितनी भी जीव जन्तुओं की योनियाँ है, उन सबको भौतिक सुख दिखला कर चारों ओर से खांई के सदृश घेरा डाले हुए है। सूर्य, चन्द्रमा और जो तैंतिस करोड़ देव हैं यहाँ पर इन सभी देवों को भाई कहा है। पुराणों के अनुसार सभी तैंतिस करोड़ देवता रवि, शशि, समेत अदिति, दिति एवं कश्यप के सम्बन्ध से उत्पन्न हुये हैं। इसलिए उनको भाई कहा गया है।

यहाँ पर देवता शब्द महत् सूचक शब्द है परन्तु वे देव लोग भी भौतिक सुख रूपी समुद्र के अथाह जल में जो भँवर अर्थात् चक्रवात के समान है, जो सभी मनुष्यों को फँसाने के लिए महाजाल भी कहा गया है, उसी भौतिक जाल रूपी सुख पर ये तैंतिस करोड़ देवता भी आसन जमाये हुए है। अर्थात् जिस सुख को मनुष्य लोक के लोग भोगने के लिए तत्पर हैं उसी भौतिक सुख को देवगण भी भोगने के लिए समाहित रहते हैं, जो मनुष्यों को डुबाने वाला है। अर्थात् नीचे की योनियों में ले जाने वाला है।

देवताओं के पुण्य क्षीण होने पर मनुष्य योनि में आना पड़ता हैं। मनुष्य योनि में अच्छा कर्म नहीं होने पर वे पशु आदि योनि में जाते हैं। इसलिए संसार को समुद्र कहा है। उसके सुख को भँवर जाल कहा है। उसी सुख के भँवर जाल में सारे प्राणी भोगने के लिए बैठे हुऐ हैं। परन्तु उस सुख से कभी सन्तुष्टि नहीं होती है। उपर्युक्त देवगण सुख भोगने के लिए बहुत दिन तक स्वर्ग में रहना चाहते हैं। परन्तु उनको सदा यह भय बना रहता है कि एक दिन मेरे पुण्यों का क्षय होने से इस सुख का नाश हो जायेगा। चाहते तो सुख हैं पर दुःख साथ नहीं छोड़ता है। यह दुख क्यों होता है इसका रहस्य कोई मनुष्य जान नहीं पाया। यदि दुःख का हेतु या कारण जाने गये होते तो दुःख के कर्मों का निर्माण नहीं किया गया होता। यहाँ कर्म में द्वि अर्थकता है। मनुष्यों को दुःख वासना के कारण होता है। जब तक तृष्णा का अन्त नहीं होगा, तब तक दुःख की समाप्ति नहीं होगी। यह क्रम जानना है। जब मनुष्यों में विवेक होता है। तब वे भौतिक सुखों को हेय समझकर तृष्णा की समाप्ति के लिए उपाय करते है। यह संसार का सुख मनुष्यों को बहुत प्रकार से भरमाया, अनेक योनियों में ले गया और जहाँ-जहाँ गया वहाँ-वहाँ दुख साथ में लगा रहा। यह मनुष्य अपने आप बुद्धिहीन और पागल है वह जब तक संसार का साथ किये रहता है, तब तक उसकी बुद्धि बाउर बनी रहती है। वास्तव में सोचा जाय तो वे संसार के मनुष्य सयाने भी हैं। क्योंकि

संसार के सारे कला कौशल इन्हीं मनुष्यों के द्वारा प्रकट हुये है। मनुष्य ही सभी योनियों में श्रेष्ठ है। जब तक यह जीवात्मा मनुष्येतर योनियों में रहता है, तबतक विवेक हीन रहता है। जब वह जीवात्मा मानव शरीर को धारण करता है तब वह अनेक प्रकार के ज्ञान विज्ञान से परिपूर्ण होकर सयाना कहलाता है। फिर भी यह उस परम सुख स्वरूप राम को नहीं जान पाता। जो उसके बहुत नजदीक है, एवं सबके हृदय में विराजमान है। मनुष्य योनि पाने पर भी उस हृदय निवासी राम को नहीं चीन्ह पाता है।

साखी

**तेई हरि तेइ ठाकुर, तेई हरि के दास।**
**ना जम भया न जामिनी, भामिनि चली निरास॥**

**शब्दार्थ**—तेइ–वही। ठाकुर–स्वामी। दास–सेवक। जम–यम, मृत्यु, संयोग, नियंत्रण, इन्द्रियों को रोकना, जुड़वा बच्चे, दो की संख्या, बहुत बड़ा धार्मिक, नैतिक कर्तव्य, कौआ, शनि, विष्णु, वायु। जामिनी–प्रतिज्ञा, रात्रि, हल्दी, कपूर। भया–हुआ। भामिनी–सुन्दर स्त्री। चली–गमन। निरास–असफल, कुछ हाथ न लगा।

**भावार्थ**—वही हृदय निवासी हरि सबकाठाकुर है। सब पर उसी का नियंत्रण है। जो संसार के जीव हैं अर्थात् जो भी देव दानव है वे सब उसी प्रभु के दास हैं और उसी की सेवा सबको करनी चाहिए। परन्तु उस नजदीक रहनेवाले प्रभु को ये मनुष्य इसलिए नहीं प्राप्त कर सके कि अपने इन्द्रियों एवं मन पर पूर्ण नियंत्रण नहीं कर सके। ये संसार की भोग-लिप्सा में लगे रहे जो रात्रि रूपी भामिनी नाम वाली अविद्या है, वह भी संसार के सुख चाहने वालों की कुछ सहायता न कर सकी। इस भामिनी स्वरूपा मोह माया से ग्रसित प्राणी के अन्त में कुछ हाथ नहीं लगा। इस मानव योनि से निराश होकर चल दिये।

**प्रौढ़िवादार्थ**—जो जिज्ञासु अपने हृदय में प्रभु को देख लेता है वह सर्वात्मा स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। उसके लिए स्वामी–सेवक अर्थात्

हरि ठाकुरपन, दास सेवकपन में कोई भेद नहीं रहता, सबमें एक ही आत्मा का दर्शन करता है। तब उसको न शोक होता है न मोह होता है अर्थात् तब यम नाम वाली मृत्यु उसके लिए नहीं रह जाती है। अविद्या स्वरूपी यामिनी जो रात्रि का वाचक है तब उसकी वह नहीं स्पर्श करती। अर्थात् आत्म ज्ञान होने पर न मृत्यु का भय होता है न तो अविद्या जन्य कष्ट होते हैं। लुभावनी युवती के समान यह दृष्टिगोचर होने वाली सृष्टि भामिनी जो माया का प्रतीक है उस आत्मज्ञानी की ओर से निराश होकर चली जाती है क्योंकि वहां इसे कुछ नहीं मिलता। अर्थात् उस सर्वात्मा को जानने वाले के लिए संसार के माया मोह भी कुछ करने में समर्थ नहीं होते। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि पर ब्रह्म एवं सबल ब्रह्म तथा वद्ध चेतन जीव में समभाव से एक परम तत्त्व का दर्शन करें।

**विशेष**—संसार रूपी समुद्र में सभी देव दानव फँसे हुए हैं और इसी संसार में सुख की कामना करते हैं। परन्तु दुख के कारणों के त्याग के बिना उन्हें शान्ति नहीं मिलती और दुख छोड़ने के भेद को भी नहीं जानते। जिस कारण अनेक प्रकार से उनको भरमाया गया। अर्थात् ईश्वर ने देवता से मनुष्य, मनुष्य से कीड़ी–कुन्जर तक भरमाते रहा। सभी जीव अविद्या ग्रसित होने के कारण अज्ञानी बने हुए हैं परन्तु सबमें ज्ञान स्वरूप चेतन निवास करता है, इसीलिए सभी मनुष्य बुद्धिमान भी हैं परन्तु बहुत नजदीक रहने वाले परमेश्वर को जान नहीं पाये। उपाधि भेद से वही जीव है वही शिव है जो जीव बनकर अपने आप सेवा करता है। परन्तु अपने ऊपर नियत्रंण न रहने के कारण उसे रात्रि रूपी अविद्या ने आगे नहीं बढ़ने दिया। ये भोगासक्त प्राणी अन्त में निराश होकर चल बसे।

## रमैनी ४२

### परमतत्त्व माहात्म्य प्रकरण

**जब हम रहल रहल नहिं कोई। हमरे माहिं रहल सभ कोई॥**
**कहहु राम कउन तोरि सेवा। सो समुझाय कहहु मोहि देवा॥**
**फुर-फुर कहउ मारू सभकोई। झूठहिं झूठा संगति होई॥**

**शब्दार्थ**—जब–जिस समय, सृष्टि के पहले, । हम–सर्व शक्ति मान परब्रह्म आत्मा । रहल–रहा । हमरे–मुझमें । माहिं–मध्य में । सभ–सारी सृष्टि । कहहु–कहिये, । तोरि–आप की । सो–वह । देवा–प्रभु । फुर-फुर सत्य–सत्य । कहहु–कहता हूँ । मारू–मारता है, कामदेव । झूठहिं–झूठे से झूठे की संगति । एक असत्य वादी का दूसरे असत्य वादी से साथ ।

**सम्बन्ध**—प्रथम उक्त रमैनी में कहा जा चुका है कि भौतिक भोग की लिप्सा में तैंतिस कोटि देव से लेकर सभी प्रकार के जीव जन्तु ध्यान लगाये हुए हैं । परन्तु सुख की इच्छा में ही दुख के संगी बन गये । क्योंकि वास्तविकता समझ में नहीं आयी ।

**भावार्थ**—अब इस वर्तमान रमैनी में आत्म निष्ठ होकर अर्थात् ब्रह्म में समाहित होकर साहब कहते हैं कि जब परमसत्ता सृष्टि के पूर्व में अकेले ही विराजमान थी, तब उस समय यह दृष्टिगत जगत या जगत के कोई भी प्राणी नहीं थे । उस समय यह सारा संसार उसी परम सत्ता में समाहित था । जैसे बट के बीज में सभी पेड़ पत्ते डालियाँ, विशालकाय उसका स्वरूप सूक्ष्मरूप में विद्यमान रहता हैं । इसी प्रकार से यह सारा ब्रह्माण्ड जो इक्कीस भागों में बांटा गया है । सृष्टि के पहले उस परम प्रभु में अन्तर्निहित था । यहां पर सद्गुरु अब यह कहते है कि हे राम ! हे प्रभु ! तुम तो स्वयं महान हो, तुम स्वयं सुख स्वरूप हो, सदा प्रसन्न रहते हो, भला आप ही कहो कि आप की सेवा क्या हो सकती है उक्त सेवा से आप को क्या लाभ होगा ? हे जगत गुरु आप की सेवा तो लोग अपने स्वार्थ के लिए करते हैं । हे परम देवता आप ही मुझे समझाकर कहें क्या मैं यह बात सही नहीं कह रहा हूँ । मैं तो सबसे कहता हूँ कि तुम्हारी सेवा से प्रभु का कोई लाभ नहीं है। तुम लोग स्वयं उसकी सेवा कर लाभान्वित होते हो, हे जगदीश्वर ! यह बात मैं सत्य-सत्य कहता हूँ पर संसारी मनुष्य यह कहकर मुझे मार-मार कहता है कि बिना प्रभु सेवा से प्रभु खुश नहीं होता है । मैं इन संसारियों से कहता हूँ कि तुम लोग निष्काम होकर अन्य देव-देवियों की संगति मत करो । संत पुरुषों की संगति करो । परन्तु ये

हरि विमुख लोग या धर्म रहित लोग, ये दो झूठे मिलकर परस्पर संगति करते हैं और एक झूठा दूसरे झूठे पर विश्वास करता है।

**आंधर कहै सभै हम देखा। तहँ दिठिआर पैठि मुख पेखा॥**
**यहि विधि कहौ मानु जो कोई। जस मुख तस जो हृदया होई॥**
**कहैं कबीर हंस मुसकाई। हमरे कहल छूटि बहु भाई॥**

**शब्दार्थ**—आंधर–नेत्र हीन, अज्ञानी मनुष्य। सभै–सभी। हम–मैं। देखा–दर्शन किया, समझा। तहां–जहां कहते हो। दिठिआर–दृष्टिवाला सनेत्र। पैठि–प्रवेश कर। मुख–स्वरूप। पेखा–देखा। विधि–प्रकार। कहौ–कहता हूँ। मानु–मानो। जस–जैसे। तस–तैसे। हंस–एक प्रकार का पक्षी जोवात्मा, माया से निर्लिप्त। जीव–बत्तख के आकार का एक पक्षी जो वर्षा काल में तिब्बत आदि के झीलों में रहता है। जिसको मान-सरोवर का पक्षी कहते हैं। जिसकी गति अति मनमोहक होती हैं। किव-दन्तियों के अनुसार जो दूध-जल को मिला देने पर अलग-अलग कर देता है। मुसकाई–प्रसन्नता, खुशी। बन्धन, जिसके दोनों हाथ पीछे करके बांध दिये जाते हैं। छूटि–छूटना, छूट जायेंगे। बहु–बहुत से लोग। भाई –सम्बोधन।

**भावार्थ**—और ये अज्ञानी लोग, जिनके पास विवेक वैराग्य रूपी नेत्र नहीं हैं मेरे से कहते हैं जो तुम मुझसे कहते हो अर्थात जिस प्रभु की बात करते हो उसको हम देखे हैं। परन्तु दृष्टिवाला जिसके पास विवेक बुद्धि है वह उन मूर्खों की मण्डली में प्रवेश करके देखा तो साफ-साफ कुछ भी नहीं पाया। 'तहं' में श्लेष है, ईश्वर से भी सम्बन्धित है और मूर्खों से भी सम्बन्धित है। इसलिए बुद्धिवाला कहता है जहां पर यह संसारी मनुष्य विद्यमान है मैं अपनी सूक्ष्म बुद्धि की पैठ से उसकी गति को देख लिया हूँ अर्थात् जहां पर मूर्ख लोग नहीं पहुंच पाते दिठिआर कहिये ज्ञानी पुरुष वहां पर पहुँच कर साधन भजन कर लेते हैं। इसी प्रकार से या इसी विधि से प्रभु प्राप्ति की बात मैं कहता हूँ यदि कोई मान जाय तो उसका कल्याण अवश्य हो जायगा। परन्तु प्रतिज्ञा यह है कि जिस प्रकार

मुख से कहें उसी प्रकार से पालन करे। सद्गुरु कहते हैं कि यह जो हंस के समान शुद्ध जीव है यह अनेक जन्मों से माया मोह में बंधा हुआ संसार में चला आ रहा है इसके छूटने का एक ही उपाय है कि यदि हमारे कथनानुसार चलेंगे तो हे बन्धुओं बहुत से लोग छूट जायेंगे। अर्थात् बहुत लोगों को सद्गति मिल जायेगी।

कहीं-कहीं पर "छूटिबहु" के स्थान पर 'दुष्ट बहु' पाठ भी मिलता है और 'हमरे' में श्लेष है यदि 'दुष्ट बहु' पाठ लिया जाय तो यह अर्थ होगा कि मैं सच्ची बात कहता हूँ तो ये संसार के अज्ञानी मनुष्य मुझे खोटा कहते हैं।

**विशेष**—जब सृष्टि नहीं रहती है तब वहां अकेला परब्रह्म परमात्मा रहता है और यह सारा संसार उसी में निहित रहता है। ऐसी दशा में न कोई किसी की उपासना करता है और न कोई किसी का उपास्य होता है। यदि कोई कहता है कि एकाकी में अर्थात् अद्वैत में कोई सेव्य सेवक है तो यह बात समझ में नहीं आती। जब हम ही हम हैं। जब मुझे यह ज्ञान हो गया कि हमसे भिन्न कोई दूसरा पदार्थ नहीं है सम्पूर्ण चराचर जगत मेरे से परिपूर्ण है तो ऐसी दशा में न कोई सेवक रहता है न कोई सेव्य रहता है। जब उक्त स्थिति का मैं वर्णन करता हूँ तब कर्म काण्डी एवं उपासनावादी लाग जिनकी पहुँच वहां पर नहीं है मुझे मार-मार कहते हैं। कि यह कुछ नहीं जानता है। आत्मतत्त्व के न जानने के कारण ये सब झूठे हैं इसलिये ये एक दूसरे से साथ करते हैं। ये अज्ञानी मनुष्य जिनको आत्मज्ञान रूपी चक्षु नहीं है, वही डींग हांकते हैं कि तुम कुछ नहीं जानते हम ही सब कुछ जानते हैं लेकिन आत्म ज्ञानी सही बात बोलते हैं कि आत्म निग्रह से ही उस तत्त्व का ज्ञान हो सकता है।

कुछ टीकाकारों ने "मुस्काई" का अर्थ हँसी खुशी आदि अर्थ किया है पर विचारणीय बात है कि कबीर साहब अपने को हंस क्यों कहेंगे, तथा उपदेश देंगे तो मुस्करा कर क्यों देंगे। इसलिए उपर्युक्त अर्थ ही समीचीन है।

**प्रौढ़िवादार्थ**—प्रौढ़िवाद के अनुसार यह अर्थ हो सकता है कि सद-

गुरु कहते हैं कि यदि हंस रूपी जिज्ञासु मेरी बात मानेगा तो वह बहुत प्रसन्न हो जायगा। क्योंकि मेरे कहने से उसको आत्मज्ञान या वास्तविकता की जानकारी हो जायगी। एक ही जिज्ञासु नहीं अनेक लोग भव-बन्धन से मुक्त हो जायेंगे।

# रमैनी ४३

## कुसंगति प्रकरण

**जिन्ह जिउ कीन्ह आपु विसवासा। नरक गये ते नरकहिं बासा॥**
**आवत जात न लागे बारा। काल अहेरी सांझ सकारा॥**
**चउदह विद्या पढ़ि समुझावै। अपने मरन की खबरि न पावै॥**

**शब्दार्थ**—जिन्ह–जो। जिउ–जीव, चैतन्य मनुष्य। कीन्ह–किया। आप–निज। आवत–आते। जात–जाते। बारा–दिन, समय। काल–मृत्यु। अहेरी–आखेटक, शिकारी, मृगया। सांझा–सन्ध्या। सकारा–सवेरे, प्रातः। विद्या–ज्ञान। मरन–मृत्यु। खबरि–पता।

**संबंध**—बयालिसवीं रमैनी में अद्वैत दशा का वर्णन है पर उस पर द्वैतवादियों का विश्वास नहीं होता है। परन्तु ज्ञानी मनुष्य उसको सही बताते हैं और कथनी तथा करनी की एकता पर जोर देते हैं।

**भावार्थ**—अब यहाँ यह कहा जा रहा है कि जो लोग उक्त द्वैतवादियों का अर्थात् अनभिज्ञ अपहुँचे व्यक्तियों का विश्वास कर लिये जिनको प्रभु का साक्षात्कार नहीं हुआ जो आत्मज्ञान की अवहेलना कर दिये हैं वे सब मनुष्य नरकगामी हो गये और सदैव उसी नरक में उनका निवास बना रहा। नर्क का अर्थ दुख होता है जो मानवेतर योनियां हैं वे सब नरक स्वरूप मानी गयी हैं। जन्म लेना ही दुख का हेतु है। ऊपर की पंक्ति में कहा जा चुका है कि जिन्हें प्रभु प्राप्ति नहीं हुई वे नरक गये और नरक में ही रहते हैं। नरक स्वरूपी योनियों में आते जाते रहते हैं। कुछ योनियां ऐसी हैं जो दिन में कई-कई बार मरती-जन्मती हैं। इन अज्ञानी प्राणियों को भगवान रवि तनय के पुत्र शिकारी बनकर प्रातः से सायं तक अर्थात्

रात-दिन उक्त आत्म विमुखों को मारते रहते हैं और अपने लोक में ले जाकर अनेक नरकों में भी डालकर दुःख देते हैं। गुरु महराज कहते हैं कि जब तक मनुष्य को आत्मज्ञान नहीं होता है तब तक वह अपनी मृत्यु का समाचार नहीं जान पाता है कि वह कब आयेगी और मुझे कब ले जायेगी। चाहे वह क्यों न चौदह विद्याओं का बड़ा धुरन्धर विद्वान हो और इन चौदह विद्याओं को पढ़कर भले ही लोगों को समझाता हो।

**चौदह विद्यायें**—१. ब्रह्मज्ञान २. रसज्ञान ३. कर्मकाण्ड ४. संगीत ५. व्याकरण ६. ज्योतिष ७. धनुर्विद्या ८. जलतरण ९. न्याय (जिसमें विज्ञान आदि शामिल हैं। १०. कोकविद्या ११. अश्वारोहण १२ नाट्य-विद्या १३. कृषिविद्या १४. वैद्यक (इसी में वेदांग, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, व्याकरण, चार वेद—ऋग्वेद् यजुर्वेद, साम तथा अथर्व-वेद मीमांसा, पुराण, नव्यन्याय एवं वेदान्त) इत्यादि प्रकार की जानकारी होने पर भी यह मनुष्य तब तक कुछ नहीं जानता है जब तक वह परम-तत्त्व की प्राप्ति नहीं कर लेते हैं।

**जाने जीउ को परा अंदेसा। झूठहिं आई कहा संदेसा॥**
**संगति छोड़ि करै असरारा। उबहै मोट नरक कै भारा।**

**शब्दार्थ**—जाने–जिसको। अंदेसा–भ्रम, शोक, चिन्ता, अनिश्चय। परा–पड़ा हुआ। संदेसा–समाचार, संदेश। संगति–साथ। असरारा–वाद-विवाद, हठ, सर-सर, निरन्तर। उबहै–फेके, उलीचे। मोट–भारी, स्थूल, बड़ा, पानी भरने वाली चमड़े की थली जिससे पहले बैलों के द्वारा कूप से पानी खींचा जाता था, मोटरी, गठरी। नरक–दुख, भार, यातना, जन सामान्य के विश्वास के अनुसार अठारह प्रकार के नरक हैं जो एक से एक भयानक हैं।

**भावार्थ**—परमतत्त्व की प्राप्ति के बाद ही ऊपर की पंक्ति में कर्त्तव्य बतलाया गया है परन्तु अज्ञानी लोग उक्त आत्म प्राप्ति वाली बात पर अन्देशा करते हैं। जिन लोगों को मेरे वक्तव्य पर अन्देशा है कि कबीर सही नहीं कह रहे हैं, प्रत्युत वे आकर हम लोगों के सामने झूठी बातों का

सन्देश दे रहे हैं। मेरे प्रति अविश्वास करके मेरी और संतों की संगति छोड़कर असरारा कहिये सदैव वाद-विवाद करते हैं और यह भी हठ के साथ कहते हैं कि मेरी ही बात सत्य है परन्तु वह मनुष्य जो मेरी बात पर विश्वास नहीं कर रहा है वह दुःख रूपी मोटरी सिर पर लादकर जीवन भर भार से लदा रहता है। 'उबहै' कहिये दुःख रूपी मोटरी, नरक स्वरूप दुःख को यावद् जीवन ढ़ोते रहता है।

**विशेष**—इसका यह भी अर्थ है कि जैसे बैल के द्वारा अभी कहीं-कहीं पर 'मोट' से पानी पाताल से खींचकर खेतों में उबहते हैं उसी प्रकार से यह संसारी जीव बहुत कठिनाई के साथ संसार के सुख को प्राप्त करते हैं अर्थात् उनकी जन्म भर की कमाई केवल पुत्र-कलत्र तक ही रह जाती है। कोई परमार्थ नहीं कर पाते हैं। घोर परिश्रम की कमाई जो बहुत दूर से गहरे स्थानों से खींचकर लाते हैं दो चार दिनों में उड़ा-पड़ा देते हैं। यही मोट के समान ऊसर खेत में कमाई रूपी जल को डाल देते हैं।

साखी

**गुरु द्रोही अउ मन मुखी, नारी पुरुख बेविचार।**
**ते नर चउरासी भरमि हैं, जो लो चंद दिवकार॥**

**शब्दार्थ**—गुरुद्रोही–तत्त्वज्ञ गुरु से बैर करना, उसकी बात न मानना। अउ–और एवं अन्य। मन मुखी–किसी की बात न सुनकर अपनी ही कल्पित बात पर विश्वास करना, मूर्ख, हठी, मनमती। नारी–स्त्री। पुरुख–पुरुष, पति। बेविचार–विवेक रहित, विचारहीन। ते–वे सब। चउरासी–चौरासी लाख योनियों में। जो–जब तक। लो–ले। चंद–चन्द्रमा। दिवकार–दिवाकर, सूर्य।

**भावार्थ**—यहाँ पर सद्गुरु कहते हैं कि अज्ञानी मनुष्य इसीलिए दुखी बना हुआ है कि तत्त्वज्ञ सद्गुरु की अवहेलना करता रहता है। यदि कही पर तत्त्वज्ञ गुरु मिलते भी हैं तो उनसे राग-द्वेष भी कर लेता है क्योंकि उनकी बात समझ में नहीं आती है। तत्त्व की बात बहुत गहन और

गम्भीर होती है। उसके लिए अधिकारी चाहिए और वह अधिकारी श्रद्धा समन्वित तथा वेद शास्त्रों का अध्येता भी हो और हमेशा अच्छे कर्मों को करने वाला हो। परन्तु ऐसा न होने पर वह अज्ञानी मनुष्य गुरुदेव की बात न मानकर अपने मन वाली बात करता रहता है। अर्थात् अनेक प्रकार की कलह कल्पनाओं का सृजन करता रहता है इसमें किसी पुरुष या स्त्री की बात नहीं है कोई भी विवेक हीन होगा जिसके पास विचार नहीं होगा वे सब आत्मज्ञान न होने पर सदा चौरासी लाख योनियों में भ्रमते रहेंगे। अर्थात् गुरूद्रोह करने पर तब तक नरक में निवास करेंगे जब तक भगवान भास्कर एवं भगवान चन्द्रदेव आकाश मण्डल में स्थिर रहेंगे। तात्पर्य यह है कि गुरु विमुख मनुष्य चाहे वह स्त्री हो चाहे वह पुरुष हो, वे सबके सब दुःख स्वरूप चौरासी लाख योनियों में घूमते-फिरते रहेंगे। जब तक उनको आत्मज्ञान नहीं होगा और वह आत्मज्ञान गुरु-सेवा से ही सम्भव है।

**विशेष**—जो लोग मिथ्या बातों में विश्वास करते हैं वे लोग सदा जन्म-मरण रूपी नरक में निवास करते हैं और बार-बार योनियाँ बदलती रहती है। सुबह से शाम तक मृत्यु उनके खोज में पड़ी रहती है। वे चाहे बड़े पण्डित हों चाहे मूर्ख हो जब तक प्रभु-प्राप्ति से वंचित है तब तक वे यह नहीं कह सकते कि जन्म-मरण से कब उद्धार होगा? फिर भी शुभ सोचने के बजाय अज्ञानी मनुष्य सही बात का विरोध करता है। अपने मिथ्या सिद्धान्त पर पैर जमाये रहता है जिसके कारण दुख की गठरी जन्म भर ढ़ोते फिरता है। इसलिए कि वह गुरु से सम्पर्क नहीं किया और सत्य असत्य क्या है इसका निर्णय भी नहीं कर सका। परिणाम-स्वरूप सदा जन्म-मरण के चक्र में पड़ा हुआ है और तब तक यह जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहेगा जब तक इसे प्रभु दर्शन या आत्म दर्शन न हो जाय।

# रमैनी ४४

**कबहुं न भयउ संग अउ साथा। ऐसहि जनम गमायउ आछा ॥**
**बहुरि न पैहो ऐसो थाना । साधु संघति तुम नहिं पहिचाना ॥**
**अब तोर होई नरक महं वासा। निसिदिन बसेउ लबारि के पासा ॥**

**शब्दार्थ**—कबहुं–कभी। भयउ–हुआ। अउ–और, एवं। ऐसहि–विकार में, व्यर्थ में, इस प्रकार से। गमायउ–गँवाये, गवाया, बिता दिया। आछा –सुन्दर, उत्तम। बहुरि–पुनः। पैहो–पाओगे। ऐसो–इस प्रकार का। थाना–स्थान। लबारि–झुठाई।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि आत्मज्ञान हीन मनुष्य चौदहों विद्याओं को जानने वाला क्यों न हो, वह यह नहीं जान पाता कि मेरी क्या गति होगी ? हम संसार से कब चल बसेंगे ?

**भावार्थ**—उसी बात को पुनः बल देकर कहा जा रहा है कि कभी भी तूं किसी संत महापुरुष का सत्संग नही किया न उनके साथ रहकर उनकी सेवा कर कुछ ज्ञान ही लिया। ये अज्ञानी मनुष्य ऐसे ही व्यर्थ में अपने अच्छे मनुष्य तन को गवां दिया। अर्थात् कुसंगियों का साथ करते-करते अंत में मृत्यु की चपेट में आ गया। सद्गुरु कहते हैं कि हे मनुष्यों ! यह नर तन रूपी सुन्दर स्थान पुनः तुम लोगों को नहीं मिलेगा क्योंकि इसी नर तन में धर्म, अर्थ काम, मोक्ष की प्राप्ति सम्भव थी, पर तुम उससे वंचित हो रहा। ये धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष साधु-संतों की संगति से मिलने वाला था परन्तु तुम अपने अभिमान के कारण सन्त महापुरूषों की पहचान नहीं कर सका। तुम यावद् जीवन मैं, मेरी करता रह गया। इसलिए अब तेरा निवास भगवान भास्कर के पुत्र के यहाँ होगा और उनके यहाँ वर्णित अनेक नरकों में निवास करेंगे। क्योंकि तुम लोग निश-दिन झूठे लोगों का ही साथ किया और उन्हीं के पास रहकर तद्वत आचरण किया। तू मनुष्य शरीर में अच्छे कर्मों से वंचित रहा इसलिए नरक की

ओर तुम्हारी तैयारी हो गयी है। नरक की ओर अब तुम्हारा जाना निश्चित है।

साखी

**जात सभन कह देखिया। कहैं कबीर पुकार।**
**चेतबा होय तो चेतिले, नहिं तो दिवस परतु है धार ।।**

**शब्दार्थ**—जात–जाते हुए। सभन–सभी। कह–को,। चेतबा–चेतने वाला। दिवस–दिन, परतु–पड़ते हैं। धार–डकैती, लूट, डकैत, बंचक गुरु, काम, क्रोध, लोभ रूपी लुटेरे।

**भावार्थ**—सद्‌गुरु कबीर जोरों से चिल्लाकर जन समूह के सम्मुख कहते हैं कि उक्त सभी कुसंगति वालों को मैंने नरक में जाते हुए देखा है। इसलिए आप सबको सावधान करता हूँ कि आप लोगों को चेतना हो तो चेत लें नहीं तो दिन में ही आपको ले जाने के लिए यम के किंकर डकैत बनकर पहुँच जायेंगे और आप को उठा ले जायेगें। यहाँ दिवस में व्यजंना है जो प्रकाश का सूचक है, प्रकाश मनुष्य तन में ही होता है। मनुष्य तन रूपी दिन में अर्थात् विवेक बुद्धि रहते हुए यदि मनुष्य सावधान नहीं हो जाता है। तो अपने को सावधान नहीं कर लेता है तो सब कुछ रहते हुए काम, क्रोध, लोभ रूपी डकैत तुम्हारे सभी सद्‌गुणों को लूट लेगें।

**विशेष**—कभी अच्छा साथ नहीं किया गया। मानव जन्म बेकार में चला गया, वह पुनः मिलने वाला नहीं है। क्योंकि मिलने का जो साधन था वह साधु-संत जानते थे परन्तु साधु-संत की पहचान नहीं की गयी। वंचक गुरुओं के साथ रह गया। परिणाम यह हुआ कि कुछ हाथ नहीं लगा। पुनः दुःख स्वरूप योनियों की ओर यह जीव चला गया। सद्‌गुरु कबीर संकेत कर रहे हैं कि यदि आप को उक्त नरक के दुःख से बचना है तो शीघ्रातिशीघ्र चेत लीजिए। अन्यथा संसार की कोई भी शक्ति सेना, धन, भाई, बन्धु कोई काम नहीं आयेगें। सबके देखते-देखते दिन दोपहर ही यम के दूत उठा ले जायेगें। ये यम के दूत, लोक के डकैतों

से अधिक शक्तिशाली हैं। क्योंकि लोक के डकैत रात को डाका देते हैं और यम के दूत ऐसे डकैत हैं कि वे जब चाहेगें तब यहां से ले जायेगें।

## रमैनी ४५

### जगत नश्वर प्रकरण

**हरनाकुस रावन गै कंसा । क्रेस्न गये सुर नर मुनि बंसा ॥**
**ब्रह्मा गये मरम नहि जाना । बड़ सभ गये जे रहल सेयाना ॥**
**समुझि न परलि राम की कहानी । निरबक दूध की सरबक पानी ॥**
**रहिगौ पंथ थकित भौ पौना । दसो दिसा उजारि भौ गौना ॥**

**शब्दार्थ**—हरनाकुस–हिरण्यकश्यप। कश्यप एवं दिति के संयोग से उत्पन्न, भारत का एक सम्राट, पुराणों के अनुसार इसका राज्य सतयुग में था।

**रावन**—रावण, लंका का राजा, जिसका वध भगवान श्रीरामचन्द्र ने किया था।

**गै**—महाराजा गय, जो भारत के कभी महान सम्राट थे। कंसा–कंस, मथुरा का राजा, जिसको भगवान कृष्ण ने मारा था। क्रेस्न–श्रीकृष्ण चन्द्र। वंसा–वंशज। ब्रह्मा–सृष्टि करने वाला, मूल पुरुष। परलि–परी। कहानी–कथा। निरबक–केवल, निर्दोष, निरा, एकमात्र, खालिस। सरबक–सही, सत्य, सर्व। रहिगौ–रह गया। पंथ–संसार। थकित–थक गया। पौना–पैर, पवन, स्वरूप, जीवात्मा। उजारि–शून्य, जंगल, विरान। भौ–हो गया। गौना–ग्राम।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा जा चुका है कि दुष्कर्म में लिपटे हुए लोगों को हमने जाते हुए देखा, जिन्हें सत्य की पहचान नहीं थी जिन्होंने सदैव असत्य संसार से ही सम्बन्ध रखा। इसलिए मनुष्यों को सावधान हो जाना चाहिए, अन्यथा परिणाम भयंकर होगा।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं हिरण्यकश्यप, रावण, महाराजा गय

अपने को अजेय समझते थे जो अपनी शक्ति के सामने भगवान यम तक से लड़ने के लिए आमंत्रण भेजते थे जिनका सामना करने के लिए कोई प्रस्तुत नहीं होता था। जिनकी चतुर्दिक् धाक थी जिनके नामों को सुनकर लोग डरते थे। ऐसे लोग इस नश्वर संसार से चले गये। यहीं लोग नहीं जिनको संसार के लोग पूजते हैं, जिन्हें प्रभु का अवतार मानते हैं जिन्होंने बड़े-बड़े सत्कर्म किये, जो दीन-दुखियों की रक्षा किये, जिन्होंने मनुष्य जाति का बहुत बड़ा उपकार किया। जिनका ऋणी संसार जन्म भर रहेगा, जिनका नाम जपकर लोग मुक्त हो जाते हैं। वे भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र जी इस परिवर्तनशील संसार में अर्थात् उनका शरीर इस विवर्त जगत् में नहीं रह पाया। इसी प्रकार से मनुष्य देवता मननशील मुनि, उनके वंश परम्परा के लोग वे सबके सब इस संसार से चले गये। आज किसी का भी शरीर दिखाई नहीं दे रहा है जिन्होंने इस संसार का सर्जन किया, जो लोक पितामह के नाम से जाने जाते हैं आज उन ब्रह्मा का भी शरीर नहीं रहा और वे ब्रह्मा जी भी यह मर्म नहीं जान सके कि यह शरीर क्यों कर तिरोहित हो रहा है। अर्थात् यह मरनेवाला नियम कैसे बन गया ? यही लोग नहीं, इनसे भी जो बड़े-बड़े लोग अपने को सयान, ज्ञानवान कहते थे बुद्धिमान कहते थे, जो दशो-दिशाओं के दिक्पाल थे, वे सब के सब यहाँ से प्रस्थान कर गये। इनमें किसी को भी परमप्रभु परमेश्वर द्वारा की जाने वाली लीला की कहानी समुझ नहीं पड़ी। क्योंकि वे सबको यहाँ से बुला लेते हैं। यहाँ से सबके सब चले गये चाहे वे पूर्णरूप से सत्यवादी रहे हों या सर्व रूप से असत्यवादी रहे हों अर्थात् भले बुरे सब यहाँ से कूच कर गये। जाने वाला पंथ जिस मार्ग के द्वारा सब जा रहे हैं वह मृत्यु रूपी पंथ आज भी विद्यमान है। आज भी लोग मरते जा रहे हैं और जो पवन रूपी जीव था वह मरते-मरते अर्थात् मृत्यु के पंथ पर चलते-चलते थक गया। कभी भी स्थिर नहीं रहा। जब यह प्राणवायु जीवात्मा शरीर छोड़कर चला जाता है, तब शरीर रूपी ग्राम की दसों इन्द्रिय रूपी दिशायें शून्य पड़ जाती हैं अर्थात्

विरान पड़ जाती है। फिर उनके निकट कोई नहीं जाता। फिर मरने के उपरान्त उनसे कोई सम्बन्ध नहीं रखता।

**मीन जाल भौ ई संसारा। लोह के नाउ पखान के भारा ॥**
**खेवै सभै मरम हम जानी। तइयो कहै रहै उतरानी ॥**

**शब्दार्थ**—मीन–मछली। जाल–मत्स्य फँसाने का जाल। भौ–हुआ। ई–यह। लोह–अयस्, लोहा। नाउ–नौका। पखान–पाषाण, पत्थर। भारा–गुरुत्व, वोजन। खेवैं–नौका खेने की क्रिया। हम–मैं। तइयो–तब भी। उतरानी–पार करने वाली, मजदूरी, पारतोषिक या ऊपर रहनेवाली।

**भावार्थ**—क्योंकि यह संसार मछली फँसाने वाले जाल के समान हो गया है, जो सागर के समान दीखता है। सभो मनुष्य सभी प्रकार के मोह-ममता रूपी जाल में फँसे हुए हैं। पारिवारिक सम्बन्ध स्वर्गीय सुख की जो आशायें हैं ये सब जाल के समान हैं और फँसाने वाला मन धीवर है। ये सारे इन्द्रियों को बहिरंग बनाये रहता है और इस सागर रूपी संसार से पार होने के लिए अनेक सकाम कर्म रूपी लोह की नाव बनाया है। दुष्कर्म रूपी पत्थर का भार उस नाव पर रखा है। तात्पर्य यह कि लोहे की नाव है और अज्ञान से भरा हुआ जोवन है, तब भी मुक्ति की कामना कर रहा है। भला यह सम्भव हो सकता है कि नाव पर बैठ कर पार हो जायेगा। यह भी कहता है हम जितने सकाम कर्मी हैं वे सब नाव खेने की क्रिया जानते हैं। जिससे सभी को पार उतार देगें, क्योंकि हम जाने के मार्ग को जानते हैं। जो हमारे सम्प्रदाय विशेष के हैं उनको हम पार उतार देगें और जो लोग हमारी आज्ञा रूपी अर्थात् मेरे कहे हुए पर नहीं चलेंगे तो वे संसार सागर से पार नहीं हो सकेंगे। वे सकाम कर्मी यह भी कहते हैं कि हम कोई भी दुष्कर्म भले ही करें किन्तु मेरे सत्कर्मों के कारण मेरी कोई हानि होने वाली नहीं है। घोर पाप करते हैं जिससे शरीर रूपी नाव को डूब जानी चाहिए पर ये अज्ञानी मनुष्य कहते हैं कि नहीं-नहीं मेरी नाव उतरानी कहिये ऊपर-

ऊपर है। अर्थात् जल में डूबी नहीं है। अब हम तुरन्त पार लग जायेंगे। ये संसार के धर्म-पथिक, धर्माचार्य लोग अपनी बात के आगे किसी की बात मानने को प्रस्तुत नहीं है।

साखी

**मछरी मुख जस केचुवा, मुसवन मंह गिरदान।**
**सरफन मांहि गहेजुआ, ऐसो जात देखी सभन की जान॥**

**शब्दार्थ**—जस–जैसे। केचुवा–एक जमीन का बरसाती कीड़ा जो सर्प के आकार का होता है जिससे बच्चे डरते हैं, मछली मारने वाले वंशी के मुख में केचुए के कुछ भाग को लगाकर मछलियाँ फँसाते हैं। मुसवन–(बहुवचन) चूहे मूसकों के लिए। मंह–में। गिरदान–गिरगीट। सरफन–सर्पों के लिए। माहि–में। गहेजुआ–छछुन्दर। जान–प्राण।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि इस संसार के लोग बड़े चतुर हैं। उनकी चतुराई से कोई पार पाने वाला नहीं है परन्तु हमारे देखते-देखते इतने भयंकर प्राणलेवा यंत्र में फँसे हैं जिनका बचना कठिन है जैसे मछली फँसाने वाला वंशी में केचुआ को गूँथकर जल में फेकता है और मत्स्य भोजन के लोभ में वंशी सहित केचुए को निगल जाता है। मच्छ शिकारी यह जानकर की मछली फँस गयी है जल से बाहर निकाल कर अपने पास रख लेता है। जैसे चूहे, गिरगिट को अपना सजातीय जानकर प्रेम करने की इच्छा से उसके पास जाते हैं और गिरगिट इतना विषैला होता है कि इसके छूने मात्र से चूहे मर जाते हैं। इसी प्रकार लोक में सर्प छछुन्दर की बात सुनी जाती है। सर्प छछुन्दर को अपना भोज्य समझ कर पकड़ लेता है, परन्तु छछुन्दर में ऐसे विरोधी विष होता है कि छूते ही सर्प अन्धा हो जाता है और यदि सर्प, छछुन्दर को खा ले तो मर भी जाता है। तात्पर्य यह कि संसार का सुख इतना लुभावना है कि मछली रूपी प्राणी उसको सुख समझकर उपभोग करने के लिए ग्रहण करता है पर न तो सुख मिलता है न तो सन्तुष्टि होती है। इसी प्रकार नीचे का भी उदाहरण है कि संसार का सुख गिरदान के समान है इसके उपभोग से कोई बच नहीं सकता है। पश्चात् में जब यह अनुभव होता

है कि उक्त सुख, दुख का हेतु है तो छोड़ना चाहता है। परन्तु जब छछुन्दर रूपी पुत्र-कलत्र को छू लिया, अर्थात् उनको अपना मान लिया तब यह जान लेने पर भी कि ये अपने नहीं हैं फिर भी अविद्या बस छोड़ नहीं पाता है। यदि छोड़ भी देता है तो भी अहर्निश उसी परिवार और संसार के सुख में मन लगाया रहता है। कहीं साधु, संन्यासी होने पर भी उससे छूट नहीं पाता। यदि संसार का सम्बन्ध नहीं छोड़ता है तो ऐसे ही अकारण मर जाता है। इसी प्रकार इस संसार में अर्थात् लोक-सुख में फंस जाने पर वैसे ही नहीं छूट पाता जैसे मछली, मूस और सर्प।

सद्गुरु कहते हैं कि हम इन कथक्कड़ो ज्ञानियों को जो वेद-शास्त्र एवं ज्ञान-विज्ञान पढ़ कर बड़ी-बड़ी, लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं और जब तक निरोग रहते हैं तब तक कोई ईश्वर परमात्मा उनके सामने नहीं होता है और ब्रह्म ज्ञान की बातें करते रहते हैं। दूसरी तरफ उक्त लौकिक सुख में चित्त को फँसाये रहते हैं कोई टोकता है तो कहते हैं हम तो कमलवत् संसार में रहते हैं वा इन्द्रियाँ संसार का सुख भोगती हैं हम तो असंग हैं। साहब कहते हैं हम तो इसी प्रकार से इन लोगों को नरक में जाते देखा है जैसे मछली आदि के जान गये हैं। संसार में सुख भोगने के कारण नरक जाते देखा है।

**विशेष**—संसार में किसी का अस्तितव सदैव रहने वाला नहीं है जो भी देव, दनुज, नर, नाग, जन्म लेते हैं वे सब यहाँ से चले जाते हैं यहाँ से जाने वाली राम कहानी बड़ी विलक्षण है। सभी अच्छे-बुरे चले जाते हैं पर जाने वाला पंथ अर्थात् जन्म-मरण रूपी पंथ थकता नहीं है, परन्तु उस पर चलने वाले के पैर दुख जाते हैं। इस संसार से जो चला जाता है वह जंगल के समान शून्य हो जाता है। उसका नाम लेने वाला कोई नहीं रहता है। कुछ दिन में लोग उसे भूल जाते हैं। जिस प्रकार मछली जाल में फँस जाती है। लोहे की नाव पर पत्थर का भार रख देने से डूब जाता है। उसी प्रकार से संसारी मनुष्य भी अपने अज्ञान के क़ारण सदा आते-ज़ाते रहते हैं। आने-जाने वाली क्रिया समाप्त नहीं

होती है और वह असंयमी पुरुष घबड़ा जाता है। अन्त में बंचक गुरुओं के उपदेश के अनुसार सन्तोष कर लेता है कि अब हम संसार-सागर से पार हो जायेंगे।

सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि तुम कदापि पार नहीं होगे। तुम मछली, केचुआ, सर्प जैसे विषय भोगों में फँस गये हो। जैसे इन सबों की जान अल्प सुख कामना के कारण चली जाती है उसी प्रकार से मैं तुम सभी को नरक जाने की तैयारी में देखता हूँ। इससे तभी बच सकते हो जब सच्चे सन्त सद्‌गुरु की शरण में जाओगे, वही तुमको सच्चा रास्ता बतायेंगे। व बता सकते हैं।

विष्णु धर्मोत्तर पु० खं० १ अ० ५३। हिरण्याक्ष के बध की कथा है। लिङ्गपुराण अ० ९४ में भी अन्य रूप से है और यहाँ पु० उ० खं० अ० २४७ में भो यह कथा है। तथा म० भा० सा० अ० २०९ में कुछ भेदयुक्त है कि अदिति और दिति दोनों कश्यप जी की पत्नी थी अदिति ने इंद्रादि देवों को उत्पन्न किया, और दिति ने हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष दो भयंकर पुत्रों को उत्पन्न किया। फिर ब्रह्मा जी देवों के राजा इन्द्र को बनाया, और दानवों के राजा हिरण्याक्ष को बनाया। इन्द्र को स्वर्ग दिया और हिरण्याक्ष को पाताल दिया, बाद में पक्ष रहने के कारण पर्वत सब पृथ्वी को छोड़कर आकाश में ही भावी वश उड़ने लगे, जिससे पृथ्वी हिलने लगी और पाताल जल से भर गया। फिर हिरण्याक्ष युद्ध करके स्वर्ग को दखल किया। तब देव सब विष्णु के शरण में गये। देवासुर से अजेता वर हिरण्याक्ष को मिला था। इससे भगवान को वराह रूप धर कर दैत्यसभा में जाना पड़ा और वहाँ जाकर सब दैत्यों को चक्र से मारना पड़ा, जिससे हिरण्याक्ष का मरण हुआ।

श्रीमद्‌भागवत स्कन्ध ३ अ० १२ आदि में कथा है कि ब्रह्मा जी मनु को स्मृति करके उत्पन्न कर सृष्टि करने के लिए आज्ञा दिये, आज्ञा को स्वीकार करके कहा सब प्राणी का आधार पृथ्वी जल में डूबी है इसे ऊपर करने के लिए यत्न किया जाय तो सृष्टि हो सकती है इस बात

को सुन कर और पृथ्वी को जल में डूबी देखकर ब्रह्मा जी सोचने लगे कि क्या करना चाहिए और ध्यान किये कि जिसके हृदय से मैं हुआ हूँ वह ईश्वर इस कार्य को सिद्ध करें इस प्रकार ध्यान करते हुए ब्रह्मा जी की नासिका से अंगुष्ठाग्र मात्र का एक वराह निकला और वह देखते-देखते हस्ती के समान हो गया। ब्रह्मा और सब ऋषि चकित हुए कि यह क्या है? फिर भगवान को समझ कर सब स्तुति किये, तब भगवान जल में पैठे। वहाँ से पृथ्वी को लाने पर हिरण्याक्ष युद्ध किया, और मारा गया इत्यादि।

लिंग पु० अ० ९४ में कथा है कि अंधका सुर के पिता हिरण्याक्ष ने देवताओं को जीत कर इस पृथ्वी को रसातल में बन्दी किया था। उस दैत्य से पीड़ित ब्रह्मादि देव विष्णु भगवान् के पास जाकर समाचार सुनाये। भगवान विष्णु ने दैत्यों के सहित हिरण्याक्ष को मार कर वराह रूप से भूमि लाये। रावण को श्रीरामचन्द्र मारे सो अति प्रसिद्ध कथा है। कंस को श्री कृष्ण जी ने मारा है।

## रमैनी ४६

**बिनसे नाग गरुड़ गलि जाई। विनसे कपटी अउ सत भाई ॥**
**बिनसे पाप पुन्नि जिन्ह कीन्हा। बिनसे गुन निरगुन जिन्ह चींहा॥**
**बिनसे अगिन पौन अउ पानी। बिनसे सिस्टि कहां लउ गनी॥**
**वेस्तु लोक बिनसे छिन माहिं। हौं देखा परलै की छाहीं ॥**

**शब्दार्थ**—विनसे–नष्ट हो गये। नाग–शेषनाग, नाग वंशीय क्षत्रिय, गरुड़–एक पक्षी की जाति जो भगवान विष्णु की सवारी के काम आते हैं। एक क्षत्रिय जाति जिनका शासन कभी इस देश पर था। गलि–नष्ट, नाश को प्राप्त हुए। कपटी–दुर्योधन का मामा शकुनी, छल करने वाला। अउ–और। सत भाई–सत्य बोलने वाला, सौ भाई दुर्योधन आदि। पाप–पाप करने वाले, पुन्नि–पुण्य करने वाले। गुन–सगुणोपासक। निरगुन–निर्गुणोपासक। गनि–गिनती। छिन माही–पलभर में, पलक, मारते–मारते। हौं–मैं। परले प्रलय काल में। छाहीं–तेज, अग्नि, ओट, प्रभाव।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा जा चुका है कि बड़े-बड़े अच्छे-बुरे दिग्गज चले गये और संसार में जो आसक्त हैं, वे मुक्त नहीं हो सकते। उनकी दुर्दशा भी दिखाई गयी है।

**भावार्थ**—इसके पहले प्रायः मनुष्य लोक के बड़े लोगों को जाने की बात कही गयी। अब उस दिव्य लोक में रहने वाले को भी जाने की बात कही जा रही है। शेषनाग जो तीनों लोकों के भार को ग्रहण किये हुए हैं, वे सदा रहने वाले नहीं हैं। उनके परम शत्रु भगवान विष्णु के वाहन श्री गरुड़ जी भी रहने वाले नहीं हैं। प्रश्न आता है कि गरुड़ तो भगवान विष्णु के समीप रहने वाले थे। उनको सदा अमर रहना चाहिए था परन्तु ये दिव्यदेहधारी नाग और गरुड़ भी आज देखने को नहीं मिलते। यह बात नहीं कि जो सीधा सादा पुण्यात्मा था उसी का विनाश हुआ है। बहुत बड़ा कपटी दुर्योधन का मामा शकुनी जो द्यूत क्रीड़ा में बहुत दक्ष था, जिसने जुआ के खेलों में पाण्डवों को राज्य से च्युत कर दिया था। उसके सब भानजे भी जो बहुत चतुर एवं शूर-वीर थे, वे दुर्योधन आदि भी इस असार संसार में नहीं रहने पाये एवं जो बहुत कपटी कहिये चतुर थे काल से बचने के लिए अनेक प्रकार के उपाय किये और अपने को सत्य वक्ता कहते थे। जो सत्य प्रिय थे उन्हे भी काल के गाल में जाना पड़ा। इसी प्रकार जो पाप कर्मी थे जो हिंसा, चोरी, डकैती में लगे रहते थे, जो निर्दयता के साथ दूसरों का प्राण ले लेते थे। जो दूसरों की बहू बेटियों को छीन लेते थे व छीन लेते हैं। जो दूसरों के स्वत्व का अपहरण कर लेते हैं, जो अपने छल–छद्म से दूसरों को सदा गिराने में ही लगे रहते हैं। जो अनेक प्रकार से ठग कर धन बटोरते हैं। जो बड़े-बड़े पूंजीवादी हैं वे लोग और वे पुण्यात्मा जो सदा परोपकार में लगे रहे जो भूलकर भी कोई पाप नहीं किये जो सदा धर्म के ही काम में लगे रहे वे भी इस जगत् में नहीं रह पाये। वे भी नहीं रहे जो भगवान विष्णु के सगुण स्वरूप के उपासक थे, जो अनेक देव-देवियों के उपासक थे और अनेक लोकों में जाने के लिए कमर कसे हुए थे। इनके अतिरिक्त जो निर्गुणवादी थे जो भगवान के

सच्चिद स्वरूप का सदा चिन्तन करते रहे जो कहते रहे कि हम किसी भी प्रतिमा की पूजा नहीं करते। हम अपनी आत्मा के अतिरिक्त किसी देवी देवता को नहीं मानते एवं इस जीव से भिन्न कोई दूसरा भिन्न ब्रह्म परमात्मा नहीं है। वे सज्जन लोग भी इस भूतल पर सदा दिखाई नहीं देते हैं। उनको भी यहाँ से कूच करना पड़ता है। यह जो अग्नि है जो समस्त भूतों को भस्म करने में समर्थ है, जिसके तेज को कोई नहीं सह सकता, जो वैश्वानर के नाम से विख्यात है और यह जो पवन देवता है जो अपने तेज एवं पराक्रम से सारे संसार को नष्ट कर देता है। यह जो जल है जो सारे पृथ्वी को अपने अन्दर समावर्त कर लेता है अर्थात् इन तीनों के अधिष्ठाता देव जो महान् सत्ता वाले थे वे भी सदा रहने वाले नहीं हैं ये ही नहीं उस कार्य ब्रह्म भगवान विष्णु के लोक को भी क्षण मात्र में विनाश होते देखा गया है। हम ज्ञानी पुरुष एवं योगी जन, आत्म द्रष्टा ऋषि, प्रलय की कालाग्नि में इन सभी लोकों को नष्ट होते हुए देखे हैं। क्योंकि यह ब्रह्माण्ड माया की रचनाओं से रचा गया है और इस माया के कोई भी कार्य स्थिर रहने वाले नहीं हैं।

साखी

**मच्छ रूप माया भई, जौरहिं खेले अहेर।**
**हरि हर ब्रह्मा नहि उबरे, सुर नर मुनि केहि केर ॥**

**शब्दार्थ**—मच्छ–मछली, भगवान विष्णु का एक अवतार जो प्रलय काल में मनुष्यों को बचाया था, तथा शंखासुर को मार कर वेदों का उद्धार किया था। माया–संसार के प्राणी, प्रभु की शक्ति, प्रकृति, मोह, जाल, जौरहिं–यमराज, सार्थहि, साथ में ही। खेले–क्रीडा। अहेर–मृगया, शिकार, हरि–कार्य ब्रह्म। हर–कार्य ब्रह्म। ब्रह्मा–कार्यब्रह्म, देव विशेष। उबरे–बचे। केहि–किस। केर–के।

**भावार्थ**—क्योंकि जो प्रभु की माया है वह मच्छ अवतार के समान शक्तिशाली है जो देह धारियों के साथ रहकर उसका शिकार करती है, वह अतिसूक्ष्म है। इसलिए उसको कोई देख नहीं पाता। वह प्रभु की माया

ऊपर वाले देवता मनुष्य लोकों तक ही नहीं निगली है वह प्रचण्ड प्रलय काल के समय में एवं आयु बीतने पर हरि हर ब्रह्मादि देव जो विशेष हैं, उस परमप्रभु की माया के चक्र से नहीं बच सकें अर्थात् ये तीनों प्रभुगण भी नहीं दिखाई दे रहे हैं। भला बताओं इतने बड़े-बड़े शक्तिशाली जो प्रगट होकर संसार का संचालन करते रहे, जिनको प्रभु ने स्वयं प्रगट किया था उन देह धारी तीनों मूर्तियों का भी सदैव रहना सम्भव नहीं रहा, तब भला ये सुर, साधारण देवगण, वे मुनि जो मनुष्य कोटि में आते हैं, नर जो मनुष्य हैं इनकी कौन गणना कर सकता है? इनकी आयु तो विल्कुल अल्प होती है। ये सुर, नर, मुनि तो उन देह धारी देवताओं के एक दिन में कई-कई बार मरते-जन्मते रहते हैं। हे अज्ञानी मनुष्य! तूं किसी के मरने पर क्यों रोता कल्पता है। यह सारा जगत नाशवान है।

**विशेष**—अज्ञान के कारण नाग वंशी एवं गरुड़ वंशी क्षत्रिय भी आपस में लड़ मरे, जो बड़े शूर वीर कहे जाते थे। इसी प्रकार बहुत चतुर शकुनी एवं सौ भाई दुर्योधन भी अपनी दुर्बुद्धि के कारण नष्ट हो गये। इस नाशवान जगत् में पाप-पुण्य करने वाले या जो सगुण-निर्गुण का ज्ञान रखते थे, शास्त्र बल के द्वारा जो दूसरे का मुख बन्द कर देते थे, वे सब भी काल कवलित हो गये। जो भी यह भूत भौतिक सृष्टि लोक लोकान्तर में हैं, प्रलय काल में क्षण मात्र में परमप्रभु अपनी शक्ति के द्वारा सबको पराभूत कर देता है। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि संसार के झूठे धन, जन, विद्या, बुद्धि, शक्ति का प्रदर्शन या अभिमान छोड़कर प्रभु का सुमिरन करें। सभी प्राणियों पर दया रखें। मद्य-मांस का त्याग करें। चोरी आदि जितने भी दुष्कृत्य हैं उनका त्याग कर परम तत्त्व का चिन्तन करें।

साखी

**रौढ़िवादार्थ**—इस संसार के प्राणी मत्स्य स्वरूप हैं और इन प्राणी रूपी मछलियों को मारने वाला शिकारी यमराज शिकार करता है। वह यमराज केवल मनुष्य लोक के जीवों को ही शिकार नहीं बनाता, वह

बड़ी-बड़ी शक्तियों का भी अहेर करता है। जिसमें भगवान् विष्णु, भगवान् शंकर, पितामह ब्रह्मा भी प्रलय काल आदि में नहीं उबर पाते। जब इन बड़े-बड़े लोगों को भी यम धर दबोचता है तो फिर इन छोटे-छोटे सुर, नर, मुनि की क्या गणना की जाय ? तात्पर्य यह कि कोई भी शरीर धारी प्राणी जो कभी शरीर धारण कर लिए उन्हें एक न एक दिन संसार से जाना होता है। साहब कहते हैं कि हे मनुष्यों ? मरने वालों के लिए क्यों चिन्ता करते हो, संसार का काम ही मरना है। इसलिए सब विहाय परमप्रभु का भजन करो।

## रमैनी ४७

**जरा सिंघु सिसुपाल संहारा। सहसार्जुन छल सो मारा ॥**
**बड़ छल रावन सो गौ बीती। लंका रहल कंचन की भीती ॥**
**जुरजोधन अभिमाने गयऊ। पंडो केर मरम नहिं पयऊ ॥**

**शब्दार्थ**—जरासिंधु–जरासंध, जो वर्तमान बिहार प्रदेश के राजगीर का राजा था। इसके अलग–अलग दो भागों को जरा नाम की राक्षसी ने सटाकर बनाया था जिससे उसका नाम जरासंध पड़ा। सिसुपाल–यादवेश, चेदि देश का शासक, भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र का फूफेरा भाई, एक मण्डलिक राजा। संहारा–नाश किया। सहसार्जुन–एक दैह्य वंशी, क्षत्रिय राजा, जो परशुराम के यजमान थे बाद में पुरोहित एवं यजमान से मतभेद हो गया जो संघर्ष हो जाने से मारा गया। रावन–लंका का राजा। बीती–बीत गयो। भीती–भित्ति, दीवार, भवन। जुरजोधन–दुर्योधन, (धृतराष्ट्र का पुत्र)।

**सम्बन्ध**—पहले सद्गुरु के द्वारा प्रतापी राजाओं आदि को जाने की बात कही गयी, पुनः जो ईश्वरीय शक्ति सम्पन्न लोग थे उनको भी चले जाने की बात कही गयी और साथ ही दृश्य जगत भी अन्तर्ध्यान हो गया। अब लोक के उन राज राजेश्वरों को जाने की बात कही जा रही है जिनका गुणगान आज तक किसी न किसी रूप में चला आ रहा है।

**भावार्थ**—उपर्युक्त प्रकार से ही राजगृह के राजा जरासंध भी भीम के द्वारा मारा गया। इसी प्रकार से शिशुपाल भी भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा बहुत अपमान करने पर मारा गया और सहस्रार्जुन भी छल से भगवान परशुराम के संघर्ष में मारा गया। बहुत बड़े प्रतापी लंका के महाराज रावण भी समाप्त हो गये, जिनके भवन की भित्तियाँ सोने की बनी थी, जिनकी गाथा संसार के लोग आज भी गाते आ रहे हैं। इसी प्रकार से युवराज दुर्योधन भी अति अभिमान के कारण इस धरा-धाम से चला गया और अपनी शक्ति के सामने यह नहीं समझ पाया कि युधिष्ठिर आदि पाण्डवों के पास कितनी बड़ी शक्ति है, जिनके रक्षक भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र स्वयं हैं। वे हमसे बली नहीं हैं ऐसा समझ कर पाण्डवों से संघर्ष कर दुर्योधन भी नाश को प्राप्त हो गया। इसी प्रकार से संसार के अनेक प्रतापी लोग मारे गये।

**माया के डिंभ गयल सभ राजा। उत्तिम मधिम बाजन बाजा॥**
**छव चकवे विति धरनी समाना। एकौ जीउ प्रतीत न आना॥**
**कह लौं कहो अचेतहिं गयऊ। चेत अचेत झगरा इक भयउ॥**

**शब्दार्थ**—माया–प्रकृति, धन-सम्पत्ति, संसार। डिंभ–अहंकार में, बालक, अज्ञानी मनुष्य। उत्तिम–श्रेष्ठ। मधिम–मध्यवर्गीय। बाजन–बाजा। छव चकवे–छः चक्रवर्ती राजा, वेनु, बलि, कंस, दुर्योधन, पृथु, विक्रम, दूसरी रीति से हरिश्चन्द्र, मनु, मान्धाता, हरिद्रुम्न, जरासंध, त्रिविक्रम। विति–समाप्त होकर। एकौ–एक भी। आना–आया। लौं–लग।

**भावार्थ**—साहब कहते हैं कि उक्त ये राज राजेश्वर ईश्वरीय शक्ति के बालक हैं, अर्थात् माया जनित ऐश्वर्य के अभिमान में विचूर्ण होकर सभी ये राजे चले गये अर्थात् समाप्त हो गये। इनमें जो जैसा रहा उत्तम मध्यम उनके काल में अथवा आज भी उनकी छोटी बड़ी कीर्ति गाई जा रही है। उनके जन्म दिन पर उनके वंश वाले बाजा-गाजा बजाकर उनकी तिथियाँ मनाते हैं, परन्तु ये चक्रवर्ती राजे इसी पृथ्वी में समा गये उनमें से आज देखने को कोई भी नहीं मिल रहा है परन्तु ये सब होते

हुए भी संसार का एक भी प्राणी यह विश्वास नहीं कर रहा है कि हमको भी इस भूतल से जाना है। ये संसार के लोग देख चुके हैं और देख रहे हैं कि सभी चले गये और चले जा रहे हैं। फिर भी मोह माया से विरत नहीं हो रहे हैं। मैं कहाँ तक कहूँ बहुत लोग बिना चेते ही चले गये, समाप्त हो गये, अपने को बचा नहीं सके। माया के सभी पुत्र आज एक भी नहीं दिखाई दे रहे हैं। इसमें अब एक प्रकार का झगड़ा दिखायी दे रहा है, कोई कहता है ये राजे-महराजे बहुत दान-पुण्य किये थे, बहुत यज्ञ-याग किये थे आज भी उनका नाम आदर के साथ लिया जाता है। इसलिए ये चेते हुए थे जैसे हरिश्चन्द्र आदि। बहुत लोग कहते हैं कि ये लोग अचेत ही चले गये जो इस पृथ्वी तल पर कोई शुभ कर्म नहीं किये जैसे रावण, कंस, शिशुपाल आदि अर्थात् चेत-अचेत का झगड़ा यह भी है कि कोई निष्काम कर्म करके आत्म तत्त्व में लीन हो गया, प्रभु-भजन कर मुक्त हो गया, इसलिए उसके लिए क्या चिन्ता है? अचेत वह है जो भगवान की भक्ति नहीं की, गुरु की सेवा नहीं की, जो संसार में सदा उन्मत्त होकर अनेक परेशानियाँ उत्पन्न किया, किसी को अपने सामने चलने नहीं दी वह अचेत है, वह मुक्त नहीं हुआ। यह चेत-अचेत का झगड़ा आदि काल से चला आ रहा है।

साखी

**ई माया जग मोहिनी, मोहिन सभ जग झारि।**
**हरिचन्द सत्त के कारने, घर-घर सोग बिकाय॥**

**शब्दार्थ**—मोहिनी—मोहने वाली। जग—प्राणी समूह। मोहिन—मोहा। झारि—समस्त। हरिचन्द—हरिश्चन्द्र, अयोध्या के राजा, त्रिशंकु के पुत्र। सत्त—सत्य, सच्चाई। कारने—लिए। सोग—शोकाकुल, शोक वाला होकर बिकाय—बिकने के लिए।

**भावार्थ**—उक्त पंक्तियों में माया के द्वारा सबका संहार दिखाया गया है, अब साखी में सद्गुरु कहते हैं कि जो प्रभु की माया है वह सारे संसार को मोहे हुए है, अर्थात् संसार के सभी प्राणी उसी माया के सुख को चाह रहे हैं जो नाश का हेतु है। इसलिए वह माया भी सम्पूर्ण जगत को अपने

वश में किए हुए है, सम्पूर्ण जगत उसके मोह से बंधा हुआ है। ये सब मान-सम्मान, ऊँच-नीच, स्त्री-पुत्र, धन, माया के ही रुप हैं। इन्ही में लोग लगे हुए हैं। सम्पूर्ण प्राणियों को वह अपने में फंसाये हुए है, परन्तु जो जिज्ञासु भक्त इस जग की माया से अलग होना चाहता है उसे अनेक संकटों का सामना करना पड़ता है, अनेक विपत्तियाँ उसे घेरे रहती हैं। जैसे सत्य के जिज्ञासु सम्राट हरिश्चन्द्र ने माया के द्वारा बहुत सताये जाने पर अपने सत्य को बचाने के लिए दर-दर की ठोकरें खायी। सत्यवादियों को संसार की माया बहुत सताती है। इसलिए सत्य पर चलना बड़ा दुस्तर हो जाता है, परन्तु मनुष्यों को चाहिए कि सत्य न छोड़े क्योंकि सम्राट हरिश्चन्द्र सत्य के चलते सारा राज-पाट छोड़ कर चल दिये। यहाँ तक कि परम मनोरमा स्त्री, इकलौता पुत्र रोहित को भी घूम कर नहीं देखे, कि ये हमारे हैं। ये हरिश्चन्द्र वास्तविक आत्मज्ञानो थे, उनको आत्म ज्ञान के लिए बहुत बड़ा संघर्ष करना पड़ा।

**विशेष**—साधक हरिश्चन्द्र का मन विश्वामित्र था जो ऋषि के रुप में उपलक्षित किया गया है यहाँ पर उपलक्षणा वृत्ति है जो इन्द्रियों का बोधक है। इन्द्रियों का बहाव सदा अनात्म पदार्थों की ओर होता है। साधक हरिश्चन्द्र चेतन जिज्ञासु है, स्त्रो सात्विक वृत्ति निर्वीज सविकल्प समाधि है, रोहित उत्पन्न पुत्र ऋद्धि-सिद्धि का द्योतक है, साधक हरिश्चन्द्र आत्मा की वास्तविकता को जान गया था इसलिए न उसने इन्द्रियों की एक भी सुनो न इन्द्रियों के भोगों को भोगा, जो सात्विक गुण वाली वृत्ति है जिसमें अल्पकालिक शान्ति मिलती है उसका भी त्याग किया। जो लोक परलोक के सुख के लिए ऋद्धि-सिद्धि के लिए पुत्र रोहित था उसका भी वहिष्कार कर दिया। जो गंगा स्वरूपी सुषुम्ना नाड़ी थी जिसके तट पर मूलाधार रुपी डोम राजा का घर था जो भाग अस्पृश्य माना जाता है जहाँ से मल-त्याग होता है, यहाँ पर इसलिए मूलाधार को डोम की संज्ञा दी गई है। वह साधक हरिश्चन्द्र सब कुछ छोड़कर सबसे पहले मनोवृत्ति को एकाग्र कर मूलाधार स्थित चक्र को जगाया। इसके

बाद स्वाधिष्ठान चक्र को जगाया, इसके बाद ध्यान कर मणिपूरक चक्र को जगाया, वहाँ से वृत्ति को अनाहत चक्र में ले गया। अनाहत चक्र के बाद वृत्ति को विशुद्ध चक्र में ले गया, पुनः आज्ञा चक्र तक कुण्डलिनी के साथ साधक हरिश्चन्द्र पहुँच गया। पुनरपि साधक शक्ति को जगाते हुए ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचा जिसको भँवर गुफा भी कहते हैं। भँवर गुफा को पार करते हुए सहस्रार में पहुँचा, जहाँ वृत्ति को रोक दिया। वहाँ न रात है न दिन है यहीं सत्य का निवास है अर्थात् अपना जो मूल स्वरुप है वहाँ पर जा कर लय हो गया। निर्विकल्पक समाधि लग गई और सदा-सदा के लिए अनन्त चिदाकाश में लय हो गया।

जरासन्ध की कथा महाभारत समापर्व अ० १७ में है कि—राजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का विचार हुआ था, उसमें जरासन्ध के विरोध का भय था। उसके नाश से ही निर्विघ्न यज्ञ हो सकता था। इसी प्रसंग में भगवान कृष्ण से युधिष्ठिर ने प्रश्न किये कि जरासंध कैसा और कौन है भगवान बोले कि, वृहद्रथ बड़ा प्रतापी राजा थे, काशीराज की दो लड़की के साथ विवाह किये और दोनों में तुल्य वर्ताव का नियम किये, परन्तु बहुत यज्ञ करने पर भी पुत्र नहीं हुआ। एक दिन काक्षीवान गौतम के पुत्र चण्डकौशिक मुनि वहाँ आये। पत्नी सहित राजा ने सेवा करके मुनि को प्रसन्न किया। मुनि राजा से वर माँगने के लिए बोले तब राजा, पुत्र के लिए संकेत किये। राजा की बात सुनकर ऋषि आम के नीचे ध्यानस्थ हुए। फिर उनके गोद में रस से पूर्ण एक फल गिरा, उस आम फल को अभिमन्त्रित करके राजा को दिये और कहे तेरा कार्य सिद्ध होगा। राजा दोनों रानी को आम दिया, फिर काट कर दोनों आम खाई, और गर्भवती हुई उसके बाद एक-एक नाक, आँख, हाथ, और पैर वाला दोनों को दो खण्ड रूप सप्राण हुए। दोनों रानी देखकर भयभीत हुई और दासी के द्वारा कपड़े से ढ़क कर बाहर रखवा दिया। उसी समय जरा नामक राक्षसी मांस की इच्छा से आई दोनों खण्डों को जोड़ दिया, तब जुट कर लड़का हो गया, और रोने लगा, फिर लोग

पहुँचे और जरा ने भी राजा को लड़का समर्पण किया इसी से वह जरासन्ध कहलाता है और प्रतापी हुआ और माता-पिता के मरने पर सब राजाओं को पराजित किया है।

परस्पर विचार करके, भीम अर्जुन को साथ लेकर भगवान जरासन्ध के नगर के पास गये। फिर सन्यासी का भेष धारण कर तीनों राजा के पास पहुँचे, राजा देख कर सत्कार किया, फिर रहने के लिए जगह देकर, अर्द्धरात्रि में इन लोगों के पास पहुँचा, और रूप देख कर कहा कि आप सब कौन हैं, किस प्रयोजन से आये हैं सन्यासी तो नहीं मालूम होते हैं, वे दोनों भाई मौन रहे, परन्तु भगवान् बहुत कुछ कह सुन कर परिचय दिये और अपना प्रयोजन युद्ध बताये। राजनीति के अनुसार राजा द्वन्द्व युद्ध को स्वीकार किया। कार्तिक के परिवा से त्रयोदशी तक बराबर युद्ध हुआ। चतुर्दशी को राजा कुछ क्लांत हुआ, फिर भगवान् के समझाने पर जरासन्ध के देह को जोड़ा हुआ जान कर एक हाथ से एक पैर को पकड़ कर भीम ने फाड़ डाला। फिर बन्धे हुए राजाओं को भगवान मुक्त किये और राजा युधिष्ठिर के यज्ञ में सहायता देने का वचन देकर पुत्र को गद्दी पर बैठा कर चले आये।

सभापर्व में ही अ० ३६ से अ० ४५ तक शिशुपाल वध को कथा है कि—राजा युधिष्ठिर के यज्ञ में राजा निमन्त्रित हुए और आये भगवान् कृष्ण भी आये। बाद में विचार हुआ कि आये हुए अतिथियों का सत्कार होना चाहिए। क्योंकि आचार्य, गुरू, अतिथि जो एक वर्ष में आते हैं उन्हें अर्घ्य दिया जाता है इस कारण से आये राजाओं को एक-एक अर्घ लाना चाहिए। इस प्रकार भीष्म जी के कहने पर युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह! प्रधान अर्घ आप किसे फरमाते हैं। भीष्म जी बोले कि हर एक प्रकार से भगवान् कृष्ण जी प्रधान हैं इनके लिए मुख्य अर्घ चाहिए। फिर सहदेव ने कृष्ण के लिए उत्तम अर्घ लाये। कृष्ण भी अर्घ पूजा को स्वीकार किये, परन्तु शिशुपाल उस पूजा को नहीं सह सका, इससे भीष्म, युधिष्ठिर तथा कृष्ण को फटकारा, कि कृष्ण न वृद्ध हैं न

आचार्य न ऋत्विगादि हैं। वृद्ध द्रोणाचार्यादि के रहते कृष्ण की पूजा उचित नहीं है, इससे आज्ञा देने वाला भीष्म अनुचित किया तथा कृष्ण भी अनुचित किया। इतने आचार्य वृद्धों के रहते अपनी पूजा कराया इत्यादि। इससे इन सब राजाओं का अपमान हुआ, ऐसा करना था तो क्यों सबको बुलाया इत्यादि कह कर उठ कर चला। तब युधिष्ठिर उसके पीछे दौड़े, शान्ति से बोले कि भीष्म धर्मज्ञ हैं, आप व्यर्थ कटुभाषण न करें। सब राजा भगवान् की पूजा को स्वीकार करके बैठे हैं। आप भी क्षमा करें। भीष्म जी बोले कि, इसके आगे नम्रता, सात्वना की जरूरत नहीं है कि जो कृष्ण की पूजा को नहीं सह सकता है। क्षत्रियों में पूजा उसी की होती है कि जो विजयी हो।कृष्ण विजयी, ज्ञानी आदि सब कुछ हैं। इससे सर्वपूज्य हैं। सहदेव बोले कि सब पूज्यों के पूजा श्रीकृष्ण हैं। बाद में कुछ लोग शिशुपाल के पक्षपाती होकर यज्ञ में विघ्न करने का विचार करने लगे। क्षुब्ध राजाओं को देखकर युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा कि यज्ञ की रक्षा और प्रजा के हित की बात बताइये। भीष्म जी बोले कि भय न करो, अभय मार्ग को हम लोग पहले स्वीकार कर लिये है। भगवान् शिशुपाल के तेज को हरना चाहते हैं और सर्व समर्थ हैं। इस बात को सुनकर शिशुपाल ने फिर भी भीष्मादि का बहुत अपमान किया, निन्दा किया। तब उसके मानवता हीन आचरण पर क्रुद्ध भीम उठना चाहे तब भीष्म जी ने पकड़ लिए और भीम के प्रति बोले जब चेदि राजकुल में यह जन्म लिया था तब चार भुजा तीन नेत्र वाला था और जन्मते ही गदहा के तुल्य शब्द किया था जिससे भयभीत होकर माता-पिता, बन्धु सहित इसे त्यागने का विचार किये थे और सब चिन्तायुक्त हुए तब आकाशवाणी हुई कि हे राजन ! इसका पालन करो, इससे डरो नहीं, परन्तु शत्रु मारने वाला जन्म ले लिया है इस बात को सुन कर पुत्र स्नेहयुक्त इसकी माता बोली कि, जो देव या ईश्वर इस अव्यक्त वाणी को मेरे पुत्र के विषय में कहा है उससे मैं कर जोड़कर पूछती हूँ। कि इसका मृत्यु कौन है यथार्थ रूप से यह भी बता दो। मैं

सुनना चाहती हूं। तब फिर आकाशवाणी हुई कि जिसके गोद में जाने से इसके दो भुजा जमीन पर गिर जायगी और ललाट का नेत्र लुप्त होगा, सो इसके मृत्यु तुल्य होगा। इन सब समाचारों को सुनकर सब राजा आये, कृष्ण के गोद में रखते ही दो बाहु गिर गये और नेत्र लुप्त हो गया। फिर इसकी माता भयभीत होकर वर माँगी मेरे पुत्र के सौ अपराध की क्षमा किया जाय। भगवान् ने क्षमा का वर दिया। इस बात को सुनकर शिशुपाल बोला कि—ऐ भीष्म। अगर तुम्हें बन्दी की तरह प्रार्थना ही करनी है तो कृष्ण को छोड़कर बडे-बड़े राजाओं की स्तुति कर, या द्रोणादि की स्तुति करो इत्यादि। तब भीष्म जी बोले कि इन राजाओं की इच्छा से मैं जीता हूँ परन्तु मैं इन्हें तृण तुल्य नहीं समझता हूँ। इस बात को सुन कर राजा सब क्रुद्ध हुए। वाद-विवाद हुआ, तब भीष्म जी बोले कि—जिनकी हम लोग पूजा किये है सो कृष्ण वर्तमान हैं, जिन्हें शीघ्र मरना है सो कृष्ण से युद्ध के लिए पुकारे, इस बात को सुन कर शिशुपाल कृष्ण से बोला कि—हे कृष्ण ! तुम्हें युद्ध की इच्छा से पुकारता हूँ, पाण्डवों के सहित तेरा नाश करूँगा। क्योंकि अपूज्य को इन्होंने पूजा है फिर कृष्ण राजाओं से कहे कि यह मेरा अतिशय शत्रु है इसके बहुत कटुवचन को सहे हैं। अब नहीं सह सकता, फिर कृष्ण की बात सुन कर राजा सब उसकी निन्दा करने लगे और शिशुपाल हँसने लगा, कुछ अपशब्द बोलने लगा, फिर भगवान् ने चक्र का स्मरण किया और इसका सौ अपराध क्षमा किया, अब नहीं सह सकते, ऐसा राजाओं से कहकर शिर काट लिया, फिर यज्ञ कराया।

सहस्रा—अर्जुन की कथा हरिवंश ग्रन्थ १।३३ में कहा है कि कृतवीर्य नामक राजा के कृतवीर्य अर्जुन नाम वाला पुत्र था वह दश हजार वर्ष अत्रि जी के पुत्र दत्त मुनि की आराधना और परम दुष्कर तप किया। तब दत्त जी चार वर दिये। पहला युद्ध के समय हजार भुजा होना। दूसरे अधर्म में प्रवृत्ति होने पर महात्माओं के द्वारा निवारण होना। तीसरा उग्र युद्ध से भूमि को जीत कर, अपने धर्म से सबका पालन

करना और चौथा संग्राम में बहुत से शत्रुओं को मार कर किसी महान पुरुष से बध होना वह अर्जुन ८५ हजार वर्ष तक चक्रवर्ती राजा हुआ। पाँच ही वाण में बल सहित रावण को मुग्ध कर बाँध लिया फिर पुलस्ति जी के कहने से छोड़ दिया और चित्रभानु (अग्नि) देव की याचना से उनकी तृषा भूख को निवृत्ति के लिए वह सब राज्य अग्निदेव को दे दिया, फिर अग्निदेव सारे जगत को जलाता हुआ वरुण के आपव वसिष्ठ नामक पुत्र के आश्रम को जला दिया। इससे उनके शाप से परशुराम जी द्वारा मारा गया। स्कन्द पु० खण्ड ६ अ० ६६ में कथा है कि ऋचीक ऋषि के पुत्र यमदग्नि थे। उनका छोटा पुत्र परशुराम जी थे। एक दिन परशुराम सहित सब भाई कन्द मूल लेने जंगल को चले गये थे। इतने में सहस्रार्जुन ऋषि के आश्रम में आया प्रणाम किया, मुनि ने कहा कुशल देवार्चन के समय आये हो, जो कुछ देता हूँ सो आप अपने हाथ से भोजन करो। राजा ने कहा मेरे साथ में सेना है ऋषि ने कहा मैं सबको भोजन दूँगा। तब भगवान की पूजा से जो गौ पाये थे उस कामधेनु के बल से ऋषि ने सबको भोजन कराया। पद्मपुराण अ० २४१ में कथा है कि ऋषि ही इन्द्र की उपासना से कामधेनु गौ और राम पुत्र पाये थे फिर कामधेनु की महिमा को देखकर राजा को गाय लेने की इच्छा हुई। ऋषि से माँगने लगा, बेचने को कहा, तब ऋषि स्वीकार नहीं किये। फिर ऋषि को मार डाला और उसकी स्त्री को भी २७ बार मारा और गौ ले चला परन्तु गाय नहीं जा सकी, इससे छोड़ गया। बाद में परशुराम जी आये और सब समाचार सुनकर और माता पर २७ बार प्रहार देखकर २७ बार निःक्षत्रिय करने का प्रण किया तथा सहस्रार्जुन से युद्ध करके उसका नाश किया।

महाभारत शान्ति प०अ० ४९ में और स्कन्द पुराण खण्ड ६।६५ में कथा है कि—भृगुऋषि के पुत्र ऋचीक बड़े यशस्वी तपस्वी थे, सो कभी तीर्थ-यात्रा के प्रसंग से गाधिराजा के स्थान पर भोज कह गये और वहाँ राजा की कन्या को देखकर राजा से कहा कि, यह कन्या मुझे दो, राजा शाप

के भय से और उनकी दशा देखकर कहा कि सात सौ श्याम वर्ण घोड़ा जो देगा, उसे यह कन्या दी जायगी, ऐसा नियम है। यह सुनकर वह ऋषि कान्यकुब्ज देश में गंगा के किनारे जप करने लगे, उसी से सात सौ घोड़ों की प्राप्ति हुई, राजा को दिया फिर कन्या प्राप्त किया फिर विवाह कर काम रहित वह मुनि अपनी स्त्री के पास जाकर कहा कि मैं तो तप के लिए जाऊँगा, तुम्हारी क्या इच्छा है सो कहो फिर वह अपनी माता से सलाह कर अपने और अपनी माता के लिए पुत्र माँगी। तब ऋषि ने स्त्री के लिए ब्राह्म तेजोमय चरू (हविः) विशेष तैयार किया और शाशु के लिए छाल चरू बनाये और अपनी स्त्री के हाथ में दोनों हवि देकर समझा दिया, परन्तु वह जब अपनी माता के पास गयी, दोनों चरू ले गयी उसकी माता ने समझा कि ऋषि अपनी स्त्री के लिए कुछ अच्छा ही चरू बनाया होगा, इससे अपनी पुत्री का हवि आप खा गयी और अपनी पुत्री को दिया, फिर गर्भ होने पर ऋषि अपनी स्त्री के गर्भ में क्षण मात्र तेज देखकर समझ गये कि यह चरू हेर-फेर किया है, तब बोले तुम्हारा पुत्र बहुत क्रोधी होगा, सो सुनकर उसने बहुत प्रार्थना किया, आप जैसे महा-पुरुष का पुत्र क्रूर नहीं होना चाहिए, तब ऋषि बोले कि पुत्र नहीं तो पौत्र अवश्य क्रोधी होगा। इससे यमदग्नि शान्त हुए और उनके पुत्र परशुराम क्रूर हुए, इससे क्षत्रिय का नाश किया और ब्राह्म तेज से उत्पन्न विश्वामित्र प्रथम शान्त हुए, परन्तु शिकार आदि राजधर्म में प्रवृत होने से पीछे बहुत क्रूर हो गये और वसिष्ठ जी की कामधेनु के लिए बहुत उपद्रव किये फिर तपस्वी हुए इत्यादि और पद्मपुराण उत्तर ख० अ० २४२ में कथा आयी है कि ईक्ष्वाकुवंश के क्षत्रियों को परशुराम जी नहीं मारते थे क्योंकि ये उनके मातामह कुल के थे, परन्तु रामचन्द्र जी के बल तेज को सुनकर युद्ध के लिए आये।

रावण के बीतने की कथा देवी भागवत स्क० ९।१५। और ब्रह्मवेवर्त पु० प्रकृति खण्ड अ० १३ में है कि भगवान से नारद जी ने पूछा कि तुलसी नारायण की स्त्री कैसे हुई ? तब नारायण भगवान् ने

उत्तर दिया, कि दक्ष सार्वणि मनु के वंश में वृषध्वज राजा हुए, जो केवल शिव उपासक हुए, शिवजी का भी उससे बहुत प्रेम था। वह राजा अन्य देवता की पूजा को छोड़ दिया, इससे सूर्य शाप दे दिये, कि तुम श्री रहित होवो, तब शिव जी सूर्य को मारने के लिए त्रिशूल लेकर दौड़े, सूर्य भागे ब्रह्मा जी के पास गये वे भी भागे विष्णु के पास गये, शिव भी वहाँ पहुँचे परन्तु भगवान की महिमा से शान्त हुए। भगवान् के पूछने पर शिव जी बोले कि सूर्य मेरे भक्त को शाप दिये हैं उसकी क्या गति होगी ? भगवान् बोले कि आधी घड़ी में दैव युग से इक्कीस युग बीत गये, वृषध्वज और उसके पुत्र भी मर गये। उसके पौत्र धर्मध्वज कुशध्वज हैं, अभी भक्ति तप परायण हैं। (अ० १६-१४) वे दोनों लक्ष्मी की आराधना से धनी हुए, कुशध्वज की स्त्री मालावती की पुत्री वेदवती हुई, वह भगवान की प्राप्ति के लिए तप किया करती थी, वहाँ ही रावण पहुँचा और अत्याचार करना चाहा, तब उसने शाप दिया कि, मेरे ही निमित्त से तेरा नाश होगा और अपना शरीर छोड़ दिया वही सीता हुई। राम जी के वनवास होने पर, अग्निदेव ने राम से कहा कि यह सीता-हरण का समय आया है, इस सीता को मेरे यहाँ धरोहर रखो और छाया सीता को पास रखो, ऐसा ही किया गया। रावण छाया सीता को हरा, जिससे उसका नाश हुआ। अग्नि परीक्षा के समय सच्ची सीता फिर रामजी के पास आयी, फिर वही द्रौपदी हुई।

अ० १७-१५ में है कि—धर्मध्वज की माधवी नामक स्त्री से तुलसी नामक पुत्री हुई वह भी तपस्विनी हुई। अ० १८-१६ इत्यादि में है कि उस तुलसी का शंखचूड़ नामक दानवेन्द्र से विवाह हुआ। वह दानवेन्द्र युद्ध में सब देवताओं को पराजित किया, तब देव सब विष्णु भगवान के शरण में गये, भगवान् ने विश्वास दिलाया और कहा, मैं युक्ति से उसका नाश करूँगा उसके पास एक कवच है उसके रहते उसका नाश नहीं हो सकता, ऐसा कह शिव जी को उसके साथ लड़ने को कहा और सबको भी आज्ञा दिया। बहुत युद्ध हुआ परन्तु वह नहीं मरा तब भगवान् ब्राह्मण रूप होकर

उसके कवच माँगा और शंखचूड़ का रूप बनाकर वह कवच पहन कर तुलसी के पास गये, उससे युद्ध में अपना विजय बताकर उसके धर्म को नष्ट किये। तब शंखचूड़ मारा गया। उसकी हड्डी से शंख पैदा हुआ। रति विलास से प्रथम तुलसी ने भगवान् से पूछा कि युद्ध में विजय कैसे पाये ? तब बोले, सब दानव मारे गये ब्रह्मा ने परन्तु बीच में मेल करा दिये, फिर रति विलास के समय तुलसी समझ गयी कि यह मेरा पति नहीं है, इससे शाप देने के लिए तैयार हुई, तब शाप क भय से भगवान् अपना स्वरूप प्रगट किया, तो भी शोक बस शाप दिया कि तुम्हारा हृदय पत्थर के समान है इससे तुम पत्थर होवों, फिर भगवान् ने उसे समझाया कि तुम्हारा शरीर पवित्र गण्डकी नदी होगा, और केश पवित्र तुलसी होगा इत्यादि। तुलसी शंखचूड़ की कथा शिव पुराण संहिता २ खं० ५ अ० २७ से ४१ तक में है, सो शिव माहात्म्य विशेष रूप है। तुलसी को शिव जी ने जाकर समझाया है इत्यादि। यहाँ तुलसी का प्रसंग कथा से है। रावण के बीतने में वेदवती सीता ही कारण है और यद्यपि पूर्वरूप से सीता ही द्रोपदी हुई थी परन्तु स्कन्ध प्र० खं० ४ पूर्वार्ध अ० ४९ में लिखा है कि–द्रोपदी उमारूप थी और युधिष्ठिरादि रुद्र रूप थे तथा विष्णु रूप कृष्ण इनके सहायक थे। शत्र से दुःख मात्र होने पर जंगल में द्रोपदी ने सूर्य का उपासना की, तब सूर्य भगवान् भोजन बनाने का वर्तन दिये, और कहे कि जितने को भोजन कराना चाहोगी उतने को भोजन करा दोगी परन्तु जब तुम भोजन कर लोगी तब बटुली खाली हो जायेगी। और वन पर्व के आरम्भ में महाभारत की कथा है कि युधिष्ठिर जब वन में चले हैं। तब बहुत ब्राह्मण भी साथ लगे। फिर धौम्य ऋषि से युधिष्ठिर ने पूछा, पास में धन नहीं है इनकी रक्षा कैसे करें, तब ऋषि ने सूर्य की पूजा बताया, इसी से रक्षा साधन की प्राप्ति होगी। फिर युधिष्ठिर के पूजा करने पर सूर्य प्रकट हुए, और ताम्र की बटुली दिये और कहे कि जब तक द्रोपदी भोजन नहीं करेगी तब तक पर्याप्त भोजन रहेगा और १२ वर्ष में तुम्हे राज्य की प्राप्ति होगी, ऐसा कह कर लुप्त हो गये।

महाभारत आदि पर्व अ० १८ में कथा है कि--पाण्डु राजामहावन में विचरते हुए विषय करते मृग को देखा और पाँच बाण से मृग एवं मृगी को मारा, परन्तु उस मृग रूप में किंदम नामक मुनि थे, इसी से मनुष्य के वाणी में बात कर राजा को शाप दिया कि मैथुन के समय मुझे मारे हो, इसलिए कामासक्त होते हो तुम भी मरोगें, वाणी सुन राजा बड़ा पश्चाताप किया और सारे वेष उतार कर सन्यासी होने को सोचने लगा। तब उसकी स्त्री बोली कि अगर तुम मुझे छोड़ोगे तो मैं भी अभी प्राण त्याग दूँगी। आप गृह आश्रम में भी तप कर सकते हैं जिसमें हम सब भी रह सकते हैं तब पाण्डु मान गये और उत्तरा खण्ड में जाकर बहुत तप किया। तब फिर विचार किया कि पुत्र के बिना सुगति नहीं हो सकती किसी प्रकार पुत्र होना चाहिए। फिर अपने मन की बात कुन्ती से बताये, बहुत कुछ समझा बुझाकर कुन्ती बोली कि मैं बचपन में दुर्वासा ऋषि की सेवा से मन्त्र प्राप्त किया था उस मन्त्र से जिस देव को चाहे उस देव को बुला सकती हूँ। आप की आज्ञा जिस देव पर हो उस देव को बुलाऊ, राजा ने क्रम से धर्म, वायु, इन्द्रदेव को बुलाने के लिए कहा, जिससे क्रम से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन पैदा हुए, दूसरी स्त्री माद्रि के कहने पर राजा ने उसे भी मन्त्र बताने को कहा फिर माद्रि मन्त्र प्राप्त कर अश्विनी कुमार को बुलाया जिससे नकुल सहदेव हुए। ये ही पाण्डु पुत्र कहाये, इन्हीं के पूर्वोक्त प्रभवादि के आशय से कहा गया है कि, 'दुर्योधन अभिमाने गयऊ, पाण्डव केर मर्म नहि पयऊ।

दुर्योधन के विषय में महाभारत आदि पर्व अ० ११५ में कथा है कि--पाण्डु के बड़ा भाई धृतराष्ट्र की स्त्री गांधारी ने भूख श्रम से पीड़ित व्यास जी की सेवा करके प्रसन्न किया, तब व्यास जी प्रसन्न होकर वर देने लगे, तब गांधारी अपने पति के समान पुत्र मांगी। फिर गर्भ होने पर दो वर्ष तक गर्भ धारण किया। दुःखी हुई बाद में कुन्ती के पुत्र को पैदाइस सुनकर और अपने गर्भ की स्थिरता देखकर, चुपके से अपना पेट पीटने लगी जिसके कारण मांस का पिण्ड लोह पिण्ड के समान पैदा हुआ,

उसको त्यागने का विचार कर रही थी तब तक व्यास जी आये और गांधारी से बोले तुम क्या करना चाहती हो, तब अपनी बात कह सुनाई, व्यास जी बोले कि मेरी बात झूठ नहीं हो सकती है। इस पिण्ड को जल से सींचो, सींचने से सौ पुत्र होंगे फिर सींचने से अङ्गुष्ठ पर्व मालों में प्रथम विभक्त हुए इत्यादि। कुण्ड में रखने से सबसे पहले दुर्योधन का जन्म हुआ, महान अशुभ हुआ। तब मूल गण्डक कुल कल्याण के लिए उसे त्यागने के लिए कहा परन्तु पुत्र मोह से धृतराष्ट्र त्याग नहीं सके।

# रमैनी ४८

## ऐतिहासिक प्रकरण

**मानिकपुर कबीर बसेरी। मद्दति सुनी सेखतकी केरी॥**
**ऊ जे सुनी जमनपुर थाना। झूंसी सुनी पिरन को नामा॥**
**एकइस पीर लिखे तेहि ठामा। खतमा पढ़ै पैगम्बर नामा॥**

**शब्दार्थ**—मानिकपुर–एक नगर जो इलाहाबाद झांसी मार्ग में पड़ता है, मानिकपुर रेलवे जँक्शन भी है यहाँ पर कबीर साहब के आने का प्रमाण पनिका जाति के मानिकपुरी ग्रंथ से मिलता है, उसके एक खण्ड में लिखा है कि कबीर साहब यहाँ आये थे। कबीर–सद्गुरू कबीर। बसेरी–निवास। मद्दति–प्रशंसा, स्तुति, सहायता। सुनी–सुना। सेखतकी–एक प्रसिद्ध सूफी संत जो सिकन्दर लोदी का गुरूभी बताये जाते हैं। केरी–की ऊ–वह, जे–जो। जमनपुर–जौनपुर, एक ऐतिहासिक नगर जो वाराणसी से ५८ किमी० दूरी पर है यहाँ पर शेरशाह सूरी ने देश की राजधानी भी बनाया था। थाना–स्थान, मोकाम। झूंसी–प्राचीन, प्रतिष्ठानपुर जो चन्द्रवंशीय क्षत्रियों की राजधानो थी यहाँ पर महाराजा ययाति दो बड़े-बड़े यज्ञ किये थे। पिरन–गुरुओं के। नामा–नाम। पीर–गुरु। ठामा–उस स्थान पर। खतमा–खुत्वा, प्रार्थना, इबादत। पैगम्बर–ईसा, मूसा, मुहम्मद साहब आदि। पढ़े–पढ़ते हैं।

**सम्बन्ध**—संसार नश्वर प्रकरण में सबको जायमान बताया गया है। देव लोक से नाग लोक एवं मनुष्य लोक तक सब चले गये तात्पर्य यह है कि यह ब्रह्माण्ड परिवर्तनशील हैं।
इसकी कोई वस्तुएँ स्थिर रहने वाली नहीं है केवल मनुष्यों की अविधायें रहती हैं जो उनके उपासकों द्वारा चर्चा का विषय बनी रहती है। अवि-धाओं के अतिरिक्त अन्य कोई चीज और वस्तुएं देखने को नहीं मिली हैं इसलिए सारा जगत प्रपंच और नाशमान है जिसको छोड़कर हरिश्चन्द्र जैसे सम्राट आत्म समाहित हुए जिनकी कीर्ति पताका आज भी सम्मान के साथ फहरायी जा रही है। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि केवल सत्य के लिए मरे, सत्य के लिए संघर्ष करें क्योंकि सत्य ही आत्मा है, सत्य ही ईश्वर है उसी की प्राप्ति से मनुष्य सुखी हो सकता है। ऊपर कई बड़ी विभूतियों का उल्लेख करने का अर्थ यह भी है कि ये सब सुखी नहीं थे, संतुष्ट नहीं थे इसलिए असत्य पदार्थ के लिए जो मृगतृष्णा के समान होते हुए भी चिरस्थायी दिखता है उसी को अविनश्वर समझकर बड़े से बड़े लोग लड़ मरे। सुधी पुरुषों को चाहिए की सत्य-असत्य का निर्णय करें, प्रगलभता का त्याग करें, साहस के साथ सत्य का आचरण करें। अगली रमैनी में पुनः मिथ्यात्व की समीक्षा व समालोचना गुरु महाराज के द्वारा की जा रही है जिसमें उपासना के सम्बन्ध में तथा धार्मिक रीति-रिवाज के बारे में तथ्य सामने आयेंगे।

**भावार्थ**—एक समय सद्गुरू कबीर विक्रम सम्बत १५५० के आस-पास देशाटन करते हुए तत्कालीन मानिकपुर नामक गाँव में पहुँचे। वहाँ पर कुछ काल तक निवास भी किये। उसी निवास काल में महात्मा शेखतकी प्रशंसा भी सुनी जो बहुत बड़े सूफी संत और सिकन्दर लोदी के गुरु भी माने जाते हैं उस शेखतकी से गुरु महाराज का वार्तालाप भी हुआ था और जौनपुर जनपद में जहाँ पर कुछ काल तक नबाबों का गढ़ था मुसलमानों का बहुत बड़ा धार्मिक प्रचार केन्द्र था वहाँ से इस्लाम का बहुत व्यापक प्रचार किया जा रहा था, उसी प्रकार प्रतिष्ठानपुर वर्तमान

झूँसी में कुछ मुस्लिम सूफी गुरूओं के नाम सुने गए हैं। झूँसी किले के बगल में इक्कीस मुस्लिम की समाधियाँ आज भी है जिन पर उन गुरूओं के नाम भी अंकित थे जिसको इन पंक्तियों के विवेचक ने जाकर देखा है। इस समय समाधियों की स्थिति अच्छी नहीं है बहुत सी भग्नावशेष में पायी गयी हैं। कब्रों के टूटने-फूटने से उन पर खुदे नाम पढ़े नहीं जा सके कि वह किन पीरों की मजारे हैं। ये समाधियाँ कबीरलोटन नाला झूँसी के नाम से प्रसिद्ध हैं यहाँ पर बहुत से इस्लाम के मौलवी एकत्रित होकर खुतवा कहिए प्रार्थना करते थे। साथ ही ईश्वर के प्रियतम दूत पैगम्बर मुहम्मद साहब के नाम की प्रशंसा करते हैं। यह क्रम आज भी जारी है।

**सुनत बोल मोहिं रहा न जाई। देखि मुकर्बा रहा भुलाई ॥**
**हबी नबी नबी को कामा। जहं लौं अमल से सभै हरामा ॥**

**शब्दार्थ**—बोल–समाचार, बातचीत। मोहिं–मुझे। रहा–सहन नहीं हुआ। मुकर्बा–कब्रगाह, मजार, मकबरा। रहा–स्थित, में। भुलाई–भ्रमित, विस्मृत, स्थिर। हबी–हबीब। नबी–ईसा से मुहम्मद साहब तक सभी पैगम्बर। नबी–संदेश वाहक, जो ईश्वर की ओर से कोई संदेश ले आता हो। जहं लौं-जहाँ तक। अमल–अभक्ष पदार्थों का सेवन, मादक द्रव्यों के सेवन की लिप्सा। हरामा–निषिद्ध, वर्जित, रुकावट, वेशर्मियत।

**भावार्थ**—उपर्युक्त बातों को देखकर सद्गुरु कहते हैं कि मुझसे रहा नहीं गया। अति असह्य हो गया क्योंकि जिन मुहम्मद साहब ने तमाम देवता पितरों की उपेक्षा कर दी, तमाम देव मन्दिरों को ध्वस्त करा दिया सभी देव मूर्तियों को तोड़वा दिया, मूर्ति पूजा का पूर्णतः बहिष्कार किया जो एक ईश्वर को छोड़कर किसी दूसरे की उपासना करता है वह आस्तिक नहीं है वह कुफ्र करता है अर्थात् वह विवादी है इन सब बातों के स्थापक मुहम्मद साहब ने अपने अन्तिम क्षणों में यहाँ तक कहा कि मेरे न रहने पर मेरे कब्र की व मेरे समाधि की पूजा न करना, मेरा कोई चित्र न रखना मेरी किसी उपयोग की हुई वस्तु की पूजा न करना

केवल परमेश्वर को ही पूजा करना। भला ऐसे पूर्ण आत्म समर्पणकारी महापुरुष के अनुयायी आज अपने मार्ग से कितने भटक गये हैं, कितनी गिरावट इनमें आ गई है जो प्रभु की उपासना छोड़कर इन गुरुओं के मजारों पर रात-दिन सिर पटक रहे हैं यह किस मूर्ति पूजा से कम है? यह तो ऐसी ही बात है जैसे हिन्दू व आर्य लोग अनेक देवी-देवता, ईंटा-पत्थर व अनेक भूत-भवानी आदि की पूजा व उपासना करते हैं। ऐसा ही ये इस्लाम के मानने वाले लोग भी कर रहे हैं, बल्कि उनसे भी थोड़ा आगे हैं क्योंकि हिन्दू लोग मृतकों को जला फूँक देते हैं उस स्थान को अशुद्ध मानते हैं और वहाँ नहीं जाते, यदि चले भी गए तो स्नान करते हैं। लेकिन ये इस्लामी सज्जन लोग उस कब्र स्थान को ही ईश्वर का घर मान लिए हैं। हबी कहिए प्यारा नबी ईश्वर के दूत जो नबियों के भी नबी मुहम्मद साहब का कार्य क्या था। पूजनीय मुहम्मद साहब तो यह कहते थे कि जहाँ तक अमल कहिये अचेतन उपासना है असत्य है वह कभी नहीं करने योग्य है। हराम कहिए अल्लाह ताला उस पर सख्त पाबन्दी लगा दी है। खुदा की तरफ से हुक्म है कि जो मेरे को छोड़कर दूसरी चीजों को अमल करता हैं अर्थात् अन्य देवी-देवताओं की उपासना करता है वह मुझे प्यारा नहीं हैं यह सब बात सम्माननीय प्रभु दूत नबो मुहम्मद साहब ने पवित्र ग्रन्थ कुरान शरीफ में दर्शाया हैं। आज के मुसलमान जिसके बिल्कुल विरुद्ध चल रहे है।

साखी

**सेख अकर्दी सेख सकर्दी, मानहु वचन हमार।**
**आदि अन्त अउ जुग जुग, देखउ दिस्टि पसार॥**

**शब्दार्थ**—सेख-श्रेष्ठ, मुहम्मद साहब के नातो हुसेन के वंशज व उन्हें मानने वाले। अकर्दी–सूफी संत। सकर्दी–दूसरा सूफी संत। मानहु–मानिए। दिस्टि–दृष्टि। पसार–खोलकर, दूर देखकर।

**भावार्थ**—सद्गुरु कबीर पवित्र कुरान के उपदेश के विरुद्ध सुन व देखकर उस समय के प्रधान शेखतकी, शेख अकर्दी एवं शेख सकर्दी आदि

को सम्बोधित करके कहते हैं कि आप लोग मेरे वचन को मानिये जो मैं कहता हूँ उस पर विचार कीजिये क्योंकि आप लोग अपने मूल पुरुष के बताये हुए मार्ग को भूल चुके हैं इसलिए आप लोग आदि से अन्त तक यहीं तक नहीं युग-युग, जन्म-जन्म सदैव मेरी बात यदि मानते हैं तो विवेक विचार रूपी नेत्रों से देखकर एवं दृष्टि फैलाकर देखते हैं तो आप लोगों के लिए परम कल्याणकारी होगा। आप लोगों को यह देखना तथा विचार करना चाहिए कि इन कब्रों का न आदि में कोई अस्तित्व था और न अन्त में कोई अस्तित्व रहेगा। ये कब्रें, ये देव उपासनाएँ युग-युग से चली आ रही हैं पर इनसे मनुष्यों का मूल कल्याण नहीं हुआ है। इनके अतिरिक्त जो अक्षुण्ण है जिसका आदि और अन्त नहीं है एवं युग-युगान्तर में जिसका अस्तित्व बना रहता है उसी प्रभु की दृष्टि खोलकर उपासना कीजिये उसी के समक्ष झुकिये वह तत्त्व आप के हृदय में तथा बाहर भी विद्यमान है और भीतर भी विद्यमान है।

**विशेष**—सद्गुरु कबीर मानिकपुर में एवं झूँसी में तथा जौनपुर में जाकर इस्लामी पुरोहितों के व्यवहार को देखे थे। उनके गुरुओं के उपदेश सुने थे, जो पूर्व कहे गुरुओं के अनुसार नहीं था। उनके आदर्श बदल चुके थे, उस निर्गुण की उपासना के अनुसार नहीं थे।

उत्तर भारत में झूँसी तथा जौनपुर में जो दो इस्लाम धर्म के मूल स्थान थे जहाँ-जहाँ कब्रों की पूजा होती थी, वहाँ-वहाँ पर सद्गुरु जाकर उसके विरोध में आवाज उठायी तथा दूसरों के गलत कार्यवाही को रोकने का भरसक प्रयत्न किया। उस समय के प्रसिद्ध उपदेशक सूफी संतों में शेख अकर्दी तथा शेख सकर्दी से कहा कि आप लोग मेरे उपदेश को समझें तथा आचरण करें वही युग-युग तक के लिए सुखकारी होगा। आले सलाम मुहम्मद साहब सबको प्रेम करने को सिखलाया था आप लोग अग्नि फैलाने को सिखा रहे हैं इससे अल्लाह के नबी मुहम्मद साहब दुखी होगें आप गुरु हैं आप का कार्य है मनुष्यों में सद्भाव उत्पन्न करना। ये सभी बाह्याडम्बरों को छोड़कर बिना भेदभाव के सबके साथ मिल-जुलकर रहें जो

सर्वमान्य सत्य है उसको अपनावें इन बातों को आप विवेक के नेत्रों से देखे अन्यथा नरक में जाना पड़ेगा।

## रमैनी ४९

**दर की बात कहो दरबेसा। पादशाह है कउने भेषा॥**
**कहाँ कूँच कहं करै मुकामा। मैं तोहिं पूछों मुसलमाना॥**
**लाल जरद की नाना बाना। कवन सुरति लैं करों सलामा॥**
**काजी काज करहु तुम कैसा। घर-घर जबह करावहु भैसा॥**

**शब्दार्थ**—दर–स्थान, मकान। बात–पता, खबर। कहो–कहिए। दरबेसा–मुस्लिम साधु, धर्म उपदेशक। पादशाह–बादशाह, सम्राट, खुदा, परमेश्वर। कउने–किस। भेषा–वेश, रूप, प्रकार। कूँच–यात्रा, प्रस्थान रवानगी। मुकाम–स्थान, ठिकाना। मैं–हम। तोहिं–तुमसे, आपसे। पूछों–पूछता हूँ। मुसलमाना–इस्लामी लोग। लाल–अरुण। जरद–जर्द, पीला, रंग–बिरंग, चमकीला। नाना–अनेक प्रकार का। बाना–स्वरूप, भेद, ज्ञान। सुरति–स्वरूप,; चित्तवृत्ति। सलाम–प्रणाम, नमस्कार। काजी–धार्मिक न्यायाधीश, इस्लामी शासन काल का जज। काज–कार्य, कर्म। करो–करते हो। जबह–बलि, हत्या, भेंट। करावहु–कराते हो। भैसा–एक प्रकार का पशु पाड़ा, भैस का बच्चा।

**सम्बन्ध**—उपर्युक्त रमैनी में इस्लाम के भटके लोगों को सचेत करते हुए उनकी वर्तमान पूजा को निरर्थक बताये हैं। उन्हीं शेखतकी आदि से पुनः प्रश्न करते हैं कि आप लोग जो ईश्वर को सातवें आसमान पर बताते हैं उसकी बात मुझे बताइये।

**भावार्थ**—उस स्थान का क्या पता है ? हे दरवेश ! क्या आप लोग वहाँ गए हैं ? क्या उस स्थान को आप लोग देखे हैं जहाँ वह परमेश्वर रूपी बादशाह निवास करता है। यदि आप देखें हैं तो वह किस प्रकार का है उसका रूप कैसा है वह उस सातवें आसमान से कहाँ आता जाता

है ? वहाँ से कहाँ कूँच करता है और मोकाम व पड़ाव कहाँ डालता है। जाने वाला वह स्थान कहाँ है ? हे मुसलमान बन्धुओं ! हम आप सज्जनों से पूछते हैं कि वह प्रभु किस वर्ण का है यदि आप उसे देखे हैं तो वह लाल है या पीले वर्ण का है। वह प्रकाश स्वरूप है या नाना प्रकार के रूप वाला है अर्थात् वह प्रभु किस स्वरूप का है। आप चित्त वृत्ति लगाकर जो उठ बैठ कर सलाम व प्रणाम करते हैं यह बतायें क्या वह आप के हृदय में नहीं है। आप उसको सातवें आसमान पर बताते हैं, मैं तो उसको हर जर्रे-जर्रे में प्रत्येक कण-कण में देखता हूँ वह प्रभु किसी तीर्थं ब्रत में या किसी मक्के मदीने में नहीं रहता है वह तो प्रत्येक कण में व्याप्त है इसलिए आप की कल्पना बिल्कुल निरर्थक है। वह तो बाहर भीतर सर्वत्र है। पुनः मैं आप से पूछता हूँ कि आप के तरीकत वादी लोग या ज्ञानाश्रयी लोग यह भी कहते हैं कि वह अल्लाह सभी मनुष्यों में हैं, सभी प्राणियों व जीवों में है। परन्तु हे काजी कहिए धर्म के फतवा देने वाले लोग आप लोग किस प्रकार का कार्य कर रहे हैं ? आप लोग घर-घर जाकर भैंसा व विहित पशुओं की बलि करा रहे हैं कलमा पढ़कर जबह करा रहें हैं, यह आपका कैसा कार्य है ? एक ओर तो अल्लाह सभी की रूह है दूसरी ओर आप तरीकत के विरुद्ध कार्य कर रहे हैं। एक शरीयत जो कर्मकाण्ड है उसी को प्रधानता देते हैं।

**बकरी मुरगी किन फुरमाया। किसके कहे तुम छुरी चलाया ॥**
**दरद न जानहु पीर कहावहु। बैता पढ़ि-पढ़ि जग भरमावहु ॥**
**कहैं कबीर एक सैद कहावै। आप सरीखे जग कबुलावै ॥**

**शब्दार्थ**—बकरी–बकरी, अजा, छेरी का बच्चा। मुरगी–कुक्कुट एक प्रकार का पक्षी जो रात में एक–एक पहर पर बोलता है। किन–किसने। फुरमाया–आदेश दिया। तुम–तुँव। छुरी–काटने का हथियार। दरद–दर्द, पीड़ा, दुखावा। जानहु–जानते हो। पीर–गुरु। कहावहु–कहलाते हो। बैता–छन्द, श्लोक, गजल, कविता। भरमावहु–भरमाते हो। सैद–सैयद, लगभग ९०० वर्ष पूर्व शर्मा का वाचक था। मुहम्मद साहब के नाती को

मानने वाले व वंशज, जो ब्राह्मण लोग शर्मा थे वे मुसलमान होने पर सैयद कहलाए। कहावै–कहलाते हो। आप–अपने। सरीखे–समान। कबुलावै–मानने के लिए निर्देश।

**भावार्थ**—भला आप बतलाइये इन बकरी और मुर्गियों को मारने का आदेश आप को किसने दिया एवं किसके हुकुम से आप इन पर छुरी चलाते हो ? इन पशुओं के दर्द को आप नहीं जानते हो, पीड़ा को आप नहीं समझते हो परन्तु दर्द हरने वाले पीर व गुरु कहलाते हो। इस्लाम के अच्छे-अच्छे पदों व गजलों को पढ़-पढ़ कर आप संसार के लोगों को सुनाते हो और इस्लाम में आ जाने के लिए भरमाते हो कि बिना इस्लाम में आये वहिस्ति होने वाली नहीं है। सद्गुरु कहते हैं कि एक तो धर्म के खिलाफ तमाम कार्य करता है दूसरे यह कहता है कि हम सैयद हैं, ब्राह्मण हैं, शेख हैं, और लोगों से यह कहलाने के लिए व अपने प्रसिद्धि के लिए तमाम कोशिश भी करते हैं। जो कर्म अपने करता है। उसी सरीखे व अपने जैसा ही करने के लिए जगत् के मनुष्यों को बहलाता है व स्वीकार कराता है। जो तमाम प्रकार की हत्यायें कराता है, ताजियाँ उठाता है, मजारों पर इत्र लगाता व माला-फूल चढ़ाता है, चादर चढ़ाता है। उनके सामने झुकता है वहीं सब दूसरे से करने को कहता है।

साखी

**दिन को रहत है राजा, राति हनत हैं गाय।**
**यहाँ (ये) खून वे बंदगी, क्यों कर खुसी खोदाय ॥**

**शब्दार्थ**—रहत–रहता है। रोजा–जो मुसलमानों के धर्म के अनुसार रमजान के महीने में तीस दिन का व्रत होता है उस तीस दिनों में कुछ खाना-पीना सूर्यास्त के बाद और सूर्योदय के पहले होता है। हनत–मारते हैं, खून–हत्या। बंदगी–सेवा, उपासना। खुसी–प्रसन्न। खोदाय–ईश्वर, खुदा।

**भावार्थ**—ऊपर की पंक्ति में कहाँ जा चुका है कि जो कुत्सित कर्म अपने करता है वही दूसरे से भी करने को कहता है। दिखावे के लिए

रमजान के महीने में तीस दिनों का व्रत रखता है जिसमें भूख लगने पर भी नहीं खाता है जो महा हठी व्रत है। जीवात्मा तड़फड़ाते रहता है फिर भी नहीं खाता है जिसका महातपस्या के रूप में पालन करता है। दिन भर तो व्रत रहता है परन्तु भगवान अंशुमालि के अस्त होते ही निरीह प्राणी जो अति सात्विक है जिसका दुग्ध सभी मनुष्यों को लाभ-दायक होता है जो बाल्य काल से वृद्धावस्था तक अपने क्षीरों से पालन करती हैं उन मातृवत् पशुओं का गला काट डालता है। जरा इनकी उपा सना का ढ़कोसला तो देखिए यहाँ तो ये रात्रि में गाय को हनते हैं व मारते हैं और दिन में प्रभु की प्रार्थना करते हैं। क्या इन धर्म, विरोधी पाखण्डियों के कर्म से अल्लाह ताला, जगदीश्वर प्रसन्न होगा, कदापि नहीं।

**विशेषार्थ**—इस रमैनी के पहले वूतों व कब्रों की पूजा का विरोध करते हुए उसे खुद इस्लाम के विरुद्ध बताया गया है। इस रमैनी में सप्तम व्योम पर प्रभु निवास का विरोध करते हुए मुस्लिम पुरोहितों से प्रश्न किया गया है कि क्या तुमने ऊपर उसे देखा है देखा है, तो वह किस रूप रेखा का है या अनेक प्रकार वाला है। जहाँ चित्त-वृत्ति लगाकर उसकी उपा-सना करते हो, रात्रि-दिन मिलाकर पाँच बार इबादत व प्रार्थना करते हो। खुदा के प्रति जो काम तुम करते हो वह कैसा है ? धर्म के नाम पर अनेक प्राणियों का वध करते हो। तुम पीर तो बने हो पर पीड़ा को नहीं समझते। अच्छी-अच्छी गजलों को सुनाकर लोगों को भरमाते हो दिन भर लोगों से रोजा रखवाते हो और रात्रि में लोगों से निर्बल पशुओं का वध कराते हो और अपने बहुत बड़ा बनते हो, यह कैसी पूजा और कैसी बन्दगी है ? क्या इससे प्रभु प्रसन्न होगा। तुम चेत जाओ नहीं तो तुम्हारा कल्याण होने वाला नहीं है जिसकौ तुम न्यायी कहते हो वह प्रभु कठोर भी है। वह दोजख में तुझे जलायेगा। अन्यथा अपने इन कर्मों को छोड़ो। वह न्यायाधीश घूस नहीं लेता है। अभी समय है सम्भल जाओ, अन्यथा दोजख में जाना पड़ेगा। सभी प्राणियों पर दया रखो, सभी प्रभु के उपजाये हुए हैं।

# रमैनी ५०

## ममता प्रकरण

**कहइत मोहिं भैल जुग चारी । समुझत नाहिं मोर सुत नारी ।।**
**बंस आगि लगि बंसहि जरिया । भरम भूलि नर धंधे परिआ ।।**

**शब्दार्थ**—कहइत–कहते हुए। भैल–हो गये। जुग–दो (संधि) लम्बा काल, युग उस संधि को कहते हैं जब एक बीतता हो दूसरा आता हो अर्थात् दोनों एक दूसरे से सटे हों इस प्रकार से भारतीय मनीषियों ने चार कालों मे एक संधि को बाँटा है। सतयुग, त्रेता युग, द्वापर युग, कलियुग। इस विभाजन के कई भेद भी हैं। भेद होते-होते कितने मन्वन्तर बन गये हैं जो पुराणों में वर्णित है इसी प्रकार से प्रतिदिन चार युग होते हैं। पूर्वाह्न सतयुग, मध्याह्न त्रेता, अपराह्न द्वापर, संध्या कलियुग। अन्तिम युग अज्ञान का द्योतक है। ऊषा काल में बड़ा शान्त एवं सुखमय जीवन रहता है इसलिए सतयुग कहते हैं, जिसमें सतगुण की प्रधानता रहती है। त्रेता को मध्याह्न इसलिए कहते हैं कि कार्य-व्यस्तता बढ़ जाती है। अपराह्न रजगुण का अभाव होने लगता है तमगुण की प्रधानता होने लगती है इसलिए उसे द्वापर कहते है। इसी प्रकार मारीच के अस्त होने पर बिल्कुल ही अन्धकार छा जाता है जो कलियुग का द्योतक है। बंस–बांस। बंसहि–बांस समूह। आगि–अग्नि। जरिया–जल गया। धंधे–जग व्यवहार में, प्रपंच में। परिआ–पड़ गया।

**सम्बन्ध**—इसके ऊपर की रमैनी में मुस्लिम अनुयायियों से कुछ प्रश्न किए गए हैं। उत्तर न मिलने पर उनके मत की भर्त्सना की गई है साथ ही बाह्य धर्माडम्बरों का विरोध भी किया गया है। हिंसा के विरोध में अहिंसा की बात भी बल देकर कही गई है। अब इस रमैनी में सन्त महात्माओं के उपदेश न समझने की बात भी चारों युगों से चली आयी है यह भी कहा जा रहा है।

**भावार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हम युग-युगान्तरों से इन मनुष्यों को

सावधान करते आ रहे हैं कि मिथ्या मत-मतान्तरों को त्यागकर सच्चे मार्ग के पथिक बनो। अनादि काल से विचार वैभिन्न के कारण अनेक मत-पंथ चलते आ रहे हैं जिसको संसार के मनुष्य पकड़े हुए हैं इन मत-मतान्तरों में अनेक अच्छी बातों के साथ कुछ अव्यावहारिक बातें भी आ गई हैं। वे चाहे कभी या किसी देश काल के लिए भले ही हितकर हों, परिस्थिति परिवर्तन के साथ कभी का धर्म, कभी अधर्म का रूप ले लेता है, जैसे शीतकाल में अग्नि प्रिय लगता है वही अग्नि ग्रीष्म ऋतु में उष्ण लगने लगता है। इसी प्रकार से सात्विक अन्न फल आदि भोजनों के अभाव में मांस, मद्य आदि का सेवन करना पड़ा हो और उससे प्राणों की रक्षा हुई हो, परिस्थितिवश यह ठीक था परन्तु अब जबकि अधिक मात्रा में अन्न उत्पन्न हो गया तो अनावश्यक निर्बल प्राणियों की हिंसा करके उनके मांस को खाना या वस्तुओं को सड़ाकर मद्य बनाकर पीना कोई औचित्य नहीं रखता है। इसी प्रकार से अज्ञान की दशा में मनुष्यों को पारिवारिक मोह भी होना स्वाभाविक है प्रायः स्त्री, पुत्र एवं धन में आसक्ति अधिक देखी जाती है परन्तु जब संत-महापुरुषों के उपदेश एवं शास्त्रज्ञान के द्वारा यह जानकारी हो जाएगी कि ये सब परिवार धन आदि दुखदायी एव अज्ञानमूलक हैं तो उन सबका मोह छोड़कर सन्मार्ग का अनुयायी बन जाना चाहिए। सद्गुरु कहते हैं कि मिथ्या व्यवहारों एवं कुत्सित विचारों को छोड़ने के लिए हम सन्त महात्मा जन प्रातः से सायं युग-युग से कहते आ रहे हैं परन्तु ये अज्ञानी मनुष्य हमारी बात मानने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं। वे कहते हैं कि यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरा धन है और यह मेरा धर्म है। ऐसा कहते-कहते जन्म-जन्म ये संसारी मनुष्य इसी प्रकार नष्ट हो गए जैसे बांस में आग लग जाती है तो वह आसपास के अपने परिवार के बांसों को जला देती है। संसार के ये अज्ञानी मनुष्य अज्ञान के कारण भूल गए हैं और उसी धंधे में लगे हैं व पड़ गए हैं जो धंधा उनको जलाने वाला है। इनको नाश करने वाला है, अर्थात् वह धंधा संसार से सम्बन्ध जोड़ने वाला है, संसार को बढ़ाने और अपने को धोखा देने वाला है।

**हसतिनी के फंदे हसती रहई। मिरगी के फंदे मिरगा परई ॥**
**लोहे लोह जस काट सेआना। तिरिया के तत्त तिरिये पै जाना ॥**

**शब्दार्थ**—हसतिनी–हस्तिनी (स्त्री वाचक)। हसती–हस्ती (पुरुष वाचक)। मिरगी–हिरणी (स्त्री वाचक)। मिरगा–मृगा (पुरुष वाचक)। लोहे–लोहा, अयस, एक उग्र धातु जो लोक प्रसिद्ध है जिससे छूरी, गड़ासा, वाहन आदि बनते हैं। तिरिया–स्त्री। तत्त–रहस्य, भेद। तिरिये–स्त्री ही। पै–वही, पद। जाना–जानना।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि इन अज्ञानी मनुष्यों को यह पता नहीं है कि यह संसार क्या है? ये स्त्री, पुत्र क्या हैं? यह धर्म मजहब क्या है? इस सत्य, असत्य को ये अज्ञानी मनुष्य नहीं समझ पा रहे हैं इसका कारण अविद्या ही हैं ये संसारी जीव उसी तरह से फँस गए हैं जैसे हस्तिनी के पीछे हस्ती फँस जाता है, जैसे मृगी के पीछे मृगा फँस जाता है। हस्ती तभी पकड़ाता है जब वह हस्तिनियों के घेरे में बैठा रहता है अथवा हस्तिनी का चित्र बनाकर फँसाने वाले सजीव हस्ती को पकड़ लेते हैं। काम-भोग की तुष्टि के लिए चित्रवत् हस्तिनी के पास हस्ती जाता है और फँसकर यावत् जीवन पराधीन हो जाता है। इसी प्रकार से बन मृग पत्नी के साथ रहने पर ही पकड़ा जाता है पत्नी को छोड़कर हिंसकों के भय से वह भागता नहीं है और हिंसक उसे मार डालते हैं। इसी प्रकार से ये संसारी मनुष्य मिथ्या सम्बन्ध में पड़कर मेरी स्त्री है, मेरा पुत्र है, मेरा धन है, कहते-कहते उन्हीं को पकड़े-पकड़े मर जाते हैं और सत्पुरुषों एवं महापुरुषों की बात को नहीं समझ पाते हैं। इनका मेल मायिक प्रपंच से ही रहता है सूत-कलत्र के रहस्य को ये जानते हैं और सूत-कलत्र भी इनके रहस्य को जानते हैं परन्तु उसमें पड़े जीवन गँवा देते हैं। जैसे लोहे के द्वारा लोहे का विखण्डन व नाश किया जाता है। उसी प्रकार से स्वजनों के द्वारा इनकी स्वयं हत्या हो जाती है।

सेयाना कहिए चतुर मनुष्यों के द्वारा चतुर मनुष्य पराजित किये

जाते हैं। वेदशास्त्र को पढ़कर एक दूसरा एक दूसरे का प्रतिद्वन्दी हो जाता है, दोनों एक दूसरे के लिए घातक हो जाते हैं। उसी प्रकार से जैसे स्त्री का मर्म स्त्री ही पहचानती है। इन संसारी मनुष्यों का ज्ञान एक सा है। अपने कोटि के ही मनुष्य की ही बात ये समझते हैं अर्थात् जिस काम्य-कर्म में एक दूसरा लगा रहता है दूसरा काम्य-कर्म वाला उसको समझ लेता है परन्तु निष्काम मनुष्यों की बात व निष्काम कर्म की बात ये न समझते हैं न मानते हैं। ये विषय पिपासु मनुष्य विषय संसर्ग से ही मारे जाते हैं।

'सेयाना' में व्यंजना और श्लेष दोनों है। यदि सेयाना का दूसरा अर्थ लिया जाय तो अर्थ होगा कि जैसे ज्ञानी पुरुष वेद शास्त्र के ज्ञान, व गुरु के उपदेश के द्वारा मोह ममता रूपी लोह को काट डालते हैं। इसी प्रकार से स्त्री रूपी भक्ति के द्वारा स्त्री रूपी माया का रहस्य जाना जाता है और भक्त उक्त रहस्य को जानकर संसार की मोह माया से परे हो जाता है। यहाँ पर 'लोह' से 'तिरिये' शब्द तक बुद्धि या ज्ञानी परक उपदेश है और यही ज्यादा समीचीन है।

साखी

**नारि रचंते पुर्ख हैं, पुर्ख रचंते नारि।**
**पुर्खहिं पुर्खा जे रचे, ते बिरले संसार ॥**

**शब्दार्थ**—नारि–स्त्री। रचंते–प्रेम करते हैं, निर्माण करते हैं। पुर्ख–पुरुष।

**भावार्थ**—स्त्री से पुरुष प्रेम करता है और पुरुष से स्त्री प्रेम करती है। यह स्वाभाविक नियम है। पुरुष प्रकृति का यह सम्बन्ध सदैव से रहा है परन्तु सद्गुरु कहते हैं कि जो मनुष्य पुरुष होकर, 'पुरुष' से ही प्रेम करता है तो ऐसा पुरुष संसार में कोई बिरला ही है, क्योंकि यहाँ पर पुरुष का दो अर्थ है 'पुर सेते इति पुरुषः' के अनुसार जो शरीर में सोता है वह पुरुष है। वह सोने वाला पुरुष परमात्मा या आत्मा है। दूसरा पुरुष जो लिंगाकार शरीर पाया है जो प्राकृतिक पुरुष है। वह यदि

उस शरीरस्थ विराजमान परम पुरुष से प्रेम करता है तो ऐसा मनुष्य संसार में दुर्लभ है, क्योंकि सारा संसार माया रूपी स्त्री में ही प्रेम कर रहा है माया के सुख को ही चाह रहा है। पश्चात् वह माया के द्वारा मारा भी जाता है इसलिए सभी मनुष्यों को चाहिए कि हृदय निवासी पुरुष को पहचाने तथा माया के निवारण का उपाय करें। यदि 'रचंते' और रचै का अर्थ निर्माण करना लिया जाय तो अर्थ होगा पुलिंग शरीर को स्त्री के द्वारा रचा जाता है और स्त्री के संयोग से ही स्त्रीलिंग वाले शरीर को रचा जाता है परन्तु जो पुरुष ज्ञान विवेक रूपी पुरुष को रचता है अर्थात् अपने अन्दर ज्ञान विवेक को उत्पन्न करता है वह पुरुष संसार में दुर्लभ है। ये दोनों अर्थ है और प्रथम अर्थ ही समीचीन है।

**विशेष**—प्रत्येक दुःखों के हेतु का निदर्शन कराते हुए सद्गुरु कहते हैं कि संसार की मोह ममता में फँसा हुआ मनुष्य सन्तों की बातों को नहीं मानता है जिसके कारण ये संसारी मनुष्य मायामय भोगों के द्वारा ही मारे जाते हैं जैसे बांस के नाश का कारण बांस, हस्ती के नाश का कारण हस्तिनी, मृगा के नाश कारण मृगी ये सब भ्रम में पड़कर मारे जाते हैं। अस्तु विवेकी सेयाने लोग विवेक रूपी लोहे से अज्ञान रूपी लोहे को काटकर पराविद्या का रहस्य जानकर अपरा के रहस्य को छोड़ देते हैं। ये सब पुरुष धन्य हैं जो इस माया से विरत रहते हैं क्योंकि वे मुक्त हो जाते हैं।

**टिप्पणी**—बीजक में कई स्थलों पर कबीर साहब चारों युगों में आने की बात कहते हैं। जिस प्रकार गीता एवं रामायण में भगवान् कृष्ण एवं भगवान् राम ने कहा है। सबसे प्रथम पौराणिक आख्यानों एवं स्मृतियों में ही ईश्वर के आने की बात कही गई है। ये आने वाले पुरुष साधु पुरुषों एवं धर्म की रक्षा करते हैं और विधर्मियों का विनाश करते हैं। इसी प्रकार कबीर साहब भी स्थान-स्थान पर युग-युग में आने की बात कहते हैं। प्रसंग बड़ा दुरुह है इस पर कुछ निर्णय देना कठिन है।

कुछ टीकाकारों ने लिखा है कि आत्म समाहित होकर एकत्व अर्थात् एक चेतन तत्त्व की भावना लेकर कबीर साहब एवं अन्य पुरुषों ने युग-युग में आने की बात कहा है परन्तु भक्त मण्डली इससे सहमत नहीं हैं, वह कहती है कि आने-जाने वाले सत्पुरुष हैं, ईश्वर हैं एवं योगी पुरुष हैं। वे भक्तों के दुख हरण के लिए समय-समय पर आते रहते हैं यहीं तक बात सीमित नहीं है वेदेतर धर्म वाले भी इसी तरह की बात कहते हैं। इसलिए यह निर्णय ज्ञानी एवं भक्त समाज पर छोड़ा जाता है। जिनकी जैसी श्रद्धा हो वैसे मानें। ऐसे तो वेद, उपनिषद् तथा ब्राह्मण-ग्रन्थों में इस तरह से जोर देकर नहीं कहा गया है। वैदिक काल के किसी ऋषि, मुनियों ने अपने बार-बार आने की बात नहीं कही है। सम्भव है मनुष्यों में आस्था, विश्वास एवं दृढ़ता उत्पन्न करने के लिए महापुरुषों द्वारा ये बातें कही गयी हों। क्योंकि आज भी लोक में अधीर व्यक्ति से बड़े पुरुष कहते हैं कि तुम निराश न हों, हम तेरे पास ही रहते हैं ऐसे वाक्यों से मनुष्यों को बड़ी आशा मिलती है और लाभ भी होता है। यों तो पहले ही कहा जा चुका है कि यह सब निर्णय भक्त एवं ज्ञानी जन करें, अपना तो मत यही है।

## रमैनी ५१

### परम तत्त्व प्राप्ति प्रकरण

**जाकर नाम अकहुआ रे भाई। ताकर काह रमैनी गाई ॥**
**कहै के एक तातपरज है ऐसा। जस पंथी बोहित चढ़ि वैसा ॥**
**है किछु रहनि गहनि की बाता। बैठा रहै चला फुनि जाता ॥**
**रहै बदन नहिं स्वान सुभाऊ। मन अस्थिर नहिं बोले काऊ ॥**

**शब्दार्थ**—जाकर–जिसका। नाम–संज्ञा। अकहुआ–अकथनीय, निर्वाच्य। रे–हे। भाई–बंधु। ताकर–तिसका, उसका। काह–क्या। रमैनी–गाथा, कीर्तन, भजन, कथा। फुनि–पुनि। तातपरज–तात्पर्य, अर्थ, मत-

साखी

**तन रति मन जात है, मन राता तन जाय।**
**तन मन एकै होय रहे, तब हंस कबीर कहाय ॥**

**शब्दार्थ**—तन-शरीर। रति-अनुरक्ति, अत्यधिक प्रेम भावना, आसक्ति राता-लगा रहता है, अत्यधिक अनुरक्ति। हंस-शुद्ध, जीवात्मा, निर्मल मन वाला।

**भावार्थ**—उस रहनी-गहनी को पालन करने वाले पुरुष का तन संसार में तो अवश्य रहता है। देखने में संसार में लगा रहता है पर उसका मन संसार से अलग हो चुका होता है। मन तो उसका परम तत्त्व में लग चुका होता है। तन चाहे कही रहे उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अब तो तन और मन रहनी-गहनी के द्वारा अर्थात् आचरण के द्वारा एक हो चुके हैं अब क्या कहना है? साहब कहते हैं कि जिसका मन तन एक हो जाता है वही व्यक्ति शुद्ध अधिकारी एवं आत्म तत्त्व वा परमेश्वर भजन का अधिकारी कहा जाता है।

**विशेष**—परमतत्त्व अकथनीय है। ऊपर-ऊपर उसकी गाथा गाना, नाम लेकर चिल्लाना आदि से कोई लाभ होने वाला नहीं है। मेरा तात्पर्य यह है कि जैसे कोई पंथी नाव-नाव चिल्लाते रहे तो वह पार नहीं हो सकता, जब तक कि वह नाव पर न बैठे। इसी प्रकार से बिना आचरण, व्यवहार, रहनी-गहनी के मात्र कथा कहने से कुछ होने वाला नहीं है और न प्रभु उस पर चित्त ही देता है। जब किसी ने उसको प्राप्त किया है आचरण करके तो। श्वानवत् घर-घर घूमने से देवी-देव, तीर्थ-व्रत में भटकने से, कभी मजार वा डीह से दुआ माँगने से कुछ होने वाला नहीं है। जब तक तन-मन एक न हो जाय, चंचलता चली न जाय तब तक कोरा वाचक ज्ञान है कुछ फलदायी होने वाला नहीं हैं।

**टिप्पणी**—यदि श्वान का 'स्वांग' पाठ रखा जाय तो अर्थ का कोई ताल मेल नहीं है। इसी प्रकार वदन का यदि शरीर से अर्थ लगाया जाय तो वाणी के साथ अर्थ नहीं दौड़ता, न तो उसका तात्पर्य ही बैठता

है। प्रायः टीकाकार जैसा पाठ पाये अर्थ कर दिये उस पर विचार नहीं किये, न हस्तलेखों द्वारा पाठों का संशोधन ही किए जिसके कारण सद्गुरु की वाणी का अर्थ उत्तम नहीं निकला। यहाँ हम अपनी तरफ से कोई पाठ परिवर्तन नहीं किये हैं हमें जो पुराने से पुराने हस्तलेख मिले हैं उनमें जो पाठ मिला है वही रखा है।

यह सद्गुरु की वाणी है इसमें हस्तक्षेप करना कर्तव्य नहीं है पर इतना अवश्य कहूँगा कि अब तक बीजक पर जितने कार्य हुए हैं, उसमें दो एक को छोड़कर शेष अधूरे ही रह गए हैं।

## रमैनी ५२

**जेहि कारन सिउ अजहु वियोगी। अंग भभूति लाय भौ जोगी ॥**
**सेस सहस मुख पार न पावै। सो अब खसम सहित समुझावै ॥**
**ऐसी विधि जौ मोकहं धावै। छठये माह दरस सो पावै ॥**
**कवनेउ भाउ देखाई देऊ। गुपुतै रहौं सुभाउ सभ लेऊं ॥**

**शब्दार्थ**—जेहि–जिस। कारन–लिए। अजहूँ–आज भी। वियोगी–विकल, विरागी वैराग्य युक्त, त्यागी। अंग–शरीर। भभूति–(विभूति), राख। लाय–लगाकर। भौ–हुए। जोगी–समाधिस्थ, मनो निग्रह, चित्त रोकने की क्रिया, सेस–शेषनाग, पुराणों के अनुसार जो तीनों लोकों के भार को अपने ऊपर रखे हुए हैं, अनन्त शक्ति जो प्रलय काल होने पर बचा रहता है वह शेष। सहस–अनेक हजार, सहस्त्र। पार–असीमित, शक्य दुर्गेय, पता, प्राप्ति, जानकारी। सो–उस, वह। खसम–स्वामी, जगदीश। सहित–प्रेम के साथ, हित के साथ, सत्य। समुझावैं–बतावैं। ऐसी विधि–इस विधि, प्रकार। जौ–जो। मोकहं–मुझको। धावै–ध्यावै उपासना करे, चिन्तन करे। छठये–छठे। माह–मास। दरस–दर्शन। पावै–प्राप्त करे। कवनेउ–किसी प्रकार, किसी रूप में। देखाई–दर्शन। देऊ–दूँगा। गुपुतै–गुप्त, अप्रत्यक्ष रूप में। रहौं–रहकर। सुभाउ–स्वभाव। सभ–सभी प्रकार की। लेऊँ–लेता हूँ।

**सम्बन्ध**—आत्म प्राप्ति की महत्ता तथा उसकी प्राप्ति का उपाय बतलाकर अब आगे उसकी प्राप्ति की कठिनाई भी कही जा रही है।

**भावार्थ**—वह परम तत्व, जब तक मन का विच्छेद संसार से नहीं हो जाता है तब तक प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि भगवान शंकर जैसे योगी उसकी प्राप्ति के लिए आज तक विरक्त बनकर घर-द्वार छोड़कर शरीर में विभूति लगाकर वियोगी बने हुए हैं। अपना सारा राज-पाट छोड़ कर उस परम तत्त्व की प्राप्ति के लिए अभी तक जीवन बिता रहे हैं (त्याग रूप में) एवं श्मशान की खाक छान रहे हैं। वह परम प्रभु अपार है असीम है, भगवान शेषनाग अपने हजार मुखों से भी उसका गुणगान करने में असमर्थ हैं, वे भी उस परम प्रभु की महिमा नहीं जान पाये। अब उसी परम तत्त्व परमप्रभु जगतस्वामी की बात आत्मज्ञान सहित हम तुम मनुष्यों को समझा रहा हूँ। यदि तुम मनुष्यलोक के निवासी जिस विधि से मैं कहता हूँ उस विधि से मुझ आत्म स्वरूप परम तत्त्व का चिन्तन करोगे, अपने तन-मन को एक करके चित्ति स्वरूप की उपासना करोगे, तो निश्चय ही तुम छठे मास में उस परम प्रभु परमात्मा का दर्शन पा जाओगे। मैं परमात्मा किसी भी प्रकार से तुम्हें दिखायी दूँगा और गुप्त रहकर तुम्हारा योग क्षेम सभी प्रकार से करता रहूँगा। यहाँ पर महावाक्यार्थानुसार कहा गया है 'ब्रह्मविद ब्रह्मोभवति, अर्थात् कबीर साहब ब्रह्म से एकाकार होकर उस परम तत्त्व से अभिन्न व अभेद होकर दर्शन देने की बात कह रहे हैं। अब वे ब्रह्म हो चुके हैं, ब्रह्म से अभेद हो चुके हैं। वे कहते हैं कि प्रभु अचिन्त्य होने पर भी भक्तों की श्रद्धा के कारण कार्यब्रह्म के रूप में प्रकट होकर दर्शन देता है और अपने उपासक का योग-क्षेम व रक्षण भी करता है। वह गुप्त रहकर उसकी साधना की परीक्षा भी करता रहता है। यहाँ किसी को घबड़ाने की आवश्यकता नहीं है यह बहुत मार्मिक विषय है। इसको कोरे पुस्तक व शास्त्र के बकवादी लोग जो मात्र बकवाद करते हैं जो निर्गुण और सगुण के झगड़े में पड़े रहते हैं कदापि जान नहीं सकते। यह विषय साधक का

है वही जान सकता है क्योंकि हिंडोले में कहा गया है, हे प्रभु ! आप निर्गुण थे सगुण होकर आप भी परेशानी में पड़े हैं।

यहाँ 'ऐसी विधि' में अजहद स्वार्था है, विधि कहकर ध्यान की तरफ संकेत किया गया है। इसमें खसम अर्थात् स्वामी की उपासना सहित आत्मतत्त्व चिन्तन की बात निहित है। खसम बहुव्यंजना वाला शब्द है तथा उससे आत्म तत्त्व विषय की ओर संकेत है। इसलिए अजहद स्वार्था का अर्थ हुआ खसम के सहित, अर्थात् ईश्वर-भक्ति के सहित आत्म तत्त्व का चिन्तन। जब तक ईश्वर और जीव में अभेदत्व प्राप्त नहीं होगा तब तक उपासना नहीं बन सकती और विधि वही अभेद चिन्तन की है। जब अभेद चिन्तन होता है तब वह बहुत अल्प काल में ही एकाकार हो जाता है। अभेद में भी श्लेष है। एक अर्थ 'अभेद' का यह भी है कि जहाँ ईश्वर और साधक दो ही रहें तीसरी माया का चिन्तन न रहे। दूसरा 'अभेद' वह है जहाँ जीव ब्रह्म की एकता का चिन्तन हो, ऐसा चिन्तन उत्तम जिज्ञासुओं के लिए अनुचिन्तनीय है। यहाँ पर मध्य अभेद हैं। केवल ईश्वर अर्थात् सबल ब्रह्म की उपासना का निर्देश दिया गया है क्योंकि सबल ब्रह्म ही दर्शन दे सकता है, वहीं भक्तों का वारण भी करता है। सबल ब्रह्म की उपासना निकृष्ट नहीं मानना चाहिए। जब तक सबल ब्रह्म की उपासना नहीं होगी तब तक निर्गुण की भी उपासना नहीं होगी। इसलिए प्रथम सद्गुरु सबल ब्रह्म की उपासना बता रहे हैं। यदि निष्ठा-पूर्वक तन-मन एक करके सबल ब्रह्म की उपासना की जाय तो साहब कहते हैं छः महीने में ही वह साधक को दर्शन दे देगा। भक्तों के दुःख सुख में वह शामिल रहेगा यद्यपि कुछ अदृष्टि टीकाकार इससे सहमत नहीं होंगे पर तथ्य को छिपाया नहीं जा सकता है।

साखी

**कहैं कबीर पुकारि कै, सभका इहै बिचार।**
**कहा हमार मानइ नहिं, किमि छूटे भ्रम जार॥**

**शब्दार्थ**—पुकारि—चिल्लाकर, सबल स्वर में। इहै—यही। बिचार—

उपदेश, सर्वमान्य सत्य। किमि–कैसे। भ्रम जार–भ्रम जाल, प्रपंच, जग–व्यवहार।

**भावार्थ**—इस बात को सद्गुरु कबीर सस्वर पुकार कर समाज के समक्ष कह रहे हैं कि यह सबका विचार है, केवल मेरा ही विचार नहीं है। जितने साधु-सन्त, ऋषि-मुनि हुए हैं वे सब इसी सत्य की ओर संकेत किये हैं परन्तु अज्ञानी मनुष्य गुरु विमुख व्यक्ति हमारी बात को नहीं मानता है। वह कहता है कि कबीर तो नई बात कह रहे हैं। भला जब तक वह मेरी बात नहीं मानेगा तब तक इस संसार के घोर भव-बन्धन से, महा भ्रम जाल से कैसे छूट पायेगा, अर्थात नहीं छूट पायेगा।

**विशेष**—यहाँ सद्गुरु ने कहा है कि वह तत्त्व अकथनीय है जिसकी गाथा मात्र गाना सार्थक नहीं हो सकता, जब तक कि तन-मन एक करके उसका ध्यान नहीं किया जाएगा तब तक न चित्त एकाग्र होगा और न ध्यान में प्रगाढ़ता ही आयेगी। बिना प्रगाढ़ता के चित्त के दोष भी नहीं मिटेंगे और जब तक चित्त में दोष नहीं मिटेंगे तब तक सात्विक गुणों का आविर्भाव नहीं होगा। जब तक सात्विक भाव उदित नहीं होगा तब तक वृत्ति अन्तर मुखी नहीं होगी। आशय यह है कि जैसे नाव के द्वारा उतरने वाला व्यक्ति ही नदी को पार कर सकता है, केवल नाव के स्मरण मात्र से पार नहीं जा पाता है। इसी प्रकार से प्रभु प्राप्ति में रहनी-गहनी के साथ तन-मन एक करके उपासना की बात कही गई है। साथ ही श्वान वत् अनस्थिर चित्त को स्थिर करने की बात भी उल्लिखित है। आगे यह भी कहा गया है कि यदि तन की रति संसार में सिर्फ देखने मात्र की है और मन तादात्म्य हो चुका है तो उस तादात्म्यता में चित्त शान्त हो जाता है, तब उस अवस्था में आत्म पिपासु साधक उस अचिन्त्य की तरफ पूर्ण रुप से अग्रसर होकर परम व्योमिनो में सदा-सदा के लिए अपने को लीन कर लेता है।

# रमैनी ५३

**महादेव मुनि अंत न पाया । उमा सहित उन जनम गमाया ।।**
**ऊनहूँ ते सिध साधक होई । मन निहचल कहु कैसे होई ।।**
**जब लग तन मा आहै सोई । तब लग चेति न देखै कोई ।।**

**शब्दार्थ**—महादेव–सबसे बड़ा देवता । अंत–रहस्य, भेद, पार । उमा –पार्वती । उन–उन्होंने । गमाया–बिताया । ऊनहूँ–उनसे भी । सिध–साधक जो साधना कर रहा है । निहचल–निश्चल, अचल, स्थिर । कहु–कहो मा–में । आहै–है । सोई–(सं०) तत् का परिवर्तित रूप ।

**सम्बन्ध**—इसके पहले तीसरी रमैनो में उस परमतत्त्व को अकथनीय कहा गया है पुनः कहा गया है कि उसी तत्त्व को प्राप्ति के लिए शिव जी जैसे लोग भी संत-महात्मा विरक्त योगी बनकर भरमते फिरते हैं । उसी 'अकहुआ' अकथनीय की महिमा पुनः बताते हुए सद्‌गुरु कहते हैं कि हे सन्त जन सुनो ।

**भावार्थ**—वह अचिन्त्य, सीमा से परे तत्त्व, सामान्य लोगों की कौन कहे बड़े-बड़े ज्ञानी योगी लोगों के भी समझ से परे है । बड़े से बड़ा व्यक्ति, मनन शील मुनि व वैज्ञानिक व्यक्ति भी किसी वस्तु की खोज करेगा और उसका पता लगाना चाहेगा तो वह कोई ठोस द्रव्य होगा । अणु से अणु महा परमाणु क्यों न हो वह जब भी अन्वेषित होगा तो द्रव्य के रूप में ही उसकी खोज हो सकेगी परन्तु जो द्रव्य नहीं है निरवयव है जो मात्र आस्ति है उसका रहस्य व पता लगाना केवल हास्यास्पद ही होगा । आज से सहस्त्रों वर्ष पहले जिसकी खोज करते-करते महादेव जी एवं मुनि समाज भी भेद नहीं पाया । मुनि शंकर देव जिन्होंने श्मशान की खाक छाना जंगलों के फल-फूलों का सेवन कर उस तत्त्व की खोज में लगे रहें कि वह तत्त्व क्या है, कितना है, उसकी सीमा क्या है, क्या वह पृथ्वी जैसा है, पवन जैसा है, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा या नक्षत्रों जैसा है । ऐसा वह नहीं है यह बात बहुत पहले ही कही जा चुकी है तो शरीरधारी महादेव जी उस असीम को कैसे समझ सकते हैं कि वह असीम कहाँ तक है ? वे

उमा के साथ तप करते-करते उस परम तत्त्व प्रभु का रहस्य जानने के लिए अपना जन्म बिता दिये। खोजते-खोजते शरीर का अन्त हो गया, परन्तु वह अतीन्द्रिय पदार्थ इतना ही है पता नहीं चला।

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैन मूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत् ॥२॥
न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाममहद्यशः ॥३॥
(यजुर्वेद अध्याय २२, पृ० ५२६)

अर्थात् जो वह प्रकाश स्वरूप पुरुष है न उसको नीचे ग्रहण किया जा सकता है, न मध्य में न ऊर्ध्व में। न उसके समान कोई दूसरी वस्तु है तब भला शरीर धारी शंकर जी आदि मन, बुद्धि एवं चरम चक्षुओं से कैसे जान सकते हैं ? जब महादेव जी नहीं जान सके कि वह परमतत्त्व कैसा है तो अन्य की क्या तुलना है जिनके समान कोई भी सिद्ध, साधक नहीं हुआ है जितने भी तन्त्र, ज्ञान-विज्ञान उत्पन्न हुए हैं, जो भी विद्यायें उत्पन्न हुई हैं वे सब तो शंकर जी के ही डमरू से निकली हैं। शंकर जी से ही उत्पन्न हुई हैं। उन विद्याओं को पढ़कर कोई कहता है कि मैं उसको जान गया हूँ अथवा मैं उसको जानता हूँ केवल पाण्डित्य के प्रदर्शन मात्र से भले वह कुछ कह लें, पर उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है क्योंकि कहने वालों के पूर्ववर्ती लोग पहले ही कह चुके हैं परमतत्व की 'न इति न इति'। सद्गुरु कहते हैं कि जब ऐसी बात है तो मन में निश्चय कैसे किया जाय कि ये लोग सही कहते हैं ? केवल कहने मात्र से ही तो स्थिरता हो नहीं सकती। इसलिए हम तो कहते हैं कि मनुष्य ज्ञान बघारने के बजाय सुमिरन भजन और उसकी उपासना करे उसके लिए सर्वश्रेष्ठ यही होगा। ऊपरी बवण्डर के फेर में न पड़कर वह तब तक इसकी प्राप्ति का प्रयत्न करे एवं खोज करे जब तक वह इस मानव शरीर में विराजमान है और तभी तक उस परम तत्त्व की अनुभूति मनुष्य कर सकता हैजब तक कि वह मानव शरीर में है। जब मानव शरीर में मनुष्य नहीं चेतेगा और उसको प्राप्ति का उपाय नहीं करेगा तो अन्त में क्या चेतेगा ?

**तब चेतिहो जब तेजिहौ प्राना । भया अयान तब मन पछताना ।।**
**इतना सुनत निकट चलि आई । मन विकार छूट नहीं भाई ।।**

**शब्दार्थ**—चेतिहो–सावधान, चेतोगें । तेजिहो–तजोगे, त्यागोंगें । प्राना–प्राण, जीवात्मा । भया–हुआ । अयान–अज्ञान, अजान । पछ-ताना–पश्चाताप । निकट–समीप ।

**भावार्थ**—हे मानव ! यदि तुझे सावधान होना है, उस परम तत्त्व के लिए जागना है, खोजना है तो अभी खोज ले । तूँ तब क्या खोजेगा और चेतेगा जब तेरे प्राण–पखेरु इस नर तन से उड़ जायेंगे । तब तू पशु आदि योनियों में जाने के कारण अयान बन जाएगा, ज्ञान से शून्य हो जाएगा तू कुछ नहीं कर पायेगा क्योंकि मानवेतर योनियों में न तुझे ज्ञान होगा न आत्म प्राप्ति होगी । यह बात सुनने वाला व्यक्ति संसार के महापुरुषों व सन्त-महात्माओं के पास आता है, उपाय पूछता है परन्तु अन्त अवस्था आने पर मन इतना विकारवान हो गया होता है कि मन की वृत्तियाँ बिल्कुल संसार में लगी रहती हैं इसलिए उसके मन के विकार अन्त में छूट नहीं पाते हैं । कितना भी अमृत रूपी उपदेश उसको सुनाया जाय प्राण कण्ठगत होने पर वह सब निष्फल है इसलिए शक्ति सामर्थ्य रहते हुए चेतना चाहिए तभी कुछ वस्तु हाथ लगेगी अन्यथा कुछ मिलने को नहीं है ।

साखी

**तीनि लोक मुआ कउआई के, छूटि न काहुकि आस ।**
**एकै अंधरे जग खाया, सभका भया निपात ।।**

**शब्दार्थ**—मुआ–मृत, मर गया । कउआई के–भौचक्का होकर, किंक-र्तव्यविमूढ़ होकर, ऊहापोह की स्थिति में । आस–आसक्ति, वासना, कामना । अंधरे–अविद्या, प्रकृति, मन । निपात–विनाश, मरण ।

**भावार्थ**—इस प्रकार से वृद्धावस्था में जब कुछ करने-धरने की शक्ति न रही सदुपदेश को सुनकर कोशिश बहुत किया पर मन के विकार नहीं छूटे ऊहापोह की स्थिति में लगा रहा और इस प्रकार की ऊहापोह

की स्थिति में तीनों लोकों के मनुष्य मर गए और मर रहे हैं परन्तु इस संसार की आसक्ति किसी से छूट नहीं सकी। सभी मनुष्यों को एक अंधा अज्ञान युक्त मन वा माया प्रकृति सारे संसार को खा गयी। जिससे पूरे समाज का विनाश हो गया। यहाँ 'अंधरे' से तात्पर्य प्रकृति माया से है। क्योंकि दर्शन में प्रकृति को अन्धी बताया गया है। 'अन्धरे' का अर्थ प्रकृति वा माया मानने पर अर्थ होगा प्रकृति वा माया सारे संसार को निगल गयी। जिससे सारे लोग विनाश को प्राप्त हुए।

**विशेष**—यह परमतत्त्व वा आत्मतत्त्व इतना सूक्ष्म है, इतना बारीक है कि महादेव से लेकर बड़े-बड़े सिद्ध, साधक, संन्यासी लोग खोजते रहे परन्तु उसके वाह्य स्वरूप का पता किसी को नहीं चला। तब भला यह अज्ञानी मनुष्य बिना साधन सामर्थ्य वाला क्या समझ पायेगा? इसलिए दूर का उड़ान न मारकर, जब तक स्वस्थ है, जवान है अपने हृदय-रूपी कन्दरे में उसकी प्राप्ति कर लें और माया-मोह में सोने से जग जाय। चौथेपन में चेतना चाहोगे तो चेत नहीं पाओगे। थोड़े दिन में प्राण-पखेरू उड़ जायेंगे, तब अन्त में पछताना पड़ेगा। पशु आदि योनियों में चले जाओगे। जहाँ तुझे कुछ भी प्राप्ति नहीं होगी। अन्त के चेतने से कोई चेतता नहीं, झूठी मोह ममता में पड़कर नष्ट हो जाता है और यह प्रकृति-माया अपने में आत्मसात कर लेती है।

# रमैनी ५४

## देह क्षणभंगुर प्रकरण

**मरि गौ ब्रह्मा कासी क वासी। सीवा सहित मूये अभिनासी॥**
**मथुरा के मरिगो क्रेस्न गुआरा। मरि-मरि गये दसो औतारा॥**
**मरि-मरि गये भगति जिन्ह ठानी। सरगुन मा निरगुन जिन्ह आनी।**

**शब्दार्थ**—गौ—गया। ब्रह्मा—सृष्टि का मूल पुरुष, गायत्री का ज्येष्ठ लड़का। कासी क—प्रकाश देने वाला, प्रकाशक, सूर्य, वाराणसी, काशी। वासी—निवासी। सीवा—पार्वती। अभिनासी—शिवजी, शंकर। मथुरा—भगवान कृष्ण की जन्मभूमि। क्रेस्न—श्रीकृष्ण। गुआरा—गोप।

औतारा–अवतार, मत्स्य, कच्छप, बाराह, नरसिंह, बामन, परशुराम जी, राम, कृष्ण, बुद्ध, कलंकी। ठानी–अनुष्ठान किया, सेवा पूजा। सरगुन–गुण सहित, कार्य ब्रह्म। निरगुन–चिति ब्रह्म। आनी–लाये।

**सम्बन्ध**—पहले परमतत्त्व की महत्ता दिखलाकर, उसके बारे में पता लगाना और पूर्णरूप से उसको जानने का प्रयत्न निरर्थक और अनावश्यक बतलाकर, उसके भजन-पूजन की विशेषता बताई गयी है। माया जनित सुखों का परित्याग कर अज्ञान-अन्धकार से जागने की चेतावनी दी गयी है।

**भावार्थ**—मनुष्य पहले नहीं चेतता है, जब शरीर थक जाता है, जब दुखों का बोझ शिर पर लद जाते हैं तब चेतने की बात करता है। साहब कहते हैं कि रे मूर्ख! वे सब लोग, जो बड़ी आयु को धारण करने वालों में थे, जो इस संसार को बसाने वालों में थे, उनका शरीर तो आज देखने में नहीं आता है। जो ब्रह्मा प्रकाशरूपी ज्ञान को वेदों के द्वारा लोगों को प्रदान किया वे भी आज मूर्त रूप में तेरे सामने नहीं हैं। ब्रह्मा के किये हुए कर्मकाण्ड के अनुसार वे ब्राह्मण लोग भी आज नहीं हैं जो बड़े-बड़े यज्ञों में होता का कार्य करते थे। अर्थात् 'ब्रह्मा' का पद लेते थे और यज्ञों का निदर्शन करते थे। काशी में रहकर उपदेश करते थे वे यज्ञों के ब्रह्मा भी तेरे सामने नहीं हैं। पार्वती के साथ तप करने वाले भगवान् शंकर को भी आज तू नहीं देख रहा है। उनकी भी पंच भौतिक शरीर आज मृत हो चुकी है। इसी प्रकार से मथुरा में जन्म लेने वाले जगत प्रसिद्ध भगवान् कृष्ण चन्द्र भी जिनको लोग गोप कहते थे या गोपालों के राजा कहते थे, वे भी देखने के लिए आज तेरे सामने नहीं मिल रहे हैं। उनका भी पंच भौतिक शरीर पंचभूतों में विलीन हो गया। यहीं तक नहीं तुमको स्मरण होना चाहिए वे सब लोग भी आज दिखाई नहीं दे रहें हैं जो प्रभु के दस अवतार गिने जाते थे। वे मच्छ, कच्छ, बाराह, नरसिंह, बावन, परशुराम जी, श्री रामचन्द्र, कलंकी, भगवान बुद्ध ये सब के सब संसार से विदा हो गये हैं और वे लोग भी नहीं दिखायी देते हैं

जो इन दस अवतारों की बातों पर चलते थे, जो इनके सेवक थे। तो भला कहो वे विभीषण कहाँ हैं, वे हनुमान, वे सुग्रीव, अंगद कहाँ हैं ये सब तेरे देखते-देखते विलीन हो गए हैं। जो पवित्र आत्माएँ थीं जिन्होंने भक्तिभाव से प्रभु का स्मरण किया जिन्होंने उनकी भक्ति का अनुष्ठान किया वे भक्त आत्माएँ भी आज नहीं हैं। जो अपने से भिन्न मानकर प्रभु में गुणों का आरोपण कर उनकी उपासना करते थे वे भक्त जन, वे उपासक जन और जो परमेश्वर को गुणों से भिन्न मानकर 'अहं ब्रह्मास्मि' का जप करते थे जिन्होंने उस सगुण में से निर्गुण को लाया अर्थात् निर्गुण की उपासना चलाई जैसे सुदामा जी, विदुर जी, बल्लभाचार्य, रामानुजाचार्य, सुरेश्वराचार्य, शंकराचार्य क्या इनमें से कोई तेरे सामने हैं। रे पापात्माओं ! इतने पर भी तो तुम चेत कि बड़े से बड़े यहाँ से कूँच कर गए उनके चले जाने से यह धरती शून्य पड़ी हुई है। तेरे मरने पर ता कोई नाम लेवा भी नहीं रहेगा इसलिए शीघ्रातिशीघ्र चेतो अन्यथा सब अकारण ही चला जाएगा।

साखी

**नाथ मछिंदर वांचे नहीं, गोरख दत्त अउ बेयास।**
**कहैं कबीर पुकारि के, इ सभ परे काल की फाँस।।**

**शब्दार्थ**—नाथ–सिद्धों का एक सम्प्रदाय, जिसको लोग सिद्ध सम्प्रदाय कहते हैं जो बुद्ध सम्प्रदाय से निकला है। मछिंदर–मत्स्येन्द्र नाथ, जो हठयोग के प्रवर्तक माने जाते हैं। गोरख–गोरखनाथ, आदि नाथ, मत्स्येन्द्र नाथ के शिष्य। दत्त–दत्तात्रेय, महर्षि अत्रि के पुत्र। बेयास–वेदव्यास, जिन्होंने पुराण, स्मृति, महाभारत आदि ग्रन्थों का संकलन व निर्माण किया हैं। काल–समय, मृत्यु। फाँस–बंधन, फन्दा।

**भावार्थ**—रे पापात्मा ! तुझे यह पता चल गया होगा कि ब्रह्मा और शंकर सहित दस अवतार भी आज तेरे सामने नहीं हैं और वे आदि नाथ, मत्स्येन्द्र नाथ जिन्होंने हठयोग का आविष्कार किया जिसके बल से सैकड़ों वर्ष जीवित रहे, क्या वे बचे हुए हैं, क्या तूं उनकी शरीर को आज देख

रहा है। उनसे भी बढ़े-चढ़े उनके सुशिष्य गुरु गोरखनाथ जो जो सभी सिद्धियों को प्राप्त कर लिये थे जो कायाकल्प करते थे क्या तूँ सशरीर उन्हें देख रहा है ? क्या तूँ महादिगम्बर के नाम से विख्यात महायोगी गुरु दत्तात्रेय को देख रहा है जो वर्षों तक समाधि में लीन रहते थे। क्या तूँ एक ओंकार से चारो वेदों का विभाजन करने वाले महर्षि व्यास जी को देख रहा है जिन्होंने स्मृतियाँ बनायीं, महाभारत की रचना की जिनका साहित्य आज संसार के कोने-कोने में व्याप्त है। रे अज्ञानी मूर्ख ! मैं पुकार कर चिल्ला-चिल्ला कर कहता हूँ कि उक्त इन सब महापुरूषों का शरीर भी समय आने पर काल-कवलित हो गया। इस विनश्वर संसार में जो भी जन्म लिया, जो भी आया चाहे वह महापुरूष हो, चाहे वह योगी हो, चाहे वह अवतार हो, सिद्ध हो, वैज्ञानिक हो किसी के भी शरीर को भगवान यम ने आशीर्वाद में नहीं छोड़ा। सभी के शरीर को अपने मृत्यु-पाश में फंसा कर पंचभूतों में अन्तर्निहित कर दिया। तू कहता है कि चौथेपन में भजन करेंगे अभी बाल-बच्चों को देखना है धन बटोरना है, याद रख ! संसार में कोई रहने वाला नहीं है।

**विशेष**—स्मरण रहे कि अज्ञानी मनुष्यों को चेताने के लिए महापुरूष अनेक प्रकार की युक्तियों एवं उदाहरणों द्वारा चेताते हैं व सत्यमार्ग पर लाते हैं। इसी प्रकार के आख्यान महाभारत व शिवपुराण व अन्य पुराणों में पाये जाते हैं और शोकाकुल मनुष्यों को चेताये गए हैं। अर्थ यह है कि मनुष्य पहले से ही सत्कर्म करके अपना विकास करें। सच्चाई के साथ रहे और अपने को पूरा सुधार ले। इस प्रकार वह आत्म ज्ञान प्राप्त कर ले नहीं तो वह भी मर जाएगा ओर अन्त में पछताएगा।

## रमैनी ५५

**गये राम अउ गये लछमना। संघ न गई सीता ऐसी धना ॥**
**जात कौरवे लागू न बारा। गये भोज जिन साजल धारा ॥**

**गये पंडौ कुंता ऐसी रानी । गये सहदेउ जिन बुधि मति ठानी ॥**
**सरब सोन की लंक उठाई । चलत बार किछु संग न लाई ॥**

**शब्दार्थ**—राम–अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र । लछमना–लक्ष्मण, वही महाराजा दशरथ के पुत्र । संघ–साथ । सीता–राजा जनक की कथित पालिता पुत्री । ऐसी–इस प्रकार की । धना–धनिया (रे०) धन्य, पातिव्रत स्त्री, दारा । जात–जाते । कौरवे–कुरु वंशीय क्षत्रियों को । बारा–समय, दिन । लागू–बीता, समय का हल्का क्षण । भोज–उज्जैन नगरी के राजा भोज । साजल–सजाया । धारा–धारा नामक नगरी जो उज्जैन के पास है । पंडौ–पाण्डु के पाँचो पुत्र युधिष्ठर आदि । कुंता–पाण्डु की धर्म पत्नी रानी–साम्राज्ञी, राजमाता । सहदेउ–माद्रि द्वारा उत्पन्न पाण्डु के पुत्र । बुधि–बुद्धि, वर्तमान स्थिति में जिससे काम लिया जाता है वह सामान्य बुद्धि । मति–भविष्य में काम करने वाली बुद्धि । ठानी–प्रयोग, अनुष्ठान । सरब–सब, सभी प्रकार से । लंक–लंका, रावण की नगरी । उठाई–बनाई । लाई–ले गये ।

**सम्बन्ध**—अज्ञानी मनुष्यों को विकल देखकर सद्गुरु कबीर बहुत से युक्तियों द्वारा समझाते हुए पुनः उसी बात को अधैर्य युक्त पुरूष से कह रहे हैं ।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि मेरे बहुत कहने पर भी तुझे ज्ञान नहीं हो रहा है । हमारा पुत्र मर गया, हमारी पत्नी हमसे छिन गई, हमारा धन हमसे लुट गया, हमारा भाई मर गया । रे मन्दमते ! क्या हाय-हाय कर रहा है ? तुम्हारे से जो लक्षगुना अच्छे थे जिनके लिए सारे विश्व के लोग क्षुब्ध हो गये थे जिनको सब ईश्वर मान लिए थे इस असार संसार में वे श्री रामचन्द्र जी एवं उनके परम प्रिय आज्ञाकारी भाई श्री लक्ष्मण जी आज तुम्हें कहीं दिखायी दे रहें हैं ? वे भी आज इस मृतलोक को छोड़कर चले गए । जिनके राज्य की गुण गाथा आज भी लोग गाते हैं जिनके राम राज्य की स्थापना का प्रयत्न आज भी किया जा रहा है परन्तु उनको भी संसार देख चुका है । हे दुर्मते ! जिनकी परम सुन्दरी पतिव्रता, लोक

विख्यात आचरण वाली पत्नी सीता, जो परम देवी स्वरुपा थी वे भी भगवान राम के साथ नहीं जा सकी। रे पापात्में ! क्या तुम यह नहीं सुन चुका है कि महाभारत की लड़ाई में दुर्योधन आदि सौ भाईयों को जाते विशेष समय नहीं लगा। वे लोग तो बड़े-बड़े शक्तिमान और छली-वली थे। वे लोग भी धराधाम को छोड़ कर चल बसे। क्या तुम महाराज भोज को नहीं सुन चुका है, जिन्होंने अतीव सुन्दर धारा नगरी को वसाया था, जो बड़े शूर-वोर थे, विद्वान थे, बहुत बड़े दानी थे, प्रजापालक थे जिनके राज्य में कोई मूर्ख नहीं था, सभी धन-धान्य सम्पन्न विद्या-प्रेमी थे उस महाराजा भोज को कहीं देख रहा है ? रे मूढ़ मते ! भला कहो वे पाण्डव लोग पांचों भाई जो शूर-बीर थे, धर्मात्मा थे, जो युधिष्ठिर कभी झूठ नहीं बोलते थे, करुणा की प्रतिमूर्ति थे, वे भी नहीं रहे। उन पाण्डवों की माता श्रीमती कुन्ती देवी जो पंच कन्याओं में गीनी जाती थी, जो धर्म के गूढ़ बातों को जानती थी जिनका बड़ा नाम था, क्या उन राज-माता कुन्ती देवी को तुम देख रहे हो ? वे भी इस संसार से कूच कर गयी तथा उनके पति पाण्डु महाराज कहीं हैं क्या तुम उन सहदेव को देख रहे हो, जो ज्योतिष के महान पण्डित थे जो नक्षत्रों का ज्ञान रखते थे गणित के मर्मज्ञ थे जिन्होंने गणित विद्या में बहुत योगदान दिया था जो बहुत बड़े पण्डित माने जाते थे, शास्त्रों के अध्येता थे जिन्होंने नवीन, फलित ज्योतिष का अनुष्ठान तथा प्रयोग किया था वे महाराजा पाण्डु के पुत्र भी पंचतत्त्व को प्राप्त हो गये। अरे ! अज्ञ मति ! क्या तू लंका का नाम सुना है जो सब प्रकार से सोने की उठाई गई थी जिसमें रावण जैसा सम्राट रहता था। जिस रावण का लोहा देव, दनुज नर, नाग, पिशाच सब मानते थे जो इन्द्र को भी परास्त किया था, जो महान वैज्ञानिक था। भू, भुवः, स्वः आदि लोकों पर अधिकार कर लिया था जो यमराज को भी ललकारा था, जो चौसठ चौकड़ी तक राज्य किया था, क्या वह महर्षि विशश्रवा का पुत्र रावण जो कुवेर का छोटा भाई था सोने की लंका को अपने साथ ले गया क्या उसको कुछ जाते समय लगा था ? उसको भी मृत्यु ने यहाँ नहीं रहने दिया।

**जाकर कुरिया अंतरिछ छाई । सो हरिचन्द देखल नहिं जाई ॥**
**मूरख मानुष बहुत संजोई । अपने मरै अउर लग रोई ॥**
**ई न जानै अपनेऊ मरि जैबै । टका दस बिढ़ै अउरले खैबै ॥**

**शब्दार्थ**—जाकर–जिसकी। कुरिया–भवन, मड़ई, कुटिया, बंगला। अंतरिछ–अंतरिक्ष, पृथ्वी एवं सूर्य के बीच का आकाश। छाई–बनवाई गई। सो–वह। देखल–देखने में। जाई–जाते। मूरख–मूर्ख, अज्ञानी। मानुख–मनुष्य, नर। संजोई–सृजन, संजोना। अउर लग–दूसरे के लिए। ई–इतना भी। जैबै–जाएगा। टका–रुपये पैसे। बिढ़ै–कमाकर, बढ़ाकर। खैबै–खाऊँगा।

**भावार्थ**—हे बाल बुद्धि ! रावण आदि चले गये पर साथ कुछ भी नहीं गया। जिनका भवन बहुत ऊँचा था जिनकी बराबरी का कोई दूसरा गढ़ नहीं था, जो अन्तरिक्ष में बहुत ऊँचाई तक अच्छे प्रकार से छवाया गया था उसमें रहने वाले वे चक्रवर्ती सम्राट महाराजा हरिश्चन्द्र भी आज दिखाई नहीं दे रहे हैं। जिनका नाम आज सुना जाता है वे कहाँ गये ? हे बाल सेमुशि ! तुम किस फेर में पड़ा है जो अनेक प्रकार से वस्तुओं को संजोकर रख रहा हैं और दीर्घायु होने के लिए अनेक प्रकार की कामना कर रहा है, अनेक प्रकार की औषधियों का सेवन कर रहा है, पौष्टिक वस्तुओं को खा रहा है। रे मूर्ख मनुष्य ! अपने तो स्वयं काल के मुख में प्रवेश कर रहा है तुम्हारा अस्तित्व स्वयं नहीं है परन्तु और के लिए पश्चाताप कर रहा है, रो रहा है। हे अज्ञ मते ! दूसरे के लिए तू कलप रहा है क्या यह नहीं जानता की मुझे भी मृत्यु ले जाएगी। क्यों तू रात-दिन परेशान और विकल है कि और दस टका बढ़ जाय, और दस रुपये कमा ले जो बृद्धावस्था में निर्बल होने पर खायेंगे अथवा मेरे न रहने पर मेरे बाल बच्चे खायेंगे, सुख से रहेंगे। रे नष्ट बुद्धि जरा सोच। इस संसार की सारी वस्तुएँ चली जा रहीं हैं, परिवर्तन संसार का नियम है, फिर यह तेरा कैसा ज्ञान है ?

साखी

**अपनी अपनी करि गए, लागि न काहु के साथ ।**
**अपनी करि गये रामना, अपनी दसरथि नाथ ।।**

**शब्दार्थ**—अपनी—अपने लिए । लागि—गयी, जाना । काहु—कोई । रामन—रावण । दसरथि नाथ—दशरथ नाथ, श्रीरामचन्द्र अथवा महाराज दशरथ ।

**भावार्थ**—अरे बुद्धि रहित मनुष्य ! तुझे क्या यह नही पता है कि सभी लोग यह मेरा है, यह मेरा है करते-करते चले गये । अपना-अपना कार्य करके सब चले गये पर जिसको कहते थे यह मेरा है, यह मेरा धन है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरी स्त्री है, मेरे हाथी-घोड़े है, वे सब संग्रहीत वस्तुएँ कोई भी किसी के साथ नहीं गई सब यहीं की यहीं रह गई । ऐसे ही एक-एक कर सब चले गये । अपनी कह-कह करके रावण चला गया और महाराज दशरथ के पुत्र श्रीराम भी अपनी करके चले गये । तात्पर्य यह है कि संसार में कोई रहने नहीं पाया न कोई रहा है । जो अच्छी कमाई किया वह भी गया जो बुरी कमाई किया वह भी गया यह संसार जाने वाला ही है इसके लिए चिन्ता न करो, शोकाकुल न हो । यह मरा है, मर रहा है, मरेगा । चाहे कोई बड़ा हो, चाहे कोई छोटा हो, चाहे कोई धनी हो, चाहे गरीब हो, पापात्मा हो, सबके सब चले जायेगें, तू बेकार में किसी की चिन्ता न कर प्रभु परायण हो जा । यही कल्याण का हेतु है ।

**विशेष**—सद्गुरु कबीर ऊपर की तीन रमैनियों में शरीर और संसार को क्षण भंगुर बताकर उसमें आसक्त हुए मनुष्यों को उद्‌बोधन करते हुए दिखाया है कि यह संसार कभी अस्तित्व में रहने वाला नहीं है । इसकी सारी वस्तुएँ चलायमान हैं इसलिए जो भी कुछ हो रहा है उसे साक्षी भाव से देखते रहो उसके लिए चिन्ता मत करो । क्योंकि तेरे वश का कुछ नहीं है यह जगत प्रभु निर्मित है इसकी गतिविधि उन्हीं को मालूम है इसलिए इसमें आसक्त मत रहो, जो कुछ करो वह निष्काम होकर करो और सब प्रभु को समर्पण कर दो । अनासक्त भाव से प्रत्येक क्षण को बिताओं तभी कल्याण हो सकता है, अन्यथा कोई मार्ग नहीं है जिसके

कारण तुम इस भवसागर को पार कर सकोगें। इस संसार में जो कभी सर्वे सर्वा थे वे सब आज दिखायी नहीं दे रहे हैं इसलिए तूँ, मैं, मेरो की भावना का परित्याग कर सन्त-पुरुषों और गुरुजनों की बात मानों उस पर चलने का प्रयत्न करों।

राम, लक्ष्मण सीता जी के जाने कि कथा अध्यात्म रामायण उत्तर काण्ड सर्ग आदि में हैं कि—बाल्मीकि ऋषि लव-कुश सहित जानकी को राम के पास ले गये, और कहे कि जानकी पतिव्रता है, ये दोनों आप के पुत्र हैं। लोगों के विश्वास के लिए जानकी ने शपथ ग्रहण करते समय कहा कि जिस प्रकार राम के बिना अन्य किसी को मन से स्मरण नहीं करती हूँ, वैसे ही भूमि देवी मुझे विवर (मार्ग) देने योग्य है, ऐसा सीता जी के कहने पर, दिव्य पुरुषों सहित एक सिंहासन प्रगट हुआ। भूमि देवी सीता का स्वागत करके आसन पर उन्हें बैठाई और भूमि में प्रवेश हो गयी।

सर्ग आठ में कथा है कि—उसके बाद कुछ दिन बीतने पर ऋषि वेष-धारी काल रामजी के पास आया और लक्ष्मण जी से कहा कि, अतिबल महर्षि का मैं दूत हूँ और राम को मैं देखना चाहता हूँ। उस महर्षि की बहुत मुख्य बात राम से कहनी है। फिर लक्ष्मण जी ने रामजी से शीघ्र उसकी बात जाकर कही उसके बाद राम ने कहा उस मुनि वेश धारी मुनि को शीघ्र मेरे पास लावों, फिर लक्ष्मण जी उसको रामजी के पास ले गये। मुनि मीठे वचन से रामजी को कहा कि आप की वृद्धि हो। फिर उस मुनि कि विधि पूर्वक पूजा राम ने किया, कुशल पूछा। फिर रामजी ने कहा जिस कार्य से आये हो सो कहों। तब मुनि बोले कि यह बात दो में ही कहने का है अन्य में नहीं, जो इसे सुने कहेगा वह आप का बध्य होगा। तब रामजी ने इस बात को स्वीकार किया और लक्ष्मण को द्वार पर रहने को कहाँ, यहाँ पर कोई आने न पावे, जो आयेगा वह मेरे द्वारा मारा जायेगा। फिर रामजी और काल की बात होने लगी। इतने में दुर्वासा जी आये और बोले कि राम को शीघ्र

देखाओं, मुझे आवश्यक काम है। लक्ष्मण जी बोले कौन काम है कहिये करूँगा, राम जी किसी काम में व्यस्त हैं, एक मुहुर्त प्रतीक्षा कीजिये। मुनि क्रुद्ध होकर बोले कि, हे लक्ष्मण! यदि राम को शीघ्र नहीं दिखावोंगे तो देश सहित वंश को नाश कर दूंगा। सो सुनकर लक्ष्मण जी समझे कि, सबका नाश से, एक मेरा ही नाश श्रेष्ठ है ऐसा निश्चय कर लक्ष्मण जी ने दुर्वासा की बात राम जी से कहने को कहा फिर राम जी ने काल को बिदा किया। शीघ्र दुर्वासा जी का दर्शन किया, प्रणाम करके प्रयोजन पूछा। मुनि ने चिरकालादि उपवास व्रत कि समाप्ति के लिए भोजन माँगा। राम जी ने भोजन कराया, भोजन करके मुनि अपने आश्रम में गये। बाद में पहली बात को स्मरण करके राम जी दुःखी हुए। तब लक्ष्मण जी कहे कि मेरी चिन्ता न कीजिये, मेरा वध कीजिए, आप की प्रतिज्ञा के भंग से मुझे भी नरक होगा। ऐसा लक्ष्मण जी के कहने पर रामजो ने मंत्रियों से पूछा, मंत्रियों ने कहा लक्ष्मण को त्यागों, परन्तु प्रतिज्ञा नहीं त्यागों, अन्यथा धर्म निष्फल होगा, धर्म के निष्फल होने से सबका नाश होगा। इसके बाद राम ने लक्ष्मण का त्याग किया, और कहा कि सत्य पुरुषों का त्याग वध तुल्य है। इसके बाद लक्ष्मण जी राम जी को प्रणाम करके सरयू किनारे पर गये और वहाँ से स्वर्ग गये। फिर नवम अध्याय में प्रजा सहित राम जी के स्वर्ग यात्रा का वर्णन है।

बाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड अ० ९७ में भी इसो प्रकार सीता जी के भूमि में प्रवेश का वर्णन है और सर्ग १०३ इत्यादि में काल के आगमनादि और लक्ष्मण के स्वर्ग-गमन की कथा है। फिर आगे सब भाइयों के पुत्रों को राज्य-तिलक की, राम जी के स्वर्ग प्रस्थान की कथा है।

कुरुवंशी होने से दुर्योधनादि को ही कौरव कहा गया है। एक भीम के द्वारा वे सब सौ भाई युद्ध में मारे गये हैं, सो कथा महाभारत की है। भोज प्रबन्ध की टीका में भोज की कथा है। कि—राजा भोज के पिता भोज के बचपन काल में ही मर गये थे। तो मुञ्ज नाम के चाचा

था भोज के उनको उन्हीं की सेवा में सौंप दिया गया। किसी ज्योतिषी से उनका सौभाग्य सुनकर ईर्ष्या से उनका चाचा, एक मन्त्री से उन्हें मारने को कहा, परन्तु मन्त्री दयावश उन्हें न मारकर राजा को समझाया कि, उन्हें मार दिया बाद में मुज्ज ने पूछा कि, मरते समय उसने क्या कहा, तब भोज के खून से भोज का लिखा हुआ यह श्लोक मन्त्री ने दिखाया। जिसको पढ़कर मुज्ज विकल हुआ, तब उसी समय एक योगी आया। उसने कहा कि, मन्त्र बल से मैं मृतक को भी जीवित कर सकता हूँ। कुछ पूजा सामग्री लेकर गया और वह भोज को ले आया, फिर मुज्ज भोज को राज्य देकर प्रायश्चित के लिए तप करने गया और राजा भोज धारा नगरी में रहकर राज्य किया।

और पाण्डु को पूर्व वर्णित मुनि का शाप था कि, कामासक्त होते ही मरोगे, इससे कभी माद्री के साथ विचरते थे, वहाँ ही कामासक्त होते ही मर गये।

हरिश्चन्द्र की कथा मारकण्डे पु० अ० ७ में है कि, सतयुग में हरिश्चन्द्र महर्षि हुए। एक दिन किसी मृग पर शिकार करते थे, इतने में किसी स्त्री का शब्द सुन पड़े मेरी रक्षा करो। मृग को छोड़कर राजा बोले कि भय न करो, मेरे राज्य में कौन अन्यायी है और वहाँ जिस विद्या को शिवादि भी नहीं सिद्ध किया था, उस विद्या को विश्वामित्र सिद्ध करते थे, इससे उस विद्या ही का शब्द था, जिससे सिद्ध में विघ्न वह विघ्न राजा में ही प्रवेश किया, इससे राजा और कुछ भी बोले, तब विश्वामित्र क्रुद्ध हुए और विद्या सिद्धि नष्ट हुई, फिर विश्वामित्र राजा को डाटने लगे, तब राजा ने कहा भयभीत रक्षा राजा का धर्म है, इससे मैं बोला। तब ऋषि बोले कि यदि तुम दाता राजा है, तो जो मांगता हूँ सो दो। राजा ने कहाँ हाँ दूँगा, तब प्रथम राजसूय यज्ञ की दक्षिणा माँग कर, फिर राजा-रानी पुत्र के शरीर मात्र को छोड़ कर सब कुछ माँग लिये और बोले कि मेरे राज्य से निकल जाओं। और राजसूय यज्ञ की दक्षिणा दो, तब राजा काशी में जाकर तीनों शरीरों

को बेचकर दक्षिणा दिया और पुत्र के मरने पर दोनों प्राणी चिता पर मरने के लिए तैयार हुए, तब देव ऋषि सब प्रसन्न होकर बचाये और राजा की विपत्ति को सुनकर, वशिष्ठजी ने विश्वामित्रजी को शाप दिया, जिसके कारण विश्वामित्र वक हो गये और विश्वामित्र के शाप से वशिष्ठ जी आडी नाम के पक्षी हुए, पक्षी होकर भी दोनों लड़ाई-झगड़ा करते रहे, तब ब्रह्माजी फिर पूर्वरूप बनाये और समझाये तब मेल हुआ।

देवी भागवत् स्क० ६ अ० ११-१३ में कथा है कि—पुत्र हरिश्चन्द्र ने वरुण के प्रति नरमेध यज्ञ की प्रतिज्ञा करके पुत्र का लाभ किया था, फिर पुत्र के मोह से उसके बचपन में यज्ञ नहीं किया, फिर होश होने पर, मरण के भय से पुत्र के जंगल में भाग जाने पर, वरुण के शाप से रोग ग्रस्त होने पर, क्रय किया हुआ शुनः शेप द्वारा हरिश्चन्द्र यज्ञ करने लगे, तब दुःखी शुनः शेप को देखकर, विश्वामित्र जी ने छोड़ देने को कहा, परन्तु राजा नहीं छोड़ा, फिर मन्त्रोपदेश देकर वरुण से ही छोड़वाया और उसी क्रोध से हरिश्चन्द्र के राज्य को छल से हर लिया। इसी कारण से वशिष्ठ जी से भी बैर हुआ।

स्कन्द ७ अ० १६ से २७ तक में कथा है कि—पहले की रीति से वचन न मानने के कारण हरिश्चन्द्र पर विश्वामित्र क्रुद्ध थे ही, फिर राजा की प्रशंसा वशिष्ठजी से सुनकर उसे सत्य से गिराने के लिए बहुत प्रयत्न किये, परन्तु राजा सत्य से नहीं गिरा तब फिर सब प्रसन्न हो गये।

ब्रह्म पु० गौतमी महात्म्य खं० ३४ में कहा है कि—राजा हरिश्चन्द्र के पास नारद और पर्वत ऋषि गये, राजा उनसे पुत्र का फल पूछा, उन्होंने कहा कि पुत्र के बिना गति नहीं हो सकती, पिता यदि उत्पन्न जीवित पुत्र का मुख देख लेता है, तो मनुष्य लोक और अन्तरिक्ष लोक के सभी भोगों को प्राप्त करता है राजा ने कहा मुझे पुत्र कैसे प्राप्त हो सकता है तब मुनि बोले यदि वरुण प्रसन्न होवें तो पुत्र दे सकते हैं। राजा वरुण को तुष्ट किया, प्रकट होने पर उनसे पुत्र माँगा तब वरुण बोले पुत्र

१५

तब दूँगा कि यदि उसी पुत्र से तुम मेरा यज्ञ करो। राजा स्वीकार किया, पुत्र हुआ, परन्तु टालमटोल करके पुत्र को युवराज बना दिया। फिर वरुण के कहने से यज्ञ करने के लिए तैयार हुआ, तब पुत्र ही जंगल में भाग गया। वरुण क्रुद्ध होकर जलोदर के लिए शाप दिये। तब राजा का पुत्र ही अजिगर्त ब्राह्मण के मध्यम पुत्र को क्रय कर लिया, और राजा को यज्ञ करने के लिये कहा, राजा का मन हुआ कि पूज्य ब्राह्मण द्वारा कैसे यज्ञ किया जाय ? फिर आकाश वाणी हुई कि इस ब्राह्मण द्वारा यज्ञ करो, इसके वध के बिना ही तेरा यज्ञ पूर्ण होगा, फिर वैसा ही हुआ।

इन यज्ञ दानादिकों से ही हरिश्चन्द्र की अन्तरिक्ष में पुरी छाई रही। श्रीमद्भागवत् स्क० ९।७ में भी हरिश्चन्द्र की कथा है।

## रमैनी ५६

### विद्वेष-ईर्ष्या प्रकरण

**दिन दिन जरइ जलनि के पांऊ। गाड़े जाय न उमगे कांऊ ॥**
**कांधन देई मसखरी करई। कहुदौ कवन भांति निहतरई ॥**
**अकरम करै करम को धावै। पढ़ि गुनि वेद जगत समुझावै ॥**
**छूंछा परै अकारथ जाई। कहैं कबीर चित चेतहू भाई ॥**

**शब्दार्थ**—दिन-दिन–प्रतिदिन। जरइ–जलता है। जलनि–राग-द्वेष, ईर्ष्या से। पांऊ–पैर, शरीर। गाड़े–जमीन में गड़ा रहे, राग-द्वेष में लिप्त रहे, काम्य कर्मो में मग्न रहे। उमगे–शीघ्र से शीघ्र निकले, कूदे। कांऊ–कोई। कांधन–कंधा, सहयोग, सहायता। मसखरी–उपहास, मजाक। करई –करता है। कहुदौ–कहो तो भला। निहतरई–छुटकारा, निस्तार, मुक्ति। भांति–प्रकार। अकरम–अशुद्ध कर्म, अकरणीय कर्म जो करने योग्य न हो, निषिद्ध कर्म, चोरी आदि। करम–शुभ कर्म को, शुभ फल की इच्छा, कर्म। धावै–चाहे। गुनि–मनन, चिन्तन। छूंछा–रिक्त, खाली। परै–रहता है। अकारथ–अकर्मण्य, व्यर्थ, निष्फल।

**सम्बन्ध**—इसके प्रथम की रमैनियों में जगत को विनश्वर बताया गया

और चेतावनी दी गई कि इस झूठे संसार में लिप्त न रहो परमार्थ का चिन्तन करो परन्तु मनुष्य राग-द्वेष में इतना फँस गया है कि विकारों को नहीं छोड़ पा रहा है।

**भावार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि इसलिए ये जगत के प्राणी राग-द्वेष और ईर्ष्या के कारण प्रतिदिन जल रहे हैं। ईर्ष्या रूपी अग्नि से मनुष्यों का पाद रूपी आत्मा दग्ध हो रहा है क्योंकि मन में आग लगी है दुष्ट विचार का व्यक्ति किसी को आगे नहीं बढ़ने देना चाहता, किसी के गुण पर घबड़ाता है या किसी को आगे बढ़ते देखकर जलता रहता है। किसी के अधिक धन से निर्धन जलता है तो किसी निर्धन को अपनी बराबरी में आता देख धनिक जलता है। इसी प्रकार विद्वान-मूर्ख, पुष्ट-निर्बल, पुत्रवान-अपुत्रवान, रूपवान कुरूप सभी परस्पर एक दूसरे से जलते रहते हैं। इस प्रकार से तमाम जलने के तरीके हैं। तमाम लोग एक दूसरे की समुन्नति से जलते रहते हैं जिसके कारण संसार में अशान्ति बनी हुई है। उक्त ईर्ष्या रूपी गड्ढ़े में मनुष्य इतना गड़ गया है कि उस गड्ढ़े से झटित निकल भागने में कोई समर्थ नहीं दीखता। कितना भी कहा जाय पर न उस पर चलने की कोशिश करता है, न उस बात पर विचार ही करता है। अच्छे मार्ग पर चलने वाले के साथ सहयोग भी नहीं करता है। अच्छे उपदेशक की बात को तो सुनता नहीं उल्टे उस सद् उपदेशक की हँसी उड़ाता है, उपहास करता है। उस पथ-प्रदर्शक की तो कांध देनी चाहिए, सहायता करनी चाहिए थी पर उल्टे उस महापुरुष के विपरीत आचरण करता है। हे बन्धुओं ! भला कहो तो संसार के लोग इस प्रकार के हैं सत्याचरण नहीं कर रहे हैं भला उनका निस्तार किस प्रकार से होगा ? क्योंकि इस संसार के लोग पाप कर्म करते हैं चोरी, डकैती, हिंसा, लूट इत्यादि में लिप्त रहते हैं। करते तो कर्म कुत्सित हैं पर उत्तम कर्म फल की इच्छा करते हैं। इसके लिए तीर्थ आदि में भ्रमण करते हैं। अर्थात् आत्म कल्याण के विरुद्ध जो कर्म हैं उन्हीं को करते हैं और सुकर्म रूपी मुक्ति की कामना करते हैं। उसके लिए सकाम कर्म करते हैं। अपनी वासना और अज्ञान तो दूर हुआ नहीं दूसरे को वेद-

शास्त्र पढ़ गुन कर, विचार कर संसार के लोगों को समझाते हैं उस पर चलने के लिए लोगों को राय देते हैं। जो व्यक्ति अपने स्वयं वेद-शास्त्र की बातों पर नहीं चलता और दूसरे को उपदेश देता है तो भला उसका क्या प्रभाव पड़ सकता है ? अर्थात् आत्म तत्त्व विषयक जो ज्ञान है उसको न करके कर्मकाण्ड में उलझे रहते हैं वे छूँछा अर्थात् खाली रह जाते हैं उनका किया हुआ कर्म निष्फल हो जाता है। उनका सकाम कर्म फल देने वाला नहीं होता है। इस पर सद्गुरु कहते हैं हे मनुष्यों ! चेतो सच्चे कर्म करो, सच्चाई से संसार में रहो। अकर्म न करो। सुकर्म करो जिससे अपना तथा समाज की भलाई हो आत्मा का उत्थान हो शरीर को निरोगिता मिले। अपनी खेती-बारी को अच्छी प्रकार से करो। अपने करघे को ठीक से चलाओ किसी से बैर-भाव मत करो। किसी को सुखी सम्पन्न देखकर ईर्ष्या मत करो, सबसे मिलकर रहो, जाति, धर्म, पंथ को मिथ्या समझो। सबके अन्दर एक परमतत्त्व विराजमान है उसका चिन्तन करो। किसी से भेद भाव न करो। हर प्रकार के कुकर्मों से अपने को बचाओ अपनी उन्नति करो। कोई भी ऐसा कर्म मत करो जिससे दूसरों को कष्ट हो।

**विशेष**—मनुष्य राग-द्वेष से दिन-दिन जलते रहता है जिससे शान्ति नहीं मिलती राग-द्वेष रूपी गड्ढ़े में उसके पैर इतने धंस गए हैं कि अच्छी बात सुनने पर भी शीघ्र नहीं निकल पाता। अज्ञान वश अच्छी बात सुनाने वाले का उपहास करता है। ऐसे लोगों का निस्तार होने वाला नहीं है जो बुरा कर्म करते हैं और अच्छे कर्म फलों की इच्छा करते हैं। जो वेद-शास्त्र पढ़कर दूसरों को उपदेश तो देते हैं पर स्वयं बुरे कर्मों में लिप्त हैं ऐसे लोगों का कल्याण होने वाला नहीं है सद्गुरु कहते है तू अचेत न रहो चेत जाओ।

## रमैनी ५७

**क्रितिया सूत्र लोक एक अहई। लाख पचास की आयु कहई॥**
**बिदूदा वेद पढ़े फुनि सोई। वचन कहत परतछै होई॥**
**पैठि बात बिदूदा की पेटा। वाहु कै भरम भया संकेता॥**

**शब्दार्थ**—क्रितिया–क्रितिया नामक एक शक्ति, कृत्रिम, बनावटी, कल्पना प्रसूत। सूत्र–संकेत, संक्षिप्त में। लोक–संसार। अहई–है। लाख–लक्ष। आयु–उम्र। कहई–कहता है। विद्या वेद–वेद का ज्ञान। फुनि–पुनि। परतछै–प्रत्यक्ष, प्रमाणिक। पैठि–बैठकर, भीतर। पेटा–उदर। वाहु–उसके। भरम–भ्रम, संशय। संकेता–संकेत, लक्षण।

**सम्बन्ध**—छप्पनवीं रमैनी में राग-द्वेष के कारण दुःख होता है यह बताकर अकर्म कर्मों तथा झूठे वेद-शास्त्र के ज्ञान को बघारने वालों की निन्दा की गई है और अब वेद-शास्त्र पढ़कर तमाम भविष्य वाणियों की चर्चा करने वालों के बारे में कहा जा रहा है।

**भावार्थ**—संसार में भविष्य वक्ताओं का बहुत बड़ा समाज है जो फलित ज्योतिष के आधार पर तमाम लोक-परलोक एवं जन्म-जन्मान्तरों की बात लोगों को सुनाते हैं। उन भविष्य वाणियों के आधारभूत कृत्रिम व बनाये हुए सूत्र के समान सूक्ष्म हैं। जिनके आधार पर भविष्य वक्ता लोग संसार के मनुष्यों के सामने बहुत सी कल्पित बातें करते रहते हैं और यह भी कहते हैं कि ब्रह्मलोक व स्वर्गलोक आदि में रहने वाले प्राणियों व देवगणों की आयु पचास लाख वर्ष तक होती है इसलिए उन लोकों की प्राप्ति के लिए मनुष्यों को प्रयत्न करना चाहिए। ये लोग उक्त लोकों की प्राप्ति और लम्बी आयु की इच्छा से सभी वेद-शास्त्र पुनः पुनः पढ़ते हैं उसका चिन्तन-मनन करते, इसी में फँसे रहते हैं। इनके कहने का आधार वे कर्म-विपाक शास्त्र हैं जो इनके पेट में अर्थात् कण्ठ में विराजमान रहते हैं। साहब कहते हैं कि ये सब भविष्य वक्ताओं की बात दूसरों के लिए होती हैं परन्तु झाँक कर देखता हूँ तो उनके अन्दर भी भ्रम विद्यमान है। अर्थात् जिस विद्या, जिस कर्म-विपाक के द्वारा ये लाख पचास मनुष्यों के जन्मों की बात सुनाते हैं उनके बारे में बात करते हैं, नीति निर्धारण करते हैं ज्योतिष विद्या के महान ज्ञानी होते हुए भी वे भारी भ्रम के शिकार हुए हैं।

साखी

**खग खोजन कउ तुम परे, पाछे अगम अपार।**
**बिन परिचै कस जानिहो, (कबीर) झूठा है अहंकार॥**

**शब्दार्थ**—खग–पक्षी, खं नाम आकाश का है जो उसमें गमन करे, जिसका मार्ग खं हो वह खग कहलाता है। खोजन–अन्वेषण। तुम–वे लोग, आप। परे–लगे। पाछे–पृष्ठ भाग में। अगम–अथाह, जहाँ मार्ग नहीं है। अपार–असीमित। कस–कैसे।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जिस आकाश में अर्थात् जिस शून्य में जिन अनात्म पदार्थों में तुम सत्य को खोज रहे हो वहाँ सत्य नहीं है। वह आकाश सत्य के पीछे है और अगम है, अपार है, उस आकाश की सीमा नहीं है उस परमतत्त्व को बिना परिचय, बिना पहचान के कैसे जान सकते हो तुम्हारा वह सब वेद-शास्त्र पढ़कर कहने वाला कथन और उसका अहंकार सब झूठा है। तुम उस अपरा विद्या के द्वारा उस अगम, अपार तत्त्व की खोज करते हो। 'खग' का दूसरा अर्थ आत्मा भी है जो एकाकी रमता है आकाश के समान सर्वत्र व्याप्त है उसको तुम क्या खोज रहे हो? तुम काम्य कर्मों की ओर बढ़ रहे हो जिससे वह तत्त्व पीछे हो गया है वह आत्मतत्त्व, परमतत्त्व अपार है, असीम है, जब तक तुम किसी गुरु से उसका पहचान नहीं करोगे तब तक तुम उसको कैसे जान सकोगे? केवल शास्त्रज्ञान के बल पर 'अहं ब्रह्मास्मि' का नारा लगाते हो 'ॐ', 'राम', अल्लाह चिल्लाते हो। यह सब झूठा है। इस प्रकार विचार करो।

**विशेष**—लोक में ज्योतिष शास्त्र के अन्तर्गत एक कर्म-विपाक नामक साहित्य है। जिसमें लोक-लोकान्तर के निवासियों एवं संसार के मनुष्यों के बारे में बहुत सी बातें कही जाती है और उन लोकों में रहने वालों की आयु करोड़ों वर्षों की बताई जाती है। अधिक लोकों की जानकारी के लिए विज्ञान की पढ़ाई की जाती है। उन लोकों को जानने के लिए अनेक यंत्र आविष्कारित हैं। तमाम नक्षत्र ग्रहों के विषय में प्रत्यक्षीकरण किया

जाता है। उन्हीं खोजने वाले ज्योतिषियों एवं वैज्ञानिकों की बात लोगों के हृदय में बैठ जाती है। वे उसे ही सही मान लेते हैं परन्तु इतने से ही उनकी सन्तुष्टि नहीं होती, उनके मन में यह भ्रम बना रहता है कि अभी और लोक है अभी और लोकान्तर हैं जिनकी खोज की जा सकती है। जैसे आज के वैज्ञानिक तमाम लोकों की खोज में पड़े हुए हैं और उसी को सत्य की खोज बताते हैं परन्तु वह सत्य उनकी खोज के पीछे पड़ जाता है, क्योंकि वह तो अगम-अपार है। जिन खोजों में मनुष्य पड़ा हुआ है वह सब सीमित है वह तत्त्व तो सीमातीत है अगम, अपार है उसे खोज पाना कठिन है। उसे तो तभा खोजा जा सकता है जब आत्मतत्त्व का ज्ञान हो जाय। बिना आत्मतत्त्व के ज्ञान के वे सब खोज निरर्थक हैं।

'क्रितिया सूत्र' की एक दूसरी व्याख्या भी है। क्रितिया नाम की एक शक्ति है जिसको कर्ण पैशाची विद्या के नाम से भी जाना जाता है। यह कर्ण पैशाची विद्या जिसको कबीर साहब ने क्रितिया कहा है बहुत प्राचीन काल से लेकर अभी २०-२५ वर्ष पूर्व तक बिहार आदि प्रान्तों में बहुत प्रसिद्ध थी। अधिकांश शाक्य द्विपीय ब्राह्मण इस विद्या की सिद्धि करते थे। आज भी देश में बहुत से ब्राह्मण इस विद्या की जानकारी रखते हैं। इसे जानने वाले लोग बिना गाँव देश देखे ही बैठे-बैठे ही वहाँ की सारी बात बता देते हैं। मनुष्यों से सम्बन्धित बीती हुई सारी जानकारी भी वे दे देते हैं। कुछ वर्ष पहले इस विद्या का बड़ा प्रचार था और बात-बात में लोग भविष्य वाणियाँ कर देते थे। इसके बल पर पाकेट का पैसा, गड़ा हुआ धन तथा अन्य गुप्त बातों की जानकारी हो जाती थी। इसके जानने वाले ज्योतिष से भी सम्बन्ध रखते हैं और देव सिद्धियाँ भी करते हैं। इसकी विश्रुति अभी भी है। इसके प्रति जन सामान्य में बड़ी अभि-रुचि अभी भी देखी जाती है। ये आश्चर्यकारी बात दिखला देते हैं और बड़े सिद्धहस्त होते हैं परन्तु आत्मज्ञान विहीन ये सब सदैव अशान्त रहते हैं। इस विद्या के जानने वाले कुछ लोग हमारे परिचितों में से हैं।

# रमैनी ५८

## स्वराज्य प्राप्ति प्रकरण

**तै सुत मानु हमारी सेवा । तो कहं राज देउ हो देवा ॥**
**अगम दुगम गढ़ देउ छुड़ाई । अउरो बात सुनहु किछु आई ॥**
**उतपति परलै देउ देखाई । करहु राज सुख बिलसहु जाई ॥**
**एकउ बार न होइहै वाको । बहुरि जनम न होइहै ताको ॥**
**जाय पाप सुख होइहैं घना । निहचै बचन कबीर कै माना ॥**

**शब्दार्थ**—तै–तुम । सुत–नाद पुत्र, शिष्य । सेवा–उपदेश । तो कहं–तुमको । देउ–दूँगा । देवा–देवता, दिव्य लोक का । अगम–जहाँ आने-जाने का पथ नहीं हो । दुगम–दुर्गम, कठिन । गढ़–राज भवन, संसार, शरीर । उतपति–जन्म, सृष्टि कालीन समय । परलै–मृत्यु, महाप्रयाण । राज सुख–आत्मसुख,प्रभुप्राप्ति । बिलसहु–भोगहु । बार–बाल,केश, रोम। होइहै–होंगे । वाको–बाँका, रहित, टूटना । घना–बहुत अधिक । निहचै–निश्चय ।

**सम्बन्ध**—इसके पहली रमैनी में यह कहा गया है कि जो देवलोक आदि हैं, जहाँ लाख-पचास वर्ष की देवताओं को आयु होती है, जिसमें ज्योतिष आदि के द्वारा सही बातें कही जाती हैं । जिसको सभी लोग सही मान लेते हैं । जहाँ मनुष्य को स्थायी लाभ नहीं होता वहाँ से पुण्य क्षीण होने पर मृत्यु लोक में आना पड़ता है ।

**भावार्थ**—अब कहा जा रहा है हे संसार के प्रिय मनुष्य ! हे मेरे सुशिष्यों ! आप लोग हमारे सेवा रूपी जो हमारा उपदेश हैं उसको ग्रहण करो, यदि आप लोग सन्त महात्माओं के एवं मेरे सही उपदेशों को मान लेते हैं, तो हम तुम लोगों को एक ऐसा राज्य दूँगा जो बहुत दुर्लभ है। उक्त राज्य के लिए देव, दानव, मनुष्यगण सब लालायित रहते हैं। वह राज्य कोई लौकिक राज्य नहीं है। हे मेरे शिष्यों ! वह राज्य प्रभु का राज्य है, आत्म प्राप्ति का राज्य है। वह तुम्हारे हृदय में है। उस राज्य की प्राप्ति होने पर तुझे संसार-चक्र में नहीं आना होगा और जो यह संसार और शरीर रूपी गढ़ है, जिसका

त्याग बहुत अगम है, कठिन है जो तुम्हें बार-बार यमराज के गढ़ में ले जाता है और अनेक प्रकार की यातनाओं का शिकार बनाता है, उस अगम, दुर्गम रूपी गढ़ से तुम्हें छुड़ा लूँगा और भी कुछ बात तू मेरी आकर सुनो। तुझे मैं वह भी दिखा दूँगा जिन कारणों से संसार की उत्पत्ति होती है। जिन कारणों से संसार का प्रलय होता है, अर्थात् जिन कारणों से तुम्हारा बार-बार जन्म-मरण होता रहता है। उन कारणों को मैं दिखा दूँगा, जिसको छोड़कर तुम उत्पत्ति प्रलय से रहित हो जाओगे। जब तुम्हारी सारी वासनायें विनष्ट हो जायेगी, चित्त निर्मल हो जायेगा तब तुम उस अनन्त स्वराज्य का सुख जाकर भोगोगे, जो तुम्हारे अन्दर विद्यमान है। जब तुझे वह प्रभु प्राप्ति का स्थान मिल जायेगा जो आत्म प्रदेश में है जब तुम्हारा अभिनिवेश समाप्त हो जायेगा। तब तेरा एक बाल भी कोई टेढ़ा न कर सकेगा और न अब कभी तेरा जन्म-मरण होगा। जब तू आत्म स्वराज्य प्राप्त कर लोगे तो तुम्हें पुनः संसार में जन्मना नहीं पड़ेगा। तेरे सब पाप नष्ट हो जायेंगे, जो वह सुख की महाराशि है बहुत घना हैं, अर्थात् जिसका थाह नहीं है, तुझे निश्चित मिल जायेगा। हम जो कहते हैं इस कबीर के वचन को निश्चित सत्य मानो। इसमें किंचित मात्र भी कोई धोखा नहीं, कोई छल नहीं है।

यहाँ सेवा में जहद स्वार्था है और बहुत विश्लेषित। इसका अर्थ है सेवा-भाव को त्याग कर जो सम, दम आदि साधन है, तात्पर्य सेवा का उसी से है। जब तक मनुष्य सम, दम, उपरति से इन्द्रियों का निग्रह, मन का निग्रह नहीं कर लेता है तब तक उसकी वृत्ति कैसे एकाग्र होगी? इस-लिए कबीर साहब का कहना है, तू अपना निग्रह करो, आत्म संयम करो और गुरु तथा ईश्वर में श्रद्धा करो तथा गुरु के द्वारा अपने शंकाओं का समाधान करो। संसार के विषय-वासनाओं से उपराम रहो जो भी दुःख-सुख आवे उसमें हर्ष, शोक न करो और जो सब देश काल से परे है। जो तुम्हारी आत्मा है, जो तुम्हारे भीतर है, जो तुम्हारे बाहर है उसी का

चिन्तन करो। मन के सभी कुसंस्कारों का त्याग करो। वृत्तियों पर सदा ध्यान रखो कि ये वृत्तियाँ संसार के विषयों को ग्रहण न करें। तब तुम स्वराज्य प्राप्त कर सकते हो। जब तक तुम्हारी वृत्तियाँ बहिर्मुखी हैं तब तक तुम वह स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकते हो। यहाँ पर अजहद शब्द से सेवा-भाव त्याग कर उपर्युक्त कथनों से सद्गुरु का तात्पर्य है अन्यथा दूसरा और कारण हो सकता है कि भाव में भले अन्तर हो परन्तु दूसरा सेवा का अर्थ भक्ति एवं आत्म नियन्त्रण है। इसलिए सभी मनुष्यों को चाहिए कि सदा अपने पर नियन्त्रण रखें।

साखी

**साधु संत तेई जना, जिन्ह मानल वचन हमार।**
**आदि अंति उतपति परलै, देखउ दिस्टि पसार ॥**

**शब्दार्थ**—तेई–वही। जना–लोग। जिन्ह-जो। आदि अंति–आरम्भ से अवसान तक। उतपति परलै–भाव से अभाव तक। दिस्टि–नेत्र, ज्ञान, चक्षु। पसार–दूर फैलाकर।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि वही साधु है वही संत हैं जो मेरी उपर्युक्त बात को मानेंगे, क्योंकि मेरी बात पर जो विश्वास करेंगे और आदि से अंत तक एवं उत्पत्ति से प्रलय तक इसके इतिहास को देखेंगे कि कब से यह जगत आ रहा है और कब तक यह रहेगा और जन्म-मरण का हेतु क्या है? इन जागतिक बखेड़ों को दूर दृष्टि से देखना होगा तभी मनुष्य का कल्याण होगा।

यदि यहाँ पर जहदा-जहद् स्वार्था लगाया जाय तो अर्थ होगा साधु-संत मेरी बात मानेंगे वे आदि से अंत तक अर्थात् उत्पत्ति से प्रलय तक कभी दुःख में नहीं पड़ेंगे। मैं जो कहता हूँ इसको दूर-दृष्टि रखकर देखो।

**विशेषः**—जो साधु-संतों एवं महापुरुषों की बात मानते हैं, उन्हें निश्चित ही स्वराज्य रूपी आत्म प्राप्ति का सुख हो जाता है और जो भय-दायी है वहाँ जाने से उसको छुटकारा मिल जाता है। आत्म ज्ञान होने

पर वा ब्रह्म ज्ञान होने पर उक्त पुरुष जन्म-मरण की होने वाली गुत्थियों को समझ लेता है। वह स्थायी आत्मसुख में निवास करता है, जब मनुष्यों को आत्मसुख की प्राप्ति हो जाती है तो उन्हें दुःख नहीं होता, पुनर्जन्म नहीं होता महा समुद्र राशि का जो सुख है उन्हें प्राप्त हो जाता है। जहाँ सुख की राशि समुद्र के समान आत्म प्रदेश है उसको वह प्राप्त कर लेता है और उसके सारे पाप छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, सुख का सागर मिल जाता है। कबीर साहव कहते हैं कि यह मेरा वक्तव्य पूर्ण रूपेण सत्य है। यह भी कहते हैं कि वही लोग हमारे जन हैं जो लोग हमारे विचारों को मानते हैं। वे लोग कभी आदि से अंत तक जन्म-मरण के चक्र में नहीं पड़ते। जो मैं कहा हूँ यह बिल्कुल सत्य है। इसको शास्त्र-पुराण एवं वेदों में दृष्टि खोलकर देख लो, किसी भी संत-महात्मा एवं ज्ञानी पुरुषों से जाकर पूछ लो।

# रमैनी ५९

## सकाम कर्म विरोध प्रकरण

**चढ़त चढ़ावत भड़हर फोरी। मन नहिं जाने केकरि चोरी ॥**
**चोर एक मुसे संसारा। विरला जन कोई बूझनि हारा ॥**
**सरग पताल भूमि लै वारी। एकै राम सकल रखवारी ॥**

साखी

**पाहन होय-होय सभ गये, विनु भितिअन के चित्र।**
**जासो कियेउ मिताइया, सो धन भया न हित ॥**

**शब्दार्थ**—चढ़त–ऊपर चढ़ते हुए। चढ़ावत–ऊपर चढ़ाते हुए। भड़हर–भण्ड, मिट्टी का बड़ा बर्तन, वह मिट्टी का पात्र जिसमें लगभग दो ढ़ाई मन अन्न रखा जा सके। फोरी–फूट गया। केकरि–किसको। चोरी–तस्करी, ठगी, चोर, अहंकार, अंतर्वासनायें। मुसे–मूसे, चुरावे, लूटे। संसार–जगत को। बूझनि हारा–समझने वाला। लै–तक। वारी–उद्यान, फुलवारी वा बाग। सकल–सभी को। रखवारी–रक्षक। पाहन–प्रस्तर, जड़ बुद्धि।

होय-होय–बन-बन कर। विनु–बिना। भितिअन–भित्ति, भीत्तिओं का। चित्र–स्वरूप, आकृति, ध्यान, विन्दु। जासो–जिससे। कियेउ–किया। मिताइया–मित्रता, स्नेह। सो–वह। धन–सम्पत्ति, संसार का सम्बन्ध। भया–हुआ। हित–हितैषी, हितकारी, प्यार, प्रियतम, स्वामी।

**सम्बन्ध**—स्वराज्य सुख का उपदेश देकर गुरु महाराज ने यह दिखाया है कि जो स्वराज्य सुख को छोड़कर अन्य लोक-लोकान्तर के सुखों की चाहना के फेर में पड़े हैं उनकी उक्त चाहना निरर्थक है और उनका सुख चिर स्थायी नहीं है।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि अनेक कर्मकाण्ड एवं यज्ञ या दान-पुण्य करके संसार के मनुष्य दिव्य लोकों की ओर चढ़ने की कोशिश करते हैं। उसी प्रकार से दूसरे मनुष्यों को भी इन्द्रलोक, ब्रह्मलोक या सत्यलोक चढ़ने के लिये उपदेश करते हैं परन्तु सकाम कर्म का उपदेश देते-देते इसी संसार में रह जाते हैं। जीवन में उन लोकों की प्राप्ति नहीं हो पाती है। इतने में भण्ड रूप शरीर फूट जाता है। अर्थात् शरीर का अन्त हो जाता है। मनुष्य के जीवन में बहुत बड़ी चोरी हो गई। वह अज्ञान में फँसा हुआ मनुष्य का मन यह समझ नहीं पाया कि किसने यह चोरी की अर्थात् किसके द्वारा हम लूटे गये ? वह अहंकार रूपी चोर एक ही तो है जो सारे संसार के मनुष्यों को लूट रहा है। वह प्रवल चोर मूर्ख से पण्डित तक पठित से अपठित तक धनी से अकिंचन तक सबके साथ लगा हुआ है। जाति का अहंकार करते हैं परिवार का एवं समाज का अहंकार करते हैं, देश का अहंकार करते हैं, परन्तु उस अहंकार रूपी चोर को कोई बिरला ही मनुष्य समझने वाला है। क्योंकि चींटी से हस्ती तक चाण्डाल से ब्राह्मण तक दानव से देव तक सब अहंकार के द्वारा ही मारे जाते हैं। अहंकार सारे विश्व में एवं सारे ब्रह्माण्ड में विद्यमान है। वह सबको जान जाता है। उसको कोई जानने वाला नहीं है। सद्गुरु कहते हैं कि स्वर्ग से पाताल तक एवं मृत्यु लोक तक जो यह उद्यान रूपी दृश्य देख रहे हो जिसका नाश अहंकार रूपी चोर कर रहा है इस चोर से रक्षा

करने वाला वह राम है। जो इन तीन लोक रूपी बगीचे का रोपन किया है तात्पर्य यह है कि सकाम कर्मों को छोड़कर मनुष्यों को निष्काम कर्म द्वारा प्रभु का चिन्तन करना चाहिए और सारे अहंकार से परे होकर प्रभु की खोज करें। जब मनुष्य अपना अहंकार छोड़ देगा तब जिसने स्वर्ग से पाताल तक सृष्टि को बसाया है वह एक ही परमेश्वर सबकी रखवाली करता है, वह तुझे नाश होने से बचा लेगा।

**भावार्थ**—साहब कहते हैं कि हमने बहुत सी बात लोगों को सुनायी पर ये संसार के लोग हमारी बातों पर ध्यान नहीं दिये। सब लोग अज्ञान दशा में होकर जड़ के समान हो होकर जनम-जनम कर चले गये अर्थात् बार-बार जन्मते-मरते रहे। ये मनुष्य बिना आधार के हैं, इनका कोई रक्षक नहीं है। जो संसार की मोह माया में लिपटे हुए हैं वे लोग भगवान अशुंमाली के पुत्र के द्वारा उसी प्रकार से मारे जाते हैं जैसे जंगल में पड़ा हुआ मनुष्य सिंह के द्वारा मारा जाता है।

ये मनुष्य मृग मरीचिका की ओर ऐसे आकर्षित हैं जैसे कोई पुरुष बिना आधार के बिना दीवाल के काल्पनिक चित्र मन में बनाता है और वह चित्र बिना आधार के स्थायी नही होते। वा संसार में प्रतिदिन अनेक कल्पनाओं का चित्र बनाते रहता है और ये चित्र प्रतिदिन विलीन होते रहते हैं। तात्पर्य यहाँ पर यह है कि अज्ञानी मनुष्य अज्ञ अवस्था में ही मर जाता है। उसका कोई वास्तविक ज्ञान आधार नहीं होता है। उसके मन में अनेक प्रकार की कल्पनायें उठती रहती हैं व नकली आकृतियों को देखते रहता हैं जो सत्य नहीं होती है जैसे भित्ति के ऊपर चित्र बनाया जाता है और वह चित्र भित्ति के पोतने पर विलुप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार से मानव जो भी बिना आधार के कल्पना करता है वे सब भित्ति चित्रवत् स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं। पर उसको वह सत्य प्रतीत होते हैं इसलिए जो काल्पनिक लोकों से या उसके निवासी देवों से मित्रता लगाये रहते हैं वा उनकी प्राप्ति के लिये अनेक प्रकार के हिंसा युक्त कार्य करते रहते हैं। अन्त में वह मिथ्या कल्पना का धन उसका रक्षक नहीं होता है। क्योंकि वे स्वर्ग

पाताल से भूमि तक को जो रखवाली करता है उसकी मित्रता छोड़कर अनिश्चित देवताओं की सेवा में लगा रहा जिसके कारण वे अनिश्चित देवता गण उसकी सहायता नहीं कर सके ।

**विशेष**—अज्ञानी मनुष्य सकाम कर्म को अपने करता है और दूसरे से भी करवाता है और उन कर्मों के द्वारा बड़ी-बड़ी लालसाओं को करते रहता है और मन में अहंकार भी रखता है कि हम अन्य मनुष्यों से बहुत श्रेष्ठ हैं। पर उसी अहंकार के द्वारा उसका विनाश हो जाता है। उसके सकाम कर्म को एवं उसके ज्ञान को कोई महापुरुष ज्ञानी लोग ही समझ सकते हैं और अन्य अज्ञ लोग उसी में जीवन भर लगे रहते हैं। जो उस चोर को पहचान लेते हैं वे तीनों लोकों के स्वामी के भजन में लग जाते हैं, जिससे उनकी रक्षा हो जाती है। अन्य लोग जो त्रिलोकेश्वर को त्याग कर काम्य कर्मों में लगे रहते है उनको आत्म ज्ञान नहीं होता है इसलिए अज्ञान दशा में ही आते-जाते रहते हैं। उनकी मान्यताएँ बिना आधार की होती हैं। स्वप्न के दृश्य के समान होती है। जिसमें वे सदा लगे रहते हैं। अन्त में वे सभी मिथ्या विचार व मिथ्या धारणाएँ उनका हित नहीं कर सकतीं। इसलिए सभी को चाहिए कि प्रभु की शरण गहें।

**टिप्पणी** –कुछ लोग उक्त रमैनी का अर्थ हठयोग से लिये हैं परन्तु हठयोग से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है केवल कल्पना मात्र है।

# रमैनी ६०

## असत्य त्याग प्रकरण

**छाड़उ पति छाड़उ लबराई। मन अभिमान टूटि तब जाई॥**
**जन जो चोरी भिच्छा (भिख्खा) खाँही। सो बिरवा पलुहावन जाई**
**फुनि संपति अउ पति को धावै। सो बिरवा संसार ले आवै॥**

**शब्दार्थ**—छाड़उ–त्यागो। पति–सम्मान, मर्यादा, प्रतिष्ठा, स्वामी, ईश्वर। लबराई–असत्यता, झूठा, लवारपना। टूटि–छुटि। भिच्छा–भिक्षा

बिना कमाये मांग कर खाने वाली क्रिया। विरवा–वृक्ष। पलुहावन पल्लवित, हरा भरा, सुखदाई। जाई–होगा। फुनि–पुनः। सम्पति–दूसरे प्रकार की चोरी की सम्पत्ति। पति–उसके द्वारा, मान–मर्यादा। संसार–संसार के मनुष्य।

**सम्बन्ध**—पहले कहा जा चुका है कि अनावश्यक काम्य कर्मों से कोई लाभ होनेवाल नहीं है और न तो वह हितकारी ही होता है। और अब उसके द्वारा जो मान प्रतिष्ठा प्राप्त होती है उस असत्यता को त्याग करने को कहा जा रहा है।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे भाई! जो झूठी लोक बड़ाई है, जो झूठा मान सम्मान है जिससे तुम्हारा हित होने वाला नहीं है। उसको छोड़ दो। जब तूं उक्त असत्य व्यवहार को छोड़ दोगे तो स्वतः जो तेरे मन का अभिमान है, वह समाप्त हो जायेगा, गायब हो जायेगा। उसके गायब होने पर तेरा बहुत हित होगा। तूं सदा सुखी रहेगा। क्योंकि जो लोग झूठी मान बड़ाई के लिए गुप्त क्रियायें करते हैं और उनके द्वारा जो शक्तियाँ अर्जित करते हैं अर्थात् जो सकाम कर्मों के द्वारा शक्ति अर्जित करते हैं वह केवल शरीर सुख के लिये ही है। वह विरवा रूपी आत्मा का विकास नहीं कर सकता है। वह आत्मा के लिए हितकर नहीं है। उस सकाम रूपी चोरी की भिक्षा में जीवक तत्त्व नहीं है। उसको छोड़ देना चाहिए। उस भिक्षा को नहीं खाना चाहिए। अर्थात् जो उपर्युक्त देव आदि के द्वारा शक्तियाँ मांगते हैं वे शक्तियाँ आत्मा रूपी विरवा को पल्लवित नहीं कर सकती। क्योंकि उस देव प्रदत्त शक्ति से पुनः उन्हीं मान-मर्यादा आदि के लिए मनुष्य धावता है, और वही मान सम्मान के कारण अर्थात् वही मान-सम्मान आत्मा को बारम्बार संसार में ले आता है। जन्म दिलाता और मारता है। इसलिए साहब कहते हैं किसी को चोरी की भिक्षा नहीं खानी चाहिए। उसी चोरी की भिक्षा के कारण मनुष्य बार-बार पृथ्वी पर जन्मता है और पुनः पुनः उसी की कामना करता रहता है।

साखी

**झूठ झूठा कै डारहू, मिथ्या यह संसार ।।**
**तेहि कारन मैं कहत हौं, जाते होय उबार ।।**

**शब्दार्थ**—डारहू–त्याग दे। हौं–हूँ, मैं।

**भावार्थ**—साखी के द्वारा कहा जा रहा है कि उक्त सकाम कर्म का फल बिल्कुल झूठ है न सकाम कर्म का आदि सत्य है न सकाम कर्म का अन्त ही सत्य है। अर्थात् यह संसार का व्यवहार न आज सत्य है न बाद में सत्य होगा। यह झूठा ही झूठा है। इसलिए इस संसार के व्यवहार को छोड़ दो क्योंकि यह संसार सदा से ही मिथ्या रहा है झूठा होने के कारण ही मैं तुमसे कहता हूँ कि तू इसे त्याग दे अन्यथा तुम्हारा कोई दूसरा मार्ग नहीं है। जो भवसागर को पार करावेगा।

**विशेष**—सद्गुरु मनुष्यों को उपदेश देते हैं कि जब तू मान-मर्यादा को छोड़ दोगे, जो निःसार तत्त्व हैं जिनसे कोई लाभ होने वाला नहीं है। तब स्वतः तेरे मान अभिमान रूपी बोझ मन रूपी सिर से गिर जायेगा। तेरा चित्त निर्मल हो जायेगा। स्वच्छ हो जायेगा। क्योंकि ये मान-सम्मान चोरी की भिक्षा के समान हैं। जो इसे खाते हैं अर्थात् जो इनसे जीना चाहते हैं इससे कोई लाभ होने वाला नहीं है। वह भिक्षा रूपी खुराक विरवा रूपी आत्मा को सुख देनेवाला नहीं है। उक्त मान-सम्मान के लिए इच्छा बनी रहती है और पुनः पुनः उसके प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है। जिसके लिए मनुष्य सदा प्राप्ति के चक्र में पड़ा रहता है। इसलिए सद्गुरु कहते हैं यह सब मान बड़ाई झूठी है इसलिए इसे त्याग दो। साथ ही संसार भी जिसका सदा संसरण होते रहता है वह भी ऐसा ही है। इसलिए संसार के सारे नाता-गोता को छोड़ दो जिससे तुम्हारा उद्धार वा आत्म कल्याण हो सकेगा।

**प्रौढ़िवादार्थ**—यहाँ भिक्षा और विरवा में बहुव्यजना है जिसका अर्थ यह भी है कि सकाम कर्म जो है वही भिक्षा अर्थात् भिक्षा का धन है जिसका तूँ अपने कल्याणार्थ स्थापना करता है उसी को वृक्ष की संज्ञा दी गयी है। साहब का कहना है कि सकाम कर्म भिक्षारूपी वृक्ष कभी फलता

फूलता नहीं अर्थात् उससे कभी सुख नहीं मिलता है। वह जीवों को सदा तृष्णा में डाले रहता है। वह दुःखदाई तथा जन्म-मरण में डालने वाला है। वही सकाम रूपी विरवा मनुष्यों को बार-बार संसार में लाने वाला है। सकाम का अर्थ होता है कामना युक्त इच्छा, जिस कामना में फल की इच्छा लगी रहे वही सकाम कहलाता है। इच्छा का ही दूसरा रूप तृष्णा है। लौकिक पदार्थों से मनुष्य कभी तृप्त नहीं होता। वह सदा अतृप्त रहता है, जिसके कारण वासनाओं का अन्त नहीं होता। लौकिक सुख की वासनाएँ ही दुःख का सदैव कारण बनी रहती हैं। इसलिए साहब कहते हैं कि झूठे को झूठा अर्थात् असत्य पदार्थों को असत्य समझ कर त्याग दो। असत्य का जनक यह असत्य संसार ही है। जो गन्धर्व लोक के समान दृष्टि में सत्य दिखाई दे रहा है। यदि संसार सत्य होता तो इसकी वस्तुएँ जायमान नहीं होती। क्योंकि सत्य का कार्य सत्य होता है परन्तु इस संसार की सभी वस्तुएँ चली जा रही हैं। इसलिए इस संसार की वस्तुओं को झूठा समझ कर छोड़ देना चाहिए।

**टिप्पणी**—कुछ टीकाकारों ने "पति" शब्द का अर्थ यहाँ पर स्वामीपन से लिया है जो अनुपयुक्त है क्योंकि "पति" यहाँ पर प्रतिष्ठा के रूप में प्रयुक्त हुआ है जो देशज है यहाँ अपभ्रंश के रूप मे आया है क्योंकि लबराई से पति का कोई सम्बन्ध न होने से अशुद्ध है।

## रमैनी ६१

**धरम कथा जो कहते रहई। लाबरि नित उठि प्रातहि कहइ॥**
**लाबरि बिहने लाबरि संझा। एक लाबरि बसे हिदया मंझा॥**
**रामहुँ केर मरम नहिं जाना। ले मति ठानिनि वेद पुराना॥**
**वेदहुं केर कहल नहिं करई। जरतइ रहै सुस्त नहिं परई॥**

**शब्दार्थ**—धरम-धर्म, जो किसी आचार्य के द्वारा कथन किया जाय, जो धा या 'धृ' धातु से बना है जिसको धारण किया जाय, वह धर्म कहलाता

है। कथा–आध्यात्मिक विषयों का विवेचन, जिसको लोगों को सुनाया जाय। लाबरि–झूठ। बिहने–प्रातः। संझा–संध्या। मंझा–मध्य में। केर–के। मरम–मर्म, भेद। ले–लेकर। मति–बुद्धि। ठानिनि–अनुष्ठान किये, प्रारम्भ किये। वेदहुं–वेद का भी। जरतइ–जलता। सुस्त–ठंढ़ा, शान्त, बुझना। परई–पड़ता है।

**सम्बन्ध**—इसके प्रथम में कहा जा चुका है कि जब तूं मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा छोड़ दोगे, तो तुम्हारे अभिमान टूट जायेंगे। साथ ही यह भी कहा है कि जो दूसरे का स्वत्व चुराकर अपने हित के लिये प्रयोग करते हैं, वह अपने आत्मा के लिये सुखकारी नहीं होता क्योंकि जिस मान-मर्यादा को हम छोड़ने के लिये कहते हैं जिसके लिए वह पुनः-पुनः दूसरे के स्वत्व का चोरी करते रहता है अर्थात् दूसरे का अपहरण कर अपने हित में लाने की चेष्टा करता है जिसके कारण जन्म-मरण बराबर बना रहता है। उसको साहब ने झूठा कहकर एवं मिथ्या को मिथ्या जानकर छोड़ने को कहा है। जब तक दूसरे की चोरी नहीं छूटेगी अर्थात् स्वत्व पद हरण नहीं छूटेगा तब तक उद्धार नहीं हो सकता। अब पुनः उसी प्रकार की बात कह रहे हैं जो धर्म के नाम पर सदैव ठगी एवं चोरी करते रहते हैं।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जो दूसरे के स्वत्व को अपहरण करने वाले हैं, जो चोरी से जीवन निर्वाह करते हैं वे बचने के लिए सदा झूठ का सहारा लेते रहते हैं। धार्मिक मनुष्यों के सामने धार्मिक एवं आध्यात्मिक कथाओं को कहते रहते हैं और धर्म की लम्बी चौड़ी बातें सुनाते रहते हैं। देखने में तो लगते हैं बड़े धार्मिक हैं, बड़े पंडित हैं, बड़े महात्मा हैं, बड़े संत हैं, परन्तु प्रतिदिन प्रातः उठते ही झूठे व्यवहारों की बात करते हैं। अर्थात् जो धर्म कथा में कहते हैं घर में आने पर बिल्कुल उसके विपरीत आचरण करते हैं। धार्मिक समाज में बहुत बड़ा सत्यवादी अपने को प्रदर्शित करते हैं। पर वहाँ से अलग होने पर सुबह से शाम तक झूठ का ही व्यवहार करते हैं। अपनी रोजी रोटी चलाने के लिए दूसरे को आत्म

ज्ञान की बात, परमात्मा की बात, स्वर्ग की बात सुनाते रहते हैं परन्तु अपने स्वयं पंडित जी अज्ञान रूपी झूठाई को अपने हृदय के मध्य में छिपाये रहते हैं। अर्थात् दूसरे को मुक्ति का उपदेश तो देते हैं और यह भी कहते हैं कि हम मुक्त है परन्तु जो मरने का भय है वह हृदय में बसा हुआ है। इसलिए सदा झूठ बोलते रहते हैं। ये वाचक ज्ञानी लोग राम के मर्म को नहीं जानते हैं। जिस परमतत्त्व की व्याख्या करते हैं, वह केवल वचनों से करते हैं परन्तु वह परमतत्त्व क्या है, उसका कुछ भी भेद ये नहीं जानते ? इनको कोई रहस्य ज्ञाता गुरु नहीं मिला अपनी बुद्धि के अनुसार वेद, पुराण का अर्थ करते हैं और उसका अनुष्ठान भी अपने विचारानुसार ही करते हैं। अनेक प्रकार से लोगों को वेद के अच्छे ज्ञान को सुनाते हैं, वह केवल जीविका के उपार्जन के लिए होता है, जिस वेद-शास्त्र का ये अनुष्ठान करते हैं, उस वेद-शास्त्र का भी कहना नहीं मानते, न उस पर चलते हैं। इसलिए तृष्णा की अग्नि में निरन्तर जलते रहते हैं। वेद-शास्त्र पढ़ने पर भी वे इस अग्नि से ठंढे नहीं होते, क्योंकि केवल वाणी से राम-राम कहने से अन्तःकरण के मल नहीं धुलते जब तक कि सत्कर्मों के द्वारा मन शुद्ध न हो जाय, तब तक मनुष्य तृष्णाग्नि में जलते रहता है।

साखी

**गुनातीत के गावते, आपुहिं गये गंवाय।**
**माटी तन माटी मिल्यो, पौनहिं पौन समाय।।**

**शब्दार्थ**—गुनातीत–निर्गुण ब्रह्म, रज, तम, सत, गुण से परे। गावते –कथन करते हुए। आपुहिं–अपने आप। गंवाय–गवाय, नष्ट हो गये। माटी-पंच तत्त्व से युक्त शरीर। मिल्यो–मिल गयी। पौनहिं–प्राण तत्त्व। समाय–वायु में मिल गये अर्थात् वृद्धावस्था आने पर यह मिट्टी का तन पंच भूतों में मिल गया।

**भावार्थ**—अज्ञानी मनुष्य जिसको आत्मज्ञान नहीं है। जो सत्याचरण नहीं करता, केवल वेद-शास्त्र का अध्ययन करके तीनों गुणों से रहित,

निर्गुण ब्रह्म का कथन करता है परन्तु उसके बोध के बिना स्वयमेव नष्ट हो जाता है। शरीर में जो मृतिका का अंश है वह मृतिका में मिल जाता है। जो अग्नि का अंश है वह अग्नि में मिल जाता है, जो पानी का अंश है वह पानी में, जो वायु का अंश है वह वायु में मिल जाता है। इसी तरह से जो आकाश का अंश है वह आकाश में मिल जाता है। इस तरह बिना सत्याचरण के कुछ भी हाथ नहीं लगता है।

**विशेष**—झूठे लोग वेद-शास्त्र पढ़कर केवल कथा करते हैं और अपने स्वयं उसके प्रतिकूल आचरण करते हैं। प्रातः से सायं तक झूठ के ही धन्धे में लगे रहते हैं। अर्थात् संसार की मोह माया में लिप्त रहते हैं। क्योंकि सबसे बड़ा झूठ बोलने वाले वंचक लोग हैं जो यह बोलते हैं कि हम तो कमलवत् संसार में रहते हैं। संसार का कार्य देखते हुए भोग भोगते हुए मुक्त हो जायेंगे। क्योंकि हम आत्म ज्ञानी हैं। इस झूठ को हृदय के मध्य में बसाये रहते हैं। ऊपरी वक्तव्यों को देने से ये परमतत्त्व का रहस्य नहीं जान सकते। चाहे कितने झूठे अनुष्ठान करें, चाहे अपनी बुद्धि से दूर तक देखकर विचार कर लें, बोध करें पर इनको लाभ होने वाला नहीं है। क्योंकि जो वेद में सच्ची बात है जिसके लिए वेद निर्देश देता है उसकी बात ये वंचक गुरु लोग नहीं मानते। जिसके कारण तृष्णा अग्नि में जलते रहते हैं। सुस्त कहिये शीतलता इनको कभी प्राप्त नहीं होती। गुणातीत कहिये चिदाघन चित्स्वरूप का खूब बखान करते हैं। उसकी गीत गाते हैं परन्तु स्वतः आत्म बोध न होने के कारण इनका जन्म-मरण नहीं छूटता है। इसके कारण पंचभूत से निर्मित शरीर पंचभूत में समा जाता है। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि कथनी और करनी को एक करें। तभी वे सुख पा सकते हैं।

## रमैनी ६२

### जाति-वर्ण-विचार प्रकरण

**जो तूँ करता बरन विचारा। जन्मत तीनि डंड अनुसारा॥**

**जन्मत सूद्र मुये फुनि सूद्रा । क्रितम जनेऊ घालि जग धंधा ।।**
**जो तू बांभन बभनी को जाया । अउर राह दै काहै न आया ।।**

**शब्दार्थ**—तूँ–तुम। करता–करने वाला। वरन–वर्ण। विचारा–विवेक, चिन्तन। जन्मत–जन्मकाल में। तीनि डंड–पलास ब्राह्मण के लिए, पीपल–वट क्षत्रिय के लिये, गूलर वैश्य के लिए, कायिक दण्ड, वाचिक दण्ड, मनसा दण्ड, आचारियों का तीन दण्ड। अनुसारा–अनुसरण किया, निर्यात किया, विधि किया। सूद्र–चौथा-वर्ण। क्रितम–कृत्रिम, बनावटी, काल्पनिक। जनेऊ–उपवीत, जो चौरासी चौवे कच्चे सूत का होता है जिसको तीनों वर्ण के लोग पहनते हैं। घालि–कन्धा में डाल कर। धंधा–व्यवहार, संस्कार। बांभन–ब्राह्मण, अभिजात, अग्रजन्मा। जाया–उत्पन्न हुआ। राह–द्वार, मार्ग। काहै–क्यों। आया–उत्पन्न हुआ।

**सम्बन्ध**—इससे पहली रमैनी में कहा गया कि दूसरे को उपदेश अच्छा दिया जाता है परन्तु अपने पालन नहीं किया जाता है। इसलिए वह मनुष्य बिना प्रभु प्राप्ति के ही संसार से विदा हो जाता है। अब इस बासठवीं रमैनी में उसी बाह्याचार का उल्लेख किया जा रहा है।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जो तुम वर्णों का कर्त्ता-धर्त्ता बनकर वर्ण-विभाजन को करनेवाला बने हो और उस पर तुमने विचार किया है कि चार वर्णों की उत्पत्ति भगवान के द्वारा हुई है और वर्णों के विभाजन कर्त्ता स्वयं भगवान हैं। तो यह बात पूर्णरूपेण असत्य है। क्योंकि जिन तीन वर्णों का संस्कार करते समय तीन दण्डों का तूँ विधान किया है। ये विधान तेरे द्वारा बनाये गये हैं। ब्राह्मण ब्रह्मचारी के लिए संस्कार के समय केश पर्यन्त पलास का दण्ड ब्रह्मचारी के हाथ में दिया जाता है। बाद में उसे जनेऊ पहनाया जाता है। इसी प्रकार से क्षत्रिय ब्रह्मचारी के लिए वट का वा खैर का दंड ललाट के बराबर देकर उपवीत पहनाया जाता है। उसी प्रकार वैश्य पुत्र का संस्कार करते समय पीलू वा गूलर का दंड उसके नासिका के बराबर उसके हाथ में पकड़ाकर उसका संस्कार कराया जाता है। साहब कहते हैं कि यदि

तूं जन्म से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य था तो पुनः इन वर्णों की जाति संस्कार कराने की क्या आवश्यकता थी ? क्योंकि जन्म काल में तो उसको शूद्र ही माना गया था। यदि शूद्र न मानते तो वर्ण संस्कार करते क्यों ? कोई आवश्यकता न थी। इसी प्रकार से मरणोपरान्त भी वह शूद्र ही रहता है क्योंकि कोई संस्कार उसके साथ नहीं जाते और जो तू प्रतिज्ञा स्वरूप कृत्रिम जनेऊ कन्धे में डालकर संसार का व्यवहार चला रहे हो यह सब तो तेरे मन का है। तुम कहते हो कि जनेऊ दैहिक, दैविक, भौतिक तापों को हनन करने वाला है। वा षट्कर्म करते समय तूं विशेष जनेऊ का प्रयोग करते हो परन्तु जो जनेऊ नहीं पहनते हैं क्या भगवान उनपर खुश नहीं होता, क्या मुक्ति उनको नहीं मिलती ? इसी प्रकार से जनेऊ कोई भी पहन सकता है और किसी वर्ण का अपने को घोषित कर सकता है। क्योंकि वर्ण संस्कार करने के बाद तूं जाति की घोषणा करते हो और केवल जीवन काल में ही तुम्हारे षोड्स संस्कार होते हैं। जिसके कारण तेरा वर्ण केवल वाचिक है। न पहले था न बाद में रहेगा। इस पर भी यदि तू नहीं मानता है कहता है हम ब्राह्मण हैं, हम क्षत्रिय हैं, हम वैश्य हैं, यदि तूं ब्राह्मणी, क्षत्राणी या वैश्यानी से उत्पन्न हुआ है इसके लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य बनता है, तो तुम्हें माता के गर्भ से दूसरे राह से आना चाहिए था। परन्तु तुम भी उसी मार्ग से आये हो जिस मार्ग से शूद्र अथवा अछूत आता है। इसलिए हिन्दुओं के धर्म के कर्त्ता-धर्त्ता ब्राह्मण हैं। बताओ तुम लोग कैसे ऊँचे हो दूसरे कैसे नीच हैं ?

**जो तूँ तुरक तुरकिनि को जाया। पेटहिं काहे न सुनति कराया ॥**
**कारी पियरी दुहउ गाई। ताकर दूध देउ बिलगाई ॥**
**छाडु कपट नर अधिक सेआनी। कहै कबीर भजु सारंगपानी ॥**

**शब्दार्थ**—तुरक-इस्लाम धर्म का मानने वाला, तुर्की देश का रहने वाला। तुरकिनी-तुर्किनी वह स्त्री जो इस्लाम धर्म को मानती हो। सुनति-सुन्नति, जातीय संस्कार के समय की एक क्रिया, शिश्नोच्छेदन।

कारी–काली। पियरी–पीली। दुहउ–दुग्ध निकालने की क्रिया। गाई–गाय। ताकर–उसका। विलगाई–विभाजन। छाडु–छोड़ों। कपट–अन्दर कुछ रखकर कहने वाला वाक्य। नर–मनुष्य। सेआनी–बुद्धिमानी। भजु–भजन करो, जप करो। सारंगपानो–विष्णु भगवान, विश्वात्मा, विश्वचक्षा।

**भावार्थ**—इसी प्रकार से सद्गुरु मुसलमानों से भी प्रश्न करते हैं। वे कहते हैं कि हे मौलवो लोग ! यदि आप इस्लाम स्त्री के गर्भ से आने के कारण मुसलमान हो गये है तो माता के गर्भ से ही क्यों नहीं सुन्नति कराकर आ गये ? आप का शिश्नोच्छेन संस्कार तो पेट के बाहर आने पर ही कराया जाता है। इसलिए आप भी जन्मना मुसलमान नहीं हैं। आप दोनों हिन्दू एवं मुसलमानों की मान्यताएँ मनगढ़न्त हैं। इसलिए सर्वं मान्य नहीं है। यदि वर्णों का विभाजन प्राकृतिक होता तो जरूर उसके चिह्न होते जैसे गाय, घोड़े, बैल, भैंसे, गदहे के चिह्न होते हैं। किसी से पूछना नहीं पड़ता कि यह गाय है, बैल है कि घोड़ा है कि बकरी आदि हैं। वे सब बिना पूछे-ताछे ही ज्ञात हो जाते हैं परन्तु आप मनुष्यों को देखकर पूछते हैं। आप स्वतः किसी वर्ण को देखकर पहचान नहीं जाते हैं इसलिए पूछते हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि मानव में कोई जाति नहीं है। मानव सब एक जाति के हैं। चाहे वह अरब का हो, चाहे अमेरिका का हो, चाहे रूस का हो, चाहे वह इग्लेण्ड का हो, वे सब मनुष्य एक हैं। मनुष्य एकत्व की सिद्धि उसी प्रकार से है जैसे काली गाय एवं पीली गाय के दूध को इकट्ठा कर दिया जाय, एक में मिला दिया जाय तो यह पता नहीं चलता कौन पोली गाय का दूध है, कौन लाल गाय का दूध है, कौन काली गाय का दूध है ? वे सब दूध सफेद वा केवल उज्ज्वल हो दीखते हैं। यदि तुम काली-पीली गाय के दूध का विभाजन नहीं कर सकते हो अर्थात् उसमें विभिन्नता नहीं बता सकते हो, तो तुम मनुष्य को कैसे विभिन्न बता रहे हो ? जब चारों वर्णों के मनुष्यों को इकट्ठा करने पर नहों बता सकते कि यह ब्राह्मण है या शूद्र है तो तूं कैसे वर्ण का

विभाजन किया ? यह तो तेरा कपट है कि तूँ सही बात अन्दर रखकर बात कर रहा है। उसको छोड़ दो और जो तूं अधिक सयानापन दिखा रहा है अर्थात् बुद्धिमानी दिखा रहा है वह सब बेकार है। क्योंकि उपर्युक्त तेरे वर्णों पर विचार हो चुका है। इसलिए मैं कबीर कहता हूँ कि तूँ कपट छोड़कर उस प्रभु का भजन करो, चिंतन करो, जो विष्णु के नाम से जाना जाता है जो विश्व का रचयिता है। जिसके हाथ में सारंग नाम का धन्वा रहता है। अर्थात् जिसके हाथ रूपी शक्ति में ज्ञान का धन्वा रहता है, जो ज्ञान स्वरूप ही है, जो ज्ञान से भिन्न नहीं है, जो बाहर है जो भीतर है वह अपना स्वरूप ही है। जो समस्त चराचर का स्वामी है, जो सबका पालन करता है। जो पूरे विश्व में एवं ब्रह्माण्ड में व्याप्त है उस सांरगपानी को भजो। तभी तेरा कल्याण होगा। अन्यथा इस जाति-पांति के फेर में पड़े रहोंगे तो उसी प्रकार से हो जाओगे जैसे धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का होता है। घर से घाट पर जाता है, घाट से घर पर। इसी तरह कभी मनुष्य बनोंगे, कभी पशु, यही रहट गति बराबर लगी रहेगी।

**विशेष**—हे ब्राह्मणों ! हे मौलबियों ! हे धर्माधीशों ! जो तुम लोग वर्ण का विचार करके संस्कार कराते हो। वह कितना निरर्थक है। यह तुम समझ सकते हो। क्योंकि जन्म एवं मृत्यु काल में तेरे कुछ भी संस्कार नहीं रहते। न संस्कृत होकर आते हो न संस्कृत होकर जाते हो। इसलिए जनेऊ आदि कृत्रिम संस्कार जो धारण करते हो एवं कृत्रिम स्वांग बनाते हो वह सब मिथ्या है क्योंकि माता के गर्भ से एक ही मार्ग से ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र सब उत्पन्न होते हैं और जो कायिक, वाचिक, मानसिक दण्ड लगाते हो यह सब तेरे मन की कल्पना है और जो तीन दण्ड धारण कर आचारी बनता है और एक दण्ड धारण कर दण्डी बनता है और कहता है ये सब ब्राह्मणों के लिए ही हैं और दूसरे वर्णों के लोग न सन्यासी हो सकते हैं, न आचारी हो सकते हैं। केवल ब्राह्मण ही हो सकता है। जब तुम्हारा वर्ण ही मिथ्या है तो तूं बेकार ही ब्राह्मण वा आचारी

बनते हो। यदि तू अपने धर्म-ग्रन्थों में यह दिखाते हो कि ब्राह्मण सद्‌गुण प्रधान होता है। क्षत्रिय सत, रज गुण प्रधान होता है। इसी प्रकार से वैश्य रज, तम गुण प्रधान होता है और शूद्र केवल तम गुण प्रधान होता है तो यह बात भी प्रामाणिक नहीं दीखती। क्योंकि सबसे अधिक बड़े-बड़े तमोगुणी राक्षस ब्राह्मणों में ही हुए हैं। जैसे—रावण, हिरणाक्ष आदि और क्षत्रियों में उससे कम हुए हैं। तथा वैश्य और शूद्र में तो कोई राक्षस हुआ ही नहीं है। इसलिए जो तू अपने को अग्रजन्मा कहते हो और सारे अधिकारों का अपहरण किये हो। इसको छोड़कर जिसको तूं सबका संरक्षक मानते हो। उस सांरग धन्वा वाले भगवान का भजन करो। इसी प्रकार से हे मौलवी गुइयां लोग ! आप लोग भी शेख, शैयद एवं जुलाहे और मंगोल की जाति न मानकर सबको एक मनुष्य मानकर उस परवर दिगार का भजन करो। जो सब पर रहम करने वाला है और सबको सद्‌गति देने वाला है। जैसे—काली, पीली, गाय का दूध एक सा है। शरीर का रूप दो किस्म का है उसी प्रकार से जलवायु के कारण देश काल के कारण कोई गोरा है, कोई काला है, तो कोई नाटा है, कोई लम्बा है परन्तु दूध रूपी आत्मा वा आत्मा रूपी दुग्ध एक है। उसमें बिलगाव मत रखो। सब छल-छिद्र छोड़कर श्री हरि का भजन करो।

## रमैनी ६३

**नाना रूप बरन एक कीन्हा। चारि बरन वै काहुँ न चीन्हा॥**
**नष्ट गए करता नहीं चीन्हा। नष्ट गए औरहिं मन दीन्हा॥**
**नष्ट गए जिन्ह वेद बखाना। वेद पढ़े पर भेद न जाना॥**
**बिमलख करै नैन नहीं सूझा। भया अयान तब किछऊँ न बूझा॥**

**शब्दार्थ**—नाना–बहुत, अनेक, उभयार्थ। रूप–स्वभाव, प्रकृति, रीति, ढंग, पहचान, लक्षण, जाति, प्रकार। बरन–वर्ण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अधर–प्रशंसा, प्रख्यात, कीर्ति, ईश्वर, परमात्मा, संस्कृत शब्द कौस्तुम कोश में उक्त पर्यायवाची शब्द आये हैं। चारि बरन–वही

ब्राह्मण आदि। वे–उसको, परमेश्वर को। काहुँ–कोई। नष्ट–मर गये। करता–कर्त्ता, परमेश्वर। औरहिं–परमेश्वर से भिन्न देवादि की उपासना। वेद–ज्ञान। बखाना–वर्णन किया, प्रशंसा किया। विमलख–विमलाक्ष, अञ्जन विशेष जो नेत्र में अधिक सूझने के लिए लगाया जाता है। भया–हुआ। किछउँ–कुछ भो। बूझा–समझा। सूझा–देख नहीं सकता। अयान–अज्ञानी, मूर्ख।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा जा चुका है कि हे वर्ण जाति बनाने वालों! यदि तुम लोगों ने वर्णों का विचार किया है और चार वर्ण सही हैं तो जो तीन वर्णों के दण्ड संस्कार हैं ये सब जन्म के साथ क्यों नहीं आये? हमारे विचार से तुम्हारे ये धन्धे मनगढ़न्त हैं। क्योंकि माता के उदर से आने वाले शिशु को किसी वर्ण के चिह्न नहीं होते?

**भावार्थ**—अब सद्‌गुरु कहते हैं कि जो वर्णस्वरूप, परम अक्षर परमात्मा ने उस नाना रूप में सृष्टि की संरचना की है, उस एक प्रभु को ये चार वर्ण वालों में किसी ने नहीं चीन्हा। ये चार वर्ण निर्माण करने वाले स्वयं नष्ट हो गए परन्तु उस परमेश्वर की पहचान नहीं कर सके। जिसने इस उभयार्थं सृष्टि को अनेक रूपों में बनाया है। उस परम प्रभु को न चोन्ह कर ये वर्णाभिमानी लोग अन्य षट्‌कर्म आदि में ही मन को लगाए रहे और वे लोग भी नष्ट हो गये जिन लोगों ने वेद के ज्ञान का बखान किया था वा प्रशंसा किया था। जिन्होंने अपने क्रिया-कलापों को एवं वर्णाश्रम के विचारों को वेद सम्मत बताया था। जो कहते थे कि भगवान विराट् के मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुआ है, बाहु से क्षत्रिय उदर से वैश्य, पैर से शूद्र उत्पन्न हुआ है। ऋग्वेद पुरुष सूक्त में इस प्रकार अनेक लोगों ने वेद का नाम लेकर जाति-वर्ण सिद्ध किये हैं और अनेक व्यवस्था दिये हैं तथा पृथक्-पृथक् अनेक वर्णों के लिए व्यवस्था बनाये गये हैं। इन चार वर्णों के बनाने वाले कर्त्ताओं ने वेदों को पढ़ा अवश्य, परन्तु वेद के वास्तविक रहस्य को न जान सके कि वेद क्या कह रहा है। वेद तो यह भी कहा है कि जो छोटा है वही बड़ा है अर्थात् न

कोई छोटा है न कोई बड़ा है 'ऋग्वेद' परन्तु इन जात्याभिमानी ब्राह्मण लोगों ने वेद के उस भेद को नहीं जाना जिसमें मनुष्यों के लिए समान आदेश दिया है। ये व्यवस्थावादी वर्ण-कर्त्ताओं ने विमलाक्ष अर्थात् अंजन हृदय रूपी नेत्र को साफ करने के लिए वेद रूपी विमलख को लगाया परन्तु तो भी दिखायी नहीं दिया अर्थात् हृदय जो है वह नेत्र है वेद का ज्ञान अंजन है। उसको हृदय रूपी नेत्र में लगाया परन्तु हृदय विहीनता के कारण वेद की वास्तविक बात दिखायी नहीं दी। क्योंकि वह अज्ञान से युक्त था, अविद्या ग्रस ली थी। वर्णाश्रम के परिप्रेक्ष्य में वेदों को पढ़ा। निष्पक्ष होकर वेदों को नहीं पढ़ा। इसलिए उक्त वेद की बात उसके बूझने या समझने में नहीं आयी। कुछ अदिष्ट टीकावादियों ने सद्गुरु कबीर को वेद विरोधी माना है परन्तु उपर्युक्त विवेचन से भिज्ञवान होना चाहिए। यहाँ पर वेदज्ञान को अंजन कहा है। अंजन देने पर ज्यादा दिखायी देता है। यहाँ पर वेदज्ञान का महत्त्व दिखाने के साथ-साथ अज्ञानियों के प्रति वेद पढ़ने का निषेध भी है।

साखी

**नाना नाच नचाय के, नाचे नट के भेख।**
**घट घट है अविनासी, सुनहु तकी तुम सेख ।।**

**शब्दार्थ**—नाना–बहुत। नाच–नृत्य। नचाय–नृत्य कराय। नाचे–नृत्य करे। नट–अभिनेता, नचानेवाला। भेख–स्वरूप, स्वाँग। घट--शरीर। अविनासी--जिसका नाश कभी न हो। तकी--सेख--श्रेष्ठ अर्थात् शेखतकी फकीर, सिकन्दर लोदी का गुरु, सूफी सन्त।

**भावार्थ**—जिसने अनेक रूपों का निर्माण किया, अनेक प्रकार के शरीरों की रचना की वह परम अक्षर अविनाशी तत्त्व, सम्पूर्ण संसार को नृत्य कराता है और अपने भी साथ-साथ नृत्य करता है। इस संसार के प्राणियों को नचानेवाला अभिनेता वही विश्वचक्षा है और हे शेखतकी! वह अविनाशी तत्त्व सभी मनुष्यों के घट-घट में विराजमान है, इस बात को तुम ध्यान पूर्वक सुन लो। तात्पर्य यह है कि जिसने नानाप्रकार की

सृष्टि की रचना की है उसका कोई भेष वा रूप नहीं है। वह कार्य ब्रह्म के रूप में संसार की रचना करता है। हे श्रेष्ठ संत शेख ! आप हमारी बात को ध्यान से सुनिए, वही अभिनेता परमतत्त्व सभी को नचाता है तथा सबके घट-घट में विराजमान है।

**विशेष**—ऐ वर्णाभिमानी लोग उस प्रभु को नहीं पहचान सके, जो अनेक रूपों में इस सृष्टि का निर्माण किया है। वे स्वयं वर्ण की श्रेष्ठता कहते-कहते मर गए, परन्तु प्रभु का परिचय इनको नहीं हुआ। प्रभु को छोड़ कर उक्त अनात्म पदार्थों में अपने मन को दिए रहे और अपनी बातों की संपुष्टि में वेदों की दुहाई देते रहे, परन्तु वेदों में क्या लिखा है पढ़ने पर भी नहीं समझ सकें। न समझने का कारण हृदय-हीनता है। जिन लोगों को तमोगुण एवं अविद्या का ज्यादा घेरा है, वे लोग उस आत्मा राम को समझ नहीं पाए। यदि समझते तो, जो सारे संसार का संचालन कर रहा है, जो कर्मानुसार तमाम योनियों में ले जाता है, जिसका स्वयं वह स्वामी है, वह पुरुष संसार का निर्माण करने के उपरान्त प्राणियों के हृदय में अवस्थित हुआ है, इस बात को शेखतकी जैसे लोग भी नहीं समझ पाए। यदि समझे होते तो हिन्दू-मुसलमान का भेद उनको नहीं रहता। यहाँ पर 'सुनहु तकी तुम सेख' में श्लेष है और बहुव्यंजना भी है। एक का संबोधन करके उन सभी धर्मावलम्बियों के प्रति कहा गया है, जो कबीर साहब के समय में विराजमान थे तथा अपने-अपने धर्म को श्रेष्ठ मानते थे जो एक दूसरे से अपने को श्रेष्ठ कहते थे।

## रमैनी ६४

### देहात्मवादी प्रकरण

**काया कंचन जतन कराया। बहुत भाँति के मन पलटाया॥**
**जो सउ बार कहौं समुझाई। तैयो धरा छुआ नहिं जाई॥**
**जन के कहे जु जन रहि जाई। नउ निधि सिधी तिन्ह पाई॥**
**सदा धरम जाके हृदया बसई। राम कसउटी कसते रहई॥**
**जो रे कसावै अनतै जाई। सो बाउर अपने बउराई॥**

**शब्दार्थ**—काया–शरीर, घर, समुदाय, संघ, मूलधन। कंचन–स्वर्ण, बहुत कीमती धातु। भाँति–प्रकार। पलटाया–घुमाया, उलटाया। धरा–पकड़ा। छुआ–छोड़ि, त्यागि, स्पर्श। जन–संत, भगवत् आराधक। जन–सामाजिक जन। नउनिधि–पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील. वर्च्य। सिधि–सिद्धि, अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, इसित्व, वसित्व। कसउटी–परीक्षा, कसने की क्रिया। कसते–बांधते। कसावै–जो परीक्षा में उत्तीर्ण हो, रहनी–गहनी पर स्थित रहे। अनतै–अन्यत्र। कसते–बन्धन।

**सम्बन्ध**—जिसने इस सृष्टि का निर्माण किया है, उसको अज्ञ (मूर्ख) मनुष्य नहीं पहचान सके, वह सभी के घट में निवास करता है परन्तु आगे यह भी कहा जा रहा है कि ये अज्ञ प्राणी उस परमतत्त्व को न मानकर संसार के ही भरण-पोषण में लगे रहे।

**भावार्थ**—साहेब कहते हैं कि संसार का अज्ञानी मनुष्य संसार के मिथ्या वाद-विवाद में पड़ा रहता है और शरीर को ही मूलधन मानता है शरीर में ही तादात्म्य बुद्धि रखता है शरीर को ही आत्मा समझा जिसके भरण-पोषण के लिए अपार सोना-चाँदी वा बहुत प्रकार के धनों का जतन किया। मैंने बहुत प्रकार से संसारी मनुष्यों के मन को भुक्त-भोगों से व संसार से घुमाकर प्रभु की ओर व आत्मा की ओर लगाना चाहा, परन्तु ये संसारी जीव इतना काया-कंचन में फँस गए हैं कि यावत् जीवन उसी के यतन में लगे रहते हैं। यदि मैं इनको सौ बार, सहस्रबार कहकर समझाता हूँ कि संसार को छोड़ो तो भी वे जिसने इस संसार को पकड़ लिया है, कितना भी कहने पर वह नहीं छोड़ रहा है। यदि 'छुआ' का अर्थ स्पर्श लिया जाय तो जो अज्ञान के कारण जगत की पकड़ में आ गया है, उस व्यक्ति को कितना भी कहता हूँ, पर उसको रंचमात्र भी मेरा उपदेश स्पर्श नहीं करता। दोनों के अर्थ में कोई विशेष भेद नहीं है, इसलिए दोनों ठीक है। इसके बाद यह कहा जा रहा है कि साधु-संतों के कथनानुसार जो लोग सत्य मार्ग पर वा आत्म-चिंतन

में वा ईश्वर-भजन में लग जाते हैं। महापुरुषों के कथनानुसार रहते हैं, उन सभी दैवी निधियों एवं सिद्धियों को प्राप्त कर लेते हैं। सद्गुरु कहते हैं कि जिस मनुष्य के हृदय में सदा परमार्थ रूपी धर्म निवास करता है, जो परमतत्त्व का चिन्तन करता है, जो राम कसौटी कसते रहता है अर्थात् चारो ओर से मन को बटोर कर, परमेश्वर में लगाये रहता है या चिन्तन करते रहता है, वह इस संसार सागर से पार हो जाता है और जो लोग 'अनते' कहीं माया में कसाते हैं अर्थात् संसार की वस्तुओं को ही सत्य मानते हैं, जो संसार के स्त्री, पुत्र, धन-जन में ही चित्त देते हैं, वे बुद्धि रहित मनुष्य पागल आपने-आप पगला (बौरा) गये हैं, बुद्धि रहित हो गए है। क्योंकि आत्मा को छोड़कर अनात्म पदार्थ में जाकर कसा रहे हैं अर्थात् बँध रहे हैं। अनातम पदार्थों में बंधने के कारण ही उन्हें 'बाउर' कहिए निर्बुद्धि एवं पागल कहा गया है।

साखी

**ताते परी काल की फाँसी, करहु न आपनो सोच।**
**जहाँ संत तहं संत सिधावै, मिलि रहै धूतै धूत॥**

**शब्दार्थ**—ताते–इसलिए। परी–पड़ी। काल–मृत्यु। फाँसी–बंधन। करहु–करिए। सोच–चिन्ता। सिधावै–जावे। धूतै धूत–धूर्तों के यहाँ, धूर्त।

**भावार्थ**—जो राम में न बंधकर माया में बंध जाता है, वह पगला इसलिए मृत्यु के बन्धन में पड़ता है अर्थात् जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहता है। अब कहा जा रहा है कि तू दूसरे के फेर में क्यों पड़ा है, तू स्वतः अपने लिए चिन्ता कर। यह बात उसी प्रकार से है जैसे कोई अपनी बुराई को न देखकर दूसरे का उद्धार चाहता है। जिसको अच्छे सन्त-महात्मा मिलते हैं, वह व्यक्ति उसी के यहाँ जाता है। इसलिए उसका बन्धन खुल जाता है। वह माया से परे हो जाता है और जो अज्ञानी मनुष्य धूर्त्त है, जो माया की वस्तुओं को छलने के लिए अनेक यत्न करते हैं, वे उन्हीं धूर्त्तों के यहाँ जाते हैं, जहाँ से उनको मायिक सामग्री प्राप्त होती है। इसलिए वे काल के बन्धन में पड़े रहते हैं।

**विशेष**—जो लोग काया-कंचन के फेर में पड़े रहते हैं, बहुत कहने

पर भी बहुत घुमाने पर भी उधर से नहीं घुमते। चाहे सैकड़ों बार उन्हें समझाया जाय परन्तु जिसने माया-मोह को पकड़ लिया है, सन्त-महात्माओं का उपदेश उसको स्पर्श नहीं कर पाता है एवं जो लोग सन्तों के कहने से उनके बचनों पर रह जाते हैं उन्हें संसार का भी सुख मिलता है और परलोक का भी सुख मिलता है अर्थात् जिन्हें प्रभु-प्राप्ति हो गयी है, जिन्हें आत्मबोध हो गया है वे इतने संतुष्ट हो जाते हैं कि मानो उन्हें सम्पूर्ण ऋद्धि-सिद्धि, माल-खजाना उपलब्ध हो गया हो। दूसरी बात अन्यत्र यह भी कहा गया है कि हरि-भक्तों को लोक-परलोक दोनों के सुख मिल जाते हैं। जो प्रभु परायण हो जाते हैं, उन्हें लोक-परलोक की कोई भी वस्तुएँ अनुपलब्ध नहीं होतीं। जिसके हृदय में सदा परमार्थ की भावना बसती है, जो सदा धर्म करता रहता है और प्रेम रूपी राम के बन्धन में जो बँधा रहता है अर्थात् जो अपने जीवन को परमतत्त्व में समर्पण कर चुका है, वह भवसागर से पार हो जाता है। दूसरे जो लोग प्रभु-चिन्तन छोड़कर माया-मोह में बँध जाते हैं सो बाउर हैं, पगले हैं, जिसके कारण उनके गले में काल की फाँसी पड़ी रहती है। अपने तो स्वयं काल भगवान के बन्धन में हैं और दूसरे के लिए काल भगवान से छुड़ाने की चिन्ता करते हैं कि वह दुःख में पड़ा है। सद्गुरु साहेब कहते हैं—रे अज्ञ मनुष्य ! तू अपने लिए क्यों नहीं सोचता, तू संत होकर जहाँ संत रहते हैं अर्थात् संसार का माया—मोह छोड़कर वहाँ जाओं जहाँ माया—मोह से परे होकर संत रहते हैं। तभी तू भव—बन्धन से छूट सकेगा। क्योंकि जिसके गले में काल की फाँसी पड़ी हुई है, वे लोग तो धूर्तों के यहाँ जाकर केवल धूर्तता ही सीखते है। इसलिए भगवान यम उनके गले में फाँसी डाले रहते है।

## रमैनी ६५

### मानव गुण उपेक्षा प्रकरण

**अपने गुन को अउगुन करहू। इहे अभाग जो तुम न विचरहु ॥**
**तूँ जियरा बहुतै दुख पावा। जल बिनु मीन कवन सचु पावा ॥**

**चात्रिक जलहल आसे पासा । स्वांग धरै भौसागर आसा ॥**
**चात्रिक जलहल भरे जो पासा । मेघ न बरसै चलै उदासा ॥**
**राम-नाम इहै निजु सारा । अउरो झूठ सकल संसारा ॥**

**शब्दार्थ**—अपने-मनुष्य के, निज के । गुन-गुण, ज्ञान, मनुष्यता, सद्‌विवेक, विचार, क्षमा, आर्जव, संतोष, मैत्री, करुणा, मुदिता, अहिंसादि । अउगुन-अवगुण, दुर्गुण,उपेक्षा, त्याग। इहै-यह है।अभाग-दुर्भाग्य। दुःख । विचारहु-विचारते । करहू-करते हो, समझते हो । जियरा-जीव, मनुष्य, निजात्म । बहुतै-बहुत ही । पावा-प्राप्त किया । जल-जीवन तत्त्व, परमतत्त्व, ईश्वर, पानी । मीन-मछली, मनुष्य, जीवन चाहने वाला। कवन-को। सचु-सुख-शान्ति । चात्रिक-चातक, वह पक्षी जो स्वाति के जल से प्रेम करता है, जो स्वाति के अतिरिक्त दूसरा जल नहीं पीता। जलहल-जलधर, बादल. जलाशय । आसे पासा-बहुत नजदीक, चारों तरफ, इधर-उधर। स्वांग-नाना प्रकार का भेष । धरै-धारण किया। भौसागर-संसार रूपी समुद्र। आसा-तृष्णा, कामना। चलै-निराश होकर चला गया। उदासा-उदास, खिन्नता। मेघ-बादल। निजु-अपना । सारा-वास्तविक तत्त्व ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि काया-कंचन में लगे हुए लोग कहने पर भी नहीं समझते चाहे कितना कहा जाय, इसलिए वे भगवान तमारि के पुत्र के शिकार होते रहते हैं। अब यह कहा जा रहा है कि यह मनुष्य अपने सत्य की उपेक्षा कर दिया, जिसका परिणाम भयंकर हुआ ।

**भावार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे मनुष्यों ! तुम अपने गुन को अर्थात् जो तुम्हें यह दुर्लभ मानव तन मिला था, जिसमें तू इच्छित फल पा सकता था । कोई भी कर्म मनुष्य तन से ही हो सकता है, चाहे तू लौकिक सुख के लिए करो, चाहे तू पारलौकिक सुख के लिए करो, चाहे तू महात्मा बनो, चाहे तू चोर बनो जो कुछ बनना है तू इसी मनुष्य तन से ही बन सकता है । ज्ञानी और विज्ञानी इसी मनुष्य तन से बन सकते हो । आकाश में उड़ने की भी क्षमता इसी मानव तन में है। सारे भुवनों को पता लगाने की भी क्षमता इसी मानव तन में है, जो कहा

भी नहीं जाय, सब कुछ इसी मानव तन से हो सकता है, परन्तु तूं इतने गुणयुक्त मानव शरीर को पाकर इसकी उपेक्षा कर दिया। इसके विपरीत तुम इस मानव तन से अवगुण करने लगा। इसको दुर्गुणों की खान बना दिया। यह मानव तन पाकर तूं चोरी करने लगा, डकैती करने लगा, दूसरे का स्वत्व अपहरण करने लगा, पूंजीवाद को प्रश्रय देने लगा अकारण लोगों के लिए दुःखदायी बना। तात्पर्य यह है कि उन सभी सद्गुणों को दुर्गुणों के रूप में बदल दिया। तुम्हें करना चाहिए था–सत्कर्म पर तू करने लगा–दुष्कर्म। इस मनुष्य तन को पाकर तुम्हें संसार में अच्छी कमायी करनी चाहिए थी। अपने बाल-बच्चों में रहकर अच्छा काम करना चाहिए था। खेती-बारी अच्छी तरह करनी चाहिए थी। तुझे ज्ञान-विज्ञान पढ़ना चाहिए था। रोजगार अच्छी तरह करना चाहिए था। तुम्हें सत्कर्म करना चाहिए था। तुम्हें दूसरे की भलाई करनो चाहिए थी। देश और समाज की सेवा करनी चाहिए थी। तुझे संसार में रहकर वह काम करना चाहिए, जिसके लिए यह मानव तन मिला था। तुझे वेद-शास्त्र पढ़कर, सन्तों की वाणियों को पढ़कर अपना सुधार करना चाहिए था। सद्धर्म का प्रचार करना चाहिए था—इत्यादि जो तुम्हारे कर्त्तव्य थे, वह न करके तुम दूसरी दिशा की ओर चल दिये। भला यह कितना अभागा है जो तुम इस पर विचार नहीं करते हो। इसलिए हे मनुष्यों! तूं बिना विचार के कारण अनेक प्रकार के दुःख भुगत रहे हो और आगे भी तूं मनुष्यता को नहीं ग्रहण करोगे, तब तक दुःख पाते रहोगे। भला कहो जो जल में रहने वाली मछली है, जिसका जीवन आधार जल है, वह बिना जल के कैसे सुख से रह सकती है? उसे जल के बिना कौन सुख मिल सकता है? इसी प्रकार से मनुष्यों का जीवन-आधार सत्कर्म है, सद्बुद्धि है, आत्मज्ञान और ईश्वर-भक्ति है। जैसे मछली को जल से निकाल दिया जाय तो उसका वचना कठिन है। उसी प्रकार से ईश्वर-भक्ति एवं सत्कर्म के बिना मनुष्य कभी बच नहीं सकता है। हे मूर्ख मनुष्य! वह सत्कर्म रूपी सुख और सुख का जलाशय तेरे अन्दर में परमतत्त्व

विद्यमान है। तुम बाहर कहाँ खोज रहे हो बाहर तो सब मृग-मरीचिका की तरह है। जैसे चातक पक्षी अपनी अनभिज्ञता के कारण अपने आस-पास के जल को नहीं पीता है, उसके आस-पास जलधर जल वर्षा रहे हैं, पर वह घोर वृष्टि वाले अश्लेषा, मघा, आदि नक्षत्रों के जल को ग्रहण नहीं कर रहा है। वह दूरस्थ कम वर्षा वाले स्वांति के जल को पीने की आशा में लगा हुआ है। उसी प्रकार से इस संसार के मनुष्य अनेक प्रकार के स्वांग को धारण करके इस भवसागर के सुख की इच्छा में लगा हुआ है अर्थात् जो लौकिक सुख है, उसी से अपनी आत्म संतुष्टि चाहता है जो उसके पास सुख का समुद्र भरा हुआ है, जो सबकी आत्मा है, सभी में विराजमान है। जो सुखों का सुख है उस परमाराध्य सुख को त्याग कर क्षणिक सुख की ओर लगे हुए हैं, जैसे मूर्ख चातक के पास में ही जलाशय जल से भरा हुआ है, परन्तु उसको नहीं पी रहा है। स्वांति के जल की आशा लगाए हुए हैं परन्तु स्वांति के वे मेघ जल नहीं दे रहे हैं। स्वांति के जल की अनुपस्थिति की दशा में विचारा चातक असमर्थ होकर इस संसार से चल दिया। उसी प्रकार से यह मनुष्य बहुत करीब जल रूपी प्रभु को अपने हृदय रूपी जलाशय में छोड़कर स्वांतिवत् संसार के अल्प सुख की आशा में लगे रहने के कारण निराश होकर इस मानव तन से मानवेतर योनियों में चला गया। क्योंकि संसार के सुख से संतुष्टि नहीं हुई, सदैव भोग की इच्छा बनी रही। इसीलिए आना-जाना बन्द नहीं हुआ। सद्गुरु कहते हैं कि 'इहै' अर्थात् जो पास में तेरे हृदय में राम विराजमान है, वही राम नित्य सार वस्तु है। सार तत्त्व है। यदि तूं सुखी होना चाहता है तो तूं उस परमतत्त्व, नित्य तत्त्व, राम को भजो, चिन्तन करो, उसकी प्राप्ति करो तभी तेरे को संतुष्टि मिल सकती है। वही तेरो प्यास छुड़ा सकता है। इस हृदय निवासी घट-घट में रमने वाले राम के अतिरिक्त मेरी दृष्टि में सारा संसार असत्य है, झूठा है। इसलिए इसका त्याग करो।

**हरि उतंग तुम जाति पतंगा । जम घर कियउ जिउ को संगा ।।**
**किंचित है सपने निधि पाई । हिय न अमाय कहं धरो छिपाई ।।**
**हिय न समाय छोरि नहिं पारा । झूठा लोभ किछउ न विचारा ।।**
**सुम्रित कीन्ह आपु नहिं माना । तरवर तर छर छागर हो जाना ।।**
**जिउ दुरमति डोलै संसारा । ते नहिं सूझै बार न पारा ।।**

**शब्दार्थ**—हरि–विष्णु, ब्रह्म, कार्य ब्रह्म, परमब्रह्म, चिदात्म तत्त्व । उतंग–उत्तुंग, ऊँचा, श्रेष्ठ, बड़ा । पतंगा–शलभ, एक प्रकार का पर वाला जन्तु, कीड़ा, हल्का, छोटा, अविद्या युक्त, जीव, सूर्य । जम–मृत्यु । संगा–साथ, संग । किंचित–थोड़ी । सपने–स्वप्न में । निधि–कोष, धनराशि, धन, वैभव । हिय–हृदय, उर । अमाय–समाय और उत्पन्न, स्थान विहीन, स्थान की कमी । कहं–कहा । छोरि–कोर, किनारा, तट । पारा–पार, प्राप्ति, जानकारी, ज्ञान, किसी नदी के उस पार का तट । लोभ–किसी चीज की लालसा, इच्छा । किछउ–कुछ भी । विचारा–विवेक । सुम्रित–स्मृति, धर्म ग्रन्थ । कीन्ह–किए, बनाए । आपु–स्वयं । तरवर–वृक्ष । तर–छाया में । छर–नष्ट, छार, नष्ट हो जाना । छागर–अजा, बकरी, बकरी का बच्चा, खसी । जिउ–जीव । दुरमति–दुर्बुद्धि । डोलै–चलै । सूझै–दीखे ।

**भावार्थ**—क्योंकि वह हृदय निवासी राम, वह हरि बहुत उतंग है, बहुत ऊँचा है, बहुत श्रेष्ठ है, परन्तु तुम उसकी प्राप्ति के बिना, उसी प्रकार से हल्का हो, मूल्यहीन हो, जिस प्रकार से एक पतंग जाति का कीड़ा होता है । यहाँ पर उतंग एवं पतंग में बहुव्यंजना है । तात्पर्य यह है कि यह मनुष्य जो संसार में लगा हुआ है और संसार के सुख की चाहना करता है, परन्तु वह संसार रूपी सुख इसको लाभ देने वाला नहीं है । इससे इसको संतुष्टि नहीं मिलती । शीतलता नहीं मिलती, क्योंकि वह अग्नि के समान है और यह जीव अविद्या ग्रसित पतिंगा व शलभ के समान है । अग्नि-शिखा रूपी संसार के सुख को भोगने की इच्छा से यह मनुष्य पड़ता है और वह पतंगवत् भस्म हो जाता है । इसी प्रकार

से हरि उतंग का आशय यह है कि तुमने भगवान का पहचान किया होता अर्थात् उसकी ओर झुका होता तो जलते हुए संसार से बच जाता क्योंकि श्रेष्ठ गुण वाला वह हरि है, जो तुम्हारे अन्दर विराजमान है। उस श्रेष्ठ गुणवाले को छोड़कर तुम अग्निशिखा रूपी संसार में दौड़ा, जहाँ पर तेरा नाश हो गया। जिसके कारण तुम बार-बार भगवान यमराज के घर से संगत किया अर्थात् हरि की प्राप्ति न होने से बार-बार तूं संसार में आते-जाते रहा। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या संसार विल्कुल निःसार है, जिसका इतना बड़ा त्याग बताया जा रहा है, ऐसी बात नहीं है। उक्त संसार में निश्चित सुख है, निश्चित लाभ है। वह लाभ भी कैसा है जैसे स्वप्न में किसी को धन मिल जाय और जब तक सपना देखता रहा तब तक वह सही ज्ञात होता है। परन्तु स्वप्न के टूटने पर उस निधि का कहीं पता नहीं रहता। मन उदास हो जाता है। जब तक सपना था तब तक उस सपने के उस सुख को इतना अपार समझ लिया। उसको देखकर इतना हर्षित हुआ। अन्दर में रखने के लिए उस थोड़े से सुख को कहीं रख नहीं सका। संसारी मनुष्य को सपने का यह सुख इतना बड़ा लगा अर्थात् संसार के अल्प सुख सुत, कलत्र, धन, धरा-धाम, मान-सम्मान, जो थोड़े दिन का सुख है वह किसी तरह से प्राप्त हो गया तो अब मनुष्य को इतना अपार लगा कि उसका ओर-छोर नहीं है, उसका वार-पार नहीं है, वह अपार है, हृदय में रखने का स्थान नहीं है। परन्तु यह अज्ञ प्राणी कुछ विचार नहीं किया। झूठे लोभ में फँसा रहा। झूठे संसार के सुख के लोभ में लगा रहा जिससे कि उसकी तृप्ति नहीं हुई। सदैव कामनाएँ बनी रहीं और यह भी नहीं विचार किया कि क्या सत्य है, क्या असत्य है। दूसरी बात कि उसने जो स्मृति ग्रन्थ बनाये, जो धर्म-ग्रन्थ बनाये, जिनमें पाप-पुण्य की व्यवस्था किया। उस पर भी नहीं चला। उसको भी नहीं माना। 'सुम्रित' का यदि 'सुमति से' अर्थ लिया जाय तो अधिक उपयुक्त होगा। सम्भव है कि कभी पाठ 'सुमति' रहा हो। हस्तलेख अच्छे प्रकार से न समझने के कारण 'सुम्रित' हो गया हो।

लेकिन वर्तमान में सभी हस्तलेखों में 'सुम्रित' पाठ ही मिला है, इसलिए वही रखा गया है। यदि 'सुमति' मानकर अर्थ किया जाय तो होगा कि उसने अच्छे विचारकों की बात नहीं माना, तो भी कोई आपत्ति नहीं है। 'सुम्रित' ग्रन्थों में भी अच्छी-अच्छी बातें हैं, जिसको मनुष्य ने बनाया, उस पर भी नहीं चला। जिसका परिणाम यह हुआ कि तरवर अर्थात् वृक्ष के नीचे बैठने पर भी छांह नहीं लगा, शीतलता नहीं आयी। वहाँ भी दुःख का ही अनुभव हुआ। यहाँ पर दूसरा दृष्टान्त यह है कि इस संसार का मनुष्य उसी प्रकार से बलि का बकरा हो गया, जिस प्रकार से लोक में काली पूजा के स्थान में खूब पूजा-पाठ करके बलि वाले बकरे को वृक्ष में बाँध देते हैं और बाद में सारा संस्कार-विधि करके उस बकरे की बलि दे देते हैं। वृक्ष रूपी काली व दुर्गा के यहाँ बकरा का नुकसान नहीं होना चाहिए था, क्योंकि काली व दुर्गा—सबकी माता मानी गयी है परन्तु वहीं पर बकरा का जान गया, इसलिए दुर्गा व काली बकरे के लिए निरर्थक साबित हुई और दुर्गा, काली शत्रु प्रमाणित हुई। क्योंकि बकरे को बचा नहीं सकी। इसी प्रकार से यह मनुष्य नर-तन पाकर आत्मा रूपी तरिवर के नीचे अर्थात् जहाँ आत्मा का ज्ञान होने वाला था, उस स्थान पर पहुँच गया था, परन्तु वहाँ भी 'क्षर' अर्थात् नष्ट हो गया और नर-तन वाला आत्मा भी उसको बचा न सका। क्योंकि यावत् जीवन सकाम कर्मों में लगा रहा, इच्छाओं की निवृत्ति नहीं हुई। इसीलिए बलि का बकरा हुआ। जिस दुर्मति में सारा संसार चल रहा है, आचरण-व्यवहार कर रहा है, उसी दुर्मति में सभी लोग, जो बचे-खुचे हैं, वे भी चल रहे हैं। यदि 'जीव' के स्थान पर 'जिंह' पाठ लिया जाय तो अर्थ होगा कि संसारी मनुष्य संसार में 'दुर्मति' के साथ आहार-व्यवहार करता है। इसलिए उसको संसार रूपी सागर का वारापार नहीं दीखता कि कब इससे हम पार होंगे ? यदि 'जीव' का 'जिंह' पाठ किया जाय तो यह अर्थ होगा।

**टिप्पणी**—जीउ का जीन्ह भी पाठ है।

साखी

**अंध भये सभ डोलैं, कोई न करै विचार।**
**कहा हमार मानै नहीं, किमि छूटे भ्रमजार।।**

**शब्दार्थ**—अंध—अज्ञानी। भये—हुये। किमि—कैसे, क्योंकर। डोलै—चले। भ्रमजार—भ्रमजाल, भवचक्र, जिसमें सभी फँसे रहते हैं।

**भावार्थ**—ऊपर साहब कहते हैं कि दुर्मति के चलते मनुष्य को संसार के चक्र का वारापार नहीं दीखता क्योंकि सभी लोग अज्ञानी हो गए हैं और अज्ञान की दशा में ही संसार का व्यवहार कर रहे हैं। इसमें कोई भी विचार नहीं कर रहा है कि मुझे क्या करना चाहिए ? संसार से स्नेह करना चाहिए कि परमतत्त्व से स्नेह करना चाहिए। हम तो बार-बार कहते हैं कि इस पर तू विचार करो परन्तु हमारी बात मानने के लिए कोई तैयार नहीं है, प्रस्तुत नहीं है। इसीलिए यह संसार जो जाल-स्वरूप है, जिसमें यह बँध गया है, उससे छूट नहीं पा रहा है।

**विशेष**—मानव ने मानवता की उपेक्षा कर दी जिसका परिणाम बड़ा भयंकर हुआ, वह उसका अभाग ही था जिसके कारण उसे अनेक दुःखों का सामना करना पड़ा। जिन कारणों से जिन संयमादि से मानव की जीवनी-शक्ति को बढ़ना था, उसको त्याग दिया जैसे मछली बिना जल के नहीं रह सकती वैसे मनुष्य भी बिना संतोष, क्षमा, शील आदि के सुखी नहीं हो सकता। वह सब अपने अन्दर था परन्तु चातक की तरह स्वांति के जल के समान संसार के मिथ्या सुख में आस लगाये रहा। जल रूपी जीवनी-स्रोत उसके पास में ही था। उसको ग्रहण नहीं किया, अनेक प्रकार से साधु-संन्यासी बनकर, तिलक-मुद्रा धारण कर, सेली-टोपी लगाकर, जनेऊ पहनकर, रामनामी ओढ़कर व अनेक प्रकार के योनियों व शरीर रूपी स्वांग को धारण कर इसी संसार के सुख में लगा रहा; जो स्वांति के जल के समान बहुत थोड़ा और बहुत दूर है। हृदय में जलाशय रूपी परमतत्त्व विद्यमान था, जीवनी शक्ति से भरा था। उसकी उपेक्षा कर स्वांति के मेघरूपी संसार के सुख में लगा रहा परन्तु

वे स्वांति के मेघ, जल नहीं दे सके। जिसके कारण अप्राप्ति की दशा में इस मानव शरीर से निराश होकर उड़ चला। इसके लिए तो रामनाम ही असली सार था, सही था और वही सुख का हेतु था, उससे प्रेम नहीं किया। प्रेम इस संसार से किया जो सबका सब झूठ ही है। इस संसार की कोई वस्तु सही नहीं दीखती। सभी जायमान हैं। इससे श्रेष्ठ तो हरि था, बड़ा था परन्तु हे मनुष्य ! तूं अपनी तुच्छता के कारण, अपने हल्केपन के कारण उस ऊँचे हरि को जो तुम्हारे हृदय में है उसको पा नहीं सका। उसको छोड़कर संसार रूपी यम के घर से तेरा साथ बना रहा। संसार का सुख स्वप्न की निधि की तरह बहुत थोड़ा है। जिसको पाकर तुम फूले-फूले फिरता है और कहीं छिपने का स्थान भी नहीं पाता। अर्थात् तूं बड़ा अभिमान करता है तेरे लिए यह तुच्छ सुख हृदय रूपी कोठरी में समा नहीं रहा है तू उसका ओर-छोर भी नहीं मान रहा है। तुझे लग रहा है कि इस संसार का सुख कभी कम होने वाला नहीं है। अरे मूढ़ ! यह तो झूठा है। इसके लोभ पर क्या कभी तूने विचार किया है ! तूने जो मनुष्यों को चलने के लिए, अपने अनुबंधित रहने के लिए, जो धर्मग्रन्थ बनाए उस पर भी तूं नहीं चला। तुम हरि का भजन करता, तुम सत्कर्म करता परन्तु धर्म-ग्रन्थों के रहते हुए भी तुम्हें शान्ति नहीं मिली। तूं उनकी अच्छी बातों को नहीं माना। अन्त में धर्मग्रन्थों के रहते हुए, पढ़ते हुए तूं बलि का बकरा हो गया। मैं तो देखता हूँ कि ये संसार के प्राणी दुर्मति के साथ संसार में डोलते हैं। अच्छी बुद्धि के द्वारा, अच्छे विचार के द्वारा ये संसार में व्यवहार नहीं करते। इसलिए इन्हें संसार रूपी सागर का वारापार दिखायी नहीं देता। इसमें एक दो कि बात नहीं है पूरे-के-पूरे अज्ञानी होकर व्यवहार रत हैं। एक भी विचार नहीं करता और न हमारी बात ही मानता है। इसलिए संसार सागर व संसार-जाल से यह पार नहीं पा सका।

# रमैनी ६६

## मानव हितकर प्रकरण

**सोई हितू बंधु मोंही भावै। जात कुमारग मारग लावै ।।**
**सो सेआन मारग रहि जाई। करै खोज कबहीं ना भुलाई ।।**
**सो झूठा जो सुत के तेजई। गुर की दया राम ते भजई ।।**
**किंचित है इक तेज भुलाना। धन सुत देखि भया अभिमाना ।।**

**शब्दार्थ**—सोई–वही। हितू–हितैषी, हित करनेवाला। बंधु–भ्राता। मोंही–मुझे। भावै–अच्छा लगे। जात–जाते हुए। सेआन–बुद्धिमान। खोज–अन्वेषण। कबहीं–कभी भी। भुलाई–विस्मृत। तेजई–त्यागे, त्याग करे। किंचित–थोड़ा। तेज–प्रकाश, अग्नि, धन, प्रतिभा। भुलाना–विस्मृत हुआ। सुत–पुत्र बुद्धिमान, चंचल, चपल।

**सम्बन्ध**—ऊपर की रमैनी में मनुष्य गुण की उपेक्षा करके अनात्म पदार्थों में लगा रहा परिणाम स्वरूप दुःख से छुटकारा नहीं हुआ। अब कहा जा रहा है कि वही मुझे प्रिय है जो विवेक के द्वारा सही कार्य को करे और दूसरे से करावे।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे भाई! मेरा हितैषी वही है, मेरा बन्धु वही है, मुझे वही अच्छा लगता है जो मनुष्य सन्मार्ग पर चलते हुए, यदि दूसरा कोई कुमार्ग पर जाता है, पाप करता है तो उसको सुमार्ग पर लावे। अच्छे कर्म की राह पर लगावे और वह बुद्धिमान अपने भी उसी सही मार्ग पर रहे और उसी पर चले और अच्छे मार्ग की खोज करे, अन्वेषण करे। जो सत्य मार्ग का अन्वेषण करता है, जो सत्य को पहचान जाता है, वह मनुष्य कभी कुमार्ग में भुलता नहीं है। वह मनुष्य कभी भी कुमार्ग पर पांव नहीं रखता है। जो विवेकी पुरुष झूठे सुत-कलत्र के सम्बन्धों को त्याग देते हैं। नाता-गोता से नेह नहीं रखते हैं और जो गुरु की दया से और गुरु के बताये हुए रास्ते से गुरु के उपदेशा-नुसार राम का भजन करते हैं वे मनुष्य संसार सागर से पार हो जाते हैं। इसके विपरीत जो लोग थोड़े से चमत्कार में, थोड़ी सी प्रतिष्ठा

पाकर, थोड़ी सी शक्ति पाकर उसमें भुला जाते हैं और उक्त नश्वर धन, जन, सुतादि को देख प्रमुदित होते हैं, अभिमान करते हैं, अहंकार करते हैं तो वे सही मार्ग पर नहीं हैं। इन कुमार्गियों को जो सुमार्ग पर लाता है वही मेरा भाई है, वही मेरा हितैषी है।

साखी

**दियन खताना किया पयाना, मन्दिल भया उजार।**
**मरि गए सो मरिगया, बाचै बांचनहार॥**

**शब्दार्थ**—दियन–दीपक, चिराग, दीया, जीवन–ज्योति। खताना–खुटाना, समाप्त होना, खत्म होना, बुझ जाना। पयाना–रवाना, यात्रा, चलता भया। मन्दिल–मन्दिर, शरीर। उजार–विरान, शून्य, जंगल। बाचे–रहे। बांचनहार–बाचने वाला।

**भावार्थ**—ऊपर की पंक्ति में कहा गया है कि धन, सुत देखकर जो अभिमान करता है तो उसकी वही दशा होती है जैसे दीपक बुझ जाता है और ज्योति पयान कर जाती है। अर्थात् ज्योति अन्तर्धान हो जाती है। उसी प्रकार से मानव चेत नहीं सका, अन्त में जीवन रूपी दीपक बुझ गया। मानव रूपी जीवन बुझ गया और जीवात्मा दूसरी योनियों में रहने के लिए चल दिया। जब जीवन ज्योति चली गयी, तब शरीर रूपी मन्दिर उजार हो गया, शून्य हो गया। विरान हो गया। अब उसमें कोई रहने वाला नहीं है। वह जीवात्मा पंचप्राणों के साथ सूक्ष्म देह लेकर उड़ गया और यह शरीर अब किसी काम का नहीं रहा। अन्त में लोग उसको श्मशान में ले जाकर फूंक दिये। सद्गुरु कहते हैं कि हे मूढ़ मनुष्य ! जो मर गया, सो चला गया। जिसको बचना है, वही रहेंगे वही बचने वाले हैं अर्थात् शरीर रूपी दीया नष्ट हो गया, मन्दिर नष्ट हो गया। उसमें रहने वाला आत्मा रहने वाला है। वह बचने वाला है, वह बचेगा। इसलिए झूठे शरीर के लिए क्यों रो रहा है ? वह तो कहीं न कहीं रहेगा।

**विशेष**—कबीर साहब सर्व साधारण के सामने सम्बोधित करके कहते हैं कि मेरा हितैषी, बन्धु व भाई वही है, वही मुझे प्रिय-जीव लगता

है अर्थात् वही साधु है, वही सन्त है, जो कुमार्ग पर पदार्पण किए हुये मनुष्यों को सुमार्ग पर अर्थात् सत्कर्म पर लगाता है और अपने भी वह सद्बुद्धिमान उसी मार्ग पर रह जाय और जो दूसरों के प्रति अच्छी बातें कहता है और सत्य की खोज करते रहे अर्थात् आत्मचिन्तन करते रहे, वह कभी भूलता नहीं है। वह संसार के चक्र में नहीं पड़ता है और जो संसार के झूठे नेह-गेह, नातेदार हैं उसको त्याग कर गुरु की शरण में जाकर हृदय निवासी राम का भजन करता है वह निश्चय ही मुक्त हो जाता है। इसके विपरीत जो लोग थोड़ो सी प्रतिष्ठा में, थोड़े से धन में फूले-फूले फिरते हैं। सुत, कलत्र आदि को देखकर अभिमान करते हैं वे लोग बिना आत्मा की प्राप्ति के ही संसार सागर से चल बसते हैं। उनका दीपक रूपी मनुष्य तन बेकार में ही बुझ जाता है। बिना आत्म-प्राप्ति के ही संसार से चल बसते हैं। शरीर रूपी मंदिर से आत्मा के निकल जाने पर यह शून्य हो जाता है, इसको कोई छूता नहीं है। इसका मूल्य आत्मा के रहने पर ही होता है। अब जो गया सो गया, मरा सो मरा, जाने दे, अर्थात् यह शरीर नश्वर था, नष्ट हो गया। उसमें जो चेतन था, उसका कभी विनाश नहीं होता है। वह कर्मानुसार, वासनानुसार कहीं न कहीं निवास करेगा। इसलिए सब प्रपंच को त्याग कर हरि का भजन करो।

## रमैनी ६७

**देह हलाये भगति नहिं होई। स्वांग धरे नर बहुविधि जोई ॥**
**धिगीधिंगा भलो न माना। जो काहु मोहि हिदैन जाना ॥**
**मुख किछु अउर हिदै किछु आना। सपने काहु मोहिं नहिं जाना ॥**

**शब्दार्थ**—देह–शरीर। हलाये–सुखाय, डोलाय, कृशकाय, नचाय, कुदाय। भगति–सेवा, पूजा, हरि–सुमिरन। स्वांग–वेष, नाना प्रकार का रूप। जोई–जो लोग। विधि–प्रकार, वैधानिक। धिंगी–नंगा, निर्लज्ज, छिनरा, (दे० धींगरा), शरारती, बहसबाज। धिंगा–जो सदा

धिगरपन करे, शरारत करे। भलो–अच्छा, सदुपदेश। काहु–कोई। मोहिं–मुझे।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा जा चुका है कि वही सन्त सद्गुरु या व्यक्ति मेरा हित बन्धु है, जो कुमार्गियों को सुमार्ग पर लावे तथा अपने भी सुमार्ग पर चले और साथ ही वैभव अभिमानियों की निन्दा भी की गयी है और यह कहा गया है कि जीवन रूपी दीपक बुझ जाने पर वे चले जाते हैं कुछ साथ ले नहीं जाते इसलिए उनका अभिमान मिथ्या है।

**भावार्थ**—अब यह कहा जा रहा है कि बहुत से वे लोग तो तर जाते होंगे जो लोग देह को सुखाकर, खड़ा होकर, बांह को उठाकर व्रत, उपवास करके तो क्या वे तर जायेंगे, क्या वे लोग बड़े भक्त हैं? साहब कहते हैं कि नहीं यह बात सब गलत है। देह को कमजोर कर देने पर, नंगा घूमने पर, तमाम वाद-विवाद करने पर भक्ति नहीं हो सकती, चाहे वे किसी भी प्रकार का स्वांग बनावें, वेष धारण करें, चाहे वे गेरुआ वस्त्र धारण करें, चाहे वे पीला वस्त्र धारण करें, चाहे वे काला वस्त्र धारण करें, चाहे वे गले में माला, कंठी धारण करें, इसके अतिरिक्त भी जो लोग बहुत प्रकार के वेष धारण करने वाले हैं, वे चाहे कितना बड़ा भी नाम कमा लें, संसार में उनकी मर्यादा बढ़ जाय पर उनसे भी भक्ति नहीं हो सकती, वे भक्ति नहीं कर सकते।

इसी प्रकार से वे नागा-निर्वानी लोग भी जो बहुत निर्लज्जता के साथ घूमते हैं। नंगा रहते हैं, लिंग में ताला लगाये रहते हैं, शरीर में भस्म और शिर पर जटा रखते हैं प्रभु-प्राप्ति के लिए सभी धामों में भटकते हैं जोर-जोर से हरि कीर्त्तन करते हैं, भगवान के सामने नाचते हैं, भांग-तम्बाकू छानते हैं, जो धिगरा के रूप में सदा घूमते रहते हैं। इसी प्रकार से धिगी जो स्त्री अवधूतिन बन कर घूमती रहती है, जो नग्न रहती है और अपने को बड़ी सिद्धा कहती हैं और समझाने पर ये धिगा-धिगी बड़ी शरारत करते हैं। किसी की बात मानने के लिए ये बाध्य नहीं हैं, इनसे जो भी बात कही जाय, उसे स्वीकार नहीं करते। सभी अपने मत के

मतवारे हैं। उक्त लोग कहते हैं कि हम लोग राम को खूब भजते हैं, परमेश्वर का खूब भजन करते हैं। साहब कहते हैं कि मुख से राम-नाम उच्चारण अथवा ऊँ-ऊँ उच्चारण करने से क्या होता है ? जब तक कि मुझ परमेश्वर को जो व्यक्ति हृदय में नहीं जानता है, हृदय से नहीं भजता है। वह मुख से कुछ कहता है, मुख से ऊँ-ऊँ या रामनाम कहता है तथा उसके हृदय में कुछ दूसरा ही बैठा है। मुख से रामनाम कहता है पर हृदय में माया को संजोये हुए है। माया को इतने जोर से पकड़े हुए है कि स्वप्न में भी मुझको नहीं जानता। स्वप्न में भी परमेश्वर का भजन नहीं करता अर्थात् बुरी संगत, बुरे समाज का सेवन करता है। मोंहि कहिए साधु, संत, ज्ञानियों की संगत नहीं करता है।

**ते दुख पैहैं ई संसारा। जो चेतहु तो होय उबारा॥**
**जो गुरु किंचित निन्दा करहीं। सूकर स्वान जनम सो धरहीं॥**

**शब्दार्थ**—ते–वे सब। पैहैं–पायेंगे। ई–इस। होय–होगा। गुरु–अध्यात्म उपदेशक। किंचित–थोड़ा। निन्दा–परिवाद, आलोचना,। सूकर–सूअर, बराह। स्वान–कुत्ता।

**भावार्थ**—जो लोग प्रभु का स्वप्न में भी भजन नहीं किये। आत्मा का चिन्तन नहीं किये। वे सब ऊपर वाले धिगा-धिगी देह सुखाने वाले इस संसार में अवश्य दुःख को प्राप्त होंगे। क्योंकि ये धिगा-धिगी दुःख की राह में खड़े हुए हैं। यदि ये धिगा-धिगी चेत लें तो निश्चित इनका उबार हो जाएगा। संसार के सभी आडम्बरों एवं बाह्याचारों का यदि ये परित्याग कर दें, आत्मा का चिन्तन करें, जीते जी इनको आत्मज्ञान हो जाएगा। प्रभु की प्राप्ति हो जायेगी और उनका सारा मल, विक्षेप, आवरण ढ़ह जायेगा तो ये अवश्य मुक्त हो जाएंगे। यदि ये ऐसा नहीं करते हैं तो उसके विपरीत आत्मज्ञ सद्गुरु की निन्दा करते हैं। जो ब्रह्मविद हैं उनकी बात नहीं मानते हैं क्योंकि ऊपर आया है कि 'भलो न माना' अर्थात् गुरु की अच्छी बात को नहीं मानते हैं उसके विपरीत आचरण करते हैं। जो लोग गुरु रूपी परमेश्वर की निन्दा करते हैं, उनकी आज्ञा नहीं मानते

हैं, सेवा-बंदगी से विमुख रहते हैं, वे लोग अवश्य मनुष्य शरीर त्यागने के बाद सूकर-कूकर की योनि धारण करेंगे।

साखी

**लख चौरासी जीउ जन्तु मह, भटकि-भटकि दुख पाव ।**
**कहै कबीर जो रामहिं जानै, सो मोंहि नीके भाव ॥**

**शब्दार्थ**—जीउ जन्तु–कीड़े-मकोड़े। भटकि–भटकि–भ्रमि–भ्रमि, परेशान होकर एवं विकल होकर। पाव–पावेंगे। नीके–अच्छा भाव लगता है।

**भावार्थ**—और ये पामर प्राणी लख चौरासी की उन योनियों में जायेंगे जो बहुत घिनौने जीव-जन्तु के रूप में विद्यमान हैं, कभी सर्प होंगे तो कभी बिच्छू होंगे कभी हाथी-घोड़ा, बैल, होंगे, कभी मच्छ-माछी, घोघा, कीट-पतंग होंगे, कभी कुत्ता-बिल्ली होंगे। इन्हीं सब योनियों में बार-बार भटक-भटक कर एवं विकल होकर दुःख पावेंगे। कबीर साहब कहते हैं कि वही लोग उबरेंगे जो राम को जानते हैं अर्थात् राम का भजन करते हैं। निरन्तर तन-मन को एक करके राम-नाम का जप करते हैं, जो नित्य प्रभु परायण हैं, वही लोग मुझे अच्छे लगते हैं।

**विशेष**—देह कृश करके एवं अनेक प्रकार के स्वांग धारण करके भक्ति नहीं हो सकती है। चाहे लाल-पीला, कषाय कितना भी रंगों के शृंगार किया जाय, उदासीन बना जाय, चाहे निर्वस्त्र धिगा-धिगी बनकर लोकादि के विपरीत वामादि की साधना किया जाय, परन्तु प्रभु-प्राप्ति दुर्लभ है क्योंकि ये लोग अच्छी बात मानते नहीं, न ही मन से प्रभु भजन करते। मुख में कुछ और रखते हैं और भजन कुछ और करते हैं। स्वप्न में भी प्रभु को नहीं भजते, इसलिए ये निर्लज्ज इस संसार में दुःख के भागी होंगे। यदि वे चेत लेते हैं, तो संसार के दुःख से पार हो जाएँगे। यदि नहीं चेतते हैं, उल्टे सदुपदेष्टा, आत्मज्ञानी गुरु आदि की निंदा करते हैं, तो ये लोग निश्चित रूप से शूकर, श्वान की योनि में जाएँगे तथा जो लख चौरासी प्रकार की योंनियाँ हैं, उसमें घूम-घूम करके

कष्ट भोगेंगे। साहब कहते हैं कि हमको तो वही लोग अच्छे लगते हैं, जो राम को जानते हैं और संसार का सारा आडम्बर, त्याग कर प्रभु का भजन करते हैं, वही तर जाएँगे तथा वही नेक हैं।

## रमैनी ६८

### हरिवियोग कथन प्रकरण

**तेहि वियोग से भयउ अनाथा। परै निकुंज बन पावै न पंथा॥**
**वेदो नकल कहै जो जानै। जो समुझै सो भलो न माने॥**
**नटवर विद्या खेले जो जाने। तेहि गुण के ठाकुर भल माने॥**
**उहैंजु खेलै सभ घट माहीं। दोसर के कछु लेखा नाहीं॥**
**भलो पोच जो औउसर आवै। कैसहु कै जन पूरा पावै॥**

**शब्दार्थ**—तेहि–तिसके, उसके। वियोग–विछोह, अलग हो जाना। न मिलना, अप्राप्ति। ते–से, वे। अनाथ–बिना स्वामी के, आरक्षित, दरिद्र। परँ–पड़ा। निकुंज–वन, वह जंगल जिसमें चारों तरफ से लताएँ घिरी हों, बहुत घना हो, जिसमें आने-जाने का मार्ग न मिलता हो, वह निकुञ्ज वन। पावै–उपलब्धियाँ। पंथा–मार्ग। वेदो–वेदों ने भी, ज्ञान-सुरति, वेद। नकल–अनुकृति, प्रति, प्रतिलिपि, असत्य, जो मूल न हो, कृत्रिम, बनावटी। जानै–जानता है। भलो–भला, अच्छा। नटवर–नट के समान। विद्या–नट की कला, जो अस्थायी रूप से लोगों के सामने प्रदर्शन करता है, किसी भी प्रकार ईश्वर से सम्बन्ध। खेले–क्रीड़ा करे, कला जो दिखावै। तेहि–उसके। गुण–ज्ञान, महत्व, श्रेष्ठ विचार, श्रेष्ठत्व। ठाकुर–स्वामी। उहैंजु–वह जो। घट–शरीर। माहिं–में। खेलैं–समान, बनावटी। पोच–नीचता, दुष्ट स्वभाव, आचारहीन, निम्न। औउसर–समय। कैसहु–किसी प्रकार का।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा जा चुका है कि मानव देह कृश करने से और अनेक प्रकार के वेष-भूषा बनाने से भक्ति की सिद्धि नहीं हो सकती है, जब तक कि हृदय और मुख की बातें एक न हो जाएँगी। तब तक संसार

का दुःख छूटने वाला नहीं है और साथ ही गुरु के प्रति कृतघ्नता करने पर निम्न योनियों में जाना पड़ेगा। इसलिए जो राम को जानता है, वही मुझे अच्छा लगता है।

**भावार्थ**—अब कहा जा रहा है कि उस परम प्रभु के वियोग से एवं उससे अलग होने के कारण मनुष्य अनाथ हो गया है और अनाथ होकर इस कुन्ज-वन रूपी घोर संसार में पड़ गया है, जिसको संसार की अनेक प्रकार की माया घेर लिए होती है। मनुष्य जब जन्मता है और धीरे-धीरे संज्ञान होते जाता है, त्यों-त्यों इस संसार की माया उसको चारों ओर से जकड़ लेती है। कभी उससे आगे बढ़ने नहीं पाता है। यदि कोई मनुष्य मायिक संसार से पार होना चाहता है, उसके सामने सभी प्रकार के नेह-नाते, गोते घेर लेते हैं। मान, बड़ाई, सम्मान, कुल की रीति, आदि घेरे रहते हैं। यदि उससे आगे बढ़ने का कुछ प्रयत्न भी करता है तो तमाम प्रकार के उन क्रिया-कलापों में फँस जाता है जो लोक-वेद में प्रचलित हैं। यज्ञादि पठन-पाठन, स्वर्ग-प्राप्ति की इच्छा इन उपर्युक्त व्यवहारों में ही वह यावत् जीवन रह जाता है। उसको कोई सही मार्ग-निर्देशक गुरु नहीं मिलता है। यदि कुछ कोशिश भी करता है और बात जानने का तो गुरु विहीन मनुष्य कहीं से पंथ का दर्शन नहीं कर पाता है अर्थात् इस घोर निकुंजवन में पड़ा रहता है। कहीं जाने का मार्ग नहीं मिलता है। सद्गुरु कहते हैं कि इस संसार को हमीं निकुंज नहीं कहते हैं। वेद भी इसको नकल कहते हैं। वेद भी कहते हैं कि यह संसार असत्य है, मायाकृत है, अस्थायी है इसलिए इस संसार से स्नेह नहीं करना चाहिए। परन्तु जो व्यक्ति गुरु एवं वेद की बात को समझकर जानता है, उसी के लिए संसार नकल एवं कुंजवन है और जो व्यक्ति इस संसार की वास्तविकता समझ गया है कि यह संसार असत्य है, खोटा है। इसका व्यवहार नीच है तो वह भद्र पुरुष इस जगत को भलो कहिये अच्छा नहीं मानता है। वह भद्र पुरुष इस जगत को नटवर अर्थात् परमेश्वर की कला मानता है। वह जानता है कि यह सब प्रभु

की लीला है, खेला है। वह नटवर बार-बार इस प्रकार की क्रीड़ा करता रहता है। जो लोग इस प्रकार की जानकारी कर लिए हैं कि यह जगत प्रभु की माया है, तेहि गुण कहिए उसके ज्ञान को जो जगत का ठाकुर है, जो जगत का स्वामी है, वह उसको अच्छा मानता है और जानता है कि यह हमारा भक्त मेरी माया को नहीं चाहता, मुझे ही चाहता है। क्योंकि जिज्ञासु भक्त जो है, यह देखता है कि ठाकुररूपी परमेश्वर सब घट में क्रीड़ा करता है। वही सभी प्राणियों को सत्तास्फूर्ति देते रहता है। उसके बिना सारा संसार शून्य है और ज्ञानी पुरुष यह भी मानते हैं कि उस परमेश्वर के समान दूसरी कोई वस्तु नहीं है, न कोई देवी-देवता हैं। 'लेखा' यहाँ समकक्ष के अर्थ में है। इसलिए यहाँ कहा गया है कि उस परमेश्वर के समान कोई दूसरा नहीं दिखायी देता है। यद्यपि कभी-कभी ज्ञानियों के मन में भी भ्रम होता है। वह भी अच्छे-बुरे अवसरों पर अर्थात् जब तक ज्ञान का प्रकाश रहता है, तब तक मनुष्य स्वस्वरूप परमेश्वर को नहीं भूलता, लोक-व्यवहार की संगति होने पर पोचता या नीचता आ जाती है, तब वह इस जगत को सत्य मानने लगता है परन्तु साहब कहते हैं कि किसी प्रकार से यह जगत सत्य नहीं है। यह मायामय है अर्थात् दुःख-सुख में रहकर भी कैसहुँ कहिए किसी भी प्रकार से जो जिज्ञासु लोग हैं, वे यदि सत्य पर डटे रहते हैं तो वे पूरा ज्ञान पा जाते हैं। अर्थात् सांगोपांग जो वह परमतत्त्व है, ज्ञानीजन, दुःख-सुख के पड़ने पर भी उसको प्राप्त कर लेते हैं।

साखी

**जेहि के उर सर लागै। सोइ जानेगा पीर।**
**लागै तो भागै नहीं। सुख सिंधु निहार कबीर ॥**

**शब्दार्थ**—जेहि–जिसके। पीर–पीड़ा, दर्द। सर–तीर, वाण। सिंधु–समुद्र, आत्मा, परमेश्वर। निहार–देख, उसी का अवलोकन करो।

**भावार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि कितनी भी मोहमाया क्यों न आवे परन्तु जिसके हृदय में सद्गुरु का ज्ञानरूपी शर लग गया है अर्थात्

गुरु का उपदेश, परमेश्वर की भक्ति का जिसके हृदय में छुवाव हो गया है, वही व्यक्ति उस ज्ञान, भक्ति की पीड़ा जान सकता है, उसकी विकलता समझ सकता है। एक बार जिसके हृदय में ज्ञान-भक्ति का शर लग जाता है, तो फिर वह कहीं भाग नहीं सकता। वह सुख सिंधु स्वरूपी परमतत्त्व को देखते रहता है। वह परमतत्त्व से कभी अलग नहीं हो सकता।

**बिशेष**—उस प्रभु के वियोग से यह मनुष्य अनाथ हुआ है। संसार रूपी कुञ्ज में भटक गया है। माया-मोह से पार होने के लिए उसको कहीं रास्ता नहीं दीख रहा है। वेदों ने भी संसार को असत्य कहा है और जो वेद के कहे हुए असत्य संसार को जान गया है। वह समझा हुआ व्यक्ति इस जगत को अच्छा नहीं मानता। वह शुद्ध चित्त वाला व्यक्ति भगवान की विद्या और कला को समझता है और कहता है कि यह भगवान की क्रीड़ा है, लीला है। वह भगवान का भक्त संसार से अलग हो जाता है। उसकी सत्यता जान लेता है तो प्रभु भी उसे अपने में मिला लेता है और जिज्ञासु भक्त प्रभु के अपनाने पर प्रभु को सब घट में विराजमान देखता है। जब वह व्यक्ति प्रभु रूपी आत्मा का दर्शन कर लेता है तो आत्मा के समान किसी दूसरे को नहीं मानता। जो प्रभु को पूर्णरूप से पा जाता है, वह जन कितनी भी विपत्ति-आपत्ति आवे, शुभ-अशुभ अवसर आवे, परन्तु किसी भी प्रकार से सत्संग से, वेदाध्ययन से, स्वानुभूत से, कभी प्रभु से अलग नहीं होता। जिसके हृदय-स्थली में राम-वाण लग गया है, गुरु का उपदेश लग गया है, उस लगे हुए शर का अनुभव वही जिज्ञासु भक्त जानता है, जिसका मन संसार से विमुख हो गया है, वह कभी भी उससे परे नहीं हो सकता है, क्योंकि जो सर्वात्म सुख सिंधु स्वरूप है, उसी को देखते रहता है, इसलिए सारे मनुष्यों को चाहिए कि संसार की सभी मोह-माया का परित्याग कर परमेश्वर रूपी आत्मा का दर्शन करें।

# रमैनी ६९

## व्यावसायिक योग प्रकरण

**ऐसा जोग न देखा भाई। भूला फिरे लिए गफिलाई ॥**
**महादेव का पंथ चलावै। ऐसो बड़ो महन्थ कहावै ॥**
**हाट बजारे लावै तारी। कच्चा सिद्धा माया पियारी ॥**
**कब दत्तै मवासा तोरी। कब सुखदेव तोपची जोरी ॥**

**शब्दार्थ**—ऐसा–ऐसा, इस प्रकार से। जोग–जो एक दूसरे से जोड़ने वाला, जिसके द्वारा इन्द्रिय-निग्रह किया जाता है, जुज धातु से जिसकी निष्पत्ति हुई है, वह योग, समाधि, ध्यान। गफिलाई–अज्ञान दशा में, भ्रम में। महादेव–शिवजी, शैवमत, लिंगायत। हाट–बड़ा बाजार। बजारे–उसके अन्दर की छोटी बाजार। तारी–समाधि, ध्यान। कच्चा–अपरिपक्व, नकली। सिद्धा–सिद्ध, सिद्ध रूपी। माया–धन, दौलत, मान, सम्मान, संसार का विषय-भोग। पियारी–प्रिय। दत्तै–दत्तात्रेय। मवासा–गढ़, किला। तोरी–भंजन। सुखदेव–शुकदेव, श्री व्यासदेव जी के पुत्र। तोपची–तोप चलाने वालों को। जोरी–इकट्ठा किया, व संग्रह किया।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा जा चुका है कि श्री हरि एवं गुरु के वियोग से व्यक्ति अनाथ हो जाता है संसार रूपी महावन में रास्ता नहीं पाता और जो प्रभु की माया को जानता है और उसमें नहीं फँसता, वही ज्ञानी पुरुष है और वही सुख-सिंधु रूपी आत्मा को व स्वस्वरूप हरि को देखता है। नीचे वाली रमैनी में हरि-प्राप्ति के लिए व्यावसायिक योग का उपहास किया गया है।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे भाई! मैंने ऐसा योग नहीं देखा, जो ज्ञान-विहीन दशा में संसार का चक्कर काटते रहता है और साथ ही अज्ञान की मोटरी भी लिए रहता है और शैव मन वा उपासक अपने को बताता है। यह कहता है कि हम भगवान शंकर के अनुयायी हैं और उन्हीं भगवान शंकर जो जटा-जूट बाँधते हैं, भस्म पोतते हैं,

नंगे रहते हैं, मृग-चर्म पहनते हैं। शंकर जी से सम्बन्धित होने के कारण और लिंगायत समूहों का नेता होने के कारण तथा संसार में महादेव जी के पंथ का प्रचार करने के कारण अपने को बहुत महत्व वाला मानता है। साहेब कहते हैं कि इस प्रकार से वह बहुत बड़ा महन्त कहलाता है और बड़े महन्त कहलाने के लिए उपाय भी करता है। बात तो ठीक रही चाहे वह बड़ा महन्त कहलावे या छोटा-महन्त कहलावे परन्तु उसका व्यवहार बहुत निम्न-स्तर का है। वह कुछ रेचक, पूरक, कुम्भक का अभ्यास कर लिया है और बड़े-बडे नगरों के बाजारों में चतुस्पथों पर लोगों को इकट्ठा कर गड्ढ़ा खनवाता है और उस गड्ढ़े में बैठकर ऊपर से सभी द्वारों को बन्द करा देता है तथा समाधि लगाता है। इसका कारण यह है कि ये हाट-बाजार वाले योगी सही योगी नहीं हैं। इनका मन अनियंत्रित है। इन्द्रियों का बहाव वाह्यमुखी है। वृत्तियाँ चंचल हैं। संसार की भोग-भावना इनके मन से गयी नहीं है। देखने से बहुत बड़े त्यागी लग रहे हैं, योगी लग रहे हैं और महादेव के पंथ के महन्त हैं परन्तु सब होने पर भी इनके पास कुछ ज्ञान नहीं है और न आत्म संतुष्टि ही है। ये उपरोक्त महन्त जी कच्चे सिद्ध हैं, क्योंकि इनके साथ अवधूतिनो भी सिद्धा बनकर रहती है। तभी तो ये शंकर जी के अनुयायी बनकर रहते हैं। इन बड़े महन्त कहलाने वालों को जो शिव भी बनते हैं, योगी भी बनते हैं। इन्हें संसार की माया, संसार की सम्पत्ति, संसार के सुख-भोग, मान-सम्मान अधिक प्रिय है। जिनके लिए हाट-बाजारों में समाधिस्थ हो जाते हैं। ये बड़े महन्तलोग, हाट-बाजार के योगी लोग कभी-कभी अपनी स्वार्थ की सिद्धि न होने पर लड़ाई, दंगे भी करते हैं। कुम्भ के अवसरों पर अपनी सवारी आगे निकालने के लिए, वैष्णवों से लड़ाई भी करते हैं, जिसके लिए उनके बड़े-बड़े मठों को भी दखल करते हैं और अपनी विजय के लिए शतघनी व तोपों को भी इकट्टा करते हैं और उनके चलाने वालों को भी इकट्ठा करते हैं। सद्गुरु कहते हैं कि भला इन तथा-कथित कच्चे सिद्धों से पूछिए कि भगवान दत्तात्रेय क्या किसी राजा के

किला को तोड़ा था। या किसी नबाब के मवासा को तोड़ा था। या किसी का राज्य दखल किया था? इसी प्रकार से महायोगी एवं महाविरक्त महर्षि शुकदेव जी भी कब तोप चलाने वालों को इकट्ठा किये थे तथा तोपों का कब संग्रह किया था?

**नारद कब बंदूक चलाया। व्यासदेव कब बंब बजाया॥**
**करहिं लराई मति के मंदा। ई अतित कि तरकस बन्दा॥**
**भये विरक्त लोभ मन ठाना। सोना पहिरि लजावहिं बाना॥**
**घोरा-घोरी कीन बटोरा। गांउ पाय जस चले करोरा॥**

**शब्दार्थ**—नारद–एक महर्षि जो पितामह ब्रह्मा के पुत्र बताए जाते हैं। बंदूक–अग्नेयास्त्र। बंब–नगाडा, लड़ाई का डंका। ई–यह। अतित–विरक्त, सन्यासी। कि–यह। तरकस (फा०) तीर, वाण। बन्दा-बाँधने वाला। विरक्त–त्यागी, सर्वं अपरिग्रही। ठाना–अनुष्ठान। सोना–सोने के आभूषण, लजावहिं–लज्जित। बाना–विरक्त वेष को। घोरा–अश्व। घोरी-घोड़ी, गाय, भैंस। कीन–किया। बटोरा–इकट्ठा, संग्रह। गांउ–ग्राम। पाय–प्राप्त। जस–जैसे। करोरा–करोड़पति, धनाढ्य।

**भावार्थ**—इसी प्रकार से महर्षि नारद ने भी भला कब बन्दूक चलाया था, किसी के साथ कब लड़ाई किया था? भला भगवान व्यास-देव युद्ध में कब लड़ाई के बाजा बजाये थे और डंका बजाकर सैनिकों को कब उत्तेजित किये थे? अर्थात् ये कच्चे योगी लोग एवं कच्चे सिद्ध लोग जो आपस में लड़ाई दङ्गे कर रहे हैं। अपनी गुरुवायी चलाने के लिए एक दूसरे का सिर काट रहे है। इस प्रकार की लड़ाई तो मति के मन्द लोग ही करते हैं जिनके पास बुद्धि नहीं होती है, वही लोग सदा लड़ते-भिड़ते रहते हैं। सद्गुरु कहते हैं कि यह अतीत अर्थात् त्यागी, विरक्त साधु हैं कि तीर-तमंचा चलाने वाले सैनिक हैं। भला कहो कि साधु-सन्यासी भी तीर-तमंचा चलाते हैं? तुमको शर्म क्यों नहीं आती? तूं दिखावा के लिए नंगे रहते हो। पास में कुछ नहीं रखते हो। लोगों को नग्न शरीर दिखाते हो लेकिन तुम्हारे अन्दर तमाम प्रकार की वासनाएँ भरी पड़ी हैं। तुम

लोग मान्यता के लिये कुम्भ के अवसर पर वैष्णवों के सिर काट रहे हो और अपने को सबसे बड़ा बन रहे हो। तुम विरक्त हो गये हो परन्तु तेरे व्यवहार से लग रहा है कि तूं मन में लोभ का ही अनुष्ठान किये हो। क्योंकि लिंग में तो ताला लटकाये हो और कानों में सोने का बाला पहने हो अर्थात् सोने का मुकुट पहने हो। तुम इस परम पवित्र सन्त बाना अर्थात् संत का वेष-लज्जित कर रहे हो। इन अपराधों के लिये तुम्हें लज्जा करनी चाहिए, प्रायश्चित करना चाहिए परन्तु तुमने बहुत से घोड़ा-घोड़ी एवं गाय-बैलों का संग्रह किया है, इनको साथ में लेकर घूमते हो। तुम्हारे साथ एक उसी प्रकार की सेना चलती है जैसे किसी को कहीं का ग्राम मिल जाय या नगर की उपलब्धि हो जाय। उसके अभिमान में वह करोड़पति जैसा अर्थात् राजा जैसी यात्रा करे। तुम लोग हाथी, घोड़े पर सवार हो। तुम फौज लेकर चल रहे हो ज्ञात होता है तुम किसी के राज्य को दखल करने के लिए जा रहे हो। तुम्हें तो विचार करना चाहिए था कि हम कौन हैं? लिंगायत हैं। हमारे पूर्वंज विरक्त थे, महात्मा थे, सर्वंत्यागी थे, जन-उपकारी थे। देश की रक्षा के लिए, धर्मं की रक्षा के लिए लोगों को जागृत करते थे, परन्तु तुम उन महापुरुषों के उपदेश को भूल गये हो, जिन्होंने लोक-हित के लिए एवं आत्म-शुद्धि के लिए सब कुछ त्याग दिया था। सो वह तो तुम में है नहीं। तुम तो केवल महर्षि दत्ता-त्रेय जैसे महर्षि शुक जैसे महर्षि नारद जैसे महर्षि व्यासदेव जैसे वेष बनाये हो, परन्तु तेरे कर्त्तव्य संसारियों से भी बदतर हैं। तुम्हें कैसे हम साधु-संन्यासी मानें? तुमने संसार के लिए ही सारी कलाओं का चयन किया है। तुम तो देहात्मवादी हो। शरीर को ही आत्मा मान लिया है। इसलिए इस पर विचार करो कि हम क्या कर रहे हैं?

साखी

**सुन्दरी तिय न सोहे, सनकादिक के साथ।**
**कबहुँक दाग लगावै, कारी हाड़ी (लिए) हाथ॥**

**शब्दार्थ**—सुन्दरी–सुन्दर स्त्री, कमनीय, कामिनी। सोहे–शोभा दे।

सनकादिक–बाल-ब्रह्मचारी, साधु–संन्यासी। कबहुँक–कभी भी। दाग–आचरण भ्रष्ट। लगावैं–करें। कारी–कालो। हाड़ी–हण्डी, वह हण्डी जिसमें प्रतिदिन भोजन बनाया जाता है। हाथ–हथेली।

मातृ पितृ पुहितृवान विवितनासने भवेत्।
बलवानमिद्रिग्रामे विद्वानमपिमर्षंति ॥—मनुस्मृति

माता हो चाहे पुत्री हो या बहन ही क्यों न हो उनके साथ अकेले आसन पर न बैठे क्योंकि इन्द्रियाँ बड़ी बलवान हैं काम वासना को जागृत करके दुष्ट कार्य करा सकती हैं।

**भावार्थ**—साहब कहते हैं कि इन कच्चे योगियों का यहीं तक मामला नहीं है, इनके साथ अवधूतिनी व योगिनी के रूप में स्त्री भी रहती है। भला हम उनसे पूछते हैं कि जो सनकादिक के समान अर्थात् सनक, सनन्दन, सनातन के समान जो ये साधु-संन्यासी का वेष धारण किए हैं, इनके साथ क्या ये सुन्दर स्त्रियाँ योगिनी के रूप में शोभा दे रही हैं? क्या उनको कभी पथ भ्रष्ट नहीं कर सकती? क्या इनके बाना में दाग नहीं लगा सकती? ये सुन्दर स्त्रियाँ उसी प्रकार से हैं जिस प्रकार से काली हंडी होती है। जैसे कोई मनुष्य काली हंडी को रखे रहे और बहुत बचाकर चले परन्तु कहीं न कहीं उनके कपड़ों में कालिख अवश्य लग जाती है, उसी प्रकार से कितना बड़ा भी योगी-संन्यासी, सिद्ध-महात्मा, महन्त क्यों न हो, यदि उसके साथ कोई स्त्री रहती है तो वह अवश्य उसको भ्रष्ट करेगी। क्योंकि पलटू साहब कहते हैं कि—"अस्सी बरस की बूढ़िया पलटू ना पतिआये"। इसलिए साधु-संन्यासियों को व बनावटी योगियों व पैसा बटोरने वालों को विदेशी नवयुवतियों को बटोरने वालों को निजी सचिव से विवाह करने वालों से एवं हस्त कापालियों से व झटित दर्शन कराने वालों से मनुष्यों को चाहिए कि सदा सावधान रहें। इन योग सिखाने वालों से सदा दूर रहें अन्यथा लोक-परलोक दोनों हाथ से चला जाएगा।

# रमैनी ७०

**बोलना कासो बोलिये रे भाई। बोलत ही सम तत्तु नसाई॥**
**बोलत-बोलत बाढु बेकारा। सो बोलिये जो परे विचारा॥**
**मिलहिं संत वचन दुइ कहिये। मिलहिं असंत मउन होय रहिये॥**
**पंडित सो बोलिए हितकारी। मुरुख से रहिए झखमारी॥**
**कहैं कबीर अरध घट डोले। पूरा होय बेचार ले बोले॥**

**शब्दार्थ**—बोलना-कहने वाली बात। कासो-किससे। रे-हे। बोलत ही-बोलते ही। तत्तु-सद्‌गुण, विवेक, बुद्धि, आत्मज्ञान, ईश्वर भजन। नसाई-नष्ट हो जायेगा। बाढु-वृद्धि। बेकारा-गन्दगी। परे-मिले। विचारा-विचारवान, एक स्वभाव का। संत-भद्र पुरुष। दुइ-थोड़ी सी। असंत-अभद्र। मउन-चुप। पंडित-सभ्य, बुद्धिमान। हित-कारी-हितवाळा। मुरुख-अज्ञानी। झखमारी-चुपचाप। अरध-आधा। घट-घड़ा। डोले-हिले, छलके। पूरा-भरपूर, भरा। बेचार-बुद्धि के साथ, विवेक करना।

**सम्बन्ध**—ऊपर सद्‌गुरु ने कहा कि हे भाई! ऐसे भ्रम युक्त भूले हुए घूमने वाले योगियों को मैंने नहीं देखा जो लोग परम विरक्त शंकर जी के उपदेश का प्रचार करते हैं और उनके सम्प्रदाय के बड़े महात्मा भी कहलाते हैं परन्तु ये लोग सांसारिक माया के बटोरने वाले, हाट-बाजार घूमने वाले, लड़ाई-दंगा करने वाले, बात-बात में झगड़ जाने वाले हैं। यह बुद्धिमान का काम नहीं है कि देखने में साधु हो, हाथ में माला लिया हो, बना विरक्त हो, लोक को अपनाये हो, सोने-चाँदी के आभूषण पहने, घोड़ा-घोड़ी पर सवारी करे, दान-दक्षिणा के द्वारा गाँव-नगर को प्राप्त करे, राजा जैसे शान-बघारे, साथ में सुन्दर स्त्री भी रखे और सनकादिक जैसा वेष भी बनावे, ऐसे लोग माया से कभी बचने वाले नहीं हैं। इनको माया अवश्य खा जायेगी। ऐसे लोगों से बोलना न चाहिए, न बात करनी चाहिए।

**भावार्थ**—साहब कहते हैं कि हे बन्धुओं ! हे सन्तों ! किससे बोलना चाहिए ? यदि उपर्युक्त लोगों से बात करोगे तो ठीक नहीं होगा। तेरा सब तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान नष्ट हो जाएगा और बोलते-बोलते बातचीत करते-करते विकार बढ़ जाएगा। क्योंकि वे लोग लड़ाकू हैं तुरन्त मार-पीट कर लेंगे, नंगई पर उतर जाएँगे। इसलिए उन लोगों से कोई ज्ञान-ध्यान की इच्छा मत करो। इनसे कोई सद्‌गुण मिलने वाला नहीं है। जो लोग संसार की विषय-वासना से चिपटे हुए हैं, वे क्या ज्ञान-ध्यान तुम्हें बतायेंगे ? उनके पास क्षमा नहीं है, सन्तोष नहीं है, वैराग्य नहीं है, ब्रह्मचर्य नहीं है। वे तेरे को क्या देंगे ? वे दूसरों के भरोसे जीते हैं। वे समाज के लिए भार-स्वरूप हैं। वे स्वयं कमाते नहीं। यहाँ तक कि अपना भोजन भी नहीं बनाते। ऐसे पराश्रितों से तुम दूर रहो। तुम उनसे बोलो जो विचारवान हों। जो तुम्हें अच्छी बुद्धि दे सकें, जो तेरा निस्तार कर सकें, जो सही में महात्मा हैं, सही में साधु हैं, किसी को दुःख नहीं देते, क्षमाशील हैं, जो अपने कमाकर खाते हैं, जो परोपकारी हैं, जो समाज एवं देश के लिए सब कुछ करने को तैयार रहते हैं, जो सरल हैं, जिनका चित्त शान्त है, जिनकी इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हैं, जो इन्द्रियों पर काबू किए हुए हैं, जो सम, दम आदि सम्पत्तियों से युक्त हैं। जो संसार की मोह, माया से दूर हैं। जो प्रभु-प्राप्ति के लिए सतत् प्रयास करते रहते हैं, जो ब्रह्मचारी हैं, जो ब्रह्मविद् हैं, जो स्वयं तत्त्वज्ञ हैं। ऐसे लोगों से आप लोग बोलिए। उक्त प्रकार के सन्त जन मिलें तो उन्हीं से दो बात कर लीजिए। उनसे अनावश्यक बात मत कीजिए। यदि ऊपर वाले असन्त पुरुष अर्थात् कच्चे योगी लोग हाथी-घोड़ा, कार, जीप, बग्गी पर चढ़ने वाले, हवाई जहाज पर चढ़ने वाले लोग मिल जायें तो उनसे मौन रहिए, उनसे कुछ न कहिए, इसी प्रकार से कहीं आपको सभी प्राणियों में एक आत्मा को देखने वाले, सबमें प्रभु को देखने वाले, पंडित एवं सन्त लोग मिलें तो उनसे हित की बात करिए और यदि कहीं मूर्ख, दिशा शून्य, चोर, डकैत, बटमार व

परिपंथी मिल जायें, तो उनसे मौन रहिये। यदि अनावश्यक आलोचना करने वाले मिल जायें, दूसरे का अवगुण देखने वाले मिल जायें, जो समाज से द्रोह करते हों, जो देशद्रोही हों, जिनका सम्बन्ध अपने धर्म से न हो, संसार की मोहमाया से जिनका सम्बन्ध है; ऐसे लोगों से झखमारी रहिए असमर्थ हो जाइए। जैसे झख मछली-मछली मारों को देखकर कहीं छिप जाती है, उसी प्रकार से परिपंथियों को देखकर जो कोई दिशा देने में समर्थ नहीं है, ऐसे लोगों को देखकर मत्स्यवत् छिप जाओ। उनसे बातें न करो। सद्‌गुरु कहते हैं कि सज्जन लोग तो उक्त लोगों से नहीं बोलते, परन्तु जो अर्धघट के समान हैं, भरे नहीं हैं अर्थात् जिनमें विवेक-बुद्धि नहीं है, पूरा ज्ञान नहीं है, समझदार नहीं हैं, वे लोग बेकार में डोलते हैं। अर्थात् नाटक-चाटक दिखलाने वालों से सम्बन्ध जोड़ते हैं। उनसे वाद-विवाद व्यर्थ का करते हैं और जो सभी प्रकार से भरे पूरे हैं, जिनका चित्त निर्मल हो चुका है, जो संसार से उपराम हो चुके हैं, जो सत्य को जान गए हैं, वे लोग विचार करते हैं। विवेक करके बोलते हैं किससे बोला जाये, किससे न बोला जाये।

## रमैनी ७१

**सोग बंधावा (जिन) समकै माना। ताकी बात इंद्रो नहिं जाना॥**
**जटा तोरि पहिरावै सेली। जोग जुगुति के गरब दुहेली॥**
**आसन उड़ाये कवन बड़ाई। जैसे कउआ चील मंडराई॥**

**शब्दार्थ**—सोग–शोक, चिन्ता, दुःख। बंधावा–आनन्द, मंगलगीत, सुख। समकै–एक समान। ताकी–उसकी। बात–रहस्य, भेद। इंद्रो–इन्द्र भी, ऐश्वर्यवान। विभूति–सम्पन्न, श्रेष्ठ, बड़ा देवताओं का राजा। जटा –वैष्णव लोग सिर के बालों को बहुत लम्बा बाल जोड़कर बनाते हैं, जिसमें जगह-जगह पर गुच्छे हो जाते हैं, किसी-किसी साधु के सिर में स्वाभाविक जटा हो जाती है। तोरि–काट, नोच। सेली–ऊन अथवा सिलकन के धागे की एक माला, जो कुछ सम्प्रदाय वाले धारण करते हैं,

किसी-किसी सम्प्रदाय में महन्ती के समय उक्त माला पहनायी जाती है, जिसको नाथ-योगी भी पहनते हैं। गरब—अभिमान। दुहेली—बहुत, बड़ा, कठिन, दुःसाध्य, दुर्गम। कउआ—काग। चील्ह—कौवे से थोड़ा बड़ा एक पक्षी। मंडराई—आकाश में उड़ने वाली क्रिया।

**सम्बन्ध**—उपर्युक्त रमैनी में सद्गुरु ने कहा है कि उस व्यक्ति से नहीं बोलना चाहिए जिससे बात-चीत करते ही झगड़ा शुरू हो जाय और अपनी विवेक-बुद्धि भी नष्ट हो जाय। कोई विवेक वाला संत-महात्मा मिले तो उनसे एक दो बातें कर लेनी चाहिए। असंत और असज्जन से बिल्कुल बोलने की मनाही है। यदि कोई आत्म-ज्ञानी पंडित मिले तो उससे हितैषी बातें कर लेनी चाहिए। अनाड़ियों से बिल्कुल चुप रहना चाहिए। क्योंकि अनाड़ी लोग अधंघट के समान होते हैं। वे विचार करके नहीं बोलते हैं, इसीलिए विचारवान से ही बोलना चाहिए। नोचली रमैनी में किससे बोलना चाहिए, उसका लक्षण सद्गुरु स्वयं कर रहे हैं।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जो धैर्यवान, पहुँचा हुआ महात्मा होता है, वह सुख-दुःख, मान-अपमान, आनन्द एवं शोक में, समबुद्धि रखता है। प्रत्येक क्षण वह भौतिक विचारों से परे रहता है। उस पहुँचे महापुरुष का भेद देवताओं के राजा इन्द्र भी नहीं जान पाते। तात्पर्य यह है कि जिसके लिए सुख-दुःख समान हो चुके हैं, जिसमें राग-द्वेष नहीं रह गया है, जो शोक में एवं उत्सव में स्थितप्रज्ञ रहता है, उस महापुरुष की बात को इन्द्र कैसे जान सकता है? इन्द्र का नाम यहां इसलिए लिया गया है कि इन्द्र स्वर्गलोक का राजा है और सम्पूर्ण देवगण उसकी स्तुति करते हैं। सब होने पर भी इन्द्र को सुख-दुःख, मान-अपमान होता है। इसलिए सम-बुद्धि वाला महात्मा इन्द्र से भी बड़ा होता है। सम बुद्धि वाले महात्मा का सुख इन्द्र को भी नहीं प्राप्त हो सकता। क्योंकि इन्द्र की इन्द्रियाँ भोग-परायण हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जो सुख स्थितप्रज्ञ को होता है, वह इन्द्र के समान ऐश्वर्यवान पुरुष को भी नहीं होता है। यहाँ आत्मसुख से ही तात्पर्य है। अब सद्गुरु कहते हैं कि जो

लोग रात-दिन पंथ-पंथायी के फेर में पड़े हैं, सम्प्रदाय चलाने के फेर में पड़े हैं। हमारा सिद्धान्त सही है, तुम्हारा सिद्धान्त सारहीन है। जो लाग एक दूसरे के वेष-भूषा को उतरवा लेते हैं और अपना वेष-भूषा पहना देते हैं। जो लोग योग-युक्ति का बहुत बड़ा अहंकार करते हैं, गर्व करते हैं। कहते हैं यह बहुत दुहेली है, दुःसाध्य है। बहुत साधना के बाद योग की सिद्धि होती है और सिद्धि प्राप्त करने पर अपना चमत्कार दिखला-कर समाज में अपनी प्रतिष्ठा का प्रतिष्ठापन करते हैं। प्राणायाम के सिद्ध होने पर अपने आसन सहित आकाश में उड़ते हैं। साहब कहते हैं कि हे भाई देखो ! इसका कोई महत्त्व नहीं हैं। यह तो तुम कुम्भक सिद्ध कर लिये हो, जिसके कारण तुम उड़ रहे हो, परन्तु तेरे से अधिक उड़ने वाले कौआ एवं चील्ह हैं जो सदैव आकाश में उड़ते रहते हैं। क्या तू उनसे अधिक सिद्ध हो गया है ? तात्पर्य यह है कि जैसे कौआ, चील्ह आकाश में उड़ते हैं लेकिन बहुत दुर्गन्ध, अभक्ष पदार्थों को ग्रहण करते हैं एवं खाते हैं। उसी प्रकार से आप भी सिद्धि तो किए, आकाश में उड़ने लगे। आपका आसन चलने लगा। काया कल्प करने लगे। इच्छित आयु हो गयी, परन्तु आपकी इन्द्रिया काग एवं चील्ह के समान गन्दी वस्तुओं को ग्रहण कर रही हैं। आप में तमाम राग-द्वेष भरा हुआ है। आप सिद्ध होकर भी अपने को श्रेष्ठ मानते हैं। हमारी दृष्टि में आप महत्वहीन हैं। जैसे पक्षियों में कौआ, चील्ह हैं, वैसे आप साधु-संतों में निम्न स्तर के साधक हैं। इसलिए आप का कोई महत्त्व नहीं है। यहाँ पर उदाहरण हंस, कोयल, शुकादि दूधभक्षी पक्षियों का दिया जा सकता था, परन्तु उक्त पक्षियों का नाम इसलिए नहीं लिया गया कि इन कच्चे योगियों व कच्चे सिद्धों की समता श्रेष्ठ पक्षियों से नहीं की जा सकती थी। जिस स्वभाव के काग, चील्ह होते हैं उसी प्रकार के ये कच्चे सिद्ध गण हैं और उसी प्रकार का काम कर रहे हैं, उसी प्रकार के पक्षियों का उदाहरण देकर इंगित किया गया है जैसे—कौआ, चील्ह जीवित प्राणियों को नोच कर मार डालते हैं। इसलिए बहुत बड़े-अपराधी गिने जाते हैं।

इसी प्रकार से ये सम्प्रदाय वादी सिद्ध, योगी, भी दूसरे वेष वालों की हत्या करते हैं उसके सत्व का नाश करते हैं। इसलिये ये कागवत्, चील्हवत् हैं। यहाँ पर जटा, सेली, का सम्बन्ध यह है कि सद्गुरु कबीर साहब के समय में नाथपंथ का बहुत प्रचार था। उनमें बहुत बड़े-बड़े करामाती होते थे। वे लोग वैष्णव जटाधारी महात्माओं का जटा काट कर अपने सम्प्रदाय का चीन्ह सेली पहना देते थे और अपने योग का प्रदर्शन भी करते थे। इन्हीं बातों को लेकर सद्गुरु ने उपलक्षित किया है कि ये लोग सच्चे संत महात्मा नहीं हैं। उनसे सम्बन्ध जोड़ना अच्छा नहीं है। संत-महात्मा वही हैं जो सुख में, दुख में समान रूप से रहते हैं और वे लोग इसलिए उपर्युक्त उस परम सुख को नहीं जान सकते जो सुख-दुःख में समान नहीं रहते हैं। जो अपनी आत्मा को जान चुका है, उसके मूल आनन्द को उड़ने वाले कच्चे सिद्ध कभी जान नहीं सकते।

**जैसी भीत तैसी है नारी। राजपाट सब गनै उजारी॥**
**जस नरक तस चन्दन जाना। जस बाउर तस रहे सेआना॥**
**लपसी लौंग गनै एक सारा। खाड-छांड़ मुख फाकै छारा॥**

**शब्दार्थ**—भीत-भीत्ति, दीवार। तैसी-उसी प्रकार की। नारी-स्त्री। राजपाट-राजसिंहासन। गनै-समझै। उजारी-जंगल, बीरान, शून्य। जस-जैसा। नरक-दुःख, दुर्गन्ध। तस-तैसे। चन्दन-एक सुगन्धित लकड़ी जो देवार्चन में काम आती है, सुगंध, सुख। बाउर-पागल, विभ्रमित। लपसी-स्वादिष्ट हलुआ जैसा बनाया हुआ घोल। लौंग-एक तिक्त मसाला जो ऐसे भी मुख शुद्ध करने के लिए खाया जाता है और मसाले में भी खाया जाता है। सारा-सामान्य, सब, सम व समस्त। खाड़-गुड़, चीनी। छांड़-त्याग। फाकै-खावे। छारा-क्षार, भस्म, राख।

**भावार्थ**—रमैनी की पहली पंक्ति में आत्मज्ञानी महापुरुष का लक्षण बताकर एवं उनके सुख का महत्त्व दिखाकर उन बनावटी योगियों एवं सिद्धों का दिग्दर्शन कराया गया है, जो लोग थोड़ी सी शक्ति प्राप्त

करने पर अनेक प्रकार से खूब प्रचार समाज में फैलाते हैं। ऐसे लोगों से सावधान करते हुए अब पुनः उपर्युक्त महापुरुषों का लक्षण बताते हैं जिनसे लोगों का कल्याण हो सकता है। कहते हैं कि वे महापुरुष निम्न प्रकार के होते हैं। वे अपनी इन्द्रियों को समेट कर आत्मा में लय कर देते हैं। सब जगह एवं सभी प्राणियों में एक आत्मा का दर्शन करते हैं। संसार की सबसे आकर्षक जो मोहित करने वाली स्त्री है उसमें और जड़ पदार्थ एवं दीवाल में एक समान बुद्धि हो जाती है अर्थात् जैसे किसी को दीवार को देखने से काम-शक्ति नहीं उत्पन्न होती है। भोग-भावना नहीं जगती है, उसी प्रकार से इन्द्रियजीत, आत्मज्ञानी पुरुष को अति सुन्दरी स्त्री भी आकर्षित नहीं कर सकती है। जैसे वह दीवार को देखकर आकर्षित नहीं होते, उसी प्रकार से बहुकमनीय नारी को देखकर भी आकर्षित नहीं होते। क्योंकि अपने में और उसमें अभेद हो चुके होते हैं। इसलिए वे महापुरुष राजसिंहासन व राजपाट को देखकर आकर्षित नहीं होते। उनके लिए राजपाट जंगल है, वीरान है उससे वे उदासीन रहते हैं। जैसे जंगल के व वीरन के उबड़-खाबड़ को देखकर कोई मनुष्य आकर्षित नहीं होता उसी प्रकार से संत महापुरुष भी राज्यादि सुखों को देखकर आकर्षित नहीं होते, क्योंकि जो सभी सुखों का आधार स्वरूप निजानन्द है, उसमें वे समाहित रहते है। इसलिए संसार का कोई भी सुख उन्हें बाँध नहीं सकता। उस महापुरुष की बुद्धि इतनी पवित्र हो जाती है कि उसके लिए सुगन्ध-दुर्गन्ध अर्थात् गन्धहीन और गंधयुक्त वस्तुएँ दोनों समान हो जाती हैं। क्योंकि घ्राण इन्द्रिय बाह्य गन्धों को ग्रहण नहीं करती। जब इन्द्रियाँ बाह्यमुख होती हैं, तभी वे लौकिक पदार्थों को ग्रहण करती हैं, लेकिन जब इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं तब उनका सम्बन्ध संसार के सभी बिषयों से परे हो जाता है। इसलिए वे महापुरुष संसार को किसी भी अच्छी एवं इच्छित वस्तुओं में समान भाव रखते हैं। उनके लिए न कोई पागल है, न कोई बाउर है, न कोई बुद्धिमान है, न कोई सेयान है। क्योंकि बाउर, सेयानापन आदि तो

बुद्धिगत दोषों से और बुद्धिगत विकार से होता है। आत्मा तो सबकी एक है जो समान रूप में सभी मे विराजमान है। मन बाउर होता है, मन सेयाना होता है, इसलिए वह महापुरुष मूल तत्त्व को ही ग्रहण करता है। उस महापुरुष की रसना इन्द्रिय स्वादास्वाद से परे हो जाती है। उसको जितना आनन्द और मिठास लपसी में मिलता है व मीठा में लगता है उसको उतना ही आनन्द तिक्त लौंग आदि में मिलता है। वह महापुरुष एक समान इस संसार के सुखों को समझता है। क्योंकि वह अनासक्त रहता है। अनासक्त पुरुष के लिए न कोई भला है न कोई बुरा है। वह जो खांड़ के समान-संसार का विषय-सुख है, उसको छोड़ देता है, जिसे संसार के लोग बड़े चाव से खाते हैं। इस संसार के विषय-भोग एवं अन्य श्रेष्ठ पदार्थों का परित्याग कर वह क्षार सहित जो स्वाद रहित पदार्थ हैं, जिसमें लौकिक स्वाद नहीं है, उस परमतत्त्व का सेवन करता है। तात्पर्य यह हुआ कि पहुँचा हुआ योगी व आत्मज्ञानी प्रभु भक्त संसार के सभी पदार्थों का परित्याग कर जो मोह के आकर्षण से रहित पदार्थ हैं, उन्हीं को ग्रहण करता है। जैसे राजपाट को छोड़कर जंगल में रहता है उदासीन रहता है। उसी प्रकार से अन्य सुख सामग्रियों का त्याग कर आत्मा में सन्तुष्ट रहता है।

साखी

**इहै विचार विचारते, गये बुद्धि बल चेत।**
**दुइ मिलि एकै होय रहा, मैं काहि लगाउं हेत ॥**

**शब्दार्थ**—इहै–यह। चेत–चेतना, चिन्तन। दुइ–जीव, ब्रह्म व ईश्वर–जीव। काहि–कहाँ। लगाउं–चित्त का सम्बन्ध। हेत–ध्यान।

**भावार्थ**—वह महापुरुष यह विचार करते-करते निर्विचार हो जाता है वह आत्मा और परमात्मा में इतना अभेद हो जाता है कि जो बुद्धि का बल रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण, होता है, वह नष्ट हो जाता है। जो रजोगुण क्रिया बुद्धि में प्रवेश करने पर वस्तुओं का चिन्तन करती है। संसार का शभाशुभ सोचती है, वह क्रिया भी नष्ट हो जाती है।

जब ज्ञानी पुरुष के मन व बुद्धि के धर्म रजोगुण, तमोगुण तथा सत्वगुण गायब हो जाते हैं एवं नष्ट हो जाते हैं, तब ऐसी दशा में जो भासता है मैं जीव हूँ, वह ब्रह्म है यह द्वैतभाव समाप्त हो जाता है। अब दोनों मिलकर एक हो गया अर्थात् द्वैतबुद्धि नष्ट हो गयी। अब वह महापुरुष इस संसार में किससे हेतु लगा सकता है। किससे सम्बन्ध जोड़ सकता है। संसार की वस्तुएँ सब उससे अछूता हो जाती है। उसका सम्बन्ध केवल परमतत्त्व से रहता है।

**विशेष**—जो महापुरुष सुख-दुःख में समान रहता है उसके सुख और आनन्द की बराबरी बहुत बड़ा धनवान, ऐश्वर्यशाली देवों का राजा इन्द्र भी नहीं प्राप्त कर सकता। जब इन्द्र नहीं प्राप्त कर सकता, तब वे दिखावटी वैष्णवों का जटा तोड़ने वाले और अपनी सेली पहनाने वाले एवं योग करने की युक्ति जानने वाले जो कहते हैं कि हमी योग की युक्ति जानते हैं। इस प्रकार का जो इनको बहुत बड़ा गर्व है, जिसको दूसरे के लिए दुःसाध्य समझ रहे हैं, ये भी उस पहुँचे हुए महापुरुष के आनन्द को कभी पा नहीं सकते। चाहे ये लोग काग एवं गीद्ध के समान कितना भी आकाश में उड़े। कितनी भी सिद्धियाँ दिखावें, परन्तु उनका महत्त्व उसी प्रकार से नहीं है, जैसे कोआ और चिल्हों का नहीं है। महत्त्व तो उसी महापुरुष का है जो षोड्स वर्षीया कामिनी और जड़ दीवार में समता रखता है। जो राज सिंहासन एवं जंगल व वीरान को समान समझता है जो स्वादास्वाद से परे हो चुका होता है। जिसकी दृष्टि में कोई मूर्ख नहीं है, न सयाना है। जिसकी बुद्धि मीठा एवं तिक्त में सुखी दुःखी नहीं होती जो संसार की खाड़वत् वस्तुओं का त्याग कर चुका होता है, जो जीवन निर्वाह के लिए अन्नादि वस्तुओं का सेवन करता है, वह महापुरुष ही आत्म सुख को जान सकता है। वह मनुष्य सत्यासत्य का विवेक करते-करते रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण—जो बुद्धि केवल है, उनको लुप्त कर एवं आत्मा-परमात्मा के भाव को समाप्त कर स्थिर हो जाता है। ऐसी दशा में संसार का बन्धन उसको नहीं रह सकता है और न ही संसार के किसी भी वस्तु से उसका सम्बन्ध होता है।

# रमैनी ७२

## आश्चर्य ममता प्रकरण

**नारी एक संसारहिं आई। माइ न वाके बापहिं जाई॥**
**गोड़ न मूड़ न प्रान अधारा। तामै भभरि रहल संसारा॥**
**दिना सात लै उनकी सही। बुद अदबूद अचरज का कही॥**
**वाहि के बंदन करै सभ कोई। बुद अदबूद अचरज बड़ होई॥**

**शब्दार्थ**—नारी–माया, प्रकृति, मोहक शक्ति। गोड़–पैर आदि। मूड़–मुन्ड, मस्तक, अन्त। प्रान–चेतन सत्ता। अधारा–अधिष्ठान, सहारा। तामें–उसमें। भभरि–भयभीत, भवचक्क, भ्रमि, डर। रहल–रहा। दिना सात–थोड़े दिन तक, अल्पकाल तक। सही–सत्यता, सत्य। बुद–विद्वान। अदबूद–अपठित। अचरज–आश्चर्य। वाहि के–उसी का। बंदन–उपासना, चाहना।

**सम्बन्ध**—ऊपर सद्‌गुरु ने ज्ञानी के सुख का लक्षण बताकर उन वंचक योगी सिद्धों का लक्षण दिखाकर पुनः पहुँचे हुए योगियों का स्वरूप बताया है और अन्त में यह कहा कि महापुरुषों का द्वैतभाव समाप्त होकर एक भाव हो जाता है और संसार से उनका सम्बन्ध नहीं रहता। अब कहते हैं कि संसार से सम्बन्ध होने का कारण वह नारी रूपी माया है, जो अनिर्वचनीय है।

**भावार्थ**—अब सद्‌गुरु कहते हैं कि सृष्टि होने के बाद संसार में ऐसी ममतारूपी नारी आयी, जिसकी न कोई माता है न जिसका कोई पिता है अर्थात् मायारूपी नारी ऐसी है जो किसी के द्वारा उत्पन्न नहीं हुई है, वह अनादि काल से इस संसार में आयी है। गोड कहिए न उसका आदि है, मुड़ कहिए न उसका अन्त है। प्राण कहिए वह जीवन एवं चेतना से रिक्त है। अधारा कहिए, वह अधिष्ठान हीन भी है। वह किसी प्रकार से अस्तित्ववाली नहीं है। न उसकी कोई माँ है, न बाप है, ना पैर है. न मुड़ है न उसमें जीव है। वह आधारहीन है। परन्तु संसार

के सारे प्राणी उस अस्तित्व-विहीन माया में भ्रमि रहे हैं, भयभीत हैं। उससे बाहर हो नहीं पा रहे हैं। उसकी सत्यता वहुत थोड़े काल तक है। वह सदैव एक सा नहीं रहती। वह बीच वाली है। जब मनुष्य अज्ञान दशा में माता के गर्भ में रहता है, तब भी वह प्रतीत नहीं होती। अब जब मनुष्य माया के वास्तविक स्वरूप को जान जाता है, तब भी वह सत्य नहीं भासती है। केवल तीनों गुणों की मिश्रित अबोध दशा में माया भासती है, परन्तु सारहीन जो अस्तित्व वाली नहीं है, उस माया में एवं उस स्त्री में संसार के बड़े से बड़े विद्वान बड़े से बड़े बुद्धिमान से लेकर मूर्ख तक फँसे हुए हैं, उससे भयभीत हैं और घूम-फिर कर उसी माया में ही रहते हैं। यह आश्चर्य की बात मैं किससे कहूं क्योंकि यह कोई सझमने वाला नहीं है उसी सार विहिना माया की अभ्यर्थना, वन्दना, उपासना एवं चाहना सब कोई कर रहे हैं। मुझे तो मूर्ख से लेकर इन विद्वानों को देखकर बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि जो लोग वेद-शास्त्र पढ़कर एवं सत्संग के द्वारा इस माया के स्वरूप को जान गये हैं कि यह पामर, आधारहीना है, असत्य है, परन्तु सबके सब उसी में लगे हैं, अर्थात् मूर्ख से लेकर पंडित तक पुत्र-कलत्र, धन-सम्पत्ति, मान-बड़ाई जो माया का वास्तवित रूप है, उसी की चाहना में लगे हैं। उससे परे कोई नहीं दिखाई देता।

साखी

**मुस विलाई एक संग, कहु कैसे (के) रहि जाय।**
**अचरज एक देखो हो संतो, हाथी सिंघहि खाय॥**

**शब्दार्थ**—मुस–मूसक, चूहा, जीव। विलाई–माया। हाथी–माया। सिंघहिं–चेतन या जीव।

**भावार्थ**—ऊपर तो सद्गुरु ने कहा कि बुध व अबुध सभी उसी चक्र में पड़े हुए हैं। किसी को हम अलग नहीं देख रहे हैं भला हे सन्तों! आप कहिये जो लोग इस विषैली माया के साथ में हैं, क्या वे कभी बच सकते हैं? अज्ञान वश ये संसारी जीव बिल्ली को खाना चाहते हैं और

खाने के लिए उसका साथ किये हैं, भला कहो ! एक साथ रहकर बच सकते हैं ? मुझे तो बड़ा आश्चर्य है कि यह संसारी लोग कहते हैं कि माया में रहते हुए हम कमाकर खाते हैं, नियम, धर्म से रहते हैं, हमको माया क्या करेगी परन्तु ये अज्ञानी मनुष्य माया का साथ करके उसी प्रकार से नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार से धोखे में व भ्रम में पड़कर सिंघ, हाथी के द्वारा मारा जाता है। तात्पर्य यह है कि मूसा रूपी जीव बिलाई रूपी माया जो एक दूसरे के दुश्मन हैं जो प्राण लेने के लिए अनेक छल-छद्म करके बिलाई रूपी माया इन जीवों को खाने की ताक में रहती है। क्या कभी ये संसारी जीव माया का साथ करके बच सकते हैं ? ये संसारी जीव, आश्चर्य है कि भला माया का साथ करके कैसे बच सकते हैं ? यह आश्चर्य है कि देखो यह जीव सिंघ के समान था और माया घटाटोप भयंकर वाली थी, जो कुछ नहीं थी, मात्र दिखावा एवं भुलावा थी परन्तु अनजान में मनुष्यों को खा रही है।

**विशेष**—इस संसार में मोह, ममता रूपी माया तृष्णा का रूप बना कर जीवों को मोहने के लिए आ गयी है परन्तु वह प्राणहीना है, उसका कोई अस्तित्व नहीं है परन्तु अज्ञान के कारण सारा संसार उसी में लगा हुआ है, चाहे वह पंडित हो या चाहे वह मूर्ख हो सबके सब उसी की उपासना में लगे हैं। साहब कहते हैं कि इन दोनों को साथ रहना-अच्छा नहीं है क्योंकि माया प्राणियों का नाश कर रही है और नाश करने में लगी है। यह जीवधारी मनुष्य माया को खाने वाला था, माया को समाप्त करने वाला था परन्तु आश्चर्य है कि माया ही इसको खा रही है इसलिए मनुष्यों को चाहिये कि इस माया से बचने के लिए संत सद्गुरु की शरण में जाय तभी इस महामोहिनी से बच सकते हैं।

## रमैनी ७३

**चली जात देखी एक नारी। तर गागर ऊपर पनिहारी॥**
**चली जात वहि बाटहिं बाटा। सोवनहार के ऊपर खाटा॥**

**जाड़न मरै सफेदी सौरी । खसम न चीन्है घरनि भई बौरी ।।**
**सांझ सकार दिया लै बारे । खसमहिं छोड़ि संबरै लगवारे ।।**
**वाही के रस निसुदिन राची । पिआ सों बात कहै नहिं साची ।।**
**सोवत छाडि चली पिउ अपना । ई दुख अब धौं कहिये कहिसना ।।**

**शब्दार्थ**—चली जांत–जाते हुए । नारी–सकामी पुरुष, जो कामनाओं में अहर्निश लिप्त हैं, वे सब नारी हैं । इसी रमैनी प्रकरण में दिखाया गया है कि 'कहै कबीर सब नारी राम की' । तर–नीचे । गागर–गगरी, घट, जल भरने का मिट्टी का एक पात्र, विवेक बुद्धि । ऊपर–ऊर्ध्व । पनिहारी–जल भरने वाली, सकाम कर्मी पुरुष । वहि–वह, । बाटहिं बाटा–बनावटी, परम्परागत वह मार्ग जिस पर पहले के लोग गए हो । सोवनहार–जीवात्मा, परमतत्त्व, ( पुरे सेते इति पुरुषः ) जो मानव शरीर रूपी पुर में निवास करता है । खाटा–मानव शरीर, संसार, चारपाई जिस पर लोग सोते हैं । जाड़न–जाड़ों मे, ठंढियों में । मरै–तकलीफ सहे । सफेदी–श्वेत, उज्ज्वल । सौरी–चादर, पिछौरी, आत्मज्ञान । खसम–परमतत्त्व, आत्मतत्त्व । चीन्है–पहचानै । घरनि–सकाम कर्म उपासक, स्त्री । भई–हुई । बौरी–विक्षिप्त, पगली । सांझ–संध्या । सकार–प्रातः । दिया–दीपक, उपासना, देवार्चन व देवपूजा । बारे–उद्दिप्त करे, उपासैं । संबरै –सुमिरै, ध्यान करे । लगवारे–परपति से, सांसारिक विषय से । वाही–उसी । रस–आस्वादन । निसुदिन–अहर्निश । राची–तन्मय, लगी रहे । पिआ–परमेश्वर । बात–समाचार, वृत्तान्त । साची–सच्ची । पिउ–प्रियतम, परमेश्वर, आत्मा । ई–यह । धौं–हे भाई । कहिसना–किससे ।

**सम्बन्ध**--बहत्रवीं रमैनी में माया को अनादि कहते हुए अस्तित्व विहीन बताया गया है और यह कहा गया है कि वह बहुत विलक्षण है । इसमें प्राण नहीं है किन्तु बिना प्राण के यह जीवित है । निष्प्राण अनामिका से सारा संसार डर रहा है । भयभीत है । उसी में भ्रमि रहा है, जो न आदि में सत्य है और न अन्त में सत्य रहेगी परन्तु पंडित व अपंडित सभी उससे भयभीत हैं । उसी में लगे हुए हैं । यह आश्चर्य करने योग्य नहीं

है। कुछ न होते हुए जो अस्तित्ववाला है, उस सिंघवत जीव को खा रही है। अब उस माया में लिपटे हुए उन सकामी पुरुषों की दशा का वर्णन किया जा रहा है—

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे भाई संतो ! अस्तित्व विहीना माया से संपृक्त होकर सकाम कर्मी मनुष्यों को हमने जाते देखा है और सभी को वह एक नारी ही अपने वश में किए हुये है। वासना से अभिभूत मनुष्य संसार में परिगमन कर रहा है। फल की इच्छा से कर्मों में लगा हुआ है परन्तु आश्चर्य यह है कि जिस कर्म में लगा हुआ है, उससे दृष्टि इसको होने वाली नहीं है। क्योंकि जो विवेक, बुद्धि रूपी गगरी इसके पास है, उसको यह सकाम कर्मी नीचे कर दिया है और पनिहारिन के रूप में अपने उस विवेक, बुद्धि की उपेक्षा कर ऊपर हो गया है और उपेक्षा की दृष्टि से ही वह चला जा रहा है। यह विवेक नहीं किया कि सद्बुद्धि की अवहेलना करने पर क्या परिणाम होंगे। वह आगे ही बढ़ता जा रहा है, जो मार्ग परम्परा से बना हुआ है, जिस भवाट्वी पर पहले के सकामी पुरुष यात्रा कर चुके हैं। वही वाटहि वाट से मेरे देखने में आज के ये सकाम कर्मी पुरुष भी जा रहे हैं और जो इनके हृदय स्थल में सो रहा है, निवास कर रहा है, उस परम पुरुष के ऊपर अविद्या रूपी खाट लाद दिए हैं अर्थात् जिस काम्य कर्म में ये लगे हैं वही खाट है, उस काम्य कर्म के कारण, स्वर्गादि की इच्छा के कारण सोवनहार की उपेक्षा हो गयी है। ये जाने वाले पुरुष उलट कर नहीं देख रहे हैं, झांक कर भी नहीं देख रहे हैं, जो सुखों का सुख है, स्वर्गों का स्वर्ग है वह मेरे अन्दर विराजमान है। ऐसा न करके जाड़न कहिए अनेक कलह कल्पना रूपी ठंढक से मर रहे हैं। अज्ञान में सने हुए हैं। अज्ञान रूपी ठंढक इसको बहुत सता रही है परन्तु अपनी अविवेकिता के कारण जो श्वेत वर्ण की चादर थी अर्थात् जो आत्मज्ञान वाली बुद्धि थी, उस ज्ञान रूपी चादर से अपनी रक्षा नहीं कर सके। ये सकाम कर्मी पुरुष ठंढक से सिकुड़े हुए हैं। आत्मज्ञान की उपेक्षा कर दिए हैं और उन्हीं काम्य कर्मो को करते हुए आगे बढ़ रहे

हैं, जो अन्दर में परम खसम स्थायी विराजमान है, उसको ये चीन्ह नहीं रहे हैं, उसकी प्राप्ति का उपाय ये नहीं कर रहे हैं। घरनि अर्थात् संसार रूपी घर में लगे हुए ये पुरुष बावले हुए हैं। क्योंकि ये परमतत्व की उपेक्षा कर दिए हैं। इसलिए इनकी संतुष्टि नहीं हो रही है। अहर्निश तृष्णा इनको सता रही है। देखने में तो ये प्रातः-सायं दीपक बार कर देवमंदिर आदि में मूर्त्तियों की पूजा करते हैं अर्थात् नित्य षट्कर्म में लगे हुए हैं। ये सकाम कर्मी मनुष्य वाह्य पूजा-पाठों में रत हैं। उस परम प्रभु को छोड़कर अन्य कर्मकाण्ड, देवार्चन आदि की सुमिरन में अपने जोवन को लगा दिए हैं परन्तु उससे उनको संतोष नहीं है, क्योंकि हृदयस्थ परमतत्व को छोड़ दिए हैं, जो प्रभु से भिन्न है, आत्मा से भिन्न है। उस अनात्म पदार्थ रूपी जार पुरुष व जार तत्त्व की उपासना में लोग लगे हुए हैं और उसी अनात्म तत्त्व को उपासना में, रसास्वादन में रात-दिन जुटे हुए हैं। इतनी तन्मयता से अनात्म तत्त्वों में जुड़े हुए हैं कि जो अन्तर्यामी इनके अन्दर विराजमान है उससे कभी ये सच्ची बात नहीं करते अर्थात् जो सबका नियामक है व नियन्ता है, देवादि में लगे रहने के कारण ये अज्ञानी मनुष्य अपने मन की सच्ची बात प्रभु से नहीं करते। वह इनके पास में ही था और अन्दर सो रहा था, जहाँ सो रहा था, वहीं इस जीव का भी निवास था परन्तु अज्ञानता के कारण, दुर्बुद्धि के कारण उस परम प्रियतम को छोड़कर आगे बढ़ गया। हे भाई! यह मानवतन बड़ा दुर्लभ था, इसको प्राप्त कर यह जीव उस अनन्त सत्ता को प्राप्त नहीं कर सका और अन्त में अप्राप्त की दशा में ही भवाट्वी के द्वारा प्रयाण कर दिया। भला कहो! हम यह घोर दुख किससे कहें, किसको सुनावें। मनुष्यों को चाहिए था कि मानव तन पाकर हृदय-निवासी प्रभु को जगा कर उससे अपना सम्बन्ध जोड़ लेवें, परन्तु ऐसा नहीं किए।

साखी

**अपनी जांघ उघारि के, अपनी कही न जाय।**
**की चित जानै आपनौ, की मेरो जन गाय॥**

**शब्दार्थ**—जांघ–गुप्त स्थान, गुह्य इन्द्रिय। उघारि–खोलकर, पर्दा हटाकर। चित–मन। जन–लगवार पुरुष।

**भावार्थ**—जब मनुष्य किसी को संगति करके असफल हो जाता है, उस व्यक्ति से उसको तृप्ति नहीं मिलती है, तब वह व्यक्ति महापश्चाताप करता है। वह अपनी भूल को कह नहीं पाता। जैसे कोई भ्रष्ट स्त्री पति को छोड़कर दूसरे पुरुष से सम्पर्क जोड़ती है परन्तु जब दूसरा पुरुष भी उसकी कुटिलता के कारण त्याग देता है, तब यह भ्रष्ट स्त्री अत्यन्त वेदना में निमग्न हो जाती है और उस पर पुरुष से सम्पर्क की बात किसी से नहीं कह पाती। उसका सम्पर्क तो वहीं जान सकती है अथवा जिसके साथ वह सम्बन्ध करती है, वह जान सकता है। इसी प्रकार से जो मनुष्य अहर्निश सकाम कर्मों में लगा रहता है और उसको सफलता नहीं मिलती है अर्थात् उन सकाम कर्मों से वह जब सन्तुष्ट नहीं होता है, उसको शान्ति नहीं मिलती है, तब वह बहुत पश्चाताप करता है और अपनी भूल को किसी से कहने में समर्थ नहीं होता। उस भूल को या तो वही जानता है, या तो जो उसके साथ रहा है वह जानता है।

**विशेष**—सद्गुरु कहते हैं कि संसार के सकामी पुरुष एक ही होते हैं और उनको मोहित करने वाली एक ही माया होती है। संसार के लोग विपरीत दिशा में ही जाते हैं। जो मार्ग का सम्बल है, जो मार्ग का व्यय करने वाली सामग्री है, जिसमें वह सामान रखा जाता है अर्थात् जो सद्बुद्धि है, जिसमें विवेक, वैराग्य, क्षमा, दयादि भरे जाते हैं, ये पनिहारिन रूप सब अज्ञ मनुष्य अपने पैरों तले कुचल देते हैं और अहंकार के कारण अपने ऊपर हो जाते हैं, उसी राह पर सभी जाते हैं, जिस मार्ग पर पहले के लोग गये होते हैं। वे कोई अन्वेषित मार्ग पर जाने के लिए प्रस्तुत नहीं होते, जहाँ उनको जाना चाहिए था, जिनसे मिलना चाहिए था, वह सोया था, उसकी उपेक्षा यहाँ तक कर दिए कि उसके ऊपर अविवेक, अज्ञान रूपी खाट लाद दिए अर्थात् इस मानव जीवन की उपेक्षा कर दिए। ये संसारी मनुष्य जाड़ा रूपी संसार के दुःखों से तर हो रहे

हैं, मर रहे हैं पर आत्मा रूपी सफेद चादर के द्वारा अपनी रक्षा नहीं कर पा रहे हैं। घरनी स्वरूपा ये सकाम कर्मी पुरुष जो अन्दर में खसम विराजमान हैं, उसको चीन्ह नहीं पा रहे हैं। व्यर्थ में पगला होकर यत्र-तत्र दौड़ रहे हैं। ये यज्ञ व षट्कर्म रूपी कर्म को बड़े प्रेम से सुबह-सायं करते हैं। यहाँ दीया में व्यंजना है। दीपक बहुत लघु प्रकाश का द्योतक है, जिससे रात्रि का पूरा अन्धकार नहीं भागता है। तात्पर्य यह है कि सकाम कर्मों का फल वहुत अल्प होता है। उससे किसी मनुष्य का लाभ होने वाला नहीं है। सकाम कर्म के द्वारा मनुष्य संसार में कुछ सुख-सुविधा पा लेता है परन्तु ये परलोक के लिए उपयुक्त नहीं होते। इसलिए यहाँ पर सकाम कर्मों को दीपक की संज्ञा दी गयी है। तात्पर्य यह है कि सूर्य रूपी महाप्रकाश छोड़कर ये संसारी मनुष्य जो उस परमप्रकाश स्वरूप सूर्य से जो भिन्न पदार्थ है, उसकी उपासना में, उसके स्मरण में लगे हुए हैं और उसी को अपना उपास्यदेव मान रहे हैं और सुबह से शाम तक उसी अनात्म पदार्थ में इनकी अनुरक्ति भी बनी हुई है। ये अज्ञानी मनुष्य उस परम प्रियतम से, उस परम प्रभु से अपनी सच्ची बात नहीं कहते हैं। अर्थात् जिनसे इनका उद्धार होने वाला था, उसकी उपासना नहीं करते हैं। उस हृदय में सोते हुए परमपुरुष को विना जगाये ही संसार से अज्ञानी मनुष्य चल दिए। अब प्रश्न उठता है कि मनुष्य शरीर को छोड़कर चले गए। अब इनको पशु आदि योनियाँ मिलेंगी अथवा देवलोकादि में जाएँगे। जहाँ से फिर ये इस लोक में आयेंगे। सदैव इनकी यही गति होती रहेगी। इसलिए यह दुःख किससे कहा जाय। कोई समझने वाला, कोई सुनने वाला नहीं दिखायी देता। यदि किसी महापुरुष के समझाने से अन्त में इनको जानकारी हुई कि हम गलत मार्ग पर हैं, बहुत पश्चाताप करते हैं। भ्रष्ट स्त्री की भाँति अपने व्यभिचार को किसी से नहीं कह सकते हैं। अपनी भूल को किसी से नहीं सुनाते हैं और सुनाने से अब क्या होने वाला है ? अब मानव तन को छोड़कर यहाँ से प्रस्थान कर रहे हैं।

**टिप्पणी**—कुछ टीकाकारों ने इस तिहत्तरवीं रमैनी का अर्थ बहुत विभिन्न प्रकार से किया है। किसी ने प्रलयादि में माया को जाते हुए बताया है। किसी ने एक नारी को सुरति बताया है। कुण्डलिनी को गागर बताया है और साधक को पनिहारी बताया है, परन्तु यहाँ पर योग का कोई सम्बन्ध नहीं होने से उक्त अर्थ निश्चित करना कोई उपयुक्त नहीं है। वैसे तो शब्दानां अनेकार्थः के अनुसार रुची वैशिष्ट्य के कारण कोई भी अर्थ किया जा सकता है। उसको कोई रोक नहीं सकता परन्तु बहत्तरवीं रमैनी में स्पष्ट एक नारी माया के रूप में उद्धृत की गयी है और इस तिहत्तरवीं रमैनी में माया ग्रसित प्राणी का निदर्शन किया गया है, इसलिए यहीं अर्थ बहुत अधिक संगत हैं। ऊपर का प्रसंग भी इससे मिल जाता है। मेरा अपना विचार है कि किसी पद का अर्थ खींचतान के न किया जाय, जो सहज में लगता हो, वही लगाया जाय। मेरा प्रयत्न भी यही हैं कि सद्गुरु एवं परमेश्वर को उस खींचतान में न डालें, जहाँ तक हो सके सही अर्थ की उपलब्धि करावें।

## रमैनी ७४

### आत्मज्ञानी लक्षण प्रकरण

**तहिया होते गुपुत अस्थूल न काया। न ताके सोग न तकै पै माया॥**
**कंबल पत्र तरंग एक मांही। संगै रहै लिपित पै नाहीं॥**
**आस ओस अंड मा रहई। अगिनित अंड न कोई कहई॥**
**निराधार आधार लैं जानी। राम-नामु लै उचरी बानी॥**

**शब्दार्थ**—तहिया–तब, उस दिन। होते–होता। गुपुत–गुप्त, सूक्ष्म शरीर। अस्थूल–स्थूल शरीर। ताक–उसके। सोग–शोक, चिन्ता। पै–उसमें प्रत्युत। माया–प्रकृति, जाल, फसान। कंबल–कमल। तरंग–जल-बूंद, लहर। मांही–में। लिपित–लिप्त, स्पर्श। आस–कामना, भोजन भक्षक, खानेवाला। ओस–वह कण जो जलों से वाष्प बनकर आकाश में स्थित होता है एवं पुनः रात्रि में जलकण के समान पृथ्वी पर बिखर

जाता है, अल्प। अंड–ब्रह्माण्ड, अंडकोश, कस्तूरी, अण्डा, निराधार, आश्रयहीन, निर्गुण ब्रह्म। आधार–आश्रय, सगुण ब्रह्म। अगनित–असंख्य। लै–लेकर। उचरी–प्रकट हुई, निकली।

**प्रतीकार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि मैंने जल भरने के लिए जाते हुए एक स्त्री को देखा परन्तु जिस गगरी में जल भरना था वह स्त्री उस घड़े को अपने पैरों तले की थी और उसके ऊपर वह स्वयं खड़ी होकर जा रही थी। वह पनिहारिन स्त्री रास्ते-रास्ते जा रही थी और उसका जो पति था, घर में सो रहा था। उस स्त्री ने अपने पति के ऊपर खाट उलट दी थी। जाड़ा का समय था। उस पर भी वह पति से अलग हो चुकी थी, जिसके कारण उसको ठंडक लग रही थी। वह घरनी पति का पहचान नहीं कर सकी, जिसके कारण पगली हो गई व बौरी निःसहाय हो गयी। किसी अन्य पुरुष की पूजा में लग गयी। सुबह शाम उसी अन्य पुरुष की आरती उतारने लगीं। अपने उपास्यदेव स्वामी की सेवा त्यागकर लगवार जार पर पुरुष का सुमिरन-चिन्तन करने लगी और वह दिन-रात उसी पर पुरुष के संग में तन-मन एक होकर रहने लगी। घर आने पर अपने हृदय की बात पति देवता से सही रूप में नहीं कहती। पुनः सोया हुआ पति इस संसार रूपी घर से चल दिया। साहब कहते हैं कि हे भाई! यह पतित्याग का घोर दुःख किससे कहा जाय, क्योंकि आप का दुष्कर्म व्यभिचार किसी से कहते नहीं बनता, उक्त नीच कर्म या तो अपना मन जानता है या वह परपति जिसके साथ अनुरक्ता थी, वह जानता है।

**सम्बन्ध**—तिहत्तरवीं रमैनी में कहा गया कि एक स्त्री जा रही है, जो पनिहारिनी है। आश्चर्य यह है कि जलपात्र को नीचे रखकर उस पर खड़ी होकर चल रही है। अर्थात् इस मायाग्रसित मनुष्यों की यात्रा उल्टी दिशा की ओर चलती है। जिधर जाना चाहिए, उधर यह मनुष्य नहीं जाता है। मन की गति स्वभावतः विपरीत होती है। वह लौकिक पदार्थों को ही ग्रहण करना चाहता है। परन्तु मृग-मरीचिका की भाँति

मन के सामने उपस्थित रहती है। मन से संपृक्त मनुष्य अपने मूलभूत चेतन तत्त्व को छोड़ देता है। निःसार पदार्थों की उपासना में लगा रहता है। अन्त में यह कहा गया कि जब मनुष्य को सफलता नहीं मिलती है तो अपनी भूल को कहने में संकोच करता है। उसकी भूल को जानते हैं तो उसके साथी गण। अब साहब कहते हैं कि यदि मनुष्य चाहे तो मानव तन में ही इसको मुक्ति मिल सकती है। क्योंकि मुक्ति का स्थान यह मानव तन ही है। अब उस मुक्ति का लक्षण एवं मुक्त पुरुष के लक्षण का वर्णन सद्गुरु निचली रमैनी में कर रहे हैं।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जब मनुष्य सभी प्रकार की वासनाओं से मुक्त हो जाता है। कामनाओं से दूर हो जाता है, तब उसका चित्त निर्मल हो जाता है। जब चित्त निर्मल हो जाता है तब मनोवृत्ति अपने मूल कारण में समाविष्ट हो जाती है। जब वृत्ति मूल कारण में लय हो जाती है तब मुक्त पुरुष का मन न सूक्ष्म शरीर में रहता है न स्थूल शरीर में रहता है। मुक्त पुरुष का उपराम हुआ मन शरीर के किसी भी अवयव से बाहर नहीं होता। वह मुक्त पुरुष का चित्त संसार के साथ रहते हुए, मायामय शरीर में रहते हुए शोक-मोह से भिन्न रहता है। जैसे जल में कमल-पत्र रहता है और जल की लहरें आती हैं परन्तु कमलपत्र का जो निर्मल स्वभाव है वह जल तरंगों को बाहर फेंक देता है। उसी प्रकार से ज्ञानी पुरुष इस संसार में रहता है, खाता है, पीता है, जागता है, सोता है, परन्तु वह मुक्त पुरुष संसार की माया में लिप्त नहीं होता। यद्यपि इस ब्रह्माण्ड में आशाएं अनेक हैं जिससे मनुष्य सदैव अभिभूत रहता है और वे आशाएँ वाह्य जगत की होती हैं परन्तु आशाओं के फल ओसकण के समान हैं ओसकण पिपासु मनुष्य को संतुष्ट नहीं कर पाते, जिसके चित्त का बहाव बहिरंग है वह मनुष्य आशा से जन्मतृष्णा के चक्र में पड़ा रहता है परन्तु वह मुक्त पुरुष एक ब्रह्माण्ड की विभूतियों को कौन कहे वह अनन्त ब्रह्माण्ड की विभूतियों को भी तुच्छ समझता है। वह मुक्त पुरुष संसार की तमाम

तृष्णाओं का त्याग कर देता है। तात्पर्य यह कि निर्लिप्त पुरुष इस एक ब्रह्माण्ड की तृष्णा का त्याग नहीं किए रहता है, जो अगनित ब्रह्माण्ड हैं, उनके भी सुख उस मुक्त पुरुष को बांध नहीं सकते। वह मुक्त पुरुष निराधार अर्थात् तीनों गुणों से परे जो परमतत्त्व है, उसी को अपना आधार मानता है और बना लेता है। उस निराधार परमतत्त्व का नाम वाणी के द्वारा राम-नाम कह कर उच्चारण किया गया है।

**धरम कहै सब पानी अहई। जाती के मन पानी अहई॥**
**ढोर पतंग सरै घरियारा। तेहि पानी सब करै अचारा॥**
**फंद छोड़ि जो बाहिर होई। बहुरि पंथ नहीं जोहै सोई॥**

**शब्दार्थ**—धरम–धर्मशास्त्र। पानी–पानिये, जल, आव, आनन्द, प्रपंच, वीर्य, दुति, कान्ति, मर्यादा। जाती–वर्णाश्रम। ढार-पशु। घरियारा–मगर, एक भयानक हिंसक जलजन्तु, जो सदा जल में रहता है। अचारा–शुद्धि, नित्य, व्यवहार में करणीय, जल के द्वारा क्रिया। फंद–बन्धन। वाहिर–बाहर, मुक्त। बहुरि–पुनः। जोहै–खोजे। सोई–वह।

**भावार्थ**—उसी बात को धर्मशास्त्र कहते हैं कि संपूर्ण चराचर में प्रकाश रूपी पानी व्याप्त है। उसी बात को ये जाति अभिमानी भी अपने मन में पानी व प्रकाश कहते हैं और यह कहते है कि वह प्रकाश स्वरूप परमेश्वर कभी विकार भाव को प्राप्त नहीं होता है। जैसे लोक में बड़ी-बड़ी नदियों में पशु, पतंग, घड़ियाल मर जाते हैं और सड़ जाते हैं परन्तु उस जल में उन पशुओं के सड़न का स्थायी दोष नहीं रहता और संसार के सारे मनुष्य उसी नदी जल से अपना आचार–व्यवहार करते हैं। जो भी शुद्धि आदि का कार्य होता है, उसी जल के द्वारा होता है और यह भाव कोई नहीं रखता कि इसमें ढोर सड़ा है, पतंग सड़ा है, घड़ियाल सड़ा है, सभी लोग उस जल को निर्मल मानकर अपना-अपना व्यवहार करते हैं। इसी प्रकार से वह परमतत्त्व जल के समान है, निर्मल है। उसको ये संसार के अनेक प्रपंच विकारवान नहीं बना सकते। जिसको ज्ञानी लोग रामनाम की संज्ञा दिये हैं। साहब कहते हैं कि जो मनुष्य इस बाह्य जगत

के स्वरूप को देखकर और उसकी वास्तविकता को जानकर उस फंसने वाले फंदे को छोड़ देता है तो वह मनुष्य पुनः संसार में जाने वाले पंथ को नहीं खोजता और उस कमलवत् निर्वाह करने वाले मुक्त पुरुष की भाँति वह भी मुक्त होकर संसार में विचरण करता है परन्तु संसार का कोई भी विषय उस मुक्त पुरुष को बन्धन में नहीं बाँधते ।

साखी

**भरमक बाँधा ई जग कोई ना करै विचार ।**
**हरि की भगति जाने बिना बूढ़ि मुआ संसार ।।**

**शब्दार्थ**—भरमक–अज्ञान में ।

**भावार्थ**—ऊपर कहा गया है कि जो संसार का फंदा छोड़ देता है, वह मनुष्य पुनः संसार के मार्ग का अन्वेषण नहीं करता । साखी में सद्गुरु कहते है कि संसार के संपूर्ण मनुष्य अज्ञान में बंधे हुए हैं इस पर कोई विचार नहीं कर रहा है । उनके छूटने का भी उपाय था परन्तु जिस उपाय से छूटना था, उस हरि की भक्ति को उन लोगों ने ग्रहण नहीं किया । उनकी सेवा को वे लोग नहीं समझे । जिसके कारण संसार रूपी समुद्र में सारे प्राणी डूब मरे । तात्पर्य यह है कि संसार के सारे प्राणी अज्ञान के बन्धन में जिसके कारण उन्हें ब्रह्म-सुख कभी उपलब्ध नहीं होता है और बन्धन से छूटने के लिए कोई विचार भी नहीं कर रहे हैं, यदि विचार करता तो हरि की भक्ति जागती और हरि का भजन करता लेकिन हरि को भजा नहीं इसलिए सारे मनुष्यों का विनाश हो गया ।

**विशेष**—जब मनुष्य विवेक करके आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है तब उसका मन बाह्य जगत से हटकर आत्म-चिन्तन में लग जाता है । तब उसको संसार की मोह-माया एवं शोक-संताप नहीं सता पाते हैं । वह मुक्त पुरुष संसार में 'पद्मपत्र मिमांभषाः' की भाँति संसार में निवास करता है । संसार के जल रूपी विकार में वह लिप्त नहीं होता है । ब्रह्माण्ड की सारी आशाएँ नष्ट हो जातो हैं और जो माया का सुख ओस के समान अतृप्ति वाला था, वह भी उस मुक्त पुरुष को कुछ भी नहीं कर पाता । एक ब्रह्माण्ड की

बात कौन कहे। अनेक ब्रह्माण्ड के सुख भी उस मुक्त पुरुष को नहीं बाँध सकते। वह मुक्त पुरुष परम अक्षर, जो सबका कारण है जो सबकी आत्मा है, उसी को अपना आधार बना लेता है। नामरूप न होने पर भी विज्ञ पुरुषों ने उसका नाम राम लेकर उच्चारण किया है। धर्मशास्त्र के कर्त्ता लोग भी उस परमतत्त्व को जल की भाँति असंग माना है। उसमें कोई भी विकार नहीं होता है। जैसे लोक में अगाध नदियों के जल में कितने भी प्राणी मरते सड़ते रहते हैं, लेकिन वह जल विकारभाव को प्राप्त नहीं होता है। उसको शुद्ध मानकर संसार के मनुष्य अपने मल को उसमें धोते हैं। इसी प्रकार से जो मनुष्य वर्णाश्रम का अभिमान त्यागकर एवं मोर-तोर का अभिमान त्याग कर उक्त फंदा को छोड़ देता है, उससे अलग हो जाता है तो वह पुनः संसार के मार्ग में नहीं पड़ता है। अर्थात् जो आत्मा की प्राप्ति कर लिया है, वह मनुष्य संसार में जाने के लिए संसार के पंथ को नहीं खोजता, क्योंकि यह संसार अज्ञान में लिपटा हुआ है। उससे निकलने के लिए कोई विचार भी नहीं करता और उस परमतत्त्व हरि के भजन बिना अन्ततः संसार के सभी मनुष्य नष्ट हो गए। इसलिए सबको चाहिए कि श्री हरि का भजन करें

## रमैनी ७५

### परमतत्त्व प्रशस्ति प्रकरण

**तेहि साहब के लागहु साथा। दुइ दुख मेटि के होउ सनाथा॥**
**दसरथ कुल औतरि नहिं आया। नहिं लंका के राउ सताया॥**
**नहिं देवकी के गरभहिं आया। नहीं जसोदे गोद खेलाया॥**

शब्दार्थ—तेहि–उस। साहब–स्वामी। लागहुँ–लागिए। साथा–साथ, संग। दुइ-दो जन्म-मरण, जन्म कष्ट। मेटि–दूर। होउ–हो। सनाथा–स्वामी की प्राप्ति वाला। दसरथ–अयोध्या के राजा। राउ–राजा। सताया–तंग किया, मारा। देवकी–वसुदेव की धर्मपत्नी। यशोदे–नन्द जी की पत्नी। गोद–अंकमाल, छाती से लगना, खेलाया, क्रीड़ा किया।

**सम्बन्ध**—ऊपर मुक्त पुरुष का लक्षण बताकर उस परमतत्त्व के विषय में कहा गया कि उसमें कभी भी विकारभाव उत्पन्न नहीं होता है। वह जल के समान सबको निर्मल करने वाला है, जब तक मनुष्य उस परमतत्त्व की भक्ति नहीं करेगा, तब तक संसार में डूबते-मरते रहेगा। अब इस पचहत्तरवीं रमैनी में सद्‌गुरु साहब उसी परमतत्त्व की उपासना के लिए इंगित कर रहे हैं।

**भावार्थ**—सद्‌गुरु साहब कहते हैं कि हे मनुष्यों ! हे प्रभोपासकों ! हे धार्मिकों ! आपलोग उसी परमतत्त्व का एवं परमप्रभु का साथ करें जिसके साथ में जिसके भजन करने से तथा जिसकी प्राप्ति से, जो अपने हृदय में विराजमान है, उसकी जानकारी करने के बाद जन्म–मरण के सभी दोषों से, सभी दुःखों से मनुष्य दूर हो जाता है और जो अनाथ बन कर घूमता था वह परमतत्त्व का साथ करने से सनाथ और संतुष्ट हो जाता है। वह प्रभु सब जगह है। सभी देश काल में है, इसलिए साहब कहते हैं कि उसमें आना–जाना नहीं होता है। वह अचिन्त्य सत्ता होने के कारण सब स्थानों में होने के कारण अयोध्या की महाराज दशरथ के कुल में अवतार लेकर नहीं आया और न वह प्रभु लंका के राजा रावण को ही सताया और न वह परमेश्वर माता देवकी के गर्भ में आया और न उस परम प्रभु को माता यशोदा ने ही गोद में खेलाया।

**प्रिथिमी रमन धमन नहिं करिया। पैठि पाताल नहीं बलि छलिया॥**
**नहि बलिराज सो माँडल रारी। नहिं हरनाकुस बधल पछारी॥**
**ब्राह रूप धरनी नहिं धरिया। खत्री मारि निखत्रि नहिं करिया॥**

**शब्दार्थ**—प्रिथिमी–पृथ्वी। रमन–रमण, घूमना, विचरना, आनन्दोत्पादन क्रिया, विलास, क्रीड़ा, केलि। धमन–दमन, नाश, दौड़–धूप। करिया–किया। पैठि–घूसकर। पताल–पृथ्वी के नीचे के लोकों में। बलि –पताल लोक के एक राजा। पाताल–वह नीचला भू भाग जो भारत से नीचे स्थलों पर बसे हैं। वलिराज–बालि जो पंपापुर किष्किन्धा का राजा सुग्रीव का बड़ा भाई था। मांडल–मंडन, मचाना, ठानना। रारी

–झगड़ा, लड़ाई। बंधल–बंधा। पछारी–गिरा दिया। हरिनाकुस–हिरण्याक्ष, जिसके नेत्र सोने के समान चमकते हों। वराह–सूकर, सूअर। धरनी–पृथ्वी। धरिया–धारण किया। खत्री–क्षत्रिय,। निखत्रि–क्षत्रियों से रहित। करिआ–किया।

**भावार्थ**—और न तो वह परमेश्वर इस धरातल पर आकर क्रीड़ा ही किया और न तो इस पृथ्वी के राजाओं का घूम-घूम कर दमन ही किया और न तो वह प्रभु पाताल में बैठकर महाराजा वलि को छला और न तो वह जगन्नियन्ता जगदीश्वर सुग्रीव के भाई बालि से लड़ाई ही ठानी और न तो वह हिरण्याक्ष दैत्य को ही मारा। इसी प्रकार से वह परमेश्वर सूकर का रूप धारण करके अर्थात् बाराह अवतार धारण करके उन वेदों का एवं पृथ्वी का शंखासुर से उद्धार किया और न ही वह जगदीश्वर परशुराम के रूप में क्षत्रियों का नाश ही किया।

**नहिं गोबरधन कर गहि धरिया। नहिं ग्वालन संग वन-वन फिरिया।।**
**गंडुकि सालिग्राम नहिं कूला। मच्छ कच्छ होय नहिं जल डोला।।**
**द्वारावती सरीर न छाड़ा। ले जग्रनाथ पिंड नहिं गाड़ा।।**

**शब्दार्थ**—गोबरधन–गोकुल के पास एक पर्वत। ग्वालन-गोकुल के ग्वाल बाल। वन–वन-जंगल-जंगल। फिरिया–घूमा। गंडुकि–गंडक नदी। सालिग्राम–वह पत्थर जिसको सनातनी हिन्दू लोग पूजते हैं। कूला–न्यारा, मध्य किनारा। मच्छ-कच्छ–मत्स्य अवतार, कच्छप अवतार। डोला–घूमा। द्वारावती–द्वारिका में। छाड़ा–त्याग किया। जग्रनाथ–जगन्नाथ, हिन्दुओं का एक तीर्थ स्थान, वर्तमान में उड़ीसा प्रान्त में समुद्र के किनारे पड़ता है। पिंड–शरीर। गाड़ा–जमीन के नीचे दफन किया।

**भावार्थ**—और न ही भगवान यादव वेष में कृष्ण के रूप में ग्वालों को बचाने के लिए गोवर्धन को धारण किया और न ही गोकुल के ग्वाल-बालों के साथ जंगलों में घूमा-फिरा और न ही वह परमात्मा गंडक नदी में शालिग्राम की बटिया पत्थर के गोल-गोल टुकड़े होकर गंडक नदी के किनारे ही प्रकट हुआ और न तो वह परमेश्वर प्रलयकाल में मत्स्य

अवतार धारण कर मनु की नौका को खेया था और न वह परमेश्वर कच्छप होकर महिषासुर का वध किया और न वह समुद्र मंथन के लिए अपनी पीठ पर मंदराचल को धारण किया और न वह परमेश्वर द्वारिकापुरी में ही अपने शरीर का त्याग किया। इसी प्रकार से न तो वह अपने शरीर को जगन्नाथपुरी में पृथ्वी में गड़वाया।

साखी

**कहै कबीर पुकारि के। वै पंथे मति भूल।**
**जेहि राखै अनुमान करि। सो थूल नहीं अस्थूल॥**

**भावार्थ**—वै–उस। पंथे–मार्ग में। मति–नहिं। जेहि–जिसको। राखै–निश्चित किया। अनुमान–अन्दाज। करि–करके। सो–वह। थूल–स्थूल। अस्थूल–सूक्ष्म।

**भावार्थ**—सद्‌गुरु कबीर साहब उच्च स्वर से पुकार कर कहते हैं कि हे भाई! आपलोग उस मार्ग में न जाना, जिस मार्ग को सभी लोग अपनाए हुए हैं। जिन लोगों ने यह अनुमान कर रखा है कि यहीं चौबीस अवतार ही सब कुछ हैं। इन्हीं के भजन से मनुष्यों का निस्तार हो जाएगा तो ऐसी बात नहीं है। वह तो स्थूल शरीरधारी नहीं होता है। वह अतीन्द्रिय पदार्थ है, वह अनुभव से जाना जाता है। उसको कोई मनुष्य इन चर्म चक्षुओं से नहीं जान पाते। इसीलिए जो मनुष्य यह कहते हैं कि ये दस अवतार ही सब कुछ है। तो ऐसी बात नहीं है। यह सब नाम उस निर्गुण, निर्विकार ब्रह्म का नहीं है। उसका आना-जाना किसमें होगा ? वह तो सभी देश काल में है। आना-जाना तो उसका होता है जो कहीं न हो, कही हो अर्थात् एक देश काल में जो रहता हो वही कही से कही आ जा सकता है। इसलिए उस असीम सत्ता में आना-जाना संभव नहीं है। वह तो इस जगत से स्वयं महान है। इस जगत को भाँति अनेक जगत उसके उदर में समाविष्ट हैं। वह जगत में नहीं है. जगत उसी में है। वह जगत में है तो जगत से बाहर भी है। जैसे समुद्र में घड़ा को डुबा दीजिए तो घड़ा में पानी है। घड़ा के बाहर भी पानी है। इसी प्रकार से

वह परमतत्त्व घट रूपी मनुष्य के शरीर में भी है और शरीर से बाहर भी है। आना-जाना काम कार्य ब्रह्म का है। जो समय-समय पर इस संसार में आता जाता रहता है।

**विशेष**—कबीर साहब कहते हैं कि हे भाई! उस परमसत्ता का साथ करो, जो तुम्हारे अन्दर विराजमान है, जो सबकी आत्मा है। वह तुम्हीं हो, ऐसा चिन्तन करो। जब तुम्हें इस परमसत्ता का ज्ञान हो जाएगा, तब तूं जनम-मरण के बन्धन से रहित हो जाएगा और सन्तुष्ट हो जाएगा। वह व्यापक तत्त्व न तो दशरथ कुल में आता है और न लंका के राजा रावण को ही मारता है। वह देवकी के हृदय में पहले से ही विद्यमान होने के कारण गर्भ में आने का कोई प्रश्न ही नहीं है। इसी प्रकार यशोदा के हृदय में होने के कारण बाह्यरूप में खेलाने का कोई कारण नहीं है। वह पृथ्वी पर पहले से ही विद्यमान है, इसलिए पृथ्वी के ऊपर रमण-दमन करने की कोई उसको आवश्यकता नहीं है। वह पाताल में भी पहले से है और राजा बलि के हृदय में भी है। इसलिए पाताल में पैठने का और बलि को बावन रूप धरकर छलने का कोई औचित्य नहीं है। इसी प्रकार बालि के हृदय में होने के कारण राजा रामचन्द्र जी होकर लड़ाई करने का कोई कारण नहीं है। क्योंकि बालि के हृदय में पहले से ही विद्यमान है तदनुरूप ही हिरण्याक्ष के हृदय में भी विराजमान है। इसलिए नरसिंह रूप धारण कर मारने की भी उसको कोई जरूरत नहीं है। इसी प्रकार से वह परमप्रभु हिरण्याक्ष और शंखासुर के हृदय में भी विराजमान होने के कारण विष्टा के गढ़ से पृथ्वी को बाहर निकालने का भी काम नहीं किया था और परशुराम के रूप में क्षत्रियों का इसलिए नाश नहीं किया कि वह सभी क्षत्रियों के हृदय में स्वयं विराजमान है। वह तो सारे ब्रह्माण्डों को धारण किए हुए है छोटे गोवर्धन को उठवाकर उसकी मर्यादा को क्यों कम कर रहे हो? तात्पर्य यह है कि जितनी भी बातें ऊपर कही गयी हैं, वह सब उस परमसत्ता का काम नहीं है। वह न शालिग्राम बन सकता है और न ग्वालन के साथ घूमने की आवश्यकता होती है। वह स्वयं सारे भू-मण्डल की रक्षा करता

है, उसे प्रलयकाल में मत्स्य होकर भगवान मनु की नौका खेने की कौन सी बड़ी बात है। जब वह सारी पृथ्वी को धारण किए हुए है, तो कच्छप होकर मंदराचल को धारण करना उसके लिए कौन सी बड़ी बात है। जब वह शरीर से रहित है, रूप में कभी आता ही नहीं है तो द्वारिका में कहाँ शरीर छोड़ने का प्रश्न उठता है और जगन्नाथ पुरी में अपनी शरीर को गड़वाता है। उसको कोई पूजे न पूजे उनको क्या मान-सम्मान की आवश्यकता है। वह तो स्वयं मान-सम्मान स्वरूप ही है। कबीर साहब कहते हैं कि हे भाई! इस भ्रम में न पड़ो। वह परमसत्ता इन अवतारों से बहुत ऊपर है, जिसको तूं अनुमान किया है कि ये दस अवतार और चौबीस अवतार ही सब कुछ हैं ऐसी बात नहीं है। ये सब स्थूल शरीरधारी कभी परमसत्ता नहीं हो सकते। यह सब कार्यब्रह्म का काम है, जो सीमित है। अब प्रश्न उठता है कि क्या कार्यब्रह्म की उपासना निरर्थक है? ऐसी बात नहीं है यहाँ विरोध है सीमित व असीमित आयाम का। सद्गुरु का तात्पर्य यह है कि वह परमतत्त्व असीमित है, उसको किसी अवतार आदि में बाँधा नहीं जा सकता। वह नाम रूप से परे है, जिसकी प्राप्ति के बिना मुक्ति संभव नहीं है। यद्यपि कार्यब्रह्म की उपासना के बिना उसकी प्राप्ति भी सम्भव नहीं है। क्योंकि वह कोई लिंग वाला नहीं है। इसलिए उसकी प्राप्ति का मार्ग कार्य-ब्रह्म है। यह न समझना चाहिए कि कबीर साहब ने कार्यब्रह्म का विरोध किया है, उन्हे तो केवल परमतत्त्व की महानता बतलाना था।

**अन्तकंथाएँ**—दशरथ कुल में अवतार लेकर आने की कथा, ब्रह्मपुराण उत्तर खण्ड अ० २४२ में इस प्रकार की है कि प्रथम स्वयंभू मनु द्वादशाक्षर मन्त्र को जपते हुए भगवान विष्णु की पूजा हजारवर्ष किये। तब भगवान प्रकट होकर वर माँगने को कहा, मनु जी ने तीन जन्म तक भगवान को अपना पुत्र होने का वर माँगा। जिससे दशरथ और वसुदेव रूप मनु हुए और कृष्ण रूप विष्णुदेव हुए। अब कलि के अन्त में शम्भल

ग्राम में मनु ब्राह्मण होंगे और तब उनकी मुक्ति होगी, उस ब्राह्मण से कल्कि भगवान होंगे।

रावण से दुःखी देवताओं की प्रार्थना से कौशिल्या के गर्भ से प्रगट होकर विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा कर, सीता से विवाह एवं परशुराम को जीत कर, बारह वर्ष अयोध्या में वास कर, पिता की आज्ञा मानकर चौदहवर्ष वनवास किया। जयन्त नामक काग सीता के रूप को देखकर मुग्ध हो गया और बलात स्तन में चोच मारा, तब राम जी ने कुश का अस्त्र छोड़ा, जिसके कारण कहीं पर शरण न मिलने पर पुनः राम की शरण में आया और बचा। सूर्पणखा की नाक व कान राम जी काट लिए थे क्योंकि वह सीता जी को खाने के लिए दौड़ी थी। बाद में खरदूषण को मारने पर सीता का हरण हुआ। फिर रावण से घायल गिद्ध का संस्कार करके मतंग ऋषि के आश्रम में गये। फिर सेवरी के यहाँ फल-फूल आदि को स्वीकार करके कबन्ध को मार कर, गोदावरी के पास गये और उनसे सीता के विषय में पूछा अगर जानती हो तो बताओ, परन्तु वह कुछ नहीं बोली, तब रक्तजलता का शाप दिये। फिर उसकी प्रार्थना और ऋषियों की स्तुति से कहे कि शवरी के स्नान करने से यह मुक्त होगी, फिर वैसा ही हुआ। बाद में सुग्रीव आदि से मित्रता होने पर समुद्र के पास गये और वाणों से समुद्र को सुखा दिया फिर समुद्र पूजा आदि किया फिर वरूणास्त्र से समुद्र को भर दिये और समुद्र के राय से पुल बाँध कर फिर लंका गये रावण को मारा।

कबीर साहब कहते हैं कि यह सब माया मय लीला है। निर्गुण सर्वात्मा राम के साथ लगो, जिससे जन्म मरण छूटे।

वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड अ० १५ में कथा है कि राजा दशरथ जब पुत्र के लिए यज्ञ आरम्भ किये, तब सब देव एवं महर्षि वहाँ आये और ब्रह्मा जी से बोले कि आप के वर-प्रभाव से रावण हम सबको दुःखी कर रहा है, तीनों लोकों को व्याकुल करता है। उसका नाश करने के उपाय में आप योग्य हैं। ब्रह्मा जी बोले उसके नाश का उपाय

यह है कि वर माँगने के समय देवासुरादि से न मरने का वर उसने माँगा है परन्तु अनादर से मनुष्यों का नाम नहीं लिया है, जिससे वह मनुष्य से मरेगा। इस बात को सुन कर देव सब बहुत खुशी हुए। उसी समय भगवान बिष्णु भी आ गये, ब्रह्मा से मिल कर शान्त हुए, तब देव सब प्रार्थना करके बोले कि हे विष्णु ! सब लोक कि हित इच्छा से हम सब आप से कहते हैं कि दशरथ की स्त्रियों में आप चार रूप से पुत्र हों और मनुष्य रूप होकर दुष्ट रावण का बध करें, हम सब आप की शरण में हैं। फिर विष्णु ने राजा दसरथ को पिता स्वीकार किया और देवों से कहा कि आप लोग भय त्यागें, मैं रावण को मारूँगा।

अ० १६ में इष्टि से पायस की प्राप्ति और खाने से कौशल्या आदि के गर्भ का वर्णन है। अ० १८ में रामादि के जन्म का वर्णन है और रामायण की रीति से सुर्पणखा की नाक लक्ष्मण ने काटी थी तथा सुखाने से पूर्व समुद्र प्रगट हुआ है।

विष्णु का देवकी के गर्भ में आने की कथा भागवत स्कन्ध १० के आरम्भ से ही है कि असुरों की सेना के भार से दब कर पृथ्वी गौरूप में ब्रह्मा के शरण में गयी और अपना दुःख सुनाई। तब ब्रह्मा जी ने शिव सहित समुद्र के किनारे विष्णु की स्तुति किया, फिर आकाशवाणी सुनकर ब्रह्मा जी सब देवों को सुनाये जो वाणी मैं सुना हूँ सो आप लोग भी सुनिये और वैसा ही शीघ्र करिये। भगवान पहले ही पृथ्वी के दुःख को जान गये हैं और आप लोग भी अंसो सहित यदुकुल में पैदा हो जाइये। फिर कथा है कि यदुवंशी क्षत्रियों की राजधानी मथुरा थी। वहाँ कभी उग्रसेन की पुत्री देवकी के साथ विवाह कर चलने के लिए वसुदेव जी रथ पर चढ़े और कंस बहन का प्रिय करने को इच्छा से लगाम पकड़ा फिर आकाशवाणी हुई कि जिसको इतना प्यार से पहुँचा रहे हो उसी के आठवें पुत्र के द्वारा तुम मारे जाओगे। सो सुन कर कंस देवको को मारने के लिए तत्पर हुआ, तब वसुदेव बहुत कुछ समझा बुझा कर कहा

इसके पुत्र से भय है न कि इससे मैं इसके द्वारा पैदा प्रत्येक पुत्र को सौंप दूँगा। तब कंस माना और छोड़ दिया। फिर देवकी का प्रथम पुत्र हुआ और कंस के पास ले गये लेकिन कंस ने कहा इसके आठवें पुत्र से भय है, ऐसा कह लौटा दिया। इसके बाद नारद आकर कंस को समझाये कि नन्दादि गोप तथा इनकी स्त्रीयाँ आदि सब प्रायः देव हैं और सब असुरों को मारने का प्रयत्न कर रहे हैं। सो सुनकर कंस यदुवंशियों को देव समझ कर देवकी के गर्भ को विष्णु समझ कर देवकी सहित वसुदेव को बाँध दिया और प्रत्येक पुत्र को विष्णु समझ कर बध करने लगा। माता-पिता को भी बाँध स्वयं राज्य करने लगा। उसके बाद सातवाँ गर्भ हुआ सो विष्णु के माया द्वारा देवकी के गर्भ से खींचकर वसुदेव जी की ही स्त्री रोहिणी जो गोकुल में कंस के भय से रहती थी, उसके उदर में किया गया। उससे बलराम जी हुए और विष्णु की मायारूप नन्दजी की पुत्री हुई। आठवें गर्भ से विष्णु भगवान कृष्ण रूप से हुए। इनके जन्म के पश्चात् ही अर्धरात्र में ही वसुदेव नन्द जी के यहाँ रख आये और उनकी पुत्री को ले आये। जिसे देख कंस आकाशवाणी झूठ समझा। कृष्ण को खेलाने का सौभाग्य यशोदा को मिला, देवकी को नहीं मिला।

हिरण्यकशिपु के बध की कथा विष्णुधर्मोत्तर पुराण खन्ड १ अ० ५४ में हैं कि हिरण्याक्ष के मारे जाने पर हिरण्यकशिपु घोर तप जपादि किया। प्रसन्न होकर देवादि सहित ब्रह्मा जी ने आकर वर माँगने के लिए कहा। उसने वर माँगा कि देवसुर तथा अस्त्रसस्त्रादि से भी मेरा मरण न हो। ब्रह्माजी एवमस्तु कह कर अपने लोक गये। तब फिर सभी देव ब्रह्मा जी के पास गये और कहने लगे कि इस वर से यह असुर देवताओं का अवश्य वध करेगा। ब्रह्मा इसके वध का उपाय बताइये। ब्रह्मा जी बोले कि आप लोग तप करिये। तप का फल अवश्य मिलेगा, भगवान इसका नाश करेंगे। उसके बाद वह असुर उपद्रव करने लगा, देव लोक पर भी अपना अधिकार किया। तब देव भगवान के

शरण गये। फिर भगवान नृसिंह रूप धारण कर उसकी सभा में गये, और दानवों को नष्ट किये, उसे पछाड़ कर मारा। लिंग पु० अ० ९५ में भी यह कथा है। पद्मपु० खंड १ अ० ४७ में है। उत्तरखण्ड २३८ में है। शिव पु० सं० २ खं० ५ अ० ४३ में रूपान्तर से है।

विष्णुपुराण अंश १ अ० १७ में कथा है कि कश्यप जी की स्त्री दिति के पुत्र हिण्यकशिपु था। वह इन्द्रादि को जीत कर राज्य करता था। उसके पुत्र प्रह्लाद थे जो गुरुकुल में पढ़ते थे। एक दिन पिता के पास गये। उनसे पिता ने पूछा कि जो अब तक पढ़े हो उसका सार शब्द कहो, उसने कहा सबका सार विष्णु हैं, सोई मेरे मन में स्थिर है, वह अनादि है, मैं उन्हीं को प्रणाम करता हूँ। इन सब बातों को सुन कर हिरण्यकशिपु शिक्षकों पर क्रुद्ध एवं नाराज हुआ कि आप लोग इसे क्या उल्टा पढ़ाये हैं। उन लोगों ने कहा यह इसका स्वाभाविक है मेरा पढ़ाया नहीं है। फिर पिता ने प्रह्लाद से पूछा तुम्हें यह शिक्षा कौन दिया है। उसने कहा सबका मूल विष्णु है उसके प्रेरणा के बिना कौन किसको उपदेश देता है। इसके बाद प्रह्लाद को मारने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु बचते गये, बाद में भगवान ने नृसिंह रूप होकर हिरण्यकशिपु को मार डाला।

भागवत स्कन्ध ७ के आरम्भ में ही प्रश्न हुआ है कि भगवान ने इन्द्र के लिए असुरों को कैसे मारा। तब शुकदेव जी ने कहा है कि निर्गुण अज भगवान अपनी माया से बाध-बाधकता को प्राप्त हुए हैं। और अज्ञान से कल्पित यह संसार है। इसके बाद जय विजय के शाप की कथा है, वही हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु हुए हैं जो वराह, नृसिंहावतार द्वारा मारे गये हैं। जिसकी कथा विस्तारपूर्वक है।

गोवर्धन पर्वत धारण की कथा भागवत स्क० १० पूवार्ध अ० २४-२५ में है कि एक समय इन्द्रयाग के लिए यत्न करते हुए गोपों को देखकर भगवान कृष्ण ने अनजान बन कर पूछा कि यह आप लोग क्या करते हो, इसका क्या फल है। तब नन्द जी बोले

परोपकारी तुल्य इन्द्र हैं मेघ उन्हीं की मूर्ति है वही प्राणियों के लिए जीवनरूपी जल वर्षाते हैं। इसो से हमलोग विभिन्न यज्ञों के द्वारा इन्द्र को पूजते हैं। यह सुन कर कृष्ण ने इन्द्र पर क्रोध करते हुए नन्द से कहा कि कर्म से ही जन्मादि सब होता है ईश्वर भी कर्ता को ही फल देता है अकर्ता को नहीं। तो फिर कर्मज्ञ प्राणी को इन्द्र से क्या जरूरत है। हम सबको देश ग्राम कुछ है नहीं, हम लोग वनवासी हैं इससे जो इन्द्र का यज्ञ है उसके जो साधन हैं उससे गौ ब्राह्मण पर्वत की ही पूजा की जाय, यही हमें अच्छा प्रतीत होता है। इस बात को नन्दादि सब मान गये, इन्द्रयज्ञ को छोड़ दिये और कृष्ण के कथनानुसार किये। तब इन्द्र क्रुद्ध होकर अकाल के बावजूद भी बहु वृष्टि के लिए बहुत से मेघों को भेजा और कहा कि इन गोपों कि सम्पत्ति को नष्ट करो तब वृष्टि होने लगी। इसके बाद कृष्ण ने गोपों की रक्षा के लिए गोवर्धन पर्वत को हाथ पर धारण किये रहे, और गोपादि उसके नीचे आराम से सो रहे, सो देखकर इन्द्र अभिमान रहित हुए और मेघों का निवारण किये।

मत्स्य होकर जल में विचरने की कथा मत्स्य पुराण अ० १ में है कि प्रथम राजा मनु ने पुत्र को राज्य देकर तप किया और मलयागिर के पास कठिन परिश्रम से योग प्राप्त किया। ब्रह्मा जी वर देने आये, मनु ने वर माँगा कि प्रलय काल होने पर स्थावर तथा जंगमादि प्राणीयों की रक्षा करने में मैं समर्थ होऊँ, यही वर मुझे दिया जाय। ब्रह्मा 'एवमस्तु' कह कर विलिन हो गये। फिर राजा अपने आश्रम में पितृ तर्पण करते थे, तब हाथ से सफरी मछली गिरी। दया के कारण उसे जल से भरे घड़े में रख दिया। दिन रात में वह सोलह अंगुल बढ़ गयी और राजा से बोली की मेरी रक्षा करो, फिर राजा ने कूप में रखा। वहाँ उस कूप में नहीं समा सकी, तब तालाब में रखा, वहाँ भी बहुत बढ़ने पर गंगा में रखा, फिर बढ़ने पर समुद्र में रखा उसमें भी अतिवृद्धि को देख राजा भयभीत होकर बोला कि

आप कौन हो, क्या आप भगवान वासुदेव हो दूसरा कौन हो सकता, इसलिए मत्स्यरूप आप भगवान ही हो, इससे तुझे नमस्कार करता हूँ इस प्रकार आप मुझे दुःखी क्यों करते हो। ऐसा सुन साधु २ कहकर मत्स्यरूप भगवान बोले कि तुम मुझे पहिचाने हो, कुछ दिन में पृथ्वी जल में डूब जायगी। तब देव समुदाय से निर्मित एक नौका यहाँ आयगी और मैं भी आऊँगा। उस समय सभी प्राणियों को बीज रक्षा के लिए, सब प्राणी को इस पर रख कर रक्षा करना, युगान्त वायु से जब नौका व्याप्त होगी तब मेरे शृंग में नौका को बाँधना। फिर प्रलयान्त में प्रजापति सर्वज्ञ मन्वन्तर के स्वामी देव पूज्य होंगे। अ० २ में मनु के पूछने पर प्रलयादि का वर्णन करके भगवान लुप्त हो गये। फिर प्रलय होने पर मत्स्यरूप भगवान मनु के पास में प्रगट हुए और रस्सीरूप से शेष प्रगट हुए।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध ८ अ० में कथा है कि राजा परिक्षित ने पूछा की भगवान ने ही न मत्स्य का रूप क्यों धारण किया। तब शुकदेव जी ने कहा कि, गो, विप्र, देव, साधु धर्म की रक्षा के लिए भगवान अनेक रूप धरते हैं और निर्गुण होने से बुद्धि के गुणों से लिप्त नहीं होते। प्रथम ब्रह्मा के सो जाने से नैमित्तिक प्रलय हुआ जिससे भूरादि लोकजल में डूब गये। निद्रा युक्त ब्रह्मा के मुख से निकले वेदों को ह्यग्रीव नामक राक्षस ने चुरा लिया। सो जानकर भगवान असुर का रूप धारण किये, सत्यव्रत नामक कोई राजर्षि भक्त था। वह तप किया था, जो इस कल्प में सूर्य का पुत्र मनु है। एक समय खतमला नदी में तर्पण करते हुए, सत्यव्रत के अंजलि में एक सफरी मछली आ गयी, तो वह नदी के जल में छोड़ दिया, तब वह सफरी बोली जाति घातक मछलियों से भयभीत मुझको नदी के जल में कैसे त्यागते हो। तब राजा कलश में धर कर आश्रम में लाया, फिर वह मछली बढ़ने लगी, राजा बड़ा जलाशय में रखता गया। अन्त में समुद्र में धरने गया तब मत्स्य बोला कि, यहाँ बलि मकरादि तो खा ही जायेंगे। इस प्रकार मोहित

होकर राजा ने पूछा कि आप कौन हैं आप तो भगवान मालूम पड़ते हैं, आपको नमस्कार है। आप जिस कार्य हेतु यह रूप धरे हैं वह जानना चाहता हूँ। भगवान बोले आप से साँतवे दिन भूभुंवरादि त्रयलोक प्रलय समुद्र में डूबेगा, उस समय हमसे प्रेरित कोई नौका आयेगी। तुम ऋषियों सहित सब छोटे बड़े प्राणियों के बीज को लेकर चढ़ जाना। ऋषियों के तेज से अव्याकुल होकर एकान्त में विचरोगे। बली वायु से कापती हुई नाव को वासुकि से उपस्थित मेरे श्रृंग में तुम बाँधना। जब तक ब्रह्मा की रात्रि रहेगी तब तक ऋषियों के साथ तुमको इस समुद्र में विचराऊँगा और मेरी महिमा रूप परब्रह्म को भी तुम पूछ कर मेरी कृपा से हृदय में प्रकाशित समझोगे, फिर वैसा ही हुआ और ह्यग्रीव को मारकर वेदों को लेकर ब्रह्मा जी को दिया।

पद्मपु० उत्तर खं० ६ अ० २३ में कथा है कि कश्यपजी से दिति अदिति के द्वारा दैत्य देव की उत्तपत्ति होने पर, मकर नामक महाबलो राक्षस ब्रह्मलोक में जाकर और ब्रह्मा को मोहित करके सब वेद हर लिया। तब सब देवों की प्रार्थना से भगवान विष्णु मत्स्यरूप से उसे मारकर वेद लाये।

कच्छप अवतार की कथा श्रीमद्‌भागवत स्कन्ध ८ अ० ५-६ में है जब युद्ध में असुरों से मारे गये देव सव गिरने लगे और मरने लगे तथा दुर्बासा के शाप से इन्द्र सहित सब लोक श्री (लक्ष्मी) रहित हो गये। यज्ञादि क्रिया नष्ट हो गई। यह देख इन्द्र वरूणादि देव विचार कर भी कुछ करने का निश्चय नहीं कर सके। तब देवगण मेरू शिखर पर ब्रह्मा की सभा में गये और प्रणाम कर ब्रह्मा जी को अपनी दशा सुनाए। ब्रह्मा जी इन्द्रादि को तेज रहित जान कर, प्रजा तथा देवों का अमंगल देखकर, परमपुरुष का स्मरण करता हुआ देवों से कहा जिसके अंशमात्र से हम सब रचे गये हैं उसी के शरण में चलें। ऐसा कहकर ब्रह्मा सहित सब देव, तम से परे भगवान की शरण में गये, स्तुति कर ब्रह्मा जी बोले जिस कार्य के लिए हम सब आये हैं सो कार्य

आप सिद्ध करें हमारा कल्याण हो। भगवान ने कहा अभी जाओ सब असुरों से मेल करो और अमृत के उत्पत्ति में शीघ्र यत्न करो जिसे पीने से मृत्य प्राणी भी अमर होंगे। क्षीर समुद्र में तृणलता औषधि डालकर मन्दर का मंथन और वासुकी को नेत्र (रस्सी) बनाकर मेरी सहायता से समुद्र को मथो। दैत्य दुःख भागी होंगे और आप सब फलग्राही होंगे। ऐसा कहकर भगवान अन्तर्ध्यान हो गये। भगवान को नमस्कार कर ब्रह्मा और शिव अपने-अपने स्थान में गये और भगवान को बताई हुई सब बात उनसे कहे। असुर उस बात को मान गये। समुद्र मथने के कार्य में लगे। मन्दरागिरि को उखाड़ कर ले चले। रास्ते में गिर गया, तब भगवान पहुँचाये। अ० ७ में है कि मथते समय गणेश कृत विघ्न से पर्वत नीचे धँस गया। तब सबको शोकाकुल देखकर महान कच्छप होकर भगवान ने पर्वत को ऊपर किया और पृष्ठ पर धारण किया।

पद्मपु० खं० १ अ० ४ में कथा है कि पृथिवी पर विचरते हुए दुर्वासा ऋषि एक विद्याधरी के हाथ में अतिसुगन्ध माला देखकर जटा में बाँधने के लिये, वह माला उससे माँग लिये। कुछ दिन उसे लिए विचरते रहे। फ़िर ऐरावत पर चढ़कर जाते हुए इन्द्र को वह माला प्रेम से दिया। इन्द्र लेकर उस माला को हाथी पर डाल दिया। हाथी भूमि में डाल दिया। इस पर क्रुद्ध होकर ऋषि शाप दिया कि तेरा ऐश्वर्य नष्ट होगा, जिससे सब रत्नादि नष्ट हो गये।

पद्मपु० उत्तर खं० ६ अ० २३१ में है कि दुर्वासा जी कभी मेरू पर्वत पर गये। फिर इन्द्र को देखने की इच्छा से चले। तब हाथी पर जाते इन्द्र को देखकर पारिजात की माला इन्द्र को दिये। इन्द्र उसे हाथी के सिर पर दिये, हाथी उसे भूमि में गिरा दिया। इससे दुर्वासा क्रुद्ध होकर तीनों लोक की सम्पत्ति नाश होने का शाप दिये। इससे इन्द्र की लक्ष्मी आदि नष्ट हो गयी। उसके बाद समुद्र के मंथन का विचार हुआ। तब कूर्मरूप होकर भगवान ने मन्दर को धारण किया।

स्कन्द पु० खं० २-४ अ० ८ में कथा है कि दुर्वासा के शाप से इन्द्रादि देव तेज से रहित हो गये, तब समुद्र के मथने पर ऐरावतादि रत्न उत्पन्न हुए और हरितकी आदि दिव्य औषधियाँ, लक्ष्मी, तुलसी उत्पन्न हुई।

द्वारावती (द्वारिका) में शरीर छोड़ने की कथा महाभारत मुसल पर्व में है कि यादव कुमार सब साम्ब को स्त्री रूप बनाकर ऋषियों के पास ले गये और पूछे कि यह बभ्रु की स्त्री पुत्र की इच्छा वाली है, कौन सन्तान पैदा करेगी ? ऋषि लोग क्रुद्ध होकर बोले कि यह घोर लोहा मूसल को पैदा करेगी और सो तुम सबका नाशक होगा, सब ऋषि फिर भगवान के पास आये। भगवान सब वृत्तान्त सुनकर सबको सुनाए। एक दिन के बाद साम्ब ने मूसल को पैदा किया। राजा ने उसे चूर्ण कराकर समुद्र में गिरवा दिया और नियम किया कि आज से मद्यपान कोई न करे। परन्तु वहाँ काल ने प्रवेश किया, उतपात अशकुन होने लगे, जिस ग्रह दशा में महाभारत हुआ था छत्तीस बर्ष बाद भगवान ने उसी को देखा। फिर सबको तीर्थ-यात्रा के लिए आज्ञा दिया। वे सब दूसरे प्रभास क्षेत्र में बस कर माँस एवं मदिरा खाने-पीने लगे। किसी सभा में वाद-विवाद होने पर आपस में युद्ध हो गया। प्रथम अस्त्र-शस्त्र से लड़े। फिर अस्त्र शस्त्र नष्ट होने पर उस लोह तृण से जो चूर्ण हुआ था, उसी से मारने लगे, वही बज्र मृत्यु का हेतु हुआ। फिर दारूक आया, भगवान बभ्रु को स्त्रियों की रक्षा में नियुक्त किये परन्तु उसे भी मारा हुआ देखकर और बलराम जी को वहाँ छोड़कर और दारूक को अर्जुन के पास भेजकर, आप द्वारका गये। पिता से सब समाचार सुनाये और अर्जुन के साथ जाने के लिए कह कर, फिर वहाँ गये। तब तक बलराम जी भी शरीर त्याग दिये थे। कृष्ण वहाँ जरा भील्ल के वाण लगने पर देह त्यागे।

जगन्नाथपुरी में जगन्नाथ पिण्ड गाड़ने की कथा ब्रह्मपुराण अ० ४३ में है एक बार श्रीलक्ष्मण जी ने भगवान से प्रश्न किया कि योग यज्ञ

कल्याण के कठिन साधन हैं कोई सुगम तीर्थ बताइये कि जहां जाने से सुगम कल्याण हो। भगवान बोले कि सुखमय पवन तीर्थ पुरुषोत्तमपुरी है परन्तु उसका भेद कोई नहीं जानता, उसे जानने के लिए ब्रह्मा जी भी बहुत यत्न किये, परन्तु न जान सके। तब मुझसे पूछे सुख शांत स्थान बताइये, तब मैं उनको वही पुरुषोत्तम स्थान बताया। यह स्थान दक्षिण समुद्र के किनारे है वहाँ एक अक्षयवृक्ष भी है तथा देव निर्मित एक मूर्ति भी है। उस बट की छाया में जाने से ब्रह्म हत्या पाप से मुक्त हो जाता है तथा मूर्ति दर्शन से मेरे लोक में जाता है ? मुक्त होता है परन्तु इस प्रकार अनायास ही मेरे भवन में लोगों को जाता हुआ देखकर, यमराज मेरे पास आये और स्तुति करने लगे, तब पूछने पर उन्होंने कहा कि इस पुण्य स्थान में जो इन्द्र नीलमणि मयी श्रेष्ठ कर्म-फल प्रदान करने वाली प्रतिमा है प्रेम भाव से उसे देख करके ही श्वेत नामक आपके भवन में सब चले जाते हैं। इससे अब मैं अपना व्यापार नहीं कर सकता हूँ। इसलिए कृपा करके प्रतिमा को हर लीजिये। इस बात को सुन मैंने यम से कहा कि उस प्रतिमा को मैं बालू से लुप्त कर देता हूँ। फिर बालू से उसे ढँक कर यमराज को यम के पुरी में भेज दिया। इसी पुरूषोत्तम स्थान में अवन्तिकापुरी के राजा इन्द्रद्युम्न ने पवित्र स्थान जानकर, अश्वमेध यज्ञ किया और भगवान का दर्शन पाया तथा कृष्ण, वलभद्र, सुभद्रा की प्रतिमा की स्थापना किया। नारदीय पु० उ० सं० अ० ५२ इत्यादि में यह कथा है कि उस मूर्ति को गाड़ने की दृष्टि से कृष्ण जी की शरीर दृष्टि से कहा गया है कि लै जगन्नाथ पिण्ड नहिं गाड़ा। ब्रह्म पु० अ० ६७ में ब्रह्मा जी का कथन है कि आदि कल्प में अव्यक्त जन्मवाला मैंने विश्वकर्मा से कहा कि भगवान वासुदेव की एक पत्थर की मूर्ति बनाओ जिसका दर्शन करके राक्षस आदि से भयभीत मनुष्यादि और इन्द्र देव पर्यन्त भी स्वर्ग में निर्भय होकर बसें।

फिर उस प्रतिमा का निर्माण कर इन्द्र उसे अपने लोक ले गये। उसी की पूजा के बल से वृत्रासुर आदि असुरों को नष्ट किये। फिर त्रेता में

रावण हुआ। वह तप से इन्द्रादि को जीत कर उस प्रतिमा को ले आया और विभीषण को पूजा करने के लिए दिया। माँगने पर फिर रावण को मार कर राम जी उस प्रतिमा को ले आये और निज लोक की यात्रा के समय समुद्र को दे दिये। वही प्रतिमा कृष्णावतार के समय समुद्रेश के द्वारा पुरुषोत्तमपुरी में स्थापित की गई। और अ० ७२। २६ श्लोक है कि क्षीरशायी भगवान ने बलराम और कृष्ण अवतार के लिए श्वेत कृष्ण दो बाल उखाड़े। जिससे उनके दो बाल तुल्य ये दोनों हुए। इससे कबीर साहब पूर्ण तत्त्व के साथ लगने को कहते हैं।

स्कन्द पु० ख० ६ अध्याय २५१ में कथा है कि तारकासुर के उपद्रव से देव सब पार्वती की रति में विघ्न किये तब क्रुद्ध होकर शाप दिया।

## रमैनी ७६

### माया-मोह प्रकरण

**माया मोह सकल संसारा। इहै विचार न काहु विचारा॥**
**माया मोह कठिन है फंदा। करे विबेक सोई जन बन्दा॥**
**राम नाम ले बेरा धारा। सो तौं लै संसारहि पारा॥**

साखी

**रामनाम अति दुर्लभ, अउरे ते नहिं काम।**
**आदि अंत अउ जुग-जुग, मोहि रामहि ते संग्राम॥**

**शब्दार्थ**—माया–वह अनिवर्चनीय शक्ति जिसको न सत्य कहा जा सकता है और न असत्य। मोह–जो प्राणियों को एक में पिरोये रहे, जिससे सारा संसार आबद्ध है। इहै–यह। काहु–कोई। सकल–सब। फंदा –पाश, बन्धन। जन–भगवान का भक्त। बेरा–नौका, जलयान। धारा–धारण, नदी के मध्य का धार। सो–वह। संग्राम–संघर्ष, उसमें निरन्तर लगे रहना।

**सम्बन्ध**—पचहत्तरवीं रमैनी में सद्गुरु ने कहा कि उस साहब

का साथ करो, जिसका साथ करने से जन्म-मरण रूपी दुःख का नाश हो जाता है। वह साहब सबल ब्रह्म नहीं है, उससे परे वह परमतत्त्व निर्गुण है। उसी की प्राप्ति से जन्म-मरण से छुटकारा होसकेगा, क्योकि इस संसार में माया-मोह का बहुत बड़ा जाल है उससे बचने के लिए निर्गुण ब्रह्म ही उपादेय है। अब नीचे माया की प्रवलता ७६ वीं रमैनी में दर्शा रहे हैं।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे जिज्ञासु मनुष्यों! जो प्रभु की माया है, वह सारे संसार को मोहित किए हुए है। सारा संसार हरि की माया से आबद्ध है, परेशान है, व्याकुल है। रात-दिन उसको शान्ति नहीं मिल रही है, बेचैन होकर यत्र-तत्र भरम रहा है। माया के बन्धन से मुक्त होने के लिए कोई विवेक नहीं कर रहा है। यह भी नहीं विचार कर रहा है कि यह माया मेरे लिए सुखद है या दुखद है। क्योंकि जो माया का मोहक रूप है, जिसमें अति सौन्दर्य है, सुन्दर स्त्री, सुन्दर पुत्र, संसार की कमनीय अच्छी-अच्छी वस्तुएँ धन-ऐश्वर्य बहुत कठिन फंदा हैं इसी फंदे में संसार के सभी मनुष्य बंधे हुए हैं। यदि कोई मनुष्य यह विवेक करे कि माया का सुख क्षणिक है वह अधिक से अधिक मानव लोक में ही उपलब्ध है। शास्त्रों के अनुसार देवलोक में भी माया का सुख प्राप्त है, परन्तु देवलोक का सुख हो, चाहे मनुष्य लोक का सुख हो सब तो माया का ही सुख है। इससे कभी संतुष्टि नहीं होती है। मात्र सुख की प्रतीति होतो है। जैसे सीपी में रजत का भान होता है परन्तु सीपी रजत नहीं है। जैसे रज्जु में सर्प का भान होता है परन्तु रज्जु सर्प नहीं है। उसी प्रकार माया मय संसार में सुख की प्रतीति होती है परन्तु वह सुख नहीं है। क्योंकि प्रत्येक क्षण मनुष्य एक की अपेक्षा, दूसरे सुख की कामना करते रहता है। जब मनुष्य लोक में सुख से तृप्त नहीं होता है तब देवलोक के सुखों की कामना करता है। इस प्रकार से माया जन्य जो भी सुख है वे सब शान्ति के कारण नहीं हैं। इसी चीज को विवेक करने के लिए कहा गया है और कहा गया कि जो निरन्तर इस प्रकार का विवेक

करते हैं वही लोग भगवान के जन हैं, वे ही भगवान के भक्त हैं, वे ही भवसागर से पार होंगे।

अब प्रश्न उठता है कि माया-मोह से बचने का कोई उपाय है तो सद्‌गुरु कहते हैं कि जो लोग रामनाम रूपी जलयान पर चढ़ते हैं अर्थात जो तन-मन को एक करके राम-नाम जपता है, सदैव प्रभु का स्मरण करता है और राम-नाम को धारण कर लिया है, सो मनुष्य अवश्य भव-सागर को पार कर जायेगा।

**साखी का अर्थ**—सद्‌गुरु साहब कहते हैं कि राम-नाम की बात मैं कह रहा हूँ, वह बहुत दुर्लभ है। वह शीघ्र प्राप्त होने वाला नहीं है। वह सद्‌गुरु के द्वारा प्राप्त हो सकता है। जब सदगुरु के द्वारा राम-नाम को जान जाये तो संसार का और काम उसके लिए क्या है क्योंकि मुझे तो आदि अन्त युग-युग से उस राम से ही संग्राम है अर्थात् अति सामीप्य है तात्पर्य यह है कि जो दुर्लभ प्रभु का राम-नाम है उसी का सुमिरन करना चाहिए और अन्य दूसरी मायिक वस्तुओं से सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहिए क्योंकि वह राम आदि से अन्त तक तथा युगों-युग रहने वाला है। इसलिए मेरा उस राम से सदा सम्बन्ध बना रहता है, मैं उस राम से अभेद हो गया हूँ। वह प्रत्येक चेतनात्मा ही राम है, जो सभी के हृदय स्थली में विराजमान है।

प्रणवो धनुः सरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।<br>
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥

**विशेष**—माया-मोह सारे संसार को अनुबन्धित किए हुए है, जिस पर कोई विचार नहीं करता। माया-मोह का बन्धन बहुत कठोर है, वह शीघ्र दूर होनेवाला नहीं है। यदि कोई विवेकी पुरुष विवेक करके छोड़ दे तो वही भगवान का दास है और माया के फंदा को छोड़कर परमतत्त्व में अनुरक्त रहता है। वह संसार रूपी सागर से परे हो जाता है। यहाँ पर रामनाम को दुर्लभ बताया गया है और कबीर साहब स्वयं कहते हैं कि मुझे उस दुर्लभ पदार्थ से सम्बन्ध छोड़ कर अलग होते नहीं बनता। पहले

यह निर्णय हो चुका है कि वह राम दाशरथी राम नहीं है। वह राम दाशरथि राम का भी राम हैं और वह सबके हृदय में रहता है। उसी का भजन करना चाहिए। जो उसमें तन-मन से लग जाता हैं, वह राम रूप हो जाता है।

## रमैनी ७७

### परमतत्त्व उभय स्वरूप प्रकरण

**एकै काल सकल संसारा। एक नाउ है जगत पिआरा॥**
**त्रिया पुर्खं कछु कथो न जाई। सरब रूप जग रहा समाई॥**
**रूप अरूप जाइ नहिं बोली। हलुक न गरुवा जाय न तोली॥**
**भूख न त्रिखा धूप नहिं छाहीं। दुख सुख रहित रहे तेहि माहीं॥**

**शब्दार्थ**—एकै-एक ही। काल-मृत्यु महाकाल, शिव, पिण्ड, समय, समय का वह नियतकाल जिसमें एक सीमा हो जैसे १२ घंटे का एक समय, एक घंटा का समय, एक क्षण का समय। नाउ–नाम परमतत्त्व। पियारा–प्रिय। त्रिया–स्त्री। पुर्खं–पुरुष। समाई–समाविष्ट। हलुक–सूक्ष्म, बहुत हल्का, जो वजन न हो। गरुवा–बहुत भारी, महान। तोली–मापना। त्रिखा–प्यास। धूप–उजाला, दिन का अभिमानी देवता सूर्य, कड़ाकै का घाम। छाहीं–छाया, रात्रि, रात्रि का अभिमानी देवता चन्द्रमा। तेहि–उसमें। माहीं–में।

**सम्बन्ध**—ऊपर माया-मोह की प्रबलता बताते हुए उससे बचने के लिए राम-नाम के भजन की महिमा कही गयी है। अब इस रमैनी में समय की प्रवलता व मृत्यु की प्रबलता बतायी जा रही है। साथ ही उससे बचने के लिए श्री हरि का महत्त्व दर्शाया गया है।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि मृत्यु रूपी काल एक ही है, जो सारे संसार को रुलाने वाला है। जिससे कोई बचने में समर्थ नहीं है और उससे रक्षा करने वाला एक ही नाम भी है। जो जगत को अतिप्रिय है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि वेदों में ईश्वर के दो स्वरूप का वर्णन

है एक काल-स्वरूप और दूसरा मंगल-स्वरूप। ऋषियों ने काल-स्वरूप का नाम रुद्र रखा है, जो सबको रुलाता है और मंगल-स्वरूप का शिव रखा है जो सबका मंगल करता है और प्रार्थना भी की गयी है कि हे प्रभु ! जो तुम्हारा अशुभ स्वरूप रुलाने वाला है वह मुझसे दूर रहे अर्थात् हम मृत्यु को प्राप्त न करें। दूसरा जो अमृत प्रदान करने वाला है। वह शिव स्वरूप हमारे सामने हो। तात्पर्य यह हुआ कि अज्ञान दशा में ही मनुष्य भयभीत होता है क्योंकि तत्त्व ज्ञान होने पर वह मरने वाला नहीं है। मरने का भय अज्ञान में ही लगा रहता है। इसलिए प्रार्थना की गयी है कि जो मृत्यु भय स्वरूप है, जिसका दूसरा नाम अज्ञान है, वह हमसे दूर रहे और जो ज्ञान स्वरूप परमतत्त्व है, जिसकी प्राप्ति से भय मिट जाता है, वह सत्य मेरे सामने रहे। ठीक उसी बात करे कबीर साहब यहाँ पर उद्धृत किये हैं। अज्ञान दशा में ही सभी लोग मरते हैं। इसीलिए उसको मृत्यु माना गया है, उसी को काल कहा गया है। ज्ञान होने पर मृत्यु नहीं होती है, क्योंकि आत्मा को वह अमर समझ लेता है। अन्यत्र कहा गया है कि—

हम न मरे मरिहैं संसारा, हमका मिला जियावनहारा।
अब न मरे मरने मन माना, सोइ मरे जो राम न जाना ॥

तात्पर्य यह हुआ कि अज्ञान ही मृत्यु है, ज्ञान ही अमर तत्त्व है। अब कहते हैं कि जो नाम प्यारा है, जो सबकी रक्षा करता है, जो मंगल-मय है। क्या वह स्त्री के रूप वाला है ? क्या वह पुरुष के रूप वाला है ? क्या वह नपुंसक रूप वाला है ? इस पर कहते हैं कि नहीं, ऐसा कहते नहीं बनता है। वह कैसा है ? स्त्री रूपों में अर्थात् स्त्री में, पुरुष में और नपुंसक में समाविष्ट है। व्यापक है। पुनः क्या कोई रूप वाला है, पुनः कोई अरूप वाला है। कहते हैं ऐसा भी कहते नहीं बनता। पुनः प्रश्न उठता है कि क्या वह हल्का (सूक्ष्म), क्या वह गरुवा (गुरुत्व) ऐसा करके तौला जाय तो कहते हैं ऐसा भी कहते नहीं बनता। वह मनुष्य नहीं है, वह कोई दृश्य-पदार्थ नहीं है। वह ऐसा तत्त्व है, जो स्वयं तृप्त है, उसको

न भूख लगती है न प्यास लगती है और वह दिनाभिमानी सूर्य भी नहीं है। वह छायाभिमानी चन्द्रमा भी नहीं है। अर्थात् वह कोई देवादिगण के नाम से भी न हो जाना जा सकता। उसमें संसार का सुख-दु:ख भी नहीं है। वह सभी प्रकार के लौकिक सुख-दु:खों से रहित है।

साखी

**अपरम परम रूप बहुरंगी, आगे रूप निरुपनि भाय।**
**बहुत धियान कै खोजिया, नहिं तेहि संख्या आहि॥**

**शब्दार्थ**—अपरम–जिसका पार न हो, असीमित, जो श्रेष्ठ नहीं परम श्रेष्ठ। बहुरंगी–बहु रूप वाला। निरुपनि–निरूपण, शुद्ध कथन, वर्णन। भाय–है, होय। कै–के। खोजिया–अन्वेषण किया। संख्या–सीमित, गणित।

**भावार्थ**—वह परमतत्त्व अपरम अर्थात् अनन्त है और परम कहिये सबसे श्रेष्ठ है और नाना प्रकार के रूपों में भी वही विराजमान है। अर्थात् अपरम कहिये अशुभ, परम कहिये शुभ दोनों रूपों वाला भी वही है। अब अपना निर्णय देते हुए कहते हैं कि आगे अर्थात् भविष्य में उससे परे और कोई नहीं कहा जा सकता है जो मुझे उपलब्धि हुई है, उसीका मैं निरूपण कर रहा हूँ। मैं बहुत ध्यान कर, योग कर, एकान्त में बैठकर अन्वेषण किया परन्तु उसकी प्राप्ति मुझे सीमा से रहित दिखायी दी अर्थात् यह बहुत रूप में जो समष्टि सृष्टि के रूप में तथा जो व्यष्टि सृष्टि के रूप में दिखायी पड़ रहा है, सब वही है परन्तु अन्त:स्थल में जब उसका पता लगाने लगा, तो वह असीमित दिखायी देने लगा। व सब प्रपंचों से भिन्न दिखाई दिया।

**विशेष**—एक ही अज्ञान रूपी मृत्यु सारे संसार में व्याप्त है और उससे बचाने वाला एक ही परमतत्त्व है, जो सभी मनुष्यों का उद्धार कर सकता है, वह अप्रतिम रूप वाला है। इसके समान कोई दूसरा नहीं है। न वह स्त्री रूप वाला है, न पुरुष रूप वाला है, वह इन सभी रूपों में विराजमान है। उसके विषय में न रूप वाला न अरूप वाला कहा जा सकता है। इसी प्रकार उसको न सूक्ष्म कहा जा सकता और महान कहने

में भी सन्देह लगता है। वह तत्त्व समतत्त्व है। इतना ही कहा जा सकता है। वह मरण धर्मा भी नहीं है, वह भूख-प्यास, गर्मी-सर्दी इन तीनों तापों से रहित परमतत्त्व है। यहाँ तुम जो भी जड़-चेतन देख रहे हो, रूपान्तर में सभी उसी के रूप हैं। यहाँ विवर्तवाद की ओर संकेत है, क्योंकि आपने भी संसार को बहुत बार मिथ्या कहा है और संसरण होने वाला कहा है। कार्य का सम्बन्ध कारण से बना रहता है। इसलिए शुभ और अशुभ को केवल व्यवहार सत्ता में बिलगाया जा सकता है, जब तक कि दृष्टि दोष रहता है। परमार्थसत्ता में शुभ और अशुभ, श्रेय एवं प्रेय-दोनों एक हो जाते हैं। अन्नतोगत्वा जो मनुष्य को अनुभूति होती है, वह सीमा से परे होती है। उसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता। उस परमतत्त्व को प्राप्ति ही मनुष्यों का अभीष्ट है।

# रमैनी ७८

## मानव जन्म विस्मृति प्रकरण

**मानुस जनम चुके अपराधी। यहि तन केर बहुत हैं साझी ॥**
**तात जननि कहैं पूत हमारा। स्वारथ जानि कीन्ह प्रतिपाला ॥**
**कामिनि कहै मोर पिउ आही। बाघिनी रूप गरासन चाही ॥**

**शब्दार्थ**—मानुम–मनुष्य। जनम–जन्म। चुके–चूक गया, भूल गया, ठगा गया। साझी–हिस्सेदार, भागीदार। तात–पिता। जननि–माता। प्रतिपाला–रक्षा, पालन-पोषण। कामिनी–सुन्दर स्त्री। पिउ–प्रिय। आही–है। बाघिनो–व्याघ्रिनी, सिंघिनी। गरासन–ग्रासन, खाना। चाही–चाहती है।

**सम्बन्ध**—ऊपर प्रभु के दोनों शुभ और अशुभ रूपों का निर्देश किया गया और परमेश्वर के विषय में कहा गया कि वह सभी प्रकार के नाम-रूपों से भिन्न है। अब निचली रमैनी में कहा जा रहा है कि उस परम प्रभु को अज्ञानी मनुष्य भूल गये।

**भावार्थ**—जो तुमको मनुष्य तन मिला था, मनुष्य का जन्म पाया

था, उसके गुण को नहीं समझ सका। क्योंकि संसार का सारा कार्य मनुष्य के द्वारा ही होता है। सभी प्रकार के कला-कौशल का अन्वेषण मनुष्य ने ही किया है। खेती-बारी-व्यापार-सभी मनुष्य ने ही किया। शुभाशुभ का ज्ञान मनुष्य को ही होता है। ज्ञान-विज्ञान, रेलों का निर्माण, विमानों का निर्माण-यावत् जगत के कार्य हैं, वे सब मनुष्यों के द्वारा सम्पन्न होते हैं परन्तु यह मनुष्य अपने उपर्युक्त महान गुणों को भूल गया, उनमें से किसी अच्छे गुणों का उपयोग नहीं कर सका। उससे लाभ नहीं उठा सका। चूक गया। इसलिए वह बहुत बड़ा अपराधी है, क्योंकि अपना वास्तविक मूल्यांकन नहीं कर सका। यह चाहता तो संसार-सागर से पार हो सकता था और प्रभु-प्राप्ति भी कर सकता था परन्तु उस असीमित तत्त्व को इस नर तन में प्राप्त नहीं कर सका। इसलिए ही यहाँ पर अपराधी की संज्ञा दी गयी है। इसके इस मानव तन के बहुत से लोग भागीदार हैं। माता-पिता कहते हैं यह हमारा पुत्र है। यह हमारी वृद्धावस्था में काम आयेगा, मेरी सेवा करेगा। इसी स्वार्थ की भावना से उभय इसका प्रतिपालन करते हैं। बड़ा होने पर इसका विवाह हो गया। सुन्दर स्त्री मिल गयी, जो माता-पिता से छुड़ाकर कहती है कि यह केवल मेरा प्रिय है परन्तु यह अपराधी मनुष्य यह नहीं समझाता है कि यह मुझे खाने वाली व्याघ्रिनी है। यह भी समझने लगता है कि यह मेरी पत्नी बड़ी अच्छी है, मेरी आज्ञा मानने वाली है, पतिव्रता है। यहाँ भी वह चूक रहा है।

**सुतहु कलत्र रहैं लौ लाई। जम की नांइ रहैं मुख बाई॥**
**काग गीध दोउ मरन विचारै। सीकर स्वान दोउ पंथ निहारै॥**
**अगिनी कहै मैं ई तन जारों। पानी कहै मैं जरत उबारों॥**

**शब्दार्थ**—सुतहु–पुत्र भी। कलत्र–स्त्री भी। लौ–ध्यान। लाई–लगाये रहे। नांइ–प्रकार, जैसे। बाई–खोले, उघारे। दोउ–दोनों। विचारै–चिन्तन करे, आशा में लगा रहे। सीकर–मुर्दाखोर, काउ, कडिहार, एक विशेष प्रकार का जंगली हिंसक पशु जो सियार और सुअर के बीच वाले

आकृति का होता है। ऐसे तो किसी टीकाकार ने सियार और किसी ने सुअर किया है परन्तु सुअर मनुष्यों का मांस नहीं खाता है सियार भलेही खाता है। इसलिए दोनों अर्थ अनुपयुक्त दीखते हैं। स्वान-कुत्ता। निहारैं-देखैं। जरत-जलत। उबारे-बचावे।

**भावार्थ**—और जो इस कामिनो के द्वारा पुत्रादि उत्पन्न होते हैं, वे उक्त कलत्र रूपी स्त्री भी सदा ध्यान लगाए रहती है कि मेरा भरण-पोषण मेरे पति एवं पिता के द्वारा होगा। ये पुत्र, कलत्र भी इसी प्रकार से मुख फैलाये रहते हैं जिस प्रकार से भगवान अंशुमाली के पुत्र यमराज मनुष्यों को खाने के लिए मुख फैलाये रहते हैं। यावत् जीवन स्त्री, पुत्र परिवार उसको खाते रहते हैं। मरणोपरान्त काग, गीद्ध भी दोनों इसके शरीर को खाने के लिए विचार करते रहते हैं, अर्थात् वृद्धावस्था, विशेष रोग की अवस्था देखकर काग, गिद्ध भी विचार करते हैं, ये मरने वाला है मुझे खाने को मिल जाएगा। इसी प्रकार से इसके मरने का पंथ सीकर जो भेड़िया के सदृश होता है और कुत्ता भी देखते रहते हैं। इसी प्रकार से अग्नि भगवान भी इसके तन को जलाने के लिए अपना-अपना कर्त्तव्य समझते हैं। अपने हक के लिए पानी भी नहीं चूकता। वह अग्निदेव से कहता है कि तुम जलाओगे तो मैं इसको उबारुंगा। यह मेरा भी भाग है।

टिप्पणी—कहीं कहीं सूकर पाठ है जो सुअर का बोधक है, उक्त सीकर जो गड़े मूर्दे को उखाड़ कर खाता है, वह जानवर सर्वत्र नहीं मिलता है, बलिया में लोगों ने बताया कि इधर कहीं कहीं है।

**धरती कहै मोंहि मिलि जाई। पौन कहै संग लेउँ उड़ाई॥**
**गगन कहे सभ हमरे माँही। नभ के बिना जगत कछु नाहीं॥**
**तेहि घर को घर कहै गंवाँरा। सो बैरी होय गले तुम्हारा॥**
**सो तन तुम आपन कै जानी। विखै सरूप भुलै अग्यानी॥**

**शब्दार्थ**—धरती-पृथ्वी। पौन-वायु। गगन-आकाश। मांही-में। गँवारा-मूर्ख। बैरी-शत्रु, बेरी भी कहीं कहीं पाठ है जिसका अर्थ

है संसार के सम्बन्धी जो जंजीर होकर तेरे साथ अगल-बगल लग जाएँगे, जिनसे छूटना कठिन है। कै–के। विखै-विषय, विष, जहर। सरूप–स्वरूप।

**भावार्थ**—जल के अपने भाग के लिए झगड़ने पर पृथ्वी भी बोल उठी कि नहीं यह मेरे में मिलेगा, यह मेरे अन्दर गाड़ा जाएगा, उक्त हिस्सेदारी के लिए झगड़ा को देखकर भगवान पवनदेव भी कूद पड़े और बोले नहीं नहीं मैं इसके सूक्ष्म शरीर को अपनी ओर उड़ा ले जाऊँगा तथा इसके राख और भस्म श्मशान में नहीं रहने पायेंगे। पवन को झगड़ते देखकर आकाश भी दौड़ पड़ा और कहा अरे भाई! तुमलोग हमारे अन्दर ही हो। सारा भूमण्डल आकाश में ही स्थित है। क्योंकि आकाश के बिना कुछ है ही नहीं। इसलिए पूरा का पूरा हमारा है। सद्गुरु कहते हैं कि भला कहो इस मूर्ख के लिए इतने हकदार हैं। इतने लोग अपनी ओर खींच रहे हैं परन्तु इस शरीर रूपी घर को कहता है हमारा है। फिर पुत्र, कलत्र, बन्धु-बान्धव आदि को कहता था कि ये मेरे हैं, मेरे प्रेमी हैं, मेरे रिश्तेदार हैं। वे सब उसके आज बैरी हो गए हैं और गले लग गये जिससे तेरा छुटकारा नहीं हो सका। शरीर से इसके निकल जाने पर सब शत्रु की तरह ले जाकर श्मशान में जला देते हैं व जमीन में गाड़ देते हैं। यह अज्ञानी मनुष्य जिस तन को कहता है, यह हमारा है। साहब कहते हैं कि जिस तन को तुम अपना करके जानते हो, वह तन तेरे साथ नहीं गया। वे सब विषय स्वरूप हैं। जिसमें तूँ भूल गया है। तेरा अज्ञान है कि तू इस धोखे को नहीं समझ पाया कि सब धोखा देंगे। तू संसार रूपी विष को भूल से खा गया। इसलिए तेरा सर्वनाश हो गया।

साखी

**इतने तन के साझिया, जनमो भर दुख पाय ॥**
**चेतत नाहिं मुगुध नर बौरे, मोर-मोर गोहराय ॥**

**शब्दार्थ**—इतने–ये बहुत से लोग। तन–शरीर। साझिया–साझीदार, भागीदार। मुगुध–अज्ञानी, मुग्ध। गोहराय–कहता है, बोलता है।

**भावार्थ**—भला इसके तन के इतने हिस्सेदार हैं भागीदार हैं जिसके कारण यह मनुष्य जन्मभर दुःख पाता है। यह मुग्ध अर्थात् अज्ञानी चेत नहीं रहा है। पागलों की भाँति मोर-मोर कहता रहता है।

**विशेष**—परमगुण वाला यह तन अपराधी मनुष्य ने खो दिया। उसको चाहिए था कि संसार के सभी नाता-गोता को त्यागकर प्रभु-प्राप्ति एवं आत्म-प्राप्ति करता परन्तु ऐसा नहीं कर सका। जिसके कारण इसके अनेको सम्बन्धी बन गये। माता-पिता, स्त्री-पुत्र, सब अपने-अपने स्वार्थ के लिए इसके घातक बन गए। इस मनुष्य को खाने के लिए ये सब यमराज की तरह मुख फैलाकर दौड़ रहे हैं। प्राकृतिक जन्तु भी मरणोपरान्त खाने के ध्यान में लगे हुए हैं। इसी प्रकार ये पंचतत्त्व भी अपने-अपने अंश को लेने के लिए इकट्ठा हो गए हैं, परन्तु यह मूर्ख मनुष्य कहता है कि यह मेरा परिवार है, यह मेरा घर है, यह मेरा तन है, जो इसके लिए बैरी का कार्य किये हैं। जिस तन को यह मनुष्य अपना समझता था, उसके लिए यह दुःख स्वरूप हो गया अर्थात् इसका नाश कर दिया। ये सब साझीदार अपनी-अपनी ओर खींचते रहे, जिसके कारण यह जन्म भर दुःख पाते रहा। दुःख पाने पर भी वह अज्ञानी चेत नहीं रहा है। मरते-मरते कहता है कि यह हमारा है हमारा है। इसलिए समझदार मनुष्यों को चाहिए कि मनुष्य तन पाकर भूले नहीं, उसके द्वारा अच्छा-अच्छा कर्त्तव्य करे तभी बच सकता है। अन्यथा कोई उपाय नहीं है।

## रमैनी ७९

**बढ़वत बढ़ी घटावत छोटी। परखत खरि परखावत खोटी ।।**
**केतिक कहौं कहाँ लौ कही। अउरो कहौं परै जो सही ।।**
**कहै बिना मोहिं रहल न जाई। विरही लै लै कुकुर खाई ।।**

साखी

**खाते-खाते युग गया, बहुरि न चेतहु आय।**
**कहैं कबीर पुकारि कै, जीउ अचेतहिं जाय ।।**

**शब्दार्थ**—बढ़वत–बढ़ाते हुए, अधिक मोह-ममता में ध्यान लगाने से। बढ़ी–अधिक आसक्ति हो गयी। घटावत–त्याग करने से। छोटी–अल्प। परखत–विवेक करत। खरि–सत्य। परखावत–परख से। खोटी–असत्य। केतिक–कहालौं, कहाँतक। लौं–तक, पर्यन्त। कही–कहूँ। सही–सत्य, प्रामाणिक। विरही–सातबीज, वेन्ही, वेढ़नी, कचौड़ी, टाटी। कुकुर–कुत्ता, कुविचार, वंचक।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि इस मानव तन के अनेक भागीदार हैं। जो संसार सागर में ही अरुझाये रहते हैं? परन्तु अज्ञानी मनुष्य इस विषय को समझ नहीं सका कि संसार का सम्बन्ध हितकर है या अहितकर है। उसने आत्मा की हत्या किया। क्योंकि इसका सम्बन्ध स्वात्मा से होना चाहिए था। प्रत्यक् चैतन्यात्मा को त्याग कर इन्द्रियों के पोषण में लग गया। इसलिए इसको अपराधी कहा गया है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या इस संसार माया और नाता-गोता का अन्त होगा या नहीं? तथा इनसे छुटकारा मिल सकेगा कि नहीं। इस पर सद्‌गुरु निचली रमैनी में कहते हैं कि उक्त सम्बन्ध तो बढ़ाने से बढ़ता है और कम करने से खतम भी हो जाता है।

**भावार्थ**—संसार के माया-मोह को जितना ही बढ़ाया जाय, वह उतना ही बढ़ता जाता है और घटाने से घट भी जाता है। जब मनुष्य उसमें विवेक करता है कि संसार का सम्बन्ध सत्य है या असत्य है, तब सत्यता का पता चल जाता है और कोई सद्‌गुरु संत मिल जाय तो उनके विवेक कराने से खोटी अर्थात् सारहीन दीखने लगता है। उस विषय में हम कितना कहें और कहाँ तक कहें। इस विषय की बात बहुत कह चुका हूँ कि संसार असत्य है। इसके व्यवहार असत्य एवं खोटे हैं। परन्तु मानने वाला हो तब तो मैं आगे और भी कह सकता हूँ यदि मेरे उपदेश का, मेरे वक्तव्य का प्रभाव पड़े और लोगों को सही जँचे। क्योंकि संसार के मनुष्यों को दुःखी देखकर मुझसे कहे बिना रहा नहीं जाता। कहता तो बहुत हूँ, परन्तु ये संसार के विषय खाने वाले कुत्ता

के सदृश संसारी मनुष्य मेरी बात समझ नहीं पा रहे हैं। क्योंकि इनकी बुद्धि निर्बल हो गयी है। यह बेढनी, तीसी की कचौड़ी खा गयी है। बिरही वा बेढ़नी उसको कहते हैं जो तीसी के आटे की रोटी के बीच में भर कर पकायी जाती है। उसमें मसाला आदि डालकर स्वादिष्ट बनाया जाता है। जो बहुत रुचिकर होती है। परन्तु कुत्ते की प्रकृति के विरुद्ध होने से उसके लिए हितकर नहीं होती है परन्तु लोभवश कुत्ता जब खा लेता है तो वह मात जाता है। बेढनी की मादकता कुत्ते की चेतना को समाप्त कर देती है। इसी प्रकार से यह संसारी मनुष्य संसार की माया-मोह रूपी बेढनी को खा लिया है। सन्त-महात्मा लोग कितनी भी अच्छी बात कहते हैं, पर उसमें वह इतना मतवाला हो गया है कि ये उपदेश उसे अच्छे नहीं लगते। गुरुदेव कबीर कहते हैं कि विषय रूपी बेढ़नी को खाते-खाते व संसार की सुख-सुविधा भोगते-भोगते इस जीवात्मा को कितने युग बीत गये परन्तु आज भी यह चेतने के लिए प्रस्तुत नहीं है। उसका परिणाम देख चुका है परन्तु पुनः ध्यान नहीं दे रहा है। मैं तो सदैव उच्च स्वर से कह रहा हूँ कि यह अज्ञानी जीव बिना चेते ही चला जा रहा है।

## रमैनी ८०

**बहुतक साहस करउ जीअ अपना। तेहि साहब से भेंट न सपना॥**
**खराखोट जिन नहिं परखाया। चाहत लाभ तिन मूल गमाया॥**
**समुझि न परलि पातरी मोटी। ओछी गांठि सभै भौ खोटी॥**
**कहै कबीर केहि देहौं खोरी। जब चलिहो झिझि आशा तोरी॥**

**शब्दार्थ**—बहुतक–बहुत सा। बहुत प्रकार का। साहस–हिम्मत। करु–किया। जीअ–मनहीं। अपना–निज। तेहि–उस। साहब–स्वामी, परमतत्त्व। भेंट–दर्शन। सपना–स्वप्न में। खरा खोट–दोषयुक्त। परखाया–विवेक कराया। मूल–आत्मतत्त्व, ईश्वरतत्त्व। तिन–वे। परलि–पड़ी, जानकारी। पातरी–सूक्ष्म, निर्गुण ब्रह्म, मान-सम्मान।

मोटी–स्थूल, सगुण ब्रह्म, वाह्य माया का रूप। ओछी–हल्की, तुच्छ। गाँठि–ग्रन्थि। खोटी–असत्य। भौ–हुए। खोरी–दोष। दैहों–देवोगे। झिझि–झीनी, सूक्ष्म, सूक्ष्म शरीर। आशा–कामना। तोरी–त्यागकर।

**सम्बन्ध**—संसार की माया मोह व विषय भोग अधिक सम्बन्ध करने से बढ़ता है और त्यागने से अल्प हो जाता है। यह कह कर कहा गया कि संत-महात्मा एवं हम सदा से कहते चले आ रहे हैं परन्तु अपवित्र मन वाला मनुष्य संसार के सुख रूपी बेढ़नी को खा लिया है, मतवाला हो गया है। संतों का उपदेश कुछ असर नहीं कर रहा है और यह आज से नहीं कितने दिन बीत गये। फिर भी चेत नहीं रहा है अचेत ही जा रहा है अर्थात् जिस प्रकार अज्ञान दशा में आया था उसी तरह अज्ञान दशा में जा रहा है। इसने संत-महात्माओं की सेवा नहीं किया, जिससे लाभ नहीं होता। यदि किसी-किसी को कुछ असर हुआ जिसने बेढनी को कम खाया था तो वह प्रयत्न करने लगा कि हम इस संसार के दुःख से छुट जायें। उसी विषय में निचली रमैनी में कहा जा रहा है।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जो लोग वेद शास्त्रों का कुछ अध्ययन करके, कुछ संत-महात्माओं की बातों को श्रवण करके, प्रभु-प्राप्ति के लिए बहुत प्रकार का साहस किया, बहुत प्रकार का उपाय किया और अपने जी में यह ठान लिया कि मैं श्रीहरि को प्राप्त कर लूंगा। बहुत प्रकार का यज्ञ किया, होम किया, जप-तप किया, दान दक्षिणा किया पर बिना सही सद्गुरु के मिले सब करने के बावजूद भी उस साहब से उसकी भेंट स्वप्न में भी नहीं हुई। क्योंकि वह गुरु के द्वारा सत्य-असत्य का विवेक नहीं कर पाया। कोई पारखी सद्गुरु उसको नहीं मिला, जो सही अर्थ बतलाता। इसमें कारण यह भी था कि पारखी सद्गुरु तो मिला नहीं। दूसरी बात यह कि जो इसने सत्कर्म समझ कर किया, वह लाभ की भावना से किया। चाहे वह संत-सेवा किया, चाहे दान-पुण्य किया, चाहे ब्राह्मण-भिक्षुक खिलाया, चाहे वह बड़े-बड़े भण्डारा-यज्ञ किया परन्तु सब करने में लोक सुख की कामना ही थी। निष्काम भाव से वह कोई

कर्म नहीं किया। इसलिए जो मूलतत्त्व-आत्मज्ञान था, उसकी वह आपूर्त्ति नहीं कर सका। उसको वह गवां दिया। ऊपर से तो वह स्थूल माया घर, द्वार, स्त्री-पुत्र, संग-सम्बन्धी, धन-दौलत को छोड़ दिया। साधु-संन्यासी हो गया, जंगल में चला गया, परन्तु जो पातरी सूक्ष्म माया एवं मान-सम्मान जिसके कारण वह मुक्त नहीं हो पाया। ये भीतर की वासनाएँ जो बहुत वारीक थीं, उसको नहीं छोड़ पाया। जबतक मनुष्य अन्तरायों का परित्याग नहीं करता, जब तक वृत्तियों से नए संस्कार बनना बन्द नहीं हो जाते, जब तक मन का बहाव बहिरंग है, तब तक कोई लाभ होने वाला नहीं है। केवल स्थूल जगत का त्याग करने से कुछ सधने वाला नहीं है। प्रथम तो इस मोटी माया, स्थूल और सूक्ष्म माया को समझना चाहिए। यद्यपि यह मान-सम्मान की जो ग्रन्थि है, वह सब असत्य है, खोटी है और उसकी सगाई भी ओछी है। स्थिर रहने वाली नहीं है। तात्पर्य यह है कि बिना पातरी-मोटी माया को समझे, ओछी गाँठ देकर सत्कर्मों के नाम पर बाँधी गयी थी, वह सत्कर्म से बाँधी हुई गाँठ नासमझी के कारण सब बेकार हो गयी। स्थिर नही हो सकी। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि जो यह तुम कच्चे सूत की गाँठ बाँधा था हरि से, वह तो टूट गयी। वह तो झूठी सावित हुई। उससे कोई लाभ नहीं हुआ। बीच ही में जब तुम्हारी हरि से सगाई छूट गई तो तुम किससे संग करोगे, अब किसे दोष दोगे वह दोष तो तेरा ही है। तुम तब प्रभु के पास चल सकते हो, जब तुम सूक्ष्म माया को छोड़ दोगे। जब तक झीनी आशा-सूक्ष्म कामना रहेगी, तब तक काम नहीं बनेगा।

साखी

**झिझि आशा में लागि रहे, ग्यानी पंडित दास।**
**पार ना पावै बावरे, भ्रमि भ्रमि फिरै उदास॥**

**शब्दार्थ**—झिझि–सूक्ष्म। आशा–कामना। लागि–पड़े। ग्यानी–सामान्य ज्ञानी, जो लोक वेद की बात जानता है। पंडित–शास्त्रज्ञ। दास–हरिभक्त,

प्रतिमा आदि की सेवा-पूजा करने वाला। पार–जीत, विजय। बावरे–विवेक हीन।

**भावार्थ**—प्रश्न यह उठता है कि क्या सामान्य मनुष्य ही सूक्ष्म कामना में लगा हुआ है। सदगुरु कहते हैं, ऐसी बात नहीं है। झीनी माया में बड़े-बड़े ज्ञानी, जो अनंत ब्रह्माण्ड की खोज करते हैं, जो अहम् ब्रह्मास्मि का जप करते हैं, जो बड़े-बडे वैज्ञानिक हैं, जो गणितज्ञ हैं जो समाज शास्त्री हैं, जो केवल धर्म शास्त्रों का अध्ययन करते हैं तथा जो कथित प्रभु के भक्त हैं, जो लोक सुख के लिए ही प्रभु की उपासना करते हैं। ये लोग उस सूक्ष्म माया की वासना से छूट नहीं रहे हैं। उसका पार नहीं पा रहे हैं। इनका चित्त कहीं न कहीं वासना में लगा है। ये वावरे लोग झीनी माया के त्याग के बिना जन्म-जन्मान्तरों से भ्रमि-भ्रमि घूम रहे हैं। इनको कहीं संतुष्टि नहीं मिलती है। ये सदा अशान्त रहते हैं।

**विशेष**—जब तक तूँ झीनी माया का त्याग नहीं करते हो, कितना भी साहस तूँ अपने मन में करो परन्तु उस सत्य साहब से तेरी भेंट सपना में भी नहीं हो पायेगी। जब तक तुम्हें कोई पारखीगुरु खराखोट परखाने वाला नहीं मिलेगा। तब तक कुछ हाथ नहीं लगेगा। तूँ सकाम भाव रखकर कितना भी कर्म करोगे, उससे लाभ होने का नहीं है। यह निश्चित है, कि तुम मूल तत्त्व से वंचित रह जाएगा। यहाँ पर 'जाया' में श्लेष है। जैसे कोई मनुष्य कहीं रत्न खरीदने जाये, जब तक उसे रत्न का ज्ञान नहीं है कि यह किस जातिका रत्न है तब तक वह ठगाते रहेगा। उस रत्न क्रय करने वाले को चाहिए कि वह रत्न पारखी को ले जाये, जो उससे मन-वाँछित रत्न का पहिचान करा सके। इसी प्रकार विवेकी साधक को चाहिए कि वह किसी आध्यात्मिक गुरु के द्वारा आत्मतत्त्व की खोज करे। तभी उसको लाभ हो सकता है यह दूसरा श्लेष है। सदगुरु का कहना है कि जब तक यह मनुष्य सूक्ष्म और स्थूल विषय का ज्ञान नहीं कर पायेगा-और

चाखा चाहे प्रेम रस, राखा चाहे मान।
एक खड़ग दुई म्यान में, देखा-सुना न कान॥

जो लोग इस कमीनी दूनियां को भी चाहते हैं और प्रभु प्रेम की प्राप्ति भी करना चाहते हैं तो यह होने वाला नहीं है। जब तक इस कमीनी दुनियां का त्याग नहीं होगा, तब तक उस प्रभु से मिलन होने वाला नहीं है। प्रभु से ओछी गांठि जो बांधी जायेगी, वह संसार से सम्बन्ध होने के कारण छूट जाएगी और यह कहो कि मैंने बहुत भक्ति किया पर प्रभु नहीं मिला तो सद्गुरु कहते हैं यह खोरी किसको दोगे। तूं तो प्रभु को चाहते हो और संसार को भी चाहते हो। तूं उस तत्त्व तक तभी जा सकते हो, जब तुम्हारी झीनी आशा छूट जाय। क्योंकि इसी झीनी आशा में बड़े-बड़े ज्ञानी पंडित दास सभी भ्रमते रहे। इसलिए सच्चे प्रभु भक्तों को चाहिए कि इस आशा को त्याग कर सच्ची प्रभु भक्ति में लगें।

# रमैनी ८१

## काम-वासना प्रावल्य प्रकरण

**देउ चरित्तर सुनहु हो भाई। जो ब्रह्मा सो धियेउ नसाई॥**
**ऊजे कहौं मंदोदरि तारा। जेहि घर जेठ सदा लगवारा॥**
**सुरपति जाय अहिल्या छरी। सुरगुरु घरनि चन्द्रमै हरी॥**
**कहैं कबीर हरि के गुन गाया। कुन्ता करण कुवांरहि जाया॥**

**शब्दार्थ**—देउ-पूज्य, दिव्य लोकों में रहने वाले। चरित्तर-चरित्र, आचरण सम्बन्धी विचार। हो-हे। भाई-बन्धु लोग। ब्रह्मा-प्रथम प्रजा-पति, लोक पितामह, जो सृष्टि को बढ़ावै। सो-वह। धियेउ-पुत्री, दुहिता। नसाई-नाश किया, शील भंग किया। ऊजे-वह, जो, और। कहौं-कहूँ। मंदोदरि-रावण की धर्मपत्नी, लंका की सम्राज्ञी, सुन्दर कटि-वाली, पंच कन्याओं में एक। तारा-बालि की पत्नी-पंच कन्याओं में एक। जेहि-जिस घर में। जेठ-ज्येष्ठ, बड़ा। लगवारा-प्रेमी, जार पुरुष। सुर-पति-इन्द्र, देवताओं का राजा। जाय-जाकर। अहिल्या-महर्षि गौतम की अर्द्धांगिनी, पत्नो। छरी-छला, शील भंग किया। सुरगुरु-वृहस्पति। घरनि-स्त्री। चंद्रमै-चन्द्रमा ने, महर्षि अत्रि के बड़े लड़के। हरी-अपहरण,

शील भंग। हरि–सूर्य, विष्णु। गुन–चरित्र, क्रीड़ा, ज्ञान, कला। गाया–कहा गया। कुन्ता–महाराजा पाण्डु की प्रथम पत्नी, युधिष्ठिर आदि की माता, भगवान श्री कृष्ण की फुआ। करण–कर्ण, कुमारावस्था में कुन्ती द्वारा जन्म दिए जाने वाला, जिसे राधा पुत्र भी महाभारत में कहा गया है। कुवारहिं–अविवाहिता में। जाया–उत्पन्न हुआ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मनुष्य में कुछ सद्बुद्धि आयी, बहुत साहस के साथ परमार्थ में लग गया, परन्तु सही मार्ग के न मिलने पर मूल तत्त्व से भेंट नहीं हुई। इसका कारण था कि जो भी करम-धरम किया गया वह लाभ के लिए किया गया अर्थात् अधिकांश लोग सकाम कर्मों के द्वारा लोक-लोकान्तरों की सुख की कल्पना करते हैं। वे देवलोक जाना चाहते हैं। प्रायः जितने यज्ञ-याग करने वाले हैं, उनकी लालच दिव्य लोकों की प्राप्ति की रहती है। मोटी-मोटी बातों का त्याग कर देते हैं लेकिन सूक्ष्म वासनाओं में लगे रहते हैं, जिसमें ज्ञानी-पंडित सकामी भक्त लोग सब शामिल हैं।

**भावार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे मनुष्यों! जिस देवलोक आदि की प्राप्ति करके तुम अक्षय सुख भोगना चाहते हो, वहाँ के निवासियों की भी बात सुनो उन दिव्य देहधारी देवताओं का चरित्र सुनो और उस पर विचार करो। जिस काम बाण से बचने के लिए तुमको बार-बार उपदेश देता हूँ जिसके कारण ब्रह्माण्ड के समस्त प्राणी व्यग्र हैं, वह भगवान कुसुमाकर बहुत बलवान है। जब तक सावधानी पूर्वक उसको नहीं जीत सकोगे, तब तक तुझे अक्षय सुख की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। क्योंकि असावधानी के कारण काम से पीड़ित होकर पुराणों के अनुसार एवं सतपथ ब्राह्मण के अनुसार प्रजापति ब्रह्मा भी स्वंयं जाया पुत्री को देखकर विमोहित हो गये। यह वीरवर काम देव की ही प्रबलता है और भी बड़ी-बड़ी साध्वी, पतिव्रता स्त्रियाँ, मंदोदरी, तारा जैसी कही जाने वाली हैं, जिनके नामों का लोग जप भी करते हैं, वे सती-साध्वी स्त्रियाँ भी अपने पति को अच्छे मार्ग पर नहीं ला सकीं। उनके

यहाँ भी ज्येष्ठ लोग ही सदा लगवार रहे हैं। पुराणों के अनुसार व रामायण के अनुसार रावण ने सहोदर भाई बिभीषण को भगाकर उनकी धर्म-पत्नी सरमा को रख लिया। उसी प्रकार से बालि, सुग्रीव को भगाकर उसकी पत्नी रूमा को रख लिया था। इतनी प्रभावशालिनी तारा और मंदोदरी भी अपने पतियों के न रहने पर देवरों से सगाई कर ली। यह महावली कामदेव की ही महिमा है। काम के बेग को स्वर्ग के राजा इन्द्र भी संभाल नहीं सके। वे भी जाकर महर्षि गौतम की पत्नी के साथ बलात्कार किये। इसी प्रकार से देवगुरु वृहस्पति की पत्नी से उनका स्वयं का शिष्य महर्षि अत्रि के पुत्र चन्द्रमा ने भी सम्बन्ध जोड़ा। कबीर साहब कहते हैं कि यहीं तक बात नहीं रहती है और आगे की बात सुनो जो तीनों लोकों के प्रकाशक, तम के हरने से हरि कहलाते हैं, वे भगवान सूर्य भी कुन्ती के आकर्षण में आकर कुमारी अवस्था में ही सम्बन्ध किया। परिणाम स्वरूप कर्ण पुत्र हुआ।

**विशेष**—तात्पर्य यह है कि मनुष्य कितना भी बड़ा हो जाय और कितनी भी बड़ी पदवी पा जाये। योगी, यती, संन्यासी, उदासी, आरण्यक, देव-दानव, परन्तु जब तक मन को वश में नहीं करता है, वासनाएँ निर्मूल नहीं होती हैं तब तक न उसको शान्ति है न सुख है। तब तक वह मृग-मरीचिका की भाँति क्षणभंगुर विषयों को चाहता रहेगा और इन्द्रियाँ उसको लोलुप बनाए रखेगीं। यहाँ पर बड़े पूज्यों की आलोचना से तात्पर्य नहीं है। यहाँ तात्पर्य यह है कि कितना भी बड़ा हो जाये, जब तक उसको काम-वासना शान्त नहीं हो जाती है, तब तक उसको शान्ति नहीं मिल सकती है। तब तक इन्द्रियाँ अनर्थ करतो रहेगीं और वह उनका शिकार होते रहेगा। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि वह सदा सावधानो से अपनी इन्द्रियों को वश में करें। जिन अविजित इन्द्रियों से ब्रह्मा से लेकर रावण, बालि तक समाज में दूषित हुए, वे इन्द्रियाँ ही सबके साथ हैं। प्रयत्नपूर्वक पुरुष को उनका निग्रह करना चाहिए।

**अन्तर्कथाएँ**—ब्रह्माजी को पुत्री के साथ नशाने की कथा ऐतरेय ब्रा० १३/९ में है कि प्रजापति ने अपनी पुत्री को स्त्री रूप से ध्यान किया, जिसका दिन नाम था, या उषा नाम था। रजोदर्शनयुक्त मृगीरूप उसके प्रति मृगरूप होकर प्रजापति प्राप्त हुए।

स्कन्द पु० २-१ अ० ४० सें कथा है कि वाक् नामक अपनी पुत्री से ब्रह्मा ने भोग की इच्छा की। तब वह लज्जा के कारण हरिणी हुई। फिर ब्रह्मा हरिण रूप होकर धावा किये, तब शिव जी व्याधरूप होकर, ब्रह्मा के शिरों को धनुष से काट दिये फिर सावित्रि गायत्री की प्रर्थना से जीवित किये। शिव पु० सं० २ खं० २ में कथा है कि ब्रह्मा जो की मानस पुत्री संध्या नाम वाली हुई। उसे देख ब्रह्मा मोहित हुए। तब पुत्रों के सामने ब्रह्मा को बहुत कोसा। फिर ब्रह्मा ने स्वयं तप किया और दक्ष से तप करवाया, जिससे ऐसी स्त्री हो, जो शिव जी को मोहित करे, फिर दक्ष से सती उत्पन्न हुई और शिव के विवाह के समय ब्रह्मा भी मोहित हुए पार्वती के पैर को देख कर ब्रह्मा का वीर्यपात हुआ। दोनों बार रूद्र मारने के लिए तैयार हुए, तब देव ऋषियों ने बचाया। सती विवाह के समय जो धातु पात हुआ, उससे मेघों की सृष्टि हुई। पार्वती विवाह सें स्खलित वीर्य से बालखिल्य ऋषि पैदा हुए। तत्त्व वार्तिक में लिखा है कि विधि निषेधादि मनुष्य के लिये है, देव प्रजापति के लिए नहीं, इससे कोई दोष नहीं। प्रजापालन करने से प्रजापति सूर्य का नाम है सो अरुणोदय वेला में उषा ( प्रभात ) को प्राप्त होते हैं काल्पनिक अर्थ में तात्प्रर्य है ।

ब्रह्म पु० खं० गौतमी महात्म्य अ० ३६ में ब्रह्मा जी का कहना है कि मैंने सब कन्याओं में सुन्दर कन्या अहिल्या को रच कर, गौतम जी के पास पालन के लिए रख दिया और कह दिया कि इसे पालो परन्तु जब युवती हो जाय तब मेरे पास लाना। उसे पाल कर निर्दोष वह मुनि मेरे पास लाये। उसे देख सब देवताओं को पाने की इच्छा हुई। तब मैंने कहा सूर्य व पृथ्वी की प्रदक्षिणा करके जो प्रथम आयेगा, उसी से इसका विवाह होगा।

सब देव पृथ्वी की परिक्रमा करने लगे, गौतम जी अर्द्ध प्रसूता गो तथा शिवलिंग की परिक्रमा करके ब्रह्मा जी के पास गये। ब्रह्मा जी ने भो पृथ्वी की परिक्रमा मान कर विवाह कर दिया। फिर देव सब धीरे-धीरे आये और अपने लोक में गये परन्तु इन्द्र काम से मोहित होकर, ऋषि के आश्रम में ब्राह्मण के वेष में रहने लगे। एक दिन सबेरे गौतम ऋषि शिष्यों के साथ आश्रम से बाहर गये। इन्द्र ऋषि का रूप धर कर अहिल्या के साथ रति में लीन हो गये। इतने में ऋषि भी बाहर से लौट कर आये, तो अहिल्या को नहीं देखा और गृह रक्षक तब कहने लगे, कि आश्चर्य है कि ऋषि अनेक रूप में रहते हैं भीतर भी हैं और बाहर से भी आ रहे हैं सो सुन ऋषि भीतर गये और तब इन्द्र बिलार होकर घूमने लगे। डरती हुई अहिल्या भो आयो। तब शुष्क नदी होने के लिए ऋषि शाप दिये, फिर बोले कि गौतमी में स्नान करके शाप मुक्त होगी। ब्रह्म पु० खं० १ अ० ५६ में यही कथा रूपान्तर से है। प्रायः इस प्रकार की कथाएं बहुत रूप से हो गयी हैं। वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड सर्ग ४८ में कथा है कि गौतम जी स्नान करने गये थे, इतने में उनका रूप धरकर इन्द्र आये और अहिल्या समझ गयी परन्तु दुष्ट भाव से विषय किया और भाग जाने के लिए कही परन्तु तब तक ऋषि आ गये और फल रहित वृक्ष होने का शाप दिये और प्राणियों से रहित होकर भस्मशायिनी निराहार रहने का शाप अहिल्या को दिये। हजार वर्ष के बाद वहाँ रामचन्द्र जी के जाने से शाप से मुक्ति के लिए कहे और वैसा ही हुआ। अध्यात्मरामायण बालकाण्ड सर्ग ५ में है कि गौतम के ब्रह्मचर्य से सन्तुष्ट ब्रह्मा ने लोक सुन्दरी कन्या गौतम को दिया। गौतम के बाहर जाने पर इन्द्र गौतम का वेष धारण करके भोग किया और उसी वेष से बाहर निकलते समय मुनि उन्हें देख कर हजार भग के लिए शाप दिये और अहिल्या को तप भजन करती हुई गुप्त रूप से शिला में निराहार रहने का शाप दिया और अनेक हजार वर्ष के बाद जब राम लक्ष्मण सहित इस आश्रम में आयेंगे, उनके चरण स्पर्श से तुम पाप से मुक्त होगी। राम की परिक्रमा, पूजा, स्तुति से शाप मुक्त होगी।

चन्द्रमा की कथा मत्स्य पु० अ० ३२ में है कि ब्रह्माजी ने अत्रि ऋषि को सृष्टि करने की आज्ञा दिया। तब तीन देव की उपासना आदि रूप तप ऋषि ने किया जिससे सोम (चन्द्रमा) उत्पन्न हुए। फिर ऋषि देव आदि सोम को अपना स्वामी बनाये, दक्ष कन्या प्रदान कराये। राजसूय यज्ञ किये। यज्ञ की समाप्ति पर सोम के रूप से मोहित होकर, लक्ष्मी सिनीवाली, द्युति, तुष्टि, प्रभा, कुहु, कृति, धृति आदि देवियाँ अपने-अपने पतियों को छोड़ कर स्वयं सोम को सेवने लगीं। सोम भी उसमें आसक्त हुए और उनके पति लोग भी कुछ कर नहीं सके। उसके बाद देव गुरु की पत्नी तारा को किसी बाग में देख कर, सोम उसे पकड़ लिया, तारा भी उसमें आसक्त हुई। देव गुरु कुछ कर न सके, दीनता पूर्वक माँगे तो भी सोम नहीं दिया, तब शिव जी क्रुद्ध होकर युद्ध करने लगे, फिर ब्रह्मा जी के समझाने से युद्ध बन्द हुआ और वृहस्पति को तारा मिली। पद्म पु० खं० १ अ० १२ में भी सोम की यही कथा है। विष्णु पु० अंश ४।६ में कथा है कि ब्रह्मा के पुत्र अत्रि और अत्रि के पुत्र सोम हुए। ब्रह्मा जी उन्हें सब औषधि द्विज नक्षत्रों का राज्याभिषेक करके राजा बनाये। फिर सोम ने राजसूय यज्ञ किया। जिससे प्रतिष्ठा बढ़ जाने पर उनमें मद का प्रवेश हो गया और मद के कारण अपने गुरु की स्त्री तारा को हर लिया। वृहस्पति ब्रह्माजी की प्रेरणा द्वारा सब ऋषि देव के कहने पर भी नहीं दिये फिर वृहस्पति के द्वेषी शुक्राचार्य चन्द्रमा के पक्ष में हो गये और सब दैत्य दानव भी चन्द्रमा के पक्ष में हुए और अंगिरा के शिष्य रुद्र वृहस्पति के पक्ष में हुए तथा सब देव भी पक्ष में हुए। इस प्रकार तारा के लिए महान युद्ध हुआ जिससे सारा संसार भयभीत होकर ब्रह्मा जी के पास गया, तब ब्रह्मा जी युद्ध को रोक कर, तारा को वृहस्पति के प्रति दिलाये। उसी समय उसे गर्भवती देख कर गर्भ त्याग देने को कहा। फिर उसने गर्भ को त्याग दिया, बालक को सुन्दर देख कर, सोम वृहस्पति दोनों को लेने कि इच्छा हुई परन्तु पूछने पर वीर्य सोम का था इससे सोम-पुत्र बुध कहलाये। देवी भागवत स्कन्द १।११ में कथा है कि तारा चन्द्रमा को

यजमान जानकर उनके घर गयी और वहाँ दोनों कामासक्त हो गये और वृहस्पति के कहने से नहीं दिये, तब युद्ध होने पर भृगु ऋषि के कहने से दिये।

महाभारत आदि पर्व अ० ६७ में कथा है कि वसुदेव जी के पिता शूरसेन थे, उनकी पृथा नाम की अपनी एक पुत्री थी उसे अपने फुआ पुत्र कुन्ती भोज के प्रति अर्पण किये, क्योंकि कुन्ती भोज अपत्य रहित थे और सेन से प्रथम करार किये थे प्रथम जो अपत्य होगा, सो मैं आप को दूँगा, पृथा ही फिर कुन्ती कहलाने लगी और वह दुर्वासा ऋषि की बड़ी सेवा की। ऋषि प्रसन्न होकर बहुत मन्त्र बताए। एकान्त में मंत्र की परीक्षा के लिए कुन्ती ने मन्त्र पूर्वक सूर्यदेव का आह्वान किया। सूर्यदेव मनुष्य शरीर से आये और मोह से रति के लिए प्रवृत्त हुए। जिससे कर्ण कुमारी अवस्था में पैदा हुआ। देवी भागवत स्क० २।६ में भी है कि कुन्ती शूरसेन की पुत्री थी, कुन्तो-भोज उसे गोद लेकर अपनी पुत्री मानते थे और कुन्ती भोज के घर में रहती थी। कुन्ती दुर्वासा की सेवा से मन्त्र प्राप्त किया था।

## रमैनी ८२

**सुख के ब्रिछ एक जगत उपाया। समुझि न परलि विखै किछु माया॥**
**छौ छत्री पत्री जुग चारी। फल दुइ पाप पुन्न अधिकारी॥**
**स्वाद अनन्त कछु बरनि न जाई। करि चरित्र सो तियके[1] माही॥**
**नटवट साजा साजिया। जो खेलै सो देखै बाजिया॥**
**मोहा बपुरा जुगुति न दीठा। सिउ सकती विरंचि नहिं पेखा॥**

**शब्दार्थ**—ब्रिछ–वृक्ष, मानव शरीर। जगत–संसार। उपाया–उत्पन्न किया। विखै–विषय। छौ–छत्री–छ क्षत्रिय, क्षत्रायते इति क्षत्री जो क्षति से बचावे वह छत्री, छत्र धारण करने वाला, अधिकार, प्रभुता, शक्ति।

---

1. पाठान्तर-'करि चरित्र सो ताहि माही' इस अन्तिम पक्ति के अनेक पाठ उपलब्ध होते हैं परन्तु जो पाठ बहुमत में था वही रखा गया है।

पत्री–पत्र, चिट्ठी, अखुआँ, पात। जुग–दीर्घ, समय, सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग। चारी–चार। दुई–दो। फल–परिणाम। अधिकारी–प्राप्त करने वाला, विशेष, अधिक। स्वाद–रुचिकर। अनन्त–बहुत अधिक। बरनि–कहा। करि–करि के। चरित्र-व्यवहार। तियके–उसमें, स्त्री। माही–में। नटवट–नट के समान, अभिनेता जैसा, ईश्वर। साजा–उपकरण, सामग्री, साधन। साजिया–सजाया, निर्मित किया, अलंकृत करना, ईश्वर। बाजिया–बाजीगर, नटराज। मोहा–मोहित। बपुरा–बेचारा। जुगुति-जुक्ति, उपाय। दीठा–दिखना, दीख। सिउ–ईश्वर, मंगल। सकती, शक्ति–महिमा, माया। विरंचि--ब्रह्मा, रचना। पेखा–देखा।

**सम्बन्ध**—इक्यासवीं रमैनी में दिव्यलोक निवासी एवं संसार के बड़े-बड़े शासकों को तथा सती-साध्वी स्त्रियों को और बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों को भी यह कहा गया कि ये भी कामवासना के शिकार हुए हैं तब अज्ञानी मनुष्यों के लिए क्या कहना है अर्थात् जब सेना का सेनापति मारा जाता है अथवा पकड़ लिया जाता है तब बेचारे सैनिकों की क्या कथा कही जाय? जिसकी हम पूजा, उपासना करते हों, वही चरित्रवान न हो, उसमें श्रद्धा का भाव सही रूप से नहीं हो सकता है। इस रमैनी का उद्देश्य यह भी है कि बड़ों को पहले चरित्रवान होना चाहिए तभी उनका सम्मान संसार में हो सकता है परन्तु परमेश्वर की माया विचित्र है। वह यत्किंचित अभिमान होने पर बड़े से बड़े देव-दानव, साधु-संन्यासी, ऋषि-महर्षि को धराशायी कर देती है। अब निचली रमैनी में संसार एवं शरीर रूपी वृक्ष की बात कही जा रही है जो बड़ी मार्मिक रूपिका से विभूषित है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि परमेश्वर ने सुख के वृक्ष के रूप में मानव शरीर को संसार में उत्पन्न किया और यही एक मानव शरीर रूपी वृक्ष सभी फलों को देने वाला है। इस मानव शरीर से लोक-सुख भी उपलब्ध होता है और परलोक-सुख भी उपलब्ध होता है तथा आत्मसुख भी उपलब्ध होता है। यावत् जो सुख-दुख देखने, सुनने में आते हैं वे मानव शरीर में कमाए हुए हैं परन्तु सद्गुरु कहते हैं कि इस सुख के पेड़

में विषय-वासना के भी फल लगते हैं जो सहज रूप में इन्द्रियों के समक्ष पड़ते हैं। जिसको इन्द्रियों के द्वारा यह जीवात्मा चखते रहता है। इसलिए जो परम सुख आत्मतत्व का है वह समझ नहीं पड़ता। उसकी जानकारी नहीं हो पाती है क्योंकि इन्द्रियाँ विषय-सुख की ओर उन्मुख हैं और वह विषय-सुख माया के द्वारा निर्मित है जो कुछ कहने में बनता नहीं है, क्योंकि जो माया का कार्य है, उसी से संसार रूपी सुख वृक्ष उत्पन्न होता है। जो मनुष्यों की चेतना को लुप्त कर देता है। सद्गुरु कहते हैं कि उस सुख वृक्ष में छः स्कन्द हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध और मन अर्थात् पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और छठा मन, अन्य प्राण एवं नस-नाड़ियाँ इस शरीर के पत्ते हैं। विषय उन्मुख होने के कारण यह जीव चारों युग से शरीर रूपी वृक्ष को प्राप्त करते आया है और इस सुख-वृक्ष में कर्मानुसार दो फल लगे हैं। एक पाप और दूसरा पुण्य तथा पाप-पुण्य के उत्पन्नकर्त्ता ही इसके भोगने के अधिकारी हैं। इन फलों में इतना स्वाद है, इतना मिठास है, इतने मोहक हैं कि कुछ कथन करने में नहीं बनता। उसी, सुख के लिए तमाम चरित्र रूपी कर्म करता है। सबसे महान सुख उस फल के पुण्य जन्य स्त्री वाला बताया गया है। सारे संसार का सुख एक ओर स्त्री का सुख एक ओर। लेकिन मनुष्य का सारा प्रयत्न स्त्री सुख की ओर होता है और अन्त तक उसी में लगा रहता है। बड़ी विचित्र बात यह है कि इस स्त्री रूपी सुख का ढाँचा बनाने वाला स्वयं वह नटराज है, जो सारे जगत का निर्माण करता है। उसी ने इस ढाँचे का निर्माण किया है जो स्त्री के रूप में दिखायी देता है परन्तु वह स्थायी नहीं है। इस संसार का व स्त्री का सुख जिसके सीमा की बात नहीं है, कौन है? जैसे नट खेल दिखलाता है और तमाम डमरू, बांसुरी आदि बजा करके अपनी करामात दिखाता है परन्तु क्षण में ही इसको समेट लेता है इसी प्रकार से यह संसार का सुख क्षणिक है और नट के खेल के समान है। इसको सब नहीं देख पाते हैं, सभी नहीं समझ पाते हैं। जो इसको खेलता है, वही पुरुष, वही परमात्मा अपनी इस बाजी को देखता है। बाजी से तात्पर्य खेल से

है। कहने का तात्पर्य यह है जिसने इस बाजी रूपी खेल का सर्जन किया है, वही इसकी सत्यता को जानता है। अन्य जो मोहा कहिए-मोहित बपुरा बेचारे लोग हैं। वे लोग उक्त खेल को देखने की युक्ति नहीं जानते। वह शिव स्वरूप नटराज ऐसे हैं कि उसकी शक्ति को साधारण लोगों की देखने की बात नहीं है। उसकी शक्ति एवं उसके खेल को उसके बनाये हुए स्वयं विरंचि ब्रह्मा नहीं देखा कहिए, समझ नहीं पाये। अन्य पुरुष की क्या गिनती है ?

साखी

**परदे परदे चली गयी, समुझि परि नहिं बानि।**
**जो जाने सो बांचि हैं, नहिं तो होत सकल की हानि।।**

**शब्दार्थ**—परदे–पट के पीछे, आवरण। बानि--वाणी, वक्तव्य, स्वरूप।

**भावार्थ**—जिसको खेल को मनुष्य से लेकर ब्रह्मा तक नहीं जान सके और जो खेल करता है, जिसकी शक्ति उस खेल में काम करती है वह परदे के अन्दर ही रहता है। वह मनुष्यों को कभी दिखायी नहीं पड़ता। उस परदे में रहने वाले की बात कोई समझ नहीं पाता है और उसकी बात भी असमझनीय है। जो मनुष्य यह जान लेता है कि यह नट के समान प्रभु की लीला है, खेल है, वह तो बच जाता है, जो नहीं समझ पाता है उनकी सब प्रकार से हानि होती है।

**विशेषार्थ**—इस रमैनी में कहा गया कि संसार में एक सुख का वृक्ष उत्पन्न किया गया है परन्तु इस सुख को कोई समझ नहीं पाया है। वह ऐसा विषय है कि कुछ जानने में नहीं आता। जिस माया से तैयार किया गया है वह अकथनीय है। उक्त पेड़ में छः शाखाएँ हैं। नस-नाड़ी रूपी तमाम पत्ते हैं और चारों युगों से यह सुख-दुःख उत्पन्न होते आया है। फल के रूप में पाप-पुण्य रूपी दो फल उसमें लगते हैं। विचित्रता यह है कि अन्य वृक्षों के फल लगाने वाले कम खाते हैं। दूसरे लोग ज्यादा खाते हैं परन्तु जो यह अपने कर्मों के द्वारा शरीर रूपी वृक्ष को तैयार

किया है अर्थात् कर्मानुसार ही ये प्राणियों के तन मिलते हैं, जो अपने कर्मों के द्वारा इस वृक्ष को तैयार करता है, उसका फल वह स्वयं खाता है। दूसरे मनुष्य नहीं खाते। इसलिए यहाँ पर दोनों फल के भोगने वाला अधिकारी अपने आप को बताया गया है। यदि पाप करता है तो पाप का फल अपने आप भोगता है यदि पुण्य करता है तो पुण्य का फल भी अपने ही भोगता है। यहाँ स्वाद शब्द है, जो अधिक रुचिकर लगता है, जो पुण्य है इसके स्वाद का अनन्त सुख होते हैं, जिसको आप लोक में देख सकते हैं। मनुष्यों के सुखों को देखकर आश्चर्य होता है। उसी प्रकार से पाप रूपी फल बहुत आश्चर्यकारी होता है। उसका भी स्वाद बड़ा विचित्र है। पुण्यशील मनुष्य विमानों के द्वारा आकाश में उड़ता है, दिल्ली की गद्दी पर बैठता है। भौतिक-ताप का उसको दर्शन भी नहीं होते और पाप रूपी फल का परिणाम यह है कि दिन भर हल जोतता है, तन पर वस्त्र नहीं है, रहने को झोपड़ी नहीं है, बीमार होने पर दवा नहीं है, भूख लगने पर अन्न नहीं है, प्यास लगने पर पानी नहीं है। कितना उपेक्षित है, जो सबके सामने है परन्तु मनुष्य चेत नहीं पाता है। सारा उसका रहन-सहन, चाल-चलन जो भी करता है, इसी संसार के सुख के लिए करता है और सभी सुखों का मूल स्त्री रूपी सुख को समझता है। क्योंकि इसी स्त्री सुख के लिए ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्रमा, बालि, सुग्रीवादि कलंकित हुए। आज भी उन लोगों की पूजा नहीं होती है। यह कितना महत्त्व वाला सुख है, उपर्युक्त व्यक्तियों से भी त्यागा नहीं जा सका। जो सब तरह से समर्थ थे, ज्ञानी थे। इसमें इतना स्वाद है कि इसका अन्त नहीं है। कुछ कहते भी नहीं बनता है। यह सुख परिणामी है, क्षणभंगुर है। यह परमात्मा रूपी नट द्वारा साजा गया है, बनाया गया है जिसको अज्ञानी जीव नहीं समझ पाता। इस संसार के सुख को, संसार के ढाँचे को व संसार की बाजी को जो बनाया है, वही देखता है। अर्थात् जो ज्ञानी पुरुष हैं जिन्हें आत्मा का साक्षात्कार हो गया है वे समझते हैं कि यह नट के खेल के समान है। इसमें कुछ सारभूत नहीं है। अन्य जो

ज्ञान विहीन, मोह से ग्रसित असमर्थ लोग हैं, जिनको सद्गुरु नहीं मिला है, जो परमेश्वर की भक्ति नहीं करते हैं, वे परमेश्वर की वाणी को, परमेश्वर की शक्ति को नहीं जानते हैं। उस परात्पर प्रभु की शक्ति को एवं उसकी खेल को जब बेचारे ब्रह्मा भी नहीं देख पाये तो यह साधारण जीव जिनके पास कोई साधन नहीं है, वे क्या देख पायेंगे ? वह शिव स्वरूप परमेश्वरी शक्ति खेल दिखाकर छिपे-छिपे परदे के आड़े-आड़े चली गयी। अर्थात् संसार को बनाकर अदृश्य हो गयी। वह अप्रत्यक्ष होने के कारण किसी की समझ में नहीं जान पड़ी। बानि कहिए उसका रूप इतना विलक्षण है कि वह इन चर्म-चक्षुओं से देखा नहीं जा सकता है। वह सदा आवर्णों में छिपा रहता है। जो मनुष्य गुरुभक्ति, संत सेवा, प्रभुपासना से यह समझ लेता है कि उपरोक्त खेल सब झूठा है और खेल करने वाला ही सच्चा है, वही मनुष्य बच सकता है अन्यथा जो संसार रूपी सुख-वृक्ष को सत्य मानता है, उसकी सब प्रकार से हानि होती है।

**प्रौढ़िवाद**—यदि परदे-परदे का अर्थ सीधा लगाया जाय तो अर्थ होगा कि अज्ञान रूपी आवरण में लिपटा हुआ मनुष्य शिव की शक्ति को नहीं देखता, जिसको विरंचि भी नहीं देख पाया। वह अज्ञान में आया और अज्ञान में चला गया और अज्ञानी मनुष्य को परमेश्वर का खेल समझ में नहीं पड़ी। यह अर्थ होगा परन्तु उक्त अर्थ ही समीचीन है।

**टिप्पणी**—८२वीं रमैनी की तृतीय चौपाई में 'तिय' शब्द बहुत विवादग्रस्त है और उसके पाठ-भेद भी हस्तलेखों में एवं छपी पोथियों में अनेक हैं। पाठभेद–तिय माहीं, ताहि समाई, सोती ई माई' "सो ताहि भलो रहै तेहि माही" इत्यादि पाठ-भेद पाए गए हैं। उनमें से कोई न कोई पाठ स्थिर रखना ही पड़ेगा, इसलिए स्वाद अनन्त देखते हुए 'तिय' पाठ स्थिर रखा जा रहा है। जो स्त्री का पर्यायवाची है।

**स्पष्टार्थ**—संसार में विषय-सुख रूपी एक वृक्ष उत्पन्न किया गया

परन्तु वह समझ में नहीं आया, क्योंकि वह माया विषयजन्य वृक्ष है, जिसमें चारों युगों से पत्ता एवं स्कन्द के रूप में ६ चक्रवर्ती सम्राट लोग लगे हुए हैं और फल स्वरूप पाप और पुण्य लगे हुए हैं। जिसको पाप एवं पुण्य करने वाले अधिकारी लोग खाते हैं। उस विषय-सुख का स्वाद असीमित है जो कहने में नहीं आता है। मनुष्य पुनः पुनः अनेक चरित्र उपाय व कर्मं करके उसी में लग जाता है, वह विषय-सुख, स्त्री-सुख के रूप में सर्वाधिक है। सभी जीवधारी प्राणी उसी में लगे रहते हैं परन्तु वह विषय सुख क्षणिक है, जैसे नट का खेल क्षणमात्र के लिए आश्चर्य में मनुष्यों को डाल देता है उसी प्रकार से विषय-सुख भी क्षणमात्र के लिए सुस्वादु लगता है, स्थायी नहीं होता, और नटवट खेल को वही समझता है, जो उस खेल को स्वयं करता है अर्थात् नट यह जानता है कि यह मेरी कला है, यह सत्य नहीं है। उसी प्रकार से परमेश्वर भी इस संसार वृक्ष को बना करके उस पर दोल्हा-पत्ती खेलता है। उस खेल से संसारी मनुष्य भ्रम में पड़ जाते हैं और संसार को सत्य मानने लगते हैं परन्तु परमेश्वर सारी बातों को जानता है, इसलिए वह कभी क्लेश कर्म में नहीं पड़ता है। यह जगत असत्य है। इसके सुख क्षणिक हैं। इस तत्त्व को मोहित असमर्थं व्यक्ति देखने की युक्ति भी नहीं जानता। सामान्य मनुष्य की ही बात नहीं है। उस प्रभु की महिमा और शक्ति को विरंचि भी नहीं देख पाता। वह प्रभु की शक्ति जगत रूपी खेल का निर्माण करके परोक्ष रूप से ही छिपे-छिपे अन्तर्ध्यान हो जाती है परन्तु परदे के अन्दर रहने के कारण उसकी बानि कहिए बात समझ में नहीं आती। साहब कहते हैं जो मनुष्य उसकी वाणी को पहचान लेता है अर्थात् जगत के वास्तविक स्वरूप को जान लेता है, वही बच जाता है। अन्य जगत विमोहित मनुष्य अनेक प्रकार के कष्ट के भागी होते हैं।

## रमैनी ८३

**छत्री करे छत्रिया धरमा। सवाई बाके बाढ़े करमा॥**
**जिन अवधू गुर ग्यांन लखाया। ताकर मन ताही ले धाया॥**

**छत्री सो जो कुटुम से जूझे । पांचो मेटि एक को बूझे ॥**
**जीवहिं मारि जीउ प्रतिपालै । देखत जनम आपनो हारै ॥**
**हालै करें निसाने घाऊ । जूझि परै तहं मनमथ राऊ ॥**

**शब्दार्थ**—छत्री–क्षत्रिय, छत्र, छत्रायते इति छत्री–क्षत्री वह है जो अपने संकट सहकर प्रजा जनों की रक्षा करे । छत्रिया–क्षत्रिय । धरमा–क्षत्रिय धर्म । सवाई–जो एक में एक गुण वृद्धि होवे अर्थात् जिसको चौथाई कहते हैं, वह सवाई है । बाके–उसके । बाढ़े–वृद्धि को प्राप्त होता है । करमा–कर्म फल । जिन–जो । अवधू गुर–स्त्रीरहित महात्मा, माया मुक्त । ग्यान–आध्यात्मिक उपदेश । लखाया–देखाया, बताया । ताकर–उसका । ताही–उपदेशक गुरु का । धाया–दौड़ा, गया, धारण किया । कुटुम–सम्बन्धी जन, स्व परिवार । जूझे–संघर्ष करे, लड़े । पाँचों–शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध । मेटि–नष्ट कर । एक–परमब्रह्म परमात्मा । बूझे–समझे बिचारे । जीवहिं–जीव को । मारि–मारकर । प्रतिपालै–रक्षा करे । हारै–नष्ट करें, पराजय । हालै-त्वरित, शीघ्र, कांपै । निसाने–लक्ष्यभेद । घाउ–घाव, ब्रण, चोट । जूझि परै–संघर्षरत हो गया । तहं–वहाँ । मनमथ–कामदेव, विषय उद्रेक वायु । राऊ–राजा ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि संसार में एक सुख का वृक्ष उत्पन्न किया गया, जो माया जन्य था, इसलिए अज्ञ मनुष्य उसको समझ नहीं पाया । पाप-पुण्य रूपी फल उसमें लगे जिसको अधिकार था भोगने का वह भोगता है परन्तु नट के खेला के समान सारा व्यवहार है, यह मोह से ग्रसित मनुष्य नहीं जानता है और अन्त में हानि उठाता है । अब नीचे कहा जा रहा है कि इस विषय-सुख से जो दूर हो जाता है अर्थात् इसको जो नहीं भोगता है, वही क्षत्रिय है ।

**भावार्थ**—यहाँ पर क्षत्रिय शब्द का दो अर्थ है । प्रथम क्षत्रिय वह है जो लोक में अपने वर्ण के अनुसार क्षात्र कर्म करता है, अर्थात् देश की रक्षा के निमित्त आये हुए शत्रुओं का पराजय करता है और अच्छी प्रकार से अपनी प्रजा का पालन करता है । अपने आश्रित सभी को संतुष्ट करता

है। साथ ही परलोक के लिए दान-पुण्य यज्ञ आदि करता है जो ऐसा क्षत्रिय है, जिससे सभी जनता प्रसन्न रहती है तो उसके कृत में एक गुना श्रीवृद्धि हो जाती है और उसके साहस वाले कर्म में भी वृद्धि हो जाती है अर्थात् प्रजापालन करने में और अधिक सुयोग्य हो जाता है। दूसरा क्षत्रिय वह है जो अपने अन्तराय शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है जिनमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अविवेक, अशौच, अदाया ये सब अन्तराय शत्रु हैं जो इन पर विजय प्राप्त करके अपनी वृत्ति को सत्य, अहिंसा में लगा देता है और जो आत्मतत्त्व का चिन्तन करता है, प्रभु की भक्ति करता है, अपनी वाणी के द्वारा मनुष्यों को सुमार्ग पर लाता है, अपराधियों पर क्षमा करता है, विपत्ति में धैर्य धारण करता है, जो तीन प्रकार के हिंसाओं से दूर रहता है, अपने शुद्धाचरण पर चलते हुए दूसरों को उधर प्रेरित करता है, जो सत्यासत्य का विवेक करता है, ऐसा व्यक्ति दूसरा क्षत्रिय है और उसके आत्मचिन्तन रूपी धर्म में सवाई वृद्धि होती है। सद्गुरु कबीर ने यहाँ पर दोनों प्रकार के क्षत्रियों का उल्लेख किया है। उनका कहना है कि इन दोनों प्रकार के क्षत्रियों के अपने धर्म पर स्थित रहने पर उनके पुण्यों को वृद्धि होती है और वे संसार में सुखी रहते हैं। उनका कहना है कि संसार में एक ही प्रकार के उपदेशक महात्मा नहीं रहते, जिन महात्माओं को जहाँ से ज्ञान उत्पन्न होता है, उसी ज्ञान के द्वारा अपने जिज्ञासुओं को उपदेश देते हैं। इसलिए जो अवधूत गुरु अपने अनुभव गम्य से जिस ज्ञान को जिज्ञासुओं को लखाया व दिखाया, उस जिज्ञासु का मन उसी महात्मा के ज्ञान के लिए दौड़ा करता है अर्थात् अपने-अपने गुरुओं के अनुसार सभी मनुष्य आचरण करते हैं और तद्वत उपदेशों को उसी अनुसार धारण करते हैं। आगे पुनः कहते हैं कि वास्तविक क्षत्रिय वही है जो पंच ज्ञानेन्द्रियों के विषय से एवं काम, क्रोध, लोभ, मोहादि से संघर्ष करता है और उन पाँचों अन्तरायों को नष्ट करके एक परमतत्त्व का चिन्तन करता है। वही वास्तविक क्षत्रिय है और जो क्षत्रिय निर्बल पशुओं को मारकर, निर्बल

प्राणियों को मारकर अपने जीवन एवं अपने परिवार का प्रतिपालन करता है वह वास्तव में क्षत्रिय नहीं है। वह देखते-देखते मनुष्यों के अपने मानव जीवन को हार जाता है, पराजित कर देता है अर्थात् नष्ट कर देता है। इसलिए वह वास्तविक क्षत्रिय नहीं है। यहाँ पर तात्पर्य यह है कि मनुष्य को कभी हिंसा नहीं करनी चाहिए। सभी पापों का मूल हिंसा है। हिंसा से अशान्ति बनी रहती है। हिंसा, हिंसा को उत्पन्न करती है जो मनुष्य शरीर से किसी का प्रतिघात करता है, वह शरीर से पीड़ित होता है, जो मनुष्य किसी को वाणी से प्रताड़ित करता है, वह वाणी से प्रताड़ित होता है, जो मनुष्य मन से किसी का अहित सोचता है, वह मन के द्वारा संतप्त होता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण सबके समक्ष है जो हिंसक प्राणी लोक में हैं जैसे व्याघ्र, सिंह, सर्प, बिच्छू, हिंसक कुत्ते और दूसरे के मारने वाले मनुष्य ये सबके सब छिपे रहते हैं। ये समाज के सम्मुख उपस्थित नहीं होते। जो कम हिंसा करते हैं वे कम डरते हैं। वे कहीं छिपते नहीं। जैसे—गाय, घोड़े, ऊँट, सीधे मनुष्य ये किसी से डरते नहीं। ये समाज में उपस्थित रहते हैं। इनको किसी से भय नहीं है। हिंसा के विषय का खुला अर्थ करने की आवश्यकता नहीं है। परिणाम सबके सामने है। सद्गुरु कहते हैं कि जिसकी हिंसा करनी चाहिए। जिस पर त्वरित लक्ष्य भेदन करना चाहिए। जिस पर चोट पहुँचाना चाहिए वह है कामदेव, वह है मन्मथ, वह है मनुष्यों की बुरी भावना एवं वासना, वह है बुरी चाहना। जिस उपाय से, जिस प्रकार से कामदेव को जीतने के लिए, मन विकार को जीतने के लिए हो सके तो राजाओं के राजा मनसिज को मारना चाहिए और उसी से जूझना चाहिए। यही क्षत्रियों का काम है और वही असली क्षत्रिय है जो मन्मथराज से लड़ते हैं।

साखी

**मन्मथ मरै न जीवै, जीवहिं मरन न होय।**
**सुन्न सनेही राम बिनु, चले अपनपौ खोय॥**

**शब्दार्थ**—मन्मथ–कामदेव। सुन्न–रीता, खाली, निर्जन, एकान्त,

उदार, संजीदा, रहित, अभावयुक्त, अनासक्त, विरक्त, सरल, सीधा-साधा, उटपटांग, अर्थशून्य, परिच्छेद, आकाश, बिन्दी, अनस्तित्व, ब्रह्म। सनेही–निवासी, सम्बन्धी, स्नेही, प्रेमी, चाहने वाला, प्रेम करने वाला, प्रियतम, प्यार । अपनपौ–अपना पद । खोय–विनाश ।

**भावार्थ**—कहना यह है कि यदि लड़ाई करना है तो मन-विकार से करना चाहिए, शीघ्रातिशीघ्र उस पर विजय पाना चाहिए। सद्गुरु कहते हैं कि यह जो मन्मथ है शीघ्र मरता नहीं। यह बहुत पुष्ट आयु वाला है। यह जीते रहता है। जिसके कारण यह मनुष्य को मार देता है। अपने स्वयं मृत्यु को प्राप्त नहीं होता है अर्थात् न मनमथ मरता है न मनुष्यों की वासना मरती है तो परिणाम यह होता है कि जो परम एकान्त एक निरन्तर रहने वाला अत्यन्त स्नेही प्रिय राम था, उसको मनुष्य प्राप्त नहीं कर सका। अन्त में जो अपना परमपद था, उसको नष्ट कर दिया और मानव शुभाशुभ कामना के साथ इस संसार से चल बसा।

**विशेष**—जो व्यक्ति अपने-अपने कर्म में नियत रहता है और ठीक रूप से अपना कार्य करता है तो उसके कर्मफल में एक चौथाई की वृद्धि होती है। प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि जिसका जो गुरु उपदेश दिया है, उसके अनुसार आत्म चिन्तन करें और उसी में मन लगाकर लगातार प्रभु का चिन्तन करें और जो पाँच कुटुम्बी अन्दर में हैं–शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध व काम क्रोध, मोह, मद, मत्सर ईर्ष्या, असूया, पैशून्यता, परिवाद ये पाँचों के गुण एवं कार्य है, इनका नाश करके एक जो जीवात्म तत्त्व है, उसी को समझने का प्रयत्न करें। अन्य प्राणियों की हत्या करके उनके मांस द्वारा अपना एवं अपने परिवार का भरण–पोषण न करें। किसी का मान सम्मान, किसी का धन–दौलत, किसी का हाथी-घोड़ा, किसी की बहु-बेटी का अपहरण न करें। ऐसा जो करते हैं वे लोग देखते-देखते शीघ्रातिशीघ्र नष्ट हो जाते हैं। जो काम करणीय है, वह है मन

की वासना को नाश करना। मन की वासना पर निशाना साधना चाहिए। मन की वासना पर घाव करना चाहिए। यही मन की वासना ही विकारों का राजा है। जब इसका नाश हो जाएगा तो मानव-चित्त निर्मल हो जाएगा। चित्त निर्मल होने पर स्वयं आत्मशुद्धि हो जाएगी। आत्मशुद्धि होने पर वृत्ति एकाग्र हो जाएगी। स्वतः वह परमतत्त्व का चिन्तन करने लगेगा और अन्त में परमतत्त्व प्राप्त कर सदा के लिए अमर हो जायेगा। यदि मनमथ के मारने में मनुष्य समर्थ नहीं होता है अर्थात् जब तक मन विकार नहीं छूटता है, तब तक मनुष्य को शान्ति नहीं मिलती है। वह अधर में लटका रहता है। न वह जी पाता है, न मर पाता है। वह बहुत प्रकार के कष्टों को भोगते रहता है। वासना के अन्त न होने पर जो एक प्रेमी राम था, उसकी प्राप्ति के बिना यह संसार का मनुष्य अपना जो स्वत्व था उसको नष्ट कर दिया अर्थात् उसके स्वत्व को मन की विकृति वासनाएँ नष्ट कर दीं। जिसके कारण आज तक यह जीव संसार में आते-जाते रहा जब तक शून्य कहिए एक राम की प्राप्ति और राम का प्रेम नहीं उपलब्ध होता है तब तक यह आते-जाते रहेगा और कलह-कल्पना का शिकार होता रहेगा। इसलिए संसार के मनुष्यों को चाहिए कि सभी प्रकार के राग-द्वेष, अहंता-ममता को त्याग कर प्रभु के शरणापन्न हो जाय एवं उस परम शून्य को प्राप्त करें जो परिनिर्वाण कहलाता है।

**आशय**—तिरासवीं रमैनी की साखी के तृतीय पाद में 'जो सुन्न सनेही राम बिनु' है। जिसका अर्थ पूरी रमैनी का सन्दर्भ लेकर किया गया है। जो समीचीन है परन्तु सुन्न सनेही शब्द बौद्धों की ओर ले जाता है। जिसका अर्थ होगा शून्य से स्नेह करने वाले बौद्ध लोग ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किये बिना स्वपद की प्राप्ति नहीं कर सकते। इस अर्थ के अनुसार बौद्धों के तथाकथित वाक्य से कि कबीर साहब भी बौद्धों के अनुयायी हैं यह पूर्णरूप से निर्मूल हो जाता है। यद्यपि कबीर साहब बौद्ध निःसृत नाथों के कुछ शब्द लिये हैं जो उस समय वैष्णव

सम्प्रदाय में व्यवहृत थे परन्तु सिद्धान्तः कबीर साहब नाथों से कुछ लिया हो यह कहना कम जँचता है। जहाँ तक कबीर साहब के हठयोग कुण्डलिनी जागरण की बात है। वह सिद्धान्त किसी न किसी रूप में पातंजलि योग दर्शन में विद्यमान पाया जाता है। कबीर साहब की कुछ बातें कश्मीरी शैव दर्शन से भी मिल सकती हैं। बौद्धों का यह कहना उचित नहीं है कि कबीरपंथ बौद्धों का साथ छोड़कर ब्राह्मणों के सामने माथा टेक दिया। क्योंकि प्रत्यक्ष रूप में कबीर साहब ने शून्यवाद का विरोध किया है और नाथों को लक्ष्य कर यहाँ तक कह डाला कि, 'अलख लखौ अलखै लखौ लखौ निरंजन तोंही' यह उपेक्षा कबीर साहब की स्वाभाविक नहीं है। बौद्ध और नाथों पर घोर कटाक्ष है इसलिए कबीर साहब को बौद्ध और नाथों से कभी भी सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता है।

# रमैनी ८४

## उपसंहार

**ऐं जियरा तैं अपने दुखहिं संभार। जे दुख व्यापि रहल संसार ॥**
**माया मोह बंधा सभ लोई। अलपै लाभ मूल गौ खोई ॥**
**मोर तोर मैं सभैं विगुरचा। जननी ओद्र गरभ मंह सूता ॥**

**शब्दार्थ**—ऐं–हे। जियरा–जीव, मनुष्य। तैं–तू। अपने–निज। दुखहिं –दुख को। संभार–संभारन, निवारण, दूर, बचाव। जे–जो। व्यापि–व्याप्त। लोई–लोग। अलपै–थोड़े। मूल–आत्मधन, प्रभुभक्ति। गौ–गया, दिया। खोई–नष्ट। मोर, तोर–मैं मेरी–तै तेरी। सभैं–सभी। विगुरचा–फँसा, विगूचन, किंकर्तव्यविमूढ, असमंजस, अड़चने, कठिनता, दिक्कत, बन्धन। ओद्र–उदर। गरभ–गर्भाशय में। मंह–में। सूता–शयन।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि क्षत्रिय वही है जो अपने क्षात्र कर्म को नियम से करता है तब उसके कर्मफल में सवाई की वृद्धि होती है और क्षात्र कर्म एक ही जैसा नहीं है। जिस देश के क्षात्रधर्म के निर्देशक लोग जिस तरह के उपदेश दिए हैं। लोग उसी तरह के क्षात्रकर्म का अनुपालन करते हैं। क्योंकि यहाँ पर जिन अवधू गुरु का अर्थ ही है कि

क्षत्रियों का एक ही उपदेश नहीं है, जिस देश का क्षत्रिय जिस गुरु से जो ज्ञान पाता है उसी का वह अनुपालन करता है परन्तु मूलभूत क्षात्र धर्म सबका एक ही है सभी के लिये देश रक्षा, प्रजापालन एवं अध्ययन-अध्यापन, जप-तप, स्वाध्याय निर्देश किया गया है। चाहे वह भारत का क्षत्रिय हो, चाहे वह अरब का क्षत्रिय हो, चाहे वह इंग्लैंड का हो अथवा किसी भू-भाग का हो। अन्त में महत्व इस बात का दिया गया कि वास्तविक क्षत्रिय वही है, जो निर्बल प्राणियों का वध नहीं करता है और अपने शरीरस्थ पाँच ज्ञानेन्द्रियों के विषय से जूझता है, वही वास्तविक क्षत्रिय है। अन्य मारने-काटने वाले क्षत्रिय नहीं हैं और यह भी कहा गया कि जो क्षत्रिय भोग-विलास में रह जाते हैं तो ये अधर में लटक जाते हैं। और उन्हें परम शून्य स्वरूप निर्वाण पद प्राप्त नहीं होता है। वे अपने अस्तित्व को खोकर चले जाते हैं निचली रमैनी में सद्गुरु उपसंहार के रूप में उन पिछली सभी रमैनियों के सारभूत तत्त्वों को कहा है जिन दुःखों से सारा जगत संतप्त है, अन्तिम रमैनी में उससे बचने के लिए चेतावनी दे रहे हैं।

**भावार्थ**—अब गुरु महाराज कहते हैं कि हे मनुष्यों ! तुम अपने दुःख का स्वयं निवारण करो, संवारण करो, जो दुःख सारे संसार में व्याप्त है, उसके दूर करने का उपाय सोचो। यहाँ दुःख से तात्पर्य है दैहिक दुःख, भौतिक दुःख और दैविक दुःख से है दैहिक दुःख वह है जिसका विवरण नीचे दिया जा रहा है—

बात, पित्त, ज्वर, अतिसारादि दुःख हैं। महर्षि कपिल के मत से दैहिक दुःख दो प्रकार के होते हैं—१. शारीरिक २. मानसिक। जिसमें शारीरिक दुःख वात, पित्त, श्लेष्म, विपर्यय, यकृत, क्लेश, ज्वर, अति सारादि और मानसिक दुःख प्रिय-वियोग, अप्रिय संयोगादि। इसके और भी दुःखों की शाखायें हैं। किसी भी प्रकार से शरीर में वेदना उत्पन्न होना, अनेक प्रकार का ज्वर हो जाना, घाव हो जाना। इसी प्रकार से शारीरिक कष्ट जन्य जो दुःख हैं वे सब 'दैहिक' कहलाते हैं। आधि-

भौतिक दुःख ये चार प्रकार के भूत ग्राम निमित्त हैं। जो इस प्रकार के हैं मनुष्य, पशु, मृग, पक्षी, सर्पदंश, मसक, ढ़ील, जूवाँ ऊँक खटमल, मत्स्य, मकर, घड़ियाल, स्थावर आदि और जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज आदि।

तात्पर्य यह कि आधिभौतिक दुःखों में उन सभी दुःखों को मानना चाहिए जो पंचभूतों के द्वारा प्राणियों को होते हैं।

अब आधिदैविक दुःख-शीत, गर्मी, बात, वर्षा, सन्निपात, दानव, दैत्य एवं मनुष्यों के द्वारा जो दुःख होता है वे सब दैविक दुःख में आना चाहिए। इसी प्रकार से आध्यात्मिक दुःख में वे भी दुःख हैं जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अविवेक, ईर्ष्या, मद, मत्सर जो भी अज्ञान जन्य दोष मनुष्य के अन्दर हैं और उनके द्वारा जो कष्ट होता है वे सब आध्यात्मिक दुःख हैं।

इसी में मान-सम्मान, धन, जन के बिछोह में सब आध्यात्मिक एवं मानसिक दुःख हैं। उक्त इन तीनों प्रकार के दुःख से सारा संसार व्यथित है। इसी से सभी लोग कराह रहे हैं। अशान्त हैं। इधर से उधर दौड़ते रहते हैं।

उक्त दुःखों का हेतु माया-मोह है जिसमें सभी लोग बंधे हुए हैं। माया उसे कहते हैं जो परमसत्ता और अविद्या के बीच की है। दूसरा नाम ममता भी है और ईश्वरीय शक्ति भी है। एक दूसरे से लगाव को भी माया कहते हैं। इस लगाव के कारण संसार के सभी लोग माया-मोह में पड़कर फँस गए हैं और माया का जो स्वरूप स्त्री है, पुत्र है, घर है, द्वार है, लोक-लाज है, मान-सम्मान है ये सब वास्तविक माया के स्वरूप हैं। सद्गुरु कहते हैं कि इस माया के द्वारा अल्प लाभ होता है, थोड़ा लाभ होता है। उनके मत में माया में लगा हुआ मनुष्य, थोड़े लाभ में लगा हुआ व्यक्ति उस परम सत्य को भूल जाता है जो उसका मूल-स्वरूप है। क्योंकि संसार के बन्धन में पड़ा रहता है जिसके कारण उसका मूल-धन खो जाता है। दूसरा माया का स्वरूप यह भी बतला रहे हैं मोर-

तोर यह मेरा पुत्र है। यह मेरा धन-धाम है। यह मेरा परिवार है। यह मेरा सम्बन्धी है। वह तेरा है। वह तूँ है। यह मैं हूँ इत्यादि के बखेड़े में सभी लोग फँसे हुए हैं। असमंजस की स्थिति में पड़े हुए है। किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो रहे हैं। जिसके कारण अनेक अड़चने, अनेक कठिनाइयाँ, अनेक दिक्कतें मनुष्यों के सामने उपस्थित हैं। जिसके कारण मनुष्यों का विकास नहीं हो सकता और वास्तविक रहस्य भी उसको नहीं मालूम होता। जब वास्तविक रहस्य मनुष्यों को मालूम नहीं होता है तो बार-बार इस संसाराब्धि में माता के उदरस्थ गर्भस्थान में आकर नव महीने तक सोता है।

**बहुतक खेल खेलैं बहुरुपा। जन भौंरा अस गये बहूता॥**
**उपजि बिनसि फिरि जोइन आवे। सुख को लेस सपनेहु नहिं पावै॥**
**दुख संताप कष्ट बहु पावै। सो न मिला जो जरत बुझावै॥**

**शब्दार्थ**—बहुतक–बहुत। खेल–क्रीड़ा, कर्म। खेलैं–करें। बहुरूपा–बहुत प्रकार का। जन–संसार के मनुष्य जैसे। भौंरा–भ्रमर। अस–ऐसे। बहूता–बहुत लोग। उपजि–जन्म लेकर। बिनसि–मरकर। फिरि–पुनः जोइन–माता के गर्भ में। लेस–रंचक, थोड़ा भी। सपनेहु–स्वप्न में भी। दुख–कष्ट। संताप–सन्तप्त। कष्ट–वेदना। जरत–जलते हुए।

**भावार्थ**—अज्ञान के कारण मनुष्य माया-मोह में लगा रहा। इसलिए जननी के गर्भ में सोते रहा। माता के गर्भ से बाहर होने पर यह मानव अनेक प्रकार का कर्म करता है। बहुत प्रकार का खेल खेलता है। अनिश्चित इसके व्यवहार होते हैं। जिसके कारण इसको योनियों में जाने का ठिकाना भी नहीं रहता। इन मनुष्यों का अन्त उसी प्रकार से हो जाता है जिस प्रकार से भ्रमर कमलबन में जाकर सायंकाल तक कमल के पुष्पों का रस लेने लगता है। सूर्यास्त होने पर वह विषय-सुख को छोड़ नहीं पाता। अन्त में सोचता है कि चलो इसी में रहेंगे। प्रातः सूर्योदय होगा तब पुनः निकलकर चले जाएँगे। परन्तु बात विपरीत हो जाती है। दिन भर रस लेते-लेते भ्रमर अन्त में भी नहीं छोड़ता है। अत्यधिक

आसक्ति के कारण उसी में पड़ा रहता है। सूर्य के अन्तर्ध्यान होने पर कमल पुष्प के मुख बन्द हो जाते हैं, और भ्रमर का नाश हो जाता है। इसी प्रकार से संसार के मनुष्य यावत् सांसारिक विषय-सुख में लगे रहते हैं, सोचते हैं चलो वृद्धावस्था में कुछ कर लेंगे। दान-पुण्य कर लेंगे। पत्थर-पानी पूज लेंगे। भवसागर पार हो जाएँगे। यही सोचते-सोचते संसार का सुख लेते-लेते ये संसार के मनुष्य नष्ट हो जाते हैं, मर जाते हैं। इसी प्रकार से बार-बार जन्म-मरण होता रहता है और पुनः पुनः माता की योनि में आते रहते हैं, परन्तु यत्किंचित भी सुख इन आने-जाने वाले मनुष्यों को स्वप्न में भी नहीं मिला। शान्ति नहीं मिली। उलटे संसार के सुखों से संसार के सम्पर्क से बहुत दुःख हुआ। बहुत क्लेश हुआ और संताप इतना हुआ कि विरह-वेदना संसार का बिछोह सहन नहीं हुआ। रात-दिन मनुष्य तृष्णा से जल रहा है। संतप्त हो रहा है। कामाग्नि जला रही है। क्रोधाग्नि जला रही है। ईर्ष्या जला रही है। पुत्र का अभिमान जला रहा है। शारीरिक शक्ति जला रही है। परिवार के लोग जला रहे हैं। जो भी संसार में नाते-गोते या सत्ता-सम्पति है वे सब मनुष्यों को जला रहे हैं। जिसके कारण उस संसारी मनुष्यों को बहुत प्रकार का कष्ट मिल रहा है और इस व्याकुल मनुष्य को ऐसा कोई नहीं मिला जो जलते हुए मनुष्य को बुझा देवे। यहाँ 'सो' से तात्पर्य ज्ञानी गुरु का है। उन अज्ञानी मनुष्यों को कोई संत सद्गुरु या ज्ञानी पुरुष नहीं मिला जो इनकी तृष्णाग्नि को बुझा देता। आत्मज्ञान दे देता इनको शीतल कर देता। इनके सारे संताप को हर लेता। उक्त प्रकार के गुरु न मिलने के कारण ये संसारी मनुष्य जल रहे हैं।

**मोर तोर में जरे जग सारा। ध्रिग स्वारथ झूठा हंकारा ॥**
**झूठी आस रही जग लागी। इनते भागि बहुरि पुनि आगी ॥**
**जेहि हित कै राखेहु सब लोई। सो सयान बांचा नहिं कोई ॥**

**शब्दार्थ**—जरे–जले। ध्रिग–धिक्कार, बेकार, अनावश्यक। स्वारथ–स्वार्थ। हंकारा–अभिमान, अहंपन। आस–आशा, कामना, तृष्णा।

लागी–लगा रहा। जग–मनुष्य। इनते–इधर से, इससे। आगी–अग्नि। लोई–लोग। सयान–बुद्धिमान, चतुर। बांचा–सुरक्षित, शेष।

**भावार्थ**—और इसी कारण मोर-तोर इनका नहीं छूट रहा है। क्योंकि मोर-तोर अज्ञान में ही होता है। यह संसार के सभी मनुष्य मोर-तोर में ही पड़कर जल रहे हैं। पहले भी संसार इसी में जल रहा था और जलना भी इनका बेकार के स्वार्थ में है। जिस स्वार्थ से इनका कोई लाभ नहीं है जो झूठा है। कभी सत्य होने वाला नहीं है। परन्तु उसका बहुत बड़ा अहंकार करते हैं। यदि कोई मेरा होता तो मेरे साथ जाता। यदि तेरा होता तो तेरे साथ जाता। यह न सोचकर उक्त बवाल में लगे हुए हैं जिसके लिए इनको बहुत धिक्कार है। ये संसारी प्राणी असत्य कामनाओं में लगे हुए हैं, जो इनके काम का नहीं है जो देखने मात्र से सत्य है। संसार का सम्बन्ध छोड़कर यदि ये किसी जगह शान्ति के लिए जाते हैं कि वहाँ मैं जाऊँगा तो बच जाऊँगा तो इनको वहाँ भी अग्नि दीखती है। अर्थात् संसार के दुःखों से व्यथित होकर मनुष्य सोचता है कि किसी धार्मिक के पास चलें। किसी गुरु के पास चलें तो वह मुझे इस जलती हुई अग्नि से शान्त करेगा। ये बहुत से सत्कर्म करके इस लोक से दिव्य लोकों में, स्वर्ग के लोकों में जाते हैं और जिनको अपना हित समझते हैं और सभी लोग उन लोकों को बहुत सुरक्षित समझते हैं। तो साहब कहते हैं कि इस संसार से जलने के भय से दिव्य लोकों में जाते हैं। परन्तु वहाँ भी राग-द्वेष रूपी अग्नि जलती रहती है। वहाँ भी इन मनुष्यों को शान्ति नहीं मिलती है जिनको ये अपना हितैषी समझते हैं कि बड़ा पंडित है बड़ा सिद्ध है वह भोग में योग सिखाता है। भोग में समाधि लगवाता है। प्रवेश पत्र या पास लेकर घूमता है। वह सुख मार्गी है। वह जयगुरुदेव है। वह अमुक योगी है। वह शिव योगी है। उसके यहाँ जाने से हम बच जायेंगे। परन्तु वहाँ तो और भी अग्नि लगी हुई है। वहाँ भी उसका बचाव नहीं होता है। वहाँ वह और भ्रष्ट होकर संसार गर्त में सदा-सदा के लिए गिर जाता है और या सयाने जीव नहीं बचे हैं जो बड़े बुद्धिमान

थे, जो लम्बी-चौड़ी हाँकते थे। जो बड़े-बड़े मठों के आचार्य थे, जो कई एक विषय के आचार्य थे। जो बड़े-बड़े मन्दिरों को घेरे हुए हैं, जो बड़ी-बड़ी पदवियाँ लिए हुए हैं। वे भी मान-सम्मान के लिए एवं ऊँच-नीच बनने के लिए जल रहे हैं। वे तृष्णाग्नि से भी नहीं बचे। कोई जाति के मद में जल रहा है। कोई धन के मद में जल रहा है। कोई शरीर के मद में जल रहा है। कोई अच्छे प्रवचन के मद में जल रहा है। इन तमाम प्रकार की अग्नि उन तमाम लोगों को घेरे हुए है, जिसको लोग समझते हैं ये बचा हुआ है परन्तु ये सूक्ष्म वासनाएँ उनपर भी आधिपत्य जमाए हुए हैं। उनसे कल्याण होने वाला नहीं है। जब तक कि सद्गुरु आत्मवेत्ता न मिल जाय तब तक मनुष्यों का उद्धार होने वाला नहीं है तब तक वह जलता रहेगा।

साखी

**आपु आपु चेतै नहीं, कहौं तो रुसवा होय।**
**कहै कबीर जो आपु न जागे, निरस्ति अस्ति न होय॥**

**शब्दार्थ**—आपु आपु–अपने अपने, स्वयं। चेतै–चेतता, सावधान। कहौं–कहूँ। रुसवा–रंज, क्रोधित। निरस्ति–जो सत्य नहीं है। अस्ति–जो सत्य है।

**भावार्थ**—अब गुरु महाराज कहते हैं कि ये संसार के मनुष्य अपने स्वयं चेतता नहीं, सावधान नहीं होता, यदि मैं कहता हूँ, सावधान करता हूँ,चेताता हूँ तो क्रोधित हो जाता है, रूस जाता है। कोहां जाता है हमसे बोलता नहीं है, कहता है कबीर हमारी आलोचना करते हैं। कबीर हमारे आचार्यत्व को ललकारते हैं। हमारे पांडित्य को ललकारते हैं। हमारे समाज को ललकारते हैं। हमारे ऊपर व्यंग्य करते हैं। हमारी सुख-सुविधा को नकारते हैं। हमारी गुरुडमता को नकारते हैं। ये तो कहते हैं सारा संसार मिथ्या है, असत्य है। भला इनकी बात कौन सुने ? जो इस संसार को सँवारने के लिए, चेताने के लिए बड़े-बड़े देव-दूत, बड़े-बड़े अवतार हुए हैं कबीर उनकी भी आलोचना करते हैं। कबीर साहब कहते हैं कि मैं

ठीक कहता हूँ तुम अपने आचार्यत्व का पालन नहीं करते हो। तुम अपने धर्म से विमुख हो। तुम सही बात से विमुख हो। तुम्हारा जो कर्त्तव्य है। उससे तुम गिर गए हो। तुम्हारी उलटी दशा हो गयी है। तुम सीधे को उल्टा समझ रहे हो। तुम संसार को सत्य मान रहे हो। यदि तुम्हारी मान्यताएँ सही होतीं तो तुझे मेरे कहने पर दुःख नहीं होता, क्रोध नहीं होता। तूँ शान्ति से मेरी बात सुनता। जो तुझे अच्छा लगता उसको सुनता, उसको करता। तुम हमारे उपदेशों को नकार रहे हो। इसलिए तुम्हारा कल्याण कैसे होगा। मैं कबीर कहता हूँ कि जो अपने आप नहीं जगेगा, अपने आप नहीं चेतेगा, वह निरस्ति कहिए असत्य जगत में निवास करेगा और जगत को सत्य मानेगा और संतप्त रहेगा। अस्ति कहिए कभी सत्य का ज्ञान उसे नहीं होगा। तात्पर्य यह हुआ कि जो मनुष्य अपने स्वयं विचार कर नहीं देखता है। वह निरस्ति मिथ्या संसार में लगा रहता है। जो सत्य है, जो आत्मा है, जो ईश्वर है, जो ब्रह्म है उसकी प्राप्ति उसको नहीं हो सकती है।

**विशेष**—सद्गुरु कबीर संसार के मनुष्यों से कहते हैं कि हे मनुष्यों! जो तुम्हें अज्ञानजन्य दुःख सता रहा है उसका संवारण करो। जिस दुःख से सारा संसार व्याप्त है, वह मोह-माया वाला दुःख है जिसमें सब लोग बँधे हुए हैं। इस संसार की वस्तुओं से अत्यल्प लाभ है जिसके कारण मनुष्य अपना मूल तत्त्व जो आत्मा है, जो आत्मज्ञान है उसको खो देता है और इस संसार के मेरे-तेरे में बँधा रहता है। जिसके कारण माता के जठर ज्वाला में इसको सोना पड़ता है और गर्भ से बाहर आने पर अनेक प्रकार का कर्म रूपी खेल करता है। परिणाम यह होता है कि जैसे भौंरा बेचारा कमल का वास ले-लेते सूर्यास्त होने पर उसी में ढक जाता है और विनाश को प्राप्त हो जाता है। उसी प्रकार से ये संसार के मनुष्य कमल भ्रमर की भाँति संसार के सुख में मोहित हैं, जिसको भोगते-भोगते मर जाते हैं, आत्म ज्ञान नहीं हो पाता है और पुनः पुनः जन्मते-मरते रहते हैं और अन्त में माता के अपवित्र स्थान योनि में जाते रहते हैं। तात्पर्य यह हुआ

कि पुरुष माता के गर्भाशय में होकर जाता है। एक बार तो संभोग के समय वीर्य के द्वारा जाता है और पुनः मरने के बाद पुनः अन्न के द्वारा वीर्य में जाता है और वीर्य के द्वारा पुनः माता की योनि में जाता है। इसलिए यह बार-बार आते जाते रहता है। संभोगकाल में इसको थोड़ा सा सुख मालूम होता है परन्तु उसमें लेशमात्र भी सुख नहीं है। भोग जन्य सुख वियोग जन्य संताप, कामाग्नि जन्य कष्ट यह सतत् पाते रहता है। परन्तु संसार में लगे रहने के कारण इसको कोई सच्चा हितैषी, उपदेष्टा नहीं मिलता, जिसके कारण उक्त प्रकार की अग्नियों से बच जाये इस मोर-तोर की अग्नि में सारा संसार जल रहा है, धिक्कार है, लानत है, हराम है। बहुत अल्प स्वार्थ के कारण झूठे मान-सम्मान का अहंकार हो रहा है। इस झूठे मान-सम्मान की चाहना में, कामना में जगत के समस्त प्राणी लगे हुए हैं, इधर से दुःख से ऊबकर भागते हैं। जिस सुख को शान्ति वाला मानते हैं। वह भी जलते रहता है। वहाँ भी अग्नि लगी रहती है अर्थात् संसार के किसी भी सुख में न शान्ति है न शीतलता है, जिन परिवार वालों को, जिन बुद्धिजीवियों को, जिन संरक्षकों को, जिन देवगणों को, जिन गुरुओं को, जिन उपदेशकों को लोग अपना हितैषी मान बैठे हैं, उसमें से कोई भी सयान मेरे देखने से नहीं बचा है। कोई मान-सम्मान से अछूता नहीं है। सभी लोगों को अन्तराय घेरे हुए है। सभी लोग अज्ञान के शिकार हैं। सूक्ष्मातिसूक्ष्म वासनायें घेरे हुए हैं। चाहे वे ज्ञानी हो, चाहे वे ध्यानी हों, चाहे वे मुनि हों, चाहे वे ऋषि हों, चाहे वे योगी हों, चाहे वे पंडित हों, चाहे वे सूर हों, चाहे वे सिद्ध हों जब तक सूक्ष्म वासनाओं से निवृत्त नहीं होंगे, जब तक अन्तराओं का नाश नहीं कर पायेंगे, जब तक वृत्तियों से नये संस्कार बनना बन्द नहीं हो जायेंगे, तब तक ये बच नहीं सकते चाहे वे आकाश के रहने वाले हों, चाहे वे पाताल के रहने वाले हों, चाहे जंगल के रहने वाले हों, चाहे समाज के रहने वाले हों, ये तभी बच सकते हैं, जब मनोविकार का अभाव हो जायेगा। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि स्वयं अपने आप

चेत जाय। मेरी बात सुन कर रंज न हों, रुसे नहीं, मन छोटा न करे हम तो कहते हैं कि जो अपने आप नहीं जागेगा, वह मनुष्य निरस्ति-मिथ्या संसार में लगा रहेगा। उसको अस्ति भाँति प्रिय सत्य का दर्शन नहीं होगा। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि संसार के सारे प्रपंचों को त्याग कर उस सत् चित आनन्द का चिन्तन करे, जो अपने अन्दर विराजमान है, जो अपने साथ है, जो अपने पास है। तभी संसार के दावानल से बचा जा सकता है। अन्यथा कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति, नान्य पन्थः विद्यतेऽयेनाय॥
(यजुर्वेद अ० ३१)

ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

## हरिगीतिका छन्द

अति शुभ रमैनी सार शब्दसु ज्ञान मुक्ति विधायिका।
यह परम पावन गुरु बचन है भक्त-जन चित सोधिका।
जो पठन करिहैं प्रेम से सो पार भव से होंयेंगे।
अब दास गंगा पूर्ण करि निज रूप माँहि समायेंगे॥१॥



ॐ सत्य कबीर परमात्मने नमः

# सबद प्रकरण

## मंगलाचरण

**दोहा**—गुरु गोविन्द वाणी विमल, जननायक मुनि संत ॥
आदि अन्त जिसका नहीं, चेतन रूप अनन्त ॥ १ ॥
सु सहयोग अब कीजिए, अर्थ ज्ञान के हेत।
शब्द-सिन्धु आरण्य महा, अर्थ प्रकट नहिं देत ॥ २ ॥
उलटी वाणी अधिक है, योग युक्ति का ज्ञान।
बात कठिन अति दीखती, द्वार बन्द सब जान ॥ ३ ॥
ताला की कुंजी नहीं, कैसे खोला जाय।
सबहीं मिली दाया करो, बने कार्य सब आय ॥ ४ ॥
इस शुभ कारज के लिए, विनय किया सब पाहिं।
लाभ होय अतिशय बड़ा, बसहु बुद्धि महँ आहिं ॥ ५ ॥
गुरु देवन के देव जो, सद्गुरु देव कबीर।
बिघ्न सकल बाधा हरो, अर्थ होय गंभीर ॥ ६ ॥

### छन्द

हरै सर्व बाधा कबीरे अराधा।
प्रभो भक्ति दीजै विमल बुद्धि कीजै ॥ १ ॥
रटो नाम तेरा तुम्ही देव मेरा।
हरो शोक सारे जनन को उधारे ॥ २ ॥

### तोटक वृतम

गुरुदेव गोविन्द गिरासु नमो। जन नायक सन्त मुनीश नमो ॥
नहिं आदि न अन्त अहा जिसका। वह चेतन रूप सदा महका ॥ १ ॥
सहयोग अरु शक्ति हमें दीजै। सब अर्थक भेद उरहिं कीजै ॥
पदहीं वर सिन्धु महा वन है। नहिं अर्थ प्रकट खेदित मन है ॥ २ ॥

नहिं देत सुअर्थ अनुक्तिक है। बहुताहिं प्रकार सुयुक्तिक है॥
उलटी सुलटी बहु वाणि भना। वह वाणिक योग अरु ज्ञान घना॥ ३॥
पर द्वार सभी हैं बन्द सदा। अति है सुकठोर न बोध कदा॥
नहिं कुञ्जिसु ताल विशाल लगा। नहिं खोलि सकै सब देखि भगा॥ ४॥
सबहीं मिलि मोहिं दया करिये। सबकाज बने सब दुख हरिये॥
सुधि कारज मंगल मैं अति हो। करता विनती सबकी जय हो॥ ५॥
अति लाभ सु होय महा जग में। बसिये मम बुद्धि सुमारग में॥
गुरु देवन देव कबीर गुरो। सब विघ्न हरो बाधक सुटरो॥ ६॥

## भक्तियोग सद्गुरु महिमा प्रकरण

**संतो भगती सतगुर आनी।**
**नारी एक पुर्ख दुई जाया, बूझो पंडित ग्यानी॥**
**पाहन फोरि गंग एक निकरी, चहुँदिसि पानी पानी॥**
**तेहि पानी दुइ परबत बूडे, दरिया लहर समानी॥**
**उड़ि माखी तरिवर को लागी, बोले एकै बानी॥**
**वहि मांखी को मांखा नहीं, गरभ रहा बिनु पानी॥**
**नारी सकल पुरखवै खाये, ताते रहेउ अकेला॥**
**कहै कबीर जो अबकी बुझै, सोई गुरु हम चेला॥**

**शब्दार्थ**—संतो–हे संत जन। भगति–भक्ति उसको कहते हैं, जो भाव को उत्पन्न करती है तथा भज् धातु से जिसकी निष्पत्ति होती है। सतगुर–सद्गुरु, आत्मज्ञान को देनेवाला, आत्मज्ञानी। आनी–लाया। नारी–स्त्री, सुबुद्धि। पूर्ख–पुरुष। दुइ–दो। विवेक–वैराग्य। जाया–उत्पन्न हुए। बूझो–समझो। पंडित–बेदज्ञ, ज्ञानी, शास्त्रवक्ता। पाहन–पत्थर, मूलाधार, कन्द। फोरि–तोड़कर। गंग–गंगा, कुण्डलिनी। निकरी–निकली। चहुँ–चारों। दिसि–दिशा। पानी पानी–प्रकाश ही प्रकाश। तेहि–उस। पानी–जल। परबत–पर्वत, आ० काम, क्रोध, राग, द्वेष। बूड़े–निमग्न हो गए, समा गये। दरिया–दरियाव, नदी, समुद्र, कुण्डलिनी।

लहर–तरंग, मनोविकार। समानी–समाविष्ट हो गयी। मांखी–मच्छिका, कुण्डलिनी, सुरति। तरिवर–वृक्ष, सहस्रार। लागी–चढ़ी। बोले–कहे। बानी –अभेद ज्ञान, एकात्म तत्व। वहि–उसका। मांखी–मच्छिका। मांखा–पति, मच्छिका का पुलिंग। नाहीं–नहीं। गरभ–गर्भ, हमल। विनु–बिना। पानी[1]–वीर्य, प्रकाश, स्वेत। सकल–सभी। पुरुख–पुरुष। वै–वह। ताते–इसलिए। सोई–वही। गुरु–ज्ञानी, चेला, अनुसरण करने वाला शिष्य।

**सम्बन्ध**—रमैनी के अन्त में सद्गुरु ने सारभूत सभी रमैनियों का निचोड़ चौरासवीं रमैनी में भर दिया है और जीवों को दुःख से बचने के लिए उसका उपाय भी बताया है और यह कहा कि जो अपने स्वयं नहीं चेतता है, वह दूसरे के चेताने से ठीक से नहीं चेत पाता। यदि दूसरा कोई हित की बात कहता है तो न समझने के कारण कुपित हो जाता है। इसलिए कहा गया कि जो मनुष्य स्वयं आत्मोन्मुख नहीं होता वह सदा संसार में ही आसक्त बना रहता है और उसको सत्य के दर्शन नहीं होते। प्रश्न उठता है कि सत्य के दर्शन कैसे होंगे और वह सत्य का दर्शन कराने वाला कौन होगा। क्योंकि जितने धार्मिक हैं वे प्रायः कहते हैं कि भगवान की प्राप्ति तुझे हो जायेगी और स्वरूप ज्ञानवादी कहते हैं कि स्वरूप का ज्ञान हो जायेगा। साथ ही जीववादी भी कहते हैं कि जीव का ज्ञान स्वयं हो जाएगा पर स्वयं होने का मार्ग कौन सा है। यह कोई बताता नहीं है, केवल वक्तव्य मात्र से यदि सबको स्वरूप ज्ञान हो जाय और हो जाता है तब कोई भी कह सकता है कि हम आत्मज्ञानी हैं। हम प्रभु की प्राप्ति कर लिए हैं। हम आत्मा को जान गए हैं। परन्तु जब तक व्यवहार में उक्त वक्तव्य के लक्षण न घटित हों तब तक कोरा बकवास है। अब सद्गुरु शब्द प्रकरण में सबसे प्रथम आत्मप्राप्ति व आत्मज्ञान प्राप्ति को दर्शाया है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे आध्यात्म प्रेमी संतों! उस परम-भक्ति को जिसके द्वारा मनुष्यों का आत्म कल्याण होता है, जिसको परा

---

१. पानी का अर्थ कोश ग्रन्थों में बहुत अधिक किया गया है यहाँ देना सम्भव नहीं है।

भक्ति कहा गया है, जो परमसुख को देने वाली है। उस अमृतरूपी भक्ति को सद्गुरु महाराज ने इस संसार में लाकर प्रकट किया। जब वह भक्ति सद्गुरु देव के द्वारा इस धराधाम में अवतरित हुई और जिज्ञासु लोग जब उसको करने लगे अर्थात् जब साधक प्रभु का चिन्तन करने लगा, आत्म चिन्तन करने लगा तब उस पराभक्ति से नारी स्वरूपा एक सुबुद्धि उत्पन्न हुई तथा उस पराभक्ति से विवेक और वैराग्य नामक दो पुरुष पैदा हुए। हे वेद के पण्डितों ! हे शास्त्र के ज्ञानियों ! निश्चित रूप से इस तथ्य को समझो। इस प्रकार से पण्डित और शास्त्र वक्ताओं को सम्बोधित करते हुए सद्गुरु कहते हैं कि जब साधक निश्चल हो गया, ध्यान में प्रगाढ़ हो गया, तब मूलाधार स्थित गंगारूपी कुण्डलिनी महाशक्ति कन्द को फोड़-कर सहस्रार की ओर षट्चक्रों को बेधन करती हुई चल पड़ी। जब पाहनरूपी मूलाधार स्थित कन्द फूट गया, कुण्डलिनी शक्ति जग गयी तब चारों दिशाओं में जो अज्ञान तम घेरे हुए था उसका विनाश हो गया। दशों दिशा में प्रकाश ही प्रकाश छा गया। उस परमप्रकाश में काम, क्रोध रूपी दो पर्वत सदा सर्वदा के लिए डूब गए और जो मन रूपी समुद्र में विकारों के तरंग उठते थे, वे भी दरियाव रूपी कुण्डलिनी में सदा-सर्वदा के लिए निमग्न हो गए। वह मच्छी रूप कुण्डलिनी मूलाधार को बेधकर मणिपूरक-विशुद्धि चक्र आदि छवों चक्रों को चीरती हुई परम मंगल स्वरूप सहस्रार स्थित शिव से जा मिली। जब सहस्रार में कुण्डलिनी पहुँच गयी तब साधक को सम्यक ज्ञान हो गया और सारे चराचर में एक ही परमतत्त्व है, साधक को यह भान होने लगा। जब साधक की महाशक्ति ब्रह्मरंध्र में पहुँच गयी तब वह निर्विकल्प समाधि में तल्लीन हो गया। अब प्रश्न उठता है कि कुण्डलिनी महाशक्ति रूपी मच्छिका का कोई पति भी है अर्थात् वह किसी के द्वारा प्रकाशमान होती है या स्वतः प्रकाशित होती है। साहब कहते हैं कि वह स्वतः आत्मशक्ति है, वह किसी से प्रकाशमान नहीं होती, वह स्वयं सबकी प्रकाशिका है। नाथ सम्प्रदाय में कुण्डलिनी को बालरण्डा भी कहा गया है। आगे कबीर साहब ने आदि

कुमारी भी कहा है। वह बिना किसी के संप्रेषण से गर्भ धारण करती है। उसी शक्ति से ज्ञान-विज्ञान का उद्भव होता है और कार्य-ब्रह्म के रूप में जगत को उत्पन्न एवं विनाश भी करती है। वह निर्गुण कला है। वह निर्वाण रूपा भी है। जब वह जग जाती है, जब अपने स्थान से ऊपर आ जाती है, तब वह स्त्री रूपा महाशक्ति जितने शरीर स्थित पुरुष हैं अर्थात् राग-द्वेष, मद-मत्सर, अविवेक, कलह-कल्पना, अहंकार सबको निगल जाती है। सभी काम क्रोध आदि को भस्म करने के बाद अब केवल अकेला आत्म तत्त्व ही रह जाता है। वह पराशक्ति ही रह जाती है। गुरु कबीर कहते हैं कि जो व्यक्ति व पण्डित ज्ञानी अबकि इस तथ्य को समझ लेता है अर्थात् इस मानव तन में पराभक्ति को प्राप्त कर लेता है समझ लेता है वही पुरुष गुरु हो सकता है और हम चेला के सदृश हो सकते हैं अर्थात् जो आत्म तत्त्व को प्राप्त कर लेता है, वह स्वयं गुरु पद प्राप्त कर लेता है और संसार के सभी लोग उसके शिष्य हो जाते हैं अर्थात् उससे लघु हो जाते हैं।

**आशय**—सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि मनुष्यों के उद्धार के लिए सद्गुरु संतजन व मेरे गुरु श्री रामानन्द जी ने इस पराभक्ति को संसार में उत्पन्न किया। जिस भक्ति से सुबुद्धि उत्पन्न हुई। उसके बाद विवेक-वैराग्य उत्पन्न हुए। उस तथ्य को शास्त्र के पंडितों एवं वेद ज्ञाताओं को समझ लेना चाहिए। पश्चात् में वह पराभक्ति उस ज्ञानशक्ति का जागरण कर दी जो मूलाधार स्थित कन्द में छिपी थी। मूलाधार स्थित कन्द में एक अग्निकोण है जिसमें एक शिवलिंग के समान नाल है। उसी नाल में तीन बलय में कुण्डलिनी शक्ति लिपटी हुई है, जो अपनी पूँछ को मुँह में करके अहर्निश सोते रहती है, जिसके कारण मनुष्य को आत्मज्ञान एवं विशेष ज्ञान नहीं होता है। स्मरण रहे कि जब तक कुण्डलिनी जागृत नहीं होती है तबतक मनुष्य को केवल बीस प्रतिशत ज्ञान रहता है। अस्सी प्रतिशत ज्ञान को अपने मुख में बन्द किए हुए कुण्डलिनी सोती है। कुण्डलिनी शक्ति को जगाना कोई सरल कार्य नहीं है। वह करोड़ों में किसी एक की

जागती है वह भी अत्यधिक श्रद्धावान व्यक्ति के ही अन्दर जागती है। जो गुरु में, संत में, माता में, पिता में, ईश्वर में निष्ठा रखता है एवं जानकार गुरु जिसको मिल जाता है। वही महाशक्ति कुण्डलिनी को जगाने में सफल होता है। जबतक महाशक्ति नहीं जागती है, तबतक आध्यात्मिक व्यक्ति-को सफलता नहीं मिलती है। उसको जगाने की अनेक विधियाँ हैं। वह जप से भी जग सकती है, ध्यान से भी। प्राणायाम से भी जग सकती है। किसी भी प्रकार की सच्ची उपासना से जग सकतो है। सबकी पृष्ठभूमि में जानने वाला व जानकार गुरु की आवश्यकता होती है। जब वह साधना के द्वारा निर्मल गंगाजल के सदृश मूलाधार को छेदकर ऊपर निकलती है तब चारों तरफ ज्ञान का प्रकाश छिटक जाता है। उस परम प्रकाश में काम क्रोध रूपी दो पर्वत नष्ट हो जाते हैं प्रकाशरूपी दरिया में मन के सभी विकार भस्म हो जाते हैं और वह परमशक्ति सबको नाश करती हुई ब्रह्माण्ड की ओर बढ़ चलती है। जब गगन गुफा में पहुँच जाती है तब 'एक ही परमतत्त्व हैं' इस प्रकार का वक्तव्य साधक देने लगता है। वह पराशक्ति आत्मरूपा है। उसका कोई पति नहीं है। बिना पति के ही विज्ञान-ज्ञान रूपी डिम्भ को अपने अन्दर धारण करती है और वह जग जाने पर शरीरस्थ जितने अहंकार राग-द्वेषादि पुरुष थे, सबको भस्म कर केवल वही आत्मरूपा आत्मा अकेला रह जाता है। सद्गुरु कहते हैं कि इस मानव तन में जो इस तथ्य को समझ जाता है, वही गुरु या बड़ा है। शेष लोग चेला के समान छोटे हैं। यहाँ हमसे तात्पर्य कबीर साहब का भी है और लोगों का भी है। क्योंकि हम बहुवचन है। यहाँ पर जहदा-जहद स्वार्था है। इसलिए ऐसे स्थलों पर ध्यान पूर्वक सोचना चाहिए। यहाँ पर हम और चेला को छोड़कर सब लोगों का अर्थ है जो संसार की मोह-माया में निमग्न हैं।

**भक्ति व्याख्या**—ऊपर शब्द की प्रथम पंक्ति में भक्ति लाने की बात कही गयी है, जिसको सद्गुरु रामानन्द स्वामी ने लाया। कहीं से लाने का नाम होता है। चौरासी अंग की साखी में लिखा है कि—

भक्ति द्राविण उपजी, लाये रामानन्द।
प्रकट करी कबीर ने, सात दीप नव खण्ड।।

अब प्रश्न यह उठता है कि स्वामी रामानन्द किस भक्ति को लाये ? अथवा कोई भी सद्‌गुरु कौन सी भक्ति लाया। अथवा सद्‌गुरु से ब्रह्मा का अर्थ लिया जाय कि वही भक्ति लाये। यह प्रश्न विचारणीय है। यदि गुरु रामानन्द जी भक्ति लाये, तो क्या वही नव प्रकार की भक्ति जो नवधा भक्ति के रूप में आख्यायित है ? जिसके अन्तर्गत श्रवण, स्मरण, कीर्तन, पादसेवन, अर्चन, बन्दन, सख्य, दास्य, आत्म-निवेदन। क्या इसी नव प्रकार की भक्ति को स्वामी रामानन्द लाये। यदि इसी भक्ति को लाये तो यह भक्ति तो शास्त्रों के अनुसार उनके जन्म के पहले ही उत्तर भारत में प्रचलित थी। क्योंकि रामानुजाचार्य मत के प्रचारक इधर आ चुके थे। यदि उक्त नव प्रकार की भक्ति को गुरु रामानन्द लायें तो उनका क्या महत्त्व रह जाता है ? अस्तु यही भक्ति वे नहीं लाये। उनकी भक्ति इससे भी भिन्न है जिसकी विवेचना ब्रह्म सूत्र के श्री भाष्य में उन्होंने स्वयं किया है। दूसरी बात सद्‌गुरु कबीर अन्य ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर नारदीय भक्ति का उल्लेख किया है। परन्तु वह नारदीय भक्ति भी क्या है ? तो यह विचार करना होगा कि जहाँ-जहाँ पर नारद जी को विषय चर्चा पुराणों अथवा धर्म ग्रन्थों में आयी है। उस-उस स्थान पर नारदजी से क्या कहलवाया गया है। उनसे किस प्रकार की भक्ति कहलवायी गयी है। साथ ही ब्रह्मसूत्र के श्री भाष्य को भी देखना होगा कि गुरु रामानन्द जी ने किस भक्ति का प्रतिपादन किया है। मेरी अपनी जानकारी के अनुसार स्थान-स्थान पर महर्षि नारद ने प्रह्लाद प्रसंग एवं ध्रुव-प्रसंग में यह उपदेश दिया है कि तुमलोग ईश्वर की भक्ति करो, वह भक्ति निम्नलिखित प्रकार की है—अपने सहित सारे चराचर में प्रभु का दर्शन करो। हम भी प्रभु हैं, दूसरा भी प्रभु है और जो कुछ भी देख रहे हो, वह सब प्रभु है। इस प्रकार से चिन्तन करते-करते अभेद-तत्त्व को प्राप्त कर लेता है। यह भगवान नारद के उन

वाक्यों का सारांश है जो प्रह्लाद के प्रति व ध्रुव के प्रति उन्होंने कहा है। इसी प्रकार से श्री भाष्य के अनुसार उस पराभक्ति की व्याख्या प्राप्त होती है जो सबमें एक परमतत्त्व का दर्शन करें। पहले भेद रूप में उपासना करें पुनः अभेद की प्राप्ति हो जाती है। स्मरण रहे कि प्रथम भक्ति व उपासना, भेद में ही होती है। क्योंकि भक्ति शब्द जिस धातु से निष्पन्न होती है वह है 'भज्' धातु और प्रत्यय 'क्तिन' (ल्यूट्)है। तो दोनों के संयोग से भक्ति बनती है जिसका अर्थ होता है सेवन, सेवा करना, किसी का चिन्तन करना, किसी के अच्छे गुणों का अनुसरण करना। तो उक्त प्रकार का चिन्तन व सेवन अभेद में नहीं होता है। ये सब भेद में होता है। इसलिए सर्व प्रथम साधक एवं उपासकों को चाहिए कि भेद बुद्धि से जिसका जो उपास्य हो, उसकी उपासना करे और साथ ही यह चिन्तन करे कि हम उस उपास्य से अभेद हो जायँ। तभी मनुष्य वासनाओं से मुक्त हो सकता है और परमपद की प्राप्ति हो सकती है। यद्यपि नव प्रकार की भक्ति भी अनुत्तम नहीं है। वह भी मनुष्यों के विकास के लिए सर्वश्रेष्ठ है। उसके करने से भी मनुष्यों का उद्धार हो जाता है। यों तो उद्धार का ठीका किसी के पास नहीं है, यदि है तो सभी के पास है। इसलिए नव प्रकार की भक्ति भी बड़ी उपयोगी है। बड़े-बड़े महापुरुष भी इस नवधा भक्ति से उत्तम हुए हैं। श्रवण का अर्थ होता है प्रभु के चरित्र को एवं आध्यात्म विषय की बात सुनें। स्मरण का अर्थ होता है सुमिरन, प्रभु के स्वरूप का चिन्तन करें। कीर्तन का अर्थ होता है प्रभु के नाम का गायन करें। जोर-जोर से जप करें। पाद सेवन का अर्थ होता है उनकी प्रतिमा बनाकर प्रभु प्रस्थापन करके उनके चरण की सेवा करें। अथवा मानसिक प्रतिमा बनाकर मानस पूजा करें। अर्चन का अर्थ होता है धूप, दीप, नैवेद्य से पूजन करें। वन्दन का अर्थ होता है अच्छे-अच्छे स्तोत्रों से प्रभु की वन्दना करें और उनके सामने साष्टांग दण्डवत करें। सख्य का अर्थ होता है कि प्रभु ब्रह्म है तो मैं उनका अंश होने के कारण सख्य हूँ। हमारे और उसमें सजातीय सम्बन्ध है। इस प्रकार की भावना को सख्य भक्ति कहते हैं। इसी प्रकार

से दास्य भाव की भक्ति है। प्रभु स्वामी है हम उसके दास हैं। हम उसकी आज्ञा का सदा अनुगमन करेंगे, सदा सेवा करेंगे। आत्म निवेदन का भाव यह है कि जो कुछ हम शुभाशुभ करते हैं हम उसको प्रभु को समर्पण कर देते हैं। अर्थात् सम्पूर्ण प्रकारेण सभी तरह से आत्मसमर्पण करने का नाम आत्म निवेदन है। तो कहने का तात्पर्य यह हुआ कि चाहे नारदीय भक्ति हो, चाहे श्री भाष्य की भक्ति हो, चाहे नवधा भक्ति हो आत्म शुद्धि सभी से हो सकती है और सभी से मनुष्य मुक्त हो सकता है। प्रतिज्ञा यह है कि सभी भक्तियाँ निष्काम हों। कामना न हो। अन्यथा फल होने वाला नहीं है। सद्‌गुरु कबीर जिस भक्ति की चर्चा किए हैं, वह सर्वश्रेष्ठ इसलिए है कि वह मन से की जाती है। उसमें वाह्य धूप, दीप की आवश्यकता नहीं होती है। वह अनपायनी भक्ति है। जो आत्म चिन्तन कराती है। सब में वह परमतत्त्व है और वही परमतत्त्व मैं हूँ। इस चिन्तन को पराभक्ति कहते हैं। यही सद्‌गुरु की भक्ति है। इस सद्‌गुरु की भक्ति में न कोई अपना हितैषी है न कोई अपना अहितैषी है। न कोई अपना है और न कोई पराया है। न कोई राग है न कोई द्वेष है। न काम है न क्रोध है। इसमें लोभ-मोह भी नहीं है एवं मद-मत्सर सभी प्रकार के अहंकारों से यह पराभक्ति मुक्त है। उपर्युक्त दोष अनेकत्व में होते हैं, द्वैत में होते है। जहाँ प्रभु ही प्रभु है, भला इस प्रकार के चिन्तन में कहाँ से अहंकार आयेगा, किसके प्रति राग-द्वेष होगा। इसमें कहीं आना जाना नहीं होता है। न तीरथ में जाना होता है न मूर्ति पर जल चढ़ाना होता है। न फूल तोड़ना होता है न पत्ती तोड़नी होती है। न गंगा जल का महत्त्व होता है न किसी दूसरी नदी के जल का अमहत्त्व है। यह भक्ति कहीं भी रहकर की जा सकती है, चाहे काशी हो, चाहे कावा हो, मगध हो, चाहे मगहर हो। इस भक्ति को करने वाला सब जगह मुक्त हो सकता है। अब प्रश्न उठता है कि क्या इस प्रकार की भक्ति पहले नहीं थी, तो थी। भक्ति का अभाव बीच में हो गया था। लोग तमाम प्रकार के आडम्बरों में फँस गए थे। वाह्य

पूजा को महत्त्व दे रहे थे। तमाम देव-देवियों की कल्पना कर लिए थे। चित्त को अनेक देवी देवताओं में विभाजित कर दिए थे। बहुत प्रकार के षट्कर्मों में लग गए थे। बहुत से ईश्वर हो गए थे। जिसके कारण उपनिषद्काल की भक्ति लुप्त हो गयी थी। लोग छोटे-छोटे सम्प्रदायों में बंट गए थे। इस दुर्दशा को देखकर सद्गुरु ने पुनः इस अहेतुकी अनपायनी भक्ति को समाज को दिया। समाज में ले आये। तब से भक्ति का महत्त्व हुआ और कबीर साहब ने पृथ्वी के सातो द्वीपों में तथा नव खण्डों में इसी परम भक्ति का प्रचार प्रसार किया। जो आज भी किसी न किसी रूप में संतमत में विद्यमान है। इस भक्ति का स्वामी किसी लोक लोकान्तर में नहीं रहता है। सब प्राणियों के हृदय में रहता है और बहुत नजदीक है, बहुत समीप है। इसलिए सबके लिए सुलभ है। मनुष्यों को चाहिए कि उक्त भक्ति को श्रद्धा के साथ करें।

## सबद् २

**संतो जागत नींद न कीजै ॥**
**काल न खाय कलप नहिं व्यापै, देह जुरा नहिं छीजै ॥**
**उलटी गंग समुद्रहिं सोखै, ससि अउ सूरहिं ग्रासै ॥**
**नव ग्रह मारि रोगिया बैठे, जल में बिंबु प्रगासै ॥**
**बिनु चरनन को दहुँ दिसि धावै, बिनु लोचन जग सूझै ॥**
**ससा उलटि सिंह को ग्रासै, ई अचरज कोई बूझै ॥**

**शब्दार्थ**—जागत–मनुष्य तन में जागते हुए। नींद–न सोए। कीजे–करो। काल–समय, मृत्यु। खाय–अभाव। कलप–कल्प का प्रभाव, जो चौदह मनवन्तरों का होता है। अर्थात् मानव के चार अरब ३२ करोड़ वर्ष का जो समय होता है। उसको एक कल्प कहा जाता है। व्यापै–संतप्त करें। देह–कायसिद्धि, आतमा। जुरा–जरावस्था, वृद्धावस्था। छीजे–क्षरण। उलटी गंग–अधः मुख की कुण्डलिनी मूलाधार स्थित। समुद्रहिं–मनोविकार, संसार की आसक्ति, शरीरस्थ विकार। सोखै–शोषण, नाश। ससि–ईड़ा–नाड़ी। सूरहिं–पिंगला नाड़ी। ग्रासे–ग्रस लें। नव ग्रह–

नवद्वार, शरीर के नव द्वार चार अन्तःकरण, पाँच ज्ञानेन्द्रियों के विषय। ( सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुद्ध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु )। रोगिया –योगी, जीवात्मा, साधक। मारि–जीतकर। जल–प्रकाश, कान्ति, ब्रह्माण्ड। बिबु–तेज, पुँज, कुण्डलिनी। प्रगासै–प्रकाशित करे। बिनु–बिना। चरनन–चरणों के। दहुँ–दसों। धावै–दौड़े। दिसि–दिशाओं में। लोचन–नेत्रों के। सूझै–दिखाई दें। ससा–खरगोश, जीवात्मा। उलटि–घूमकर, लौटकर। सिंह–माया, मन, अहंकार। ग्रासै–खा जाय, निगल गया। ई–यह। अचरज–आश्चर्य, विस्मय। बूझे–समझे, जाने।

**सम्बन्ध**—प्रथम शब्द में सद्गुरु के द्वारा भक्ति लायी गयी है बताकर उस भक्ति से सुबुद्धि उत्पन्न हुई। पुनः विवेक वैराग्य उत्पन्न हुए। तब साधक साधना में लग गया और परम शक्ति का जागरण हुआ पश्चात् ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके साधक मुक्त हो गया। अब इस दूसरे शब्द में उसी क्रिया को विस्तार के साथ कहा जा रहा है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्त जन ! हे सज्जन जन ! आप लोग जागृत स्वरूप मनुष्य का तन पाये हैं। इसी मानव तन में आप परमतत्त्व की एवं प्रभु तत्त्व की प्राप्ति कर सकते हैं। इसलिए इस नरतन को पाकर सोइए, नहीं भूलिए नहीं, अर्थात् उस परमसत्ता की ओर उन्मुख हो जाइए। संसार की ओर से वृत्ति को हटाकर, आत्मा की ओर उन्मुख कीजिए। जब आप मानव तन में जाग जायेंगे, भ्रान्ति को दूर करेंगे, विषय विकार से मन उपराम हो जाएगा। तब आप को जो बार-बार काल खा रहा है, मृत्यु आप के शरीर को नष्ट कर रही है, उससे आप बच जायेंगे और इतनी बड़ी आप की आयु हो जायेगी कि आप कल्पान्त में भी नाश नहीं होंगे। अर्थात् जो आत्मा अजन्मा है, अचिन्त्य है जो किसी कल्प में अभाव को प्राप्त नहीं होता है, वह ज्ञान आप को हो जायेगा और सदा के लिए आप भगवान मरीचि के पुत्र के दूतों से बच जाइएगा और जो आप अपने को जरा, वृद्धावस्था वाले मानते हैं, वह भाव आपका छिन जाएगा और अपने को आप जो क्षरण वाला समझ रहे हैं, वृद्धत्ववाला समझ रहे हैं।

वह भाव आप से छिन जाएगा। यहाँ पर कायसिद्धि की ओर भी संकेत है। कायसिद्धि उस योगी को प्राप्त होती है जो उर्ध्वरेता नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो जाता है तथा जो प्राण-अपान की गति को जानता है। अर्थात् जो प्राण अपान को एक कर लेता है जो वायु सहित पंच तत्त्वों पर विजय कर लेता है। उस योगी का शरीर बहुत कल्पों तक रह सकता है। यह बात स्पष्ट रूप से योग सम्बन्धी ग्रन्थों में लिखी गयी है। यहाँ तक कि महर्षि वशिष्ठ ने 'योगवाशिष्ठ' में कायसिद्धि का उल्लेख किया है। काग भूषुण्डि प्रकरण में जिसमें काग भूषुण्डि भगवान ने वशिष्ठ के उत्तर में प्राण अपान गति को महत्त्व दिया है और कहा है कि हम अनेकों कल्पान्तों में नाश को प्राप्त नहीं होते। यहाँ पर वाह्यार्थं एवं अन्तरंग अर्थं 'देह' शब्द में है। आगे सद्‌गुरु कहते हैं कि जो मनुष्य मानव जीवन में जग जाता है। उसकी कुण्डलिनी स्वरूपा पराशक्ति भी जग जाती है जो गंगा का प्रतीक है। गंगाजल के समान निर्मल है, उज्वल है। जाज्वल्यमान है। जिसका मुख मूलाधार की तरफ नीचे की ओर रहता है। वह महामाता जब साधना के द्वारा उर्ध्वमुख हो जाती है जब अपने स्थान को छोड़ देती है, तब वह समुद्र के समान अथाह, अपार जो मन का विकार है जो संसार की मोहमाया है जो संसार का सम्बन्ध है जो अपेय है, उसको वह गंगा स्वरूपीनी महाशक्ति, ज्ञान कला क्षणमात्र में शोषण कर जाती है। तत्पश्चात् वह इडा नाड़ी एवं पिंगला नाड़ी को ग्रस लेती है। सुषुम्ना का बहाव हो जाता है। सुषुम्ना के अन्दर जो चित्रा नाड़ी है और चित्रा के अन्तर्गत ब्रह्म नाड़ी है जिसमें कुण्डलिनी देवी स्थित है। वह पराशक्ति नवग्रह स्वरूप जो सारे प्राणियों को व्यथित करते हैं। मन, बुद्धि, चित्, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इन सबों को कुण्डलिनी के जगने पर रोगिया कहिये, साधक मार डालता है अर्थात् उनपर विजय प्राप्त कर लेता है। जब ये नवग्रह समाप्त हो जाते हैं, तब बाह्य में भी आकाशीय नवग्रहों का प्रभाव उस योगी पर नहीं पड़ता है। तत्पश्चात् ब्रह्मरंध्र में योगी स्थित हो जाता है और

परम तेज स्वरूप में अवस्थित होकर सब ओर प्रकाश करने लगता है। उक्त योगी में इतनी शक्ति बढ़ जाती है कि बिना चरण के ही पृथ्वी के दसों दिशाओं में वह दौड़ने लगता है। अर्थात् आत्मा का साक्षात्कार होने पर अपने को सब जगह सब स्थानों में देखने लगता है। इसी प्रकार से बिना बाह्य नेत्रों के बैठा-बैठा योगी एक स्थान से सारे भूमण्डल को देखते रहता है और पहले जो अपने को बहुत निर्बल समझता था, शशक के समान समझता था और मन-माया को सिंह के समान समझता था, जिसका सामना नहीं कर सकता था, अब वह आत्मज्ञान होने पर उस घटाटोप भयंकर वाली मनमाया को ग्रस लिया। गुरु महाराज कहते हैं कि यह देखो कि कितना बड़ा आश्चर्य हुआ। इस आश्चर्य को समझो तो यह गुरु की दया ही है कि जो अपने को महानिर्बल खरगोश के समान समझता था, आज वह मनमाया को ग्रस लिया।

**अउंधे घड़ा नहीं जल बूड़े, सूधे सो जल भरिया ॥**
**जेहि कारन नर भिन्न-भिन्न करै, सो गुरु परसादे तरिया ॥**
**बैठि गुफा में सभजग देखै, बाहर किछुउ न सूझै ॥**
**उलटा बान पारधिहिं लागै, सूरा होय सो बूझै ॥**

**शब्दार्थ**—अउँधे घड़ा—नीचे मुँह वाला घट, मूलाधार, अधःमुख कुण्डलिनी का रुख। जल—आत्मज्ञान, प्रकाश। बूड़े—भरे। सूधे—सीधा, कुण्डलिनी का उर्ध्वमुख होना। भरिया—भरा। जेहि—जिस। कारन—लिए। भिन्न भिन्न—अलग अलग, घृणास्पद। सो—वह। परसादे—कृपा से, उपदेश से। तरिया—मुक्त हो गया। गुफा—भ्रमर गुहा, ब्रह्मरन्ध्र। बैठि—स्थिर होकर। बाहर—मनोवृत्ति, बाहर की होने से। किछउ—कुछ भी। सुझै—दिखे। उलटा—अन्तर्मुखी वृत्ति। बान—बेधने वाले तीर का फलक, मन का प्रतिघातक रुख। पारधिहिं—पापारधि, आखेटक, शिकारी, मन। लागै—विधे, चोट करे। सूरा—बीर, दृढ़ साधक। बूझै—समझे।

**मूलार्थ**—परन्तु जब तक मूलाधार स्थित कुण्डलिनी शक्ति का मुख नीचे की ओर रहता है, तब तक मनुष्यों को उससे कोई लाभ नहीं होता

है और जल स्वरूप आत्मज्ञान में घट रूपी मानव शरीर अन्तःकरण ज्ञान से पूर्ण नहीं होता है। वही कुण्डलिनी जब साधना के द्वारा जग जाती है और उसका मुख ऊर्ध्वमुखी हो जाता है, तब वह अपने मुख को खोल देती है तो जो साधक जलस्वरूपी आत्मज्ञान से वंचित था, वह अन्तःपुर रूपी घट को उससे परिपूर्ण कर लिया। तात्पर्य यह है कि जबतक सूरति या मनोवृत्ति का बहाव संसार की तरफ होता है, तब तक वह अमृत तत्त्व आत्मज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकता। वही सुरति जब संसार से घूमकर अन्तःपुर में आ जाती है तब उसे अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। बिना आत्मज्ञान प्राप्ति के कारण मनुष्य जिस तत्त्व को भिन्न-भिन्न अनेक कहता था और परस्पर एक दूसरे से घृणा करता था, सो मनुष्य गुरु की परम कृपा से उस द्वैतभाव से ऊपर उठ गया। आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया और जो अनेकत्व के कारण परस्पर में घृणा थी, वह भी दूर हो गयी। मनोवृत्ति अन्तर्मुखी हो गयी, साधक योगी भ्रमर-गुफा में प्रवेश कर लिया और सहस्रार में जाकर स्थिर हो गया, जहाँ से बैठे-बैठे सम्पूर्ण जगत को देखने लगा। यह देखने लगा कि सब प्राणियों में एक ही परमतत्त्व है। अब वह आत्मा से भिन्न एवं तूरिया से भिन्न बाहर कुछ भी नहीं देखता है अर्थात् वह योगी का मन अन्तरंग हो चुका है, बाहर की ओर अब उसको कुछ दिखायी नहीं देता और जो मन का लक्ष्य था, विषय वासना में, संसार में घूम कर लगा रहता था जो मन रूपी बाण मनुष्यों को दुःख देता था, जिस लक्ष्य से मन लोगों को बेध देता था, वह लक्ष्य रूपी बाण उलटकर स्वयं शिकार करने वाले मन को ही लगा। यह शिकारी का रूपक उसी प्रकार से है जैसे कोई शिकारी किसी पशुपर बाण मारे या किसी जन्तु पर बाण मारे परन्तु वह बाण अपने लक्ष्य की ओर न जाकर शिकारी को ही मार दे, उसी प्रकार से यह मन रूपी शिकारी या पारधी अपने लक्ष्य से मनुष्यों को बेधता था, तंग करता था, परन्तु साधना के द्वारा साधक इसको अपने ही से बचकर मन को ही स्वयं मार दिया। इस तथ्य को जो सूर के समान वीर साधक होगा, वही इस रहस्य को

समझ सकता है। अन्य कच्चे साधक इस तथ्य को नहीं समझ सकते जिन्हें सही प्रकार से गुरु नहीं मिला है।

**गायन कहै कबहुँ नहिं गावै, अनबोला नित गावै।**
**नटवट बाजा पेखनि पेखै, अनहद हेत बढ़ावै॥**
**कथनी बदनी निजुकै जोवै, ई सभ अकथ कहानी।**
**धरती उलटि अकासहिं बेधे, ई पुर्खन की बानी॥**
**बिना पिआला अम्रित अंचवै, नदी नीर[1] भरि राखै।**
**कहैं कबीर सो जुग-जुग जीवै, जो राम सुधा रस चाखै॥**

**शब्दार्थ**—गायन–गायक, गीत, शास्त्र ज्ञान, वाचक ज्ञानी। कबहुँ–कभी भी। गावै–कहे। अनबोला–मौन। नित–सदा, नित्य। नटवट–अभिनेता के समान नटवर। बाजा–वाद्य यंत्र। पेखनि-देखने में। पेखै–देखे। अनहद–अनाहत, अन्तर की आवाज। हेत–रुचि। बढ़ावै–वृद्धि करे, मन को लगावे। कथनी-वाचक ज्ञान। बदनी–प्रवचन आदि, कोई सिद्धान्त कहे। निजुकै–पूर्ण रूप से, अपने से। जोवै–खोजे, जोहे। ई-यह। अकथ–अवर्णीय, अकथनीय। कहानी–गाथा चरित्र। धरती–मूलाधार कुण्डलिनी। अकासहि–ब्रह्मरंध्र, सहस्रार। बेधे–पहुँचे। पूर्खन–आप्त पुरुषों की, गुरुओं की। बानी–वक्तव्य। पियाला–पुरवा, प्याला, गिलास, कणिका। अम्रित–सहस्रार से झरने वाला महारस, जिसे अमर वारुणि भी कहते हैं। अचवै–पीवे। नदी–कुण्डलिनी, शरीर, अन्तःपुर। नीर–सहस्रार से झरता हुआ अमृतरस। राखै–रक्खै। राम–परमतत्त्व, आत्मज्ञान। सुधारस–अमृतरस, आत्मज्ञान। चाखै–चीखै, पीवे।

**मूलार्थ**—और जो लोग केवल शास्त्र के द्वारा जानकर या इधर-उधर से सीखकर आत्म गायन रूपी गीत गाते हैं। वे कुछ भी नहीं जानते अर्थात् जो वास्तविक तत्त्व है वह बिना अनुभव किए हुए नहीं कर पाते

---

१. पाताल की गंगा ब्रह्माण्ड चढ़ाईबा।
तहाँ विमल विमल जल पीबा॥
गोरखनाथ की शब्दी पृ० २ प्रथम गोरख वाणी।

हैं। इसलिए जो कथाकार हैं जो प्रवचन देने वाले हैं वे उस परमतत्त्व से वंचित रह जाते हैं। इनके विपरीत जो अनबोला बिना बोले हुए चुपचाप साधना में रत रहता है जो उस परमतत्त्व को जान लेता है वह नित्य उसको गाता है और अधिकारी पाकर लोगों से कहता है। वह अनबोला पुरुष इस संसार के तमाम भोगों को या इसकी रचनाओं को नट के समान किया हुआ खेल जानता है। जैसे नट का बाजा होता है, उसको सुनकर लोग मोह जाते हैं। परन्तु साधक पुरुष यह जानता है कि यह संसार परमेश्वर रूपी नट का बनाया हुआ है। जैसे लोक में नट के खेल असत्य होते हैं वैसे अलौकिक नट परमेश्वर के खेल असत्य हैं। इसलिए आत्म-ज्ञानी योगी इस पेखनि को नट के बाजे के समान पेखता है या देखता है। अपनी वृत्ति को अन्तर्मुख करके वह अनाहद नाद सुनने के लिए हेतु करता है। अर्थात् सहस्रार में स्थित होकर जहाँ अनेक प्रकार के परम तत्त्व को रिझाने के लिए बाजे गाजे बजते रहते हैं, वहीं पर साधक स्थिर रहता है, वह साधक कथनी करने वाले से और जो बेकार के वाद-विवाद करते हैं। जो बिना साधना के हैं उनको देखते रहता है और अपनी कथनी एवं करनी को या मान्यवाद को आत्मा के साथ जोड़ देता है अर्थात् आत्मा की प्राप्ति के लिए आचरण करता है, और जो शास्त्र में अनेक वाद-विवाद किए गए हैं, उन सबों को वह केवल अकथ कहानी के समान समझता है। तात्पर्य यह है कि जो सहस्रार में स्थित हो जाता है, वह व्यक्ति, वह साधक उसी प्रकार से आचरण करता है जैसे वह दूसरे के प्रति कहता है वह साधक निज के लिए भी वही बात देखता है और जो मात्र वाद-विवाद है उनको अकथ समझकर उपेक्षा कर देता है। जब वह साधक आचरण में पक्का हो जाता है, साधना उच्च स्थिति में आ जाती है। तब धरती स्वरूपा मूलाधार स्थित कुण्डलिनी अधः से ऊर्ध्वमुख हो जाती है और वह गगन मण्डल में पहुँच जाती है। इस प्रकार का संकेत पूर्व के योगी पुरुषों ने एवं आप्त पुरुषों ने कहा है तथा निज का अनुभव और उनकी वाणी भी है। जब साधक सहस्रार में पहुँच जाता है। तब वहाँ

पर बिना प्याला के ही बंकनाल के द्वारा झरता हुआ अमृत का पान करता है और वह 'हृदय' व अन्तःपुर रूपी नदी में उस पीयूष को भरकर रखता है अर्थात् आत्मज्ञान को शरीर रूपी नदी में बहुत संजोकर सुरक्षित रखता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि जो आत्मज्ञान रूपी जल को संजोकर रखता है। वह युग-युग जीता है अर्थात् आत्मज्ञान हो जाने पर मनुष्य की मृत्यु नहीं होती है। वह सदा जीता रहता है और वह राम रूपी सुधारस चखते रहता है। तात्पर्य यह है कि जो राम कहिए परमतत्त्व आत्मज्ञान रूपी सुधारस चख लेता है वह कभी मरता नहीं। यहाँ पर अमृत रस की बहुत चर्चा हुई है। योग के ग्रन्थों में यह उल्लेख है कि सहस्रार में अर्थात् दसवें द्वार में एक पीयूष ग्रन्थि है। जो रसायन तत्त्व का भण्डार है वह रात दिन अमृत रस को गिराते रहती है, जिसका शोषण नाभि स्थित सूर्य कर लेता है। यदि उस उक्त पीयूष रस या चन्द्र रस को ऊपर से ही रोक दिया जाय तो योगियों का मत है कि मनुष्य वृद्धावस्था को प्राप्त नहीं होता है। उसकी काया सिद्ध हो जाती है। उसी को योगी लोग खेचरी मुद्रा करके अर्थात् जीभ को बढ़ाकर तालु में घुसेड़ देते हैं और जहाँ पर बंकनाल से वह रस टपकता है वहीं पर चाट जाते हैं उसको नीचे नहीं गिरने देते। उसके द्वारा बहुत कालतक शरीर की सुरक्षा करके आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते रहते हैं। शरीर वैज्ञानिकों का भी यही अभिमत है कि उक्त टपकते हुए पीयूष ग्रन्थि के रस को यदि ऊपर से ही रोक लिया जाय तो आदमी वृद्ध नहीं हो सकता है परन्तु यह कार्य बहुत दुःसाध्य है। जल्दी होने वाला नहीं है, क्योंकि खेचरी मुद्रा के योगी कम हो गए हैं, दूसरा उपाय भी है। जालन्धर बन्ध से भी मार्गान्तरित किया जा सकता है, परन्तु यह साधक के लिए बिना गुरु के नहीं हो सकता।

**आशय**—सद्गुरु कहते हैं कि जो नरतन में भूल नहीं करता है वह मृत्यु को नहीं प्राप्त होता है, उसे आत्मज्ञान हो जाता है और कल्पान्त में भी उसका नाश नहीं होता है। उसकी कायसिद्धि हो जाती है। उसमें क्षरण नहीं होता, जो व्यक्ति आसन प्राणायाम के द्वारा कुण्डलिनी

को जगा लेता है। ध्यानपूजा से भी कुण्डलिनी शक्ति जाग जाती है और वह कुण्डलिनी समुद्र के समान मनोविकार को भस्म कर देती है। जब योगी निरन्तर ध्यानस्थ रहता है तब इङ्गला-पिङ्गला का अभाव होकर सुषुम्ना बहने लगती है। सात्त्विक वृत्ति बन जाती है। पंचविषय ज्ञानेन्द्रियों के एवं चार अन्त:करणों को मारकर योगी बैठ जाता है और जलरूपी आत्मा में तेज पुंज का प्रकाश हो जाता है। कान्ति बढ़ जाती है। बिना चरण के ही वह दसों दिशाओं का ज्ञान, ध्यान से कर लेता है। बिना चरमचक्षु के ही वह संसार को देखता है जो अपने को निर्बल समझता था, वह सिंह के समान मन व माया को निगल गया। यह आश्चर्य है कि जो इन्द्रियाँ अविजित थीं वे जीत ली गयीं। साहब का कहना है कि जबतक मनोवृत्ति संसार की ओर रहती है तबतक चित्त आत्मज्ञान से सराबोर नहीं होता। जब वह मनोवृत्ति शुद्ध हो जाती है अन्तर्मुखी हो जाती है तब वह आत्मा का अनुभव करने लगता है। जिस अज्ञान के कारण एक दूसरे से भिन्न-भिन्न करता था और घृणा की दृष्टि से देखता था, सो गुरु कृपा से एकत्व को प्राप्त कर लिया एवं संसार से तर गया और ब्रह्मरंध्र में बैठे-बैठे सारे संसार को देख रहा है। बाहर की दृष्टि खत्म हो गयी। ध्यान रूपी लक्ष्यबाण से उलटकर मन को मार दिया इस तथ्य को साधक ही समझ सकता है अन्य गाने वाले क्या समझ सकते हैं। जो मौन होकर साधना करता है, प्रभु का गान करता है, वह अभिनेता के बाजे के समान सारे दृश्यों को देखते रहता है। वह उस महानाद से हेत बढ़ाता है, जहाँ से वृत्ति हटती नहीं, उसकी कथनी और करनी में अन्तर नहीं होता है, दोनों को समान देखता है और संसार को अनिर्वचनीय समझ कर त्याग देता है, मनोवृत्ति को उलट कर ध्यानस्थ हो जाता है। इस बात की पुष्टि आप्त पुरुषों के द्वारा भी हुई है। वह व्यक्ति बिना पात्र के ही आत्मानन्द रूपी रस पीते रहता है और अन्त:पुर रूपी नदी में आनन्दरूपी जल को भरकर रखता है। साहब का अभिमत है कि जो रामनाम का स्वादन करता है अर्थात् जो रामनाम को भजता है वह कभी मरता नहीं, वह युग-युग जीते रहता है।

# सबद ३

## गृह कलह प्रकरण

**संतों घर में झगरा भारी ।।**
**रात दिवस मिली उठि-उठि लागै, पांच ढोटा एक नारी ।।**
**न्यारो-न्यारो भोजन चाहैं, पांचो अधिक सवादी ।।**
**कोई काहु का हटा न मानै, आपुहिं आप मुरादी ।।**
**दुरमति केर दोहागिन मेट, ढोटहिं चाँपि चपैरे ।।**
**कहैं कबीर सोई जन मेरा, जो घर की रारि निबैरे ।।**

**शब्दार्थ**—घर-शरीर। झगरा-झंझट। दिवस-दिन। मिली-सम्मिलित होकर। उठि-उठि-दौड़-दौड़ कर। लागै-लड़े, भिड़े। ढोटा-लड़के, बेटा, पुत्र, पंचज्ञानइन्द्रियों के विषय। नारी-कुबुद्धि। न्यारो न्यारो-भिन्न भिन्न, पृथक पृथक। भोजन-विषय। चाहैं-खाना चाहैं। सवादी-स्वादी। काहू-किसी का। हटा-आदेश, निषेधाज्ञा, निवारण। आपुहिं-अपने। मुरादी-अभिलाषी, वासना, कामना, खाने की इच्छा, अभिलाष। दोहागिन-दुर्भाग्या राड़। चांपि-पकड़कर। चपैरे-दबाकर। रारि-झगरा। निबैरे-निवारण करें।

**सम्बन्ध**—पूर्व शब्द में मनुष्य के सचेत होने या साधना के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर परमानन्द का भागी होने के लिए कहा गया है और यह कहा गया कि साधना के द्वारा मनुष्य सिद्धि को प्राप्त कर सकता है और आत्मसिद्धि कर लेता है। वह जन्म जन्मान्तर में भी नाश को नहीं प्राप्त होता है परन्तु सद्गुरु कहते हैं कि आत्मज्ञान प्राप्त होना बड़ा दुर्लभ है क्योंकि शरीर रूपी घर में बहुत लड़ाई दंगा होते रहता है जब तक शरीरस्थ लड़ाई दंगे शान्त नहीं होंगे तबतक आत्मज्ञान होना दुर्लभ है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्तों, हे सज्जनों! शरीर रूपी घर में बहुत बड़ा झगड़ा चालू है, परन्तु यह झगड़ा लोक झगड़े से भिन्न है,

लोक के झगड़े दो चार दिन महीना वर्ष तक चालू रहते हैं और शरीर में रहने वाले नित उठ-उठ करके लड़ते-भिड़ते रहते हैं। जिसमें आत्मारूपी किसान के पाँच लड़के हैं और एक लड़की भी है ए पाँचों लड़के कर्ण, नेत्र, जिह्वा, त्वचा और नासिका और जो दुरमति है यही उसकी लड़की है। दूसरे इन लड़कों से सम्बन्धित काम, क्रोध, लोभ, अहंकार हैं और उनकी सहोदरी बहिन तृष्णा है। ये पाँचों लड़के इतने नादान हैं कि नित्य बाप से झगड़ते रहते हैं और अलग-अलग भोजन की मांग करते हैं। कर्ण कहता है कि मुझे शब्द सुनाओ, नाक कहती है कि मुझे अच्छा गंध सुंघाओ तथा त्वचा कहती है कि मुझे ठंढा वायु और अच्छा गद्दा दो, नेत्र कहता है मुझे अच्छा दर्शन रूपों का कराओ तथा जीह्वा कहती है कि मुझे सुस्वाद भोजन दो। इन चाण्डाल चौकड़ी के अलावा जो इनकी सहोदरी बहिन दुर्बुद्धि बड़ी इर्ष्यालु है। वह बाप से कहती है कि वह मेरा शत्रु है, वह मेरा हितैषी है अर्थात् यह राग-द्वेष का खुराक चाहती है, ये छवों बाल मण्डली अपने पाँच रसों के बड़े स्वादी हैं। इन छः बाल मण्डली में कोई किसी का कहा मानने वाला नहीं है, सभी का सिद्धान्त तथा खुराक अलग-अलग है। उक्त छवों बाल मण्डली वाले अपनी अपनी अनुकूल की मुराद या अभिलाषा करते हैं। अब ये पाँचों जो इस तरह के परिवार के लोग हैं जब एक नहीं होंगे एक रास्ते पर नहीं आयेंगे तबतक पिता को सुख कहाँ से होगा। क्योंकि उनकी स्त्री जो माया है वह सदा इन बालकों को उकसाती रहती है। साहब कहते हैं कि जो आत्मा की स्त्री माया है, वह दुर्भाग्या है जिसके कारण परिवार में एकता स्थापित नहीं हो पा रही है। बाप कहीं है, पत्नी कहीं है पांच लड़के और एक लड़की अलग-अलग मुख किए रहते हैं। भला इस प्रकार का जहाँ परिवार है, वहाँ की समस्या हल हो सकती है? सद्गुरु योगी साधक से कहते हैं कि हे वीर ! जो दुरमति युक्त दोहागिन दुर्भाग्या माया है जो घर को नाश कर रही है, सर्वप्रथम उसी को मेट दो अर्थात् नाश कर दो। तदुपरान्त पाँचों लड़कों को भी चांपि दो अर्थात् अपने काबू में करो

और दुर्बुद्धि रूपी लड़की को भी चांपि दो, तभी तुम आगे बढ़ सकते हो। सद्गुरु कहते हैं कि तभी तूं मेरा जन हो सकता है अर्थात् प्रभु का दास हो सकता है। जब तूं घर के झगड़े का निवारण करेगा। अर्थात् जब तूं स्वयं शब्द, रूप, रस, गंध एवं दुर्बुद्धि को एक रास्ते पर लाओगे, उसके विषय में आसक्त नहीं होगे, तब तुम भगवत्प्राप्ति कर सकते हो। जब तेरे काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकार शान्त हो जायेंगे, जब तेरे रागद्वेष मद-मत्सर नष्ट हो जायेंगे, तभी तूं आत्मज्ञान के अधिकारी होगे। जब तेरी पत्नी माया तथा लड़की तृष्णा तेरे वस में हो जायेंगी तभी तुम परमतत्त्व को प्राप्त कर सकते हो। अन्यथा कोई मार्ग नहीं है।

## सबद ४

### वाह्याडम्बराचार प्रकरण

**संतो देखत जग बउराना।**
**सांच कहौ तो मारन धावै, झूठे जग पतिआना॥**
**नेमी देखा धरमी देखा, प्रात करें असनाना॥**
**आतम मारि पखानहिं पूजै, उनमें किछउ न ग्यांना॥**
**बहुतक देखा पीर अउलिया, पढ़ै कितेब कुराना॥**
**कै मुरीद ततबीर बतावै, उनमें उहै जु ग्याना॥**

**शब्दार्थ**—बउराना--उन्मत्त होना, पगलाना। सांच—सत्य। कहौ--कहूँ। पतिआना--विश्वास करना,। जग—संसार के लोग। नेमी—नियमी, नियम करने वाला, जो नित्य नियम से पूजा--पाठ, जप तप का कार्य करता है। धरमी--धर्म करने वाला। प्रात—प्रातः। असनाना—स्नान, नहाना। मारि --छोड़कर। पखानहिं—प्रस्तर की मूर्ति। किछउ—कुछ भी। बहुतक—बहुत से। पीर—गुरु, विशेष मुसलमानों के लिए। अउलिया—मुसलमानों का वह साधु, जो संसार की सभी वस्तुओं से उपराम होकर विचरण करता है, जिसको दरवेश या फकीर कहते हैं। कितेब—किताब, पुस्तक। कुराना —इस्लामधर्म का मूल ग्रन्थ जो मुहम्मद साहब पर उतरा था। कै—कितने।

मुरीद–शिष्य, विशेष मुस्लिम गुरुओं के शिष्य। ततबीर–उपाय, युक्ति, यत्न। उनमें–उनमें भी। उहै–वही। जु–जो। ग्याना–व्यवहार, आचरण, मान्यता।

**सम्बन्ध**—पूर्व के शब्द में सद्गुरु ने सम्बोधित कर सन्तों से कहा कि देखिए घर में बहुत बड़ा झगड़ा है। आत्मा के जो पाँच लड़के हैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध और उसकी एक लड़की जो दुर्बुद्धि है ये अहर्निश तूफान मचाये रहते हैं जब तक इन सबों को अपने-अपने विषयों से हटाया नहीं जायेगा, तबतक मनुष्यों को शान्ति नहीं मिल सकती है और वही भगवान का दास हो सकता है जो इन पञ्च विषयों को जीत लेता है।

**मूलार्थ**—अब चौथे शब्द में सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्तों ! हम बहुत कहते हैं परन्तु ये संसार के लोग एक भी सुनने के लिए तैयार नहीं हैं। हम कहते हैं कि इन पंच विषयों को जीतो तो उनको न जीतकर केवल ये लोग बाह्य पूजा-पाठ में मन लगाए हुए हैं। जिससे कभी शान्ति होने वाली नहीं है। सद्गुरु कहते हैं कि हे शिव स्वरूप उपासक सन्तों देखो तो मेरे देखते हुए यह जगत के लोग उन्मत्त हो गये हैं तथा निर्जीव मूर्तियों के सामने निर्बल प्राणियों की बलि देते हैं और उससे अनेक फलों की कामना करते हैं ये लोग पागल हो रहे हैं। मैं इनको जब सत्य का उपदेश देता हूँ कहता हूँ कि तुम लोग दिखावटी पूजा-पाठ न करो, कोई काम करो तो बाहर भीतर एक होकर करो, तन-मन से करो। जो वाणी से कहो वही मन से करो, विवेक करो, विचार रखो, किसी को सताओ मत, किसी को दुःख मत दो, ब्रह्मचर्य एवं अहिंसा व्रत का पालन करो, सत्य बोलो, संयम से रहो, अपने बाहुबल का भरोसा करो। परोपकार करो, मीठा बोलो। अपने अन्दर जो परमतत्त्व है, जो प्रभु तत्त्व है, जो स्वरूप है उसका सुमिरन भजन करो, अन्य वाह्याडम्बरों का त्याग करो परन्तु ऐसा कहने पर ये संसारी लोग मुझे मारने के लिए दौड़ते हैं, मुझे गाली देते हैं। मैं कहता हूँ कि राग द्वेष न करो, तृष्णा को समेटो, मैं कहता हूँ यह संसार सत्य नहीं है। प्रभु की ओर मुड़ो, प्रभु का भजन करो

तो ये संसार के लोग मुझे मारने दौड़ते हैं। ए संसार के अज्ञानी पुरुष झूठी बात में ही विश्वास करते हैं। यह सामान्य मनुष्य की ही बात नहीं है। असत्य बातों में विश्वास करने वालों में बहुत से नियमियों को भी देखा जो नित्य-नियम आचार करते हैं। उसी झूठ में बहुत से धार्मिकों को भी देखा, जो नित्य धर्म की बात किया करते हैं, जो इन्द्रियों के परायण होकर उनके धर्म में तत्पर रहते हैं। उसी झूठ में विश्वास करते हुए नित्य उठकर प्रातः स्नान करने वालों को भी देखा जो निजात्मतत्त्व को छोड़कर पाषाण आदि मूर्तियों की पूजा करते हैं। इन पाषाण आदि को पूजने वालों में यत्किंचित भी ज्ञान नहीं है। क्योंकि पाषाण अन्तःकरण विहीन है। वह कुछ न सुनता है न उसमें कोई संवेदनशीलता है। वह पूर्ण-रूपेण जड़ स्वरूप है। इसलिए पत्थर पूजने वाले पूर्णरूपेण आत्मघाती एवं अज्ञानी हैं जो प्रत्यक् चेतनात्मा राम को छोड़कर निःसार वस्तुओं में लगे हुए हैं। इसी प्रकार से इस्लाम धर्म में बहुत से उन पीर, औलिया को भी देखा जो संवेदनशील आत्मा की पूजा छोड़कर, ईश्वर की पूजा छोड़कर मस्जिदों में जाकर कोरा प्रलाप करते हैं। अनाथ पशुओं को खुदा के नाम पर बध करते हैं। तीस दिन तक आत्मा को कष्ट देकर दिखावटी व्रत करते हैं और वे औलिया लोग जो बड़े-बड़े दरवेश हैं, बड़े-बड़े फकीर हैं बनते तो त्यागी हैं, नंगे घूमते हैं, कुछ रखते नहीं हैं जहाँ तहाँ सो जाते हैं परन्तु मान-सम्मान के लिए वे भी भिखारी बने रहते हैं। राग-द्वेष उनका भी नहीं छूटता, केवल जबानी खर्च अनलहक अनलहक मात्र रट लगाते हैं। परन्तु ये भी झूठी मोह-माया में व शैतान के बहकावे में पड़े रहते हैं। इसी प्रकार से बहुत से मुस्लिम शिष्यों को और मौलवियों को वह पुस्तक पढ़ते देखा जो अल्लाह ताला की ओर से मुहम्मद साहब पर उतरी है जिसका नाम कुरानेपाक नाम से प्रसिद्ध है और उस कुरान को पढ़कर मौलिवी लोग अपने शिष्यों को बहुत उपाय बताते हैं। बहुत रास्ते बताते हैं परन्तु सद्गुरु कहते हैं कि इन लोगों का भी ज्ञान उसी प्रकार है अर्थात् इनमें भी वही ज्ञान है जो पत्थर पूजने वाले तथा प्रातः स्नान करने

वालों में है। क्योंकि हिन्दू लोग विश्वनाथ मंदिर में पत्थर पूजते हैं तो ये लोग कावा में पत्थर का चुम्बन करते हैं। हिन्दू लोग स्नान करते हैं तो ये लोग उज्जू करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जो कार्य हिन्दू लोग करते हैं, उसी प्रकार का कार्य इस्लाम वाले भी करते हैं। हिन्दू लोग जातीय संस्कार जनेऊ आदि से करते हैं तो मुसलमान लोग जातीय संस्कार शिश्नोच्छेदन करके करते हैं। हिन्दू लोग मरणोपरान्त तेरहवें दिन ब्रह्म भोजन कराते हैं तो मुस्लिम चालीसवें दिन फकीरों को भोजन कराते हैं। कहने का अर्थ यह है कि नाम बदल कर दोनों की मान्यताएँ एक ही हैं।

**आसन मारि डिंभु धरि बैठे। मन में बहुत गुमाना ।।**
**पीतर-पाथर पूजन लागे। तीरथ गरब भुलाना ।।**
**माला पहिरे टोपी पहिरे। छाप तिलक अनुमाना ।।**
**साखी सबदै गावत भूले। आतम खबरि न जाना ।।**
**हिन्दू कहैं मोहिं राम पियारा। तुरक कहैं रहिमाना ।।**
**आपुस में दोउ लरि लरि मूये। मरम न काहू जाना ।।**

**शब्दार्थ**—मारि–लगाकर। डिंभु–पाखण्ड, दंभ,। धरि–करके। गुमाना–अभिमान। पीतर–पीतल की मूर्ति। पाथर–पत्थर की मूर्ति। तीरथ–बद्रिका या कावा आदि। गरब–गर्व, अहंकार, गौरव। माला–कंठी, एक सौ आठ दाने की माला। पहिरे–पेन्हें। टोपी–कुल्हई। छाप–द्वारिका पुरी में जाकर दगवाना। तिलक–चन्दन आदि का ऊर्ध्वपुन्ड्र लगाना। साखी–दोहा, श्लोक। सबदै–गेय पद, भजन। पियारा–प्यारा। तुरक–मुसलमान, तुर्क। रहिमाना–रहम करने वाला, दयालु, ईश्वर। आपुस–परस्पर। दोउ–दोनों। लरिलरि–लड़कर। मूये–मरे। मरम–भेद, रहस्य। काहू–कोई।

**भावार्थ**—यहीं तक मामला ठंढा नहीं पड़ रहा है। ये गुइयाँ लोग व मित्र लोग हिन्दू माला लेकर, मुसलमान तसवी लेकर बढ़िया से आसन

लगाकर पाखण्ड के साथ खूब बनठन के बैठते हैं। हाथ से माला फिराते हैं। जिह्वा से राम, ॐ, अल्लाह कहते हैं जिसका मन में बहुत बड़ा अभिमान करते हैं। केवल अभिमान ही अभिमान है। सच्चा ज्ञान इनको नहीं है क्योंकि ये पत्थर की मूर्ति और पीतल की मूर्ति को पूजने में लगे हुए हैं और वे लोग मजारों के व अस्वब काबा के पूजने में लगे हैं। हिन्दू वद्रिका और पुरी के तीर्थों में भूले हुए हैं और उसका बहुत बड़ा गर्व करते हैं। हिन्दू लोग माला पहनते हैं, कुलही लगाते हैं तो मुस्लिम लोग काबा व मक्का मदीनें में भूले हुए हैं और उसका बहुत बड़ा गर्व करते हैं। ये लोग तस्वीह और झालर चमकाते हैं। वैष्णवाचारी द्वारिकापुरी में बाँह पर दगवाते हैं और तीन तिलक देते हैं और उस दगवाने का अनुमान करते हैं कि यह भगवान के यहाँ जाने का प्रवेश पत्र है और मुस्लिम लोग मक्का के तीर्थ में जाकर वहाँ से तस्वीह लाते हैं और अनुमान करते हैं कि वहाँ की तस्वीह से खुदा शीघ्र खुश हो जाएगा। हिन्दू लोग श्लोक एवं दोहे छंदों के गाने में भूले हुए हैं। इसी प्रकार मुसलमान लोग शेर और गजल गाने में भूले हुए हैं परन्तु आत्मतत्त्व का समाचार ये नहीं जानते कि मुझे वास्तविक प्रभु प्राप्ति कैसे होगी ? मात्र हिन्दू कहते हैं कि मुझे राम प्यारा है। हम राम के उपासक हैं। मुसलमान भाई कहते हैं कि मुझे रहिमान प्यारा है। हम रहिमान के आशिक हैं। ये अपनी मुर्खई से,. अपनी अज्ञानता से एक ही तत्त्व के दो नाम अलग-अलग बाँट लिए हैं जिसके लिए परस्पर में लड़-लड़के मर रहे हैं। वे कहते हैं मेरा राम अलग है। वे कहते हैं मेरा अल्लाह अलग है परन्तु ये भेद नहीं जानते कि वह प्रभु एक है। देश काल के अनुसार, भाषा भेद के अनुसार, उसी एक के अनेक नाम हैं। यदि यह जानते तो आपस में लड़ते नहीं।

**घर-घर मंतर देतु फिरतु हैं, महिमा के अभिमाना।**
**गुरू सहित सिख सभ बूड़े, अंत कालि पछिताना॥**
**कहैं कबीर सुनो हो संतो, ई सभ भरम भुलाना।**
**केतिक कहौं कहा नहि मानै, सहजै सहज समाना॥**

**शब्दार्थ**—मंतर–मंत्र, दीक्षा। फिरतु हैं–घूमते हैं। महिमा–महत्त्व।

सिख–शिष्य। कालि–समय। पछिताना–पश्चाताप। ई–ए। भरम–भ्रम। केतिक–कहाँ तक। कहौं–कहूँ। सहजै–सहज, एक में, सेतहि में, निरर्थक।

**मूलार्थ**—ये अपने तो स्वयं अज्ञानी हैं। इनको स्वयं वास्तविकता का ज्ञान नहीं है परन्तु दूसरे मनुष्यों को मुक्त करने के लिए घर-घर जाकर आत्मज्ञान का, ईश्वर प्राप्ति का उपदेश देते हैं और हिन्दू धर्म के नेता और इस्लाम धर्म के नेता के महत्त्व में बड़ा अभिमान करते हैं और कहते हैं हम इस्लाम के नेता हैं, कहते हैं हम हिन्दू के नेता हैं। इसका बहुत बड़ा गौरव इन लोगों को है परन्तु वास्तविक तत्त्व का ज्ञान न होने से गुरु सहित सब चेला-चाटी डूब गए। सभी नरक की ओर पदार्पण कर दिये और शरीर थक जाने पर वृद्धावस्था आने पर यह अनुभव हुआ कि अभी मुझे प्रभु प्राप्ति नहीं हुई, आत्मज्ञान नहीं हुआ तो पश्चाताप करने लगे। सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्तों सुनो! ये उपरोक्त लोग इसलिए बूड़ गये, इसलिए पश्चाताप कर रहे हैं, क्योंकि ये सब भरम में व अज्ञान में भूल गये हैं। इनको कोई सच्चा गुरु नहीं मिला। यहीं तक नहीं है कितने बूड़े हैं और कितने बूड़ेंगे। कितना भी कहता हूँ परन्तु कोई मानने वाला नहीं है। ये हिन्दू, ये मुसलमान और जो धर्मावलम्बी हैं, चाहे वे ईसाई हों, चाहे बौद्ध, जैन, शाक्त, शैव हों, चाहे वे कापालिक हों, कोई भी षट् दर्शन के जिन्हें जीते जी प्रभु प्राप्ति एवं आत्म प्राप्ति नहीं हुई है वे सब बिना हर्रे फिटकरी के निरर्थक में, सेत-मेतही में दुःख के समुद्र में समा गये।

**टिप्पणी**—श्री पर्वतं शिरः स्थाने केदारं तु ललाटके।
वाराणसी महाप्राज्ञ भ्रुवोर्घ्राणस्य मध्यमे ॥१॥
कुरुक्षेत्रं कुचस्थाने प्रयागं हृत्सरोरुहे।
चिदम्बरं तु हृन्मध्ये आधारे कमलालयम् ॥२॥
आत्मतीर्थं समुत्सृज्य बहिस्तीर्थानि यो व्रजेत्।
करस्थं स महारत्नं त्यक्त्वा काचं विमार्गते ॥३॥
भावतीर्थं परं तीर्थं प्रमाणं सर्वकर्मसु।
अन्यथा लिङ्ग्यते कान्ता अन्यथा लिङ्ग्यते सुता ॥४॥

तीर्थानि तोय पूर्णानि देवान्काष्ठादि निर्मितान् ।
योगिनो न प्रपूज्यन्ते स्वात्म प्रत्यय कारणात् ॥५॥
बहिस्तीर्थात्परं तीर्थमन्तरतीर्थं महामुने ।
मात्मतीर्थं महातीर्थमन्यतीर्थं निरर्थकम् ॥६॥
चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्थाने नं शुद्धयति ।
शतशोऽपि जलैधौतं सुराभाण्डमिवासुचि ॥७॥
बिषुवायनकालेषु ग्रहणे चान्तरे सदा ।
वाराणस्यादिके स्थाने स्नात्वा शुद्धो भवेन्नरः ॥८॥
ज्ञान योग पराणां तु पाद प्रक्षालितं जलम् ।
भाव शुद्ध अर्थमज्ञानां तत्तीर्थं मुनि पुङ्गवः ॥९॥

देह के मस्तक पर श्री शैल नामक तीर्थ तथा ललाट में केदार तीर्थ स्थित है। नाक और भ्रूद्वय के मध्य में काशीपुरी है। स्तनद्वय के स्थान पर कुरुक्षेत्र और हृदय कमल में तीर्थराज प्रयाग की स्थिति है। हृदय के मध्य में चिदम्बर तीर्थ है और मूलाधार में कमलालय तीर्थ है। यह आत्मतीर्थ सबसे बढ़कर है, जो इन तीर्थों का परित्याग कर बाह्य तीर्थों में भटकता फिरता है, वह मानों हाथ में रखे हुए बहुमूल्य रत्न को त्याग कर काँच को ढूँढ़ता-फिरता है, भाव सब कर्मों में प्रमाणभूत है, इसलिए भावमय तीथं ही सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है। पत्नी और पुत्री दोनों को हृदय से लगाया जाता है परन्तु दोनों के हृदय में लगाने के भावों में अन्तर होता है। योगी जन आत्मतीर्थ में श्रद्धा और विश्वास रखते हैं, इसलिए वे जलमय तीर्थों और काष्ठ, पाषाण आदि से निर्मित प्रतिमाओं में भटकते नहीं फिरते। बाह्यतीर्थ से आन्तरिक तीर्थ अत्यन्त श्रेष्ठ है। यह महातीर्थ है, इनके सामने अन्य तीर्थ व्यर्थ हैं। देह के भीतर निवास करने वाला दूषित चित्त बाहरी तीर्थों में गोते लगाने मात्र से निर्मल नहीं होता। क्योंकि मदिरा का घड़ा ऊपर से सैकड़ों बार शुद्ध जल से धो दिया जाय तो भी भीतर मदिरा के रहने से वह अपवित्र ही रहता है। अपने देह में ही जो विषुव योग, उत्तरायण, दक्षिणायन, काल तथा सूर्य चन्द्रमा के

ग्रहण हैं उनमें नाक और भौहों के बीच वाराणसी आदि तीर्थों में भावनापूर्वक स्नान करके मनुष्य पवित्र हो सकता है। अज्ञानी मनुष्यों के अन्तःकरण की शुद्धि के लिए ज्ञानयोग में तत्पर योगियों का चरण रज श्रेष्ठ तीर्थ रूप ही है।

तीर्थे दाने जपे यज्ञे काष्ठे पाषाणके सदा।
शिवं पश्यति मूढात्मा शिवे देहे प्रतिष्ठिते ॥१०॥
अन्तस्थं मां परित्यज्य बहिष्ठं यस्तु सेवते।
हस्तस्थं पिण्डमुत्सृज्य लिहेत्कूर्परमात्मनः ॥११॥
शिवमात्मनि पश्यन्ति प्रतिमासु न योगिनः।
अज्ञानां भावनार्थाय प्रतिमाः परिकल्पिताः ॥१२॥
अपूर्वमपरं ब्रह्म स्वात्मानं सत्यमद्वयम्।
प्रज्ञाघनमानन्दं यः पश्यति स पश्यति ॥१३॥
नाडी पुञ्जं सदा सारं नरभावं महामुने।
समुत्सृज्यात्मनात्मा न महमित्मेव धारय ॥१४॥
अशरीरं शरीरेषु महान्तं विभुमीश्वरं।
आनन्दमक्षरं साक्षात्मत्वा धीरो न शोचति ॥१५॥
विभेद जनके ज्ञाने नष्टे ज्ञान वलान्मुने।
आत्मनो ब्राह्मणो भेदमसन्त किं करिष्यति ॥१६॥

कल्याण रूप परमेश्वर इस देह में ही विराजमान है। उसे न जानने वाला मूर्ख तीर्थ, दान, जप, यज्ञ, काष्ठ और पाषाण में ही परमात्मा को खोज करता है। अपने अन्तर में निरन्तर निवास करने वाले मुझ परमात्मा का निरादर करता हुआ जो जीव केवल बाह्यरूप में बनी हुई स्थूल प्रतिमा की सेवा करता है, वह अपने हाथ में रखे हुए अन्न को त्याग कर अपनी कुहनी चाटने के समान कार्य करता है। योगी जन तो परमात्मा के दर्शन अपने ही आत्मा में करते हैं। प्रतिमाओं में कभी नहीं करते। प्रतिमाओं की कल्पना तो इसलिए की गयी है कि अज्ञानियों के हृदय में भगवान के प्रति भावना जागृत हो और उसके

द्वारा भगवान में विश्वास बना सकें। जिसके भिन्न कारण या कार्य कुछ भी नहीं है, जो प्रज्ञान घन स्वरूप अद्वितीय एवं सत्यरूप है, जो पुरुष उस आनन्दमय ब्रह्म को अपने ही भीतर दर्शन करता है, वही यथार्थ रूप में दर्शन करता है। यह मनुष्य देह नाड़ियों का ढाँचा मात्र है। यह कभी सारमय नहीं हो सकता। इसके प्रति आत्मभाव को सर्वथा त्याग दो और तब ऐसा विश्वास करो कि 'परमात्मा मैं ही हूँ' जो इस देह में निवास करता हुआ भी इससे भिन्न है, वह व्यापक और महान आत्मा सबका स्वामी है। जो उस आनन्द स्वरूप अक्षर ब्रह्म को जान लेता है, उसको कभी शोक की उत्पत्ति नहीं होती। हे महामुने! ज्ञानरूपी बल से जब भेद उत्पन्न करने वाला अज्ञान नष्ट हो जाएगा, तब ऐसा कौन मूर्ख है जो आत्मा और ब्रह्म में मिथ्या भेद की बात करता है।

१०८ उपनिषद् : ब्रह्म विद्या खण्ड

चतुर्थ खण्ड जाबाल दर्शनोपनिषद् भाग ४८-६३

## सबद ५

### जीव दुर्व्यवस्था प्रकरण

**संतो अचरज एक भौ भारी, कहौं तो को पतिआई ॥**
**एकहि पुर्ख एक है नारी, ताकर करउ बिचारा ।**
**एकै अंड सकल चवरासी, भरम भुला संसारा ॥**
**एकै नारि जाल पसारा, जग में भया अंनेसा ।**
**खोजत-खोजत अंत न पाया, ब्रह्मा बेस्नु महेसा ॥**

**शब्दार्थ**—अचरज–आश्चर्य। भौ–हुआ। कहौं–कहूँ। पतिआई–विश्वास। पुर्ख–ईश्वर, ब्रह्म, चैतन्य आत्मा। नारी–प्रकृति, माया। ताकर–उसका। करउ–करो। बिचारा–विवेक। एकै–एक। अंड–अंडा, ब्रह्माण्ड, लोक पिण्ड, विश्व, अण्डज, वीर्य, शुक्र। चवरासी–चौरासी लाख योनियाँ। संसारा–जगत के लोग। जाल–भव फंद, जाल, जो सूत्रों से बुनकर मछली आदि को फँसाते हैं। अंनेसा–अन्देशा, संदेह। भया–हुआ। ब्रह्मा–विशेष पुरुष वेदादि के ज्ञाता, ब्राह्मण। बेस्नु–विष्णु, भगवान विष्णु के उपासक।

महेसा–शंकर जी के उपासक व पुराण के अनुसार तीनों देव जो गायत्री देवी से उत्पन्न हुए थे।

**सम्बन्ध**—चौथे शब्द में सद्गुरु ने लोगों को उन्मत्त बताया और साँच कहने पर मारने दौड़ने वाली बात भी कहा और सब के सब झूठे से सगाई किए हुए हैं। इसमें नेमी, धर्मी, पीर, औलिया, तीर्थ, व्रत करने वाले सबके सब अज्ञान में भूले हुए हैं। वास्तविकता का ज्ञान उनको नहीं हुआ अन्त में सहज ही सहज सब संसार से बिदा हो गये।

पाँचवें शब्द में सद्गुरु कहते हैं कि यह दुर्भाग्य की बात है कि सही बात पर किसी को विश्वास नहीं हो रहा है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्तजन! एक बहुत बड़ा आश्चर्य हुआ है, यदि उस आश्चर्य को मैं कहूँ तो कोई विश्वास नहीं करेगा, वह आश्चर्य यह है कि परमात्मा रूपी पुरुष एक ही है जो विभिन्न रूपों में जीव रूप में उत्पन्न हुआ है उसी प्रकार से प्रकृति रूपी स्त्री भी एक ही है परन्तु अनेक रूपों में दीख रही है। इसलिए उस तथ्य पर आप लोग विचार करें कि यह बात सही है व अप्रासंगिक है मैं तो कहता हूँ कि इस एक ही विश्व में जो भी चौरासी लाख योनियाँ दीख रही हैं। उन सभी में एक ही पुरुष रूप आत्मा विद्यमान है परन्तु इस तथ्य की जानकारी के बिना संसार के सभी लोग भ्रम में पड़ गए हैं और सबको फँसाने वाली प्रकृति जो माया है, वह ऐसा जाल पसार रखी है कि समस्त जगत के मनुष्यों को संदेह हो गया है। वह सन्देह यह हो गया है कि माया सत्य है कि असत्य है अर्थात् यह जगत सत्य है कि असत्य है, मायाकृत है अथवा परमेश्वर कृत है।

उक्त तथ्य को खोजते हुए बड़े से बड़े लोगों ने उसका अन्त नहीं पाये। इस माया जाल की इतनी प्रबलता है कि वेद-ज्ञाता एवं यज्ञकर्ता ब्राह्मणों ने भी उसका अन्त नहीं पाया। उसी प्रकार भगवान विष्णु व शंकर के उपासकों ने भी उसका पता नहीं पाया। यहाँ पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश में जहद स्वार्था है अर्थात् यहाँ पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश संज्ञाओं को त्याग कर

उसके पास के अर्थ पर वक्तव्य दिया गया है। क्योंकि प्रश्न उपनिषद् में ब्रह्मा, विष्णु, महेश उस परमसत्ता के नाम बताए गए हैं जो ब्रह्म के नाम से विख्यात है। यदि कहा जाय कि सर्वोच्च सत्ता ने भी माया का अन्त नहीं पाया तो अनास्था दोष होगा अर्थात् ऐसे स्थलों पर अर्थ की संगत समझकर बैठानी चाहिए। यदि देवी भागवत एवं अन्य पुराणों के अनुसार यहाँ पर अर्थ किया जाय तो गायत्री देवी से जो तीन पुत्र उत्पन्न हुये उनका भी नाम ब्रह्मा, विष्णु और महेश पड़ा था। यदि यहाँ पर उन्हीं तीनों देवों का उल्लेख है तब तो अर्थ वही होगा कि उस अनिवर्चनीय माया का अन्त ये तीनों देव भी नहीं जान सके। क्योंकि शरीरधारी होने से अन्तवान होते हुए भी असीम माया का अन्त कोई पा नहीं सकता है? दोनों अर्थ अपने-अपने क्षेत्र में सही हैं। इसलिए यहाँ पर कोई विवाद नहीं है, यहाँ पर सद्गुरु ने केवल माया की प्रबलता दिखाया है।

**नांग फांस लिए घट भीतर, मूसिन सभ जग झारी।**
**ग्यान खड़ग बिनु सभ जग जूझै, पकरि न काहू पाई॥**
**आपै मूल फूल फूलवारी, आपुहिं चुनि-चुनि खाई।**
**कहैं कबीर तेई जन उबरे, जेहि गुरु लिया जगाई॥**

**शब्दार्थ**—नांग फांस-एक में, वरुण के एक अस्त्र का नाम; जिससे शत्रुओं को बाँध लेते थे, शत्रु बाँधने के लिए एक प्रकार का बन्धन, त्रिगुण का फंदा, काम, क्रोध, तृष्णादि, लोगों को फँसाने वाला वह बन्धन जिसमें कहीं से निकलने का स्थान न हो। जैसे सर्प किसी को लिपटता हो।और वह प्राणी उससे मुक्ति न पावे यहाँ पर उसी को नाग फाँस कहा गया है। घट-शरीर। मूसिन-चुरा लिया, हरण कर लिया। झारी-समस्त। खड़ग-तलवार। जूझै-संघर्षरत, लड़ के मरे। पकरि-धरि। काहू-कोई। आपै-आप ही। मूल-उस जाल के सूत्रों के उत्पादक स्थान। फूल-उसको जन्म देने वाली भी आप। फुलवारी-नन्दन वन, सुन्दर उद्यान। तेई-वही। जेहि-जिसको। जगाई-चेता दिया।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जो माया का जाल है वह नागफाँस

के समान है और वह माया अपने घट में ही लिए रहती है। यहाँ पर घट का तात्पर्य उस समस्त सौन्दर्यमय और आकर्षक वस्तुओं से है, जिनको देखकर मनुष्य मुग्ध हो जाता है। वस्तुओं की जितनी भी भाव भंगिमाएँ व अविधायें हैं वे सब छटाओं से युक्त हैं। इसलिए मनुष्य अकस्मात् उसमें फँस जाता है। वह जाल सुन्दर स्त्री के रूप में है, सुन्दर पुत्र के रूप में है, सुन्दर भवन और सुन्दर व्यवहार के रूप में है। जो भी प्राकृतिक छटाएँ हैं वे सब माया के नागफाँस के समान हैं। इसलिए संसार के सभी मनुष्य उस माया द्वारा मूसे जाते हैं, वह माया संसार के समस्त प्राणियों का अपहरण कर लेती है, क्योंकि ज्ञान रूपी तलवार किसी के पास नहीं है जो उस माया जाल को काट सके अर्थात् माया को मिथ्या समझे तथा अपने स्वरूप को सत्य समझे, उसमें निष्ठा करे, इसलिए मनुष्य अहर्निश इस माया से जूझ रहा है। ज्ञान के बिना माया को वश करने में कोई समर्थ नहीं है, न उसको वश में करने के लिए कोई पकड़ सका। वह माया जिन-तन्तुओं से नागफाँस को रचा है, उसका मूल कारण भी आप ही हैं और जनन स्वरूप फूल भी आपही है तथा संसार रूपी उद्यान भी आपही है। इसलिए संसार रूपी फुलवारी में विचरण करने वाले सभी मनुष्यों को महादेवी माया चुन-चुन करके खा रही है। सद्गुरु कहते हैं कि इस माया-जाल से वही मनुष्य बच सकता है जिसको गुरु-ज्ञान मिल गया हो, और सोते हुए संसार से जगा लिया हो, अन्य सब एक-एक करके माया के द्वारा मारे जाते हैं।

**आशय**—सद्गुरु कहते हैं कि संसार के उत्पादन में दो ही कारण हैं-एक पुरुष एक प्रकृति। दोनों के संयोग से इस ब्रह्माण्ड की रचना हुई है। विश्व के चौरासी लाख योनियों में भी उन्हीं दोनों का निवास है। मनुष्यों को चाहिए कि उक्त तथ्य का विचार करें कि क्या सत् है, क्या असत् है अर्थात् पुरुष सत् है या प्रकृति। क्योंकि इस विश्व की रचना देखकर संसार का प्रत्येक मनुष्य भुला हुआ है। निष्क्रिय होने से तो पुरुष स्थिर रहता है, वह जीवों को बंधन में नहीं डालता परन्तु अपनी चंचलता के कारण मोह

रूपी जाल माया रूपी स्त्री फँसा रखती है, जिसके कटाक्ष में संसार के सभी देव-दानव फँस कर संशय के शिकार हो रहे हैं और बहुत लोग अन्वेषण करते-करते थक गए परन्तु इस माया के कटाक्ष रूपी जाल का किसी को पता नहीं चला, इस माया के जाल की महिमा इतनी है कि बड़े से बड़े देव जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश के नाम से जाने जाते हैं। इस माया के जाल को अन्त करने में अपने को असमर्थ पाया। अर्थात् यह माया इतनी प्रबल है कि ये तीनों देव भी उसकी प्रबलता को देखकर सहम गए। माया के अन्दर नागफाँस के समान फँसाने वाली कला है, जिस कला से संसार के समस्त मनुष्य का अपहृत हो चुका हैं क्योंकि ज्ञान रूपी तलवार किसी के पास नहीं है, जिसके कारण सब उससे जूझ रहे हैं। मानव अपनी निर्बलता के कारण माया को पकड़ने की कोशिश करके भी पकड़ नहीं पाता। यह माया स्वयं ही संसार की रचना की, जो सुन्दर उद्यान के समान दिखायी देता है। स्वयं उसका गर्भ धारण किया स्वयं संसार का उपादान कारण भी माया ही है। इस सुन्दर उद्यान में विचरण करने वाले समस्त जीव माया के द्वारा नष्ट किये जा रहे हैं। गुरु भगवान कहते हैं कि वही उबर सकता है, जिसको कोई गुरु सोते हुए जगा दिया हो।

## सबद् ६

**संतो अचरज एक भौ भारी, पूत धइल महतारी ॥**
**पिता के संगे भई बावरी, कन्या रहल कुँवारी।**
**खसमहिं छाड़ि ससुरसंग गौनी, सो किन लेउ विचारी ॥**
**भाई के संग सासुर गौनी, सासुहिं सावति दीन्हा।**

**शब्दार्थ**—पूत–पुत्र, जीवात्मा। धइल–पकड़ा। महतारी–माया, माता। पिता–सकाम कर्म, ईश्वर। संगे–साथ। भई–हुई बावरी–सकामी पुरुष, पगली लड़की, उन्मत्ता। कन्या–पुत्री। रहल–रही। कुंवारी–अविवाहिता। खसमहिं–स्वामी, परमेश्वर, परब्रह्म। छाड़ि–त्यागकर। ससुर-अज्ञान। गौनी–दुरागमन, गमन किया। किन–कोई। लेउ–लेवो।

भाई–अहंकार। सासुर–संसार। गौनी–आई। सासुहिं–तृष्णा। सावति–सौत, सहभागिनी–पति की प्रेमिका का साथ। दीन्हा–दिया।

**सम्बन्ध**—पूर्व शब्द में कहा गया है कि एक निर्गुण ब्रह्म तथा दूसरी उसकी माया प्रकृति-यही स्त्री-पुरुष हैं, परन्तु ब्रह्म निष्काम होने के कारण कुछ करने में असमर्थ है, फिर भी उसके सहयोग से माया सारे मनुष्यों को बेकल किये हुये है। माया के चंगुल से कोई सद्गुरु ही बचा सकता है, यह कह कर जीव के विपरीत बुद्धि का दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे संतजन! पुनः एक आश्चर्य मुझे बहुत बड़ा हो गया है। मैं इन संसार के मनुष्यों की विपरीत बुद्धि को देखकर विस्मित हो रहा हूँ। मुझे इनकी चाल-ढाल पसन्द नहीं है। ये संसारी मनुष्यों को अपनी सुबुद्धि रूपी स्त्री से संगत करनी चाहिए थी, परन्तु उसको त्यागकर जन्म देने वाली माता को ही पकड़ लिया है। यह माता से ही भोग करना चाहता है। यहाँ माता में श्लेष है एक तो माता का सम्बन्ध लोक वेद के विरोध में है तथा दूसरे बीस बरस के लड़के की अवस्था में माता ४० वर्ष की हो जाती है। इसलिए वृद्धा के साथ संभोग अनुपयुक्त बताया गया है। यदि वृद्धा स्त्री के साथ संभोग किया जाय तो वह व्यक्ति आयुर्वेद के अनुसार बहुत जल्द मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, क्योंकि वृद्धा स्त्री में तरुणों के रस खींचने की बहुत अधिक शक्ति होती है। दूसरा अर्थ यहाँ माया भी वृद्धा का द्योतक है और पुत्र अल्पवयस्क का द्योतक है। इसलिए वृद्धा माया से भोग करने पर इसका विनाश स्वतः हो जाता है। माया के साथ में रहकर सकाम कर्म-रूपी पिता का भी साथ किये हुए है। सकाम कर्म को पिता इसलिए कहा गया है क्योंकि बार-बार मनुष्यों को जन्म देने वाला सकाम कर्म ही होता है 'बावरी' यहाँ पर स्त्रीलिंग है, जीव को स्त्री इसलिए कहा गया है, क्योंकि वह कामनाओं से अभिभूत है। सदा दूसरे से वस्तु की कामना करता रहता है। पहले भी कहा जा चुका है कि कामनाओं के कारण

जीव स्त्री जैसा ही होता है। माया के अन्तर्गत रहते हुये सकाम कर्मरूपी पिता का संग यह पागल संसार का मनुष्य कर लिया है परन्तु सकाम कर्म से वास्तविक सुख होने वाला नहीं है। आत्मा की संतुष्टि होने वाली नहीं है, इसलिए कन्या कहिये, सकाम कर्मी जीव कुँवारी कन्या की तरह सदा अनाथ, असंतुष्ट बना रहा। प्रभुरूपी पति उसको नहीं मिला। यह अज्ञानी मनुष्य इतना ही नहीं किया खसम स्वरूप परब्रह्म का त्याग कर अज्ञानरूपी ससुर का साथ करके इस संसार से गमन कर दिया। यह तथ्य संसार के मनुष्यों को विचारना चाहिए और विचारणीय भी है कि सत्य का त्याग कर असत्य का अवलम्बन क्यों लिया जाय अर्थात् सत्य स्वरूप परमेश्वर का भजन-भाव किया जाये कि असत्य स्वरूप संसार का स्मरण रखा जाये निश्चित रूप से यह तथ्य विचारणीय है। सदगुरु कहते हैं कि अज्ञानरूपी ससुर के साथ संसार से गमन करता है और पुनः उससे उत्पन्न भाई स्वरूप अहंकार के साथ संसाररूपी सासुर में लौट आता है, आने-जाने का इसका यही क्रम बना रहता है। यह संसारी मनुष्य तृष्णा को अपना सासु मान लिया। सासु इसलिए तृष्णा को कहा गया है कि यह कुबुद्धि रूपी पत्नी की माता है। इसलिए यहाँ पर तृष्णा को सास की संज्ञा दी गयी है, जिसको संसार का मनुष्य अपना सहयोगी बना लिया है। सौत कहते हैं पति की प्रेमिका को इसलिए यह शब्द माया के अर्थ में व्यवहृत होता है जो ईश्वर की पत्नी कही गयी है जो तृष्णा का दूसरा स्वरूप है, जिसको यह अपना सहयोगी बना लिया है।

**ननद भौज परपंच रचो है, मोर नाम कहि लीन्हा ॥**
**समधी के संग नाहीं आई, सहज भई घरबारी।**
**कहैं कबीर सुनो हो संतो, पुरुख जनम भौ नारी ॥**

**शब्दार्थ**—ननद–कुबुद्धि पति की बहन। भौज–अविद्या व माया। परपंच–कुव्यवहार। रचो–निर्माण किया। मोर नाम–परब्रह्म, जीवात्मा। लीन्हा–लिया। कहि–कहकर। समधी–आत्मज्ञानी, जिसकी बुद्धि एक सी

हो। नाहीं–नहिं। सहज–बिना परिश्रम, व्यर्थ। घरबारी–बाल-बच्चा वाली। पुर्ख–पुरुष, जीवात्मा। भौ–हुई। नारी–स्त्री।

**मूलार्थ**—यह सारा प्रपंच जो ऊपर कुव्यवहार कहा गया है वह ननद कुबुद्धि, भउजि अविद्या से युक्त यह जीवात्मा ने रचा है अर्थात् माया अविद्या से संयुक्त होकर इस जीवात्मा ने संसार की शरणि का निर्माण किया है। परन्तु क्लेश उत्पन्न होने पर कहता है कि हम इस प्रपंच का कर्ता नहीं हैं, यह सब तो परमसत्ता ईश्वर ने ही किया है हमारे दुःख-सुख को देने वाला परमेश्वर है अज्ञानवश मनुष्य अपना दोष न देकर परमेश्वर को दोषी मानता है। सद्गुरु कहते हैं कि यह अज्ञानी मनुष्य समधी कहिए समबुद्धि वाले आत्मज्ञानी का कभी साथ नहीं किया जिसके कारण अप्रगल्भ वक्तव्य देते रहता है। इसलिए इसकी विधाओं में कोई सार नहीं है। यह अज्ञानी मनुष्य बिना परिश्रम के सहज में ही अज्ञान से युक्त घर बनाकर उसका निवासी हो गया है और उसी में संतुष्टि मान लिया है। सद्‌गुरु कहते हैं कि हे संतों मेरी बात को सुनो! जन्म तो इसका पुरुष का हुआ था अर्थात् यह जीवात्मा पुरुष था, परन्तु इन्द्रियों के द्वारा भोग परायण होने के कारण यह अबला स्त्री हो गया है जो सदा दूसरे के अधीन रहता है और सकाम कर्मों के चलते सदा परतंत्र बना रहता है।

**आशय**—यह बड़े आश्चर्य को बात है यह मनुष्य सुख-विलास के लिए केवल भौतिक जगत का संग पकड़ लिया है, जो मृग तृष्णा के समान है, जिससे कभी संतुष्टि होने वाली नहीं है। साथ ही प्रमत्त होकर सकाम कर्मों का व अनेक प्रकार के यज्ञ-यागों का साथ कर लिया है जिनसे कभी आत्मसंतुष्टि नहीं हुई। पति विहीन कन्या के समान सदा असंतुष्ट ही रहा। क्योंकि खसम स्वरूप परमेश्वर को छोड़कर नाना प्रकार के अज्ञान जन्य देवी-देवताओं का सेवन किया, यह विचारणीय विषय है। इस पर कोई भी मनुष्य विचार कर सकता है, जब संसार में मनुष्य जन्म लेता है तब यह अहंकार के साथ ही आता है, जैसे-जैसे

सचेत होता जाता है वैसे-वैसे कहता है, मेरा है, मैं हूँ। साथ ही तृष्णा को भी सहभागिनी पत्नी बना लिया है। उक्त दुर्व्यवस्था का कारण अज्ञान व दुर्बुद्धि है जिसके कारण प्रपंचरूपी व्यवस्था का निर्माण हुआ है। संसार में पचता हुआ मनुष्य क्लेशों के आने पर कहता है मुझे ईश्वर ने दण्ड दिया, परमात्मा ने दण्ड दिया। इसलिए कहता है कि किसी आत्मज्ञ पुरुष का साथ नहीं किया न आत्मज्ञान के साथ संसार में जन्म लिया, इसलिए बिना सोचे-विचारे संसार रूपी घर का घरबारी हो गया है अर्थात् घर संसार बसाने वाला हो गया है। हे संतजन मैं बहुत कहता हूँ पर यह संसार से विरत नहीं होता है। जन्मजात तो यह पुरुष था, आत्मा था, चैतन्य था, परन्तु माया के वशवर्ती होने के कारण निर्बल स्त्री बना हुआ है, जिसके कारण अहर्निश दुख के समुद्र में गोता लगा रहा है। अपने स्वयं सकाम कर्मी है और नाम मुझ परमेश्वर का लेता है। कहता है कि हम रामनाम का भजन करते हैं। भला इस अवसर पर कौन सहायता करेगा।

**टिप्पणी**—'ननद भउज प्रपंच' में व्यंजना है, दोनों ने मिलकर गलत व्यवहार किया है। गर्भ रहने के बाद पति से कहती है कि आपका ही है। परन्तु पति कहता है मेरा नहीं है, तुम लोगों ने कहीं अन्यत्र भ्रष्ट किया है। इसी प्रकार से जीव का सम्बन्ध कहीं अन्यत्र देव-देवियों से है।

## सबद ७

### निर्गुणब्रह्म महत्त्व प्रतिपादन प्रकरण

**संतो कहौं तो को पतिआई, झूठे कहत सांच बनि आई ॥**
**लौके रतन अवेध अमोलिक, नहिं गाहक नहिं सांई।**
**चिमिक चिमिक चिमिकै द्रिग दहुंदिसि, अरब रहा छिरिआई ॥**
**आपै गुरु किरपा कछु कीन्हा, निरगुन अलख लखाई।**

**शब्दार्थ**—कहौं-कहूँ। तो-तब। को-कौन। संतो-संत। झूठे-झूठ, असत्य। कहत-कहते हुए। बनि-अच्छी होना। आई-आया। लौके-

दिखायी दे। रतन–शुद्ध रत्न, ब्रह्म तत्त्व। अवेध–अवेध्य, जो छेदन न किया जा सके। अमोलिक–अमूल्य। गाहक–जिज्ञासु। सांई–स्वामी। चिमिक–चिमिक–थोड़ा-थोड़ा जो प्रकाश चमकता हो, व चमचम चमत्कारपूर्ण जो चमकता हो। चिमिकै–प्रकाशै। द्रिग–नेत्र, चक्षु। दहुँदिसि–दसो दिशाएँ। अरब–प्रकाश, विशेष प्रकाश, व्यापक तत्त्व। छिरिआई–फैला हुआ, विस्तृत, छिटकना, छितराना। आपै–आपही, परमेश्वर। गुरु–गुरुस्वरूप। किरपा–कृपा। कछु–किछु। कीन्हा–किया। निरगुन–गुण से रहित, सतगुण, रजगुण, तमगुण से पृथक। अलख–दृष्टि से ओझल, जो दिखायी न दे। लखाई–दिखायी, दिखलाया।

**सम्बन्ध**—इसके पहले के शब्द में कहा गया है कि एक और बहुत बड़ा आश्चर्य हो गया है जो यह अज्ञानी जीव अपने जन्म देने वाली माता से ही सम्बन्ध जोड़ लिया है जिसका परिणाम यह हुआ कि कभी सुख के दर्शन नहीं हुए वह व्यक्ति प्रभु के बिना कुँवारी कन्या की तरह सदा अनाथ बना रहा इसलिए पुरुष होते हुए भी स्त्री के समान बना हुआ है। अब नीचे कहते हैं कि सही बात कहता हूँ तो कौन पतिआता है, जिससे इसको परमतत्त्व पति मिल जाएगा। उस बात पर यह विश्वास नहीं करता।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे महामति सन्तजन ! हे विमलबुद्धि के महात्माओं यदि मैं परमतत्त्व की बात कहता हूँ जिससे कि ये जीव का कुमारपन छूट जाये, जन्म मरण दूर हो जाय ? जिससे लोक परलोक में जीव सुखी रहे जो सबका गुरु है, जो गुरुओं का गुरु है जो सभी देशकाल में विराजमान है, जिसके बिना कहीं रिक्तता नहीं है, उस प्रभु की बात मैं कहता हूँ तो भला कौन विश्वास कर सकता है। वह प्रभु नामरूपों से भिन्न है, अनुभवगम्य है, परन्तु सर्वज्ञ होने के कारण किसी भी नाम व रूप से पुकारा जाय तो वह समझता है कि मेरा भक्त मुझे ही पुकारता है, इसलिए उसका नाम व रूप झूठ होते हुए भी उसको जपते-जपते कहते-कहते सच्ची बात बन जाती है अर्थात् सत्य का दर्शन हो जाता

है व सत्य की प्राप्ति हो जाती है। क्योंकि मुझे तो उसी झूठ नाम रूप से कहते-कहते सत्य दिखायी देने लगा। वह रतन के समान सत्य है, अवेध्य है। वह किसी के द्वारा छेदा नहीं जा सकता है अर्थात्, कभी क्लेश को प्राप्त नहीं होता है। वह परम प्रभु रूपी हीरा इतना महत्त्व वाला है कि उसका कोई मूल्य नहीं लगा सकता, वह अमूल्य तत्त्व है पर वह सहज में ही मिलने वाला है पर उस पर भी उसका क्रय करने वाला कोई ग्राहक नहीं है न उसको कोई लेना चाहता है न बेचने वाला उसका कोई स्वामी ही है। तात्पर्य यह है कि वह अमूल्य रत्न ऐसा है कि वह किसी व्यक्ति विशेष का धन नहीं है और न ही किसी के द्वारा खरीदा ही जा सकता है। वह परमतत्त्व स्वयं अपना स्वामी है और उसके दास ही उसको खरीद सकते हैं। वह इस प्रकार है कि जैसे हीरा प्रकाशमान होता है, उसी प्रकार से परमेश्वर रूपी हीरा चिमिक-चिमिक झिलमिल-झिलमिल बहुत मनोहारी सौम्ययुक्त प्रकाश करता है। उसका प्रकाश दसों दिशा में दिखायी देता व पड़ता है जिसको भक्तों की अन्तःकरण की आँखें देखती हैं। 'अरब' कहिए वह प्रकाश सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में फैला हुआ है और सब जगह व्यापक है, उस प्रभु का ज्ञान तभी हो सकता है जब वह स्वयं भक्तों पर करुणा करे वह स्वयं गुरु होकर यत्किंचित् कृपा कर देवे तभी वह निर्गुण तत्त्व निराकार ब्रह्म जो दिखने में नहीं आता है दिखायी दे सकता है अन्यथा वह किसी के क्रय-विक्रय करने से प्राप्त नहीं होता है। यहाँ गाहक और सांई में बहुव्यञ्जना है। सांई से तात्पर्य यह है जो गुरु विशेष बनकर लोग बैठे रहते हैं। उसकी प्राप्ति का मंत्र देते हैं और ग्राहक से तात्पर्य दान-दक्षिणा देकर जो इस प्रकार खरीदने वाले व लेने-देने वाले हैं, उनसे वह परमतत्त्व लाखों कोस दूर रहता है। वह तो आत्मज्ञ गुरु की सेवा से, आत्मज्ञ गुरु की कृपा से, श्रद्धा से, भक्ति से, विश्वास से या स्वयं परम प्रभु जिस भक्त पर कृपा कर दें, वही उसकी प्राप्ति कर सकता है। अन्यथा लोक के चेला-चेली करने वाले गुरु और शिष्य नहीं प्राप्त कर सकते हैं।

**सहज समाधि उनमुनि जागे, सहज मिलै रघुराई ।।**
**जहँ जहँ देखो तहँ तहँ सोई, मन मानिक वेधो हीरा।**
**परमतत्तु गुरहिं सो पावैं, कहैं उपदेस कबीरा ।।**

**शब्दार्थ**—सहज-सरलता से । समाधि-स्वरूप स्थिति, तन्मयता । उनमुनि-स्थिति प्रज्ञता, उस अवस्था में योगी की दृष्टि अन्तर्मुखी हो जाती है अर्थात् जिसकी सदा समाधि लगी हो, जो कभी विचलित न हो, उसे उनमुनि मुद्रा कहते हैं, योग ग्रन्थों में इसी प्रकार का वर्णन आया है। जागे-जागृत । मिलै-प्राप्ति होवे । रघुराई-परमतत्त्व 'रघु' इन्द्रिय वाचक है, 'राई'-राजा वाचक है जो शरीर में विराजमान है वह रघुराई। मन मानिक-मणि-माणिक । वेधो-वेधा, धँसा । हीरा-अमूल्य रत्न, कीमती रत्न । परम तत्तु-आत्म तत्त्व, ब्रह्म तत्त्व । गुरहिं-गुरु से ही ।

**मूलार्थ**—परन्तु जब निर्गुण तत्त्व दिखाने वाला सद्गुरु मिल जाता है तब बिना परिश्रम के ही निर्बीज समाधि लग जाती है। उन्मुनि कहिए सविकल्पक समाधि का अभाव होकर उन्मुनि अवस्था की समाधि लग जाती है, जिसमें सदा वृत्ति स्वरूपाकार बनी रहती है, जिसको शास्त्रों में स्थित प्रज्ञ भी कहा गया है। इसी अवस्था में कर्मों के संस्कार बनना बन्द हो जाते हैं। योगी दृढ़ भूमि स्थित वाला हो जाता है। पहले से जो संस्कार बने रहते हैं उन संस्कारों को योगो स्थितप्रज्ञ होकर बाहर निकाल फेंकता है और नए संस्कारों को बनने नहीं देता, जब संस्कारों का अभाव हो जाता है तब योगी को सहज में हो रघुराई कहिए स्वस्वरूप का दर्शन मिल जाता है अर्थात् ब्रह्म तत्त्व की प्राप्ति कर लेता है। जब ब्रह्म तत्त्व की प्राप्ति हो जाती है तब बिल्कुल संसार का अभाव हो जाता है। उसके चित्त में संसार नहीं दीखता, वह ब्रह्म तत्त्व की व्यापकता ही देखता है। जहाँ-जहाँ दृष्टि घुमाता है वहाँ-वहाँ पर वही दीखता है और अन्त में क्या होता है जो माणिक्य स्वरूप यह चेतन जीव था, जो उपाधि के कारण जीव कहलाता था और हीरा के समान प्रकाशक जो अपने से भिन्न समझता था, जो रघुराई था वह

जीव के अविद्या जनित घेरे को वेध दिया अर्थात् नाश कर दिया जब अविद्या का नाश हो गया, उपाधि समाप्त हो गयी तब जीव और ब्रह्म की एकता हो गयी, भेदबुद्धि का विनाश हो गया, सदा सर्वदा के लिए अभेद ज्ञान प्राप्त हो गया। अब गुरु महाराज कहते हैं अर्थात् सद्गुरु कबीर कहते हैं कि यह परमतत्त्व सद्गुरु के द्वारा पाया जा सकता है, जिसका उपदेश हम कबीर कर रहे हैं।

**आशय**—हे निर्मलमति के संत जन ! तत्त्व की बात पर कोई विश्वास शीघ्र नहीं करता परन्तु हित की दृष्टि से निरन्तर कहा जाय तो कहते कहते सच्ची बात बन जाती है और सुनने वाले को जो अखण्ड, अवेध्य अमूल्य हीरा है वह दीखने लग जाता है जो क्रय-विक्रय वाले गुरु शिष्यों से भिन्न है अर्थात् इतना अमूल्य है जिसको न कोई खरीद सकता है और न किसी का व्यक्तिगत धन है कि कोई बेंच सकता है। वह दशों दिशाओं में झिलमिल-झिलमिल चमत्कार पूर्ण नेत्रों के समक्ष प्रकाशित हो रहा है तथा उसी का प्रकाश सारे ब्रह्माण्ड में फैला हुआ है और उस प्रकाश स्वरूप परब्रह्म का दर्शन तभी हो सकता है, वह निर्गुण ब्रह्म तभी दिखायी पड़ सकता है जब सद्गुरुदेव स्वयं कृपा कर दिखा दें। जब सद्गुरु कृपा कर देते हैं तो सहज में ही समाधि लग जाती है। सहज में ही योगी स्थित-प्रज्ञ हो जाता है तथा हृदयस्थ रघुराई के दर्शन मिल जाते हैं और जहाँ-जहाँ दृष्टिपात किया जाता है वहाँ-वहाँ वही तत्त्व दीखता है और जो जीवत्व भाव था वह आत्मज्ञान के द्वारा नष्ट हो गया। अभेद अवस्था प्राप्त हो गयी। उक्त परमतत्त्व की उपलब्धि केवल गुरु के द्वारा हो सकती है। जिसका उपदेश मैं कबीर दे रहा हूँ। इसलिए संसार के सभी मनुष्यों का परम कर्त्तव्य है कि उस प्रभु की प्राप्ति के लिए गुरु की सेवा करें, प्रभु की उपासना करें, अन्न जल से, वस्त्र से सन्तों की सेवा करें। दीन दुःखियों की सेवा करें, निष्काम भाव से पवित्र आत्माओं को दान दें। निष्काम भाव से सात्त्विक यज्ञ, परोपकार करें। तात्पर्य यह है कि जब तक मनुष्यों के निष्काम कर्मों के पुण्य-प्रगट नहीं होंगे, तब तक

जन्मान्तर के पापों का नाश नहीं होगा। जब तक मनुष्य दुष्कर्मों का त्याग नहीं करेगा, जब तक नए संस्कारों का बनना बन्द नहीं होगा। जब तक मनुष्य अपने दोषों को नहीं देखेगा, जब तक मनुष्य कायिक, वाचिक, मानसिक हिंसा का त्याग तथा मद, मत्सर, ईर्ष्या से दूर नहीं होगा, जब तक मनुष्य का राग-द्वेष दूर नहीं होगा, जब तक मनुष्य धन, यौवन का अभिमान नहीं त्यागेगा तथा वर्णाश्रम का अभिमान नहीं छोड़ेगा, जब तक मनुष्य गुरुदेव एवं ईश्वर में श्रद्धा नहीं करेगा, जब तक मनुष्य सब शास्त्रों का ध्यान पूर्वक अध्ययन नहीं करेगा, असूया एवं पैशुन्यता का अभाव नहीं होगा, तब तक उसका चित्त निर्मल नहीं होगा। न वह आत्म-ज्ञान प्राप्ति का अधिकारी हो सकता है।

## सबद ८

**संतो आवै जाय सो माया।**
**है प्रतिपाल काल नहिं वाके, ना कहुँ गया न आया।**
**का मकसूदन मच्छ कछ होई, संखासुर न संघारा॥**
**है दयाल द्रोह नहिं वाके, कहहु कवन को मारा।**
**वै करता नहिं वराह कहाये, धरनि धरो नहिं भारा॥**

**शब्दार्थ**—आवै-जन्म लेना। जाय-मरण होना। सो-वह। माया-मायिकब्रह्म, कार्यब्रह्म। प्रतिपाल-परिरक्षक, पालन करने वाला। काल-मृत्यु। वाके-उसकी। ना-नहिं। कहुँ-कहीं। का-क्या। मकसूदन-मधुसूदन, विष्णु, मधुरिपु, मकसूद के अनुसार प्रयोजन। मच्छ-मत्स्य अवतार। कछ-कच्छप अवतार। संखासुर-एक दैत्य, जो ब्रह्मा के पास से वेदों को चुराकर समुद्र में छिपा दिया था। संघारा-नाश किया। दयाल- दया करने वाला। द्रोह-बैर। कहहु-कहो। वै-वह। करता-ईश्वर। वराह-वाराह अवतार।

**सम्बन्ध**—इसके पूर्वागत शब्द में कहा गया है कि आत्मतत्त्व के सम्बन्ध में कहा जाय तो कौन पतिया सकता है। प्रथम तो मन रुकता नहीं है परन्तु झूठे साँचे लौ लगाते-लगाते सच्ची बात बन जाती है। तदु-

परान्त आत्मा का ज्ञान हो जाता है और वह ज्ञान केवल गुरु के द्वारा ही संभव है जिसका उपदेश मैं दे रहा हूँ। नीचे के शब्द में कहते हैं कि वह निर्गुणतत्त्व अलख पुरुष सम रहने वाला है, वह कहीं आता-जाता नहीं, न उसके जाने की कहीं आवश्यकता है, क्योंकि वह सर्व देशकाल में एक समान रहने वाला है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे भद्र स्वरूप संतों ! जो अवतार के रूप में प्रकट होता है और पुनः समय पाकर अन्तर्ध्यान हो जाता है वह मायिकब्रह्म है, वह कार्यब्रह्म है क्योंकि जो परमसत्ता जगद्‌नियन्ता निर्गुण ब्रह्म है, वह कहीं आता-जाता नहीं है। आना-जाना एक देश काल में होता है। जो सब जगह विराजमान है, जो सबके हृदय में है, जो सबके बाहर है, उसका आना-जाना कहीं से संभव नहीं है। तात्पर्य यह है कि जो चिति स्वरूप परमात्मा है जिसको परब्रह्म कहा जाता है। कहीं जाने के पहले वहाँ भी वह विद्यमान रहता है, जहाँ जाने की बात नहीं है। वह सबका प्रतिपालक है। सब पर उसकी दृष्टि समान है। वह किसी का काल नहीं है, किसी को मारता नहीं है, मारना जिलाना द्वैत के अन्दर होता है। तात्पर्य यह है कि वह स्वयं स्वयंभू है, उसका न कोई प्रतिपालक है न उसको मारनेवाला कोई काल है। वह कहीं न जाता है न कहीं से आता है। अब प्रश्न उठता है कि जब वह कहीं आता-जाता नहीं है तो वह विश्वात्मा जिसकी कल्पित संज्ञा मधुसूदन है। क्या वह मत्स्य अवतार धारण करके जो विष्णु का पहला अवतार है, जिसने शंखा-सुर को मारकर वेदों का उद्धार किया था, क्या वह हरि नहीं है ? इसी प्रकार से जो कच्छप अवतार भगवान का दूसरा हुआ था जिसने महिषा-सुर को मारा था तथा समुद्र मन्थन के समय अपनी पीठ पर मंदराचल को धारण किया था, क्या वह प्रभु का अवतार नहीं है ? सद्‌गुरु कहते हैं कि मंदराचल धारण करने वाला तथा शंखासुर को मारने वाला वह नहीं है। वह परमसत्ता परमेश्वर सब पर समदृष्टि रखने के कारण परम दयालु है। वह किसी से बैर नहीं रखता, न उसका कोई बैरी है। जब उसका न कोई मित्र है और न शत्रु है, तो भला वह किसको मार

सकता है ? मैं तो कहता हूँ कि वह परमेश्वर वाराह अवतार भी नहीं लिया था जिसने हिरण्याक्ष का वध किया हो और विष्ठा में छिपी पृथ्वी को बाहर निकाला हो, यह भी कार्य उस परमेश्वर का नहीं है अर्थात् परमेश्वर धरणि धारण करने वाला शेष भगवान भी नहीं है और न हिरण्याक्ष के द्वारा पृथ्वी का उद्धार करने वाला है।

**ई सभ काम साहब के नाहीं, झूठै कहै संसार ॥**
**खंभ फोरि जो बाहर होई, ताहि पतिजे सभ कोई ।**
**हरनाकुस नख ओद्र विदारा, सो करता नहि होई ॥**
**बावन रूप न बलि को जाँचे, जो जाँचे सो माया ।**
**बिना विवेक सकल जग भरमे, माये जग भरमाया ॥**

**शब्दार्थ**—ई–यह, । काम–कार्य । साहब–स्वामी, ईश्वर । नाहीं–नहीं । खंभ फोरि–नृसिंह भगवान । ताहि–उसको । पतिजे–विश्वास करे। हरनाकुस–हिरण्यकशिपु, सतयुग का एक राजा । नख–नह, जो उँगलियों में लगा रहता है। ओद्र–उदर। विदारा–विदीर्ण किया, चीरना, फाड़ना । होई–होगा । बावन–बावन अंगुल वाला भगवान विष्णु का एक अवतार। बलि–एक दैत्य राजा जो पाताल में शासन करता था । जाँचे–याचना, माँगना । भरमे–घूमें । माये–मायिकब्रह्म । जग–संसार के लोगों को। भरमाया–भ्रम में डाला ।

**मूलार्थ**—यह सब कार्य अर्थात् मारना, पीटना, दण्ड देना, उस निर्गुण ब्रह्म का नहीं है। जो कहता है कि ये सब काम उसी का है, दुष्टों को दण्ड देना, भक्तों का उद्धार करना तो उस परमसत्ता का कार्य नहीं है। इस बात को संसार के लोग झूठ ही बिना समझे बूझे कहते हैं। क्योंकि वह तीनों गुणों से रहित है और बिना गुणों के कोई कार्य हो ही नहीं सकता है। पुनः आगे कहते हैं जो खम्भ फाड़कर बाहर निकला था, जिसका नाम नृसिंह था, जिसका विश्वास सभी लोग करते हैं, जिसने हिरण्यकशिपु का वध, भक्त प्रह्लाद को बचाने के लिए अपने नखों से जाँघ पर रखकर उसके पेट को फाड़ डाला था, ऐसा कार्य करने वाला

भी वह परमसत्ता नहीं है। इसी प्रकार से बलि का राज्य छीनने के लिए भी वह बावन रूप धारण कर पाताल नहीं गया था। यह कार्य भी भीख माँगने वाले मायिकब्रह्म का है। इसी विश्वास में कि यह सब ईश्वर का कार्य है मैं तो कहता हूँ कि बिना विवेक के संसार के सभी मनुष्य व्यर्थ में भ्रम रहे हैं और यह विवेक नहीं करते कि जो निर्गुण है, निराकार है, जो निरवैर है, जो सबकी आत्मा है, जो अनुभवगम्य है वह ऐसे छोटे-छोटे कार्यों को क्यों करेगा, जिसके संकल्प मात्र से सब कुछ होने वाला है, वह इधर-उधर दौड़ कर इतने छोटे-छोटे कार्यों के पीछे क्यों पड़ेगा ? मैं तो कहता हूँ कि संसार को भरमाने वाला वह मायिकब्रह्म है वह सबल ब्रह्म है जो माया के नाम से विहित है।

**परसुराम छत्री नहिं मारे, ई छल माया कीन्हा।**
**सतगुर भेद भगति नहिं जाने, जीवहिं मिथ्या दीन्हा ।।**
**सिरजनहार न ब्याही सीता, जल पखान नही बंधा।**
**वै रघुनाथ एक कै सुमिरै, जो सुमिरै सो अंधा ।।**

**शब्दार्थ**—परसुराम-जमदग्नि के पुत्र, जिन्होंने पिता की बात मानकर माता रेणुका सहित तीनों भाइयों का वध किया था, जिन्हें लोग भगवान विष्णु के चौबोस अवतारों में एक मानते हैं। छत्री–क्षत्रिय, कीन्हा–किया। भेद–रहस्य। सिरजनहार–पालन करने वाला। व्याही–व्याह। सीता–राजा जनक की पालित पुत्री। पखान–पाषाण। बंधा–सेतु वंध। अंधा–अज्ञानी, अविवेकी।

**मूलार्थ**—मैं यह भी कहता हूँ कि वह परमेश्वर भगवान परशुराम के रूप में हैहय वंशीय महाराजा सहस्रार्जुन को व उस जाति के क्षत्रियों का विनाश नहीं किया है, यह भी कार्यब्रह्म के द्वारा हुआ है। जो लोग कहते हैं यह सब कार्य ईश्वर का है, उस पर सद्गुरु कहते हैं कि जो लोग इस प्रकार की बात कहते हैं वे लोग सद्गुरु द्वारा बतायी गयी भक्ति का रहस्य नहीं जानते हैं। विकार या व्यर्थ में अपने जीवन को माया के पीछे दिये हैं। तात्पर्य यह है कि जिस तत्त्व का निर्देशन

सद्गुरु के द्वारा हुआ है जिस समसत्ता का उपदेश सद्गुरु ने सबको दिया है जिसकी भक्ति करने को सद्गुरु ने सबको कहा है, जिसकी भक्ति से जीवन-मरण का भय छूट सकता है, उस परमतत्त्व का भेद लोग नहीं समझ पाये। बेकार में मायिकब्रह्म के पीछे व किसी लोक निवासी तटस्थ ब्रह्म के पीछे पड़कर अपने जीवन को चौपट कर दिये। मैं तो कहता हूँ कि वह सृजनहार जो सबका स्वामी या पालक है जिसके बिना सबल ब्रह्म भी कुछ नहीं है, जिसकी सत्ता स्फूर्ति के बिना जड़ चेतन कोई भी सत्तावान नहीं होते हैं। वह जनकतनया श्रीसीता जी से विवाह नहीं किया था अर्थात् वह अपनी पत्नी नहीं बनाया था और न ही सीता के हरण के बाद समुद्र में लंका जाने के लिए पाषाण का सेतु ही बाँधा था। यह सब कार्य भी मायिकब्रह्म का है। यदि उस दाशरथि राम को जिसने लंका में जाकर रावण के परिवार सहित सबका नाश किया था, जो रघुनाथ नाम से पुकारा गया है, जिसका शरीर सभी मनुष्यों जैसा था जो साढ़े तीन हाथ के शरीर वाला था, जो पार्थिव शरीर वाला था, उस एक रघुनाथ का जो स्मरण करता है अर्थात् एक देश-विशेष में समझकर उनका सुमिरन करने वाला अन्धा कहिए अविवेकी है, विवेक-हीन है। उसके पास विचार नहीं है क्योंकि जो दाशरथि रघुनाथ के हृदय में रहने वाला है, समस्त प्राणियों के हृदय में रहने वाला है, वह केवल एक हृदय में कैसे हो जाएगा? अर्थात् वह मूर्त्तरूप में कैसे हो जाएगा, यदि जो ऐसा कहता है वह पूर्णरूप से वेद शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया है, ज्ञानियों का साथ नहीं किया है, सत्संग नहीं किया है, सर्वात्मा राम की उपासना नहीं किया है। इसलिए वह नास्तिक है, अविवेकी है, निम्न प्रकार का उपासक है।

**गोपी ग्वाल न गोकुल आया, करते कंस न मारा।**
**है मेहरबानि सभहिन को साहब, नहिं जीता नहिं हारा॥**
**वै करता नहिं बौध कहाये, नहीं असुर संहारा।**
**ग्यान हीन करता के भरमे, माये जग भरमाया॥**

**शब्दार्थ**—गोपी–गोकुल की गोप बालाएँ। ग्वाल–यादव। गोकुल–मथुरा के पास का एक ग्राम जहाँ पर नन्दजी का घर था। करते–ईश्वर ने। कंस–मथुरा का एक राजा जिसने वसुदेव के सात लड़कों को मरवा दिया था, जो ब्रज के बहुत से यादव गोपों के लड़कों को मरवा दिया था। मेहरबानि–दया करने वाला, दयावान। सभहिन–सभी के लिए। बौध–बुद्ध, जो विष्णु के दस अवतारों में एक माने जाते हैं।

**मूलार्थ**—ऊपर कहा जा चुका है कि जो कहता है कि वह कर्त्ता रघुनाथ है, दशरथ के यहाँ आया था, तो वह अविवेकी है। वही बात पुनः कही जा रही है, वह जगदीश्वर भगवान गोकुल में भी गोपी ग्वाल होकर नहीं आया था अर्थात् पुराणों में कहा गया है कि ग्वाल के रूप में भगवान का जन्म हुआ था और गोकुल में निवास किए थे और उसकी माया आद्याशक्ति गोपियों के रूप में अवतरित हुई थी जो बिन्ध्यक क्षेत्र में आज भी पूजा रही है। जो परमेश्वर भगवान कृष्ण के रूप में कंस को मारा था यह कार्य भी कार्यब्रह्म का है। यह उस परमतत्त्व कर्त्ता का नहीं है। वह परमेश्वर तो सब पर दया करते हैं। वह न तो किसी से बैर विरोध करने वाला, न लड़ाई करने वाला है जो किसी से जीत जाय किसी से हार जाय। वह प्रभु जब सबकी आत्मा है। सब वही है तो किससे वह हारेगा, किससे वह जीतेगा, क्योंकि हारना-जीतना भी दो में ही होता है। इसी प्रकार से वह परमेश्वर भगवान बुद्ध के रूप में भी अवतार नहीं लिया था और न हो परमेश्वर वेद के नाम पर हिंसा करने वाले ब्राह्मण रूपी असुरों का वाणी के द्वारा संहार ही किया था। अर्थात् जितने भी बड़े-बड़े दानव-दैत्य मारे गए हैं कार्यब्रह्म माया के द्वारा मारे गए हैं। ज्ञानशून्य मनुष्य व्यर्थ में भ्रम में पड़कर ईश्वर पर दोषारोपण करता है कि परमेश्वर ही बड़े-बड़े असुरों का संहार करता है। इन संसारी मनुष्यों को केवल माया भरमायी है जो सदा अनाप-सनाप बकते रहते हैं, वे माया के अधीन हैं। इनको दिखायी नहीं पड़ता। इसलिए कृत्रिम को ही कर्त्ता मान लिए हैं।

**वै करता नहिं भया कलंकी, नहीं कलिग्रहिं मारा।**
**ई छलबल सब माया कीन्हा, जत्त सत्त सभ टारा ॥**
**दस अवतार ईश्वरी माया, करता कै जिन पूजा।**
**कहै कबीर सुनो हो सन्तो, उपजै खपै सो दूजा ॥**

**शब्दार्थ**—वै-वह। करता-परब्रह्म। भया-हुआ। कलंकी-भगवान विष्णु का अन्तिम अवतार जो कलियुग के अन्त में होने वाला है। कलिग्रहिं-कलिंजर नाम का दैत्य जिसका राज्य कलि में पुराणों के अनुसार सम्पूर्ण पृथ्वी पर हो जाएगा। जत्त-यति, संन्यासी। सत्त-सती, पतिव्रता स्त्री, सत्य पालने वाला। टारा-छीन लिया, हटा दिया, नाश किया। ईश्वरी माया-ईश्वर की महिमा, सगुण ब्रह्म। जिन-जो। पूजा-उपासना। उपजै-उत्पन्न हो। खपै-नष्ट हो गया। दूजा-दूसरा, सगुण ब्रह्म।

**मूलार्थ**—मैं पुनः कहता हूँ कि वह परमेश्वर वह जगदीश्वर, कलंकी अवतार नहीं लेता है और न वह कलियुग के शासक कलिंजर नाम के दैत्य का ही वध करता है यह छल करके मारना, बल से किसी को दबा देना, यह सब कार्य उस प्रत्यक्चेतनात्मा का नहीं है। यह सब मायिकब्रह्म का कार्य है। जो छलकर, विघ्न उपस्थित कर बड़े-बड़े योगी, संन्यासी, ऋषि-मुनि-सन्तों का सत् नष्ट कर देता है। जो विन्दा, कुन्ती, द्रोपदी, तारा, मन्दोदरी, अनसूइया जैसी सती साध्वी स्त्रियों को भी बलपूर्वक भ्रष्ट कर देता है। वह परमेश्वर नहीं कहा जा सकता है। यह सब कार्य करने वाली विशेष शक्ति से युक्त परमेश्वर की दस अवतार वाली माया है अर्थात् सगुण ब्रह्म है। जिसको अज्ञानी लोग ईश्वर कहकर पूजते हैं एवं पुकारते हैं तथा उसकी उपासना करते हैं। मैं कबीर कहता हूँ हे सन्तों, हे महंतों, हे महात्माओं ! सुनो जो उत्पन्न होकर खप जाता है, जो जन्म लेकर अन्तंध्यान हो जाता है, जो शरीर से नहीं रहता है। वह प्रथम सत्ता नहीं है, वह परमेश्वर नहीं है। वह परमेश्वर की माया है। जो कार्यब्रह्म के रूप में शास्त्रों में विख्यात है।

**आशय**—सद्‌गुरु कहते हैं कि आने-जाने वाला मायिकब्रह्म है, वही दस अवतार के रूप में, चौबीस अवतार के रूप में प्रकट होता है। चमत्कार दिखलाता है जिसकी पूजा संसार के सारे मनुष्य करते हैं। जिसको सत्य मानते हैं परन्तु वह वास्तविक तत्त्व नहीं है। वास्तविक तत्त्व सबके हृदय में है। सबकी आत्मा है। सबसे परे है। इसलिए उपजने खपने वाला परमेश्वर नहीं हो सकता है।

**टिप्पणी**—मकसूदन–स्मरण रहे कि पद्य के इस आठवें शब्द.में तीसरी पंक्ति में मकसूदन शब्द आया है जिसमें बहुत मतभेद है। कुछ हस्तलेखों में, कुछ छपी पोथियों में मकसूद शब्द है। एवं कुछ हस्तलेखों एवं छपी पोथियों में मकसूदन शब्द है और मकसूदन तथा मकसूद शब्दों के अनुसार अर्थ भी किया गया है। अन्यत्र भी सद्‌गुरु की वाणियों में 'दाहन' के बदले 'दाझन' एवं देव के बदले 'धव' हो गया है। यहाँ पर 'ह' का लोप होकर 'झ' आ गया है। दूसरे शब्द में 'द' का लोप होकर 'ध' आ गया है और प्रकारान्तर से मधुसूदन में 'धु' का लोप हो गया है और उसके स्थान पर 'क' आ गया है। जिसके कारण शब्द के अर्थ में भ्रम हो गया है विद्वान लोग मकसूदन में से 'न' हटाकर प्रयोजन से अर्थ निकाल लिये हैं। 'मकसूद' शब्द फारसी के मकसद से अपभ्रंशित होकर मकसूद रूप में उत्पन्न हुआ है जो तद्‌भव का रूप है, जिसका अर्थ प्रयोजन होता है। यदि मकसूद का प्रयोजन, अर्थ लिया जाय तो अर्थ होगा कि चौबीस अवतार लेने का परमेश्वर का क्या प्रयोजन है, जो अधिक टीकाकारों ने उसी प्रकार का अर्थ किया है परन्तु मकसूदन शब्द प्रायः डेढ़ सौ वर्ष की पोथियों में पाया गया है, चाहे वे छपी हों चाहे वे हस्तलिखित हों। यहाँ पर अधिक संभव यह है कि मधुसूदन से 'ध' का लोप होकर 'क' के आ जाने से 'मकसूदन' हो गया है। स्मरण रहे कि मधुसूदन भगवान विष्णु का नाम है, यदि मकसूदन का मधुसूदन शुद्ध रूप में लिया जाय तो अर्थ होगा कि क्या विष्णु ने दस अवतार को धारण किया है। यहाँ पर यह भी विचारणीय विषय है कि विष्णु शब्द

पर भी बड़ा विवाद है। वेदों के विष्णु अचिन्त्य हैं, उनकी महिमा अनन्त है, वे कहीं आते-जाते नहीं। उनकी इतनी महिमा है कि उनके एक अंश में ही सम्पूर्णं ब्रह्माण्ड अवस्थित है और उसका तीन अंश संसार से परे है। अर्थात् ऋग्वेद के विष्णु की अत्यल्प शक्ति से यह सम्पूर्णं ब्रह्माण्ड अवस्थित है। इसके विपरीत पौराणिक विष्णु को दिखाया गया है कि वे सर्वप्रथम गायत्री नामक स्त्री से उत्पन्न हुये हैं व उनके दो भाई और हैं जो ब्रह्मा, महेश के नाम से उत्पन्न हुए थे। अन्य पुराणों के अतिरिक्त यह देवी भागवत की घोषणा है। यही पुराण वाले विष्णु समय-समय पर अवतार लेकर पृथ्वी का भार हरते हैं और बहुत से राक्षसों का वध करते हैं और भक्तों का दुःख भी हरते हैं। ये देवताओं के पक्ष में रहते हैं और देवताओं के दुश्मनों का संहार भी करते हैं। ये कभी-कभी अपने भक्तों को जीताने के लिए विन्दा जैसी स्त्रियों का शील हरण भी करते हैं। इस प्रकार की बिना सिर पैर को बातें पुराणों में बहुत लिखी गयी हैं। कभी विष्णु की उपासना शंकर, तो कभी शंकर की उपासना विष्णु करते हैं। कभी शंकर विष्णु मिलकर ब्रह्मा की भी उपासना करते हैं। कभी अपने भक्तों के लिए अपने सिद्धान्त के लिए तीनों में मारपीट भी हो जाया करती है। कभी-कभी लड़ते-लड़ते विपक्षियों से थकने पर तीनों मिलकर अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश मिलकर आदि शक्ति महामाया से भी स्तुति व तप करके शक्ति माँगते हैं। इसी प्रकार से कभी तीनों मिलकर गणेश की, कभी सूर्य की पूजा करते हैं। इस प्रकार का रमझल्ला उन सभी पुराणों व गाथा ग्रन्थों में लिखा गया है। जिसको व्यवस्थावादी ब्राह्मणों ने खूब प्रचार-प्रसार किया है, जिसका विरोध स्थान-स्थान पर सद्गुरु की वाणी में हुआ है। सद्गुरु का कहना है कि वह मधुसूदन सबसे परे है वह सभी का साथ देने वाला है उसका न कोई भाई है न उसकी कोई माई है न कोई उसका बाप है। प्रत्युत पिता के रूप में वह सबको रक्षा करता है। कर्मानुसार सबको दण्ड देता है। इसलिए वह न किसी का शत्रु है और न किसी का मित्र है। सद्गुरु का जो

राम, रघुराई, गोविन्द तथा हरि है और जो उनका सारंगपानि विष्णु, ब्रह्म एवं अलख है वह वेद से उपनिषद् काल का है न कि रामायण या पुराण प्रतिपादित विष्णु या राम है क्योंकि उनका राम कभी योनि में नहीं आता है और न वह किसी राजा-महराजा का बालक होता है वह सर्व निरन्तर रहने वाला परमतत्त्व है।

**अन्तर्कथाएँ**—यह कथा प्रथम आ गई है कि तुलसी का पति शंखचूड़ था, उसके मरने पर उसकी हड्डी से शंख हुआ, वही शंखासुर था। और भागवत स्कन्द १० पूर्वार्ध अ० ३४ में भी कुबेर अनुचर शंखचूड़ के वध की कथा है कि वह गोपियों को ले भागा था, फिर उसे मुष्टिका से ही मार कर भगवान उसके शिर में रत्न था सो ले लिये।

स्तम्भ फोड़ कर बाहर होने की, नख से उदर विदारने की कथा, श्रीमद्भागवत स्क० ७ अ० ८ में है कि प्रह्लाद असुरों के लड़के को भी भक्ति का उपदेश दिया। सो सुन कर उनके पिता उन्हें मारने का निश्चय किया और बहुत फटकारा और कहा कि क्रुद्ध होने पर हमसे ईश्वर सहित तीनों लोक काँपते हैं तुमने किसके बल से मेरी प्रतिज्ञा का अवहेलना किया है। तब प्रह्लाद बोले कि वह भगवान मेरा ही बल नहीं है, किन्तु आप का भी बल वही है और सब बलियों का बल है। स्थावर पर्यन्त सब उसके वश में हैं। भगवान ही सृष्टि करते हैं असुरभाव छोड़ो तो कोई आपका शत्रु नहीं है। इन बातों को सुन कर, हिरण्यकशिपु क्रुद्ध हो कर बोला कि अब तुम अवश्य मरने की इच्छावाला हो, इसी से अधिक विरुद्ध कथा करते हो और तुमने जो हमसे भिन्न जगदीश्वर कहा है, सो कहाँ है, यदि सर्वत्र है, तो इस स्तम्भ में क्यों नहीं दिखाई देता है, अब मैं तेरा सिर काटूँगा। जिसे तुम अपना रक्षक मानता है, देखें कि वह तुम्हारी रक्षा कैसे करता है कह कर तलवार लेकर आसन से उठा और अपनी मुष्टि से खम्भ में मारा। उसी समय उसमें भयानक शब्द हुआ। जिससे सब डर गये प्रथम कुछ न दीखा, फिर अद्भुत् रूप नृसिंह दीख पड़े। जिससे वह असुर आश्चर्य में पड़ गया

अपनी मृत्यु की शंका करने लगा, गदा लेकर युद्ध के लिए तैयार हुआ एक बार भगवान के हाथ में जाकर भी निकल गया। फिर नृसिंह जी की गर्जना से उसकी आँखें ढँक गयीं। तब भगवान पकड़ कर, हथियार से न मारने के बर के कारण द्वार के ऊपर अपने जंघे पर गिरा कर नखों से उदर फाड़ दिये।

कंस वध की कथा श्रीमद्भागवत अ०-पूर्वार्ध अ० ४४ में है कि चाणूर मुष्टिकादि मल्लो के नष्ट होने पर कंस क्रुद्ध हो कर कहा कि दुर्वृत्त वसुदेव के पुत्रों को यहाँ से निकालो, गोपों के धन को हर लो, कुबुद्धि नन्द को बाँधो और वसुदेव को शीघ्र मारो। सो सुन कर कृष्णदेव उछल कर कंस के ऊँचे मंच पर चढ़ गये। उन्हें प्रवेश करते हुए देख कर, अपना मृत्यु समझ कर, कंस ढाल कृपाण उठा लिया। तलवार लेकर घुमाते हुए कंस को कृष्ण ने बल पूर्वक पकड़ लिया और केशों को पकड़ कर मंच से नीचे गिराया, आप उसके ऊपर गिरे। इतने में उसका प्राण छूट गया।

# सबद ९

## समाज दुर्व्यवस्था प्रकरण

### आधिदैविक अर्थ

**संतो बोले ते जग मारै।**
**अनबोले ते कैसेक बनिहैं, सबदहिं कोइ न बिचारै॥**
**पहिले जनम पूत का भयउ, बाप जनमिया पाछैं।**
**बाप पूत की एकै नारी, ई अचरज कोई काछै॥**

**शब्दार्थ**—बोले ते–सही बात कहने पर। जग–संसार के लोग। पहिले–प्रथम। अनबोले–बिना बोले। बनिहैं–बनेगा। सबदहिं–वक्तव्य में। पूत–पुत्र, जीव, ईश्वर, प्रजा जन। भयउ–हुए। बाप–ईश्वर, पुत्र-देश का राजा। जनमिया–जन्म लिया। पाछै–पीछे। एकै–एक ही।

नारी–प्रकृति या माया, संसार का सुख, ऐश्वर्य, स्त्री। ई–यह। अचरज–आश्चर्य। काछै–साफ करें, दूर करे, हटावे।

**सम्बन्ध**—आठवें शब्द में सद्‌गुरु ने निर्गुण ब्रह्म को या परमसत्ता को यह बताया कि वह अजन्मा है एवं मरणधर्मा नहीं है। उसके अतिरिक्त जितने नामधारी ईश्वर अवतार है, ये सब मायिक हैं। क्योंकि जो जन्म-मरण को प्राप्त होता है वह दूसरा है ईश्वर नहीं है परन्तु निचले शब्द में यह व्यक्त कर रहे हैं कि भला उपर्युक्त बात को कौन कहे क्योंकि उपर्युक्त बात कहने पर संसार के लोग मारने दौड़ते हैं।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे मंगलमय उपासक संतजन! यदि मैं कहता हूँ बोलता हूँ कि वह प्रभु अजन्मा, अविनाशी एवं अचिन्त्य है तथा अवतार लेने वाला वह नहीं है। तो इस बात को सुनकर संसार के लोग मुझे मारने दौड़ते हैं। यदि अनबोला रहूँ, मौन रहूँ, सत्य बात न कहूँ, तो भला कैसे बनेगा, क्योंकि बहुत से लोग सत्य के उपासक हैं। सत्य बात की जानकारी करना चाहते हैं, यदि सत्य छिपाया जाय तो भला इससे बड़ा अपराध और कौन होगा? इसलिए मैं सत्य बोलता हूँ। परन्तु इस संसार के मनुष्य मेरे शब्द पर मेरे वक्तव्य पर कोई विचार नहीं करते, विवेक नहीं करते कि कबीर सत्य कहते हैं कि कबीर असत्य कहते हैं। मैं तो कहता हूँ कि तूं स्वयं विचार करो, जो जन्म लेने वाला है, जो मरणधर्मा है, वह क्या प्रभु हो सकता है? प्रभु को तो कहा गया है 'न जायते मृयते वा कदाचन' तब तूं क्या मरण-धर्मों के पीछे पड़े हो अर्थात् साढ़े तीन हाथ के शरीर के पीछे क्यों लगे हो? क्योंकि उसी को सर्वेसर्वा मान रहे हो जो उसके अन्दर निरन्तर रहने वाला है, उसी को सत्य मानों वह अविनाशी तत्त्व है। अब प्रश्न उठता है कि क्या अवतार निरर्थक है? उससे समाज का क्या कोई लाभ नहीं हुआ है तो ऐसी बात नहीं है। अवतारों से बहुत बड़ा लाभ हुआ है। बहुत बड़ी उनकी देन है। वे सब प्रभु के विशेष कृपापात्र हैं और वे हमारे सम्माननीय एवं पूजनीय हैं तथा उनकी पूजा एवं उपा-

सना से बहुत बड़ा लाभ भी होता है। श्रेणी के अनुसार उनकी उपासना पूजा भी करनी चाहिए। उनका अनादर नहीं करना चाहिए परन्तु जो उनका शरीर है जो दिखायो देता है, जिसको हम सत्य मानते हैं। वह मूलतत्त्व नहीं है वह मायामय है। मूलतत्त्व उससे भिन्न है। मैं तो कहता हूँ कि सर्वप्रथम ओंकार स्वरूप हिरण्य गर्भ का ही जन्म हुआ अर्थात् सर्व प्रथम कार्यब्रह्म ही सामने आया। जिसने संसार की रचना की। उसके पश्चात् पिता स्वरूप खं ब्रह्म की जानकारी हुई क्योंकि सृष्टि करने के पश्चात् जब कार्यब्रह्म का आरोपण हो गया। तब ज्ञात हुआ कि कार्य ब्रह्म ही मूल तत्त्व नहीं है जिस कारण से जिस उपादान से कार्यब्रह्म उत्पन्न हुआ है, वह मूल कारण ही मूल तत्त्व है परन्तु समाज को उसकी जानकारी बाद में हुई। यह पिता पुत्र का विभाजन करने वाली रेखा एक माया प्रकृति ही है, वही दोनों की पत्नी है। कारण यह है कि पर ब्रह्म और कार्यब्रह्म के बीच का जो विभाजन है वह माया के द्वारा हुआ है और होता है। इसलिए माया दोनों की सहभागिनी है और दोनों को अलग किए रहती है। माया को त्रिगुणात्मिका भी कहा गया है। इसलिए त्रिगुण से मुक्त जो कार्यब्रह्म है, वह सगुण ब्रह्म के नाम से जाना जाता है। निर्गुण से नया होने के कारण पुत्र भी कहा जाता है। उधर परब्रह्म के सामने यवनिका के रूप में खड़ी होने के कारण माया उसको नहीं देखने देती है। एक तो निर्गुण ब्रह्म के सामने घेरा है और दूसरे सगुण ब्रह्म को घेरे हुए है। स्मरण रहे कि जो परब्रह्म के सामने घेरा है वह जीव के लिए है, क्योंकि उस घेरे के कारण जीव ब्रह्म को नहीं देख पाता है, जैसे सूर्य छोटे पहाड़ों के सामने भी छोटी आँखों से छिपा हुआ मालूम होता है दिखायी नहीं पड़ता परन्तु उस छोटे पहाड़ से पृथ्वी से भी लाखों गुना सूर्य बड़ा है। इसी प्रकार से निर्गुण ब्रह्म या परब्रह्म माया से अरबों गुना वृहद् है। परन्तु माया जीवों के सामने पड़ रही है। इसलिए परम प्रभु दिखायी नहीं देता। जबतक माया का पर्दा नहीं हटेगा, तब तक प्रभु के दर्शन नहीं होंगे। सद्गुरु

कहते हैं कि यही बड़ा आश्चर्य है कि जो जीवों को प्रभु ही से अलग किए हुए है भला उक्त पर्दा को कौन काछे कौन हटावे, कौन साफ करे। उक्त पर्दा या आवरण तभी हट सकता है जब कोई सुन्दर शुद्ध ज्ञान वाला सद्गुरु मिल जावे अन्यथा माया के पुजारियों के वश का नहीं है।

**दुन्दुर राजा टीका बैठे, बिखहर करे खवासी।**
**स्वान बापुरा धरनि ढाकनो, बिल्ली घर में दासी॥**
**कागदो काग कारकुड आगे, बैल करे पटवारी।**
**कहैं कबीर सुनो हो संतो, भैंसहिं न्याव निवेरी॥**

**शब्दार्थ**—दुन्दुर–दादुर, बड़ा मेढक, स्थूलकाय, दीर्घसूत्री, खा-पीकर सोनेवाला, स्थूल बुद्धि का। राजा–धर्माचार्य, देश का शासक। टीका–तिलक, मुकुट, धर्म चिह्न। बिखहर–सर्प, विषधर, क्रोधी, ईर्ष्यालु। खवासी–सेवकाई, सेवकपन। स्वान–कुत्ता, बड़-बड़ बोलने वाला, बड़-बड़ाने वाला, शास्त्रज्ञ, वाचक ज्ञानी। बापुरा–असमर्थ, आत्मज्ञान विहीन। धरनि–पृथ्वी, समाज। ढाकनो–रक्षक, रक्षा करने वाला। बिल्ली–हिंसक वृत्ति वाला, समाज को चूसनेवाला। घर–शरीर, देश। दासी–घर के अन्दर काम करने वाली, गृहमंत्रीणी। काग–काक वृत्तिवाला, पाप कर्म में रत, राज्य का कर्मचारी, सिपाही। दो काग–वडा कौवा, आरक्षी, आरक्षी अधीक्षक, आरक्षी महा निदेशक, छोटा महन्थ। कारकुड–लिपिक, सचिव, राज्यव्यस्थापक पुरोहित, धर्म व्यवस्थापक। आगे–अग्रभाग में। वैल–मूर्ख, धार्मिक गुरु, व्यवस्था देने वाला। पटवारी–जो खेतों का हिसाब किताब रखता है, एवं राजस्व की वसूली करता है, लेखपाल, वह धर्म-गुरु धार्मिक जनता से दान, दक्षिणा वसूल कर अपने परिवार का पालन करता है। भैंसहिं–भैंस, तमोवृत्ति का धर्मोपदेशक, न्यायाधीश। न्याव–निर्णय, फैसला, पाप पुण्य का निर्णय करने वाला। निवेरी–सुप्तध्यान वाला, निवारण करने वाला, सुलझानेवाला।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि इस समय मेरे देखने में तो बड़े मेढ़क की तरह स्थूलकाय ज्ञान ध्यान से रहित बड़े-बड़े मण्डलेश्वर, राजा का

रूप धारण कर लिए हैं। धर्म का टीका लगाकर बड़ी-बड़ी गद्दियों पर बैठे हैं। उनका खाना-पीना सोना मात्र यही धर्म रह गया है। शास्त्रों की बात पढ़ कर बड़ी-बड़ी लम्बी चौड़ी बातें बैठे हाँकते हैं परन्तु उनको कुछ पता नहीं है कि देश में क्या हो रहा है। हमारा क्या कर्त्तव्य है। किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो रहे हैं। उनके आस पास रहने वाले उनकी सेवा करने वाले, भयंकर विषधर के समान हैं। वे ही उसकी ख्वासी कर रहे हैं, वही उनकी सेवा कर रहे हैं। अर्थात् उक्त धर्माचार्य के नाम पर जनता का मार्ग दर्शक बने हैं। अर्थात् जो गुरु हैं वह मेढ़क के समान हैं, उसको जो खाने वाला सर्प है जो महाभयंकर क्रोधी है, कब उसको चटकर जायेगा, उस धर्म-गुरु को पता भी नहीं है। इसी प्रकार से परम हिंसक कुत्ता महाराज के सामने भू-भू करने वाला, लम्बी चौड़ी कथा करने वाला, आत्मज्ञान से विहीन बेचारा अर्थात् छोटा मण्डलेश्वर सेनापति के रूप में देश की जनता का रक्षक बना हुआ है। वही पृथ्वी के रक्षक के रूप में ढक्कन बना हुआ है। इसी प्रकार से अन्दर बिलाव के स्वभाव वाला जो चूहों को खाने का स्वभाव रखता है वह देश के अन्दर में दासी का काम करता है अर्थात् समाज की या धार्मिक जनता की देखभाल करता है और जो घूमफिर कर दुन्दुर राजा को समाचार देता है कि अमुख जगह धर्म प्रचार हो रहा है, वह कौवा के समान है, जो जीवित जीवों को पीड़ित करते रहता है, भला उससे क्या उपकार हो सकता है। उसी प्रकार जो दो काग बड़ा काग है, वह सचिव का कार्य करता है। वह सब देश भर के धार्मिक जगत का हिसाब किताब रखता है, धर्म की व्यवस्था करता है। जो बैल के समान महामूर्ख है वह लेखपाल का काम करता है अर्थात् धार्मिक जनता से दान-दक्षिणा रूपी राजस्व वसूल कर मुक्ति का प्रवेश पत्र देता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे शिव स्वरूप उपासक संतो! और आगे जरा सुनो दुन्दुर राजा के न्यायालय में अर्थात् धर्मसभा में असमंजस की स्थिति में निर्णय देने का काम भैंसा के समान तमोवृत्ति से आवृत्त काम क्रोध से युक्त लोग ही व्यवस्था देते हैं। भला जहाँ पर ऐसे

गुरु हों, जहाँ पर ऐसे देश के सेवक हों, जहाँ पर ऐसी दासी हों, जहाँ पर ऐसे सिपाही, आरक्षी हों, जहाँ पर ऐसे कारकुन हों व सचिव हों, जहाँ पर राजस्व उगाहने वाले ऐसे लेखपाल तथा जहाँ पर धर्म-व्यवस्था देने वाले ऐसे लोग हों, क्या उस समाज का सुधार हो सकता है अर्थात् समाज को सत्य का दर्शन हो सकता है ? कदापि नहीं।

**आधिभौतिक अर्थ**—सद्गुरु तत्कालीन समाज की व्यवस्था को देखकर उस समय के शासकों पर करारा प्रहार कर रहे हैं। वे कहते हैं कि हे संतो ! यदि आज के इन शासकों के बारे में कुछ कहा जाय, सही सुझाव दिया जाय तो मारने के लिए दौड़ते हैं, जो रात-दिन देश की प्रजा को चूस रहे हैं, एक दूसरे की मान्यता को समाप्त कर रहे हैं। धर्म के नाम पर परस्पर विद्वेष करा रहे हैं, जो सदा हिन्दू-मुसलमानों को लड़ा रहे हैं, जो मनमाने नियम व विधान बना रहे हैं, अनेक प्रकार से कर लगा रहे हैं, सदैव जनता को प्रताड़ित कर रहे हैं, यदि मैं उनसे कहता हूँ कि आप न्याय से शासन करिए, प्रजा को पुत्र के समान मानिए, न्याय के द्वारा प्रजा का पालन करिए, किसी मंदिर को तोड़कर उसका दिल मत तोड़िए। प्रजा पर अनावश्यक कर न लगाइए तो मुझे ये धर्मान्ध क्रूर शासक मारने दौड़ते हैं। यदि नहीं बोलूं तो भला समाज का उद्धार कैसे होगा, लोक में जागृति कैसे आयेगी, लोग अपने अधिकार के लिए कैसे लड़ेंगे ? मैं तो देखता हूँ कोई खाने बिना मर रहा है, कोई खाते-खाते मर रहा है। किसी के तन पर वस्त्र नहीं है, किसी के रहने के लिए घर नहीं है तो कोई मखमल फाड़कर पैर पोछ रहा है, कोई संगमरमर के घर में टट्टी कर रहा है। कोई रात-दिन शीत में ठिठुर रहा है और कोई गर्मी से तप रहा है। कोई महल के अन्दर से बाहर नहीं हो रहा है। कोई रात-दिन हल और कुदाल चलाते-चलाते परेशान है, कोई पलंग पर सोते-सोते परेशान है। कोई कमा रहा है कोई छीन कर खा रहा है, कोई शोष्य है कोई शोषक है। किसी के पास एक पैसा भी नहीं है, कोई अरबपति है। किसी के पास एक छटाक अन्न भी नहीं है। किसी का अन्न सड़ रहा है, कोई खाने वाला

नहीं है। कोई निर्दोष व्यक्तियों को पीट रहा है, कोई सह रहा है। इत्यादि प्रकार की अव्यवस्था को देखकर, भला जीवित मनुष्य कैसे चुप रह सकता है ? यदि चुप रहता है तो समाज को बहुत बड़ा कलंक लगता है और संसार से मानवता समाप्त हो जाती है और देश में शैतानों का राज्य हो जाता है। दैत्य शासन करने लग जाते हैं। हे संतजन ! भला ऐसी दशा में मैं कैसे चुप रहूँ, परन्तु बोलता हूँ तो मुझे हाथी से कुचलवाया जाता है, और हाथ-पैर बाँधकर मुझे नदी में फेंकवाया जाता है, परन्तु मेरे शब्द पर कोई विचार नहीं करता कि कबीर सत्य कहता है कि असत्य। मैं तो कहता हूँ कि प्रकृति सर्वप्रथम पुत्र स्वरूप प्रजा को ही जन्म दिया था अर्थात् पहले जनतंत्र था, समाजवाद था। कोई किसी का शासक नहीं था। सब स्वतंत्र थे। सब न्यायप्रिय थे। अपनी बुराइयों का निरीक्षण कर, स्वयं दूर कर देते थे। बहुत बाद में जब मनुष्यों में गिरावट आने लगी, परस्पर स्वार्थ की भावना हो गयी तब बाप स्वरूप जल्लाद का जन्म हुआ अर्थात् समाज व्यवस्था कायम हुई। अस्तु भले ही सामन्ती व्यवस्था कायम हुई, परन्तु जो नारी स्वरूप संसार का वैभव, सम्पत्ति है, धन है, जमीन है, जगह है, वह राजा प्रजा सबके लिए है अर्थात् बाप कहिए सामन्त, पुत्र कहिए प्रजा। संसार के वैभव को सभी भोगने के अधिकारी हैं परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि इस तथ्य को कोई समझ नहीं रहा है। इस शासन को कोई हटा नहीं रहा है। इसे कोई साफ नहीं कर पा रहा है। खेद है, दुःख है कि इस समय देश का राजा बड़े मेढ़क के समान दीर्घसूत्री हैं जो बादशाह का ताज पहन कर सिंहासन पर बैठा है, वह कभी देश में घूमकर यह नहीं देख पा रहा है कि हमारी प्रजा किस दशा में है, किसको सुख है, किसको दुःख है ? कौन रोगी है, कौन क्लान्त है। कौन सताया जा रहा है, कौन सता रहा है ? उसके विपरीत दीर्घसूत्री महाराज जो रात-दिन ऐशो आराम में डूबा है, जो बीबीयों के बीच में नाचता है, अपनी शेखी बघार रहा है, वह किस प्रकार के अनुचरों को देश की रक्षा के लिए रखा है। उसके सेवक विषधर सर्प के समान हैं, जो प्रजा को सता-सता कर अन्त कर देते हैं। दूसरे कुत्ते के समान जो

सदा गाली-गल्लम बकते हैं, जिनको न्याय-नियम का कुछ भी ज्ञान नहीं है जो निम्न किस्म का धन सदा भक्षण करते हैं, जो अपराधियों के अपवित्र धन को ग्रहण करते हैं, घूस लेकर उनको छोड़ देते हैं, ऐसे कर्मचारी उस राजा के रक्षक हैं, जो बिलाव के समान चूहा रूपी निर्बल प्रजा को खाने में सदा रत हैं। ऐसे लोग गृह मंत्री हैं। देश के अन्दर की व्यवस्था देखने वाले हैं, जो काग-बुद्धि वाले हैं जो जीते-जी प्रजा को पीट-पीट कर नाजायज धन उगाहते हैं। झूठे-झूठे राजाज्ञा सुनाकर, कोड़ो से पीटकर प्रजा से कर वसूलते हैं। ऐसे लोग देश के आरक्षी हैं जो बड़े कौवा के समान गहरा चोंच मारकर जीवित पशुओं के मांस निकाल लेते हैं, जिनकी बोली बड़ी अप्रिय होती है। जो जबरन सदा हरक्कत करते रहते हैं, वे ही सरकारी कागजों के हिसाब-किताब रखने वाले कारकुन, लिपिक व सचिव हैं जिनके निर्देश पर देश की व्यवस्था सुदृढ़ की जाती है। इसी प्रकार से जो निचले स्तर तक ग्रामीण जनता से जुड़े हुए हैं, जो पटवारी कहे जाते हैं, जो पट्टा पर जनता को भूमि वितरण करते हैं, जो नाप जोखकर भूमि वितरण करते हैं, जो राजस्व वसूलते हैं वे विल्कुल बैल के समान अनभिज्ञ अनाड़ी हैं, जो उनको ज्यादा पैसा देता है, उनको ज्यादा भूमि देते हैं। जो कम देता या नहीं देता है, उसको जमीन कम देते हैं अथवा नहीं देते हैं। सद्‌गुरु कबीर पुनः संतों को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हे संतजन! यह तो राष्ट्र की व्यवस्था हुई, परन्तु जो देश का सर्वोच्च न्यायालय है, जहाँ पर प्रजा फरियाद के लिए जाती है। वहाँ के न्यायाधीश (काजी) कैसे तमोगुणी हैं जो सही बात सुनने के लिए तैयार नहीं हैं वे बिल्कुल अनाड़ी किस्म के धर्मान्ध भैंस की बुद्धि के समान जिनको न्याय, कानून की कुछ भी जानकारी नहीं है वे ही लोग इस समय देश के न्यायालय में बैठकर जनता को न्याय दे रहे हैं। भला इन सज्जनों से उपर्युक्त महाराज से देश की व समाज की क्या भलाई हो सकती है? मुझसे रहा नहीं जा रहा है, इसलिए मैं बोल पड़ता हूँ।

**आध्यात्मिक अर्थ**—सद्‌गुरु संतों से कहते हैं कि इन जगत जीवों को

सही बात कहता हूँ तो ए संसार के मूर्ख मनुष्य मुझे मारने के लिए दौड़ते हैं। यदि नहीं बोलता हूँ तो भला इनका कार्य कैसे बनेगा ? इनमें से कोई भी मेरे शब्द पर विचार नहीं करता। मैं कहता हूँ कि संसार में पहले तुम जीवों का जन्म हुआ, उसके बाद बाप रूपी परमेश्वर का संतो ने परिचय कराया। तुम्हारे व परमेश्वर में कोई सजातीय, विजातीय व स्वगत भेद नहीं है। केवल तुम्हारे अर्थात् जीव में व परमेश्वर में माया विभाजन रेखा खड़ी किए हुए है। तुम अविद्या के कारण जीव बना हुआ है, अविद्या न होने के कारण परमेश्वर तुम्हारा शासक बना हुआ है। एक ओर माया रूपी नारी परमेश्वर की आज्ञाकारिणी है, दूसरी ओर तुम सब जीवों को धर दबोची है। इसलिए तुम जीव और ईश्वर की एक माया दोनों की पत्नी हुई परन्तु काम, क्रोध से तुम इतना लद गया है कि कुछ कर नहीं पा रहा है पुरुषार्थ से तुम विमुख हो गए हो। मात्र चेतन का चोला पहन- कर इन्द्रियों का राजा बनकर बैठा है। क्रोध रूपी सेवक तुम्हारे आसपास मड़रा रहा है। उसी को तुम अपना सेवक मान लिया है। उसी के कहने पर तुम चल रहा है। कुत्ता स्वरूपी चंचल स्वभाव तेरा, तेरे शरीर रूपी घर का रक्षक बन गया है जिसमें यत्किंचित स्थायित्व नहीं है ! बिल्ली रूपी दुर्बुद्धि तेरे शरीर रूपी घर में सेवकानी बनी हुई है जिसके अधीन तूं सदा पड़ा रहता है। काग स्वरूपी मन तेरा अपवित्र विषयों का सदैव सेवन कर रहा है, बड़ा कौआ जो देखने में भोला-भाला लगता है वह तेरा मत्सर तेरे विचारों का लेखा-जोखा करने वाला व तेरा सलाहकार बना हुआ है बैल बुद्धि से युक्त तेरा विचार अपने हिताहित के लिए पटवारी का काम कर रहा है। जो इन्द्रिय सदा भोग परायण है उसी कुविचार को तुम पटवारी नियुक्त किया है। मैं कबीर आप सन्तों से कहता हूँ इसका जो विवेक है वह नष्ट हो चुका है जो भैंस के समान तमोगुण से युक्त है, वही हृदय रूपी न्यायालय में बैठकर अन्तःकरण के कार्यों का निपटारा कर रहा है। भला ऐसी दशा में मानव की भलाई कौन करेगा ? कैसे हो सकती है ?

# सबद १०

## हिन्दू मुसिलम व्यवहार समीक्षा-प्रकरण

संतो राह दुनौ हम दीठा ।
हिन्दु तुरक हटा नहिं मानैं, स्वाद सभन कै मीठा ।।
हिन्दू बरत एकादसी साधे, दूध सिंघारा सेती ।
अन को त्यागैं मन को न हटके, पारन करैं सगौती ।।
तुरक रोजा निमाज गुजारैं, विसमिल बांग पुकारै ।
इनकी भिस्त कहाँ से होवै, जो सांझै मुरगी मारै ।।

शब्दार्थ—राह–मार्ग, सम्प्रदाय, व्यवहार। दीठा–देखा। हटा–हटाया, किसी बात को न करने का संकेत, निषेध, मनाही। मीठा–मधुर, प्रिय। एकादसी–जो शुक्लपक्ष में व कृष्णपक्ष से एकादशवें दिन आती है, उसे एकादशी कहते हैं। बरत–व्रत, उपवास। साधे–साधन करे। सिंघारा –श्रृंगाटक, पानी में फैलने वाली एक लता का फल जो कच्चे–पक्के दोनों खाया जाता है और फलाहार के काम में आता है। सेती–से, द्वारा। हटके–दूर होना, हटकना, किसी काम से हटाना, रोकना, बर्जना, व मना करना। पारन–व्रत के दूसरे दिन पहला भोजन करना, जिसको पारन कहते हैं, व्रत विसर्जन करना। सगौती–आमिष, मांस, गोस्त। तुरक–तुर्की देश का रहने वाला, मुसलमान। रोजा–तीस दिन लगातार जो रमजान के महीने में व्रत रहा जाता है, उसे रोजा कहते हैं, जिसमें सूर्योदय से पूर्व तथा सूर्यास्त के बाद भोजन किया जाता है। निमाज–दिनभर में यानी चौबीस घंटे में पाँच बार ईश्वर की प्रार्थना, जो दुनियाँ में कहीं भी मक्का–मदीना के तरफ मुँह करके पढ़ी जाती है। गुजारैं–पेश करना, नमाज गुजारना, ईश्वर की प्रार्थना करना। विसमिल–विसमिल्लाह, श्री गणेश, आरम्भादि, जबह करना, बलि देना। बांग–आवाज, शब्द, पुकार, चिल्लाहट, वह ऊँचा शब्द जो निमाज का समय बताने के

लिए कोई मुल्ला मस्जिद में करता है, अजान। भिस्त–वहिस्त, स्वर्ग, बैकुण्ठ जहाँ पर अल्लाह रहता है। मुरगी–कुक्कुट।

**सम्बन्ध**—इसके पूर्व कहा गया है कि बोलने से लोग मारने दौड़ते हैं और बिना बोले कार्य की सिद्धि भी नहीं होती, मारने की बात तब आती है, जब अपराधी मनुष्य अपनी बुराई किसी के द्वारा सुनता है तब क्रोधी हो जाता है क्योंकि उसकी आत्मा बहुत कमजोर हो जाती है वह सहन नहीं कर पाता। अन्त में कहा गया कि अपराधी की निर्णय बुद्धि जो सत्यासत्य का विवेक करती है वह बहुत धूमिल हो गयी है, अधिक तमोगुण से युक्त होने के कारण ठीक-ठीक विवेक नहीं कर पाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकार के लोग किसी धर्म विशेष में होते हैं? तो कहा जा रहा है कि नहीं इस प्रकार के लोग सभी धर्मों में होते हैं। यहाँ पर किसी धर्म विशेष की आलोचना नहीं है और न ही किसी मनुष्य विशेष से घृणा है, केवल उसके कर्म से वैमनस्य होता है। एक बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि सद्गुरु कबीर ने हिन्दू मुसलमान व दो धर्म का ही बराबर उल्लेख किया है। यद्यपि कहीं-कहीं शाक्त आदि का भी नाम लिया है परन्तु उन्हें हिन्दू से अलग नहीं किए हैं। उन्होंने उन सभी धर्मों को हिन्दू धर्म के अन्तर्गत ही माना है, जो भारतीय भूमि पर उत्पन्न हुए थे। चाहे वे शाक्त हो, चाहे बौद्ध, जैन हो चाहें वे चार्वाक या वैष्णव हों। वे सब किसी न किसी अंश में वेद से सम्बन्धित होने के कारण हिन्दू धर्म के अन्तर्गत आते हैं। किसी ने वेद के अहिंसा धर्म को अपनाया, किसी ने अनेकत्ववाद को अपनाया। किसी ने भौतिकवाद अपनाया, किसी ने ईश्वरवाद अपनाया, किसी ने ब्रह्मवाद तो किसी ने बहुदेववाद अपनाया। कहने का तात्पर्य यह है कि सद्गुरु कबीर ने उन सभी धर्मों को वैदिक धर्म के अन्तर्गत माना है जो भारतीय संस्कृति के उपासक थे। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारतीय उपमहाद्वीप में जो भी धार्मिक व सामाजिक विचारधाराएँ उत्पन्न हुई हैं, वे सब वेद से ही उत्पन्न हैं। चाहे वे बुद्ध हों चाहे ऋषभदेव से लेकर महाबीर हों

चाहे चार्वाक हों, चाहे वे रामानुजाचार्य हों या शंकराचार्य हों अथवा चाहे गुरुनानक देव हों, चाहे गुरु गोबिंद सिंह हों, सभी वेद रूपी वटवृक्ष के फूल पत्ते हैं। इसी प्रकार से सद्गुरु ने जहाँ-जहाँ पर मुसलमान, तुरक या तुर्क का प्रयोग किया है, वहाँ-वहाँ पर उनका तात्पर्य यह है कि जो धर्म, अरब में मक्का मदीना के आसपास उत्पन्न हुआ वह मुसलमानी धर्म है क्योंकि इस्लामधर्म पर अत्यधिक प्रभाव यहूदी धर्म का है। विद्वानों का मत यहाँ तक है कि यहूदी धर्म की नब्बे प्रतिशत बातें इस्लाम में संग्रहित की गयी हैं। यह भी स्मरण रहे कि इस्लाम धर्म में एवं उसके रीति-रिवाज में तुर्कों का बहुत बड़ा योगदान है। इसलिए मुसलमानों को कबीर साहब ने तुर्क भी कहा है। दूसरी बात यह है कि उनके समय में भारत में तुर्क व्यापारी बहुत आते-जाते थे जो इस्लाम को स्वीकार कर चुके थे। कुछ लोगों का मत है कि सद्गुरु कबीर ईसाई धर्म से परिचित नहीं थे, क्योंकि ईसा का नाम उन्होंने कहीं भी नहीं लिया है। ध्यान देने योग्य बात है कि मनुष्य उन्हीं तथ्यों का बार-बार उल्लेख करता है जो तथ्य उसके सामने होते हैं। यदि कबीर साहब ईसाई धर्म से परिचित न होते तो यह कैसे कहते 'दावा काहू का नहीं बड़ा विलायत राज'। दूसरी बात यह है कि उस समय देश के दक्षिणांचल में यत्र-तत्र ईसाईयों के आने की बात मिलती है परन्तु ईसाईयों से न तो उस समय भारतीय संस्कृति को खतरा था और न उनका कोई आतंक था। इसलिए उनका नाम लेना उस समय निरर्थक था। हिन्दू मुसलमान दोनों देश में फैल चुके थे और परस्पर में लड़ते-भिड़ते थे। दोनों अपने-अपने धर्म के लिए एक दूसरे की मान्यताओं को अस्वीकार कर रहे थे और परस्पर लड़ते-भिड़ते थे। इस पद में उसी बात की ओर संकेत करके कहा जा रहा है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे अनघ संतजन ! हमने वर्तमान भारत के दोनों धर्मों की बात खूब निगाह से देखा है। ये दोनों हिन्दू मुसलमान अपने-अपने मार्ग से च्युत हो चुके हैं। मेरी सही बात को न हिन्दू मान रहा है और न मना करने पर तुर्क मान रहा है। मैं कहता हूँ ये अत्या-

चार, मांस खाना छोड़ो, मद पीना छोड़ो, अन्न से, फल से, दूध से अपना जीवन यापन करो ? परन्तु ये सब हिन्दू एवं मुसलमान मेरी बात को समझ नहीं रहे हैं और न मानने के लिए प्रस्तुत हैं। उन दोनों को जिह्वा का स्वाद अधिक मीठा है, अधिक प्रिय है। यहाँ पर देखा शाक्त हिन्दू जो एकादशी व्रत करते हैं, जो एकादशी की साधना करते हैं वह व्रत के मध्य में सिंघारा खातें है, दूध पीकर व्रत रहता है। अर्थात् दूध, सिंघारा के द्वारा व्रत रहता है परन्तु व्रत के दिन अन्न का त्याग कर देता है और कहता है कि यह भगवान विष्णु का पवित्र व्रत है, इससे मरने के बाद बैकुण्ठ में जाऊँगा। पर जो मन में प्रतिदिन की मांस खाने वाली चाहना लगी हैं, वह व्रत के दौरान भी नहीं हटा सका अर्थात् माँस खाने से मन को नहीं हटाया। किसी प्रकार से वाममार्गी हिन्दू व शाक्त दिनभर व्रत रहा, जब दूसरे दिन व्रत पारन की व विसर्जन की बात आयी तो माँस खा करके उसका पारन किया। यहाँ ध्यान रहे कि जो वैष्णव लोग एकादशी व्रत का पालन करते हैं, वे लोग अन्न के द्वारा व तुलसी खाकर पारन करते हैं। सगौती से पारन करने वाले केवल शैव या शाक्त हो सकते हैं। उसी प्रकार से सद्गुरु मुस्लिम भाइयों को भी सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे मुसलमान भाई! आप लोग तीस दिन तक घोर तप करते हैं, ज्येष्ठ हो या क्वार का महीना हो दिन में पानी तक नहीं पीते। दिन में तो आप यह पवित्र व्रत करते हैं और पाँच बार प्रभु की प्रार्थना करते हैं अर्थात् निमाज गुजारते हैं। आरम्भ में वे विसमिल्लाह कहकर अजान देते हैं और दूसरे निमाज पढ़ने वालों को बांग देकर पुकारते हैं व जगाते है। यह सब काम तो आपका ठीक था, किसी न किसी प्रकार आप लोगों से प्रभु का स्मरण कराते हैं। अध्यात्म की ओर मोड़ते हैं, परन्तु आप को मुक्ति कैसे होगी, आप को स्वर्ग कैसे मिलेगा अर्थात् हे संतो! इनको वहिस्त कैसे होगी, जो व्रत के उपरान्त सूर्य अस्त होने पर रोजा का पारन करते हैं तो मुर्गी व कुक्कुट को मारकर व जबह कर पकाकर खाते हैं अर्थात् दिनभर रोजा रहते हैं और शाम को मसाला डालकर मुर्गी का मांस पका कर खाते हैं।

**हिन्दू की दया मेहर तुरकन की, दूनों घट सों त्यागी।**
**ई हलाल वै झटका मारैं, आगि दूनों घर लागी॥**
**हिन्दू तुरक की एक राह है, सतगुर सोइ लखाई।**
**कहैं कबीर सुनो हो संतो, राम न कहेउ खोदाई॥**

**शब्दार्थ**—मेहर–दया, करुणा। दूनों–उभय। घट–हृदय, शरीर, कण्ठ। सों–से। त्यागी–त्याग दिया। ई–मुसलमान। हलाल–धीरे-धीरे रेतकर काटना, हलाल उसको कहते हैं जो एकाएक न काटकर कण्ठ के पास से धीरे-धीरे रेतकर शिर को अलग कर देते हैं। वै–हिन्दू। झटका–झटका उसको कहते हैं जो एक छेव में ही मार गिराते हैं। आगि–अग्नि, हत्या का पाप। घर–दोनों सम्प्रदायों में। लागी–लगी। एक राह–एक ही विचार, व्यवहार व एक ही कर्म। सतगुरु–श्री रामानन्द व संतो ने। सोइ–वही। लखाई–बताया, दिखाया। खोदाई–खुदा, अल्लाह, ईश्वर।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते है कि हे निष्पाप आत्मन् संतजन, मेरे देखने में तो न हिन्दुओं में दया है न तुर्कों में मेहर है दोनों दया-धर्म से अलग हो गए हैं। दोनों के हृदय से दया का त्याग हो चुका है। क्योंकि मुसलमान लोग निर्बल पशुओं का गला धीरे–धीरे काटते हैं कि उसको अधिक क्लेश न हो और हिन्दू लोग झटित इसलिए मार डालते हैं कि उसको ज्यादा क्लेश न हो, जरा यह तमासा तो देखो, इनकी मारने की प्रक्रिया भी दया से युक्त है। इन अनाड़ियों को इतना भी ज्ञान नहीं है जो पाप स्वरूप कर्म है उसी को पुण्य मानकर कर रहे हैं। हत्या स्वरूपी अग्नि इन दोनों हिन्दू मुसलमानों के सम्प्रदाय में लगी हुयी है। जो इनको बिना जलाए नहीं छोड़ेगी, हत्या रूपी अग्नि इनको अवश्य नाश करेगा ? हे संतों ! मेरे देखने में तो हिन्दू और तुर्कों का एक ही व्यवहार है, एक ही आचरण है, चलने वाला एक ही पंथ है अर्थात् दोनों पाप कर्म में लिप्त हैं। इन वाममार्गी हिन्दूओं का और इस्लामियों का एक ही विचार है, एक ही पंथ है। इसको मेरे सद्गुरु स्वामी रामानन्द जी ने बताया और दिखाया कि इन दोनों में न कोई बड़ा है न छोटा है। दोनों एक पंथ के

पथिक हैं। पुनः सतगुरु संतों को संबोधित करके कहते हैं कि हे संतजन! उक्त नीच कर्म इत्यादि करने के लिए न राम अपने उपासकों से कहा है और न खुदा अपने उपासकों से कहा है कि जीवों की हत्या करो और मुझे चढ़ाओ। ये सब अपने-अपने जिह्वा के स्वाद के लिए निर्बल प्राणियों की हत्या करते हैं।

## सबद ११

**संतो पांडे निपुन कसाई।**
**बकरा मारि भैंसा पर धावै, दिल महं दरद न आई॥**
**करि असनान तिलक दै बैठे, विधि सो देवि पूजाई।**
**आतम राम पलक में विनसे, रिधुर कै नदी बहाई॥**
**अति पुनीत ऊँचे कुल कहिए, सभा माहिं अधिकाई।**
**इन्हते दिच्छा सभ कोई मांगे, हँसि आवै मोहि भाई॥**

**शब्दार्थ**—पांडे–पाण्डेय, वाममार्गी पंडा, शाक्त। निपुन–चतुर। कसाई –काटने वाले। दिल–हृदय। महं–में। दरद–पीड़ा। करि–करके। विधि–विधि पूर्वक, शास्त्र रीति से। देवि–शक्ति। पुजाई–पूजन। आतम राम–जीवात्मा। पलक–क्षण। रिधुर–रुधिर, रक्त। कै–की। बहाई–प्रवाहित किया। अति–बहुत। पुनीत–पवित्र। ऊँचे–बड़े। कुल–खानदान। माहिं–में। अधिकाई–अग्रिम आसन, ऊँचा आसन, श्रेष्ठता। अधिकाई–जबरदस्ती। इन्हते–इनसे। दिच्छा–दीक्षा, मंत्र दीक्षा।

**सम्बन्ध**—पूर्वागत 'सबद' में हिन्दू-मुसलमानों को पाप करने में समान बताया और यह कहा कि शाक्त हिन्दुओं में व मुसलमानों में कोई फर्क नहीं है। ये अपने जिह्वा के स्वाद के लिए बकरों को बलि देते हैं, प्राणियों की हत्या करते हैं परन्तु जिसकी उपासना ये लोग करते हैं वह ऐसा करने को नहीं कहा है। अब नीचे शाक्त एवं मुसलमानों के विषय में पुनः कहा जा रहा है कि ये लोग बड़े पवित्र बनते हैं। अपने को ब्राह्मण होने का गर्व करते हैं, अब उनकी भी कथा सुनो।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे निष्कलंक कल्मष विहीन आत्मज्ञ सन्त जन। अब देवी उपासकों की कथा को सुनो जो अपने को बहुत पवित्र उत्तम ब्राह्मण कहलाते हैं। जो किसी दूसरे जाति का अस्तित्व नहीं स्वीकार करते। वे उपासक पांडेय लोग बहुत चतुर कसाई हैं क्योंकि कसाई तो मांस बेचने के लिए काटता है ये लोग स्वयं खाने के लिए एवं अपने अपराध को छिपाने के लिए देवी, देवता का नाम लेते हैं। स्मरण रहे कि दुर्गा सप्तसती में एवं देवी भागवत में देवी को वैष्णवी कहा गया है। उसकी पूजा मात्र पुष्प, पत्र, अक्षत से होती है। वैष्णवी देवी मांस कभी नहीं खाती परन्तु ये चतुर कसाई लोग दुर्गा सप्तसती की बात पर विचार नहीं करते और न देवी भागवत को ही पढ़ते हैं। इसी प्रकार से अन्यत्र भी देवी को वैष्णवी कहा है परन्तु उस पराशक्ति अचिन्त्य कला की मूर्त्ति बनाकर उस दयामयी माँ के सामने उसके नाम पर बकरा काटते हैं, भैंसा काटते हैं। उक्त कर्म को करने के लिए गाँव-गाँव में दौड़ते रहते हैं। गाय काटने से निर्धन व्यक्ति को कसाई कहते हैं परन्तु मैं इनसे पूछता हूँ कि क्या बकरा का जीव एवं भैंसा का जीव गाय के जीव से सस्ता है। क्या इन दोनों के मारने पर पाप नहीं होगा ? गाय मारने वाले को तुम महापापी कहते हो ? तुम उससे कहाँ कम हो ? क्या तुम्हें बकरा, भैंसा, मारते समय उनको चिल्लाते समय, रोते समय दया नहीं आती है ? क्या संसार में इनको स्वतंत्र रहने का अधिकार नहीं है उन्हें भी तो प्रकृति माता ने ही रचा है। क्या तुम्हारे लड़के को कोई मारे तो तूं बर्दाश्त कर लोगे ? तुम अपने दुःख को दुःख समझते हो, दूसरे को दुःख देने में, दूसरे की हत्या करने में तेरे दिल में जरा सी भी पीड़ा नहीं होती ? तुम प्रातः-काल स्नान करते हो, चन्दन आदि का तिलक सिर पर देकर बैठते हो विधि पूर्वक महाभगवती की पूजा करते हो और दूसरे से पुजवाते हो परन्तु शुभ कर्म के स्थान में पलक मारते-मारते प्राणियों को उनके शरीर से अलग कर देते हो, आत्माराम का नाश कर देते हो, जीवों को मार-कर रुधिर की नदी बहाते हो। काम तो तेरे बहुत खोटे हैं, अतिनिन्दनीय

हैं परन्तु बहुत पवित्र अपने को मानते हो। बहुत ऊँचे कुल में जन्मा हुआ बताते हो और बड़ी-बड़ी सभा-सोसाइटियों में ऊँचे आसनों पर बैठते हो और अपनी बात मनवाने के लिए अधिकाई भी करते हो अर्थात् अपनी बात मनवाने के लिए जबरदस्ती भी करते हो और तुमसे हिन्दू समाज के लोग मंत्र-दीक्षा भी माँगते हैं। हे संतों! इनसे लोग मुक्ति का मार्ग पूछते हैं परन्तु इनके कर्त्तव्यों पर विचार करने पर मुझे हँसी आ रही हैं जो अपने स्वयं पथ भ्रष्ट हैं जिसे स्वयं धर्माधर्म का ज्ञान नहीं है, वह कौन सी मुक्ति की शिक्षा देगा? यहाँ पर केवल शाक्त ब्राह्मणों के बारे में कहा गया है न कि पूरे ब्राह्मणों को कहा गया है क्योंकि ब्राह्मणों में बहुत से वैष्णव हैं जो मांस नहीं खाते और नही हिंसा का समर्थन करते हैं। सद्गुरु की कोई जाति विशेष से शत्रुता नहीं थी केवल व्यवस्था की त्रुटियों का विरोध किये हैं।

**पाप कटन को कथा सुनावैं, करम करावैं नीचा।**
**हम तो दोउ परस्पर देखा, जम लाये हैं धोखा॥**
**गाय बधे ते तुरक कहिए, इनते वै का छोटे।**
**कहैं कबीर सुनो हो संतो, कलि मा बाभन खोटे॥**

**शब्दार्थ**—धोखा–यम, धोखा से मारने वाले की तैयारी में है। लाये–लगाए। दोउ–दोनों।

**मूलार्थ**—बड़े आश्चर्य की बात है पाप कटने के लिए तो अच्छे-अच्छे ग्रन्थों की कथा सुनाते हैं परन्तु धार्मिक मनुष्यों से हत्या रूपी नीच कर्म कराते हैं, जीव वध कराते हैं। हम तो उन दोनों हिन्दू-मुसलमानों को परस्पर एक ही समान देख रहें हैं। मुसलमान लोग गाय काटकर कसाई बने हुए हैं और हिन्दू लोग बकरा, भैंसा काटकर पण्डा बने हुए हैं। हत्या तो हत्या, दोनों हत्या ही है चाहे ब्राह्मण को मारो, चाहे चमार को मारो, चाहे हिन्दू को, चाहे मुसलमान को मारो। सबके मारने का पाप एक समान है। इन बकरादि काटने वाले पण्डा-पुजारियों को व गाय काटने वाले कसाई मौलबियों को उनके अपराध का दण्ड देने के लिए भगवान आदित्य

के पुत्र यम धोखा देकर पकड़ने के लिए छिपे हुए हैं। वे समय पाकर अवश्य इनको पकड़ेंगे और घोर नरक में ले जायेंगे। ब्राह्मण लोग गोहत्या करने पर इस्लामियों को तुरुक कहते हैं अथवा गाय काटने पर उनको 'तुरुक' कहिये परन्तु क्या ये ब्राह्मण लोग इन गाय काटने वालों से छोटे हैं, जो बकरे, भैंसों को देवी के स्थान में काटते हैं ? कदापि नहीं, दोनों समान हैं। सद्गुरु कबीर पुनः आत्मज्ञानी संतों से कहते हैं कि हे संतजन ! अन्य युगों के ब्राह्मण तो श्रेष्ठ थे, सत्य का पालन करने वाले थे परन्तु इस कलि में व इस कलियुग के ब्राह्मण बहुत नीच कर्मी हो गए हैं बहुत खोटे हो गए हैं।

**आशय**—ऊपर के दसवें एवं ग्यारहवें 'सबद' में हिन्दू-मुसलमान के कर्त्तव्यों की समीक्षा की गयी है। दोनों में कोई फर्क नहीं बताया गया है। कोई एकादशी व्रत करता है. कोई रोजा निमाज करता है पर दोनों व्रत के अन्त में हत्याएँ करते हैं। मुल्ला जी, मौलवी जी, खुदा के नाम पर गाय, भेड़ा, ऊँट, भैंसा काटते हैं। कलमा पढ़ते हैं और शाक्त पाण्डेय लोग उनसे भी आगे बढ़कर बड़ी निपुणता के साथ बकरों, भैंसों की देवी के सामने हत्या करते हैं। यह सब करने पर भी स्नान करके तिलक देकर बैठ जाते हैं और दूसरे से पुजाने लगते हैं परन्तु जीवों की हत्या करके तुरन्त उनका नाश कर देते हैं। उस पर भी अपने को अति-पवित्र अतिश्रेष्ठ बताते हैं तथा धार्मिक सभा में अपनी बात को सबको मानने के लिए विवश करते हैं। ऐसे कुकर्मियों से लोग गुरुमंत्र लेते हैं। मुझे तो आश्चर्य हो रहा है, हँसी आ रही है क्योंकि पाप दूर करने के लिए पवित्र ग्रन्थों की कथा सुनाते हैं पर कर्म तो बहुत नीचा कराते हैं। भला उस नीच कर्म से इनको यमराज बकस सकता हैं, कदापि नहीं ? मैं तो कहता हूँ कि उन गाय बधने वालों से भैंसा बकरा बधने वाले से ऐ कभी छोटे नहीं है। पहले के ब्राह्मण जो भी कुछ कर रहे हों परन्तु इस समय के ब्राह्मण तो निश्चित रूप से नीच हो गए हैं। इसलिए इन मौलवी एवं ब्राह्मणों की भलाई इसी में है कि उक्त बूरे कर्मों का परित्याग

करके भगवान नारायण की शरण लें। नहीं तो कल्याण होने वाला नहीं है।

## सबद् १२

### आत्मानुभव सुख-प्राप्ति प्रकरण

**संतो मते मात्तु जनरंगी।**
**पिअत पिआला प्रेम सुधारस, मतवाले सतसंगी॥**
**अरधे उरधे भाठी रोपिन, लेत कसारस गारी।**
**मूंदे मदन काटि क्रम कस्मल, संतत चुवत अगारी॥**
**गोरख दत्त वसिष्ठ बेआस कपि, नारद सुखमुनि जोरी।**
**बैठे सभा सिंभु सनकादिक, तहं फिरे अधर कटोरी॥**

**शब्दार्थ**—मते–मत; ज्ञान प्राप्ति का मत। मत्तु–मत्त, उन्मत्त, समूह। रंगी-रंगवाला, रंगा हुआ, अनुरागी। पिअत–पीते हुए, पिवत। पिआला–प्याला, कर्णिका, पुरवा। प्रेम–अनुरक्ति। सुधारस-अमृत रस, ब्रह्माण्ड से चन्द्र निःसृत रस। मतवाले–छके, रस की नशा से सराबोर। सतसंगी–जो सतसंग करते हैं। अरधे–नीचे मूलाधार गुदा एवं उपस्थ के बीच का स्थान। उरधे-ऊपर, सहस्रार। भाठी–भट्ठी, हृदय स्थान। रोपिन–आरोपित, स्थापित। लेत–निचोड़ने की प्रक्रिया, ग्रहण की क्रिया। कसा–कसाव, रस-अमर बारुणी, आत्म तत्त्व। गारी–गारना, चुवाना, निचोड़ना। मूंदे–बन्द करे, निग्रह करे, पालन करे। मदन–कामदेव, ब्रह्मचर्य। काटि–नष्ट। क्रम–कर्म, कृत्य। कस्मल–पाप। संतत–सदैव, हमेशा। चुवत–टपकत, गिरत। अगारी–आगाड़ी, आगे चूंने वाले ईख का रस, अगारी–गन्ना के उस टुकड़े को कहते हैं जो ऊपर के भाग का होता है, जो बहुत नरम होता है जिसका सरलता से रस निकल जाता है, दूसरा अर्थ केन्द्र, हृदय भी कुछ लोगों के मत से किया गया है। गोरख–गोरखनाथ। दत्त–दत्तात्रेय। कपि–हनुमान जी, कपिल मुनि। सुखमुनि–शुकदेव जी। जोरी–संग्रह किया, इकट्ठा किया। किसी के

मत से नर-नारायण की जोड़ी। सिंभु-शंभु, शंकर जी। सनकादिक-सनक, सनन्दन, सनत कुमार, सनातन। तहँ-वहाँ। फिरे-घूमे। अधर-ओष्ठ, आकाश, सहस्रार। कटोरी-प्याली, कांसे की छोटी कटोरी।

**सम्बन्ध**—इसके पूर्वांगत 'सबद' में वाममार्गियों की एवं मुसलमानों की विभत्स उपासना वृत्ति का कथन किया गया है और यह कहा गया कि यह कुत्सित पूजा का व्यवहार इनका अपने मन का है ये सच्चे राम उपासक एवं सच्चे खुदा भक्त नहीं हैं, अब वास्तविक भक्त एवं संतों के विषय में बारहवें शब्द में उल्लेख किया जा रहा है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे निष्पाप संतजन ! जो सच्चे प्रभु भक्त होते हैं जो सच्चे आत्मज्ञानी एवं तत्त्ववेत्ता होते हैं। वे अपने सत्य मत में विशुद्ध रहते हैं, परमत्त रहते हैं उन्हें संसार की सुधि नहीं रहती है वे संसार की सारी विषय-वासनाओं को भूल जाते हैं, वे आत्मा में उन्मत्त रहते हैं, वे सतसंगी जन अपने भक्ति रंग में रंग जाते हैं। जिसका कोई वर्णन नहीं किया जा सकता। वह रंग कभी छूटने वाला नहीं है। उस भक्ति रंग से शरीर रूपी चुनरी सराबोर रहती है। वे आत्मज्ञानी संतजन प्रभु भक्ति रूपी प्रेम सुधारस मन रूपी प्याले से पीते रहते हैं, क्योंकि मन जब शुद्ध हो जाता है तब वह प्याला का काम देता है। उसमें कोई भी रस कोई भी वस्तु रुक सकती है और उस प्रेम सुधारस को सतसंगी लोग ही पीते हैं जो सदा उस प्रेम रस को पीकर मतवाले एवं अलमस्त रहते हैं। जिन्हें दुनिया की कोई भी शोक चिन्ता नहीं रहती है। वह सुधारस बनाने की बिचित्र क्रिया है। लोक में जो आसव वा मद चुवाये जाते हैं उनमें पृथ्वी पर चूल्हा बनता है। चूल्हे पर पात्र रहता है चूल्हे में अग्नि लगायी जाती है। तब पात्र का महुआदि पदार्थों का जल बर्तन में चूता हैं पात्र में एक बक्र नलिका होती है, जिसके द्वारा वाष्प बनकर सत्त चूता है और दूसरे पात्रों में पैक किया जाता है और पात्र पर ढक्कन भी रहता है, तत्पश्चात् लोक के उपयोग में आता है परन्तु इस सुधारस के चुवाने की भट्ठी जो है वह न तो जमीन पर रहती है न आकाश में

रहती है। वह दोनों के बीच में रहती है जहाँ से सोमरस चूता है अर्थात् मूलाधार और सहस्रार के बीच हृदय में उस आध्यात्मिक भट्ठी का आरोपण किया गया है। जब योगी मूलाधार से अपान वायु को खींचकर हृदय में लाता है और ऊपर से प्राण वायु को हृदय में स्थिर करता है। जब दोनों प्राण एक हो जाते हैं तब उसमें टकराहट होती है उस टक्कर से अग्नि उत्पन्न होती है उस अग्नि से समस्त मल विक्षेप आवरण नष्ट हो जाते हैं तथा साथ ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अविवेक, अशौच्यता, अदाया, मद-मत्सर, राग, द्वेषादि सब भस्म हो जाते हैं तत्पश्चात् मूलाधार स्थित कुण्डलिनी शक्ति जाकर ब्रह्मरंध्र में पहुँच जाती है उसको पहुँचने पर खेचरी मुद्रा अपने आप सिद्ध हो जाती है। जब खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जाती है, तब सहस्रार स्थित सोमरस को बंकनाल के द्वारा योगी पीने लगता है अर्थात् उक्त कसाव सोमरस को बंकनाल के द्वारा एवं सुरति को पकड़कर योगी गार लेता है तब योगी खेचरी मुद्रा सिद्ध कर लेता है। तब कामदेव अपने आप मन्द जाता है अर्थात् निग्रह हो जाता है। जब कामदेव का निग्रह हो जाता है, तब योगी उर्ध्वरेता ब्रह्मचारी हो जाता है तब उसके जो पाप कर्म थे, जिनके द्वारा पाप कर्म की बृद्धि होती थी वे सब नष्ट हो गए। यहाँ पर पाप-कस्मल में श्लेष है। यहाँ स्त्री-भोग की ओर अधिक संकेत है जब पूर्ण ब्रह्मचारी साधक हो जाता है, मन को निग्रह कर लेता है तब स्त्रीभोग आदि उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं जब योगी निऽपाप हो जाता है तब सदैव सोमरस व आत्मतत्त्व की वर्षा होने लगती है और योगी का मन तृप्त होते रहता है जैसे ईख की अगारी यन्त्र में लगा दी जाती है और रस चूते रहता है उसी प्रकार से जब योगी की मनोवृत्ति आत्मा में निरत हो जाती है अर्थात् जब आत्मज्ञान हो जाता है तब सदैव आनन्द के बूंद टपकते रहता है जिसको योगी पीते रहता है। अब सदगुरु कहते कि उक्त रस को पीने वालों में कौन से संत योगी अर्थात् आत्मज्ञानी हुए हैं तो सर्वप्रथम महर्षि वशिष्ठ है,

महर्षि दत्तात्रेय हैं, महर्षि व्यास हैं, महर्षि कपिल मुनि हैं, महर्षि नारद हैं, भक्त हनुमान जी हैं, महर्षि शुकदेव मुनि हैं, गुरु गोरखनाथ हैं 'जोरी' कहिए उक्त रस को इकट्ठा करने वालों में एवं पीने वाले में इनके अतिरिक्त सत्संग सभा में बैठे हुए भगवान शंकर हैं, चारों भाई सनकादिक हैं यदि जोरी का अर्थं जोड़ी लिया जाय, तो उक्त पीने वालों में नर-नारायण भी शामिल हैं। सद्गुरु कहते हैं कि उपर्युक्त परम तत्त्व प्रेमियों के अधर कहिए ओष्ठ में आत्मतत्त्व रूपी महारस व सत्संग रूपी महारस मन रूपी कटोरी में सबके ओष्ठ पर फिर रही है अर्थात् सभी संत लोग उस परमतत्त्व रूपी रस को पी रहे हैं।

**अंबुरीखि अउ जाग जनक जड़, सेष सहस मुख फाना।**
**कहं लौ गनौ अनंत कोटि लै, अमहल महल देवाना॥**
**ध्रु प्रह्लाद विभीखन मातै, मातै सेवरी नारी।**
**निरगुन ब्रह्म मातु ब्रिंदावन, अजहुँ लागु खुमारी॥**
**सुर नर मुनि जत पीर अउलिया, जिन रे पिया तिन जाना।**
**कहैं कबीर गूंगे की सक्खर, काकरि करै बखाना॥**

**शब्दार्थ**—अंबुरीखि-अम्ब ऋषि, अंबरीष, वेवस्त मनु के पौत्र महाराज नभाग के पुत्र थे यह परम प्रसिद्ध है कि वे वैष्णव भक्त थे इन्हीं के कारण दुर्वासा ऋषि का विष्णु के चक्र ने पीछा किया था। अउ–और। जाग–याज्ञवल्क्य जो महाराज जनक के गुरु थे, जिन्होंने उपनिषदों का अधिक भाग निर्माण किया है। जनक–प्राचीन मिथिला देश का एक राजा। जड़–जड़ भरत, एक प्रसिद्ध ऋषि,। सेष–शेषनाग। सहस–हजार। फाना–ठाना, पीया, फन,। कह लौं–कहाँ तक। गनौं–गिनों। अनंत–अनेक, कोटि, करोड़। लै–लेकर। अमहल–निराधार, अधिष्ठान हीन व अधिष्ठान रहित, निर्गुण ब्रह्म। महल-आश्रम, भवन। देवाना–दीवाना, प्रमत्त। ध्रू–भक्त ध्रूव जो अयोध्या के उत्तान पात महाराज के लड़के थे तथा भगवान विष्णु के परम भक्त थे। प्रह्लाद–हिरण्यकश्यपु के पुत्र थे ये भी भगवान विष्णु के परम भक्त थे, जिनको बचाने के लिए नृसिंहाव-

तार हुआ। विभीखन–विभीषण, लंकेश्वर–रावण के छोटे भाई। माते-मतवाला हुए। सेवरी–वह स्त्री जो वनकाल में भगवान राम को जंगल में मिली थी जो जाति की भीलनी थी। निरगुन ब्रह्म–तीनों गुणों से रहित परम सत्य। मातु-मतवाला हुआ। ब्रिंदावन–वृन्दावन जहाँ भगवान कृष्ण बिहार करते थे तथा भगवान कृष्ण। अजहुँ–आज भी। लागु–लगी है। खुमारी–नशा, पीने की इच्छा, सुर, देवता। नर–मनुष्य। मुनि-तपस्वी, साधु। जत–यति, सन्यासी। पीर–इस्लाम धर्म के गुरु। अउलिया –सिद्ध, योगी, फकीर, विशेष मुस्लिम साधु। जिन–जो। रे–हे। पिया-पान किया। तिन–वे लोग। जाना–अनुभव किया। गूंगे–अबोलक, कण्ठ विहीन, बोलने में असमर्थ। सक्खर–शक्कर, चीनी। काकरि-क्योंकर, कैसे। करे–करूं। बखाना–वर्णन।

**मूलार्थ**—इन पीने वालों में केवल उपरोक्त संत महाजन ही नहीं हैं, अभी उन पीने वालों में और भी हैं। अम्बरीष जी हैं, याज्ञवल्क्य जी हैं, महाराज जनक हैं, महात्मा जड़ भरत हैं, भगवान शेषनाग भी हैं जो अपने हजारों मुख से उक्त महारस को पीते हैं। कहाँ तक गिनाऊं पीने वालों में अनेक करोड़ लोग हुए हैं, वे लोग उस अधिष्ठान विहीन परम तत्त्व को अपना आश्रय बनाकर निमग्न और दिवाना हो गए थे। उन्हीं की कोटि में भक्त ध्रुव, प्रह्लाद एवं लंका के राजा विभीषण भी हैं। ये भी महारस पीते-पीते मतवाले हो गए थे। इसी प्रकार महादेवी भील-कन्या शेवरी जी भी उस महारस को पीकर सराबोर हो गयी थीं। इन्हीं लोगों तक नहीं उस निर्गुणब्रह्म में, वृन्दावन में विचरण करने वाले भगवान श्री कृष्णचन्द्र भी मतवाले हो गए थे। अर्थात् भगवान श्री कृष्ण चन्द्र के ब्रह्मवर्षिणी वाक्य सुनकर वृन्दावन के समस्त गोप-ग्वाल मतवाले हो गए थे। आज भी संसार में विशेष कर भारत में व वृन्दावन में साधु संतों में उस परमतत्त्व रस की खुमारी चढ़ी हुई है अर्थात् जो लोग उस परमतत्त्व को जानते हैं, वे सब उसमें तल्लीन हैं। इनके अतिरिक्त जो भी देव, मनुष्य, संन्यासी, साधु संत, फकीर, पीर व धर्मगुरु औलिया आदि

मुस्लिम फकीर हैं, जो भी लोग उस महारस का पान किए हैं वही लोग जान सकते हैं। वही लोग उसका अनुभव कर सकते हैं। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि उस महारस को पीने पर मनुष्य गूंगे के समान कण्ठ विहीन हो जाता है उसी प्रकार से जैसे गूँगा मिश्री खा लेने पर उसके स्वाद को कहने में असमर्थ हो जाता है, उस रस की किसी से तुलना नहीं है। इसलिए क्या कहकर उसका बखान किया जाय ?

**आशय**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे संतजन ! जो लोग उस परम तत्त्व को प्राप्त कर उसमें अनुरक्त हैं, उसके प्रेम रूपी अमृत रस का जो पान करते हैं, वे सब सतसंगी आत्मरस पीकर मतवाले हो गए हैं। वह रस हृदय रूपी भट्ठी में पकाकर निचोड़ा जाता है और साधकों द्वारा लेकर निचोड़ा जाता है। उस रस की प्राप्ति तभी हो सकती है जब पूर्ण ब्रह्मचर्य रहकर साधन किया जाता है। तब सभी प्रकार के पापों का क्षय हो जाता है तब सदैव वह प्रेमरस चुते रहता है और व्यास, वशिष्ठ, गोरखनाथ योगियों जैसे लोग पीते रहते हैं जिस प्रकार से सत्संग सभा में सनकादिकों के साथ भगवान शंकर उस सोम रूपी महारस को पीते थे, जिनके अधरों पर प्रेम सुधा से भरी कटोरी पीने के लिए फिरती थी। इस सृष्टि में कितने पीने वाले, कितने भक्त हो चुके हैं, इनकी गणना करना कठिन है क्योंकि यह सृष्टि अनादि है तथा अनादिकाल से अनेक संत, भक्त, महात्मा, निर्गुणब्रह्म का स्वादन करते आ रहे हैं अभी भी उस सोमरस की गमक व गंध समाज में व्याप्त है, लोग उसको सूंघ रहे हैं। वह सोमरस, वह आत्मरस, वह आत्म मदिरा किसी धर्म विशेष के लोगों के लिए ही नहीं है। उसको हिन्दू भी पी सकता है। उसको मुसलमान, ईसाई बौद्ध भी पी सकता है, जैन भी पी सकता है। वैष्णव भी पी सकता है। तात्पर्य यह है कि उस अमृत रस को सभी धर्मों के लोग पी सकते हैं परन्तु उसको पीने का पात्र होना चाहिए, अधिकारी होना चाहिए। वह महारस सहज में मिलने वाला नहीं, उसको पीने के लिए संसार का त्याग करना पड़ता है, अपना बलिदान करना पड़ता है। उसके

लिए दर-दर की ठोकरें खानी पड़ती हैं। इस रस को पाने के लिए भिखारी बनना पड़ता है। उस रस के लिए पहाड़ों एवं कन्दराओं में शयन करना पड़ता है। श्मशानों की खाक छाननी पड़ती है। उस रस को वही व्यक्ति पी सकता है, जो वर्णाश्रम से, जो धर्म के घिनौने घेरे से ऊपर उठा होता है, जिसने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरादि को भी पी लिया है। राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि का नाश कर दिया है। जो गुरु के सन्निकट रह कर उनकी सेवा की हो, जो संतों का सानिध्य प्राप्त किया हो, जो प्रभु की उपासना किया हो, जो सात्विक दान दिया हो, जो अभाव ग्रस्त मनुष्यों का उपकार किया हो, जो निष्काम भाव से शुद्ध कर्म किया हो, जो सभी प्रकार की इच्छाओं का नाश कर चुका हो, वही उस आत्मरस या सोम-रस का पान कर सकता है अन्यथा किसी के वश को बात नहीं।

**टिप्पणी**—अमहल महल में जहद स्वार्थी है, वहाँ पर अमहल महल का त्याग करके निराधार आश्रय अर्थ है अर्थात् ब्रह्म अधिष्ठान ठीक है, तात्पर्य यह है कि ब्रह्म तो स्वयं रूप का अधिष्ठान है, इसलिए उसका कोई अन्य अधिष्ठान नहीं है, उसका अधिष्ठान किसी को मानने पर नान्योश्रित दोष होगा। साथ ही अनवस्था भी आयेगी, उसका अर्थ यह है कि उपर्युक्त महात्मागण उस परम चिति में अपना महल (आश्रय) बनाया था, अर्थात् वे सब उसी निर्गुण ब्रह्म को अपना निवास स्थान बना लिया है। एक से बारह शब्द तक गुरु ने संतों को संबोधित करके कहा है, अब तेरह से इक्कीस शब्दों तक अपने राम को संबोधित करके कहते हैं।

## सबद १३

### सांसारिक वैभव असार प्रकरण

**राम तेरी माया दोंदि बजावे।**
**गति मति वाकी समुझि परै नहीं, सुर नर मुनिहिं नचावै ॥**
**का सेमर तेरि सखा बढ़ाये, फूल अनुपम बानी।**
**केतिक चात्रिक लागि रहे हैं, देखत रुवा उड़ानी ॥**

काह खजूर बड़ाई तेरी, फर कोई नहिं पावै ।
ग्रीसम ऋतु जब आय तुलानी, छाया काम न आवै ।।
अपने चतुर अवर को सिखवे, कनक कामिनी स्यानी ।
कहैं कबीर सुनो हो संतो, राम चरन रति मानी ।।

**शब्दार्थ**—राम–परमेश्वर का एक नाम, जिसकी निष्पत्ति 'रम्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ होता है, जो सर्वत्र हो, सबके हृदय में हो । माया–उसको कहते हैं जिसको देखकर मनुष्य मोहित हो, आकर्षित हो, माया शब्द की निष्पत्ति 'मी' या 'म' धातु से हुई है, जिसका अर्थ होता है जाल, फंसाव, बन्धन । इसीलिए संसार को मायामय कहा गया है, तभी तो मनुष्य संसार का त्याग नहीं कर पाता । दोंदि–दुन्दुभि, नगाड़ा । गति–चाल । मति–भविष्य सोचने की बुद्धि, समझ । वाकी–उसकी । नचावे–परेशानी में डाले, जन्म–मरण के चक्कर में घुमावे । का–क्या । सेमर–सेमल, शालमलि, प्रधान व्यक्ति, शास्त्र का पण्डित । सखा–शाखा, स्कन्द । अनुपम–उपमारहित । बानी–है, निशानी, सादृश्य । केतिक, कितने । चातिक–चातक पक्षी, अकिंचन व्यक्ति, जीव । लागी–प्राप्ति की आशा । रूवा–रुई, अन्य निःसार वस्तु । उड़ानी–उड़ जाती है । काह–क्या । खजूर–खर्जूर एक लम्बा सुरहूर वृक्ष जिसमें डालियाँ नहीं होती हैं, केवल पत्ते एवं डंठल होते हैं, फल भी होते हैं जो किसी काम के नहीं होते, बीज बहुत बड़े बड़े होते हैं । बड़ाई–प्रशंसा । तेरी–आपकी । ग्रीसम–ग्रीष्म ऋतु, ज्येष्ठ वैशाख का महीना । आय–आकर । तुलानी–समुपस्थित हुई, पहुँच गयी । छाया–छाँह । कनक–सोना । कामिनी–सुन्दरी, प्रेमिका । स्यानी–चाहने की चतुरता, प्राप्ति करने के लिए बुद्धिमानी । चरन–चरण । रति–निष्ठा । मानी–मान्य, कर्तव्य ।

**सम्बन्ध**—पहले कहा जा चुका है कि सत्संगी लोग, जिनका मत सत्संग ही करना है, वे लोग भगवत्प्राप्ति में सदैव अनुरक्त रहते हैं और उनका आनन्द अकथनीय है, अवर्णनीय है, वह गूंगे की शर्करा के समान है, जो स्वाद को कह नहीं सकता परन्तु नीचे कहते हैं कि वह परमानन्द

हरि, माया के चलते प्राप्त नहीं होता। प्रभु की माया सबको अपने आँचल में फंसाये रखती है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे अनन्तशक्ति से संयुक्त, हे जगतगुरु, हे जगदीश्वर ! आप की माया बड़ी विचित्र है। वह नगाड़ा बजा रही है, दुन्दुभी बजा रही है अर्थात् जीवों को मोहने के लिए वैभवरूपी संसार की सुख-सुविधा रूपी, पुत्र कलत्र रूपी मान-सम्मान रूपी, धन-सम्पत्ति रूपी, ब्राह्मण क्षत्रिय रूपी डंका बजा रही है। हे जगत्गुरु उस आप की माया की चाल समझ में नहीं आ रही है न उसकी बुद्धि का ही पता है कि क्या करना चाहती है अर्थात् उसके व्यवहार एक भी समझ में नहीं आ रहे हैं। हे प्रभु वह आप की अर्द्धांगिनी महा चपला, सुमनोरमा, बड़े से बड़े उत्तम देवताओं को, बड़े से बड़े मनुष्यों को, बड़े से बड़े मननशील ऋषियों को नचा एवं भरमा रही है। पूरे के पूरे लोग उपर्युक्त व्यवहार में ही फँसकर मर रहे हैं, नाच रहे हैं, इधर से उधर भरम रहे हैं। हे प्रभो ! यह आपकी माया सेमल वृक्ष के समान है, इसलिए इसकी चर्चा क्या की जाय, अब माया को सम्बोधित करके एवं माया में लिप्त व्यक्तियों को सम्बोधित करके कहते हैं कि हे सेमल। तेरी प्रशंसा क्या की जाय तेरे स्कन्द और डालियाँ चारों तरफ फैले हुए हैं। तेरे फूल इतने सुन्दर हैं कि उनकी उपमा नहीं दी जा सकती परन्तु वे किसी काम के नहीं हैं कितने चातक पक्षी उसके खाने की आशा लगाए हुये हैं परन्तु जब तेरे फल पक जाते हैं उसमें से रुवा ही रुवा उड़ती दिखाई देती है, जो पक्षियों को उलटे अंधा भी बना देती है तात्पर्य यह है कि संसार का वैभव सेमल के वृक्ष के समान है। वह कितना भी बड़ा हो, ऊपरी स्वरूप उसका सेमल फूल के समान कितना भी मनोहारी हो परन्तु वह किसी मनुष्य को तृप्त नहीं कर सकता, कितने लोग इस माया के सुख के लिए लगे हुए हैं कि यही माया का सुख सत्य है। संसार का मनुष्य अन्त में देखते-देखते क्या देखता है कि माया का सुख बिलकुल उस सेमल फल के रुवे के समान है, जो देखते-देखते गायब हो जाता है। किसी के काम का नहीं

होता। अब माया की उपमा और माया से विभूषित मनुष्यों की उपमा खर्जूर वृक्षसे दे रहे हैं। कह रहे हैं कि हे खर्जूर ! तेरी क्या बड़ाई करें, तेरी क्या प्रशंसा करें, तेरे फल किसी काम के नहीं होते, खाने के योग्य नहीं है तथा ग्रीष्म ऋतु जब आ जाती है, तब तेरी छाया भी किसी काम के नहीं होती, किसी को छाँह नहीं पहुँचाती, यहाँ पर तात्पर्य यह हुआ कि खर्जूर बहुत लम्बा होता है, बहुत ऊँचा होता है। इसी प्रकार से माया का अंबार बहुत ऊँचा होता है। देखने में बहुत तड़क-भड़क होता है। बड़े-बड़े भवन व किले होते हैं। उसमें सुन्दर स्त्रियाँ होती हैं। सोना चाँदी होते हैं, तमाम वैभव होते हैं परन्तु उसके परिणाम किसी के लिए हितकर नहीं होते। उसको कोई भोग नहीं पाता है, सब रख-रखाव करते ही रह जाते हैं। अन्त में वृद्धावस्था रूपी ग्रीष्म ऋतु जब पहुँच जाती है, शरीर में तीनों ताप बहुत अधिक बढ़ जाते हैं। मन मस्तिष्क कमजोर हो जाता है, बुद्धि काम नहीं देती, मनुष्य दुःख के बोझ से लद जाता है तब ये माया के सारे अम्बार कोई सुख नहीं पहुँचा सकते। वे सब उसी प्रकार से निरर्थक साबित हुए जैसे गर्मी के दिन में धूप से संतप्त व्यक्ति लम्बे खर्जुर के पेड़ के नीचे छाया का सुख नहीं पाता है परन्तु आश्चर्य यह है कि जो लोग माया में लिप्त हैं और उक्त माया को संग्रह करने में बहुत चतुर व प्रवीण हैं, वही बात दूसरों को भी करने के लिए सिखाते हैं, कहते हैं कि इसी लोक में सुख है, परलोक कौन देखा है, जब तक रहो आनन्द से जीवन बिताओ। खूब सोना-चाँदी सम्पत्ति-कमाओ, उसके द्वारा कामिनी स्त्रियों का उपभोग करो बुद्धिमानी के साथ, सयाना-पन के साथ संसारी मनुष्य संसार के वैभव को बटोरता है चोरी से, ठगी से, वाणिज्य से, वकालत व तमाम तरह के पेशों से मनुष्य उसी सेमल एवं खजूर की तरह निस्सार माया का सृजन करता है, जिससे उसको कोई लाभ नहीं होता। बड़ा से बड़ा मनुष्य अन्त में निराश होकर इस संसार से बिदा हो जाता है। सद्गुरु कबीर उपर्युक्त वस्तुओं में निस्सार का दर्शन करके आत्मज्ञ सन्तों को संबोधित करके कहते हैं कि

हे सन्तजन ! आप लोग इस माया के नगाड़े की आवाज में न नाचें, उसमें न पड़ें। आप लोग प्रभु राम के चरणार्विन्दों में अनुरक्ति करें, प्रेम करें अर्थात् प्रभु का चिन्तन करें, तभी भवचक्र से छूट सकते हैं।

**आशय**—हरि की माया सारे संसार में, सारे ब्रह्माण्ड में मान-सम्मान रूपी दुन्दुभि बजा रही है, क्यों बजा रही है, क्या चाह रही है ? यह उसकी चाल-ढाल उसकी बुद्धि किसी मनुष्य एवं देव-दानव के समझ में नहीं आ रही है। सभी लोग उसके बाजे की आवाज सुनकर नाच रहे हैं, भरम रहे हैं, चाहे वे असुर हों, चाहे वे मुनि हों, चाहे वे मनुष्य हों, चाहे कोई हों। हे माया ! तेरी शाखा रूपी वैभव बाढ़ने से क्या प्रयोजन। तेरे ऊपरी जो हाव-भाव पुष्प हैं जिसकी सौन्दयंता की उपमा नहीं है, इससे क्या प्रयोजन ? इस तेरे लुभावने रूप को चाहने के लिए कितने चातक के समान मनुष्य लगे हुए हैं परन्तु उसी प्रकार से सब निष्फल हो जाते हैं जैसे चातक बेचारा साल भर स्वाती के जल की आशा लगाए रहता है परन्तु स्वाती नहीं बरसती वह अन्त में निराश होकर इस मानव रूपी पिंजड़े से उड़ जाता है क्योंकि तेरे सेमल रूपी फल के पकने पर उसमें निस्सार तत्त्व ही है। वह रुवा के समान सब लापता हो जाता है। यहाँ पर रुवा में बहुव्यञ्जना है। माया का सुख रुवा के समान है, उसमें कोई तत्त्व नहीं है। उसी प्रकार से फूल में भी श्लेष है, वह भी ऊपरी भाव का सौन्दर्य है परन्तु उसके अन्तःस्थल में कोई जीवक तत्त्व नहीं है इसलिए अन्त में मनुष्य असंतुष्ट दशा में ही निराश होकर चला जाता है। इसी प्रकार से यह माया तो देखने में खर्जूर के समान ऊँचो है अर्थात् माया से विभूषित मनुष्य देखने में बड़ा जीवट का लगता है परन्तु उससे कोई उपकार नहीं होता है। वह अहर्निश उस माया के बटोरने में लगा रहता है। जैसे ग्रीष्म ऋतु में घोर गर्मी पड़ने लगती है और सन्तप्त मनुष्य को खर्जूर कभी शीतलता नहीं पहुँचाता, उसी प्रकार से माया के धनी लोग किसी भूखे, नंगे, अभावग्रस्त के लिए नहीं होते। अपने ही भोगते हैं यदि कोई खाना, खर्चना या दूसरे को देना, दान-पुण्य

करना चाहता है, परमार्थ करना चाहता है। उसको भी अपने जैसा सिखलाते हैं अरे यार! इससे क्या लाभ है? यह तो धार्मिकों के खाने का ढंग है। अज्ञानी मनुष्य अपना सारा सयानापन कनक कामिनी के उपयोग में लगा देता है जो खर्जूर के समान निस्सार तथा निःतत्त्व है। इसलिए कहते हैं कि हे सन्तों! आप लोग उपर्युक्त भुलावे में न पड़कर प्रभु के चरण-कमलों में प्रेम करें, तभी कल्याण हो सकता है, अन्यथा कल्याण होने वाला नहीं है।

## सबद् १४

**रामुरा संसै गांठिन छूटै, ताते पकरि-पकरि जम लूटै ॥**
**होय कुलीन मिस्कीन कहावै, तू जोगी संन्यासी।**
**ग्यानी गुनी सूर कवि दाता, ये मति किनहुँ न नासी ॥**
**सुम्रिति वेद पुरान पढ़ै सभ, अनभौ भाउ न दरसै।**
**लोह हिरन्य होय धौं कैसे, जो नहिं पारस परसै ॥**

**शब्दार्थ**—रामुरा–राम राजा, राम राय। संसै–सन्देह। गांठिन–ग्रन्थि। ताते–इसलिए। लूटैं–ले जाय। होय–हो। कुलीन–अच्छे वंश परम्परा का। मिस्कीन–गरीब, अनाथ, उत्तम। कहावै–कहलाता है। जोगी–ध्यान करने वाला। संन्यासी–सब कुछ छोड़कर विरक्त हो जाना। ग्यानी–शास्त्र पंडित। गुनी–शिल्पी। सूर–योद्धा। कवि–कविता बनाने वाला। दाता–दान देने वाला। ये–यह। मति–संशय, बुद्धि। किनहुँ–किसी ने। नासी–नाश किया। सुम्रिति–स्मृति, धर्मग्रन्थ। अनभौ–अनुभव। भाउ–भाव, रहस्य। दरसै–दीखै, प्राप्त करे। हिरन्य–हिरण्य, सोना। होय–होगा। धौं–हे भाई। कैसे–किस प्रकार। पारस–एक प्रकार का वह पत्थर जिसमें लोहा छूने से सोना हो जाता है। परसै–स्पर्श करें।

**सम्बन्ध**—पूर्व शब्द में प्रभु माया की विचित्रता एवं निःसार तत्त्व, की निःसारता बतलाकर यह कहा गया कि माया को त्याग कर श्रीराम

के चरणकमल में मनुष्यों को प्रेम करना चाहिए परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि प्रभु में प्रेम नहीं हो पाता क्योंकि अज्ञान की ग्रन्थि इतनी कठिन है, इतनी जकड़ी हुई है कि कोई मनुष्य छोड़ नहीं पाता।

**मूलार्थ**—हे परमेश्वर ! आप की शरण में यह जीव इसलिये नहीं जा पाता है कि इसके अज्ञान की ग्रन्थि बहुत विषम है, वह छूट नहीं पा रही है, इसलिए आप के नियुक्त अधिकारी यमराज इस जीवन को बार-बार पकड़-पकड़ लूटते हैं और अपनी पुरी में ले जाते हैं और पुनः-पुनःजन्म-मरण के चक्कर में डालते रहते हैं। यह मनुष्य बहुत कुलीन और बुद्धिमान बनता है परन्तु अज्ञान के कारण असहाय है, दीन है, अंकिचन है। इसके पास आत्मधन नहीं है, राम-नाम रूपी धन नहीं है क्योंकि हृदय की ग्रन्थि में जकड़ा हुआ है। हे मनुष्य चाहे तू योगी बनकर योग करो, चाहे समाधि लगाओ, चाहे ध्यान पूजा करो, चाहे घर-द्वार छोड़ कर संन्यासी बन जाओ, विरक्त बन जाओ, वेद-शास्त्रों को पढ़कर ज्ञानी बन जाओ, वक्ता बन जाओ, वाचक बन जाओ, अनेक प्रकार की कलाओं का ज्ञाता हो जाओ, चाहे अनेक रणों को जीतकर शूर बन जाओ, योद्धा बन जाओ, चाहे बहुत बड़े कवि बन जाओ, कालिदास बन जाओ, माघ बन जाओ, दण्डी बन जाओ, बाण बन जाओ, दान कर्ता बन जाओ, हरिश्चन्द्र या कर्ण बन जाओ, युधिष्ठिर बन जाओ, कितना भी बड़ा दान देने वाला बन जाओ, लेकिन जब तक अज्ञान की ग्रन्थि छिन्न-भिन्न नहीं होगी, तब तक दुःख का नाश नहीं होगा, तब तक यम तुझे पकड़ते रहेगा। अर्थात् योगी, संन्यासी, ज्ञानी-गुणी, शूर, कवि, दाता लोग बन गये परन्तु अज्ञान ग्रन्थि का नाश किसी ने नहीं किया। सभी लोग धर्म-ग्रन्थ और वेद पढ़ते हैं, पुराण पढ़ते हैं परन्तु जो आत्मानुभव है, जो आत्मज्ञान है वह भाव, वह रहस्य उनमें से किसी को प्राप्त नहीं हुआ व किसी ने उसका दर्शन नहीं किया कारण कि जब तक आत्मज्ञानी गुरु नहीं मिलेगा तब तक आत्मज्ञान से परिचय नहीं होगा कारण कि जब तक प्रभु-प्राप्ति नहीं होगी तब तक इस मनुष्य की अज्ञान ग्रन्थि छूटने वाली नहीं

है, जैसे लोहा तब तक सोना नहीं हो पाता जब तक पारस पत्थर का स्पर्श न हो।

**जिअत न तरेउ मुये का तरिहौ, जीअतहिं जो न तरे।**
**गहि परतीत कीन्ह जिन जासों, सोइ तहाँ (अ) मरे॥**
**जो किछु कियेहु ग्यान अग्याना, सोई समुझ सेआना।**
**कहैं कबीर तासों का कहिए, जो देखत द्रिष्टि भुलाना॥**

**शब्दार्थ**—जिअत–जीवन में। तरेउ–मुक्त। मुये–मरने पर। का–क्या। तरिहौ–मुक्त होवोगे। गहि–ग्रहण। परतीत–विश्वास। कीन्ह किया। जिन–जो। जासो–जिससे। सोई–वही। अमरे–वही पर स्थित होता है। किछु–कुछ भी, कर्म–अकर्म। किये–किया। ग्यान–शास्त्र का ज्ञानी। अग्याना–ज्ञान-अज्ञान में। सेआना–बुद्धिमान। तासों–उससे। द्रिष्टि–देखते हुए। भुलाना–भूल रहा है।

**मूलार्थ**—कुछ लोग कहते हैं कि यदि प्रभु की भक्ति व दान-पुण्य किया जाय तो मरणोपरान्त मुक्त हो जायेंगे परन्तु सद्गुरु कहते हैं कि जो जीते जी मनुष्य जीवन में आत्मबोध नहीं कर लेगा, अज्ञान से रहित नहीं हो जाएगा, जो मुक्ति नहीं पा लेगा, वह मरने पर क्या करेगा अर्थात् कौन जानता है कि मरने पर कहाँ गया इसलिये जो जीते जी नहीं तरता है, वह मरने पर तर नहीं सकता। मनुष्यों को चाहिए कि मनुष्य तन में ही संदेह से रहित होकर यह अनुभव करे कि हम मुक्त हो गए हैं, मेरे में कोई बन्धन नहीं है। जो मनुष्य आत्मतत्त्व प्राप्ति पर विश्वास करता है और आत्म चिंतन को ग्रहण कर लिया है वे लोग 'सोई' अर्थात् आत्मतत्त्व में अमर हो जाते हैं, वे कभी मरते नहीं। साहब कहते हैं कि जो कुछ ज्ञान अज्ञान में भला बुरा किए हो उसको समझो तथा समझ कर बुरी बात को त्याग दो। अच्छी बातों को ग्रहण करो क्योंकि तुम सेयाना मानव तन पाये हो अर्थात् तुम मनुष्य होने के कारण बुद्धिमान हो। सद्-गुरु कहते हैं कि हे भाई उससे क्या कहोगे जो सब भला-बुरा जानते हुए

अर्थात् देखते हुए कि यह बुरा काम है। यह अच्छा नहीं है, उसी में भूल गया है। उसके लिए कोई उपदेश ही नहीं है और न उसका सुधार ही हो सकता है जब तक वह बुरी आदतों का त्याग न कर देगा।

**आशय**—जब तक मनुष्य की अज्ञान की ग्रन्थि दूर नहीं होगी तब तक वह जन्म-मरण के बन्धन में पड़ा रहेगा, चाहे वह कितना भी अपने को श्रेष्ठ कुल वाला कहे परन्तु मेरे देखने में वह असहाय है। जब तक वह संदेह मुक्त नहीं हो जाता तब तक वह मुक्त नहीं हो सकेगा। चाहे वह योगी, चाहे वह संन्यासी का रूप बना लें, चाहे वेदशास्त्र पढ़कर ज्ञानी हो जाय, चाहे तमाम शिल्प कला का ज्ञान कर ले, चाहे वह अनेक रणों को जीत-कर योद्धा हो जाय, चाहे सुन्दर-सुन्दर मनोहारी छन्दों का निर्माता हो जाय, चाहे राजा नृग के समान गोदान वाला हो जाय परन्तु ये सब होने से भी उसकी दुर्मति नहीं छूट सकती। चाहे कितना भी वेद, शास्त्र, पुराण, स्मृति पढ़कर बड़ी-बड़ी डींग हाके, अपने तर्क बल से बड़े-बड़े लोगों का मुख बन्द कर दे, शास्त्रार्थ में विजयी बन जाय, बड़े-बड़े भाषण दे, प्रवचन द्वारा लोगों को मोह ले, अपने समक्ष किसी को कुछ समझे नहीं परन्तु वह जो आत्मा का अनुभव होता है उसको देख नहीं पाता है। क्योंकि मनुष्य लोहा के समान है और आत्मज्ञान सोना है और गुरु पारस है जब तक आत्मज्ञानी गुरु नहीं मिलेगा तब तक वह जीव का जीव बना रहेगा। जब तक मनुष्य जीते जी भगवत् प्राप्ति नहीं कर लेगा, तब तक वह तर नहीं सकता है। इसलिए मुए मुक्ति की आशा छोड़कर मनुष्य को जीते जी तरना चाहिए। जासों कहिए—जो लोग उस परमात्मा परम तत्त्व में विश्वास कर लिये हैं, उसको पकड़ लिये हैं। सोई कहिए वही लोग उस आत्मतत्त्व को प्राप्तकर अमर हो जाते हैं।

मनुष्यों को चाहिए कि जो कुछ भी भ्रमवश व जानबूझकर कुत्सित कर्म किए हो, उसको त्याग कर सोई जो आत्म तत्त्व है उसी को समझे क्योंकि मानव सेयाना व बुद्धिमान है और जो लोग समझ-बूझकर पाप कर्म करते हैं और कहने पर भी नहीं मानते हैं उनसे क्या कहना है?

इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि हरि परायण होकर संत सद्गुरु का सत्संग करें।

## सबद १५

**रामुरा चली बिनावन माहो, घर छोड़े जात जोलाहा हो ॥**
**गजनौ गज दस गज उनइस की, पुरिया एक तनाई।**
**सात सूत नउ गंड बहत्तर, पाट लागु अधिकाई ॥**
**ता पट तोला तुले नहिं गज न अमाई, पैसन सेर अढ़ाई ।**
**तामें घटै बढ़ै रतियो नहिं, करकच करे गहराई ॥**

**शब्दार्थ**—रामुरा–राम राय। चली–मानव शरीर से अन्तिम अवस्था में प्रस्थान किया। विनावन–बिनाने के लिए, दूसरा शरीर धारण के लिए। माहो–कीड़ा, जीव, मुग्धा, नववधु ( केवल 'म' रहने पर में होगा )। घर–शरीर। छोड़े–त्यागकर, छोड़कर। जात–जा रहा है। जोलाहा–जुलाहा, जीवात्मा। गजनउ[1]–नौ-द्वार, दो नेत्र, दो कर्ण, दो नाक के छिद्र, मुख, गुदा उपस्थ लिंग। गजदस[2]–पाँच प्राण ( प्राण, उदान, अपान, समान, व्यान ) पाँच झीनी प्राण वायु–(नाग, कुरम, देवदत्त, धनं जय और कृंकल)। गज उनइस[3]–चार अन्तःकरण, पंचकोश–( मन, बुद्धि चित्त, अहंकार, अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय ) पंच विषय–( शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध पाँच तत्त्व ( क्षिति, जल, पावक, आकाश और वायु। पुरिया–पुलिया जिसमें सूत लपटे होते हैं, बिनने की तैयारीवाला सूत बड़े बण्डल में एक डंडे पर लपटा हुआ। तनाई–करघा के अन्दर बिनने के लिए एक यंत्र से दूसरे यंत्र तक लगाया गया। सात सूत–रस, रक्त, माँस, वसा, मज्जा, अस्थि, वीर्य। नउ गंड–ईड़ा नाड़ी, पिंगला नाड़ी, सुषम्ना नाड़ी, गंधारी नाड़ी, हस्त, जिह्वा नाड़ी, पूसा नाड़ी, पैशिनी नाड़ी, लहुका नाड़ी, अलम्बुषा नाड़ी–इन नाड़ियों के गुच्छे को अर्थात् जहाँ से नाड़ियाँ निकली हों, वह गंड। बहत्तर शरीर की बहत्तर ग्रन्थियाँ जो इस प्रकार हैं—( सोलह कंणरायें–मोटी नसें,

सोलह जाल–पतली नसें, चार रज्जू, सात सिवनी, चौदह अस्थि संघात: चौदह सीमान्त, एक त्वचा, जिससे संपूर्ण शरीर बंधा रहता है। शरीर के बहत्तर कोठा व स्थान में बहत्तर कसनी शरीर के बहत्तर स्थान में जिसकी ग्रंथि लगायी गई हो। पाट–वस्त्र। लागु–लाग, लगा, तैयार। अधिकाई–विशेष सुन्दर, अधिकता से। ता–उस। पट–वस्त्र। तोला–तूल रुई, बराबरी माप। तुले–बराबर, नहीं। गज–मापक, दण्ड। अमाई–समाई–नाप न सके। पैसन–पैसा, एक पैसा। न–नहीं। सेर–किलो। अढ़ाई –दो किलो० पाँच सौ ग्राम। तामें–उसमें। घटै–कमी न हो। बढ़ै–बढ़े भी नहीं। रतियो–रत्ती भर। करकच–झगड़ा, बखेड़ा, रगड़। गहराई–गहरापन, घहराई, गरजना, घरवाली पत्नी, माया, निवेदिता।

**सम्बन्ध**—ऊपर के तेरहवें 'शब्द' में सेम एवं खर्जूर के प्रतीकों द्वारा संसार के सुख को और संसार के वैभव को निःसार बताया गया और अन्त में रामचरण में अनुरक्ति कही गयी परन्तु चौदहवें में यह कहा गया कि संशय के कारण हरि-भक्ति नहीं हो पाती है। यम के द्वारा जीव लुटाते रहता है। साथ ही यह भी कहा गया कि अपरा विद्या में कितना भी मनुष्य निपुण हो परन्तु वह आत्म अनुभव प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता जब तक कि उसको कोई तत्त्वज्ञ सद्गुरु न मिल जाये परन्तु यह भी कहा गया कि सद्गुरु उसको कुछ नहीं कर सकता है, जो शास्त्रों के द्वारा, सत्संग के द्वारा यह जान गया है कि संसार असत्य है। संसार के व्यवहार में कोई वास्तविकता नहीं है, ऐसा समझने के बाद भी उसी में लगा हुआ है तो अन्त में कहते हैं कि पुनः वह इस मानव योनि को छोड़कर अन्य शरीरियों के निर्माण के लिए जा रहा है क्योंकि मानव तन में परमतत्त्व की प्राप्ति नहीं हुई। इसलिए कर्मानुसार अन्य शरीरों की प्राप्ति होना निश्चित है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु अपने उपास्यदेव सर्वात्माराम से कहते हैं कि हे राम! यह जगत जीव आप की प्राप्ति के बिना अब पुनः वस्त्र रूपी दूसरे शरीर को निर्माण करने के लिए चल पड़ा है। यह जीव

मुग्ध नवागन्तुक वाला की तरह कुविचारी होने के कारण लजाते हुए अप्राप्तिदशा में ही मानव तन रूपी घर को छोड़कर जा रहा है। यहाँ पर जीव को जुलाहे के रूपक की संज्ञा दी गयी है। क्योंकि जुलाहा भी नये वस्त्रों को बुनता है जिसमें बहुत से समान होते हैं। उसी प्रकार से यह जुलाहे रूपी जीव पाँच तत्त्वों से एवं पंचतन्मात्राओं से अस्थि समूहों से, दस इन्द्रियों से, दस प्राणों से और बहत्तर हजार नाड़ियों से एवं सप्त रसों से इस कारण सूक्ष्म और स्थूल शरीर का निर्माण करने का पुलिया बनाया है अर्थात् बुनने के सभी सूतों को एक जगह पिरोया है और उन्हीं सबका ताना-बाना भी बना रखा है। उक्त सप्त रस रूपी सूतों से तथा नौ गण्ड कहिए, बहत्तर कोठों से व मुख्य-मुख्य तत्त्वों के अवयवों से पाट व वस्त्ररूपी शरीर में लगाया है, जिसकी प्रस्तुतीकरण अधिकाई कहिये विशेषता से की गयी है अर्थात् उपर्युक्त सामानों से शरीर बहुत सुन्दर सुभेष बन गया है परन्तु उस पट से, लोक के पटों से अर्थात् जो रूवा से व तूल से बनाए गए पट हैं, उन पटों से शरीर रूपी पट की तुलना नहीं की जा सकती है और न ही लौकिक वस्त्रों के नापने वाले गज से ही उसकी माप की जा सकती है। तात्पर्य यह है कि शरीर रूपी पट के जो तन्तु हैं वे इतने लम्बे हैं। उनमें लोक के नापने वाले गज अमाई कहिए समाविष्ट नहीं हो सकते अर्थात् वे नापने में असमर्थ हैं, क्योंकि लौकिक वस्त्र पैसे में अढ़ाई सेर के रुवे से बने हैं और शरीर रूपी पट के सूतों की कोई कीमत नहीं आँकी जा सकती, वे अमूल्य हैं। अर्थात् दोनों में किसी प्रकार की समकक्षता नहीं आँकी जा सकती लौकिक वस्त्रों को नापने में कमी-बेसी हो सकती है तथा पट बुनने वाला बेचने के समय में नापने में कम-बेसी भी कर सकता है और बुनने में भी छोटा-बड़ा हो सकता है। यहाँ तात्पर्य यह है कि पैसा में अढ़ाई सेर वाले वस्त्र में बहुव्यंजना है। इसके अर्थ सीधे नहीं हो सकते। इसमें अविधाओं की आवश्यकता है। ये सब प्रतीक व रूपक अविधा एवं व्यंजना के बिना ठीक से नहीं लग सकते इसलिए अढ़ाई सेर में कमी इसलिए दिखायी गयी है कि लोक

वस्त्र बीनने वाला जुलाहा अल्पज्ञ है। उसके अंदाज व अनुमान माप-जोख में कम हो जाते हैं। इसलिए उसका मूल्य अल्प है और परमेश्वर रूपी जुलाहा शरीर रूपी पट को ऐसा बुना है कि उसमें और किसी प्रकार की कमी नहीं होती है। सद्‌गुरु कहते हैं कि प्रभु रूपी जुलाहे के बनाये हुए पट में एक रत्ती का भी घटना-बढ़ना नहीं होता है। वह पूरा का पूरा शरीर को बनाया है परन्तु पट रूपी शरीर को पाकर यह मनुष्य सचेत नहीं हो रहा है। उसकी जो दुर्बुद्धि है। वह नित्य कचकच व झगड़ा करते रहती है अर्थात् उसकी जो घर वाली है वह पट बुनने वाले की ओर ध्यान न देकर उसकी प्राप्ति की ओर ध्यान न देकर वह नित्य संसार के सुख के लिए पति रूपी जीव से लड़ती-झगड़ती रहती है। यहाँ गहराई में श्लेष है जैसे लोक की स्त्रियाँ श्रृंगारिक वस्तुओं के लिए पति से झगड़ा-लड़ाई करते रहती हैं। उसी प्रकार से इस जीवात्मा की पत्नी जो दुर्बुद्धि है, जो तृष्णा है, वह संसार के सुख के लिए नित्य प्रति लड़ती रहती है।

**नित उठि बैठि खसम सो बरबस, तापर लागु तिहाई।**
**भींगी पुरिआ काम न आवै, जोलहा चला रिसाई॥**
**कहैं कबीर सुनो हो सन्तो, जिन्ह यह सिष्टि बनाई।**
**छाड़ पसार राम भजु बौरे, भौसागर कठिनाई॥**

**शब्दार्थ**—बरबस–अकारण। खसम–जीवात्मा। तापर–उस पर। लागु–लगा हुआ। तिहाई–तीन भाग त्रीतियांश, तीसरा भाग, त्रय, ताप तीजरा तीन दिन के बाद आने वाला ज्वर व बुखार। भींगी–भीगी, तर, गीली, आद्र, असमर्थ। पुरिआ-शरीर, घर भण्डार। काम–सहायक, व्यर्थ, हित। जुलाहा–जीव। रिसाई–दुःखी, अप्राप्ति की दशा में। जिन्ह–जो। यह–इस। सिष्टि–सृष्टि। बनाई–निर्माण किया। छाड़–छोड़। पसार–संसार का व्यवहार। बौरे–पागल, निर्बुद्धि। भौसागर–संसार रूपी समुद्र, भवसागर, कठिनाई, दुर्गमता, पार करने में दुस्तर।

**मूलार्थ**—वह पत्नी दुर्बुद्धि, तृष्णा रूपी इतनी सबल है कि नित्य नवीन वस्तुओं के लिए पति के सामने उठकर बैठ जाती है और उससे अकारण ही लड़ाई दंगा करने लगती है। उस पर भी उसके घर वाली भोजन का आधा अंश नहीं देकर तीन हिस्सा अपने ले लेती है। पति को केवल एक हिस्सा देती है। शरीर रूपी घर में इस तृष्णा रूपी कर्कशा से जीव जूझ रहा है, उस पर भी उसके ऊपर तीन तापों का चांप पड़ रहा है अर्थात् दैहिक पीड़ा, मानसिक पीड़ा, भौतिक पीड़ा ऊपर से उसको ग्रसे हुए है। उधर घर की झगड़ा से, इधर बाहर के तापों से पुरिया रूपी मानव शरीर इतना कमजोर हो गया है कि वह कोई भी काम करने में उसी प्रकार से असमर्थ हो गया है जिस प्रकार से लोक में जुलाहे के सूता की पूलिया अर्थात् नली के सूत भीग जायँ, पानी से गीले हो जायँ तो बेचारा जुलाहा उनसे कोई काम नहीं कर सकता है। अन्त में वह पुलियाओं के सूतों को भीग जाने से कपड़ा बुनने में असमर्थ हो जाता है। कपड़ा बुनने का कोई भी काम नहीं कर सकता है, तब वह करघे को छोड़कर रंज होकर चला जाता है। अब वह करघे पर कब आयेगा, कब बुनेगा, कब लोक का काम होगा? इसका कुछ पता नहीं। इसी प्रकार से मनुष्य अपनी इन्द्रियों के भोगोन्मुख होने से सदा वह इन्द्रियों के अधीन बना रहता है। ऊपर से तीनों तापों से इतना घिर जाता है कि कुछ भी करने में असमर्थ हो जाता है। न वह शुभ कर्म ही कर पाता है, न प्रभु का सुमिरन ही कर पाता है, न संत सत्संग ही कर पाता है। जिसके कारण उसको कुछ हाथ नहीं लगता है। कोई कमायी नहीं होती। अन्त में, वृद्धावस्था आने पर इस शरीर से इतना असंतुष्ट हो जाता है कि रंज होकर इसको छोड़कर चला जाता है क्योंकि इसके द्वारा इसका कोई उपकार नहीं हुआ। सद्गुरु निर्मल संत जनों को संबोधित करके कहते हैं कि जिन लोगों ने अपने कुटिल कर्मों से सृष्टि बनायी है, उन लोगों की यही दशा होती है। इसलिए हे संत जन! इस शरीर बनने वाले जो तंतुओं का पसारा है, जो संसार का व्यवहार है, उसको छोड़कर प्रभु का भजन करो। हे पागल मनुष्य!

पुनः सृष्टि के निर्माण में न लगो अन्यथा दुःख के भागी बने रहोगे, क्योंकि यह संसार घोर समुद्र के समान है। इसको पार करना बहुत कठिन काम है अर्थात् माया मोह इतना प्रबल है कि वह घोर समुद्र के समान है। बिना प्रभु भजन के पार किया जाना संभव नहीं है। इसलिए सब कुछ छोड़-कर भगवान का नाम जपो।

**आशय**—सद्गुरु अपने राम से कहते हैं कि हे प्रभो ! यह जीवात्मा आप का भजन नहीं किया इसलिए अन्य पशु-पक्षी के शरीरों में जाने के लिए प्रस्तुत हो गया है और यह अज्ञ मनुष्य जुलाहों की भाँति कपड़ा बुनने के लिए मानव शरीर रूपी घर को छोड़कर पशु-पक्षी योनि रूपी कपड़ा बुनने के लिए पुनः जा रहा है। जिन तंतुओं से मानव शरीर का निर्माण हुआ था, उन्हीं तंतुओं से पशु-पक्षियों के भी शरीरों का निर्माण होता है, वही नव दरवाजे, वही दस प्राण, वही अन्तःकरण, वही पाँच तत्त्व, वही सप्तरस, वही बहत्तर कोठों से इसके भी ताने-बाने बने हैं, और इसके वस्त्र की विशेषता यह है कि यह जीव परमेश्वर से कर्मानुसार अपने पट रूपी शरीर का निर्माण कराते रहता है। जिसकी बराबरी लोक के वस्त्र नहीं कर सकते। परमेश्वर सर्वज्ञ है। इसलिए उसका काम सब लोक के काम से भिन्न है। 'चली' और 'बिनावन' में भी श्लेष है। प्रथम श्लेष के दूसरे अंश का अर्थ किया जा चुका है। श्लेष के दूसरे भाग का अर्थ यह है कि कबीर साहब परमेश्वर से कहते हैं कि हे प्रभो ! सृष्टि के आदि में यह जीव ऊपर से शरीर रूपी कपड़े को बुनाने के लिए चला और आप ने उसके शरीर को बहुत सुन्दर रूप से बीना। आप उसमें दस दर-बाजे लगाए, चार अन्तःकरण बनाए, बहत्तर कोठे बनाए, सात रसों से सजाया अन्य पंच तत्त्वों के उसमें अंश लगाए, आप का बनाया हुआ शरीर रूपी वस्त्र बहुत विशेषता के साथ बन गया। जिसकी तुलना लोक के जुलाहों के वस्त्र से नहीं की जा सकती और न लोक के जुलाहों के गजों से उसकी नपाई ही की जा सकती है। लोक के जुलाहे के कपड़े बहुत सस्ते रुवे से बने रहते हैं। उसमें घट-बढ़ भी हो सकता है परन्तु आप वाले में

एक रत्ती का भी कमी-बेसी नहीं है परन्तु ऐसे अमूल्य वस्त्र प्राप्त कर मानव संभल नहीं पा रहा है। मनुष्य की तृष्णा संसार के भोग के लिए उससे झगड़ती रहती है। तृष्णा इतनी नीच है कि प्रतिदिन अकारण ही जीव रूपी खसम से नित्य उठकर संसार के सुख के लिए लड़ते झगड़ते रहती है। यहाँ 'नित उठि बैठि' में भी श्लेष है। जब-जब मनुष्य मानव तन पाता है अज्ञानता के कारण भोगपरायण इन्द्रियाँ नित्य उसको परेशान करती रहती हैं, जिसके कारण त्रय ताप उसको घेरे रहते हैं। ऐसी दशा में असमर्थ बेचारा कुछ साधन भजन नहीं कर पाता, अन्त में संसार से चल बसता है। सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्तजन ! जिसने इस सृष्टि का निर्माण किया है, उसी को संसार का पसारा छोड़कर भजो। क्योंकि यह संसार तरने में बड़ी कठिनाई है। हे पागल मनुष्य पुनःपुनः कहता हूँ कि संसार के असत्य व्यवहार को छोड़कर प्रभु का भजन करो।

## सबद १६

### "दिव्यलोक वर्णन प्रकरण"

**रामुरा झीं-झीं जन्तर बाजै, कर चरनन बिहूना नाचै ॥**
**कर बिनु बाजै सुनै स्रवन बिनु, स्रवन स्रोता सोई ।**
**पाटन सुबस सभा बिनु औसर, बूझो मुनि जन लोई ॥**
**इन्द्री बिनु भोग स्वाद जिभ्या बिनु, अक्खै पिंड बिहूना ।**
**जागै चोर मंदिल तहं मूसै, खसम अछत घर सूना ॥**

**शब्दार्थ**—रामुरा–राम राजा। झीं-झीं–झन्न-झन्न, सूक्ष्म ध्वनि। जन्तर–यंत्र, वाद्ययंत्र, वाँसुरी, वीणा, मृदंग। बाजै–वाद्य करे। कर–हाथ। चरनन–पैर। बिहूना–रहित। नाचै–नृत्य करे। स्रवन–श्रवन। स्रोता–सुनने वाला। सोई–वही। पाटन–नगर, शहर। सुबस–अच्छा बसा हुआ है। औसर–समय, निरन्तर। बुझो–समझो, जानिए। जन–भक्त, उपासक। लोई–लोग। इन्द्री–इन्द्रियाँ, विशेषकर ज्ञानेन्द्रियाँ। भोग–काम

भोग। स्वाद–आनन्द। जिभ्या–जीभ। अक्खै–अक्षय, अविनाशी। पिण्ड–शरीर। बिहूना–रहित। जागै–जागते हुए। चोर–तस्कर, काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णादि। तहं–वहाँ। मूसै–चुरावै। खसम–स्वामी, परमतत्त्व, परमेश्वर। अछत–रहते हुए। घर–शरीर। सूना–शून्य, कोलाहल रहित, दैवी सम्पत्ति, विहीन।

**सम्बन्ध**—पूर्व शब्द में कहा गया है कि सृष्टिकाल में कर्मानुसार जीव रूपी जुलाहा शुभाशुभ कर्मों के फल भोगने के लिए शरीर रूपी वस्त्र को बुनाने के लिए चला जो शरीर बहुत मूल्यवान था परन्तु जीव उसका महत्व नहीं समझा, जिन काम्य कर्मों के कारण पुनः इसकी सृष्टि हुई थी, उसी में लगा रहा, अन्त में प्रभु प्राप्ति नहीं हुई, पुनः रुष्ट होकर अन्य योनियों में जा पहुँचा। सद्गुरु कहते हैं कि यदि मनुष्यों से हो सके तो जिसने इस सृष्टि का निर्माण किया है, सारे बवण्डर को छोड़कर, उसी का भजन करना चाहिए। अब प्रश्न उठता है कि क्या भजन करने वाला कहीं दूर देश में है तो कहते हैं, कि वह शरीर के भीतर है, इसी में उसका अन्वेषण करना चाहिए। जहाँ पर वह रहता है, मैं उसका परिचय कराने चल रहा हूँ।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे अविनाशी तत्त्व राम! आप जहाँ रहते हैं, जहाँ निवास करते हैं, वह आप का दिव्यलोक सहस्रार में बहुत सजाया हुआ है। वहाँ पर बहुत आनन्द की लहरें उठती रहती हैं और वह आप का लोक बहुत विस्मयकारी है, बहुत आश्चर्यकारी है। हे प्रभो! आपके गढ़ में, आप के भवन में बहुत सूक्ष्म झन-झन झंकार करने वाले वाद्य यंत्र बज रहे हैं और वहाँ पर आपके उपासक भक्त जन व आपके अनुचर उस बाजे को सुनकर बिना हाथ-पैर के नृत्य कर रहे हैं, वे भी आप की प्राप्ति करके आप के लोक सहस्रार में निवास करते हैं अब उनके भौतिक शरीर वहाँ नहीं रह जाते। वे भी आप की तरह आप से मिलकर दिव्य हो जाते हैं। इसलिए बिना हाथ पैर के ही नृत्य करते रहते हैं। आपके गढ़ के जो वाद्य यंत्र हैं, वे बिना हाथ से बजाये ही

बजते हैं और वे अनाहत नाद हैं। वे कभी हत नहीं होते हैं। वे दिव्य नाद हैं और जो साधक आपके भवन में पहुँच जाते हैं, वे बिना श्रवण के ही, वे बिना कान के ही, उक्त वाद्य यंत्र को सुनते हैं। वास्तविक में श्रोता वहीं है जो बिना श्रवणेन्द्रिय के ही ब्रह्माण्डीय वाद्य यंत्रों को सुनते रहता है। तात्पर्य यह है कि मूलाधार से महादेवी कुण्डलिनी जब ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाती है तब ज्ञान के सभी तन्तु जाग उठते हैं, जो बाह्य ब्रह्माण्ड में कलाएँ दीख रही हैं, वे सब सूक्ष्म रूप से अन्दर में भी विराजमान हैं। योगी ज्ञानियों का मत है कि उन्हीं अन्तर्कलाओं का विकास बाहर में हुआ है। इसी से कबीर साहब कहे हैं कि 'जस भीतर तस बाहर देखा', धर धरनी का एकै लेखा।' अन्यत्र भी जैसे 'पिण्डे वैसे ब्रह्माण्डे' कहा गया है तथा योगशास्त्रों में उक्त विषय पर बृहद् चर्चा हुई है जो यहाँ पर लिखना सम्भव नहीं है।

सद्गुरु कहते हैं कि वह राम राजा का नगर बहुत सुन्दर बसा हुआ है। उसमें कोई कमी नहीं है। उसकी राजसभा सदैव लगी रहती है। उसके लिए कोई समय निश्चित नहीं है। इस बात को श्रेष्ठ मुनि एवं भक्त लोग समझें क्योंकि आप लोग भी उसी लोक के उपासक हैं। वहाँ पर रहने वाले के इन्द्रिय नहीं है। परन्तु वह बिना इन्द्रिय के अनेक प्रकार के स्वादों का भोग करता रहता है बिना जिह्वा के अनेक प्रकार के रसों का आस्वादन करते रहता है। इसी बात को उपनिषद् में भी कहा गया है कि 'अपाणि पादो यौनो गृहीता।' और केन उपनिषद् में भी यह कहा है कि 'वह नेत्रों का नेत्र है, श्रोत्रों का श्रोत्र है, जिह्वा का जिह्वा है, मन का भी मन है, वाणी की भी वाणी है। उसी को सद्गुरु कबीर कहते हैं कि वह सर्वशक्तिमान अविनाशी तत्त्व है जिसका कभी क्षय नहीं होता है, वह इस रक्त-माँस वाले शरीर से भिन्न है। वह दिव्य स्वरूप वाला है और इसी शरीर में रहता है परन्तु आश्चर्य यह है कि उस जागृतरूपी, चेतनरूपी ज्ञान-स्वरूप प्रभु के रहते हुए शरीर रूपी मन्दिर में काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णा रूपी चोर, सत्य, दया, धर्म, विवेक, विचार रूपी धन को

चुरा रहे हैं अर्थात् आत्मज्ञान के जो साधन हैं, कामादि सब उनको चुरा रहे हैं। यह भी आश्चर्य है कि सबका खसम जगत नियन्ता जगदीश्वर उस घर में रहता है परन्तु उसके रहते हुए भी अज्ञानी मनुष्य के लिए शून्य ही शून्य दीखता है अर्थात् अपने भीतर प्रभु को नहीं जानता और यह जानता है कि उस प्रभु से मेरा अन्तःपुर शून्य है वह प्रभु कहीं मेरे से दूर है, जिसकी खोज बाहर करते रहता है, जिसके कारण घर में सदैव चोरी होते रहती है। तात्पर्य यह है कि जब मन बहिरंग रहता है, तभी काम, क्रोध, तृष्णादि शरीर में उधम मचाए रहते हैं एवं अपने व्यापार को चलाते रहते हैं और जब मनोवृत्ति अन्तर्मुखी हो जाती है तब सभी ठगों को पहचान जाती है। वृत्ति के सजग होनेपर सभी चोर बाहर भाग जाते हैं।

**बीज बिनु अंकुर पेड़ बिनु तरिवर, बिनु फूले फर फरिया।**
**बांझ के कोख पूत औतरिया, बिनु पग तरवर चढ़िया॥**
**मसि बिनु द्वात कलम बिनु कागद, बिनु अक्खर सुधि होई।**
**सुधि बिनु सहज ग्यान बिनु ग्याता, कहैं कबीर जन सोई॥**

**शब्दार्थ**—बीज–शुक्र, बीया। अंकुर–आँखा, बीज से निकलने वाला पौधे का पहला रूप। पेड़–मूल। बिनु–बिना। तरिवर–वृक्ष। फरिया–फला। फर–फल। फूले–पुष्प उगे। बांझ–बन्ध्या परमेश्वर, निर्गुण ब्रह्म, जिसके बच्चा न हो, माया कोख रहिता, व्यर्थ। कोख–कुक्षि, उदर, गर्भाशय। पुत–पुत्र, जीवात्मा। औतरिया–अवतरण हुआ। पग–पैर। तरिवर–सहस्रार, वृक्ष। चढ़िया–चढ़ गया। मसि–स्याही, साधन, द्वात-स्याही रखने का पात्र। कलम–लेखनी। बिनु–बिना। कागद–कागज। सुधि–स्मृति। हुई–होती है। सहज–सरलता। ग्यान–विशेष ज्ञान, आत्म-ज्ञान। ग्यांता–जानने वाला।

**मूलार्थ**—अब सद्गुरु कहते हैं कि परमप्रभु रूपी स्वरूप के रहते हुए लोग बाहर ढूंढ़ते हैं परन्तु जो सृष्टि का मूल कारण है, जिसके बिना माया कुछ नहीं कर सकती, उस प्रभु में ही सारे प्रजनन तत्त्व विद्यमान

रहते हैं, वह शरीर के अठारह मर्म स्थानों में विशेषकर निवास करता है परन्तु उसमें से भी तीन विशेष स्थान हैं मूलाधार, हृदय और सहस्रार, योगशास्त्रों में सहस्रार को वृक्ष की संज्ञा दी गयी है। सहस्रार में जो वृक्ष है, वह बिना बीज के ही उगता है और जो वह वृक्ष है उसका मूल नहीं है अर्थात् जो सहस्रार में वृक्ष रूपी मूल पुरुष विद्यमान है, वह बिना आधार के उसका कोई दूसरा अधिष्ठान नहीं है और वह बिना फूल के ही फलता है और सदा फलते रहता है। वह फल चन्द्र निःसृत अमृत तत्त्व है, जिसको योगी लोग व ज्ञानी लोग पीते हैं और वह परमेश्वर बांझ[1] के समान है वह शरीर से रहित होने के कारण अवयवों से हीन है, इसलिए लोक जैसा गर्भ धारण नहीं करता परन्तु उसकी सत्ता रूपी कुक्षी में सूक्ष्म रूप से जगत का निवास रहता है। उसको कुक्षी से ही अर्थात् उसके गर्भ से ही कार्यब्रह्म प्रकट होता है और वहीं से सारी चैतन्यता शक्ति उत्पन्न होती है और उसी के द्वारा आत्मज्ञान का भी अनुभव होता है। अब उस परमेश्वर की प्राप्ति साधक, योगी बिना शारीरिक पैर आदि के ही करता है अर्थात् ब्रह्मरंध्र स्थित मूलवृक्ष पर योगी बिना पैर के ही सुरति से चढ़ जाता है अर्थात् जब मन निग्रह हो जाता है, अत्यन्त एकाग्र हो जाता है तब सुरति जाकर मूल तत्त्व में स्थित हो जाती है, जहाँ पर योगी की निर्विकल्प समाधि लगने लगती है। अन्यत्र सद्गुरु ने कहा है कि मुझे 'बांझ प्यारे तुझको ही चाहिए अर्थात् उन्होंने ईश्वर को बाँझ की संज्ञा दिया है। इस प्रकार के वाक्य शास्त्रों में बहुत निहित हैं। अस्तु जब योगी को निर्विकल्प समाधि लग जाती है, तब उसे अनन्त सत्ता का ज्ञान हो जाता है ब्रह्माण्ड की समस्त कलाओं को वह जान जाता है। वे सब कलाएँ योगी के समक्ष अनायास ही आ जाती है। वहाँ पर न वह स्याही से लिखी होती है, वह स्याही वाला

---

१. दोजख तौ हम अँगिया, यह डर नाहीं मुझ।
भिस्त न मेरे चाहिए, बांझ पियारे तुझ॥
—श्री कबीर ग्रंथावली अंग ११ साखी ७.

पात्र जो ब्रह्मरन्ध्र है, सभी लिखने वाले कलाओं का केन्द्र है परन्तु उसके लिखने के लिए कलम की भी आवश्यकता नहीं है। हृदय रूपी कागज पटल पर योगी को सारी बातें संसार की लिखी जैसी दीखती हैं अर्थात् जो भी लोक परलोक का ज्ञान है, उस योगी को बिना साधन के ही अन्तः करण में साधन अवस्था में अनुभासित होने लगते हैं। साथ ही कोई वाक्य अक्षरों में नहीं लिखे होते, सहस्रार में पहुँचने पर योगी की स्मृति जग जाती है। सभी वस्तु का ज्ञान उसे हो जाता है। इस तत्त्व युक्त ज्ञानी योगी को सुधि कहिए, बिना ध्यान के ही सहज में सभी वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है। वह योगी स्वयं अपने आप जान जाता है, कोई बताने वाला दूसरा ज्ञाता नहीं होता है। मैं कबीर कहता हूँ कि वास्तविक में वही असली प्रभु का भक्त है, ज्ञानी है, योगी है, जिसके लक्षण ऊपर बताये गए हैं। इसी तथ्य को गोरखनाथ भी इसी प्रकार से वर्णन किया है।

**आशय**—ब्रह्मरंध्र स्थित सहस्रार में जहाँ पर चेतनात्मा का मूल अणु में निवास स्थान है, वहाँ पर अनेक प्रकार के वाद्यों के झनकार होते रहते हैं। अनाहत नाद निरन्तर बजता रहता है, जहाँ पर पहुँचा हुआ साधक जोगी बिना हाथ पैर के ही नाचने लगता है अर्थात् परम आनन्द लेते रहता है और ये अनाहत नाद अहर्निश अपने आप बाजते रहते हैं, जिसमें वीणा, बाँसुरी, मृदंग जैसे आवाज होते रहते हैं, जिसको योगी सुरति से ही सुनता रहता है। इसलिए वास्तविक में वही रमता है जो भीतर के नाद को सुनता है। पहले कहा जा चुका है कि नाद दो प्रकार के होते हैं। एक वायु के गुन्जन से होता है। दूसरे नाद शक्ति के जागरण से होता है। यहाँ पर शक्ति जागरण वाले नाद का ही उल्लेख किया गया है।

उक्त नाद जहाँ होता है, वह नगर, वह स्थान बहुत सुन्दर है, बहुत सुभिक्ष है। वहाँ पर सदा प्रभु की अध्यक्षता में बिना समय निर्धारण के सभा होते रहती है, जिस सभा के सांसद, ज्ञान, विवेक, विचार, क्षमा,

सन्तोष, मैत्री, मुदिता, अहिंसा है। दासी वहाँ सभा की सुबुद्धि है, जो सबके साथ मिलकर काम करती है। इस तथ्य को चिंतनशील मुनि एवं भगवत चरणार्विंद आराधक जनलोक को समझना चाहिए कि वहाँ पर बहुत सुन्दर भोज्य पदार्थ है। बहुत अच्छे-अच्छे भोग हैं जो बिना भोगेन्द्रिय के भोगे जाते हैं और बिना रसना के स्वाद लिए जाते हैं। वहाँ का जो स्वामी है, अविनाशी है वह बिना शरीर का है। परन्तु अज्ञ मनुष्य उसको जागकर खोजता नहीं, खोजने के स्थान पर मानव जागृति चोला पा लिया है। स्थान पा लिया है, परन्तु सजग नहीं होने के कारण शरीर रूपी मंदिर से सद्गुणों की चोरी व आत्मज्ञान की चोरी, काम, क्रोध आदि चोरों के द्वारा हो रही है। शरीर रूपी घर में प्रभु बैठा है। उसके रहते हुए भी यह मनुष्य कुछ उससे माँग नहीं रहा है। उसके दर्शन करने की इच्छा नहीं कर रहा है। वह मूल पुरुष बड़ा महिमा वाला है। वह अनादि वृक्ष है। वह बिना किसी के उत्पन्न किये ही उत्पन्न है। वह बिना किसी के आधार के ही स्थित है। उसमें अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष सब फल बिना फूल के ही लगते हैं। वह वन्ध्या महाप्रभु जिसके उदर आदि नहीं है। परन्तु उसकी शक्ति रूपी कुक्षी से ही सारे जगत् का अवतरण हुआ है। उस मूल वृक्ष पर योगी जन उक्त फल की प्राप्ति के लिए साधना करते हैं और बिना पैर के ही सुरति के द्वारा उस पर चढ़ जाते हैं, वहाँ पहुँचने पर बिना पोथो पत्रा के, बिना स्याही पात्र के, बिना कलम-लेखनी के, बिना अक्षर के, बिना ज्ञान-विज्ञान के सभी ज्ञान-विज्ञानों का स्वतः स्मरण हो जाता है। बिना स्मरण किये सहज में ही बिना किसी बतलाने वाले गुरु के वह योगी सर्वज्ञ हो जाता है। सद्गुरु कहते हैं कि वास्तविक में वही सिद्ध है, साधक है, भक्त है, जो परमपद की प्राप्ति कर लिया है।

# सबद १७

## वंचक प्रकरण

**रामहिं गावै अउरहिं समुझावैं, हरि जाने बिनु बिकल फिरै ॥**
**जेहि मुख वेद गाइत्री उचरै, ताके वचन संसार तरै।**
**जाके पांउ जगत उठि लागै, सो बाभन जीव बध करै ॥**
**अपने उँच नीच घर भोजन, घीन करम हठि वोद्र भरै।**
**ग्रहन अमावस ढुकि ढुकि मांगै, कर दीपक लिए कूप परै ॥**

**शब्दार्थ**—रामहिं–राम को ही। गावै–कथन करे, कीर्तन करे। अउरहिं–दूसरे को भी। बिकल–परेशान, व्याकुल। जेहि–जिसके। गाइत्री –गायत्री, वेद का एक मंत्र, जो सूर्य की उपासना में उल्लिखित है, जिसमें चौबीस अक्षर होते हैं सात व तीन व्युहृतियाँ होती हैं, जिसको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य-ए तीन वर्णों के लोग प्रातः, सायं और मध्याह्न में जप करते हैं। उचरै–उच्चारित हो, निकले। ताके–उसके। तरै–मुक्त हो। जाके–जिसके। पाँउ–पैर। जगत–संसार के लोग। लागै–छूवे स्पर्श करै। सो–वह। बाभन–ब्राह्मण। घीन–नीच, कुत्सित। हठि–बलात, हठपूर्वक। वोद्र–उदर, पेट। ग्रहन–ग्रहण, सूर्यग्रहण व चन्द्रग्रहण। अमावस–अमावस्या पक्षान्त। जिस दिन सूर्य और चन्द्रमा का दर्शन साथ-साथ न हो, उसको अमावस्या ग्रहण कहते हैं, जब सूर्य राशि व चन्द्र राशि पर राहु केतु का दौड़ा होता है वह ग्रहण। कर–हाथ। दीपक–दीया। कूप–कुंआ।

**सम्बन्ध**—पहले शब्द में दिव्यलोक का दर्शन कराया गया और उसकी प्राप्ति कर लेने वाले की प्रशस्ति की गई। अब नीचे कहा जा रहा है कि बहुत से लोग बिना प्रभु-प्राप्ति के ही केवल वाणी के द्वारा वेदशास्त्र पढ़कर ज्ञान कथने लगते हैं अर्थात् शास्त्र की लम्बी-चौड़ी बातें हाँकते रहते हैं। जिनसे कोई लाभ नहीं होने वाला है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि बड़ी लम्बी-लम्बी धोतियों के पहनने

वाले और सिर पर लम्बे-लम्बे पाग बाँधने वाले और तीन सूत का जनेऊ पहनने वाले, बगल में पोथी दाबने वाले, पन्द्रह बरस तक 'इकोयणचि' पाणिनि के सूत्रों को रटने वाले, बिना जाने सुने परमतत्त्व की व्याख्या करते हैं और दूसरे को भी वही बात सुनाते हैं। बड़ी-बड़ी सभाओं में अक्कड़बाजी के साथ मूंछ पर ताव फेरते हुए लम्बे-लम्बे भाषण देते हैं परन्तु हरि जो सबके विकारों को हर लेता है, जिसके भजन से सारे दुःख नष्ट हो जाते हैं। जन्म-मरण मिट जाता है। उसको बिना जाने बिना प्राप्ति किए लम्बी धोती, पोथी वाले दशों दिशाओं में संसार के सुख के लिए व्याकुल होकर घूमते हैं तथा संसार के वैभव बटोरने के लिए चारों तरफ जा-जाकर शास्त्र का ज्ञान सुनाते हैं। सद्गुरु कहते हैं भला जिन सज्जनों के मुख से पवित्र वेद की गायत्री का उच्चारण होता है, जिसका जप करते हैं, वही गायत्री वाले पण्डितों से संसार के लोग मुक्ति की कामना करते हैं और यह मानते हैं कि ब्राह्मण के मुख से ही दीक्षा लेनी चाहिए। पुनः सद्गुरु कहते हैं कि जिस ब्राह्मण के पैर को संसार के लोग देखने पर उठ कर स्पर्श करके माथे चढ़ाते हैं वह ब्राह्मण क्या करता है ? जीव का बध करता है अर्थात् खसी, बकरी, पाड़ा-पाड़ी काटकर समय-समय पर देवी-देवताओं को चढ़ाता है और यहीं तक नहीं है। अपने पेट भरने के लिए ऊँच-नीच घर में, श्रेष्ठ घर में, क्षत्रियों के यहाँ, वैश्यों के यहाँ खाते हैं, शूद्रों के यहाँ खाते हैं और छिपे तौर पर उन लोगों से भी दान-दक्षिणा लेते हैं जिनको शूद्र एवं अछूत कहते हैं। ये अशोभनीय पाप कर्मी व्यवस्थावादी ब्राह्मण उसके अतिरिक्त भी बहुत से नीच कर्म करते हैं और हठात जबरदस्ती दान-दक्षिणा स्वर्ग-नरक दिखाकर लेते हैं। 'घीन' कर्म में श्लेष है और साथ ही व्यंजना भी। कहने का तात्पर्य यह है कि बच्चों के जन्म से मृत्यु तक जो भी संस्कार निर्धारित हैं उन रूपों में जबरदस्ती से दान लेते हैं। जैसे मरणोपरान्त महापात्र लोग दसवें दिन घी और दूध तब तक नहीं पीते जब तक लम्बी रकम न मिल जाये यहाँ तक कि दुधारु गाय भैंस की भी माँग करते हैं।

जमीन, जगह भी लेते हैं। शय्या, हण्डा, बर्तन, सोना, चाँदी सब लेते हैं चाहे यजमान खाने बिना ही मरता क्यों न हो, चाहे रहने का घर न हो, चाहे उसका एकलौता पुत्र या दामाद ही क्यों न मर गया हो पर पण्डित जी बिना कुछ पाये क्रियाओं का संपादन नहीं करते हैं। यहीं तक इनकी यात्रा समाप्त नहीं होती। मृतात्मा को खाने के लिए व पितरों की शान्ति के लिए जन्म-जन्मान्त तक लेन-देन का व्यवहार चलता रहता है। यदि उनकी बात कोई नहीं मानता है तब उनके पितर नरक में चले जाते हैं और उसे हिन्दू नहीं नास्तिक कहते हैं। अर्थात् झूठे पोथे रचकर उन पोथों में न कुछ देने वाले को शूद्र, महाशूद्र, वृषल अछूत आदि लिखकर जन्म-जन्मान्त तक उसको नीचा दिखाते रहते हैं और संसार के सारे अधिकार उसके समाप्त कर देते हैं तथा वर्णाश्रम का जाल खड़ा कर अपनी मनमानी करते रहते हैं और उसे भी अन्त में नरक में जाने को कहते हैं। ये समाज के दुश्मन लोग इतने पर भी इति श्री नहीं करते आगे भी जब-जब पृथ्वी की छाया में चन्द्रमा आ जाता है एवं सूर्य आ जाता है तब-तब भी उसको भी धर्म का मामला बता कर गरीब-अमीर सबके घर में घुसकर दान-दक्षिणा माँगते हैं। उससे भी कुछ आगे और बात है जो महीने के आधे बीतने पर चन्द्र सूर्य एक साथ लोप हो जाते हैं अर्थात् जब पृथ्वी घूमते-घूमते जिस दिन सूर्य ग्रह और चन्द्र ग्रह के सामने आ जाती है तो उसको भी अमावस्या की संज्ञा देकर खूब माल-गुजारी कर वसूलते हैं। ये पृथ्वी के देवता लोग वेदशास्त्र के ज्ञान रूपी दीपक हाथ में लिए हैं परन्तु जैसे दिन में उलूक को नहीं दिखायी देता है, उसी प्रकार से तमाम पापों के पर्दे पण्डित जी को घेर लेते हैं। शास्त्र विद्या रहने पर भी पशु आदि के निम्न योनियों में प्रवेश कर जाते हैं। यहाँ दीपक में भी श्लेष है। दीपक से तात्पर्य मनुष्य जन्म का है जिसको पाने पर भी सचेत नहीं हुए। अन्त में अज्ञान के कारण दुःख के समुद्र में प्रवेश कर गये। यह नहीं दीख पड़ा कि कौन दुःख है, कौन सुख है ?

**एकादसी बरत नहिं जानै, भूत प्रेत हठि ह्रिदै धरै।**
**तजि कपूर गांठी बिख बांधे, ग्यान गंमाये मुगुध फिरै॥**
**छीजै साहु चोर प्रतिपालै, संत जना की कूटि करै।**
**कहैं कबीर जिभ्या के लंपट, यहि बिधि प्राणी नरक परै॥**

**शब्दार्थ**—एकादसी–जो पक्ष के एकादसवें दिन पड़ती है, जिसे भगवान विष्णु का व्रत कहा जाता है। बरत–व्रत को। कपूर–कर्पूर एक सुगन्धित ज्वलनशील पदार्थ जो देवपूजा आदि के काम में आता है। गांठी–पास से। बिख–सांसारिक सुख, विष, जहर। बाँधे–ग्रहण करें। गंमाये–गवाँकर। मुगुध–मुग्ध, नीच। छीजै–दुखित हो, छीन होना। घटना, कम होना, दुःख देना। साहु–साधु, सज्जन, भला मानुस। चोर–दुष्ट, तस्कर। प्रतिपालै–खिलावै, रक्षा करें। संतजना--संतलोग। कूटि–चिढ़ाता है। लम्पट--विषयाशक्त। प्रानी--प्राणी, मनुष्य। नरक--मार्कण्डेय पुराण के अनुसार अठारह प्रकार के नरक हैं जिसमें कुंभीपाक, रौरव, महा-रौरव आदि बड़े–बड़े नरक हैं, जिसमें यम के दूत बहुत कष्ट देते हैं पशु आदि योनि।

**मूलार्थ**—अपनी मूर्खता के कारण उस एकादशी पवित्र व्रत को नहीं करता है जो भगवान विष्णु का व्रत है, जिसके करने से आत्मशुद्धि होती है, जो भगवान विष्णु का अर्थात् परमेश्वर का व्रत है, जिसमें सात्विक भोजन होता है अर्थात् जो वैष्णवों का सात्विक व्रत है, उसको नहीं करता है व इन्द्रियों का राजा ग्यारहवाँ जो मन है, बुरे कर्मों से उसको निग्रह नहीं करता है। उसके विरुद्ध में भूत-प्रेतों की पूजा हठ पूर्वक हृदय में धारण करता है। झूठे-झूठे दुआ ताबीज बाँधता है। झूठी सिद्धियों के लिए भैरव, भवानी, जिन, दैत्य, ब्रह्म, शैतान आदि के स्थानों में जाता है और उसकी पूजा करता है, वह कर्पूर की तरह जो सत्कर्म था, जो एकादशी व्रत था, जिससे आत्मशुद्धि होने वाली थी, उसको तो तज दिया। विष स्वरूप भूत-प्रेत की पूजा हृदय में गठिया के रख लिया। जो शास्त्रों में आत्मज्ञान व प्रभु भक्ति का ज्ञान किया था, उसको

भुलवा दिया, उस पर आचरण नहीं किया, अब नीचता को प्राप्त होकर यत्र-तत्र भरम रहा है। उपर्युक्त कुकर्मों से जब काया की क्षति होने लगी, धन जन का नाश होने लगा, शरीर वृद्धा हो चली, तब ब्राह्मण भिक्षुक खिलाने की बात करने लगा और जो साधु स्वरूप ब्राह्मण लोग हैं, जिनका रूप मंगलमय है, उनसे दूर रहता है परन्तु जो सत्य बातों को दूसरे के प्रति छिपाये रखते हैं, चुराये रहते हैं। उन्हीं अपने जाति वाले ब्राह्मण को खिलाने लगा व प्रति पालन करने लगा। अर्थात् 'साहू' कहिए सज्जनों को दुःख देता है और चोरों एवं नीचों का पालन-पोषण करता है परन्तु सब होने पर भी उसकी दुष्ट बुद्धि का नाश नहीं हुआ। कहीं संत जनों को देखता है तो उनको चिढ़ाता है, उनसे मजाक करता है, उनकी कूट करता है अर्थात् सही लोगों से दूर रहता है। सद्‌गुरु कहते हैं कि ये जिह्वा के लम्पट, ये रसना के स्वादी लोग इसके कारण तमाम उपर्युक्त पाप करते हैं, करने के पश्चात् ये संसार के प्राणी इसी विधि से रौरव आदि नरकों में जाते हैं।

**आशय**—वंचक मनुष्य ऊपर से सत्य की दुहाई देता है परन्तु सत्य पालन नहीं करता है। लोगों को सत्य का उपदेश करता है परन्तु स्वयं उससे वंचित रहता है। वास्तविकता का त्यागकर संसार में चक्कर काटते रहता है। यहीं तक नहीं है, जो लोग गायत्री आदि की व्याख्या करते हैं, जिनके वचनों से लोग मुक्ति मानते हैं तथा जिनको देखकर लोग दौड़-दौड़ कर चरण स्पर्श करते हैं। ये ब्राह्मण लोग भी तमाम प्रकार की हत्या करते हैं। किसी को शरीर विच्छेद कर किसी को ऊँच-नीच कहकर हत्या करते हैं और अपने स्वार्थ के लिए ऊँच-नीच किसी भी घर को नहीं छोड़ते। कहीं से भी अपनी स्वार्थ-सिद्धि करने में जुटे रहते हैं। वे सदा हठात् नीच कर्म करके पेट-पोषण करते हैं। ग्रहण अमावस का भय दिखाकर भी घरों में घूस-घूस कर धन उगाहते हैं। मानव शरीर रूपी दीपक होने पर भी अंधकार में गिर जाते हैं। आत्मशुद्धि की उपाय नहीं करते, जिन कर्मों से मानव सुधार होता है, उनको नहीं करते।

इसके विपरीत असत्य पदार्थों में लगे रहते हैं। दुर्गुणों की गाँठ बाँधकर रख लेते हैं। जो अच्छा ज्ञान था, उसको भुलाकर ये मूर्ख मनुष्य झूठे-झूठे तीर्थ-मूर्तियों के दर्शन के लिए दौड़ते रहते हैं। दुःखी होने पर अपनी बिरादरी वाले की ही मदद करते हैं। उसी को चोर होने पर भी साधु समझते हैं अर्थात् साहु सज्जन को दुःख देते हैं चोर के समान उसका पालन करते हैं। और भद्र पुरुषों की निंदा करते हैं। मैं कबीर कहता हूँ कि ये सब विषय के लम्पट उपर्युक्त विधि से ही नरकरूपी पशु आदि योनियों में चले जाते हैं। उनको चाहिए कि कुत्सित विचारों का त्याग कर सत्मार्ग का अवलम्बन करें और अबिधिक धन का उपार्जन न करें। हाथ-पैर से मेहनत करके खायें तभी कल्याण होगा।

**टिप्पणी**—साहुचोर में भाव यह है कि सज्जन को दुःख देता है और चोरों को पालन करता है। आध्यात्मिक यह होगा कि सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा, की उपेक्षा कर देता है। काम, क्रोध आदि के व जो इन्द्रिय भोग परायण हैं। उन्हीं के पालन पोषण में लगे रहता है।

## सबद १८

### परम तत्त्व प्रकरण ( निर्गुण ब्रह्म कथन प्रकरण )

**राम गुन न्यारो न्यारो न्यारो।**
**अबुझा लोग कहाँ लौ बूझैं, बूझनिहार बिचारो॥**
**केतहिं रामचन्द्र तपसी से, जिन यह जग बिटमाया।**
**केतेहिं कान्ह भये मुरलीधर, तिन भी अन्त न पाया॥**
**मच्छु कच्छ अउ ब्राह सरूपी, बावन नाम धराया।**
**केतेहिं बौध निकलंकी कहिए, तिन भी अन्त न पाया॥**

**शब्दार्थ**—गुन-प्रभाव, उत्तमता, भलाई, सुकीर्ति, ख्याति, उपयोग, लाभ, परिणाम, डोरा, रहस्य, भेद। न्यारो-अलग-अलग। अबुझा-नासमझ, अज्ञानी। लौ-लगं, तक। बूझैं-समझें। बूझनिहार-समझदार।

बिचारो–विवेक करो। केतहिं–कितने, कहाँ तक। तपसी से–तप करने वाले के समान। जिन्ह–जो लोग। बिटमाया–बिरमाया, रचना करना, निर्माण करना, सुरक्षित किया। केतेहिं–कितने ही। कान्ह–भगवान श्रीकृष्ण। भये–हुये। मुरलीधर–बाँसुरी को बजाने वाले। तिन्ह–वे। अन्त–भेद सीमा। मच्छ–मत्स्य, अवतार। कच्छ–कच्छप अवतार। ब्राह–सूकर अवतार। सरूपी–स्वरूप वाला। बामन–वावन। नाम–संज्ञा। धराया–धारण किया। बौध–बुद्धावतार। निकलंकी–कलंकी अवतार। तिन्ह–ते, वे।

**सम्बन्ध**—पूर्व शब्द में कहा गया है कि शास्त्र के पण्डित अपने सत्य की दुहाई देते हैं और दूसरे से भी दिलवाते हैं, परन्तु प्रभु की भक्ति के बिना व्याकुल होकर घूमते हैं और पुनः यह कहा गया कि साधु-सज्जनों को दुख देते हैं। चोर एवं दुष्टों का प्रतिपालन करते हैं। इन्हीं कारणों से नरक में जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह हुआ कि केवल शास्त्र पढ़कर व केवल वाचक ज्ञान से प्रभु के भेद को मनुष्य नहीं जान पाता है चाहे वह कितना बड़ा भी विज्ञान का पण्डित हो, समाजशास्त्री हो, चाहे चारों वेदों का ज्ञाता हो, तात्पर्य जो भी अपरा विद्या से सम्बन्धित लोग हैं, वे केवल पठन मात्र से परमतत्त्व के रहस्य को नहीं जान सकते। वे केवल उसके द्वारा रोजी-रोटी कमाकर पेट भर सकते हैं परन्तु वह पराविद्या उनसे अज्ञात रहती है। सामान्य लोगों की चर्चा न करके नीचे के शब्द में सद्गुरु उन बड़ी-बड़ी हस्तियों का नाम लेकर कहा है कि ये लोग भी सीमित होने के कारण व शरीर धारण करने पर उस अनन्त सत्ता का पूर्णरूप से रहस्य नहीं जान पाये। कहने का तात्पर्य यह है कि मानव का सीमित आयाम होता है और वह मन बुद्धि वाला होता है और मन-बुद्धि की गति केवल ज्ञात वस्तु तक होती है और वह परमसत्य मन बुद्धि से परे है। देहधारी मनुष्य जो भी कुछ करता है वह मन बुद्धि के बल पर ही करता है। इसलिए वह देहधारी मनुष्य जो अज्ञेय है, अचिन्त्य है मात्र उसका अनुभव कर सकता है, वह न्यूनांश में, जैसे मनुष्य के शरीर

में पीड़ा होती है। वह केवल पीड़ा का अनुभव करता है परन्तु अनुभव करने वाला पीड़ा को देख नहीं पाता। इसी प्रकार से बड़े से बड़े अवतार एवं आचार्य, पीर, पैगम्बर, औलिया सबके सब जो भी कुछ परमतत्त्व के विषय में कहा है मात्र अल्पांश में ही कहा है और वे लोग भी उसकी महत्ता को स्वीकार किया है कि वह अनन्त है, असीमित है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे सर्व अन्तर्यामी जगद्‌गुरु ! आप का भेद, आप का रहस्य बहुत प्रकार का है, भिन्न-भिन्न है और वह रहस्य असीमित है आप उपाधि वश ईश्वर कहलाते हैं। आप उपाधि वश जीव कहलाते हैं और उपाधि से मुक्त आप परब्रह्म कहलाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आ। रज, तम, सत गुण से पृथक हैं। आप की महिमा अनन्त है। अबुद्ध लोग जो अल्पज्ञ हैं, जिनकी बुद्धि सीमित है, वे कहाँ तक आपको समझ सकते हैं ? अर्थात् वे आप के भेद को नहीं जान पायेंगे और जो इस विषय को जानते हैं, बूझते हैं। उनको विचार करना चाहिए कि वह परम सत्य किस प्रकार का है, वह किस रहस्य वाला है ? मैं तो कहता हूँ कि उस परमगुरु के विषय में श्रीरामचन्द्र जी के समान कितने तपस्वी हो गए हैं व श्रीरामचन्द्र जी के कितने अवतार हो गए हैं जिन्होंने सत्य के पीछे व अपने सिद्धान्त के पीछे सारा राजपाट त्याग कर आरण्य में निवास किए, जिन्होंने अनेक बार अवतार लेकर इस संसार की रचना किया तथा कार्यब्रह्म के रूप में जगत का निर्माण किया। वे रामचन्द्र भी उस परब्रह्म के रहस्य को नहीं जान सके। इस प्रकार से कितने ही बार भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के भी अवतार हुए जो अपने में सन्तुष्ट होकर, अमरतत्त्व से युक्त होकर, आनन्द विभोर होकर मुरली बजाते थे। वे भी उस अचिन्त्य सत्ता का भेद नहीं जान पाये। इसी प्रकार से वह कार्य-ब्रह्म कितनी बार मत्स्य अवतार, कितनी बार कच्छप अवतार, कितनी बार ब्राह अवतार के रूप में प्रकट हुआ। कितनी बार बामन संज्ञा वाला नाम धारण किया। कितनी बार बुद्ध और कितनी बार कलंकी नाम संज्ञा धारण कर प्रकट हुआ परन्तु वे लोग भी उस परम व्योमिनी का

उस विश्वचक्षु का रहस्य नहीं जान पाये कि वह कितने में है, कहाँ तक उसकी सीमा है।

**केतेहिं सिध साधक सन्यासी, जिन्ह बनबास बसाया।**
**केतेहिं मुनि जन गोरख कहिए, तिन भी अन्त न पाया॥**
**जाकी गति ब्रह्मै नहिं जानी, सिउ सनकादिक हारे।**
**ताके गुन नर कैसेक पैहो, कहैं कबीर पुकारे॥**

**शब्दार्थ**—सिध–जो कुछ चमत्कारों को प्राप्त कर लिया हो, जिनको कुछ प्रभु की प्राप्ति हो गयी हो। साधक–प्रभु-प्राप्ति के लिए जो साधना कर रहे हैं। सन्यासी–जो सब कुछ त्यागकर भगवत् परायण हो गए हैं। बनबास–जिन्होंने वन में अपना निवास बनाया। जन–भक्त। गोरख–गोरखनाथ जी। जाकी–जिसकी। गति–चाल, रहस्य, भेद। ब्रह्मै–ब्रह्मा, लोक पितामह। जानी–जान पाया। सिउ–महादेव जी। हारे–थक गए। ताके–उसके। गुन–रहस्य को। नर–मनुष्य। कैसेक–किस प्रकार से। पैहो–पाओगे।

**मूलार्थ**—इसी प्रकार से बहुत से सिद्ध एवं साधक, संन्यासी, महात्मा जिन्होंने घोर आरण्य में रहकर बहुत साधन-भजन एवं तप किया परन्तु वे लोग भी उस परमसत्ता का रहस्य नहीं जान पाये। इसी प्रकार से बहुत से मननशील मुनि एवं अनेक भक्तजन तथा गुरु गोरखनाथ के समान बहुत बड़े-बड़े योगी भी उस परमतत्त्व का भेद नहीं जान पाए। भला जिसकी गति एवं रहस्य को स्वयं लोक पितामह ब्रह्मा भी नहीं जान पाए, जो सृष्टि के प्रथम पुरुष हैं एवं उन्हीं के सहोदर भ्राता भगवान शंकर भी जिस रहस्यमय समसत्ता का भेद नहीं जान पाये, अन्त नहीं पाये एवं बालयोगी ब्रह्मज्ञ परम ऋषि सनकादिक चारों भाईयों ने उसका भेद खोजते-खोजते हार गए, नहीं पा सके। तब भला ये साधारण मनुष्य मात्र शास्त्र पुराण पढ़कर व लौकिक ज्ञान प्राप्त कर किस प्रकार से पा सकते हैं? मैं कबीर जोरों से पुकार कर कहता हूँ कि हे मनुष्यों! वह परमगुरु रहस्यमय है, असीमित है, अभेद्य, अवेद्य है, अच्छेद्य है। तूं सारे पाखण्डों

का त्यागकर सच्चे हृदय से उसका भजन कर, उसका चिन्तन कर, तभी तेरा कल्याण होगा। केवल शास्त्रों के मिथ्या वाग्जाल में न पड़े रहो क्योंकि वह सबसे परे है।

**आशय**—वह परमसत्ता जिसको मैं राम कहता हूँ तीनों गुणों से परे है, असीम है, अनन्त है। इसलिए अज्ञानी मनुष्य उसके विषय में कुछ कहने में असमर्थं है, जो उसका जिज्ञासु है, बूझनिहार है, इस तत्त्व पर उसको विचार करना चाहिए। मेरा तो अपना अनुभव है कि वह प्रभु इतना महान है कि श्रीरामचन्द्र से लेकर अन्तिम कलंकी अवतार तक उसकी गति को नहीं जान पाये। इसीलिए कोई भी सिद्ध हो, साधक हो, संन्यासी हो, तपस्वी हो, मुनि हो, भक्त हो, योगी हो पर उसके बारे में कुछ कहने में असमर्थ है। मैं तो कहता हूँ कि सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जो उसके बहुत नजदीक हैं, सब जानने वाले हैं, जिनको वह सर्वप्रथम प्रकट करता है एवं महादेव जैसे ज्ञानी एवं सनकादिक जैसे बालयोगी भी उसकी गति नहीं जान पाये तो ये साधारण मनुष्य क्या जान पायेंगे? यह सद्‌गुरु की उद्‌घोषणा है। अतः मनुष्य को सचेत हो जाना चाहिए।

# सबद १९

## प्रभुनाम जप प्रकरण

**ये ततु राम जपो हो प्रानी, तुम बूझहु अकथ कहानी।**
**जाके भाउ होत हरि ऊपर, जागत रैनि बिहानी॥**
**डाइनि डारे सोनहा डोर, सिंघ रहे बन घेरे।**
**पाँच कुटुम्ब मिलि जूझन लागे, बाजन बाजु घनेरे॥**

**शब्दार्थ**—ये–यह, इस। ततु–तत्त्व। राम–परब्रह्म, परमेश्वर। जपो–जप करो। हो–हे। प्रानी–मनुष्य। बूझहु–समझहु। अकथ–अकथनीय। कहानी–गाथा, विश्व रहस्यमय का भेद। जाके–जिसके। भाउ–प्रेम, निष्ठा, भाव। ऊपर–में। जागत–जागते हुए। रैनि–रात। बिहानी–

बिहान, प्रातः हो गया। डाइनि–जो स्त्री जन्त्र–मंत्र सीखती है और जन्म से लेकर बारह वर्षं के बच्चों को मारती है, माया, टोनहिन, कुदृष्टि वाली स्त्री। डारे–फेंके, त्यागे, छोड़े। सोनहा–सुनहा, श्वान, कुत्ता, चंचल मन। डोरे–बाँधे, बन्दी बनावे। सिंघ–सिंह, जीवात्मा, साधक। बन–शरीर, जंगल, पानी। घेरे–एक जगह करे। पाँच कुटुम्ब–परिवार के लोग, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध। मिलि–एक होकर, मिलकर। जूझन–लड़ने लगे, लड़ते हुए मर जाना; मरने लगे। बाजन–वाद्य, आनन्द बाजा, अनाहत नाद। बाजु–बाजता है। घनेरे–बहुत से, बहुत प्रकार के।

**सम्बन्ध**—पूर्व पद में कहा गया है कि जो परमतत्त्व है वह रहस्यमय है। उसका भेद साधारण लोग नहीं जान पाते तथा बड़े से बड़े ऋषि-मुनि, अवतार वे भी उसके बारे में कुछ कहने में असमर्थ रहे यहाँ तक कि कार्यब्रह्म स्वरूप ब्रह्मा भी उस परमेश्वर की गति को नहीं जान पाये। अब उन्नीसवें पद में कहा जा रहा है कि उसके पता लगाने के पीछे मत पड़ो, उससे कोई लाभ होने वाला नहीं है अर्थात् विस्मय की स्थिति त्याग दो कि ईश्वर है कि नहीं है, निर्गुण है कि सगुण है। इस भावना का परित्याग कर उस परम प्रभु का स्मरण करो।

**मूलार्थ**—अब सद्‌गुरु कहते हैं कि हे संसार के मनुष्यों ! यह जो परम-तत्त्व राम है जो सबके हृदय में बसा हुआ है उस प्रभु के नाम का जप करो। शास्त्रों में जप का बड़ा महत्त्व है और यह लिखा गया है कि प्रभु के नाम के जपने से सभी प्रकार के पातक नष्ट हो जाते हैं। जप के द्वारा मन को शान्ति मिलती है। नाम संकीर्तन ग्रन्थों में प्रभु जप से ही मुक्ति मिल जाती है। जो मनुष्य राम का नाम जपता है, उसके कठिन से कठिन दुर्भाग्य के लेख कट जाते हैं, जप के महिमा का उल्लेख भगवान श्रीकृष्ण-चन्द्र ने भी किये हैं। उन्होंने गीता में जप को यज्ञ कहा है और यह कहा है कि हम जप स्वरूप ही हैं। इसलिए सद्‌गुरु संसार के मनुष्यों से कहते हैं कि हे भाई ! उस परम प्रभु राम के नाम का जप करो। जब तुम प्रभु का नाम जपोगे, तब तुम अकथ कथा को समझ जाओगे जो कहने में नहीं

आता अर्थात् तुझे आत्मज्ञान हो जाएगा। आत्म विषयक बात जान जाओगे। साथ ही तू अनिर्वचनीय माया के रहस्य को भी जान जाओगे। अब कहते हैं कि जिसका प्रेम प्रभु चरणों में होता है जो प्रभु का नाम सुमिरन करता है, उसको नींद नहीं आती है। वह प्रभु के लिए विकल रहता है, बेचैन रहता है। उसको न अन्न अच्छा लगता है न संसार की बातें। उसे संसार से पूर्ण वैराग्य हो जाता है। वह प्रभु प्रेमी जागते-जागते अर्थात् नाम जपते-जपते सारी रात बिता देता है। प्रातः हो जाता है वह सोता नहों अर्थात् यावत् जोवन वह कभी अज्ञान रूपी रात्रि में शयन नहीं करता। सद्‌गुरु कहते हैं कि जो व्यक्ति प्रभु के चरणों में मन लगा देता है, अहर्निश उसका नाम जपता है, वह व्यक्ति भक्षण करने वाली डाइन माया को फेंक देता है, छोड़ देता है और कुत्ता के समान जो मन था, जो घर-घर घूमकर टुकड़ा खाता था। जो सभी प्रकार के संसार के विषय को चखता था, उस कुत्ता रूपी मन को भी प्रभु भक्त बाँध दिया, कैद कर दिया। अब प्रभु भक्त सिंह जैसा तेजस्वी शक्तिशाली हो जाता है, शरीर रूपी वन में जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अविवेक, हिंसा रूपी जन्तु बसते थे। जो सदा उसको परेशान करते थे। उन छोटे-छोटे शिकारों को स्यार, खरगोश, लोमड़ी आदि को वन से बाहर नहीं जाने दिया, शरीर के अन्दर ही सबको घेरा डाल दिया। सिंह में यहाँ श्लेष है। सिंह बहुत जानदार पशु होता है, हिंसक होता है, यहाँ पर जीवात्मा को सिंह का रूपक इसलिए दिया गया है कि काम, क्रोध आदि सबको मारकर खत्म कर दिया। जब शरीर के अन्दर काम, क्रोध, लोभ आदि घिर गए, तब परिवार के वे पाँचों कुटुम्बी शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंध भी कहीं जा न सके, आपस में मिलकर लड़-लड़कर मर गए। अर्थात् मन अन्तरमुख हो गया, बंध गया, इसलिए सारे विषय नष्ट हो गए। तन्मात्राओं का अभाव हो गया तथा मनोवृत्ति सहस्रार में पहुँच गयी, प्रभु के दर्शन हो गए। भेदबुद्धि समाप्त हो गयी। अनाहत नाद फूट पड़ा। बांसुरी, मृदंग आदि बहुत प्रकार के वाद्य यंत्र शरीर में बजने लगे। जिसको श्रवण कर साधक मस्त हो गया।

**रेहु म्रिगा ससा वन हांके, पारथ बानन मेलै।**
**सायर जरै सकल बन डाहै, मच्छ अहेरा खेलै॥**
**कहैं कबीर सुनो हो संतो, जे यह पद अरथावै।**
**जे यह पद को गाय विचारे, आप तरै औ तारे॥**

**शब्दार्थ**—रेहु–रोहू, रेहु, रोह, घेरा देना रोह उस शब्द को कहते हैं, जब चरवाहे के पशु इधर-उधर भागने लगते हैं तो एक जगह सबको घेरकर करते हैं उसको रोहू या रेहु भोजपुरी में कहते हैं। अब इस शब्द का प्रचलन कम होते जा रहा है। अभी जहाँ ज्यादा ग्रामीण क्षेत्र है, वहीं लोग रोह शब्द करके पुकारते हैं, और भी रोह शब्द के बहुत अर्थ हैं जिनको जानने के लिए नीचे दे दिया जाता है चढ़ाई, चढ़ना, अंकुर, नील गाय, एक प्रकार की मछली, एक प्रकार का पहाड़ी वृक्ष, गूलड़ का पेड़, पीपल, रोहिश, घास, एक प्रकार का हिरन, जंगल, वन, एक प्रकार का हथियार, खून, रक्त, लाल, सुर्ख। किसी बीजक के पाठ में 'रोवै' पाठ है परन्तु अभी तक किसी पाठ में, हस्तलेख में नहीं मिला है। हो सकता है कि अर्थ की दृष्टि से 'रोवै' पाठ आ गया हो, क्योंकि अनेक शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा गया है। प्रायः सभी टीकाकारों व पाठ सम्पादकों ने बहुत शब्दों को इधर-उधर किए हैं। सबसे अधिक पाठ भेद श्री सदा-फलदेव जी एवं श्री जयदेव सिंह ने किए हैं। सबसे पहले उक्त लोगों को भाषा विज्ञान एवं तत्सम व तद्भव आदि पर विचार करना चाहिए था, जिसके अभाव में बहुत बड़ा अनर्थ हुआ है। म्रिगा–वन पशु, सिंह, हिरण, कस्तूरी मृग की नाभी, वैष्णवों का एक प्रकार का तिलक, कामशास्त्रों में चार पुरुषों में से एक चित्रिणी स्त्री के लिये उपयुक्त कहा गया है। ज्योतिष में शुक्र की नौ विधियों में से आठवीं वीधि जो अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल में पड़ती है। हाथियों की एक जाति, जिसकी आँखें कुछ बड़ी बड़ी होती हैं और गण्डस्थल पर एक सफेद चिन्ह होता है, मकर राशि, एक प्रकार का यज्ञ, अन्वेषण, खोज, तलाश, अगहन का महीना, मार्ग-शीर्ष। ससा–खरगोश, जीव, निर्बल आत्मा, फुदकने वाला एक वन्य पशु।

बन–जंगल, शरीर। हांके–खेदे, भगावे। पारथ–पापार्धि, साधक, योगी, मन। मेले–डालना, मिलाना, चलाना, निशान लगाना। सायर–समुद्र, शरीर, संसार के विषय–वासना। जरै–जले। सकल–सभी। बन–संसार की विषय–वासना, पानी। डाहै–जलावे। मच्छ–मछली, मन, साधक, जीवात्मा। अहेरा–आखेट, अहेर। खेलै–शिकार करे। जे–जो। यह–इस। पद–ऊपर कहे हुए तथ्यों का भेद। अरथावे–अर्थ करे, समझे। गाय–कथन करके। विचारै–विवेक करे। तरै–मुक्त हो। अउ–और। तारे दूसरे को भी तारे।

**मूलार्थ**—अब उक्त राम जापक भक्त जो पहले शशा के समान था, अपने को बहुत निर्बल समझता था। वह मन रूपी हिरण को जो यत्र-तत्र भागता था, चंचल था 'रोहै' कहिये घेर लिया तथा घेर कर शरीर रूपी वन में अन्दर रख लिया। दूसरे जो मृग काम, क्रोधादि थे, तृष्णा थी, जो लोभ था, जो कामना थी, उनको घेर कर शरीर रूपी वन से बाहर हाँक दिया व भगा दिया और जिस प्रकार से शिकार करने वाला पारथ कहिये शिकारी वाणों के द्वारा जंगली पशुओं पर वाण चलाता है, उसी प्रकार से पारथ रूपी साधक व्यक्ति ज्ञान रूपी बान से कुसंस्कारों को शरीर रूपी वन में बेधते रहता है। तात्पर्य यह है कि दूसरे कुसंस्कार नहीं वनने पाते हैं और जमा हुए कुसंस्कारों को अन्दर से बाहर निकाल देता है। जब साधक ज्ञानवान के द्वारा कुसंस्कार रूपी वन पशुओं को शरीर से बाहर कर देता है तब उसके अन्दर जो संसार समुद्र के विकार की तरह मन में लहरें उठती थी, वे जलने लगीं और 'सकल बन' कहिये जो जंगल में शुष्क लकड़ी के समान काम, क्रोध निरुद्ध हो गये थे, उनको साधक खोज-खोज कर जलाने लगा। इस प्रकार से मच्छ रूपी साधक व भगवत्-भक्त सदा अहेर खेलते रहता है। यहाँ 'सायर' एवं 'सकल वन' में जहद स्वार्था है। इसलिए शरीर रूपी सायर में रहने वाले काम, क्रोध, लोभ रूपी मगर ज्ञान होने पर जलने लगे। दूसरा रूपक वन का है। वन में जब आग लगती है तो सूखे पेड़ों में लगती है। भाव यह है कि

जब इन्द्रियां निरुद्ध हो गयीं तो उनके विषय सब भस्म हो गए। मच्छ यहाँ पर साधक की मनोवृत्ति का द्योतक है, इसमें बहुव्यञ्जना है। जब साधक की मनोवृत्ति संसार की धारा से ऊपर चढ़ने लगती है अर्थात् आत्मा की ओर उन्मुख हो जाती है, तब वह कुसंस्कारों को एक-एक करके बाहर कर देती है। यह मछली का रूपक है। मछली सदा जल में विपरीत दिशा की ओर चलती है। अर्थात् जिधर से जल की धारा आती है मछली यह समझ कर उलटे चढ़ती है कि जहाँ से जल आ रहा है, वह केन्द्र है। वहाँ पहुँचने पर अधिक आनन्द मिलेगा। इसी प्रकार से साधक की मनोवृत्ति भी संसार से मुड़कर जो सबका केन्द्र है, उस परमात्मा की ओर चढ़ने लगती है। उसी को सब सुखों का आधार मानने लगती है। सद्गुरु आत्मज्ञानी सन्तों को सम्बोधित करके कहते हैं कि हे संतजन ! जो इस उपर्युक्त पद का अर्थ लगावेगा और इसके अर्थ को समझेगा और जो इस पद को गायेगा और गाकर विचारेगा व विवेक करेगा कि यह संसार सत्य है अथवा असत्य अर्थात् परमतत्त्व सत्य है, भगवत् भजन सत्य है कि संसार का सुख सत्य है। जो व्यक्ति इस प्रकार का विचार करेगा वह स्वयं संसार से मुक्त हो जायेगा और सद्गुरु बनकर दूसरे को भी मुक्त करेगा।

**आशय**—सद्गुरु कहते हैं कि व्यर्थ के वाद-विवाद में न पड़ो, जो परमतत्त्व श्रीराम है, उसके स्वरूप का चिन्तन करो। उस राम के चिन्तन करने से तुम जिन तत्त्वों को नहीं जानते हो, जिन विषयों का तुम्हें ज्ञान नहीं है जो तुम्हारी दृष्टि से ओझल है, जो रहस्यमय है, उसे तू समझ जाएगा जिसका भाव व प्रेम आत्म-चिन्तन में हो जाता है जो प्रभु के पुजारी हो जाते हैं, वे प्रभु विरह-वेदना में जागते-जागते रात्रि बिता देते हैं जो इस प्रकार के ज्ञानी भक्त हैं, वे माया को समाप्त कर कुविषय युक्त मन को भी निग्रह कर लेते हैं। मृगराज के समान शरीर रूपी वन पर अपना नियन्त्रण कर लेते हैं। तब पंच विषय जो सदैव मनुष्यों को तंग करते रहे, ये सब समाप्त हो जाते हैं तब साधक आनन्द के बाजे बजाने लगता

है। हिरण रूपी मन को घेर कर बाहर भगा देता है और शरीरस्थ विषय-वासना को शत्रु समझ कर ज्ञान के वाण से प्रहार करता है। तत्पश्चात् शरीरस्थ विकार सब भस्म हो जाते हैं एवं जो समुद्र के समान मन में विकार उठते थे, वे भी अभावग्रस्त हो जाते हैं। इस प्रकार से साधक की मनोवृत्ति सहस्रार की ओर चढ़ जाती है और सदैव कुसंस्कारों से अहेर खेलती अर्थात् उन्हें चुन-चुनकर शरीर से दूर कर देती है। सद्गुरु कहते हैं कि उपर्युक्त विचार का जो अर्थ समझेगा और जो संसार के सामने उसको कहेगा और स्वयं विवेक करेगा वह अपने भीतर जाएगा और संसार के लोगों को भी संसार सिन्धु से तार देगा।

## सबद २०

**कोई राम रसिक रस पियहुगे, पियहुगे जुग जियहुगे ॥**
**फल अलंक्रित बीज नहिं बोकला, सुक पंछी तहाँ रस खाई।**
**चुवै न बुन्द अंग नहिं भींजै, दास भौंर सभ संग लाई ॥**
**निगम रिसाल चार फल लागे, तामें तीनि समाई।**

**शब्दार्थ**—रसिक-रस चाहने वाला जिज्ञासु। रस—परमतत्त्व। पियहुगे—पीओगे, प्राप्ति करोगे। जुग—बहुत काल तक, अनंत काल तक। फल—परमतत्त्व, आत्मतत्त्व। अलंक्रित—सजाया हुआ, अनेक प्रकार से जो भेष-भूषा से सुसज्जित किया जाय वह अलंकृत, सुन्दर। बीज—प्रजनन-शक्ति, बीज, वासना। बोकला-छिलका, माया, ऊपरी भाग का त्वचा। सुक—जिसको लोक में सुग्गा कहते हैं, तोता पक्षी—जिसकी जाति है शुकदेव जी। तहाँ—वहाँ। खाई—उपभोग किया, प्राप्त किया। चुवै—नीचे न गिरे। अंग-शरीर। भींजै—भींगे नहीं। दास—उपासक, प्रभु-भक्त। भौंर—भ्रमर जो कमल आदि पुष्पों का रस लेने जाता है, जिज्ञासु भक्त। लाई—लगाई। निगम—वेद, श्रुति। रिसाल—रसाल, आम। चार फल—अर्थ,

धर्म, काम, मोक्ष। लागे–फले। तामें–उसमें। तीनि–अर्थ, धर्म, काम, सत, रज, तम। समाई–समा गये, लोप हो गये।

**सम्बन्ध**—इसके पहले शब्द में कहा गया कि जो परमतत्त्व राम है, उसका जप करो और अन्त में यह कहा गया कि जो उक्त विषयक पद का अर्थ करेगा एवं उसके कथन कर विचार करेगा वह अपने भी तर जायेगा और दूसरे को भी तारेगा परन्तु नीचे वाले शब्द में कहते हैं कि केवल राम राम जपने से ही नहीं होगा, उसमें तन्मयता होना बहुत आवश्यक है।

**मूलार्थ**—अब सद्गुरु कहते हैं कि हे भाई! कोई सज्जन व कोई रामरस के रसिक प्रभु को चाहने वाले राम रूपी रस को पिओगे। क्या तेरी जिज्ञासा है रामरस पीने की। यदि तू उस परमानन्द स्वरूप रामरस को पीओगे तो युग-युगान्तर तक जीवित रहोगे। अर्थात् जो प्रभु सबकी आत्मा है, जो सबमें विराजमान है, जो देश काल परिस्थिति से परे है तो क्या उसकी प्राप्ति तू चाहते हो? यदि तू उसकी प्राप्ति कर लोगे तो निश्चित रूप से तुम अमर हो जाओगे। क्योंकि वह राम रूपी परम फल बहुत सुन्दर है। उसमें कोई फूहड़पन नहीं है, कोई उन्मादता नहीं है किसी प्रकार की दुर्गन्धी नहीं है। वह फल, बीज, बोकला से मुक्त है। अर्थात् आत्मज्ञान रूपी जो फल है, उसमें प्रजनन शक्ति अंकुर नहीं है। उसमें वासना नहीं है और अब राम स्वरूप जो है उसमें छिलका भी नहीं है। अर्थात् उस आत्मतत्त्व व आत्मज्ञान में पुनः जन्म लेने वाली बात भी नहीं है और न वहाँ पर माया का ही प्रभाव है। उस फल को शुकदेव जैसे शुद्ध अन्तःकरण वाला प्राप्त कर सकता है व उस रामरस का आस्वादन कर सकता है। शुक पक्षी में श्लेष है। जैसे शुक पक्षी बाहर से बहुत सुन्दर होता है, उसकी आकृति मनमोहक होती है तथा वह किसी प्रकार के कीड़े-मकोड़े को नहीं खाता। केवल फल और अन्न पर ही अपना जीवन निर्वाह करता है। इसी प्रकार से सुग्गा के समान जो भीतर-बाहर से शुद्ध होंगे, जो संसार की विषय-वासना नहीं खाते होंगे,

जिनका भोजन सत्य, शील, सन्तोष, हरिभजन और सतसंग है वही उस परमपद रूपी रस का पान कर सकते हैं। अन्य दूसरे कीड़े-मकोड़े खाने वाले पक्षी गण एवं विषयी पामर मनुष्यों का वहाँ पर पहुँचना व उस फल को पाना कठिन है। वह फल कैसा है कि उसके रस नीचे नहीं गिरते हैं। उसकी बूंदें अंग पर नहीं टपकती है और न बाह्य शरीर ही उससे भींगता है। अर्थात् उसका वीभत्स रूप नहीं है। वह पूर्ण रूप से अनुबंधित है। वह नुकसान को नहीं प्राप्त होता। उस फल की चाहना करने वाले भ्रमर के समान जो प्रभु भक्त हैं, जो हरिभक्त हैं, जो सत्संगी हैं, जो आत्मज्ञान को चाहने वाले हैं, अपने संग में उस परमतत्त्व को लगाये रखते हैं एवं स्वयं भी उसकी प्राप्ति के लिए लगे रहते हैं। अब कहते हैं कि वह परमपद रूपी फल एक ही है कि चार है और वह फलता कहाँ पर है तो कहते हैं कि आम रूपी वेद वृक्ष में चार फल लगे हैं, वे हैं—अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष। अर्थ उस फल को कहते हैं जो संसार का वैभव है। धर्म उस फल को कहते हैं जो प्रभु-प्राप्ति की जिज्ञासा और लोक-परलोक सुख के लिए जिससे लाभ मिले। इसी प्रकार से काम फल वह है जो सभी इच्छाओं की पूर्ति करे और मोक्ष फल वह है जिसको प्राप्तकर व खाकर मनुष्य जन्म-मरण से परे हो जाता है।

अब सद्गुरु कहते हैं कि जो मोक्षरूपी व राम रूपी परमपद को प्राप्त कर लेता है तब उसमें स्वतः अर्थ, धर्म, काम ये तीनों फल आ जाते हैं। अर्थात् राम की प्राप्ति होने पर जो जन्म-मरण से मनुष्य परे हो जाता है परन्तु इस लोक में भी उस प्रभु भक्त को अर्थ, धर्म, काम के भी फल मिलते रहते हैं।

**एक दूरि चाहै सभ कोई, जतन जतन काहु विरले पाई ॥**
**गैय बसंत ग्रिसम रितु आई, बहुरि न तरिवर तर आवै।**
**कहैं कबीर स्वामी सुख सागर, राम मगन होय सो पावै ॥**

**शब्दार्थ**—दूरि–कठिन, दुःसाध्य। एक–वह राम, परमतत्त्व। चाहै–इच्छा प्राप्ति की, चाहना। सभ–संसार के सभी मनुष्य। काहु–कोई।

गेय–बीते। बसंत–मानव तन, जवानी। ग्रिसम–त्रयताप युक्त, पशु आदि योनियाँ, वृद्धावस्था। रितु–ऋतु, समय, छः ऋतुओं में गर्मी का समय। बहुरि–पुनः। तरिवर–मानव तन, वेद, वृक्ष। तर–नीचे, छाया में, मनुष्य तन में। स्वामी–स्वामी, परमेश्वर। मगन–निमग्न, तन्मय।

**मूलार्थ**—परन्तु सद्‌गुरु कहते हैं कि वह चौथा एक फल जो परमपद है। इन तीन फलों से बहुत दूर है। तीन फलों की प्राप्ति तो सहज में हो जाती है, अर्थ, धर्म, काम लोक सहायता से भी मिल जाते हैं। अस्तु जो मोक्ष रूपी फल है, जिसको संसार के सभी लोग चाहते हैं, वह परमपद रूपी फल सहज में मिलने वाला नहीं है। उसके लिए शम, दम, श्रद्धा, उपासना, तितिक्षा, मुमुक्षता के साधन चाहिए एवं उस दूरी फल की प्राप्ति के लिए ये षट् सम्पतियाँ वहाँ पहुँचने के लिए सोपान हैं। जब तक साधक इन छः सम्पतियों का साधन नहीं करेगा, तब तक उसकी प्राप्ति नहीं होने वाली है। साथ ही उसकी प्राप्ति के लिए दया, धर्म, सात्त्विक दान, भद्र पुरुषों की सेवा, माता-पिता, गुरु एवं गुरुजनों की सेवा, परोपकार, मन, वच, काया से जो किसी को दुःख नहीं देता है, जो राग-द्वेष नहीं करता है जिसमें छल-छिद्र नहीं है, वही व्यक्ति यत्न से प्राप्त कर सकता है अर्थात् यत्न करते-करते कोई विरले मनुष्य उस परमपद रूपी फल को पाता है। सद्‌गुरु कहते हैं कि इस मानव जीवन में ही वह फल प्राप्त हो सकता है। यदि वसन्त स्वरूपी मानव तन चला जाएगा तो उसके पश्चात् ग्रीष्म स्वरूप जिसमें ताप अधिक होते हैं वे पशु आदि योनियों रूपी ग्रीष्म ऋतु आ जायेगी तब तेरे से कुछ होने जाने वाला नहीं है। यहाँ वसन्त और ग्रीष्म में जहद स्वार्था है। वसंत मानव तन को इसलिए कहा गया है कि वसंत में सभी प्रकार के मनुष्य सुखी रहते हैं न अधिक ताप होती है न अधिक ठंढक रहती है। समशीतोष्ण वातावरण रहता है। स्वाभाविक मानव वसंत ऋतु में प्रसन्न रहता है इसलिए यहाँ पर मानव तन को बसंत कह कर उल्लेख किया गया है क्योंकि मानव तन में ही चारों फलों की प्राप्ति

संभव है। अन्य योनियों को ग्रीष्म इसलिए कहा गया है कि उसमें जीव को शान्ति नहीं मिलती है। पशु आदि योनियाँ सदा परतंत्र रहती हैं, दूसरे के अधीन रहती हैं, सभी सुखों से वंचित हो जाती हैं। जिस प्रकार से ग्रीष्म ऋतु में सभी जीव क्लान्त रहते हैं, उसमें सुख का अनुभव नहीं करते। यदि अबकी तुम मानव शरीर छोड़कर चले जाओगे पुनः तुम वेद वृक्ष ज्ञान के नीचे नहीं आ सकते हो अर्थात् तब तुम चार फलों की प्राप्ति नहीं कर सकते। मैं कबीर कहता हूँ कि वह स्वामी परम प्रभु सुख का सागर है। उसके सुख का अन्त होने वाला नहीं है परन्तु उस सुख सागर की प्राप्ति तभी होगी, जब व्यक्ति राम नाम में मग्न हो जाएगा। अर्थात् परमतत्त्व में तन्मयता से जुट जाएगा, उसी को लाभ हो सकता है अन्य को नहीं।

**आशय**—सद्गुरु कबीर अपने उपदेश के संदर्भ में लोगों से कहते हैं कि हे भाई ! यदि आप लोग रामरस के रसिक हो। यदि उसको पीना चाहते हों तो निश्चय तू अमर हो जाओगे। वह एक सुन्दर फल के समान है। उसके पीने से पुनः जन्म की आशा नहीं रहती है न माया ही कुछ कर सकती है। प्रमाण स्वरूप शुकदेव मुनि जी उस परम फल को खा चुके हैं। उस परमपद में क्षरण नहीं होता है एवं उसका नाश नहीं होता है। उसकी प्राप्ति जिन सन्त, भक्त, महात्माओं को हो गयी है। वे भ्रमर की भाँति उसमें लगे रहते हैं। वह फल वेद रूपी आत्मा में है जिसकी प्राप्ति से अर्थ, धर्म आदि भी प्राप्त हो जाते हैं परन्तु चौथा फल बहुत दुःसाध्य है, जिसकी चाहना सब करते हैं परन्तु भक्ति से ही कोई एकाध को मिल जाता है। वह मानव जीवन में ही प्राप्त हो सकता है। अन्य पशु आदि योनियों में प्राप्त होना संभव नहीं है। यदि मानव तन में उसकी प्राप्ति नहीं हुई तो दूसरी योनि वाले पुनः वेद वृक्ष के नीचे उसके फल खाने के लिए आ नहीं सकते। वह प्रभु रूपी फल आनन्द का समुद्र है। जो भगवान में अनुरक्त रहता है। वही उस फल का

अधिकारी होता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि उस एक फल को प्राप्ति के लिए श्री रामनाम का जप करें।

## सबद् २१

### दुर्भाग्य प्रकरण

**राम न रमसि कवन डंड लागा, मरि जैबे का करबे अभागा ॥**
**कोई तीरथ कोई मुंडित केसा, पाखंड मंत्र भरम उपदेसा ॥**
**विद्या वेद पढ़ि करै हंकारा, अंत काल मुख फांकै छारा ॥**
**दुखित सुखित होइ कुटुम जेवांवें, मरन बार अकसर दुख पावैं ॥**
**कहैं कबीर यह कलि है खोटी, जो रहै करवा सो निकरै टोंटी ॥**

**शब्दार्थ**—रमसि–रमता, रमण क्यों नहीं करता, सुमिरन, भजन। कवन–कौन, क्या। डंड–अपराध, रोक–रुकावट। लागा–लगा। जैबे–जायेगा। करबे–करेगा। मुंडित–मुंड़, मुड़ाया हुआ। केसा–केसु, बाल। भरम–भ्रमि, अज्ञानयुक्त। विद्या–अपरा विद्या। हंकारा–अभिमान। अन्त काल–मरण समय, वृद्धावस्था में। फांके–खावै। छारा–धूलि। जेवांवें–खिलावे। अकसर–प्रायः, केवल, अकेला। कलि–कलियुग। खोटी–नीची, अपूर्ण। करवा-जलपात्र, विशेष लोटा। टोंटी–जल गिरने की नली, मुसलमानों का बधना।

**सम्बन्ध**—इसके पहले 'सबद' में यह कहा गया है कि जो रामरस पीता है, वह अमर हो जाता है परन्तु वह राम रस दुर्लभ है। जतन-जतन से कोई बिरला पुरुष ही उसे पा सकता है और वह मानव तन में ही मिल सकता है। साथ ही सुख का सागर भी बताया गया है परन्तु उसकी प्राप्ति तभी संभव बतायी गयी है जब उसको निष्ठापूर्वक भजा जायेगा अर्थात् हृदयस्थ राम को प्रेमपूर्वक जो व्यक्ति भजेगा, उसको राम की प्राप्ति हो जाएगी।

**मूलार्थ**—अब सद्गुरु कहते हैं कि हे भाग्यहीन मनुष्य! ऐसे परम-

प्रभु राम में क्यों नहीं रमण कर रहा है वह तो इसी मानव तन में मिलने वाला था। भला तुझे किस अपराध का दंड लगा है जो तू प्रभु की ओर उन्मुख नहीं होता है ? उसके भजन से तुझे कोई रोकने वाला नहीं है। तू तो भजन करने में स्वतः स्वतंत्र हो। यदि इस मानव जीवन में नहीं भजोगे, तो कब भजोगे ? कब उस प्रभु की प्राप्ति करोगे ? हे अभागे मनुष्य ! भला तू जब मर जाएगा, नर तन से अलग हो जाएगा, कोड़े-मकोड़ो की योनियों में जाएगा, तब तू क्या कर सकेगा ? वहाँ तो तुझे कुछ शुभाशुभ का ज्ञान भी नहीं रहेगा। सद्‌गुरु की यह बात सुनकर वह कुछ भी उत्तर नहीं देता है। सद्‌गुरु कहते हैं कि उस राम को कोई चाहने वाला नहीं है प्रत्युत संसार के सभी मनुष्य उससे विरत हैं उनमें से कोई-कोई कुछ उस प्रभु की प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है तो वह घर से निकल पड़ता है, तीर्थ करने चल पड़ता है। सोचता है तीर्थों में ही प्रभु रहता है। इसी प्रकार से संसार के मनुष्यों में से कोई मूड़ मूड़ाकर संन्यासी हो जाता है, साधु हो जाता है और अनेक तीर्थों में प्रभु-प्राप्ति के लिए भ्रमण करता है, जो सच्चा मार्ग प्रभु-प्राप्ति के लिए था, उसको नहीं अपनाता है क्योंकि पाखण्डी सकाम कर्मी उपदेशकों के द्वारा उसको भ्रमयुक्त मंत्र कहिए, उपदेश मिला है, जो स्वयं सच्चे रास्ते पर नहीं हैं, जो पाखण्ड करके एवं दम्भ करके समाज में अपने को सही साबित करने के लिए गलत बयानबाजी करते रहते हैं, अधिक लोग उन्हीं के उपदेशों को सुनकर तीर्थ, व्रत में भ्रमण करते रहते हैं। इसी प्रकार से कुछ लोग वेद-विद्या को पढ़कर बहुत बड़ा अहंकार करते हैं और कहते हैं कि हम वेद को जानते हैं परन्तु वेद के रहस्य को नहीं समझ पाते, इसलिए मरणकाल में उन्हें केवल माया का ही दर्शन होता है अर्थात् वेद-ज्ञान के सच्चे रहस्य को जानकर जो आत्मज्ञान व प्रभु-भक्ति नहीं प्राप्त कर सका, जो राम में रमण नहीं कर सका, वह वृद्धावस्था में निराश हो जाता है और निराशा रूपी 'छार' कहिए धूल उसके मन मस्तिष्क में पड़ जाती है। सद्‌गुरु कहते हैं कि इनमें से यदि कोई बहुत

कुछ साहस करता है तो दुःखित होने पर बहुत प्रसन्न होने पर भोज-भण्डारा करके अपने स्वजातीय एवं कुटुम्बियों को खिला देता है अर्थात् मरणोपरान्त तेरही के दिन ब्राह्मण आदि को खिला देता है और जन्मकाल में सुखी होकर बरही के दिन बहुत उत्सव करके परिवार वालों को तथा साथी-संगी को खिला देता है। इसी में अपनी मुक्ति मान लेता है परन्तु उक्त खिलाने-पिलाने से अज्ञान दूर होने वाला नहीं है, न दुःख दूर होने वाला है। जब मनुष्य का अज्ञान नहीं दूर होता है तो वह निश्चित मरणकाल में प्रायः दुःख को पाता है। अज्ञान के कारण संसार का सम्बन्ध नहीं छूटता, माया-मोह घेरे रहता है। मरना नहीं चाहता है। वह संसार में रहना चाहता है। यमदूत यमलोक में ले जाना चाहते हैं। इसी खींचातानी में पापी मनुष्य अधर में लटका रहता है। मैं कबीर यह निश्चित रूप से कहता हूँ कि यह वर्तमान समय के लोग अर्थात् कलि के लोग बहुत खोटे हैं, छली हैं, धूर्त हैं, वे सही आचरण नहीं करते। सच्चे हृदय से सन्त महात्माओं की बात नहीं मानते एवं भद्र पुरुषों की संगति नहीं करते। इसलिए उनके अन्तःपुर रूपी जलपात्र में जो भला-बुरा रहेगा, वही मुख रूप टोंटी के द्वारा बाहर आयेगा। तात्पर्य यह है कि मनुष्य जैसा शुभाशुभ कर्म करेगा, उसी प्रकार से उसे सुख-दुःख की भी प्राप्ति होगी। अच्छा करेगा, सुख पायेगा, बुरा करेगा, दुःख पायेगा।

**आशय**—वास्तव में यह मानव अभाग्यवश परमार्थ कर्म नहीं करता। सोचता है कि वृद्धावस्था में कर लेंगे परन्तु मरणोपरान्त क्या करेगा? वृद्धावस्था में सोचता है तीर्थ कर लेंगे। मूंड़ मुड़ाकर चौथे अवस्था में संन्यासी हो जाएँगे फिर मुक्त हो जायेंगे परन्तु उक्त प्रकार का उपदेश व मंत्र पाखण्डियों द्वारा फैलाया गया है क्योंकि मुक्ति तो मनुष्य जीते जी प्राप्त करता है। जो जीवित जीवन में मुक्ति नहीं प्राप्त कर लिया है वह चाहे कितना भी वेदशास्त्र पढ़ कर अहंकार करे, पर कुछ हाथ लगने वाला नहीं है। जो भला परोपकार स्वरूप पुण्य नहीं

करता है। प्रभु भजन रूपी पुण्य नहीं करता है तो जन्म एवं मरणकाल में परिवार को खिलाने से क्या होगा ? आत्मज्ञान न होने के कारण प्रायः मृत्यु के समय घोर यातना होती है परन्तु सब कुछ होने पर भी इस कलह युक्त कलियुग में कोई चेतने वाला नहीं दीखता। इसलिए जो जैसा करता है, उसे वैसे ही फल की प्राप्ति होती है।

सद्गुरु कहते हैं कि हे भाई ! सब छल छिद्र छोड़कर प्रभु के चरण में रम जाओ।

## सबद् २२

### निर्गुण प्रकरण

**अवधू छाड़हू मन बिस्तारा।**
**सो पद गहो जाहि ते सद्गति, पारब्रह्म सो न्यारा॥**
**नहीं महादेव नहीं मुहम्मद, हरि हजरत किछू नाहीं।**
**आदम ब्रह्मा किछुवो नहिं होते, नहीं धूप नहिं छांहीं॥**

**शब्दार्थ**—अवधू-वधू या स्त्री रहित, विरक्त महात्मा। छाड़हु-छाड़िए। बिस्तारा-विस्तार करना, संसार का भोग-विलास, मान-सम्मान। सो-वह। पद-पद, अच् मिलकर पद होता है, जिसका अर्थ होता है चतुर्थ भाग, चौथाई हिस्सा, दूसरा अर्थ स्थान, संस्कृत कोश में इसका अर्थ बहुत है। गहो-ग्रहण करो। जाहि-जिससे। सद्गति-मोक्ष पद, निर्वाण। पारब्रह्म-परब्रह्म, निगुर्णब्रह्म। सो-वह। न्यारा-पृथक, रहित। हरि-हृ-इन् होकर हरि होता है जिसका अर्थ होता है-हरा, भूरा, पीला, बादामी (प्र०) में विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, यम, सूर्य, चन्द्रमा, कृष्ण, मानव, किरण, शिव, अग्नि, वायु, सिंह, घोड़ा, बानर, आदि बहुत से अर्थ हरि के हैं जो कोश ग्रन्थों में लिखा है। हजरत-महापुरुष व बड़े पुरुषों की सम्मान जनक उपाधि, सत्पुरुष। नाहीं-नहीं। मुहम्मद जिन पर कुरानशरीफ उतरा है। आदम-मुसलमान, यहूदी धर्म के अनुसार सृष्टि का मूल पुरुष। ब्रह्मा-हिन्दुओं के विश्वास के अनुसार सृष्टि का मूल पुरुष। किछुवो-कुछ भी। धूप-घाम, तेज। छांहीं-छाया आवरण, माया, रात्रि।

**सम्बन्ध**—इसके पहले सद्गुरु ने कहा कि हे मनुष्यों ! प्रभु के चरण में क्यों नहीं रम जाता है। यदि तू प्रभु के चरणों में नहीं लगेगा तो मरण काल में घोर दुख पायेगा। क्योंकि जो कुछ मनुष्य करता है उन्हीं कर्मों का फल भी पाता है। अब कहते हैं कि तेरी भलाई इसी में है कि तू संसार की मोह माया से विरत होकर श्रीहरि की शरण ले। जो सबसे विलक्षण है। जिसके विषय में कुछ कहना कठिन है। अब नीचे हरि के स्वरूप का कथन किया जा रहा है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे माया मोह से रहित विरक्त महात्मा-जन ! आप तो अवधूत है। आप का बड़ा महत्त्व है। इसलिए आपको स्वयं पहले चेतना चाहिए। आप को चाहिए कि मन के सारे विस्तार को त्याग दें। आप जो वेद विद्या एवं शास्त्र विद्या पढ़े हैं और अभी इसी में लगे हुए हैं, जिसके चलते मान-सम्मान का बुखार चढ़ा रहता है। अन्य एक देशी व विभिन्न देवादिकों की उपासना में जो मन को लगाए हैं उधर से भी मन को खींचिए तथा जो इधर से उधर एवं 'इदं तीर्थं मीदं तीर्थं' में जो मन लगा हुआ है, उसका भी त्याग करिए, आप उस परमपद को ग्रहण कीजिए, उस स्थान को ग्रहण कीजिए अर्थात् उस सत्ता का चिन्तन कीजिए जिससे परम निर्वाण पद एवं सद्गति मिलती है परन्तु वह परमपद, परब्रह्म, अचिन्त सत्ता, जिसकी प्राप्ति से भव-बधन छूट जाता है, वह सबसे न्यारा है अर्थात् वह नामरूप से पृथक है उस प्रभु का न अल्लाह नाम है, न उसके दूत का नाम मु० पैगम्बर ही है।

हरि संज्ञा भी उस परमेश्वर की बाद में कल्पित की गयी है। इसी प्रकार से हजरत अर्थात् श्रेष्ठत्व भी उसमें बाद में जोड़ा गया है। इसलिए वह हरि व हजरत नामवाला भी नहीं है और न वह हिन्दू मुसलमानों के विश्वास के अनुसार सृष्टि का मूल पुरुष ब्रह्मा व आदम ही है। इनसे भी वह परे है क्योंकि जब वह था, तब आदम एवं ब्रह्मा की सत्ता नहीं थी अर्थात् वे सत्ता में नहीं आये थे, इसी प्रकार से वह समसत्ता प्रकाश एवं अंधकार से भी परे है, क्योंकि प्रकाश एवं अंधकार एक दूसरे का विरोधी

है' और उसमें न रात है, न दिन है 'छांही' का अर्थ यदि शीतलता तथा धूप का अर्थ यदि गर्मी लिया जाय तो यह भी उसमें नहीं बनेगा। क्योंकि धूप-छाँह का प्रभाव समान लोगों पर होता है। वह प्रभु इन सबों से प्रभावित होने वाला नहीं है और उसमें रात-दिन का भेद भी नहीं है।

**असीआसै पैगम्बर नहिं होते, सहस अठासी मूनी।**
**चन्द सूरज तारागन नाहीं, मच्छ कच्छ नहिं दूनी॥**
**वेद किताब सुम्रित नहिं संजम, नहिं जीवन परछाहीं।**
**बंग निमाज कलिमा नहिं होते, रामहुं नाहिं खोदाई॥**

**शब्दार्थ**—असी आसै–अस्सी हजार व अस्सी सौ। पैगम्बर–देवदूत। सहस–सहस्र। मूनी–मुनि। दूनी–दो, दुनियाँ, संसार। कितेब–किताब, कुरान। सुम्रित–स्मृति, धर्म ग्रन्थ। संजम–नियम, आचार, शुद्ध व्यवहार। जीवन–जोव। परछाहीं–अस्तित्व, छाया, झलक। बंग–जोरों की आवाज। निमाज–पाँच बार की प्रार्थना। कलिमा–कलमा, वाक्य जो मुस्लिम धर्म में एक मंत्र है, जिनकी संख्या पाँच है, जिनको इस्लाम धर्म के मानने वाले पाँच बार प्रार्थना के रूप में करते हैं। रामहुँ–राम भी, रम्–घञ् से राम की निष्पत्ति होती है। परशुराम, बलराम, दाशरथीय राम, वरुण, ईश्वर, प्रेमो, घोड़ा, तीन को संख्या, बथुआ साग, अशोक वृक्ष। नाहिं–नहीं। खोदाई–खुदा, ईश्वर।

**मूलार्थ**—इसी प्रकार से वह परमेश्वर मुस्लिमों के विश्वास के अनुसार अस्सी हजार पैगम्बरों में से भी नहीं है अर्थात् वह परमेश्वर जब था तब पैगम्बरों का भी अस्तित्व नहीं था। इसी प्रकार से हिन्दू शास्त्रों के विश्वास के अनुसार परमेश्वर के समक्ष अठासी हजार मुनियों का भी अस्तित्व नहीं था, क्योंकि सबसे पुराना वही है। इस प्रकार का उल्लेख कठ, केन, वृहदारण्यक, छान्दोग्य, श्वेताश्वतर आदि उपनिषदों में विस्तार पूर्वक लिखा गया है। इसी प्रकार से सद्गुरु कहते हैं कि जब उस जगत गुरु का अस्तित्व था तब न तो चन्द्रमा रात्याभिमानी देवता था और इसी

प्रकार से दिवाभिमानी सूर्य भी नहीं था। उस प्रभु की स्थिति में तारागण कहिए नक्षत्रों का समूह भी नहीं था। इसी प्रकार से उस प्रभु के समक्ष प्रथम मत्स्यावतार व कच्छप अवतार ये दोनों भी नहीं थे, अर्थात् उस परमेश्वर में मत्स्य एवं कच्छप नाम की संज्ञा भी कल्पित है। इसी प्रकार से उस प्रभु के अस्तित्व काल में न तो वेदों का कहीं नाम था, न कुरान शरीफ का ही अस्तित्व था, और न अन्य पुस्तकों का ही भाव था। उस समय हिन्दुओं के भी धर्मशास्त्र नहीं थे। इसी प्रकार से जब मानव अस्तित्व में आया ही नहीं था, तब संयम, आचार एवं पवित्रता कहाँ से आ जाती, इसलिए उस समय संयम का भी अभाव था। संयम में व्यंजना है। संयम तब होता है जब असंयम हो। प्रभु तो स्वयं संयम स्वरूप है, वह नियंत्रित है इन्द्रियहीन है। तब संयम किसके लिए रहता? इसलिए उस काल में संयम का भी अभाव था। उस परमेश्वर के अस्तित्वकाल में यह समष्टि रूप सृष्टि की, झलक भी नहीं थी, और न जीवन के वर्गीकरण के ही लक्षण थे और न वर्गीकरण का आभास ही था। जब प्रभु के काल में सृष्टि ही नहीं थी, तब बांग देने वाला, निमाज पढ़ने वाला एवं कलमा पढ़ने वाला कहाँ से हो जाते अर्थात् परब्रह्म के अस्तित्व काल में बंग, नमाज और कलमा भी नहीं थे। इसी प्रकार से मानव के अभाव में उस समय परमेश्वर का नाम राम भी नहीं था और न खुदा नाम ही उस समय कोई रखने वाला था। अपने अस्तित्व काल में वह इन संज्ञाओं से मुक्त था।

**आदि अंत मन मध्य न होते, आतस पवन न पानी।**
**लव चौरासी जीउ जन्तु नहि, साखी सब्द न बानी॥**
**कहैं कबीर सुनो हो अवधू, आगे करहु बिचारा।**
**पूरन ब्रह्म कहां ते परगटे, किरतम किन उपराजा॥**

**शब्दार्थ**—आदि–आरम्भ। अन्त–अवसान। मध्य–दोनों के बीच का अर्थात् अन्तरिक्ष। मन–चिन्तन शक्ति। आतस–अग्नि। पवन–वायु। पानी–जल। लख चौरासी–अनेक योनियाँ। जीउ–मनुष्य, जन्तु, पशु-

पक्षी, कीट पतंग आदि। साखी–साक्षी, श्लोक, दोहे, छन्द। सब्द–शब्द, व्याकरण आदि गेय पद व शब्द ब्रह्म। बानो–वाणी, सरस्वती, वक्तव्य, प्रवचन। आगे–अग्रिम। विचारा–विवेक। किरतम–कृत्रिम। किन–कौन। उपराजा–उत्पन्न किया।

**मूलार्थ**—उपरोक्त प्रकार से ही जब प्रभु असीमित है, उसकी सीमा नहीं है तो उसका आरम्भ कहाँ से होगा और उसमें आदि का आरोप कहाँ से होगा। जब उसकी सीमा नहीं तो आरम्भ और अवसान कहा से होगा ? वह स्वयं चेता है। जो मनो का मन है तो उसमें मन कहाँ से होगा ? इसी प्रकार से उसमें बीच का आरोपण करना भी दाष होगा क्योंकि मध्य तो किसी अन्त वाली वस्तु का होता है। तात्पर्य यह है कि उस प्रभु के अस्तित्वकाल में न सृष्टि का आदि था, न अन्त, न मध्य था और न मनन करने वाला मन ही था। अर्थात् न आकाश अस्तित्व में आया था न पाताल अस्तित्व में आया था, न अन्तरिक्ष ही अस्तित्व में आया था, न सबका चक्कर लगाने वाला मन ही था। इसी प्रकार से प्रभु के अस्तित्व काल में न अग्नि थी, न वायु थो, न जल था, न लख-चौरासी योनि ही निर्मित हुई थी, न उसमें निवास करने वाले कोई जीव-जन्तु ही आये हुए थे अर्थात् उस समय पंच महाभूतों का भो अस्तित्व नहीं था। इस प्रकार का उल्लेख ऋग्वेद के दशम मण्डल के नासदीय सूक्त में भी हुआ है और उस प्रभु के अस्तित्व काल में साखी स्वरूप गाने वाले सुन्दर छन्द एवं प्रभु के गाने के लिए गीत भी नहीं थे और वाक्यों को सुनि-योजन करने के लिए व्याकरण शास्त्र भी नहीं बना था और न तो ज्ञान-वर्द्धन करने वाली महाविद्या सरस्वती ही उत्पन्न हुई थो अर्थात् जब प्राणियों का अभाव ही था, भूत, भौतिक सृष्टि ही नहीं थी तब ए बानी वचन कहाँ से आ जाते ? मैं कबीर कहता हूँ कि हे अवधूजी मेरी बात को श्रवण कीजिए और श्रवण करके उपरोक्त कथानकों से आगे विचार कीजिए एवं विवेक करके देखिए कि वह परब्रह्म, वह पूरणब्रह्म, जो कहीं आने-जाने वाला नहीं है जो सब तरह से पूर्ण है जो सृष्टि के विस्तार से

बहुत अधिक विस्तार वाला है, जिसके एक अंश में सारा ब्रह्माण्ड है, कहो वह कहाँ से प्रकट होने वाला है अर्थात् उपरोक्त संज्ञाओं वाला कैसे उसको मान लिए ? यह किरतम कहिए, बनावटी बात किसने उत्पन्न किया अर्थात् जिन नाम रूपों को आप समाज के सामने बहुत बखान कर रहे हैं, उपदेश दे रहे हैं क्या उन्हीं नाम रूपों वाला परमेश्वर है ? मैं तो कहता हूँ इन सबसे वह परे है।

**आशय**—कबीर साहब कहते हैं कि हे साधू, संतों, हे अवधूतों मन के सारे फैलाव एवं आसक्तियों का त्याग कीजिए। उस स्थान का चिंतन करिए जिससे परमपद की प्राप्ति होती है परन्तु वह निर्वाण पद स्वरूप परब्रह्म नाम रूपों से परे है। वह पूर्ण है। उसका कोई नाम रूप नहीं है, उसमें नाम रूप की कल्पना की गयी है। वह केवल यही कहा जा सकता है। आज जो भी नाम रूप आप देख रहे हैं, चाहे वह महादेव हों, चाहे मुहम्मद हों, चाहे हरि हों, चाहे वह हजरत हों, चाहे वह आदम हों, चाहे वह ब्रह्मा हों, चाहे वह धूप हों, चाहे वह शान्ति शीतल हो, चाहे अस्सी हजार पैगम्बर या अठासी हजार मुनि हों, चाहे वह चन्द्रमा हों, चाहे वह सूर्य हों, चाहे नक्षत्रों का समूह हों, चाहे वे मत्स्य, कच्छप दोनों हों। वेद, पुराण, हदीस, स्मृतिग्रन्थ, तीर्थ, आचार, संयम ये एक भी उसके नाम रूप नहीं हैं। वह सबसे भिन्न है, सबसे परे है। वह पंचमहा-भूतों की सृष्टि से पुराना है अर्थात् उसकी समकक्षता किसी दूसरे में नहीं है वह सभी प्रकार से पूर्ण है, वह ब्रह्म है। जब वह सब स्थानों में है तो कहीं प्रकट होने का प्रश्न ही नहीं है, जो प्रकट होता है और छिप जाता है, वे सब कृत्रिम बातें हैं, जिनको संसार के मनुष्यों ने अपने मन से उत्पन्न किया है।

# सबद २३

## अहैतुकी दया एवं सामर्थ्य प्रकरण

अवधू कुदरत की गति न्यारी ।
रंक निवाज करै वै राजा, भूपति करै भिखारी ।।
याते लौंग हरफ नहिं लागै, चन्दन फूल न फूला ।
मच्छ सिकारी रमै जंगल में, सिंघ समुद्रहिं झूला ।।
रेंड़ रूख भये मलयागिर, चहुँदिसि फूटी बासा ।
तीन लोक ब्रह्माण्ड खण्ड में, अंधरा देखै तमासा ।।

**शब्दार्थ**—कुदरत–कुद्रत, ईश्वर, ईश्वर की महिमा। गति–चाल, भेद, रहस्य। न्यारी–भिन्न, विलक्षण। रंक–अकिंचन, गरीब। निवाज–निवारण, दूर, हटकर, अनुग्रह। राजा–सम्राट। भूपति–सम्राट को। भिखारी–अदना, याचक। याते–इसलिए, जिसके कारण। लौंग–एक प्रकार का मसाला जो सब्जी आदि में हल्दी के साथ पीसकर डाला जाता है। हरफ–हर्फ, अक्षर, वरण, बात, शब्द, दोष, फल, यद्यपि, हर्फ का एक ही अर्थ सब जगह अक्षर है पुरानी से पुरानी पोथियों में सब जगह हर्फ हो पाठ मिला है। कुछ छपी पोथियों में फल अर्थ मिलता है। लागै–फलै। चन्दन–जो घिसकर पूजा आदि काम में लाया जाता है। फूला–फूल, पुष्प। मच्छ–मछली, मत्यसरी। सिकारी–आखेटक। रमै–घूमै, बिचरै। जंगल–आरण्य। समुद्रहिं–समुद्र में। झूला–लटका, निवास। रेंड–एरण्ड। रूख–वृक्ष। भये–हुए। फूटी–स्फुटित। वासा–सुगन्ध, वास। तीन लोक–मृत्युलोक, पाताललोक, स्वर्गलोक। ब्रह्माण्ड-खण्ड–२१ भागों में। अंधरा–चक्षुहीन, अंधा। तमासा–कौतुहल, आश्चर्य।

**सम्बन्ध**—पूर्वपद में कहा गया कि मन का भरमना छोड़ देना चाहिए और वास्तविक तत्त्व का चिन्तन करना चाहिए। जिसके समान दूसरा

---

१. फर-फल।

नहीं है। वह अप्रतिम है, उसको कोई उत्पन्न करने वाला नहीं है। वह बड़ी महिमा वाला है, दयालु है, एवं समर्थ पुरुष है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे अवधूत ; विमल बुद्धिवाले महात्मा! उस जगत गुरु की एवं परमसत्ता की महिमा विचित्र है, अकथनीय है। उसकी महिमा के विषय में किसी को जानकारी नहीं है, वह क्या करेगा और क्या करना चाहता है ? यह बात किसी को पता नहीं है और उसका कोई सलाहकार भी नहीं है जिसकी बात मानकर चले। वह स्वयं सर्वेसर्वा है और अपना मन्त्रदाता भी वही है। वह कुछ करने के लिए किसी से मन्त्रणा नहीं करता है। वह सर्वं समर्थ जगद्गुरु दया से अभिभूत होकर अनाथों की प्रार्थना पर उनकी गरीबी को दूर कर उन्हें सम्राट बना देता है अर्थात् सबसे ऊपर बना देता है और अभिमान होने पर बड़े-बड़े भूपति सम्राटों को याचक बना देता है। इसलिए हे अवधूत ! उसकी महिमा तो देखो। उसकी महिमा बड़ी विचित्र है। देखा लौंग में फल नहीं लगते हैं। उसके पुष्प में ही प्रजनन शक्ति कर दिया है परन्तु उसको कोई दोषी भी नहीं कहता है कि ऐसा क्यों उलटा सीधा किया है और भी उसकी विचित्रता देखो कि सभी वृक्ष एवं पौधों के फूलों में सुगन्ध होती है परन्तु चन्दन नामक वृक्ष को उसके पेड़ पौधे सबको सुगन्धित कर दिया है। सभी से अच्छी बास आतो है। वह महामहिम अनहोनो बात को करने वाला है। वह चाहे तो समुद्र में, रहने वाली मछली जंगल में, घूमकर शिकार करने लग जावे और जंगल में रहने वाले सिंह को चाहे तो समुद्र में निवास दे देवे अर्थात् उसकी कृपा से मछली के समान महा निर्बल प्राणी भी संसार रूपी वन में निर्भय होकर विचरण करने लगे और महा शक्तिशाली सिंह जो किसी से भय नहीं खाता उसको इतना डरपोक बना दे कि वह मछली की भाँति समुद्र में घुस कर रहने की इच्छा बना ले। इसी प्रकार से वह महिमामान एरण्ड का जो रसहीन है, जो जलावन के काम में आता है, वह भी उस महिमामण्डित की कृपा से मलयागिरि हो सकता है तथा संसार

में सम्मान का पात्र हो सकता है और चारों दिशाओं में उसकी सुगन्धि फैल जाती है अर्थात् वह जगद्गुरु चाहे तो हृदयहीन मनुष्य को महान बना सकता है, संसार का नेता बना सकता है, सुशील बना सकता है, महात्मा बुद्ध और ईसा बना सकता है। कैसा भी निम्न पुरुष हो उस प्रभु की उपासना से महान से महान बन सकता है। इस प्रकार से जिसको नेत्र नहीं है, जो नेत्रहीन है, जिसको ज्ञान चक्षु नहीं है, उस परम प्रभु की उपासना करके महाज्ञानी हो सकता है, बहुत देखने वाला हो जाता है। वह पाताल से लेकर मृत्युलोक तक एवं इक्कीस ब्रह्माण्ड तक के सभी कौतुहल को देखने लगता है। तात्पर्य यह है कि जिसको वह प्रभु चाहता है, कर्मानुसार उसको वैसे ही बना देता है।

**पंगा मेर सुमेर उलंघै, त्रिभुवन मुकुता डोलै।**
**गूंगा ग्यान विग्यान प्रगासै, अनहद बानी बोलै॥**
**अकासहिं बांधि पतालहि पठवै, सेस सरग पर राजै।**
**कहैं कबीर राम है राजा, जो किछु करै सो छाजै॥**

**शब्दार्थ**—पंगा–पंगु, लंगड़ा, चलने में असमर्थ। मेर–रीढ़, मेरुदण्ड, सबसे ऊँचा। सुमेर–गिरि, हिमालय की सबसे ऊँची चोटी। उलंघै–उलंघन, पार कर जाय, चढ़। त्रिभुवन–तीनों लोक। मुकुता–मुक्त, स्वतंत्र, मुक्तामणि। डोलै–घूमे। गूंगा–कण्ठहीन। प्रगासै–प्रकाश करै। अनहद–अनवरत। बानी–वचन, वाक्य। बोलै–वक्तव्य दे। अकासहिं–आकाश निवासी सूर्य। बांधि–बांधकर। पतालहि–पाताल में। पठवै–भेजे। सेस–शेषनाग। सरग–स्वर्ग, आकाश। राजै–विराजै। राजा–सर्व समर्थ। छाजै–शोभा दे।

**मूलार्थ**—इसी प्रकार से वह जगन्नाथ जो नाथों का नाथ है। जगन्नियन्ता चाहे तो उस अशक्त मनुष्य को जो पंगु है, जिसको चलने की शक्ति नहीं है मेरू कहिए जो सबसे ऊँचा पर्वतों को रीढ़ व भूमि की रीढ़ सुमेरु पर्वत है, उस पर उस लगड़े को चढ़ा दे अर्थात् उससे उसको उस पार कर दे और उसको कृपा से उस पंगु में इतनी शक्ति आ जाती

है कि वह स्वतंत्र तीनों लोकों का भ्रमण करने लग जाता है, अर्थात् वह महाशक्तिशाली होकर तीनों लोकों पर शासन करने लगता है अर्थात् उसकी धाक तीनों लोकों में फैल जाती है। इसी प्रकार से वह जगदीश्वर कण्ठहीन व्यक्ति को इतनी कण्ठ शक्ति दे दे कि वह ज्ञान असामान्य ज्ञान संसार का ज्ञान अर्थात् संसार की सभी कलाओं को जानने वाला बना दे, इसी प्रकार से उस प्रभु के चाहने पर ज्ञानहीन विज्ञान का प्रकाशक हो जाता है अर्थात् उसके अन्दर से विशेष ज्ञान विकसित हो जाता है। वह आत्मा परमात्मा की बात करने लग जाता है और वह अनवरत वाणी बोलने लगता है। उसके कण्ठ पर सरस्वती विराजमान हो जाती है। वह जगत स्वामी चाहे तो आकाश के निवासी सूर्य को पकड़कर पाताल में भेज सकता है और पाताल में रहने वाले शेषनाग को आकाश में स्थित कर सकता है। मैं कबीर कहता हूँ कि वह मेरा राम जो जगत का कारण है, कारणों का कारण है। वह सबका राजा है, सबका स्वामी है, सर्व समर्थ है। वह जो भी कुछ करे उसी को शोभा देता है। उसके अच्छे बुरे पर किसी की निषेधाज्ञा नहीं है और न उस पर कोई मुकदमा ही चला सकता है। वह सर्वोच्च सत्तावाला है। मनुष्यों को चाहिए कि उसी का भजन सुमिरन करें।

तुलनात्मक—चरन कमल बंदों हरिराइ।

जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे को सब कुछ दरसाई॥
बहिरौ सुनै गुंग पुनि बोलें, रंक चलै सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुणामय, बार-बार बंदौ तिहि पाई॥

सूरदास—सूरसागर

मूक होई बाचाल, पंगु चढ़ै गिरिवर गहन।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवौ सकल कलिमल दहन॥

तुलसीदास

**आशय**—वह समर्थ पुरुष अहेतुकी दया वाला है। उसकी गति कोई जानता नहीं और साथ ही सामर्थ्यवाला भी है। यहाँ परमेश्वर को ही सबसे बड़ा शक्ति शाली माना गया है क्योंकि अनहोनी बातों को

वही करता है। प्रकृति में क्या घटनाएँ घटने वाली हैं, क्यों घटती हैं। इनके कारण क्या हैं ? आज तक कोई भी वैज्ञानिक नहीं बता सका कि कब क्या होने वाला है और कौन करता है ? सद्गुरु कबीर ब्रह्माण्ड की रचनाओं को देखकर एवं ब्रह्माण्डीय घटनाओं को देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं और सबको वे अमानवीय बतलाते हैं। उपर्युक्त कथानकों का आशय भी यही है, जैसे रंक, राजा, भिखारी, भूपति, लौंग, चन्दन, मत्स्य, सिंह, समुद्र, जंगल, रेड़, मलयागिरि, अंधा, गूंगा, पंगु, सुमेर, आकाश, पाताल आदि की बातें जो दिखायी गयी हैं और उनमें जो उलट-फेर दिखाया गया है वे सब संभव है और आज भी इस प्रकार की बहुत सी घटनाएँ घट रही हैं।

**टिप्पणी**—कुछ टीकाकार उक्त पद का यौगिक अर्थ किए हैं परन्तु यहाँ पर योग का कोई सम्बन्ध नहीं होने से खींचतान नहीं किया गया। उक्त पद में परमेश्वर की केवल महत्ता दिखायी गयी है।

## सबद २४

### सहस्रार योग प्रकरण

**अवधू सो जोगी गुर मेरा, जो यह पद का करै निवेरा ॥**
**तरिवर एक मूल बिनु ठाढ़ा, बिनु फूले फर लागा।**
**साखा पत्र किछू नहिं वाके, अस्ट गगन मुख गाजा ॥**
**पौ बिनु पत्र करह बिनु तुंबा, बिनु जिभ्या गुण गावे।**
**गावनहार के रूप न रेखा, सतगुर होय लखावै ॥**
**पंकि खोज मीन को मारग, कहैं कबीर दोउ भारी।**
**अपरमपार पार परसोतिम, मूरति की बलिहारी ॥**

**शब्दार्थ**—जोगी–जो आत्मा परमात्मा को एक करने की क्रिया जानता है व चिन्तन करता है, वह योगी है। पद–वाक्य, रहस्य, भेद। निवेरा-निरुवार, निर्णय, निवारण। तरिवर–वृक्ष, मूलाधार–स्थित कन्द, दूसरा अंश सहस्रार। ठाढे–खड़ा। साखा–डाल, स्कन्द। किछू–कछु भी।

वाके–उसमें। अष्ट गगन–आठों चक्र (मूलाधार, गूदा चक्र, छव दल का कमल, गगन संख्या, लिंग स्थान में षट् दल कमल, गगन संख्या २, मणिपूरक चक्र, नाभि स्थान, दस दल का कमल, गगन संख्या ३, अनाहत चक्र, हृदय स्थान, द्वादश कमल, गगन संख्या ४ विशुद्धि चक्र, कण्ठ स्थान, षोडस दल का कमल, गगन संख्या ५, अग्नि चक्र नेत्र स्थान–षोडस दल का कमल, गगन संख्या ६, ज्ञानचक्र ब्रह्माण्ड स्थान गगन संख्या ७, सूक्ष्म चक्र, भँवर गुफा के ऊपर विज्ञान स्थान–बीस हजार दल का कमल–गगन संख्या ८। गाजे–गरजे, महानाद करे। पौ–पाद, मूल, जड़। पत्र–पत्ता, दल। करह–कली, फूल एवं फल की कली। तुम्बा–तुम्बा–लौकी व कद्दू के बड़े फल को कहते हैं, अर्थात् बड़े आकार वाला फल। गुण–गुणानुवाद, हरि चर्चा, आत्मज्ञान। गावे–कहे। गावनहार–गानेवाला। रूप–स्थूल, शरीर। रेखा–चिह्न। पंछि–पक्षी। मीन–मछली अर्थात् मोन मार्ग–योगियों का एक साधन का रास्ता। इसी प्रकार से विहंगम मार्ग भी योगियों का एक साधनमार्ग। भारी–कठिन। अपरमपार–परात्पर। पार–माया से परे। परसोतिम–पुरुषोत्तम, नरश्रेष्ठ, ईश्वर। मूरति–स्वरूप, साधन क्रिया करने वाला। बलिहारी–धन्यवाद, प्रशंसनीय।

**सम्बन्ध**—पूर्वपद में ईश्वर को सर्वेसर्वा बताया गया है। उसके आगे किसी की चलने वाली नहीं है और वह जो कुछ भी करता है वह उसी को शोभा देता है। तात्पर्य यह है कि उसके ऊपर कोई नहीं है। वह जो भी कुछ करता है वह उसी को शोभनीय है। क्योंकि भूत भौतिक सृष्टि का वही स्वामी है। अब नीचे कहते हैं कि उस अवर्णनीय पुरुष की जब तक प्राप्ति नहीं होगी, तब तक कुशल नहीं है और तद् विषयक विचार जो करता है, वही वास्तव में ज्ञानी है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे पाप ताप विमुक्त अवधूत संत जन! वही योगी गुरु मेरे लिए सम्माननीय है जो उपर्युक्त कथन के रहस्य पर विचार करे एवं परमपद का निरुवार करे व परमपद के लिए विचार करे कि

परमपद कैसे प्राप्त करेगा ? यह जीव भवबंधन से कैसे छूटेगा ? पुनः अवधू से कहते हैं कि हे अवधू ! एक वृक्ष ऐसा है जो बिना जड़ के ही खड़ा है और उसमें फूल नहीं लगते, परन्तु फलता रहता है, उस तरिवर में डाल भी नहीं है और पत्रादि भी कुछ नहीं है, परन्तु आठ स्थान जो गगन के हैं अर्थात् शरीर के आठों चक्रों पर गर्जना करता है, गाजता है, आनन्द लेता है। बिना पाद के, बिना मूल के पत्र उसमें लगे हैं व बिना फूल के व बिना कली के उसमें तुम्बा फला हुआ है परन्तु इस रहस्य को गाने वाले जो इसके भेद को बताता है, उसके जीभ नहीं है और न गाने वाले का कोई रूप व चिह्न ही है। तात्पर्य यह हुआ कि मूलाधार स्थित कन्द रूपी वृक्ष जिसकी शाखा ब्रह्मरन्ध्र होते हुए सहस्रार में गई है उस कन्द का कोई आधार नहीं है। वह कन्द-पायुमूल एवं उपस्थमूल के बीच अधर में स्थित है एवं खड़ा है परन्तु उसमें फूल नहीं है जिसके अन्दर ज्ञान शक्ति कुण्डलिनी निवास करती है। ज्ञान रूपी फल उसमें लगा हुआ है जो सर्वशक्ति को छिपाए हुए है। उसी में चेतना शक्ति स्थित है। उस मूलाधार स्थित कन्द में कोई स्कन्द नहीं है और न उसमें कोई पत्ते ही लगे हैं। उस कन्द में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समाया हुआ है क्योंकि जगत धातृ शक्ति जो जगत को धारण किये हुए है उसी कन्द में रहती है परन्तु जो उसमें चेतन तत्त्व है, जो उस कुण्डलिनी को जगा लिया है, जिसकी कुण्डलिनी जग गयी है, वह साधक पुरुष आठों चक्रों पर गर्जन करता हुआ आनन्द लेता है तथा कुण्डलिनी के जग जाने पर घोर गर्जना भी होती है और उस गर्जना के साथ साधक को ब्रह्मज्ञान हो जाता है। फलस्वरूप सभी गगन स्थानों पर वह आनन्द लेने लगता है। वह मूल वृक्ष बड़ा विलक्षण है। वह बिना जड़ का ही खड़ा है और बिना डाल के उसमें पत्ते भी हैं। वे पत्ते ईङ्गला, पिङ्गला, सुषुम्ना एवं ब्रह्मनाड़ी, चित्रा नाड़ी व तीन लाख बहत्तर हजार नाड़ियाँ उसी कन्द से निकली हुई हैं परन्तु आश्चर्य है कि उस कन्द रूपी वृक्ष में फूल नहीं हैं। पत्ते ही पत्ते हैं, परन्तु उसमें तुम्बा स्वरूप एक लिंग है, जिस लिंग में

परमशक्ति स्थित है, जिसको भद्रनाल भी कहते हैं और उस तुम्बा का जो शीर्ष स्थान है वह सहस्रार में है जहाँ पर बीज स्वरूप शिव आत्मा का निवास है। जब साधक मूलाधार से षट्चक्रों का वेधन करता हुआ सहस्रार में पहुँच जाता है, परमशक्ति और परम चेतन में एकीकरण हो जाता है और साधक भी अभेद हो जाता है। अपने स्वरूप को जान जाता है, जहाँ पर निर्बीज समाधि लग जाती है। तब साधक को आनन्द का ठिकाना नहीं रहता है। वह बिना जिह्वा के ही अनहद वाणी गाने लगता है। उपर्युक्त परमसत्ता का गुणानुवाद सुनाने लगता है परन्तु जब साधक अभेदत्व को प्राप्त हो जाता है तब उसके न रूप रहता है, न उस रूप के कोई चिह्न रहते हैं। वह केवल आत्मतत्त्व रह जाता है, परातत्त्व रह जाता है। इसलिये यहाँ कहा गया कि गावनहार का कोई रूपरेखा नहीं है, वह आत्मसात् हो जाता है। और जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है। सद्गुरु के अनुसार जब तक कुण्डलिनी नहीं जगती तब तक व्यक्ति निर्धन रहता है। बार-बार जन्मते-मरते रहता है तब तक उसे प्रभु का परिचय भी नहीं होता है और यह भी कहते हैं कि बिना गुरु के उसके भेद को कोई बता ही नहीं सकता? यदि कोई सद्गुरु मिल जाय तो उस परम तत्त्व को लखा सकता है। उस मार्ग को दिखा सकता है। उस परम सनातन शिव तक पहुँचने के दो मार्ग हैं—१. विहंगम मार्ग २. मीन मार्ग। यों तो योग के चार मार्ग बताए गये हैं। १. कपि मार्ग २. पिपील मार्ग ३. मीन मार्ग ४. विहंगम मार्ग। कपि मार्ग उसको कहते हैं जो बन्दरों का मार्ग है। बन्दर अधिकतर वृक्ष पर रहता है और कूदकर एक डाली से दूसरी डाली पर जाता है। इसी प्रकार से वह कपि मार्गी योगी है जो प्रथम मूलाधार अग्निकोण में ध्यान लगाता है। वहाँ से नाभिचक्र पर आता है। नाभिचक्र पर जब चित्त रूक जाता है तब कपि मार्गी योगी मणिपूरक चक्र पर ध्यान लगाता है। जब मणिपूरक चक्र पर ध्यान की सिद्धि हो जाती है तब वह योगी विशुद्धि चक्र पर ध्यान लगाता है। अन्त में योगी इस प्रकार से छलांग मारते हुए सहस्रार

में पहुँच जाता है जहाँ पर स्व-स्वरूप शिव से मिलकर जन्म-मरण से रहित हो जाता है। इसी प्रकार से दूसरा मार्ग पिपीलिका है। पिपील चींटी को कहते हैं। चींटी बड़े धीरे-धीरे और बारीक रास्ता पर भी ऊपर चढ़ जाती है। पिपीलमार्ग का वह योगी है जो मूलाधार स्थित कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान करता है और कुण्डलिनो शक्ति जब सिद्ध हो जाती है एवं जग जाती है तो ब्रह्मरन्ध्र में बहुत धीमी गति से चींटी की गति के समान चलती है। उसके साथ ही साधक की चित्त वृत्ति जिसको सुरति कहते हैं उस परम तत्त्व के साथ-साथ सहस्रार में पहुँच जाती है। जहाँ जीव और ब्रह्म की एकता हो जाती है और सदा के लिए जीव जन्म-मरण से परे हो जाता है परन्तु इन दोनों मार्गों का सद्गुरु ने उल्लेख नहीं किया है, क्योंकि ये दोनों मार्ग शीघ्र सिद्ध होने वाले नहीं हैं। जीवन भर लगे रहने पर भी किसी-किसी को सिद्ध होता है। किसी को नहीं भी होता है। अन्यत्र शास्त्रों में इन मार्गों का दूसरे प्रकार से भी कथन किया गया है जो विस्तार भय से यहाँ पर नहीं दिया जा रहा है। अब उन दोनों मार्गों का परिचय कराया जा रहा है जिनको सद्गुरु ने बहुत बड़ा एवं दुःसाध्य बताया है, जिससे शीघ्र सिद्धि मिल जाती है पंछी का मार्ग आकाश है वह उड़कर पैदल चलने वाले की अपेक्षा बहुत जल्द पहुँच जाती है। इसलिए उसको विहंगम मार्ग कहते हैं। यहाँ पर उस योगी को विहंगम मार्गी कहते हैं जो उड्डियान बंध के साथ जालन्धर बंध एवं मूल बंध तीनों साथ ही साथ लगाता है। जब योगी साथ ही साथ तीनों बंध लगाता है तब अपानवायु सुषुम्ना में प्रवेश करने के लिए उड़ने लगती है अर्थात् जब त्रयबंध एक साथ लगते हैं तब सुषुम्ना के द्वार खुल जाते हैं। उसमें प्राण अपान वायु का प्रवेश होने लगता है। कुछ ही दिन के साधना से पश्चिम द्वार से अर्थात् मेरुदण्ड से होते हुए सुषुम्ना के अन्दर वायुगमन कर कुण्डलिनी को झटित जगाकर योगी ब्रह्मरन्ध्र व भ्रमर गुफा में होते हुए सहस्रार में पहुँच जाता है। परन्तु यह क्रिया बड़ी खतरनाक है। इससे कभी-कभी प्राण भी संकट में पड़

जाता है त्रयबंध लगाने की विधि यह है कि ऊपर से प्राणवायु को हृदय में रोककर नीचे से मूलस्थान को खींचकर अर्थात् अपान वायु खींचकर हृदय स्थित प्राण वायु में मिलावें दोनों को एक कर पेट को पीठ के तरफ ताने तब नीचे से सुषुम्ना का द्वार खुल जाता है उसके साथ सुप्त कुण्डलिनी भी जाग्रत होने लगती है और मेरुदण्ड से होकर परम तत्त्वशिव से जा मिलती है। जहाँ पर साधक अभेद होकर मुक्त हो जाता है। 'मीन' कहिए मछली जल की धारा में ऊपर की तरफ चढ़ती है जिधर से जल की धारा आती है वह बड़े वेग से उधर ही छलांग मारती है उसका आशय पानी के केन्द्र से मिलने का होता है। इसी प्रकार से मीनमार्गी योगी सुरति योगकर अर्थात् चित्त की वृत्ति को संसार से खींचकर प्राण वायु को ले जाकर सुरति के साथ ऊपर सहस्रार में स्थित करता है परन्तु यह कार्य भी कठिन है इस क्रिया को निम्नलिखित रूप से किया जा सकता है। इसमें योगी केवल कुम्भक सिद्ध करता है और ध्यान को सतत कुम्भक के साथ सहस्रार की ओर चढ़ाता है, जब केवल कुम्भक सिद्ध हो जाता है तब चित्त की वृत्ति छलकते हुए परम तत्त्व से जा मिलती है और अभेद होकर सदा सर्वदा के लिए जीवनमुक्त हो जाता है। ये दोनों मार्ग पहले वाले दोनों मार्गों से कठिन है और गुरु साध्य हैं। कबीरपन्थ में इसकी एक और विधि बतायी गयी है, जिसमें विहंगम मार्ग वह है जो चित्त को संसार से हटाकर ब्रह्म चिन्तन और तत्त्व चिन्तन में लगाना होता है इसी प्रकार से मीन मार्ग को संसार की धारा से उलट कर परमतत्त्व की ओर सुरति को अग्रसारित करना व चिन्तन करना मीन मार्ग कहलाता है। इन दोनों मार्गों का पहला रूप परम्परा से सिद्धों के यहाँ प्रचारित है और जानकार कबीरपंथी भी उसी को मानते हैं। बाद के दोनों रूप जो हैं वे संतों के द्वारा अन्वेषित हुए हैं जिसको कबीर साहब कहते हैं कि ये दोनों मार्ग दुःसाध्य अवश्य हैं परन्तु परमतत्त्व की प्राप्ति इनके द्वारा जल्दी हो सकती है और वह परमतत्त्व अपरम्पार है अर्थात् जो अपरम्पार अनिवर्चनीय माया है उससे भी वह पार है

जिसको पुरुषोत्तम परमपुरुष या सतपुरुष कहा जाता है। उस प्रभु की जो उक्त साधनों के द्वारा प्राप्ति कर लेता है। मैं उस मूर्ति कहिये, साधक की प्रशंसा करता हूँ एवं धन्यवाद देता हूँ।

**आशय**—सद्‌गुरु कबीर साधु समाज से कहते हैं कि मेरा पूजनीय व सम्माननीय वही सन्त हो सकता है जो आत्मतत्त्व को जान जाय। वह आत्मतत्त्व एक तरिवर के समान है, निराधार है, वह बिना अधिष्ठान के स्थित है। वह सबका मूल है, उसका मूल कोई नहीं है क्योंकि ११४ वें शब्द में भी उस परमतत्त्व को अक्षय मूल सतपुरुष कहा गया है। उसके अनुसार यहाँ दूसरा तरिवर नहीं है यों तो गुरु गोखनाथ भी तरिवर का उल्लेख यों किया है 'मूल बिन बृष अमीरस भरिया, सूके तरवर कूपल मेल्ही'—गोरख बानी। के अनुसार भी सतपुरुष ही वह परमतत्त्व ही मूल वृक्ष है जिसमें बिना फूल के ही मोक्ष फल लगता है। उस मूल वृक्ष में शाखा कहिए कोई स्कन्द नहीं है अतः चार अन्तःकरण भी उसमें नहीं हैं। पत्र स्वरूप इन्द्रियों के विषय भी नहीं है। वह परम पुरुष शरीर के आठों चक्रों और आठों गगनों पर आनन्द स्वरूप में विराजमान है। उस महापुरुष के कोई पैर नहीं है। फलने की कोई डाल नहीं है परन्तु पत्र रूपी संसार उसी की सत्ता स्फूर्त्ति से बना हुआ है और बिना कलि के ही उसमें बहुत-बड़ा तुम्बा के सदृश सहस्रार रूपी फल भी लगा रहता है जिससे सभी प्रकार के रस निकलते हैं, वहीं से संसार की सारी कामनाएँ भी जागृत होती हैं, उस तुम्बा स्थित मूल पुरुष की प्राप्ति होने पर साधक अजिह्वा हो जाता है। मानसिक गुणानुवाद करने लगता है। उसमें शरीर एवं संसार के भान नहीं रहते परन्तु यह स्थिति स्वतः होने वाली नहीं है। कोई सद्‌गुरु ही होगा, जो इस रहस्य का भेद खोलेगा मैं कबीर कहता हूँ कि शीघ्रातिशीघ्र उसकी प्राप्ति मीन एवं पक्षी मार्ग से ही हो सकती है। जिसके जानने वाले गुरु की खोज करनी चाहिए। तभी वह सीमातीत माया से परे पुरुषोत्तम का दर्शन कर पायेगा, जो साधक-भक्त उसका दर्शन कर लेगा, वह अत्यन्त प्रशंसनोय होगा। यद्यपि कबीर पंथ

के बहुत से टीकाकार व प्रत्येक टीका रचयिता इस पर उचित ध्यान नहीं दिये हैं। सभी का विवेचक अर्थ वही रहा है, जिसको शास्त्र के द्वारा लगाया जा सकता था परन्तु इसके अर्थ की सत्यता नीचे के उदाहरणों से ज्ञात हो जायेगी। विहंगम एवं मीन मार्गों का उल्लेख महाभारत में भी आया है—

**शकुनानामिवाकाशे मत्स्यानामिव चोदके।**
**पदं यथा न दृश्येत तथा ज्ञानविदां गतिः॥**

—शान्ति पर्व १८१।१९

**टिप्पणी**—इसी प्रकार का उल्लेख गुरु गोरखनाथ ने भी किया है—

झूझंति सूरा वूझंति पूरा अमरपद ध्यावंत गुरु ज्ञान बंका।
दल को मारि जंजाल को जीति ले, निर्भय होइ मेटि ले मन की संका॥
अझूझि झुझि लै पैस दरिया, मूल बिना वृष अमीरस भरिया।
तन मन लै करि शिवपुर मेला, ग्यान गुरु जोगी संसार चेला॥
मन राई चंचल थान थिति नाहीं, बांधि लैं पंचभूत आत्मा माही।
अलष अकथ चछु बिन सूझिया, सिद्ध का मारग साधकै वूझियां॥
परख विन गुर करै जुगति बिन बहि भरै, बिचार उपरांति कछु ज्ञान नाहीं।
भ्रमि भूलेते बहि चले पंडिता, उतरे पार ते फिरि समाहीं॥
सबद की पारिखा निह सबद हुआ, ग्यान का पारिखा जीवता मुवा।
रहति करणीं मुखैं प्रकास, नासिका जाणांति पहुप की वास॥
उलटि यंत्र धरै सिषर आसण करैं, कोटि सर घूटतां घाव नाहीं।
सिलहट मध्ये कांवरु जीत लैं, निर्मल धूनि गगन माहीं॥
मन की भ्रमन तब छूटत होई जोगीन्द्र, जब विचारंत निह सबकी वाणीं।
नैण के दांता सारा धरि पिसिवा, तब जोग पद दुर्लभ सत्य करि जाणी॥
उलटि गंगा चलै धरणि ऊपर, मिलै नीर में पैसि करि अग्नि जालै।
घटहि में पैसिकर कूप पानी भरै, तब पाइ परि पुरुषा आप उजालै॥
ग्यान के प्रगटे श्री स्वयंभूनाथ पाया, अकल अकथ जती गोरखनाथ ध्याया।
संसार में भ्रम्या सरब भ्रम सोई, निज पद पीवंतां विनस्या न कोई॥

बजरंग कोटडी पर दल पूरा, पच मुवा सब जग पहुँचा ससुरा।
मन सौ जूझणा खांड़ा नें लागै, सुन्य गढ़ रमि रहै तौ दीप धुनि जागै॥
धरणी न सोषै अगनी न षाई, बेलि का रस ले भौंरा न जाई।
कथणी कथी हो पंडिता रहणी न पाई। आचार के बंधै मनसा गमाई॥
कथंत श्री स्वयंभूनाथ सुणौ नर कोई, भ्रम में भूल्या सो बहुरा न कोई॥
—श्री गोरखनाथ की वाणी

परन्तु टीकाकारों में किसी ने तरुवर का अर्थ संसार किया है, किसी ने शरीर किया है और शास्त्रों का उदाहरण भी दिया है। इसी प्रकार से अष्ट गगन आदि के भी अर्थ आठ दिशाएँ व पाँच तत्त्व अन्तःकरण आदि लेकर किया गया है। स्मरण रहे कि सद्गुरु कबीर ने मोक्ष के लिए किसी एक ही मार्ग का उल्लेख नहीं किया है। उन्होंने मुक्त होने वाले बहुत से मार्गों का दर्शन किया था। भक्ति से, ज्ञान से, नाम जप से, योग से, ध्यान से सभी से एकाग्रता प्राप्त होती है तत्पश्चात् मुक्ति होती है। यदि कबीर साहब को केवल वेदान्ती तथा ईश्वरवादी कहा जाय या केवल जीववादी कहा जाय अथवा केवल योगी कहा जाय तो उनके साथ बहुत बड़ा अन्याय होगा तथा उनकी वाणी का वास्तविक लाभ जन-समूह नहीं ले सकेगा। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वे अपने को किसी एक सम्प्रदाय में नहीं बांधे थे। उन्हें जहाँ-जहाँ जिन-जिन सम्प्रदायों में सत्य के दर्शन हुए थे, उन सभी मार्गों का उन्होंने उल्लेख किया है। चाहे वह नाथ योगी हों, चाहे वे सूफी सन्त हों, चाहे वैष्णव हों, चाहे कोई भी साधनमार्गी हों, उनका सतसंग सभी से रहा है। वे किसी के मूल सिद्धान्त का विरोध नहीं किए हैं, जहाँ कहीं भी विरोध दीखता है केवल तत्त सम्प्रदायों के शक्ति दुरुपयोगों का एवं बाह्याडम्बरों का विरोध किया है परन्तु आज कबीर सम्प्रदाय में वेदान्त पढ़ने की परिपाटी चल पड़ी है जिसके द्वारा सद्गुरु कबीर को शंकराचार्यानुयायी बताने की चेष्टा की जाती है। कुछ लोग तो उन्हें पूरे जैनी कहते हैं जो जीववाद को अपनाए हुए हैं। जीववादियों की टीका देखकर लगता है कि टीका

करते समय भांग एवं अफीम की घूँटी जरूर पीये होंगे। मेरा आक्षेप किसी पर नहीं है। यदि तटस्थ व्यक्ति निष्पक्ष भाव से कबीर साहब की वाणी पर विचार करेगा तो उसकी अवश्य मेरी बात से सहमति होगी। ऐसे तो सभी का आशय यही है कि समाज का कल्याण सद्‌गुरु की वाणी से हो और अपनी समझ के अनुसार सभी महापुरुष सन्त अर्थ किए हैं और मैं अपने लिए भी कहता हूँ कि यह नहीं है कि जो मैं लिख रहा हूँ, वही सही है। अन्य अर्थ नहीं हो सकेंगे। शब्दों के अर्थ अनेक होते हैं पर यह देखना है कि शब्द के नजदीक कौन अर्थ है, जिससे मानव कल्याण संभव है। सर्वदा रुढ़ि गरियसी होती है। इसलिए गुरु महाराज की वाणी पर पुनर्विचार करना चाहिए। क्योंकि वे अपनी वाणी का स्वयं अर्थ नहीं कर गए हैं, इसलिए अल्प बुद्धि का मनुष्य वहाँ तक पहुँचने में पूर्ण समर्थ नहीं कहा जा सकता है।

## सबद २५

अवधू वो ततु रावल राता, नाचै बाजन बाजु बराता।
मउरे के माथे दुलहा दीन्हा, अकथ जोरि कहाता॥
मड़ये के चारन समधी दीन्हा, पूत ब्याहलै माता।
दुलहिन लिपि चउक बैठारी, निरभै पद परगासा॥
भातै उलटि बरातै खायो, भली बनी कुसलाता।
पानि ग्रहन भयौ भौ मंडन, सुखमनि सुरति समानी॥
कहैं कबीर सुनो हो संतो, बूझो पंडित ग्यानी।

**शब्दार्थ**—वो-वह। ततु-तत्त्व। रावल-राजा। राता-अनुरक्त, निष्ठा। बाजन-अनाहत नाद। बाजु-बाजे। बराता-वर-यात्रा राग-द्वेष, काम-क्रोध उत्पीड़ित आदि। मउरे-मौर, सहस्रार। माथे-मस्तक, ऊपर। दुलहा-जीवात्मा, साधक। दीन्हा-दिया। अकथ-आत्मज्ञान, आत्म रहस्य। जोरि-क्रमानुसार, इकट्ठा, करके। कहाता-कहा जा

रहा है। मड़ये–माड़व, हृदय-स्थान। चारन–भाट, गोत्राचार विवाह के समय समधी की प्रशंसा, भाटों के द्वारा जो गान किया जाता है वह यशगान। समधी–पुत्र एवं पुत्री के पिता जिसकी समान बुद्धि हो, उपदेशक मंत्रदाता गुरु। पूत–पुत्र, जीवात्मा, साधक। व्याहलै–विवाह किया सम्बन्ध जोड़ा, आत्म संयम किया। माता–माया, सुबुद्धि। दुलहिन–कुण्डलिनी। लीपि–पुताई कर। चउक–चौक, हृदय कमल। बैठारी–स्थित किया जगाया। निरभै–निर्भय, भय रहित। पद–आत्मज्ञान। परगासा–प्रकाशित किया। भातै–भात, ओदन, पका हुआ चावल, जीवात्मा, साधक। उलटि–उलट कर। बरातै–राग-द्वेषादि, काम, क्रोध, लोभादि जीवात्मा के साथ जाते हैं जो प्रथम जीव को खाते हैं। खायो–नष्ट कियो। भली–अच्छी, उत्तम। बनी–बन गया। कुशलाता–कुशल। पानि-ग्रहन–जीवात्मा से परमतत्त्व का एकीकरण। भयो–हुआ। भौ–भव, संसार। मंडन–स्त्रीकार। सुखमनि–षुषुम्ना नाड़ी। सुरति–मनोवृत्ति। समानो–समाविष्ट हुई। बुझो–समझो। पंडित–शास्त्रज्ञाता। ग्यानो–आत्मज्ञान।

**संदर्भ अर्थ**—लोक में लड़के का विवाह होता है। उसके ऊपर मौर रखा जाता है और उसके पीछे-पीछे बाजे बजते हैं और बराती भी जाते हैं। बराती लोग खुशी मनाते हैं परन्तु यहाँ पर मौर के ऊपर दुल्हा है। बाजा नाच रहा है और बराती बाज रहे हैं और जो अकथ नहीं कहना चाहिए उस गाली गल्लम को लोक में विवाह के समय जोड़-जोड़कर स्त्रियों द्वारा गाया जाता है। लोक के विवाह में भाटों के द्वारा समधी का यशगान किया जाता है। यहाँ मण्डप में भाट का ही गान समधी कर रहा है। लोक में किसी की लड़की से दुल्हे का विवाह होता है। यहाँ पर माता के साथ ही विवाह हो रहा है। लोक में चौका लीपकर और पूरकर दुलहिन बैठायी जाती है। यहाँ दुलहिन को ही लीपकर उस पर चौक बैठाया जा रहा है और इस विपरीत क्रम पर किसी को भय नहीं है। सभी लोग निर्भय होकर विवाह कार्य में रत हैं। लोक में

बराती लोग भात खाते हैं। यहाँ पर भात ही बरातियों को खा रहा है! भला यह कितना सुन्दर कुशल मंगल वाला विवाह है। इस पाणि-ग्रहण को संसार के सभी लोग स्वीकार रहे हैं। सुषुम्ना में सुरति समाती है परन्तु यहाँ पर सुरति में ही सुषुम्ना समा गयी है। इसी बात को पंडित एवं ज्ञानियों को सीधा करके समझने के लिए कबीर साहब कहते हैं। इसमें अन्योक्ति एवं काकु अलंकार है।

**सम्बन्ध**—प्रथम कहा जा चुका है कि वही योगी मेरा गुरु है जो आत्मतत्त्व का निर्वार करता है और जो जगत नियन्ता पुरुषोत्तम है उसकी प्राप्ति जो कर लेता है। उस व्यक्ति को हम धन्यवाद देते हैं। अब नीचे कहा जा रहा है कि जो वह तत्वराज है, जो सब तत्त्वों का राजा है आत्मतत्त्व है। उसमें जो अनुरक्त होता है उसकी दशा संसार से विपरीत हो जाती है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु अवधूत सन्तों से कहते हैं कि जो व्यक्ति या साधक उस परमतत्त्वराज में अनुरक्त हो जाता है एवं जिसकी निष्ठा उसके प्रति जग जाती है, संसार के उसके सारे व्यवहार उलटे हो जाते हैं, जो परम-तत्त्व में मन को लय कर देता है, उसके अनाहत नाद जग जाते हैं, आत्म-स्फुरण होने लगता है और राग-द्वेषादि जो आत्मा के साथी थे, जो उसके साथ-साथ पंच विषयों के साथ जाते थे, वे बराती लोग अब आत्मज्ञान की साधना में चिल्ला उठे एवं रो पड़े, यही उनका बजना है। साधना के द्वारा योगी सहस्रार रूपी मौर पर अपना आसन जमा लिया। जब योगी की चित्रवृत्ति नीचे से उठकर सहस्रार में स्थित हो गयी तब वह अनन्त ज्ञान का ज्ञाता हो गया, जिन तथ्यों को वह नहीं जानता था, जिनको नहीं देखता था, वे सब एक-एक करके उसके सामने एकत्रित होने लगे और सभी को एक राग करके वह कहने लगा। वह यह ज्ञान तब प्राप्त किया जब माड़व रूपी हृदय में समधी रूपी गुरु ने उसको योग तत्त्व का उपदेश किया। योगतत्त्व का उपदेश पाने पर वह पूर्णत्व को प्राप्त हो गया। वह पुत्र रूपी साधक माया को अपने वश में कर लिया।

यही पुत्र और माता का विवाह है। विवाहित स्त्री पति के अधीन होती है। साधना के द्वारा आत्मज्ञान होने पर माया जीव के अधीन हो गयी। क्यों अधीन हुई कि कुण्डलिनी शक्ति जग गयी और हृदय में ध्यान करके कुण्डलिनी को लोपी कहिए योगी जगाया और अग्निकोण में उठाकर उसको बैठाया तात्पर्य यह है कि जब योगी ध्यान के साथ मूलाधार स्थित चक्र में लगातार पांच हजार कुम्भकों का आवर्तन करता है तब कुण्डलिनी का मुख नीचे से ऊपर की ओर हो जाता है यही उस पर चौका बैठाना हुआ। जब योगी की कुण्डलिनी जग जाती है तब निर्भय आत्मतत्त्व या आत्मज्ञान का प्रकाश हो जाता है। जब योगी को आत्मज्ञान हो जाता है तब वह उन सबों को जो उसके साथ बराती थे, पंच ज्ञानेन्द्रियों के विषय काम, क्रोध, लोभ, मोहादि जो बुद्धि के संघाती थे, जिसको उक्त लोग भात समझकर खाते थे या उसे भात समझा जाता था, वह भात रूपी जीवात्मा ज्ञान होने पर सबको खा गया। जब पंच तन्मात्राओं का एवं राग-द्वेष का अभाव हो गया तब सब बातें बन गयी और जीवात्मा को कुशलता प्राप्त हो गयी। कुण्डलिनी के जग जाने पर जीव और ब्रह्म की एकता हो गयी। यही यहाँ पर पाणिग्रहण है। जो दोनों के सम्बन्धों की सूचना देता है। जब मनुष्य को आत्मज्ञान हो जाता है तब संसार के लोग उसका व्यवहार देखकर उसका समर्थन करते हैं कि हाँ यह महात्मा आत्मज्ञानी है। यह आत्मज्ञान हुआ कैसे ? सुषुम्ना नाड़ी जब स्वतः सुरति को निगल गयी अर्थात् जब सुषुम्ना नाड़ी में मनोवृत्ति समा जाती है, तब साधक को अनन्त एकाग्रता हो जाती है। एकाग्रता होने पर आत्मचिन्तन की बुद्धि जागृत होती है तत्पश्चात् ब्रह्म एवं जीव में एकत्व स्थापित हो जाता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे सन्तजन ! इस तथ्य को आप सुनें और ये जो समाज में बड़े-बड़े धुरन्धर शास्त्र के पण्डित हैं, जो आत्मज्ञान को प्राप्त हो चुके हैं व जिन्हें आत्म-ज्ञान विषयक तथ्य की जानकारी हो चुकी है वे पण्डित एवं ज्ञानी इस उपर्युक्त तथ्य को समझें।

**आशय**—सद्गुरु कबीर साहब अवधूत योगियों से कहते हैं कि जो व्यक्ति उस तत्त्वराज परमतत्त्व में अनुरक्त हो जाता है तो संसार के सारे व्यवहार उसके विपरीत हो जाते हैं। संसार जिन वस्तुओं को सीधा समझता है। जिन पुत्र, धन, कलत्रादि को सत्य मानता है, परमतत्त्व राता योगी उसको असत्य कहता है। इसलिए जिसकी स्थिति सर्वोच्च हो जाती है। यहाँ दुल्हा में व्यंजना है। दुलहा बारात में सर्वोपरि होता है। इसी प्रकार से मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार आदि में जीवात्मा ही श्रेष्ठ है। इसलिए उसको दुलहा कहा गया है। जब मनुष्य को सद्गुरु मिल जाता है, उनको सदुपदेश दे देता है तब वह जग जाता है। सारे इंद्रियों के व्यापार को वश में कर लेता है। उसकी आत्मशक्ति जग जाती है, आत्मज्ञान का प्रकाश हो जाता है। जो पहले पंच संघातों के द्वारा नाश किया जाता था, अब जगने पर वह स्वयं उन सबों का नाश कर दिया। जब काम, क्रोधादि का नाश हो गया, तब सब प्रकार की कुशलता हो गयी। ऐसी स्थिति में भक्त भगवान का एकीकरण हो गया। जो मनोवृत्ति संसार का चक्कर काटती थी एवं बहिरंग थी अब वह सुषुम्ना में समाविष्ट होकर समाधिस्थ रहने लगी। मैं कबीर कहता हूँ कि इस स्थिति को शास्त्र के पण्डितों एवं जो आत्मविषयक बात करते हैं, उन ज्ञानियों को समझना चाहिए।

## सबद २६

### आत्म समर्पण प्रकरण

**भाई रे बहुत बहुत का कहिए, कोई बिरले दोस्त हमारे।**
**गढ़न भंजन संवारन आपै, ज्यों राम राखे त्यूं रहिये॥**
**आसन पौन जोग स्रुति सुम्रित, जोतिस पढ़ि बैलाना।**
**छौ दरसन पाखण्ड छानबे, ये कलि काहु न जाना॥**

**आलम दुनियाँ सकल फिरि आये, ये कल उहै न आना ।**
**तजि करिगह जगत उचाये, मनमों मन न समाना ।।**
**कहैं कबीर जोगी औ जंगम, फीकी उनकी आसा ।**
**रामहिं नाम रटै ज्यों चात्रिक, निस्चै भग्ति निवासा ।।**

**शब्दार्थ**—रे–हे, संबोधन है। बहुत–बहुत—विशेष–विशेष। का–क्या। बिरले–कोई–कोई (अत्यल्प)। दोस्त–मित्र। हमारे–परमेश्वर का। गढ़न–सिरजन, निर्माण। भंजन–प्रलय, नाश। संवारन–पालन। आपै–स्वयं। ज्यों–जैसे। त्यूं–तैसे, उसी प्रकार। राम–ईश्वर, ब्रह्म। आसन–योगासन। पौन–पवन, प्राणायाम। जोग–समाधिस्थ होना, ध्यान लगाना। स्त्रुति–श्रुति, वेद। सुम्रित–स्मृति, धर्म ग्रन्थ। जोतिस–ज्योतिष। बैलाना–प्रमत्त, भ्रमित, विस्मृत। छौ–छः (षट्)। दरसन–दर्शन, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा, उसी के कर्मकाण्ड, उत्तर मीमांसा व वेदान्त। पाखण्ड–पाखण्ड, छल–छद्म। छानवे–बारह योगी, अठारह जंगम, अठारह सेवड़ा, चौबीस संन्यासी, दस दरबेस (मुसलमान सम्प्रदाय के दस नाम), चौदह ब्राह्मण। ये कलि–उपाय, भेद, रहस्य। काहु–कोई। आलम–आलिम, इस्लामी पण्डित, संसार। दुनियाँ–संसार। ये कल–यह उपाय। उहै–वे भी। आना–वही मार्ग, लाया। तजि–त्यागकर। करिगह–जुलाहों को बैठकर कपड़ा बुनने का गड्ढा व गर्त जिसमें पैर रखकर कपड़ा बुनते हैं। जगत–जगत, प्रभु-भजन, स्वांग व आसन। धन–सम्पत्ति, पुत्र, कलत्र। उचाये–बढ़ाये, सँवारे। मनमों–हृदय में। मन–सुरत। समाना–समाहित। जोगी–योगी, बामपंथी, साधक। जंगम–दाक्षिणात्य, शैव, लिंगायत, शिव–उपासक जो शिवलिंग को गले में लटकाये रहते हैं। इनके दो भेद हैं–एक गृहस्थ दूसरे विरक्त, वही लोग लिंग धारण करते हैं। फीकी–नीरस। चात्रिक–चातक। निवासा–स्थान।

**सम्बन्ध**—पहले पद में कहा गया है कि जा तत्त्वराज में अनुरक्त हो जाता है उसके सारे व्यवहार विपरीत हो जाते हैं। संसार जिन वस्तुओं

को सीधा समझता है, आत्मवेत्ता उन वस्तुओं को उलटा कहता है और अन्त में कहा गया कि इस तथ्य को पंडित एवं ज्ञानियों को समझना चाहिए। अब कहा जा रहा है कि उस परमतत्त्व को चाहने वाले बहुत थोड़े से लोग होते हैं।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे भाई सन्त जन! बहुत अधिक क्या कहा जाय, जिस पथ के पथिक हम हैं, उस पर चलने वाले बहुत थोड़े लोग हैं, क्योंकि वह पथ बहुत वक्र है। उस पर चलने वाले दिखायी नहीं पड़ते हैं। अर्थात् परमेश्वर की प्राप्ति के लिए उससे मित्रता करने वाला कोई बिरला ही मनुष्य होता है क्योंकि परमेश्वर परोक्ष है। जिसकी ओर मानव मन अग्रसर नहीं होता है। वह प्रभु सृष्टि की रचना करता है और उसका पालन भी करता है अन्त में नाश भी करता है। इसलिए जिस प्रकार से वह रखे, उसी प्रकार से रहो क्योंकि तुम्हारे वश की कोई चीज नहीं है। तुम्हारे चाहनाओं की पूर्ति नहीं होती है। तुम चाहते हो कि हम सबसे ऊपर हो जायं, बहुत बड़ा पण्डित बन जायं, आत्मज्ञानी बन जायं, सभी को पराजित कर दें। पर तेरी एक भी चाहनाएँ तुम्हारे अनुसार पूरा नहीं होती हैं। इसलिए सभी कुछ छोड़कर, सभी कुछ त्यागकर प्रभु के शरणापन्न हो जाओ। वह जिस प्रकार से संसार में रखे, कर्म करते हुए, कर्मफल की चाहना त्यागकर उसी प्रकार से रहो। इसी में तेरी भलाई है। बहुत से लोग आसन सिद्धि के चक्कर में लगे रहते हैं। बहुत से लोग प्राणायाम करके बहुत दिनों तक जीना चाहते हैं। बहुत से लोग योग ध्यान कर मन को स्थिर करना चाहते हैं परन्तु प्रभु-कृपा के बिना सफल नहीं होते। जब तक प्रभु कृपा नहीं होती है तबतक न तो आसन सिद्ध होते हैं और न तो प्राणायाम सिद्ध होता है और न ही योग, ध्यान में ही सफलता मिलती है। बहुत से लोग वेदों के अध्ययन से, यज्ञादि कर्मों से मुक्ति मानते हैं। बहुत से लोग धर्म शास्त्रों के अनुसार आचरण करने से मुक्ति मानते हैं परन्तु भक्ति के बिना, प्रभु-निष्ठा के बिना उन्हें भी सफलता नहीं मिलती है। इसी प्रकार के बहुत से लोग

ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन करते हैं। उसके अनुसार मनुष्यों के शुभाशुभ का फल बताते हैं परन्तु वे सभी परमतत्त्व को न जानकर, आत्मतत्त्व को न जानकर, बाह्य क्रिया-कलापों में भरमते रहते हैं एवं वेद शास्त्रादि पढ़कर प्रमत्त होते हैं। ये ही लोग नहीं छः दर्शन के लोग एवं उनके शाखा स्वरूप छानवें पाखण्ड वाले योगी, जंगम, सेवड़ा आदि सभी के सभी यह भेद नहीं जान पाये कि परम पद कैसे प्राप्त होगा ? उसकी प्राप्ति का उपाय क्या है ? इसी प्रकार से मुहम्मदीय धर्म के बड़े-बड़े आलिम व बड़े-बड़े पण्डित विद्वान समस्त सृष्टि का चक्कर काटते हैं, अपने धर्म का उपदेश करते हैं परन्तु आत्मतत्त्व की प्राप्ति का जो उपाय है, जो प्रभु-प्राप्ति का मार्ग है, उस युक्ति को, उस उपाय को वे भी प्रकट नहीं कर पाये। अर्थात् उस मार्ग का वे भी उद्‌घाटन नहीं कर सके।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारणा से कोई लाभ नहीं होता है ? क्या वेद शास्त्र के अध्ययन से कोई फल नहीं मिलता है ? क्या छौ दर्शन सब बेकार हैं, गणितादि से मानव उपकार नहीं होता है, क्या ज्योतिषादि क्या उनकी छानवें शाखाएँ बेकार हैं, उनसे मुक्ति नहीं मिलती है ? क्या इस्लाम के पण्डितों में कोई तत्त्ववेत्ता नहीं होता ? ऐसी बात नहीं। यहाँ पर ऐसे लोगों का विरोध किया गया है जो लोग उक्त धार्मिक ग्रन्थों के द्वारा संसार का संवर्धन चाहते हैं। ऐहिक सुख के लिए प्रयत्न करते हैं क्योंकि वे लोग 'करिगह' कहिए, भजन करने का स्थान सद्‌बुद्धि, निष्कामता को त्यागकर, आत्मचिंतन को छोड़-कर पुत्र, कलत्र के बढ़ाने में संलग्न रहते हैं इसलिए उपरोक्त क्रिया-कलापों से उन्हें कोई लाभ नहीं मिलता है, क्योंकि उनका मन हृदय स्थित परमात्मा के मन में नहीं समा पाया है। अर्थात् प्रभु चरणों में उनकी अनुरक्ति नहीं हो पायी है। मैं कबीर कहता हूँ कि चाहे वे योगी हों, चाहे वे नाथ पंथी हों, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के साधक हों, चाहे वे जैन साधु जंगम हों, चाहे लिंगायत शिवोपासक हों परन्तु जब तक मन में सका-मता है तब तक उनकी सारी आशाएँ और विश्वास फीके और नीरस होते हैं। उनसे कोई लाभ नहीं होने वाला है। मैं कबीर कहता हूँ कि मनुष्यों का

उद्धार तभी होगा, जब वे संसार के सभी विषय-भोगों को त्याग कर प्रभु के चरणों में उसी प्रकार रम जायेंगे, उनका नाम उसी प्रकार से रटेंगे, जैसे चातक पक्षी वर्षा ऋतु के सभी नक्षत्रों का जल छोड़कर स्वाती के जल की रट लगाये रहता है। इसी प्रकार की उपासना निश्चित रूप से सही भक्ति है और इसी उपासना में प्रभु का निवास है। चातक में श्लेष है। जैसे चातक सभी नक्षत्रों का जल का परित्याग कर स्वाति के जल की कामना करता है और उसकी प्राप्ति से वितृष्ण होकर सदा के लिए सुखी हो जाता है। उसी प्रकार से जो व्यक्ति संसार के सारे भोग उपभोगों का परित्याग कर राम-नाम में अनुरक्त हो जाता है और उसी में तल्लीन हो जाता है, तो वह सदा सर्वदा के लिए स्वाति जल रूपी प्रभु को प्राप्त कर लेता है। फलस्वरूप जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है।

**स्पष्टार्थ**—कबीर साहब का कहना है कि संसार की मोह-ममता से परे कम ही लोग हैं जो सभी कुछ त्याग कर हरि के शरणापन्न हो जाते हैं। मनुष्यों को चाहिये कि प्रभु के शरणापन्न हो जाय। प्रभु के सामने आत्म समर्पित कर दे। जिस विधि से प्रभु रखे, उसी विधि से रहे। चाहे गरीबी में रखे, चाहे अमीरी में रखे, चाहे रोग में रखे, चाहे निरोग में रखे, ये सभी उसी के कर्म के फल हैं। प्रभु केवल फल दाता है। यद्यपि सृष्टि का उत्पादन, पालन एवं संहारन स्वयं प्रभु करते हैं परन्तु वे प्राणियों के कर्मानुसार ही करते हैं। अनावश्यक उनके कोई भी कार्य नहीं होते हैं। भक्तिभाव से हीन मनुष्य शास्त्रीय विद्या एवं क्रिया-कलापों से वह लाभ नहीं उठा पाता है। चाहे वह किसी धर्म का हो, चाहे किसी दर्शन को मानने वाला क्यों न हो|परन्तु जब तक वासनाओं का अन्त नहीं करता है, तब तक सत्य तक नहीं पहुँच पाता है। कबीर साहब कहते हैं कि जो लोग भगवान के प्रेमी नहीं हैं, उनकी सारी आशाएँ निरर्थक हैं। सफलता तो उन्हीं को मिलती है, जो पपीहा की भाँति भगवान के नाम को रटते हैं। निश्चित रूप से उसी को भक्ति मिलती है और उसी में प्रभु का निवास रहता है।

## सब्द २७

भाइ रे अदबुद रूप अनूप कथ्यो है, कहौं तो को पतिआई ।
जहँ जहँ देखो तँह तँह सोई, सब घट रहा समाई ॥
लछ बिनु सुख दरिद बिनु दुख, नींद बिना सुख सोवै ।
जस बिनु जोति रूप बिनु आसिक, ऐसो रतन बिहूना रोवै ॥
भ्रमबिनुगंजन मनि बिनु निरखै, रूपबिना बहु रूपा ।
थिति बिनु सुरति रहस बिनु आनंद, ऐसो चरित अनूपा ॥
कहैं कबीर जगत हरि मानिक, देखो चित अनुमानी ।
परिहरि लाख लोभ कुटुंब तजि, भजहु न सारंग पानी ॥

**शब्दार्थ**—भाइ–प्रिय । (स्वजन संतों) । अदबुद–अद्‌भुत, आश्चर्य-मय । रूप–स्वरूप । अनूप–उपमारहित । कथ्यो–कहा गया है । कहौं–कहूँ । तो–भला । को–कौन । पतिआई–विश्वास करेगा । सोई–परमतत्त्व (ईश्वर) । घट–शरीर, हृदय । समाई–समाविष्ट । लछ–लक्ष, आशय, लक्ष्मी, सम्पत्ति । बिनु–विना, आधार । दरिद–दारिद्र । जस–गुणानुवाद, कीर्ति, प्रकाश । जोति–ज्योति । आसिक–आसक्त, आशिक (तल्लीन) । ऐसो–इस प्रकार के । रतन–रत्न, वैभव । बिहुना–रहित–(रिक्त) । रोवै–पश्चाताप करे (झंखे) । भ्रम–अज्ञान । गंजन–नाश, अभाव । मनि–मणि–प्रकाश । निरखै–देखै, निरीक्षण करे । बहु–बहुत । थिति–स्थिति, अडिग । सुरति–मनोवृत्ति । रहस–रहस्य । आनन्द–आत्मानुभव । ऐसो–इस प्रकार का । चरित–चरित्र (कौतुहल–लीला) । अनूपा–अनुपम । मानिक–मणि–माणिक्य, आत्मा । अनुमानी–पूर्वाभ्यास । (पूर्वानुमान) । परिहरि–त्यागकर । लाख–लक्ष (करोड़ धन) । कुटुम्ब–परिवार । सारंग–पानी, जगन्नियता (विष्णु) सर्वात्म हरि ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा जा चुका है कि अच्छे लोग कम मिलते हैं जो सभी कुछ त्याग कर हरि शरणागत हो जाते हैं । अधिक लोग अपरा

विद्या के ही पोषक होते हैं, जिसके कारण भगवान के चरणों में चित्त समाहित नहीं हो पाता है। इसलिए सकाम उनकी सारी कामनाएँ फीकी हो जाती हैं। सभी कुछ त्याग कर जो भगवत नामों का रटन करता है वही भक्त भगवान को प्राप्त कर सकता है। अतः नीचे कहते हैं कि वह भगवान कैसा है ? वह कोई लोक निवासी है अथवा सभी जगहों पर रहता है ?

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि वह प्रभु अद्भुत है। उसके विषय में कुछ कहना कठिन है। हे भाई सन्तजन ! उसका स्वरूप उपमा से रहित है। यदि कोई उसकी उपमा दी जाय तो सब निरर्थक होगा। क्योंकि प्रभु के समान कोई वस्तु नहीं है। इस प्रकार का कथन पूर्व के सन्तों ने भी किये हैं। परन्तु ऐसे प्रभु के विषय में कहता हूँ तो कोई विश्वास नहीं करता है। मैं तो जहाँ-जहाँ देखता हूँ, वहाँ-वहाँ पर वही परम सत्ता विद्यमान है। वह समस्त प्राणियों के घट रूपी हृदय में समाया हुआ है। वह व्यापक तत्त्व है। वह पराशक्ति है। वह प्रभु सुख स्वरूप है। स्वयं तृप्त है। वह लक्ष्मी के बिना अर्थात् धन के बिना स्वयं सुखी रहता है। जो उस प्रभु को नहीं प्राप्त करता है, चाहे कितनी भी लौकिक सम्पत्ति हो, किसी भी प्रकार की दरिद्रता न हो, परन्तु दुःखी ही रहता है और जो उस परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है, वह सुख की नींद में सोता है, अर्थात् वह परमेश्वर सुख-दुःख दोनों से परे है। लौकिक नींद उसको नहीं है, फिर भी वह सुख से सोता है। उसका प्रकाश बिना यश कीर्तन के ही चतुर्दिक फैला हुआ है। उसका रूप बहुत विलक्षण है। वह अपने आप में आसक्त है। उसका कोई प्रकाशक नहीं है। वह किसी के यशगान करने से प्रसन्न नहीं होता है। वह स्वयं ज्योति स्वरूप है। वह प्रभु अपने आप में समाहित है। इस प्रकार का प्रकाश चैतन्य विभु-रत्नस्वरूप जो परम धन मनुष्यों के हृदय में विराजमान है, परन्तु उसकी प्राप्ति के बिना संसार के प्राणी रोते हैं, दुःखी होते हैं, यदि उस परमेश्वर की प्राप्ति हो जाय। उसकी अनुरक्ति मन में हो जाये, तो मनुष्य का

अज्ञान बिना प्रयत्न के ही नाश हो जाता है और बिना वाह्य प्रकाश के वह आत्म निरोक्षण करने लग जाता है। क्योंकि वह तत्त्व लौकिक रूपों से परे है। 'बहु' कहिए अनन्त रूपवाला है। उस अनन्त सत्ता सम्पन्न परमेश्वर की प्राप्ति जो कर लेता है, तो हृदयस्थली में बिना आधार के ही, बिना स्थिति के ही मनोवृत्ति रुक जाती है अर्थात् जब साधक साधना के द्वारा एवं प्रभु के नाम जप के द्वारा साधक का ध्यान जब प्रगाढ्य हो जाता है अत्यन्त एकाग्रता चित्त में आ जाती है तब सुरति जो मनोवृत्ति है वह चिदाकाश में अपने आप अवस्थित हो जातो है। तव बिना रहस्य सुख के ही परम आनन्दानुभूति होने लगती है। लोक में प्रायः मनुष्यों को जो जन सम्पर्क से सुखानुभूति होती है, वह क्षणिक होतो है परन्तु जो आत्मसुख है वह अक्षुण्ण रहता है। वह अवर्णनीय लोकातोत है इस प्रकार का है कि उसके चरित्र की कोई दूसरे सुख से उपमा नहीं दी जा सकती है। जो सुख का क्रीड़ा मन में होती है, वह आत्मानुभवी पुरुष ही जान सकते हैं। मैं कबीर कहता हूँ कि हरि स्वरूप माणिक्य प्रकाशमय हीरा सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है। परन्तु हे मनुष्यों ऐसे वह नहीं दिखायी देगा। चित्त को एकाग्र करके अनुमान प्रमाण के द्वारा देखो। अर्थात् यह दिन कैसे हो रहा है? रात्रि कैसे हो रही है। प्रकृति प्रकोप क्यों हो रहा है? प्राणि समूह कहाँ से आ रहे हैं और कहाँ जा रहे हैं? तथा क्यों जा रहे हैं? इसके जाने का कारण क्या है? संसार की घटनाओं को देखकर क्यों नहीं अनुमान करते हो कि इसके पृष्ठभाग में परात्पर शक्ति है और उसी पराशक्ति को सभी कुछ परित्याग कर जो तुम्हें लाखों का लोभ लगा हुआ है, जो तुम्हारे सामने लक्ष-करोड़ की सम्पत्ति समुपस्थित है, जिसका लोभ तुम कर रहा है। जो तेरे कुटुम्बीजन हैं, जिनसे तू बहुत सुख मान रहा है, उन सभी का त्याग कर क्यों नहीं सारंग पानी परमेश्वर का भजन करते हो?

**स्पष्टार्थ**—वह प्रभु रहस्यमय है। उसकी उपमा किसी से नहीं दी

जा सकती है। अज्ञ मनुष्य उस पर विश्वास नहीं करते हैं। वह सभी स्थानों में व्याप्त है। सभी प्राणियों में समाया हुआ है। वह संसारी दुःख सुख से परे है। वह स्वयं अस्तित्व वाला है। उसकी प्राप्ति के बिना मानव दुःखी रहता है। भ्रम उसे घेरे रहता है। और बिना ज्ञान के अज्ञ दशा में प्रभु को खोजते फिरता है। वह समष्टि रूपों में अनेक रूप वाला है। वह अपने आप में अवस्थित है एवं चिदानन्द घन है। जो इस प्रकार के चरित्र वाला है, उसकी उपमा किसी से नहीं दी जा सकती है। सद्गुरु कहते हैं कि यह जगत् मणिस्वरूप व प्रकाश स्वरूप प्रभु से परिपूर्ण है। ब्रह्माण्ड की घटनाओं को देखकर उसका अनुमान किया जा सकता है। इसलिए संसार के सारे सम्बन्धों को परित्याग कर क्यों न प्रभु का भजन करते हो।

## सबद २८

### तृष्णा प्रकरण

**भाई रे गइया एक विरंचि दियो है, गइया भार अभार भौ भारी॥**
**नौ नारी को पानी पियतु है, त्रिखा तैयो न बुझाई।**
**कोठा बहत्तर औ लौ लाये, बज्र कीवार लगाई॥**
**खूंटा गाड़ि दबरि दिढ़ बान्हे, तैयो तोरि पराई।**
**चारि ब्रिक्ष छौ साखा वाके, पत्र अठारह भाई॥**
**एतिक ले गम कीहिसि गइया, गइया अति रे हरहाई।**
**ई सातो औरो हैं सातो, नौ औ चौदा भाई॥**

**शब्दार्थ**—गइया–गाय, तृष्णा मन, माया। विरंचि–ब्रह्मा। भार–अशुभ कर्म, पाप। अभार–शुभकर्म, पुण्य। भौ–भव, हुआ। भारी–बोझिल। नौ–नव। नारी–नाड़ी। पियतु–पीती। त्रिखा–प्यास। तैयो–तो भी। बुझाई–शान्त। कोठा–प्रकोष्ठ (शरीर के अन्तर्गत बहत्तर मरमस्थान)। औ–और। लौ–ध्यान। लाये–लगाये। बज्र–वज्र, प्राणायाम के द्वारा शरीर के नवों छिद्रों से मन को नियंत्रित करना—१. सिद्धासन लगाकर, मूलबन्ध, जालन्धर

बन्ध लगाकर, उड्डियान बन्ध को लगाना, तीनों के बंध लग जाने पर मन बाहर नहीं भागता है ये ही वज्र किवाड़ है। खूंटा–ब्रह्मरंध्र में मन को स्थिर करना। दँबरि–रस्सी, सुरति को सहस्रार में दृढ़ भाव से बाँधना। तैयो–तोभी। पराई–भाग जाती है। चारिवृक्ष–चार वेद। छौ शाखा–वेदाङ्ग। पत्र अठारह–अठारह पुराण। एतिक ले–इतने तक। गम–जानकारी, ज्ञान, गमन किया, अध्ययन किया। कीहिसि–किया। गइया–तृष्णा, गाय। अतिरे–अत्यन्त ही। हरहाई–बहुत बिगड़ी हुई, अनियंत्रित, बेकहल। ई सातो–सातो द्वीप। औरो–और। सातो–सात स्वर। नौ–नव व्याकरण। चौदा–चौदह विद्या, चौदह भुवन।

**सम्बन्ध**—सत्ताइसवे शब्द में परब्रह्म के स्वरूप का कथन किया गया है और सब त्यागकर उसके भजन पर बल दिया गया है परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि प्रभु भजन बहुत दुर्लभ है। उसमें अनेक विघ्न उत्पन्न होते हैं, जिनके कारण हरि-स्मरण नहीं होने पाता है। क्योंकि मायामय संसार में मनुष्य सदा उलझा रहता है, लोक मर्यादा, कुल मर्यादा, मनुष्यों को अनुबंधित किये रहती है। इसलिए मनुष्यों का पूर्ण विकास नहीं होने पाता है। यह माया या तृष्णा उस गाय के समान है, जो बहुत हरही, अनियंत्रित रहती है। सदा विपरीत आचरण करते रहती है। जीव रूपी चरवाह के वस में नहीं रहती है। जिसके कारण यह जीव सदैव प्रभु भक्ति से वंचित रहता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे संसार के मनुष्यों ! यह जीव परमार्थ में इसलिए नहीं लग पाता है कि ब्रह्मा ने तृष्णा रूपी गाय को सभी के साथ लगा दिया है। वह तृष्णा रूपी गौ शुभ और अशुभ कर्मों से मनुष्यों को सदा बोझिल किए रहती है। कभी पुण्य के आधिक्य से स्वर्गादि सुखों का उपभोग कराती है। कभी पाप कर्मों के फल से यमलोक आदि में गमन कराती है। ये दोनों शुभाशुभ कर्मों का भार सदा जीव के ऊपर लदा रहता है जिसके कारण शान्ति उपलब्ध नहीं होती है। यह तृष्णा सदैव मनुष्यों को बेचैन किये रहती है। नौ नाड़ियों के द्वारा विषय रूपी जल

को ग्रहण करते रहती है। शब्द से अच्छी बातों को सुनती है। वा अनुकूल बातों को सुनती है। त्वचा से स्निग्ध वस्त्रों को ग्रहण करती है। घ्राण से सुसुगन्धि को खींचती रहती है नेत्रों से सुन्दर रूपों का अवलोकन करते रहती है। रसना से सुस्वादु रसों को खींचते रहती है। बुद्धि से अपने पक्ष को सिद्ध करते रहती है। अहंकार से अपना पहलू जताती है। चित्त से अनुकूल विषयों का चिन्तन करते रहती है। मन से संपूर्ण पदार्थों को नापते रहती है। उक्त नवों स्थानों से सतत् अपने-अपने विषयों को चखते रहती है परन्तु तृष्णाग्नि तो भी नहीं शान्त होती है। इस तृष्णा को व मनोगति को नियंत्रित करने के लिए योगीजन, साधुजन, शरीर के अन्दर बहत्तर प्रकोष्ठों में मन को छिपाते हैं। ध्यान लगाते हैं और ध्यान को स्थिर करके, त्रयबन्ध नामक वज्र किवाड़ को बन्द करके, सहस्रार में सुरक्षित कर बाँध देते हैं परन्तु यह सब होने पर भी तृष्णा रूपी गइया स्थिर नहीं रह पाती है। शरीर के अन्दर से सब कुछ तोड़कर भागते रहती है। इसी प्रकार से विद्वान लोग तृष्णा को शान्त करने के लिए चार वेदों का अध्ययन करते हैं। छः शास्त्रों का मनन करते हैं। उनसे संतुष्ट न होने पर पत्र स्वरूप अठारह पुराणों का भी चिन्तन मनन करते हैं। इतना सब अनुगमन तथा सबकी जानकारी प्राप्त किया परन्तु फिर भी यह मनोवृत्ति-तृष्णा डाईन वस में नहीं हुई। हरही गाय की तरह यत्र-तत्र भागते रहती है। यहीं तक इसकी सीमा नहीं है। जब उक्त अध्ययन अध्यापन से व योग ध्यान से मन स्थिर नहीं हुआ। तब यह सातों स्वरों का भी अध्ययन किया एवं ब्रह्माण्डीय अनाहत नाद में भी मन को लगाया और सप्त लोकों की कल्पना कर वहाँ भी ध्यान लगाकर मन को एकत्रित किया। अर्थात् तृष्णा रूपी गौ सात स्वरों का भी अनुशीलन किया। सप्तलोकों के फल की जो कामना मन में लगी हुई है उसकी प्राप्ति का साधन भी किया और नव व्याकरणों का अनुशीलन भी किया तथा चौदह विद्याओं का भी अनुशीलन किया परन्तु इस पर भी शान्ति नहीं मिली।

एतिक गइया खाय बढ़ाये । गइया तइयो न अघाई ।।
पुरता में राती है गइया । सेत सींघ है भाई ।।
अवरन वरन किछउ नहीं वाके । खद्ध अखद्धहु खाई ।।
ब्रह्मा, विष्णु खोजिले आये । सिव सनकादिक भाई ।।
सिध अनंत वाके खोज परे हैं । गइया किनहुँ न पाई ।।
कहैं कबीर सुनो हो संतो । जे ये पद अरथावैं ।।
जो यह पद को गाय विचारै । आगे होय निरबाहै ।।

**शब्दार्थ**—एतिक–इतना तक। बढ़ाये–बीट, विष्टा कर दिया। अघाई–संतुष्ट, भर पेट। पुरता में–पुर में, शरीर में। राती–आसक्त। सेत–श्वेत, धवल। सींघ–शृंग, सत्वगुण, स्वर्ग, उत्कृष्ट सुख। भाई–बन्धु। अवरन–अकथनीय, अरूप वाला। वरन–वर्णन। किछउ–कुछ भी। वाके–उसके। खद्ध–खाद्य। अखद्धहु–न खाने योग्य, अखाद्य। खाई–खाती है। ये–यह। जे–जो। पद–वाक्य, छन्द, शब्द। अरथावै–अर्थ लगावे। गाय–कथनकर। विचारै–विवेक करे। आगे–अग्रिम। होय–होकर। निरबाहै–निर्वाह करे, पालन करे।

**मूलार्थ**—ऊपरी पंक्तियों में सात स्वरों का उपभोग एवं सप्तद्वीपों, पृथ्वी का उपभोग, नौ व्याकरणों का उपभोग, चौदह विद्याओं का उपभोग करने के पश्चात् भी शान्ति नहीं मिली। सद्‌गुरु कहते हैं कि इतना सब मृगतृष्णा रूपी गाय खाकर बीट (गोबर) कर दिया। पेट को बहुत बढ़ा दिया परन्तु इस पर भी उदर पूर्ति नहीं हो सकी। इसका मूल कारण यह है कि शरीर रूपी पुर में अत्यधिक आसक्ति हो गयी है। शरीर को ही आत्मा मान लिया है। देह आत्मबुद्धि होने के कारण शान्ति नहीं पा रही है, यद्यपि इसके साथ धवल सद्‌गुण भी विद्यमान है, परन्तु उसका ग्रहण नहीं कर पाती। दूसरा अर्थ सेत-सिंघ का उतंग अर्थ है। शरीर में आत्मबुद्धि होने के कारण मनुष्य उसके भरण-पोषण के लिए सदैव अच्छे-अच्छे और बड़े-बड़े सुख की चाहना करता रहता है। यद्यपि तृष्णा का कोई वास्तविक रूप नहीं है। वह चैतन्य भी नहीं है परन्तु उसका व्यवहार व उसका स्व-

रूप अवर्णनीय है। न सत्य ही कहा जा सकता है और न असत्य ही कहा जा सकता है उसको कुछ कहने में नहीं बनता है परन्तु जो खाने योग्य वस्तु नहीं है, उसी विषय-वासना को एवं सांसारिक सुख को सदा यह जीव तृष्णा के द्वारा खाते रहता है। जिसके कारण आत्म-सुख से सदैव वंचित रहता है। यह तृष्णा विकराल और भयानक है। बहुत बलवती है। बहुत सूक्ष्म है, जिसको त्रयदेव भी खोज नहीं पाये। अर्थात् वह कितनी विशाल है। उसकी उस विशालता का अन्त लोक पितामह ब्रह्मा, भगवान विष्णु एवं भगवान शिव जैसे योगी पुरुष भी नहीं कह सके कि तृष्णा इतनी ही है। इसी प्रकार से सनकादिक जैसे बालज्ञानी भी इस तृष्णा की गति को महान बताया और कहा कि जबतक इसका अन्त नहीं होगा तबतक आत्मसुख नहीं होगा। इसी प्रकार से सनकादिक जैसे अनेक सिद्ध महात्मा तृष्णा का अन्त नहीं पाये। इस तृष्णारूपी व माया-रूपी गाय का कोई अन्त नहीं पाया और यह भी नहीं कह सका कि यह इतना ही है। कहने का तात्पर्य यह है कि इक्कीस ब्रह्माण्डों की संरचना तृष्णा के कारण ही हुई है और इसी तृष्णा के कारण सभी देव-दानव, कीड़ी-कुञ्जर, नर-पिशाच यावत भूत भौतिक सृष्टि हुई है। इस तृष्णा से संसार के सभी लोग अनुबन्धित हैं। मैं कबीर कहता हूँ कि हे सन्तजन! मेरी बात को सुनो और इस पर गौरवपूर्ण विचार करो, जो मैंने यह पद गाया है, इसका अर्थ करो। जो मेरे इस पद को गायेगा, कथन करेगा, इसका विवेक करेगा, वही पुरुष सत्य-असत्य समझकर अग्रिम होकर अर्थात् नेता होकर संसार का नेतृत्व कर सकता है और तृष्णा का निवारण भी कर सकता है।

**स्पष्टार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि यह तृष्णा बड़ी विशाल है, जिसकी संरचना स्वयं प्रभु ने ही किया है। यह शुभाशुभ कर्मों में सदैव संपृक्त है। पंच तनमात्राओं एवं चतुष्ट अन्तकरणों के द्वारा विषयों का ग्रहण करते रहती है। उस पर भी शान्त नहीं होती है। यह इतनी विकराल है इतनी सबल है कि योगीजन, पण्डितजन, इसको रोकने के लिए बड़े-बड़े

उपाय किए, बड़े-बड़े साधन किये, उस पर भी इसकी निवृत्ति नहीं हो पायी। यह शरीर को ही आत्मा मान ली है। बड़ी-बड़ी चाहनायें लगी रहती हैं। इसके विषय में कुछ कहते नहीं बनता है। सतत् अग्राह्य विषयों को ही ग्राह्य करती है। बड़े-वड़े देवता, पित्र, सिद्ध, साधक भी इससे हैरान रहते हैं। शीघ्र इसे कोई पकड़ नहीं पाता है।

सद्गुरु कहते हैं कि उक्त वाक्य का जो अर्थ करेगा और इसे गा-गाकर जो विचार करेगा, वही संसार सागर से पार हो सकता है।

**टिप्पणी—नवनाड़ी**—इडा, पिङ्गला, सुषम्ना, गांधारी-दाहिने नेत्र की नाड़ी, हस्त जिह्वा-बायें नेत्र की नाड़ी, पूषा-दाहिने कान की नाड़ी, पैसविनी-बायें कान की नाड़ी, लकुहा-गुदा नाड़ी, अलम्बुसा-लिंग नाड़ी। इन्हीं नव-नाड़ियों के द्वारा यह जीव विषय भोग करते रहता है। इन्हीं को नवनाली भी कहा गया है। अर्थात् ये ही नव-नाड़ियाँ नव नदी हैं, जिनके द्वारा विषय जल पीती है, इससे भी तृप्त नहीं होती है।

**वज्र केवाड़**—शरीर के नव द्वार, दो नासाछिद्र, दो नेत्र छिद्र, दोकर्ण, मुख, पायु-गुदा द्वार, उपस्थ। अर्थात् इन सभी छिद्रों को बन्द करके योगी ध्यान लगाता है।

**चार वृक्ष**—चार वेद। अर्थात् साम वेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद।

**छव शाखा**—वेदाङ्ग—व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त, छन्द, शिक्षा, कल्प।

**नव व्याकरण**—इंद्र, चन्द्र, शाकटायन, कास्कृत्सन, विशालि, पाणिनि, अमर, जैनेन्द्र, सरस्वती।

**चौदह विद्याएँ**—ब्रह्मविद्या, रसज्ञान, कर्मकाण्ड, संगीत, व्याकरण, ज्योतिष, धनुर्विद्या, जलतरण, न्याय, कोक, अश्वारोहरण, नाट्य, कृषि, वैद्यक।

**सनकादिक**—सनक, सनन्दन, सनातन, सनतकुमार।

**सात स्वर**—सा, रे, ग, म, प, ध, नि।

**सातो-सप्तद्वीप**—जम्बू, कुश, पल्क्ष, क्रौञ्च, शाक, पुष्कर, शालमलय।

**सात**–सात स्वर्ग—भुर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, जनलोक, तपलोक, महर्लोक, सत्यलोक।

अतल, बितल, तल, सुतल, महातल, रसातल, पाताल।

# सबद २९

## जिज्ञासु प्रकरण

**भाई रे नैन रसिक जो जागै।**
**पारब्रह्म अविगति अविनासी, कैसेहु के मन लाव॥**
**अमली लोग खुमारी त्रिस्ना, कतहूँ संतोष न पावै॥**
**काम, क्रोध, दोऊ मतवाले, माया भरि भरि आवै॥**
**ब्रह्म कलाल चढ़ाइन भाठी, ले इन्द्री रस चाहै॥**
**संगहिं पोच ह्वै ज्ञान पुकारै, चतुरा होय सो पावै॥**
**संकट सोच पोच यह कलिमा, बहुतक व्याधि सरीरा॥**
**जहाँ धीर गंभीर अति निस्चल, तहां उठि मिलै कबीरा॥**

**शब्दार्थ**—नैन–नेत्र। रसिक–रस चाहनेवाला–प्रभु दर्शन करने वाला। पारब्रह्म–परब्रह्म। अविगति–जिसकी गति नहीं हो रहस्यमय, अभेद्य। अविनाशी–जो जरा मरण से परे हो। कैसहुँ–किसी प्रकार भी। लावे–लगावे। अमली–नसेड़ी, (मद्यपी)। खुमारी–नशा, मादकता। त्रिस्ना–तृष्णा (चाहना) कामना, लोक मान्यता की प्राप्ति की इच्छा। कतहूँ–कहीं भी। संतोष–संतुष्ट, (शान्ति)। दोऊ-दोनों। मतवाले-पियक्कड़, (शराब पीने वाले) प्रमत्त। माया–मोह शक्ति। ब्रह्म–कार्य ब्रह्म। कलाल–कल्य पाल, कलवार, मद्य चुवाने वाला। चढ़ाइन–चढ़ाया। भाठी-चूल्हा, गर्म। ले-लेकर। इन्द्री–इन्द्रियों के। रस–विषय सुख, मद। चाहे-इच्छा करे। संगहि–साथ ही। पोच–नीचता, निम्नता। होय–संयुक्त ज्ञान, आत्मज्ञान। पुकारै–उद्घोष करे। चतुरा–बुद्धिमान। पावै–प्राप्त करे। यह–इस। कलिमा–कलियुग में। बहुतक–बहुत से।

**सम्बन्ध**—पूर्वपद में तृष्णा की प्रधानता बताकर यह दिखाया गया

कि सारे विश्व के विषय का केन्द्र स्त्री आदि सुख जिसका उपभोग करने के पश्चात् भी तृष्णा शान्त नहीं होती है, वह सदैव अग्रहणीय विषयों को ही ग्रहण करते रहती है। अन्त में कहा गया है कि जो लोग तृष्णा विषयक अर्थ समझ कर विचार करेंगे, उनका निस्तार हो जायेगा। अतः नीचे यह कहा जा रहा है कि केवल तृष्णा के त्याग से ही निस्तार नहीं होगा। साथ ही संसार के मोह माया से जागना होगा, तभी परमतत्त्व का दर्शन सम्भव हो सकेगा।

**मूलार्थ**—अब गुरु महाराज कहते हैं कि हे भाई! संसार के मनुष्य लोग जो इन नेत्रों से प्रभु का दर्शन करना चाहते हैं, जो प्रभु के दर्शन के इच्छुक हैं, दर्शन के रसिक हैं, वे प्रभु दर्शन कर सकते हैं। प्रत्युत संसार को माया मोह से जाग जाये, तभी हरि दर्शन सुलभ होगा। मैं कहता हूँ कि वह जो परब्रह्म है, जो परम चैतन्य है, जो माया से परे है, जो अभेद्य है, जिसमें किसी की गति नहीं चलती है, जो पूर्ण रूप से नहीं जाना जा सकता है। जो अविनाशी है, जिसका कभी अभाव नहीं होता है, जो अजन्मा है, जो सभी की आत्मा है, जो निरन्तर रहने वाला है, जो नित्य है। उस परमतत्त्व में किसी भी प्रकार से येनकेन रूपेण जो व्यक्ति अपने मन को लगाता है, उसका भजन करता है, उसका ध्यान करता है, उसका चिन्तन करता है, वही रसिक समसत्ता का दर्शन कर सकता है। कैसहुँ में व्यञ्जना है। कैसहुँ का तात्पर्य यह है कि चाहे नाम जप करे, चाहे ध्यान करे, चाहे स्थूल पूजा करे अर्थात् किसी प्रकार से उस परमतत्त्व में मन लगाना चाहिये। तभी वह दर्शन दे सकता है। अन्य जो संसार के सुख चाहने वाले अमली लोग हैं, जो गाँजा पीते हैं, जो चरस पीते हैं, जो अपने को नागा निर्वाणी कहते हैं, जो भगवान शंकर के नाम पर सम्प्रदाय चलाते हैं जो भाँग की बूटियाँ छानते हैं जो वाम मार्ग के नाम पर शराब पीते हैं। वे खुमारी वाले जिन्हें उपर्युक्त नशाओं का नशा चढ़ा हुआ है उक्त मादक पदार्थों की तृष्णा जिन्हें लगी हुई है वे व्यक्ति कभी भी संतोष-शान्ति को नहीं प्राप्त कर सकते हैं अर्थात् परम

तत्त्व का दर्शन कभी नहीं कर सकते हैं चाहे जितना भी तीर्थ करें। कोई भी वाह्य क्रिया-कलाप करें, उससे कुछ होने वाला नहीं है। इसी प्रकार से जो कामुक हैं। स्त्री सुख चाहने वाले हैं। स्वर्ग की कामना चाहने वाले हैं। जो क्रोधी हैं, जो दूसरे पर टूट पड़ते हैं। जो काम क्रोध रूपी मदिरा को पीने वाले हैं, जो उसमें मतवाले हो गये हैं। भला उनको क्या कहना है? उन्हें तो मायादेवी भरि-भरि प्याला विषय सुख का पिलाते रहती है। अर्थात् जो भी नाटक-चाटक वाह्य ध्यान धारणा करते रहते हैं, उन्हें प्रभु की प्राप्ति न होकर सदैव माया की प्राप्ति होती है और उनके कर्मानुसार उनके लिए कार्य ब्रह्म कल्य पाल सदैव विषय भोग रूपी रस चुवाने के लिए माता के गर्भाशय रूपी भट्ठी में डालते रहता है। अर्थात् जन्म-मरण बार-बार देते रहता है और इन्द्रियों के द्वारा माया-मदरूपी रस को मायावी लोग सदैव चाहते रहते हैं। माया में आसक्त रहते हुए भी अपने को ज्ञानी कहते हैं कि मैं ज्ञानी हूँ। हमारा ही मार्ग श्रेष्ठ है। शराब पीने में क्या दोष है? गाँजा-भाँग में क्या दोष है? संसार के सुख में क्या दोष है? हम तो संसार में कमलपत्र की तरह निवास करते हैं।

सद्गुरु कहते हैं कि आज के लोग संगहि नीचता लिए हुए हैं और ज्ञानी होने का दावा करते हैं, परन्तु उनको कुछ मिलने वाला नहीं है। प्रभु प्राप्ति वही व्यक्ति कर सकता है, जो बुद्धिमान हो, उपर्युक्त दोषों से मुक्त हो। अन्य वंचक लोग एवं दंभी लोग उस परम सुख को पाने वाले तो नहीं हैं। यहाँ चतुरा में श्लेष है। तात्पर्य यह है कि जैसे कहता हो, वैसे करता हो अर्थात् कथनी और करनी में अन्तर न हो, तभी प्रभु दर्शन मिल सकता है। क्योंकि इस कलियुग में लोगों के ऊपर अनेक संकट हैं। बहुत सी चिन्ताएँ हैं। बहुत सी नोच भावना भी लगी हुई हैं तथा बहुत प्रकार की व्याधियों से शरीर ग्रसित है। इसलिए आत्मज्ञान और प्रभु दर्शन दोनों दुर्लभ है। उपर्युक्त व्याधियों से बचने के लिए वहाँ जाना चाहिए, जहाँ पर बहुत धीर, बहुत गम्भीर, बहुत अडिग, अचल, सद्गुरु संत हों। मैं कबीर कहता हूँ कि अपने कल्याणार्थ उन्हीं से उठ कर जा

मिलो। वे ही तेरा कल्याण कर सकते हैं। तथा वहीं तुझे शान्ति मिल सकती है।

**स्पष्टार्थ**—जिन व्यक्तियों को प्रभु दर्शन की इच्छा हो, जिनके नेत्र प्रभु को देखना चाहते हों, जो भक्ति के रसिक हैं, वे संसार से जग जाँये, मोह निद्रा का त्याग कर दें। किसी भी प्रकार से परमतत्त्व का चिन्तन करें। इसके विपरीत माया-मोह में लिपटा हुआ प्राणी कभी परमतत्त्व का अधिकारी नहीं हो सकता है। उसको काम क्रोध सदा सताते रहता है जिसके कारण माया का ही सुख उसको बार-बार मिलते रहता है। अर्थात् माया जन्य विषय में ही जीवन व्यतीत होता है और इन पापात्माओं के लिए ईश्वर ने सदैव गर्भाशय रूपी भट्ठी को चालू रखता है। जिसमें ये बार-बार पकते रहते हैं और संसार में जन्म लेकर इन्द्रियों के सुख चूसते रहते हैं। अज्ञानी मनुष्य अपने दोष को छिपाये रहता है। वेद शास्त्रों का अध्ययन करके बहुत बड़ी डींग हाँकता है परन्तु उसके हाथ लगने वाला कुछ नहीं है। कुछ प्राप्ति बुद्धिमान व्यक्ति को ही हो सकती है। जो गुरु, ईश्वर, गुरुजनों का कृपा पात्र होता है। क्योंकि इस वर्तमान काल में अनेक प्रकार के संकट, अनेक प्रकार की चिन्तायें और बहुत से दोष मनुष्यों को घेरे हुए हैं। साथ ही मनुष्य अनेक प्रकार के दोषों से ग्रसित है। साथ ही बहुत सी व्याधियाँ शरीर में लगी हुई हैं। उनसे बचने के लिए उस सद्गुरु की सेवा करनी चाहिए जो पूर्णरूपेण शान्त चित्त हो, यह सद्गुरु कबीर का आदेश है।

# सबद ३०

## सामंजस्यप्रकरण

### एकेश्वरवाद प्रकरण

**भाई रे दुई जगदीस कहाँ ते आया; कहु कौने बौराया।**
**अल्ला राम करीमा केसौ, हरि हजरत नाम धराया॥**

**गहना एक कनक ते गहना, यामे भाव न दूजा।**
**कहन सुनन को दुई करि थापे, एक निमाज एक पूजा॥**
**वोही महादेव वोही महम्मद, ब्रह्मा आदम कहिये।**
**को हिन्दू को तुरुक कहावै, एक जिमीं पर रहिए।**
**वेद कितेब पढ़ै वै कुतुबा, वै मौलाना वै पांड़े।**
**बेगरि बेगरि नाम धराये, एक मटिया के भाड़े॥**
**कहैं कबीर वै दूनों भूले, रामहिं किनहुँ न पाया।**
**वै खंसी वै गाय कटावै, बादहिं जन्म गमाया॥**

**शब्दार्थ**—जगदीस–जगत का स्वामी। दुई–दो। कौने-कौन। बौराया–पगलाया। करीमा–करीम, परमेश्वर। केसौ–केशव, विष्णु केसी नामक दैत्य को मारने से भगवान का नाम केशव पड़ा। हजरत–सम्माननीय, पूज्य। धराया–रखा। गहना–भूषण, जो शरोर में धारण किया जाता है, जो चाँदो, सोने से बना होता है। कनक–सोना, स्वर्ण। यामें–इसमें। भाव–भेद, विलगाव। दूजा–दूसरा, भिन्नता। कहन–कथन में। सुनत–सुनने में। दुइ–दो। करि–करके। थापे–स्थापना, स्थापित करे, दो को धारण किये, बनाना। निमाज–इस्लाम धर्म के अनुसार चौबिस घंटों में पाँच बार ईश्वर के समक्ष कलमा पढ़कर नमस्कार करना। पूजा–आर्यधर्म के अनुसार दिन में तीन बार संध्या उपासना करना। वोही–वही। महादेव–शंकर जी। महम्मद–मुहम्मद ईश्वर का दूत। ब्रह्मा–कार्य ब्रह्म, आदम सृष्टि का आदि पुरुष इस्लाम के अनुसार। को–कोई। तुरुक–मुसलमान। कहावे–कहलाता है। जिमीं–जमीन, भूमि। कितेब–किताब, पुस्तक, कुरान। पढ़ै–पढ़ता है। वै–वे दोनों लोग। कुतुबा–हस्तलिखित नित्य पढ़ने वाली पुस्तक। मौलाना–इस्लामी विद्वान्, कर्मकाण्डी, पंडित। पांडे–पांडेय, पंडित हिन्दू धर्म का कर्मकाण्डी। धराये–रखा। मटिया–मिट्टी। भाड़े–बर्तन, पात्र। दूनों–दोनों। भूले–भ्रम में पड़े। किनहुँ–कोई भी। पाया–प्राप्त किया। खँसी–बकरा, अजासुत। गाय–गो। कटावै–कटवाये। बादहि–अन्त में, धर्म के पीछे। गमाया–नष्ट किया।

**सम्बन्ध**—पूर्व पद में कहा गया कि राम के रसिक भक्तों को चाहिए कि परमसत्ता में किसो प्रकार से लगना चाहिये और जहाँ पर अतिधीर गंभीर गुरुदेव हों उन्हीं के यहाँ जाना चाहिये और जो वह उपदेश करें, उसी के अनुसार आचरण करे तभी अनेक संकटों से मुक्त हो सकता है अब नीचे यह कहा जा रहा है कि वह प्रभु एक ही है, उसी का ध्यान पूजन करो। उसका त्याग करके यदि अन्यत्र भटकोगे तो पुनः अनेक देव देविओं के चंगुल में फँस जाओगे, क्योंकि वह अनेक नहीं है। उसके अनेक नाम हैं, वह भी उसके गुणों के कारण हुए हैं।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे भाई! भला दो ईश्वर कहाँ से आ गये। कौन तुमको दो ईश्वर कहके पगला दिया है। यदि तुम दो नामों को सुनकर भ्रम में पड़ गये हो, तो यह तेरी महान भूल है। मैं तो कहता हूँ कि जो अल्लाह है, वही राम है, जो करीम है, वही केशव है, जो हरि है, वही हजरत है। हरि का ही लोगों ने हजरत नाम रखा है परन्तु ये सब नाम एक ही परम तत्त्व के हैं। जैसे स्वर्ण के अनेक आभूषण होते हैं। भिन्न-भिन्न अंगों में पहनने के कारण उनके अनेक नाम होते हैं परन्तु सब में एक कनक ही विद्यमान रहता है। क्योंकि उसी कनक से सभी गहने बने हैं। इसी प्रकार जो परमतत्त्व है। उसी के भिन्न-भिन्न नाम हैं। चाहे उसको अल्लाह कहो, चाहे उसे राम कहो, चाहे रहीम कहो। नाम भले ही भिन्न-भिन्न हो परन्तु वह परमतत्त्व एक ही है। उस मूल तत्त्व में दूसरा भेद नहीं है और नाम रूपों के कारण वह भिन्न भी नहीं है। इसलिए उसमें दूसरा भाव नहीं रखना चाहिये कि वह राम है और वह अल्लाह है। वह मुहम्मद है, वह गाड है, वह महादेव है। वह एक ही परमतत्त्व सभी नाम रूपों में विद्यमान है। सम्प्रदाय के लोग अपना पंथ चलाने के लिए केवल कहने-सुनने के लिए दो नामों की स्थापना किये हैं और उसकी उपासना के लिए एक का नाम निमाज रखा और दूसरे का नाम पूजा रखा है। मैं तो कहता हूँ कि यह सब भेदवादियों के द्वारा भेद उत्पन्न किये गये हैं। क्योंकि जिसको तुम दो कहते हो, मैं

कहता हूँ कि वही महादेव है, वही हजरत मुहम्मद है, वही ब्रह्मा है, वही, आदम है। क्योंकि दोनों को सृष्टि का मूल पुरुष बताया गया है। यदि दोनों दो होते तो दोनों की सृष्टि में कुछ भेद होता परन्तु ऐसा कहीं देखने को नहीं मिलता है। समान इन्द्रियों के स्थान, सभी मनुष्यों में एक से हैं। कहीं के मनुष्य से कहीं की स्त्री से सम्बन्ध होने पर गर्भाधान हो जाता है। बच्चा उत्पन्न होता है, और सभी के गुण धर्म एक से हैं। इसलिए यह देखकर भी अनुमान लगाना चाहिए कि ईश्वर और अल्लाह में केवल नाम का भेद है। इसी प्रकार से हिन्दू और मुसलमान भी मात्र संज्ञा है। वे दो नहीं हैं। इसलिए भी दो नहीं हैं कि दोनों की पृथ्वी, दोनों के ब्रह्माण्ड एक ही हैं। आर्य लोग अपने धर्म ग्रन्थ का नाम वेद रखा और मुसलमान लोग अपने धर्म ग्रन्थ का नाम कुरान रखा है। अपने-अपने विधान के अनुसार पठन-पाठन भी करते हैं। इसी प्रकार से 'कुतबा' जो विशेष कर्मकाण्ड और उपासना के ग्रन्थ हैं उन को अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार नित्य पठन-पाठन करते हैं। वे मौलाना जी और ये पंडित जी दोनों व्यवस्थावादी एक ही हैं। दोनों की विचारधारा एक है। अतः इनका नाम भिन्न-भिन्न रखा गया है। वे दोनों एक ही मिट्टी के भाड़े के समान हैं अर्थात् जैसे मिट्टी के अनेक पात्र बनते हैं। किसी का नाम घट होता है, किसी का नाम हण्डी होता है, किसी का नाम कुण्डा होता है, किसी का नाम कुल्हड़ होता है परन्तु सब एक ही मिट्टी के बने होते हैं। इसी प्रकार से जिन पंच महाभूतों से मौलाना जी का शरीर निर्माण हुआ है उन्हीं पंचभूतों से पंडित जी का भी शरीर निर्माण हुआ है परन्तु सद्गुरु कहते हैं कि पाण्डेय जी और मौलाना जी भी यह सब जानते हुए कि हम सब एक ही खांक के दो पुतले हैं फिर भी दोनों अज्ञानवश अपने को विस्मृत हो गए हैं। इस भूल एवं भेद बुद्धि के कारण दोनों में किसी ने भी परमतत्त्व को वा रामतत्व को प्राप्त नहीं कर सका। दोनों जिभ्या के स्वादी हैं। वे देवी के नाम पर बकरा आदि को बलि देते हैं वे खुदा के नाम पर गाय की बलि देते हैं। यदि इन दोनों को

यह जानकारी होती कि खँसी व बकरे व गाय में परम प्रभु राम आत्मा रूप से विद्यमान है तो कभी ऐसा कुकर्म नहीं करते। इसलिए जिस कुकर्मों के कारण अन्त में वादही कहिए अपनी-अपनी मान्यता के कारण मानव जन्म को नष्ट कर दिया। कुछ हाथ नहीं लगा। निराश होकर नरक-गामी हो गए।

## सबद् ३१

### अद्भुत प्रकरण

**हंसा ससै छूरी कुहिया, गइया पिवै बछरुवै दुहिया ॥**
**घर घर साउज खेलै अहेरा, पारथ वोटा लेई।**
**पानी मांहि तलफि गई भूभुरि, धूरि हिलोरा देई ॥**
**धरती बरसै बादर भींजै, भीट भये पौराऊ।**
**हंस उड़ाने ताल सुखाने, चहले बींधा पांऊ ॥**
**जौ लौं कर डोलै पगु चालै, तौ लौं आस न कीजै।**
**कहैं कबीर जेहि चलत न दीसै, तासु बचन का लीजै ॥**

शब्दार्थ—हंसा–सन्तजन, जीवात्मा, हंस पक्षी जो नीर-क्षीर का विलगाव करता है। तथा पुराणों के अनुसार मानसरोवर में निवास करता है। ससै–खरगोश, जीवात्मा, साधक। छूरी–छूर्प, अविद्या, अज्ञान, माया। कुहिया–काटा, नष्ट किया। गइया–मनोवृत्ति, माया, गाय। पीवै–पीती है। बछरुवै–बछरा, वत्स, जीवात्मा। दुहिया–दोहन किया। घर–घर–प्रत्येक शरीर में। साउज–सावज, सावक, आखेटक। अहेरा–अहेर, शिकार खोजक। पारथ–पापार्धी, मन, विषयी पुरुष। वोटा–ओट, परदा, यवनिका, छिपाव। लेई–लेता है। पानी–जल, आत्मा, सत्व। मांहि–में। तलफ–जलिगई, ज्वलन, दहन। गई–गई, गया। भूभुरि–काम, क्रोधादि, जलती हुई धूलि में उबाल, भूचाल, गरम राख, धूलि, विनम्रता, हिलोरा, आनन्द, उत्ताल तरंग। देई–देती है। धरती–पृथ्वी, मूलाधार चक्र। बरसै–वर्षा करे। बादर–बादल, सहस्रार, ब्रह्माण्ड। भींजै–सींचित हो। भीट–जलाशय के दोनों तट के उच्च स्थल, उच्च अवस्थावाला ज्ञानी।

पौराऊ–पौरने लगे, तैरने लगे, ऊपर स्थित। हंस–जीवात्मा। उड़ाने–उड़ गए। ताल–जलाशय, शरीर। सुखाने-सूख गया। चहले–चले, डोले चहला, कीचड़, कादो, संसार की विषय–वासना। बींधा–विन्ध्याचल पर्वत, फँसा, विद्ध, आत्मज्ञानी। पांऊ–पैर, पाद। जब लौं–जबतक। कर–हाथ। डोलैं–इधर-उधर चले। पगु–पैर। चालै–चले। तौ लौं–तब तक। दीसै–दीखे। तासु–उसकी। वचन–बात। का–क्या।

**टिप्पणी**—कुछ टीकाकारों ने 'बींधा' का अर्थ विद्धा–फँसना किया है। परन्तु इसमें यह आपत्ति है कि जब जीवात्मा उड़ गया है तब पेर कैसे फँसा ? क्योंकि साथ ही साथ यह भी दिखाया गया है कि ताल सुखाने अर्थात् शरीर रूपी ताल सूख गया। जब जीवात्मा शरीर से निकल जाता है तो स्वाभाविक शरीर निस्सार हो जाता है। इसलिए उक्त शब्द का अर्थ फँसना उपयुक्त नहीं प्रतीत होता है। यदि पहले का अर्थ सही लगता है। तब पूरी पंक्ति का अर्थ होगा कि जो ताल में परमसत्ता थी, अज्ञदशा में पड़ी थी, वह विद्यमान साधक जब ज्ञान की प्राप्ति कर लिया, तब उच्चदशा को प्राप्त हो गया, जो कभी चलने वाला नहीं था, वह शक्ति रूपी पद से चल दिया अर्थात् शरीर से पूर्ण रूप से सम्बन्ध विच्छेद हो गया।

**वाक्यार्थ**—उक्त पूरी उलटवांसी में कथन है कि ससा ने उलटे छूरी को काट दिया जब कि पहले आखेट होने पर छूरी ससा को काटती थी। इसी प्रकार बछड़ा पहले गाय माता का दुध पीता था, अब गाय बछड़े को दूहकर पी रही है। इसी प्रकार से पहले शिकारी खरगोश का शिकार करता था, परन्तु अब खरगोश घर-घर जाकर शिकारी का आखेट कर रहा है और पारथ-शिकारी खरगोश के भय से कहीं आड़ में छिप रहा है। पहले जल व पानी भूभुरी-अग्नि पर तप रहा था, अब अग्नि पानी में ही तप रही है। पहले अग्नि पर जल तप कर हिलोरा लेता था, अब जल में ही धूरि हिलोरा ले रही है। पहले बादल वर्षा करता था, धरती भींगती थी, अब धरती बरस रही है और बादल भींग रहे हैं। पहले भीट उच्च स्थान पर स्थिर रहता था अब उक्त

जल में भीटा ऊपर-ऊपर तैर रहा है। पहले ताल सूखता था, तब हंस पक्षी उड़ता था। अब हंस के उड़ने पर ही ताल सूखता है। पहले चलायमान वस्तु व लोग चलते थे अब जो कभी नहीं चलता था, व स्थावर वृक्ष व पर्वत पैरों से चलने लगे हैं। इसी प्रकार जब तक मनुष्य का हाथ-पैर चलता है तब तक काम करके खायें, दूसरे की आशा न करें जो अपंग हैं, जो नेत्रहीन हैं, वे तो निश्चित रूप से पराधीन होते हैं उनकी बात क्या करते हो, जो स्वयं असमर्थ है उसको न आत्मज्ञान ही हो सकता है न कमाकर अपना भरण-पोषण ही कर सकता है।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि ईश्वर दो नहीं है। वह एक अखण्ड एवं नित्य है। केवल भेद वादियों के द्वारा, सम्प्रदाय वादियों के द्वारा, दो का बखेड़ा खड़ा किया गया है। उसकी पहचान के बिना धर्म के नाम पर निर्बल पशुओं की बलि दी जाती है, जिसके कारण मनुष्य को वास्तविक सफलता नहीं मिलती है। अब नीचे पद में कहा जा रहा है कि जो व्यक्ति सभी नाम रूपों में एक ही प्रभु के दर्शन करते हैं वे संशय, शोक से रहित हो जाते हैं।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे पवित्र आत्मा ! हे हंस स्वरूप संतजन ! जिसको आत्मज्ञान हो जाता है, जो प्रभु का दर्शन कर लेता है वे ससा के समान जो अपने को निर्बल समझता था जिस अविद्यारूपी छूरी से जिसका नाश होता था अब आत्मज्ञान होने पर उसका अभाव हो गया, अर्थात् आत्मचिंतक साधक उस अविद्या रूपी छूरी का विनाश कर दिया। जो मनोवृत्ति रूपी गाय संसार के विषय वासना को चाखती थी, वह आत्म प्राप्त योगी के अनुगामिनी हो गयी है, जो पहले जीव को अपना वत्स समझती थी, जिसे अपने वश में रखे हुए थी वह शुद्धात्मा जीव साधक व्यक्ति जब मनोवृत्ति को अपने अधीन कर लिया तब वह आनन्द रूपी दुग्ध को मनोवृत्ति को संसार से उलट कर पीने लगा। उस आनन्द का रस लेने लगा। जो कभी अविद्या के द्वारा व काल के द्वारा आखेट किया जाता था, मारा जाता था। वह व्यक्ति आत्मज्ञान होने पर 'घर-घर' कहिए समाज के मनुष्यों का उद्धार करने लगा। अर्थात् मनुष्यों के विकार रूपी आखेट को ज्ञान

रूपी तीरों से बेधने लगा। पापार्धी जो विषयी मन था वह ज्ञान के उदय होने पर छिपने लगा, अर्थात् ज्ञान के सामने वह सन्मुख नहीं हो सका। 'पानी' कहिए परम शान्ति जब आत्मज्ञान हो जाता है स्वस्वरूप में वृत्ति स्थिर हो जाती है तब सभी प्रकार के विकार नष्ट हो जाते हैं। परम शान्ति आ जाती है। जब साधक में सभी प्रकार की शान्ति हो जाती है तब 'भूभुरि' जो काम, क्रोध, लोभ, मोह थे, उस शान्ति में शान्त हो गए अर्थात् उनका अभाव हो गया। धूलि जो विनम्रता थी, जो मन में अति श्रद्धा थी, जिसके कारण वह सदैव दीन भाव में रहता था, वह साधक काम-क्रोध के ऊपर विजय प्राप्त कर लिया। आनन्द विभोर होकर हिलोरा लेने लगा। जब साधक में पूर्ण निष्ठा हो जाती है तब मूलाधार स्थित परम शक्ति जग जाती है और ब्रह्माण्ड स्थित सहस्रार में पहुँचकर आनन्द की वर्षा करने लगती है। जहाँ से सोमरस एवं अमर वारुणी का श्राव होते रहता है। बादल रूपी मानव का अन्तःकरण उससे सिक्त होने लगता है। उस परम वर्षा में भीट कहिए उच्च ज्ञानी, उदात्त भाव वाला साधक तैरने लगता है अर्थात् उसमें निमग्न हो जाता है। जब जीवात्मा अनेक विषय रूपी ताल से ऊपर हो जाता है अर्थात् सहस्रार में उड़ने लगता है तब विषय वासना रूपी जल सूख जाता है और साधक का मन ऊपर-ऊपर मड़राने लगता है, अर्थात् स्वस्वरूप में स्थित हो जाता है ऐसी स्थिति में विन्ध्याचल के समान अडिग ज्ञानी विषय रूपी चहले में पैर को रखकर पार हो जाता है। अर्थात् जो संसार में स्थित था, वह साधक जो विषय रूपी चहले को पार नहीं कर पाता था, अब वह उससे पार होने के लिए चलने लगा, अर्थात् वह सचेत हो गया।

सद्गुरु कहते हैं कि हे मनुष्यों एवं साधकों! सबसे श्रेष्ठ आत्मतत्त्व व आत्मज्ञान है जब तक उसकी प्राप्ति करने की क्षमता है तब तक उसको प्राप्त कर लो। किसी अन्य देवी देव व दूसरे उपास्य की आशा मत करो। जब तक तुझे आत्मज्ञान ग्रहण करने की शक्ति है, उस पर चलने के लिए पग हैं, तब तक संसार की किसी अन्य शक्ति की आशा

मत करो। मैं कबीर कहता हूँ कि जो आत्मज्ञान प्राप्ति में असमर्थ है, जिसको आत्मज्ञान प्राप्त करने की क्षमता नहीं है वह तब तक भेद बुद्धि से प्रभु की उपासना करेगा और निष्काम कर्म करेगा और अन्य सात्विक देवों की भी उपासना करेगा इसलिए उसका दोष मत दो क्योंकि वह अद्वैत चिन्तन में असमर्थ है।

**आशय**—आत्मज्ञानी जिज्ञासु आत्मप्राप्ति करने पर अज्ञान का नाश कर देता है। मनोवृत्ति आत्मज्ञान का दोहन करने लगती है एवं रस लेने लगती है। उक्त साधक शरीर के प्रत्येक प्रकोष्ठों से विकारों को निकाल कर भगाने लगता है तथा विषयी मन भी छिपने लगता है। परम शान्ति में काम क्रोधादि विकार समन होने लगते हैं पश्चात् जो धूलिवत नीचे दबा रहता था, अब वह सब से ऊपर हो गया। आनन्द का हिलोरा ले रहा है। मूलाधार स्थित शक्ति ब्रह्माण्ड में चली गयी। जहाँ से आनन्द की वर्षा करके अन्तःकरण को अभिसिक्त करने लगी। आत्मज्ञानी पुरुष अब संसार से तैरने लगा। अर्थात् संसार से पार होने की स्थिति में आ गया। प्रारब्ध समाप्त होने पर हंस रूपी आत्मज्ञानी साधक, शरीर रूपी तीर्थ से उपराम हो गया। अब शरीर का महत्त्व नहीं रहा। अर्थात् आत्मज्ञान होने पर शरीर अभावदशा को प्राप्त हो गयी। जो शरीरस्थ अन्तःकरण में विकार रूपी कीचड़ थे, आत्मज्ञानी पुरुष उस पर लात रख दिया अर्थात् उसको दवा दिया। इसलिए उक्त आत्मज्ञान ही श्रेष्ठ है। जब तक उसकी प्राप्ति की क्षमता एवं विवेक वैराग्य रहे, तब तक मनुष्य को सकाम कर्मों में फल की आशा नहीं करनी चाहिए। स्वयं पुरुषार्थ करके आत्मज्ञान को प्राप्त करना चाहिए।

सद्गुरु कहते हैं कि जिसको आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए विवेक वैराग्य रूपी आँख नहीं है जो आत्मज्ञान को नहीं समझ सकता, उस व्यक्ति का क्या प्रमाण देते हो ? वह तो सकाम कर्म करेगा, देव उपासना करेगा। चित-शुद्धि के लिए सब करणीय है इसलिए किसी को बुरा मत कहो।

# सबद ३२

## चेतावनी प्रकरण

**हंसा हो चित चेतु सकेरा, इन्ह परपंच कैल बहुतेरा ॥**
**पाखंड रूप रचो इन्ह तिरगुन, तेहि पाखंड भूलल संसारा ।**
**घर के खसम बधिक वै राजा, परजा का धौं करे विचारा ॥**
**भग्ति न जानै भगत कहावे, तजि अम्रित विख कैलिन सारा ।**
**आगे बड़े ऐसहिं बूड़े, तिनहुँ न मानल कहल हमारा ॥**

**शब्दार्थ**—चित-मन, चित्त । सकेरा–प्रात:, शीघ्र । इन्ह–संसार के लोग, इन्द्रिय, शासक, गुरु। कैल–किया, काला, उज्ज्वल । बहुतेरा–बहुत सा।रूप–प्रकार। रचो–निर्माण किया । तिरगुन–रज, सत, तम, उपवीत । तेहि–उस, उसी । भूलल–भूला । घर–गृह, देश, शरीर, राष्ट्र । खसम–देश का स्वामी, राजा, गुरु । बधिक–बध करने वाला, मारने वाला । वै–वह । धौं–भला । विचारा–असमर्थ, विवेक । विख–जहर । कैलिन–किया । सारा–समस्त, सत्य, सही । आगे–पहले, भूतकाल में । ऐसहिं–इसी प्रकार से । तिनहुँ–वे भी । मानल–माना । कहल–उपदेश । हमारा–मेरा, संत सद्‌गुरुओं का ।

**सम्बन्ध**—इक्कतीसवें पद में कहा गया कि भक्ति एवं उपासना तथा सतसंग के द्वारा यह जीवात्मा अज्ञान का नाश कर देता है । मन इन्द्रियाँ संसार की ओर से हट कर अन्तर्मुखी हो गयीं और संसार के सभी सम्बन्ध टूट गए । स्वस्वरूप की प्राप्ति हो गयी । जिससे सदा सर्वदा के लिए यह जीवात्मा अमर हो गया । नीचे यह कहा जा रहा है हे निर्मल मन ! हे शुद्ध बुद्ध चित्त स्वरूप आत्मा ! शीघ्रातिशीघ्र चेत करो । अन्यथा संसार का बंधन बहुत प्रबल है ।

**मूलार्थ**—अब सद्‌गुरु कहते हैं कि हे जिज्ञासु सन्त जन ! शीघ्रातिशीघ्र अपने चित्त को संसार की विषय वासनाओं से हटाकर प्रभु उपासना में एवं आत्मचिंतन में लगाओ क्योंकि संसार के लोगों ने बड़ा प्रपंच कर रखा है। जिसमें धार्मिक गुरु लोग, शासक तथा उनके अनुयायी जन सभी शामिल

हैं। इन लोगों का प्रपंच पूर्णरूपेण पाखण्ड से रचा गया है। वह जीवों को फँसाने के लिए तिरगुन कहिये त्रयफाँस के समान है। उसमें जो फँस जाता है, वह कभी निकल नहीं पाता है। इनके क्रिया-कलापों में सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण का मिश्रण है। उसी पाखण्ड में सारा संसार भूल गया है। लोगों को हिताहित का ज्ञान नहीं रह गया है। कौन मेरा हितैषी है, कौन मेरा शत्रु है? क्योंकि इस देश का या घर का जो खसम है, जो स्वामी है, जो सम्राट् है, जो धर्माचार्य गुरु है। वह राजा वधिक का काम कर रहा है। वह अनेक प्रकार के आडम्बरों में, क्रिया-कलापों में तीर्थ-मूर्तियों में, अनेक देव-देवी के उपासनाओं में, मनुष्यों को बाँध दिया है और उस बंधन में पड़ कर सभी कराह रहे हैं। भला जब देश का राजा ही, देश का धर्माचार्य ही, वधिक का कार्य करने लगे, प्रजा को लूटने लगे, जनता का शोषण करने लगे, तो असमर्थ प्रजा जन क्या कर सकते हैं? यदि वे विचार भी करें तो उनके विचार को कौन सुनता व समझता है? धर्माचार्य लोग व गुरु लोग भक्ति का रहस्य नहीं जानते कि भक्ति क्या है? परन्तु भक्त एवं ज्ञानी कहलाते हैं और जो आत्मतत्त्व व स्वस्वरूप स्थिति थी, जो प्रभु की उपासना थी, उस अमृत तत्त्व को त्यागकर संसार के सुख रूपी विष को सत्य मान लिए। इसी प्रकार से देश का सम्राट् प्रजा-पालन, धर्मरक्षण छोड़कर विषयभोग को ही सत्य मान लिया और अपने आन-मान के लिए सदा एक दूसरे से लड़ते रहे। 'खसम' में श्लेष है। इसलिए उसका अर्थ धर्माचार्य गुरु एवं देश का सम्राट् भी है।

सद्गुरु कहते हैं कि जिस प्रकार से देश के लोग आज संसार को सत्य मान रहे हैं, पहले भी जो बड़े-बड़े लोग बहुत नामी-ग्रामी थे जैसे—कंस, रावण, बालि, चंगेज खाँ, हलाकू, नादिरशाह आदि लोग भी संसार को सत्य मानने के कारण डूब चुके हैं। वे लोग भी संत-महात्माओं, पीर-पैगम्बरों की बात नहीं मानते थे इसलिए सबके सब रसातल में चले गये।

**कहल हमार गांठि दिढ़ बान्हो, निसु बासर रहियो हुसिआरा।**
**ये कलि गुरहिं बड़े परपंची, डारि ठगौरी सभ जग मारा॥**

**वेद कितेब दोउ फंद पसारा, तेहि फंदे पर आप विचारा।**
**कहैं कबीर ते हंस न बिछुड़े, जेहि मा मिले छुड़ावनहारा ॥**

**शब्दार्थ**—कहल–कहना, उपदेश। गांठि–ग्रन्थि। दिढ़–कसकर। बान्हो–बान्धो। निसु बासर–रात-दिन। रहियो–रहो। ये कलि–इस कलि के। डारि–फेंक, फँसाकर। ठगौरी–ठगी।

**मूलार्थ**—अब सद्गुरु कहते हैं कि हे भाई ! मेरे कथन को, मेरी बात को, मेरे उपदेश को कसकर गाँठ में बाँध लो, हृदय में रख लो। साथ ही सदैव सावधान रहो। कहीं ठगे न जाओ। क्योंकि इस कलियुग के गुरु लोग बड़े प्रपंची हो गए हैं। ये दूसरे की पंचायत करते रहते हैं। दूसरे का न्याय करते हैं और अपने दुर्गुणों को छिपाये रहते हैं और सदा सकाम कर्मों का उपदेश देते रहते हैं। लोक-परलोक का लोभ दिखाकर संसार के मनुष्यों के गले में लोभ का फंदा डालकर, फँसाकर सदा मारते रहते हैं और अपने उपदेश को वेदशास्त्र का बताकर उसका प्रमाण देते हैं। यदि कोई विश्वास नहीं करता है तो हिन्दू धर्माचार्य कहते हैं कि यह वेद में लिखा है, मुसलिम मुल्ला कहते हैं कि यह कुरान में लिखा है। साधारण लोग जो पढ़े-लिखे नहीं हैं, जो वेद-पुराण देखे नहीं हैं, वे क्या समझ सकते हैं कि वेद-पुराण में क्या लिखा है ? परन्तु स्वार्थी गुरु लोग वेद-पुराण का विश्वास देकर गुणों का फंदा बना दिये हैं। ध्यान रहे कि वेद में हिन्दुओं की श्रद्धा है और कुरान में मुसलमानों की श्रद्धा है। जिसके कारण पंडित जी एवं मौलाना जी जो भी कुछ कहते हैं, साधारण लोग वेद, कुरान की बात समझकर उसको सत्य मान लेते हैं और वास्तविकता न होने के कारण सबके सब मारे जाते हैं। उसी उपदेश एवं धर्मग्रन्थों पर जो काम्यकर्मों से, जो सकाम कर्मों से भरे पड़े हैं। उक्त उपदेशक लोग भी अपने विचार करते हैं। उनके अनुसार अपने भी आचरण करते हैं।

मैं कबीर कहता हूँ कि वह हंस स्वरूप सच्चा साधक नहीं बिछुड़ सकेगा, अर्थात् वंचक गुरुओं के फंदा में नहीं पड़ सकता है। जिसको सच्चा

सद्‌गुरु मिल जाता है, वह हंस को वंचकों के फंदों से छुड़ा लेता है। इसलिए सच्चे संत सद्‌गुरु की खोज करनी चाहिए।

## सबद ३३

**हंसा प्यारे सरवर तेजि कहां जाय।**
**जेहि सरवर बिच मोतिया चुगत होते, बहुविधि केलि कराय॥**
**सूखे ताल पुरइन जल छाड़े, कंवल गयल कुम्भिलाय।**
**कहैं कबीर जो अबकी बिछुड़े, बहुरि मिलो कब आय॥**

**शब्दार्थ**—हंसा-शुद्ध जीवात्मा, निर्मल संत, साधक। प्यारे-प्यार करने वाले। तेजि-त्यागकर। कहाँ-किस स्थान पर। जेहि सरवर-जिस तालाब-शरीर में। मोतिया-संसार का ऐश्वर्य। चुगत होते-उपभोग करते रहते थे। केलि-क्रीड़ा, खेल। कराय-करते रहे। सूखे ताल—शरीर के निस्तेज होने पर। पुरइन-कमल, रोमकूप, त्वचा, नेत्र, कुण्डलिनी शक्ति, जल-सोमरस, सहस्रार से गिरता हुआ रासायनिक तत्त्व। कंवल-कमल, षट्चक्र दल के कमलमुख। गयल-गये। कुम्भिलाय-मुरझा गए। अबकी-इस मानव शरीर छोड़ने के बाद। बिछुड़े-इससे रहित होने पर।

**सम्बन्ध**—इसके पहले पद में सद्‌गुरु ने हंसों से अर्थात् जिज्ञासु संत-भक्तों से कहा है कि इस क्षणभंगुर संसार में शीघ्रातिशीघ्र चेत जाओ क्योंकि इसमें बड़ा प्रपंच विद्यमान है। इन प्रपंचों में फँसकर सारा संसार जन्म-मरण रूपी कष्ट को भोगता रहता है। इन्हीं प्रपंचों में बड़े से बड़े लोग फँसकर इस भवयोनि से गमन कर जाते हैं। साथ ही यह भी कहा गया है कि शुद्ध आत्मा हंस स्वरूप पुरुष नहीं फँसता है जिसको संत सद्‌गुरु मिल जाते हैं। नीचे उद्‌बोधित किया जा रहा है कि भाई देखो! जो नहीं चेत सके हैं, वे लोग अप्राप्यदशा में इस संसार से जा रहे हैं।

**मूलार्थ**—अब सद्‌गुरु कहते हैं कि हे प्यारे हंस! जीवात्मा जो स्वरूपतः शुद्ध है। वह तुम अब इस सरोवर रूपी शरीर को त्यागकर कहाँ जा रहे हो? इसमें तू बहुत आनन्द किया, बहुत उपभोग किया। इस प्यारे

शरीर को तुमने कितना महत्त्व दिया। इसी को आत्मा मान लिया था। इसी को मूल निवास मान लिया था किन्तु किस कारण से तुम इसे छोड़कर जा रहे हो ? जिसके लिए सगे-सम्वन्धी व बन्धु-बान्धव सब रो रहे हैं। सब विकल हो रहे हैं। जिसके बिना दसों दिशाएँ शून्य हो गयी हैं। उस परम प्रिय शरीर को छोड़कर क्यों जा रहे हो ? क्या इस प्रश्न का उत्तर तेरे पास कुछ है ? तुम तो इस सरोवर रूपी संसार शरीर के मध्य में स्थित थे। जहाँ पर नाना प्रकार के भौतिक ऐश्वर्य रूपी मुक्ता अमी-फल को चूसते थे, जिसका उपभोग करते थे। जिसमें तुम बहुत प्रकार की क्रीड़ा करता था। इन्द्रियों के सुखों को भोगता था। अच्छी-अच्छी सुन्दरियों के साथ हास-परिहास करता था, पुत्र-कलत्र को देखकर प्रमुदित होता था। अब वह ताल स्वरूप शरीर तेरे चले जाने से शुष्क हो गया, अब इसमें कोई भी जलचर दिखायी नहीं देते अर्थात् सभी इन्द्रियाँ शून्य हो गयीं, जो ईश्वरीय सत्ता कुण्डलिनी मूलाधार में विराजमान थी, जो पुरइन के पत्ते की तरह लहलहा रही थी। शरीर से तेरे निकलने पर वह भी शरीर छोड़कर अन्तर्ध्यान हो गयी। षट्चक्र दल के कमल भी कुम्हिला गये अर्थात् वे भी निस्सार हो गये। नेत्रों की चमक भी लापता हो गयी। जल रूपी आत्मा व आयु, यह शरीर छोड़कर जब चली गयी, तब तेरे कमल के समान रूप कुम्हिला गये। उसकी आभामयी शरीर विकृत हो गया।

मैं कबीर तेरे से पूछता हूँ कि जो तुम इस ताल को छोड़कर जा रहा है और इस मानव देह को जिसमें तुम आत्मज्ञान का अधिकारी था। जिसमें तुझे जन्म-मरण से मुक्ति मिलने वाली थी, जिसमें तुम प्रभु को प्राप्त करने वाला था। उसको त्यागकर जा रहे हो तो भला कहो इसमें कब आवोगे, क्या तुम आशा करते हो कि इसमें पुनः मैं आऊँगा ? यावत् जीवन तुम इसमें रहकर इसका दुरुपयोग किया, इसमें कोई अच्छा काम नहीं किया। इसलिए तेरा आना पुनः अब सम्भव नहीं है।

**आशय**—सद्गुरु इस पद में हंस के रूपक द्वारा संसार के इस मानव

रूप हंस से पूछते हैं कि अब इस मानव शरीर को छोड़कर जा रहा है, सन्त सद्गुरु की बात पर ध्यान नहीं दिया। अब तेरा क्या होगा ? मैंने तुझे बहुत चेताया, बहुत बताया कि यह नर तन मुक्ति का द्वार है। इसमें आत्मज्ञान की प्राप्ति कर ले। अपने को समझो, कोई वस्तु स्थायी नहीं है। समस्त मिथ्या है परन्तु तुमने एक भी नहीं सुनी। जिसका परिणाम तेरे लिए अच्छा नहीं हुआ। क्योंकि इस दुर्लभ देह यानी नर तन को अब तुम नहीं पा सकते हो।

# सबद् ३४

## विवेकी हंस प्रकरण

**हरिजन हंस दसा लिये डोलै, निरमल नांउँ चुनि-चुनि बोलैं ।।**
**मुक्ताहल लिए चोंच लोभावैं, मउन रहैं की हरि जस गावैं ।**
**मानसरोवर तट के वासी, रामचरन चित अन्त उदासी ।।**
**कागा कुबुधि निकट नहिं आवै, प्रतिदिन हंसा दरसन पावै ।**
**नीर छीर का करै निवेरा, कहैं कबीर सोई जन मेरा ।।**

**शब्दार्थ**—हरिजन–प्रभु भक्त। हंस दसा–शुद्ध, निर्मल चित्त वाला। डोलै–विहरे, विचरण करे। नाउँ–हरिनाम। चुनि-चुनि–माया-मोह से रहित होकर। बोलैं–भजै। मुक्ताहल–मुक्ताफल, मोती, आत्मज्ञान। चोंच–मुख, मनोवृत्ति, हृदय। लोभावैं–ललचावैं। मउन–शान्त। जस–भगवत् लीला। मानसरोवर–हृदय। तट–किनारा। कागा–कौवा, विषयो पुरुष। कुबुधि–खराब बुद्धि वाला।

**सम्बन्ध**—इसके पहले सद्गुरु ने कहा कि जो प्रभु भक्ति नहीं किया है जो आत्मतत्त्व को प्राप्ति नहीं किया है। वह जीवात्मा इस मानव शरीर को छोड़कर चला गया। पुनः सूर दुर्लभ शरीर पायेगा कि नहीं इसका कुछ निश्चय नहीं है। अब नीचे कहते हैं कि जो भक्तिभाव से हरि चिन्तन करता है वही संसार में सुखपूर्वक जीता है।

**मूलार्थ**—सदगुरु कहते हैं कि जो प्रभु के भक्त हैं। जो आत्मवेत्ता

हैं। जो स्वस्वरूप में स्थित हो गये हैं। वे ज्ञानी जन हंस की तरह शुद्ध हो जाते हैं, निर्मल हो जाते हैं और उसी शुद्ध स्वरूप में विचरण करते हैं। उनको संसार की मोह-माया नहीं व्यापती। वे सदा जीवन-मुक्त दशा में भ्रमण करते हैं। वे ज्ञानी जन, प्रभुभक्त, राम नाम जो माया से रहित है, उसी को शुद्ध-बुद्ध होकर भजते हैं। अर्थात् जो निर्मल आत्मज्ञान है, आत्मतत्त्व है, उसी का उपदेश सभी मनुष्यों को देते हैं और मुक्ताफल स्वरूप उस आत्मतत्त्व को अपने मुख कमल से बोलकर जिज्ञासु भक्तों को लुभाते हैं व जिसको सुनकर जिज्ञासु लोग इच्छा करते हैं कि मुझे भी वह आत्मज्ञान हो जाये। वे हरिभक्त व आत्मज्ञानी दूसरा वाद-विवाद नहीं करते। किसी से शास्त्रार्थं नहीं करते। व्यर्थं में किसी से झगड़े मोल नहीं लेते। वे प्रायः मौन रहते हैं। यदि कभी बोलते हैं तो भगवान के यश कीर्तन को ही बोलते हैं, गाते हैं। वे प्रभुभक्त पवित्र हृदय रूपी मानसरोवर के वासी होते हैं। अर्थात् उनका मन, हृदयनिवासी राम में लगा रहता है। वे कभी भी स्वरूप से विचलित नहीं होते। उन हरिभक्तों का मन सदा राम के चरणों में लगा रहता है और हरि-चरण कमल का ध्यान करता रहता है और अन्त में इस संसार की मोहमाया से उदास रहता है। उस प्रभु भक्त को संसार की मोहमाया नहीं व्यापती। उसकी मोहबुद्धि नष्ट हो गयी होती है। वह सभी प्राणियों में एक चैतन्य तत्त्व देखता है। अपने समेत सारे ब्रह्माण्ड में राम की ही बात जानता है। उस परमभक्त ज्ञानी को कभी विषय-बुद्धि नहीं सताती है एवं विषयी पुरुष की बुद्धि उसको स्पर्श नहीं करती है। जो काग के समान चेष्टा करने वाली होती है। वह भक्त सदा सावधान रहता है। कुसंस्कारों को पास नहीं फटकने देता है। इसलिए प्रतिदिन भक्त हंसा प्रभु का दर्शन पाता है। जो व्यक्ति नीर क्षीर का निवेरा करता है। क्या सत्य है ? क्या असत्य है ? इसका विवेक करता है और सत्य को समझकर असत्य का परित्याग कर देता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि वह मेरा भक्त है, वही हरि का जन है।

**आशय**—निर्मल चित्त वाला पुरुष कभी भी असत्य भाषण नहीं करता है। वह आत्मज्ञान का ही उपदेश करता है। असत्य पदार्थों की व्याख्या से मौन रहता है। केवल हरि के गुणों का गान करता है। वह भक्त शुद्ध हृदय वाला होता है। वह संसार से उदास रहता है। वह सदा भगवान के स्वरूप का चिन्तन करता है। उसके पास दुर्बुद्धि नहीं होती है। जिसके कारण निरन्तर हरि दर्शन पाते रहता है। वह सत्य असत्य की परख कर सत्य को ही ग्रहण करता है। इसलिए मैं कबीर कहता हूँ कि वही मेरा जन है, वही मेरा भक्त है। वही संसार से पार जाने वाला है।

# सबद ३५

## इष्ट अभिन्न प्रकरण

**हरि मोर पीउ मैं राम की बहुरिया, राम बड़ो मैं तन की लहुरिया।**
**हरि मोर रहटा मैं रतन पिउरिया, हरि का नाम ले कतति बहुरिया॥**
**छौ मास ताग बरिस दिन कुकरी, लोग बोलैं भल कातल बपुरी।**
**कहैं कबीर सूत भल काता, चरखा नहीं ये मुक्ति के दाता॥**

**शब्दार्थ**—पीउ–प्रियतम, पति। बहुरिया–वधु, पत्नी, भक्त, जिज्ञासु। तन को–तिनकी, उनकी, लघु, तुच्छ। लहुरिया–छोटी, छोटकी। रहटा–चरखा, मुक्ति का साधन। रतन–रत्न, मूल्यवान पत्थर, जीवात्मा। पिउरिया–धुनि हुई रूई का पुलिंदा, जो सूत कातते समय हाथ में लेकर काता जाता है, शुद्ध अन्तःकरण। कतति–काता, नाम-जप, ध्यान, पूजा। बहुरिया–बधु, उपासक। छौ मास–छः महीना, षट्चक्रों के भेदन का काल। ताग–तागा, सूर्य, नामजप व ध्यान, धारणा। बरिस–दिन, वर्ष पर्यन्त। कूकरि–सूत से लिपटी हुई आंठी का लक्षा, आत्म प्राप्ति, समाधि, सूत, साधना, नामजप। काता–प्रयास किया। चरखा–लौकिक नहीं। ये–यह।

**सम्बन्ध**—इसके पहले हंस का लक्षण दिखाया गया कि वह

निर्भीक होता है। सभी विकारों से परे होता है जिसके कारण परमतत्त्व की प्राप्ति कर लेता है। अब कहा जा रहा है कि उस तत्त्व का, उस हरि-प्राप्ति का उपाय क्या है? नीचे बतला रहे हैं कि निरन्तर साधना करने से ही प्रभु-प्राप्ति हो सकती है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि वह परम प्रभु उपासकों का पीव है, मेरा स्वामी है। भक्त उस राम की उपासिका वधु के समान हैं। यहाँ पर पीउ और बहुरिया में व्यंजना है। तात्पर्य यह है कि उपासना के अनेक स्वरूप हैं। हिन्दू समाज में ईश्वर को पिता मानकर भी उपासना की गयी है और माता मानकर भी उपासना की गयी है एवं विद्या द्रव्य मानकर भी उपासना की गयी है और अन्त में कहा गया है कि संसार में जितने भी पूज्य हैं उन पूज्यों के ऊपर हे प्रभु! तुम्हीं पूज्य हो। इसी प्रकार से प्रभु को पति मानकर और अपने को पत्नी मानकर भी उपासना की गयी है। अपवाद स्वरूप इसके विपरीत अन्य धर्मों में प्रभु को स्त्री मानकर उपासना की गयी है। इस अपने उपर्युक्त पद में सद्गुरु कबीर ने प्रभु-प्राप्ति की उपासना पति रूप में स्वीकार किया है। इसी प्रकार का पद कबीर ग्रन्थावली में मिलता है। जिसकी टीका अनेक प्रकार से विद्वानों द्वारा की गयी है। यहाँ पर कुछ लोग ऊपर कथित पद प्रायिक वचन मानते हैं परन्तु उक्त मान्यता अनुक्त है। जब साधक साधना में तल्लीन हो जाता है। उस समय उसके समक्ष जो भी रूपक उपस्थित होते हैं। उन्हीं रूपकों में प्रभु के रूपों का दर्शन पाता है। पहुँचे हुए योगी के लिए न कोई स्त्री होती है और न कोई पति होता है। वह भावग्राह्य के अनुसार तत्त्व में लीन हो जाता है। उसी के अनुसार सद्गुरु कबीर यहाँ कहते हैं कि हे हरि! हे प्रभु! आप भक्तों के प्रियतम पति हैं, संरक्षक स्वामी हैं। भक्त आप की उपासिका-कामनायुक्त होने के कारण पातिव्रत धर्मवाली पत्नी है। इसकी चर्चा रमैनी प्रकरण में हो चुकी है। आप कहते हैं कि हे राम आप बड़े हैं, सर्वोत्तम हैं। भक्त आप की लहुरिया कहिए आप से छोटा आप का अंशी है। आप समुद्र के समान हैं। भक्त

छोटे नाला के समान है परन्तु हमारे आपके बीच कोई विजातीय भेद नहीं है। स्वभावतः हम और आप सजातीय हैं। आप अविद्या और माया से परे होने के कारण उत्तम हैं। मैं अविद्या और माया के वश में होने के कारण अनुत्तम हूँ। इसलिए मैं आपकी अधीनता स्वीकार करता हूँ। भक्त आप का उपासक है आप मेरे मुक्ति के साधन हैं। जैसे चरखे पर सूत कात कर पट बुना जाता है। उसी प्रकार आप मुक्ति को तैयार करने वाला चरखा है परन्तु मैं भी रतन हूँ। यहाँ रतन में श्लेष है। जीवात्मा की ओर संकेत करता है। 'पिउरिया' कहिये शुद्ध धूनी हुई रूई जो सूत कातने के लिए प्रयुक्त की जाती है उसी प्रकार से साधना के लिए मैं शुद्ध अन्तःकरण वाला हूँ। तभी आप मेरे चरखा हो सकते हैं। इसलिए यह बहुरिया भक्त आप का नाम लेकर मुक्ति का मार्ग तैयार करता है। अर्थात् मुक्ति रूपी पट को बुनता है। निरन्तर छः माह तक निष्ठा पूर्वक जो साधना करता है, जो राम नाम का जप करता है, उसका मन तदाकार हो जाता है, स्थिर हो जाता है और वरिस दिन की

उपासना से समाधि लगने लगती है। जब मनुष्य की स्थिति सही दिशा की ओर हो जाती है, विकारों से परे हो जाती है। तब संसार के लोग उसकी प्रशस्ति करने लगते हैं और बोलने लगते हैं कि महात्मा अच्छी साधना किया है, अच्छा कर्म किया है। इसने अपना कल्याण कर लिया है। वह उपासक बपुरि जो संकुचित स्वभाव वाली थी, वह महान बन गयी है, उसकी साधना सिद्ध हो गयी है। इसलिये लोक में उसका गुणानुवाद होने लगा। सद्‌गुरु कहते हैं कि मैंने बहुत अच्छा सूत काता, बहुत अच्छी प्रकार से साधना की, जिसका परिणाम यह हुआ कि प्रभु की प्राप्ति हो गयी, परमतत्त्व के दर्शन हो गए परन्तु संसार के लोगों को यह जानना चाहिये कि प्रभु रूपी चरखा, जो हाथ से लौकिक सूत कातने वाला चरखा नहीं है, यह हरि चरखा मुक्ति का दाता है। कुछ टीका-कारों ने इस नाम जप का विरोध किया है और उनका कहना है कि नाम जप से मुक्ति नहीं मिलती। उक्त मत को साम्प्रदायिक व्यामोह मानना

चाहिए। क्योंकि सद्गुरु कबीर ने कहीं भी यह नहीं कहा है कि रामनाम जपने से मनुष्य की मुक्ति नहीं मिलती, केवल उपरिभाव से जपने वालों की अवहेलना उन्होंने की है। उनका मत है कि राम के बिना जीया नहीं जा सकता, राम के बिना मुक्ति नहीं मिलती। यहाँ पर स्त्री पुरुष के रूपक द्वारा परमतत्त्व में अभेद दिखाया गया है।

**आशय**—सद्गुरु कहते हैं कि हरि आत्मतत्त्व है। उपासक उसकी प्राप्ति करने वाली पत्नी के समान है। क्योंकि जब तक जीव मोह में है, तब तक जीव को अबला कहा गया है। वे कहते हैं कि मेरा राम बड़ा है। मैं हरि की अपेक्षा छोटी हूँ। वह प्रभु ही मुक्ति का साधन है और मनुष्य जीवन में ही उसकी प्राप्ति हो सकती है। जो उपासक प्रभु नाम जप करता है। वह छह महीना के जप से वृत्ति को एकाग्र कर लेता है। लगातार एक वर्ष तक साधना करने से स्वस्वरूप की प्राप्ति होने लगती है। चित्त की शान्ति होने पर बुद्धिमान लोग उसकी सराहना करते हैं। यह उपासक, यह महात्मा अच्छी साधना किया है। कबीर साहब कहते हैं कि अच्छी प्रकार से मैंने साधना की, जिसके कारण मुझे आत्मोपलब्धि हो गयी है परन्तु परमतत्त्व लोक सुख प्राप्ति करने का साधन नहीं है। वह मुक्ति देने वाला साधन है। इसलिए उपासक को चाहिए कि जिस प्रकार से पत्नी पति के साथ रहती है। दोनों में कोई विभेद नहीं होते, उसी प्रकार से भक्त को चाहिए कि वह प्रभु में अभेद होकर रहे।

## सबद ३६

**हरि ठग ठगत ठगौरी लाई, हरि के बियोग कैसे जियेहु रे भाई ॥**
**को काको पुरुष कवन काको नारी, अकथ कथा जम दिष्टि पसारी।**
**को काको पूत कवन काको बापा, को रे मरे को सहे संतापा ॥**
**ठगि ठगि मूल सभन को लीन्हा, राम ठगौरी काउ न चीन्हा।**
**कहैं कबीर ठग सौं मन माना, गइ ठगौरी जब ठग पहिचाना ॥**

**शब्दार्थ**—मूल–सार। काउ–कोई।

**सम्बन्ध**—इसके पहले कहा गया है कि प्रभु भक्तों का स्वामी एवं

सर्वोपरि है। तथा मानव मुक्ति का साधन भी वही है। उसको लोक सुख-दाता नहीं मानना चाहिए। अब कहा जा रहा है कि वह अपने को सदा छिपाये रखता है। उसकी माया उसके तथा उसके भक्तों के बीच यव-निका-पट है। जिससे मनुष्य को हरि दर्शन नहीं हो पाता है परन्तु वह माया हरि के द्वारा ही उत्पन्न की गयी है। इसलिये मूल रूप में हरि ही भक्तों को नहीं चाह रहा है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हरि ठग है! वह लोगों को ठगता है। ठगी रूपी ठगौरी हरि ने ही लायी है। यहाँ पर ठगौरी का तात्पर्य क्या है? यह समझना चाहिये। प्रायः सभी भक्ति ग्रन्थों में या गोपी काव्य के माध्यम से जो वाक्य उद्‌धृत किये गये हैं वहाँ भी हरि को चितचोर कहा गया है। अर्थात् जो हरि है वह भक्तों के साथ चित्त चोरी की ठगौरी करता है। उसके जो भक्त होते हैं उसकी ओर आकर्षित क्यों होते हैं? प्रभु जिसको चाहता है, उसके मन की एवं चित्त की चोरी कर लेता है अर्थात् अपनी ओर आकर्षित कर लेता है इसलिये यहाँ पर हरि ठग कहा गया है क्योंकि चित्त चोरी की ठगौरी हरि ने ही लायी है। लोक में ठग दो प्रकार के विश्रुत हैं एक तो माया ठग है जो लोगों का धन-जन आदि ठगती है, वह लोग के लिये दुःखदायी होती हैं। दूसरा ठग परमेश्वर को इसलिए कहा गया है कि भक्त की सारी लोक-वासना को हर लेता है। उसके विकारों को नाश कर देता है। कबीर साहब कहते हैं कि हरि को इस माने में ठग कहा गया है और यह कहा है कि हरि जैसे ठग के वियोग से भक्त जी नहीं सकता है। क्योंकि वह हरि रूपी ठग भक्तों का जीवनदाता है। वही सर्वात्म हरि मनुष्यों के लिए सर्वेसर्वा है। उसके समान पुरुष के लिए न स्त्री प्रिय है न स्त्री के लिए पुरुष प्रिय है। भला जो मनुष्य हरि को चीन्ह गया है, आत्मा को जान गया, अपने को पहचान गया है उसके लिए लोक की स्त्री और पुरुष एक दूसरे के लिए कुछ नहीं है। जो लोग प्रभु रूपी ठग को छोड़कर दूसरे लौकिक ठगों से सम्बन्ध स्थापित करते हैं अर्थात् स्त्री-पुरुष से सम्बन्ध जोड़ते हैं वह तो अकथ कथा है। उससे

सम्बन्ध नहीं करना चाहिये। अर्थात् उस सम्बन्ध का समर्थन नहीं करना चाहिये। लोक के स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध पर भगवान भास्कर के पुत्र की दृष्टि लगी हुई है ऐसे सम्बन्धों को भगवान दण्डधर छोड़ते नहीं हैं।

उसी प्रकार से जो लोक में पिता-पुत्र का सम्बन्ध है, वह भी निरर्थक है। एक दूसरे के शरीर के वियोग पर एक दूसरा रोता है, अर्थात् पिता के लिए पुत्र रोता है और पुत्र के लिए पिता रोता है। यह सम्बन्ध भी प्रभु सम्बन्ध से या आत्म-सम्बन्ध से हीन एवं तुच्छ है। क्योंकि प्रभु की ओर से चित्त को हटाकर इस प्रकार की ठगी अज्ञान के कारण हुई है। स्त्री-पुरुष, पिता-पुत्र जोड़ने वाला जो सम्बन्ध है यह लोक की ठगौरी है और यही ठगौरी मनुष्य का मूल धन अपहरण कर लिया है अर्थात् मनुष्यों का मूल धन दया, क्षमा, विवेक, वैराग्य, जप-तप, योग-युक्ति, ब्रह्मचर्य आदि धनों को संसार के सम्बन्ध रूपी ठग ने अपहरण कर लिया है। इसके विपरीत जो राम की ठगौरी है, जिसके द्वारा भक्तों के दोष छीन लिए जाते हैं और भक्तों के चित्त को प्रभु रूपी ठग अपहरण कर लेता है। इस ठगौरी को कोई भी व्यक्ति जो संसार में अनुरक्त है, चीन्ह नहीं पाया। मैं कबीर कहता हूँ कि ठग से तभी बचा जा सकता है जब सही ठग और गलत ठग को पहचान लिया जाय।

यहाँ पर विवेक करके लोक के ठगों से बचने के लिए एक ही उपाय कहा गया है एवं हरि रूपी ठग से सम्बन्ध जोड़ने के लिए कहा है और अन्त में कहा गया है कि हरि रूपी ठग में ही मन लगाना चाहिए।

**आशय**—प्रभु उपासक के अपराध को छीन लेते हैं जिसके कारण उपासक उनके विछोह का सहन नहीं कर पाता। प्रभु-प्राप्ति होने पर न स्त्री प्रिय रहती है न पुरुष प्रिय रहता है। इन लोक के सम्बन्धों को प्रभु भक्त यमराज की अकथनीय कथा मानता है। जिस पर यमराज दृष्टि फैलाये रहता है, इसलिए ज्ञानी पुत्र हो, चाहे ज्ञानी पिता हो, एक दूसरे के अभाव में संतप्त नहीं होते हैं। क्योंकि संसार का व्यवहार मनुष्यों के मूलधन को छीन लिया है। इसलिए भगवान की ठगौरी लोगों

को समझना चाहिए और भगवान रूपी ठग से ही अपना सम्बन्ध जोड़ना चाहिए। जब मनुष्य प्रभु को पहचान जायेगा, तभी संसार की ठगौरी चली जायेगी।

**टिप्पणी**—'तमभ्यनन्दत् प्रथमं प्रबोधितः प्रजेश्वरः शासनहारिणा हरेः' र० ३.६८ (संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ कोश–पृ० सं० १३२२)

# सबद् ३७

## हरि वंचना प्रकरण

**हरि ठग ठगत सकल जग डोलै, गौन करत मोसे मुखऊ न बोले।**
**बालापन के मीत हमारे, हमहिं तेजि कँह चलेउ सकारे॥**
**तुमहिं पुर्ख मैं नारि तुम्हारी, तुम्हरी चाल पाहनऊँ ते भारी।**
**माटिक देह पउन के सरीरा, हरि ठग ठग से डरे कबीरा॥**

**शब्दार्थ**—सकल–सबमें। डोलै–व्याप्त। गौन–परिगमन। मोसे–मुझसे। मुखऊ–मुख से। बालापन–छल-छिद्र से रहित स्वभाव। तेजि–तजकर। चलेउ–चले। सकारे–शीघ्र, प्रातः। पुर्ख-पुरुष, पोषणकर्त्ता। नारि–अल्पशक्ति, सकामी पुरुष। चाल–स्वभाव। पाहनऊँ–पाहन, पत्थर, बहुत गंभीर।

**सम्बन्ध**—प्रभु रूपी ठग भक्तों के लिए ठगौरी लाया है। वह ठगौरी दो प्रकार की है प्रथम ठगौरी तो वह मन को चुरा लेता है और दूसरी ठगौरी जो संसार से सम्बन्ध जोड़ती है वह उसकी माया के द्वारा की जाती है परन्तु जब दोनों ठगों का ज्ञान हो जाता है तब माया रूपी ठग का त्याग करके हरि रूपी ठग का साथ किया जाता है।

**भावार्थ**—अब नीचे कहा जा रहा है कि वह हरि तुमसे कहीं दूर नहीं है। वह किसी लोक विशेष में नहीं रहता है। वह इसी संसार में घूमते रहता है। अर्थात् सारे मनुष्यों के हृदय में वह विराजमान है। वह मनुष्यों के पास नित्य पहुँचता है और उनके सामने से गुजरता भी है परन्तु गमन करते हुए अज्ञानी मनुष्यों से बात नहीं करता। वह प्रभु बाल स्वभाव

वाले छल-छिद्र से रहित भक्तों का मित्र है और वही हमारा भी मित्र है। तात्पर्य यह है कि वह प्रभु अज्ञान को हरने के लिए सभी मनुष्यों के साथ लगा हुआ है। पर संसार में आसक्त मनुष्य उसको देख नहीं पाता है इसीलिए वह प्रभु भी उससे नहीं बोलता है। वह निष्पाप आत्माओं का ही मित्र है। इसलिए सद्गुरु कहते हैं कि हे प्रभु ! तू मेरे पास से जा रहा है और मुझको छोड़कर जा रहा है। बहुत शीघ्र जा रहा है अर्थात् जब तक योगी की निर्विकल्प समाधि नहीं होती है तब तक मन स्थिर नहीं होता है। स्वरूप से वंचना भी होती रहती है। सायुज्य समाधि में योगी की वृत्ति संसार में भी घूमने लगती है, जिसके कारण स्वस्वरूप का विछोह भी हो जाता है। ऐसी दशा में साधक का मन चंचल हो उठता है और बहुत शीघ्र योगी की वृत्ति अनात्मकारी हो जाती है। पुनः भक्त व साधक सावधान हो जाता है और प्रभु से प्रार्थना करने लग जाता है। कहता है कि हे प्रभो ! मुझको छोड़कर कहाँ जा रहे हो ? आप मेरे पुरुष हैं, हमारे प्राणदाता हैं। मैं सकामकर्मी होने के कारण आपकी स्त्री हूँ अर्थात् आप से कुछ चाहने वाली हूँ। आप का स्वभाव बहुत स्थिर है, बहुत गंभीर है। वह स्थावर पत्थर से भी स्थिर है। आप में हलचल नहीं होती है। आप एक समान रहते हैं और यह जीव स्त्री के समान चंचल-विचल होते रहता है। इसमें बड़ी कमजोरियाँ हैं। भाव यह है कि योगी का चित्त जब स्वरूप से विच्छिन्न होने लगता है, तब वह पुनः मनोवृत्ति को स्वरूपाकार करने के लिए प्रयत्न करता है। मनुष्य को चाहिए की सावधान होकर परमतत्त्व को पकड़े। उसी में चित्त को बाँधे, क्योंकि यह शरीर मिट्टी का है, नश्वर है, क्षणभंगुर है। इस शरीर में पवन के समान बिना रूप वाला आत्मा विद्यमान है। पता नहीं यह कब निकल जाएगा ? और जब यह मानव शरीर से बाहर निकल जायेगा, तब प्रभु-प्राप्ति नहीं हो पायेगी और वह प्रभु रूपी ठग जो भक्तों के चित्त को निर्मल कर देता है वह फिर मिलेगा नहीं। मैं कबीर कहता हूँ कि हरि रूपी ठग से इसलिए मैं भयभीत हूँ कि कहीं वह मेरे से अलग न

हो जाये, अर्थात् शरीर रहते आत्मज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए, प्रभु दर्शन कर लेना चाहिए। यदि जीते जी प्रभु प्राप्ति न हो सकी तब मृत्यु के पश्चात् हरि प्राप्ति होने वाली नहीं है, जब शरीर से पवन रूपी आत्मा निकल जायेगा।

**आशय**—आत्मा वा परमात्मा संसार में व्यापक है। सर्वत्र होने के कारण सब जगत में उसका परिगमन है परन्तु अज्ञानी मनुष्य से उसका सम्बन्ध नहीं जुट पाता है, वह तो भोले-भाले निष्पाप व्यक्तियों का ही मित्र है। इसलिए वह छल-छिद्र रहित हृदय वाले को नहीं छोड़ता है। जो मल विहीन है, जिनमें मल नहीं है, उसको निर्विकल्प समाधि सदा लगती रहती है। सविकल्प समाधि वालों का चित्त परमतत्त्व से क्षण-क्षण में हटते रहता है। इसलिए सविकल्पक योगी अपनी वृत्तियों को संसार से हटाकर स्व स्वरूपाकार करने में लगा रहता है। स्वस्वरूप में प्रचलन नहीं होता है। वह अडिग है। प्रचलन केवल मन में होता है। इसलिए शरीर रहते मन को निग्रह करके परमतत्त्व में लगाना चाहिये। जिससे आवागमन का चक्र छूट जाता है। अन्यथा इस पंचभूत वाली शरीर में, जिसमें नव छिद्र हैं, जिसमें आत्मा पवन के समान है, वह कब निकल जायेगा ? इसकी कोई निश्चित तिथि नहीं है। इसलिए सद्गुरु कहते हैं कि हे भाई ! हरि से भय लग रहा है कि वह स्व स्वरूप हरि अप्राप्त न हो जाये।

## सबद ३८

### भ्रमिक प्रकरण

हरि बिनु भरम बिगुरचन गंदा।
जंह जंह गयउ अपन पउ खोये, तेहि फंदे बहु फंदा॥
जोगी कहैं जोग है नीको, दुतिया अउर न कोई।
चूंडित मूंडित मउनि जटाधर, तिन्हुं कहां सिधि पाई॥
ग्यानी गुनी सूर कवि दाता, ई जो कहैं बड़ हमहीं।

**शब्दार्थ**—बिगुरचन–असमंजस, किंकर्त्तव्यविमूढ़, अनिश्चय की स्थिति। गंदा–मलयुक्त चित्त। पउ–पद, सम्मान, प्रतिष्ठा। खोये–नष्ट किया। जोगी–नाथ पंथी योगी। नीको–अच्छा, उत्तम। दुतिया–दूसरा। चूंडित–जैन संत व सिद्ध–जो बाल नोचवाता है और जो बाल नोचवाते समय कष्ट न माने तब उसको सिद्ध मान लिया जाता है। मूंडित–शैव संन्यासी, मुड़ मुड़ाने वाला। मउनि–मौनव्रत लेने वाला, जो बोलता नहीं है संकेत से कार्य करता है, स्मार्त लोग। जटाधर–लम्बे बाल रखने वाले नागा लोग, वैखानस, तपसी, तपस्यारत। ग्यानी–शास्त्र वक्ता। सूर–वीर क्षत्रिय। कवि–काव्य रचयिता, त्रयकालदर्शी। दाता–दान देने वाला, पुण्यकार्य करने वाला। ई–यह।

**सम्बन्ध**—पूर्व पद में सद्गुरु ने कहा है कि प्रभु परम व्यापक तत्त्व है। परन्तु अज्ञानियों से दूर है। यदि शरीर रहते उसकी प्राप्ति नहीं हो सकेगी तो वह देह पात होने के पश्चात् मिलने वाला नहीं है। साथ ही नीचे यह कहा जा रहा है कि उस प्रभु की प्राप्ति के बिना जीव सतत् दुःखी रहता है।

**मूलार्थ**—अब सद्गुरु कहते हैं कि हे भाई मनुष्यों! बिना प्रभु प्राप्ति के असमंजस की स्थिति बनी रहती है। मनुष्य कुछ करने में असमर्थ रहता है और जो भी कुछ करता है वह गंदा होता है एवं मल युक्त होता है अर्थात् लोक की प्राप्ति एवं लोक सुख की प्राप्ति तो होती है, पर बिगुरचन कहिए सदा वह अझुराहट में पड़ा रहता है। संसार से कभी उसका निस्तरण नहीं होता है। इसलिए परमतत्त्व अविनाशी हरि का स्मरण करना चाहिये। वही सब प्राप्तियों का प्राप्ति है तथा सब शुभ कर्मों का फल भी हरि प्राप्ति ही है।

यहाँ पर भक्ति का महत्व दर्शाया गया है बिना भक्ति के, बिना आत्मनिष्ठा के मनुष्य को न तो शान्ति मिलेगी न तो आत्मनिष्ठा होगी। यदि आत्मनिष्ठा का परित्याग कर केवल कर्मकाण्ड में मनुष्य लगा रहेगा, और तीर्थ-मूर्तियों में केवल भ्रमण करता रहेगा, तो इस पर कहा जा रहा है

कि जहाँ-जहाँ पर तुम जाओगे वहाँ-वहाँ पर तुम अपने सम्मान को खोओगे और जो तुम्हारा पद आत्मपद है उससे दूर होते जाओगे और जिस फंदा से तुम छुटना चाहता है। उस फंदे से अधिक फंदा कर्म काण्डियों के क्रिया-कलापों से प्राप्त होगा। क्योंकि सब अपनी-अपनी बात को श्रेष्ठ बताते हैं। योगी लोग कहते हैं कि योग ही अच्छा है। इसी से मुक्ति मिल जायेगी। योग के समान कोई दूसरा नहीं बताते।

यहाँ पर योग से तात्पर्य हठयोग एवं आसन-वासन से है न कि सहज योग से। क्योंकि सहजयोग का प्रतिपादन सद्गुरु ने 'कहरा' में स्वयं किया है। इसी प्रकार से चूंड़ित कहिए–जैन श्रावक ( साधु ) कहते हैं कि बिना पूर्ण अहिंसक हुए व बिना जैनमत के ग्रहण किये मुक्ति नहीं मिलेगी। यही सही मार्ग है। इसी प्रकार से शैव संन्यासी लोग कहते हैं कि बिना अद्वैत के एवं बिना वेदान्त पढ़े मुक्ति नहीं मिलेगी और मौन व्रत धारण करने वाले 'स्मार्त्त' लोग भी कहते हैं कि मौन व्रत ही महान है। उसी के द्वारा सिद्धि मिल सकती है। प्रभु प्राप्ति हो सकती है। इसी प्रकार से जटाधर बड़े-बड़े, लम्बे-लम्बे बाल रखने वाले, बालों की पगड़ी बाँधने वाले कहते हैं कि जब तक जटा नहीं बाँधोगे, तब तक भगवान के दर्शन नहीं होंगे। इस पर सद्गुरु कहते हैं कि इन वाह्याचारों से कार्य सिद्ध होने वाला नहीं है। न इससे प्रभु का दर्शन होगा। न इससे आत्मतत्त्व की प्राप्ति होगी। यह मात्र दिखावे का स्वरूप है इसलिए उपर्युक्त लोग कभी भी आत्म सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकेंगे। आत्म सिद्धि तो तब मिल सकती है जब शम-दम के द्वारा प्रभुभक्ति की जाय, गुरु सेवा की जाय, दया धर्म का पालन किया जाय। तभी मनुष्य सत्य का दर्शन पा सकता है। अन्यथा चाहे शास्त्रज्ञाता हो, चाहे शिल्पी हो, चाहे कोई कलाकार हो, चाहे कोई योद्धा क्षत्रिय हो, चाहे कवि हो अथवा दानी और पुण्यात्मा क्यों न हो, चाहे अनेक प्रकार के ज्ञान बताने वाला हो, चाहे नाना प्रकार के दान देने वाला हो, चाहे नाना प्रकार के पूजापाठ करने वाला हो परन्तु वास्तविक ज्ञान के बिना, प्रभु भक्ति के बिना, आत्म ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता।

**जहाँ से उपजे तहाँ समाने, छूटि गये सभ तबहीं ॥**
**बांयें दहिने तेजु बिकारा, निजु कै हरिपद गहिया ।**
**कहैं कबीर गूंगे गुर खाया, पूछे सो का कहिया ॥**

**शब्दार्थ**—जहाँ–माता का गर्भाशय । तहाँ–पुनः, उसी में । बांये–वाममार्गी, पापकर्मी । दहिने–पुण्यकर्मी, शुभ कर्म करने वाला । तेजु–तजकर । बिकारा–काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि । निजु–निज, स्व । हरिपद–चैतन्य पद, भगवान का चरण कमल । गहिया–ग्रहण कर । गूंगे–गूंगा, पहुँचा हुआ साधक । कहिया–कहेगा ।

**मूलार्थ**—शास्त्र ज्ञानी कहते हैं कि हम बड़े हैं । शिल्पी एवं कलाकार कहते हैं कि हम बड़े हैं । योद्धा कहते हैं कि हम देश की रक्षा करते हैं । कवि कहते हैं कि हम काव्य रचते हैं । बहुत जानते हैं हम अर्थज्ञाता हैं, इसलिए हम बड़े हैं । दान दाता कहते हैं कि हम अनेक प्रकार के पुण्य करते हैं इसलिए हम बड़े हैं । इन सभी में अपने-अपने बड़े होने की होड़ लगी है परन्तु उक्त लोगों का अभिमान मिथ्या है । क्योंकि जब तक हृदय में श्रद्धा उत्पन्न नहीं होगी, जबतक हरि की भक्ति नहीं करेंगे, तब तक जन्म-मरण से परे नहीं होंगे । जिन पाप-पुण्य मिश्रित कर्मों के द्वारा माता के गर्भ में आये थे, पुनः वाह्य क्रिया-कलापों के अभिमान से वासना के नष्ट न होने से वहीं पर समा जाओगे और दान-पुण्य, शूरता-वीरता, कविता का कवित्व, शास्त्र का ज्ञान ये सब शरीर पात होने पर छूट जायेंगे। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि जो अशुभ कर्म हैं, जिनसे काम्यकर्म की उत्पत्ति होती है, जो वाममार्ग जन्य हैं और जो शुभ कर्म हैं और नाना प्रकार के क्रिया-कलाप हैं, जिनसे काम, क्रोध, लोभ, मोह की उत्पत्ति होती है । अनेक प्रकार के अहंकार उत्पन्न होते हैं, उन सभी प्रकार के शुभाशुभ विकारों का परित्याग करके जो अपना हितैषी है, जो अपना वास्तविक स्वरूप है, उस हरिपद एवं परातत्त्व को ग्रहण करो । अर्थात् भक्ति भावना से गुरु एवं परमेश्वर की सेवा करो तथा उपासना करो । जब तुम सभी प्रपंचों से विरत हो जाओगे, तभी तुझे आत्मतत्त्व की प्राप्ति हो

जायेगी, तुम्हारी मनोवृत्ति स्व स्वरूप में लय हो जायेगी, तुम उस आनन्द सागर में पहुँच जाओगे, जहाँ पर निर्वाच्य हो जाओगे। वह हरि पद ऐसा है कि कहने में नहीं बनता है। यदि किसा को हरिपद प्राप्त हो जाता है तो उससे पूछोगे तो वह कुछ नहीं कह सकेगा, क्योंकि हरि व्यापक तत्त्व है, उसमें लय होने पर व्यक्ति का व्यष्टि रूप समाप्त हो जाता है, वह कथन एवं मनन से परे हो जाता है।

मैं कबीर कहता हूँ कि वह गूंगवत् हो जाता है। यदि उससे हरिपद के बारे में पूछोगे तो वह कुछ कहने में असमर्थ हो जायेगा।

**टिप्पणी**—ये दो पंक्तियाँ बनवारी दास की प्रति शब्द अड़तीस में अधिक हैं—

> वार पार की खबरि न जांनो, फिर्‌यौ सकल बन ऐसे।
> यहि मन बोहिथ के कउवा ज्यूँ, रह्यौ ठग्यौ सौ वैसे॥

## सबद ३९

### धूर्त प्रकरण

**ऐसो हरि सों जगत लरतु है, पंडुर कतहुँ गरुड़ धरतु है।**
**मूंस बिलाई कैसन हेतू, जंबुक करै केहरि सो खेतू॥**
**अचरज एक देखो संसारा, सोनहा खेदे कुंजर असवारा।**
**कहत कबीर सुनो संतो भाई, इहै संधि काऊ विरलै पाई॥**

**शब्दार्थ**—लरतु-संघर्ष। जगत–संसार के लोग। सों–से। ऐसो–इस प्रकार से। पंडुर–एक प्रकार का पक्षी जिसको 'पेण्डुक' कहते हैं, जो कबूतर के आकार-प्रकार का होता है, सर्प, जीव, सकाम कर्मी। गरुड़–एक आकाशगामी पक्षी जो गिद्ध के आकार-प्रकार का होता है। भगवान विष्णु का वाहन, सर्प भक्षी। मूंस–मूषक, जीव। बिलाई–माया। कैसन–किस प्रकार का। जंबुक–शृंगाल, धूर्त, डरपोक। केहरि–सिंह, ईश्वर। खेतू–खेती करना सकाम कर्मों की सिद्धि, लोक प्राप्ति। अचरज–आश्चर्य, संसारा–संसार में। सोनहा–श्वान, पापकर्मी। खेदे–भगावे, महावतपन

करे। कुंजर–हस्ती, माया। असवारा–आरूढ़। इहै–यह। संधि–भेद, रहस्य, मध्य।

**सम्बन्ध**—ऊपर पद में कहा गया है कि परमतत्त्व की प्राप्ति के बिना मानव दिशा शून्य रहता है। इसलिए जहाँ-जहाँ जाता है, जिन-जिन वस्तुओं में सुख की कामना करता है, वे और दुखदायी हो जाती हैं। जबतक मनोविकार दूर नहीं हो जाते हैं तब तक न तो योग से कोई लाभ है न जैन श्रावक बनने से, न संन्यास लेने से कोई लाभ है। न मौन धारण करने से कोई लाभ है, न जटा रखाने से कोई हित है, न शास्त्र के ज्ञान से कोई लाभ है, न कलाकार होने से सुख की प्राप्ति होती है, न बहुत बड़े योद्धा बनने से कोई लाभ है। इसी प्रकार से काव्यादि ग्रन्थों के रचने से, अनेक प्रकार के दान देने से भी कोई लाभ नहीं है, जब तक मनुष्य के अन्तः करण शुद्ध नहीं होते हैं तब तक उसका हित साधन नहीं हो सकता है। ये सब जहाँ के तहाँ रह जाते हैं। उपर्युक्त बातों को छोड़कर गुरु एवं भगवान की भक्ति करनी चाहिए, तभी मनुष्यों को शान्ति मिल सकती है। क्योंकि वह हरिपद अकथनीय है, परन्तु काम्य कर्म से युक्त मनुष्य उस परमतत्त्व की प्राप्ति करना चाहता है। इस पर सद्गुरु कहते हैं कि संसार के लोग कैसा दृश्य उपस्थित किए हैं। सो नीचे देखो।

**मूलार्थ**—भला सांसारी मनुष्यों को देखो जो रात-दिन माया मोह में लगे हुए हैं जो महाभिमानी हैं, जो राग-द्वेष से जल रहे हैं, जिनकी परिग्रह नहीं छुटी है जो वासनारत हैं। संसार का ही सुख चाह रहे हैं। जो उन्मत्त हो मद में चूर हैं। वे लोग भी हरि की प्राप्ति के लिए उनसे संघर्षरत हैं। अर्थात् जो 'अहं ब्रह्मास्मि' का नारा लगाते हैं, उद्घोष करते हैं किहम ब्रह्म हैं। भला पण्डुक पक्षी के समान निर्बल मनुष्य कभी गरुड़ से जूझ सकता है ? अर्थात् विषयी मनुष्य परमतत्त्व की प्राप्ति कर सकता है ? जो सर्प के समान अभिमानी है ? उसके लिए भगवान गरुड़ के समान हैं ? उसका तो नाश ही कर देते हैं। गरुड़ में "जहद स्वार्थी" का तात्पर्य यह है कि अज्ञ मनुष्य अपने शत्रु से ही भोजन की प्राप्ति करना चाहता है।

गरुड़ सर्प का दुश्मन है, शत्रु है, और सर्प अपनी मूर्खता के वश गरुड़ को ही खाना चाहता है। इसी प्रकार से अज्ञानी मनुष्य को जो मोह, माया व अभिमान भक्षण करता है, यह उसी की प्राप्ति में लगा हुआ है, उस पर भी परमतत्त्व की प्राप्ति करना चाहता है, क्या यह संभव है ?

सभी जानते हैं कि मूषक और बिलाई में कभी मित्रता की संभावना नहीं है। बिल्ली का आहार मूसा है परन्तु अपनी अज्ञानता वश मूसा बिलाई से सम्बन्ध जोड़ना चाहता है। इसी प्रकार से अज्ञानी मनुष्य माया रूपी बिली से अपने हित की रक्षा करना चाहता है और माया में रहकर आत्म प्राप्ति करना चाहता है। धूर्त मनुष्य जो बहुत डरपोक है, बहुत छली है, वह भगवान से अपना हित साधना चाहता है। उसी प्रकार से जैसे शृंगाल सिंह के साथ मित्रता करके खेती बारी करे अर्थात् दोनों एक साथ होकर शिकार करें। यह भी संभव नहीं है। क्योंकि सिंह का आहार जम्बुक है परन्तु अपनी मूर्खता वश जम्बुक सिंहों को बैल बनाकर अपनी खेती करना चाहता है तथा संग्राम करता है। इसी प्रकार से अज्ञानी मनुष्य ईश्वर को भी अपना सेवक समझता है। भला यह कितना आश्चर्य है कि ये संसार के मनुष्य कुछ विवेक विचार नहीं करते हैं। सारा काम उलटे ही करते हैं। कुत्ता के समान अनेक वासनाओं से ग्रसित हैं जो संसार के सुख पर सवार हैं, वह भी माया को त्यागने की बात करते हैं। जैसे अज्ञानी कुत्ता महाशक्तिशाली हाथी पर चढ़कर उसको अपने वश करके खेदना चाहता है। आनन्द लेना चाहता है।

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे संतजन ! मेरी बात सुनो। हे भाई जो यह रहस्य है, यह जो भेद है, हरि प्राप्ति की जो संधि है, वह कोई बिरला मनुष्य ही प्राप्त कर सकता है। अन्य संसार के मनुष्यों के मान का नहीं है।

**आशय**—जो अनिवर्चनीय है। बहुत मूल्यवान है, जो शीघ्र मिलने वाला नहीं है। उस परमार्थ को तुच्छ मनुष्य पाना चाहता है। उसी प्रकार से जैसे पण्डुक पक्षी-अपने विरोधी व अपने से सबल गरुड़ को पकड़ना चाहता

है। संसार की मोह माया से सम्बन्ध करना हितकर नहीं है। जैसे मूस-बिलाई का सम्बन्ध, जैसे सियार सिंह का संग, जैसे कुत्ता हस्ती का संग। इसी प्रकार से जो संसार में लगा हुआ है, वह हरि को प्राप्त नहीं कर सकता है, जब तक कि संसार का त्याग नहीं करता है। कुछ टीकाकारों ने उक्त पद का अर्थ ज्ञानी से लड़ाई, अज्ञानियों की किया है कतिपय टीकाकारों ने तटस्थ आदि अर्थ किये हैं। परन्तु ऊपर के प्रसंग से मेल न होने के कारण उस पर पुनः विचार किया गया है। अधिक लोग पंडुर का अर्थ सर्प किये हैं, परन्तु यहाँ निर्बलता सबलता की लड़ाई है और उसके द्वारा अपने हित साधन की बात कही गयी है। सारा पद पामर लोगों से सम्बन्धित है। इसलिए कृत अर्थं अधिक उपयुक्त है। यदि पण्डुर का अर्थं सर्प से लिया जाय तो भी कोई आपत्ति नहीं है तब अर्थं होगा कि अज्ञानी मनुष्य अपने शत्रु से ही अपना हित साधन चाहता है जो होने वाला नहीं है।

## सबद ४०

### प्रलाप प्रकरण

**पंडित बाद बदै सो झूठा।**
**राम के कहे जगत गति पावै, खांड़ कहै मुख मीठा॥**
**पावक कहै पाव जो डाहै, जल कहै त्रिखा बुझाई।**

**शब्दार्थ**—पंडित–व्यवस्थावादी ब्राह्मण। बाद–सिद्धान्त, विवाद, निष्प्रयोजन, प्रतीज्ञा। बदै–कहै। झूठा–निष्प्रयोजन। जगत–संसार के लोग। खांड़–शक्कर। पावक–अग्नि। पाव–पैर। डाहै–जलै। त्रिखा–प्यास।

**सम्बन्ध**—इसके पहले कहा गया है कि संसार में लिपटा हुआ मनुष्य चाहता है कि हम परमतत्त्व से प्रेम करें परन्तु जबतक मोह माया से विरत नहीं होता है तब तक यह संभव नहीं है और अन्त में कहा गया है कि यह रहस्य कोई बिरला मनुष्य ही समझ पाता है कि भगवान का भजन

किस प्रकार किया जाय। अब आगे यह दिखाया जा रहा है कि केवल शब्द उच्चारण मात्र से ही वास्तविक लाभ नहीं होता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे पण्डित जी! जो यह सिद्धान्त आप बना लिए हैं कि जो मैं कहता हूँ वही सत्य है और मैं सिद्धान्तवादी हूँ, तो आप का यह दावा निष्प्रयोजन का है। आप कहते हैं कि राम-नाम कहने से मुक्ति मिल जायेगी। चाहे कितना भी कोई पाप करे पर मात्र नाम जपने से पापों से छुटकारा मिल जाता है? परन्तु मैं कहता हूँ, यदि राम के कहने से जगत के लोग मुक्ति पा जायेंगे तो मात्र खांड कहने से मुख भी मीठा होना चाहिए। इसी प्रकार से अग्नि का नाम लेने से ही पैर जलना चाहिये और प्यासा मनुष्य जल-जल रटै तो उसकी प्यास बुझ जानी चाहिए।

**भोजन कहै भूख जो भाजै, तो दुनिया तरि जाई॥**
**नर के संग सुवा हरि बोलै, हरि परताप न जाने।**
**जो कबहूँ उड़ि जाय जंगल में, तो हरि सुरति न आने॥**
**बिनु देखे बिनु दरस-परस बिनु, नाम लिए का होई।**
**धन के कहे धनिक जो होवै, निरधन रहै न कोई॥**
**सांची प्रीति विखै माया सो, हरि भगतन की हांसी।**
**कहैं कबीर एक राम भजै बिनु, बान्हे जमपुर जासी॥**

**शब्दार्थ**—भाजै–दूर हो। दुनिया–संसार, संसार के लोग। सुवा–शुक, अज्ञ मनुष्य। परताप–प्रताप, महत्व। कबहूँ–कभी। सुरति–ध्यान, ख्याल, स्मरण। आने–लावे, करे। दरस–दर्शन। परस–प्राप्ति, स्पर्श। नाम–राम का नाम।

**मूलार्थ**—और भोजन कहने से भूख भी दूर हो जानी चाहिए। यदि मात्र राम-नाम जपने से मुक्ति होती तो संसार के सभी लोग अब तक तर गए होते, परन्तु ऐसा नहीं देखा गया। कारण कि जान-अनजान में किसी न किसी प्रकार संसार के सभी लोग अपने-अपने मतानुसार राम का नाम उच्चारण करते हैं व अल्लाह, गाड आदि कहते हैं। जिनका जो नाम है

उसको वे लोग जपते हैं। जैसे मनुष्य के सिखलाने पर शुक भी राम-नाम बोलता है पर ज्ञान हीन होने के कारण वह हरि के महत्व को नहीं जानता है और जो कभी मौका पावे तो जंगल में भी उड़ जाता है। वहाँ जाने पर बिल्कुल वह हरि नहीं कहता। इसलिए मूर्ख मनुष्य कितना भी राम-नाम चिल्लावे परन्तु हित साधन होने वाला नहीं है। यहाँ 'सुवा' में श्लेष है। तात्पर्य यह है कि जैसे शुक सिखाने पर राम-नाम कहता है पर राम को नहीं जानता है। उसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य देखा-देखी राम-नाम का जप करता है परन्तु राम-नाम क्या है? उसके क्या अर्थ हैं, वह कुछ भी नहीं जानता है। इसलिए उसके राम-नाम कहने से कोई लाभ नहीं होता है। यहाँ पर राम-नाम कहने का विरोध नहीं है, विरोध मात्र नासमझी का है। क्योंकि आगे कहा जा रहा है कि जब कभी ज्ञानियों का साथ छूट जाता है तो उस मूर्ख मनुष्य का ध्यान भी हरि नाम से हट जाता है, क्योंकि वह हरि के महत्त्व को नहीं समझता है। जैसे शुक जंगल में जाने पर राम की ओर सुरति नहीं करता है, उसी प्रकार अज्ञ मनुष्य भी हरि नाम को भूल जाता है। अब आगे कहा जा रहा है कि बिना हरि के ध्यान के बिना, उसके दर्शन के बिना, उसके स्मरण के बिना क्या कुछ होने का है, केवल उसके नाम लेने से। यहाँ पर केवल राम-नाम लेने से अर्थ यह है कि गुरु के द्वारा पूर्ण रूप से राम तत्त्व को समझा नहीं गया और समझकर उसकी पूर्ण प्रक्रिया नहीं अपनायी गयी और उस राम विषयक उपदेश का स्पर्श भी नहीं हुआ। इसलिए अज्ञ मनुष्य कुसंगति में पड़ जाने पर प्रभु से विमुख हो जाता है। उसके सभी किये-कराये उसी प्रकार से व्यर्थ हो जाते हैं जैसे धन का इच्छुक व्यक्ति परिश्रम न करे, धन कमाने का उपाय न करे, केवल धन-धन कहे तो वह कभी भी धनिक नहीं हो पाता है। यदि कोई धन-धन कहने मात्र से धनी हो जाता तो कोई निर्धन नहीं रह पाता। अब कहते हैं कि इन अज्ञानी मनुष्यों की सच्ची प्रीति मायिक विषयों से है। सदैव मायिक विषय में अनुरक्त हैं और ऊपर से राम-नाम, ओऽम्-ओऽम्, 'अहं ब्रह्मास्मि' का उद्घोष करते

हैं परन्तु ऐसे हरिभक्त केवल परिहास के पात्र हैं। क्योंकि अनुयायी तो माया के हैं, संसार के हैं और कहते हैं, हम प्रभु के भक्त हैं, ज्ञानी हैं, ध्यानी हैं। सद्गुरु कहते हैं कि मैं कबीर कहता हूँ कि एक राम भजे बिना इस संसार के जीव मृत्यु की रस्सी में बंधकर रवि तनय के लोक में जायेंगे। यहाँ 'एक' में व्यंजना है। 'एक' के कई अर्थ होते हैं परन्तु यहाँ पर एक से तात्पर्य यह है कि जो राम सबकी आत्मा है, जो सबमें विराजमान है, जो नित्य रहने वाला है, जो अविनाशी है, जो अचिन्त्य है। अपने स्वरूप सहित संपूर्ण विश्व में व्याप्त है उस प्रभु को जाने बिना यमलोक की यात्रा करनी पड़ेगी। जानने का तात्पर्य भी यही है कि हमारे सहित सारे जीव जन्तुओं में एक आत्म तत्त्व विद्यमान है। हम भी राम हैं, तुम भी राम हो, यावत् चराचर सब राम मय हैं। इस तरह के चिन्तन को राम भजन समझना चाहिए।

**आशय**—सद्गुरु कहते हैं कि मात्र सिद्धान्त का निरुपण करने से काम नहीं चलेगा। केवल सिद्धान्त निरुपण निष्प्रयोजन होता है। यदि यह कहा जाय कि परम तत्त्व कहने मात्र से कोई लाभ होता है वा आत्म सन्तुष्टि हो जाती है तो यह मान्य नहीं हो सकता जैसे खाड़ कहने से मुख मीठा नहीं होता है, जैसे पावक कहने से ताप नहीं लगता है, जैसे पानी कहने से प्यास नहीं बुझती है, भोजन कहने से भूख नहीं जाती है, इसी प्रकार से मात्र बाद बदने से कार्य की सिद्धि नहीं होती है यदि 'ब्रह्मास्मि' कहने व रामनाम कहने से मुक्ति होती तो सारा संसार तर गया होता। अज्ञानी मनुष्य कितना भी सत्कर्म करे कितना भी राम-नाम चिल्लाये परन्तु वह उस मूर्ख शुक की भाँति होता है जो असंग होने पर सब कुछ भूल जाता है। क्योंकि वह परम तत्त्व का महत्त्व नहीं समझ पाया था, किसी भी सिद्धान्त को जब तक पूरा न समझा जाय, जब तक उसका अनुपालन न किया जाय, जब तक श्रवण, मनन, निदिध्यासन न किया जाय, तब तक कुछ होने वाला नहीं है। जैसे धन आदि कहने से निर्धनता नहीं भागती है वैसे मात्र सिद्धान्त कहने से कुछ होने वाला नहीं है।

क्योंकि आत्मनिष्ठा तो मायिक विषयों में है। इसलिए इस प्रकार का सिद्धान्तवादी हरि भक्त परिहास का पात्र होता है। जब तक कि वह सच्चे मन से, सच्चे हृदय से एकात्म तत्त्व राम को नहीं भजता है, तब तक वह जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहता है।

## सबद ४१

**पंडित देखहु मन मंह जानी।**
**कहुँ दऊँ छूति कहाँ सौं उपजी, तबहिं छूति तुम मानी॥**
**नादे विंदे रिधुर के संगे, घटहीं मा घट सपचै।**
**अस्ट कँवल ह्वै पुहुमी आया, छूति कहाँ ते उपजै॥**
**लख चउरासि नाना बासन, सो सभ सरि भौ माटी।**
**एकै पाट सकल बैठाये, छूति लेत दऊँ काकी॥**
**छूतिहिं जेवन छूतिहिं अंचवन, छूतिहिं जगत उपाया।**
**कहैं कबीर ते छूति विवरजित, जाके संग न माया॥**

**शब्दार्थ**—मंह–में। कहुँ–कहो। दऊँ–धौं, भला। छूति–नीचता। सौं–से। उपजी–उत्पन्न हुई। नादे–नाद, शब्द, आकाश, माता का उदर, शिष्य। विंदे–विन्द, वीर्य। रिधुर-रुधिर, माता का रज, पुत्र। घटही–घट, शरीर। सपचै–पकै, पूर्ण हो गया। अस्ट कंवल–मूलाधार। ह्वै–होकर। पुहुमी–पृथ्वी। लख चउरासी–चौरासी लाख योनियाँ। नाना–अनेक। बासन–बर्तन, शरीर। सरि–सड़कर। भौ–हुआ। माटी–मिट्टी। एकै–एक ही। पाट–वस्त्र, त्वचा, पीढा, पृथ्वी। काकी–किसकी। जेवन–भोजन करते समय। छूतिहिं–छूति। अंचवन–मुंह धोते समय, स्नान। जगत–प्राणी मात्र। उपाया–उत्पन्न किया। ते–वे। विवरजित–रहित, मुक्त। जाके–जिसके। माया–ममता, ऐश्वर्यादि।

**सम्बन्ध**—पूर्व पद में दर्शाया गया है कि मात्र सिद्धान्त निरुपण से कार्य-संपादन नहीं हो सकता है और न रामतत्त्व की प्राप्ति हो सकती है। क्योंकि मनुष्यों की सारी प्रीति व प्रतिष्ठा मायिक प्रपंचों से है। इसलिए

सद्गति नहीं मिलती। परिणाम स्वरूप भव बन्धन लगा रहता है और अन्त में कहते हैं कि बिना प्रभु प्राप्ति के सारे प्राणी बाँधकर यमलोक में जाते हैं और अब नीचे कहा जा रहा है कि जो जगत का प्रपंच खड़ा किया गया है। वर्णाश्रम का विचार किया गया है, जिसके कारण मनुष्य परमतत्त्व से वंचित रहता है। वह अस्पृश्यता कहाँ से उत्पन्न हुई यह विचारणीय विषय है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर व्यवस्थावादी पंडितों से कहते हैं कि हे पंडित जी जो! आप ने संसार में वर्णाश्रम का निर्माण किया है, जिसके कारण चतुर्थ वर्ण को अस्पृश्य माना है। उससे बात करने पर एवं स्पर्श होने पर आप स्नान करके सूर्य दर्शन करने की बात कहते हैं। इस बात को आप मन में विचार करके देखिए और उसका ज्ञान करिये कि यह छूत रूपी दोष कहाँ से उत्पन्न हो गया। यह विचार कर आप मुझे बताइए जिससे मुझे भी इसकी जानकारी हो और विचार करने के बाद ही इसको आप छूत की संज्ञा दें और उस पर आचरण करें। मैं तो कहता हूँ कि आकाश स्वरूप माता के उदर में पिता का वीर्य और माता का रज एक साथ होकर पवन के संचरण से इस शरीर में ही, शरीर रूपी घट में संचय कहिये परिपक्व होता है और नव मास पूरा होने पर मूलाधार होकर इस पृथ्वी पर अवतीर्ण होता है। जब जन्म लेने का एवं बाहर आने का एक ही स्थान एवं मार्ग है। तब यह छूत एक दूसरे में कहाँ से उत्पन्न हो गयो। तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का जो भेद रचा गया है, भला इसमें कौन सी मौलिकता है। क्योंकि किसी के शरीर पर कोई जाति सूचक चिह्न नहीं रहते और अनजाने मनुष्य को पूछना पड़ता है कि तुम किस जाति के हो। दूसरी बात प्रजनन स्थान मनुष्य मात्र का एक है और प्रसव द्वार भी एक ही है। सभी के मल मूत्र में दुर्गन्ध होती है तो इसमें विशेषता किसमें किस चीज की है और जिन पृथ्वी आदि तत्त्वों के अंश से मानव शरीर निर्मित हुआ है, उन पंचभूतों में चौरासी लाख योनियों का नाना प्रकार

के शरीर सब सड़ गल के मिट्टी हो गये हैं और वे सब तत्त्व अपने-अपने अंश को ग्रहण कर लेते हैं। उन्हीं पंचभूतों से ब्राह्मण से लेकर अन्त्यज तक के शरीर निर्मित हुए हैं और सभी में त्वचा रूपी वस्त्र लिपटा हुआ है। तथा पाट स्वरूप पृथ्वी पर सबका निवास है। यह भी नहीं कि ब्राह्मण सौ वर्ष तक जीता है और अन्त्यज नब्बे वर्ष तक वैश्य साठ वर्ष और शूद्र पचास वर्ष तक जीता हो, यह भी कोई नियम नहीं है और यह भी नियम नहीं है कि एक रोगी रहता है और दूसरा निरोग रहता है। जब सब बातें सब में समान है। सभी मानव मरणशील हैं, चाहे वे जंबूद्वीप के हों, चाहे यूरोप के हों, चाहे वे अमेरिका के हों। तब आप कहाँ से गोरे काले का भेद उत्पन्न किये हैं। हमारे देखने में तो सृष्टि के सारे मनुष्य एक समान हैं। सभी में क्षुधा पिपासा व्याप्त होती है। इससे सिद्ध हुआ कि सभी लोग समान धर्मवाले हैं। तब भला आप किसमें छूत लगाते हैं। मैं तो कहता हूँ जब तक मानव क्षुधा से पीड़ित है। क्षुधा तृप्ति के लिए दौड़ता है। उसमें संतोष नहीं है, धैर्य नहीं है। तब तक वह छूत का शिकार है अर्थात् उसमें दोष है। इसी प्रकार से जब तक स्नान करता है, मुख मार्जन करता है। वह दोषों को निवारण करने के लिए करता है। इसलिए छूत उसके अन्दर है। क्योंकि यह संसार अपवित्रता के कारण ही उत्पन्न हुआ है। यदि मानव निर्दोष होता तो क्यों इस संसार में वह जन्म ग्रहण करता। इसलिए संपूर्ण ब्रह्माण्ड के प्राणियों के साथ छूत लगी हुई है। क्योंकि सभी तृष्णा से आकुल हैं। सभी अशान्त हैं। इसलिए सभी लोग छूत के शिकार हैं और यही अज्ञान का दूसरा रूप है। बिना अज्ञान के मनुष्य को दुःख नहीं होता। इसलिए सबके साथ छूत लगी हुई है।

सद्गुरु कहते हैं कि मैं कबीर कहता हूँ कि छूत से विवर्जित और मुक्त वही पुरुष है जिसके साथ माया नहीं है और जो तृष्णा को जीत लिया है जो पूर्ण शान्त है, जो प्रभु में लीन है, जो परम तत्त्व को पहचान गया है, जिसके पंच क्लेश नष्ट हो गये हैं। उसी में छूत नहीं

है। शेष संसार के सभी मनुष्य छूत से आवृत्त हैं, चाहे वे ब्राह्मण हों, चाहे वे सैयद हों. चाहे वे शेख हों, चाहे वे शूद्र हों। जब तक उनका सम्बन्ध संसार से है तब तक वे छूत का शिकार होते रहेंगे।

**आशय**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे पंडित जी ! अपने मन में विचार कर देखो और समझो मेरे और तेरे में कहो कि भला यह छूत कहाँ से उत्पन्न हो गयी। जिसके कारण तुम एक दूसरे से छुआछूत का व्यवहार रखते हो। चाहे वह शिष्य हो, चाहे वह पुत्र हो, दोनों में रुधिर का सम्बन्ध एक है और दोनों माता के गर्भ में रज-वीर्य के द्वारा तैयार होते हैं। पुष्ट होने पर एक ही द्वार से सभी निकलते हैं। इसलिए वह छूआछूत तुम्हारे मन की कल्पना है क्योंकि जिस कुँए का पानी तुम पीते हो, जिस नदी का जल पीते हो। सभी जल प्राणी पराभव होकर उसी में मिल जाते हैं। सभी के रहने का स्थान एक ही स्थान पृथ्वी है। इसलिए किसी में छूत मानना तुम्हारे मनोविकार का द्योतक है। जब तक तू संसार के व्यवहार में लगे रहोगे, तब तक तेरे साथ छूत लगी रहेगी। क्योंकि अज्ञान के कारण ही तुम्हारा जन्म हुआ है। इसलिए छूत से मुक्त वही महात्मा है, जो संसार के मोह माया से मुक्त है।

# सबद ४२

## पंडितवाद प्रश्न प्रकरण

**पंडित सोधि कहो समुझाई, जाते आवागमन नसाई।**
**अरथ धरम अउ काम मोक्ष कहु, कउन दिसा बसे भाई॥**
**उत्तर कि दखिन पूरब कि पछिम, सरग पताल कि मांही।**
**बिना गोपाल ठउर नहिं कतहूँ, नरक जात दऊँ काहैं॥**

**शब्दार्थ**—सोधि–शुद्ध कर, विचारकर। जाते–जिससे। आवागमन–जन्म मरण। नसाई–नष्ट हो। अरथ–अर्थ, द्रव्य, ऐश्वर्य। धरम–धर्म, लोक–परलोक की सिद्धि। काम–मनोवांछित फल, इच्छा की पूर्ति, कामना। मोक्ष–मुक्ति पद। कहु–कहो। कौन–किस। ठउर–ठौर।

**सम्बन्ध**—इसके ऊपर सद्गुरु ने कहा है कि हे व्यवस्थावादी पंडित जी ! भला विचार कर कहो कि यह छुआछूत कहाँ से उत्पन्न हो गयी। क्या इसमें कोई मौलिकता है। यदि नहीं है तो आप का आत्म गौरव निरर्थक है। क्योंकि आप के पास अस्पृश्यता का कोई भी प्रमाण नहीं है। मैं तो कहता हूँ कि सारा जगत अस्पृश्यताच्छादित है। अस्तु अस्पृश्यता उसी व्यक्ति में नहीं है, जो जगत के व्यवहार से मुक्त है। अब नीचे कहा जा रहा है कि मुझे यह बताइए कि संसार से आने-जाने वाला कौन सा मार्ग है, जिसकी प्राप्ति से पुनः आना-जाना न पड़े।

**मूलार्थ**—हे पंडित ! मुझे निर्णय करके सार वस्तु को समझाओ, जिससे कि आवागमन अर्थात् जन्म-मरण का नाश हो सके। वह कौन सा ज्ञान है, वह कौन सा तत्त्व है जिसकी प्राप्ति के बाद मनुष्यों के सभी प्रकार के दुःख छूट जाते हैं। भला यह कहिये कि आवागमन से क्या अर्थ की प्राप्ति से निवृत्ति होती है अथवा धर्म की प्राप्ति से आवागमन से मुक्ति मिलती है व काम की प्राप्ति से आवागमन से छुटकारा मिल सकता है। वह मोक्ष जिसके द्वारा प्राप्त होता है, ये चारों पुरुषार्थ किस दिशा में बसते हैं। क्या इनकी प्राप्ति उत्तर दिशा में, हिमालय की कन्दराओं में होगी, क्या इनकी प्राप्ति दक्षिण में रामेश्वरम् के दर्शन से होगी। क्या इन चार परम पुरुषार्थों की प्राप्ति पूरब में भगवान जगन्नाथ जी के दर्शन से होगी। अथवा क्या अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की प्राप्ति भगवान मक्केश्वर के दर्शन से होगी। या द्वारिकापुरी के दर्शन से होगी। अथवा ये चारों स्वर्गलोक व इन्द्रलोक में बसते हैं वा इनकी प्राप्ति पाताल लोक, जहाँ पर शेषनाग रहते हैं, वहाँ पर होगी। यदि आप के कहे अनुसार उक्त स्थानों में उक्त दिशाओं में अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की प्राप्ति होती है व बसते हैं तो इसके क्या प्रमाण हैं। मैं तो कहता हूँ जिस ज्ञान की प्राप्ति से आवागमन से छुटकारा मिलता है वह ज्ञान अर्थ, धर्म, काम से नही प्राप्त होने वाला है। वह तो सर्व अन्तर्यामी परमतत्त्व की प्राप्ति से ही संभव है। क्योंकि बिना गोपाल के कोई स्थान रिक्त

नहीं है। जब सब जगह गोपाल हैं तब उक्त चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति सर्वत्र हो सकती है। इसलिए आप को चाहिए कि सब स्थानों में गोपाल प्रभु का दर्शन करें परन्तु यह बुद्धि आप में नहीं दीखती है। सर्व अन्तर्यामी के सब जगह रहने पर भी भला आप नरक में क्यों जा रहे हैं? अर्थात् सब जगह धर्मबुद्धि बनाने से ही मनुष्य का उद्धार हो सकता है अन्यथा नरक के द्वार खुले हैं।

**अनजाने को सरग नरक है, हरि जाने को नाहीं ॥**
**जेहि डर से सभलोग डरतु हैं, सो डर हमरे नाहीं ॥**
**पाप पुन्नि की संका नाहीं, सरग नरक नहिं जाहीं ॥**
**कहैं कबीर सुनो हो संतो, जहां का पद तहाँ समाहीं ॥**

**शब्दार्थ**—अनजाने–अज्ञानी मनुष्य के लिए।

**मूलार्थ**—अब सद्गुरु कहते हैं कि हे पंडित जी! ज्ञानी के लिए न कहीं स्वर्ग है न कहीं नरक है। क्योंकि वह सब स्थानों में गोपाल को ही देखता है। इसलिए वह नरक स्वर्ग से परे हो जाता है। नरक एवं स्वर्ग उसको होता है जो प्रभु को सर्वत्र नहीं जानता है। जो आत्मतत्त्व की प्राप्ति नहीं कर सका है। उस अज्ञानी मनुष्य को ही पुण्य के कारण स्वर्ग होता है और पाप के कारण नरक में जाना पड़ता है, और जो हरि को व्यापक समझ कर उनका भजन करता है, उनकी प्राप्ति करता है। उस भगवत आराधक को नरक एवं स्वर्ग नहीं होते। जिस यमराज के भय से एवं जिस नरक से संसार के सभी लोग डरते हैं, वह डर हमारे पास नहीं रह गया है अर्थात् जिस भय से पंडित जी अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की कामना करते हैं और उससे नरक से छुटकारा चाहते हैं, उस हरि की प्राप्ति से अब मुझे यमराज और नरक से कोई भय नहीं रह गया है। इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हो गयी हैं, जीत ली गयी हैं। इसलिए न उनकी पाप में प्रवृत्ति है और न सुख के लिए पुण्य में प्रवृत्ति है और अब मुझे यह शंका नहीं रह गयी है कि पाप के कारण नरक एवं पुण्य के

कारण पुण्यलोक में जाना होगा और अब मुझे न तो स्वर्ग जाना है न नरक जाना है।

सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्तजन ! मेरी बात को सुनो। हमें जहाँ जाना चाहिए, जिस पद की प्राप्ति करनी चाहिये, उसी पद में समाविष्ट होऊँगा।

**आशय**—व्यवस्थावादियों को सम्बोधित करके कहा गया है कि यदि तुम्हारे पास कोई सत्य मार्ग है, जिससे मनुष्य कल्याण को प्राप्त कर सकता है तो वह मुझे बताओ और जिन अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष से मनुष्य का कल्याण होता है। हे भाई ! वे किस दिशा में बसते हैं? क्या वे तीर्थ-मूर्तियों में बसते हैं? क्या वे दान-दक्षिणा में बसते हैं? अथवा स्वर्ग या पाताल के बीच में बसते हैं। मैं तो कहता हूँ कि उक्त बातों की कल्पना छोड़कर भगवान को सब जगह देखो। प्रत्यक्ष उनके रहते हुए क्यों नरक में जा रहे हो? तुम तो गोपाल को जानते हो, सब जगह होने का कथन करते हो, इसलिए तुझे नरक नहीं जाना चाहिए। नरक स्वर्ग तो वह जाता है जो गोपाल को नहीं जानता है'जो उनकी भक्ति नहीं करता है। प्रभु भक्तों के लिए कहीं स्वर्ग-नरक नहीं है, जिससे तुम डर रहे हो और तुम्हारे उपासक जिससे डरते हैं, वह डर मुझे नहीं है और न पाप-पुण्य की शंका ही है कि उनके फल हम भोगेंगे और न मुझे स्वर्ग-नरक ही जाना है। हे सन्तो ! मैं कबीर जो कहता हूँ उसे सुनो! जिस पद में मुझे लय होना है। उस आत्मपद में मैं लीन हो जाऊँगा।

## सबद् ४३

**पंडित मिथ्या करहु विचारा, न वहां स्रिस्टि न सिरसनहारा ॥**
**थूल अस्थूल पौन नहिं पावक, रवि ससि धरनि न नीरा।**
**जोति सरूप काल नहि जहवां, वचन न आहिं सरीरा ॥**
**करम धरम किछवो नहिं उहवां, न वहां मंत्र न पूजा।**
**संजम सहित भाव नहिं जहवां, सो धौं एक कि दूजा ॥**

**शब्दार्थ**—मिथ्या–झूठ। विचारा–विमर्श, निर्णय। वहाँ–आत्मपद

में। सिरजनहारा–कर्तापन। थूल–स्थूल शरीर। अस्थूल–सूक्ष्म शरीर। रवि–सूर्य। ससि–चन्द्रमा। जोति सरूप–एक में, तदाकार, जाज्वल्यमान, तेज स्वरूप, सबल, काल, मृत्यु, समय। जहवां–जहाँ, जिस स्थान पर। वचन–वाणी। आंहि–है। भाव–विचार, रहस्य। सो-वह। धौं–भला। दूजा–दूसरा।

**सम्बन्ध**––ऊपर कहा गया है कि उस परमपद की प्राप्ति में किसी प्रकार का भय नहीं है। न उसमें किसी प्रकार की शंका है। अब नीचे कहा जा रहा है कि जो सृष्टि आदि की कल्पना चैतन्य स्वरूप में की जाती है वह सब झूठ है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे पंडित जी! तुम यह विचार करते हो कि निर्वाणपद में अथवा उस शुद्ध ब्रह्म से सृष्टि का निष्पादन होता है तो यह विचार आपका निष्प्रयोजन है और इसमें कोई सत्यता भी नहीं है। क्योंकि आत्मस्वरूप में जिसको चितिस्वरूप कहा गया है। उस परमपद की अवस्था में न सृष्टि का भाव वहाँ पर है न उसमें सिरजन हार का भाव है, न उसमें स्थूल शरीर का भाव होता है, न वहाँ सूक्ष्म शरीर का ही भान होता है। उस परमपद में पवन की भी गति नहीं है न उसको अग्नि ही प्रभावित कर सकती है। उस परमपद में सूर्य जैसा प्रकाश भी नहीं है। वह चन्द्रमा जैसा सौम्य भी नहीं है और यह दृश स्वरूप तथा अधिष्ठान स्वरूप पृथ्वी भी वहाँ नहीं है। जल की भी आवश्यकता वहाँ नहीं है। क्योंकि वह स्वयं तृप्ति स्वरूप है। उस परमपद की प्राप्ति होने पर महाभयंकर तेज स्वरूप काल भी नहीं है। अर्थात् मुक्तात्मा का मृत्यु भी कुछ नहीं कर सकती है। समाहित आत्मा में वाणी का भी संचार नहीं है अर्थात् उसमें कुछ कथन श्रवण का भी स्थान नहीं है और जब परमपद की प्राप्ति हो जाती है तब शरीरादि का भी भान नहीं रहता है। जब योगी की वृत्ति स्वरूपाकार हो जाती है, परम प्रभु में लीन हो जाती है। तब कर्म-धर्म की भी कुछ आवश्यकता नहीं होती है। कर्म और धर्म अज्ञानावस्था में होते हैं। इसी

प्रकार आत्मज्ञ योगी के लिए वाह्य क्रिया-कलाप एवं संयम की भी आवश्यकता नहीं होती है और न वह किसी देवादि के प्रसन्न होने के लिए कोई मंत्र जपता है न आत्मसिद्धि के लिए संयम सहित कोई भावना करने की ही जरूरत होती है। तात्पर्य यह है कि संयम नियम अर्थात् वाह्यान्तर की शक्ति, प्राप्ति की अवस्था में होती है। प्राप्ति के बाद सब छूट जाता है। जब तक द्वैत भावना होती है तभी तक कर्त्ता, कर्म एवं अनेक कृत्यों की जरूरत पड़ती है। जब मन से द्वैत की भावना भाग जाती है, तब न एक रहता है न दूसरा रहता है। ऐसी स्थिति में भला एक कहा जाय कि दो कहा जाय। अर्थात् समत्वभाव में एकत्व एवं द्वैत का भाव नहीं उत्पन्न होता है।

**गोरख राम एकउ नहिं उहवां, न वहां बेद बिचारा।**
**हरि हर ब्रह्मा नहिं सिव सक्ती, तिरथउ नाहिं अचारा॥**
**माय बाप गुर जहवां नाहीं, सो धौं दूजा कि अकेला।**
**कहहिं कबीर जो अबकी बूझै, सोई गुरु हम चेला॥**

**शब्दार्थ**—उहवाँ–उस आत्मपद में। अचारा–शुद्धाचार।

**मूलार्थ**—तथा उस परमपद में गोरख एवं रामनाम की संज्ञाएँ भी नहीं रह जाती हैं। अर्थात् ये नाम रूप कल्पित होने के कारण परमतत्त्व से भिन्न हैं। जब स्वस्वरूप की प्राप्ति साधक को हो जाती है तब उसे अपरा विद्या स्वरूप वेद शास्त्रादि को विचार करने की आवश्यकता नहीं होती। वह परमतत्त्व निर्गुण ब्रह्म जिसको निरंजन कहा गया है वह हरि, हर, ब्रह्मा एवं जो शिव शक्ति के नाम से विख्यात आद्या शक्ति है। इन सब संज्ञाओं से भी वह शून्य है। उक्त परमतत्त्व की प्राप्ति जिस योगी को हो जाती है। उसके लिए तीर्थ आदि सिद्ध पीठों में जाने की आवश्यकता नहीं होती है और न वहाँ जाकर तीर्थों के नियमानुसार कोई कार्य करने की हीं जरूरत होती है। उस अभेद तत्त्व को प्राप्त करने वाला योगी जो निरन्तर एकरूपता को प्राप्त हो गया है। अब उसका माया से भी सम्बन्ध नहीं रह जाता है, पिता स्वरूप ईश्वर से भी कोई

सम्बन्ध नहीं रह जाता है तथा आत्म उपदेशक गुरु की भी उसको आवश्यकता नहीं रह जाती है। भला उसमें एकत्व और द्वैत का भाव कहाँ से रह जायगा ? गुरु-चेला, माता-पिता ये सब तो व्यवहार दशा में होते हैं। जब वह सबकी आत्मा हो जाता है तो वहाँ कहाँ से दूसरे तथा एक का भेद होगा ?

सद्गुरु कहते हैं कि जो व्यक्ति अबकी अर्थात् इस मानव तन में उस परमतत्त्व को समझ जाता है वही संसार का गुरु हो सकता है और संसार के लोग उसके शिष्य हो जाते हैं अर्थात् वह धन्यवाद का पात्र हो जाता है।

**आशय**—जो व्यक्ति आत्मज्ञ पुरुषों को देखकर कहता है कि यह कर्मं-धर्मं से रहित हो गया है एवं लोक, वेद धर्मं विरोधी है। उस पर कहा जा रहा है कि हे व्यवस्थापक विद्वान ! आत्मज्ञ के लिए अब संसार की सृष्टि करने की आवश्यकता नहीं है और न उस आत्म तत्त्वज्ञ के लिए कोई सिरजनहार ही है। उस अमरतत्त्व प्राप्त पुरुष का चित्त स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरों से भी परे हो जाता है और वायु एवं अग्नि भी जो क्षुधा पिपासा किया करते हैं, वह भी शान्त हो जाते हैं। इसी प्रकार से समभाव होने के कारण रवि एवं चन्द्रमा की स्थिति से वह परे हो जाता है। उसका आधार भी पृथ्वी के तत्त्व नहीं होते और नीर कहिए जलादि से शुद्ध होने की उसको आवश्यकता नहीं होती अर्थात् उस परमतत्त्व के समक्ष स्थूल देहधारी बड़ा से बड़ा व्यक्ति और सूक्ष्म देहधारी देवगण एवं महाशक्तिशाली पवन तथा सबको भस्म करने वाला पावक, अपने तेज से उद्दीप्त करने वाला सूर्य एवं संपूर्ण प्राणियों को जीवनतत्त्व प्रदान करने वाला चन्द्रमा तथा सबको स्थान देने वाली अधिष्ठात्री पृथ्वी एवं जीवनदाता नीर उस परमसत्ता के सामने कुछ भी नहीं है। वह परमसत्ता तेजस्वरूप काल से भी कभी उत्पीड़ित नहीं होता है। उसमें किसी प्रकार के वचन के द्वारा भी परिगणन करने की अविधा नहीं है। वह सभी कर्म-धर्मों से भी परे है। कर्मं-धर्मं मनुष्यों के लिए होते हैं

और वह मनुष्यों जैसा नहीं है। जो किसी फल के लिए कर्म-धर्म करे। उसको कोई मंत्र जपने एवं कोई क्रिया करने की भी जरूरत नहीं है। इन सबसे वह परे है। उसको न एक कहा जा सकता है और न दो कहा जा सकता है। न वह गोरख नाम वाला है न रामनाम वाला है। ज्ञान स्वरूप होने के कारण उसे वेद विचार करने की भी आवश्यकता नहीं है और हरि, शंकर, ब्रह्मा आद्या-शक्ति जैसी संज्ञाओं से भी उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। उस परम प्रभु को तीर्थ एवं तीर्थ के आचारों की कोई आवश्यकता नहीं है। न उसकी कोई माता है न उसके कोई पिता है। वह सबका गुरु स्वयं है। इसलिए उस प्रभु का कोई गुरु भी नहीं है। जहाँ इस प्रकार की स्थिति है उसको भला एक कहा जाय या दो कहा जाय। वह तो समानधर्मा है। उसमें उक्त कथन एक भी नहीं बनते।

मैं कबीर कहता हूँ कि जो इस मानव तन में उसको बूझ ले, समझ ले, भज ले, समस्त मनुष्यों से श्रेष्ठ है और संसार उसका अनुगामी हो जाता है।

## सबद् ४४

### माया प्राबल्य प्रकरण

**बुझ बुझ पंडित करहु बिचारा, पुरखा है की नारी ॥**
**बाभन के घर बाभनि होती, जोगी के घर चेली ॥**
**कलमा पढ़ि-पढ़ि भई तुरकनी, कलि मा रहत अकेली ॥**
**बर नहिं बरै ब्याह नहिं करै, पूत जनमावनि हारी ॥**

**शब्दार्थ**—बुझ-बुझ—समझ-समझ। बाभन—ब्राह्मण। बाभनि—ब्राह्मणी। चेली—शिष्या। कलमा—इस्लाम धर्म का वह मंत्र जो पाँच बार उपासना के रूप में पढ़ा जाता है। तुरकनी—मुसलमानिन, मुसलमान की पत्नी। कलिमा—कलियुग में, कलहयुक्त समय में। बर—श्रेष्ठ, आत्मज्ञ पुरुष, बरै—वर्णन करे, चुनाव, चयन। ब्याह—साधु-सम्बन्ध। पूत-पुत्र, जीव प्राणीमात्र। जनमावनि हारी—उत्पन्न करने वाली, माया।

**सम्बन्ध**—इसके पूर्व में सद्गुरु ने कहा कि परमतत्त्व के समान कोई दूसरा तत्त्व नहीं है। अन्त में कहा गया है कि इस मानव तन में जो उसकी प्राप्ति कर लेता है तो उसका बहुत बड़ा उपकार हो जाएगा और जन्म-मरण से परे हो जाएगा। उक्त महत्त्व वाले परमतत्त्व को जो प्राप्त कर लेगा तो हम कबीर उसको गुरु के समान दर्जा देने के लिए प्रस्तुत हैं और आत्मकल्याण करने के कारण उसका हम चेला बनने के लिए भी तैयार हैं। क्योंकि जो परम पूज्य को बूझ जायेगा, समझ जायेगा, वह संसार का उद्धार कर सकता है परन्तु उसकी प्राप्ति में बहुत बड़ी बाधा है। जिसको नीचे दिखाया जा रहा है। वह है माया, जो अकथनीय है।

**मूलार्थ**—अब माया की प्रबलता को देखकर गुरु महाराज संसार के विद्वानों से प्रश्न करते हैं कि हे पंडितजन! देखो यह माया संसार के समस्त प्राणियों को विमोहित किए हुए है। मूर्ख से पंडित तक, कीड़े से कुन्जर तक यहाँ तक कि दिव्य देहधारी देवों को भी सुना जाता है कि उनको भी अपने मोह पाश में माया बाँध रखी है। इतनी शक्तिशालिनी यह महादेवी माया है कि उससे कोई भी प्राणी वंचित नहीं है। इसलिए हे देश के विद्वान इसको समझिए और समझ कर विचार कीजिए कि क्या यह माया ही ईश्वर है? जो इतने बड़े पुरुषत्व को प्राप्त हुई है। अथवा यह नारी स्वरूपी माया है अर्थात् हे पंडित जी मेरे समझ में नहीं आ रहा है कि यह स्त्री है कि पुरुष है। क्योंकि देखो, यह विद्वानों को छलने के लिए एवं ब्राह्मणों का ज्ञान अपहरण करने के लिए अपरा विद्या होकर बैठी है और परमतत्व से वंचित करने के लिए, क्षणिक सुख के लिए स्त्री होकर बैठी हुई है। ये तो रहा विद्वानों और गृहस्थों के लिए उन्हीं तक इसकी सीमा नहीं रही। इसकी चाल और दौड़ उन योगियों तक है जो घर-द्वार छोड़कर आरण्य में, पर्वत की मालाओं में, झोपड़ी बनाकर रहते हैं। उनके यहाँ भी अणिमा, लघिमादि सिद्धियों के रूप में छलने के लिए बैठी हुई है, जिससे उनकी साधना आगे न बढ़े, परमतत्त्व के दर्शन

न कर सकें और साथ ही लोक की स्त्री के रूप में योगियों की शिष्या बनकर उनकी झोपड़ी में रहती है। यह आर्य धर्म के लोगों पर ही प्रभावी नहीं है। इसका दबाव मुसलमान धर्म पर भी जबरदस्त है। मुसलमानों को तो और धर दबोची है। क्योंकि सुरा-सुन्दरी के लिए ये लोग बड़ी-बड़ी लड़ाईयाँ लड़ चुके हैं और दूसरे धर्म की स्त्रियों को कलमा पढ़ाकर अपनी पत्नी बना लेते हैं। अर्थात् तुर्कों को छलने के लिए तृष्णा का रूप लेकर एवं अतिसुन्दर स्त्री का रूप लेकर उनके यहाँ भी पड़ी हुई हैं परन्तु इस चुहड़ी को बर कहिये आत्मज्ञ पुरुष नहीं चयन करता है और वह भी उस आत्मज्ञ पुरुष से दूर रहती है और उससे उसका सम्बन्ध नहीं बन पाता है परन्तु आश्चर्य यह है कि विना पति के ही वह संसार को जन्म देती है। बर में यहाँ श्लेष है। बर का अर्थ ईश्वर भी है, जिसका अर्थ हुआ, परमेश्वर जिससे सगाई नहीं करता, उसकी पत्नी है परन्तु उससे व्याह नहीं करता परन्तु कार्यब्रह्म के संकल्प से संसार को जन्म देने में समर्थ होती है तथा जीव स्वरूप पुत्र को अपने घेरे में रखती है।

**कारे मूड़ को एकहु न छाड़े, अजहूँ आदि कुंवारी ॥**
**मैके रहे जाय नहिं ससुरे, सांई संग न सोवै।**
**कहैं कबीर ते जुग जुग जीवे, (जो) जाति-पांति कुल खोवै ॥**

**शब्दार्थ**—कारे मूड़–काले बाल वाले, नवयुवक। एकहु–एक भी। छाड़े–त्यागे। अजहूँ–आज भी। आदि–सदा से। कुवांरी–अविवाहिता। मैके–नैहर, संसार, जहाँ से उत्पन्न होती है। ससुरे–ससुराल, पति के पास, परब्रह्म के पास, आत्मज्ञ के पास। सांई–स्वामी, ईश्वर। सोवै–सहवास नहीं करती। ते–वे लोग।

**मूलार्थ**—और यह माया, उन लोगों को अधिक ठगती है जो छैल चिकनियाँ हैं, जो नवयुवक हैं, जो अपने को अत्यन्त सजा-बजा कर रखते हैं। जो इत्र-फुलेल लगाते हैं। ऐसे लोगों में से एक को भी नहीं छोड़ती है। सब के साथ सबका उपभोग करती है। सबको

लूटकर आनन्द लेती है। परन्तु संसारियों को भोगते हुए भी वह किसी की अधीनता स्वीकार नहीं करती अर्थात् सदा वह किसी के साथ नहीं रहती। आज भी वह माया आदिकाल से कुवांरी ही है। कोई भी उसको वश में नहीं कर सका। वह प्रभु की माया संसार में ही रहती है अर्थात् संसार के लोगों में ही उसका निवास रहता है। वह आत्मज्ञानियों के पास नहीं जाती है और प्रभु को भी कुछ नहीं कर सकती है। अर्थात् जिस प्रकार से अज्ञानियों के साथ सोती है और उनको लूटती है। ईश्वर की पत्नी होने पर भी उसके साथ सोती नहीं है, अर्थात् उस ो नहीं भोगती है। ईश्वर ही उसको भोगता है।

सद्गुरु कहते हैं कि वह व्यक्ति सदा के लिए अमर हो जायेगा। युग-युगान्त तक जीवित रहेगा। जो माया के निवास स्थान वर्णाश्रम एवं जाति-पांति का अभिमान तथा श्रेष्ठ कुल का अभिमान नाश कर देगा। उसी के पास यह चुहड़ी माया नहीं फटक सकेगी।

**आशय**—आश्चर्य की बात यह है कि माया इतनी प्रबल है कि उसको सबल कहा जा सकता है या निर्बल कहा जा सकता है। सबल इसलिए है कि सबको मोहे हुए है और निर्बल इसलिए है कि अन्त में उसका नाश हो जाता है। अज्ञान दशा में सबके लिए पुरुष बनी हुई है और ज्ञान होने पर ज्ञानियों की सहचरी बन जाती है परन्तु वह इतनी ठगिनी है कि कोई भी धर्मावलम्बी उससे मुक्त नहीं दिखायी दे रहा है। चाहे वह ब्राह्मण हो, चाहे वह योगी हो, चाहे वह कलमा पढ़ने वाला इस्लामी हो। वह सब पर विजय प्राप्त कर इस कलियुग में अकेली ही स्वतंत्र घूमती है। वह अज्ञानियों में से किसी को नहीं छोड़ती और न किसी के वश में होती है। सदैव अज्ञान से युक्त पुत्रवत् जीव को जन्म देते रहती है। जो उसको देखकर उसकी प्राप्ति की इच्छा करते हैं, उनको तो वह कभी भी नहीं छोड़ती। आज पर्यन्त वह उन पर चढ़ी हुई है और अपने सदैव निर्दोष बनी रहती है। वह सदा अज्ञानियों के पास रहती है तथा ज्ञानियों से दूर रहती है परन्तु परमेश्वर की आज्ञाकारिणी भी है, उसको नहीं

भोग पाती है। वही व्यक्ति युग-युगान्तर जीवित रह सकता है जो माया के घेरे से परे हो जाता है।

# सबद् ४५

## नाम रूप अभाव प्रकरण

**को न मुआ कहो पंडित जना, सो समुझाय कहौ मोंहि सना ॥**
**मुये ब्रह्मा विस्नु महेसा, पारबती सुत मुये गनेसा।**
**मुये चन्द मुये रवि सेसा, मुये हनिमंत जिन्ह बाँधल सेता॥**
**मुये क्रिस्न मुये करतारा, एक न मुआ जो सिरजनहारा।**
**कहैं कबीर मुआ नहिं सोई, जाको आवागमन न होइ॥**

**शब्दार्थ**—को–कौन। न–नहिं। मुआ–मृत्यु। जना–जन, लोग। सना–से। मोहि–मुझ। गनेसा–गणेश। चन्द–चन्द्र, चन्द्रमा। सेसा–शेषनाग। जिन्ह–जो। बाँधल–बाँधा। सेता–सेतुबन्ध, लंका की चढ़ाई में श्रीरामचन्द्र जी द्वारा हनुमान जी की सहायता से भारत से लंका तक जो पुल बाँधा गया था जो रामेश्वर के पास है। क्रिस्न–श्रीकृष्ण। करतारा–कार्यब्रह्म, हिरण्यगर्भ, ब्रह्मा। सिरजनहारा–सर्वात्मा परमेश्वर, शुद्ध ब्रह्म,चैतन्य। जाको–जिसको। आवागमन–जन्म–मरण।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि हे विद्वान जन! माया की प्रबलता आप लोग जानते ही हैं। इसलिये उसका परित्याग करके श्रीहरि का भजन करिये क्योंकि आकाश से पाताल तक माया का प्रभाव जमा हुआ है। इसलिये सभी जाति-पाँति कुल एवं खानदान की रीति को त्याग कर हरि प्रभु नाम का चिन्तन कीजिए। यदि आप सोचते हैं कि अन्त अवस्था आने पर जप-तप कर लिया जायेगा क्योंकि कहा गया है कि चौथे पन घर-द्वार त्याग कर आरण्य में जाकर हरि सुमिरन करना चाहिये।

इस पर सद्गुरु कहते हैं कि हे पंडित जन! यह संसार एवं शरीर अनित्य है। पता नहीं यह कब जीवात्मा से अलग हो जायेगा? क्योंकि

इस धराधाम पर बड़े से बड़े महापुरुष, ऋषि-मुनि, देव-दानव, पीर पैगम्बर रहने नहीं पाये। अब नीचे महापुरुषों का नाम लेकर गिनाते हैं कि अब सबके सब दृष्टि के सामने नहीं है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे विद्वानजन ! भला आप कहिये कि इस असार संसार में कौन स्थायी है अर्थात् आज कोई भी महापुरुष शरीर से दिखाई नहीं दे रहा है। इसलिए जो न मरा हो मुझसे समझाकर कहिए कि वह कौन है ? जिसका शरीर आज तक मृत नहीं हुआ है। मैं तो कहता हूँ कि जो भी नाम रूप होता है वह स्थायी नहीं होता है। उसका अभाव अवश्य होता है। हे सुधीजन ! लोक पितामह ब्रह्मा भी आज दिखाई नहीं दे रहे हैं। जो मनुष्यों के वर्ष से अरब वर्षों की आयु पाये थे। इसी प्रकार से उनके अनुज भगवान विष्णु जिन्होंने वामन रूप धारण किया था, वे भी आज इस पृथ्वी पर दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं। इसी प्रकार से देवों के देव भगवान शंकर भी नहीं दिखायी दे रहे हैं। उनका भी पंच-भौतिक शरीर आज दर्शन के लिए नहीं मिल रहा है। साथ ही माता पार्वती के पुत्र महामना श्रीगणेश जी भी सशरीर नहीं रह गये हैं। जिनकी पूजा एवं अर्चना सबसे पहले होती है। हे सुधीजन ! ये रात्रि के स्वामी चन्द्रमा एवं दिन के स्वामी सूर्य भी कालक्रम से नहीं दिखायी देंगे। क्योंकि आपके शास्त्रों में लिखा है कि महाप्रलय में अखिल ब्रह्माण्डों का अभाव हो जायेगा। इसलिए एक न एक दिन ये सूर्य, चन्द्र भी नहीं रहेंगे। इसी प्रकार से भगवान शेषनाग जो पुराणों के अनुसार पृथ्वी को धारण किए हुए हैं, वे भी प्रलय काल में नहीं रह सकेंगे और तो देखो जो परम सन्त महापराक्रमी श्री हनुमान जी थे, जिन्होंने भगवान राम की महान सहायता करके समुद्र को पार कर महारानी सीता का पता लगाया था, समुद्र पर सेतु बाँधा था, आज वे अनजनी तनय बजरंगबली भी सशरीर नहीं दिखायी दे रहे हैं। इसी प्रकार सभी अवतारों के राजा भगवान श्रीकृष्णचन्द्र भी जिन्होंने 'गीता' जैसा ज्ञान अर्जुन को दिया था, जिनका नाम स्मरण करके संसार के लोग पाप तापों से मुक्त हो रहे

हैं। जो राजनीति और कूटनीति के महान पंडित थे। जिन्होंने बाल्य-काल में ही अनेक लीलाओं का प्रणयन किया था जिन्होंने बड़े-बड़े दुष्कर्मियों का वध किया था। वे भगवान यशोदानन्दन सशरीर आज नहीं दिखायी दे रहे हैं। यहीं तक नहीं है जो कार्यब्रह्म है जो माया की सहायता से संसार का कर्त्ता बना हुआ है, वह भी अपने चित्ति स्वरूप में लय हो जाता है।

'करतारा' में 'श्लेष' है। शास्त्रों के अनुसार प्रजापतियों को भी करतार कहा गया है। यहाँ विशेष लक्ष्य दक्ष प्रजापति से है। कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान दक्ष प्रजापति भी आज सशरीर नहीं हैं। वे सबके सब प्रलय काल में काल-कवलित हो जाते हैं। अपने निज स्वरूप में लीन हो जाते हैं अर्थात् हे सुधीजन ! जो संसार में शरीर धारण करता है, वह शरीर से अमर नहीं रह सकता है। इसलिए आप माया मोह का परित्याग कर परम प्रभु का सुमिरन-भजन कीजिए। जब तक शरीर निरोग है जब तक वृद्धावस्था नहीं आयी है तब तक मुक्ति की उपाय कर लीजिए। अन्यथा यहाँ रहने का नहीं है। यहाँ से सबको उठकर जाना है। उस एक ही तत्त्व को नहीं मिटना है, जो सबका सिरजन करता है, जो सबका स्वामी है। जो सबमें विराजमान है। वही सनातन पुरुष अजर-अमर है।

मैं कबीर कहता हूँ कि वही नहीं मरता है जो परमतत्त्व है जिसका न कहीं से आना होता है न कहीं से जाना होता है अर्थात् परमेश्वर को छोड़कर सारा विश्व जायमान है। इसलिये मनुष्यों को चाहिए कि निरन्तर सिरजनहार का चिन्तन करे।

**अन्तंकथाएँ**—पार्वती के पुत्र गणेशजी के विषय में अनेक प्रकार की कथा है। ब्रह्म वैवर्त पु० में गणेश की कथा है कि पार्वती के साथ विवाह होने पर शिवजी रति परायण हो गये। उनकी यह दशा देख कर सब देव चिन्ता ग्रस्त हुए और ब्रह्मा जी सहित विष्णु भगवान के पास गये। ब्रह्मा

जो भगवान से समाचार सुनाये। भगवान बोले कि कोई चिन्ता की बात नहीं है परन्तु सब देव मिल कर ऐसा यत्न करो कि जिससे शिव का वीर्य भूमि पर गिरे, यदि पार्वती के योनि में वीर्य गिरेगा, तो उससे उत्पन्न पुत्र सुर और असुर दोनों का नाशक होगा। इस बात को सुनकर देव शिव के दरवाजे पर जाकर पृथक-पृथक पुकारने लगे कि शिवजी क्या कर रहे हैं सो सुनकर शिवजी को उठने की इच्छा हुई, परन्तु पार्वती के भय से उठ न सके। फिर भी देवताओं के भय को समझकर उठे तब भय डर लज्जा सहित शिव का वीर्य भूमि में गिरा, उसको भूमि नहीं सह सकी, तब अग्नि में दे दिया। अग्नि शर के जंगल में दिया। वहाँ वह वीर्य बालक रूप हो गया उससे कृतिका को प्राप्त हुआ। यही बालक स्वामी कार्तिकेय कहलाया। शिवजी शीघ्र बाहर आये और देवों से कहा कि आप सब भागो। बाद में पार्वती आई तो किसी को न देखने से क्रोध को रोक रखी। शिव पार्वती कार्तिकेय को नहीं देखे, इससे पार्वती पुत्र के लिए व्याकुल हुई, तब शिवजी पुत्र के लिए व्रत का उपदेश दिया। व्रत के समाप्त होने पर, फिर रतिपरायण हुए, तो स्वयं विष्णु भगवान वृद्ध ब्राह्मण होकर पुकारा कि मैं भूखा हूँ, कुछ खाने को दो। फिर दोनों उठ कर चले। महादेव जी का वीर्य आसन पर ही गिरा। उससे विष्णु के अंश रूप गणेश हुए। कुछ बात करके ब्राह्मण लुप्त हो गया। फिर पार्वती पुत्र की चिन्ता युक्त हुई। तब फिर आकाशवाणी हुई कि पार्वती शान्त रहो, घर में जाकर देखो बालक है, सो भगवान स्वरूप ही है, पार्वती उस पुत्र को देखा और शंकर को भी दिखाया। फिर पुत्र उत्सव में देव आये शनि भी आये। ऋतुकाल भंग करने में शनि को अपनी स्त्री का शाप था कि जिसे तुम देखोगे वह नाश हो जायगा। इससे शनि शिर नीचे करके पार्वती के पास गये, शिर नीचे करने के कारण को पार्वती पूछी तब सब कारण को बताये परन्तु पार्वती को विश्वास नहीं हुआ, इससे बोली की मेरे पुत्र को देखो। फिर गले के पास में शनि को देखते ही गणेश जो का सर कट कर गिर गया। तब हहाकार मचा, फिर

विष्णु भगवान ने हस्ती के शिर को जोड़कर, अपनी शक्ति से जीवित किये।

इसके बाद शिव वीर्य को अमोघ जानकर कार्तिकेय की खोज किया। तब देव सब कृतिका के घर से उन्हें लाये। एक समय दुर्वासा जी हरि का प्रसाद रूप माला इन्द्र को दिये थे जिसके धारण का सर्वपूज्यता फल होना था। इन्द्र ने प्रमाद वश उस माला को अपनी हस्ती के गले में डाल दिया था। उसी हस्ती का गला गणेश को लगा और कार्तिवीर्य अर्जुन यमदग्नि ऋषि के आश्रम गया तब उसका पूर्ण सत्कार किया। फिर अर्जुन को कामधेनु की इच्छा हो गयी और मुनि नहीं दिये। इससे वह मुनि को मार दिया। फिर मुनि के पुत्र परशुराम जी शिवजी से बर पाकर, उसे मारकर शिवजी के दर्शन के लिए गये और उस समय शिवजी पार्वती के साथ एकान्त में थे। इससे गणेश जी ने थोड़ा ठहरने को कहा। फिर कुछ बात होने पर परशुराम जी ने परशु से एक दाँत तोड़ दिये।

स्कन्द पु० खं० ६ अ० १४२ में कथा है कि एक समय सब मनुष्य तप ध्यान के प्रभाव से स्वर्ग में जाने लगे। तब इन्द्र शिवजी से प्रार्थना किए कि सब मनुष्य मेरे स्थान को घेर रहे हैं, आप कोई यत्न करो कि जिससे ऐसा न हो। तब शिवजी पार्वती के तरफ देखने लगे। फिर पार्वती ने अपने देह के मैल से चतुर्भुज गणेश को उत्पन्न किया और सब गणों को मालिक बनाया तथा हुकुम दिया कि तुम सब शुभ कार्यों में विघ्न करना। जो स्वर्ग मोक्ष परायण हों उनके कार्यों में भी विघ्न करना। फिर गणेश जी विघ्न करने लगे, इसी से सब कार्यों में उनकी पूजा सबसे पहले की जाती है। महाभारत शान्ति पर्व अ० ४९ में भी यह कथा है।

स्कन्द पु० ख० १-२ अ० २७ में कथा है कि देवताओं की प्रार्थना से दया युक्त पार्वती ने शरीर के मल से हस्ती के मुख वाले मनुष्य को बनाया। फिर शिवजी पार्वती से बोले कि यह तेरा पुत्र मेरे समान होगा और भक्ति पूजा न करने वालों के कार्यों में विघ्न करेगा।

स्कन्द पु० ख० २-७ अ० ८ में कथा हैं कि दक्षने यज्ञ की दीक्षा

लेकर, शिवजी को बुलाने के लिए कैलाश गये, तो भृत्यादि के प्रति स्वामी के उत्थान को निषेध समझ कर, शिवजी ने उत्थान नहीं किया इस तत्त्व को समझे बिना, दक्ष रुष्ट होकर वापस चले आये। फिर शिवजी के रोकने पर भी सती उस यज्ञ में गई और यज्ञ में शिव को स्थान न मिलने पर प्राण त्याग दिया और तारकासुर को ब्रह्मा जी बर दिये कि शिव जी के पुत्र से तुम्हें अन्य कोई नहीं मार सकेगा। उसने समझा कि सती के मरण से शिव स्त्री-पुत्र रहित हैं परन्तु फिर पार्वती द्वारा पुत्र होने से उसका नाश हुआ और पार्वती के रतिपरायण होने से गर्भस्राव होते जाता था। तब सब देव अग्निदेव को भेजकर रति में विघ्न किये कि इससे पुत्र हो।

लिंग पु० अ० १०४ में कथा है कि दैत्य भी यज्ञ करके देवलोक में जाने लगे तब सब देव शिव की स्तुति किये। फिर स्तुति प्रणाम करके स्थिर देवों को देखकर, शिवजी ने उन्हें आशीर्वाद दिया। तब निर्भय होकर ब्रह्मा बोले कि शुभ कर्मादि में असुरों से निर्विघ्नता के लिये प्रथम आप की प्रार्थना कि गई थी। इस समय देवापकारी के यज्ञ में विघ्न के लिये आप से प्रार्थना है। इस बात को सुनकर शिवजी आप ही अपना एक दूसरा गणेश रूप बना लिये। वही गणेश महेश्वर के पुत्र कहलाये।

भविष्य पु० पर्व १ अ० २२ में कथा है कि स्वामी कार्तिकेय स्त्री-पुरुष का लक्षण रूप एक ग्रन्थ बनाते थे। उसमें गणेश ने विघ्न किया तब कार्तिकेय ने एक दाँत उखाड़ लिया और मारने के लिए भी तैयार हुए। तब शिवजी ने आकर रोका और क्रोध करने का कारण पूछा। तब कार्तिकेय बोले कि पुरुष का लक्षण लिखा हूँ। स्त्री का लक्षण लिखने में इन्होंने विघ्न किया है, वही क्रोध का कारण है। शिवजी बोले कि मेरा लक्षण कहो। उन्होंने कहा कि आप कपालपाणि होंगे, सो अविचार का फल होगा। यह सुनकर शिवजी ने उस ग्रन्थ को समुद्र में फेंक दिया। उसके बाद किसी देव समाज में ब्रह्मा और रुद्र का विवाद हुआ कि मैं बड़ा हूँ

ब्रह्मा ने कहा मैं बड़ा हूँ फिर रुद्रजी ने कहा तेरी उत्पत्ति को मैं जानता हूँ और मुझे कोई नहीं जानता तब ब्रह्मा के पंचम मुख ने हँसकर कहा कि मैं तुमको जानता हूँ। तब रुद्र ने नख से उस शिर को काट डाला और वह कपाल शिवजी के पास हाथ में ही स्थित हो गया। फिर दोनों पुरुषों को उत्पन्न किये, युद्ध होने लगा। आकाशवाणी से युद्ध की निवृत्ति होने पर दोनों का मेल हुआ। फिर ब्रह्मा समुद्र से उस लक्षण रूप ग्रन्थ देखे तथा बनाने के लिए कहे समुद्र बनाया सो सामुद्रिक विद्या हुई।

भविष्य पु० पर्व ३ अ० १२ में कथा है कि प्रलय के बाद अनन्त सृष्टि देखकर महालक्ष्मी विस्मित हुई और भगवान से बोली कि इसकी गणना हमसे कैसे की जा सकती है सो सुनकर भगवान स्वयं दो स्वरूप हो गये। एक चतुर्भुज गणेश हो गये, सोई सब सृष्टि गणना के ईश्वर गणेश नाम से विख्यात हुए और दूसरा जो निरंजन चतुर्भुज रहे सो योगियों के ध्येय परमात्मा रहे। एक बार ब्रह्मा से उत्पन्न होकर शिवजी ने गणेश की पूजा की, गणेश के प्रसन्न होने पर वर मांगा कि मेरा पुत्र होवो। तब गणेश पार्वती के देह से पैदा हुए।

स्कन्द पु० खं० १-१० में कथा है कि हाथी पर चढ़े हुए गणेश जी को शिवजी नहीं जानते थे कि यह पार्वती का पुत्र है इससे बहुत दिन तक युद्ध करने पर हाथी सहित गणेश को त्रिशूल से मार डालने पर, पार्वती के कहने पर जीवित किये और हाथी का मुख जोड़ दिये, जिससे गजानन हुए।

शिव पु० संहिता २ खं० ४ में कथा है कि एक समय पार्वती से उनकी सखियों ने कहा कि शिवजी के आज्ञाकारी गण बहुत हैं, हम सब के कोई नहीं, इससे कोई उपाय करना चाहिए। तब पार्वती जी ने अपने देह के मैल से सुन्दर बालक बनाकर दरवाजे पर रखा और कहा कि मकान के अन्दर कोई न आने पावे। इसके बाद शिव जी गये तो उन्हें डांटकर हटा दिया। फिर देव उससे युद्ध किये, कोई पार नहीं पाये, तब शिवजी बहुत छल बल पूर्वक त्रिशूल से शिर काट दिये। फिर पार्वती को

मालूम होने पर प्रलय करने पर तैयार हुई। बहुत विनयादि करने पर बोली कि यदि मेरा पुत्र जीवित हो जाय तब मैं मान सकती हूँ। तब शिवजी ने गणों को हुकुम दिया कि, उत्तर तरफ जाओ। जो प्राणी पहले मिले, उसका शिर ले आवो। गणों को दैवयोग से एक हथिनी मिली, उसी के गले को काट लाये, उसे जोड़कर देवों ने जोवित किया।

# सबद् ४६

## अकर्म प्रकरण

**पंडित एक अचरज बड़ होई।**
**एक मरि मुअै अन्न नहिं खाये, एक मरे सीझे रसोई॥**
**करि अस्नान देवन की पूजा, नउ गुन कांध जनेऊ।**
**हड़िआ हाड़ हाड़ थारी मुख, अब खट करम बनेऊ॥**
**धरम करै जहाँ जीउ बधतु है, अकरम करे मोरे भाई।**

**शब्दार्थ**—अचरज–आश्चर्य। बड़–बड़ा। मरि–मृत, मार-कर। सीझे पके। देवन–देवताओं की। नउ गुन–नौ गुण शम, दम, तप, शौच, क्षमा, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिक्य। कांध–कंधे पर। हड़िआ–हंडी में। हाड़–मांस, अस्थि। थारी–थाली, भोजन पात्र। खट करम–षट्कर्म, स्नान, संध्या, पूजा, तर्पण, जप, होम। बनेऊ–बना। बधतु–मारता है।

**सम्बन्ध**—इसके पहले भारतीय मनीषा से सद्गुरु ने कहा कि शीघ्रातिशीघ्र चेत जाना चाहिए। क्योंकि संसार जायमान है। बड़े-बड़े महापुरुष भी नहीं रह पाये। जिनका लोहा विश्व मानता था। अन्त में कहा है कि जो चिरन्तन है जिसका कभी अभाव नहीं होता है। उस जगद् गुरु का सुमिरन करना चाहिए।

**मूलार्थ**—अब उसी सन्दर्भ में नीचे कहते हैं कि हे संसार के विशेष कर भारत के पंडित जन! एक बड़ा आश्चर्य देखने में लग रहा है कि जब घर का एक व्यक्ति मर जाता है तब उसकी मृत्यु के पश्चात् घर के लोग शोक मनाते हैं। अन्न जल नहीं खाते पीते हैं। कई-कई दिन उप-

वास करते हैं और निर्बल प्राणियों को मारकर घर में ही पकाते हैं एवं चुराते हैं। मांस तैयार होने पर विधिपूर्वक स्नान करके देवताओं की पूजा करते हैं और नव गुणों का बखान करते हैं। जिन नव गुणों के रक्षण करने के लिए जनेऊ पहनते हैं, वही लोग हंडी में मांस पकाकर एवं उसी मांस को थाली में परोस कर खाते हैं। हे पंडित जी! हे शाक्त जी! हे शैव जी! अब जो आप का षट्कर्म है, वह बहुत अच्छा बन गया है। भला आपको लज्जा नहीं आती। जब घर का कोई व्यक्ति मर जाता है तो सभी प्राणी मिलकर रोते-कल्पते हैं और निर्बल पशुओं एवं पक्षियों का तथा जलचरों का वध करके जिभ्या का स्वाद मिटाते हैं। हे पंडित जी! आप जो देवी आदि के सामने जीवों को बधते हैं, जिसको आप धर्म मानते हैं कहते हैं कि हम धर्म कर रहे हैं। भला यह कैसा धर्म है?

**जो तोहरा को बाभन कहिये, तो काको कहिये कसाई ॥**
**कहैं कबीर सुनो हो संतो, भरम भूलि दुनियाई।**
**अपरमपार पार परसोतिम, या गति बिरले पाई ॥**

**शब्दार्थ**—अकरम–निसिद्ध कर्म। तोहरा–तुझको। बाभन–ब्राह्मण। काको–किसको। दुनियाई–संसारी लोग।

**मूलार्थ**—जहाँ पर आप पाप कर्म करते हैं उन देव-देवी स्थानों पर कहते कि हैं हम धर्म करते हैं। भला हे पंडितजी! कहो यह धर्म है या अधर्म हैं? मेरे देखने में तो यह अकर्म है। क्योंकि जीव हिंसा का विरोध 'वेद' में भी किया गया है। भागवत में भी किया गया है। महाभारत में भी किया गया है। अन्य वैष्णवादि सम्प्रदाय में भी हिंसा का विरोध किया गया है। इसलिए यह जो जीव हिंसा रूपी कर्म को धर्म की संज्ञा देते हो। यह पूर्णरूपेण अकर्म और अधर्म है। हे मेरे भाई! इस पर तू विचार करो। यदि हिंसा, चोरी, डकैती, अपहरण, छल-छिद्र, देश-द्रोह करने पर भी हम तुझको ब्राह्मण कहें, द्विज कहें। तो भला बताओ तो किसको हम हत्यारा एवं कसाई कहें, किसको हम पापी कहें? क्योंकि हिंसा करने पर ही कसाई को संज्ञा पड़ती है। इसलिए तुम श्रेष्ठ कसाई हो। क्योंकि तुम

पढ़-लिखकर, समझकर पाप कर्म करते हो। इसलिए पशु काटने वाले कसाईयों से तुम अधिक अपराधी हो।

सद्गुरु कहते हैं कि हे संतजन सुनो! ये संसार के लोग भ्रम में पड़कर सतकर्म को भूल गए हैं तथा देखा-देखी दुनियाँ वालों को देखकर पचड़े में पड़े हुए हैं। भला जो अपरम्पार है। जो परम प्रभु पुरुषोत्तम है, उसको ये कहाँ भज पायेंगे, यदि उसको भजते तो अधर्म नहीं करते। उस प्रभु की गति व रहस्य कोई बिरले व्यक्ति ही जान सकता है कि वह कर्मों का फल किस प्रकार देगा? ये संसार के मूर्ख मनुष्य परिणाम को नहीं जानते हैं कि क्या होने वाला है और परब्रह्म पुरुषोत्तम किस नरक में डालेगा, यह इनको कुछ पता नहीं है। इसलिए ब्राह्मण होने पर भी महान कुकर्म करने पर तत्पर हैं।

**आशय**—संसार के लोगों को देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि जो नहीं करना चाहिये वही करते हैं। उसी को सत्कर्म मान लेते हैं परन्तु यह नहीं जानते हैं कि इन कुकर्मों का क्या फल होगा? इसलिए सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्तजन! संसार के लोगों की उल्टी रीति है। ये सदा अकर्म में ही फँसे रहते हैं और प्रभु को नहीं भजते जो सद्गति देने वाला है। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि सन्त सद्गुरुओं से संग करके कर्म-अकर्म के भेद को समझें, तभी कल्याण हो सकता है।

## सबद् ४७

**पांडे बूझि पियहु तुम पानी।**
**जेहि मटिया के घर मां बैठे, तामे स्रिस्टि समानी॥**
**छप्पन कोटि जादौ जहं भींजैं, मुनिजन सहस अठासी॥**
**पैग पैग पैगम्बर गाड़े, सो सभ सरि भौ मांटी॥**
**मच्छ कच्छ घरिआर बिआने, रिधुर नीर जल भरिया॥**
**नदिया नीर नरक बहि आवै, पसु मानुख सभ सरिया॥**

**शब्दार्थ**—पांडे–पांडेय, ब्राह्मण। पियहु–पिओ। मटिया–मिट्टी।

मां–में। घर–शरीर। बैठे–समाये। स्त्रिस्टि–सृष्टि। समानी–समा गया। कोटि–करोड़। जादौ–यादव। भींजैं–भीगे, मिल गये। सहस–सहस्र, हजार। पैग-पैग–पद-पद पर। पैगम्बर–अनेक पैगम्बर, देव दूत जो समय-समय से संसार में आकर धार्मिक उपदेश देते हैं। गाड़े–कब्र दे दी जाती हैं। सभ–सब। सरि–सड़कर। भौ–हुआ। मांटी–मृत्तिका। मच्छ–मत्स्य, मछली। कच्छ–कछुआ। घरिआर–मगर, नरक। बिआने–प्रसव। रिधुर–रुधिर, रक्त। नीर–रक्त रूपी नीर। जल–पानी। भरिया–भरा हुआ। नदिया–नदी। नरक–गंदा जल। बहि–बह-बहकर। आवै–आता है। मानुख–मनुष्य। सरिया–सड़कर।

**सम्बन्ध**—ऊपर सद्गुरु ने कहा कि इस बात का बड़ा आश्चर्य है कि संसार के लोग इतने बड़े अज्ञान में फँसे हुए हैं कि अपना कोई सगा-सम्बन्धी मरता है तो दुःख मनाते हैं और किसी दूसरे को अपने मारते हैं तो अपने स्वार्थ को छिपाने के लिए व अपराध को छिपाने के लिए कल्पित देवादिकों का नाम लेकर उनके नाम पर जीवों को काटते हैं और उसी को धर्म भी मान लेते हैं। यह कितनी बड़ी मूर्खता है। जो यह नहीं समझते कि इन कर्मों का फल क्या होगा ? इतना ही नहीं अपने तो अकर्म करते हैं और तथाकथित शूद्रादि से घृणा करते हैं। उनका छुआ पानी भी नहीं पीते हैं और उनसे देह भी नहीं छुआते हैं। शूद्र कितना बड़ा भी पवित्र हो परन्तु उसको नीच कहना व्यवस्थावादियों का व्यवहार हो गया है। द्विजाति कितना बड़ा भी अपराधी हो परन्तु वह सदैव पवित्र माना जाता है। इस विपरीत भावना का उल्लेख करते हुए सद्गुरु नीचे अनेक उद्धरणों का उल्लेख कर रहे हैं।

**मूलार्थ**—अब यह कहा जा रहा है कि यदि छुआछूत सत्य है एवं उसमें कोई मौलिकता है तो हे पाण्डेय जी ! आप कोई भी जल ग्रहण करें तो बूझ कर पीयें। क्योंकि आप जिस मिट्टी के घर में बैठे हैं व निवास करते हैं अर्थात् जिस मिट्टी के शरीर में आत्मा रहता है। उसी आत्मा में सारी सृष्टि समाविष्ट हो गयी है। यहाँ घर में 'श्लेष' है और साथ ही

व्यंजना भी है। 'घर' का अर्थ यहाँ पर सम्पूर्ण पृथ्वी से है। इस पृथ्वी पर संसार का निवास है। सभी कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी, मानव इसी पर रहते हैं और इसी में सड़-गलकर मिल जाते हैं, तब भला किस वस्तु में पवित्रता है। यह विषय विचारणीय है कि जिस पृथ्वी में छप्पन करोड़ यादव लोग नष्ट होकर मिल गये। वे दुःखी हुए, भींग गए तथा जिस पृथ्वी में अठासो सहस्र मुनिजन भी मिल गये जिस पृथ्वी में पग-पग पर एवं स्थान-स्थान पर पैगम्बर गड़े हुए हैं। अर्थात् दुनियाँ के सभी धर्मों के पैगम्बर, अवतार, देवदूत एवं नर पिशाचों की कब्रें हैं, समाधियाँ हैं और इन सबके शरीर सड़-गल के जिस बसुन्धरा में मिल गये हैं और सब मिट्टी का रूप धारण कर लिए हैं और जिस पृथ्वी की नदियों में मछलियाँ, कछुए, तथा घड़ियाल बियाते हैं, बच्चा देते हैं और उन नदियों के पानी में उक्त जन्तुओं के रुधिर प्रसवकाल में मिल गये हैं। इन नदियों का जल नरक का रूप ले लिया है और प्रतिदिन जीव-जन्तु बियाते हैं, इसलिए रुधिर से मिश्रित जल प्रतिदिन नदियों में बह रहा है, उसी रुधिर मिश्रित जल से लोग प्रतिदिन भोजन बनाते हैं, स्नान करते हैं, देवतर्पण करते हैं। अर्थात जगत् का सारा व्यवहार नदियों एवं पृथ्वी के जल से होता है, जो विवेक की दृष्टि से बहुत अपवित्र है। उसी अपवित्र जल को पाण्डेजो पवित्र मान लिए हैं और जिसमें चेतन प्रभु रहता है। आत्मा जिस शरीर में निवास करता है, उस मनुष्य को शूद्र कहकर तिरस्कार करते हैं। भला इनका किस प्रकार का आचार है और किस प्रकार की पवित्रता है और जिस नदी में पशुओं और मनुष्यों के शव फेंक दिए जाते हैं और सब सड़-गल कर उसमें मिल जाते हैं। उससे कभी घृणा नहीं करते। यही पाण्डेय जी की पवित्र गाथा है।

**हाड़ झरी झरि गूद गली गलि, दूध कहां से आया ॥**
**सो ले पांडे जेंवन बैठे, मटियहिं छूति लगाया ॥**
**बेद कितेब छांड़ि देउ पांडे, ई सभ मन के भरमा ॥**
**कहैं कबीर सुनो हो पांडे, ई सभ तोहरे करमा ॥**

**शब्दार्थ**—हाड़-अस्थि। झरी झरि-चू चू कर, क्षरण होकर। गूद-मांस का लोथा, मज्जा, मगज, खोपड़ी का सार। गली गलि-गलकर पिघल-पिघलकर। ते-से। सो-वह। ले-लेकर। पांडे-तीर्थों के धर्माचार्य। मटियहिं-मिट्टी में। कितेब-किताब, पुस्तक व कुरान। छाड़ि-छोड़। देउ-दो। ई-यह। के-का। भरमा-भ्रम, बेकूफी। तोहरे-तुम्हारे। करमा-कर्म।

**मूलार्थ**—और उन्हीं नदियों में पशुओं और मनुष्यों के शव व शरीर के हाड़-मांस मिल जाते हैं और जीवित दुधारू पशुओं के स्तनों के द्वारा वही अस्थि एवं मांसों के अंश से दूध के रूप में परिणत होकर आता है और उसी दूध को तुम पान करते हो। जरा विचार कर देखो कि वह दूध कहाँ से आया, जिसको बैठकर जेंवते हो और उस मिट्टी के घड़े में दोष लगाते हो, जिसको बेचारा कोई शूद्र छू दे अथवा छूआ जावे उसको तुम फेंक देते हो और अभक्ष्य वस्तुओं का भक्षण करते हो। इसलिए हे पाण्डेय जी ! और हे मौलाना जी ! मैं तो कहता हूँ कि ऐसे वेद और कुरान, किताबों को छोड़ दो। जिसमें उपर्युक्त बातों का समर्थन हो और उपर्युक्त छुआछूत लगायी गयी हो, उसके परित्याग में ही कल्याण है।

यहाँ पर वेद और कितेब में 'जहद स्वार्था' है। जिसके अनुसार वेद शब्द त्याग कर 'धर्म शास्त्र' तथा 'स्मृति ग्रन्थों' से है। इसी प्रकार से कितेब शब्द कुरान न होकर 'हदीश' से है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिन धर्म ग्रन्थों में, जिन स्मृतियों में और जिन हदीशों में छुआछूत और हिंसा का प्रतिपादन हो, उनको छोड़ने के लिए कहा गया है और यह भी कहा गया है कि यह सब छुआछूत मन की मूर्खता है। मन का अज्ञान है। इसमें कोई मौलिकता नहीं है।

सद्‌गुरु कबीर पाण्डेय को सम्बोधित करके कहते हैं कि हे पाण्डेय जी ! मेरी बात को सुनो और समझो। यह भ्रष्ट व्यवहार तुम्हारे कर्म-काण्डियों का ही हो सकता है। अन्य कोई बुद्धिमान मनुष्य जो विचार-वान होगा, तुम्हारी जैसी व्यवस्था का कदापि समर्थन नहीं कर सकता

है। मैं कबीर तो यही कहूँगा कि तुम उपर्युक्त व्यवस्था का त्याग कर सच्चे संत सद्‌गुरु की शरण लो, तभी तेरा कल्याण होगा।

**आशय**—यह सारा बौछार दुर्व्यवस्थापक लोगों पर किया गया है। जो लोग छूआछूत को जन्म दिये हैं। जो लोग मनुष्यों में ऊँच-नीच का भेद उत्पन्न किये हैं। इस पर सद्‌गुरु ने कहा कि कूप एवं नदियों के पानी को समझकर पीना चाहिए क्योंकि कोई अपवित्रता से मुक्त नहीं है। इसी प्रकार से जिस पृथ्वी पर मनुष्य रहता है, उसी के फल और अन्न को खाता है। उस पर भी विचार करना चाहिये। क्योंकि यह पृथ्वी भी पवित्र नहीं है। इसमें मानव जाति के बड़े-बड़े समूह एवं मुनिजन के बड़े समूह, पैगम्बरों के बड़े-बड़े समूह सब मरने के बाद इसी पृथ्वी में मिल गये हैं और जिन नदियों के जल को शुद्ध माना जाता है, उसमें प्रतिदिन जलचर प्रसव करते हैं और प्रसव के गन्दे रुधिर उसमें मिले हुए हैं। इसलिए उसमें भी कोई पवित्रता नहीं है। क्योंकि विकार तत्त्व से मिश्रित नदी के जल बह रहे हैं। दूध भी जो लोग पीते हैं, वे पशु के अस्थि, मज्जा के ही सारतत्त्व हैं जिसको लोग पीते हैं। इसलिए दूध में भी पवित्रता नहीं है। जब यह सब बात और वस्तु अपवित्र हैं तब व्यर्थ में मिट्टी के शरीर को पवित्र माना जाता है।

इसलिए मैं कहता हूँ कि उन धर्मग्रंथों का परित्याग कर दो जो मानव में भेदभाव उत्पन्न करते हैं। क्योंकि ऐसे ग्रन्थों की बात पर विश्वास करना और उनके अनुसार कर्म करना यह अज्ञानी मनुष्यों का हो काम हो सकता है अन्य समझदार मनुष्यों का नहीं।

## सबद ४८

### संज्ञा विहीन आत्मतत्त्व प्रकरण

**पंडित देखहु हृदय विचारी, को पुरखा को नारी ॥**
**सहज समाना घट घट बोले, वाके चरित अनूपा ॥**

**वाको नाम काह कहि लीजै, ना वाके बरन न रूपा ॥**
**तैं मैं का करसी नर बौरे, का मेरा का तेरा ॥**
**राम खोदाय सकति सिउ एकै, कहु धौं कवन निहोरा ॥**
**वेद पुरान कितेब कुराना, नाना भांति बखाना ॥**

**शब्दार्थ**—पण्डित–व्यवस्थावादी ब्राह्मण। सहज–स्वाभाविक। समाना–एक सा, समाविष्ट। घट-घट–प्रत्येक प्राणियों में। बोले–प्रतिध्वनि। वाके–उसके। चरित–चरित्र। अनूपा–उपमा रहित। करसी–करते हो। का–क्या। खोदाय–खुदा, अल्लाह। सकति–शक्ति, देवी। कहु–कहो। धौं–भला। निहोरा–बिनती, प्रार्थना, अनुग्रह, कृतज्ञता, उपकार, एहसान।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मनुष्यों को छुआछूत विचारपूर्वक करना चाहिए। जो अकरणीय है वह नहीं करना चाहिए। जो करणीय है वही करना चाहिए। अर्थात् मनुष्यों में भेदभाव ऊँच-नीच करना, अकर्म और पाप है। छुआछूत अकर्मियों से करना चाहिये। जो दूसरे का स्वत्व अपहरण करते हैं। अधिकार छीनते हैं। डकैती करते हैं। हिंसा करते हैं। परस्त्री गमन करते हैं। जो मनुष्यों में भेदभाव उत्पन्न करते हैं। जो जाति-पाँति का बखेड़ा खड़ा किये हैं। हो सके तो उनका संग न करें, उनका स्पर्श न करें क्योंकि इन्हीं लोगों की संगति करने से प्रायश्चित लगता है और अन्त में यह कहा गया है कि उपर्युक्त मेरी बात को पाण्डेय जी समझें। क्योंकि उनके लिए यह दुष्कर्म करना विधि नहीं है।

अब उसी को लक्ष्य करते हुए नीचे कहा जा रहा है कि जो मनुष्यों में आप लोग व्यवस्थावादी भेदभाव लगाये हुए हैं तो मैं आप से पूछता हूँ कि जो सबमें रहने वाला है, उसकी क्या जाति है? तथा उसका कौन वर्ण है? क्योंकि उसकी जो संज्ञायें मानव के द्वारा रखी गयी हैं, वे सबके सब कल्पित हैं। इसलिए उस घट-घट में बोलने वाले को किस नाम ग्राम से पुकारा जाय, यही समस्या है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे व्यवस्थावादी ब्राह्मण लोग आप

हृदय में विचार कर देखें कि कौन पुरुष है ? कौन स्त्री है ? क्या पुरुषाकार शरीर ही पुरुष है ? इसी प्रकार से नारी लिंगवाली शरीर ही स्त्री है। अथवा दोनों से भिन्न नपुंसक शरीर वाला आत्मा है या आत्मा स्त्री, पुरुष व नपुंसक है। यदि आत्मा, स्त्री, पुरुष व नपुंसक है तो ऐसा आप कह नहीं सकते, यदि आप कहें कि आत्मा ही शूद्र एवं ब्राह्मण है, तो यह भी आप नहीं कह सकते। क्योंकि धर्म से धर्मी भिन्न होता है। इसी प्रकार शरीर से आत्मा भिन्न है। साथ ही शरीर का नाश भी देखा जा रहा है तो इसमें किसको स्त्री पुरुष कहोगे अथवा इसमें ब्राह्मण शूद्र किसको कहोगे ? व हिन्दू-मुसलमान किसको कहोगे ? क्योंकि ये नामरूप संज्ञाएँ कल्पित हैं। आत्मा तो सहज रूप से, स्वाभाविक भाव से एक साथ सभी मनुष्यों में विराजमान होकर बोल रहा है और उस आत्मा रूपी परमतत्त्व का चरित्र भी उपमा रहित है। अर्थात् सारे ज्ञान-विज्ञान का अन्वेषक मनुष्य ही है। सभी कलाओं को प्रदान करने वाला मनुष्य ही है अर्थात् आत्मा की मुक्ति की बात करने वाला आत्मा है। सुख दुःख का अनुभव करने वाला आत्मा है। प्रत्येक योनियों में जाने वाला आत्मा है। ये उसके अनुपम चरित्र हैं। इसलिए उनका नाम क्या कहकर लीजियेगा ? उसको स्त्री कहियेगा या पुरुष अथवा नपुंसक कहियेगा। उसका न तो कोई वर्ण है न रूप है न जाति है। हे पागल पण्डित ! तैं मैं क्या कर रहा है ? वह स्त्री है वह पुरुष है। मैं ब्राह्मण हूँ, वह शूद्र है। यह सब तेरा कहना पागलपन है। भला इसमें क्या मेरा क्या तेरा है ? आत्मा तो एक है व्यापक है जो तू है वह मैं हूँ। जो मैं हूँ वह तुम हो। इसमें कौन शूद्र है कौन ब्राह्मण है कौन स्त्री है। कौन पुरुष है। रे पागल पंडित ! जिन प्रभु के नामों को तू अलग-अलग मानते हो और पृथक मानकर दंगा फसाद कराते हो। एक दूसरे को देखकर जला करते हो। यह तेरा भ्रम है। तुम मौलवियों का, तुम ब्राह्मणों का यह अपना सिद्धान्त है। इसमें कोई मौलिकता नहीं है। क्योंकि जिसको तू राम कहता है जिसको तू खुदा कहता है, जिसको तू आदिशक्ति कहता है, जिसको तू महादेव कहता है, वह एक

ही परमतत्त्व है। ये नाम उसके देश, भाषा के अनुसार अनेक हो गये हैं परन्तु वह एक है। भला कहो इसमें अलग-अलग कर के किसी की उपासना की जाय जो सब एक है। नो इसमें तुम्हारा क्या निहोरा है, तुम्हारी क्या कृतज्ञता है, तुम्हारी क्या प्रशंसा की जाय ? तुम तो समाज को अनेक समूहों में बाँट दिये हो। जिसके कारण संसार में सदैव अशांति का जन्म होते रहता है और ईश्वर को भी परस्पर बाँट लिये हो।

मैं तो कहता हूँ कि वेद पुराण वा अकाशीय पुस्तक कुरान शरीफ अनेक प्रकार से ईश्वर के नामों का वर्णन किया है, "एकं सद्विप्राः बहुधा बदन्ति" भी कहा गया है। तात्पर्य यह कि वह सत्य एक है परन्तु विद्वान लोग उसके गुण धर्म के अनुसार अनेक नाम रखे हैं जिसमें कोई मौलिक अन्तर नहीं है।

**हिन्दू तुरक जैनि अउ जोगी, ये कलि काउ न जाना॥**
**छउ दरसन मा जो परवाना, तासु नाम मनमाना।**
**कहँ कबीर हमहीं पै बौरे, ई सभ खलक सिआना॥**

**शब्दार्थ**—हिन्दू–आर्यलोग। तुरक–मुसलमान। जैनि–महावीर स्वामी को मानने वाले। जोगी-योगी-नाथ पंथ को मानने वाले। ये कलि–इस संसार के लोग, उपाय, मार्ग। काउ–कोई। जाना–समझा। छउ–छः दर्शन, योगी, जंगम, सेवड़ा, संन्यासी, दरवेष, ब्राह्मण, दूसरा न्याय, वैशेषिक, सांख्य, पूर्वमीमांसा, ब्रह्मसूत्र, योग दर्शन। परवाना–प्रमाण। हमहीं–हम सरीखे, हमारे समान। पै–प्रत्युत, बल्कि, परन्तु। बौरे–पागल, उन्मत्त, विग्रह। ई–ये। खलक–संसार के लोग। सिआना–चतुर।

**मूलार्थ**—परन्तु न इस बात को हिन्दू समझ रहा है कि ईश्वर एक है न तुरक समझ रहा है कि ईश्वर एक है न जैन समझ रहा है कि वह परमतत्त्व एक है। इस प्रकार से नाथ पंथी योगी भी नहीं समझ रहा है कि परम शिव एक है। यहाँ पर तात्पर्य यह है कि इनमें से कोई एक समझता कि परमतत्त्व एक है, आत्मा एक है तो एक दूसरे से घृणा नहीं करते। जबान से वा वाणी से तो कहते हैं कि परमतत्त्व एक है परन्तु

इनके व्यवहार में अनेकता दीख रही है। इसलिए ये 'कलि' कहिये ये संसार के लोग 'काउ' कुछ भी न जाना अर्थात् इन उपर्युक्त लोगों ने परमतत्त्व को यह नहीं समझा कि वह एक ही है। मैं तो जो छौ दर्शनों में अर्थात् योगियों में, सेवड़ों में, जंगमों में, संन्यासियों में, दरवेशों में एवं ब्राह्मणों में विराजमान है। उसी को प्रामाणिक रूप से मानता हूँ। 'तासु' कहिए उसी परमेश्वर के नाम एवं तत्त्व से मेरा मन मान गया है परन्तु ये छौ दर्शन के लोग मुझे बौरा कहते हैं, पागल कहते हैं। इसलिए इनके अनुसार मैं कबीर ही पागल हूँ और ये संसारी लोग मेरे से सयाना हैं, बुद्धिमान हैं। क्योंकि छौ दर्शन में जो प्रमाण स्वरूप है उसको ये लोग नहीं मानते हैं।

**आशय**—सद्गुरु कहते हैं कि वह परमतत्त्व न स्त्री है, न पुरुष है। वह एक समान सभी प्राणियों में विराजमान है। उस प्रभु की लीला उपमा रहित है। उसकी गति कोई नहीं जान पाता है। वह संसार को किस ओर घुमाएगा, क्या करेगा, किसी को पता नहीं है। इसलिए उसका कौन नाम लेकर पुकारियेगा। वह जाति, वर्ण, रूप से भिन्न है। उसके विषय में मेरे तेरे का कोई भेद नहीं है और उसमें न कोई मेरा है न कोई तेरा है। उस एक तत्त्व के राम खुदाय, 'सत्यं शिवं' अलग-अलग नाम हैं। इसमें किसी प्रकार का व्यवधान नहीं है। संसार के सभी धर्मग्रन्थ अनेक प्रकार के परिकल्पनाएँ किए हैं परन्तु वह एक ही सनातन तत्त्व है। जिसका योगी, जंगम एवं हिन्दू मुसलमान पूर्णरूपेण वहिष्कार कर दिये हैं।

जो सब में विराजमान है, मैं उसी एक को सत्य मानता हूँ परन्तु ये उपर्युक्त लोग मेरी बात पर सहमत नहीं हो रहे हैं। इसलिए मैं उनके सामने पागल बन जाता हूँ। ये अज्ञानी मनुष्य ही मेरे से बुद्धिमान हैं।

## सबद ४९

**बुझ बुझ पंडित पद निरबान, सांझ परे कहवां बसे भान।**
**ऊंच नीचपरबत ढेला न ईंट, बिनु गायन तहवां उठे गीत॥**

**ओस न प्यास मंदिल नहिं जहवां, सहसों धेनु दुहावैं तहवां।**
**नितै अमावस नित संक्रांती, नित नित नउग्रह बैठे पांती॥**
**मैं तोहिं पूछौं पंडित जना, हिदया ग्रहन लागु केहि खना।**
**कहैं कबीर एतनो नहिं जान, कवन सबद् गुर लागा कान॥**

**शब्दार्थ**—बुझ–समझ, । पंडित–शास्त्रज्ञाता, कर्मकाण्डी। पद–स्थान, अवस्था। निरबान–निर्वाण, मुक्ति, समाधि। सांझ–संध्या, शरीरांत। परे-होने पर। कहवां–कहाँ। बसे–निवास करे। भान–सूर्य, आत्मा। ऊँच–किसी टीले की आड़ में, उच्च भूभाग में। नीच–पाताल में, नीचले भूभाग में। परबत–पर्वत, सुमेरु, गिरि, हिमालय, उच्च स्थान, शरीरांत। ढेला–छोटा रोड़ा, मानवेतर योनियां ईंट-मिट्टी से बनाकर पकाया हुआ एक खास आकृति जिससे दिवाल व मकान जोड़ा जाता है, कीट पतंग की योनियाँ। बिनु–बिना। गायन–गीत के, गाना के। तहवां–वहाँ। उठे–निःसृत हो। गीत–गायन-कविता, अनाहतवाणी। ओस–जलकण, सांसारिक सुख-तृष्णा। प्यास–इच्छा, वासना। मन्दिल–मन्दिर, रहने का स्थान। जहवां–जहाँ, सहसों, सहस्र। धेनु–गाय, सूर्य की किरणें। नितै–नित्य। अमावस–जब योगी लोग सुषुम्ना में ध्यान लगाते हैं तब ईड़ा नाड़ी और पिंगला नाड़ी दोनों का लय हो जाता है, उस समय अमावस्या कही जाती है, जिस दिन सूर्य एवं चन्द्रमा, संध्याकाल में एक साथ हो जाते हैं उस दिन का काल जिसे अमावस्या कहते हैं। संक्रांती--संक्रांति, सूर्य अथवा चन्द्रमा के एक राशि से दूसरी राशि में जाने पर संक्रान्ति कहते हैं। इस प्रकार से ईड़ा अथवा पिंगला नाड़ी जब सुषुम्ना में चली जाती है तब योगी के अन्दर संक्रान्ति होती है और यह कार्य नित्य होता रहता है। नित नित्य–प्रति-दिन। नउ–नौ ग्रह, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुद्ध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु, पंच तन्मात्राएँ व चार अन्तःकरण। पांती--एक स्थान में एक साथ अर्थात् बारह राशियों में से किसी एक राशि पर सूर्य आदि नवों ग्रह जब आ जाते हैं तब पुराणों के अनुसार ये नवों ग्रह किसी क्रूर राशि पर आ जाते हैं तब संसार में बहुत बड़ा उत्पात होने लगता

है। तोंहि–तुमसे। पूछौं–प्रश्न करता हूँ। पंडित जना–विद्वान लोग। केहिं–किस। खना–क्षण। एतनो–इतना भी।

**सम्बन्ध**—इसके पहले कहा गया है कि आत्मा न स्त्री है न पुरुष है न नपुंसक है वह सभी नाम रूपों से परे है परन्तु छौ दर्शन के लोग, उसको अनेक करके मानते हैं। इसलिए इन लोगों का उद्धार नहीं होगा अब नीचे कहते हैं कि वह उद्धार स्वरूप निर्वाणपद कहाँ बसता है, उसको समझना चाहिए।

**मूलार्थ**—अब सद्गुरु कहते हैं कि हे शास्त्र के सुधीजन ! उस परमपद निर्वाण अवस्था को समझिए वह कैसे प्राप्त होगा और उसकी प्राप्ति का प्रमाण क्या है और यह बताइए कि शरीरांत में अर्थात् जब शरीर छूट जाता है तब इस आत्मा का निवास कहाँ रहता है। वह किसी ऊँचे भूभाग में चला जाता है अथवा नीचे पाताल लोक में चला जाता है अर्थात् सुमेरु गिरि के पीछे छिप जाता है, क्योंकि छोटे-मोटे रोड़ों की आड़ में वह छिपने वाला नहीं है अथवा सूक्ष्म अवस्था में किसी छोटी योनियों में चला जाता है अथवा उष्मजादि योनियों में चला जाता है यह बताने की कृपा करें। तात्पर्य यह है कि सूर्य कभी अन्तर्ध्यान नहीं होता है। वह नीचे, ऊँचे पर्वतों की माला में छिपने वाला नहीं है। क्योंकि सूर्य इन पृथ्वी आदि ग्रहों से महान है। इसी प्रकार से आत्मा व्यापक होने के कारण कहीं से आता जाता नहीं है और न कहीं आने जाने का प्रश्न ही है। जैसे ज्योतिष के व विज्ञान के अनुसार, पृथ्वी की गति के अनुसार बारह घण्टे के बाद सूर्य दिखाई नहीं देता है, जिसको अज्ञानी लोग कहते हैं कि सूर्य कहीं चला गया है। इसी प्रकार से शरीर के अभाव होने पर शरीर आत्मा को छोड़ देता है। उस दशा में अज्ञ मनुष्य कहता है कि आत्मा कहीं चला गया, पर ऐसी बात नहीं है, आत्मा कहीं जाने-आने वाला नहीं है, वह निरन्तर एक सा रहने वाला है और उसको प्राप्ति मानव तन में ही हो सकती है। इसी बात को सद्गुरु शास्त्रज्ञ पंडितों से कहते हैं कि हे पंडितजन ! जब मन

का लय हो जाता है सुरति जाकर जब सहस्त्रार में पहुँच जाती है तो बाहर की ओर अन्धकार हो जाता है। मन का अन्तर्मुख होना ही संध्या है और वह जाकर ब्रह्मरन्ध्र को होते हुए प्रकाश स्वरूप आत्मारूपी सूर्य में विलीन हो जाता है। वह नीचे जो मूलाधार है, ऊँचे जो कपाल है पर्वत जो मेरुदण्ड है, ढ़ेला जो भँवर गुफा का स्थान है, ईंट जो षड्चक्रों से भिन्न है वहाँ पर परमतत्त्व में योगी का मन लय हो जाता है, तब बिना गीति के ही गीति होने लगती है अर्थात् योगी त्रिकालज्ञ हो जाता है, तीनों काल की वाणियों को उच्चारण करने लगता है। अर्थात् अनाहत नाद प्रतिध्वनित होने लगता है। जब योगी की सहस्त्रार में निर्विकल्प समाधि लग जाती है तब ओसकण के समान सांसारिक सुख की पिपासा नहीं रह जाती है। वह योगी पीयूष ग्रंथि से निःसृत महावारुणी रस का पान करते रहता है और मंदिर रूपी शरीर से उसकी आसक्ति समाप्त हो जाती है। वह निरन्तर तूर्यावस्था में निमग्न रहता है, वहाँ पर उसको ज्ञानरूपी सूर्य की सहस्त्रों किरणें उद्भाषित होती रहती हैं। अर्थात् ज्ञान सूर्य रूपी धेनु हो जाता है, जिससे अनेक ब्रह्माण्डों की गति को योगी जान लेता है, यहाँ पर उसी को दोहन कहा गया है। वहाँ पर नित्य अक्षुण्ण अमावस्या रहती है अर्थात् चन्द्र नाड़ी एवं सूर्यनाड़ी दोनों का सुषुम्ना में लय हो जाता है, जिसके कारण योगी सदैव निर्विकल्पक समाधि में तल्लीन रहता है। जब योगी की निर्विकल्पक समाधि लग जाती है तब नित्य संक्रान्ति हो जाती है। अर्थात् मन जो वाह्य विषय में दौड़ते रहता है, वह संसार से हटकर अपने कारण रूप में जाकर लय हो जाता है, यही योगी की नित्य संक्रान्ति है। जैसे इड़ा और पिंगला की संधि में प्राण चला जाता है। इसी को योगी लोग नित्यकी अमावस्या मानते हैं और यह नित्य होते रहती है। उसी प्रकार से जब श्वांस उच्छ्वास में एवं उच्छ्वास श्वांस में चला जाता है, तब योगी की संक्रान्ति होती है और अमावस्या का भेद भी उपरोक्त रीति से ही होता है। तात्पर्य यह हुआ कि जब अपने अनुसार योगी मन को कर लेता है, तो उसकी सारी क्रियाएं सुस्थिर हो जाती हैं तब जीवात्मा के लिए जो नवोंग्रह थे, पंचज्ञान इन्द्रियों

के जो विषय थे, वे और जो चतुष्ट अन्तःकरण थे, उन सबका आत्मा में विलीनीकरण हो जाता है। यही नवों ग्रह योगी की एक पंक्ति में आ जाते हैं। अब पुनः पंडित से प्रश्न करते हैं कि हे पंडित जन! उक्त अमावस्या और संक्रान्ति और नव ग्रहों की स्थिति आप सुन लिए। अब बताइए आप के हृदय रूपी आकाश में सूर्य रूपी आत्मा को ग्रहण करने के लिए हृदय का ग्रहण कब लगता है। इस पर पण्डित बेचारा मौन रहता है। वह कुछ कहने में असमर्थ है। सद्गुरुदेव कहते हैं कि हे अभागे पंडित! इतना भी तू नहीं जानता है कि जब तक मन पर अविद्या का पटल घेरे रहता है, तब तक हृदय स्थित आत्मा रूपी सूर्य के दर्शन नहीं होते। यही हृदय ग्रहण है। तुम लोग आकाश में राहु केतु की कल्पना करके सूर्य चन्द्र पर ग्रहण लगाते रहते हो और जिसको तू फलित ज्योतिष के आधार पर बक जाते हो जो पृथ्वी रूपी ग्रह के चाल के अनुसार आकाश में लगते रहता है। इसलिए वह क्षणिक होता है, क्योंकि सूर्य ग्रहण और चन्द्रग्रहण घण्टा मिनट का होता है और हृदय ग्रहण युग युगान्तरों से लगा हुआ हे पर तूं इस विषय को नहीं जानता है कि हृदय में कब से ग्रहण लगा है और कब इसका अन्त होगा, भला तुझे गुरु ने कौन सा उपदेश दिया है, तेरे कानों में कौन सा मंत्र फूंका है क्या उपर्युक्त विषय की जानकारी तेरे गुरु ने नहीं दी। तू केवल शास्त्र पढ़ कर बड़ी-बड़ी डींगें हाँकता है और आत्मज्ञ संतों को कहता कि यह मूर्ख है, अपठित हैं, शास्त्रपुराण नहीं पढ़ा है। हे पण्डित बताओ आत्मज्ञ मूर्ख है कि शास्त्रज्ञ मूर्ख है।

**आशय**—मनुष्यों को वेद शास्त्र का अध्ययन करने के बाद जन्म-मरण से परे होने की बात सोचनी चाहिये और यह भी सोचनी चाहिए कि हम जीते जी निर्वाण पद पा लें, क्योंकि मरणोपरान्त पुनः मानव शरीर से भेंट होगी कि नहीं यह कोई ठीक नहीं है उपाधि से युक्त यह आत्मा कहाँ जाएगा, कहाँ छिप जाएगा, किस ऊंचे नीचे स्थान में, किस पर्वत की माला में, किस लघु-दीर्घ ईंटों एवं ढेलों के टुकड़ों में छिपेगा अर्थात् ब्राह्मण आदि योनियों में जायेगा अथवा शूद्र

आदि योनियों में जायेगा वा पर्वत के समान हस्ति आदि योनियों में जायेगा या ढेला स्वरूप छोटी योनियों में जाएगा, वा ईंट स्वरूप उष्मज योनियों में जायेगा। इसका कुछ ठीक ठिकाना नहीं है। इसलिए शरीर के रहते मनुष्यों को चेत लेना चाहिए। संसारी मनुष्यों के विपरीत योगी लोग ध्यान द्वारा आत्मतत्त्व प्राप्त कर लेते हैं जिससे उनकी सांसारिक तृष्णाएँ समाप्त हो जाती हैं और वे निराधार हो जाते हैं। सहस्त्रों आनन्द का उपभोग करने लगते हैं। अमावस्या में दिन के समान सौम्य प्रकाश बना रहता है जिससे न उनको ताप होता है न ठंढक होती है। सदैव चित्त का आत्मा में संक्रमण होते रहता है। सदैव के लिए शरीरस्थ विकार शान्त हो जाते हैं। वे एक स्थान व एक पंक्ति में स्थिर हो जाते हैं। इस बात को हे पण्डित तू जानता है कि नहीं कि यह जो ग्रहण स्वरूप दुःख जीव को घेरे हुए हैं, वह कब से हैं। तू इस चीज को नहीं जानते हो। क्योंकि तुझे कोई सद्गुरु संत नहीं मिला। तू गुण हीन है। तेरे को कुछ पता नहीं है। मैं कबीर कहता हूँ कि जब तू इतनी बात भी नहीं जानता है तो उस महान तत्त्व राज्य को कैसे जानेगा, उस निर्वाण पद को कैसे जानेगा, जो सबसे परे है।

**टिप्पणी**—यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति।
तं देवाः सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन॥
(कठो० २/२/९)

परमात्मा से ही सूर्य और चन्द्र ज्योति पाते हैं और उसी में अस्त हो जाते हैं। सारे देव उसी में स्थापित हैं। उसका कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता।

इड़ा पिंगलयोः सन्धौ प्राणश्च च समागमः।
अमावस्या च निश्वासोच्छ्वासनं संक्रमोऽस्ति वै॥
इडया कुण्डली स्थाने प्राणस्य च समागमः।
सोमग्रहणमित्युक्तमन्यत् पिंगलया भवेत्॥
जाबालि दर्शनोपनिषद् अध्याय-४

इड़ा और पिंगला की सन्धि में प्राण जाने पर अमावस्या होती है और जब स्वांस, उच्छ्वास में तथा उच्छ्वास, निश्वास में जाता है, तब संक्रान्ति होती है।

जब इड़ा का सुषुम्ना में समागम होता है, तब चन्द्रग्रहण होता है और जब पिंगला का सुषुम्ना में समागम होता है, तब सूर्यग्रहण होता है।

निर्वाण प्राप्ति की स्थिति में आत्मा कहाँ जाता है, इस सम्बन्ध में भगवान बुद्ध ने 'सुत्त निपात' में उपविश को इसी प्रकार का उपदेश दिया है—

अच्ची यथा वातवेगेन खित्तो
अत्थं पलेति न उपेति संखं।
एवं मुनी नाम काया विमुत्तो
अत्थं पलेति न उपेति संखं॥

जिस प्रकार दीपशिखा (लौ) वात वेग से क्षिप्त होकर अपने गन्तव्य स्थान को चली जाती है, तब कोई संज्ञा नहीं रह जाती, उसी प्रकार नाम और काया से विमुक्त होकर मुनि निर्वाण पद में कहाँ जाता है ? इसे कोई नहीं जानता है।

## सबद ५०

### संसार वृक्ष प्रकरण

**बुझ बुझ पंडित बिरवा न होय, आधे बसे पुरुख आधे बसे ज़ोय।।**
**बिरवा एक सकल संसारा, सरग सीस जर गई पतारा।**
**बारह पखुरिया चौबिस पात, घने बरोह लागे चहुँ पास।।**
**फूलै न फलै वाकी है बानी, रैनि दिवस बिकार चुवै पानी।**
**कहैं कबीर कछु अछलो न तहिया, हरि बिरवा प्रतिपालिनि जहिया।।**

**शब्दार्थ**—बिरवा–वृक्ष, संसार। पुरुख–नर। जोय–स्त्री, प्रकृति, माया। बिरवा–वृक्ष, संसार। सरग–स्वर्ग, द्विलोक। सीस–मस्तक।

जर–मूल। पतारा–पाताल, पृथ्वी का सातवां अन्तिम तल। पखुरिया–पंखुड़ी, पक्ष; बारह महीना। चौबिस–चौबीस, पक्ष। पात–पत्र। घने–सघन। बरोह–बट के नीचे लटकने वाली जटाएँ, तीन सौ साठ दिन, वर्ष का प्रत्येक दिन। चहुँ–चारों ओर। पास–समीप। वाकी–उसकी। बानी–निशानी, चिह्न, गुण, धर्म। रैनि–रात्रि। विकार–विकृति, निरर्थक। चुवै–गिरे, टपके। पानी–द्रव तत्त्व। अछलो–था। तहिया–उस दिन, सृष्टि के पूर्व। हरि–ईश्वर। बिरवा–वट वृक्ष, संसार। प्रतिपालिनि–सृजन। जहिया–जब।

**सम्बन्ध**—उनचासवें शब्द में सद्गुरु ने शास्त्रज्ञ पण्डित से निर्वाण पद अर्थात् मुक्ति पद क्या है? प्रश्न किया और यह पूछा कि निर्वाण पद कहाँ बसता है। मनुष्य इसी मानव तन में मुक्त हो जाएगा अथवा किसी लोक लोकान्तर में जाकर मुक्त होगा या ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, योनियों में जाकर मुक्त होगा। परन्तु पण्डित के किसी उत्तर के न मिलने के कारण कहा गया कि पण्डित पूर्णरूपेण अनभिज्ञ है। उसे अध्यात्म तत्व का कुछ भी ज्ञान नहीं है क्योंकि उसे कोई आत्म विद् गुरु नहीं मिला।

**मूलार्थ**—पुनः सद्गुरु पंडित जन से कहते हैं कि हे पंडित जो निर्वाण स्वरूप परमेश्वर है परम तत्त्व हैं वह संसार नहीं है अर्थात् वट वृक्षरूपी संसार नहीं है। उस परम तत्त्व चेतन में दो गुण हैं, 'गर्भाधान, प्रजन' अर्थात् क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ दोनों गुण उस परम पुरुष में विद्यमान हैं और दोनों सम भाग में हैं आधा स्त्रीत्व है आधा पुरुषत्व है। इसी से यजुर्वेद में परमेश्वर को 'योनः पिता जनिता योविधाता' कहा गया है। उस परमेश्वर रूपी वृक्ष में आदि और अन्त नहीं हैं। उसके विपरीत यह संसार जो दृष्टि गोचर हो रहा है परमतत्त्व से भिन्न दूसरा है, स्वर्ग से पाताल तक यह माया मय जगत फैला हुआ है। जहाँ तक चित्त शक्ति जाती है वहाँ तक संसार का ही पसारा है। संसार रूपी वट वृक्ष में बारह महीने हैं पत्र रूपी चौबीस पक्ष हैं, दिन रूपी बरोह तीन सौ

साठ दिन हैं जो संसार की चारों दिशाओं में विद्यमान हैं। परन्तु यह संसार न मुक्ति रूपी फूल ही देता है और न इसमें मुक्ति फल ही लगता है यही इस संसार का गुण है। दिन-रात काम, क्रोध, लोभ, मोह, जन्म, मृत्यु रूपी विकार जल श्रवते रहता है। मैं कबीर कहता हूँ कि यहाँ संसार अनादि नहीं है क्योंकि जब जगत गुरु ने सर्जन किया तो इसके पहले संसार रहा ही नहीं। तात्पर्य यह है कि संसार अनित्य है सादि है।

**आशय**—सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि हे बुद्धिजीवी मनुष्यों! जो निर्वाण पद परम तत्त्व है वह नित्य है। वह संसार से भिन्न है, उसमें चिद्‌चिदात्मक उभय प्रकार के धर्म हैं, वह बिना किसी की सहायता से ही संसार की संरचना करता है, वह संसार से सदैव भिन्न रहता है, उसका न आदि है न अन्त है। वह परम तत्त्व स्वर्ग से पाताल तक स्थित है उस अनादि तत्त्व से संसार की कल्पना की गयी है उस प्रभु से भिन्न संसार जो एक दिखाई दे रहा है यह भी पूरे ब्रह्माण्ड में आच्छादित है। विद्वान ज्योतिषियों ने संसार को काल में विभाजित करते हुए संख्यायित किया है। इसी में बारह महीने रूपी स्कन्द रचे गये और चौबीस पक्ष रूपी पत्र कल्पित किये गये हैं और संसार रूपी वट वृक्ष में दिन रूपी तीन सौ साठ बरोह की स्थापना की गयी है जो चतुर्दिक् संसार वृक्ष के समीप में ही विराजमान है परन्तु यह संसार रूपी वट वृक्ष भक्ति रूपी पुष्प नहीं उगाता है और जन्म-मरण रहित मुक्ति-रूपी फल भी नहीं फलता है। यही इस संसार की विशेषता है। अहर्निश संसार रूपी वट वृक्ष से काम, क्रोध रूपी जल टपकते रहते हैं। सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि यह संसार अनित्य है और त्यागने योग्य है, क्योंकि यह अन्तवान है। यह पहले भी नहीं था, आज भी नहीं है और कल भी रहने वाला नहीं है इस जगत को माया विशिष्ट ब्रह्म ने निर्माण किया है। इसलिये इसको त्यागकर अर्थात् संसार से मन मोड़कर संसार से परे परम तत्त्व की ओर मनुष्यों को लगना चाहिए।

**टिप्पणी**—ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसियस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥ गीता अ० १५-१

# सबद ५१

## कुण्डलिनी योग प्रकरण

**बुझ बुझ पंडित मन चित लाय, कबहुँ भरलि बहै कबहुँ सुखाय ॥**
**खन ऊबै खन डूबै खन औगाह, रतन न मिलै पावै नहिं थाह ।**
**नदिया नहिं सांसरि बहै नीर, मच्छ न मरै केवट रहै तीर ॥**
**पोहकर नहिं बांधल तहं घाट, पुरइनि नाहिं कंवल महँ बाट ।**
**कहहिं कबीर ई मन का धोख, बैठा रहै चलन चहै चोख ॥**

**शब्दार्थ**—चित–मन, चिन्तन शक्ति । लाय–लगाकर, ध्यान पूर्वक । कबहुँ–कभी । भरलि–भरपूर, दोनों तटों के बराबर बहता हुआ नदी का जल । खन–क्षण, कभी कभी । ऊबै–व्याकुल हो, उबियाय, बाहर निकलना, दिखाई देना, सुषुम्ना । डूबै–अन्तर्ध्यान हो जाना । औगाह–थाह, ऊपर दिखाई देना, शान्ति । रतन–रत्न, आत्मतत्त्व । नदिया–सुषुम्ना, विशेष रूप से कुण्डलिनी । मच्छ–मत्स्य, काम, क्रोध, लोभ आदि । केवट–कैवर्त्य, गुरु । तीर–तट, आत्मविमुख । पोहकर–पुष्कर, सरोवर । बांधल–पार होने का मार्ग, स्नान करने की सीढ़ियाँ वा घाट, त्रिकुटी सन्धि । पुरइनि–कमल दल । कंवल–कमल, सहस्रार का कमल दल । महँ–में । बाट-मार्ग । धोख–कालबूत, प्रतिरूप, धोखा, धुर्तता । चोख–शीघ्र, तुरन्त, चतुर, धारदार ।

**सम्बन्ध**—इसके पहले कहा गया कि परमतत्त्व नित्य है और उसका विरोधी संसार अनित्य एवं दुःख श्रावक है । इसलिए मनोवृत्ति को मोड़कर आत्माभिमुख करना चाहिए ।

**मूलार्थ**—नीचे के पद में बुद्धिमान पंडित को सम्बोधित करके कहा जा रहा है कि हे मेधावी आयुष्मान् विद्वान ! मन एकाग्र करके यह चिन्तन कीजिए कि वह परमतत्त्व कैसे प्राप्त होगा । उसकी प्राप्ति का क्या साधन है । इस तथ्य को भली प्रकार से बार-बार गुरु के द्वारा समझ लीजिए । क्योंकि जिस मार्ग से सुरति-निरति की ओर अग्रसर होती है ।

वह सुषुम्ना का मार्ग साधन काल में प्रतिवाधित रहता है। यों तो उसकी गति कभी दिखाई देती है कभी अन्तर्ध्यान हो जाती है। इसलिए साधक जबतक सुषुम्ना को नहीं पाता तबतक व्याकुल रहता है। क्योंकि सुषुम्ना ही उसका मार्ग है और कभी मनोवृत्ति संसार तरंग में भी डूब जाती है। विषय वासना ही संसार का जल प्रवाह है। जिसके कारण वह आत्मतत्त्व रूपी रत्न की प्राप्ति नहीं कर पाता और आत्मतत्त्व प्राप्ति के बिना शांति रूपी थाह भी उसको नहीं मिलता। आश्चर्य तो यह है कि सुषुम्ना कोई संसार की नदी नहीं है। पर उसमें निरन्तर वृत्तिरूपी जल द्रुत गति से प्रवाहित होते रहता है जिसको साधक जान नहीं पाता। अर्थात् रात-दिन मिलाकर २१६०० अजपा गायत्री का जप होते रहता है पर मार्ग विहीन योगी उस जप को प्राप्त नहीं कर पाता। जब साधक अजपा जप में निरत होता है तभी उसको परमशान्ति उपलब्ध होती है। जब तक श्वांस की गति में वृत्ति का सम्बन्ध नहीं जुटता है तब तक योगी माया रूपी मत्स्य पर विजय नहीं कर पाता है और काम, क्रोध, लोभ भी सताते रहते हैं। इसका कारण यह है कि साधक का गुरु भी जानकार नहीं है वह हृदय सरोवर में प्रवेश नहीं किया है। उस सुषुम्ना रूपी नदी के तट पर बैठा है। अर्थात् अज्ञगुरु मूलाधार से नीचे ही रहता है। जिसके कारण वृत्ति अत्यन्त चंचल रहती है। जब योग मार्ग का गुरु ही नहीं है तब चेला कैसे गुरु हो सकता है क्योंकि हृदयरूपी सरोवर में नहाने के लिए कोई घाट भी नहीं बाधा है। वहाँ पर सद्गुरु कबीर कहते हैं कि "औघट घाट लागलि मोरी नइया" अर्थात् जिस नौका पर मैं बैठा हूँ वहाँ संसारिक घाट नहीं है वह बीचो-बीच हृदय सरोवर के कमल बन में स्थित है। सद्गुरु कहते हैं कि कमल का इतना सघन बन है उसमें मार्ग का दर्शन नहीं होता पर उसी के मध्य से जाना है। अर्थात् जबतक योगी षड्चक्रों का वेधन नहीं करता है। तबतक वह सहस्रार में पहुँचने का मार्ग नहीं पा सकता है। जिसके कारण उक्त साधक की वृत्ति संसार में भ्रमण करते रहती है। मैं कबीर कहता हूँ कि यह जो कालबूत रूपी

संसार है जिसका कोई अस्तित्व नहीं है जिसका निर्माण सदैव मन करते रहता है। काम्य कर्म से ग्रसित संसारी जीव अध्यात्म तत्त्व से विमुख बैठा रहता है और थोड़े से सत्कर्म में चाहता है कि शीघ्र परमपद प्राप्त कर लें, पर कदापि सम्भव नहीं है।

**आशय**—बुद्धिमान पण्डित से निर्देश पूर्वक सद्गुरु कह रहे हैं कि हे पण्डित जी! साधना मार्ग को समझ लेना चाहिए क्योंकि वह बहुत दुर्लभ और कठिन है। सत्य मार्ग न मिलने से साधना में मन नहीं लगता है और न सुख मिलता है सत्य मार्ग के अभाव में साधक साधना छोड़कर भाग जाता है। भला ऐसी दशा में आत्मतत्त्व कैसे पायेगा ? नदी रूपी सुषुम्ना में मार्ग है परन्तु गुरु विचारा उस रास्ता को जानता नहीं। विकट बात तो यह है कि उसके किनारे कोई रास्ता भी नहीं है। अन-जान आदमी जंगल में पहुँच कर किधर जा सकता है जहाँ मार्ग का दर्शन नहीं है अर्थात् यह संसार रूपी कमल बन जो सुख-सुविधा का स्वरूप है सत्य मार्ग को आच्छादित किये हुए है। उसी में जगत के सारे प्राणी भूले हुए हैं इसलिए सत्य मार्ग पाते नहीं। सद्गुरु कहते हैं कि यह मन हो कर्म करके असत्य संसार की रचना किया है करना-धरना कुछ चाहता नहीं केवल मन ही मन मनमोदक खाना चाहता है। इसलिए संसार के प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह पहले सच्चे सद्गुरु को खोजे अन्यथा दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

**तुलनीय**—चित्तमेवहि संसारस्तत् प्रयत्नेन शोधयेत्।
यच्चित्तस्तन्मयोभवति गुह्यमेतत्सनातनम् ॥
चित्तस्य हि प्रसादेन हन्ति कर्म शुभाशुभम्।
प्रसन्नात्माऽऽत्मनि स्थित्वा सुखमक्षयमश्नुते ॥

(मैत्री उपनिषद् ५।६)

**अर्थ**—चित्त से ही संसार (आवागमन) है। इसलिए प्रयत्न से चित्त को शुद्ध करना चाहिए। जैसा चित्त होता है उसी प्रकार मनुष्य हो जाता है। यही सही सनातन रहस्य है। चित्त की शुद्धता से ही मनुष्य

शुभाशुभ कर्म से ऊपर उठ जाता है। जिसका चित्त निर्मल हो जाता है वह अन्तरात्मा में स्थित होकर अक्षय सुख को प्राप्त करता है।

## सबद ५२

### अन्योक्ति योग प्रकरण

**बूझि लीजै ब्रह्म ग्यानी।**
**घुरि-घुरि बरसा बरसावै, परिया बुंद न पानी॥**
**चिउंटी के पग हस्ती बांधो, छेरी बीगर खावै।**
**उदधि मांह ते निकरि छांछरी, चौरे ग्रेह करावै॥**
**मेढुक सरप रहत एक संगे, बिलैया स्वान बियाई।**
**नित उठि सिंघ सियार सों डरपै, अद्‌बुद कथो न जाई॥**
**कौने ससा म्रिगा बन घेरे, पारथ बानन मेलै।**
**उदधि भूप ते तरिवर डाहै, मच्छ अहेरा खेलै॥**
**कहैं कबीर यह अद्‌बुद ग्याना, को यहि ग्यानहिं बूझै।**
**बिनु पंखी उड़ि जाय अकासै, जीवहिं मरन न सूझै॥**

**शब्दार्थ**—बूझि लीजै-समझ लीजे। ब्रह्मग्यानी-ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्म को जानने वाले। घुरि-घुरि—उमड़-घुमड़ कर, बार-बार, इधर उधर जाकर। बरसा—जल, वारिस, ब्रह्माण्ड, सोमरस, पीयूष ग्रन्थि से चतुर्दिक् निःसृत होते रहता है। परिया—पड़ा। बुंद—कण, आनन्द के दर्शन नहीं हुए। उदधि—समुद्र। चिउंटी—चींटी, कुण्डलिनी। पग—स्थान, पाद। हस्ती-स्मृति का विशाल रूप, माया। बाँधो—स्थिर करो, स्थिर करना। छेरी—माया, चित्तवृति। वीगर—भेड़िया, बड़ा सियार, साधक, जीवात्मा। उदधि—मूलाधार चक्र, समुद्र। माह—में। छांछरी छाँछ, मत्स्य, कुण्डलिनी। चौरे—मैदान, स्थल। ग्रेह—गृह निवास स्थान। मेढुक—मेढ़क, अबल प्राणी। सरप-सर्प, हिंसक प्राणी। बिलैया—बिल्ली, मायावी लोग, माया। स्वान—क्रूर स्वभाव वाला, कुत्ता। बियाई—व्याह होना। सिंघ—सिंह, जीवात्मा। सियार—अज्ञानी। अदबुद—अज्ञानी, अद्‌भुत, आश्चर्य। ससा—

खरगोश, साधक। म्रिगा–सिंह, हिंसक वृत्ति वाला, अहंकार। पारथ–गुरु, पापाधि। मेलै–निशान लगावै, वधे। तरिवर–वासना रूपी वृक्ष। मच्छ–मत्स्य, सुरति, चित्त वृत्ति। अहेरा–आखेट। अकासै–आकाश।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि गुरु विहीन मनुष्य और गुरु विहीन साधक साधना नहीं कर सकता। इसलिए आत्म साक्षात्कार से वंचित रहता है और वासनाओं के कारण अनेक योनियों में चक्कर काटते रहता है।

**मूलार्थ**—अब नोचे सद्‌गुरु कहते हैं कि हे ब्रह्मज्ञान के ब्रह्म-वेत्ताजन आप लोग निम्नोक्त बात को समझ लीजिए क्योंकि 'केवल अहं ब्रह्माऽस्मि' कहने मात्र से ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हो सकता है। आप अद्वैतवादी अवश्य हैं लेकिन आपकी बुद्धि अद्वेत को प्राप्त नहीं है। इसलिए आप काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, भय, अविवेक, अशौच्य, अदाया, अविद्या, असुइया एवं राग, द्वेष, ईर्ष्या, मान, सम्मान की वासना इन सब दोषों के आखेट हो रहे हैं। आप बिना साधना सम्पन्नता के आत्म-अनुभव नहीं कर सकते। इसके विपरीत ज्ञानी जन साधकों को निरन्तर आत्म अनुभव होते रहता है। पर अज्ञानियों को उसका पता तक नहीं चलता। निरन्तर सहस्रार से शशि सोम निःसृत पीयूष वर्षति रहता है परन्तु जो साधक नहीं है वह एक बूँद का भी दर्शन नहीं कर पाता। अर्थात् उस परम तत्त्व का असर उसके ऊपर एक कण भी नहीं पड़ता। क्योंकि शास्त्र में लिखा है कि सहस्रार स्थित चन्द्रमा नित्य अमृत की वर्षा करते रहता है। परन्तु उस अमृत को नाभी स्थित सूर्य भस्म कर देता है। इसलिए जो साधक नहीं है उस रस को पा नहीं सकता। यहाँ पर हठयोग का प्रकरण है युक्त रस की प्राप्ति, वंकनाल के द्वारा होती है। जब हठयोगी लम्बिका क्रिया के द्वारा अर्थात् खेचरी मुद्रा के द्वारा जिह्वा को अत्यन्त एक वितस्ति तक बढ़ा देता है और जिह्वा के नीचे तालु के दो नसों को काट देता है। उपरान्त जिह्वा को मोड़कर तालु में घुसेड़ देता है। जिससे की नाभि में जाता हुआ अमृत रस जिह्वा से रोक कर चाट जाता है। इससे

लाभ बहुत लिखा है जो उक्त रस को पीता है उसकी काया सिद्ध हो.जाती है। बहुत काल तक जप और तप कर सकता है। वृद्धत्व को प्राप्त नहीं होता है उसका शरीर बहुत हल्का हो जाता है चेहरा लाल हो जाता है और अनेक सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। तदुपरान्त ब्रह्म का साक्षात्कार करके जन्म-मरण से परे हो जाता है कुछ लोग हठयोग की निन्दा करते हैं और निरर्थक बताते हैं ऐसे वही लोग हैं जिन्हे केवल कथनी आती है। करनी से कोई सम्बन्ध नहीं है यहाँ तक सत्य है कि बिना हठयोग के कोई भी योग सिद्ध नहीं हो सकता। जब तक आप इन्द्रियों के साथ हठ नहीं कीजियेगा। तब तक इन्द्रियां वश में नहीं रह सकती हैं। 'ह' शब्द का अर्थ होता है सूर्य-स्वर, प्राणवायु एवं जिसे पिंगला नाड़ी भी कहते हैं। 'ठ' शब्द का अर्थ है चन्द्र स्वर, अपान वायु जिसे इड़ा नाड़ी भी कहते हैं। योग शब्द का अर्थ सम्बन्ध होता है अर्थात प्राण अपान वायु के मिलन तथा एक करने की क्रिया का नाम हठयोग है। जब तक प्राण अपान वायु एक नहीं होते तब तक मन में स्थिरता नहीं आती और जब तक मन स्थिर नहीं है तब तक समता नहीं आती तब तक वह ब्रह्म चिन्तन नहीं कर सकता इससे परे सब कोरा बकवास है। मन का सम्बन्ध वीर्य से है और वीर्य का सम्बन्ध शरीर से है शरीर का सम्बन्ध आत्मा से है और आत्मा का सम्बन्ध ज्ञान मुक्ति से है। मन के चलायमान होने से वीर्य चलायमान होता है वीर्य के चलायमान होने से शरीर चलायमान होता है और शरीर के चलायमान होने से आत्मा और शरीर से विच्छेद हो जाता है। आत्मा और शरीर के विच्छेद होने पर मुक्ति नहीं मिल सकती है। इस-लिए हठयोग एवं कुण्डलिनी जागरण योग करणीय एवं आचरणीय है। सद्‌गुरु कबीर वाचक ज्ञानियों की ओर संकेत करके उक्त योग का संकेत किया है। सहस्रार से प्रत्येक क्षण अमृत की वर्षा होते रहती है। पर अज्ञानी के ऊपर एक कण भी नहीं पड़ता। कण तो तभी पड़ सकता है जब कुण्डलिनी को जगाया जाय और विशाल स्मृति के स्वरूप को सूक्ष्म चींटी स्वरूपिणी कुण्डलिनी के जगाने में लगाया जाय। जब चींटी रूपो

कुण्डलिनी के स्थान में हस्ती रूपी मनोवृत्ति समाविष्ट हो जाती है तब वृत्ति का बंधन हो जाता है। 'छेरी' कहिये सात्त्विक माया 'बीगर' कहिये अहंकार जो सबको खा रहा था उसको सतोगुणी वृत्ति ज्ञान कला उसको खा गयी। जब अहंकार का अभाव हो गया तब उदधि कहिये मूलाधार में से छांछरी रूपी कुण्डलिनी ब्रह्माण्ड की ओर अग्रसर हो गयो और चौरे कहिये ब्रह्मरन्ध्र से होती हुई सहस्रार के मैदान में जा विराजी और वहाँ अपना घर बना लिया। जहाँ पर कुण्डलिनी जाकर साधक को निर्विकल्पक समाधि में लगा दी। जब साधक की निर्विकल्पक समाधि लग गयी तब वह पूर्ण अहिंसक हो गया। उसके आस-पास के हिंसक और अहिंसक दोनों प्रकार के प्राणी वैर भाव का त्याग कर एक साथ रहने लगे। किसी से शत्रुता नहीं रह गयी—

हकारः कीर्तितः सूर्यकारश्चन्द्र उच्यते।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद् हठ योग निगद्यते ॥ सिद्धसिद्धान्त पद्धति॥

और उसी प्रकार से बिलाय के स्वभाव वाले मायावी लोग जो म्याऊँ-म्याऊँ करते थे जिनको माया की संज्ञा दी गयी है और कुत्ता के समान भूंकने वाले लोग वे भी शान्त चित्त होकर सियार के साथ रहने लगे। इसका दूसरा रूपक अर्थात् बिलैया का कुण्डलिनी का भी है और कुत्ता ज्ञान का भी है। बियाई–कहीं-कहीं पाठ बियाही भी है अर्थात् प्रसव भी है तब पूरे का तात्पर्य यह हुआ जब कुण्डलिनी सहस्रार में पहुँच गयी तब उसने ज्ञान का प्रसव किया और उस ज्ञान से संसार में प्रकाश हुआ। अब साधक सतत् सावधान रहने लगा और अज्ञान से डरने लगा कि वह अज्ञान पुनः चित्त पर न आ जाय। कुण्डलिनी जागरण का प्रकरण बहुत अद्भुत है जिसको कहा नहीं जा सकता है। भला कौन ऐसा साधक है जो सिंह रूपी मन को शरीर रूपी वन में घेरा देकर रोके। यह कार्य कोई गुरु का लाल साधक ही कर सकता है जो ध्यान रूपी वाण से काम क्रोध रूपी मृगों का नाशकर सकता है। तभी उदधि कहिये मूलाधार स्थित कुण्डलिनी रूपी जो राजा है भूपति है अर्थात् उसके अन्दर का जो

तेज है। वह वासना रूपी तरिवर को भस्म कर देता है तब चित्त वृत्ति रूपी मत्स्य मूलाधार से निकल कर सहस्रार में काम, क्रोधादि को आखेट करने लगती है।

मैं कबीर कहता हूँ कि यह आश्चर्यमयी ज्ञान है भला इस आश्चर्य मयी ज्ञान को कौन समझ सकता है। इस ज्ञान को समझने वाला बिना वाह्य पर के सहस्रार रूपी चिदाकाश में उड़ने लगता है। अर्थात् वह सबसे ऊपर हो जाता है और सदा वह जीवित रहता है। उस साधक को अब मृत्यु के आक्रमण नहीं दिखाई देते। वह सदा सर्वदा के लिए अमर हो जाता है।

**आशय**—सद्गुरु कबीर वाचक ज्ञानियों से कहते हैं कि आप लोगों को पहले सदमार्ग को समझना चाहिए क्योंकि सत् मार्ग की अनभिज्ञता के कारण आनन्दरूपी वर्षा के अनुभव आपको कभी नहीं होते। आपको चाहिए कि कुण्डलिनी अर्थात् ज्ञान शक्ति का जागरण करें और वाह्य वृत्तियों के फैलाव को रोकें। सात्त्विक वृत्ति के द्वारा अहंकार का नाश करें। जब अहंकार भस्म हो जाएगा। तभी मूलाधार से कुण्डलिनी जाग्रित होकर सहस्रार में पहुँचेगी और अपने ज्ञान कला को सहस्रार रूपी प्रांगण में बिखेरेगी तब मन के सभी विकार भाग जायेंगे पंच क्लेशों का भी अभाव हो जाएगा। आस-पास के हिंसक प्राणी भी वैर-भाव को त्याग देंगे। तत्पश्चात् महाकुण्डलिनी देवी ज्ञान का प्रसव करेगी और सिंह स्वरूपी जीव तुच्छ विषयों से घृणा करने लगेगा। यह परम अद्भुत ज्ञान है। भला इस परम अद्भुत रहस्य को किससे कहा जा सकता है? अस्तु इस रहस्य को केवल साधक ही समझ सकता है। भला कौन ऐसा साधक है जो मन रूपी मृंग को कैद करे और आखेटक साधक मन रूपी मृंग का ध्यान रूपी धनुष पर ज्ञान रूपी तीर रख कर वधन करे। जब मन का निग्रह हो जाता है। तब ज्ञान राज परम तत्त्व का उदय होता है और वासना रूपी वृक्ष का अवछेदन हो जाता है। तत्पश्चात् शुद्ध चित्त वृत्ति आनन्द की लहर लेने लगती है। सद्गुरु कबीर ने इस ज्ञान को आश्चर्य-

मय कहा है इस ज्ञान को शीघ्र कोई समझ नहीं पाता है । जो साधक इस ज्ञान को समझ लेता है । वह बिना पैर के ही आकाश में उड़ने लगता है अर्थात् उसकी गति अवाधित हो जाती है । अप्रतिहत हो जाती है । वह योगी देश काल से परे हो जाता है । जब तक चाहता है तब तक भौतिक जगत में निवास करता है । उसके लिए संसार में कुछ दुर्लभ नहीं रहता है । तब वह अपने को अमर समझता है । मृत्यु उसके सामने दिखाई नहीं पड़ती ।

**टिप्पणी**—नाभिदेशे वसत्येको भास्करो दहनात्मनः ।
अमृतात्मास्थितो नित्यं तालुमूले च चन्द्रमाः ।। ३२ ।।
वर्षंत्यधोमुखश्चन्द्र ग्रसत्यूर्ध्वं मुखो रविः ।
ज्ञातव्या करणी तत्र यथा पीयूष भाष्यते ।। ३३ ।।

**टीका**—अग्नि रूपी एक सूर्य नाभि में रहता है और अमृत रूपी आत्मा वाला चन्द्रमा सदा तालुमूल में निवास करता है । तालुमूल में नीचे की ओर मुख करके रहने वाला चन्द्रमा जिस अमृत की वर्षा करता है, उसे ऊपर की ओर मुख किये हुए अग्नि रूपी सूर्य नाभि में रहता हुआ ही पान कर लेता है । परन्तु जो योगी विपरीतकरणी मुद्रा को जानते हैं वे उस अमृत को अग्नि के मुख से बचाकर अपने मुख में लेते रहते हैं ।

**व्याख्या**—चन्द्रमा का निवास तालु मूल स्थित विशुद्धि चक्र में माना जाता है । वहाँ से सुधारस का स्राव होते रहता है, जिसे नाभि मंडल स्थित अग्नि पी लेता है । यदि वह अमृत उस अग्नि के द्वारा ग्रास किया जाने से बचा रहे तो उस मनुष्य को कोई रोग नहीं हो सकता और वह सदा स्वस्थ्य रहता है ।

योगाभ्यास में साधक को स्वस्थ्य रहना अत्यावश्यक है । अस्वस्थ शरीर अभ्यास में बाधक होता है । क्योंकि शरीर के स्वस्थ्य न रहने पर मन भी स्वस्थ नहीं रह सकता और उस स्थिति में योगाभ्यास का करना किसी प्रकार भी संभव नही है । इसलिए योगाचार्यों ने आसन मुद्राओं

आदि के द्वारा शरीर को निरोग और सुपुष्ट बनाए रखने की आवश्यकता बताई है।

**श्लोक**—ऊर्ध्वं नाभिरधस्तालुरूर्ध्वं सूर्यरधः शशी।
करणी विपरीताख्या गुरूपदेशेन लभ्यते॥३४॥

**टीका**—नाभि में स्थित अग्नि रूपी सूर्य को ऊपर और तालु मूल में स्थित अमृत मय चन्द्रमा को नीचे करना ही विपरीतकरणी नाम की मुद्रा है। जो कि गुरु के उपदेश से प्राप्त होती है।

**व्याख्या**—अग्नि को ऊपर और चन्द्रमा को नीचे की ओर करने से विपरीतकरणी मुद्रा होती है। यह मुद्रा गुरु के तत्त्वाधान में ही उपलब्ध करनी चाहिए। इससे पहले प्राणायाम आदि के अभ्यास और खेचरी मुद्रा के साधन में दृढ़ता प्राप्त कर लेनी चाहिए।

# सबद ५३

## परमात्मारूपी वृक्ष प्रकरण

**वै बिरवा चीन्है जो कोय। जरा मरन रहित तन होय॥**
**बिरवा एक सकल संसारा। पेड़ एक फूटल तीनि डारा॥**
**मध्य कि डारि चारि फल लागा। साखा पत्र गिनै को वाका॥**
**बेलि एक त्रिभुवन लपटानी। बांधे ते छूटै नहिं ग्यानी॥**
**कहैं कबीर हम जात पुकारा। पण्डित होय सो लेइ विचारा॥**

**शब्दार्थ**—वे–वह, उस, उसको। बिरवा–वृक्ष, परब्रह्म को। चीन्है–पहचाने। जरा–वृद्धा। मरन–मृत्यु। तन–शरीर, मन। बिरवा–वृक्ष, परमतत्त्व। एक–अद्वितीय। पेड़–मूल। फूटल–निकले। तीनि–त्रय, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, रज, सत, तम। डारा–स्कन्द। मध्य–बीच की। डारि–सतगुण, शाखा। चारि–चतुर्थं, अर्थं, धर्मं, काम, मोक्ष। फर–फल। वाका–उसका। वेलि–लता, माया। लपटानी–लिपटी हुई है।

**सम्बन्ध**—ऊपर सद्गुरु बताये कि आत्मतत्त्व की जानकारी किसी विवेकी गुरु के द्वारा करनी चाहिए और उसका मार्ग भी परिचय वाले

गुरु से समझना चाहिए। अन्यथा जन्म भर की साधना निष्फल हो जाती है।

**मूलार्थ**—अब कहते हैं कि उस परम तत्त्व रूपी वृक्ष को जो चीह्न जाता है वह जरा-मरण से रहित हो जाता है, यहाँ पर बिरवा संज्ञा परमतत्त्व को इसलिए दी गयी है कि उसी से सारा जगत उत्पन्न हुआ है। बिना उसके आधार से प्रकृति कुछ करने में समर्थ नहीं होती, कहीं-कहीं बिरवा शब्द संसार के लिए भी आया है जैसे पचासवें शब्द में बिरवा शब्द परम शुद्ध परमात्मा के लिए और संसार दोनों के अर्थ मेंआया है परन्तु यहाँ बिरवा शब्द केवल परमतत्त्व के लिए आया है। साथ ही आगे एक सौ चौदहवें शब्द में "अक्षय मूल सत् पुरुष है निरञ्जन डारा हो" में स्पष्ट कर दिया गया है। सद्‌गुरु कहते हैं कि वह परम ब्रह्मरूपी बिरवा सकल संसार में व्याप्त है। वह किसी एक स्थान में रहने वाला नहीं है। सर्वज्ञ होने के कारण व्यापक तत्त्व है। वह संसार का मूल कारण है। जिसको पादप भी कहा गया है। उसी पादप से स्कन्द स्वरूप तीन पुरुष उत्पन्न हुए। ब्रह्मा, विष्णु, महेश। ब्रह्मा रजोगुण के द्योतक हैं, शंकर तमोगुण के द्योतक हैं और विष्णु सत्वगुण के द्योतक हैं ये तीनों उस मूल भूत पुरुष से उत्पन्न हुए हैं परन्तु तीनों में समानगुण धर्म नहीं हैं। मध्य जो बीच वाले विष्णु हैं जिनका सत्वगुण धर्म है जिनको पालन एवं सर्जन का काम दिया गया है उनकी उपासना से चार प्रकार के पुरुषार्थ रूपी फल उत्पन्न होते हैं। वे हैं अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष। अर्थ कहते हैं वैभव आदि की मनोकामना को। धर्म कहते हैं परलोक साधन को। जिससे लोक परलोक दोनों में रक्षा हो वह धर्म है। काम कहते हैं इच्छित वस्तु की प्राप्ति की कामना को, जिसमें स्त्री भोगादि सब सम्मिलित हैं। मोक्ष कहते हैं मुक्ति को, जो मुक्ति शास्त्रों के अनुसार चार प्रकार की है। सामिप्य; शायुज्य, शालोक्य, सानिध्य, यह सब सत्वगुण वाले विष्णु में निहित है और भी अनेक शाखा पत्र रूपी फल मध्य की डार में लगते हैं। जैसे अनेक सिद्धियाँ हैं संसार में अनेक और

भी ज्ञान, विज्ञान के गुण हैं जो चौसठ कलाओं के रूप में देखे जा सकते हैं। अन्त में कह दिया गया कि मध्य की डार में अनन्तगुण हैं। उन्हें गिना नहीं जा सकता है और न कोई उन्हें गिनने में समर्थ ही है परन्तु इतना सुलभ मार्ग होते हुए भी संसार के प्राणी जगत् माता माया के वश में पड़े हुए हैं। वह माया लता के समान जो त्रिभुवन तीनों लोकों को अपने वेलिपत्ता से आच्छादित किये हुए है। इसलिए परम तत्त्व रूपी विष्णु को कोई चीन्ह नहीं पाता है। इसमें सामान्य जीवों की ही बात नहीं है। बड़े बड़े साधु, संत, ऋषि, मुनि, ज्ञानी, योगी जो भी इसकी पकड़ में आ जाते हैं। वे प्रयत्न करने पर भी छूट नहीं पाते हैं। बड़े-बड़े मठ, मंदिर, आश्रम, आदि अनेक प्रकार के श्यामपट लगा कर जनता को अपनी ओर उन्मुख करना क्या यह माया नहीं है? क्या यह वेलि नहीं है? काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, स्त्री, पुत्र, कलत्र सब माया के ही रूप हैं। इसमें जो पड़ जायेगा वह छूटने की बात नहीं सोच सकता। उसका संसार सीमित होता है और वह संसार की सुख-सुविधा के लिए अहर्निश विचार करते रहता है। सद्गुरु कहते हैं कि हम संत लोग कहते चले आये हैं और आज भी कह कर जा रहे हैं जो पंडित होंगे, जो बुद्धिमान होंगे, इस पर विचार कर लेंगे और उनको विचार करना चाहिए कि क्या मेरे लिए करणीय है।

# सबद ५४

## अन्योक्तिसहित सत्यानन्द प्रकरण

**सांई के संग सासुर आई।**
**संघ न सूती स्वाद नहिं मानी, गयो जोबन सपने की नांई॥**
**जना चारि मिल लगन सोधाये, जना पाँच मिलि माड़ो छाये।**
**सखी सहेलरि मंगल गावैं, दुख सुख मांथे हरदि चढ़ावैं॥**
**नाना रूप परी मन भांवरि, गांठि जोरि भाई पतियाई।**
**अरघा दे-दे चले सोहागिन, चौके रांड भई संग सांई॥**

**भयो विवाह चली बिनु दुलहा, बाट जात समधी समुझाई।**
**कहैं कबीर हम गौने जैबे, तरब कंथ ले तूर बजैबे॥**

**शब्दार्थ**—सांई–स्वामी, परम तत्त्व, ईश्वर। सासुर–श्वसुराल, संसार। संघ–साथ। सूती–निवास किया ईश्वर के साथ सहवास। मानी–न जानी। जोवन–यौवन, जवानी। नांई–प्रकार, तरह, समय। जना चारि–मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, श्वसुर, पिता, गुरु, मामा। जना पाँच–पाँच तत्त्व, नाऊ, माली, बसफोर, गृहस्वामी, बढ़ई, जल, वायु, आकाश, पृथ्वी, अग्नि। सखी–बुद्धि। सहेलरि–मनोवृत्ति, संगिनी, अनुचरी, नाउनि, मालिन। मंगल–गीत, विवाह के गाने। दुःख सुख–शुभ अशुभ, स्त्री पुरुष। मांथे–सिर। हरदि–हल्दी, वैवाहिक भार। पतिआई–विश्वास। अरघा–पानी भरा हुआ कलश, षोड्सो प्रकार के अन्तर्गत गृह देवता को जल देना। सोहागिन–नव बालाएँ, सौभाग्यती स्त्रियाँ। समधी–सम बुद्धि वाला, सद्गुरु, सदोपदेशक। गवने–पति के गेह। जैबे–जाऊँगा। तरब–पार करूँगा। कंथ–कंत, स्वामी, पति। ले–लेकर साथ में। तूर–तूर्य, तुरही। बजैबे–बजाऊँगी।

**सम्बन्ध**—तिरपनवें शब्द में कहा गया है कि जो परम पुरुष रूपी वृक्ष को समझ लेता है वह उसमें मुक्तिरूपी अमृत फल को चाखता है। तदुपरान्त जन्म मरण से रहित हो जाता है और जो उस परमतत्त्व को नहीं चीन्हता वह माया का दास बना रहता है चाहे वह ज्ञानी हो, चाहे ध्यानी हो, वह अमृत फल को नहीं पा सकता।

**मूलार्थ**—अब सद्गुरु कहते हैं कि अनेक जन्मों की वासना में बसा हुआ यह जीव जो कामना का दास है वह परमतत्त्व के साथ ही मानव तन में आया अर्थात् माता के गर्भाशय से जब निकला तो ईश्वर हृदय में था, उसके साथ-साथ बाहर हुआ और सदा उसके साथ सुप्त रहा परन्तु उस सांई का सुख क्या है? उसकी प्राप्ति से क्या लाभ है? यह उसको पता नहीं चला। संसार में आया, खूब खाया पीया मौज मस्ती लिया परन्तु जीवन बहुत अल्प रहा। जैसे स्वप्न के सुख होते हैं वैसे

हो इसके जीवन यौवन चले गये। प्रभु से भेंट नहीं हो पायी। यद्यपि इस शरीर के सूक्ष्म अवयवों को सजाया गया और निर्माण किया गया और युवावस्था को प्राप्त हुआ। अर्थात् जब इसमें सज्ञानता आ गयी और प्रभु-मिलन की बात सोची जाने लगी तो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार से विचार करने लगा कि किसके साथ सगाई की जाय, निष्काम कर्म के साथ या सकाम कर्म के साथ किया जाय अथवा सगुण के साथ। उक्त विवाह के लिए मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार मिलकर सोचने लगे। जैसे लोक में माता, पिता, पुरोहित और श्वसुर ये चारों मिलकर सोचने लगते हैं कि लग्नपत्री बनती है कि नहीं अर्थात् अब संसार में जन्म लेना चाहिए की नहीं। जब उपर्युक्त चारों में सहमति हो जाती है। तब शरीर रूपी माड़व व मंडप का निर्माण करने वाले जल, पृथ्वी, आकाश, अग्नि, वायु मिलकर शरीर का निर्माण कर दिये। जब शरीर बन गया तब उसमें चेतनता का संचार हो आया। चेतन पुरुष के आने पर शरीर रूपी माड़व में सखी रूपी बुद्धि और सहेलरी रूपी इन्द्रियाँ नाना प्रकार के वैवाहिक मंगलगान गाने लगीं। तात्पर्य यह है कि जब शरीर में चेतनता आ गयी, पूर्ण प्राण का संचार हो गया। तब बुद्धि सोच विचार करने लगी और इन्द्रियाँ अपने भोग कीं ओर उन्मुख होने लगीं। दुःख सुख माथे कहिये जो इन्द्रियों के द्वारा एवं मन के द्वारा, शुभाशुभ कर्म हुये इस जीव के माथे पर भांवर के रूप में गृहीत हुये। विवाह तो होना चाहिए था पति के साथ अर्थात् परमेश्वर के साथ पर यह समाचार सुनाई दिया कि विपरीत विवाह भाई के साथ होने के लिए गांठ जोड़ दी गयी है अर्थात् संसार के साथ सम्बन्ध स्थापित हो गया है और इसी संसार की सुख-सुविधा में विश्वास मान लिया। जब संसार से जीव की सगाई और अनुरक्ति हो जाती है, तो आस-पास की स्त्रियाँ अर्थात् नस नाड़ियाँ और सोहागिन कहिए सौभाग्यवती तृष्णा देवी दुलहिन को लाने के लिए कलश में जल भरकर अर्थात् कामना रूपी कलश में आशा रूपी जल भरकर उस जीव को पुनः संसार में लाने के लिए चल पड़ीं और उसको आशा और विश्वास से आमंत्रित कराकर संसार में

आयीं और अमन चैन से रहने लगीं। गांठ तो जोड़ दी गयी, दुलहिन भी चौके में आ गयी परन्तु सिन्दूर दान के पूर्व ही भाई रूपी पति मर गया। इधर पति रूप परमतत्त्व से भी सम्बन्ध नहीं जुट पाया। उसके अभाव में संसार से ही सम्बन्ध जोड़कर बिना प्रभु प्राप्ति के ही यहाँ से कूच कर गया। संसार यात्रा में यद्यपि सद्‌गुरु ने बहुत समझाया कि संसार रूपी भाई से सगाई मत कर परन्तु यह निर्बल आत्मा सद्‌गुरु की बात नहीं माना अन्त में प्रभु की अप्राप्ति दशा में ही संसार से चल बसा। सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि यह सब दृश्य जो ऊपर कहा गया है उसको मैंने देखा है और देखकर पुनः द्विरागमन कराकर जाऊँगा अर्थात् मैं प्रभु प्राप्ति कर चुका हूँ, आत्मतत्त्व को जान चुका हूँ। अब मुझे कुछ जानने की आवश्यकता नहीं है। हम तो स्वामी को लेकर तर जायँगे और भवसागर पार होने पर खुशी में तुरही बाजे बजायँगे। सद्‌गुरु के काल में तुरही का बड़ा प्रचलन था। इसलिए विवाह के प्रसंग में तुरही बाजे का उल्लेख हुआ है। अभी भी बहुत से कबीर पंथी संत तुरही रखते हैं जो तीन वलयों में वक्राकार होती है।

**आशय**—यह जीवात्मा जब माता के गर्भाशय से बाहर आता है तो उसके संग में आत्मतत्त्व भी रहता है अर्थात् दोनों एक साथ रहते हैं। एक साथ रहने पर भी उस परमतत्त्व का सुख अपनी अज्ञानता वश यह जग जीव नहीं समझ पाया और व्यर्थ में ही स्वप्न के समान इसका जीवन नष्ट हो गया और अन्तःकरण में जो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार हैं यही वर-बधु की अर्थात् ईश्वर जीव के मिलन की लग्न विचारने लगे कि कैसे सगाई का सम्बन्ध रचा जाय। ये लोग विचार लिये तो विवाह स्थान शरीर रूपी मंडप का पाँच तत्त्वों के द्वारा निर्माण किया गया। पुनः उसमें दश इन्द्रियों का सर्जन हुआ और उसके द्वारा विवाह भोग की इच्छा और बढ़ी। शुभ और अशुभ कर्म रूपी हल्दी विवाह के चिह्न भी विवाह के पूर्व जीव रूपी दुलहे को लगाये जाने लगे। विवाह के लिए दुल्हे को नाना प्रकार की भोग वासना की ओर स्त्री-सुख की

आसक्ति दिखलाई जाने लगी। संसार और जीव दोनों साथ-साथ उत्पन्न होने के कारण भाई-भाई हैं। सम्बन्ध तो परमतत्त्व से होना चाहिए था परन्तु परमेश्वर अज्ञात होने के कारण छूट गया और भाई रूपी संसार से सुख के लिए सम्बन्ध जोड़ लिया गया। अर्घा लेकर जैसे लोक में दुल्हे की अगवानी की जाती है। उसी प्रकार से आशा तृष्णा रूपी अर्घा ये बुद्धि और इन्द्रियाँ लेकर दुल्हे के स्वागत में चलीं अर्थात् संसार की सुख-सुविधा जीव के सामने रख दीं और उसकी वासना शरीर के बीच में स्थित हो गयी। जब संसार में पूर्ण आसक्ति हो गयी तब परमेश्वर से कहाँ सम्बन्ध रह जाता है ? वहीं पर जीव वैधव्यता को प्राप्त हो जाता है और बिना विवाह प्रभु प्रेम से वंचित रह गया और बिना दुल्हा की प्राप्ति के वह चल बसा है। यद्यपि इसको संसार से वंचित होने वाले लोगों ने बहुत समझाया लेकिन संसार में लगा रहा, तात्पर्य यह है कि सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि मैंने संसार के लोगों को बहुत समझाया कि मान जाओ, प्रभु से प्रेम करो परन्तु मेरी एक भी किसी ने न सुनी। अब मैं पुनः जहाँ से आया था वहीं जा रहा हूँ। अर्थात् मैं संसार को सुधारने के लिए दिव्यलोक से आया था और अब पुनः उसी दिव्यलोक में जाता हूँ। अपने स्वरूप के साथ मिलकर भवसागर पार हो जाऊँगा और पश्चात् में आनंद के बाजे बजाऊँगा।

## सबद ५५

### अन्योक्ति वंचक प्रकरण

**नर को ढ़ाढ़स देखो आई, किछु अकथ कथा है भाई ॥**
**सिंघ साहदुल एक हर जोतिन, सीकस बोइन धाने।**
**बन की भुलुईया चाखुर फेरे, छागर भये किसाने ॥**
**छेरी बाघै ब्याह होत है, मंगल गावै गाई।**
**बन के रोझ धरि दायज दीन्हों, गोह लुकंदे जाई ॥**
**कागा कापर धोवन लागे, बकुला कीरपै दांते।**
**मांखी मूंड़ मुड़ावन लागी, हमहुँ जाब बराते ॥**

**कहैं कबीर सुनो हो संतो, जों यह पद अरथावै।**
**सोई पंडित सोई ग्याता, सोई भगत कहावै॥**

**शब्दार्थ**—नर–मनुष्य। ढ़ाढ़स–दृढ़ता, साहस। अकथ–अकथनीय, न कहने योग्य। सिंघ–व्याघ्र। साहदुल–शार्दूल पक्षी विशेष जो हिमालय के उच्च शिखरों पर निवास करता है विशेष सिंह की एक जाति अर्थात् चीता। हर–हल, जिसके द्वारा किसान लोग खेत को जोतते हैं। जोतिन–एक साथ हल में नत्थी किया गया। सीकस–कंकरीली जमीन, ऊसर। बोईन–बीज वपन। धाने–धान। बन–वन, जंगल, संसार। भुलुईया–क्रोधी स्वभाव वाला, मलिन आत्मा। चाखुर–हेंगा, वह सपाट जिसके द्वारा किसान लोग ऊँच-नीच खेत को बराबर करते हैं और ढेलों को फोड़ते हैं, आचार। छागर–बकरा, बनावटी वेश वाले। किसाने–कृषक, धर्म-कर्म करने वाला। छेरी–अजा, निर्बल व्यक्ति। बाघै–व्याघ्र, हिंसक व्यक्ति। ब्याह–विवाह सम्बन्ध। गाई–सात्विक वृत्ति, इन्द्रियाँ। वन–संसार। रोझ–नील गाय, चंचल चित्त वाला। धरि–पकड़कर, बलात्कार। दायज–दहेज, उपदेश। गोह–मगर, गोह, जो घड़ियाल के आकार का होता है, जो जल-स्थल दोनों पर रहता है, भयानक जन्तु, सकाम कर्म। लुकन्दे–लोकनी, डोला के साथ जाने वाली दासी। कागा–काग, मलिन चित्त वाला। कापर–कपड़ा, वस्त्र, शरीर शुद्धि। बकुला–बगुला, एक सफेद पक्षी जो प्रायः जल के किनारे रहता है जो अपने लक्ष्य के लिए ध्यानस्थ हो जाता है, धूर्त। कीरपै–दाँत को चोख करे, धारदार करे। दांते–दन्त। मांखी–मक्खी, कृपण, धनसंग्रही। मूंड–शिर। मुड़ावन–बाल बनवाना, संवारना। हमहुँ–हम भी। बराते–वर यात्रा, परलोक।

**सम्बन्ध**—ऊपर सद्गुरु ने कहा कि मनुष्य जन्म के साथ स्वामी और यह जीव दोनों स्वयं आये पर कभी दोनों से मेल-मिलाप नहीं हुआ। असत्य पदार्थों में ही अनुरक्ति बनी रही क्योंकि न कभी स्वामी के साथ सोया न कभी स्वामी का ध्यान किया और उसके साथ सोने में, उसके ध्यान पूजा से क्या लाभ होता है? इसका भी आनन्द उसको मालूम

नहीं हुआ और न उसकी मान्यता ही दिया। निरर्थक में ही स्वप्न के समान यौवन को गँवा दिया। यद्यपि बुद्धिमान सद्‌गुरु ने बहुत समझाया पर उसकी एक भी न सुनी। अब नीचे पुनः कहते हैं कि जरा इसकी दृढ़ता तो देखो कितना अपार साहस इसके मन में है जो संसार को ही सत्य मान बैठा है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि हे विवेकी पुरुष ! संसार के अज्ञ मनुष्यों का साहस तो आकर देखो। इनकी कथा अकथ है, कुछ कहने में बनता नहीं। ये संसारी मनुष्य सिंह और शार्दूल पक्षी को जो बिल्कुल विपरीत बात है जो कभी सम्भव नहीं है। एक साथ हल में नाथकर भूमि को जोतते हैं। अर्थात् इनका विपरीत कर्म बड़ा विलक्षण है। सिंह जो हृदय में विराजमान परमतत्त्व है। शार्दूल जो मन है, जो महा चंचल है जो सदा आकाश में ही घूमते रहता है। दोनों को एक स्तर पर लाने का प्रयत्न कर रहे हैं परन्तु परमेश्वर इस मन से इतना दूर है कि उसका एक साथ होना सम्भव नहीं है अर्थात् संसारी मनुष्य मन से संसार का काम करता है और वाणी से परमेश्वर को चिल्लाता है परन्तु जब तक मन-वाणी को एक करके परमतत्त्व का चिन्तन नहीं करेगा। तब तक आत्मतत्त्व की प्राप्ति का कोई सार दिखाई नहीं देगा। इनकी वाणी का परिश्रम उसी प्रकार से निरर्थक है जैसे कोई व्यक्ति कंकरीली भूमि में साथ ही जो ऊसर हो उसमें धान रोप देवें और जंगली भालुओं को बैल बनाकर खेत को शुद्ध करने के लिए हेंगा देवें और बकरा को किसानी में नियुक्त करें, क्या यह सब सम्भव है ? क्योंकि शुष्क हृदय में भक्ति रूपी धान कभी जम नहीं सकता, बनचर बुद्धि वाला मनुष्य व उपदेशक उस शुष्क हृदय वाले का अन्तःकरण शुद्ध कर दे, क्या यह सम्भव हो सकता है और दाढ़ी बोका की तरह बढ़ाकर जो विषयों के लिए मिमियाते फिरता है जिसको अपने स्वयं का ज्ञान नहीं है। वह भला उस वनचर शुष्क हृदय वाले अज्ञानी की रक्षा कर सकता है ? क्या उसको इस संसार से पार कर सकता है ? इनकी बात उसी प्रकार से है जैसे कोई छेरी और बाघ से

ब्याह कर दे तो क्या दोनों का दाम्पत्य निबह सकता है ? क्या ब्याघ्र छेरी को पत्नी रूप में रख सकता है ? वह तो उसे खा जायेगा।

कहने का तात्पर्य यह है कि जो लोग अनेक प्रकार से समाज का शोषण कर रहे हैं मनुष्यों का भक्षण कर रहे हैं। राजा बनकर प्रजा का नाश कर रहे हैं। गुरु बनकर चेला का नाश कर रहे हैं। यदि उनसे देश की रक्षा की आशा की जाय और समाज सुधार की आशा उनसे की जाय तो क्या वे लोग कर सकते हैं ? जो लोग अकिंचनों व गरीबों का शोषण कर अपना उदर भरते हैं। जब अपनी उदर पूर्ति कर लेते हैं 'मन' को लुभाने वाले अच्छे-अच्छे गीत गाते हैं और इन्द्रिय-पोषण में ही सदा लगे रहते हैं। यह कितना आश्चर्य है कि छेरी एवं बाघ से ब्याह होता है और गाय विवाह की गीत गाती है। उस विवाह में कन्या की विदाई में जंगली गाय अर्थात् नील गाय को दहेज दिया जाता है और कन्या के साथ दासी के रूप में गोह जाती है कन्या की सेवा व पानी पिलाने के लिए अज्ञानी गुरु चंचल मनुष्यों को ज्ञान का दहेज देता है और हिंसक कर्म रूपी गोह को उसके साथ लगा देता है। देवी-देवताओं के समक्ष बलि आदि का विधान करवाता है। मलिन चित्त वाले भी अपने आचार-विचार में लग जाते हैं ये भी वर के साथ बारात में जाने के लिए अर्थात् दिव्य लोकों में जाने के लिए उतावले हो जाते हैं। बकुला गुरु नाना प्रकार के भोगों को भोगने के लिए अपने दाँत को तीक्ष्ण बनाते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि जो ऊपर से देखने में शान्त लगते हैं, ध्यानस्थ लगते हैं पर जिनकी इन्द्रियाँ एवं अन्तःकरण अशान्त हैं। वे भी दिव्य लोकों के भोग भोगने के लिए उतावले हो रहे हैं। इसी प्रकार जो मक्खीचूस हैं जो कभी एक पैंसा दान नहीं दिये जो सदा ही ठगी से धन का संग्रह करते रहे हैं जिनका परमार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं था। वे लोग भी मलिन चित्त वालों के साथ दिव्यलोकों में जाने के लिए दाढ़ी, मूंछ घूटवा रहे हैं कि हे भाई ! हम भी आप के साथ बारात में चलेंगे।

मैं कबीर कहता हूँ कि हे सन्त जन सुनिये ! जो मैं उक्त पद को

गाया हूँ जो इस पद का भाव समझेगा वही पंडित होगा, वही ज्ञाता होगा, वही भक्त होगा, वही संसार में भक्त कहलायेगा। तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति ठगी धूर्तई से एवं संसार के प्रपंच से मुक्त होगा वही पंडित है, वही ज्ञाता है, वही भगवान का भक्त है। अन्य सभी नरक-गामी हैं।

**आशय**—कुकर्मी मनुष्य जिसके साथ कुकर्म करता है उसके विषय में कुछ कहना कठिन है। एक ओर तो वह पाप करता है और दूसरी ओर पुण्य की बात करता है जिन कर्मों के कोई फल नहीं होते उन्हीं कर्मों को आये दिन करते रहता है। जिन वाह्याडम्बरों से हृदय की शुद्धि नहीं होती उन्हीं कर्मों से अन्तःकरण शुद्ध करने का प्रयत्न करता है। जिन बनावटी कृत्रिम वेश से कोई कार्य सधने वाला नहीं है उन्हीं वाह्य कर्मों से इन्द्रियों का दमन करना चाहता है। क्या लोभी मनुष्य जो तस्करी करता है, जो लूटपाट करता है, वह छेरी रूपी प्रजा का पालन कर सकता है? जो दूसरों का वंचन करने में ही आनन्द की गीत गाता है। भला वह चंचल चित्त वाले को आत्मज्ञान दे सकता है। भला जो क्रोध रूपी विष को अन्दर में छिपाये हुए है, जो कभी बुद्धिमानों का साथ नहीं करता, क्या वह समाज की सेवा कर सकता है? भला जो काग के समान मलिन चित्त वाला है, भला जो बक के समान पाखंडी एवं हिंसक है, भला जो मक्खीचूस है, जो सदा धन का संग्रह किया, जो कभी एक पैसा भी सत्कर्मों में नहीं लगाया, क्या ये सब संसार से मुक्त हो सकते हैं?

सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि हे सन्त जन! यह सब बात सुन लीजिए और इस पर विचार कीजिए हम तो कहते हैं कि वही पंडित है वही वक्ता है, वही हरि भक्त है, वही सच्चा मानव है जो उपर्युक्त प्रपंच से रहित हो।

**रूपकाशय**—सद्‌गुरु कहते हैं कि मनुष्यों का साहस तो देखो जिनके विषय में कुछ कहना कठिन है क्योंकि सिंह और शार्दूल को एक साथ नाधकर खेत जोत रहे हैं और कंकरीली जमीन में धान बो रहे हैं।

जिसमें कभी पानी नहीं रूकता। वन का भालू पकड़कर हेंगादि लगवा रहे हैं। किसानी करने के लिए बकरा को हलवाह बनाये हैं। जब खूब धन-दौलत हो गया घर में अर्थात् खूब अनाज उपज गया तब बेटा-बेटी का विवाह भी करने लगे। छेरी और बाघ से ब्याह हो गया। गाय महरानी उसमें मंगल की गीत गाने लगीं। वर को दहेज के रूप में नील गाय दी गयी। कन्या की सेवा के लिए मगर गोह को भेजा गया और कौआ जी बारात जाने के लिए कपड़ा साफ करने लगे। बारात का बढ़िया-बढ़िया भोजन खाने के लिए बकुला जी दांत को खूब पत्थर पर रगड़ने लगे। मक्खी जी बारात जाने के लिए शिर पर बंगला बाल कटवाने लगीं कि हम भी बारात जायेंगी।

सद्गुरु कबीर उक्त दृश्य को देखकर साधुओं को सम्बोधित करके कहते हैं कि यदि आप मेरे गाये हुए इस पद का अर्थ लगाइयेगा तो आप ही पंडित होंगे, आप ही ज्ञाता होंगे, आप ही भगवान के भक्त होंगे।

## सबद ५६

**नर को नहिं परतीत हमारी।**
**झूठा बनिज कियो झूठे सों, पूँजी सभन मिलि हारी॥**
**खट दरसन मिलि पन्थ चलायो, तिरदेवा अधिकारी।**
**राजा देस बड़ो परपंची, रैयत रहत उजारी॥**
**इतते ऊत ऊतते इत रहु, जम की साट सवारी।**
**ज्यों कपिडोर बांधि बाजीगर, अपनी खुसी परारी॥**
**इहै पेड़ उतपति परलै का, बिखया सभै बिकारी।**
**जैसे स्वान अपावन राजी, त्यों लागी संसारी॥**
**कहैं कबीर यह अदबुद ग्याना, को माने बात हमारी।**
**अजहूँ लेऊँ छुड़ाय काल सो, जो करे सुरति संभारी॥**

**शब्दार्थ**—परतीत–विश्वास। बनिज–वाणिज्य, व्यवसाय। पूंजी–सम्पत्ति, एकत्रित किया हुआ धन। सभन–सभी। खट दरसन–षट् दर्शन,

योगी, जंगम, सेवड़ा, संन्यासी, दरवेश, ब्राह्मण। पंथ–सम्प्रदाय। तिरदेवा–ब्रह्मा, विष्णु, महेश। बड़ो–बहुत। रैयत–प्रजा। इतते–इधर से (दिल्ली से)। ऊत–वहाँ से, (दौलताबाद से)। ऊतते–दौलताबाद से दिल्ली। इत–दिल्ली, इधर। जम–मृत्यु। साट–छड़ी, सांटी, पतली बांस की कमची, कोड़ा। सवांरी–वाहन यम की वह सवारी जो भैंसा के आकार की होती है। कपि–बन्दर। डोर–रस्सी। बाजीगर–नट। खुसी–प्रसन्नता। परारी–दूसरे की, अन्य की। इहै–यह। पेड़–वृक्ष। बिखया–संसारी, विषय। अपावन–अपवित्र। राजी–सन्तुष्ट। अदबुद–मूर्ख, आश्चर्य, अभूतपूर्व।

**सम्बन्ध**—सद्गुरु कबीर पचपनवें शब्द में दुःसाहसिक कदम को देखकर उसके विपरीत आचरण का उल्लेख किया है और अन्त में यह कहा कि जो विपरीत आचरण का परित्याग करेगा वही प्रभु भक्त हो सकता है। नीचे संसारासक्त मनुष्यों को विश्वास दिखलाते हुए धन संग्राहकों को एवं देश के शासकों का उल्लेख करते हैं।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर बन्दीछोर! संसार के असत्यवादी मनुष्यों के व्यवहार को देखकर कहते हैं कि इन मनुष्यों पर मेरा कोई विश्वास नहीं है क्योंकि ये संसारी मनुष्य जिस व्यवसाय को नहीं करना चाहिए, उसी व्यवसाय को करते हैं। संसार के जिन पुत्र-कलत्रों को, एवं मान-सम्मान के कर्मों को एवं संसार के बढ़ानेवाले कर्मों को जिसको वेद, शास्त्रों में झूठा कहा गया है उसी असत्य वाणिज्य को करते रहते हैं और वह वाणिज्य उन झूठे उपदेशकों से करते हैं जो स्वयं सत्य का आचरण नहीं करते, सत्य नहीं बोलते, जो स्वयं पाप कर्म में लिप्त हैं। झूठे-झूठे कर्मों के फल सुनाते हैं। अर्थात् संसार के असत्यवादी मनुष्य, असत्यवादी नेताओं से, असत्यवादी पीरों से, असत्यवादी गुरुओं से, असत्यवादी सम्राटों से, असत्यवादी बादशाहों से सम्बन्ध स्थापित करते हैं। जिसके कारण घर का संग्रहीत धन छीना जाता है अर्थात् राजे महाराजे एक न एक तिकड़म रचकर प्रजा को भूमि आदि सम्पतियों से वंचित कर देते हैं जैसे धूर्त मनुष्य साधु का रूप बनाकर सीधे-साधे मनुष्य का दया, धर्म, क्षमा आदि

धन अपहृत कर लेता है और अन्त में संसारी जीव को कुछ हाथ लगता नहीं है। संसार में पहले एक ही धर्म रहा होगा। लेकिन स्वार्थ सिद्धि में अनबन होने के कारण अनेक मत-पंथ चल पड़े होंगे और कोई संन्यासी कहलाता है, कोई वैष्णव कहलाता है, कोई दरवेश कहलाता है, कोई सेवड़ा कहलाता है, कोई शैव एवं कोई शाक्त कहलाता है, इस प्रकार षट्दर्शन चल पड़ता है। षट्दर्शनी लोग अपनी रोजी-रोटी चलाने के लिए अनेक प्रकार से शिष्य वर्ग से धन ऐंठते हैं और अनेक प्रकार के देव-देवियों की कल्पना करके जिनके पूजा का अधिकार समाज को बताते हैं। जिनके तीन देवता सबसे सबल होते हैं लोकपितामह ब्रह्मा जी, पालन कर्ता विष्णु जी, संहारकर्ता शंकरजी। इन षट्दर्शनियों के उपास्य होते हैं। इनसे आगे जनता को नहीं जाने देते। इसो संसार की ऊधेर बुन में समाज को फँसाये रखते हैं।

इसी प्रकार से देश का राजा भी बड़ा प्रपंची है, जो यमराज की भाँति अनेक प्रकार से प्रजा जनों को नये-नये विधान के द्वारा उत्पीड़ित करते रहता है एवं बेमाने मतलब के आदेश जारी करते रहता है। जिसके कारण देश को प्रजा उजड़ रही है। बिना घर-द्वार के हो रही है। देश के बादशाह पर शैतान सवार रहता है कभी दिल्ली से प्रजा को दौलताबाद आन्ध्र में भेजता है, कभी आन्ध्र से प्रजा को दिल्ली ले आता है। अर्थात् राजा के ऐसे गन्दे कानून हैं, ऐसे गन्दे विधान हैं। जो सदैव प्रजा जनों को उत्पीड़ित करते रहते हैं। ये राजा लोग यमराज से कम नहीं हैं। इनके हाथ में वह भयानक बांस की हरी छड़ी रहती है जिसके द्वारा अनाथ लोगों पर प्रहार करते हैं। प्रजा को मारने के लिए इन राजाओं की सवारी सदा तैयार रहती है। प्रजा विचारी भी विवश है। वह सिर नहीं उठा सकती जैसे बंदर को बाजीगर बाँधकर डंडो से पीटकर नाचना सिखाता है तथा अपने अनुकूल बनाता है। उसी प्रकार से देश के बादशाह एवं राजे-महाराजे कुशासन के द्वारा प्रजा को आत्मनिर्णय की छूट भी नहीं देते। जनता के सारे अधिकार सम्राट लोग अपहरण कर

लेते हैं। देश की जनता भी आततायी शासकों की खुशी में खुशी मानती है। जो स्वामी कहता है वही प्रजा की बात होती है।

ये राजा लोग उत्पत्ति, प्रलय के वृक्ष बने हुए हैं। जिनके द्वारा जनता के विचार उत्पन्न होते हैं। जनता के न चाहने पर उनका नाश भी हो जाता है अर्थात् यह संसार रूपो वृक्ष उत्पत्ति, प्रलय का केन्द्र है। इसमें सुख-दुख का अम्बार लगा हुआ है। जो संसार की विषय-वासना है वह सब विकार है, मायाकृत है, अग्रहणीय है परन्तु संसारी मनुष्य संसार की विषय-वासना में उसी प्रकार से राजी है जिस प्रकार अपवित्र वस्तुओं में कुत्ता राजी रहता है। वहो काम, वही भोजन भोग संसारी लोग भी करते हैं।

सद्गुरु कबीर ने उक्त विचार को मूर्खों का विचार कहा है और आश्चर्य मय कहा है और यह भी कहा है कि भला मेरी अच्छी बात को कौन माने ? मैं तो लोगों से कहता हूँ कि बुरी बातों का परित्याग करो, अच्छी बातों का ग्रहण करो। यदि तुम मेरी बात मानता है। यदि सत्य पर चलता है। तो आज हो तुझे काल से छुड़ा लूंगा। अर्थात् संसारी दुःखों से पार कर दूंगा। संसारी क्लेशों से वही मुक्त हो सकता है जो अपनी सुरति को सम्भाल लेता है। जो सुरति को निरति की ओर ले जाकर परब्रह्म में मिला देता है वही संसार से पार हो सकता है अन्य नहीं।

## सबद ५७

### कुअभ्यास प्रकरण

**ना हरि भजेसि न आदत छूटी।**
**सबदहि समुझि सुधारत नाहीं, आंधर भये हियहुँ की फूटी।।**
**पानी मांहि पखान की रेखा, ठोंकत उठे भभूका।**
**सहस घड़ा नित उठि जल ढारै, फिर सूखे का सूखा।।**
**सेतहि सेत सितंग भौ, सैन बाढ़ु अधिकाई।**
**जो सनिपात रोगिअन मारे, सो साधुन सिधि पाई।।**

**अनहद कहत-कहत जग बिनसै, अनहद स्रिस्टि समानी।**
**निकट पयाना जमपुर धावै, बोलै एकै बानी॥**
**सतगुरु मिलै बहुत सुख लहिये, सतगुरु सबद सुधारे।**
**कहैं कबीर ते सदा सुखी है, जो यह पदहिं विचारैं॥**

**शब्दार्थ**—आदत–स्वभाव। न–नहिं। भजेसि–भजा। सबदहिं–गुरु के उपदेश को। हियहुँ–हृदय। पानी–जल, ज्ञान। पखान–जड़ दृश्य, पत्थर। रेखा–लकीर। ठोंकत–ठोकने पर। भभूका–चिनगारी, लूत्ती। सहस–सहस्र हजार। सेतहिं–श्वेत उज्ज्वल। सेत–श्वेत। सितंग–शीत ज्वर। सैन–संकेत, निद्रा, वृद्धत्त्व। बाढु–बढ़ा। अधिकाई–वलात अधिक, विशेष। सनिपात–वात, कफ, पित्त का प्रकोप। अनहद–अनाहत नाद सीमा रहित। अनहद–अनाहत परमात्मा। पयाना–यात्रा। बानी–एकहि बात।

**सम्बन्ध**—ऊपर सद्गुरु ने कहा है कि झूठे व्यवहार वालों पर विश्वास नहीं होता है। चाहे वे साधु संत हों, चाहे वे षट्दर्शनी हों, जो सत्य मार्ग का अनुसरण नहीं करते हैं, वे प्रभु कृपा के पात्र नहीं होते न परम तत्त्व के अधिकारी ही होते हैं। इधर से उधर चतुर्दिक चक्र काटते रहते हैं उन्हें यम लोक ले जाने के लिए भगवान यम की सवारी तैयार रहती है जो लोग सदैव इन्द्रियों के परवश रहते हैं और जिनका आहार विषय-वासना ही है। जो सदैव अपवित्र वस्तु को ग्रहण करते रहते हैं उनको हम प्रबुद्ध समाज में नहीं गिनते क्योंकि वे मेरे हितैषी वाक्य को मानने के लिये प्रस्तुत नहीं हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या उनका उद्धार नहीं हो सकता है? अस्तु उनका भी उद्धार हो सकता है यदि वे झूठे व्यवहार वाले अब भी चेत जाँय तथा सद्गुरु की बात मान लें तो शीघ्र ही मृत्युपाश से मुक्त हो सकते हैं परन्तु कठिनाई यह है कि मनुष्यों का बिगड़ा हुआ स्वभाव शीघ्र नहीं सुधरता है। इसलिए मुक्त होने में विलम्ब लग सकता है।

**मूलार्थ**—मनुष्य का कल्याण तभी होता है, जब वह कुत्सित कर्मों का परित्याग करे और भगवत् भजन करे। इस पर गुरु महराज कहते

हैं कि सुधार हो तो कैसे हो, कल्याण हो तो हो कैसे, क्योंकि न व्यक्ति हरि को भजता है न बुरे स्वभाव का परित्याग करता है और नही सद्‌गुरु की सीख को समझ कर सुधार की ओर ध्यान ही देता है क्योंकि वाह्य नेत्र विषय-वासना के सेवन से नष्ट हो चुके हैं और ज्ञान विवेक रूपी नेत्र भी कुत्सित संस्कारों के कारण मर चुके हैं। जिसके वाह्याभ्यन्तर के नेत्र न हों उसको कितना भी सदुपदेश सुनाया जाय पर सुधरने की आशा क्षीण रहती है। जैसे पानी के भीतर सहस्त्राब्दियों से पाषाण पड़ा होता है पर उसके एक भी चिह्न नहीं मिटते। पत्थर की रेखाएं ज्यों कि त्यों बनीं रहती हैं। उक्त पत्थर को ठोकने से उसमें चिनगारी ही निकलती हैं उस पत्थर पर सहस्रों घड़ा नित्य प्रति जल डालिए पर वह सूखे का सूखा ही रहता है। जैसे अनेक शताब्दियों से जल के भीतर पत्थर पड़ा रहता है, यत्किंचित भी उस पर जल का असर नहीं होता, उसी प्रकार से जड़ हृदय वाले एवं पत्थर मति वाले को कितना भी वेद शास्त्र पढ़ाइये, कितनी भी अच्छी बात सुनाइये परन्तु वह विल्कुल कोरा का कोरा ही रहता है। सद्‌गुरु का वाक्य एक भी उसको असर नहीं करता। जैसे पत्थर के अन्दर उजला का उजला ही रहता है। उसी प्रकार से मूर्ख मनुष्य भी पहले उसका हृदय तो जड़ था ही अब उसके बाल भी श्वेत हो चले हैं और उसका स्वभाव भी ज्यों का त्यों श्वेत ही है। यहाँ श्वेत का तात्पर्य ऊसर भी है। उपमा अलंकार के रूप में उल्लेख हुआ है। मूर्ख को अधिक समझाने से अधिक मूर्खता आ जाती है। जैसे किसी मूर्ख को कथा सुनने को कहिये तो सुने भी परन्तु जो पहले से ही बुद्धि के अभाव में उसका निद्रालु स्वभाव था। शयन कहिये अब और भी निद्रा बढ़ गयी। जिस सन्निपात रोग से एवं वात, पित्त, कफ के द्वारा अज्ञ रोगी मारे जाते हैं उन्हीं काम, क्रोध, लोभ एवं वात, पित्त, कफ को साधुजन नियंत्रण करके सिद्धि को प्राप्त हो जाते हैं। अज्ञानी मनुष्य प्रभु को असीमित है अनाहत है यह कहते-कहते शरीर से परे हो जाता है, नष्ट हो जाता है परन्तु हरि को नहीं भजता है अपने जीवन को व्यर्थ में हीं बिता देता है। उस अनन्त की बात वह नहीं जानता है क्योंकि उस अनाहत

में ही यह सारी सृष्टि समा रही है। ये संसारी मनुष्य कथनी बड़ी लम्बी-लम्बी कथते हैं परन्तु करनी के न होने से शीघ्र ही यमलोक की यात्रा करते हैं और एक ही बात सबके सब बोलते हैं कि वह परम सत्य एक है उसकी प्राप्ति मरणोपरान्त हो जायेगी। सद्गुरु साहब कहते हैं कि हे भाई अनाहत और असीमित कहने से मुक्ति नहीं हो सकती है और न भव-वंधन ही छूट सकता है मेरा तो यह विचार है कि यदि सद्गुरु मिल जाय तो निश्चय ही बहुत सुख मिलेगा। यदि कोई मनुष्य सद्गुरु का सदुपदेश रूपी शब्द सुनता है और अपने आचरण को सुधारता है तो मैं कबीर कहता हूँ कि वह निश्चय ही सदा सुखी रहेगा इसलिए मैंने जो पद कहा है उसको सभी को विचारना चाहिए और संसार के सभी मनुष्यों को उस पर आचरण करना चाहिए अन्यथा कल्याण का कोई दूसरा मार्ग भी नहीं है।

## सबद ५८

**नरहरि लागि धौं बिकार, बिनु इंधन मिले न बुझावनहार।**
**मै जानौं तोहीं से ब्यापै, जरत सकल संसार॥**
**पानी मांहिं अगिन कौ अंकुल, जरत बुझावै पानी।**
**एक न जरै-जरै नउ नारी, जुगुति न काहू जानी॥**
**सहर जरै पहरू सुख सोवै, कहै कुसल घर मेरा।**
**पुरिया जरै वस्तु निज उबरै, विकल राम रंग तेरा॥**
**कुबजा पुरुख गले एक लागा, पूजिन मन के साधा।**
**करत विचार जनम गौ खीसै, ई तन रहत असाधा॥**
**जानि बूझि जो कपट करतु हैं, तेहि अस मंद न कोई।**
**कहैं कबीर सभ नारि राम की, हमते और न होई॥**

**शब्दार्थ**—नरहरि—नरसिंह, ईश्वर। लागि—लगी। धौं—दँव, दावाग्नि, वनाग्नि। बिकार—व्यर्थ, गंदा। बिनु—बिना। इंधन—जलावन, जलौना। मांहिं—में। पानी—जल, आत्मा। अगिन—अग्नि, काम, क्रोध, लोभ, मोह,

भय, अहंकार । कौ–को । अंकुल–अंकुर, अखुआ, गाभ, अहंकार, इच्छा । पानी–ब्रह्मज्ञान । नउनारी–नौनारी चतुर्थ अन्तःकरण, पंच इन्द्रियों के विषय । जुगुति–युक्ति उपाय । काहू–कोई । सहर–शहर, नगर, शरीर, समूह । पहरू–प्रहरी, चौकीदार, चेतन पुरुष । पुरिया–पुर्यंयाष्टक । विकल–अशान्त । घर–गृह, नगर, शरीर । कुबजा–कुब्जा, कुबरा, जिसका मेरुदंड टेढ़ा हो गया हो, मन । रंग–रूप, अन्तःकरण । गले–ग्रीवा, साथ । पूजिन–पूजा । साधा–श्रद्धा । गौ–गया । खोसै–गिर गया, नष्ट हो गया । ई–यह । तन–शरीर । असाधा–साधन रहित ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मनुष्यों का मन कुसंस्कार वश न हरि भजन में लगता है, न बुरे स्वभाव का ही परित्याग करता है और न ही सन्त सद्गुरु की बात मानकर अपना सुधार ही करता है । जड़ बुद्धि का मनुष्य क्या करे ? कितना भी उपदेश सुनाइये परन्तु उसके लिए ऊसर का ऊसर ही है । उसको कोई सद्गुरु नहीं मिला । जिसके कारण दर-दर की ठोकर खाते रहता है । अब कहा जा रहा है कि हे नरहरि अर्थात् हे जगत के स्वामी ! इन मनुष्यों में यत्किञ्चित भी विचार नहीं है कि अपना उद्धार करें और सन्त सद्गुरु के बताये मार्ग पर चलें ।

**मूलार्थ**—अब सद्गुरु कहते हैं कि हे जगदीश्वर ! इन संसार के मनुष्यों में दावानल जैसी आग लगी हुई है व्यर्थ में ही सब जल रहे हैं । हे प्रभो ! यह अग्नि कैसी है ? जो बिना ईंधन के ही जल रही है, बिना जलावन बिना लकड़ी के ही जल रही है, वह किसी को दिखाई नहीं दे रही है । संसार के मनुष्यों को काम, क्रोध रूपी अग्नि अहर्निश जला रही है वह दूसरे के बुझाने मान की नहीं है । हे प्रभो ! मुझे तो भ्रम हो गया था मैं तो जानता था कि संसार के मनुष्य परमेश्वर के कारण दुःखाग्नि से जल रहे हैं । यह भ्रम कितना बड़ा भयावह था कि आप परमेश्वर से ही सारा संसार जल रहा है परन्तु ऐसी बात नहीं है मनुष्यों के हृदय स्थल में जो जल रूपी आत्मा विद्यमान है एवं जोव विद्यमान है अनेक जन्मों

की वासना के कारण अग्नि का अंकुरण उसी में से हो रहा है। वह अग्नि अन्तःपुर में ही लगी है और बिना लगाये लगी है। वह अग्नि तभी बुझ सकती है जब मनुष्यों को सम्यक् प्रकारेण आत्मबोध हो जाय। सम्यक् तुष्टि हो जाय तब आत्मज्ञान रूपी जल से अन्तःकरण की सारी अग्नि प्रशान्त हो सकती है। जब मनुष्य पूर्णत्व को प्राप्त होता है। तब उसकी सभी नौ नारियाँ जल जाती हैं अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का अभाव हो जाता है जब इन नवों का विलोपन हो जाता है तब वह एक अद्वितीय आत्मा कामाग्नि से प्रभावित नहीं होता परन्तु इस अग्नि से बचने की युक्ति कोई जानता ही नहीं है। इसलिए तो सारा नगर जल रहा है। अर्थात् शरीर जल रहा है और उसके बचाने वाला प्रहरी सुख से कहीं जाकर सो रहा है। उसको कुछ भी चिन्ता नहीं है कि मैं जिसका रक्षक हूँ वही शरीर वन नगर जल रहा है परन्तु वह प्रमत्त प्रहरी लोगों के हल्ला करने पर कहता है कि कहाँ मेरा घर है, कहाँ अग्नि लग रही है मेरा शरीर रूपी शहर नहीं जल रहा है आश्चर्य तो यह है कि शरीर रूपी पुरी जल जाती है परन्तु जो वास्तविक अपनी वस्तु है वह बच जाती है अर्थात् जो मनुष्यों के अन्दर परमतत्त्व है वह दुःख से बाधित नहीं होता है। केवल वाह्य अवयव बाधित होते हैं।

उक्त दावाग्नि से आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है। हे आत्मा राम प्रभो ! तुम तो असंग हो। विकलता तो तेरे वाह्य रूप पर होती है। जो तेरे वाह्य रूप, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार हैं उन्हीं में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर का प्रभाव पड़ता है और जिनके कारण सभी विकल दिखाई देते हैं क्योंकि जिसकी रीढ़ टूटी हुई है, जिसका मेरुदण्ड भंग हो गया है, जो सीधा नहीं है, जो वक्रगति से चलता है, वह मन संसार के प्राणियों के साथ लगा हुआ है। इसलिए जो मन में भाव उत्पन्न होते हैं उन्हीं कर्मों का आरम्भण कर्त्ता है अर्थात् उन्हीं कर्मों की पूजा करता है। इस प्रकार शुभाशुभ कर्मों का विचार करते-करते जीवन लीला समाप्त हो जाती है

और यह तन साधनहीनता में चला जाता है। संसार के सभी मनुष्य जानते हैं कि क्या शुभ है, क्या अशुभ है, क्या मुझे करणीय है। इसलिए जो मनुष्य जान बूझ कर कपट करता है भला उससे मन्द बुद्धि का और कोई हो सकता है? सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि मन्द बुद्धि के कारण स्त्री स्वभाव को प्राप्त हुआ है। जिसके कारण उसको निर्बलता कभी छोड़ती नहीं है। वह दूसरों को अपना भर्त्ता मानता है। अर्थात् आत्मतत्त्व का परित्याग कर सांसारिक विषयों में संतुष्टि मानता है परन्तु मैं तो सत्य वस्तु का वितरक हूँ इसलिए मुझसे कोई संसार के सुख की बातें नहीं बनने वाली हैं।

## सबद ५९

### माया प्रकरण

माया महा ठगिनि हम जानी।
तिरगुन फांस लिये कर डोलै, बोलै मधुरी बानी॥
केसव के कंवला ह्वै बैठी, सिव के भौन भवानी।
पंडा के मूरति होय बैठी, तीरथहूँ में पानी॥
जोगी के जोगिनि होय बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा होय बैठी, काहु के कौड़ी कानी॥
भगता के भगतिन होय बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहैं कबीर सुनो हो संतो, ई सभ अकथ कहानी॥

**शब्दार्थ**—तिरगुन–रज, तम, सत। फाँस–पाश, जाल। कर–हाथ। मधुरी–मीठी। केसव–केशव, भगवान विष्णु। कंवला–कमला। सिव–शिव, भगवान शंकर। भौन–भवन। भवानी–देवी, दुर्गा। पंडा–तीर्थ के पुजारी। तीरथहूँ–तीर्थ में भी। पानी–जल, शून्य, कुछ भी नहीं। जोगी–योगी, नाथ पंथी वैरागी। जोगिनि–योगियों की चेली, दासी, अष्ट सिद्धियाँ। राजा–देशका शासक। हीरा–एक प्रकार का मूल्यवान पत्थर, मणि। कौड़ी–

वराटिका। भग्ता–भक्ति करने वाला भक्त। ब्रह्मानी–सरस्वती। अकथ–अकथनीय। रानी–महाराज्ञी, पटरानी, राज्य महिषी।

**सम्बन्ध**—इसके पूर्व में कहा गया है कि कामाग्नि से सारा संसार जल रहा है। बिना सन्त सद्गुरु के कोई बचा नहीं सकता। क्योंकि वह अग्नि वाह्य नहीं है आन्तरिक है और अन्त में यह कहा गया कि अज्ञ मनुष्यों ने जान बूझकर अपनी मन्दता के कारण उस अग्नि को लगाया है। इसलिए उसकी भलाई सम्भव नहीं है।

**मूलार्थ**—अब यह कहा जा रहा है कि जहाँ से यह अग्नि लगती है अस्तु जो अग्नि का मूल कारण है वह है माया। मूलतः माया का अर्थ ऋग्वेदादि में छल को कहा गया है। जो मनुष्यों के अन्दर छल बुद्धि है जिसके द्वारा दूसरे का वंचन होता है वह दुःख का हेतु है उसी के अन्तर्गत स्त्री को माया कहा गया है क्योंकि स्त्रियाँ स्वभावतः चंचल होती हैं। इसलिए चंचल मनुष्य ही वंचना करता है और न स्त्री माया है न पुरुष विमाया है। मानव के अन्दर जो मायात्व गुण है वही माया है उसी से सारे संसार का वंचन होते रहता है। ऊपर साधारण मनुष्यों को कहा गया कि माया के द्वारा इनका वंचन हो रहा है। मायाग्नि सबको जला रही है यह तो समझता था कि मनुष्यों के दुःख का कारण ईश्वर है जिसने संसार को बनाया है जब अनुभव हुआ तब मुझे लगा कि नहीं-नहीं मनुष्य अपने आप जल रहा है, वह स्वयं काम, क्रोध, लोभ से जल रहा है। बाद में जब दूसरा अनुभव हुआ कि जो बड़े-बड़े जीव हैं वे नहीं जल रहे होंगे। उनको दुःख नहीं व्यापता होगा। जो देव हैं, जो दानव हैं, जो किन्नर हैं, जो पिशाच हैं, जो गुह्यक हैं, जो सिद्ध हैं, जो चारण हैं, जो गन्धर्व हैं, ये तो बड़े आनन्द का जीवन बिताते होंगे परन्तु ऐसी बात नहीं है। कामना रूपी अग्नि में सारा संसार झुलस रहा है और जिन कारणों से जगत झुलस रहा है वह है महामाया और वह महामाया कैसी है ? महाठगिनी है सारे संसार को ठगते घूम रही है, इसलिए मैंने उसको ठगिनी जाना वह महामाया अपने हाथों में तीन गुण वाला फाँस लिए हुए है। जिसे ग्राम्य गिरा में त्रिकंप कहते

हैं। त्रिकंप का अर्थ होता है वह फाँस जो गले में लगाकर खींच लिया जाता है और वह कभी नहीं छूटता है। यह माया कैसी है कि हाथ में फाँस लिये हुए है और बहुत मीठी-मीठी बात बोल रही है। इस माया के बंधन से लोक पितामह ब्रह्मा भी नहीं बच सके उनके यहाँ भी यह माया ब्रह्मानी होकर या गायत्री होकर बैठी हुई है जो सदा ब्रह्माजी को अपने वश में किये रहती है। भगवान विष्णु भी नहीं बच सके। उनके यहाँ भी लक्ष्मी के रूप में विराजमान है। इस माया से भगवान शम्भू भी नहीं बच सके उनके भी घर में भवानी का रूप धारण किये हुये बैठी है। अर्थात् भगवान विष्णु एवं पितामह ब्रह्मा तथा भगवान शिव को भी परिवार के कारण पोषण की चिन्ता लगी रहती है, क्योंकि सारा संसार इन्हीं तीनों भाइयों की सन्तान हैं जो माया के कारण बना हुआ है। कठिनाई तो इस बात की है कि कहीं माया से परे कोई वस्तु नहीं दिखाई पड़ रही है। पंडा जो बुद्धि का स्वामी है जो बहुत बड़ा विचारक है, जो वेद-शास्त्रों का अध्ययन किये हुए है, उसकी भी बुद्धि को कुण्ठित कर उसके यहाँ भी माया देवमूर्त्ति होकर बैठी हुई है। इसी प्रकार से तीर्थों में जाता हूँ वहाँ भी सत्य के दर्शन नहीं होते, वहाँ भी शून्य ही शून्य हाथ लगता है, केवल नहाने-धोने के लिए जल ही जल मिलता है। वहाँ भी प्रभु के दर्शन नहीं होते हैं। योग सीखने के लिये जब योगियों के यहाँ जाता हूँ तो वहाँ भी माया का पसारा देखता हूँ। योगियों के यहाँ माया सिद्धा व दासी होकर बैठी हुई है। ये योगी भी माया के घेरे से बाहर नहीं हैं। जब न्याय के लिए परमार्थ के लिये राजा के यहाँ जाता हूँ और यह समझता हूँ कि यह राजा है यह तो जरूर माया को जीत लिया होगा। क्योंकि बड़े-बड़े शत्रुओं को मार डालता है। सबसे बली यही दीखता है परन्तु उसके यहाँ भी माया एक स्त्री का रूप धारण करके बैठी हुई है, राज दरबार में एवं राज भवन में मान रूपी, सम्मान रूपी, चापलुसी रूपी, मद मत्सर रूपी, उत्कोच रूपी होकर माया वहाँ भी विराजमान रहती है, इसलिए माया से परे कोई नहीं दीखता है। राजेतर लोगों को देखता हूँ, धनी सेठों को देखता हूँ,

गरीबों को देखता हूँ, तो किसी के यहाँ हीरा के रूप में विराजमान है तो किसो के यहाँ फूटी कौड़ी के रूप में विराजमान है। तात्पर्य यह है कि किसी को अधिक धनवान बना के पागल कर दिया है और किसी को अकिंचन बनाकर बर्बाद कर दी है इसलिए न कोई गरीब माया से बचा है और न कोई धनी माया से बचा है। उक्त लोगों के दर्शन के बाद सुना कि भक्त लोग बड़े निर्मल होते हैं उनके यहाँ माया नहीं होगी। जब उनके यहाँ पहुँचा, उनका दर्शन किया तो वहाँ भी माया मुझसे पहले पहुँची हुई है। अर्थात् भक्तों के यहाँ माया भक्तिनि होकर विराजमान है। जब मैंने वेदों को सुना तो लगा कि वेद में तो बहुत बढ़िया ज्ञान है। इनको प्रकट करने वाले ब्रह्मा अवश्य माया से परे होंगे परन्तु वहाँ भी देखा कि महारानी सरस्वती देवी ज्ञानाधिष्ठात्री देवता के रूप में विराजमान हैं। मैं तो संसार को देखकर हैरान हो गया। इसलिए मैं कबीर कहता हूँ कि हे सन्त जन ! सुनो यह सब अकथनीय कथा है। कहने योग्य नहीं है। इसको कहाँ तक गिनाया जाय अखिल ब्रह्माण्ड ही मायामय है।

**आशय**—सूक्ष्म माया बड़ी कठिन होती है इस पर एक स्थान पर सद्गुरु ने कहा है—

मोटी माया सब तजै, झीनी तजी न जाय।
पीर पैगम्बर औलिया, झीनी सबन को खाय॥

यह विचारणीय विषय है कि पुत्र-कलत्र ही एवं धन-सम्पत्ति ही यह दृश्य जगत ही माया नहीं है जिन स्रोतों से माया उत्पन्न होती है वे स्रोत हैं मान-सम्मान, प्रतिष्ठा ये जल्दी मनुष्यों से छूटते नहीं, इन्हीं को भगवान बुद्ध, भगवान महावीर ने अन्तर्कषाय कहा है। जो बहुत प्रयत्न के बाद छूटते हैं और जो ब्रह्मा, विष्णु, महादेव तक कहा गया है कि इनके यहाँ भी माया पहुँच चुकी है तो तात्पर्य यह है कि ये लोग भी परेशान रहते हैं। पुराणों के अनुसार तीनों देवताओं के काम को कर्म के अनुसार बताया है कि ये लोग अपने कर्त्तापन के कारण ही माया के आधीन रहते हैं इसलिये उन्हें भी शान्ति नहीं मिल पातो है। माया का वाह्य रूप न

होकर आन्तरिक रूप है अधिकतर मान, सम्मान से ही सम्बन्धित है यदि वाह्य रूप में पुत्र-कलत्र तक ही माया सीमित है तो बहुत लोग माया से मुक्त हो जायँगे इसलिये संसार का कोई भी प्राणी माया से अछूता नहीं होगा और कोई भी साधु-सन्त माया से परे नहीं हो सकता। चेला-चेली करना, मठ-मन्दिर बनवाना, पोथी-पुस्तक छपवाना यह सब माया के ही अन्दर आते हैं। यहाँ सद्‌गुरु का आशय है कि संसार में रहते हुए मनुष्य को चाहिए कि वह निरासक्त होकर संसार का व्यवहार करें। तभी वह संसार की माया से बच सकता है।

## सबद् ६०

**माया मोह मोहित कीन्हा, ताते ग्यान रतन हरि लीन्हा ॥**
**जीवन ऐसो सपना जैसो, जीवन सपन समाना।**
**सब्द गुरू उपदेस दीन्हों, तैं छांडहू परम निधाना ॥**
**जोति देखि पतंग हुलसै, पसू न पेखै आगी।**
**काल फांस नर मुगुध न चेतै, कनक कामिनी लागी ॥**
**सेख सैयद कितेब निरखें, सुम्रिति सास्त्र विचार।**
**सतगुर के उपदेस बिना तैं, जानि के जिव मार ॥**
**करु विचार विकार परिहर, तरन तारन सोय।**
**कहैं कबीर भगवंत भजु नर, दुतिया और न कोय ॥**

**शब्दार्थ**—ताते–इसलिए। ग्यानरतन–आत्म ज्ञान। ऐसो–इस प्रकार का। सब्द–शब्द, आत्मज्ञान का उपदेश। छांडहू–छोड़ो। मुगुध–मुग्ध, नीच। परम–श्रेष्ठ। निधाना–कोष, खानि। हुलसै–उड़िकरके परे, प्रमुदित होकर दौड़े कुबुद्धि, नीच। सेख सैयद–मुसलमानों की एक जाति जो मुहम्मद साहब के नातिओं से सम्बन्धित हैं।

**सम्बन्ध**—इसके पहले कहा गया है कि माया महा ठगिनी है और इस प्रकार से ठगने वाली है कि उसके जाल से कोई बचा नहीं है। अब नीचे कहा जा रहा है कि माया ने सभी प्राणियों को मोहित करके बन्दी-गृह में रख दिया है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि माया ने मोह रूपी फाँस में फँसा करके संसार के प्रत्येक प्राणियों को मोहित किये हुए है। इसलिए जो ज्ञान रत्न आत्मधन था उससे संसार के मनुष्य वंचित हो गये हैं। जिसे माया ने हर लिया है। मनुष्य विवेकवान प्राणी होने पर भी अविवेकी हो गया है। जीवन अल्प है, आयु क्षणिक है, स्वप्न के समान है। यह मानव का जीवन स्वप्न के समान बीत जाता है परन्तु अज्ञानी मनुष्य गुरु के द्वारा दिया हुआ आत्म उपदेश पर ध्यान नहीं देता है। मैं तो कहता हूँ कि तुझे सद्गुरु ने परमतत्त्व रूपी शब्द का उपदेश दिया है। तुम श्रेष्ठ ज्ञान-विज्ञान के भण्डार हो इसलिए संसार की मोह माया को छोड़ दो। यह माया दीपक की ज्योति के समान है देखने में बड़ी प्रकाश वाली और आकर्षणीय है। किन्तु ये अज्ञानी मनुष्य पतिंगे के समान हैं अर्थात् पुत्र-कलत्र, धन-यौवन, मोर-तोर यह सब उस ज्योति के समान हैं जिस ज्योति को देखकर पतंग हुलसता है और उसमें पड़कर भस्म हो जाता है। पतिंगा रूपी मनुष्य जरा सा विचार नहीं करता कि यह अग्नि है यह भस्म करने वाली है। पशु स्वरूप मनुष्य यह नहीं देखता कि यह माया जलता हुआ अंगार है इसमें पड़ने से ऐहिक लीला समाप्त हो जायेगी।

विवेक हीन मनुष्य बहुत नीच है चेत नहीं रहा है काल फांस को लेकर माया इसके सामने खड़ी है देख रहा है कि दूसरा इसमें पड़कर नष्ट हो रहा है। उसी धन-यौवन के चक्र में पड़ा हुआ है पैसा-पैसा के लिए दर-दर की ठोंकरें खा रहा है तो भी नहीं चेतता। अहर्निश मोर-तोर में लगा हुआ है। मुस्लिम विद्वान शेख एवं शैयद लोग भी बड़े-बड़े विद्वान होते हैं बार-बार किताबों को व कुरान को देखते रहते हैं परन्तु उनको भी माया मोह नहीं छूट रही है ये भी सम्प्रदायिक विमोह में पड़कर बात की बात में मनुष्यों का संहार कर डालते हैं। इसी प्रकार से आर्य धर्म के पंडित लोग भी स्मृति ग्रन्थों का एवं आगम शास्त्रों का बार-बार विचार करते हैं दूसरों को पठन-पाठन कराते हैं। परन्तु वे लोग भी मोह

रूपी काल फाँस का त्याग नहीं कर पा रहे हैं। मैं तो कहता हूँ कि जो तू जीव मार रहा है या खुद तू मिथ्या संसार में फँसकर मर रहा है। पहले तू सद्‌गुरु से समझ ले, सद्‌गुरु से उपदेश ले-ले, उनके उपदेश को लेकर संसार में कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो जाओ और जीवों का वध न करो। फिर भी मैं कहता हूँ कि गुरु का उपदेश सुनकर विचार कर जितने प्रकार के विकार हैं उन सबका परित्याग कर, जब विकारों से रहित हो जाओगे तभी तेरा तरन-तारन होगा। मैं कबीर कहता हूँ कि अनेक देव-देवियों की पूजा अर्चना छोड़ दे केवल भगवान का भजन कर। भगवान के अतिरिक्त किसी दूसरे को चित्त में न बसाओ। तभी जीव का कल्याण हो सकता है।

## सबद ६१

**मरिहो रे तन का लै करिहो, प्रान छुटे बाहर ले डरिहो।**
**काया बिगुर्चन अनवनि भाँती, कोइ जारैं कोइ गाड़ै मांटी॥**
**हिन्दू ले जारैं तुरक लै गाड़ैं, यहि विधि अंत दुनो घर छाड़ें।**
**कर्म फांस जम जाल पसारा, जस धीमर मछरी गहि मारा॥**
**राम बिना नर होइहो कैसा, बाट मांझ गोबरौरा जैसा।**
**कहैं कबीर पाछे पछितैहो, या घर से जब वा घर जैहो॥**

**शब्दार्थ**—बिगुर्चन–विगूतन, उलझन, असमंजस। अनवनि–अनेक, द्वेषभाव। धीमर–केवट, मछली मार। बाट–मार्ग। मांझ–मध्य। गोबरौरा–गोबर का एक बड़ा कीटाणु।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि माया ने सबको मोहित कर लिया है इसलिए मनुष्य को ज्ञान नहीं होता है। कहता है कि आज छोडूंगा, कल छोडूंगा इसी में लगा रहता है तब तक जीवन स्वप्न के समान बीत जाता है और अन्त में छूछे हाथ यहाँ से रवाना हो जाता है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कबीर स्वामी कहते हैं कि अरे अज्ञानी मनुष्य! इस निर्जीव शरीर को मरने के बाद लेकर क्या करोगे, इस शरीर में रहते

हुए कुछ कर लो। क्योंकि शरीर से प्राण निकलने पर इस देह को लेकर लोग बाहर डाल देते हैं और अपने धर्म के अनुसार भूमि में जला या गाड़ देते हैं। काया कहिये शरीर बिगुर्चन कहिये असमंजस में पड़ी हुई है। अनेक प्रकार के द्वेष इस शरीर से उत्पन्न होते रहते हैं। कोई कहता है हम जलायेंगे, कोई कहता है हम गाड़ेंगे। हिन्दू लोग या आर्य लोग कहते हैं कि मूर्दा जलाने से स्वर्ग जाता है, मुसलमान लोग कहते हैं मूर्दा गाड़ने से स्वर्ग जाता है, जो भी हो इसी प्रकार से दोनों घर के मूर्दे घर को छोड़ देते हैं। मानव तन शरीरान्त होने पर जल जाता है या सड़ जाता है परन्तु उसके द्वारा जो कर्म किया रहता है। उन शुभ-अशुभ जाल रूपी कर्मों का फल देने के लिए भगवान यमराज अपना बंधन फैलाये रहते हैं। जैसे धीवर मच्छीमार व मत्स्य घातक मछलियों को पकड़कर जाल में फंसाकर मार डालता है उसी प्रकार से मनुष्यों के कर्म रूपी जाल के द्वारा यमराज भी लोगों का प्राण ले लेता है

यहाँ जाल में श्लेष है। यह मनुष्य परमतत्त्व श्रीराम के बिना किस प्रकार से होगा। जो प्रभु का भजन नहीं किया है, जो आत्म चिन्तन नहीं किया है जो सत्कर्मों से वंचित है उसकी गति जिस प्रकार से मार्ग के बीच में रेंगने वाले गोबरौरा की होती है उसी प्रकार से धर्म हीन मनुष्य यमराज के द्वारा पीसा जाता है। इसलिए मैं कबीर कहता हूँ कि हे संसार के मनुष्य ! तुम पीछे पछताओगे। जब इस मानव रूपी घर से निकलकर नरक स्वरूपी पशु आदि योनियों में जाओगे व मृत्युलोक से यमलोक में जब जाओगे तब तुझे पता चलेगा वहाँ की घोर यातना को देखकर तू रात-दिन रोवेगा तब तेरी शेखी भूल जायेगी और जो लम्बी-चौड़ी बातें हांकते थे वह सब काम नहीं आवेगी। इसलिए हे संसार के मनुष्य जागो उठो सत्य कर्तव्य का पालन करो।

## सबद ६२

**माई मैं दूनो कुल उजियारी।**
**बारह खसम नैहरै खायो, सोरह खायो ससुरारी॥**

**सासु ननद पटिया मिलि रखलौं, भसुरहिं परलौं गारी।**
**जारौं मांग मैं तासु नारि की, जिन सरवर रचल धमारी ॥**
**जना पाँच कोखिया मिलि रखलौ, और दूइ अउ चारी।**
**पार परोसिनि करें कलेवा, संगहि बुधि महतारी ॥**
**सहजे बपुरे सेज बिछावल, सूतलि मैं पांव पसारी।**
**आवों न जावों मरों नहिं जीवों, साहब मेटल गारी ॥**
**एक नाम मैं निजु कै गहलौं, ते छूटल संसारी।**
**एक नाम मैं बदिकै लेखौं, कहैं कबीर पुकारी ॥**

**शब्दार्थ**—माई—मध्यकाल का एक संबोधन उक्त काल में जब कोई बात किसी से कहना पड़ता था तो उसके प्रति माई का संबोधन लगाना पड़ता था। मैं—कबीर। दूइ—दोनों, लोक-परलोक। उजियारी—उजागर, प्रकाश। खसम—पति, स्वामी, लगवार। नैहरे—संसार, साधनअवस्था। ससुरारी—परमात्मतत्त्व प्राप्त हो जाने पर। सासु—माया, अविद्या। ननद—कुमति। भसुरहिं—अहंकार, पति का बड़ा भाई। परलौं—दिया, त्याग दिया। गारी—फटकार। नारि—तृष्णा माया। सरवर—सरोवर, शरीर। रचल—रचा। धमारी—खेल, कूद, युद्ध। जना पाँच—सत्य, अहिंसा, समभाव, प्रभु भजन, आत्म निग्रह। कोखिया—कुक्षि। अउ—और। चारी—शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपरान्त, उपरामता, तितिक्षा। पार—पास-उस पार। परोसिनि—पास में रहने वाली। कलेवा—बासी, वैयालु, भोजन। बुधि—सुबुद्धि, मेंधा-शक्ति। महतारी—भक्ति भावना। बपुरे—विवेक, सीधा, साधा। बिछावल—आसन लगाया। सूतलि—सूत गयी। साहब—परमात्मा, ब्रह्मात्म, राम। गारी—जन्म मरण, अनेक प्रकार के दोष। गहलौं—ग्रहण किया। बदिकै—कह करके, निश्चय करके। लेखौं—लेखन किया, स्मरण किया।

**सम्बन्ध**—ऊपर सद्गुरु ने कहा है कि यह मानव तन बहुत मूल्यवान है। इसमें रहते-रहते प्रभु-प्राप्ति व आत्म साक्षात्कार मनुष्य को कर लेना चाहिए। क्योंकि शरीरान्त में शरीर से कोई काम होता नहीं है उसको बाहर फेंक दिया जाता है। दुनिया के सभी धर्मों में यही बात देखी जाती है

कि जो शरीर रहते प्रभु का भजन नहीं करता है, हरि का नाम नहीं लेता है वह गोबरौरा जैसा जीवन बिताता है।

**मूलार्थ**—अब नीचे सद्गुरु कहते हैं कि हे संसार के लोग सुनो ! मैं कबीर दोनों कुल को उजागर किया हूँ अर्थात् मेरा लोक भी ठीक है और परलोक भी ठीक रहेगा क्योंकि मैं बारह खसम रूपी लगवारों को खा गया। जिनमें पंच क्लेश, पंच इन्द्रियों के विषय, कुटिलता और कायरता शामिल हैं। इसी प्रकार से सोरह खसम अर्थात् सोरह अन्य लगवारों को ससुरारी कहिए आत्मतत्त्व की प्राप्ति दशा में सबका अभाव हो गया। जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अविवेक, असूया, कलह, कल्पना, आशा, वासना, तृष्णा, मद, मत्सर, अकृतज्ञता, नास्तिकता यह जो सोलह खसम स्वरूप लगवार जीव पर सवार थे, इन सबों का आत्मतत्त्व प्राप्ति होने के बाद समूल नष्ट हो गया। तत्पश्चात् सासु और ननद अर्थात् माया एवं अविद्या को अपने सोने वाली खाट की पाटी में लेकर बांध दिया अर्थात् जब आत्मज्ञान हो जाता है। तो अविद्या एवं माया का नाश हो जाता है। ये सब दुर्गुण आत्मज्ञान होने पर शरीर में ही नष्ट हो जाते हैं। जब आत्म ज्ञान हो गया, भसुर जो अहंकार था उसको भी मैंने अपने से अलग कर दिया। वह भी कम दुखदायी नहीं था, उसी के चलते सारा दुःख था। द्वैत के चलते अहंकार की उत्पत्ति हुई। जब साधक सभी में एक ही आत्मा का दर्शन करने लगता है, तब अहंकार का अभाव हो जाता है, क्योंकि अहंकार दो के संग में होता है, साम्यकता प्राप्त होने पर वह समूल नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार से जो तृष्णा रूपी मेरी स्त्री थी जो अहंकार से सगाई कर ली थी, अहंकार के मर जाने पर वह वैधव्यता को प्राप्त हो गयी। वह विधुर बाला जिसकी मांग को मैंने जला दिया। जिसने संसार रूपी शरीर सरवर में युद्ध मचाये हुए थी। कभी सन्तुष्ट नहीं रहती थी, वह अब सदा सर्वदा के लिए शान्त हो गयी। प्रश्न उठता है कि उपर्युक्त दोष गये कैसे ? तो कहते हैं कि सत्य, अहिंसा, समभाव, आत्मनिग्रह, प्रभु भजन इन पाँच को अन्दर किया। अर्थात् इनको आचरण में लाया और दूई और

चारी अर्थात् छः शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपरामता, तितिक्षा इन सबों का पालन किया। पार परोसिन जो आत्मा के आस-पास में इन्द्रियों के गुण विचरते थे वे सब ग्यारह सद्गुणों का पालन करने से काल-कवलित हो गये अर्थात् जो सदा इन्द्रियाँ आत्मा की सहायता से जीव का कलेवा करती थीं, खाती थीं और अब वे शान्त हो गयीं। इसलिए पास-पड़ोस वालों को भी उपर्युक्त ग्यारह गुणों का पालन करना चाहिए। ग्यारह गुणों के साथ ही सुबुद्धि रखी गयी है और महतारी रूपी भक्ति का अनुष्ठान किया गया। जब पूर्ण रूप से आत्म नियमित निग्रह हो गया तब सहज में ही मनुष्य को विवेक उत्पन्न हुआ और बपुरे कहिये विवेक ने आत्म प्रदेश में सुख शय्या का बिछावन लगा दिया। जब सब दोषों से जीव रहित हो गया वृत्ति–आत्माकार हो गयी। तब हृदय कमल रूपी पलंग पर खूब आनन्द से पाँव पसारकर सोने लगा। अब आत्म ज्ञान होने पर न कहीं से आना है, न कहीं से जाना है अर्थात् मृत्यु को प्राप्त नहीं होना है अब समभाव में निवास करना है यह सब जन्म-मरण रूपी गारी दोष सद्गुरु परमात्मा ने दूर कर दिया। मैं एक परमात्मा के नाम का ही ग्रहण किया था अर्थात् राम-नाम का ही जप करता था जिसके प्रताप से संसार हमसे दूर हो गया और वह एक परमतत्त्व रूपी नाम को मैं लोगों से कह करके लिख दिया इस बात को मैं कबीर पुकार कर कहता हूँ कि यदि किसी सज्जन को जन्म-मरण से पार होना है तो एक राम नाम का ही सुमिरण भजन करें।

**आशय**—जब मनुष्य स्वभाव से निर्मल हो जाता है सत्य का दर्शन कर लेता है तब उसके लोक-परलोक सब ठीक हो जाते हैं और काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि जो विकार हैं वे सबके सब नष्ट हो जाते हैं। माया-अविद्या नष्ट हो जाती है अहंकार रूपी भसुर भी नष्ट हो जाता है। अहंकार के नष्ट होने पर तृष्णा मन्द हो जाती है जो अहर्निश मनुष्य को चक्कर में डाले रहती है उस तृष्णा का नाश हो जाता है। यह तभी सम्भव है जब सत्य, अहिंसा और षट्सम्पत्तियों का पालन करने लग

जाय तब आस-पास में रहने वाली इन्द्रियाँ भी शान्त हो जाती हैं और मनुष्यों में भक्ति-भावना का उत्थान हो जाता है और हृदय कमल में चित्त का शयन होने लगता है। तब निर्मल चित्त वाला व्यक्ति आत्म प्रदेश में पांव पसारकर सोता है। आत्मज्ञानी न मरता है, न जन्मता है, जो उसके जन्म-मरण रूपी दोष थे सद्गुरु परमात्मा ने उनको नष्ट कर दिया। सद्गुरु परमात्मा तब मिलते हैं जब परमेश्वर की कृपा होती है और तभी संसार छूटता है। मैं उक्त परमात्मा के नाम को लोगों से बताकर लिखा हूँ और पुकार-पुकार के कहा हूँ कि सबको हरिनाम जपना चाहिए।

## सबद ६३

**मैं कासों कहौं को सुने को पतियाय।**
**फुलवा के छुवत भंवरा मरि जाय॥**
**जोतिये न बोइये सींचिये न सोय।**
**बिनु डार बिनु पात फूल एक होय॥**
**गगन मंडल बिच फुल एक फूला।**
**तर भौ डाल ऊपर भौ मूला॥**
**फूल भल फूलल मालिन भल गांथल।**
**फुलवा बिनसि गौ भंवरा निरासल॥**
**कहैं कबीर सुनो संतो भाई।**
**पंडित जन फुल रहत लुभाई॥**

**शब्दार्थ**—कासो–किससे। कहौं–कहूँ। पतियाय–विश्वास। फुलवा–पुष्प, माया कृत भोग। भंवरा–भ्रमर जीव मन। गगन–सहस्रार। मंडल–ब्रह्माण्ड अर्थात् जहाँ तक सहस्रार का घेरा है उसको गगन मण्डल कहते हैं। भौ–हुआ। डार–शाखा। मूला–मूलाधार चक्र आत्मा। मालिन–चित्त वृत्ति, बुद्धि। गांथल–गाथा, ग्रंथन किया। पंडित–शास्त्रज्ञ विद्वान।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो अपराध मुक्त हैं वे लोक-परलोक दोनों में विजय प्राप्त कर लेते हैं तथा अखिल आनन्द के भागीदार होते

हैं। उनका जन्म-मरण छूट जाता है। अब नीचे कहा जा रहा है कि जो भौतिक सुख है जिसमें सारा संसार निमग्न है यदि उसको हम निरर्थक कहते हैं तो लोग मेरी बात पर विश्वास नहीं करते।

**मूलार्थ**—भला हे भाई! मैं किससे कहूँ और कौन मेरी बात सुनेगा मैं कहता हूँ कि राम का नाम जपो, संतों की संगति करो, संसार का परित्याग करो, आत्म निग्रह करो, परन्तु मेरी बात सुनने के लिए कोई प्रस्तुत नहीं है। आश्चर्य इस बात का है कि जिस पुष्प के सुगन्ध लेने से भ्रमर जीवित हो जाता है आयुष्मान होता है। जो बिना जोते बोये तथा बिना सींचने से उत्पन्न हुआ है जिसमें डाल नहीं हैं पत्ते नहीं हैं केवल एक पुष्प उसमें लगा हुआ होता है भला इतने कीमती फूल को केवल छूने मात्र से भ्रमर कैसे मर जाता है वह कौन सा फूल है तो वह फूल भौतिक वैभव का ऊपरी भाग का स्त्री-पुरुष का सुख है। अर्थात् उक्त फूल दो रूपों में विद्यमान है उसका एक स्थान सहस्रार में है दूसरा मूलाधार चक्र में है जो मूलाधार चक्र में स्थित है। वह स्त्री-पुरुष के एक होने पर सूख जाता है। वह स्त्री-पुरुष के मिलन का जो सुख है वही मूलाधार का पुष्प है। मिलन काल में वह नष्ट हो जाता है। जब संसार के प्राणी उस प्रमदा सुख को छू लेते हैं तभी वे मर जाते हैं। प्राणहीन हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य से रहित हो जाते हैं क्योंकि वह फूल बिना साधन के उत्पन्न हुआ है उसका निवास स्थान गगन मंडल के बीच में अर्थात् सहस्रार के बीचोबीच में रहता है जो सहस्रार में पीयूषवल्ली है वह स्त्री-पुरुष के एक होने पर मुरझा जाती है और पुरुष ब्रह्मचर्य से रहित हो जाता है। वही स्त्री-पुरुष की मृत्यु है। स्त्री रूप प्रकृति जो है वह सदा पीयूष ग्रन्थि की विरोधिनी है। यह मूलाधार चक्र जो गुदा और लिंग के बीच में विद्यमान है। जहाँ पर कुण्डलिनी निवास करती है संसार के सुख-भोग काल में ऊपर हो जाती है और सहस्रार नीचे हो जाता है तभी स्त्री-पुरुष का सुख सम्भव होता है। संसार में उक्त पुष्प खूब खिला हुआ है। चित्त वृत्ति उसको गाथ रही है अर्थात् चित्तवृत्ति उसका ग्रन्थन करके चित्त में बसा रही है। जब

मनुष्य के चित्त में भौतिक सुख का निवास हो जाता है। तब वह उसी के साथ मृत अवस्था को प्राप्त हो जाता है। जब वृद्धावस्था आ जाती है। इन्द्रियाँ सो जाती हैं तब भौतिक सुखों के भोगने की क्रिया भी नष्ट हो जाती है। तब भोगने वाला जीव भी संसार से निराश होने लगता है।

सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि हे सन्तों भाई सुनो ! ये संसार के बड़े-बड़े पंडित जन भी पढ़-लिख कर उक्त फूल में भूले हुए हैं तो अन्य अज्ञ जीवों की क्या कथा कही जाय।

**आशय**—संसार का सुख इतना मधुर इतना मीठा है कि जिसको चूसते ही जीव रूपी भौंरा मर जाता है। क्योंकि भौतिक सुख ऐसे विचित्र दशा में उत्पन्न हुआ है कि उसका पता लगाना बड़ा कठिन हो जाता है। यदि शरीर में रोग है घर में कलह है तो कभी भी धन से और जन से सुख नहीं होता। कुछ लोग कहते हैं कि सुख का हेतु वैभव है परन्तु एक रोगी से पूछिये कि तुम्हें सुख है जिसके पास अपार सम्पदा व लक्ष्मी है अतः वैभव सुख का हेतु नहीं हुआ। इसलिए कबीर साहब कहते हैं कि उक्त पुष्प रूपी वैभव व संसार रूपी वृक्ष जिसमें विषय-वासना रूपी पुष्प लगा है। जो वह बिना जोते बोये सींचे उत्पन्न होता है। उसमें (उस संसार रूपी वृक्ष में) कोई स्कन्द आदि अवयव नहीं हैं। उसका स्थान सहस्रार में है। वह उल्टा है। उसकी डाल नीचे हैं मूल ऊपर है। इसलिए ज्यादा दिन तक नहीं रहता क्योंकि उसका क्रम उल्टा है यदि मूल नीचे भूमि पर होता और स्कन्द पत्ते आदि ऊपर होते हैं तो वह सुख स्थायी होता परन्तु क्रम उल्टा होने से शीघ्र सूख जाता है अर्थात् उसका क्रम उल्टा है नीचे का ऊपर, ऊपर का नीचे है। देखने में संसार का पुष्प वा सुख भल कहिये बहुत सुन्दर है अच्छा खिला भी है। षोडश वर्षीय युवक वा युवतियों को देखिये तो वे कितना आकर्षक होते हैं। दोनों खिले रहते हैं, दोनों की चित्तवृत्तियाँ संसार की माला का ग्रंथन करती रहती हैं परन्तु क्रम नीचे ऊपर होने से पेड़ सूख जाता है। संसार के सुख का नाश हो जाता है, इसलिए संसार और संसार के सुख को अनित्य कहा है। संसारी सुख

से जीव को तृप्ति नहीं होती है अन्त में वह निराश होकर संसार से चला जाता है। अतः सद्गुरु कबीर कहते हैं कि मूर्ख तो कम पण्डित जन ज्यादा। पण्डित जन बहुत कसकर संसार को पकड़े हुए हैं। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि संसार के सुख रूपी पुष्प का परित्याग करके एक नाम जो है उसी का अहर्निश सुमिरन ध्यान करें। तभी अक्षय सुख का दर्शन होगा अन्यथा ऐसे ही फूल के सूखने पर निराश होते रहेंगे।

**टिप्पणी**—कठोपनिषद (२) ६।१ ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्यम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥१५।१

# सबद् ६४

## अध्यात्म अन्योक्ति प्रकरण

**जोलहा बीनहु हो हरिनामा, जाके सुर नर मुनि धरें ध्याना ॥**
**ताना तनै को अहुँठा लीन्हा, चरखी चारो वेदा।**
**सरकुंडी येक राम नरायन, पुरन प्रगटे कामा ॥**
**भौसागर एक कठवत कीन्हा, तामें मांड़ी साना।**
**मांड़ी का तन मांड़ि रहो है, मांड़ी बिरले जाना ॥**
**चाँद सुरज दुई गोड़ा कीन्हा, मांझ दीप कियो मांझा।**
**त्रिभुवन नाथ जो मांजन लागे, स्याम मुररिया दीन्हा ॥**
**पाई कै जब भरना लीन्हा, वै बांधन को रामा।**
**वै भराये तिहुँ लोकहिं बाँधे, कोई न रहत उबाना ॥**
**तीनि लोक एक करिगह कीन्हा, दिगमग कियो ताना।**
**आदि पुरुख बैठावन बैठे, कबीरा जोति समाना ॥**

**शब्दार्थ**—जोलहा–श्री कबीर साहब एवं जीव। बीनहु–बिनों। जपो–हो होवो। हरिनामा–प्रभु का नाम। जाके–जिसके। ताना–शरीर, जो सूत को जुलाहे लोग लम्बे दायरे में बीनने के लिए रखते हैं, जहाँ से वस्त्र बुनने की प्रक्रिया शुरू होती है। अहुँठा–जुलाहों का वह साधन जो साढ़े तीन हाथ का होता है, जिसको संस्कृत में 'अध्युष्ठ' कहते हैं। चरखी–कपड़ा बुनने

के लिए सूत कातने वाला चरखा, प्रतीकात्मक चरखा चारों वेद हैं। सरकुंडी–सरकंडा जो सरपत के बीच वाला डंठल जो ताना के बीच-बीच में लगाया जाता है। नरायन–नारायण, ईश्वर। भौसागर–संसार। कठवत–काष्ठ पात्र, संसार, जिसमें सूत के पुलिन्दे को किसी रंग में सानकर भींगोते हैं। माड़ी–चावल या आटे को तरल बनाकर सूतों में सानते हैं, पंचभूत। मांड़ी रहो–उसमें लगाय रहो, सुसज्जित करना। मांड़ी–मांड़ से सना हुआ, प्राणीमात्र। चाँद सुरज–चन्द्र, सूर्य, इंगला और पिंगला। दुई–दो। गोड़ा–खूँटा, पाया। मांझ–बीच का स्थान, सुषुम्ना। मांझा–मांझा उसको कहते हैं जो करघे के एक खूंटे से दूसरे खूंटे तक लगा रहता है जिसमें से होकर सूत से कपड़ा बनकर लिपटता है तथा सूत और कपड़े को नीचे नहीं गिरने देता है, एक प्रकार का ढाँचा जो गोड़ाई के बीच रहता है और पाई को जमीन पर गिरने से रोकता है। त्रिभुवन-नाथ–तीनों लोक का स्वामी, ईश्वर, जुलाहा। मुररिया–मुररी उस गाँठ को कहते हैं जो दोनों सूतों को अंगुली से ऐंठकर एक कर दिया जाता है देशज भाषा में उसको 'मुद्धी' कहते हैं तथा संस्कृत में 'ग्रन्थि' कहते हैं। मांजन–सूतों की सफाई करना। स्याम–कृष्ण वर्ण का, ईश्वर। पाई–पतली छड़ियों के बेंत का ढाँचा जिस पर तागे के सूत को फैलाकर खूब मांजते हैं। वे–जुलाहों के करघे में सूत का एक जाल। भरना–करघे की ढरकी। उबाना–कपड़ा बुनने में राछ के बाहर जो कपड़ा रह जाता है जिससे सूत और कपड़ा दोनों अलग हो जाते हैं। करिगह–कारगाह, काम करने का स्थान, गड्ढा, संसार। दिगमग–दिगमंडल। बैठावन–लकड़ी का वह यंत्र जिससे ताना बैठाया जाता है।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि किससे सत्य बात कही जाय, किससे आवश्यक बात कही जाय, जहाँ पर नाच-तमाशे संसारिक विषयों की चर्चा होती है वहाँ पर झुण्ड के झुण्ड लोग इकट्ठे हो जाते हैं और बड़े चाव से उसकी चर्चा करते हैं परन्तु जहाँ पर सत्यासत्य का विवेक होता है उस बात को सुनने के लिए कोई तैयार नहीं है और नहीं कहता तो

संसार के मनुष्य सांसारिक विषयों को छूते ही मर जाते हैं। मैं इसलिए लोगों से कहता हूँ कि मैं सांसारिक विषयों की असत्यता का अनुभव कर लिया हूँ यदि नहीं कहूँ, यदि लोगों को सावधान न करूँ, तो मुझे दोष लगता है परन्तु मेरी सत्य बात को सुनने के लिए कोई तैयार नहीं है। सारा संसार विषय-वासना में मस्त है। चाहे वह पंडित हो, चाहे वह मूर्ख हो, सभी लोग उक्त संसार सुख में भूले हुए हैं। अब प्रश्न उठता है कि आखिर में करना क्या चाहिए ? तो नीचे उत्तर दिया जा रहा है कि परमतत्त्व का चिन्तन करना चाहिये।

**मूलार्थ**—कबीर साहब कहते हैं कि हे मन ! हे संसार के लोग ! जिस कपड़े को संसार के जीव रूपी जुलाहे बुन रहे हैं, जिस कर्म को संसारी लोग कर रहे हैं, जो जन्म-मरण का हेतु है, जिसके फल से दुःख अधिक तथा सुख कम होता है, उस कर्म रूपी कपड़े की बुनाई का परित्याग करो। कम बिनों, बुनते हुए भी अनासक्त रहो और हरि नाम रूपी कपड़े को बुनो। जो तुम्हारे तन को आदि से अन्त तक आच्छादन तथा रक्षा करने वाला है उस प्रभु नाम के कपड़ा तू बिनो। जिस परमतत्त्व का ध्यान सुर, नर, मुनि सब धरते हैं जिसकी प्राप्ति सभी चाहते हैं, उक्त कपड़ा बीनने के लिए जैसे सूतों का ताना बाना ताना जाता है जिसके तैयार करने में काष्ठ का साढ़े तीन हाथ का साधन लगता है। इसी प्रकार से तुम्हारी साढ़े तीन हाथ की मनुष्य की शरीर है उसी में तू राम-नाम का ताना तानो अर्थात् प्रभु नाम का जप करो और सूतों को कातने के लिए जैसे चरखी होती है उसी प्रकार राम-नाम कातने के लिए चारों वेदों का चरखा बनाओ अर्थात् जो वेद में उत्तम ज्ञान है उस ज्ञान को ग्रहण कर अपने आचरण में उतारो और जो सरकंडा होता है जिसमें सूत फँसाये जाते हैं। यहाँ पर वही राम रूपी सरकंडा है, मन रूपी सूत को उसमें फँसाना होता है। अर्थात् मन परमात्मतत्त्व का चिन्तन करे भाव सहित भगवान के नामों का जप करे जो सभी मनोकामना को पूरा करने के लिए प्रकट हुआ है और संसार रूपी कठवत का जिसने निर्माण किया है

जिसमें मनुष्यों के सप्त रसों आदि सामानों को मांड़ी के रूप में मिलाया है अर्थात् परमेश्वर ने पहले संसार की रचना की उसने प्रत्येक भूत, भौतिक सृष्टि का सृजन किया। उन्होंने जो भी बनाया उन्हीं सूक्ष्म भौतिक तंतुओं से शरीर का सृजन किया अर्थात् यह मांडी का तन जो पंचभूतों का बना हुआ है। अन्त में पंच भूत में ही मिल जाता है परन्तु यह मांडी है अर्थात् विकार है केवल मनुष्यों को लुभाने के लिए कार्यब्रह्म ने उत्पन्न किया है इसलिए इसे विरले ही जान सकते हैं कि यह मांडी रूपी तन असत्य है।

मैं तो साधन काल में इंडा और पिंगला का दो पाया खड़ा किया और बीच में जो सुषुम्ना है उसी में मन रूपी मांझे को लगाया। त्रिभुवन नाथ अर्थात् जो जगत का स्वामी है उसका मांजन कहिये भजन सुषुम्ना की स्थिति काल में करने लगा। स्याम कहिये जो साधक है भजन करने के लिये बैठा है अथवा चित्त जब हरि भजन से इधर-उधर भागने लगा तो साधक ने पुनः उसको पकड़ कर राम-नाम में जोड़ दिया। पाई कहिये सुरति उसको जपकाल में निरन्तर मन से जोड़ दिया और भरना कहिये हृदय रूपी ढरकी में राम-नाम को इकट्ठा किया और वै कहिये साधक ने राम-नाम के द्वारा चित्त को बांधा। जब राम-नाम से चित्त बंध गया तब वह तीनों लोकों को वश में कर लिया। अर्थात् राम नाम से ही सारा संसार आवृत है। उसी में चित्त लगाना चाहिये और उस प्रभु से कोई भिन्न नहीं है संसार का सृजन करने के लिए उसी ने एक कारगाह बनाया और दिग-दिगान्तरों तक ताना फैलाया अर्थात् इस सृष्टि को इतने बड़े विस्तार में रचा कि दिग मंडल उससे परिपूर्ण हो गया और प्रकृति रूपी बैठावन से उस आदि पुरुष ने सृष्टि को संवारा। उसी आदि ज्योति में मैं कबीर समाविष्ट हो गया। अब मुझे और राम को कोई अलग नहीं कर सकता।

**आशय**—सद्गुरु कबीर साहब संसार के मनुष्यों से कहते हैं कि हे मनुष्यों! संसार रूपी कपड़े को बनाना छोड़कर भगवान का स्मरण, ध्यान

करो जिसका सुमिरन, मनुष्य, देवता, ऋषि, मुनि सब करते हैं। वही प्रभु शरीर रूपी वस्त्र का निर्माण करने के लिये साढ़े तीन हाथ का साधन अपनाया। राम नाम जपने के लिए चारों वेदों का निर्माण कराया। सभी लोगों के आश्रय स्वरूप राम नाम की सरकंडी और खूंटी बनायी और पुनः अनेक प्रकार के जीव-जन्तुओं की सृष्टि की। सृष्टि करने के लिए उसने संसार रूपी कठवत बनायी। पृथ्वी, पानी, अग्नि, आकाश, वायु की मांडी सानी। उसी मांडी का कार्यं रूप यह मानव शरीर निर्मित हुआ। उसे संसारी मनुष्य फिर भी नहीं समझ पा रहे हैं कि यह शरीर सत्य है या असत्य है इसी में आत्म बुद्धि बनाये हुए हैं।

सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि मैं तो राम नाम का साधन जपने का मार्ग सुषुम्ना को किया। क्योंकि सुषुम्ना के द्वारा ही मन ऊपर की ओर जाता है। तब श्वाँस की गति ऊर्ध्व होती है। उसी में त्रिभुवन पति का भजन होता है। सुषुम्ना काल में ही भजन समाप्त हुआ और मन उलट कर उसी सुषुम्ना में समा गया तब सारे शरीर के अवयव एवं इन्द्रिय गण, मन, बुद्धि,चित्त, अहंकार जो पाई और भरना के रूपक हैं, पूरे अवयव सुषुम्ना काल में एक हो गये। अर्थात् रामनाम में बंध गये। सुषुम्ना काल में साधक तीन लोक में भागने वाले मन को खींचकर ध्यानस्थ कर लेता है। सुषुम्ना काल में मन की पाँचों वृत्तियों में कोई भी पृथक नहीं रहती हैं। साधक का आयतन बहुत बढ़ जाता है वह अखिल ब्रह्माण्ड में जिसमें तीन लोक विद्यमान हैं एक ही विराट रूप में साधक सबको देखता है। पूरे दिग मंडल में अपने स्वरू प को व्यापक बना लेता है और आदि पुरुष जो परमतत्त्व है उसको हृदय में स्थिर कर लेता है। जब अविचल पुरुष हृदय में स्थिर हो जाता है तब कबीर साहब कहते हैं कि साधक की ज्योति उस ज्योति में समा जाती है। जो सदा सर्वदा के लिए एक में एक होकर शान्त हो जाती है।

## सबद् ६५

### योगी प्रकरण

**जोगिया फिरि गयो नग्र मंझारी, जाय समान पाँच जहं नारी।**
**गये देसंतर कोई न बतावैं, जोगिया उलटि गुफा नहिं आवै॥**
**जरि गयो कंथा धजा गइ टूटी, भजि गयो डंड खपर गयो फूटी।**
**कहैं कबीर ये कलि है खोटी, जो रहे करवा सो निकरै टोंटी॥**

**शब्दार्थ**—जोगिया–योगी, प्राणायाम का साधक, ध्यान, धरने वाला। नग्र–नगर, शरीर, अन्तःपुर, हृदयस्थान, संसार। मंझारी–मध्य। जाय–गया। समान–समाविष्ट, समाहित। पाँच–पंच प्राण, अपान, समान, उदान, ब्यान। जहं–जिस। नारी–वही प्राण वायु। देसंतर–एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना, विदेश, अन्य दिव्यलोक, दूसरी योनियाँ। गुफा–संसार, हृदयस्थान, शरीर। कंथा–साधुओं की अलफी जो बहुत डोरों से सीली हुई होती है, शरीर, चोला। धजा–ध्वजा, शिरभाग, अहंकार। टूटी–टूट गया। भजि–भंजित। डंड–दण्ड, मेरुस्थान। खपर–खपड़ोई, ब्रह्मरन्ध्र। खोटी–त्रुटि पूर्ण। करवा–टोंटीदार, जलपात्र। टोंटी–जल निकलने का मार्ग।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि हरि नाम को जपने वाला निर्वाण पद को प्राप्त कर लेता है वह जन्म-मरण से परे हो जाता है। चित्त को निग्रह करने के कारण उस भक्त को योगी भी कहा गया है इसलिए निचले पद में यानी योगिया भाव ग्रसित शब्द के द्वारा उद्‌बोधित किया जा रहा है।

**मूलार्थ**—अब सद्‌गुरु कहते हैं कि वह राम भक्त योगी परमतत्त्व का उपासक संसार की ओर जिसकी वृतियों का बहाव था उसको मोड़कर अर्थात् अन्तर में निग्रह करके हृदय के मध्यभाग में ले गया। जो शरीर रूपी नगर के बीच में स्थित है। वह योगो वहाँ पर पहुँचा जहाँ पर जीव को धारण करने वाले पंच प्राण विद्यमान हैं अर्थात् योगी उपासना के बल पर स्वस्वरूप में अपनी मनोवृत्ति को समाविष्ट कर लिया। जब योगी की वृत्ति स्वरूपाकार हो गयी तब वह निर्वाण पद को प्राप्त कर लिया।

तत्पश्चात् देहपात होने पर वह योगी दिव्यलोक में चला गया। अर्थात् जीव रूप ज्योति परम ज्योति में समा गयी जिसको अब कोई बताने के लिए समर्थ नहीं है कि वह ज्योति किस स्थान में विद्यमान हो गई ?

इसी बात को भगवान बुद्ध ने भी कहा है—

अच्ची यथा वात वेगेन खितो, अत्थं पलेति न उपेति संखम्।
एवं मुनीनां काया विमुक्तो, अत्थं पलेति न उपेति संखम्॥
(सुत निपात)

"जिस प्रकार अग्नि की चिनगारो वात वेग से फेंकी जाने पर मूल स्थान को चली जातो हैं, उसे कोई बता नहीं सकता है वह कहाँ गई? इसी प्रकार मुनि भी नाम और काया को छोड़कर अपने धाम को चला जाता है कोई नहीं बता सकता कि वह कहाँ गया ?"

इसी बात को भगवान श्री कृष्ण चन्द्र ने भी कहा है कि उस मेरे परम धाम में जाने वाला योगी लौटकर नहीं आता है। उसी बात को कबीर साहब कहते हैं कि वह भक्त योगो शरीर रूपी गुफा में पुनः लौटकर नहीं आता है अर्थात् जन्म-मरण से परे हो जाता है कंथा रूपी शरीर अब उसको पुनः नहीं मिलता है अर्थात् अब शरीर उसको पहनने के लिए नहीं मिलता है वह भस्मी भूत हो जाता है। उसके सारे साज समान भी बिखर जाते हैं। ध्वजा रूप जो उसका कबंध है। अर्थात् जिस अहंकार से खड़ा रहता है वह शरीराभिमान जो ध्वजा का प्रतीक है, वह भी टूट गया और मेरु दण्ड भी अब सोधा नहीं रहा। ब्रह्मरन्ध्र भी अब फूट चुका है। अर्थात् उस परा विद्या को प्राप्त किया हुआ योगी मूलाधार से अपान वायु को उठाकर मेरुदंड के मार्ग से ले जाकर सहस्रार को वेधता हुआ ऊर्ध्वगति को प्राप्त कर लेता है। उपरान्त शरीर के सभी अवयव निरर्थक हो जाते हैं, उनसे अब उस योगी को कुछ लेना-देना नहीं रहता है।

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि मैं कबीर कह रहा हूँ कि यह संसार त्रुटि-पूर्ण है ? इस संसार के मनुष्य कोरे वकवादी हैं। वे प्रभु भक्ति नहीं करते,

न योग ध्यान करते हैं, अन्त अवस्था में विना कुछ लिये-दिये संसार से गमन कर जाते हैं। जो कुछ भी भला बुरा कमाते हैं वही सव शरोर से भोगते हैं। जो कुछ भी भला बुरा अन्दर होता है वह मुख के द्वारा निकलते रहता है।

**आशय**—यहाँ पर योगिया का अर्थ खराब नहीं है। जैसे प्रेम वश भोजपुर में वा लोक में सखी को स्त्रियां सखियाँ कहती हैं इसी प्रकार से उक्त पद में सद्गुरु ने राम भक्त को योगिया कहा है। पूर्णत्व को प्राप्त हुआ योगी पुनः संसार में नहीं आता है। उसकी वृत्ति आत्माकार हो जाती है। वह किस स्थिति में रहता है इस चीज को कोई नहीं जान पाता। आत्म प्राप्ति वाला योगी पुनः शरीर में नहीं आता। देहपात होने पर निरावयव तत्त्व में विलीन हो जाता है। पश्चात् शरीर के सब अवयव बिखर जाते हैं अब उसे किसी साधना आदि की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि वह योगी संसार को निरर्थक समझता है। वह जानता है कि संसार के पास कुछ नहीं है। संसार मिथ्या है इसलिए संसार से मिथ्या बात ही निकलती है व प्राप्त होती है। इसलिए इस संसार से विमुख हो जाओ। परमतत्त्व में अपने मन को लगा दो तभी कल्याण होना सम्भव है।

## सबद ६६

**जोगिया के नग्र बसो मति कोई, जो रे बसे सो जोगिया होई ॥**
**ये जोगिया को उल्टा ग्यान, काला चोला नहिं वाके म्यान।**
**प्रगट सो कंथा गुप्ता धारी, तामें मूल सजीवन भारी ॥**
**वो जोगिया की जुक्ति जो बूझै, राम रमै तेहि त्रिभुवन सूझै।**
**अम्रित बेली छिन छिन पीवै, कहैं कबीर जोगी जुग जुग जीवै ॥**

**शब्दार्थ**—नग्र–नगर, शहर, आस-पास, संसार, शरीर। बसो–निवास। मति–नहीं। जो–जिसने। रे–हे। बसे–निवास करेगा। जोगिया–वह भी भगवत भक्त हो जायेगा। ये–इस। उल्टा–संसार से विमुख। काला चोला–अशुद्ध अन्तःकरण नहीं है। वाके–उसके। म्यान–शरीर, तलवार रखने की खोल। कंथा–शरीर, पंच प्राणों का संघ। गुप्ता, आत्मतत्त्व-

धारी–गुप्त, छिपे तौर से निवास करने वाला आत्मा। तामें–उसमें। मूल–बीजस्वरूप आत्मा। सजीवन–संजोवनी लता, जीवनी शक्ति। भारी–बहुत विशाल। वो–उस। वेलि–लता, अमर वारुणी। जुग-जुग–युग-युग, जन्म-जन्मान्तर।

**सम्बन्ध**—पैंसठवें शब्द में बताया गया है कि जीवन मुक्त पुरुष की गति अप्रतिहत होती है वह किस स्थिति में रहता है और कहाँ रहता है इसको कोई नहीं जानता है। अब निम्न पद में कहते हैं कि वह योगी बहुत प्रभावशाली होता है उसके समीप में जाने वाला भी वासना से मुक्त हो जाता है क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि जहाँ पर आत्म निग्रही योगी पुरुष रहता है वहाँ की आस-पास की वायु इतनी विशुद्ध हो जाती है कि कोई भी जीव-जन्तु वहाँ पहुँचने पर निर्दोष हो जाते हैं उसी बात को लक्ष्य लेकर छाछठवें शब्द में गुरु महराज ने कहा है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कबीर प्रेम भरी प्रसन्नता से संसार के मनुष्यों से कहते हैं कि हे मनुष्य ! तू तो साधु संतों को देखकर दूर रहता है तुझे तो संसार ही अच्छा लगता है इसलिए मैं कहता हूँ कि उस आत्म ज्ञानी योगी के पास न जाओ, न वहाँ निवास करो, क्योंकि जो उस आत्मवेत्ता के पास बैठता है जो उसकी संगति करता है वह भी भगवत भक्त एवं योगी हो जाता है। क्योंकि उस योगी का मन संसार से उलट गया है उसकी इन्द्रियों का बहाव अन्तर भाव में हो गया है दूसरों को भी संसार से परे होने की बात करता है यही उस योगी का उल्टा ज्ञान है क्योंकि जिस मार्ग से संसार के लोग जाते हैं उस मार्ग का योगी निषेध कर विपरीत दिशा में जाता है उस योगी का अन्तःकरण निर्मल होता है मलयुक्त काला चोला उसका नहीं होता है बुद्धि उसकी निर्मल होती है। म्यान रूपी जो शरीर है जो अन्तःपुर है वह पूर्ण रूप से शुद्ध होता है अर्थात् जोव रूपी तलवार जिस म्यान रूपी शरीर में रहता है। वह शरीर पूर्ण रूपेण विशुद्ध हो जाता है।

यहाँ पर साधक ही तलवार है और म्यान ही शरीर है इसलिए उस

साधक का म्यान जो शरीर है वह पाप रूपी कालिमा से मुक्त हो जाता है। यह जो प्रकट कहिये दृश्य जो कंथा रूपी शरीर है इसमें गुप्त-तत्त्व विराजमान है अर्थात् यह शरीर गुप्त-तत्त्व को धारण करने वाला है जिसको कोई देख नहीं पाता है इसी शरीर में मूल संजीवन अर्थात् परम-तत्त्व जिसका बहुत बड़ा विशाल स्वरूप है वह इसमें विराजमान है जिसकी प्राप्ति से मनुष्य जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है। उक्त मूल संजीवनी विद्या की प्राप्ति की युक्ति प्रभु भक्त योगी ही जानता है। यदि कोई भक्त उस प्रभु भक्त योगी की युक्ति को समझ लेता है तो वह भी मूल संजीवन रूपी राम में रमने लगता है और उस परम भक्त योगी को तीनों लोक की गुप्त प्रकट बातें दर्शन होने लगती हैं अर्थात् वह प्रभु भक्त भूत, भविष्य, वर्तमान का ज्ञाता हो जाता है और सदैव अमृत जो आत्म अनुभूति रूपी वेलि है प्रत्येक क्षण उस परम रस को पीते रहता है। अस्तु जब योगी की निर्विकल्पक समाधि लग जाती है तो जो ब्रह्माण्ड में सोम-वल्ली है जिसको वैज्ञानिकों ने पीयूष ग्रन्थी कहा है जहाँ से अमृत टपकते रहता है। मन को मार्गान्तरित करके योगी अहर्निश उसको पीते रहता है।

कबीर साहब कहते हैं कि उस अमृत वेलि को जो पीता है वह कभी मरता नहीं है वह जन्म-जन्मान्तर के लिये अमर हो जाता है। अर्थात् अमरत्व को पहचान जाता है।

**आशय**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे जिज्ञासु भक्तों ! यदि तुम लोग प्रभु प्राप्ति करना चाहते हो तो पहुँचे हुए सन्त सद्गुरु की शरण में जाओ और उनके समीप रहकर उनकी सेवा करो। वे सन्त सद्गुरु तेरी वृत्ति को ही संसार से घुमाकर राम में लगा देंगे। वे निर्मल होते हैं। चोला रूपी शरीर उनका पापों से रहित होता है। जिस अन्तःपुर में वे निवास करते हैं वहाँ पर कोई छल प्रपंच नहीं वसता है। वे अपने भीतर गुप्त वस्तु को धारण करते हैं। उन योगियों में संजीवनी विद्या होती है वे सारे मनुष्यों को जिला सकते हैं। पंच क्लेशों का नाश कर सकते हैं उन सन्त सद्गुरु की गति को जो समझ लेता है। उनके बताये हुए मार्ग का

जो अनुशरण करता है तो वह भी परम प्रभु में रमने लगता है और त्रिकालज्ञ हो जाता है तथा जो अमृत लता है उसको वह प्रत्येक पल चूसते रहता है अर्थात् प्रत्येक क्षण आत्मानुभव का आनन्द लेते रहता है। मैं कबीर कहता हूँ कि जो उस परमतत्त्व की प्राप्ति कर लेता है वह युग-युगान्तर के लिए अमर हो जाता है।

## सबद ६७

**जो पै बीजरूप भगवान, तो पंडित का पूछो आन।**
**कहं मन कहं बुधि कहं हंकार, सत रज तम गुण तीन प्रकार ॥**
**विख अम्रित फल फले अनेका, बौधा वेद कहै तरबे का।**
**कहैं कबीर तैं मैं का जान, को धौं छूटल को अरुझान ॥**

**शब्दार्थ**—जो–जब भी, यद्यपि। पैं–पर, पैरमें। बीज रूप-मूलतत्त्व, मूल कारण। भगवान–ईश्वर, परमतत्त्व। तो–तब। पंडित–दार्शनिक विद्वान। पूछो–पृच्छा, प्रश्न। आन–दूसरा। कहं–कहाँ पर। हंकार–अन्तःकरण का एक साधन। सत–सतगुण। रज–रजोगुण। तम–तमोगुण। विख–विष, दुःख। अम्रित–अमृत। तरबे–तरने के लिए। तैं–तुम। मैं–हम। का–कौन। धौं–भला। छूटल–छूटा। अरुझान–बंधन।

**सम्बन्ध**—ऊपर यह कहा गया कि पहुँचे हुए आत्मज्ञ महात्माओं का साथ करना चाहिए। उनके साथ में परम आनन्द मिलता है, अमरत्व की प्राप्ति होती है अब नीचे यह कहा जा रहा है कि वह परमतत्त्व परमेश्वर ही मूल रूप से विद्यमान है उसी का भजन सुमिरन करना चाहिए अतः दूसरे प्रश्नों से क्या लाभ है ?

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि वह परमेश्वर ही अखिल सृष्टि का बीज रूप वास्तविक मूल तत्त्व है उससे भिन्न सब अचेतन तत्त्व हैं इसलिए हे सांख्य आदि दर्शन के विद्वान उस परमतत्त्व स्वरूप आनन्दमय भगवान का परित्याग करके अन्य प्रश्न क्यों कर रहे हैं ? जब आप दार्शनिक एक तत्त्व के स्थान पर समुच्चयवाद का प्रतिपादन करते हैं और कहते हैं कि

एक तत्त्व कोई बीज रूप में मूल नहीं है वह मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के संघात का नाम आप आत्मा कहते हैं इसी प्रकार का कथन बौद्ध दार्शनिक भी करते हैं परन्तु यह समुच्चयवाद पूर्ण रूप से अप्रमाणिक है क्योंकि मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार जो हैं ये अलग-अलग अस्तित्व वाले नहीं हैं ये किसी के अस्तित्व से अस्तित्ववान होते हैं। इनके जानने वाला पृथक है उसी को चिद् स्वरूप व बीज स्वरूप मूल तत्त्व समझना चाहिए। जैसे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार भिन्न और परिणामी हैं उसी प्रकार से सत, रज, तम गुण ये जो तीन प्रकार के हैं वे सब आत्मा से भिन्न है ये भी परिणामी हैं। रज, तम, सत मिश्रित होकर जो कर्म किये जाते हैं उन कर्मों के फल भी तीन प्रकार के होते हैं जो सुख, दुःख, मोक्ष के रूप में विद्यमान हैं। जिनका परिणाम सुख और दुःख होते हैं। इन सकाम कर्मों का खण्डन वेद का जो ज्ञान काण्ड भाग है वह बहुत विरोध किया है। यद्यपि वेद बहुत प्रकार से तरने का उपाय कहा है, दान से, उपासना से अन्य षट्कर्मों से भी मुक्ति का मार्ग बताया गया है और इन विषयों पर बड़ी-बड़ी पुस्तकें लिखी गयी हैं।

सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि हे पण्डित जब तक मेरे तेरे का ज्ञान बना रहेगा और जब तक तूँ जानता है कि यह मेरा है, वह तेरा है तो भला इस प्रकार के ज्ञान से कौन छूट सकता है ? इस मेरे-तेरे में सारा संसार बंधा हुआ है एवं अरुझा हुआ है। इसलिए इससे परे होकर सोचो, तब आत्मतत्त्व का भान हो सकता है।

**आशय**—संसार का मूल तत्त्व बीज स्वरूप ईश्वर ही है उसको छोड़कर दूसरा प्रश्न करना निरर्थक है और सांख्यवादी और बौद्धमतावलंबी बड़ी-बड़ी डींग हांकते हैं कोई कहता है कि ईश्वर नहीं है यह जगत स्वयं उत्पन्न हुआ है यह कहना उनकी महान भूल है क्योंकि संसार के सभी प्राणी तीनों गुणों से अभिभूत होकर कर्म करते हैं सत्त्वगुण संयुक्त होकर उपासना या अध्यात्म चिंतन किया जाता है। रजोगुण से युक्त होने पर लोक के कार्य किए जाते हैं और तमोगुण से युक्त होने पर

मनुष्य किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है। इन्हीं तीनों गुणों के कारण अनेक प्रकार के सुख-दुःख उत्पन्न होते रहते हैं। सांसारिक सुख-दुःख से परे होने के लिए अनेक प्रकार का उपदेश दिया गया है।

कबीर साहब कहते हैं कि हे पंडित ! तू और मैं परमेश्वर के बारे में कुछ नहीं जानते और यह भी नहीं जानते कि शरीरान्त होने पर सांख्य-वादी तरेगा कि बौद्धवादी तरेगा, कि सनातनी तरेगा यह कहना कठिन है कि किसका उपासक बंधन में है, किसका उपासक छूट जाता है ? जब तक मनुष्य का भ्रम दूर नहीं होता है और अपने उस तत्त्व को नहीं समझ जाता है कि मैं मुक्त हो जाऊँगा तब तक दूसरा क्या कर सकता है इसलिए मनुष्य को चाहिए कि तैं और मैं भाव छोड़ दें और परमतत्त्व के चिंतन में लग जांय।

## सबद ६८

### ईश्वर अविनाशी प्रकरण

जो चरखा जरि जाय बढ़ैया ना मरै।
मैं कातूं सूत हजार, चरखुला ना जरै ॥
बाबा मोरे ब्याह कराव, आछा बरहिं तकाव।
जौ लौं आछा बर ना मिलै, तौ लौं तूहिं बियाह ॥
प्रथमै नग्र पहुंचते, परिगौ सोग संताप।
एक अचंभौ हम देखिया, जो बिटिआ ब्याही बाप ॥
समधी के घर लमधी आये, आये बहू के भाय।
गोड़े चूल्हा दै दै, चरखा दियो दिढ़ाय ॥
देव लोक मरि जाहिंगे, एक न मरै बढ़ाय।
यह मन रंजन कारने, चरखा दियो दिढ़ाय ॥
कहैं कबीर सुनो हो संतो, चरखा लखै जो कोय।
जो यह चरखा लखि परे, ताको आवागौन न होय ॥

**शब्दार्थ**—चरखा–जुलाहों का सूत कातने का वह साधन जो वृत्ताकार लकड़ी का बना होता है, शरीर, संसार। बढ़ैया–ईश्वर, बढ़ई, वरधिका।

कातू–सूत तैयार करूं। सूत–सूत्र, शुभकर्म, अशुभकर्म। हजार–अनेक प्रकार का। चरखुला–चरखा, शरीर। ना–नहीं। जरै–नष्ट हो। बाबा–पिता, पिता का बाप, पितामह, गुरु। मोरे–मेरा, शिष्य का। ब्याह–विवाह, सम्बन्ध। कराव–कराइये। आछा–सुन्दर। बरहिं–वरहिं पति। तकाव–लखाऊ, देखाइये। जौ लौं–जब तक। तौ लौं–तब तक। तूहिं–तुम्हीं से, आपही से। वियाह–व्याह करूंगी। प्रथमै–प्रथमहिं। नग्र–नगर, वर का घर। पहुँचते–पहुँचते ही। परिगौ–हो गया। सोग–शोक। संताप–संतप्त। अचंभौ–आश्चर्य। बिटिया–पुत्री, उपासक जीव। ब्याही–सम्बंध। बाप–ईश्वर, परमतत्त्व। समधी–सद्गुरु, वर का बाप। घर–गृह। लमधी–समधी का बाप, परमगुरु, आचार्य। बहू–बधू। भाय–भाई, विवेक। गोड़े–पैर, अहंकार। चूल्हा–वैराग्य, सद्रुपदेश। चरखा–मानव शरीर। दिढाय–चेताय निश्चित। देवलोक–दिव्यलोक, स्वर्ग। मरि–मृत, अभावग्रस्त। एक–परमेश्वर, परमतत्त्व। रंजन–प्रसन्नता, सुखी। मन–आत्मा। चरखा –मानव तन। लखै–निरीक्षण करे, इसका महत्व समझे। आवागौन–आवागवन जन्म-मरण।

**सम्बन्ध**—इसके पहले कहा गया कि सभी प्रपंचों के ऊपर एक परम तत्त्व है उसी के विषय में प्रश्न करना चाहिए अतः सांसारिक बातों का ध्यान नहीं करना चाहिए अब नीचे दिखाया जा रहा है कि मानव तन में ही उसकी प्राप्ति हो सकती है क्योंकि अन्य योनियाँ आत्म प्राप्ति के ज्ञान से शून्य हैं।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे भाई! जो यह चरखा रूपी शरीर है काल पाकर इसका अभाव हो जाता है परन्तु इसके बनाने वाला जो परमेश्वर रूपी बढ़ई है। वह कभी मरता नहीं है अर्थात् उसका अभाव नहीं होता है मैं साधक चरखा रूपी मानव तन पाकर सहस्त्र नाम रूपी सूत इससे कातता हूँ और आगे भी कातता रहूँगा। इसीलिए इस चरखुला रूपी शरीर का बड़ा महत्व है। हे मनुष्यों! अनाप-सनाप में इसका नाश न करो। मैं पिता रूपी गुरु से यही प्रार्थना करता हूँ कि इस मानव तन

में रहते हुए मेरा सम्बन्ध जो अच्छा वर परमतत्त्व है। उसी से करा दीजिए। उसी सुन्दर सुष्ठ वर को मुझे दिखा दीजिए। अर्थात् जो सबके अन्तःपुर में विराजमान है, जो सबकी आत्मा है उस सुन्दर सलोने परम-देवता की प्राप्ति मुझे करा दीजिए। क्योंकि मैं भी ठान लिया हूँ कि जब तक वह परमतत्त्व रूपी वर मुझे नहीं मिलेगा। तब तक मैं आप गुरुदेव की ही सेवा में लगा रहूँगा और आप से ही सम्बन्ध स्थापित करूँगा।

उक्त शिष्य की बात को श्रवण कर गुरुदेव ने कृपा किया और परम-तत्त्व को लखा दिया। प्रथम चरण में ही जब इन्द्रियों को समेट कर मन को नगर कहिये हृदय स्थान में ले गया तभी इन्द्रियाँ विकल हो गईं उनके भोगने का जो साधन मन था, वह अन्तःपुर की ओर पदार्पण कर दिया वाह्य जगत में जो इन्द्रियां चरती थीं, जो विषय भोगती थीं। वे सब वृत्ति के एकाग्र होने पर सांसारिक सुखों के भोग से वंचित हो गईं इसलिए उनमें शोक-संताप छा गया। भला एक आश्चर्य यह तो देखिये पुत्री का विवाह बाप से हो गया अर्थात् यह जीव तब तक संसार की यात्रा में लगा रहा जब तक परमेश्वर से भिन्न था जब यह सद्गुरु के दिखाये हुये मार्ग के द्वारा अन्तःपुर के नगर में प्रवेश किया तब परमतत्त्व रूपी बाप की इसको प्राप्ति हो गई। इस जीव ब्रह्म की एकता का कारण समधी सम्यक बुद्धि वाला सद्गुरु ही है और लमधी कहिये जो सद्गुरु का सद्गुरु था जिसने उसके घर कहिये शरीर में व अन्तःपुर में उपदेश किया था उसी आत्मज्ञान को सद्गुरु ने मुझको दे दिया। यह परम्परा से आया हुआ ज्ञान जब प्राप्त हो गया तब बहू कहिये जो बहू रूप साधक का भाई रूप विवेक था वह समुपस्थित हुआ और सत्य-असत्य का निर्णय करने लगा। तब उसमें त्याग की भावना जगी। गोड़ कहिये अहंकार जिसके कारण श्रद्धा और विनम्रता नहीं आ पा रही थी उसको चूल्हा रूपी वैराग्य अग्नि में जला दिया। चरखा कहिये मानव तन में ही निश्चित कराई गई आत्मगाथा से जब विवेक उत्पन्न हुआ तब उसके बाद वैराग्य उत्पन्न हुआ। जिसके उत्पन्न होने पर विषयों की चाहना मिट गई किसी

भी भौतिक सुख की लालसा नहीं रही। यहाँ तक की देवलोक के सुख भी उसके लिए मर गये। अतः देवलोक के सुख की भी उपेक्षा कर दी गई। आत्मानुभूति प्राप्त साधक का मन मनुष्य लोक से लेकर देवलोक के भोगों से उपराम हो गया परन्तु जो एक तत्त्व बढ़ाय कहिये परब्रह्म है उसका अभाव नहीं हुआ। उसी में आत्म जिज्ञासु साधक अहर्निश अनुरक्त हो गया। यह मन जो यहाँ पर आत्मा का प्रतिरूप है रंजन कहिये सुखी करने के लिए अर्थात् जन्म-मरण से परे होने के लिए चरखा रूपी मानव तन में ही आत्म तत्त्व का उपदेश उक्त गुरु ने साधक को दिढ़ाया। जो वास्तविक रूप में गुरु का भक्त था।

सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि हे सन्त जन! मुझ कबीर की बात सुनो जो इस चरखा रूपी शरीर का महत्व जान गया है जो इसका निरीक्षण कर लिया है जो इस चरखा के महत्व को लख लेता है कि इसी मानव तन में सब कुछ होने की कला है। इसी मानव तन से इन्द्र लोक आदि प्राप्त किये जा सकते हैं और इसी से सम्पूर्ण विश्व पर शासन किया जा सकता है यावत् शुभाशुभ जो कर्म हैं इसी मानव तन से किये जा सकते हैं। इसलिए हे संतजन! जो इस चरखा रूपी शरीर को देख लेगा और इसके अन्दर रहने वाले को समझ लेगा तो वह कभी जन्म-मरण के फंदे में नहीं पड़ेगा।

**आशय**—शरीर रूपी चरखा अनित्य है। इसका नाश हो जाता है। इसलिए इसके मूल को समझना चाहिए। क्योंकि इसके बनाने वाला परमेश्वर रूपी बढ़ई कभी मरता नहीं है इसी मानव तन से हम हजारों प्रकार के कर्म करते हैं। यह बड़ा महत्व वाला है इसको संयम-नियम के द्वारा चिरकाल तक रखना चाहिए। इसमें रहते हुए मैं गुरुदेव से कहता हूँ कि मेरा सम्बन्ध परमतत्त्व से करा दीजिए। जब तक साधक को परमतत्त्व नहीं मिलेगा तब तक वह गुरु की सेवा करता रहेगा। भाव यह है कि परमतत्त्व की प्राप्ति मानव तन में ही केवल गुरु के द्वारा हो सकती है। इसलिए जब तक उसकी प्राप्ति न हो तब तक गुरुदेव की ही सेवा सुश्रुषा

में लगे रहना चाहिये। तभी परमतत्त्व के दर्शन की शुरूआत होती है। तभी संसार के सारे प्रपंच नष्ट हो जाते हैं। पश्चात् जीव ब्रह्म की एकता हो जाती है। वह तभी संभव है जब सम्यक बुद्धि वाला गुरुदेव अनन्त परम्परा का जो महान ज्ञान है वह शिष्य को देता है। गुरु के ज्ञान अन्तर्गत होने पर ही मनुष्य को विवेक वैराग्य उत्पन्न होते हैं। तभी अखिल ब्रह्माण्ड के सुखों से उसकी उपरति होती है और एक परमतत्त्व में ही सुदृढ़ हो जाता है। मनुष्यों को चाहिए कि आत्म कल्याण के लिए इस मानव तन में ही चेत जायें और दृढ़ निश्चय कर सुमिरन भजन में लग जाय।

सद्गुरु कहते हैं कि हे संत जन! इस मानव तन का जो महत्व जान जायेगा और जो इसको समझ लेगा, वह निश्चित रूप से आवागमन से परे हो जायेगा।

# सबद ६९

## ईश्वर अनाहत प्रकरण

**जंत्री जंत्र अनूपम बाजे, वाके अस्ट गगन मुख गाजै ॥**
**तूहीं गाजै तूहीं बाजै, तूहीं लिये कर डोलै।**
**एक सब्द मा राग छतीसों, अनहद बानी बोलै ॥**
**मुख के नाल स्रवन के तुंबा, सतगुर साज बनाया।**
**जिभ्या के तार नासिका चरई, माया को मोम लगाया ॥**
**गगन मंडल में भया उजियारा, उलटा फेर लगाया।**
**कहैं कबीर जन भये विवेकी, जिन्ह जंत्री सो मन लाया ॥**

**शब्दार्थ**—जंत्री–यंत्रो बजाने वाला, आत्मा, चेतन। जंत्र–यंत्र, बाजा, वीणा। अनूपम–अनुपम उपमा रहित। बाजे–बज रहा है। वाके–उसके। अस्ट गगन–सुरति कमल। अष्टौ स्थानानि वर्णाणां उरः कण्ठः शिरस्तथा जिह्वा मूलाश्च दन्ताश्च नासिकोष्ठो च तालु च—अर्थात् उर, कण्ठ, सिर, जिह्वामूल, दन्त स्थान, नासिका स्थान, ओष्ठ स्थान, तालु स्थान। गाजै–बजता है, गम्भीर गर्जना करता है। तूहीं–तुम्ही। गाजै–गर्जता है।

एक सब्द–एक शब्द, अनाहत नाद। मा–में। राग छतीसों–श्री राग मालश्री, त्रिवेणी, गौरी, केदारी मधुमाधवी, पहाड़ी, बसन्त राग, देशी, देवगिरी, वैराटी, तौरिका, ललित, हिण्डोल, पंचमराग-विभास, भूपाली, कर्णाटी, पटहंसिका, मालवी, पटमंजरी, भैरवराग-भैरवी, बंगाली, सेंधवी, रामकेली, गुर्ज्जरी, गुणकरी, मेघराग, मल्लारी, सैरीटी, सावेरी, कैशिकी, गांधारी, हरश्रृंगार, नाट नारायण–कामोदी, कल्याणी, आभीरी, नाटिका, सारंगी, हम्मारी हम्मरि। कर–हाथ। अनहद–अनाहत। बानी–वाणी, ध्वँनि। नाल–वीणा का डांडी व डण्डा। तुबां–जो बीणा तारों के स्थान पर लगा रहता है, जो गोल-वृत्ताकार लौकी का बना रहता है व जिसको लोक में तुबां कहते हैं। सतगुर–सद्गुरु, ईश्वर। नासिका–नाक। चरई–तार की खूंटी। मोम–सारिकाएँ। गगन मंडल–सहस्रार। फेर–फेरा।

**सम्बन्ध**—इसके पहले बताया गया है कि शरीर अनित्य है और शरीर में रहने वाला नित्य है। उसकी प्राप्ति करना मनुष्य का कर्तव्य है तभी मानव आवागमन से परे हो सकता है। अब नीचे यह कहा जा रहा है कि वह अपने अन्दर ही विराजमान है। जिसको ध्यान, धारणा के द्वारा प्राप्त करना चाहिए।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर इस शरीर की उपमा उस वीणा वाद्य से दिया है जिसकी ध्वनि बहुत मनोहारी होती है वे कहते हैं कि यह शरीर ही वीणा है। इसमें से जो आवाज निकल रही है वह मानवकृत नहीं है। वह दैवी आवाज है। पुनः कहते हैं कि जो इस यन्त्र को बजाने वाला है वह यन्त्र को इतना अच्छा बजा रहा है कि उस वाद्य की उपमा किसी अन्य वाह्य वाद्यों से नहीं दी जा सकती है वह बाजा मूर्धा के सभी स्थानों से गर्जना कर रहा है अर्थात् तालु, हृदय, जिह्वा मूल, मुख, कण्ठ, दाँत, सिर, ओष्ठ इन सभी स्थानों से उसकी प्रतिध्वनि हो रही है। वह आवाज कहीं दूसरे बाजे की नहीं है वह इसी चेतन से ही गर्जना होती और वही परम ध्वनि स्वरूप भी है। वही चेतन इस वाद्य रूप शरीर को लेकर डोलते फिरता है।

प्रसंग यह है कि जब साधक की कुण्डलिनी मूलाधार से उठकर सहस्रार की ओर चलती है तो उसके पहले ही एक शब्द होता है। वह ऐसा शब्द है कि जिसमें छत्तीसों राग विद्यमान रहते हैं। अर्थात् उस एक परम-तत्त्व आत्मा से ही उन छत्तीस रागों की उत्पत्ति हुई है। जब वह कुण्डलिनी ब्रह्माण्ड में चली जाती है तब वह साधक अनाहत वाणी बोलने लगता है। अर्थात् उसे ज्ञान विज्ञान के भण्डार मिल जाते हैं। संसार का कोई भी ज्ञान उसको ज्ञात हो जाता है। इस शरीर रूपी वीणा का जो डण्डा है वह मुख ही है, अर्थात् जो वीणा में डांडी लगी होती है। वह शरीर रूपी वीणे में मुख है। इसी प्रकार से वीणे में जो तुम्बा होता है, वह शरीर रूपी वीणे में कान सहित मुण्ड है इस परम सुन्दर शरीर रूपी वीणे को सतगुरु कहिये परमेश्वर ने बहुत सुन्दर सजाकर बनाया है। वीणा का दूसरा नाम साज भी है शरीर रूपी वीणे में जो जिभ्या है वही 'तार' का काम करती है जो नासिका है वह खूंटी का काम करती है, और जो इस जीवात्मा के साथ मोह है, माया है वह वीणे में मोम कहिये सारिकाओं का काम करती है। ये सब मूर्धा के जितने अवयव हैं वे सब वीणा के निचले भाग के हैं जहाँ तुम्बा लगा होता है। जब सब साज ठीक हो गया, अर्थात् जब कुण्ड-लिनी जग गई और ध्यान के द्वारा सहस्रार में पहुँच गयी तब गगनमंडल कहिये सहस्रार में ही महान प्रकाश छा गया। कुण्डलिनी तब जगी जब साधक संसार से मन को उलटकर सत्, चित्, आनन्द के ध्यान में लगाया।

सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि उपर्युक्त वीणे की नाद को वही सुन सकता है जिसके पास विवेक बुद्धि होगी अथवा जो विवेकी है और जिसने जंत्री कहिये उस आत्मदेव में निज मन को लगा दिया अर्थात् जो शरीर के भीतर बैठा हुआ शरीर का संचालन कर रहा है उसको जो खोजेगा वही जंत्री और जंत्र का भेद समझ सकता है।

**आशय**—यहाँ पर भाव यह है कि जो भीतर में परमात्मतत्त्व विराज-मान है वही शरीर रूप जन्त्र को बहुत सुन्दर रीति से बजा रहा है, अर्थात् उसका संचालन अनुपम गति से कर रहा है और सुरति कमल जो

सातवें चक्र के ऊपर है वह ब्रह्माण्ड में गरज रही है तात्पर्य यह कि जब योगी ध्यान के द्वारा षट्चक्रों को वेधता हुआ ऊर्ध्व में पहुँच जाता है। तब वहाँ पर घोर गर्जना होती है वह गर्जना ऐसी है कि पता नहीं चलता है कि कहाँ से गर्जन हो रहा है और कौन गर्ज रहा है? पहुँचा हुआ योगी जब स्वरूप का भान कर लेता है तब ध्वनि और ध्वनक में वाद्य और वाद्यक में अभेद देखता है और यह अनुभव करने लगता है कि यह ब्रह्माण्ड रूप शरीर मेरे द्वारा ही संचालित होता है और एक जो शब्द अनाहत नाद है उसी में छत्तीसों रागों का अनुभव करने लगता है और भूत, भविष्य एवं वर्तमान की वाणी बोलने लगता है तुम्बा का साज मुख एवं कान वाह्य रूप में सबसे सुन्दर है जिसका सद्गुरु परमेश्वर ने निर्माण किया है। जिभ्या तार का काम करती है नासिका घरई का काम करती है। माया सारिकाओं का काम करती है और जिसका प्रकाश सहस्रार में उद्भाषित होता है यह तभी सम्भव है जब वृत्ति को संसार की ओर से घुमाकर अन्तराभिमुख करे और जो विवेकी होगा वही यह सब जान सकता है।

**वाक्यार्थ**—बाजा एवं बजाने वाला दोनों उपमा से रहित हैं और जब बजाने वाला बाजा को बजाता है तो शरीर रूपी बाजा गर्जता है अर्थात् सहस्रार में विचित्र ध्वनि होती है वह ध्वनि हृदय तालु आदि आठों स्थानों में बाजती रहती है वह गर्जन करते रहती है। साहब कहते हैं कि तुम चेतन की ही वह ध्वनि है तथा तुम्हीं स्वाभाविक गति से प्रतिध्वनित होते रहता है और तेरे एक बोल में ही छत्तीसों रागों की ध्वनियाँ प्रति-ध्वनित होती रहती हैं एवं उन ध्वनियों से अनहद वाणी होते रहती है जिसका वारापार नहीं है। शरीर रूपी वीणा में मुख ही उसमें डण्डी है और नीचे का भाग तुम्बा जो होता है वही शरीर का श्रवण द्वार है। इस साज को सद्गुरु ने अर्थात् परमेश्वर ने बनाया है तार का काम जिभ्या करती है और खूंटी का काम नासिका करती है सारिकाओं का स्थान जिसमें तार लगाये जाते हैं, जो मोम के द्वारा सटी रहती है उसका काम माया करती

है यह सब तैयार होने पर शरीर रूपी वीणे में सहस्रार में प्रकाश हो जाता है अर्थात् ज्ञान का उदय हो जाता है। आत्मज्ञान तभी हो सकता है जब मन को संसार से फेरकर ध्यान द्वारा प्रभु की उपासना में मन को लगाया जाय उक्त ज्ञान प्राप्ति में वही व्यक्ति सफल हो सकता है जो विवेकी है जिसने शरीरस्थ यन्त्री का अर्थात् आत्मा की उपासना में मन लगाया हो।

**टिप्पणी**—इस पद में पक्तियों की संगति न होने से अर्थ की संगति में बड़ी कठिनाई ज्ञात होती है और ऊपर से दूसरा अर्थ करना समीचीन नहीं है।

## सबद् ७०

### कृत्रिम मूर्ति पूजा और मांस भक्षण प्रकरण

**जस मांसु पसु की तस मांसु नर की, रिधुर-रिधुर एक सारा जी।**
**पसु के मांस भखैं सभ कोई, नरहिं न भखै सियारा जी॥**
**ब्रह्म कुलाल मेदिनी भइया, उपजि बिनसि कित गइया जी।**
**मांसु मछरिया तै पै खइया, जेंव खेतन मों बोइया जी॥**
**माटी के करि देवी देवा, काटि काटि जिउ देइया जी।**
**जो तोहरा है सांचा देवा, खेत चरत क्यों न लेइया जी॥**
**कहैं कबीर सुनो हो संतो, राम नाम नित लेइया जी।**
**जो कछु कियेउ जिभ्या के स्वारथ, बदल पराये देइया जी॥**

**शब्दार्थ**—जस–जैसे। मांसु–मांस। तस–तैसे, उसी प्रकार से। नर–मनुष्य। रिधुर–रुधिर, रक्त। सारा–सामान्य, सदृश्य। भखै–भक्षण करे। नरहिं–मनुष्य का। सियारा–शृगाल, सियार। ब्रह्म–ब्रह्मा। कुलाल–कुम्हार। मेदिनी–पृथ्वी। भइया–हुई, भ्राता। उपजि–उत्पन्न। बिनसि–विनाश। कित–कहाँ, कितने। गइया–गया, चला गया, गाय। जी–सम्मान वाचक। मछरिया–मछली। खइया–खाया। जेंव–ज्यों। बोइया–बोया। मांटी–मिट्टी। कै–का। करि–बनाकर। देइया–दिया। तोहरा–तुम्हारा। लेइया–लिया। देइया–दिया, देगा।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि शरीर रूपी वीणा और उसमें रहने वाला चेतन पुरुष उपमा से रहित है और वह स्वतः है। चेतन तत्त्व ही राम है, रहीम है, अल्लाह है, आत्मा है, देवी है वही सब कुछ है और जो विवेकी पुरुष चेतन तत्त्व में मन लगाता है वही उसकी प्राप्ति कर सकता है। अब नीचे यह दिखाया जा रहा है कि पशु और मानव के तन में जो विराजमान है वह वही यन्त्री है। केवल आकार प्रकार भिन्न होने से वह भिन्न नहीं है योनियाँ तो उसको कर्मानुसार प्राप्त हुई हैं।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे मनुष्यों! परम पवित्र चेतन पुरुष को न जानकर न मान कर जिह्वा के स्वाद में लगे हुए हो। क्योंकि तुम जिन पशु आदि को मांस को खाते हो और मनुष्य के मांस का बहिष्कार करते हो और कहते हो कि मनुष्य की मांस खाने पर पाप लगेगा यह तेरा विचार गलत है। क्योंकि जिस प्रकार से पशु का मांस उत्पन्न हुआ है उसी प्रकार से मनुष्य का मांस भी उत्पन्न हुआ है और दोनों में रक्त एक है जो वह एक सा ही दीखता है, बल्कि तुझ मनुष्य से पशु अच्छे हैं। गाय दूध देती हैं, और भैंस, बकरी भी दूध देती हैं उनके मलमूत्र से कोई घृणा नहीं करता है उस पर भी उनके मांस को सब कोई खाते हैं और हे गुणहीन मनुष्य! तेरे मांस को सियार भी रुचिपूर्वक नहीं खाता। क्योंकि ब्रह्मा रूपी कुम्भकार ने इस पृथ्वी पर तमाम प्राणियों की सृष्टि की है। ब्रह्मा ने ही सबको बनाया है। ब्रह्माजी कुम्भकार हैं, पृथ्वी की रचना-कर तमाम पशु, प्राणियों की सृष्टि की है। सभी जीव उत्पन्न होते हैं और विनष्ट होकर कहाँ जाते हैं इसको कोई नहीं जानता अर्थात् ब्रह्मा कृत पशु प्राणी होने से तुम्हें मारने का अधिकार किसी प्रकार से नहीं है। क्योंकि किसान खेत में जो कुछ बोता है उसे काटने का अधिकार किसान को ही होता है। इसलिए ईश्वर ने सृष्टि की रचना की है और मारने का अधिकार भी उसी को है परन्तु तुम जो मारने की चेष्टा करता है यह तेरा अनधिकार है जो तुम मांस-मछली को खाता है तो समझ ले जैसे खेत में जो अनाज बोया जाता है वही काटा जाता है अर्थात् जिन

पशु एवं मछलियों को जो तू खा रहा है वह तेरा कर्म हुआ और क्षेत्र रूपी शरीर से तू कर्म किया है। इसलिए उक्त कर्म का फल काटना एवं भोगना तुझे ही पड़ेगा और जो तू कहता है कि हम ऐसे नहीं खाते हैं हम देवी और देवताओं को चढ़ाकर खाते हैं। यह मांस देवी देवता का प्रसाद है। प्रसाद ग्रहण करने में कोई दोष नहीं है। तो समझ ले इन मिट्टी के देवी-देवताओं का निर्माण तू ही किया है। जिनके आगे तू काट-काट कर जीवित प्राणियों की बलि देता है यह तेरी भयंकर भूल है। यदि ये तुम्हारे देवी-देवता सच्चे होते, यदि वे इन प्राणियों का मांस खाना चाहते हैं, तो क्या वे निर्बल हैं ? वे खाते चरते हुए पशुओं को पकड़कर क्यों नहीं खा लेते हैं ?

सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्त जन सुनो ! इन संसारी मनुष्यों से कहो कि उपर्युक्त पापाचार को छोड़कर श्रीराम का नाम नित्य जपा करें तभी संकट से छुटकारा पायेंगे और ये जो संसारी मनुष्य कुकर्म किये हैं, जिह्वा के स्वार्थ में उसका बदला तो उन्हें अवश्य देना है क्योंकि जो परमेश्वर-रूपी न्यायकर्त्ता है वह कभी क्षमा करने वाला नहीं है। वह इन जीवों के कर्म का फल अवश्य देगा।

# सबद् ७१

## व्यापक तत्त्व प्रकरण

**चात्रिक काह पुकार दूरी, सो जल जगत रहा भरिपूरी।**
**जेहि जल नाद बिंद को भेदा, खट क्रम सहित उपाने बेदा।।**
**सो जल जीउ सीऊ को बासा, सो जल धरनी अमर प्रगासा।**
**जेहि जल उपजल सकल शरीरा, सो जल भेद न जानु कबीरा।।**

**शब्दार्थ**—चात्रिक—चातक पक्षी जो स्वाति के जल का इच्छुक है, परम-तत्त्व, उपासक। पुकारै—जपै, बुलावे। सो—वह। जल—ब्रह्मतत्त्व। जेहि—ज़िस। जल—ब्रह्म। नाद—स्फोट, प्रकाश, शब्द अर्थात् शिष्य। बिंद—इच्छा, ज्ञान, क्रिया और वीर्य, सुपुत्र। खटकर्म—स्नान, संध्या, पूजा, तर्पण, जप,

होम, योगियों का षट्कर्म—धोती, नेति, वस्ती, नेउली, त्राटक, कपाल भाँति, ब्राह्मणों के षट्कर्म—यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह, स्मृति के अनुसार छह काम जिनके द्वारा आपत्काल में ब्राह्मण अपनी जीविका प्राप्त कर सकता है। उञ्च्छवृति (कटे हुए खेत में बालें बीनना) दान लेना, याचना करना, कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा से आपत्काल में ब्राह्मण अपनी जीवन रक्षा कर सकता है। ऐसा स्मृति ग्रंथों में ब्राह्मणों के लिए विधान है। उपाने–उत्पन्न किया। वासा–स्थान, निवास। अमर–आकाश। उपजल–उत्पन्न। सकल–सभी। भेद–रहस्य। कबीरा–कबीर साहब।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि पशु और मनुष्य में एक ही तत्त्व विराजमान है। इसलिए किसी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए और भगवान का नित्य नाम लेना चाहिए। अब यह कहा जा रहा है कि वह जो भगवान है मनुष्यों से पृथक नहीं है वह सबमें विराजमान है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे चातक रूपी साधक तू अपने से भिन्न प्रभु को कहाँ पुकार रहा है? क्या वह तेरे से दूर है? वह तो सम्पूर्ण चराचर जगत में व्याप्त है। संसार उस परमतत्त्व से कहीं रिक्त नहीं है। जिस परमतत्त्व से नाद-विंद अर्थात् शिष्य और पुत्र में कोई भेद नहीं है। केवल लौकिक सम्बन्ध में पुत्र है व शिष्य है परन्तु उभय की आत्मा परमतत्त्व है। उसमें कोई भेद नहीं है। दोनों एक तत्व हैं। जो तुम कहते हो कि षट्कर्म के अर्थात् इन सन्ध्या, तर्पण, स्नानादि के द्वारा वाह्य क्रियाओं से उसकी प्राप्ति कहा है तो यह तेरी भूल है। वेद का तात्पर्य सन्ध्या, तर्पण आदि में शुद्धि के लिये है कि जिससे अन्तःकरण की शुद्धि होगी, ऐसा कोई ज्ञान वेद नहीं उत्पन्न किया है जिससे परमतत्त्व तुमसे दूर हो। जितने भी प्रकार के षट्कर्म हैं सबका अभिप्राय अन्तःकरण की शुद्धि से है और यही वेद का तात्पर्य भी है।

चातक की मूर्खता को इंगित करते हुए कहते हैं कि जो तुम कहता है कि स्वाति जल मेरे से दूर है। यह तेरी हठवादिता पूर्णरूप से अप्रा-

माणिक है। क्योंकि सभी नक्षत्रों का जल-जल ही है उसमें कोई मौलिक भेद नहीं है। केवल थोड़ा सा भेद है वह भेद ऋतु के अनुसार ही है। जब वायुमंडल दूषित रहता है तब अश्लेषा आदि नक्षत्रों के जल दूषित होकर पृथ्वी पर गिरते हैं परन्तु जल के मूलतत्त्व में कोई अन्तर नहीं है। इसी प्रकार से साधक से कहा जा रहा है कि अन्तःकरण मलिन होने के कारण, तुझे हृदयस्थ तत्त्व के दर्शन नहीं हो पा रहे हैं। तू उसको पृथक मान रहा है। यह तेरी भूल है। क्योंकि जो चेतन तत्त्व है। वही जगत का मूल कारण है। बिना चेतन के सारा जगत निःसार है और चेतन ही मूलकारण है। उसी को ब्रह्म कहा जाता है उसी को आत्मा कहा जाता है और उपाधिभेद से वही ईश्वर और जीव भी है। उस जल स्वरूप ब्रह्म की जो जीव, शिव संज्ञाएँ हैं उन दोनों में वही निवास करता है। इसलिए चेतन से भिन्न कोई दूसरा तत्त्व नहीं है। उपाधि से वही नाना रूप धारण किया है एवं भास रहा है वह चेतन तत्त्व जल, थल, आकाश सभी में प्रकाश कर रहा है और उसी चेतन से सारे प्राणी उत्पन्न हुए हैं।

सद्गुरु कहते हैं कि मैं कबीर जलरूपी तत्त्व में कोई भेद नहीं मानता हूँ। अर्थात् वह अखिल ब्रह्माण्ड में एक ही तत्त्व विद्यमान है। अनेक शरीर होने से वह अनेक नहीं है। वह न ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है, न वैश्य है, न शूद्र है, न अन्त्यज है, न वह पशु है, न वह देव है, न दानव है। वह सबकी आत्मा है।

मैं कबीर उसको इसी रूप में समझा हूँ। जो मनुष्य उसको अपने से पृथक समझता है वह अपने को धोखा देता है। जैसे तालाब को छोड़कर मृग, मरीचिका की ओर जल समझकर दौड़ता है और वह जल से उतना ही दूर होता जाता है जितना वह जल से आगे बढ़ता है। इसी प्रकार से जो मनुष्य अपने हृदयस्थ परमतत्त्व को छोड़कर अन्य लोक लोकान्तरों में चक्कर काटता है वह उक्त मृग की भाँति ही प्रभु से दूर होते जाता है। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि प्रातः सायं एकान्त में

बैठकर मन को रोककर अपने अन्दर ही उस परमतत्व को खोजें। वह अवश्य मिलेगा। यह कबीर साहब का वचन है।

**टिप्पणी**—नाद बिन्दु—तंत्र ग्रन्थों के अनुसार नादबिंद की निम्न प्रकार की व्याख्या की जाती है परमतत्त्व की अभिव्यक्ति की मूल अव्यक्त ध्वनि के रूप में विद्यमान शक्ति को 'नाद' कहते हैं। वही शक्ति जब सृष्टि के लिए घनीभूत होती है, तब 'बिन्दु' कहलाती है। चैतन्य रूपी नाद से पहले बिन्दु की अभिव्यक्ति होती है। फिर वही सृष्टि के रूप में प्रसारित होती है। नाद, बिन्दु का सम्बन्ध कुण्डलिनी के जागरण से है। कुण्डलिनी के जागने पर स्फोट होता है उसी को नाद कहते हैं। नाद से प्रकाश होता है और प्रकाश का ही व्यक्त रूप स्वयं महाबिन्दु है। नाद के तीन भेद हैं महानाद, नादान्त और निरोधिनी। बिन्दु के भी तीन भेद होते हैं इच्छा, ज्ञान और क्रिया। इन्हीं को सूर्य, चन्द्र और अग्नि तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहते हैं। कुण्डलिनी जागृत होने पर ब्रह्म नाड़ी द्वारा षट् चक्रों में होती हुई सहस्रार में प्रवेश करती है। कुण्डलिनी का सहस्रार में पहुँचना ही योगी की चरमावस्था है।

## सबद् ७२

### आसुरीभाव प्रकरण

चलहु का टेढ़ो टेढ़ो टेढ़ो।
दसहूँ द्वार नरक भरि बूड़े, तू गंधी को बेरो॥
फूटे नैन हिदै नहिं सूझे, मति एकउ नहिं जानी।
काम क्रोध त्रिस्ना के माते, बूड़ि मुये बिनु पानी॥
जो जारे तन होय भस्म धुरि, गांडे क्रिम-किट खाई।
सीकर स्वान काग के भोजन, तन की एहि बड़ाई॥
चेति न देखु मुगुध नर बउरे, तुमसे काल न दूरी।
कोटिन जतन करो यह तन की, अंत अवस्था धूरी॥

**बालू के घरवा में बैठ रहो है, चेतत नहीं अयाना।**
**कहैं कबीर एक राम भजे बिनु, बूड़े बहुत सियाना॥**

**शब्दार्थ**—का-क्या। टेढ़ो-टेढ़ो-ऐंठ-ऐंठकर। दसहूँ-दस। नरक-दुर्गन्ध। तू-तुम। गंधी-गन्ध, वास, विशेष दुर्गन्ध। बेरो-बेरा, बेड़ा, खजाना, नाव। त्रिस्ना-तृष्णा, विशेष चाहना। माते-पागल हो गये, मतवाले। जारे-जलाने पर। तन-शरीर। धुरि-धूलि। गाड़े-भूमि के अन्दर छिपा देना। क्रिम-किट-जमीन के अन्दर का कोड़ा विशेष, सीकर-मूर्दाखोर सूकर, सियार विशेष। स्वान-कुत्ता। एहि-यही। चेति-सावधान हो। मुगुध मुग्ध, नीच, दुर्मति। बौरे-बावले, पगले। तूमते-तुमसे। अन्त अवस्था-वृद्धावस्था, मृत्यु काल में। धूरि-धूलि, नष्ट। बालू-बालुकण। घरवा-गृह। अयाना-अज्ञानी। सियाना-वाचक ज्ञानी।

**सम्बन्ध**—इसके पहले कहा गया कि जलस्वरूप परब्रह्म सर्वव्यापी है और पृथ्वी से आकाश तक सबको वही सत्ता स्फूर्ति दे रहा है और उसी से सारा संसार उत्पन्न होता है। इसलिए विवेकी पुरुष उसमें भेद नहीं मानते सबको समान समझते हैं। अब नीचे कहा जा रहा है कि उपर्युक्त विचार को न मानकर झूठी मान बड़ाई में, झूठे संसार के धन-जन में, मनुष्य भूलकर ऐंठनबाज हो गया है। इस शरीर में इतनी ममता कर लिया है कि वह नहीं समझ पा रहा है कि यह शरीर कितना गया गुजरा है।

**मूलार्थ**—अब सद्गुरु कहते हैं कि हे अनित्य से सम्बन्ध रखने वाले मनुष्यों! हे मंद बुद्धि रखने वाले समाज के लोगों! तू परमेश्वर को सर्वत्र न जानकर झूठी मोह माया की प्राप्ति से क्या टेढ़े-टेढ़े होकर चलते हो? इतना जो ऐंठ-ऐंठ कर चल रहा है सो तेरी यह ऐंठन बेकार है। क्योंकि तेरा यह जो शरीर मिला है। इसमें जो दस दरवाजे हैं और दसहूँ के द्वार पर नरक युक्त गन्दी वस्तुयें निकल रही हैं। अर्थात् तेरे दोनों कान, दोनों नेत्र, दोनों नासा छिद्र, गुदा, लिंग के छिद्र, नाभि के छिद्र, ये सबके सब नरक में डूबे हुए हैं अर्थात् दुर्गन्ध से परिपूर्ण हैं। अरे मूर्ख! तू तो दुर्गन्ध के खजाने ही

हो। तेरे दोनों नयन वाह्य वाले तो काम नहीं कर रहे हैं। हृदय वाले भी विवेक विचार दोनों फूट चुके हैं। तेरी बुद्धि से एक भी बात समझ में नहीं आ रही है। तेरी बुद्धि का कुछ पता नहीं चल पा रहा है कि तू क्या सोच रहा है। तेरे हृदय के नेत्रों के अभाव में तुझे कुछ दिखाई नहीं दे रहा है। हे पापात्मन्! तू तो रात-दिन काम क्रोध तृष्णा रूपी मद को पीकर मात गये हो। तू बिना पानी के ही संसार में डूब गये हो। तेरी कितनी बड़ी अज्ञानता है कि लोग जल में डूबकर मरते हैं परन्तु तुम बिना जल के ही झूठे संसार की मोह माया में डूब मरा। जिस तन पर तू इतना गौरव किया है, अभिमान किया है, वह तन प्राण छुटने पर एवं जलाने पर भस्म हो जाता है। इतने बारीक कण हो जाते हैं कि कुछ पता नहीं चलता कि तेरे अवयव कहाँ गये? जिस चतुर चिकनिथापन पर तू ऐंठकर चलता है उस शरीर को जला देने पर उसकी एक भी आकृति दिखाई नहीं देती। यह तो हिन्दुओं की बात हुई और जो अपने को विशुद्ध घोषित करते हैं कहते हैं कि हम इस्लाम धर्म के मानने वाले हैं हम बहुत पवित्र हैं जिस धर्म का मुसलमान लोग बहुत अभिमान करते हैं परन्तु प्राण छूटने पर उन्हें जब पृथ्वी में गाड़ दिया जाता है तो उनके तन को भी क्रिमी-किट खा जाते हैं। उन मुसलमानों की वह आकृति नहीं दिखाई देती जो दूसरे को मुख ऐंठते थे।

अरे मूर्ख! जिस तन का तू इतना घमंड करता है वह तनसियार, कुत्ता, काग का भोजन है मरणोपरान्त उपर्युक्त जन्तु नोच-नोच कर यहीं खाते हैं। तेरे इस तन की यही बड़ाई कहिये महिमा है। रे मूर्ख नीच उपर्युक्त बात देखकर भी तू चेत नहीं रहा है। रे पगले! तुमसे काल दूर नहीं है। जिस तन को तू अमर समझता है वह मृत्यु के पहुँच में है। यदि तू करोड़ों जतन इस तन को रखने के लिए करोगे तो भी अन्तकाल में इसको खाक होना ही है। इसकी धूलि होनी है यह किसी प्रकार बचने वाला नहीं है। अरे दुर्बुद्धि! तेरा यह जो शरीर है, तेरा यह जो घर है यह ईंट, सीमेंट, छड़, से नहीं बना है। यह ईंट पक्के गारा और लोहे से नहीं बना है जिसमें तू बैठा है अर्थात् जिसमें तू रहते हो। यह तेरा शरीर बालू का है इसको

ढहते अर्थात् नाश होते विलम्ब नहीं लगेगा और उस पर भी तू अज्ञानी अभी तक चेत नहीं रहा है। क्या कारण है ? मैं तो तेरे ही जैसे बहुतों को देखा है। जो बहुत बड़े सयाने बनते थे। बुद्धिमान बनते थे, पंडित बनते थे, धनी मनी बनते थे। वे सबके सब एक राम के भजन बिना इस भव-सागर में डूब मरे।

इसीलिए मैं कहूँगा कि सब कुछ छोड़कर राम का भजन कर, अन्यथा तेरी रक्षा करने वाला कोई नहीं है।

## सबद ७३

**फिरहु का फूले फूले फूले।**
**जब दस मास ऊर्ध मुख होते, सो दिन काहे के भूले ॥**
**जो मांखी सहते नहिं बिहुरे, सोचि-सोचि धन कीन्हा।**
**मूये पीछे लेहु-लेहु करे सभ, भूत रहनि कस दीन्हा ॥**
**देहरि लौं बर नारि संग है, आगे संग सुहेला।**
**म्रितक थान लौ संग खटोला, फिर पुनि हंस अकेला ॥**
**जारे देह भसम होइ जाई, गाड़े माटी खाई।**
**कांचे कुंभ उदक ज्यों भरिया, तन की इहै बड़ाई ॥**
**राम न रमसि मोह के माते, परेहु काल बस कूँवा।**
**कहैं कबीर नर आपु बंधायो, ज्यों नलनी भ्रम सूँवा ॥**

शब्दार्थ—फिरहु—घूमते, भ्रमण करते हुए। का—क्या। फूले-फूले-स्फूटन, गर्व करना, घमण्ड करना, इतराना, घूमना। ऊर्ध—ऊपर मुख। सो—वह। काहे—किसलिए। मांखी—मधुमक्खी। बिहुरे—भोग करना, बिहार करना। सहते—शहद, मधु। सोचि सोचि—चिन्तन, चुन चुन। मुये—मृत। भूत—प्रेत। लेहू—लेकर। रहनि—सदृश, समान, प्रकार। कस—कैसे, सीकड़ में जकड़ देना। देहरि—देहली, डेउढ़ी, घर का अन्तिम द्वार व दरवाजा। लौ—तक। वर—पति। नारी—स्त्री। सुहेला—सुहृद, इष्ट, मित्र, सखा, साथी। मृतकथान—श्मशानघाट व श्मशान स्थान। लौं—तक। खटोला—खटिया,

शव रखने की रंथी, टिकठी। फिर–पुनः, बाद में, पश्चात्। हंस–जीव, चेतन। जारे–जलाने पर। कांचे–कच्चे। कुंभ–घड़ा। उदक–जल। भरिया–भरा। रमसि–तन्मय, भजन। काल–समय, मृत्यु। कूंवा–कूप। नलिनी–कांपा, कम्पा, बांस की वह चरखी जिसके द्वारा बहेलिया लोग शुक को फँसाते हैं। सूंवा–शुक।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो ऐंठवाजो है वह व्यर्थ है। शरीर केवल अच्छे गुणों के होने से महत्व वाला होता है अन्यथा वृथा अभिमान करना दुःख का हेतु है। उसी प्रकार से अब नीचे कह रहे हैं कि व्यर्थ में मनुष्य उतान होकर चलता है छाती तानकर चलता है। क्योंकि शरीर की दशा बहुत नाजुक है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे मनुष्यों! तुम लोग किसलिए इतना फूलकर चल रहे हो। जिस धन जन स्त्री–कलत्र के अभिमान में तूं विचूर्ण हो गया है क्या तुझे पता है कि यह शरीर माता के गर्भाशय में कैसे था? रे दुर्मति! जब तू दस महीने तक माता के गर्भ में उल्टे टंगा था। तेरा मुख-मस्तिष्क नीचे रहा, पैर ऊपर था। जब माता के मल मूत्र गिरते थे तो तेरे मुख होकर गिरते थे। क्या तू वह दिन भूल गया? जब तुझे महान क्लेश होता था? जब तू बाहर निकलने के लिए परमेश्वर से विनती करता था कि मुझे इस नरक कुण्ड से निकाल दो। क्या उस दिन के क्लेश को तू भूल गया है? रे पापी! मक्खीचूस! जिस प्रकार से मधुमक्खियाँ मधु को इकट्ठा करतो हैं और उसे भोगने के लिए चुन-चुन कर सोच-सोचकर मधु रूपी धन संग्रह करती हैं परन्तु हे पापात्मन्! जब मधु का आखेटक आता है मधुमक्खियों को उड़ाकर सभी मधु ले जाता है। मधु मक्खियाँ केवल शोर मचाकर रह जाती हैं। उसी प्रकार से रे पापी! तू बहुत सा धन इकट्ठा करता है परन्तु भोग के पहले ही तुझे भगवान भास्कर के पुत्र यहाँ से उठा ले जायँगे। तब तेरे परिवार वाले हाय-हाय चिल्लाते हैं। हाय रे! हमारा पुत्र इतना धन कमाया, हमारा पति इतना धन कमाया, बिना भोगे ही चल बसा। इस प्रकार से मरने के पीछे

परिवार के लोग शोर मचाते हैं और आसक्ति के कारण मृतात्मा भूत होकर घर में ही निवास करता है अर्थात् उस धन को इतना कसकर पकड़ा है कि मरे पीछे कमाये हुए धन में ही उसका चित लगा रहता है। अरे हे पापी ! उतान होकर चलने वाले जिस शरीर को तू बहुत बड़ा बलवान समझता रहा। बहुत सुन्दर समझता रहा, जिसे तू शीशों में देखता था, अहर्निश जिसके पालन में लगा रहता था और अनेक प्रकार के कुकर्मों के द्वारा कमा कर परिवार वालों को देता रहा, जिस परिवार वाले स्वार्थवश उक्त शरीर को अपना सगा सम्बन्धी समझते थे। उस शरीर से जीवात्मा के निकल जाने पर उसके साथ कोई नहीं जाता। उसकी स्त्री जो उससे बहुत प्यार करती थी। जो प्राण पति कहती थी। वह भी उसके साथ सती नहीं हुई। वह स्त्री भी बहुत लोक लाज में पड़कर सब के साथ डेउढी व देहली तक गयी अर्थात् स्त्री पुरुष का साथ घर के मुख्य दरवाजे तक रहा। उसके बाद स्त्री घर में आ जाती है। पुनः श्मशान की ओर सुहेला कहिये इष्ट-मित्र, बन्धु-बांधव जाते हैं और जिस रन्थी पर या खटोले पर, मृतक ले जाया जाता है। वह भी श्मशान स्थान से आगे नहीं जाता है। तात्पर्य यह है कि सारे संसार के लोग कितना भी प्रिय हों, कितना भी किसी से सम्बन्ध हो, कितना भी अपना मानते हों, परन्तु श्मशान घाट से आगे कोई जाने वाला नहीं है।

फिर कहिये पश्चात् यह हंस स्वरूप जीवात्मा अकेले ही आगे परि-गमन करता है। रे मूर्खे ! रे अधमात्सन ! जिस देह में तू इतना तूफान मचाता था, इत्र फूलेल लगाता था। चोवा चंदन घिसता था अच्छे-अच्छे पुष्पों की माला पहनता था। वह शरीर मृत होने पर या जलाने पर भस्म हो जाता है और गाड़ देने पर उसे मिट्टी के जीव खा जाते हैं। यत्‌किंचित भी यह सत्य नहीं है। केवल स्वप्न का श्रृंगार है। जैसे कच्चे घड़े में पानी भर दिया जाय परन्तु पानी क्षण-दो क्षण से अधिक नहीं रह सकता है यह इतना नाजुक है; इतना दुर्बल है कि जरा सी भी बड़ी बीमारी आने पर हृदय गति रुक जाने पर शरीर से जुदा हो जाता

है। इसलिए हे दुर्बुद्धि ! इस तन की यही बड़ाई है। जिसको तुम रात-दिन पोसता है वह एक क्षण भी रहने वाला नहीं है। तूं संसार की मोह-माया में इतना फँस गया है, इतना मतवाला हो गया है कि तुझे कुछ परमार्थ नहीं दिखाई देता है और तूं राम-नाम में रमण भी नहीं कर पा रहा है। तूं परमतत्त्व में नहीं रम रहा है। अन्त में काल के अधीन होकर दुःख रूपी कूंवा में पड़ेगा।

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि इस मनुष्य को कोई बांधा नहीं है। यह अपने आप बंधन में पड़ा हुआ है जैसे नलनी वा बांस के कम्पा पर शुक आकर बैठ जाता है और वह चारों ओर घुमने लगती है जिसके कारण शक इतना भयभीत हो जाता है कि उड़ नहीं पांता है तब तक आखेटक आकर पकड़ लेता है। इसी प्रकार से संसार के मनुष्य झूठी मोह-माया में फँस गये हैं जब तक यह जीव सोचता है कि हम माया मोह से विरत हो जाँयगे तब तक काल भगवान आकर पकड़ ले जाते हैं। इसलिए मैं कबीर कहता हूँ कि हे संसार के मनुष्य ! इस संसार की मोह-माया से परे होकर राम-नाम का जप करो और मिथ्या अभिमान न करो।

## सबद ७४

### कुयोगी प्रकरण

**ऐसो जोगिया बदकरमी, जाके गगन अकास न धरनी।**
**हाथ न वाके पांव न वाके, रूप न वाके रेखा॥**
**बिना हाट हटवाई लावै, करे बेयाई लेखा।**
**करम न वाके धरम न वाके, जोग न वाके जुगुती॥**
**सींगी पत्र किछउ नहिं वाके, काहे को मांगै भुगुती।**
**मैं तोहि जाना तैं मोहि जाना, मैं तोंहि मांहि समाना॥**
**उतपति परलै एकहु न होते, तब कहु कवन ब्रह्म को ध्यान।**
**जोगी आनि येक ठाढ़ कियो है, राम रहा भरपूरी॥**
**बोखद मूल किछउ नहिं वाके, राम सजीवन मूरी।**

**नटवट बाजा पेखनि पेखै, बाजीगर की बाजी ॥**
**कहैं कबीर सुनो हो सन्तो, भई सो राज बेराजी ।**

**शब्दार्थ**—ऐसो–इस प्रकार का। जोगिया–योगी। बदकरमी–दुष्कर्मी, कुकर्मी। जाके–जिसके। गगन–आकाश, त्रिकुटी संगम। आकास–अन्तरिक्ष, सहस्रार। धरनी–पृथ्वी, मूलाधार। हाथ–कर, ग्रहण शक्ति। वाके–उसके। पाँव–पैर, विकास बुद्धि, आगे बढ़ने की कला, साधना की ओर अग्रसर। रूप–स्वरूप, सिद्धान्त। रेखा–वैराग्य के चिह्न। हाट–धार्मिक बुद्धि, बाजार। हटवाई–क्रय-विक्रय वाला, सामान बेचने वाला, धार्मिक क्रय-विक्रय। बेयाई–बाया, स्वामी का अनाज, पानी मांपने वाला, ईश्वर विषयक उपदेश, वितरक। करम–कर्म, षट्कर्म। धरम–धर्म, धार्मिक विषय की जानकारी। जोग–योग समाधि लगाने की प्रक्रिया। जुगुती–उपाय। सींगी–एक प्रकार का बाजा जो हिरण के सींग का बनता है जिसको नाथयोगी रखते हैं, बोल-चाल की भाषा। पत्र–भिक्षा माँगने का पात्र, खप्पर, शून्य हृदय, जल, नारियल का आधा कटा हुआ भोजन करने का पात्र। किछउ–कुछ भी। माँगे–प्रार्थना। भुगुती–आत्म, सुखानुभूति, भोग पदार्थ। मैं–जीव। तोहि–ब्रह्म। तै–तुम, ब्रह्म। मोहि–हम जीव। मांहि–मध्य में। उतपति परलै–जन्म, विनाश। आनि–लाकर। ठाढ़–आयोजित किया। वोखद–औषध, आत्मज्ञान। मूल–आत्मज्ञान। संजीवनी मूरी संजीवनी बूटी। भरपूरि–सम्पूर्ण, व्यापक। नटवर–नट के समान। बेराजी–बिना राज का, सत्ताच्युत।

**सम्बन्ध**—इसके पहिले शरीर की अनित्यता दिखलाई गयी और कहा गया कि क्षणिक जीवन में अभिमान न करो और जीवन के मूल्य को समझो। अब नीचे कहा जा रहा है कि कितना भी कहा जाय लेकिन लोग कुमार्ग का परित्याग करने में असमर्थ दीखते हैं और सदा दुष्कृत्य में ही लगे रहते हैं। चाहे वे साधु हो, चाहे वे गृहस्थ हों या योगी हों। जबतक कुत्सित कर्मों का परित्याग नहीं करेंगे, तबतक सुख के दर्शन भी नहीं हो सकते हैं।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि गृहस्थ लोग तो अज्ञान में पड़े ही हैं परन्तु जो समाज के अगुआ हैं जो धर्म के नेता हैं वे योगीजन भी जो धर्म का चोला पहने हुए हैं वे भी नीच कर्म में लगे हुए हैं। वेशाडम्बर तो बहुत है। देखने से तो लगते हैं कि बहुत बड़े सिद्ध हैं। महराज है। परन्तु निरीक्षण करने पर एक भी योगी के लक्षण नहीं मिल रहे हैं। गगन स्वरूप त्रिकुटी प्रदेश में भी वे चढ़ने में असमर्थ हैं। आकाश कहिये अन्तरिक्ष जिसको सहस्रार योगियों के यहाँ कहा गया है, वहाँ भी इनकी पहुँच नहीं है। तथा मूलाधार की भी गति ये नहीं जानते हैं। जहाँ से ज्ञान शक्ति का जागरण होता है। क्योंकि योगी के लिए यह आवश्यक है कि वह त्रिकुटी संधि में ध्यान लगावे। पश्चात् सहस्रार में स्थित होकर मूलाधार से प्राण शक्ति को ऊपर उठाकर जागृत करे। परन्तु इस बदकर्मी के पास हाथ स्वरूप ग्रहण शक्ति भी नहीं है और न ही इसके पास योग मार्ग में पहुँचने के लिये विकास बुद्धि ही है। और न तो स्वरूप सिद्धान्त ही इसके पास है और न वैराग्य के ही कोई चिह्न दिखाई दे रहे हैं। उक्त योगी के पास धार्मिक बुद्धि भी नहीं है पर धर्म बेचने के लिए व धर्म का प्रचार करने के लिए हाट लगा रखा है और हटवाई लावे कहिये लोगों में घूम-घूमकर धर्म का क्रय-विक्रय भी कर रहा है और उस पर भी बेयाई कर रहा है अर्थात् बया का काम कर रहा है। जैसे-लोक में 'बया' गृह स्वामी का अनाज-पानी तौलता है और बेचता है उसी प्रकार से बदकर्मी योगी भी वेद-शास्त्रों के ज्ञान को अर्थ का माध्यम बनाये हुए हैं। उस योगी के पास न सत्कर्म है और न सत्यधर्म ही उसके पास है। योग कहिये समाधि की उक्ति भी नहीं जानता है कि समाधि कैसे लगायी जाती है? परन्तु लोक में अपने को समाधिस्थ होने का डंका पीटता है। सींगी कहिये वह बाजा जिसको वह बजाता है अर्थात् नाथपंथी योगी मृग शृंग को बाजा बनाकर पूजा आदि के समय बजाते हैं। भाव यह कि उक्त योगी की भाषा भी उत्तम नहीं है। पात्र रूपी हृदय भी उसका शून्य है, जिसमें वह

उत्तम ज्ञान को नहीं रख पाता है। जब हृदय शून्य है, हृदय में पात्रता नहीं है तो वह परमेश्वर से अथवा सन्त-सद्गुरुओं से किस सुखभोग को माँग सकता है। पात्रहीनता में कुछ मिलता नहीं है। मनुष्य का सुधार तो तभी हो सकता है। जब वह परमेश्वर को जानता हो। जब मनुष्य परमेश्वर को जानता है तब परमेश्वर भी उसको जानता है। उपासना करते-करते साधक परमेश्वर रूपी परमतत्त्व में समाविष्ट हो जाता है। जब परमतत्त्व की प्राप्ति हो जाती है। तब उक्त साधक के लिए न उत्पत्ति रहती है न प्रलय होता है अर्थात् उसका न जन्म होता है न मरण होता है जब साधक ईश्वर स्थिति हो जाता है। स्वरूप की पहचान कर लेता है तब वह किस ब्रह्म का ध्यान कर सकता है? ध्यान तो द्वैत में होता है। जब जीव ब्रह्म को एकता हो गयी। तब ध्यान की आवश्यकता नहीं रहती। ध्यानादि की कला उक्त प्रकार के योगी लोग आनकर (लाकर) खड़ा किये हैं। तात्पर्य यह है कि योगी सदैव द्वैत की उपासना बताता है जो समीचीन नहीं है।

मैं तो कहता हूँ कि जो राम तत्त्व है वह अखिल ब्रह्माण्ड में भरिपूर है। जो उस राम की प्राप्ति कर लेता है उसके लिए दूसरी औषध मूल कहिये जड़ी-बूटी अर्थात् उपासना कर्म की आवश्यकता नहीं रहती है। उस उत्तम जिज्ञासु के लिए राम संजीवनी ही मूरी का काम करती है अन्य सांसारिक मूल औषधियाँ निरर्थक होती हैं। केवल राम की प्राप्ति से ही सब कुछ पूर्ण हो जाता है और राम की प्राप्ति वाला जो पुरुष है वह संसार को उसी प्रकार से असत्य देखता है जिस प्रकार से नटवर का बाजा बाजता है। पेखनी कहिये जो नट के द्वारा खेल-तमाशा उत्पन्न किया जाता है। उसी में शिर व पैर काटा जाता है, छूरा भोंका जाता है इत्यादि प्रकार के खेल तमाशे को 'नट' लोग दिखाते हैं परन्तु समझदार व्यक्ति सब समझता है कि यह सब नट की माया है। इसी प्रकार से परम तत्त्व की प्राप्ति करने वाला पुरुष समझता है कि यह संसार प्रभु रूपी बाजीगर की बाजी कहिये खेल है वह इसमें कभी आसक्त नहीं होता है।

सद्गुरु कहते हैं कि मैं कबीर कहता हूँ कि हे सन्त जन ! सुन लीजिए जो सत्कर्म से वंचित रहेगा और इस संसार की मोह-माया में लिपटा रहेगा। उसका मानव तन रूपी राज-विराजी कहिये छूट जायेगा। राज्य सत्ता से गिर जायेगा। इसलिए चेत करना चाहिए।

**आशय**—जो साधु एवं योगी का रूप बनाये हुए हैं और लोगों को ठगने के लिए वेश का सहारा ले रहे हैं ऐसे लोग किसी ओर के नहीं होते, न त्रिकुटी के ध्यान का आनन्द पाते हैं, न वे सहस्रार में ही पहुँच सकते हैं और न मूलाधार स्थित कुण्डलिनी को ही जगा सकते हैं। उनमें सहज शक्ति का अभाव होता है और योग मार्ग में चलने के लिए बुद्धि भी नहीं होती और न उसमें अध्यात्म के लक्षण ही दिखाई देते और न अन्तःकरण जो उनका शुद्ध स्वरूप होना चाहिए था वह भी नहीं दिखाई देता है। धार्मिक न होने पर भी धर्म का क्रय-विक्रय करते हैं और गुरु मंत्र को बेचकर पैसा भी ऐंठते हैं। न उनके पास कर्म एवं धर्म ही होता है योग युक्ति भी उनके पास नहीं होती, पात्रता भी नहीं होती, सिंगी स्वरूप वाणी भी उनकी विभत्स निकलती है। ये झूठो सिद्धाई के बल पर लोगों को गाली गल्लम् भी देते हैं। भला ऐसे लोगों से किस सुख की आशा की जाय, किस आनन्द की आशा की जाय, कल्याण तो तब होगा जब मैं कहिये यह जीव तोहिं कहिये परमतत्त्व को जान जाय। तभी परमतत्त्व भी मुझे जान सकता है। अर्थात् उभय में आकर्षण हो सकता है। जब यह जीव परमतत्त्व में समाहित हो जाता है। तब यह जन्म-मरण से परे हो जाता है। तब इसे पृथक्‌ इष्ट के ध्यान की आवश्यकता नहीं होतो। इष्ट-पृथकता तो बद्कर्मी योगियों ने लाकर खड़ा किया है। मेरे लिए परमेश्वर के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है। वही सब स्थानों में विराजमान है। उसकी प्राप्ति जो भक्त कर लिया है उसके लिए जड़ी-बूटी स्वरूप दूसरे अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं है। उसके लिए राम संजीवन ही मूरी है वह साधक पुरुष राम से भिन्न नहीं होता और संसार को नट के खेल के समान समझता है और यह समझता है कि यह नट

राज भगवान को लीला है। हे सन्त जन ! आप लोगों को श्रवण करना चाहिए कि जो इस जीवन में प्रभु प्राप्ति नहीं कर सकेगा। वह जन्म-जन्मान्तर के लिए मानव तन रूपी राज्य से वहिष्कृत कर दिया जायेगा। इसलिए सब कुछ त्याग कर कल्याणकारक मार्ग का अनुशरण करना चाहिए।

## सबद ७५

### निर्भेद प्रकरण

ऐसो भरम बिगुरचनि भारी।
बेद कितेब दीन अउ दोज़ख, को पुर्खा को नारी॥
माटी का घट साज बनाया, नादे विंद समाना।
घट बिनसे का नाम धरहुगे, अहमक खोज भुलाना॥
एकै तुचा हाड़ मल मूत्रा, एक रिधुर एक गूदा।
एक बूंद सो सिस्टि रची है, को ब्राह्मन को सूद्रा॥
रजोगुन ब्रह्मा तमोगुन संकर, सतोगुनो हरि होई।
कहैं कबीर राम रमि रहिये, हिन्दू तुरक न कोई॥

**शब्दार्थ**—ऐसो–इस प्रकार का। बिगुरचनि–बिगुचन, अझुराहट, अड़चन, किंकर्तव्य विमूढ़ता, असमंजस, कठिनाई एवं दिक्कत। कितेब–किताब, कुरान। दोज़ख–नरक। पुर्खा–पुरुष। साज–सामान। घट–घड़ा, शरीर। नादे–नाद, शिष्य, शब्द, आकाश, अव्यक्त शब्द, जिसका ठीक विवेचन न किया जा सके, अनाहदनाद, भैरा आदिक शब्द, हठयोगियों का एक पारिभाषिक शब्द। नाद–बिंद जाके घट जरे। बिन्दु–वीर्य वा शक्ति जो अंगुष्ठ मात्र की होती है जो मूलतत्त्व के रूप में भी मानी जाती है। जिसके द्वारा समस्त संसार का सर्जन एवं प्रसार होता है उक्त व्याख्या आगम शास्त्र के अनुसार की गई है। दूसरे अर्थ में नाद माने शिष्य बिन्दु माने पुत्र। अहमक–मूर्ख, अज्ञानी। भूलाना–भ्रमित होना, विस्मृत हुआ। तुचा–त्वचा, चमड़ा। रिधुर–रक्त। गुदा–गुह्य मल द्वार। ब्राह्मन–ब्राह्मण। सूद्रा–शूद्र।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि वेशधारी योगी किसी काम का नहीं होता है। वह अपने को भी धोखा देता है और दूसरे को भी धोखा में डालता है परन्तु इतनी कठिन आसक्ति है कि मनुष्य सहज में बुराईयों को छोड़ नहीं पाता है। नीचे कहा जा रहा है कि कुत्सित स्वभाव को त्यागने में बड़ी अड़चनें आती हैं।

**मूलार्थ**—मनुष्यों में इस प्रकार का भ्रम छा गया है कि वह कुछ सोचने समझने में असमर्थ है। भ्रम बड़ा भयावह होता है, भ्रम में पड़ जाने पर मनुष्य के स्वभाव में विगुरचन उत्पन्न हो जाती है वह किं-कर्तव्य की विमूढ़ता में पड़कर कुछ भी नहीं कर पाता है।

सद्गुरु कहते हैं कि हे भाई ! भ्रम का परित्याग करो यह भ्रम निः-तत्व है। तुम्हें अज्ञान के कारण हुआ है। तुम्हें विचारना चाहिए कि वेद और कुरान में दीन कहिये धर्म की बात कही गयी है और यह भी कहा गया है कि जो धर्म का पालन नहीं करता है वह नरक, दोज़ख में जायेगा। हे भाई ! जो बुरा कर्म नहीं करेगा, न वह नरक में जायेगा, न वह दोज़ख में जायेगा जो यह जान जायेगा कि स्त्री, पुरुष एवं दीन-दोज़ख में एक ही तत्त्व विराजमान है। यह पंचतत्त्व रूपी मिट्टी का बनाया हुआ शरीर रूपी घट और इसके तमाम हाथ-पैर साज-समान बनाये गये हैं ? पाँच तत्त्व से भिन्न एक भी नहीं हैं परन्तु इसके अन्दर रहने वाला चेतन तत्त्व एक ही है वह योगियों के अनाहत-नाद में भी है और बिंदु रूप शक्ति में भी शक्तिमान है तथा लौकिक अर्थ में शिष्य और पुत्र में भी वही समाया हुआ है। भला घट रूपी शरीर के नाश होने पर उसका क्या नाम धरोगे ? वह दोनों नाम रूपों से भिन्न है मूर्ख मनुष्य भ्रम में पड़कर जाति-पाँति की खोज करते फिरता है और ऊँच-नीच का बखेड़ा खड़ा करता है मैं तो कहता हूँ कि हे संसार के मनुष्यों ! यह वर्णाश्रम रूपी व्यवस्था बिल्कुल निरर्थक है। क्योंकि पृथ्वी के समूचे मनुष्यों की त्वचा एक सी है। अर्थात् सबके स्पर्श होने पर शीतोष्ण का ज्ञान होता है। इसी प्रकार से अस्थि स्थान भी एक ही है और मल-मूत्र के

स्थान भी एक ही है। एक ही रुधिर सब में विराजमान है और गुदा भी जिसके द्वारा मल का त्याग होता है, सबके साथ लगा हुआ है। रे अज्ञानी मनुष्य ! एक ही माता-पिता के बिन्दु से सारे मानव एवं प्राणियों की सृष्टि रची गयी है। भला जब सब एक ही ब्रह्मा एवं आदम की संतान हैं तो उनमें कौन ब्राह्मण है, कौन शूद्र है, कौन ऊँच है, कौन नीच है? जो तुम कहता है कि रजोगुण प्रधान ब्रह्मा हैं, तमोगुण प्रधान शंकर हैं और सत्त्वगुण प्रधान श्रीहरि हैं। अर्थात् जो तुम्हारी धारणा है सत्त्वगुण प्रधान ब्राह्मण होता है, रजोगुण प्रधान क्षत्रिय होता है और रज तम गुण प्रधान वैश्य होता है और विशेष तम गुण प्रधान शूद्र होता है। यह भी तेरी धारणा गलत है क्योंकि ब्राह्मणों में भी जो तामस देखा जाता है और शूद्रों में सत्त्वगुण देखा जाता है इस प्रकार से वैश्य और क्षत्रियों में भी सब गुण देखे जाते हैं। इसलिए तेरे ये सब कथन प्रलाप मात्र हैं इसमें कोई सत्यता नहीं है।

हाँ यह बात हो सकती है कि सत्त्वगुण प्रधान ही ब्राह्मण हो सकता है रजोगुण प्रधान ही क्षत्रिय हो सकता है और रज, तम प्रधान ही वैश्य हो सकता है और विशेष तम ही प्रधान शूद्र हो सकता है। यह नियम पूरे मनुष्यों में लागू होता है चाहे वह किसी देश का मनुष्य हो, चाहे किसी जाति का प्राणी हो, सब में सब गुण पाये जाते हैं इसलिए मैं कबीर कहता हूँ कि उपर्युक्त सब बखेड़ा छोड़कर राम-नाम में रमि रहो, न कोई हिन्दू है, न कोई तुरुक है सब के सब मनुष्य हैं सब इन्सान हैं किसी के साथ राग-द्वेष न करो।

**आशय**—भगवान की सृष्टि में जो भेद की भित्ति खड़ी की गयी है वह प्रभु प्राप्ति में बहुत बड़ी बाधा है जितने प्रकार के हिन्दू तुरुक मनुष्यों के भेद हैं। वे सब मानव कृत हैं और वेद एवं कुरान के जो उपदेश हैं वे मनुष्यों को सुधारने के लिए हैं। वे सही बात पर चलने के लिए ही मनुष्यों की ओर इशारा करते हैं, मनुष्य सब एक हैं, सब में आत्मा समान रूप से विराजमान है। चाहे वह स्त्री हो, चाहे वह पुरुष हो, यह जो शरीर है सो माटी का साज समान है। चाहे वह चेला हो, चाहे वह पुत्र हो

केवल व्यवहार में ही दोनों का भेद है परन्तु शरीर के न रहने पर उसका न कोई नाम है न कोई ठांव है। मूर्ख मनुष्य अकारण भूल में पड़कर नाम-गाँव खोजते फिरता है। क्योंकि मनुष्यों में कोई भेद नहीं है। पूरे मानव जाति का जो अवयव है जो इन्द्रियाँ हैं वे सब एक सी हैं। रक्त मांस भी एक सा है। सब में से दुर्गन्ध आती है। एक ही मूल तत्त्व से सब बने हैं ? उसमें न कोई ब्राह्मण है, न कोई शूद्र है। सारे मनुष्य तीनों गुणों से आवृत हैं। इसलिए हिन्दू तुरुक का बखेड़ा छोड़कर परमतत्त्व की उपासना करनी चाहिए नाम रूप सब मिथ्या है।

## सबद ७६

### भ्रमभेद प्रकरण

**आपन पौ आपहिं बिसरयो।**
**जैसे स्वान कांच मन्दिल मा, भरमिति भूंकि मरयो॥**
**ज्यों केहरि बपु निरखि कूप जल, प्रतिमा देखि परयो।**
**वैसेहि गज फटिक सिला मो, दसनन आनि अरयो॥**
**मरकट मूठि स्वाद नहिं बिछुरै, घर-घर रटत फिरो।**
**कहैं कबीर नलनी के सुगना, तोंहि कवने पकरो॥**

**शब्दार्थ**—आपन–निज, स्व। पौ–पद, निज स्वरूप। आपहिं–अपने आप। बिसर्यो–विस्मृत हुए। स्वान–कुत्ता। कांच–शीशा। मन्दिल-मन्दिर, भवन। मा–में। भरमित–भ्रमवश। केहरि–सिंह। बपु–शरीर। निरखि–देखकर। कूप–कुआँ। प्रतिमा–प्रतिछांही। गज–हस्ती। वैसेहि-उसी प्रकार से। फटिक–स्फटिक पत्थर जिसमें अपने शरीर की आकृति दिखलाई देती है। सिला–शिला कहिये पत्थर। दसनन–दांतो। आनि-आकर। मरकट–बन्दर। मूठि–मुष्ठि। बिछुरै–छोड़े। नलनी–बाँस का कम्पा, पक्षियों के फंसाने का यंत्र। सुगना–शुक।

**सम्बन्ध**—इससे पहले कहा गया है कि मनुष्य भ्रमवश निरन्तर निवास करने वाले परमतत्त्व को भूल गया है। केवल गोत्र और जाति के

अभिमान में दीन-धर्म के अभिमान में दोज़ख की आग में पड़कर परेशान व जल रहा है और अशान्त हो रहा है जब कि सभी सृष्टि परमतत्त्व से आवृत है।

**मूलार्थ**—अब नीचे कहा जा रहा है कि इसको कोई भूल में नहीं डाला है। यह जीव स्वयं स्वस्वरूप राम को भूल गया है। क्योंकि स्वपद जो आत्मतत्त्व है जो निज अपना स्वरूप है उसको छोड़कर व उसका परित्याग कर यह अज्ञानी मनुष्य जो मिथ्या है जो कभी सत्य होने वाला नहीं है जो अपने द्वारा उत्पन्न किया गया है जो अनित्य है उसी मोह-माया में विस्मृत हो गया है। जिस प्रकार से शीशे के गृह में कुत्ता प्रवेश कर जाता है जिसके देखने पर शीशे के उस पार दूसरा कुत्ता दिखाई देता है। जो उसकी निजी परछाईं है। उसको दूसरा कुत्ता समझकर घर वाला कुत्ता भूंक-भूंककर मर जाता है। इसी प्रकार से जैसे सिंह भी अपने शरीर का प्रतिरूप देखकर अपने से भिन्न दूसरा जानकर कुएँ में कूद पड़ता है और अपनी जान दे देता है।

इसी प्रकार से जैसे मस्त हस्ती पर्वत मालाओं के अन्दर स्फटिक पत्थरों को देखकर अपने प्रतिरूप में दाँतों को भिड़ा देता है, युद्ध करने लगता है। उपरान्त भ्रमित होकर मर जाता है। इसी प्रकार जैसे बन्दर स्वाद वश सांकरे घड़े के मुख में भूंजा निकालने के लिए मुट्ठी बाँध लेता है और निकालने पर भी नहीं निकलता है पश्चात् कलंदर आकर पकड़ लेता है और प्रति द्वार पर बन्दर को घुमाता है और उसके द्वारा भीख मंगवाता है।

तात्पर्य यह है कि यह मनुष्य समझता है कि मुझे कोई पकड़ लिया है। मुझे माया बाँधे हुए है परन्तु सब मिथ्या है इसको कोई पकड़े हुए नहीं हैं तुच्छ स्वार्थों के कारण संसार में बँधा हुआ है। सद्गुरु कहते हैं कि मैं कबीर कहता हूँ कि यह जीव भ्रम वश वैसे ही फँसा है जैसे 'नलनी' अर्थात् बांस के कम्पा पर सुग्गा आकर बैठ जाता है और कम्पा नीचे का ऊपर हो जाता है शुक समझता है कि मुझे नलनी पकड़ ली है परन्तु यह सब

भ्रम है। गुरु महाराज कहते हैं तुझको कौन पकड़ सकता है अर्थात् तुझे कोई नहीं पकड़ा है। तु स्वयं अपने आप बन्धन में फँस गया है।

**आशय**—उक्त पद का भाव यह है कि प्रत्यक्चेतन आत्मा जो है वही मूलतत्त्व है। चेतन से परे कोई सत्ता नहीं है इस वस्तु को सभी लोग स्वीकारते हैं। चाहे वे अद्वैतवादी हो। चाहे वे विशिष्टाद्वैतवादी हो, चाहे वे द्वैतवादी हो सबके सब चेतन को स्वीकार करते हैं। इसलिए चेतन से परे सब अचेतन है। यदि चेतन समझ जाय कि मैं चेतन हूँ। मैं जन्म-मरण से परे हूँ। मुझमें दुःख-सुख नहीं होते हैं। हम शोक-सन्ताप से परे हैं। क्षुधा-पिपासा मेरा धर्म नहीं है और काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अशौच से मैं परे हूँ। तो उसको किसी की भी उपासना की जरूरत नहीं है और जो चेतन को छोड़कर अचेतन वस्तु की उपासना करता है और उसी में लगा रहता है। तो पद के अनुसार अचेतन वस्तु चेतन का प्रतिरूप है जो अज्ञानरूपी बन्धन में पड़ने के कारण दूसरा दृष्टिगोचर होता है। यह जीवात्मा अचेतन तत्त्व में फँस गया है और उसी अचेतन तत्त्व से संघर्ष कर रहा है इसको उसी प्रकार से मिथ्या भ्रम हो गया है जिस प्रकार से कुत्ता, सिंह, हस्ती, बन्दर सब भ्रम वश अज्ञान के कार्य करते हैं। जैसे सुग्गा बिना कारण ही बँधा हुआ है। इसी प्रकार से यह चेतन आत्मा अपने आप बँधा हुआ है। इसको कोई बांधने वाला नहीं है। गुरु महराज कहते हैं कि हे चेतनदेव ! तू सबका आदि है और सबका अन्त है सत चित् आनन्दघन है। तू देश काल से परे है सबसे सबल तू ही है। तेरे समान कोई दूसरी वस्तु नहीं है। इसलिए भला तूझे कौन पकड़ सकता है। तुम चेतो, जागो अपने को पहचानो।

**टिप्पणी**—नलनी का अर्थ कमलनाल भी होता है अर्थात् कमलिनी को भी नलिनी कहते हैं और नलिनी बांस के उस यंत्र को भी कहते हैं जिसके द्वारा ब्याधा लोग पक्षियों को फँसाते हैं। जिसको लोक में 'कम्पा' कहते हैं।

## सबद ७७

### आत्मावलम्बन प्रकरण

**आपन आस कीजै बहुतेरा, काहु न मरम पावल हरिकेरा।**
**इन्द्री कहां करे विसरामा, सो कहां गये जो कहत होते रामा ।।**
**सो कहां गये जो होत सयाना, होय म्रितुक वहि पदहिं समाना।**
**रामानंद रामरस माते, कहैं कबीर हम कहि-कहि थाके ।।**

**शब्दार्थ**—आपन–निजी। आस–भरोसा, पुरुषार्थ। कीजै–करो। बहुतेरा–बहुत लोग, अधिक। काहु–कोई। मरम–रहस्य, भेद। पावल–पाया। हरिकेरा–ईश्वर का। इंद्री–इन्द्रियाँ, मन। विसरामा–विश्राम, स्थित। सो-वह। रामा–राम। सयाना–श्रेष्ठ लोग, शास्त्रज्ञ पंडित। म्रितुक–अभिमान रहित। वहि–उसी। पदहिं–ब्रह्म के रूप में। रामानंद–राम में आनन्द लेने वाले, स्वामी रामानन्द। रामरस–राम जप से जो आनन्द होता है। माते–तन्मय, मतवाले। थाके–हार गये स्थिर हो गये।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा जा चुका है कि अपना जो स्वरूप है उसको मनुष्य भूल गया है और मिथ्या भ्रम में पड़कर अनेक स्थानों की ठोकर खाते फिरता है और समझता है कि हमको कोई मुक्त कर देगा अर्थात् हमारे दुःख की निवृत्ति किसी के द्वारा हो जायेगी परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि इसकी आशा छोड़कर अपने पर विश्वास कर।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे मनुष्यों अपने पुरुषार्थ की आशा करो क्योंकि बिना पुरुषार्थ के किसी वस्तु की प्राप्ति नहीं कर सकते हो जो तू मिथ्या भ्रम में नलनी के सुग्गा की तरह फँसे हो व अपने कुछ पुरुषार्थ नहीं कर रहे हो सोच रहे हो कि हमें कोई इस मोह से छुड़ा देगा पर तेरी यह मिथ्या कल्पना है तू अपने अधिक पुरुषार्थ के द्वारा ही बन्धन से मुक्त हो सकते हो। यदि तू इस संसार की जो तेरे से भिन्न वस्तुएँ हैं व लोग हैं जैसे स्त्री-पुत्र हैं उनसे कोई सुख की प्राप्ति की इच्छा कर रहे हो यह तेरा भ्रम मात्र है क्योंकि स्त्री पुत्र जनित जो सुख है

वह दुःख का हेतु है इसलिए जो तू परमानन्द स्वरूप है उसी की प्राप्ति को इच्छा कर जो पुरुषार्थं नहीं करते वे भगवान के परम रहस्य को नहीं जान पाते क्योंकि पुरुषार्थंहीन कोई भी मनुष्य ईश्वर की प्राप्ति नहीं कर पाया क्योंकि जब तक मन की गति को नहीं समझा जायेगा मन कहाँ पर निवास कर रहा है अर्थात् जिसका मन विषय विकार में भ्रमण करता है वे मात्र राम कहने से भव-बन्धन से क्या छूट जायेंगे ? यह कल्पना करना उत्तम नहीं है। कोई भी बुद्धिमान सयान पुरुष हो परन्तु जब तक उसकी इन्द्रिय काबू में नहीं हैं वह नहीं कह सकता कि मैं कहाँ जाऊँगा ? मेरी क्या गति होगी ? उस परम पद की प्राप्ति वहीं व्यक्ति कर सकता है जो मृतक के समान निरभिमानी हो जाय, संसार को भूल जाय। वही स्वस्वरूप ईश्वर में समा सकता है निर्विषय होकर राम में निमग्न हो जाता है अर्थात् तन्मय होकर राम नाम जपता है वही राम रूपी परम रस पीकर मतवाला हो जाता है। वही व्यक्ति परम मस्ती में आनन्द लेते रहता है। कबीर साहब कहते हैं कि मैं कबीर लोगों को कह-कह करके थक गया कि भाई तुम भी राम नाम में मात जाओ, भगवान का भजन करो परन्तु किसी ने मेरी बात न सुनी। इसलिए संसार का दुःख छुड़ाना कठिन है।

**आशय**—आत्म जिज्ञासु व्यक्ति को चाहिए कि अधिक भरोसा अपने बाहु बल का करे। क्योंकि जो पुरुषार्थंहीन हैं यह नहीं जानते कि ईश्वर मुझे कौन दण्ड देगा, अर्थात् ईश्वर मुझे किस योनि में ले जायेगा जिनको यह पता नहीं है कि मेरी इन्द्रियाँ कहाँ जा रही हैं ऊपर से तो राम नाम कहते हैं और इन्द्रियाँ विषय-सुख चाहती हैं शास्त्र आदि पढ़कर बड़ी-बड़ी डींग हाँकते हैं अपने को बहुत सयाना कहते हैं परन्तु वे भी हरि के भेद को नहीं जानते कि हरि मुझे कौन दण्ड देगा और कहाँ मुझे ले जायेगा। मैं तो कहता हूँ कि मनुष्यों को झूठे अहंकार को एवं मोह ममता को छोड़ देना चाहिए तभी उस परम पद की प्राप्ति कर सकता है। क्योंकि जो समाहित होकर राम में निमग्न होता है वही राम सुख प्राप्ति कर आनन्द लेता है। मैं राम में उन्मत्त होने के लिए कहकर थक गया परन्तु विषय

वासना के चाहने वाले प्राणी मेरी बात पर ध्यान नहीं दिये। क्योंकि मेरे गुरु रामानन्द स्वामी भी उसी राम में विशुद्ध हो गये थे जो राम सबके हृदय में विराजमान है।

## सबद ७८

### मायासंधि दर्शन प्रकरण

**अब हम जानिआ हो, हरि बाजी की खेल।**
**डंक बजाय दिखाय तमासा, बहुरि लेत सकेल॥**
**हरि बाजी सुर नर मुनि जहंड़े, माया चाटक लाया।**
**घर में डारि सकल भरमाया, ह्रिदया ग्यान न आया॥**
**बाजी झूठ बाजीगर सांचा, साधुन की मति यैसी।**
**कहैं कबीर जिन जैसी समुझी, ताकी गति भौ तैसी॥**

**शब्दार्थ**—जानिआ–जाना। बाजी–खेल, तमासा, माया। डंक–नगाड़ा, दुन्दुभि। तमासा–क्रीड़ा, जाल। बहुरि–पुनः। सकेल–बटोर लेना, समेट लेना। जहंड़े–भ्रमे। माया–मोहक शक्ति। चाटक–चेटक, खेल, ध्यान। घर–खेल गृह। बाजीगर–नट, ईश्वर। गति–मुक्ति। तैसी–उसी प्रकार।

**सम्बन्ध**—इसके पहले कहा गया है कि पुरुषार्थ ही महान है और पुरुषार्थ के ही द्वारा मनुष्य ईश्वर की प्राप्ति कर सकता है। अब नीचे कहा जा रहा है कि मनुष्य पुरुषार्थ क्यों नहीं करता ? इसका क्या कारण है ? तो कहते हैं कि माया मोह में पड़ा हुआ मनुष्य पुरुषार्थ करने में असमर्थ रहता है। जिसके कारण राम रूप की प्राप्ति उसको नहीं हो पाती है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे सन्त जन ! अब यह मैं जान गया हूँ कि प्रभु की जो माया है वह बड़ी दुस्यज्य है उसका ऐसा खेल है कि जिसको कहा नहीं जा सकता वह मोह रूपी डंका बजाकर संसार को तमाशा देखाती रहती है। उसका तमाशा मैं अरु मोर, ममता, धन-दौलत, सगे-सम्बन्धी, मान-सम्मान यही उसका तमाशा है। इसी में समस्त जीव

फँसे हुए हैं। यह मनुष्यों को समृद्ध बनाकर अपनी ओर आकर्षित करती है। पुनः समृद्धि रूपी तमाशे को अपने में समाहित कर लेती है ये संसार के जीव पुनः अकिंचन हो जाते हैं और हाथ मीजने लगते हैं। प्रभु की माया में साधारण जीव ही नहीं फँसे हैं उसमें सुर, नर, मुनि सब जहड़ गये हैं। सभी लोग संसार रूपी तमाशे को देख रहे हैं। माया ने चेटक लाया है अर्थात् सभी की नजर बन्द कर दी है। दृष्टि पथ के आगे यवनिका लगा दी गयी है। किसी को सत्य के दर्शन नहीं हो पा रहे हैं। तमाशा के घर में जो संसार का प्रतीक है उसी में सारे-प्राणियों को मोह, ममता रूपी फांस में डालकर भ्रमा दिया है। जिसके कारण मनुष्यों के हृदय में आत्मज्ञान का उदय नहीं हो पा रहा है और न प्रभु के दर्शन ही हो पा रहे हैं मैं तो कहता हूँ कि यह बाजी जो माया है बिल्कुल असत्य है, इसका त्याग करना चाहिए। क्योंकि यह सारा प्रपंच माया कृत है इससे जो परे बाजीगर है अर्थात् माया का जो स्वामी है। वही सच्चा है उसी का सुमिरण भजन करना चाहिये क्योंकि सभी संतों की यही मति है कि संसार का व्यवहार असत्य है उसका परित्याग कर अन्तर्निहित परमतत्त्व को पहचानना चाहिए। सद्गुरु कहते हैं कि मैं कबीर कहता हूँ कि जो लोग जैसा समझा है उन लोगों की उसी प्रकार की गति भी होती है अर्थात् जो माया को सत्य समझा है, जो संसार को सत्य समझा है वह उसी में रात-दिन निमग्न रहता है इसलिए उसकी गति संसार में ही आने-जाने की बनी रहती है और जो परमेश्वर को सत्य समझा है उसी को परमतत्त्व की प्राप्ति होती है और वह सर्वदा संसार बंधन से छूट जाता है।

## सबद ७९

### आत्म उद्बोधन प्रकरण

**कहहु हो अंबर कासो लागा, चेतन हारा चेतु सुभागा।**
**अंबर मध्ये दीसै तारा, येक चेता येक चेतवन हारा॥**
**जो खोजो सो उहवां नाहीं, सो तो आहि अमर पद माहीं।**
**कहैं कबीर पद बूझै सोई, मुख हृदया जाके येकै होई॥**

**शब्दार्थ**—कहहु–कहो। अंबर–अमर, अविनाशी, जीवात्मा, आकाश। कासो–किससे। लागा–सम्बन्ध स्थापित किया। चेतनहारा–चेतने वाला, ज्ञान के अधिकारो। चेतु–चेत, सावधान होओ। सुभागा–सौभाग्य वाला। अंबर–आकाश। मध्ये–में। दीसै–दीखै। तारा–नक्षत्र। चेता–चेतने वाला जीव। चेतनहारा–चेताने वाले, गुरु, ईश्वर। उहवाँ–वहाँ। आहि–है। अमर–आत्म स्वरूप। पद–स्थान, पैर। माँहीं–में।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि माया को चातुर्यता ज्ञानी पुरुष जानते हैं जो इस रहस्यमय संसार की रचना की है। जिसमं संसार के सारे मनुष्य भूले हुए हैं। जो उसी को सत्य मानते हैं और उसी संसार और माया की प्राप्ति के लिए निश-दिन तत्पर रहते हैं वह पूर्ण रूपेण असत्य है। क्योंकि यह संसार माया जन्य है वह उसी प्रकार से ईश्वर की सहायता से इस संसार की रचना की है जैसे बाजीगर खेल का प्रमंचन रचता है और देखने में बहुत मनोहारी और आश्चर्यकारी होता है परन्तु जब खेल के उपरान्त में नट खेल को समेट लेता है सभी खेलदर्शी उदास हो जाते हैं और मन में निराशा को लहर उमड़ने लगती है। उसी प्रकार से संसार रूपी खेले को ईश्वर रूपी नट ने निर्माण किया है और सारे सगे-सम्बन्धियों का जाल बिछा दिया है। जिसमें सारे संसार के लोग तमाशगीर हुए हैं और उसी माया की प्राप्ति सभी लोग चाहते हैं परन्तु, जब माया संसार के सुख-सुविधा को छीन लेती है तब सभी सुर, नर, मुनि एवं देवतागण निराश हो जाते हैं और दुखी रहने लगते हैं। यह माया के कारण ही यह अनिवाशी जीव संसार में लगा रहता है और संसार को ही सत्य मान रहा है।

**मूलार्थ**—संसार के मनुष्यों से कहा जा रहा है कि हे अविनाशी जीव भला तू किससे सम्बन्ध कर रहा है? हे चेतने वाला, हे ज्ञान के अधिकारी! तू चेत और सावधान हो जा। हे सौभाग्यवान यह संसार विल्कुल आकाश की तरह शून्य है इसमें तुझे कुछ मिलने वाला नहीं है जैसे ऊपर व्योम में तारागण दिखायी देते हैं उनके अतिरिक्त और कुछ

नहीं दीखता उसी प्रकार से संसार रूपी आकाश में केवल मोह माया ही दिखायी देती है। यह संसार सार हीन है परन्तु इसी में यह चेतने वाला स्वयं चेता जिज्ञासु जीव भी है और चेताने वाले स्वयं चेता सद्गुरु सन्त भी हैं इन्हीं दो के अतिरिक्त इस संसार में और जो कुछ खोजते हो किसी सार तत्त्व की प्राप्ति करना चाहते हो तो इसमें और कुछ नहीं है। जैसे उहवाँ कहिये आकाश में तारागण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वैसी ही इस संसार में सद्गुरु दाता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जिस वस्तु को तू व्योम में खोजते रहे हो। जिस परम पद की प्राप्ति लोक-लोकान्तरों में खोजते हो वह तेरे अन्दर ही विराजमान है, वह परमतत्त्व तेरी आत्मा ही है, तूं ही है, तू अपने को बूझ, अपने को समझ। तूझ चेतन तत्त्व से व परमतत्त्व से भिन्न दूसरा कुछ नहीं है। कबीर साहब कहते हैं कि इस मेरे पद को वही व्यक्ति समझ सकता है जिसकी मुख की कथनी और हाथ की करनी एक हो, अर्थात् जिसके कथन और कर्त्तव्य में अन्तर न हो वही व्यक्ति परम पद की प्राप्ति कर सकता है।

**आशय**—मनुष्य बेकार के प्रपंच में लगा हुआ है। जिन वस्तुओं से कोई लाभ नहीं है उन्हीं की उपासना में अहर्निश लगा हुआ रहता है। इस जीव को मनुष्य शरीर मिला है इसलिए इसको चेतना चाहिए कि क्या सत्य है, क्या असत्य है। जिन लोक-लोकान्तर की प्राप्ति में विश्वास रखता है। वहाँ कुछ हाथ नहीं लगता वह तो गुरु के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। अन्य स्वर्गादि में उस आत्मतत्त्व की प्राप्ति सम्भव नहीं है। वह परमतत्त्व अपने अन्दर ही विराजमान है। जब तक कर्तव्य और विधान में साम्य नहीं होगा तब तक उसको जानना कठिन है। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि कथनी और करनी में साम्य रखें तभी परमसुख की प्राप्ति सम्भव हो सकती है।

## सबद ८०

**बन्दे करिले आप निबेरा।**
**आपु जिअत लखु आपु ठौर करु, मुये कहाँ घर तेरा॥**

**यहि औसर नहिं चेते हो रे प्रानी, अन्त कोई नहिं तेरा।**
**कहैं कबीर सुनो हो सन्तो, कठिन काल का घेरा॥**

**शब्दार्थ**—बन्दे–बन्दा, भक्त, उपासक। निबेरा–निर्णय निश्चय, निवारण, फैसला। आपु–आप, निज। जिअत–जीवित। लखु–लखो, देखो। ठौर–स्थान, स्थिति। मुये–मृत्यु। औसर–समय सम्प्रति। अन्त–अन्त, शरीरान्त। कठिन–कठोर। काल–मृत्यु, समय।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि संसार में सब शून्य ही शून्य है कुछ हाथ लगने वाला नहीं है। जिस सत्य वस्तु की खोज शून्य जगत में की जाती है, वह प्राप्त नहीं होती है। वह वस्तु हृदयस्थली में मिल सकती है जिसकी प्राप्ति हृदय और मुख की एकता में बतलाई गई है उसी को कहा जा रहा है कि जीते जी उसकी प्राप्ति कर लेनी चाहिए।

**मूलार्थ**—सद्गुरु हरिभक्तों से कहते हैं कि हे भाई परमतत्त्व को चाहने वाले प्रभु भक्त और अल्लाह के बन्दे! आप लोगों को शरीर में आत्मा के रहते-रहते यह निर्णय कर लेना चाहिए कि मुझे क्या करना है। मुझे संसार बसाना है कि प्रभु की प्राप्ति करनी है। क्योंकि जब होगा तब एक ही होगा। यदि संसार का सुख चाहोगे और संसार बसाना चाहोगे तो अल्लाह और प्रभु तुमसे बहुत दूर रहेंगे जैसे रात और दिन एक साथ नहीं रहते हैं उसी प्रकार से अज्ञान का कार्य और ज्ञान का कार्य एक साथ नहीं रह सकते। इसलिए आपलोग जीते जो यह देखो कि क्या हो सकता है और अपनी स्थिति भी कहाँ होगी यह भी देखो अर्थात् शरीरान्त होने पर मैं कहाँ जाऊँगा ? यह भी देखो। यदि तू जीते जी आत्मवस्तु की प्राप्ति नहीं कर लोगे तो मर जाने पर कहाँ तेरा घर होगा, कहाँ तेरा निवास होगा। यह किसको पता है हे भाई मनुष्यों हरि भक्तों यदि आपलोग इस अवसर अर्थात् मानव तन में रहते हुए नहीं सावधान हो रहे हो, नहीं चेत रहे हो तो हे प्राणी मेरी समझ में अन्त काल में कोई तेरा साथ नहीं देगा और न कोई तेरा होगा।

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे सन्तजन सुनो ! इस संसार में मनुष्यों के लिए बहुत कठोर काल का घेरा है बिना आत्मज्ञान के उसे तोड़ा नहीं जा सकता क्योंकि काल के बहुत रूप हैं जितने भी संसार के सम्बन्ध हैं जहाँ-जहाँ जीव की आशक्ति है जिन-जिन वस्तुओं में मोह-ममता है जो भी कर्म-कुकर्म हैं वे सब काल के घेरे में आते हैं। यहाँ तक कि मान-सम्मान, ऊँच-नीच जितने भी मन की महत्वाकांक्षायें हैं वे सब काल के घेरे हैं। इनको बिना प्रभु भक्ति के सहारा के बिना त्याग, वैराग्य के बिना तोड़ा नहीं जा सकता है। इसलिए मनुष्यों चाहिए कि जीवन रहते-रहते विचार कर देख लें कि मुझे क्या करना है।

## सबद् ८१

### भक्ति सर्जन प्रकरण

**ऊतो रहु ररा ममा की भांति हो, सभ संत उधारन चूनरी।**
**बालमीक बन बोइया, चुन्हि लीन्हा सुखदेव॥**
**करम बिनौरा होय रहा, सूत काते जैदेव।**
**तीनि लोक ताना तनो है, ब्रह्मा बिस्नु महेस॥**
**नाम लेत मुनि हारिया, सुरपति सकल नरेस।**
**बिस्नु जिभ्या गुन गाइया, बिन बस्ती का देस॥**
**सूने घर का पाहुना, तासों लाइनि हेत।**
**चारो वेद कैड़ा किया है, निराकार कियो राछ॥**
**बिनै कबीरा चूनरी, मैं नहिं बांधल बारि॥**

**शब्दार्थ**—ऊतो—वह तो, आत्मतत्त्व। रहु—रह, रहिये। ररा—र अकार सहित। ममा—म (राम)। भाँति—समान, सदृश, प्रकार। उधारन—निस्तारण, उद्दारण उद्धार। चूनरी—साड़ी, भक्ति। बालमीक—बाल्मीकि एक ऋषि जो संस्कृत में रामायण का निर्माण किया। बन—कपास। बोइया—बूना। चुन्हि—उठा लिया। सुखदेवमुनि—शुकदेव मुनि जी जो महर्षि वेदव्यास के पुत्र थे। करम—कर्म निष्काम कर्म। बिनौरा—विनौला, कपास का बीज। सूत-

सूत्र, भक्ति का क्रम। काते–निर्माण। जयदेव–एक कवि हुए हैं जो गीत गोविन्द का निर्माण किये हैं। ताना–प्रसार। नाम लेत–ध्यान करने पर। हारिया–हार गये। सुरपति–इन्द्र। नरेस–राजा लोग। गुन–गुण, महत्त्व। गाइया–गाया, कथन किया। सूने–शून्य। पाहुना–अतिथि, मेहमान। तासो–उससे। लाइनि–लगाया। हेत–संबंध। कैड़ा–एक लकड़ी जो जुलाहे लोग कपड़ा को तने रहने के लिए उसको लगाकर तानते हैं। निराकार–निर्गुण ब्रह्म। राछ–रस्सी, सुरतियोग। वारि–किनारा, जल, धोती का वह किनारा जो दोनों ओर विशेष सूतों से बँधा रहता है।

**सम्बन्ध**—इसके पहले कहा गया कि मनुष्य को स्वयं विचार करना चाहिये कि मुझे क्या करना है और मेरे लिए क्या अभीष्ट है? यह कहकर यह भी कहा गया है कि मानव तन में ही निज तत्त्व की प्राप्ति सम्भव है और वह जीते-जी प्राप्त हो सकता है। अब वह परमतत्त्व कैसा है और क्या है? उसके लक्षण बताते हैं। उसकी भक्ति और उसका नाम किन लोगों ने आविष्कार किया और कैसे तैयार हुआ? किन-किन लोगों ने उसका सृजन किया अर्थात् उसकी प्राप्ति के उपाय का किन-किन लोगों ने आविष्कार किया यह भी बताते हैं।

**मूलार्थ**—गुरु महाराज कहते हैं कि वह आत्म तत्त्व तुमसे भिन्न नहीं है अर्थात् आत्मा और परमात्मा एक में संयुक्त हैं केवल उपाधि भेद से भिन्न भासते हैं। इसलिए उसके ध्यान में, सुमिरण में, इतना तल्लीन हो जाना चाहिए जैसे—र और म एक है अर्थात् दोनों संयुक्त राम शब्द को इंगित करते हैं। इसलिए यह कहा गया कि हे मनुष्य! उस परमतत्त्व में तुम इस प्रकार से रमि रहो अर्थात् चिन्तन करो कि चिन्तन काल में तुम्हारी और उसकी अभिन्न दशा हो जाय। जैसे—र-म सदा एक बने रहते हैं इसी प्रकार की भक्ति जब तूँ करेगा। तभी तेरी स्थिति सुधरेगी। परा भक्ति अनपायनी को कहते हैं प्रथम के सभी सन्त जिसके द्वारा मुक्ति प्राप्त किये हैं और जिन सन्तों ने उस भक्ति का सृजन किया है उनके नाम सुनो। उस चुनरी रूपी भक्ति का बीज महर्षि बालमीकि ने योगवाशिष्ठ

और रामायण में निरूपण किया है अर्थात् भक्ति का बीज वपन किया। जिसको महर्षि योगीराज विरक्त सन्त श्री शुकदेव जी ने ग्रहण किया और श्रीमद्भागवत में उसका विस्तार किया और निष्काम कर्म जो था विनौला के रूप में वह भक्ति का बीज था जिसको कर्मा बाई ने और शुकदेव जी ने एवं बाद के ऋषियों ने कर्मकाण्ड रूपी बिनौले से चुनरी रूपी भक्ति को अलग किया। तब भक्त जयदेव ने उक्त कपास से भक्ति का सूत तैयार किया जो 'गीत गोविन्द' के रूप में विद्यमान है। कहने का तात्पर्य यह है कि महर्षि बाल्मीकि और श्री शुकदेव जी एवं श्री जयदेव जी तथा किसी विद्वान के मत से कर्माबाई ने मिलकर भक्ति का स्वरूप तैयार किया और वह भक्ति तीनों लोकों में प्रचारित की गयी। इस भक्ति से परमतत्त्व की उपासना कुछ लोग ब्रह्मा के रूप में करने लगे, कुछ लोग विष्णु के रूप में करने लगे, कुछ लोग महेश के रूप में करने लगे इस प्रकार से भक्ति प्रचारित हुई और भक्ति के द्वारा निरूपित इष्ट का नाम लेते-लेते मननशील मुनि लोग, ध्यान शील भक्त लोग, हारिया कहिये उसमें निमग्न हो गये।

यहाँ हारने का तात्पर्य नाम लेते-लेते थकने से नहीं है। यहाँ तन्मयता होने पर मन की गति अवरुद्ध हो गयी और इस अनपायनी भक्ति को पहले भी लोग किये थे। यश के रूप में इन्द्र ने किया था और तमाम राज राजेश्वरों ने भी किया था। क्योंकि भक्ति परम्परा से आ रही है परन्तु सन्तों की भक्ति बाल्मीकि ऋषि से आरम्भ होती है। उसका रूप जयदेव तक स्पष्ट हो जाता है।

अब प्रश्न उठता है कि जिसको भक्ति की जाती है क्या वह ब्रह्मा है ? क्या वह विष्णु है ? क्या वह महेश नाम वाला है ? इस पर सद्गुरु कहते हैं कि स्वयं विष्णु भगवान अपने जिह्वा से उसके बारे में निरूपण किया है कि वह भक्ति का इष्ट बिना बस्ती का है, बिना देश का है अर्थात् वह सर्व व्यापक है उसके बिना कहीं रिक्त नहीं है वह दुर्लभ तत्त्व है वह शून्य घर का अतिथि है अर्थात् जहाँ वह रहता है वहाँ कोई दूसरा

पदार्थ नहीं है एकाकी रहने का नाम शून्य है उस एकाकी विचरण करने वाले तत्त्व से ऊपर के ऋषि, मुनि, सन्तजन हेत लगाये और उसका निरूपण विष्णु के अतिरिक्त चारों वेदों में भी किया गया। क्योंकि निराकार व निर्गुण तत्त्व का निरूपण कोई आधुनिक नहीं है यह वेद काल से ही चला आ रहा है। इसलिए भक्तों ने चारों वेदों का कैड़ा कहिये वैराग्य, त्याग, विवेक और ध्यान इन चारों को लेकर भक्ति के वस्त्र को ताना, जिसमें किसी प्रकार की सिकुड़न व कमी न आने पाये। साथ ही निराकार परमेश्वर के ध्यान रूपी रस्सी को मन में ग्रहण किया। इसी प्रकार की भक्ति रूपी चुनरी को कबीर साहब ने भी तैयार किया और सद्‌गुरु कहते हैं कि मैं भक्ति को सीमा नहीं रखी। वह मेरी भक्ति व भगवान असीमित हैं। वारि कहिये सीमा से परे हैं अर्थात्, भक्ति, भक्त, भगवन्त व गुरु इन चारों को मैं एक समझकर भक्ति का निरूपण किया है और वह मेरे द्वारा कही गयी भक्ति असीम है।

**आशय**—भाव यह है कि जैसे रा और म एक में सम्पृक्त रहते हैं कभी भिन्न नहीं होते दोनों को अलग करने पर उसके अर्थ बिगड़ जाते हैं उसी प्रकार से उपासक, उपास्य से जब तक तादात्म्यता को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक सही उपासना नहीं हो पाती और तादात्म्य उपासना के द्वारा सभी सन्तों ने अपना उद्धार किया है। अर्थात् आत्मतत्त्व को प्राप्त किया तादात्म्य भाव को सद्‌गुरु कबीर चुनरी का प्रतीक मानते हुए तादात्म्य भाव बाल्मीकि मुनि से आरम्भ करते हैं जिसके अनुगामी शुकदेव जी भी बताये गये हैं जिन्होंने कर्म, ज्ञान और भक्ति को भागवत में अलग-अलग निरूपण किया है। भागवत में जिस प्रेमाभक्ति का उल्लेख शुकदेव जो ने किया है वह अन्यत्र देखने को नहीं मिलती। उस भक्ति में मनुष्य अपने को भूल जाता है। न उसको तन की स्मृति रहती है, न मन की स्मृति रहती है। महात्मा शुकदेव जी उक्त भक्ति का निरूपण गोपी और कृष्ण के माध्यम से निरूपित किया है उक्त भक्ति में लोक वेद एवं कुल की मर्यादा समाप्त हो जाती है। वह एक स्थिति होती है उसके

समानान्तर में कोई दूसरी उपासना नहीं होती है जिसका निरूपण गीत गोविन्द में जयदेव कवि ने भी किया है। उसी प्रेमाभक्ति को बाद के सन्तों ने तीनों लोकों में प्रचार किया अर्थात् सभी लोग उसको पसन्द किये। जहाँ तक पुराण के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश भी भागवत का अनुसरण किये और सभी ऋषि, मुनि भी उक्त भक्ति के द्वारा प्रदत्त नाम को लेकर निमग्न हो गये। भागवत् के अनुसार राजा इन्द्र भी और भू-भाग के तमाम राज-राजेश्वरों ने भी उसी प्रेमाभक्ति का अनुसरण किया और विष्णु कहिये भगवान श्री कृष्ण भी अपनी वाणी के द्वारा उस भक्ति की महिमा गायी और उसको अति दुर्लभ कहा और कहा कि वह निरालम्ब भक्ति है वह शून्य हृदय में नहीं आती। वह उस अतिथि की तरह है जो किसी के घर जाने पर गृह स्वामी के न रहने पर वापस चला जाता है। उसी प्रकार जिसके पास विवेक, विचार नहीं होता, वह भक्ति उसके पास नहीं रुकती। उसी प्रेमाभक्ति में सभी लोग सम्बन्ध स्थापित किये और वेदों के सारतत्त्व को कैड़ा बनाकर भक्ति में सिकुड़न नहीं आने दिया अर्थात् कमी नहीं आने दिया और उसको सही रूप से रुकने के लिये निराकार की रस्सी बनायी गयी अर्थात् निराकार में सुरति योग द्वारा चित्त को स्थिर किया गया, ताकि वह नीचे न गिरने पाये। इसी प्रकार की भक्ति रूपी चुनरी का मैं कबीर निर्माण करता हूँ अर्थात् बुनता हूँ जिसके वारि कहिये किनारा में बाँध नहीं है क्योंकि वह परमतत्त्व जो सीमा से रहित है। जो असीमित है उस प्रेमाभक्ति में किनारा नहीं होता वह असीम है वह अपने को नाश करके प्राप्त होती है। उसमें अपना अलग अस्तित्व नहीं होता है। उपास्य और उपासक एक होकर विलीन हो जाते हैं।

**अर्न्तकथाएँ** – बाल्मीकि ऋषि की कथा स्कन्द पु० खं० ५ अ० २४ में है कि भृगु वंश में सुमति नामक ब्राह्मण था, कौशिकी उसकी स्त्री थी, अग्नि शर्मा उसका पुत्र था। कभी अकाल पड़ने पर वह सुमति, स्त्री, पुत्र सहित दक्षिण दिशा में गया और वहाँ के चोरों के संग में रहने लगा। इससे उन चोरों से अग्निशर्मा की संगति हो गई। उस मार्ग से आने वालों को वह

दुष्ट मारने लगा। किसी समय तीर्थ यात्रा के प्रसंग में सप्त ऋषि भी उसी मार्ग से आये। उन्हें मारने की इच्छा से कहा तुम लोग अपना सब कुछ रख दो नहीं तो मारे जाओगे। अत्रि ऋषि बोले कि हम सब तीर्थ यात्रा में जा रहे हैं हम सब को दुःख देना तेरे मन को क्यों भाता है? अग्निशर्मा बोला कि मेरे माता, पिता व पुत्र हैं, उनके पालन का भाव मेरे मन में रहता है। ऋषि बोले कि जाकर अपने पिता आदि से पूछो कि मैं तुम सबके लिए पाप करता हूँ, सो किसको लगेगा। अग्निशर्मा को कुछ होश हुआ। जाकर पूछा सब कह दिये कि पाप तुमको होगा मैं क्या जानता हूँ? यह सुनकर ऋषियों के शरण में आया ध्यान और राम नाम महामन्त्र ऋषि बताये। वह ऐसा ध्यानस्थ हुआ कि उसके ऊपर बाल्मीकि (दीमक) हो गये। इससे बाल्मीकि कहलाया।

स्कन्द पु० खं० ७ अ० १२४ में कथा है कि चमत्कारपुर में माण्डव्य के वंश में लोहजंग नामक ब्राह्मण था। उसकी स्त्री पतिव्रता थी, माता पिता जीवित थे। एक समय अकाल पड़ने पर वह आनर्त देश में गया। वहाँ भी भोजन वस्त्र की प्राप्ति न होने पर, माता आदि की रक्षा के लिए चोरी-डकैती करने लगा। फिर अच्छा समय आने पर भी वह वही काम करता रहा उसी समय तीर्थ यात्रा में जाते समय ऋषि मिल गये उन्हें वह मारने दौड़ा। फिर उसके जनेऊ को देखकर ऋषि सब बोले कि तुम ब्राह्मण होकर कुकर्म क्यों करते हो, उसने कहा कि परिवार पालन हेतु यह कर्म करता हूँ ऋषियों ने कहा कि जाकर उनसे पूछो पाप के भागी सब होंगे कि नहीं, इस बात को सुनकर वह भयभीत हुआ और जाकर सबसे पूछा परन्तु पाप के हिस्से में कोई भागीदार नहीं हुये। फिर पछताता हुआ पुनः ऋषियों के पास आया और अपने कल्याण के लिए ऋषियों से प्रार्थना की तब हँसी स्वभाव वाले ऋषि पुलह ने कहा कि, 'झांटघोट' यह मंत्र सब सिद्धि को देने वाला है। इसी को सदा जपो। फिर मुनि सब वहाँ से चले गये। वह उस मन्त्र को जपते-जपते अपने आपको भूल गया, इससे बाल्मीकि कहलाया वह महासिद्ध ज्ञानी हुआ।

स्कन्द पु० खं० ७ अ० २७८ में कथा है कि शमीमुख नामक ब्राह्मण के वैशाख नामक पुत्र था। गुरु सेवा के अलावा कोई शुभ कर्म नहीं करता था। माता पिता के वृद्ध होने पर उनका पालन चोरी से करने लगा। कभी सप्तऋषि मिल गये तो उनको भी मारना चाहा, तब वे लोग बोले जिसके पोषण के लिए यह पाप कर्म करते हो, पूछो वह इस पाप कर्म में साझी-दार होंगे कि नहीं। पूछने पर पिता आदि बोले कि मैं भागीदार नहीं होऊँगा। यह सुन वैशाख ऋषियों के पास गया विनय करने पर "झांट-घोट" यह मन्त्र सुनाये उसी मन्त्र को जप कर वह बाल्मीकि ऋषि हुआ।

## सबद ८२

### कुण्डलिनी की प्रमुखता प्रकरण

**तू यहि विधि समझो लोई, गोरी मुख मंदिल बाजे॥**
**एक सरगुन खट चक्रहिं बेधै, बिना व्रिखव कोल्हू माचै।**
**ब्रह्महिं पकरि अगिन महं होमै, मच्छ गगन चढ़ि गाजै॥**
**निति अमावस निति ग्रहन होई, राहु ग्रासै नित दीजै।**
**सुरभी भछन करत वेद मुख, घन बरसै तन छीजै॥**
**त्रिकुटी कुण्डल मध्ये मंदिल बाजै, औघट अम्मर छीजै।**
**पुहुमी का पनियां अम्मर भरिया, ई अचरज कोई बूझै॥**
**कहैं कबीर सुनो हो सन्तो, जोगिनि सिधि पिआरी।**
**सदा रहे सुख संजम अपने, बसुधा आदि कुवारी॥**

**शब्दार्थ**—तू-तुम। यहि-इस। विधि-प्रकार। लोई-लोग। गोरी-कुण्डलिनी। मंदिल-मर्दल, मृदंग। सरगुन-सरकण्डा, तीर, प्राणायाम। खट-षट्, छः। चक्रहिं-चक्र, मूलाधार चक्र, (गुदास्थान) स्वाधिष्ठान चक्र (लिंग स्थान) मणिपूरक चक्र (नाभि स्थान) अनाहत चक्र (हृदय स्थान) विशुद्धि चक्र (कंठ स्थान) आज्ञा चक्र (भृकुटी स्थान)। बेधै-छेदे, छेदन करे। व्रिखव-वृषभ, बैल, साधन। कोल्हू-तेल पेरने का वह यंत्र जिसमें

तेली लोग सरसों आदि के तेल पेरते हैं, कुण्डलिनी। माचै–चले। ब्रह्महिं–रजोगुण। होमै–जलावे। मच्छ–कुण्डलिनी। गगन–सहस्रार। गाजै–गर्जन। राहु–सुषुम्ना। सुरभी–गाय, जिह्वा, खेचरी मुद्रा। वेदमुख–श्रेष्ठ मुख। घन–सहस्रार। तन–शरीर। दीजै–शक्ति का क्षरण कर देता है, कृश होय। त्रिकुटी–भ्रूमध्य। कुण्डल–घेरा। मदंल–मृदंग। औघट–वंकनाल, भंवर गुफा के पार्श्व भाग में। छीजै–कृश। अम्मर–अमर, साधक। पुहुमी–पृथ्वी। पनियां–पानी, अपान वायु। अम्मर–साधक। ई–यह। अचरज–आश्चर्य। बसुधा–पृथ्वी, कुण्डलिनी।

**सम्बन्ध**—इसके प्रथम भक्ति की स्थिति और माहात्म्य दर्शाया गया किन किन लोगों ने भक्ति का रूप प्रस्तुत किया उनके नाम बताये गये जिससे सन्त लोग तरन-तारन को प्राप्त हुए। अब नीचे हठयोग का दिग्दर्शन कराया जा रहा है उसके द्वारा भी आत्म प्राप्ति हो सकती है, जिसका संकेत किया गया है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे लोग हे जिज्ञासुजन ! आप इस प्रकार से समझें कि कुण्डलिनी का जागरण किस प्रकार से होता है और उसके जागने पर कौन-कौन दृश्य सम्मुख आते हैं। योगी लोग प्राणायाम का अभ्यास कुछ काल तक करते हैं तब कुर्ण्डलिनी जागृत होने लगती है। जब कुण्डलिनी शक्ति जागने लगती है तब उसके मुख से घोर गर्जना होती है। मृदंग की सी ध्वनि प्रतीत होने लगती है। जब कुण्डलिनी अपने मूल स्थान को छोड़कर सहस्रार की ओर चलती है तो एक ही तीर में अर्थात् एक ही प्राणायाम में षट्चक्रों को चीरती हुई सहस्रार की ओर बढ़ जाती है और वह कुण्डलिनी विना वृषभ कहिए किसी साधन के स्वयं प्रज्ज्वलित हो जाती है। जब योगी का प्राणायाम केवल कुम्भक हो जाता है जब केवल कुम्भक सिद्ध हो जाता है तब बिना किसी साधन के, बिना किसी प्रयत्न के कुण्डलिनी स्वतः जागकर ऊर्ध्वारोही हो जाती है और कुर्ण्डलिनी के जागने पर वृत्ति सात्विक हो जाती है। सत्वगुण का उदय हो जाता है। पश्चात् जो ब्रह्मा का रजोगुण है अर्थात् जो मनुष्यों में

रजोगुण विद्यमान रहता है उसको साधक पकड़कर कुण्डलिनी के खुले हुए मुख में झोक देता है। रजोगुण के भस्म होने पर केवल सत्त्वगुण रह जाता है। मन की गति पूर्ण रूपेण आन्तरिक हो जाती है। संसार से उसका विच्छेद होने लगता है। इसी को अन्तर्मुख कहा गया है। जब योगी की वृत्ति अन्तर्मुख होती है तब मच्छ कहिए कुण्डलिनी मेरुदण्ड को पार करती हुई भंवर गुफा में प्रवेश करके सहस्रार में चढ़कर गर्जना करने लगती है जब कुण्डलिनी ऊपर की ओर बढ़ जाती है तब योगी को नित्य अमावस्या और नित्य ग्रहण होने लगता है। जैसे सूर्य और चन्द्रमा के एक साथ अर्थात् सूर्य का अस्त काल और चन्द्रमा का उदय काल होने पर अमावस्या होती है। उसी प्रकार से ईड़ा और पिंगला के सुषुम्ना में प्रवेश करने पर योगी की अमावस्या होती है। तात्पर्य यह है कि प्राणायाम की सिद्धि से योगी सतत् सुषुम्ना में सूर्य चन्द्र को विलीन कर ध्यानस्थ बैठा रहता है और उस योगी को नित्य ग्रहण भी होता है। जब वह योगी भोजन करना चाहता है तो अपनी इच्छानुसार स्वरों को बदलते रहता है। विघ्नों से बचने के लिए स्वरों को बदलना आवश्यक होता है क्योंकि शुभ और अशुभ घड़ी की सूचना स्वर स्वतः देने लगते हैं। जब योगी सूर्य नाड़ी को सुषुम्ना में लय करता है तब सूर्य ग्रहण होता है। जब योगी चन्द्र नाड़ी को सुषुम्ना में लय करता है तब चन्द्र ग्रहण होता है। राहु कहिए सुषुम्ना नित्य ही दोनों का ग्रास करते रहती है। जब योगी का स्वर और प्राणायाम अधीन हो जाता है तब योगी खेचरी मुद्रा की सिद्धि कर लेता है। अर्थात् जिह्वा को लम्बी करके तालु में वंकनाल के छिद्र में लगा देता है और जो सहस्रार से चन्द्रमा के द्वारा सोमरस झरता है उसको योगी चाट जाता है। वेद मुख से यहाँ तात्पर्य खेचरी मुद्रा सिद्ध करने वाला श्रेष्ठ मुख हुआ। घन बसरने का तात्पर्य यह है कि जब योगी पीयूष ग्रन्थी से गिरता हुआ रस जिह्वा के द्वारा चाट जाता है तब उसका तन क्षीण हो जाता है अर्थात् कृश हो जाता है तो भी ऐसी दशा में उसके मुख मण्डल की

आभा बहुत तेज हो जाती है। मुख मण्डल का प्रकाश बढ़ जाता है। और शरीर के तमाम बलित-पलित रोगों को नष्ट करके योगी सुखी हो जाता है अर्थात् काय सिद्धि प्राप्त कर लेता है। तात्पर्य यह है कि जब पीयूष ग्रन्थी से सोमरस नाभि में नहीं जाने पाता है तो अन्य शरीर के अवयव स्वतः कृश हो जाते हैं और शरीर का जो मूल भाग सिर है वहीं पर योगी रस को पचा लेता है जिसके कारण मूल भाग बहुत उन्नत हो जाता है। जब योगी सहस्रार में स्थित हो जाता है तो त्रिकुटी कुण्डल अर्थात् त्रिकुटी के बीच में सदैव मृंदग की आवाज जैसी ध्वनि होती रहती है तब योगी औघट कहिये बंकनाल के द्वारा साधक स्थिर होकर सदैव अपने विकारों को नष्ट करने लगता है। दूसरा अर्थ इसका यह भी है कि औघट-उसे कहते हैं जहाँ घाट नहीं होता अर्थात् किसी नदी में कोई बढ़िया घाट नहीं बना हो विना घाट का कोई स्नान करना चाहे तो उसको बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार से योगी के लिए जो भ्रमर गुफा है वही औघट घाट है। क्योंकि अनेक योगी भ्रमर गुफा से आगे नहीं बढ़ पाते हैं। वह ऐसी सुरंग है कि सहस्रों योजन प्रतीत होती है। भंवर गुफा का भटका हुआ योगी अर्थात् उसमें प्रवेश किया हुआ योगी प्रथम बहुत संकट उठाता है परन्तु पुहमी कहिए मूलाधार से अपानवायु को जब योगी प्राणवायु में मिलाता है तब उपर्युक्त कठिनाइयाँ उसकी दूर हो जाती हैं। प्राण, अपान के एक होने पर योगी की बहुत विलक्षण गति हो जाती है और सभी सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। पश्चात् आत्मसाक्षात्कार भी उसको हो जाता है परन्तु यह बहुत आश्चर्य की बात है कि कोई विरला ही योगी इस तथ्य को समझ सकता है। कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्त जन सुनो! योगियों को सिद्धि बहुत प्रिय है अर्थात् साधक योगी अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए जीवन-मरण को एक करके जूझता है। क्योंकि उसके लिए अपना अभीष्ट प्रिय है। जो योगी सिद्धि को प्राप्त कर लेता है अर्थात् आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है वह सदा सुखी रहता है परन्तु प्रतिज्ञा संयम

की है। क्योंकि संयम विहीन साधक वसुधा कहिए कुण्डलिनी को कभी जगा नहीं सकता क्योंकि कुण्डलिनी आदि कुमारी हैं। उसके साथ विवाह करना अर्थात् उसको जगाना बहुत बड़े शक्तिशाली साधक का काम है। क्योंकि योग ग्रन्थों में उसको बालरण्डा भी कहा है। जिसका अर्थ होता है शुरू से ही वह पति विहीन होती है। यद्यपि कुछ टीकाकारों ने अपनी राय इससे विपरीत दिया है परन्तु बहुत सूक्ष्मता से अवलोकन करने पर इस पद का यही अर्थ लगता है ऐसे समझ रुचि विचित्र होती है। जिसको जैसा दिखाई देता वैसा वह करता है।

**टिप्पणी**—अमावस (सं० अमावस्या) इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—अमा (अव्यय) साथ, अमा (सह) वसतः चन्द्राकौं अस्यां सा अमावस्या।

जिस रात्रि को सूर्य और चन्द्र एक साथ रहते हों वह अमावस्या है।

**राहु ग्रास**—पौराणिक कथा के अनुसार समुद्र-मंथन के बाद अमृत पीने के लिए राहु देवताओं को पंक्ति में जाकर बैठ गया था। वह थोड़ा अमृत पी चुका था तभी सूर्य, चन्द्र ने विष्णु को संकेत कर दिया। विष्णु ने अपने चक्र से उसका मस्तक छिन्न-भिन्न कर दिया तभी से राहु सूर्य और केतु चन्द्र को ग्रसता है।

**सुरभी भच्छन**—हठयोग प्रदीपिका तृतीयोपदेश में कहा गया है।

गोमांसं भक्षयेन्नित्यं पिवेदऽमर वारूणीम्।
कुलीनं तमहं मन्ये इतरे कुलघातकाः ॥४७॥
गोशब्देनोदिता जिह्वा तत्प्रवेशो हि तालुनि।
गोमांसभक्षण तत्तु महापातक नाशनम् ॥४८॥

जो नित्य गोमांस का भक्षण करता है और अमर वारुणी का पान करता है उसे मैं कुलीन समझता हूँ, अन्य कुलघातक हैं। यहाँ गो, शब्द का अर्थ 'जिह्वा' है, उसका तालु में प्रवेश करना 'गोमांस' भक्षण है। यह भक्षण महापातक नाशक है।'

**तन छोजै**—हठयोग की सिद्धि के निम्नलिखित लक्षण बताए गये हैं—

वपुः कृशत्वं वदने प्रसन्नता नादस्फुटत्वं नयने सुनिर्मले ।
अरोगता विंदुजयोऽग्नि दीपनं नाडी विशुद्धिहठसिद्धिलक्षणम् ॥७८॥
(हठयोग प्रदीपिका—द्वितीयोपदेशाः)

शरीर की कृशता, मुख की प्रसन्नता, ध्वनि का प्राकट्य, नेत्रों की निर्मलता, आरोग्य, धातु का वश में होना, उदराग्नि का बढ़ना और नाड़ी की शुद्धि हठयोग की सिद्धि के लक्षण हैं।

**औघट अम्मर छीजै**—गगन गुफा में एक दुर्गम घाट है, जहाँ से अमृत रस टपकता है। साधक उसी को पान करता है—

जिह्वा प्रवेश संभूत वह्निनोत्पादितः खलु।
चन्द्रात् स्रवति यः सारः सा स्यादमरवारुणी॥
(हठ० प्र० ३/४९)

लम्बिका (कौवा) के ऊपर के विवर में जिह्वा के प्रवेश से एक गर्मी पैदा होती है। उससे भौंह के वाम भाग में स्थित चन्द्र से जो रस टपकता हैं, उसे अमर वारुणी कहते हैं।

## सबद ८३

### जिह्वा स्वाद प्रकरण

**भूला वे अहमक नादाना, जिन्ह हरदम रामहिं ना जाना॥**
**बरबस आनि के गाइ पछारिन, गरा काटि जिउ आपु लिया।**
**जीअत जीउ मुरदा करि डारा, तिसको कहत हलाल हुआ॥**
**जाहि मांसु को पाक कहतु हौ, ताकी उतपति सुनु भाई।**
**रज बीरज से मांस उपानी, सो मांसु नपाकी तुम खाई॥**
**अपनी देखि करत नहिं अहमक, कहत हमारो बड़न किया।**
**उसकी खून तुम्हारी गरदन, जिन्ह तुमको उपदेस दिया॥**
**सिआही गई सफेदी आई, दिल सफेद अजहूँ न हुआ।**
**रोजा बंग नेमाज का कीजै, हुजरे भीतर पैठि मुआ॥**

**पंडित वेद पुरान पढ़ै सभ, मुसलमान कोराना।**
**कहैं कबीर दोउ पड़े नरक में, जिन्ह हरदम रामहिं ना जाना॥**

**शब्दार्थ**—भूला–विस्मृत। वे–तिरस्कारपूर्ण, तिरस्कृत व्यक्ति। अहमक–मूर्ख। नादाना–अल्प बुद्धि, थोड़ी बुद्धिवाला, कम अवस्था का व्यक्ति। जिन्ह–जो। हरदम–प्रत्येक घट में, सदा। बरबस–बलात्, जबरदस्ती। आनि–आकर। पछारिन–जमीन पर, गिरा दिया। गरा–गला। जीअत–जीवित। मुरदा–मृतक। हलाल–जबह, मार डालना, बलि दिया हुआ पशु। पाक-पवित्र। हौं–हों। ताकी-उसकी। रज–माता का वीर्य। बीरज–पिता का वीर्य। उपानी–उत्पन्न किया। नपाकी–अपवित्र। खून–हत्या, रक्त। गरदन–गला, कंठ। सिआही–स्याही, कालापन। सफेदी–श्वेत, उजलापन। दिल–हृदय, मन। सफेद–स्वच्छ। अजहूँ–आज भी। रोजा–जो रमजान के महीने में तीस दिन का व्रत होता है उसको रोजा कहते हैं। बंग–बाँग प्रकार, आवाज पुकारना। नेमाज–निमाज, ईश्वर की स्तुति करना। हुजरे–भवन के अन्तःपुर की कोठ़री। पैठि–घुसकर। कोराना–क़ुरान।

**सम्बन्ध**—इसके पहले योग और कुण्डलिनी की बात कहकर सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि इस पवित्र साधना को न करके जिह्वा की रसापूर्ति के लिए धर्म के नाम पर गाय आदि पशुओं को मारकर स्वर्ग में जाना चाहते हैं। इस पर सद्गुरु कहते हैं कि जो पशु बलि देकर ईश्वर को प्रसन्न करना चाहते हैं वे लोग सद्बुद्धि से रहित हैं। उक्त कर्म इसलिए करते हैं क्योंकि सतकर्म से विस्मृत हो गये हैं।

**मूलार्थ**—जो लोग सतकर्म से विस्मृत हो गये हैं व भूल गये हैं वे अल्पबुद्धि तथा अपनी मूर्खता के कारण बालक जैसा स्वभाव रखते हैं। इसलिए जो प्रत्येक प्राणियों के अन्दर में व हृदयगुहा में निवास करता है उस राम को नहीं जानते हैं। उस राम के न जानने के कारण अज्ञानवश नाना प्रकार के कुत्सित कर्म करते हैं। उसी सन्दर्भ में गाय आदि पशुओं को ईश्वर व अल्लाह के नाम पर बलि देते हैं और बूरे तरीके से

पटक कर धीरे-धीरे छुरियों से उल्टा गला करके काटते हैं। पशुओं का गला काटकर उनके प्राण को अपहरण कर लेते हैं। जीते हुए प्राणी को मृतक बना देते हैं और कहते हैं कि उसको खुदा के नाम पर हम हलाल करते हैं।

सद्‌गुरु कहते हैं कि जिस गाय आदि के मांस को तू पवित्र कहता है उसकी उत्पत्ति तो सुन ले। उस माँस की उत्पत्ति माता के रज और पिता के वीर्य से होती है। इसलिए उसको तू पवित्र कैसे कहते हो। क्योंकि माता-पिता के रज-वीर्य को कभी भी पवित्र नहीं कहा जा सकता और उस अपवित्र से उत्पन्न देह और माँस कैसे शुद्ध हो सकते हैं और उसी अपवित्र मांस को तुम लोग खा रहे हो। तुम अपने को देख-कर स्वयं उस पर विचार नहीं करते हो कि यह पाप कर्म है इसका त्याग करना चाहिये परन्तु तुम उलटे कहते हो कि इस बलि प्रथा को हमारे गुरुजनों व बड़ों ने सनातन से किया है यही तुम्हारा अहमकपन है। यह समझ लो कि यह जो तुमको उपदेश दिया है पशुओं को बलि करने का उसका खून और तुम्हारी गर्दन भी उसी प्रकार से जन्मान्तर में काटी जायेगी। तुम्हारे उपदेष्टा की गर्दन और तुम्हारी गर्दन जिसको तुम मार रहा है या काट रहा है वह बदले में काटेगा। क्योंकि खून का बदला खून होता है। तुम्हें धिक्कार है जो आज पर्यन्त दुष्कर्मों में लगे हुए हो। अब तेरी तीन अवस्था बीत गयी। तेरे काले बाल उज्ज्वल हो गये। परन्तु तुम्हारा जो हृदय है, जो दिल है, अभी भी शुद्ध नहीं हुआ है। इसलिए तुम्हारा कल्याण होना दुर्लभ है। तुम बेकार का रोजा और बाँग देते हो और व्यर्थ में निमाज पढ़ा करते हो क्योंकि कर्म तुम्हारे उत्तम नहीं हैं। भला निकृष्ट कर्मों के करते हुए तुम्हारे रोजा बाँग निमाज पढ़ने से क्या होने वाला है। तुम व्यर्थ में मस्जिद मंदिर के भीतर की कोठरियों में तसवीह व माला लेकर बैठते हो। परन्तु वास्तविक ज्ञान न होने से उसी कोठरी में बैठकर जीवन गवाँ देते हो, अन्त में मरकर नरकगामी होते हो। हिन्दुओं में ब्राह्मण लोग वेद, पुराण सब पढ़ते हैं और मुसलमानों

के मौलवी लोग कुरान को पढ़ते हैं। परन्तु सत्य वस्तु की पहचान के बिना सद्गुरु कहते हैं कि ये दोनों नरक में जाते हैं। क्योंकि ये लोग प्रत्येक प्राणियों के घट में जो निवास करने वाला राम है उसकी पहचान नहीं किये। इसलिए नरक जाना अवश्यम्भावी हो गया।

**आशय**—मूर्ख मनुष्य ! सदा धर्म-कर्म के नाम पर बलि कर्म करते रहता है। यह नहीं जानता है कि प्रभु का निवास जन-जन में एवं प्रत्येक कण में है। उसको न पहचान कर निर्बल पशुओं को मारकर ईश्वर को प्रसन्न करना चाहता है। परिणामस्वरूप ईश्वर उससे दूर होते जाता है। अज्ञानी मनुष्य जिस कर्म को उत्तम समझता है वे कर्म बुद्धिमानों की दृष्टि में श्रेष्ठ नहीं होते और जैसे कर्म अच्छे-बुरे किये जाते हैं उनके परिणाम भी उसी प्रकार के होते हैं।

इसलिए कबीर साहब कहते हैं कि कितना भी वेद-पुराणों का पाठ किया जाय, इसी प्रकार से कितना भी कुरान का पाठ किया जाय, सत्य वस्तु के अभाव में मनुष्य को कभी भी सुख नहीं हो सकता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि पुरानी लीकियों को छोड़ो जिस लीक पर तेरे दादा बाबा चले आ रहे थे वह गलत है कि सही है उस पर विवेक करके सत्य को ग्रहण करोगे तभी सुख के भागी हो सकते हो। अन्यथा नरक गामी होना ही है।

# सबद ८४

## इस्लाममत समीक्षा प्रकरण

**काजी तुम कउन कितेब बखानी।**
**झंखत बकत रहहु निसिवासर, मति एकउ नहिं जानी॥**
**सकति अनुमाने सुनति करतु हों, मैं ना बदोंगा भाई।**
**जउ खोदाय तेरी सुनति करतु है, तौ आपुहिं काटि क्यों न आई॥**
**सुनति कराइ तुरक जउ होना, अउरत को का कहिये।**
**अरध सरीरी नारि बखानी, ताते हिन्दू रहिये॥**

**पहिरि जनेउ जउ बांभन होना, मेहरिहिं का पहिराया।**
**वो जनम की सूद्रिनि परसे, तुम पांड़े क्यों खाया॥**
**हिन्दू तुरक कहां ते आया, किन यह राह चलाया।**
**दिल मैं खोजि देखु खोजादे, भिस्त कहाँ ते आयी॥**
**कहैं कबीर सुनो हो संतो, जोर करतु है भाई।**
**कबीर न ओट राम की पकरी, अंति चले पछिताई॥**

**शब्दार्थ**—काजी–मुसलमान, इस्लाम धर्म में न्याय करने वाले को काजी कहते हैं जिसका पर्यायवाची जज होगा। कउन–किस। कितेब–किताब, कुरान। वखानी–वर्णन करते हो। झंखत–चिन्तित, शोकाकुल। बकत–बोलते रहते हो। रहहु–रहते हो। मति–बुद्धि। एकउ–एक भी। सकति–शक्ति, ईश्वरीय शक्ति। अनुमाने–अनुमान कर। सुनति–शिश्नोच्छेदन। करतु हो–करते हो। बदोंगा–मानूंगा, कहूँगा। खुदाय–खुदा। सुनति–सुन्नत, जातीय संस्कार। आपुहिं–अपने आप। तुरक–मुसलमान। अउरत–औरत, स्त्री। अरध–आधी, अर्द्धांगिनी। मेहरिहिं–महिला, स्त्री। वो–वह, उस। परसे–भोजन बनाकर देती है। किन–कौन। खोजा दे–अन्वेषण कराओ। भिस्त–बहिस्त, मुक्ति। जोर–बलात्कार, जबर्दस्ती। ओट–सहारा।

**सम्बन्ध**—इससे पहले सद्‌गुरु ने बलि प्रथा का विरोध किया और कहा कि जो अविवेकियों के द्वारा उपासना पद्धति चलायी गयी है। वह पूर्णरूपेण फलहीन है। उसके द्वारा कोई लाभ होने वाला नहीं है। इसलिए सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि बिना दुष्कर्मों के त्याग के और बिना विवेकपूर्ण प्रभु की भक्ति के कल्याण होने वाला नहीं है!

**मूलार्थ**—अब आगे कहते हैं कि हे मुसलमानों के न्यायधीशों! आप लोग किस प्रकार की किताब दिखाकर न्याय करते हैं। अर्थात् व्यवस्था देते हैं। भला वह किताब कहाँ तक सही ब्यान करती है जिसको तुम मानकर मनः कल्पित शुभाशुभ कर्मों को बताते हो। तुम उस किताब को पढ़ कर स्वयं शोक रहित नहीं हुए हो। सदा चिन्तामग्न रहते हो

और रात-दिन बकते झंखते रहते हो कि हमारी किताब खुदा की ओर से पैगम्बर के द्वारा भेजी गयी है। इसलिए यही किताब सही है और इसी पर समस्त मनुष्यों को चलने पर कल्याण होगा। हे काजी ! हे न्यायकर्ता ! तुम्हारी एक भी मति का पता नहीं चलता। अर्थात् तुम उस एक परमेश्वर की बात न समझने के कारण और अपने अनुमान से समस्त कर्मों को कराते हो। तुम अनुमान करते हो कि एक शक्ति है जिसकी उपासना की जाती है वह इष्ट आसमान में रहता है। वही सुन्नत करने के लिये आदेश किया है। ऐसा विचार करके तुम जातीय संस्कार कराते हो। परन्तु मैं तुम्हारे उक्त कर्म को मानने के लिए असमर्थ हूँ। मैं तो कभी तुम्हें नहीं कहूँगा कि तुम सुन्नत कराओ क्योंकि यदि तुझे अल्लाह ताला सुन्नत करने का आदेश दिया होता तो जैसे—वह अन्य अंगों का विभाजन किया है नाक और कानों में, आँखों में, देखने, सूंघने के लिए छिद्रों को बनाया है उसी प्रकार से स्वयं वह पाक प्रभु व पवित्र प्रभु तुम्हारी सुन्नत करके भेज देता। क्या उसके पास सुन्नत करने के असतुरे नहीं थे। जो वह काम तेरे लिए छोड़ दिया। यह कर्म तुम अपने मन से करते हो ? इसमें अल्लाह खुदाताला का कोई आदेश नहीं है। मान लीजिए कि आप सुन्नत करा के सच्चे मुसलमान बनते हो तो अपनी स्त्रियों को कैसे मुसलमान मानते हो। क्योंकि उनकी कोई सुन्नत तो हुई नहीं है। यदि तू कहो कि उनकी सुन्नत खुदा ने स्वयं किया है तो मैं कहूँगा क्या पुरुषों की सुन्नत करना खुदा भूल गया था। यह सारा प्रपंच तुम्हारा गढ़ा हुआ है। तुम कहते हो कि स्त्री, पुरुष की आधी अंग हैं जिससे उन्हें अर्द्धांगिनो कहते हो। यदि यह बात सही है तब तो तुम आधे ही मुसलमान हुए। आधा अंग तेरा हिन्दू का ही रह गया। इसी प्रकार से सद्गुरु देव ब्राह्मणों से कहते हैं कि तुम यज्ञोपवीत कराकर व जनेऊ पहन कर ब्राह्मण हो जाते हो तो अपनी अर्द्धाङ्गिनी महिला को व स्त्री को क्या पहनाते हो। वह तो बिना संस्कार के शूद्रा रह जातो है और उसी के बनाये हुए भोजन को हे पाण्डेय जी ! आप खाते हैं जबकि आपका शास्त्र कहता कि—

"स्त्रो शूद्र द्विज वन्धुणां त्रेय न श्रुति गोचराः।"

आर "जन्मना जायते शूद्रा संस्कारात द्विज उच्यते।"

इत्यादि बातें आपके पूर्वज लोग स्मृति ग्रन्थों में लिखते आये हैं। जिनके आधार पर आप धर्म की व्यवस्था देते हैं। इसलिए स्त्री के संस्कार विहीन होने के कारण आप भी आधे अंग शूद्र ही रह गये। यह आप लोगों की पोप लीला और वर्ण व्यवस्था अविवेकपूर्ण है। आप इस पर फिर से विचार करें।

मैं तो कहता हूँ कि हिन्दू और मुसलमान कहाँ से आये अर्थात् हिन्दू और मुसलमान के आने का स्थान और भेजने वाला एक ही है और दोनों की शक्ल सूरत भी एक ही है और सभी अवयव भी एक से हैं। जन्म कर्म के रास्ते भी एक हैं। तो भला उपर्युक्त राह कहाँ से चल पड़ो जिसको आप लोग चला रहे हैं। यदि आप उपर्युक्त संस्कारों के द्वारा ही मुक्ति मानते हैं तो सम्भव नहीं है। क्योंकि ठंढे मन से दिल में खोजकर देखिये हृदय में अन्वेषण करके देखिये और मुझे भी खोज करके बताइये कि मुक्ति कहाँ से आयी, मुक्ति का रास्ता कौन प्रकट किया।

मैं कबीर आप सन्तों से कहता हूँ कि ये काजी लोग और ये पंडित लोग मेरे से जोर जबरदस्ती करते हैं और अपने कल्पित मार्ग को सत्य कहते हैं इसलिए मैं इनके बताये हुए मार्ग पर विश्वास नहीं करता। मैं कबीर पुनः कहता हूँ कि ये मुसलमान लोग और ये पाण्डेय हिन्दू लोग ईश्वर का आश्रय नहीं ग्रहण किये। इसलिए अन्ततोगत्वा पश्चात्ताप करके इस संसार से चले गये।

**आशय**—संसार का मनुष्य अपने सुख के लिए सारी व्यवस्थाओं की कल्पना करते रहता है और उसी पर सबको चलने के लिए अग्रसर करता है परन्तु सर्वज्ञ न होने से पूर्ण सफलता नहीं मिलती। इसलिए बार-बार सोचते और चिन्ता करते रहना है।

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि यह सारा विस्तार मनुष्यों का बनाया

हुआ है। इसलिए यह अपूर्ण है। इस पर विना सोचे समझे नहीं चलना चाहिए अन्यथा कल्याण नहीं होगा।

## सबद ८५

### परिग्रह निषेध प्रकरण

**भूला लोग कहै घर मेरा।**
**जो घरवा में भूला डोले, सो घर नाहीं तेरा॥**
**हाथी घोड़ा बैल बाहनू, संग्रह कियो घनेरा।**
**बस्ती मां से दियो खदेरा, जंगल कियो बसेरा॥**
**गांठी बांधि खरच नहिं पठयो, बहुरि न कीन्हों फेरा।**
**बीबी बाहर हरम महल में, बीच मियां को डेरा॥**
**नउ मन सूत अरुझि नहिं सुरझा, जनम-जनम उरझेला।**
**कहैं कबीर सुनो भाई सन्तों, यह पद का करहु निबेरा॥**

**शब्दार्थ**—भूला–अज्ञानी, विस्मृत। घरवा–घर, गृह। भूला–भ्रमवश। बाहनू–वाहन, रथ। घनेरा–बहुत। बस्ती–ग्राम। खदेरा–भगा दिया। जंगल–वन, श्मशान। बसेरा–निवास। गांठि–गठरी। पठयो–भेजा। फेरा–पुनरागमन। बीबी–विवाहिता, पत्नी। हरम–रखेल, प्रेमिका कुलटा। महल–महालय, गढ़, राजभवन। मियां–पुरुष, गृहस्वामी। डेरा–निवास स्थान। नउ मन सूत–शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। अरुझि–एक ही साथ में अभिन्न होना। सुरझा–सुलझ नहीं सका। पद–आत्मपद, वाक्य। निबेरा–निर्णय। उरझेला-अरुझुराना।

**सम्बन्ध**—इसके पूर्व हिन्दू, मुसलमानों के मौलिक ग्रन्थों पर एवं जन्म संस्कारों पर विचार करते हुए उसको निरर्थक प्रमाणित किया गया है क्योंकि वाह्य संस्कारों के द्वारा किसी कार्य विशेष की सिद्धि नहीं हो सकती। यह सब उक्त संस्कार मनः कल्पित हैं। अपनी-अपनी जातियों को बाँधने के लिए घेरा डाले गये हैं। क्योंकि जन्म जात मनुष्य किसी भी संस्कार से युक्त होकर नहीं आता है। माता के गर्भ से आने

के बाद पुरोहित और मौलवी तथा पादरी लोग अनेक प्रकार के बन्धन गढ़ते रहते हैं और अपनी-अपनी गुरुआई चलाने के लिए जीवों को धारण करवाते हैं। अब आगे सद्गुरु संसार व शरीर रूपी घर को अस्थायी बताते हुए उस पर प्रकाश डालते हैं।

**मूलार्थ**—अज्ञानी लोग कहते हैं कि यह मेरा घर है अर्थात् यह शरीर मेरा है। यह घर द्वार जगह जमीन भूइँ भांड़े सब हमारे हैं। परन्तु जिस घर में तू भ्रमवश, अज्ञानवश डोल रहा है, चल रहा है, वास्तव में वह घर तेरा नहीं है। है भी तो क्षणिक है। सदैव तुम्हारा निवास इसमें रहने वाला नहीं है। यहाँ से इस घर को छोड़कर तुमको जाना है। तूने हाथी, घोड़ा, रथ, अनेक प्रकार की सम्पदाओं का संग्रह किया है बहुत किया परन्तु तू उसको भोग नहीं सका। तुम भोगने के पहले ही यमराज के द्वारा व मृत्यु के द्वारा इस घर से निकाल दिया गया व भगा दिया गया। तेरे शरीर का निवास जंगल के श्मशान में हो गया। जिस शरीर को तुम बढ़िया रीति से सजाते थे उसका बसेरा व निवास विरान में हो गया। लोग कहते हैं कि अमुक आदमी दान दिया है, यज्ञ किया है अनेक प्रकार के शुभ कार्य किया है परन्तु जो यहाँ से गया कितना भी धर्मात्मा रहा, कितना भी पुण्य करने वाला रहा, वहाँ से परिवार वालों के लिए कोई खरचा व धन दौलत गठरी बाँधकर भेज नहीं सका और अपने प्रिय परिवार स्त्री पुत्र के लिए पुनः लौटकर समाचार लेने भी नहीं आया कि वे लोग किस दशा में हैं। सुख में हैं कि दुःख में हैं। आदि-आदि बातें वहाँ जाने पर भूल गया। अर्थात् यह जीवात्मा न किसी का साथी है न संगी है न इसका कोई परिवार है न कोई भाई है न बन्धु है। यह असंग है अनंग है, भ्रमवश मायिक-प्राणियों को अपना मान लेता है परन्तु सारे के सारे व्यवहार झूठे हैं, निरर्थक हैं। इस जीवात्मा ने सत्य को क्यों नहीं समझा, परमार्थ तत्त्व को क्यों नहीं समझ पाया, इसका कारण यह है कि इसको जो सहगामिनी सुबुद्धि थी। उसको अन्तःपुर से बाहर कर दिया जो असली इसकी पत्नी थी इसको जो सच्ची मति देती थी। सदैव

इसका हित चाहती थी, उसका साथ न करके हरम जो रखेली थी, जो प्रेमिका थी, जो वेश्या थी बहुतों की थी उस दुर्बुद्धि को जो सदा इससे विमति की बात करती थी। जिसके कारण इसका सर्वनाश हो गया उसी रखेली को हृदय रूपी महल में अपने साथ बसा लिया, परन्तु यह सदा पत्नी और रखेली के बीच खींचा तानी में पड़ा रहा। सुबुद्धि कहती थी कि सत्कर्म करो और कुमति कहती थी कि हमारे साथ ऐसो-आराम करो। परन्तु मियां रूपी यह जीवात्मा दोनों के बीच में अटका रहा। कुछ हित की बातों को सोच समझ नहीं सका। अन्ततोगत्वा पंच विषय और चतुस्थ अन्तःकरण रूपी नव सूतों में अरुझा रहा। अर्थात् यह जीवात्मा, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मन, बुद्धि, चित, अहंकार में ही इन्द्रियों के भोग विलास में पड़ा रहा। इन्द्रियों के भोग से इसकी विरति नहीं हो पाई और न नव सूतों से अपने को अलग रख पाया। यह अपने को देह आत्मवादी मान लिया। मैं शरीर हूँ ऐसा अभ्यास इसका बना रहा। इसीलिए यह जन्म-जन्म उपर्युक्त नव सूतों में अरुझा रहा और अपने को उक्त नवों से पृथक करने में असमर्थ रहा। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे सन्त बन्धुओं आप मेरे विचारों को सुनिये और जो पद मैं आपके समक्ष कहा हूँ इस पद में जो नव सूत हैं इनका निरुवार करीये। क्या सत्य है क्या असत्य है दोनों को अलग अलग करके अपने स्वरूप को पहिचानिये।

**आशय**—अज्ञानी मनुष्य संसार में अत्यधिक आसक्त रहता है। उसके लिए जो कुछ है संसार ही है परन्तु सद्गुरु कहते हैं कि यह संसार अनित्य है इसलिए इसका त्याग करना चाहिए और अधिक दौलत की संग्रह नहीं करनी चाहिए। निरपेक्षता के द्वारा जो प्राप्त हो जाय उसी में सन्तुष्ट होकर आत्मचिन्तन करना चाहिए। क्योंकि इन्द्रियों के भोग अनन्त हैं और आयु अल्प है। इसलिए थोड़े में ही समझ बूझकर तब कोई कार्य करना चाहिए।

# सबद ८६

## हठवादी प्रकरण

कबिरा तेरो घर कंदला में, यह जग रहत भुलाना।
गुर की कही करत नहिं कोई, अमहल महल देवाना ॥
सकल ब्रह्म मों हंस कबीरा, कागन चोंच पसारा।
मनमथ करम धरै सभ देही, नाद विंद वेसतारा ॥
सकल कबीरा बोलै बानी, पानी में घर छाया।
अनंत लूट होत घट भीतर, घट का मरम न पाया ॥
कामिनि रूपी सकल कबीरा, म्रिगा चरिन्दा होई।
बड़-बड़ ग्यानी मुनिवर थाके, पकरि सकै नहिं कोई ॥
ब्रह्मा वरुन कुबेर पुरिंदर, पीपा अउ पहलादा।
हरनाकुस नख वोद्र बिदारा, तिनहुँ को काल न राखा ॥

**शब्दार्थ**—कबिरा–कबीर साहब। तेरो–ईश्वर मनुष्य, प्राणी। कंदला–कंदरा, गुफा, शरीर। अमहल–जहाँ महल नहीं। देवाना–दिवाना, उन्मत्त, अलमस्त, बेखबर। हंस–जीवात्मा। कबीरा–कबीर साहब। कागन–विधर्मी पुरुष। चोंच–पक्षी का मुख। मनमथ–कामदेव। करम–कर्म। देही–आत्मा, देह। नाद–शब्द, नाद उस वस्तु को कहते हैं जिसके स्फोट से विश्व का सिर्जन और विस्तार होता है, इसी प्रकार तंत्र शास्त्र के अनुसार बिन्दु उस परम सत्ता को कहते हैं जो सभी रूपों में विराजमान है। जिस बिन्दु से सारी सृष्टि उद्‌भव होती है वह अति सूक्ष्म रूप से प्रत्येक वस्तुओं में समाया हुआ है। विन्द–वीर्य। घट–शरीर। मरम–भेद। म्रिगा–मृग, कामदेव, मन। चरिन्दा–चरनेवाला, भोगने वाला। पीपा–राजस्थान के एक राजा जो बाद में स्वामी रामानन्द जी के शिष्य हो गये। पहलादा–प्रहलाद, हिरण्यकश्यपु के पुत्र। हरनाकुस–हिरण्यकश्यपु। वोद्र–उदर। विदारा–फाड़ा। तिनहुँ–तिनको भी।

**सम्बन्ध**—इसके पहले सद्‌गुरु ने कहा कि संसारी जीव संसार को भोग

वासनाओं में लगे हुये हैं और बिना विचार किये उससे छुटकारा नहीं पा सकते। इन संसारी भोगों को भोगने के कारण बार-बार जन्मते मरते रहते हैं। अब नीचे कहा जा रहा है कि शरीर रूपी गुहा में ये संसार के प्राणी भूले हुए हैं।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे मानव ! ईश्वर रचित जो तेरा घर है जो तेरा शरीर है जिसमें तू रहता है अस्तु उसी शरीरस्थ इन्द्रियों के भोग में समस्त संसार भूल गया है संसार के लोग भव भोग में आसक्त हो गये हैं इसलिये गुरु की बात पर कोई ध्यान नहीं देता है। सद्गुरु कबीर माया विशिष्ट चेतन पुरुष से कहते हैं कि हे प्रभु ! आपके बनाये हुए संसार रूपी घर कंदला में अर्थात् जो उसमें बारीक भोग हैं ये सारे संसार के मनुष्य भूल गये हैं। शरीर भी संसार का ही द्योतक है। सारी चाहना मानव के शरीर एवं मन में ही होती हैं। भोगों की वासना हृदय गुहा में छिपी रहती है यहीं से चित्त वृत्ति वासना लेकर भोगों के पीछे भूली रहती है, एक दो की बात नहीं है। यह सारा का सारा जगत उसी में लगा हुआ है क्यों भुलाया है, क्यों भूला हुआ है तो गुरु की कही हुई बात को कोई मानता नहीं है जो उनका सदुपदेश है उसको कोई मानता नहीं है। ये संसारी जीव जिस मृगतृष्णा रूपी स्थान को महल बना लिये हैं अर्थात् जिस भोग को सत्य मान लिये हैं। वह भोगस्थान नहीं है। वह मृग मरीचिका की तरह ओस कण के समान है एक लघु कण है। जिसको चाट कर संसार के प्राणी उन्मत्त हुए हैं, दिवाना हुए हैं साहब कहते हैं कि सभी प्राणियों में ब्रह्मानन्द रूप सुख व्याप्त है परन्तु वह शुद्ध वृत्ति वाले हंस जीव को ही प्राप्त है। अज्ञानी जीव उस ब्रह्मानन्द सुख से बिल्कुल वंचित रहते हैं। उस ब्रह्मसुख के लिए व उस ब्रह्मसुख में काग बुद्धि वाले विषयी पुरुषों का चोंच नहीं डूब सकता। अज्ञानता के कारण इनके ध्यान का पसारा उधर नहीं हो सकता। क्योंकि वह ब्रह्मसुख निर्मल मन वाले हंस के समान जिज्ञासुओं को ही उपलब्ध होता है। यहाँ पर विचारणीय बात यह है कि हंस और काग दोनों पक्षियों का नाम

आया है तो हंस को शुद्ध अधिकारी जिज्ञासु समझना चाहिए। जो ब्रह्म सुख की प्राप्ति कर सकता है और काग बुद्धि वाले विषयी पुरुष अनाधिकारी हैं जिनको वह सुख दुर्लभ है। क्योंकि ये काग बुद्धि वाले मनुष्य विषय-वासना भोगने के लिए देह धारण किये हैं इसलिए इनकी पहुँच उस ब्रह्मसुख तक नहीं है और ये नाद-विंद के विस्तार में लगे हुए हैं अर्थात् जो योगी जन हैं वे नाद सृष्टि के विस्तार में लगे हुए हैं चेला-चेली बनाने में लगे हुए हैं और जो गृहस्थ हैं वे स्त्री पुरुष मिलकर पुत्र कलत्र बढ़ाने के फेर में लगे हुये हैं।

कबीर साहब कहते हैं सारा संसार अज्ञान मूलक वस्तुओं में भूला हुआ है। अर्थात् अपनी वाणी के माध्यम से बोलते हैं कि ये सभी जीव पानी में घर छाये हुये हैं अर्थात् अपना निवास संसार की मोह माया में, विषय वासना में, बना रखे हैं। घर तो सूखे और ऊँची जमीन पर बनाया जाता है पर यहाँ विचित्रता यह है कि पानी में घर बनाया गया है। जिसके कारण वह घर ध्वस्त हो जाता है और ध्वस्त होने पर उसमें से अनेक प्रकार की लूट हो जाती है। जब मनुष्य विषय-वासना में लगा रहता है। तो उसकी जो वास्तविक सुख-सुविधा वाली सम्पत्ति है जो उसके अन्दर में रहती है उसकी लूट हो जाती है। अर्थात् दया, क्षमा, शांति, धैर्य, सद्बुद्धि आदि दैवो गुण विषयी पुरुषों के अन्दर से पलायित हो जाते हैं। यदि अनन्त का अर्थ इस तन से लिया जाय तो भी उत्तम है क्योंकि विषय भोगते-भोगते चेतन रूपी अनन्त की लूट हो जाती है। अर्थात् इसमें से निकल जाता है फिर उसकी प्राप्ति ये जीव नहीं कर पाते। शरीर चला गया आतमा की लूट हो गयी परन्तु इस घट में रहने वाले का भेद नहीं जान पाया।

कबीर साहब कहते हैं कि मैं तो सारे संसार को देखता हूँ कि वह माया रूपी कामनी में फँसा हुआ है और वह माया रूपी कामनी संसारी प्राणियों को मृग की भांति चर रही है कोई बढ़ने नहीं पाता है और यह कामना रूपी कामनी साधारण लोगों को ही नहीं चर रही है।

बड़े-बड़े ज्ञानी जो शास्त्र को खूब रटे रहते हैं, जिनकी शास्त्र में गति है, जो मननशील मुनि हैं और उनमें जो वे श्रेष्ठ मुनिवर हैं वे भी माया के सामने अथवा उसको वश करने में असमर्थ हैं थके से दीखते हैं। इस कामिनी रूपी माया को कोई पकड़कर अपने वश में नहीं कर पा रहा है। यह बड़ी प्रबल है। यहां तक की ब्रह्मा जी, वरुण जी, कुबेर जी, पुरिंदर कहिये इन्द्र जो सबके सब माया से सामना कर चुके हैं और उसकी दुर्धर्षता को अनुभव करते हैं। इसलिए वे लोग भी डरते रहते हैं यही लोग नहीं इस संसार में जो भी बहुत अच्छे-अच्छे लोग हो गये हैं जैसे संत पीपा जी और भक्त प्रहलाद जी और हिरण्यकश्यपु को अपने नखों से उदर फाड़कर मारने वाले भगवान नृसिंह जो ये लोग भी आज दिखाई नहीं दे रहे हैं। समय के अनुसार काल इनको भी नहीं रहने दिया है। अर्थात् जिस मायिक संसार में तुम लोग भूले हुए हो। इस संसार में उपर्युक्त लोग भी आज दिखाई नहीं दे रहे हैं।

**गोरख ऐसो दत्त दिगंबर, नामदेउ जैदेउ दासा।**
**तिनकी खबर कहत नहिं कोई, कहां कियो हैं बासा॥**
**चउपर खेल होत घट भीतर, जन्म का पासा डारा।**
**दम-दम की कोई खबरि न जाने, करि न सकै निरुवारा॥**
**चारि द्रिग महि मंडल रचो है, रूम साम बिच डिल्ली।**
**तेहि ऊपर किछु अजब तमासा, मारो है जम किल्ली॥**
**सकल अवतार जाके महि मंडल, अनंत खड़ा कर जोरे।**
**अदुबुद अगम औगाह रच्यो है, ई सभ सोभा तेरे॥**
**सकल कबीरा बोलै बीरा, अजहूँ हो हुसियारा।**
**कहैं कबीर गुर सिकली दरपन, हरदम करहु पुकारा॥**

**शब्दार्थ**—दत्त-दत्तात्रेय। दिगंबर-वस्त्रहीन, दिशाही जिनके वस्त्र थे। नामदेउ-नामदेव, एक भगत जो पंडरपुर के रहने वाले थे। जैदेउ-जयदेव नाम के एक अच्छे रसिक कवि हुए हैं जो भगवान कृष्ण

एवं राधा का यशगान किये हैं। चउपर–चौसर एक खेल जो दफ्ती के बने हुए खानों पर अक्सर वृद्ध लोग खेला करते हैं। पासा–गोटी फेंकना, गोंटी डालना। दम दम–पल-पल, क्षण-क्षण। द्रिग–दिशा। महि–पृथ्वी। मंडल–समूह, एक संघ, माड़व। रूम–जो पश्चिम एशिया में ट्रकी के पास पड़ता है, मूलाधार। साम–श्याम, पूरब में जिसको आज कल थाई-लैण्ड कहते हैं, सहस्रार। बिच–मध्य। डिल्ली–दिल्ली, हृदय स्थान, पृथ्वी का मध्य। अजब–आश्चर्य। तमासा–खेल। जम–यमराज। किल्ली–कील कुतुबमिनार जो दिल्ली में बना हुआ है जिसको दिल्लू नाम का राजा ने बनवाया था, स्तम्भ। अनंत–शेषनाग व अनंतलोक। अद्‍बुत–अद्‍भूत। अगम–जहाँ प्रवेश न हो सके, गम रहित। औगाह–अथाह। रच्यो–रचे हैं। ई–यह। सोभा–शोभा, सुन्दर। तेरो–तेरा। बीरा–भाई, ज्ञानी जन।

**मूलार्थ**—चाहे वे गोरखनाथ जैसे महायोगी रहे हों, चाहे गुरु दत्तात्रेय जैसे ज्ञानी दिगम्बर रहे हों, भक्त नामदेव जैसे सन्त रहे हों, जयदेव जैसे कवि रहे हों, चाहे दासा तन की भक्ति करने वाले रहे हों आज वे सब उपर्युक्त देखने में नहीं आ रहे हैं। इनकी खबर बताने वाला भी कोई नहीं है। कहाँ पर इनका निवास है और कहाँ पर ये लोग हैं किस लोक-लोकान्तर में बसे हैं कोई बताने को तैयार नहीं है। इस माया के संसार में—

आया है सो जायेगा,
राजा रंक फकीर।
कोई सिंहासन चढ़ि चले,
कोई बांधे जात जंजीर॥

के अनुसार जाना सबको है किसी को यहाँ रहना नहीं है क्योंकि प्रत्येक मनुष्यों के घट के भीतर में चौपर का खेल हो रहा है। अर्थात् माया सबको खेला रही है। काम, क्रोध, लोभ, मोह यही पासा फेंकने वाले हैं और यह पासा जन्म काल से ही डाला गया है। खेल में एक ओर से

जीव खेल रहा है दूसरी ओर माया वर्ग के काम, क्रोध, लोभ, मोह हैं। जो खेलते-खेलते अन्त में जीव को पराजित कर देते हैं जीव हार जाता है और शरीर रूपी घट से यह स्थान छोड़कर दूसरा स्थान ग्रहण कर लेता है। अनादि काल से माया के द्वारा यह पासा खेला जा रहा है। जिसको संसार के समस्त मानव खेल रहे हैं। यह खेल इतना बारीक है इतना सूक्ष्म है कि इसको कोई देख नहीं पाता। मनुष्य अज्ञान से आवृत्त है, इसलिए पल-पल में व प्रत्येक क्षण में क्या होगा, इसकी जानकारी उसको नहीं है। अज्ञान के कारण वह जान भी नहीं पाता है और निरुवार भी नहीं कर पाता है कि मैं किस प्रकार का पासा फेंकू कि मेरी जीत हो अर्थात् सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सद्‌विवेक की जीत होनी चाहिए परन्तु अल्पज्ञता के कारण 'करि न सकै निरुवारा'। यह चौसर का खेल केवल एक ही देश में नहीं है। ब्रह्माण्ड के सभी मही मंडलों में रचा गया है और सभी प्राणी खेल रहे हैं। रूम वाह्य अर्थ में पश्चिम और साम वाह्य अर्थ में पूर्व है किन्तु आध्यात्मिक अर्थ में 'रूम' मूलाधार है 'साम' सहस्त्रार है और दोनों के बीच में दिल्ली रूपी हृदय राजधानी है। उस राजधानी के ऊपर अर्थात् मध्य में आश्चर्यमय तमाशा है जो आनन्द को देनेवाला है। जिसकी प्राप्ति से आवागमन मिटने वाला है। उसी के बीच में अर्थात् उसके आगे माया का आवरण है, मायारूपी यमराज अज्ञानरूपी स्तम्भ को खड़ा कर दिया है। जिसके कारण उस मूलतत्त्व से जीव, वंचित रह जाता है और माया उसी कील के आड़ से चौसर खेलती रहती है और बार-बार जीवों को हराते रहती है। उस हृदय निवासी महाप्रभु महाचेतन के सामने सकल अवतार नतमस्तक हैं और शेष भगवान भी खड़ा होकर उस तमाशा करने वाले का स्तवन कर रहे हैं। वह प्रभु अद्‌भूत है, अगम है, अथाह है, जिसने इस संसार की रचना की है यह सब शोभा उसकी ही है। वही इसके योग्य है।

कबीर साहब बोलते हैं कि हे भाई वीरा! 'सकल' कहिये सभी लोग सावधान हो जाओ तो आपका पासा पलट सकता है। पुनः कबीर

साहब कहते हैं कि गुरु सिकलीगर अर्थात् शिल्पीगुरु मिल जाय तो ज्ञान-रूपी दर्पण आपको दे दे जिसके द्वारा आप उस हृदय के बीच वाले स्वामी को देख सकते हैं। इसलिए हम सदैव पुकार कर कह रहे हैं कि कोई भी भाई योग्य गुरु के शरण में जाय।

**आशय**—इस नरतन धारी जीव का उद्धार तभी हो सकता है जब चतुर सद्गुरु मिल जावें जो पासा व चौपर खेल को ठीक से सिखा देवें तभी सद्गुरु कबीर भगवान से कहते हैं कि हे प्रभु! तेरे बनाये हुए संसार रूपी गुफा में सभी मनुष्य भूल गये हैं क्योंकि कोई गुरु की बात नहीं मानता जो इस अन्धगुफा से जीवों को बाहर करे। जिस असार संसार में कुछ नहीं है, उसी असार संसार के विषय वासना में ये जीव दिवाना हुए हैं। आश्चर्य तो यह है कि सभी प्राणियों में आप ही व्याप्त हैं। आपको अधिकारी हंस जीव प्राप्त कर लेते हैं परन्तु पामर जीवों की वहाँ पर कोई गति नहीं है। वे तो काम भोग के लिए शरीर धारण किये हैं और नाद विंद के द्वारा इस संसार को उठाने में अहर्निश लगे हुए हैं। मैं तो कहता हूँ कि ये ऊँचे स्थान पर अर्थात् श्रेष्ठ घर बनावें परन्तु ये काग बुद्धि वाले पामर प्राणी विषय वासना रूपी पानी में ही घर बनाते हैं। जिसके कारण अनन्त सत्तावान जीव आत्मा की लूट हो जाती है और उस लूट को ये पामर जीव नहीं जान पाते।

कबीर साहब कहते हैं कि कामिनी रूपी माया के द्वारा ये सकल प्राणी लूटे जा रहे हैं। जैसे मृगी कोमल-कोमल घासों को चरते रहता है उसी प्रकार से मायारूपी मृगी इन अज्ञानियों को निशदिन चर रही है। विषय वासना में भुलवाये हुये हैं। वही इन काग बुद्धि वालों को मीठी लगती है। जिस माया से बड़े-बड़े ज्ञानी मुनिवर थर्राते हैं और वश में नहीं कर पाते उसी माया को यह अज्ञानी जीव हितैषी बनाया है। ब्रह्मा से इन्द्र तक जिससे भय खाते हैं भला ये अल्पज्ञ जीव उससे क्या लड़ेंगे। पीपा जैसे संत, प्रह्लाद जैसे भक्त, हिरण्यकश्यपु को मारने में समर्थ जैसे भगवान नृसिंह, गुरु गोरखनाथ जैसे योगी, दत्तात्रेय जैसे ज्ञानी, नामदेव

जैसे भक्त, जयदेव जी जैसे कवि ये लोग भी माया के भय से निरन्तर अपने स्वरूप में तल्लीन रहते हैं। क्योंकि माया ऐसा खेल प्रसारित किये हुये है कि जिसको सभी अज्ञानी जीव सच मानते हैं और सत्य के आगे माया ने ऐसा पर्दा खड़ा कर दी है कि लोग सत्य को देख नहीं पाते हैं। साहब कहते हैं कि यह पर्दा तभी हट सकता है कि जब कोई सद्गुरु सिकलीगर मिल जाय और सत्य को परखावे तभी ये जीव जान सकते हैं अन्यथा कोई दूसरा उपाय नहीं है।

**अन्तर्कथाएँ**—पीपा जो को कथा भक्तमाल में है कि पीपा जी प्रथम राजा थे और दुर्गा के भक्त थे। फिर संसार से उपराम होकर दुर्गा जी से भक्ति का आशय पूछा। दुर्गा जी ने कहा कि तुम रामानन्द के शिष्य होवो, तब भगवद्भक्ति मिलेगी। तब काशी में शिष्य होने के लिए गये, कुछ परीक्षा करके स्वामो जो ने शिष्य बनाया और साधु सेवा के लिये आज्ञा देकर लौटा दिया। तब राजा घर में जाकर साधु सेवा करने लगा। फिर पूरे एक वर्ष बाद स्वामी जी अपने शिष्यों सहित राजा के घर गये। तब पीपा जी भी साधु हो गये, परन्तु बारह रानियों में से छोटी रानी सीता उनका साथ नहीं छोड़ी, वह भी विरक्त हो गई और दोनों उदार चरित्र किये, तब भक्ति बल से परम सिद्धि को पाये।

कवि चक्रवर्ती जयदेवजी की कथा भक्तमाल में है कि जयदेवजी गीत गोविन्द के कर्ता परमभक्त हुए हैं। उनको कभी मार्ग में ठग मिल गये। उस समय उनके पास कुछ द्रव्य था। ठगों ने पूछा कि तुम कहाँ जाते हो ? जयदेव जो ने कहा जहाँ तुम जाओगे, वहाँ ही मैं जाता हूँ और उनको ठग जानकर जो कुछ भी धन था सो सब दे दिया कि पास का जड़रूप धन त्यागना ही ठीक है, ठगों ने समझा कि यह छली है नगर में जाकर पुनः पकड़वा देगा। इसलिए इसको मार डालना चाहिये। फिर कुछ विचार कर हाथ पाँव काट कर, निर्जल कूप में उन्हें डाल दिया। प्रारब्ध का फल जानकर जयदेव जी प्रसन्न रहे। फिर दैवयोग से एक राजा वहाँ आया। उन्हें कूप से निकाल कर सज्जन भक्त समझ कर, अपने

घर ले गया और सेवा करने लगा। फिर राजा को सन्तसेवी जानकर, वे ठग भी वहाँ सन्त का भेष बनाकर आये। जयदेव जी उन्हें पहचान गये, तो भी पूर्ण सेवा के लिए राजा से कहे, परन्तु ठग भी जयदेव जी को पहचान लिये। इससे भय के मारे शीघ्र विदाई माँगने लगे। तब जयदेव-जी पूर्णद्रव्य दिलवा कर विदा कराये और सिपाही को कहे कि इनके घर तक इन्हें पहुँचावो, ये मेरे भाई हैं। फिर पहुँचाने वाला सिपाही रास्ते में उनसे पूछा कि जयदेव जी से आप सबका कौन सा सम्बन्ध है कि जिससे इतना सत्कार करवाया है। ठगों ने कहा कि हम सब पहले एक राजा के नौकर थे। एक अपराध के कारण राजा ने इन्हें मारने का आदेश दिया, हमने इनके हाथ पैर काटकर छोड़ दिया। इसी से सत्कार करवाये हैं। इतना कहते ही ठग भूमि में धस गये। सो सुनकर जयदेव जी हाथ पैर पटकने लगे, फिर ईश्वर की कृपा से हाथ पाँवजुट गये।

नामदेव जी की कथा भक्तमाल में है कि छिपा भक्त वामदेव जी के नाती नामदेव भक्त हुये हैं। जिनके विषय में कहा जाता है कि, 'नामदेव जी के छाजन छाया, मंदिर फिराया गाय जिलाया।' नामदेवजी के घर में अचानक ही आग लग गयी, तब अग्नि से बचा हुआ सामान को नामदेवजी ने स्वयं अग्नि में डाल दिये कि भगवत तुल्य अग्निदेव ! यह भी मैं आप को भेंट करता हूँ, इसे ग्रहण कीजिये। आप के इस घर में कोई आ ही नहीं सकता है। फिर इस भावना से प्रसन्न होकर भगवान स्वयं आकर उनके घर छाये। उत्सव के समय नामदेव जी भगवद् मंदिर में गये। तहाँ विचारा कि जूता को बाहर छोड़ने पर उसमें मन लगा रहेगा, इससे उसे कमर में बाँध लिया। सो जानकर अन्य लोगों ने उन्हें धक्का देकर निकाल दिया। फिर नामदेव जी ने प्रसन्नतापूर्वक मंदिर के पीछे जाकर भजन करने लगे, तो जड़ से मन्दिर फिर गया और नामदेव के सन्मुख हो गया। एक बार नाना के कहीं जाने पर नामदेव जी ने भगवान को भोग लगाया परन्तु भगवान प्रगट होकर दूध नहीं पीये जिसके कारण नामदेव जी चाकू भोंककर प्राण देना चाहे। तब प्रेमवश भगवान प्रकट हुए और

दूध पीये। उनके नाना के आने पर यह बात सर्वत्र फैल गयी। सो सुनकर यवन बादशाह परीक्षा के लिए मरी हुई गाय को जिलाने के लिए कहा, तो वह भगवद् कृपा से जीवित हो गयी।

## सबद् ८७

### हठयोग साधना प्रकरण

कबिरा तेरो बन कंदला में, मानु अहेरा खेलै।
बफुवारी आनंगु म्रिगा, रुची रुची सर मेलै॥
चेतत रावल पावल खेड़ा, सहजै मूल बांधै।
ध्यान धनुस ग्यान बान, जोगी सर साधै॥
खट चक्र बेधि कौल बेधि, जाय उजिआरी कीन्हा।
काम क्रोध लोभ मोह, हांकि साउज दीन्हा॥
गगन मध्ये रोकिन द्वारा, जहाँ दिवस नहिं राती।
दास कबीरा जाय पहुँचे, बिछुरे संगी साथी॥

**शब्दार्थ**—कबिरा–कवीर साहब। तेरो–ईश्वर व मनुष्य। बन–घर, जंगल, जल। कंदला–शरीर, गुफा। मानु–मन। अहेरा–आखेट, शिकार। बफुवारी–वपुवारी, शरीर। आनंगु–कामदेव। म्रिगा–मृग, विषय सुख, काम क्रोधादि। रुचि–इच्छा के अनुसार। चेतत–चेतल, सावधान। रावल–राजा, चैतन्य। पावल–पाया, प्राप्त किया। खेड़ा–गाँव। सहजै–सहज में। मूलबांधै–मूलबंध, मूलबंध उसे कहते हैं जो गूदा को संकोच करके ऊपर की ओर आकर्षित किया जाता है। खटचक्र–मूलाधारचक्र, स्वधिष्ठानचक्र, मणिपूरकचक्र, अनाहतचक्र, आज्ञाचक्र, शून्यचक्र। बेधि–बेधनकरना, भेदन। कौल–अष्ट कमल। उजिआरी–उजाला। हाँकि–खेदकर। गगन–सहस्रार। द्वारा–इन्द्रियों का छिद्र। साथी–काम, क्रोध, मद, लोभादि।

**सम्बन्ध**—इसके पहले कहा गया है कि संसार रूपी गुफा में मनुष्य भूल गया है। वह अपने को पहचान नहीं पाया है। अनेक प्रकार की

मोह, माया में लिपटा हुआ है। अन्त में कहा गया है कि सभी भव बंधन से मनुष्य तभी मुक्त हो सकता है जब सिकलीगर गुरु की प्राप्ति हो जाय अर्थात् आत्मज्ञानी गुरु के मिलने पर ही मनुष्य भवसागर को पार कर सकता है। अब पुनः उसी बात को कहकर मन की दशा और कामदेव की कला को बताकर योग ध्यान के द्वारा भव बन्धन छूटने का उपाय बता रहे हैं।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कवीर कहते हैं कि प्रभु के बनाये हुए घर में जो मनुष्य का हृदय है वही गुफा है। दूसरा गुफा संसार भी है। विशेष संकेत यहाँ पर मनुष्यों से यह कहते हैं कि हे मनुष्य ! तेरे हृदय में जो तेरा मन तुम्हारा आखेट कर रहा है व शिकार खेल रहा है। तेरी जो यह शरीर है वही बाटिका है, जो कामदेव है वही मृग है, कामदेव रूपी मृग के साथ तेरा मन रात-दिन आखेट खेल रहा है और बहुत मधुर-मधुर तीर चला रहा है। कामबाण जो है वह बहुत मीठा है। जिसके शरोर पर कामरूपी बाण को मन फेंकता है वह शून्य हो जाता है अर्थात् मन से उत्पन्न हुआ कामदेव जिसके ऊपर शिकार करता है वह सारी दैवी सम्पदा को भूल जाता है। उसके अन्दर आसुरी सम्पदा विराजमान हो जाती है जिसके चलते अनेक प्रकार के अनर्थ करते रहता है।

इसलिए सद्गुरु कवीर साहब कहते हैं कि जो मन का खेल है मनुष्य को चाहिए कि उस खेल को बन्द करें। जिसके कारण बार-बार जन्मते मरते रहते हैं। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि वह चेत जाय क्योंकि मानवतन बहुत दुर्लभ है इसी में परम तत्त्व की उपलब्धि सम्भव है, जो चेत जाता है वह रावल इसी दुर्लभ नरतन में रहता है। इसी शरीर के अन्दर में बैठा हुआ है जो शरीर रूपी ग्राम में अहर्निश विराजमान रहता है उसी की प्राप्ति मनुष्यों को करनी चाहिए।

साहब कहते हैं कि जो चेत जाता है, जो खोज करता है, वह शरीर के राजा के ग्राम को अर्थात् जो हृदय रूपी गुफा में छिपा हुआ है उस पावन पवित्र आत्मा को पा जाता है। पाने की विधि यह है कि सहज

ध्यान व सहज योग का अभ्यास करे.और पहले मूलबंध को बांधे। मूलबंध बांधकर उड्डियान बंध को करे। फिर उसके बाद जालन्धर बध को लगावे। तीनों बंध को एक साथ में लगाकर योगी ध्यान रूपी धनुष पर ज्ञान रूपी बाण को चढ़ाकर शर को बढ़िया से साधे अर्थात् सही निशाना लगावे। तब षट्चक्रों को एक-एक करके वेधता हुआ जाय और तदुपरान्त अष्टकमलों का भी वेधन करे। अष्टकमलों और षट्चक्रों का वेधन एक ही साथ हो जाता है। क्योंकि जो कमल हैं वे षट्चक्रों के ऊपर विराजमान रहते हैं। इसकी विधि यह है कि मूलाधार चक्र पर सुषुम्ना में जब योगी ध्यान करता है तो उसका कुछ दिन में वेधन हो जाता है। इसी प्रकार से स्वधिष्ठान चक्र का भी ध्यान के द्वारा भेदन हो जाता है और मणिपूरकचक्र का भी ध्यान करके वेधन किया जाता है। इसी प्रकार से अनाहत और आज्ञा चक्र को ध्यान के द्वारा, क्रिया के द्वारा ज्ञान चिन्तन के द्वारा भेदन करता हुआ योगी सहस्रार की ओर अग्रसर हो जाता है और आज्ञा चक्र में ही उसे प्रकाश के दर्शन होने लगते हैं। जब योगी आज्ञाचक्र में पहुँच जाता है तो बिना कहे सुने काम, क्रोध, लोभ, मोह रूपी सावज व शिकार अपने आप पलायित हो जाते हैं। जब योगी सहस्रार में पहुँच जाता है तब सारी इन्द्रियों के द्वार को बंद कर देता है। सहस्रार में न दिवस का ज्ञान है न रात्रि का ज्ञान है। अर्थात् वहां दिन-रात कुछ भी नहीं होते। जहाँ पर आत्मा का निवास है वहां पर स्वतः प्रकाश रहता है। वह प्रकाश सूर्य के प्रकाश से भिन्न प्रकार का होता है। वह अति सौम्य प्रकाश मधुरिमा लिये होता है और रात्रि भी उस आत्मप्रदेश में नहीं रहती।

कबीर साहब कहते हैं कि इस प्रकार की साधना के द्वारा मैं अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच गया हूँ और जो मेरे संगी साथी थे। जो पंच ज्ञान इन्द्रियों के विषय थे और जो काम, क्रोध, लोभ, मोह के साथ में लगे रहते थे जो नाना प्रकार के दुःख देते रहते थे। अविद्या, स्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश आदि जिन साथियों के कारण बार-बार जन्म-मरण

होता था वे साथीगण अब मुझसे दूर हो गये।

**आशय**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि मनुष्य के हृदय गुफा में व शरीर के अन्दर मन विषय भोग के लिए कामदेव के द्वारा बराबर शिकार करते रहता है इस शरीर रूपी वन में सदैव भ्रमण करते रहता है। ऐसे धूर्तई से बाण चलाता है कि मनुष्यों की विषय इन्द्रियाँ जग जाती हैं। जिनके रस के लिए व भोग के लिए मानव विकल हो उठता है।

सद्गुरु कहते हैं कि मन के कार्य को रोककर आत्म प्राप्ति के लिए उपाय करना चाहिए क्योंकि जिस शरीर में काम, क्रोध लोभ, मोह निवास करते हैं उसी शरीर में आत्मा भी निवास करता है। जो चेत जाता है, मन को वश में कर लेता है, वह आत्मा को हृदय रूपी ग्राम में पा लेता है। प्रतिज्ञा यह है कि उसके लिए कुछ योग युक्ति करनी पड़ती है। उसके लिए सबसे उपयुक्त सहज योग है। यदि सहजयोग न हो सके तो मूलवंध आदि हठयोग की क्रियायें करनी चाहिए। हठयोग के द्वारा भी साधक सत्य तक पहुँच सकता है।

स्मरण रहे कि शरीर के अठारह मर्म स्थानों में आत्मा का निवास विशेष रूप से रहता है। उससे भी विशेष मूलाधार चक्र में और नाभि कमल में एवं हृदय में और सहस्रार में साधक आत्मा विशेष रूप से निवास करता है। इन अठारह स्थानों में व चार स्थानों में ध्यान करने से मन का निग्रह होता है।जब मन का निग्रह हो जाता है। तब साधक को सत्य तक पहुँचने में विलम्ब नहीं होता है परन्तु बिना पहुँचे हुए गुरु के ये सब साधन सिद्ध नहीं हो सकते। योग ध्यान के लिए क्रिया निष्ठ गुरु की बड़ी आवश्यकता होती है।

**षट्चक्रों के नाम तथा वेधन क्रिया विधि**—गुदा स्थान मूलाधार चक्र, पेड़ू स्थान स्वाधिष्ठान चक्र, नाभि स्थान मणिपूरक चक्र, हृदय स्थान अनाहत् चक्र, कण्ठ स्थान विशुद्धि चक्र, त्रिकुटी स्थान अग्नि चक्र ये षट् चक्र हैं। यहाँ योगी लोग प्रथम गणेश क्रिया द्वारा गुदा को साफ कर गुदा से पानी खींचते एवं छोड़ते हैं, जिसका नाम बस्ती क्रिया है, उसके सिद्ध होने से जब

पवन चढ़ने लगता है तब चतुर्दल कमलयुत गुदा चक्र को वेधते हैं। फिर द्वादश अंगुल के गज से गज क्रिया द्वारा लिंग द्वार को शुद्ध करके लिंग से दूध को खींच कर शहत खींचने के पश्चात् गज क्रिया की सिद्धि होती है, उसी क्रिया से वायु को खींचकर छव दल कमल युत पेड़ू स्थानीय स्वाधिष्ठान चक्र को वेधते हैं और अपान को समान वायु में मिला देते हैं। पुनः दो अंगुल चौड़ी, नौ हाथ लम्बी धोती को गीली निगल कर मल साफ करते हैं, ऐसे तीन बार करने से धोती क्रिया सिद्ध होती है। तदनन्तर नाभि से पवन उठाकर दश दल कमल युत नाभि स्थान में मणिपूरक चक्र को वेधते हैं। फिर अनाहत चक्र वेधने के लिये अपान वायु एवं समान वायु को प्राण में मिलाते हैं। प्रातःकाल पेटभर पानी पी-पीकर रस्सी की सवा हाथ की दन्तधोवन से कुंजल क्रिया द्वारा तीन बार जल निकालने से कुंजल क्रिया सिद्ध होती है। पश्चात् वायु को उठाकर द्वादश कमल युत हृदय स्थानीय अनाहत चक्र को वेधते हैं। फिर प्राण, अपान, समान तीनों वायु को कण्ठ स्थानीय उदान में मिला देते हैं, इसके बाद षोड्श दलकमल युत कण्ठ स्थानीय विशुद्धि चक्र को वेधते हैं। तब लम्बिका योग करते हैं जिसमें दूध का आहार और बोल, चाल, शयनादि क्रिया सब सूक्ष्म करते हैं। जिह्वा के नीचे की वह नश मक्खन और लवण से रगड़ते तथा प्रातःकाल जिह्वा दोहन करते हैं। इस विधि से जिह्वा को बढ़ाकर ऊर्ध्व-द्वार में लगा कर उषः काल में जो ऊपर से अमृत टपकता है उसे पान करते हैं। इस अमृत को पान करने से शरीर में स्फूर्ति आती है तब षोडश दल कमल युत कण्ठ स्थानीय विशुद्धि चक्र को वेधते हैं। यही लम्बिका योग की सिद्धि है। पुनः नेती क्रिया से नाक में बत्ती डालकर साफ करते और उदान वायु को खींच कर प्राणायाम परायण होते हैं और कण्ठ से वायु को उठाकर द्विदल कमल युत-त्रिकुटी स्थानीय अग्नि चक्र को वेधते हैं फिर विशुद्धि चक्र वेधने के पश्चात् जब अग्नि चक्र में वायु आ जाती है तब जिह्वा को उलट कर ऊर्ध्व द्वार में लगा देते हैं और ऊर्ध्व द्वार को बन्द कर देते हैं इस विधि से अग्नि चक्र वेधने के बाद कुम्भक द्वारा

ब्रह्माण्ड में श्वास वायु लय होकर प्रकाशित होता है फिर योगियों का पिण्ड शून्य पड़ जाता है तब काम, क्रोध आदि जो चित्त में विक्षेप करने वाले शत्रु थे वे सहज में ही भाग जाते हैं।

गगन मध्ये रोकिन द्वारा। जहाँ दिवस नहिं राती।
दास कबीरा जाय पहूंचे। बिछुरे संगी साथी॥

फिर सहस्त्र दल कमल में स्थिर होकर प्राणवायु को नीचे आने के द्वार को लम्बिका करण खेचरी मुद्रा के प्रवन्ध से रोक देने से वहाँ रात-दिन कितने बीत गये, यह कुछ भी खबर योगी को नहीं होती। सद्गुरु कहते हैं कि भक्तजन निज स्वरूप में विराजते रहते हैं अब वे संसार सागर में आने के योग्य नहीं रहते, वे सदा के लिये मुक्त हो जाते हैं।

## सबद ८८

### जीवात्मा विशेष प्रकरण

**साउज न होय भाई साउज न होई, वाकी मांसु भखै सभ कोई।**
**साउज एक सकल संसारा, अविगति वाकी बाता॥**
**पेट फारि जो देखिय रे भाई, आहि करेज न आंता।**
**ऐसी वाकी मांसु रे भाई, पल-पल मांसु बिकाई॥**
**हाड़ गोड़ ले घूर पवारिनि, आगि धुवां नहिं खाई।**
**सीर सिंगी किछुवो नहिं वाके, पूछ कहां वै पावै॥**
**सब पंडित मिलि धन्धे परिया, कबिरा बनौरी गावै।**

**शब्दार्थ**—साउज–शिकार, चार पैर वाला पशु, चिड़िया, पक्षी आदि, एक वाक्य में शिकार। वाकी–उसकी। अविगति–जिसकी गति समझ में न आवे। आहि–कलेजे का मर्माहत दुःख है। पल-पल–क्षण-क्षण। बिकाई–विक्री। हाड़ गोड़–पैर, पद सत्य, अहिंसा, क्षमा, ब्रह्मचर्य आदि। घूर–कूड़ा खाना। पवारिनि–फेंक दिया, उपेक्षा कर दिया। सीरसिंगी–मस्तक तथा शृंग। किछुवा–कुछ भी। वाके–उस सावज के। पूंछ–पूंछ। धंधे–इसकी खोज में। बनौरी–विवाह के अवसर का मंगल गीत।

**सम्बन्ध**—पहले तो यह कहा गया कि शिकार ने ही शिकारियों को खेद दिया। अर्थात् सावज बधिक को मार भगाया। जो प्रतिदिन मांस भक्षियों के द्वारा मारकर खाया जाता था। अब वह शिकारी को ही मार भगाया। क्योंकि आत्म ज्ञान होने पर अपना महत्व जान गया।

**मूलार्थ**—अब नीचे सद्‌गुरु कबीर साहब कहते हैं कि हे भाई! यह जीवात्मा सावज व शिकार नहीं है। परन्तु उसकी 'मांस भखै सभ कोई' अर्थात् इस जीवात्मा का भक्षण कामी, क्रोधी, लोभी, मोही पुरुषों द्वारा नित्य हो रहा है। यह जीव इन्द्रियों के वश में होकर शरीराकार अपने को मान लिया है और अपने स्वरूप प्रत्यक् चेतन आत्मा को अपने से भिन्न मान लिया है। परिणाम स्वरूप अपने द्वारा ही अपना नाश हो रहा है और यही जीवात्मा 'सावज' रूप से सारे संसार में व्याप्त हो रहा है। जिसका रहस्य कोई जान नहीं पाया। क्योंकि वह रहस्यमय अविगति पुरुष है। उसको पहचानने में किसी की मति काम नहीं कर पाती। कारण कि यह जीवात्मा अति रहस्यमय है। यदि इस जीवात्मा के अन्तस्तल में विचारकर देखा जाय तो बहुत मार्मिक दुःख होता है। परन्तु विषयी पुरुष उस आत्मा को समझ नहीं पा रहे हैं और न समझने की कोशिश ही कर रहे हैं और उस आत्मा के साथ जो कुकर्म कर रहे हैं उसके लिए पश्चात्ताप भी नहीं कर रहे हैं।

कबीर साहब कहते हैं कि हे भाई! उस जीवात्मा का भोग व मांस इस प्रकार का है कि प्रत्येक क्षण में उसका विषयी पुरुषों द्वारा उपभोग किया जा रहा है। अर्थात् इन्द्रियों के वश में पड़ा हुआ यह जीवात्मा क्षण-क्षण में नाश को प्राप्त हो रहा है। इस बात को कोई विवेकी पुरुष ही समझ सकता है जिस पर यह जीवात्मा आश्रित था जो इसके हाथ पैर थे, उन ब्रह्मचर्य, सत्य, अहिंसा, क्षमा, सत्य विचार, धैर्य आदि को गन्दे कूड़े खाने में फेंक दिया। अर्थात् उसकी उपेक्षा कर दी। संसार के सुख को ही सत्य मान लिया। जैसे अग्नि कालिख रूपी धुएँ को विकार समझकर वापस नहीं लेती है उसको निःसार समझ कर दूर कर

देती है। इसी प्रकार से यह आत्मा निरावयव है। यह भी कभी विकार भाव को प्राप्त नहीं होता है। यह आत्मा निरावयव होने के कारण सीर, सींग वाला चार पाया जैसे पशु नहीं है। अर्थात् जिस प्रकार से चार पैर वाले पशु होते हैं उस प्रकार का पशु यह आत्मा नहीं है। जिसमें हाथ-पैर हों वा सिर सींग हों। वह इन सबों से परे है। जिसका भोग इन्द्रियाँ करना चाहती हैं। उस आत्मा में कोई पुछेला भो नहीं है। अर्थात् अति सूक्ष्म होने के कारण उसमें पकड़ने के लिए पूँछ आदि कोई अवयव नहीं हैं। इसी आत्म तत्त्व को खोजने के लिए व समझने के लिए संसार के समस्त पंडित जन पड़े हुए हैं और उसी को अपने कमाने खाने का धंधा बना लिये हैं।

सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि इन धंधेबाज पंडितों से मैं पृथक होकर आत्मा को पहचान कर, उसकी खुशी की मांगलिक गीत गा रहा हूँ।

**आशय**—सद्गुरु कबीर साहब मांसाहारियों से व तान्त्रिकों से कहते हैं कि जिन पशु आदि को सावज समझकर आप उनकी मांस को पवित्र मान रहे हैं और खाने के लिए नाना प्रकार के षट्कर्म रचते हैं मैं तो कहता हूँ कि जहाँ चेतन आत्मा का वास है। जिन-जिन वस्तुओं में चेतन विराजमान है वे खाने के लिए नहीं हैं। जिसकी मांस को सब कोई खाते हैं उसमें मन के द्वारा आत्मा को पोड़ा होती है। इसलिए वह आत्मा सावज कभी नहीं हो सकता है क्योंकि वह आत्मा अविध्य है, रहस्यमय है। भला तुम जिन पशुओं को मारते हो। उनके उदर को फाड़कर देखने से तेरे कलेजे में मार्मिक दुःख नहीं होता है। जिसकी मांस को तुम पल पल कहिए रोज व्यवहार में लाते हो। कड़ी हड्डियों को व हाथ-पैर को घूर आदि में फेंक देते हो। उसी प्रकार से जैसे अग्नि धूम्र को नहीं ग्रहण करती।

मैं तो कहता हूँ कि जिन पशुओं को तुम मारते हो। उनमें जो सिर, शृंग देख रहे हो वह तो ऊपरी भाग के हैं। उनके भीतर जो आत्मा

है उसमें न सिर है न शृंग हैं न पूंछ है वह सभी प्रकार के आकारों से भिन्न है। जिस आत्मा के बारे में संसार के समस्त पंडित लोग विचार करते हैं और बड़े-बड़े शास्त्रार्थ रचाये जाते हैं और बड़े-बड़े शास्त्रार्थ होते रहते हैं। शास्त्रार्थ तो पंडितों का धंधा है क्योंकि यदि पंडित लोग सभी प्राणियों में आत्मा को पहचाने होते तो उसको सावज मान कर न उसको खाते न उसकी विक्री कराते।

मैं कबीर तो उस आत्मा को जान गया हूँ। इसलिए खुशी की गीत गाते रहता हूँ।

## सबद ८९

### मानव शरीर अनित्य प्रकरण

**सुभागे केहि कारण लोभ लागे, रतन जनम खोयो।**
**पूरब जनम भूमि कारन, बीज काहे को बोयो॥**
**बुन्द से जिन्ह पिंड संजोयो, अगिनी कुंड रहाया।**
**जब दस मास मातु के गरभे, बहुरिहिं लागलि माया॥**
**बारहु ते फुनि ब्रिद्ध हुआ, होनहार सो हूवा।**
**जब जम ऐहैं बांधि चलइहैं, नैन भरी-भरि रोया॥**
**जीवन की जनि आसा राखो, काल धरे हैं सांसा।**
**बाजी है संसार कबीरा, चित चेति डारो पासा॥**

**शब्दार्थ**—सुभागे–मनुष्य तन पाने वाले अच्छे भाग्यों से युक्त। केहि–किस। पूरब जनम–पूर्व जन्मके संस्कारों के कारण। बीज–नया संस्कार। बुन्द–माता, पिता का रज वीर्य। पिंड–शरीर। संजोयो–सुरक्षित रखा। अगिनीकुंड–अग्निकुण्ड, माता के उदर में, जठरानल में। बारहु–बालक। ब्रिद्ध–वृद्ध, जरावस्था। बाजी–सारे संसार को काल के द्वारा सूचित कर दिया गया, दाव, पासा। पासा–दाव, कर्म।

**सम्बन्ध**—इसके पहले सद्गुरु साहब ने मांसाहारियों और इन्द्रिय

भोगियों के प्रति कड़ा आक्षेप किया है और आत्मा को निर्मल बताया है। अब नीचे सभी योनियों में मनुष्य को श्रेष्ठ बता रहे हैं।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सुभागे अच्छे भाग्य वाले ! तुम किस कारण से संसारी वस्तुओं में लोभ लगाये हो जिन वस्तुओं को तुम चिरन्तन रहने वाला समझते हो। जिस स्त्री सुख को, जिस पुत्र सुख को, जिस धन सुख को तुम सत्य मान रहे हो, वे तो अस्थायी हैं। उनका सुख भी क्षणिक है। तो भला तुम क्यों किन कारणों से उनके लिए ललायित फिर रहे हो। अपने सत, चित्त, आनन्दस्वरूप को छोड़कर तुम मिथ्या सुखों में क्यों पड़ गये हो। भला यह तुम्हारा नर तन रत्न के समान था बहुत मूल्यवान था, इसको संसारी सुखों के पीछे क्यों खो दिया। क्योंकि पूर्वजन्म में तुमने दुष्कर्म-स्वरूप, वासना रूपी भूमि को स्वयं तैयार किया था जिसके कारण तुम्हें पुनः जन्म लेना पड़ा और नानाप्रकार के संकटों का सामना करना पड़ा। फिर भी तुम भोग वासना रूपी नये-नये संस्कारों का बीज क्यों बो रहे हो। जब तक तेरे सकाम कर्म बंद नहीं होंगे। जब तक तू कामनायुक्त कर्म करते रहोगे तब तक तुम जन्म मरण के चक्र में पड़े रहोगे। भला माता-पिता के रज-वीर्य, रूपोबुन्द से जिन प्रभु ने तुम्हारे शरीर रूपी पिंड को सुरक्षित रखा है और माता के गर्भाशय में जठराग्नि से तुझे पकाया बचाया और जब दस मास तक माता के गर्भ में विराजमान था, जो वहाँ तुम्हारी रक्षा कर रहा था, संसार में आने पर तुम उसका परित्याग कर दिया। उसको भूल गया और पुनः तुम माया के पीछे लग गया। जिस माया के कारण दस मास तक माता के गर्भ में पकता रहा। आज तू अपनी अज्ञानता के कारण पुनः उसी स्त्री, पुत्र, धन, दौलत को सत्य समझकर लगे हो। तुम बाल्यावस्था से पुनः वृद्ध हो गया, परन्तु कुछ अच्छा काम किया नहीं। जो मोह माया के कार्य होने वाले रहे वही हुए जो होनी रही वही हुई। अब तो थोड़े दिन में यमराज व रवि तनय आयेंगे और तूझे बांध-कर ले चलेंगे तब संसार से बिछुड़ते समय तेरे नेत्रों में आंसू भर आयेंगे

तुम खूब रोयेगा। तेरे नेत्र अविरल गति से पानी बहाते रहेंगे। तेरे उस यम जन्य दुःख को कोई समझ नहीं पायेगा। रे मूर्ख! अधम मनुष्य! तुम बाल अवस्था से वृद्ध हो गया। खाट पर पड़ गया है अब अपने जीवन की आशा न रख। तुम्हारे श्वांस को भगवान भास्कर के पुत्र पकड़ चुके हैं। तुझे अपने यमालय में ले जायेंगे और कर्मानुसार पुनः तुझे माता के गर्भ में झोक देंगे भगवान अंशुमाली के पुत्र का डंका सारे संसार में बज चुका है।

मरने की सूचना सबके यहाँ भेज दी गयी है। हे मूर्ख! तू अच्छी प्रकार से सोच समझ कर कर्म रूपी पासा फेंक कि तेरी जीत हो। तुम पुनः माता के गर्भ में न पड़। सन्त सद्गुरु की सेवा कर, ईश्वर की प्रार्थना कर। पासा में अजहत स्वार्था है। तात्पर्य यह है कि अच्छी कमाई कर, संतो का सतसंग कर, आत्मा का साक्षात्कार कर, प्रभु पद की प्राप्ति कर, तभी तुम भगवान काल के बंधन से बच सकते हो। अन्यथा कोई दूसरा रास्ता नहीं है जो तुम मृत्यु से बच सकोगे।

## सबद ९०

### शास्त्र ईश्वर भजन प्रकरण

**संत महंतो सुमिरो सोई, जो काल फांस ते बांचा होई॥**
**दत्तात्रेय मरम नहिं जाना, मिथ्या साधि भुलाना।**
**सलिल मथि घ्रित कै काढ़िन, ताहि समाधि समाना॥**
**गोरख पौन राखि नहिं जाना, जोग जुग्ति अनुमाना।**
**रिधि सिधि संजम बहुतेरा, पारब्रह्म नहिं जाना॥**
**वसिस्ट सिस्ट विद्या सम्पूरन, राम ऐसो सिस साखा।**
**जाहि राम को करता कहिये, तिनहुँ को काल न राखा॥**
**हिन्दू कहैं हमहिं ले जारों, तुरक कहैं हमारो पीर।**
**दोऊ आय दीन में झगरैं, ठाढ़े देखैं हंस कबीर॥**

**शब्दार्थ**—सोई–उसको। दत्तात्रेय—एक ऋषि। मरम–भेद। सलिल–जल। पौन–पवन। प्राण–प्राणायाम। रिधि–अनेक प्रकार की शक्ति प्राप्ति की सम्पदा को रिधि कहते हैं। सिधि–इच्छा अनुसार वस्तु प्राप्ति को सिद्धि कहते हैं। संयम–संयम, नियमित आहार-विहार। सिस्ट–श्रेष्ठ। सिस–शिष्य। पीर–गुरु। तुरक–तुर्क, मुसलमान तुर्की देश का रहने वाला। दीन–धर्म, मजहब।

**सम्बन्ध**—इसके पहले सद्गुरु ने काल की भयंकरता दिखाकर मनुष्यों को सावधान किया है कि तुम सम्भल जाओ। मानव को क्या करना चाहिए ? वह नीचे बताते हैं।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे सन्तजन ! हे माननीय महन्त लोग ! आप लोग उस प्रभु का सुमिरण करें जो कभी काल के फंदे में नहीं पड़ता है। जो सदा स्वतन्त्र है। जिसको किसी का भय नहीं है, उस परब्रह्म का चिंतन करें। क्योंकि सर्वप्रथम महर्षि दत्तात्रेय भी इस भेद को नहीं जान पाये कि प्रभु सुमिरण श्रेष्ठ है कि कर्मकाण्ड श्रेष्ठ है। जब-तक वे इस ज्ञान और कर्म के ऊहापोह में पड़े रहे तब तक मिथ्या अर्थात् झूठी साधनाओं में व हल्की साधनाओं में लगे रहे। जिस साधना के द्वारा सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती है, उन्हीं सब साधनों में अपने जीवन को बहुत काल तक यापन किये। जैसे जल के मथने से घृत नहीं निकलता है उसी प्रकार से केवल प्राणायाम के द्वारा तथा हठ समाधि के द्वारा सत्य का साक्षात्कार नहीं हो सकता। यही बात पुराणों में भी दत्तात्रेय के बारे में दर्शायी गयी है कि वे एक बार ब्रह्मज्ञान के सत्संग में एक वेश्या से हार गये थे। पुनः वे महर्षि पराशर से सत्संग किये तब उनको सत्य का साक्षात्कार हुआ।

इसी प्रकार से गुरु गोरखनाथ जिन्होंने प्राणायाम को सिद्ध कर लिया था और हठयोग के परम आचार्यत्व को प्राप्त हो गये थे, परन्तु केवल हठयोग से सिद्धियों की प्राप्ति तो हो जाती है परन्तु हठयोग सत्य तक पहुँचाने में सहायक नहीं हो सकता। योग इतिहासकारों के अनुसार गुरु गोरखनाथ समाधि प्राप्ति करने के लिए अनेक प्रकार के प्राणायामों तथा

योग युक्तियों का आविष्कार किया। जिसके द्वारा उन्हें बहुत सी रिद्धि-सिद्धि का ज्ञान हो गया। हठयोग में गुरु गोरखनाथ जी संयम बहुत बताये हैं। जो प्रथम अवस्था के साधक के लिए बहुत उत्तम हैं परन्तु संयम तक रह जाना, समाधि तक ही रह जाना अन्तिम शिखर नहीं है और केवल संयम के द्वारा परब्रह्म को नहीं जाना जा सकता है। परब्रह्म की उपासना शास्त्रों में बहुत विधि से बतायी गयी है। जिसमें गुरु का महत्त्व बहुत बड़ा है।

सद्‌गुरु कबीर के अनुसार गुरु गोरखनाथ अनेक प्रकार की सिद्धियों एवं रिद्धियों का ज्ञान तो प्राप्त कर लिये थे परन्तु परब्रह्म और ज्ञान की महिमा नहीं जान सके। क्योंकि जब तक परब्रह्म का ज्ञान नहीं होगा मनुष्य तब तक पूर्णत्व को प्राप्त नहीं हो सकता। इसी प्रकार से गुरु वसिष्ठ मुनि बड़े श्रेष्ठ थे। सभी विद्याओं के जानकार थे, सभी विद्याओं में पारंगत थे। जिनकी शिष्य शाखा में श्री रामचन्द्र जी जैसे अधिकारी थे। वे गुरु वसिष्ठ भी प्रथम अवस्था में शास्त्रों एवं विद्या के जाल में पड़े रहे। पश्चात् जब सत्य की उपासना की तब उन्हें आत्म अनुभव का प्रकाश हुआ। संसार के लोग जिस रामचन्द्र को जगत का कर्त्ता कहते हैं। जो बड़े प्रतापी थे, ज्ञानी थे, दानी थे, शूर थे, वीर थे, सत्य प्रतिज्ञ थे। फिर भी आज उनका शरीर देखने को नहीं मिल रहा है।

तात्पर्य यह है कि अल्पज्ञ मनुष्य थोड़ी बुद्धिवाला व्यक्ति बड़ा घमंड करता है। अभिमान में पड़ा रहता है परन्तु यह नहीं समझ पाता है कि इस संसार में मुझे सदैव रहना है कि नहीं, क्योंकि गुरु वसिष्ठ ऐसे ज्ञानी श्रीराम जैसे उनके शिष्य जो विष्णु के अवतार माने जाते हैं जिनको लोग सृष्टि का कर्त्ता कहते हैं उनको भी समय रूपी काल नहीं रख सका वे भी अपना काम करके चले गये। जिनकी आयु ग्यारह हजार वर्ष बतायी जाती है परन्तु अल्पज्ञ मनुष्य अपनी पचास वर्ष की आयु को हजारों वर्ष का अनुमान लगाता है और पश्चात् छूछे हाथों चला जाता है।

सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि मरणोपरान्त इस शरीर को हिन्दू लोग केवल

जलाने को सोचता है। जलाने के बाद मुक्ति मानता है। मुसलमान लोग कहते हैं कि हमारे गुरु का कहना है कि जलाओ मत मुरदे को गाड़कर रखो क्योंकि जला देने पर कयामत के दिन उनका हिसाब किताब नहीं हो सकेगा। इसी प्रकार से दोनों धर्मों के लोग संसार में आकर झगड़ते रहते हैं। हिन्दू कहते हैं कि हमारी संस्कार विधि ठीक हैं। मुसलमान कहते हैं कि हमारी संस्कार विधि श्रेष्ठ है। इन अन्धविश्वासियों के झगड़े को सद्गुरु कबीर साहब जो परमहंस हैं खड़ा होकर देख रहे हैं। कुछ लोग इन दो पंक्तियों के अर्थ को लेकर कहते हैं कि सद्गुरु कबीर साहब अपने प्रति अपने हिन्दू मुस्लिम शिष्यों को सम्बोधित करके कहते हैं कि तुम दोनों हमारे लिए भी जलाने और गाड़ने के लिए झगड़ा करोगे और मैं बिना शरीर के खड़ा होकर तुम्हारी लड़ाई को देखूंगा। जो भी हो अर्थ दोनों पंक्ति में लगते हैं क्योंकि ज्ञानी पुरुष समाज को देखकर अनुमान लगा लेते हैं कि भविष्य में लोग क्या करेंगे।

## सबद् ९१

### व्यापक दुःख प्रकरण

**तन धरि सुखिया काहु न देखा, जो देखा सो दुखिया।**
**उदै अस्त की बात कहत हों, सबका किया विवेका॥**
**बाटे-बाटे सब कोइ दुखिया, का गिरिही बैरागी।**
**सुखाचार्ज दुःख ही के कारन, गर्भहिं माया त्यागी॥**
**जोगी जंगम ते अति दुखिया, तापस के दुख दूना।**
**आसा त्रिस्ना सब घट व्यापे, कोइ महल नहिं सूना॥**
**सांच कहौ तो सब जग खीझै, झूठ कहा नहिं जाई।**
**कहैं कबीर तेई भौ दुखिया, जिन्ह यह राह चलाई॥**

**शब्दार्थ**—तन–शरीर। काहु–कोई। उदै अस्त–आदि अन्त, जन्म से मरण तक। बाटे-बाटे–मार्ग-मार्ग। गिरिही–गृहस्थी लोग जो बाल बच्चों में रहते हैं। वैरागी–वैराग्यवृत्ति से रहने वाले, वैरागी एक जाति जो

भ्रष्ट साधु संतों से बनी है। सुखाचार्ज–शुक्राचार्य व्यास मुनि के पुत्र। जोगी–योगी, ध्यान आदि लगाने वाले। जंगम–चलने फिरने वाले, संन्यासी लोग, विशेषकर जैन साधु। तापस–तपस्वो पंच धुनि व जल शयन के सेवन करने वाले। त्रिस्ना–तृष्णा। महल–शरीर, भवन, महालय। खीझै–रंज होना।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि केवल ऊपरी साधनों से परमतत्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती है। जब तक आत्मज्ञ गुरु कोई नहीं मिलेगा, नीचे यह कहा जा रहा है कि प्राणयाम के द्वारा, औषध सेवन के द्वारा या संयम आदि के द्वारा शरीर की आयु कितनी भो लम्वी खींची जाय, परन्तु जब तक शरीर रहेगा तब तक दुःख से छुटकारा नहीं होगा।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कबीर साहब कहते हैं कि इस संसार में शरीर धारण करने पर मैं किसी को सुखी नहीं देखा, जिसको देखता हूँ वह मेरी दृष्टि में दुखिया ही दुखिया दिखाई देता है। केवल आज से नहीं आदि से अन्त तक जन्म से लेकर मरण तक सब कोई दुखी हैं।

मैं बहुत प्रकार से विचार किया, विवेक किया तो यही निष्कर्ष निकाला कि अपने-अपने आश्रम में व धर्म में सभी दुःखी हैं। चाहे जिनका जो रास्ता रहा हो या धर्म रहा हो, चाहे कोई गृहस्थी हो,चाहे स्त्री बाल-बच्चों के साथ रहता हो, चाहे कोई विरागी हो, चाहे सब कुछ छोड़कर अलग हो गया हो। वह भी सुखी नहीं दिखाई दिया। दुःख की भयानकता को देखकर आचार्य शुकदेव जी जो महर्षि व्यास के सुपुत्र थे "गर्भहि माया त्यागी" अर्थात् संसार में जन्मने के पश्चात् संसार का ज्ञान होते ही इस संसार से अलग हो गये।

इसी प्रकार से योगी जन भी दुःख में पड़े हैं। जंगम भी दुःखी हैं। जो कहते हैं कि मोह में न फँसने के कारण मैं एक स्थान पर नहीं रहता हूँ वे दिगम्बर जैन साधु भी सुखी नहीं दिखाई दिये। इसी प्रकार से जब तक मन में शांति नहीं है तब तक योगी जन भी सुखी नहीं दिखाई देते। जो कष्ट सहकर शरीर को पीड़ा देकर शीतोष्ण सहकर तपश्चर्या में

लगे हुए हैं। उन तपस्वियों को तो और दो गुना दुःख है। पहला दुःख तो शरीर को सुख से नहीं रखना दूसरा दुःख स्वर्गादि की कामना को लेकर सदा उसके लिए व्याकुल रहना। संसार में आशा और तृष्णा सब घट में व्याप्त है। कोई उनसे परे नहीं है। अर्थात् किसी का भी शरीर रूपी महल आशा-तृष्णा से परे नहीं है। जिसके कारण सभी लोग दुःखी हैं।

मैं इस सच्ची बात को कहता हूँ कि तुम्हारे दुःख का कारण आशा और तृष्णा है। जब तक इनका परित्याग नहीं करोगे तब तक सुखानुभूति नहीं होगी तो मेरे ऊपर उल्टे खींझता है और कोप करता है कि तुम आलोचक हो, निन्दक हो। हे भाई! मैं तो सच्ची-सच्ची बात कहता हूँ। मेरे से झूठ नहीं कहा जायेगा। मैं तो कहता हूँ कि तेरी कहिए वे लोग जो अनेक प्रकार के धर्म और मजहबों का सृजन किये हैं। वही लोग दुःखी थे। क्योंकि जब तक आदमी आशारूपी फाँस से निवृत्त नहीं होता है। तब तक वह सुख से दूर रहता है।

दूसरा अर्थ अन्तिम पंक्ति का यह भी है कि जिस कार्यब्रह्म ने संसार को बनाया। प्राणियों का सृजन किया। वह भी शरीर धारण करने पर सुख से नहीं रहा।

**टिप्पणी**—इस शब्द के अन्त में तीन पंक्तियाँ मुझे और मिली हैं जिनको नीचे उद्धृत कर देता हूँ—

ब्रह्मा विस्नु महेश्वर दुःखिया। जिन्ह यह राह चलाई हो॥
अवधू दुःखिया भूपत दुःखिया। रंक दुःखी विपरीता हो॥
कहैं कबीर सकल जग दुखिया। संत सुखी मन जीता हो॥

उपर्युक्त पंक्तियों का अर्थ स्पष्ट है इसलिए इनका अर्थ नहीं किया जा रहा है। पाठक स्वयं मनन-चिंतन कर लेंगे।

## सबद ९२

### मन प्राबल्य प्रकरण

**ता मन को चीन्हों मोरे भाई, तन छूटे मन कहाँ समाई।**
**सनक सनन्दन जैंदेव नामा, भगति हेतु मन उनहुँ न जान॥**

**अम्बरीख पहलाद सुदामा, भगति सही मन उनहुँ न जाना।**
**भरथरि गोरख गोपीचन्दा, ता मन मिलि मिलि कियो अनंदा ॥**
**जा मन को कोई जानु न भेवा, ता मन मगन भये सुखदेवा।**
**सिउ सनकादिक नारद सेखा, तन के भीतर मन उनहुँ न पेखा ॥**
**ये कल निरंजन सकल सरीरा, ता मह भरमि भरमि रहल कबीरा।**

**शब्दार्थ**—ता–उसको। मन–आत्मा, मन उस ग्यारहवीं इन्द्रियाँ का नाम है जो पूरे शरीर के और आत्मा के अग्र भाग में चलता है परन्तु यहाँ पर मन के अर्थ गहन मन से है। गोपीचन्दा–गोपिचन्द्रबंगाल के एक राजा थे, जो गुरु मत्स्येन्द्रनाथ के सम्प्रदाय में जाकर दीक्षित हुए थे। सुदामा–सुदामा भी एक ब्राह्मण थे जो भगवान कृष्ण के सखा के रूप में प्रसिद्ध हैं। जैदेव–जयदेव कवि हुए हैं। जिन्होंने भगवान के अवतारों के गुणानुवादों का कविता में गान किया है। इनके प्रसिद्ध काव्य का नाम 'गीत गोविन्द' है। उनहुं–वे भी। नामा-नामदेव।

**सम्बन्ध**—इसके पहले आशा तृष्णा के कारण समस्त संसार दुःखी है और तृष्णा कहाँ से उत्पन्न होती है कहते हैं कि विकारवान मन से।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कबीर साहब कहते हैं कि हे मेरे प्रिय भाईयों! आप लोग उस मन की पहचान करें जो मन बहुत गहन गम्भीर है। जो कभी दिखाई नहीं देता है। केवल उसके क्रिया–कलाप देखने में आते हैं। जब वह शरीर से अलग हो जाता है अर्थात् शरीर से आत्मा निकल जाता है तब वह आत्मा रूपी मन कहाँ जाकर समाविष्ट होता है। इस विषय को बड़े से बड़े लोग जो साधक थे, जो ऋषि थे, जो कवि थे, जो भक्त थे, जो सनक सनन्दन जैसे ऋषियों में श्रेष्ठ माने जाते हैं। जयदेव कवि भक्तों में श्रेष्ठ माने जाते हैं। नामा कहिये नामदेव जो भगवान के परम भक्त थे। कई बार जिन्होंने प्रगट प्रभु का दर्शन किया था। जिनको भक्ति से हेतु भी था फिर भी प्रथम अवस्था में मन

की गति नहीं जान पाये कि यह मन किस प्रकार का है कहाँ से आता है और कहाँ जाता है इसकी जानकारी उपर्युक्त व्यक्तियों को भी नहीं हुई।

इसी प्रकार सम्राट अम्बरीष, पाताल के राजा प्रह्लाद और भगवान श्रीकृष्ण के समीप महात्मा सुदामा जो। जिन लोगों की भक्ति भी सही थी। उनकी भक्ति में कहीं किसी प्रकार की कमो नहीं थो। वे लोग पूर्ण भगवत् भक्त थे परन्तु उस परम गहन मन की गति को ये लोग भी नहीं जान पाये। उसी मन में योगीराज भर्तृहरि, गुरु गोरखनाथ, महायोगी गोपीचन्द, जिस मन को ऊपर के लोग नहीं जान पाये थे, ये लोग उस गहन मन से जिसका दूसरा नाम 'उनमना' है। उससे मिलकर अर्थात् उसमें समाहित होकर आनन्द का लाभ लिये थे परन्तु जिस गहन मन का किसी को पता नहीं था। उस आत्मानुभूति निरविकल्पक समाधि का जो लोग भेद नहीं जान पाये थे। उस इन्द्रियातीत आत्मा रूपी मन को प्राप्त कर महर्षि शुकदेव जी मगन हुए थे।

पुनः सद्गुरु अन्य लोगों की उपेक्षा करते हुए कहते हैं कि जिस मन को प्राप्त कर वा निग्रह कर शुकदेव जी आनन्दित हुए उस 'महामन' को भगवान शिव जैसे, सनकादिक जैसे, नारद जैसे तथा शेष भगवान जैसे साधक तन के भीतर रहते हुए भी उस गहन सूक्ष्मातिसूक्ष्म आत्मा रूपी मन को नहीं देख सके।

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि सभी के शरीर में जो निरंजन व्याप्त है। सबके हृदय कमल में जो अकेला रम रहा है। जो सबकी आत्मा है। जो प्रेरकों का प्रेरक है। उस परम तत्त्व में मैं कबीर विचरण करता हूँ और उसकी प्राप्ति करके सदा सर्वदा के लिए एक रस हो गया हूँ।

मन से यहाँ पर तात्पर्य आत्मा से लिया गया है। आत्मा के दो स्वरूप होते हैं एक सविकल्पक दूसरा निर्विकल्पक। किसी-किसी ने 'समना' 'उनमना' मन की दो संज्ञाएँ बताई हैं। समना मन में आत्मा की सविकल्पक अवस्था रहती है। जब तक मन सविकल्पक रहता है। तब तक गहन प्रज्ञा को प्राप्त नहीं होता है और न सत्त्वानुभूति ही होती

है। चाहे वह कितना बड़ा भी सिद्ध योगी साधक क्यों न हो जाय। जब तक वह 'उनमना' मन में समाविष्ट नहीं होता है। तब तक आत्मा निर्विकल्पक नहीं हो सकता है क्योंकि आत्मा की निर्विकल्पक अवस्था को ही समाधि मानी गयी है। यह अवस्था जल्दी किसी को प्राप्त नहीं होती है। जो सिद्ध व साधक उक्त अवस्था को प्राप्त होते हैं। जो उनमना की गति को जान लेते हैं। उन्हें बड़े-बड़े सिद्धों और देवताओं के विषय में जानकारी हो जातो है कि ये उनमना में समाविष्ट हुए हैं कि नहीं। उनमना को प्राप्त हुआ ज्ञानी कभी संसार में पुनः नहीं आता है। सर्वदा के लिए मुक्त हो जाता है और समना को प्राप्त योगी सविकल्पक होने के कारण जो पितृयान से गमन करता हुआ चन्द्रलोक को भेदन करते हुए ऊर्ध्व लोकों में जाता है वह ज्ञानी काल पाकर पुनः पृथ्वी पर अवतरित होता है।

इसलिए सद्गुरु कबीर शिव जी नारद जैसे भक्तों और ज्ञानियों को समना के अन्तर्गत माना है। इसमें किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए। समना को प्राप्त योगी भी बहुत उच्च स्थिति वाला माना जाता है। परन्तु सूक्ष्म वासनाओं के कारण पुनः वह शरीर को धारण कर सकता है अधिकतर जितने सिद्ध महापुरुष देखे जाते हैं जो नाना प्रकार के चमत्कारों को दिखाते हैं जो किसी को आशीर्वाद देकर पुत्र कलत्र से युक्त और किसी को राजा बना देते हैं और किसी राजा को शाप देकर रंक बना देते हैं। यह सब समना वाले योगी हैं। क्योंकि इनकी बुद्धि समता को प्राप्त नहीं हुई है। इसलिए इनमें द्वैत भाव बना रहता है। इन्हीं को जुनजान योगी कहा गया है और युक्त योगी जो होते हैं उन्हें समाधि नहीं लगानी पड़ती है, वे सहज रूप में सब कुछ जान सकते हैं और जानते रहते हैं। चित्र द्रष्टा की भाँति जगत को देखते रहते हैं परन्तु संसार से उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता है और जुनजान योगी जिनको कुछ जानना होता है उन्हें समाधि लगानी पड़ती है तब कुछ जान पाते हैं। इसलिए इन्हें सर्वज्ञ नहीं कहा गया है।

# सबद ९३

## वंचक प्रकरण ।

बाबू ऐसो है संसार तिहारो, इहै कली वेवहारो ।
को अब अनुख सहै प्रतिदिन को, नाहि न रहनि हमारो ।।
सुम्रिति सोहाय सभै कोई जानै, हृदया तत्त्व न बूझै ।
निरजिउ आगे सरजिउ थापै, लोचन किछउ न सूझै ।।
तजि अम्रित विख काहे को अँचवै, गांठी बांधिनि खोटा ।
चोरन दीन्हा पाट सिंघासन, साहुन से भौ ओटा ।।
कहैं कबीर झूठे मिलि झूठा, ठगही ठग वेवहारा ।
तीनि लोक भरपूरि रहा है, नाहीं है पतियारा ।।

**शब्दार्थ**—बाबू–यह बंगला हिन्दी का शब्द है जो बड़ों के प्रति और छोटों के प्रति भी प्यार के लिए उच्चारण किया जाता है, पिता। ऐसो–ऐसा। तिहारो–तुम्हारा। इहै–यही। वेवहारो–व्यवहार। अनुख–(सं०) शुद्ध अनख, वैरभाव, झगड़ा-लड़ाई, क्रोध, दुःख, झंझट, अनरीति। सहै–सहन। रहनि–रहनि, क्षमता। हमारो–हमारी। सुम्रिति–स्मृति हिन्दूओं के कानून एवं धर्म शास्त्र। सोहाय–अच्छा लगे। तत्त्व–परम तत्त्व। निरजिउ–निर्जीव मिट्टी व पत्थर के बनाये हुए देवताओं के आकार की मूर्त्तियाँ। सरजिउ–सजीव। थापै–स्थापित करे व बलि चढ़ावै। अँचवै–पीवै, धोवे। खोटा–गलत। पाट–उच्चासन, गद्दी। सिंहासन–राजाओं के न्यायपीठ। साहुन–साधुजन, सच्चे लोगों से। भव–हुआ। ओटा–आड़े, दर किनारे। पतियारा–विश्वसनीय, विश्वास।

**सम्बन्ध**—इसके पहले सद्‌गुरु ने बड़े-बड़े लोगों को बताया कि पूर्णत्व को प्राप्त नहीं हुए क्योंकि जब तक सविकल्पक मन रहता है तब तक पूर्णत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती है। यह कहकर अब संसार के व्यवहार को बताते हैं कि यह संसार अच्छे लोगों का नहीं है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे बाबू! हे प्यारे! आप का यह संसार किस प्रकार का है। इसको आप लोग सुनिये। इस कलि का यही व्यवहार

है कि अच्छे को बुरा बताना और बुरे को अच्छा बताना । अच्छी बातों को नकार देना । बुरी बातों को ग्रहण करना । इसी प्रकार यह तुम्हारा संसार है और इस कलि का यही व्यवहार है । इसीलिए ऐसे व्यवहार को जिसमें वैर-भाव भरा हुआ हो । ऐसे वैर-भाव वालों का जो उल्टा-सीधा व्यवहार है भला कौन प्रतिदिन सहन कर सकता है, उनके व्यंग्यवाण सहन करने की शक्ति अब मुझमें नहीं रह गयी है ।

मैं इनके हित की बात कहता हूँ तो ये लोग मुझे व्यंग्य बोलते हैं, तान कसते हैं, ताना मारते हैं । इसलिए इन कलयुगियों से मैं तटस्थ रहना चाहता हूँ । क्योंकि इनको स्मृतिग्रंथों की बात बहुत अच्छी लगती है । जिनमें नाना प्रकार के आडम्बर युक्त वाक्य भरे पड़े हैं । उन स्मृतियों व धर्मग्रन्थों की बात ये संसारी लोग बड़े चाव से सुनते हैं और उसी पर चलते हैं परन्तु जो सबके हृदय में परमतत्त्व है, आत्मतत्त्व है उसकी बात जब मैं कहता हूँ तो ये संसार के अज्ञानी मनुष्य नहीं समझते हैं । न उधर ध्यान ही देते हैं । उस हृदय के तत्त्व को बाहर खोजते हैं । तीर्थ-मूर्तियों में खोजते हैं, पत्थर-पानी में खोजते हैं तो भला कैसे इनकी भलाई हो सकेगी । ये अज्ञानी मनुष्य निर्जीव पत्थर की मूर्तियों तथा मिट्टी के देवताओं के सामने अपने जो सजीव हैं उनके सामने अपने को समर्पित करते हैं । उनके सामने उपस्थित होकर सजीव प्राणियों की बलि देते हैं और उस निर्जीव मूर्तियों के आगे नाचते-कूदते हैं और अपने दुःखों को व्यक्त करते हैं । ये संसार के अज्ञानी मनुष्य लोचन रहते हुए भी कुछ देख नहीं पा रहे हैं । ये मूर्ख अमृत का त्याग करते हैं और विष को पीते हैं, भला ये क्यों ऐसा करते हैं । जो अमृत तत्त्व आत्मा व परमात्मा हृदय में विराज-मान है उसका परित्याग करके विष स्वरूपी मूर्तियों को जिसमें कोई जी-जान नहीं है, उसको अन्दर में क्यों बसाते हैं, हृदय ग्रन्थी में इन खोटे निर्जीव देवताओं को क्यों बाँधते हैं, भला ये संसार के पापी मनुष्य चोरों को ऊँचा आसन देते हैं । सिंहासन पर बैठाते हैं । अर्थात् स्मृति, धर्म ग्रन्थ के जो पण्डित हैं, जो कर्मकाण्डी हैं, जो शाक्त हैं, जो निर्जीव

के आगे सजीव प्राणियों को काटते हैं। जो सत्य को छिपाते हैं। ऐसे चोर पुरुषों को लोग सम्मान देते हैं और जो साहु हैं, सत्यवक्ता हैं, आत्म-वेत्ता हैं। उन सत्य ज्ञानियों एवं साधुओं से ये संसार के पापी मनुष्य अपने को छिपाते रहते हैं। उनके सामने जाने में सकुचाते हैं। न उनकी सत्य बात सुनने की ही जिज्ञासा करते हैं।

सद्‌गुरु कबीर साहब कहते हैं कि ये झूठे लोग, झूठे गुरुओं से मिलकर ठगी का और ठग का व्यवहार करते हैं। इस ठग और ठग का धन्धा और ठगी के धर्म एक ही देश काल में नहीं है। ऐसे लोगों से तीनों लोक भरपूर है। क्योंकि मैं सच्ची बात कहता हूँ कि तुम्हारा जो व्यवहार है, ठगी का है। इसे छोड़ो तो मेरी बात पर कोई विश्वास नहीं करता। तात्पर्य यह कि अच्छे मनुष्यों का सदा अभाव रहता है। बुरे लोग ही अधिक होते हैं।

## सबद ९४

### निर्गुण ईश्वर प्रकरण

**कहु हो निरंजन कउने बानी।**
**हाथ पाउ मुख स्रवन जिभ्या नहिं, का कहि जपहु हो प्रानी॥**
**जोतिहिं जोति जोति जउ कहिये, जोति कवन सहिदानी।**
**जोतिहिं जोति जोति दै मारे, तब कहाँ जोति समानी॥**
**चारि बेद ब्रह्मा जउ कहिया, उनहुँ न या गति जानी।**
**कहैं कबीर सुनो हो संतो, बूझो पंडित ग्यानी॥**

**शब्दार्थ**—कहु-कहो। हो-हे। निरंजन-माया से रहित, निर्गुण ब्रह्म। कउने-किस प्रकार का। बानी-वचन, प्रकार है। स्रवन-श्रवण, कान, कर्ण। जोतिहिं-ज्योति, प्रकाश। सहिदानी-सदृश, पहचान, चिह्न, निशान। ब्रह्मा-सृष्टि के मूल पुरुष, ब्राह्मण।

**सम्बन्ध**—तिरानवें शब्द में कहा गया है कि संसार की रीति उल्टी है। सच्ची बात को कोई मानने वाला नहीं है। संतों का अपमान किया

जाता है। असंतों से लोग प्रेम करते हैं और कर्मकाण्डियों का ही संसार में बोलवाला बताया गया है। अब नीचे यह कहा जा रहा है कि जिस प्रभु को तुम लोग भजते हो। उसकी कौन सी पहचान है ?

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे संसार के ज्ञानी लोग ! आप यह बतायें कि वह निरंजन पुरुष जो माया से परे है वह किस प्रकार का है ? अर्थात् किस बानी का है, बानी यहाँ पर भोजपुरी है। जो 'है' के अर्थ में उद्धृत है जिसका अर्थ प्रकार भी है।

आप लोग यह बतावें कि उस परमतत्त्व में न हाथ है, न पैर है, न मुख है, न श्रवण है, न जिह्वा है "अपाणि पादो यवनो गृहीता" उपनिषद्। जब उसमें कोई अवयव नहीं हैं तो किस नाम से क्या कह करके उसका जप करोगे ? वह अवयवों से परे है। तो ऐसी दशा में उसका ध्यान भी कैसे किया जायेगा ? यदि आप कहते हो कि वह ज्योति स्वरूप है, प्रकाश स्वरूप है और यदि आप यह भी कहते हो कि वह ज्योतियों की ज्योति है। अर्थात् प्रकाशकों का भी प्रकाशक है तो मैं पूछता हूँ कि उस परम प्रकाश का पहचान क्या है ? क्योंकि एक ज्योति के सामने दूसरी ज्योतियाँ छिप जाती हैं। जैसे दीपक का प्रकाश मशाल के सामने छिप जाता है और मशाल का प्रकाश गैस के सामने छिप जाता है और गैस का प्रकाश सूर्य के सामने छिप जाता है। इसी प्रकार से सूर्य भो रात्रि के द्वारा छिप जाता है। तो इस प्रकार से एक से बढ़कर एक ज्योतियाँ हैं। तब आप कहिये कि कहाँ और कैसे उपर्युक्त ज्योतियाँ समा जाती हैं।

मैं तो कहता हूँ कि जो मूल पुरुष सृष्टि के आदि में ब्रह्मा नाम का हुआ जिसके द्वारा चार वेदों का प्रकटीकरण हुआ है। यद्यपि वेदों के प्रकट करने वाले चार ऋषि कहे गये हैं। प्रथम अग्नि, अंगिरा जिनको भी ब्राह्मण कहा गया है। ऐसे तो वेद के ऋचाओं के ऋषि बहुत हैं। वशिष्ठ जी हैं, विश्वामित्र जी हैं। इस प्रकार अनेक ऋषियों के द्वारा वेदों की ऋचाएँ उत्पन्न हुई हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि चारों वेद जो ज्ञान

के भण्डार माने जाते हैं परन्तु जिन ऋषियों के द्वारा, जिन ब्राह्मणों के द्वारा ये चारों वेद कहे गये हैं। वे लोग भी उपर्युक्त ज्योतियों की जो ज्योति है उसकी गति नहीं जान पाये।

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे सन्तों! आप लोग सुनें! और जो शास्त्र के ज्ञानी पंडित हैं, जो आत्मवेत्ता पंडित हैं। इस तथ्य को समझें कि वह निरंजन किस प्रकार का है? जो इस सारी सृष्टि का संचालन करता है मैं तो कहता हूँ कि वह सबकी गति जानता है परन्तु उसकी गति कोई जानने में समर्थ नहीं हैं। कठोपनिषद् का एक मन्त्र है—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकम्
नेमाविद्युतो कुतोऽयमऽग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वंम्
न तस्य भाषा सर्वंमिदं विभाति ॥

**आशय**—संसार के प्रत्येक धर्म वाले परमतत्त्व के विषय में अपने-अपने प्रकार की कल्पना किये हैं। कोई कहता है कि वह हाथ, पाँव, मुख, श्रवण आदि से रहित है। कोई उसको प्रकाश स्वरूप बताता है, कोई लोक विशेष में उसका निवास कहता है। इस प्रकार से अनेक प्रकार की कल्पनाएँ की गयी हैं। उन सभी सम्प्रदाय वालों से सद्गुरु प्रश्न करते हैं कि वह किस प्रकार का है? यदि ज्योति स्वरूप है तो एक ज्योति दूसरी ज्योति को छिपा देती है।

इस प्रकार से जो मनुष्यों की कल्पना है वह बिना देखी हुई कल्पना है। इसलिए इन कल्पनाओं से भिन्न जो उसका स्वरूप है। वह सबको जानता है। उसको कोई जान नहीं पाता। वह रहस्यमय है। इसलिए मैं कबीर आप सन्तों से कहता हूँ कि आप लोग और शास्त्र के पंडित लोग उपर्युक्त तथ्य को समझने का प्रयत्न करें। तभी प्रश्न का समाधान हो सकता है अन्यथा सभी अरुझाहट में पड़े रहेंगे।

## सबद ९५

### अन्योक्ति वंचक प्रकरण

**को अस करे नगर कोटवलिया, मांसु फैलाय गीध रखवरिया।**
**मूस भौ नाउ मंजार कडिहरिया, सोवे दादुर सरप पहरिया॥**
**बैल बियाय गाय भइ बंझा, बछरू दुहिये तिनि तिनि संझा।**
**नित उठि सिंघ स्यार सों जूझै, कबीर का पद जन बिरला बूझै॥**

**शब्दार्थ**—को–कौन। अस–इस प्रकार। नगर–शरीर, शहर। कोटवलिया–कोतवाली, कोटवाली, नगर का वह अधिकारी जो कई थानों के ऊपर होता है। वह पहले समय में जो पूरे नगर की देखभाल की जिम्मेदारी रखता था उसको 'कोटपाल' कहते थे। कोटवलिया का रक्षा भी अर्थ है। कोश ग्रन्थ के अनुसार कोटपाल–कोटवलिया का अर्थ दुर्ग की रक्षा करने वाला सैनिक अधिकारी, किलेदार, कोटपाल, पुलिस का वह प्रधान कर्मचारी जिसके अधीन कई थाने और बहुत से सिपाही होते हैं। अखाड़े, पंचायत या विरादरी का वह आदमी जिसका काम सब लोगों तक निमंत्रण सूचनायें आदि पहुँचाना होता है। मानक कोश पृ० ५८९। गोध–मांसभक्षी, बड़ा पक्षी, लोभी पुरुष। मूस–निर्बल पुरुष। नाउ–नौका, सद्ज्ञान। मंजार–बिलार, वंचक गुरु। कडिहरिया–खेवनहार, नाविक। भौ–भवसागर, हुआ। दादुर–निर्बल प्राणी, मेढ़क। सरप–सर्प, क्रोधी। पहरिया–पहरा देने वाला। बैल–अज्ञानी। बियाय–जन्म देता है। गाय–गो, गायक, ज्ञाता, ज्ञानी। बंझा–बन्ध्या, पुत्र विहीन। बछरु–अज्ञानियों का ज्ञान। दुहिये–दोहन। संझा–सन्ध्या, तीन तीन बार। सिंघ–जीवात्मा। स्यार–श्रृगाल, काम, क्रोध व मन। पद–वाक्य, स्वरूप, पैर।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि ईश्वर का क्या स्वरूप है? परन्तु किसी ने उसका ठोस उत्तर नहीं दिया। अब नीचे कहा जा रहा है कि जिस नगर में अज्ञानी ही अज्ञानी हों और जिस देश में केवल वंचक गुरु ही गुरु हों। तो उनसे जनता को कौन बचा सकता है?

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि भला कहिये इस प्रकार के नगर की कौन रक्षा करे ? जहाँ पर सब चोर ही चोर बसते हों। जहाँ पर मांस की दुकान सजायी गयी हो और उसकी रक्षा के लिए गिद्ध को नियुक्त किया जाय और मूस को भक्षण करने वाली बिल्ली को भव-सागर का खेवैया बना दिया जाय। जिस दादुर को सांप खा जाता है। उस दादुर के सोने पर क्या उसकी रक्षा सर्प कर सकता है ? इसी प्रकार से गाय के अतिरिक्त बैल ही बियाने लग जाय, गाय न दुही जाय, बछरु ही दुहा जाय। वह भी तीन-तीन सांझ और जहाँ पर सिंह सियार से लड़ता हो।

तात्पर्य यह है कि जिस नगर में, जिस देश में रक्षक ही भक्षक हो तो उसका क्या विश्वास किया जा सकता है ? जो गुरु अज्ञानी हैं, प्रपंची हैं, उसी की रखवाली में, उसी के नेतृत्व में कोई आत्मज्ञान सीखना चाहे, सच्चा मार्ग जानना चाहे, तो वह लोभी गुरु हर प्रकार से जिज्ञासुओं का शोषण करेगा। इसलिए उस वंचक गुरु से सद्ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती है। भला जो अपने अज्ञानी है, शक्तिहीन है, मूसा के समान कायर है और जो मंजार के समान पापी तथा खूँखार है। मूसक के समान प्राणियों का भक्षक है जो स्वयं कमजोर है, व निर्बल है वह पापी मनुष्य को कैसे भवसागर पार करा सकता है।

इसी प्रकार से जो सोया हुआ है। वह मेढ़क के समान केवल टरंटर्राता रहता है। स्वयं जिसको अपने का ज्ञान नहीं है। उस क्रोधी सर्प के समान गुरु के द्वारा कैसे पार हुआ जा सकता है ? वह तो उल्टा-सीधा ज्ञान बताकर खुद उस मनुष्य का शोषण करेगा, दान-दक्षिणा लेगा। इसलिए उपर्युक्त 'उलटवांसी' के रूप में जो विचार किया गया है। उसका तात्पर्य यह है कि जो क्रोधी है, जो सर्प के समान विष वाला है। वह दादुर रूपी जिज्ञासु-अज्ञानी को जो संसार में सोया हुआ है, भला उसको कैसे ज्ञान दे सकता है ?

इसी प्रकार से जो मंजार बुद्धि वाला गुरु है वह अल्पबुद्धि वाले मूसा के समान शिष्य को कभी भव से पार कर सकता है? अर्थात् नहीं। इसी प्रकार

से जो गीध के समान समाज का स्वयं शोषण कर रहा है। वह प्रजा रूपी मांस की कभी रक्षा कर सकता है? जहाँ ऐसे लोग अर्थात् जिस शरीर में काम, क्रोध, लोभ, मोह बसते हों। दैवी सम्पदा से हीन हों उन प्राणियों की कौन रक्षा कर सकता है जहाँ पर बैलवत् मूर्ख लोग ज्ञानदाता बन गये हों, तत्त्वज्ञ लोग मौन हो गये हों और मूर्खों के ज्ञान रूपी बछड़ा और उपदेश को दिन में जहाँ तीन-तीन बार मनन किया जाता हो। उस देश की और समाज की भलाई कैसे हो सकती है जहाँ प्रतिदिन जीव में और मन में एकता न हो? जहाँ पर सियार रूपी मन से सिंह रूपी जीव लड़ाई करता हो। वहाँ पर भला कल्याण की क्या आशा है? कबीर साहब कहते हैं कि इस मेरे पद को कोई बिरला मनुष्य ही समझ सकता है। जो अनुभवी हो। जो समाज का अध्ययन किये होगा।

**आशय**—सद्गुरु कहते हैं कि जहाँ पर अवांछित तत्त्वों का निवास हो जिस नगर में ठग ही ठग बसते हों। जहाँ पर सम्पत्ति की रक्षा के लिए तस्करों को एवं ठगों को उत्तरदायित्व दिया जाय तो क्या उस सम्पत्ति की रक्षा उक्त लोगों से होने की सम्भावना बनती है कदापि नहीं। इसी प्रकार से अल्पज्ञ मनुष्यों को जो सदा संसार में आसक्त है मूसक जैसे चोट्टे हैं कुकर्मी हैं, वे भवसागर तरने की आशा भक्षक बिल्ली स्वरूप वंचक गुरु के द्वारा लगाये हुये हैं क्या वे संसार-सागर को पार कर सकते हैं? यह आशा भी निरर्थक ही है। पूरे पद में इसी प्रकार का प्रसंग है। जैसे दादुर सोता हो अर्थात् अल्पज्ञ कमजोर बुद्धि वाला क्रोध प्रधान अज्ञानी मनुष्य क्या उस दादुर स्वरूपी अज्ञ मनुष्य को सोते समय रक्षा कर सकता है। उसके ज्ञान विवेक की रखवाली कर सकता है। उसके मन को नियन्त्रण में रख सकता है। जो संसार में सोया हुआ है। जो अपने को भूल चुका है। उसको वह गुरु को जो सर्प के समान हिंसकी है जो दूसरे प्राणियों की जान लेने वाला है। जो अत्यन्त क्रोध स्वभाव वाला है, उससे कभी भी अज्ञानी मनुष्यों की रक्षा होने वाली नहीं है। इसी प्रकार से जो बैल के समान मूर्ख हैं। जिसको कुछ आता-जाता नहीं है। जो किसी पद पदार्थ

से लगाव नहीं रखता और गुरु बनकर संसार के मनुष्यों को भुलावा दे रहा है। उसके सामने जो गाय के समान ज्ञानी थे, ज्ञानदाता थे, वे बन्ध्या के समान मौन हो गये। अर्थात् अज्ञानियों के सामने उनकी कुछ चलने नहीं पाती। उन अज्ञानियों का बछड़वत निर्बल ज्ञान दिन में तीन-तीन बार चिन्तन किया जाता है। भला इस संसार की दुर्दशा तो देखिए। जहाँ पर सिंह और श्रृगाल दोनों आपस में लड़ते हों अर्थात् सिंह के समान ज्ञानी गुरु को सियार रूपी वंचक गुरु दबाता हो, वहाँ पर उस समाज की, उस देश की, क्या कुछ भलाई हो सकती है? कबीर साहब कहते हैं कि इस उपर्युक्त पद का वा कथन का जो अर्थ समझेगा वही संसार की दुर्दशा को समझ सकता है। अर्थात् जिस देश का राजा, गुरु, मंत्री सब अयोग्य हों क्या उनके उत्तरदायित्व में देश सुरक्षित रह सकता है?

## सबद ९६

### पश्चाताप प्रकरण

**काको रोऊँ गैल बहुतेरा, बहुतक मुअल फिरल नहिं फेरा।**
**जब हम रोया तब तुम न संभारा, गरभ बास की बात विचारा॥**
**अब तैं रोया का तैं पाया, केहि कारण अब मोहि रोवाया।**
**कहैं कबीर सुनो संतो भाई, काल के वसी परो मति कोई॥**

**शब्दार्थ**—काको–किसको। गैल–गया। बहुतक–बहुत सा। मुअल–मर गया। फिरल–आया नहीं। संभारा–सावधान नहीं हुआ। तैं–तुम। केहि–किस। मोहि–मुझे। रोवाया–रुलाया। काल–मृत्यु।

**सम्बन्ध**—इसके पूर्व कहा गया है कि जो परमसत्ता है, वह रहस्यमय है। वह वंचक गुरुओं के पहुँच से बहुत दूर है। क्योंकि वंचक गुरु सदा लोभ-लालच में पड़ा रहता है। सदा समाज का शोषण करते रहता है और उल्टा-सीधा ज्ञान अज्ञानियों के प्रति देते फिरता है। जिसके जाल में फँसकर बहुत से अज्ञानी अन्त में पश्चाताप करते हैं और रोते-कल्पते हैं कि हम ठगा गये, हम लुट गये। इस पर नीचे कहा जा रहा है कि

किसके लिए पश्चाताप किया जाय। इस प्रकार के एक दो नहीं हैं। अनेक लोग ठगे गये हैं और ठगा रहे हैं।

**मूलार्थ**—अब साहब कहते हैं कि इन मरणधर्मा मनुष्यों के लिए जो वंचकों से ठगाने के बाद रोते कल्पते हैं। उनमें एक दो हों तो उनके लिए रोऊँ परन्तु बहुत से लोग इस धराधाम से उठकर चले गये और बहुत से लोग मृत्यु को प्राप्त हुए परन्तु फिर इस धरती पर लौटकर नहीं आये। जब मैं इन संसारी जीवों के लिए, अज्ञानियों के लिए इनके दुःखों को देखकर रोता था। समझाता था कि भाई अच्छा कर्त्तव्य करो। अच्छे गुरु की शरण में रहो, कुकर्म से दूर रहो। कुसंगति मत करो। तब तो ये संसारी जन सावधान नहीं हुए। अपने को संभाल नहीं सके। भला अब रोने-कल्पने से क्या फायदा है? मैं तो गर्भ में गर्भवास के समय में जो कष्ट होता है, उस दुःख को विचार कर बातें कही थी। क्योंकि अज्ञान के कारण मनुष्य बार-बार माता के गर्भ में आता है और मरकर चला जाता है परन्तु मेरी कही हुई बात किसी ने एक भी नहीं सुनी।

हे संसारी मनुष्यों! तेरे रोने से क्या लाभ है? अब तेरे प्राण कण्ठगत हो रहे हैं। कुछ ही क्षण के तुम अतिथि हो। अब तो जो होने को रहा सो हो गया। अब भला अन्तिम क्षण में मुझे किस कारण से रुला रहे हो। अब मेरे रोने से तेरे दुःखों की निवृत्ति नहीं हो सकेगी।

मैं कबीर आप सन्तों से कहता हूँ कि हे सन्त भाई! काल के अधीन कोई मत पड़ो अर्थात् मरने के पहले जाग जाओ। जब तक तुझे मृत्यु मारकर नहीं जगाती है उसके पहले ही जागकर सन्त सद्गुरु के द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति करो। तभी तुम दुःख से बच सकते हो अन्यथा कोई उपाय नहीं है।

## सबद ९७

### कपट प्रकरण

**अल्लह राम जीयो तेरि नांई, जिन पर मेहर होहु तुम सांई।**
**का मूंडी भूई सिर नाये, का जल देह नहाये॥**

खून करे मिस्कीन कहाये, अवगुन रहे छिपाये।
का उज्जू जप मज्जन किये, का महजिद सिर नाये॥
हिृदया कपट निमाज गुजारै, का हज मक्के जाये।
हिन्दू बरत एकादसि चउबिसो, तीस रोजा मुसलमाना॥
ग्यारह मास कहो किन टारे, एक महिना आना।

**शब्दार्थ**—अल्लह-अल्लाह (अ० भा०) ईश्वर। राम-ईश्वर, परमात्मा। जीयो-जीऊं। तेरि-आपकी। नांई-नाम पर। जिन-जन, जो। मेहर-दया (अ० भा०)। होहु-हूजिए, कीजिए। सांई-स्वामी। मूंड़ी-सिर। भूई-भूमि। खून-हत्या। मिस्कीन-भद्र पुरुष, फकीर, साधु। अवगुण-अवगुण, दोष। उज्जू-बज्जू (अ० भा०)। मज्जन-स्नान। महजिद-मस्जिद (अ० भा०) निमाज-(नेमाज फा०) पूजा। गुजारै-गुजारिस, निवदेन कर्ता (फ०) हज-मक्के की तीर्थ यात्रा। हिन्दू-आर्य। तीस रोजा-रमजान के महीने के तीस दिन का व्रत। टारे-अलग किया, हटावे।

**सम्बन्ध**—पूर्व पद में अज्ञानी मनुष्यों को दुःखी देखकर सद्गुरु ने आश्वासन दिया कि प्रभु का नाम जपो! अब कहते हैं कि मैं तो स्वयं उसी के नाम पर जीता हूँ अर्थात् 'हरि मरि हैं तो हमहुँ मरिहैं, हरि न मरिहैं तो हम काहे को मरि हैं, अर्थात् मेरे और हरि में अब तारतम्यता हो गयी है मैं और हरि एक हो गये हैं अब मेरा और हरि का नाम रूप गायब हो गया है। इसलिए मरने का ही प्रश्न नहीं उठता।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सबके अन्दर रहने वाले अल्लाह पाक, परवरदिगार, हे सबकी आत्मा, सबमें रमने वाले परम पवित्र राम मैं अज्ञानी जीव आपके नाम पर जीवित हूँ। अर्थात् आपकी कृपा से अब मेरा नाश नहीं होगा इसलिए हे प्रभो! हे स्वामी! अपने जन पर और अपने दास पर, मेहर अर्थात् दया कीजिए। क्योंकि आपकी दया के बिना आपकी अहेतुकी कृपा के बिना कितना भी कोई सिर को भूमि में पटके, सिर को आपके सामने झुकाये, कितना ही तीर्थों में पवित्र नदियों के जल में देह को स्नान कराए। परन्तु उससे कुछ होने वाला नहीं है।

क्योंकि अन्दर तो कर्तव्य उसके दूषित हैं, काम तो कसाई का करता है। जीवों की हत्या करता है, प्राणियों का वध करता है और ऊपर से फकीर व साधु कहलाता है। भद्र पुरुष बनता है अपने अवगुणों को छिपाये रहता है। लोगों के सामने पूजा-पाठ खूब करता है। भला जब तक बुरे कर्म नहीं छूटते हैं, दुष्कर्मों से निवृत्ति नहीं होती है। तब तक वज्जू अर्थात् हाथ, पैर धोकर माला तस्बीह लेकर जप करने से क्या फायदा है, और नहाने से क्या फायदा होता है ? कितना भी मंजन किया जाय जब तक हृदय शुद्ध नहीं है तब तक कोई लाभ नहीं है। जब तक अन्दर में अवगुण हैं। तब तक मस्जिद में सिर झुकाने से क्या फायदा है ? हृदय में कपट है तो नमाज गुजारने व निवेदन करने से क्या होने वाला है ?

इसी प्रकार से जब तक हृदय पवित्र नहीं है। मक्का मदीना व कावा की यात्रा करने से क्या लाभ है ? हिन्दू लोग वर्ष में प्रत्येक महीने के दोनों पक्ष की एकादशी व्रत करते हैं और मुसलमान लोग वर्ष में रमजान के महीने में तीस दिन का रोजा व्रत रहते हैं। भला मैं इन दोनों से पूछता हूँ कि चौबीस और तीस दिन के बाद वाले दिन किसके हैं उन ग्यारह महीनों में व्रत, उपवास क्यों न किया जाय ? तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार से चौबीस दिन वर्ष में हिन्दू लोग उत्तम रीति से रहते हैं जिस प्रकार से मुसलमान लोग पूरे रमजान के महीने में कठिन तप करते हैं। मैं तो कहूँगा कि इनके अतिरिक्त शेष ग्यारह महीनों में भी प्रभु भक्ति से विरत नहीं रहना चाहिए। भला कहो उन ग्यारह मास को कौन हटा दिया ? उनमें व्रत की विधि क्यों नहीं की गयी ? जब सब प्रभु के महीने हैं तो उस एक महीने को पवित्र क्यों मान लिया गया ?

**जउ खोदाय महजीद बसतु है, अउर मुलुक केहि केरा ॥**
**तीरथ मूरत (में) राम निवासी, दुई मा किनहूँ न हेरा।**
**पूरब दिसा हरि को बासा, पच्छिम अल्लह मुकामा ॥**
**दिल मा खोजु दिलहिं मां खोजो, इहैं करीमा रामा।**

**बेद कितेब कहो किन झूठा, झूठा जो न विचारे ॥**
**सभ घट एक-एक के लेखे, भै दूजा के मारे ।**
**जेते औरत मरद उपाने, सो सभ रूप तुम्हारा ॥**
**कबीर पोंगरा अल्लह राम का, सो गुर पीर हमारा ।**

**शब्दार्थ**—जउ–जो । खोदाय–खुदा । मुलुक–देश, स्थान । केहि-केरा–किसका । किनहु–कोई भी । हेरा–खोजा, अन्वेषण किया । मुकामा–स्थान । दिल–हृदय । इहैं–यही । करीमा–करीम, कृपा करने वाला । रामा–राम । कितेब–कुरान, किताब । किन–कौन । लेखे–समान । भै–हुआ । उपाने–उत्पन्न किया । पोंगरा–बच्चा, भक्त, दास, सेवक ।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे मुसलमान भाई आपलोग कहते हैं कि खुदा मस्जिद में बसता है तो मैं आप से पूछता हूँ कि शेष भूभाग पर किसका आधिपत्य है वहाँ कौन बसता है जब जर्रे-जर्रे में कण-कण में उसका निवास बताते हो तो मस्जिद तक क्यों सीमित रखते हो ? इसी प्रकार से हिन्दू भाई भी भगवान को तीर्थ मूर्ति के निवासी बताते हैं । मैं तो पूछता हूँ कि तीर्थ मूर्तियों के अतिरिक्त का क्षेत्र किसका है ? मेरी समझ में तो दो में से किसी ने भी प्रभु की खोज नहीं की । यदि प्रभु की खोज किये होते तो यह नहीं कहते कि पूर्व देश में हरि रहते हैं इसी प्रकार से मुसलमान लोग भी अल्लाह के घर को पश्चिम नहीं बताते । हे हिन्दुओं ! हे मुसलमानों ! मैं तो आप दोनों धर्मावलम्बियों से कहता हूँ कि प्रभु सभी प्राणियों के हृदय में निवास करता है इसी में उसका अन्वेषण करो । इसी में उसको खोजो इसी हृदय में राम और करीम निवास करते हैं । भला वेद और कुरान को कौन झूठ कहता है क्योंकि वेद पुराण भी ईश्वर को सर्व व्यापक मानते हैं झूठे तो वे लोग हैं जो कि वेद पुराण की बातों पर विचार नहीं करते । गुरु के द्वारा उसका अर्थ नहीं समझते क्यांकि वेद पुराण तो एक-एक करके सब घटों में बताये हैं कि प्रभु रहता है । भला दूसरा कोई हो तो उसको मारा जाय । जब सब में उसी

का निवास है तो किसकी तू हत्या करते हो, उससे अलग क्यों बताते हो। मैं तो कहता हूँ कि जितने भी स्त्री-पुरुष उत्पन्न हुए हैं वे सब तुम्हारे ही रूप हैं अर्थात् सब प्रभु के अंश हैं मैं कबीर तो अल्लाह और राम का बालक हूँ, उपासक हूँ। उस महान के सामने मैं कुछ भी नहीं हूँ। क्योंकि सारी सृष्टि उसी को है? सब में वही समाया हुआ है। इस प्रकार की जो उपासना करता है। वही श्रेष्ठ है। मैं तो अल्लाह और राम का बच्चा हूँ वही मेरा गुरु है, वही मेरा पीर है इससे भिन्न मैं कुछ नहीं जानता।

## सबद ९८

### सर्वधर्म परित्याग भजन प्रकरण

**आव बे आव मुझे हरि को नाम, अउर सकल तजु कवने काम।**
**कहं तब आदम कहं तब हौवा, कहं तब पीर पैगम्बर हूवा॥**
**कहं तब जिमी कहाँ असमान, कहं तब बेद कितेब कोरान।**
**जिन दुनिया में रची मसीद, झूठा रोजा झूठी ईद॥**
**सांचा एक अलह को नाम, जाको नई-नई करहु सलाम।**
**कहु दहु भिस्त कहां ते आई, किसके कहे तुम छुरी चलाई॥**
**करता किरतम बाजी लाई, हिन्दू तुरक की राह चलाई।**
**कहं तब दिवस कहां तब राती, कहाँ तब किरतम किन उत्पाती॥**
**नहिं वाके जाति नहीं वाके पांती, कहैं कबीर वाके दिवस न राती।**

**शब्दार्थ**—आव–आओ, आवई। बे–हे। आदम-ईस्लामी धर्म के अनुसार सृष्टि का आदि पुरुष। हौवा–हव्यावती, आदम की धर्म पत्नी। पीर–गुरु। पैगम्बर–देवदूत, मुहम्मद साहब, ईसा आदि। हूवा–हुआ, हुए। जिमी–पृथ्वी। असमान–आसमान, आकाश। कितेब–पुस्तक। कोरान–कुरान, कुरआन। मसीद–मस्जिद। रोजा–रमजान के महीने में मुसलमानी व्रत। ईद–मुसलमानों का त्यौहार, रमजान महीने में तीस दिन रोजा रखने के बाद जिस दिन दूज का चाँद दिखाई पड़ता है उसी दिन मनाये जाने वाला ईद त्योहार। अलह–अल्लाह, ईश्वर। जाको–जिसको। सलाम–

प्रणाम, नमस्कार । दहु–धौ, हे भाई। भिस्त–बहिस्त मुक्ति । किरतम–कृत्रिम, बनावटी । बाजी–खेल, जादूगरी । वाके–ईश्वर का ।

**सम्बन्ध**—पूर्व पद में हृदय की शुद्धता के विना प्रभु रीझता नहीं है और न उसकी प्राप्ति होती है अब उसी को सद्गुरु साहब कहते हैं कि सब कुछ छोड़कर कपट खोट हृदय से निकाल कर उसी परम प्रभु का भजन करना चाहिए।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे हरि आप मेरे हृदय में आवें, प्रवेश करें अर्थात् जो सच्चे हृदय के मनुष्य हैं उन्हीं के हृदय में प्रभु विराजता है उन्हीं सच्चे मनुष्यों के हृदय में ईश्वर का साक्षात्कार होता है। मनुष्यों को चाहिए को संसार का सारा काम त्यागकर उस प्रभु का सुमिरन भजन करे। जिसके सुमिरन भजन से सारे कार्य सुधर जाते हैं। हे भाई! और सारे सांसारिक कार्यों को तज दो। इनसे कोई काम होने वाला नहीं है। जितने भी व्रत, उपवास, रोजा, नमाज, योग, ध्यान हैं ये सब शरीर की शुद्धि के लिए हैं इनसे प्रभु बहुत दूर रहता है और उस प्रभु के समक्ष कोई दूसरा नहीं है न उसके समान पितामह आदम हैं न उसके समान माता हौवा है। वह सब पीरों से, गुरुओं से पैगम्बरों से, सबसे श्रेष्ठ वही है जब वह था तब इन उपर्युक्त लोगों का कहीं नामो निशान नहीं था न इनका कोई नाम लेने वाला था उसी ने सबको प्रगट किया है।

तात्पर्य यह है कि वही सबसे बड़ा है उससे बड़ा कोई नहीं है जब वह वर्तमान था, जब उसका अस्तित्व था तब न यह विशाल पृथ्वी थी और न यह अनन्त आकाश ही था तब न वेद ही अस्तित्व में आये थे और आसमानी पुस्तकों में न इंजिल था, न कुरान था, न तब तौरात था न जब्बूर था इसी प्रकार से ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्वेद, किसी की भी उपस्थिति नहीं थी। संसार में जिन लोगों ने मस्जिद की रचना की, उपासना गृह बनवाये जो लोग मन्दिर बनवाये, वे सब उस प्रभु के बाद के ही हैं उसके जप के समान न रोजा सही है न ईद सत्य है केवल उस अल्लाह का, उस परवरदिगार का, एक नाम ही सच है जिसका झुक-झुक

कर सलाम किया जाता है, प्रणाम किया जाता है उसके सामने सब व्रत, उपवास, रोजा, ईद झूठे हैं।

हे भाई, कहो यह तुम्हारी जो कल्पित बहिस्त है मुक्ति है, कहाँ से चली आई क्योंकि मुक्ति तो सच्चे कर्मों से होती है, अहिंसा से होती है। आत्मज्ञान एवं सत्संगति से होती है। तुम लोग तो मुक्ति को व बहिस्त को प्राणियों को बलि देकर बताते हो मैं कहता हूँ कि आप लोग हिन्दू एवं मुसलमान किसके आदेश से, किसकी आज्ञा से पशुओं पर छूरी चलाते हो यह कभी भी ईश्वरीय व खुदाई हुक्म नहीं हो सकता है यह तो धर्म के निर्माताओं ने सम्प्रदाय के कर्ताओं ने कृत्रिम, बनावटी खेल रचे हैं और इन्हीं पण्डा, पुजारियों, धर्माचार्यों ने हिन्दू और मुसलमान का मार्ग भी चलाये हैं यही नाना प्रकार के धर्मों की उत्पत्ति किये हैं मैं तो कहता हूँ कि जब उस समय न दिवस था, न रात्रि थी तब तुम कहाँ से बीच में आ गया और प्रभु ने तुझे हुक्म दे दिया कि तमाम वर्णाश्रम की स्थापना कर डाली, कर्म धर्म की रचना कर डाली मैं तो कहता हूँ कि उस प्रभु में उस आत्मा में, न जाति है न अलग-अलग बैठने की पंक्ति हैं वह सभी श्रेणियों से भिन्न है सभी बाह्याचारों से परे है सद्गुरु कबीर कहते हैं कि वह एक समान रहने वाला है न वह दिवस के प्रकाश से प्रकाशित होता है न वह रात्रि के अन्धकार से आच्छादित होता है वह परमतत्त्व सभी सृष्टि तत्त्वों से परे है। उससे परे कोई नहीं है। इसलिए सब कुछ छोड़-कर उसी का भजन करना चाहिए।

# सबद ९९

## शरीर अनित्यता प्रकरण

**अब कहां चलेहु अकेले मीता, उठहु न करहु घरहुं की चिन्ता।**
**खीर खांड घ्रित पिंड संवारा, सो तन लै बाहिर कै डारा॥**
**जेहि सिर रचि-रचि बाघेहु पागा, सो तन रतन बिडारत कागा।**
**हाड़ जरै जस जंगल लकरी, केस जरै जस घास की पूली॥**

**आवत संग न जात संघाती, काह भये दल बाधल हाथी ।**
**माया के रस लेन न पाया, अंतर जम बिलारि होय धाया ।।**
**कहैं कबीर नर अजहुं न जागा, जम का मुगदर मांझ सिर लागा ।**

**शब्दार्थ**—मीता–मित्र । उठहु–उठो । घरहु–घर की । चिन्ता–खोज । खीर–तस्मई, पायस । खांड़–जतसारी की चीनी । घ्रित–घृत, घी । पिंड–शरीर । सँवारा–सजाया ।सो–वह। बाहिर–बाहर, श्मशान में । डारा–फेंक दिया । रचि-रचि–खूब बनाकर । पागा–पगड़ी, मुरेठा । रतन–रत्न जड़ित मुकुटादि । बिडारत–विदारत, नोंच-नोंच कर खात । कागा–कौआ, काक। हाड़–हड्डी । लकरी–लकड़ो । केस-बाल । पूली–पोटरी, बंधा हुआ गट्ठर । संघाती–संघतिया, साथी । दल–समूह । हाथी–हस्ती । मुगदर–जिसको पहलवान लोग फेरते हैं, यम का हथियार ।

**सम्बन्ध**–इसके पहले कहा गया है कि ईश्वर के समक्ष कोई भी वस्तु सत्य नहीं है और न उसकी कोई बराबरी कर सकता है । इसलिए देवता-देवियों को और व्रत-उपवास को छोड़कर उसी समसत्ता का स्मरण करना चाहिए । इस पद में सद्गुरु कहते हैं कि जो उसका भजन नहीं करता है मरते समय उससे प्रश्न पूछते हैं ।

**मूलार्थ**—सद्गुरु उन शरीर संवारने वालों से पूछते हैं कि जो न कभी कोई परमार्थ किया । न हरि का नाम लिया, न कभी भागवत संतसंगति ही की अब उसके प्राण कंठगत होने पर पूछते हैं कि हे मित्र ! सब दिन तो परिवार के साथ और संग में रहा भला अकेले अब क्यों जा रहे हो ? पहले तो तुम्हें मैं कहता था कि राम-नाम का स्मरण करो, परमार्थ करो, तब तो तुम घर का प्रपंच बताता था, खेती-बाड़ी का बहाना लेता था, बाल-बच्चों के पालन-पोषण का बहाना लेता था । अब क्यों प्राण कण्ठगत होने पर रो रहे हो, उठो ! उस घर की चिन्ता करो, जिसके लिए रात-दिन तू परेशान था, जो तेरा यह शरीर जा रहा है इसको तो तुमने पूड़ी तस्मई से अनेक प्रकार की मिठाइयों से दूध, घी से खूब संवारा था, खूब पाला-पोसा था, ऐसे मस्त शरीर को तुम्हारे घर वाले अब थोड़ी ही देर में घर से बाहर श्मशान में ले जाकर डाल देंगे । अर्थात् जिसको तुम नाना प्रकार के पदार्थों से सजाया था । उस तेरे तन को बाहर डाल दिया जायगा

जिस सिर पर खूब रच-रच कर पगड़ी और मुरेठा बांधता था और बहुत सुन्दर लगता था, उस तेरी पगड़ी युक्त सिर को कौए नोंच-नोंच कर खा रहे हैं, उस पर चोंच मार रहे हैं, रत्न रूपी सिर तेरा वीभत्स दिखाई दे रहा है। तेरे शरोर की हड्डियाँ चिता में लकड़ी की तरह जल रही हैं, भस्म हो रही हैं। तुम्हारे सुन्दर केश जिनको दिन में अनेकों बार तेल-फुलेल से सजाता था, ककही घुमाता था, वह सुन्दर केश घास की छोटी पुरिया के समान भस्म हो रहे हैं। रे मूर्ख मनुष्य ! जब तक रहा खूब सरपंचयी किया, तेरे साथ सदा दस बीस लोग चलते फिरते थे परन्तु जिस प्रकार से अकेले आया था, उसी प्रकार से अब अकेले जा भी रहा है। भला तुम द्वार पर सिंगार के लिये हाथियों का झुण्ड बांधा था, परन्तु तेरे न रहने पर क्या शोभा दे रही हैं। तूं भर जीवन जीया भी नहीं पचास के भीतर ही चल बसा। जो माया इकट्ठी की थी, उसका रस व उसका स्वाद भी नहीं ले पाया। न उसका भोग ही कर सका। बीच में ही पचास के अन्दर में ही रवितनय, बिल्ली के सदृश तुम्हारे ऊपर चोट किया अर्थात् यम के समक्ष तूं मूंसा के समान है जैसे मूंसा को पकड़ने में बिल्ली को विलम्ब नहीं लगता है उसी प्रकार से तेरे को झपटने में यम को देर नहीं लगेगी। गुरु साहब कहते हैं कि इतना चेताने पर भी इस संसार का मनुष्य आज भी नहीं जाग रहा है। और न मेरे कहे अनुसार सत्कर्म ही कर रहा है। अब यह तभी जागेगा जब इसके सिर पर भगवान अंशुमाली के पुत्र का गम्भीर मुगदर लगेगा अर्थात् मेरे जगाने से नहीं जागा अब मृत्यु ही इसको जगायेगी और अपने साथ ले जायेगी अन्यथा कोई उपाय नहीं है कि यह जागे।

## सबद १००

### अन्योक्तिभ्रम प्रकरण

**देखहु लोगा हरिकेर सगाई, माय धरै पूत धियउ संग जाई।**
**सासु ननद मिलि अचल[1] चलाई, मंदरिया ग्रिह बेटी जाई॥**

---

१. अदल भी पाठ मिलता है जिसका अर्थ आदेश होता है।

**हम बहनोई राम मोर सारा, हमहिं बाप हरि पूत्र हमारा।**
**कहैं कबीर ये हरि के बूता, राम रमै ते कुकरी के पूता ॥**

**शब्दार्थ**—देखहु–देखिये। लोगा–लोग। हरिकेर–परमात्मा से। सगाई–सम्बन्ध। माय–माता, माया। पूत्र–पुत्र, जीव। धियउ–धिया, कन्या, पुत्री। सासु–माया। ननद–अविद्या। अचल–कुटस्थ, चेतन आत्मा। मंदरिया–मदारी, मादरी, मादर, मातर, जादूगर, मन। बेटी–पुत्री, बुद्धि। हम–जीव। बहनोई–बहन शील, जन्म मरण में पड़ने वाला, बहन का पति। राम–परमात्मा। सारा–सारतत्त्व, खेवनहारा। हर्महि–जीव। बाप–जरावस्था वाला। हरि–ईश्वर। बूता–ईश्वर शक्ति। कुकरी–कुत्ती, श्वान पत्नि, वन मुरगी। पूता–पुत्र।

**सम्बन्ध**—इसके पहले कण्ठगत प्राणी से कहा गया कि जन्म भर धन का संग्रह किया और अन्त में उसका उपभोग किये बिना ही संसार से चला जा रहा है। पुनः मानव के विपरीत बुद्धि का वर्णन करते हुए ईश्वर से झूठे प्रेम को दिखाने वालों के प्रति कहते हैं कि इन संसारियों की गति तो देखो।

**मूलार्थ**—अब कहा जा रहा है कि देखिये भला इस संसार के लोग प्रभु से किस प्रकार की सगाई किये हुए हैं अर्थात् परमतत्त्व से संसारी जीवों का विचित्र सम्बन्ध है। ऊपर-ऊपर तो बढ़िया वेश बनाए हुए हैं मुख से राम-राम कहते हैं राम की कथा करते हैं, माला फेरते हैं परन्तु ये संसारी जोव संसार को इतना पकड़ लिये हैं कि ध्यान तो उनका संसार में रहता है, संसार की मोह, माया से विरत नहीं होते हैं और नाम राम का लेते हैं। पकड़ना चाहिए था इनको परमेश्वर को परन्तु भौतिक सुख के लिए उनकी माया को ही पकड़ लिया है पकड़ना चाहिये था इसको परमतत्त्व को परन्तु मिथ्या सुख के लिए, क्षणभंगुर सुख के लिए, रुपया पैसा, धन दौलत, स्त्री पुत्र से सम्बन्ध जोड़ लिया है। समझता है कि इन्हीं में सारा सुख है। दूसरी विपरीत बात तो यह है कि जो धियउ़ कहिये पुत्री जो इस जीव से असत्य बुद्धि उत्पन्न हुई है उसी असत्य

बुद्धि के साथ परिगमन करते रहता है। संसार के मनुष्यों का सारा कार्य असत्य बुद्धि के कारण उत्तम नहीं है। जब से इसका असत्य बुद्धि से संग हो गया है तब से माया जो जीव की सासु है, ननद जो अविद्या, है दोनों ने एक साथ होकर इस अचल आत्मा को चलायमान कर दिया है।

तात्पर्य यह है कि जब मनुष्य में असत्य बुद्धि उत्पन्न होती है तो वह माया से सम्पृक्त हो जाता है तब माया और अविद्या उसको चलायमान कर देती है। तब उसकी विवेक बुद्धि कुछ काम नहीं करती है तब उसके बाद मंदरिया जो मादर का अपभ्रंश रूप है। जा संस्कृत में मातर का रूपहै अर्थात् बेटी को माता के यहाँ जाना चाहिए था परन्तु महतारी ही जाकर बेटी के घर में निवास करती है अर्थात् जो सतोगुणी माया है वह असत्य बुद्धि में आकर समाविष्ट हो गयी है जिसके कारण सतगुण का अभाव हो गया है। हृदय पटल पर तम गुण का पहरा हो गया है अर्थात् वृत्ति में जब तम गुण संयुक्त हो जाता है तब उसके सारे कार्य विपरीत और अनिश्चित होने लगते हैं। तब यह जीव अज्ञान दशा को प्राप्त हुआ कहता है कि मैं वहन शोल हूँ, मरण धर्मा हूँ और मेरे उद्धार के लिए केवल अब राम ही रह गया है अर्थात् यह जीव भवसागर में बहने वाला है इसका उद्धार अब परमेश्वर ही कर सकते हैं, हमहिं कहिये हम जीव पिता के समान जरावस्था वाला हैं कमजोर हैं। और पुत्र के समान सबल केवल हरि ही हैं जो मेरी जरा कहिये वृद्धावस्था में आधार हैं।

सद्गुरु कहते हैं कि यह हरि की ही शक्ति है जो कि जीवों का उद्धार कर सकती है क्योंकि ये जीव ये मनुष्य अविद्या और माया के फन्दे में जकड़ चुके हैं। शुद्ध सद्गुण वाली माया असत्य बुद्धि में समाविष्ट हो गई है। इसलिए इस जीव में स्वतः भवसागर तैरने की शक्ति नहीं रह गयी है। इसको अब ईश्वर ही उक्त पंक से बाहर निकाल सकता है और जो लोग उस राम में रमने लगते हैं वे कुकरी कहिए कुत्ती व कुतिया के पुत्र के समान निराभिमान हो जाते हैं तथा, मान मद से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता है।

**आशय**—संसारी मनुष्य ऊपर से धर्म का बहुत ढोंग रचता है परन्तु उसके सारे व्यवहार मायामय होते हैं। दुर्बुद्धि से सने होते हैं। अविद्या और अज्ञान के कारण उसके कार्य सबके सब अपूर्ण होते हैं। खण्डित होते हैं। क्योंकि माया में पड़ा हुआ प्राणी माता के समान रक्षा करने वाला सद्गुण असद्गुण से संपृक्त हो चुका है। इसलिए वह स्वतः आत्मज्ञान का अधिकारी नहीं हो सकता है न अब भवसागर ही तैर सकता है।

अब यहाँ बीजक की सूक्ति है—'की रे छुड़ावै पीव' चरितार्थ हो रही है। क्योंकि संसार के अज्ञानी मनुष्य भ्रमिक हैं उनका उद्धार केवल राम ही कर सकता है क्योंकि राम ही सार तत्त्व है। यह जीव पिता के समान वृद्ध है, शक्तिहीन है, इसलिए यहाँ पर हरि को पुत्र कहा गया है। क्योंकि लोक में व शास्त्र में पुत्र ही पिता को तारता है इसलिए यहाँ पर हरि को पुत्र की संज्ञा दी गई है।

कबीर साहब कहते हैं कि यह हरि के ही शक्ति की बात है कि जीवों को अपने में रमण करावें और कुत्ते की तरह मान मद से परे कर दें। और किसी अन्य के मान का नहीं है। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि सच्चे दिल से प्रभु की भक्ति करें और मान मद से रहित होकर संसार में विचरण करें क्योंकि मान मद ही जन्म मरण के कारण हैं।

# सबद १०१

## योगि का विस्मय प्रकरण

**देखि देखि जिय अचरज होई, यह पद बूझै बिरला कोई।**
**धरती उलटि अकासय जाय, चिउंटी के मुख हस्ती समाय॥**
**बिना पौन सौं परबत उड़ै, जीउ जंतु सभ वृक्षा चढ़ै।**
**सूखे सरवर उठै हिलोरा, बिनु जल चकवा करत किलोरा॥**
**बैठा पण्डित पढ़ै पुरान, बिनु देखे का करत बखान।**
**कहैं कबीर यह पद को जान, सोई संत सदा परमान॥**

**शब्दार्थ**—अचरज–आश्चर्य। बूझे–समझे। बिरला–कोई–कोई

धरती–मूलाधार चक्र। अकासय–आकाश, ब्रह्मरन्ध, सहस्रार। चिउंटी–सुरति व ब्रह्म नाड़ी जो सुषुम्ना के भीतर होती है। हस्ती–मन। पौन–पवन प्राण। परबत–पर्वत, अहंकार व मन। सरवर–हृदय। हिलोरा–लहर आनन्द। चकवा–जीवात्मा। किलोरा–कल्लोल, किलोल, आनन्द युक्त खेल। पण्डित–शास्त्र को जानने वाला। परमान–प्रामाणिक।

**सम्बन्ध**--ऊपर में कहा गया है कि झूठे सम्बन्धों के कारण यह जीव असद्गति को प्राप्त हो जाता है और जन्म-जन्म एवं इस संसार का चक्र काटते रहता है। अन्त में कहा गया है कि यदि राम में रम जाय तो इसकी भलाई हो सकती है।

अब नीचे जीव के तरने के लिए एक उपाय बताया जा रहा है जो बड़ा आश्चर्यंकारी है जिसका अन्वेषण तांत्रिकों और हठ योगियों ने किया है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे भाई ! सन्तों ने कुछ ऐसे साधनों का भी अन्वेषण किया है जो आश्चर्यकारी है। सामान्य मनुष्य इसको समझ नहीं पाते हैं जिसे देख-देखकर जीव व मन में बड़ा आश्चर्य होता है पर इस पद को जो नीचे कहा जा रहा है कोई बिरला ही मनुष्य बूझ सकता है। क्योंकि धरती उलटि कर आकाश में जा रही है। चींटी के मुख में हाथी समा रहा है बिना पवन के पर्वत उड़ रहे हैं भूमि के सब जीव जन्तु वृक्षों पर चढ़ रहे हैं सूखे सरवर में हिलोरे उठ रहे हैं। बिना जल के ही चकवा पक्षी सरोवर में कल्लोल कर रहा है। इसी प्रकार से बैठा हुआ पण्डित पुराण पढ़कर लोगों को परमतत्त्व का उपदेश कर रहा है।

कबीर साहब कहते हैं कि जो इस पद को जान लेगा वही सन्त सदा प्रामाणिक माना जायेगा। धरती यहाँ पर मूलाधार चक्र है। जब योगी अपान वायु को खींचकर प्राण वायु में स्थिर करता है तब कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है। कुण्डलिनी का मुख मूलाधार चक्र में नीचे की ओर रहता है परन्तु जब योगी उसको ध्यान के द्वारा सुरति योग के द्वारा व प्राणायाम के द्वारा जगाता

है तो वह उलट कर आकाश कहिये सहस्रार में परम शिव से जाकर मिल जाती है अर्थात् कुण्डलिनो के जागृत होने पर उससे परम सत्य का सम्बन्ध हो जाता है। जब कुण्डलिनी ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाती है तो उसका मार्ग समझना चाहिए कि सुषुम्ना के अन्दर एक चित्रा नाड़ी है और उसके अन्दर भी एक ब्रह्म नाड़ो है जिसको यहाँ चींटी को संज्ञा दी गई है। कुण्ड-लिनी जागने पर उसी ब्रह्म नाड़ी के अन्दर से गर्जना करती हुई भयानक नाद से युक्त (कुण्डलिनी शक्ति) सहस्रार में पहुँच जाती है।

अब बिना प्राणायाम के ही वह पर्वताकार मन उस कुण्डलिनी के साथ ब्रह्मरन्ध्र में उड़ चला और भी जो जीव जन्तु इस जीव के साथी संघाती थे वे सब काम, क्रोध, लोभ, मोह, रूपी जीव जन्तु उस वृक्ष रूपी सहस्रार में जाकर लय हो गये। जब योगी की कुण्डलिनी जाग गई तब हृदय रूपी सरोवर जो सूखा रहता था जिसमें आनन्द रूपी जल का बिल्कुल अभाव था अब वह आनन्द रूपी जल में हिलोरें ले रहा है। वहाँ पर सांसारिक जल नहीं है जहाँ पर चकवा रूपी साधक योगी कल्लोल कर रहा है इस कल्लोल का और हिलोरें का आनन्द केवल पहुँचा हुआ साधक ही अनु-भव कर सकता है। अन्य जो बैठकर केवल कथा पढ़ते हैं, पुराण बांचते हैं, बिना देखे हुए का बहुत चढ़ा-बढ़ाकर बखान करते हैं, ऐसे शुष्क हृदय वालों को जो साधक नहीं है वे केवल वाणी का सुख पाते हैं क्षणिक लोक सम्मान से मात्र सुखी होते हैं।

सद्गुरु कहते हैं कि इस पद को जो जान जाता है जो ऊपर कहा गया है सोई सन्त की सोई मनुष्य की कही हुई बात प्रामाणिक हो सकती है शेष शास्त्र के वक्ता निरर्थक सिद्ध होते हैं। क्योंकि इन्हें वास्तविकता की जानकारी नहीं होती है।

## सबद १०२

### सद्विचार विमर्श प्रकरण

**हो दारी के ले देउँ तोहिं गारी, तैं समुझ सुपंथ बिचारी।**
**घरहुँ के नाह जो अपना, तिनहुँ से भेंट न सपना॥**

**बाह्मन छत्री बानी, तिनहुँ कहल नहिं मानी।**
**जोगी जंगम जेते, आपु गहे हैं तेते ॥**
**कहैं कबीर एक जोगी, वो तो भरमि भरमि भौ भोगी ॥**

**शब्दार्थ**—हो-हे। दारी-दासी, भ्रष्ट स्त्री, जो लड़ाई में जीतकर लाई गयी हो प्रतिपक्ष की औरत, (सं०) दारिका जिसका अर्थ होता है कुँवारी लड़की, भ्रष्टा आदि। तोहि-तुझे। गारी-अपशब्द, अश्लील शब्द, व्यंग्य, मजाक। सुपंथ-सुमार्ग। बिचारी-विचारो। घरहुँ-घर का भी। नाह-नाथ, स्वामी, अपना, निजी। तिनहु-तिनसे भी। भेंट-दर्शन। बानी-वैश्य। कहल-कहा। जोगो-नाथयोगी। जंगम-घुमक्कड़ संन्यासी। भौ-हुआ। वो तो-वह तो।

**सम्बन्ध**—पहले हठयोग व कुण्डलिनी योग की महत्ता दर्शाकर पोथी के पण्डितों का परिहास भी किया गया है अब परमार्थ में प्रेरित करने के लिए परिहास युक्त वचनों के द्वारा जैसे हास्य रस में, विनोद भाव में, बड़े लोग छोटों को कभी-कभी कह देते हैं। उसके द्वारा उपालम्भ देते हुए अच्छी बात कहते हैं।

**मूलार्थ**—यदि मनुष्य अच्छा काम नहीं करता है सत्य मार्ग का अनुसरण नहीं करता है तो लोक में लोग कभी-कभी उसके प्रति अभद्र शब्द भी बोलते हैं। इसी प्रकार से सद्गुरु कबीर साहब संसार के आत्म-विमुख मनुष्यों से कहते हैं कि तू अच्छे वंश का नहीं है तेरे माता-पिता धार्मिक नहीं दीखते यदि धार्मिक होते तो तुझे भी धार्मिक होना चाहिए था परन्तु तुम धर्म पथ से पूर्ण रूपेण पृथक रहता है। इसलिए मैं तुझे कहता हूँ कि तेरी महतारी दारी हैं। कुल्टा है, भ्रष्टा हैं, यही गाली तुझे मैं दे रहा हूँ। यदि मेरे इस दुखावेपूर्ण वाक्य को जिसमें मैं तुझे दारीका कहा हूँ। कि तू दारी वाला है ऐसा कहना मेरा तेरे हित के लिए है। इसलिए तू सुपंथ को समझो और सुमार्ग गामी बनो और सत्यपंथ पर विचार करो कि सत्यपंथ है क्या ? तो मैं तुझे कहता हूँ कि सत्यपंथ व आत्मतत्त्व का मार्ग

वह है जो तेरे शरीर रूपी घर में विराजमान है। अर्थात् तेरे घट में जो तेरा नाह कहिये स्वामी है जो तेरा अपना नाथ है तिनसे तुम स्वप्न में भी भेंट नहीं किया इसलिए मैं तुझे दारी वाला कहा हूँ। तुझे चाहिए था कि जो प्रत्येक घट में सर्वनियन्ता जगत प्रकाशक तेरा आत्मा विराजमान है उसको तु समझो, उस पर विचार करो, उसका साक्षात्कार करो, तभी तू सुमाता के पुत्र कहलाओगे। श्री रामायण में भी लिखा है कि—

पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुबर भक्त जासु सुत होई॥

जिस माता का पुत्र रघुवर वा परमतत्त्व का भक्त नहीं हैं। वे सब दारी के पुत्र हैं। उनका महत्त्व संसार में कुछ भी नहीं है। मैं इस बात को ब्राह्मणों से, क्षत्रियों से, वैश्यों से जो समाज के समझदार लोग थे। उन सभी से कहा कि दुनिया का प्रपंच छोड़कर अनेक देवी-देवताओं की उपासना छोड़कर तीर्थ-मूर्ति की भर्मना छोड़कर जो तेरे हृदय सरोवर में विराजमान हैं। जो आनन्द का केन्द्र है जिसके बिना सारा संसार तुच्छ है उस परम प्रभु को अपने अन्दर में ही प्राप्त करो परन्तु मेरी बात को उक्त जाति के लोग नहीं माने। मैंने उपर्युक्त तत्त्व के विषय में हठयोगियों से भी कहा जंगमों से भी कहा परन्तु ये सब अपने-अपने शास्त्रों के सिद्धांत को पकड़े हुए हैं और उसी पर गर्व करते हैं। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि एक योगी जो मन के अधीन है। जो माया के वश में है। वह भ्रमि-भ्रमि कर भोगी हुआ है।

दूसरा अर्थ एक योगी का आत्मतत्त्व भी है क्योंकि एक शब्द महत्त्वपूर्ण है। यदि एक योगी से आत्मतत्त्व का अर्थ लिया जायेगा तो अर्थ होगा की वह आत्मा रूपी योगी सभी शरीर धारियों में भ्रमण करता हुआ संसारियों के लिए भोगी बना हुआ है। क्योंकि जब तक उसकी प्राप्ति नहीं की जायेगी और जब तक मन बुद्धि से भिन्न नहीं किया जायेगा काम-क्रोध से अलग नहीं किया जायेगा तब तक वह आत्मा इन्द्रियों के द्वारा विषय सुख का भोगी बना रहेगा इसलिए उसको सभी

से परे समझ कर निर्भोक्ता के रूप में उपासना करो तभी मुक्त हो सकते हो।

## सबद् १०३

### भक्तिभावनात्मक आत्मज्ञान प्रकरण

**लोगा तुमहीं मति के भोरा।**
**ज्यों पानी-पानी मिलि गयऊ, त्यों धुरि मिला कबीरा।**
**जो मिथिला को सांचा व्यास, तोहरो मरन होय मगहर पास॥**
**मगहर मरै मरन नहिं पावै, अंतै मरै तौ राम लजावै।**
**मगहर मरै सो गदहा होय, भल परतीत राम सौं खोय॥**
**का कासी का मगहर ऊसर, जौ पै हिृदय राम बसे मोरा।**
**जौ कासी तन तजे कबीरा, तौ रामहिं कवन निहोरा॥**

**शब्दार्थ**—लोगा–लोग। तुमहीं–तुम सब। मति–वह बुद्धि जो भविष्य के बारे में विचार करती है। भोरा–भोला, अल्प समझवाला, अल्पबुद्धि वाला। ज्यों–जैसे। धुरि–धुर, ढुरि, बिल्कुल ठीक, पक्का संस्कृत का ध्रुव। मिथिला को–जो मिथिला के। तोहरो–आपका। गदहा–गर्दभ। भल–अच्छी। ऊसर–मरू भूमि। निहोरा–प्रार्थना, सहायता।

**सम्बन्ध**—पूर्व पद में कहा गया है कि जो हरि भक्ति को नहीं जानता है वह दारी का पुत्र है। अब नीचे कहा जा रहा है कि जो मुझे नहीं समझ पाये कि कबीर क्या हैं और कबीर की विचारधारा क्या है? वे भोले-भाले और अल्प बुद्धि के हैं।

**मूलार्थ**—यह प्रसिद्ध बात है कि सद्गुरु कबीर के मगहर परिगमन पर काशी के लोगों के द्वारा रोका गया था। लोगों का कहना था कि काशी मुक्ति का क्षेत्र है और आप अन्त समय में काशी का त्याग न करें क्योंकि मरने के समय में ही लोग काशी आते हैं। सकल जन्म आप काशी में ही रहे और मरण काल में आप मगहर जाँय यह शोभा नहीं देता। इस पर सद्गुरु कबीर लोगों से कहते हैं कि हे काशी के लोगों! आप

बड़े भोले भाले हैं आप लोग मेरी मुक्ति की चिन्ता न करें मैं कहीं भी शरीर छोड़ूंगा तो उस परम तत्त्व में उसी प्रकार से मिल जाऊँगा जैसे अन्य सरिताओं का पानी व नदियों का जल नदियों के द्वारा समुद्र में जाकर मिल जाता है। वहाँ पर उसकी सारी द्वैत भावना मिट जाती है न वहाँ पर नदी का जल दिखाई देता है, न नालों का जल दिखाई देता है केवल समुद्र ही समुद्र के दर्शन होते हैं। ठीक उसी प्रकार से मैं कबीर उस परम तत्त्व में मिल जाऊँगा जहाँ से मेरा आना-जाना सब बन्द हो जायेगा।

ऐतिहासिक घटना है कि सद्‌गुरु कबीर साहब को काशी के लोगों द्वारा मगहर जाने का अवरोध किया जा रहा था। उसी भीड़ में उन्हीं लोगों में एक मिथिला के व्यास जी भी थे। जिनके नाम गाँव का पता नहीं है परन्तु पद में मिथिला शब्द आया है। वे व्यास जी भी सद्‌गुरु कबीर को बहुत समझाये कि महाराज आप अन्त में काशी न छोड़ें इस पर सद्‌गुरु कबीर व्यासजी को उत्तर देते हैं कि हे व्यास जी! यदि आप सच्चे अर्थ में व्यास हैं व शास्त्रों के अनुरूप आत्मा को जान गये हैं, तो मैं कहूँगा कि तोहरो कहिये आपकी मृत्यु भी मगहर के पास होनी चाहिए क्योंकि जो ज्ञानी होता है वह मगहर आदि निषिद्ध क्षेत्रों में मरता है तो मरण कहिये वह मृत्यु को प्राप्त नहीं होता अर्थात् ज्ञानी कहीं भी मरे वह मृत्यु से परे माना जाता है। क्योंकि मृत्यु अज्ञानियों की होती है। ज्ञानियों की मृत्यु नहीं होती।

पुनः सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि आप जैसे ज्ञानी वेदविद् व्यास मगहर छोड़कर अन्ते कहिये काशी आदि छव मुक्तिपुरियों में मरता है तो राम को लजवाता है। अर्थात् राम का अपमान करता है क्योंकि जो प्रभु भक्त हैं जो ज्ञानी हैं उनके कहीं मरने का कोई नियम नहीं है। वह जहाँ भी मरेंगे उनको भगवान जन्म मरण से परे कर देंगे और आप जो यह कहते हैं कि मगहर मरने पर गर्दभ होता है तो यह नियम अज्ञानी पुरुषों के लिए है। यह राम भक्तों पर लागू नहीं होता है। यदि राम का

भक्त ऐसी बात कहता है कि मैं केवल मुक्ति पुरियों में ही मरूँगा तो वह जो भगवान की प्रीति है भगवान में अच्छा विश्वास है उसको वह खो देता है नकार देता है अर्थात् वह भगवान का सही भक्त नहीं है।

मैं तो कहूँगा कि मुक्ति के लिए ज्ञानी के लिए काशी बढ़िया क्षेत्र नहीं है और ज्ञानी के लिए मगहर की भूमि भी उपजाऊ नहीं है। ज्ञानी चाहे काशी में मरे, चाहे मगहर में मरे वह समान गति को ही प्राप्त होता है। हे व्यास जी ! यदि मेरे हृदय में सही राम का निवास है तो ऐसी दशा में मैं काशी में तन तजता हूँ, तो श्री राम की भक्ति करने से क्या लाभ हुआ ? तो इसमें राम की क्या महत्ता है। यदि मैं कबीर काशी के भरोसे रहूँ तो श्री राम का अपमान होगा इसलिए आप लोग मेरे विषय में निश्चिन्त हो जाँये। मैं कहीं भी मरूँगा मुझे नरक नहीं जाना है क्योंकि मेरा सम्बन्ध उस चिरंतन राम से हो गया है। इसलिए आप लोग भी उसी राम की भक्ति करें जिससे की मेरी गति आपको प्राप्त हो।

## सबद १०४

### पाखण्ड प्रकरण

**कैसे तरो नाथ कैसे तरो, अब बहु कुटिल भरो।**
**कैसी तेरी सेवा पूजा, कैसो तेरो ध्यान ॥**
**ऊपर उजल देखो, बग अनुमान।**
**भाउ तो भोवंग देखो, अति बेविचारी ॥**
**सुरत सचान तेरी, मति तो मंजारी।**
**अति रे विरोधी देखो, अति रे सेआना ॥**
**छव दरसन देखो, भेख लपटाना।**
**कहैं कबीर सुनो नर बंदा, डाइन डिंभ सकल जग खंदा ॥**

**शब्दार्थ**—नाथ–नाथ (अच) नाथ स्वामी, प्रभु, ईश्वर, गोरख पंथी सन्त, एक रस्सी जिससे पशुओं को नाथा जाता है। कुटिल–टेढ़ा। बग–बगुला, एक श्वेत पक्षी जो तालाब या नदी के किनारे मछली व

केकड़ा खाता है। अनुमान–समान, किसी चीज की कल्पना करना। भोवंग–भुजंग, सर्प। अति–बहुत। बेविचारी–शुद्ध व्यभिचारी। सुरत–सुरति, मन की वृत्ति। सचान–बाज पक्षी। मंजारी–बिल्ली। छवदरसन–छ दर्शन जोगी, जगम, सेवड़ा, संन्यासी, दरवेश, ब्राह्मण। लपटाना–केवल वेश धारण करना। बंदा–दास, सेवक। डाइन–माया (अ० भा०) डाकिनी, (सं० टोनही स्त्री)। डिंभ–गर्भ के अन्दर का बच्चा, बहुत बन ठनकर बैठना, पाखंड, दम्भ। खंदा–नष्ट किया।

**सम्बन्ध**—पूर्व पद में कहा गया है कि ज्ञानी के लिए कहीं मरने का नियम नहीं है कि वह कहीं अमुक क्षेत्र में मरे तो उसकी मुक्ति होगी। यदि ज्ञानी तीर्थादि में मरने की इच्छा करता है तो सद्गुरु की दृष्टि में वह ज्ञानी नहीं है। अब नीचे के पद में वेशधारी ज्ञानियों से कहते हैं कि बाबा तू तो ज्ञानी नहीं हो ? क्योंकि तेरे अन्दर बहुत सी बुराईयाँ दीख रही हैं।

**मूलार्थ**—बड़े-बड़े तीर्थों में बड़े-बड़े आश्रम बनाकर जो बड़े-बड़े स्वामी लोग रहते हैं। विद्या के धनी हैं, धन के भी धनी हैं, परन्तु वास्तविकता न होने के कारण सद्गुरु उनसे पूछते हैं कि हे नाथ जी, हे स्वामी जी ! आप बहुत से चेला-चेली बनाये हैं और बना भी रहे हैं, अपने सम्प्रदाय के लिए सब कुछ कर रहे हैं। चाहे आप शैव हों, चाहे आप नाथ हों, चाहे आप इस्लाम के मानने वाले हों। मैं आपसे पुनः पूछता हूँ कि कैसे आप तरेंगे। आपके अन्दर देखता हूँ तो बहुत कुटिलता भरी हुई है। पहले तो आपके पूर्ववर्ती ठीक होते थे परन्तु अब आपलोग बहुत टेढ़े हो गये हैं। अपने ऊँचे बनने के लिए महंती के लिए दूसरों की हत्या कराते हैं। दूसरों की निन्दा करते हैं। दूसरों का दोष देखते हैं। जो संसार और संसारियों की बुराइयाँ हैं, वे सब आप में विद्यमान हैं। भला ऐसी दशा में आपकी सेवा पूजा और आप का ध्यान कैसे किया जाय। आप तो ऊपर से बड़े उज्ज्वल दीखते हैं। अर्थात् बाहरी वेश आपका बड़ा विमल है परन्तु वैसे ही विमल है जैसे बगुला ऊपर से बड़ा स्वच्छ शान्त दीखता है परन्तु सरोवर के किनारे एकाग्रचित होकर बैठा रहता है और अवसर

पाते ही मछलियों को पकड़ लेता है। उसी प्रकार से आप भी ऊपर से बड़े ज्ञानी, ध्यानी लगते हैं परन्तु विषय वासना पर अवसर पाते ही बड़ी चोट करते हैं। आप लोगों के अन्दर का भाव तो भयंकर विषधर सर्प के समान है। जो अपने क्रोध के द्वारा दूसरों को भस्म कर देता है। क्रोधाग्नि आपकी शांत नहीं हुई है। यही सर्प है और आप बड़े व्यभिचारी दीखते हैं। व्यभिचार में लिप्त हैं। मन की जो वृत्ति है वह बाज पक्षी के समान है और जो अग्रगामी भविष्य के लिए सोचने वाली मति है, वह बिल्ली के समान है। दूसरों का नुकसान करने वाली है। उधर सचान के समान होकर अबल जीवों को खाते हैं। मनुष्यों का शोषण करते हैं। कहीं बिल्ली जैसे कमजोर आदमियों का स्वत्त्व चुरा लेते हैं। आप के विचारों में अति विरोधाभास भरा पड़ा है। आपलोग बड़े सयाने हैं। व्यवहार कुशल हैं। बुद्धिमान हैं, बड़े-बड़े पदों पर अवस्थित हैं! शास्त्रों के द्वारा समता का उपदेश देते हैं परन्तु हे नाथ जी ! आप बड़े विरोधी दीखते हैं। मैं आपको ही नहीं कहता हूँ। इस प्रकार के लोग छओं दर्शनों में विद्यमान हैं। मात्र ऊपर से साधु का वेश धारण किये हुए हैं व लपेटे हुए हैं। पर ये न साधु हैं, न ज्ञानी हैं। सद्गुरु इन नर बंदों-दासों को सुनाकर कहते हैं कि यह पाखंड और दम्भ रूपी माया सब में व्याप्त है। जिसके कारण सारा जगत खंडित हो रहा है। अर्थात् सारे जगत के धर्मवाले व सम्प्रदाय वाले निन्दा के पात्र बनकर नाश हो रहे हैं। यदि आपको तरना है तो उपर्युक्त दोषों को छोड़ने के लिए साधन कीजिए। सन्त सद्गुरु को शरण में जाइये।

# सबद १०५

## भ्रमभूत प्रकरण

**यह भ्रम भूत सकल जग खाया, जिन-जिन पूजा तिन जहंराया।**
**अंड न पिंड न प्रान न देही, काटि-काटि जिउ कउतुक देही॥**
**बकरी मुरगी कीन्हेउ छेवा, आगिल जनम उन अउसर लेवा।**
**कहैं कबीर सुनो नर लोई, भुतवा के पुजले भुतवा होई॥**

**शब्दार्थ**—भ्रम–धोखा, भ्रान्ति, सन्देह। भूत–जो मरकर वासनाओं के कारण हिन्दू शास्त्र के अनुसार असमय में मरे हुए प्राणी की आत्मा-प्रेत योनि को प्राप्त होता है। जिन–जो। जहंराया–जहड़ाया नष्ट हो गया। अंड–अंडज। पिण्ड–पिंडज। प्राण–जीवात्मा। देही–आत्मा। कौतुक–कृत्रिम बनावटी, मिट्टी के देवता। छेवा–घाव। आगिल–अगले। अवसर–समय पाकर। लोई–लोग। भूवा–भूतत। पूजले–पुजने से।

**सम्बन्ध**—ऊपर के पद में कहा गया कि छओ दर्शन के लोग पांखड में रत हैं जिसके कारण इनको सुखानुभूति होना कठिन है। अब नीचे के पद में लोक के तान्त्रिकों, ओझाओं एवं शाक्तों को सम्बोधित करके कहते हैं कि तुम्हारी भूतादि की जो पूजा है वह सब निरर्थक है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे संसार के लोगों! आप लोग जो भूत प्रेतों का अस्तित्व स्वीकार करके उनके नाम पर सजीव प्राणियों की बलि देते हैं। वह आपके लिए अच्छा नहीं है क्योंकि यह भ्रम का भूत है। धोखे का भूत है। वास्तविक भूत नहीं है परन्तु भ्रान्ति वश सारे संसार को खा रहा है। जो-जो भूत प्रेतों की पूजा किये। वे सब नाश को प्राप्त हुए। अर्थात् ठगा जहड़ा गये। क्योंकि जो तुम्हारा भूत है न अंडज है न उसमें पिंड है, न उसमें प्राण वायु है, न उसका कोई स्वरूप है, न उसमें देही कहिये आत्मा ही है। तुम लोग अपने अज्ञान के कारण उस बनावटी मिट्टी के भयानक आकृति वाले प्रेत को खुश करने के लिए जीवों को काट-काटकर देते हो। अपने मनोरथ की सिद्धि के लिए मिट्टी के देवता के सामने बकरी मुर्गी को काटते हो। परन्तु समझ लो कि अगले जन्म में अर्थात् इसके बाद जब तुम मरकर जन्मेगा और जिन्हें काट-काट कर चढ़ाया है वे भी जन्मेंगे। तब वे तुम्हारे द्वारा मारे गये प्राणी उस जन्म में समय पाकर इसी प्रकार से तुम्हारी भी सेवा करेंगे। तुमको भी काटेंगे।

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे मानव लोग! सुनो और समझो। गीता के अनुसार भूत पूजने वाला भूत होगा, देवताओं के पुजने वाला देवता

होगा और मेरे पूजने वाला अर्थात् परम तत्त्र का उपासक परम तत्त्व को प्राप्त होगा। इसलिए इस गंदी व्यवस्था का त्याग करो। अन्यथा कुशल नहीं है।

**टिप्पणी**—इस बलि पूजा पर एक कथा शास्त्रों में प्रसिद्ध है। एक ब्राह्मण था जो शाक्त था और देवी का बड़ा उपासक था परन्तु उसके पुत्र आदि नहीं थे। पुत्र प्राप्ति के लिए उसने चार बकरों की बलि देवी को दिया परन्तु तो भी पुत्र के दर्शन नहीं हुए। काल पाकर, ब्राह्मण का शरीर छूट गया। देहावसान के बाद पुनः उसका जन्म हुआ और ब्राह्मण के ही घर में जन्मा। कुछ दिन में सयाना हुआ और वैष्णव धर्म में संन्यास की दीक्षा ले ली। ग्राम से वा नगर से दूर एक जंगल था। जिसके बीच में एक सुन्दर सरोवर था। पास में ही देवी का मंदिर भी था। परन्तु वेष्णव होने के कारण वह केवल भगवान विष्णु की ही सेवा पूजा करता था। इस प्रकार से जप-तप करते बहुत काल बीत गये। अन्त में वृद्धावस्था आ ही गयी। एक दिन की घटना है कि कहीं से चार चोर घूमते हुए देवो के स्थान पर इकट्ठा हुए। आपस में कुछ विचार विमर्श करने के बाद चोरों ने मां भगवती से कहा कि आज हम लोग राजा के यहाँ चोरो करने जा रहे हैं। यदि मुझे वहां सफलता मिल गयी तो आपके लिए मनुष्य की बलि दूँगा। उक्त विचार करके समय पाकर रात में राजा के गढ़ में घुस गये। संयोगवश प्रहरी सब सो गये थे। मन वांछित द्रव्य बाँधकर चोर लेकर चम्पत हुए और बड़ी खुशी में भोज आदि का आयोजन किये। खूब बकरा आदि मारकर खाये-पीये। परन्तु उक्त कार्य सिद्धि के लिए जो मनौती मानी गयी थी वह माँ दुर्गा को नहीं चढ़ाई गयी। पुनः जब चोरी करने की तैयारी चारों ने की। तो देवी की पूजा स्मरण हो आयी। चोरों ने कहा कि हमें नर बलि देकर ही चोरी के लिए चलना चाहिए। चोर वही मनुष्य की खोज में पड़ गये परन्तु कहीं कोई मिला नहीं। अन्ततः उसी जंगल में जा पहुँचे। जहाँ वह ब्राह्मण संन्यासी तप कर रहा था। चोरों ने आकर उसको

पकड़ा। कहा चलो तुम्हें देवी को बलि देना है, साधु ने कहा मेरा क्या अपराध है? चोरों ने कहा हम यह सब कुछ नहीं जानते। चलो तुम्हें बलि देना है। अन्त में चोरों की नियति समझकर साधु ने कहा मुझे थोड़ा सन्ध्या वन्दन कर लेने दो। तब मेरी बलि देना। चोरों ने कहा ऐसा ही हो। चारों घाटो पर चोरों का पहरा पड़ने लगा और बाबा जी भी भगवद् आराधना में निमग्न हो गये। भगवान से बोले हे प्रभो! मेरा क्या अपराध है? जो आज मुझे दुष्ट मनुष्यों के द्वारा मरवाया जा रहा है। उधर से आकाशवाणी हुई कि तुम भी इन सबों को पूर्व जन्म में देवी के सामने काटा था। आज वह बदला उपस्थित हो गया है। प्रत्युत् तुझे चार बार जन्म लेना पड़ता और ये चार चोर भी तुझे चार बार मारते। परन्तु मेरी भक्ति के कारण एक ही जन्म में एक ही बार तुझ से चारों को बदला लेने से मुक्त कर दिया। चार में से तीन को मुक्त कर दिया। एक ही बार में तुम्हारा सब ठीक हो जायेगा। संन्यासी बड़ा खुशी हुआ। कहा हमारे ही कर्म का फल है। चोरों की ओर ईशारा किया और वे आ गये। बोला कि अब मुझे ले चलो काटो परन्तु चोरों ने कहा कि तू बात-चीत किससे करता रहा? साधु ने कहा इससे तुम लोगों को कोई मतलब नहीं परन्तु तस्करों के हठ करने पर उसने सारी घटना बता दी। चोरों ने कहा जब भगवान तीन बार क्षमा कर दिये तो जाओ, एक बार हम भी क्षमा कर देते हैं। अस्तु कथा का तात्पर्य आप लोग समझ गये होंगे। इसको समझ कर कार्य करेंगे।

## सबद १०६

### जरा अवस्था दुर्गति प्रकरण

**भंवर उड़े बग बैठे आय, रैनि गई दिवसो चलि जाय।**
**हल-हल कापै बाला जीऊ, ना जानूं का करिहैं पीऊ॥**
**कांचै वासन टिकै न पानी, उड़ि गये हंस काया कुम्भिलानी।**
**काग उड़ावत भुजा पिरानी, कहैं कबीर यह कथा सिरानी॥**

**शब्दार्थ**—भंवर–भ्रमर, काले बालों का प्रतीकात्मक रूप। उड़े–समाप्त हो गये, चले गये। बग–बक, श्वेत बाल, उपस्थित हो गये। रैनि–बाल्य अवस्था से पचीस वर्ष की अवस्था, रात्रि। दिवसो–दिन, पच्चीस से साठ तक का समय भी चला गया जो ज्ञान का द्योतक है। हल-हल–हीले, थर, थर। कांपै–कम्पित। बाला जीउ–अबला के समान निर्बल अवस्था वाला जीव, बालक, लड़का। पीऊ–प्रिय, ईश्वर, परमात्मा। कांचे–कच्चे, शीशे का बर्तन, कांच। वासन–बर्तन। काया–शरीर। कुम्हिलानी–मुरझा गयी। काग–काक, वासना युक्त मन कुबुद्धि। पिरानी–दुःखाई। सिरानी–समाप्त हो गयी।

**सम्बन्ध**—पूर्व पद में भूत के अस्तित्व को संदिग्ध बताते हुए कहते हैं कि उसके पूजने वालों को सही अर्थ की सिद्धि नहीं होती। अब नीचे कहा जा रहा है कि यह जीव अचेत अवस्था में ही पड़ा रहा। क्योंकि उधर अहितकारी कर्मों में लगा रहा। इधर संसार के विषयों का रस चूसने में लगा रहा।

**मूलार्थ**—भ्रमर काला होता है और तीस-पैंतीस वर्ष तक मनुष्यों के बाल भी काले रहते हैं, यहाँ भ्रमर और बक के रूपक को उपस्थित किया गया है। भ्रमर नाना प्रकार के पुष्पों के रसों को चूसते रहता है। स्वाद लेते रहता है। अन्त में कमल की पंखुड़ियों में इतना आसक्त हो जाता है कि सूर्य के रहते-रहते नहीं उड़ पाता। सूर्य के अस्त होने पर पंखुड़ियाँ बन्द हो जाती हैं। कल की आशा में उसके प्राण पखेरु उड़ जाते हैं अर्थात् जीवन से हाथ धो बैठता है। इसी प्रकार से मनुष्यों के काले बाल जब तक रहते हैं। तब तक सुखों की चाहना, रसों की चाहना, स्वादों की मिठास खोजते फिरता है। इसलिए इसको भ्रमर कहा गया है परन्तु अल्प समय के कारण मन की इच्छाएँ पूरी नहीं हुई। तब तक चालीस की अवस्था आ गयी। काले बाल उड़ गये। अब इन्द्रियाँ शिथिलता की ओर चल पड़ीं और काले के स्थान पर बक के सदृश सिर में उजले बाल उपस्थित हो गये।

यहाँ पर श्वेत बालों को बक से 'उपमा' दी गयी है। श्वेत बाल सात्विकता के चिह्न हैं। मनुष्य के शुभ सोचने के चिह्न है। परन्तु उपमा यहाँ बक से दी गयी है। बक के स्वभाव को मनुष्य जानता है ऊपर से बक। बड़ा भोला-भाला लगता है परन्तु भीतर से बड़ा क्रूर और हिंसकी तथा धोखेबाज होता है। यहाँ पर यही बात उस मनुष्य में दिखाई गयो है। जिसकी जवानी चली गयी। बालों के कालेपन विषय रस भोगते-भोगते चले गये। दिखाने के लिए बक के सदृश चमकते हुए उज्ज्वल बाल उपस्थित हुए परन्तु भीतर की शुद्धि नहीं हुई। भीतर के मल, विक्षेप, आवरण में कोई कमी नहीं आई। कुछ करने की न स्थिति में निर्बल इन्द्रियाँ छल छद्म एवं धोखे से संसार के सुख को व विषय को ही चाहने में लगी रहीं। इसलिए चालीस वर्ष के पहले भ्रमर के समान था। विषयों से उपरति नहीं हुई और चालीस से अस्सी तक बगुला के समान रहा। शक्ति हीनता में धोखेबाजी करते रहा।

इसी प्रकार से अन्धकारमय पच्चीस से तीस वर्ष वाला जीवन भी चला गया। जो उमंगों का समय था। जिसमें सत्य नहीं दिखाई देता था। इसलिए तीस वर्ष तक की अवस्था को रात्रि की संज्ञा दी गयी है।

पश्चात् दिवस भी चला गया। अर्थात् सोचने-समझने वाला समय जो तीस से साठ-सत्तर का था वह भी चला गया। यानी बाल्यावस्था व वृद्धावस्था दोनों चली गयीं। अब वृद्धावस्था अति जर्जर रूप में सामने आकर समुपस्थित हो गयी। खड़ी हो गयी। मन में चूभने लगा कि जन्म निरर्थक में ही गया। कोई पुण्य के कार्य भी नहीं हुए। जप-तप नहीं हुए। दान-पूजन भी नहीं हुए सत्य कार्य भी नहीं हुए। पाप कर्म करते ही जीवन बीत गया। यह सोचकर व स्मरण करके हल-हल व थर-थर कांपने लगा। जैसे अबला स्त्री व बालक किसी भयानक वस्तु को देखकर कांपने लगते हैं डरने लगते हैं यमराज क्या करेगा ? इसी प्रकार से असफल मनुष्य वृद्धावस्था में डरने लगा कि हे प्रभो ! तू क्या करोगे मेरे साथ। कैसा व्यवहार आपका होगा। मुझे कुछ जानकारी नहीं है। क्योंकि शरीर सदा रहने वाला नहीं

है। यह मिट्टी के कच्चे बर्तन के समान है। जैसे कच्चे बर्तन में पानी नहीं टिक सकता पानी पड़ने पर कच्चा मिट्टी का पात्र गल जाता है। उसी प्रकार से मानव की वृद्धावस्था की शरीर है। जरा से रोग शोक के झकोरे को बर्दास्त नहीं कर पाता। अन्त में हंस रूपी यह जीवात्मा शरीर को छोड़कर उड़ गया। उसके उड़ने पर यह शरीर मुरझा गया। सुन्दरता से हीन हो गया।

सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि इन काग बुद्धि वाले मनुष्यों को विषय वासना से दूर रहने के लिए कहते-कहते मुझे थकान आ गयी। मेरी शक्ति कमजोर पड़ गयी और इस जीवन की कथा भी समाप्त हो गयी। अर्थात् मानव तृष्णा की पूर्ति करते-करते परेशान हो गया और तृष्णा की पूर्ति न हो सकी। क्योंकि सारा जीवन तृष्णा में ही बीता, संतोष अब हो जायेगा, तब हो जायेगा परन्तु एक के बाद दूसरी इच्छा प्रस्तुत होती गयी। यहाँ 'उड़ावत' में श्लेष है। तात्पर्य इसका यह है कि काग, तृष्णा और कुबुद्धि का द्योतक है। उड़ावत में संतोष की बात है कि विषय की पूर्ति अब हो जाय अब हो जाय परन्तु भोग इच्छा समाप्त नहीं हुई। बीच ही में शरीर की नाट्य कथा का पटाक्षेप हो गया। सद्गुरु साहब कहते हैं कि कथा का पटाक्षेप सुखमय रूप में नहीं हुआ। दुःखमय दृश में हुआ। इसलिए मानव की इस कहानी पर मुझे कष्ट है।

## सबद १०७

### भजन बिना दुर्दशा प्रकरण

**खसम बिनु तेली को बैल भयो।**
**बैठत नाँहि साधु की संगति, नाधे जनम गयो॥**
**बहि-बहि मरहु पचहु निज स्वारथ, जम को दंड सह्यो।**
**धन दारा सुत राज काज हित, माथे भार गह्यो॥**
**खसमहिं छाड़ि विखै रंग रात्यो, पाप के बीज बोयो।**
**झूठि मुकुति नर आस जीवन की, परेत के जूठ खयो॥**

**लख चौरासी जीउ जंतु में, सायर जात बह्यो।**
**कहैं कबीर सुनो हो संतो, स्वान के पूछ गह्यो ॥**

**शब्दार्थ**—खसम-'ख' आकाश के समान जो आकाश जैसा व्यापक है। खसम, स्वामी, पति। बिनु-उस प्रभु के बिना। नाधे-जुते हुए। पचहु-पचना, क्षय होना, समाप्त होना, खपना, बहुत हैरान होना, दुःख सहना। दंड-यातना। दारा-स्त्री। काज-कार्य। माथे-शिर पर। बिखै-विषय। रात्यो-अनुरक्त। परेत-प्रेत, मरा हुआ मनुष्य। सायर-समुद्र। स्वान-श्वान, कुत्ता। पूछ-पुच्छ।

**सम्बन्ध**—इसके पहले कहा गया है कि सारा जीवन निरर्थक में चला गया। विषय भोग की पूर्ति नहीं हो सकी। इसलिए यह जीवात्मा पशु आदि योनियों में क्रमानुसार जा पड़ा।

**मूलार्थ**—सद्गुरु साहब कहते हैं कि यह पापी मनुष्य जो रात-दिन पाप कर्म में रत रहा। वह सर्वव्यापी प्रभु के बिना तेल पेरने वाले तेली के घर बैल होकर पहुँच गया। तेली के घर बैल बनकर क्यों पहुँचा। कभी साधु की संगति नहीं की। कभी साधुओं के साथ बैठा नहीं। यदि साधुओं की संगति की होती तो यह बैल न बनता, क्योंकि संत लोग इसको सारी विधि बता देते। सारा रास्ता बता देते कि किन कर्मों के द्वारा मनुष्य बनता है। किन कर्मों के द्वारा स्वर्ग में जाता है एवं मुक्त होता है और किन कर्मों के द्वारा लख चौरासी योनियों में जाता है। यह सब विधि जान गया होता तो बैल बनने वाला चौरासी में जाने वाला कर्म न करता न बैल बनता। बैल बनते हैं वे लोग जो रात दिन पाप कर्म में लगे रहते हैं। किसानों के घर में रहते हैं खेत जोतते हैं। चार-छह घण्टे उनको विश्राम दिया जाता है परन्तु अधिक बूरे पापों के कारण यह तेली का बैल बना जो सदैव कोल्हू में जुता रहता है और सारा जीवन इसका तेली का कोल्हू पेरते-पेरते चला गया, नष्ट हो गया। क्योंकि स धुओं की संगति नहीं की।

अब कहते हैं कि हे मूर्ख मनुष्य! तू संसार में व्यर्थ में ही मरते हो

वहि-वहि कर भरमि भरमि कर मरो और निज स्वार्थ के लिए इन्द्रियों के भोग के लिए पचहु कहिये कष्ट हो। जिसके कारण यम का दण्ड भी शिर पर सहो क्योंकि तुम तो आज पर्यन्त कोई शुभकर्म नहीं किया। विषय वासना के पीछे बह-बह कर मरते रहा। अपने स्वार्थ में पचते रहा व समाप्त होते रहा। जिसके कारण भगवान भास्कर के सुपुत्र यम का दण्ड सिर पर बजते रहा। धन कमाने के लिए स्त्री, पुत्र को सुखी देखने के लिए नाना प्रकार के झूठ साँच वाले कर्तव्य में लगा रहा। यदि राजा रहा तो राजकार्य हित के लिए सिर पर भार धारण किये रहा अर्थात् मेरा राज्य न बिगड़ जाय, मेरा कार्य न बिगड़ जाय, मेरी स्त्री मेरा पुत्र दुःखी न हो जायँ, मेरा धन कम न हो जाय, इसी सबकी पूर्ति में सदैव लगा रहा। प्रभु को छोड़कर, खसम को त्याग कर, नाना प्रकार के विषयों का रंग लेते रहा। इसी में अनुरक्त रहा। जिससे पाप उत्पन्न होते हैं उन्हीं बीजों को बोते रहा। अर्थात् पापकर्म की निवृति जिन कर्मों से नहीं होती है। जन्म भर उन्हीं कर्मों को करते रहा। जिससे दूसरे जन्म में भी पापों के कारण तेली के घर बैल बनना पड़ा। झूठी मुक्ति जिन कर्मों से मुक्ति नहीं होती है उन्हीं कर्मों को करके मुक्त होने की आशा में लगा रहा। जैसे प्रेत पूजा, झूठे मिट्टी के मूर्तियों की पूजा और उन पर चढ़ावा आदि चढ़ाकर उनके जूठों को खाते रहा और उन्हीं प्रेतों की पूजा से उनकी प्रसादी खाने से मुक्ति मानते रहा। जिसके कारण चौरासी लाख योनि रूपी समुद्र में बार-बार बहते रहा। अर्थात् जन्म लेते रहा।

सद्गुरु कबीर सन्तों से कहते हैं कि हे सन्तों! इन अज्ञानियों की बात तो सुनो। भवसागर पार होने के लिए गाय की पूँछ पकड़ना चाहिए था जो पार कर देती परन्तु पापकर्म रूपी कुत्ते की पूँछ पकड़ कर व उसके सहारे संसार सागर से पार होना चाहता है। 'स्वान' में श्लेष है। नदी पार होने के लिए गाय की पूँछ पकड़िये तो गाय तैरती हुई नदी पार कर देती है परन्तु कुत्ते की पूँछ पकड़िये तो कुत्ता पार करने के

वजाय उलट कर काट लेता है। कुत्ते की पूंछ पकड़ने में किसी प्रकार से भलाई नहीं है। उसी प्रकार से मनुष्य नीच कर्मों को करके कभी संसार से मुक्त नहीं हो सकता है बल्कि ये बुरे कर्म उसको जन्मान्तर में भी दुःख देते रहते हैं। इसीलिए सद्गुरु कहते हैं कि इसकी सत्कर्म के द्वारा मुक्ति तो हो सकती थी परन्तु इसने दुष्कर्म रूपी कुत्ते की पूंछ पकड़ ली है जिससे इसकी भलाई सम्भव नहीं है। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि सन्त सद्गुरु की संगति करे और श्रीहरि का नाम जपे तभी भवसागर पार हो सकता है। अन्यथा कोई उपाय नहीं है।

**टिप्पणी**—साधुनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूताहि साधवः।
कालेन फलति तीर्थः सद्यः साधु समागमः॥

## सबद १०८

### हरि विछोह प्रकरण

**अब हम भैलि बहुरि जल मीना, पूर्व जनम तप का मद कीना।**
**तहिया मैं अछलौं मन वैरागी, तजलौं मैं लोग कुटुम राम लागी॥**
**तजलेउँ मैं कासी मति भइ भोरी, प्राननाथ कहु का गति मोरी।**
**हमहिं कुसेवक कि तुमहिं अयाना, दुइमा दोस काहि भगवाना॥**
**हम चलि अइली तोहरे सरना, कतहुं न देखौं हरि जी के चरना।**
**हम चलि अइली तोहरे पासा, दास कबीर भल कैल निरासा॥**

**शब्दार्थ**—अब–इस समय। हम–मैं। भैलि–हुई। बहुरि–दोबारा, पुनः। मीना–मछली। मद–अहंकार। तहिया–तब। अछलौं–था। तजलौं–तजा। लागी–उपासना में। तजलेउँ–तजा। कासी–'काश्यते प्रकाश्यते' इति काशी, श्रेष्ठ पुरियों का त्याग, जहाँ मुक्ति मानी गयी है। भोरी–भ्रमित। प्राननाथ–प्राणों के स्वामी, गोविन्द। गति–लीला, माया, मृत्यु के उपरान्त जीवात्मा की उत्तम दशा, भेद, अवस्था, दशा, हाल, रहस्य। अयाना–अज्ञानी। अइली–आया। दुइमा–दो में। काहि–किसका। सरना–शरण में। कतहुं–कहीं भी। चरना–चरण। कैल–किया। भल–अच्छा।

**सम्बन्ध**—पहले तो कहा गया है कि प्रभु के भजन के बिना पशु आदि योनियों में गया। क्योंकि जीवन भर संसार का कार्य करते रहा। उपरान्त कहा जा रहा है कि सत्कर्मों के न करने से मानव की वेदना इतनी बढ़ जाती है कि जैसे जल के निवासी जन्तु जल से बाहर होने पर दुःख का अनुभव करते हैं।

**मूलार्थ**—जब प्रभु प्राप्ति न हुई। सारा जन्म बीत गया। तब मनुष्य कहता है कि जल से बाहर होने पर मीन जैसे छटपटाती है उसी प्रकार से मैं भी जल रूपी शान्ति दायक परमेश्वर से रहित होकर संसार सागर में अनेक प्रकार के कष्टों को भोगते हुये छटपटा रहा हूँ। क्योंकि हरि रूपी जल से मैं मीन रूपी मानव बाहर हो गया हूँ कारण कि पूर्व जन्म में जो मैं तप किया था। वह अहंकार के साथ किया था। 'पूर्व जन्म' में श्लेष है। पूरब जन्म के तप के बल से मनुष्य धन्य-धान्य से पुत्र कलत्र जन से पूर्ण हो जाता है परन्तु भक्ति के अभाव में उसको अहंकार उत्पन्न हो जाता है। ऐसे तो कहा जा रहा है कि पूर्व जन्म में तप किया था लेकिन उसमें अहंकार था। फिर भी उस समय मन में वैराग्य था। जिसके कारण लोग कुटुम्ब परिवार का त्यागकर प्रभु शरण में लग गया और उन्हीं के भरोसे मैं मुक्ति क्षेत्र काशी का भी परित्याग कर दिया। परन्तु हरि के दिग्दर्शन न होने से मेरी बुद्धि काशी के त्यागने से भ्रमित हो गयी। मैं किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गया कुछ मेरी समझ में नहीं आ रहा है। चारों दिशाओं में घूमा फिरा परन्तु कहीं भी शान्ति उपलब्ध नहीं हुई। हे प्राणों के स्वामी ! अब आप कहिये कि क्या मेरी गति होगी। अर्थात् मैं किस दशा को प्राप्त होऊँगा ? मैं आपके लोक में जाऊँगा कि इधर ही रह जाऊँगा। हे जगत गुरो ! मेरी समझ में कुछ आ नहीं रहा है। कुछ निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ कि मैं ही कुसेवक कुदास हूँ कि आप ही मेरे से अनभिज्ञ हैं। मुझे नहीं जान पा रहे हैं कि यह मेरा भक्त है। हे जगत गुरो ! आप सच-सच कहें कि हमारे में और आप में अर्थात् दोनों में किसका दोष है, किसकी कमी है। क्या मेरी सच्ची भक्ति नहीं है ? कि

आप मुझे पहचान नहीं रहे हैं कि मेरे अनेक जन्मों के पापों के कारण अभी आप के मिलने में विलम्ब है। मैं तो काशी व घर द्वार कुल परिवार सब कुछ त्यागकर आपकी प्राप्ति के लिए आपके शरण में आ गया हूँ। परन्तु हे जगन्नाथ ! हे जगत गुरो ! मुझे यत्किंचित आपकी झलक नहीं मिली। जिसके कारण मैं दुःख के सागर में गोता लगा रहा हूँ। अन्त में अर्थात् उपासना करते-करते तप करते-करते आपके समीप तक पहुँच गया। छठी भूमिका तक प्राप्त कर लिया। परन्तु सद्गुरु कबीर कहते हैं कि 'भल' कह्यिे अच्छा किया कि संसार से मुझे निराश कर दिया। अब संसार में किसी की आशा नहीं रही क्योंकि हम प्रभु के पास आ गये। छठी भूमिका से मुक्त होकर सप्तमी भूमिका में आने पर साधक की संसार से बिल्कुल निराशा एवं निराशक्ति हो जाती है। जिसके लिए सद्गुरु देव कहते हैं कि अच्छा हुआ। अच्छा किया कि अब जीवन-मरण रूपी डोरी कट गयी। अनन्त चिदाकाश में वृत्ति लय हो गयी।

दूसरे बाहर के विद्वान उक्त पद का तात्पर्य कबीर साहब के निजी सम्बन्ध वाला बताते हैं। उन लोगों का कहना है कि अन्त में काशी छोड़ने का कष्ट कबीर साहब को बहुत हुआ था। मगहर वे जाना नहीं चाहते थे परन्तु सिकन्दर लोदी के कारण उन्हें मगहर जाना पड़ा। बाहर के विद्वानों का कहना है कि कबीर साहब कहते हैं कि अब मैं उसी तरह से तड़फ रहा हूँ जिस तरह से जल से बाहर होने पर मछली तड़फती है। वे अनुभव करते हैं कि पूर्व जन्म में मैं अहंकार युक्त तप किया था और मन में वैराग्य भी धारण किया था। परिवार का त्याग कर ईश्वर की शरण में लग गया था परन्तु काशी छोड़ने से मेरी मति भ्रमित हो गयी। इसलिए आप कहते हैं कि हे प्रभो ! अब कहिये मेरी क्या दशा होगी। क्योंकि मैं आपके भरोसे सब कुछ किया था अभी तक इसमें मुझे सफलता नहीं मिली। क्या मैं आपका अच्छा सेवक नहीं हूँ ? क्या आप मुझे नहीं जानते हैं ? हे भगवन आप और मेरे में किसका अपराध है। परिवार त्यागकर मैं आपके शरण में आ गया परन्तु आपके चरणों के

दर्शन कहीं नहीं हुए। मैं आपके बहुत पास आया परन्तु मुझ कबीर दास को आपने भली प्रकार से निराश कर दिया।

बाहर के लोगों को उक्त पद पर और वाक्यों पर ध्यान देना चाहिए था कि जो काशी और मगहर को सम देख रहा हो वह फिर किस प्रकार का दु:ख और भ्रम करेगा। लोगों में भ्रम फैलाने के लिए अर्थ के अनर्थ किये जाते हैं। इसलिए पूर्वोक्त अर्थ ही उत्तम हैं। क्योंकि इसके पूर्व पद में कहा गया है कि "क्या काशी क्या मगहर ऊसर" कहकर दोनों को एक सामान माना गया है और कहा गया है कि ज्ञानी कहीं भी शरीर छोड़ता है तो कोई अन्तर मुक्ति प्राप्ति में नहीं होता है। इसलिये इस एक सौ आठ संख्या वाले पद को कबीर साहब अपने प्रति नहीं कहते हैं। उन अल्प जीवों के प्रति व्यक्त किये गये हैं जो अज्ञान से पूर्ण आवृत हैं। उन्हीं जीवों की कल्पना और तड़पना हो सकती है। कबीर साहब तो ज्ञानी पुरुष थे वे क्यों कर इस प्रकार की व्यथा व्यक्त करेंगे यदि कबीर साहब अपने प्रति कहेंगे तो उनके उक्त वाक्य उनके मुख के प्रमाणित नहीं होंगे। इसलिये उनके द्वारा प्रायिक वचन भी निकले हैं।

## सबद १०९

**लोग बोलैं दुरि गये कबीर, ये मत कोई कोई जानैगा धीर।**
**दसरथ सुत तिहुं लोकहिं जाना, राम नाम का मरम है आना॥**
**जेहि जिउ जानि परा जस लेखा, रजु का कहै उरग सम पेखा॥**
**जद्दपि फर उत्तिम गुन जाना, हरि छोड़िमनमुकुति न माना।**
**हरि अधार जस मीनहिं नीरा, अउर जतन किछु कहै कबीरा॥**

**शब्दार्थ**—दुरि–दूरि, ईश्वर तक, आत्मा तक, जिसकी पहुँच हो जाय। कबीर–कबीर साहब। ये–यह। मति–विचार, बुद्धि। धीर–गम्भीर। मरम–मर्म, भेद। लेखा–देखा, लिखना, हिसाब-किताब। जस–जिसप्रकार। रजु–रस्सी। उरग–सर्प। पेखा–देखा। कबीरा–कबीर साहब।

**सम्बन्ध**—इसके पहले पद में कहा गया है कि बिना भक्ति भाव के मनुष्य को शांति नहीं मिलती है परन्तु जब वह प्रभु तक पहुँच जाता है

परमतत्त्व की प्राप्ति जो कर लेता है तो संसार से उसकी निराशा हो जाती है और वह शान्त चित्त होकर संसार में विचरण करता है।

अब कहा जा रहा है कि लोग सन्त महात्माओं की प्रशंसा में कहते हैं कि वे बहुत पहुँचे हुए हैं। जिनकी सेवा बंदगी से हमें भी शान्ति मिलेगी।

**मूलार्थ**—सद्गुरु साहब कहते हैं कि लोग बोलते हैं कि कबीर साहब सांसारिक जीवन से बहुत ऊपर उठ गये हैं। बहुत दूर चले गये हैं। उनकी भगवान तक पहुँच हो गयी है परन्तु यह विचार सबका नहीं है। अन्य लोग तो मुझे नास्तिक कहते हैं। पाखंडी कहते हैं परन्तु मैं किस अवस्था तक हूँ। किस तत्त्व की खोज में हूँ। कहाँ तक मार्ग तय कर लिया हूँ। इस बात को और इस विचार को कोई धीर-गम्भीर ही मेरे विषय में जान सकता है क्योंकि लोग उस प्रभु को दशरथ का सुत कहते हैं और तीन लोक के लोग उनको दशरथ से उत्पन्न भी मानते हैं परन्तु वह प्रभु जो सीमा से परे हैं। जो असीम है। जो देश काल के बन्धन में नहीं आता है, वह महाराज दशरथ जी का पुत्र कैसे हो सकता है ? लोगों को भ्रम है कि जो उसे दशरथ का सुत कहते हैं। हे भाइयों ! राम नाम का मर्म कहिये भेद दूसरा है। यह भेद सब नहीं जान सकते। वह राम सर्व व्यापी है। सबके हृदय में रहने वाला है। संसार में जिस जीव को जो जान पड़ता है उसी प्रकार का कथन करता है। उसी प्रकार का लिखता है। वह प्रभु दशरथ का सुत नहीं है। जो कहते हैं वे उसी प्रकार से भ्रम में पड़े हैं, जिस प्रकार से अन्धकार में रस्सी को देखकर लोग सर्प कह बैठते हैं। इसी प्रकार से भ्रम वश जगदाधार को महाराज दशरथ का सुत कहा जाता है।

फिर भी यदि कोई दशरथ सुत जानकर ही उपासना करता है तो उससे भी कोई नुकसान होने वाला नहीं है। क्योंकि महा राज दशरथ के पुत्र श्रीराम उत्तम गुण वाले थे। सतपुरुष थे। इसलिए सत्य पुरुषों की सेवा उपासना से उत्तम फल की प्राप्ति होती है और मानव में उत्तम गुण आ जाते हैं। मैं तो हरि को छोड़कर अर्थात् जो देशकाल से परे है। जो सीमातीत

हैं। जो सबकी आत्मा है। उसको छोड़कर दूसरी मुक्ति नहीं मानता जब उस हरि की प्राप्ति हो जाती है। निश्चित ही मनुष्य मुक्त हो जाता है जैसे मीन को जल का ही आधार होता है उसी प्रकार से भक्त को भगवान का ही आधार होना चाहिए। अन्य मायिक विषयों से दूर रहकर प्रभु में अनुरक्त रहना चाहिए।

सदगुरु कबीर और भी प्रभु प्राप्ति के अनेक यत्न कहे हैं जिसमें आत्मचिंतन है, योग है, ध्यान है, सन्त और गुरु की सेवा है, इन सब के द्वारा भी मनुष्य की मुक्ति सम्भव है। इसलिए जिसको जो सुलभ हो, उसी मार्ग को पकड़कर चले।

# सबद ११०

## प्रारब्ध प्राबल्य प्रकरण

**आपन करम न मेटो जाई।**
**करमक लिखल मिटै धौं कैसे, जो जुग कोटि सिराई॥**
**गुरु बसिष्ठ मिलि लगन सोधाये, सूर्ज मंत्र एक दीन्हा।**
**जो सीता रघुनाथ बियाही, पल एक संचु न कीन्हा॥**
**तीनि लोक के करता कहिये, बालि बधो बरिआई।**
**एक समै ऐसी बनि आई, उनहुँ औसर पाई॥**
**नारद मुनि को बदन छिपायो, कीन्हों कपि को सरुपा।**
**सिसुपाल की भुजा उपारिन, आप भयो हरि ठूंठा॥**
**पारबती को बांझ न कहिये, ईश्वर न कहिये भिखारी।**
**कहैं कबीर करता की बातें, करम की बात निनारी॥**

**शब्दार्थ**—मेटो–समाप्त। करमक–कर्म का। लिखल–लिखा। धौं–अव्यय है, अथवा (सं०) हिन्दी में ऐसे प्रश्नों में लगाया जाता है जिसमें निश्चय का भाव कम और संशय अधिक होता है, न जाने कहा नहीं जा सकता, भला। मध्यकाल में दऊ किधौ, कहीं-कहीं पर धौं जो सम्बोधन के रूप में प्रायः उच्चारण किया जाता था, अपभ्रंश के अनुसार

अग्नि अर्थ भी होता है। कोटि–करोड़। सिराई–समाप्त। दीन्हा–दिया। बियाही–व्याही। संचु–सुख से, उपभोग। बालि–किष्किन्धा के राजा। बरियाई–बलपूर्वक, बलात्कार। समय–काल। बनि–संयोग। औसर–अवसर, समय। वदन–मुख। कपि–बन्दर का मुख। उपारिन–उखाड़ दिया। ठूंठा–जिसके हाथ आधे से झड़ गये हों। बांझ–वन्ध्या। ईश्वर–शिव जी, भगवान शंकर। भिखारी–भिक्षुक। निनारी–भिन्न, न्यारी।

**सम्बन्ध**—पूर्व पद में अध्यात्मवेत्ता पहुँचे हुए योगीयों की बात कही गयी है कि उनकी गति को सब नहीं जान पाते हैं अन्त में कहा गया है कि ईश्वर के साथ उसी प्रकार से अभिन्न भाव से रहना चाहिए। जैसे जल और मछली का सम्बन्ध होता है। तभी वह कल्याणकारी हो सकता है। क्योंकि कर्मकाण्ड से बहुत अरुझाहट होती है और कर्मकाण्ड की गति को 'गहनो कर्मणा गति' कहा गया है। कर्म की गति बड़ी गहन है, सूक्ष्म है, बड़ी बारीक है। तात्पर्य यह है कि कर्म के साथ ज्ञान का होना आवश्यक है। अन्यथा दुःखों से छुटकारा पाना दुर्लभ हो जायेगा।

**मूलार्थ**—अब सद्गुरु देव! संसार के मनुष्यों को दुःखी देखकर कहते हैं कि हे भाई! जो आप लोग अज्ञान वश दुष्कर्म वा कुकर्म किये हैं वह बिना भोगे मिट नहीं सकता है। क्योंकि—

दुःखस्य सुखस्य न कोऽपि दाता, परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमाना, स्वकर्म सूत्रग्रथितो हि लोकः॥

(अध्यात्म-रामायण) अयो० का० ६ सर्ग श्लोक ६॥

स्वयं कर्म करोति आत्मा। स्वयं तत् फलमश्नुते॥
स्वयं भ्रमति संसारे। स्वयं तस्माविमुच्यते॥

(ईश्वर गीता) के अनुसार मनुष्य अपने किये हुये कर्मों का फल अवश्य भोगता है और बिना भोगे हुए कर्मों की समाप्ति भी नहीं होती है जो मानव के ललाट में कर्म का रेख लिखा गया है भला कहो कैसे समाप्त हो सकता है। शास्त्र तो कहते हैं कि 'न क्षीयते कर्म कोटि शतैरपि' उसी को सद्गुरु कबीर कहते हैं कि करोड़ों जन्म बीत जाय परन्तु कर्म का अन्त तभी हो सकता है जब उसका फल भोग लिया

जाय। इस पर दुनिया के सभी पूर्व जन्म मानने वाले लोग एक स्वर से अडिग हैं। इसलिए अधिक शास्त्रों का प्रमाण देना कबीर साहब के प्रति अविश्वास प्रकट करना है।

सद्गुरु कहते हैं कि कर्म का दण्ड केवल साधारण मनुष्यों के लिए ही नहीं है। बड़े से बड़े अवतार एवं देव, दानव, ऋषि, मुनि सब कोई कर्म के भोग भोगे बिना नहीं रह पाते हैं। इसी पर इतिहास की उस कड़ी को कबीर साहब शुरू करते हैं जो बड़ी महत्त्वपूर्ण कड़ी है। भगवान रामचन्द्र बड़े सुशयमित पुरुष थे, उन्होंने कभी मर्यादा का उलंघन नहीं किया। जिन्हें विष्णु का अवतार कहा जाता है। आज भी संसार के लोग उनमें आस्था रखते हैं परन्तु वे भी कर्म का फल भोगे बिना संसार से नहीं जा सके। जब भगवान राम का विवाह जनक नंदनी माता सीता के साथ रचा जा रहा था तो दोनों की जन्म पत्री व जन्म लग्न को गुरु वसिष्ठ ने खूब मिलाकर सोधा था और राज्य के बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वान लोग भी विवाह लग्न को विचारे थे और उसमें कुल गुरु महर्षि वसिष्ठ सूर्य मन्त्र भी भगवान राम को और माता जानकी को दिये थे। जो श्रीरामचन्द्र जी का सीता का शुभ मुहुर्त में विवाह कराया गया था। बड़े-बड़े विद्वानों के द्वारा। सो सब होते हुए भी एक क्षण श्री रामचन्द्र जी के साथ सीता जी सुख से जीवन नहीं बिता पायीं। भगवान राम को लोग तीनों लोक का कर्त्ता कहते हैं। अर्थात् विष्णु कहते हैं लेकिन सुग्रीव के प्रपंच में तथा उसके झांसा में आकर उसके बड़े भाई बाली की जबर्दस्ती हत्या कर दी। जिसमें एक समय ऐसी बन आयी कि जब भगवान विष्णु कृष्ण के रूप में आए तो उसी समय बदला लेने के लिये बाली भी एक व्याधा के घर में जन्म लिया और भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जी की हत्या का कारण बना। भगवान विष्णु एक बार नारद जी की इच्छा पूरी न करके महर्षि नारद का बदन व मुख अपनी माया से छिपाकर बन्दर के स्वरूप वाला बना दिया था। जिसके कारण नारद ने शाप दिया और कहा कि जिस स्त्री की इच्छा के लिए मुझे आपने कुरूप वाला मुख दिया है। जिस तरह से मैं स्त्री के लिए व्याकुल हूँ। उसी

प्रकार से आप भी अपने किये हुए कर्म को रामावतार में भोगेंगे और मेरे मुख की आकृति वाली जाति ही आपकी सहायता करेगी तभी आप बच पायेंगे। अस्तु महर्षि नारद के उक्त शाप को स्वीकार करना पड़ा। इसलिए कर्मों का फल मानव से लेकर देव-दानव को भी भोगना पड़ता है। भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र अपने फूफेरा भाई शिशुपाल की चारों भुजाओं में से दो भुजाओं को उखाड़ दिया था। जिसके कारण आप भी ठूठे हो गये। अर्थात् मरणोपरान्त दाह संस्कार में थोड़ी सी बांह जलकर रह गयी। किसी न किसी रूप में आपको भी कर्म का फल भोगना पड़ा।

इसी प्रकार से पार्वती जी को भी लोग वन्ध्या कहते हैं परन्तु साहब कहते हैं कि वे भी किसी को शाप देकर गर्भ खत्म की थीं। इसलिए गर्भ धारण न कर सकीं परन्तु दो बालक उनके नाम से विश्व विख्यात हैं। कुछ लोगों का मत है कि भगवान षडानन जगन्नमाता पार्वती के उदर से उत्पन्न हुये थे। केवल गणेश जी को लोग उनका मानस पुत्र बताते हैं। इसलिए साहब कहते हैं कि पार्वती जी को वन्ध्या नहीं कहा जा सकता है और न भगवान शंकर को भिखारी ही कहा जा सकता है क्योंकि संसार की सभी सिद्धियाँ उनके पास विराजमान रहती हैं। जो दूसरे को जन-धन से पूर्ण कर देते हैं परन्तु कर्मों के कारण सदा अपने भिक्षुक बने रहते हैं।

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि भगवान शंकर कर्ता भले हों वे विश्व की रचना कर सकते हैं और वेदों में उनको महादेव भी कहा गया है परन्तु मानव तन धारण करने पर जो कर्म उनके द्वारा हुआ है। उन कर्मों के फल उनको भी भोगना पड़ा। क्योंकि कर्मों की बात न्यारी है।

**टिप्पणी**—गरुड़पुराण के अनुसार कर्मों के फल के कारण ही भगवान शिव को रहने का घर नहीं है। श्मशान में निवास करते हैं, घर में अन्न नहीं है, भिक्षा मांगकर खाते हैं। इसलिए व्यास जी कहते हैं कि उस कर्म को नमस्कार है जो सभी देहधारियों को भोगाये बिना नहीं छोड़ता है। इस पर गरुड़पुराण के दो श्लोक नीचे दिये ज़ा रहे हैं।

स्वतंत्रः कर्त्ता यः कर्त्ता स एव भोक्ता।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।।
कर्माण्यत्र प्रधानानि सम्यगृक्षे शुभे गृहे।
वसिष्ठ कृत लग्नापि जानकी दुःखभाजनम् ।।

**अन्तर्कथाएँ**—नारद मुनि के बदन छिपाने की कथा प्रथम में आई है और शिवपु० सं० २–१ अ० २ आदि में कथा है कि एक समय नारद जी के मन में तप करने की इच्छा हुई, तब गंगा जी के किनारे हिमांचल के ऊपर एक दिव्य आश्रम था महागुफा थी वहाँ गये और 'अहं-ब्रह्मास्मि' इस प्रकार परोक्ष अनुभव से उस समाधि का अनुष्ठान करने लगे। आसन लगा कर ध्याननिष्ठ हुए। उन्हें इस प्रकार देख कर इन्द्र काँप उठे कि यह मुनि मेरा राज्य चाहता है। फिर तप में विघ्न करने के लिए काम का स्मरण किये। काम शीघ्र उत्पन्न हुआ। तब इन्द्र ने उसकी प्रशंसा सुनाई और तप में विघ्न करने के लिए भेजा। तब काम जाकर सब उपाय किया, परन्तु प्रभु कृपा से कोई असर नहीं पड़ा क्योंकि उस स्थान में शिव जी ने भी तप किया था और स्थान को बर दिया था कि इस स्थान में काम का वश नहीं चलेगा। इससे हतास होकर काम इन्द्र के पास गया। मुनि के प्रभाव को सुनकर इन्द्र चकित हुए। नारद जी भी वहाँ बहुत दिनों तक तप करके तप का महत्त्व समझे थे। शिव की माया से मोहित होकर नारद काम विजय के अभिमानी हुए और अपनी महिमा सुनाने कैलाश गये, शिव जी को प्रणाम करके अपनी महिमा सुनाए। भक्तवत्सल शिव ने कहा कि ऐसा कहीं न कहना, विशेष कर विष्णु के सामने बिल्कुल न कहना, पूछने पर भी यह बात कहने लायक नहीं है। परन्तु शिवजी की बात की अवहेलना कर ब्रह्मलोक में ब्रह्मा के पास गये और नमस्कार करके अपनी कथा सुनाये। उन्होंने भी मना किया लेकिन नहीं मान कर मुनि विष्णु लोक में गये विष्णु भगवान इन्हें देख कर आगे आकर मिले तथा आने का कारण पूछा, मुनि सगर्व अपनी

महिमा कहा। भगवान ने भी इनकी प्रशंसा की, शिव और शिव की माया को प्रणाम कर बोले कि आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। आप को काम विकार कैसे हो सकता है ? नारद जो हँस कर बोले कि आप की अहेतुकी कृपा है तो काम का प्रभाव ही क्या है और वहाँ से विदा हुए। मुनि के जाने पर भगवान अपनी माया से सौ योजन का विस्तारयुक्त एक नगर रचवाया। उसमें शीलनिधि नाम का एक राजा और उसकी कन्या रची गई। मुनि उस नगर को देखकर, उस राजा के पास गये। राजा ने मुनि का सत्कार करके कन्या का शुभाशुभ लक्षण पूछा। नारद लक्ष्मी रूपा कन्या को देखकर काम से मोहित हो गये और सर्वेश्वर इसका पति होगा, इस प्रकार राजा से कहकर, विष्णु भगवान के पास गये कि मुझे सौन्दर्यता चाहिये, भगवान सब सौन्दर्य दिये परन्तु मुख वानर का दे दिया, पुनः लौट कर मुनि उस नगर में आये तब वहाँ दो ब्राह्मण रूप से रुद्रगण रक्षा के लिए रहते थे, सो मुनि के साथ लगे और व्यंग्य रूप से सत्य बात मुनि से कह दिये। परन्तु मोहवशता से मुनि समझ नहीं सके, बाद में सुश्री कन्या भी जयमाला लेकर आई, सो इनके रूप को देखकर क्रुद्ध हुई और लौट गई, किसी राजा को भी नहीं बरो। बाद में भगवान राजा रूप में आये उन्हें ही वरण की। फिर नारद जी शाप दिये कि जिस रूप में कन्या को स्वीकार किये हो, सोई रूप धरना होगा स्त्री के वियोगवश दुःख सहोगे। वानर सहायक होंगे रूद्रगण को राक्षस होने का शाप दिया, मोह मिटने पर पश्चात्ताप किये और गणों से कहा कि शिव जो के ही अपर शरीर से मृत्यु पाकर शाप से मुक्त होगे।

स्कन्द पु० अवन्तिका मा० खं० ५ अ० २ आदि में कथा है कि ब्रह्मा की स्तुति से प्रसन्न होकर शिव जी ने वर माँगने के लिए कहा, तब ब्रह्मा ने वर माँगा कि मेरा पुत्र होवो। तब शिव जी ने कहा कि अच्छी बात है, परन्तु इस अनुचित वर के कारण मैं तेरा पंचम सिर कारणवश काटूँगा। उसके बाद ब्रह्मा हवन करते रहे, उसी समय एक रक्त बिन्दु उनके ललाट से गिरा उससे पंच वदन रूप प्रगट हुआ, सो ब्रह्मा के पंचम

सिर को काट दिया। स्कन्द पु० खं० ७ अ० २४८ में कथा है कि सृष्टि करते समय एक सुन्दर रूप वाली स्त्री उत्पन्न हुई, उसे देखकर ब्रह्मा जी मोहित हुए और रति के लिए उससे प्रार्थना करने लगे, इतने में ही उनका पंचम गर्दभ शिर उसी पाप से गिर गया।

## सबद १११

### अन्योक्ति जीव माया प्रकरण

**है कोई गुरु ग्यानी, जगत उलटि बेदहिं बूझै।**
**पानी में पावक बरै, अंधेहिं आँखि न सूझै॥**
**गाइ तो नाहर खायो, हरिन खायो चीता।**
**काग लंगर फांदि के, बटेर बाजहिं जीता॥**
**मूस तो मंजार खायो, स्यार खायो स्वाना।**
**आदि को उपदेश जाने, तासु बेस बाना॥**
**एकहिं दादुल खायो, पांचहिं भुवंगा।**
**कहैं कबीर पुकारि के, हैं दोऊ एक संगा॥**

**शब्दार्थ**—उलटि-संसार से विमुख होकर। वेदहिं-ज्ञान। पानी-जल, आत्मा। पावक-अग्नि, काम, क्रोधादि। बरै-जले। अंधेहिं-अज्ञानी। गाइ-माया। नाहर-जीवात्मा, अहंकार। हरिन-तृष्णा, विषयी मन। चीता-चिता, विवेक, सदबुद्धि, सद्गुण। काग-काक, दुर्बुद्धि। लंगर-बड़ा कौवा, एक शिकारी पक्षी। फांदि-लांघकर, फंसाकर। बटेर-एक छोटी पक्षी जो धान के खेत में रहता है, मन। बाजहिं-जो पक्षियों में बड़ा जीवट का होता है, आत्मा। मूस-मूसक निर्बल मनोवृत्ति। मंजार-माया, बिल्ली सद्वृत्ति। स्यार-शृगाल-छिपी वासना। स्वाना-कुत्ता, चैतन्य। आदि-प्रारम्भ। तासु-उसका। बेस-वेश, पहिरावा। बाना-वेष-भूषा। दादुल-दादुर मेढ़क, टर्र टर्र करने वाला, शास्त्रज्ञ। पांचहिं-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। दोऊ-दो, जीव और ईश्वर।

**सम्बन्ध**—इसके पूर्व कर्म की प्रबलता बताते हुए अब उससे छुटकारा पाने के लिए उपाय बताया जा रहा है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि कोई संसार में बिरला ही सद्गुरु ज्ञानी है जो इस संसार की गतिविधि को समझने में समर्थ होता है। वह सद्गुरु संसार से अपनी मनोवृत्ति को उलट देता है अर्थात् जिस ओर संसार मुख किये हुए है जिस ओर जा रहा है उधर पदार्पण न करके अपनी वृत्ति को संसार से हटाकर वह आत्मज्ञान में लगता है। परन्तु अज्ञानी लोग जो संसार में फँसे हुए हैं। जिनका अधः पतन हो चुका है। उनके अन्दर आत्मा रूपी जल में काम, क्रोध रूपी अग्नि जल रही है। परन्तु आत्मविमुख उस मनुष्य के नेत्रों से कुछ दिखाई नहीं दे रहा है अर्थात् विवेक बुद्धि रूपी नेत्रों से कुछ समझ नहीं पा रहा है। इसलिए माया रूपी गाय, नाहर रूपी आत्मा को खा रही है। इसी प्रकार से तृष्णा रूपी हिरण व मृग विवेक को ही खा रहा है और काग रूपो जो दुर्बुद्धि है वह 'लंगर' कहिये जो सत्त्वगुण था उसको फाँदकर आगे बढ़ गया अर्थात् काग कुबुद्धि सुबुद्धि को फँसाकर नष्ट कर डाला। बटेर जो छिपकर रहने वाला था अर्थात् जो मन है वह बाज रूपी आत्मा से विजयी हुआ है। मूस जो निर्बल मनोवृत्ति है वह मंजार रूपी सद्वृत्ति को भक्षण कर रहा है। सियार जो हुवाँ-हुवाँ करने वाला है जो श्वान को देखकर भाग जाता है। वही सद्व्यवहार को विचलित कर रहा है। जो आदि का अर्थात् आदि गुरु का उपदेश जानता है। वह उपर्युक्त फन्दे में नहीं पड़ता है। उसी का वेश व उपदेश सही है जो उसको जान गया है और उसके द्वारा सत्य की अनुभूति हो गई जो आत्मा रूपी जल में कुसंस्कार रूपी दादुर है उसको आत्मज्ञानी खा गया और जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध रूपी पाँच सर्प थे उनका भी समापन कर दिया। सद्गुरु कबीर पुकार कर कहते हैं कि हे सन्तजन ! जो दो अलग-अलग जीव और ब्रह्म भिन्न-भिन्न दिखाई देते थे, अब उन दोनों में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रह गया क्योंकि मन के सारे कुसंगी गुरु कृपा से नष्ट हो गये।

परिणामस्वरूप शान्ति उपलब्ध हो गई जिसके कारण सुखनिधि प्राप्त हुई।

**आशय**—संसार में कोई बिरला ही गुरु ज्ञानी होता है जो संसार की ओर से उलटकर सोचता समझता है और अनेक लोगों का उद्धार भी करता है परन्तु अज्ञानी मनुष्य के अन्दर अनेक प्रकार की उथल-पुथल मची हुई है मूर्खता के कारण सत्य की उपेक्षा कर देता है। इसलिए सिंह रूप होने पर भी माया के द्वारा नष्ट हो जाता है जो चिता के समान है जिसको विवेक कहा जाता है जिसके सामने हिरन रूपी तृष्णा कुछ भी नहीं है उस अज्ञानी मनुष्य के विवेक को तृष्णा रगड़ देती है अस्तित्व विहीन बना देती है कुबुद्धि के कारण मनुष्य अपने सत्य संस्कार को छोड़कर आगे बढ़ जाता है। इसलिए बटेर रूपी मन, बाज रूपी आत्मा को जीत लेता है। जो चोर का प्रतीक मूसा है जो मानव के जीवन रूपी भित्ति को ही नष्ट करने वाला है वह मन मंजार रूपी सद्‌गुणों को चुरा लेता है। अर्थात् उनका विध्वंस कर देता है। इसलिए जो सियार है जो बहुत हुवाँ-हुवाँ करता है वाचक ज्ञानी है समय आने पर छिप जाता है वह श्वान रूपी सुवि-वेक को जो घर की रखवाली करता है उसको खा जाता है अर्थात् उसके सत्त्वगुण का हरणकर लेता है परन्तु इससे वही बच सकता है जो आत्म-ज्ञान के उपदेश को जानता है उसी का वेष प्रमाणित माना जा सकता है जो सारे कुसंस्कारों को नष्ट कर दिया है शब्द रूप, रस, गन्ध, स्पर्श को जीत लिया है उसी को सद्‌गुरु कहते हैं कि हे भाई! वही आत्मतत्त्व को प्राप्त कर सकता है अन्य विषयी पामरों के वश का नहीं है।

## परिमार्जनात्मक अर्थ

**शब्दार्थ**—बेदहिं–ज्ञान वेद। पानी–जल, ब्रह्म, विषय–वासना। पावक –अग्नि, ज्ञानाग्नि। बरै–जलै। अंधेहिं–विषयासक्त, जिसके बुद्धि विवेक रूपी चक्षु नष्ट हो गये हों। गाय–सद्‌वृत्ति। नाहर–सिंह, अहंकार। हरिन–आत्मा। चीता चिता–चंचल चित्त। काग–काक, अनाहत नाद। लंगर–बड़ा काग, इन्द्रियों की बहिर्मुखता। फाँदि–लाँघकर, फँसाकर। बटेर–धान के

खेत में रहनेवाला पक्षी। बाजहिं–मृत्यु, उद्वेग, एक शक्तिशाली पक्षी। मूंस–साधक। मंजार–काल। सियार–कायर मन, सत्य संकल्प, श्वान, अज्ञान। दादुल–मेढक, साधक। बेस-वेश, लिवास, पहिरावा। बाना–साधु का वेश। तासु–उसका। भुवंगा–पंचविषय, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध।

**भावार्थ**—संसार में कोई बिरले ही सद्‌गुरु ज्ञानी होते हैं। जो वेद रूपी ज्ञान को उलटकर बूझते हैं अर्थात संसार की ओर न जाकर अध्यात्म की ओर चलकर संसार से मुक्त हो जाते हैं और दूसरे का भी उद्धार करते हैं और उनके बताये हुए मार्ग पर चलकर उत्तम जिज्ञासु भी तर जाते हैं। मानव के हृदय रूपी सरोवर में विषय वासना रूपी जल विद्यमान है जिसको ज्ञान की अग्नि लगाकर पहुँचा हुआ ज्ञानी गुरु सभी कुविचारों को भस्म कर देता है। परन्तु विषयान्ध जो अहर्निश विषय वासना में लगे हैं। वे अज्ञ मनुष्य बुद्धि रूपी नेत्र से उलटकर ज्ञानाग्नि को देख नहीं पाते हैं परन्तु जब सद्‌गुरु कृपा कर देता है तो उनकी भी वृत्ति आत्माकार हो जाती है। जब गाय रूपी वृत्ति आत्माकार हो जाती है तब सिंहरूपी अहंकार का नाश हो जाता है क्योंकि साधक चतुर्दिक् अपने स्वरूप का ही दर्शन करता है। पश्चात् आत्मारूपी हिरण चित्त रूपी चिता के द्वारा खाया जाता था अर्थात् नाश किया जाता था। जन्म-मरण को प्राप्त होता था। अब वह हिरणरूपी आत्मा अपने को पहचान गया और पहचानकर दूषित चित्त का भक्षण कर गया। अर्थात् आत्म-ज्ञान होने पर स्वतः चित्त का नाश हो गया काग रूपी अनाहत नाद जब प्रस्फुटित हुआ लंगर पक्षी रूपी चंचल वृत्ति जो बड़ी भयानक लगती थी वह अनाहत नाद की ओर जाकर फँस गई। अर्थात् अनाहत नाद के प्रकट होने पर मन की सभी वृत्तियाँ उसी में लय हो गईं जब अनाहत नाद पूर्ण रूप से विकसित हो गया तब सत्यसंकल्प रूपी बटेर कालरूपी बाज को उलट कर खा गया अर्थात् सत्य संकल्प होने के बाद काल का परिणाम साधक पर असर नहीं डालता। इसी प्रकार से निर्बल साधक जो मूसा का प्रतीक है मंजार रूपी एवं अज्ञान रूपी महाकाल

को भी खा गया जो सदा सत्य से भागता फिरता था। वह सियार रूपी कायर मन नष्ट हो गया मनुष्य में जब आत्मज्ञान का उदय हुआ तब कायर मन वाला साधक अज्ञान रूपी कुत्ते को निगल गया जिसके कारण बार-बार जन्म मरण लेता रहा। अब यह कहा जा रहा है कि 'आदि' कहिये जो सबका आदि है। वही परम तत्त्व है। उसकी जानकारी का उपदेश जो सद्‌गुरु जानता है। उसी सद्‌गुरु संत के वेष-भूषा को तथा बाना को प्रामाणिक मानना चाहिए अन्य वेशधारियों को जिन्हें आत्मा की पहचान नहीं है। मात्र सन्त का वेश धारण किये हुए हैं। उनका परित्याग कर देना चाहिए। सन्त सद्‌गुरु की कृपा से दादुर रूपी साधक अकेलहिं सर्परूपी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, नामक पाँचों भुजंगों को खा गया अर्थात जब साधक को दिव्य ज्ञान का उदय हुआ तब वह पंचविषयों की ओर से मुड़कर स्वरूप की ओर अग्रसर हो गया।

इस पर सद्‌गुरु कबीर पुकारकर कहते हैं कि जो अलग-अलग द्वैत भाव में दो दीखते थे जो ब्रह्म अपने से भिन्न प्रतीत होता था और जीव अपने से भिन्न प्रतीत होता था उन दोनों को मेंटकर एक हो गया अर्थात् द्वैत का नाश होकर मन की वृत्ति अब अद्वैत भाव को प्राप्त कर सत्य रूप में विराजने लगी। यही सद्‌गुरु कबीर का उलटा ज्ञान है इसको लोग उलटवांसी भी कहते हैं परन्तु इसको सीधा समझना चाहिए।

## सबद ११२

### भक्त भगवद् पहिचान प्रकरण

**झगड़ा एक बढ़ो राजा राम, जो निरवारै सो निरवान।**
**ब्रह्म बड़ा कि जहां से आया, वेद बड़ा की जिन्ह उपजाया॥**
**ई मन बड़ा कि जेहि मन माना, राम बड़ा कि रामहिं जाना।**
**भूमि-भूमि कबीरा फिरत उदास, तीरथ बड़ा की तीरथ के दास॥**

**शब्दार्थ**—झगड़ा–निशिदिन आन्तरिक इन्द्रिय के भोगों में कलह।

बढ़ो–बढ़ गई। राजाराम–ईश्वर। निरवारे–छुड़ावै, विचारे, निवारण, सुलझाना, मिटाना, उनका निर्णय करना। निरबान–निर्वाण मोक्ष, मुक्ति। ब्रह्म–कार्यब्रह्म और ब्राह्मण। उपजाया–उत्पन्न किया। ई–यह। जेहि–जो। फिरत–चलत, भ्रमत, घूमत। तीरथ–तीर्थ, तीर्यंते इति तीर्थः जो भवसागर से पारकर दे वही तीर्थ है। भूमि-भूमि–पूरी पृथ्वी पर भ्रमना।

**सम्बन्ध**—इसके पहले कहा गया है कि जो सद्‌गुरु सन्त संसार से पराङ्गमुख हो जाते हैं वही अन्तर की बात जान सकते हैं। अन्य वंचक गुरुओं की जानकारी न होने से जीव निज स्वरूप से वंचित रह जाता है। वह अद्वैत भाव को प्राप्त नहीं होता। अब नीचे के पद में यह कहा जा रहा है कि मानव के अन्दर जो पंच विषयों के भोग करने का झगड़ा है वह बड़ा विषम है। उसको बिना सन्त सद्‌गुरु के दूर करना बड़ा कठिन है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कबीर परात्पर शक्ति से कहते हैं कि हे जगत गुरो ! हे राजाराम ! जो सारी सृष्टि के आप स्वामी हैं मैं आप से कहता हूँ कि मनुष्य के हृदय में एक बहुत बड़ा झगड़ा बढ़ गया है। वह प्रतिदिन का एक ही झगड़ा है जो इन्द्रिय भोगों का झगड़ा मन निरन्तर नये-नये भोग-फल को चाह रहा है। तृष्णा की तृप्ति नहीं हो पा रही है। परन्तु हे प्रभो ! जो भव भोगों को त्यागकर संसार से वृत्ति को हटाकर उक्त झगड़ा का निरुवार करेगा तो उस झगड़ा से अवश्य मुक्त हो जायेगा। अर्थात् जो पंच विषयों को वश में कर लेगा। उसकी उन्मुनि दशा हो जायेगी। वह स्थितप्रज्ञ पुरुष निर्वाण पद को प्राप्तकर लेगा। हे प्रभो ! मेरा प्रथम प्रश्न यह है कि ये जो वेदज्ञ ब्राह्मण हैं ये कहते हैं कि हम दण्ड धारण मात्र से मुक्त हो जायेंगे। हम भगवान के मुख से प्रगट हुए हैं इसलिए हमें जप, तप, ध्यान, धारणा की आवश्यकता नहीं है।

इस पर साहब कहते हैं कि ये ब्राह्मण लोग बड़े हैं कि जिस स्थान से ये लोग आये हैं वह बड़ा है। मैं तो यह कहूँगा कि जिस कार्यब्रह्म ने सृष्टि का विस्तार किया है। इनसे तो वही बड़ा है क्योंकि सबल ब्रह्म ही सबका जनक है इसी प्रकार से मेरा दूसरा प्रश्न है कि 'वेद' बड़ा है कि जिन लोगों

के द्वारा वेद उत्पन्न हुआ है। क्योंकि शब्द वादी शब्द को अनादि मानते हैं। महर्षि जैमिनि वेद को नित्य मानते हैं उनका मत है कि वेद को भगवान भी नहीं रचा है। क्योंकि शब्द अनादि होने के कारण वेद भी अनादि हैं।

दूसरा अर्थ वेद का ज्ञान भी है, ज्ञान तो किसी के द्वारा रचा नहीं गया है और उत्पन्न भी नहीं किया जाता है। वह कार्य ब्रह्म में सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहता है। जिसको हिरण्यगर्भ भी कहते हैं। इसलिए सद्‌गुरु देव श्री राजाराम से प्रश्न करते हैं कि ये चारों वेद बड़े हैं कि जिन अग्नि, अंगिरा वशिष्ठ विश्वामित्र आदि ऋषियों ने साक्षात्कार करके वेदों की ऋचाओं को प्रकट किया है। ज्ञान तो बड़ा है हो परन्तु जिसके द्वारा मंथन करके प्रकट हुये हैं। ऋषि लोग ही गुरु रूप में प्रथम बड़े हैं।

तीसरा प्रश्न यह है कि जो वर्तमान में मन बिगड़ा हुआ हाथी की तरह दसों दिशाओं में दौड़ रहा है जो इन्द्रियों के द्वारा नाना विषयों का रस चूस रहा है जिससे आत्मा अपने को समझ नहीं पा रहा है। सदा उद्विग्न मन के साथ लगा रहता है। दूसरा मन जो मान गया है। तपश्चर्या से निरुद्ध हो गया है। जो सतत तुरीय अवस्था में जाकर लय हो गया है तो मेरी समझ में संसार के भोगने वाले मन से निरुद्ध आत्मोन्मुख मन ही बड़ा है।

हे प्रभु ! चौथा प्रश्न मेरा यह है कि आप बड़े हैं कि आपके जानने वाले बड़े हैं अर्थात् जो सबकी आत्मा है जो सबमें रमा हुआ है। जो चेतन रूप से प्राणियों में प्रवेश किये हुए है वह बड़ा है कि जो उसकी प्राप्ति कर लिया है। आत्मज्ञ हो गया है। समाधिस्थ हो गया है। मेरी समझ में तो अन्तर राम को जानने वाला गुरु हो जाता है। संसार का उद्धार करने लग जाता है। इसलिए 'राम से अधिक राम कर दासा, मोरे मन प्रभु अस विस्वासा' की बात हो सत्य दीखती है। जैसे किसी के घ र में खजाना गड़ा हो वह खजाना का हाल ही न जानता हो तो उससे

उसका क्या लाभ हो सकता है ? लाभ तो तभी हो सकता है जब उसको खजाना का पता चल जाय। खजाना को प्राप्त करना ही मनुष्य का लक्ष्य है और जो उस खजाना को बतलाता है वही बड़ा हो सकता है।

सद्गुरु कबीर कहते है कि हे विभो ! मैं सारी पृथ्वी पर उक्त प्रश्नों को पूछते फिरता हूँ उत्तर न मिलने पर मन में उदासी छा जाती है और खिन्न हो जाता हूँ, बहुत लोग तीर्थ को बड़ाई करते हैं इसमें मुझे शंका है कि तीर्थ बड़ा है कि तीर्थ में रहने वाला आत्मज्ञ पुरुष बड़ा है। जिसके स्थान पर तीर्थ बना है जैसे काशी स्वयं महत्त्व वाली नहीं है काशी का महत्व स्वयं शंकर भगवान के द्वारा ही होता है। इसलिए तीर्थ बड़े नहीं हैं। बड़े वही हैं जिनके स्थान पर जिनके पश्चात् वहाँ दार्शनिक स्थान बन गये।

## सबद ११३

### सावधान प्रकरण

झूठेहिं जनि पतियाहु हो, सुनु सन्त सुजाना।
तेरे घटहीं में ठगपूर है, मति खोवहु अपाना॥
झूठे की मंडान है, धरती असमाना।
दसहुं दिसा वाकि फंद है, जिव घेरे आना॥
जोग जप-तप संजमा, तीरथ ब्रत दाना।
नौधा बेद क्तिेब है, झूठे का बाना॥
काहू के वचनहिं फुरे, काहू करामाती।
मान बड़ाई ले रहे हैं हिंदू तुरक जाती॥
बात वेंवते असमान की, मुद्दति निअरानी।
बहुत खुदी दिल राखते, बूड़े बिनु पानी॥
कहैं कबीर कासो कहौं, सकलो जग अंधा।
सांचे से भागा फिरै, झूठे का बन्दा॥

**शब्दार्थ**—झूठेहिं-असत्य ही असत्य। जनि-जन, नहीं। पतियाहु-विश्वास। सुनु-सुनो। घटहीं-शरीर में ही। ठग-मन। पूर-पूर्ण। मति-नहीं। अपाना-अपनत्त्व, सत्त्व। मंडान-विस्तार। सुजाना-समझदार। असमाना-आकाश। दसहुं-दसों। वाकि-उस मन की। फंद-जाल, फन्दा। आना-आकर। संजम-संयम। ब्रत-व्रत, उपवास रहना। दाना-दान। नौधा-नया, नौ प्रकार की भक्ति। बाना-वेश-भूषा। फुरे-सत्य। काहू-कोई करामाती-किसी-किसी की क्रियाएं कभी-कभी सफल हो जाती हैं। तन्त्र विद्या, जादूगरी। हिन्दू-आर्य। तुरक-मुसलमान, तुर्की देश का रहने वाला। जाती-जाति। वेंवते-कहते हैं। मुद्दति-अवधि, आयु, मृत्युकाल। निअरानी-निकट आ गयो। खुदी-स्वयं, साफ, स्वार्थ। अंधा-नेत्रहीन, अज्ञानी। बन्दा-दास।

**सम्बन्ध**—पूर्व पद में कहा गया कि कर्तव्य के बजाय कर्तव्य करने वाला श्रेष्ठ होता है। कोई मठ मकान श्रेष्ठ नहीं होते हैं। उनमें रहने वाले सत् पुरुष ज्ञानी लोग ही श्रेष्ठ होते हैं।

**मूलार्थ**—गुरु महाराज कहते हैं कि मेरी उपर्युक्त बातों को हे सन्त भाइयों! असत्य न समझें जो मैं ऊपर कहा हूँ उस पर आप लोग विश्वास करें। वह पूर्णरूपेण नपी तूली अनुभव की हुई बात है। हे सज्जन! सन्त जन! मेरी बात को ध्यान पूर्वक सुनें। आप लोग उपर्युक्त बात पर इसलिए आस्थावान नहीं हो पा रहे हैं कि आपके घर रूपी शरीर में एक महा ठग भयानक चोर मन और इच्छा शक्ति बैठी हुई है। उससे आप लोग सावधान होकर अपने सत्त्व की, अपने पद की रक्षा करें। असावधानी में उसको खोयें न, क्योंकि इस झूठे मन और उसके पुत्र काम का सारे संसार में पसारा है। धरती और आकाश के बीच में जितने भी लोक लोकान्तर हैं। जहाँ तक इच्छा शक्ति का विस्तार है। वहाँ तक मन की पहुँच है। वहीं तक नहीं उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम नैऋत्य, वायव्य, ईशान, अग्नि आदि दसहुँ दिशा में उसी मन और मन के पुत्र काम का जाल फैला हुआ है सभी तीन लोक के प्राणियों को

अपने फंदे में व अपने फांस में घेर कर रखा है सारे जीव जहान में सबको जाकर अपना फंदा लगा दिया है। इस इच्छा शक्ति ठग के सामने न योग कुछ काम कर सकता है, न जप, तप, संयम, तीर्थ, व्रत, दान, उपवास तथा नौ प्रकार की प्रभु भक्ति वेद शास्त्रों का पठन-पाठन, कुरान आदि किताबों का अध्ययन मन रूपो ठग के सामने तुच्छ हैं। ये सब उस भयानक ठग के सामने झूठे वेश वाले साबित होते हैं। इतना भयानक दु:शील मन है कि वह जल्दी पकड़ में नहीं आता जिसको भगवान कृष्ण ने अर्जुन के पूछने पर कहा है कि हे अर्जुन ! मन बहुत बड़ा दु:शील है, बलवान है, जो सभी इन्द्रियों का राजा है। उसको वश में करना भूमण्डल को अपनी मुट्ठी में करने के समान है। कुछ लोग दम्भ भरते हैं कि हम मन को जीत लिये हैं। मन को वश में कर लिये हैं परन्तु सद्गुरु कहते हैं कि इस मन को पूर्ण रूप से कैद करना बहुत बड़े साधक का काम है। ऐसे लोग छोटी-मोटी सिद्धियों को प्राप्त कर अपने को ज्ञानी-ध्यानी व बड़ा मानते हैं।

साहब कहते हैं कि इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि किसी को थोड़ी सी सिद्धि प्राप्त होने पर उसके वचन सत्य हो जाते हैं। कोई किसी देव आदि की सिद्धि कर कुछ करामात व माया जाल दिखलाने लगता है। जिसकी मान बड़ाई वह ले रहा है। अर्थात् समाज में अपने को मानद मान रहा है। चाहे वे हिन्दू जाति के हों, चाहे वे मुसलमान जाति के हों परन्तु अल्प शक्ति प्राप्त कर लेने पर आकाश-पाताल की बातें करते हैं। अर्थात् बहुत बड़ी-बड़ी बातें बोल जाते हैं। हिन्दू कहते हैं कि हमारा धर्म श्रेष्ठ है। हमारे अवतार श्रेष्ठ हैं। हम अमुक लोक में जायेंगे। हम सत्य लोक में जायेंगे। मुसलमान बोलते हैं कि हमारा पैगम्बर और कुरान श्रेष्ठ हैं। हम संसार का भोग भोगत हुए जन्नत में जा विराजेंगे।

गुरु महाराज कहते हैं कि इस तरह की बात करते-करते कुछ मिला नहीं। जीवन रूपी अवधि समाप्त हो चली। मृत्यु सन्निकट पहुँच गई परन्तु तब भी नहीं चेत रहे हैं, कहते हैं कि मैं और मेरा दिल बहुत साफ

है पर ये स्वार्थी तत्त्व जिन्हें परमार्थ का कुछ भी ज्ञान नहीं है। बिना नदी-नाला के पानी के ही सूखे तालाब में ही डूब कर मर गये अर्थात् जीवन भर उक्त प्रकार की लम्बी चौड़ी बातें करते रहे। इन हाथ कुछ लगा नहीं। जीवन भर कुछ किये बिना ही समाप्त हो गया।

गुरु महाराज कहते हैं कि मैं किससे कहूँ सारा संसार अज्ञान रूपी रात्रि में पड़ा हुआ है और सत्य-असत्य उसकी समझ में नहीं आ रहा है। ये संसारी जीव सच्चे सन्त महात्माओं एवं आत्मज्ञानियों के पास से, निकट से भागते फिरते हैं और झूठे पाखण्डियों ठगों पतनशीलों के दास बने हुए हैं। भला इनका कल्याण कैसे होगा ? यही मुझे चिन्ता है।

**नवधा भक्ति**

**टिप्पणी**—श्रवण, स्मरण, कीर्तन, पादसेवन, अर्चन, वंदन, सख्य, दास्य, आत्मनिवेदन।

## सबद ११४

### सत्पुरुष के द्वारा सृष्टि विकास प्रकरण

**सत्त सबद से बांचिहो, मानहु इतवारा हो।**
**अछै मूल सत पुरस है, निरंजन डारा हो॥**
**तिरदेवा साखा भये, पत्ती संसारा हो।**
**ब्रह्मा वेद सही कियो, सिउ जोग पसारा हो॥**
**बेस्नु माया उत्पति कियो, ई उरले वेवहारा हो।**
**तीन लोक दसहूँ दिसा, जम रोकिन द्वारा हो॥**
**कीर भये सब जीअरा, लिये विख का चारा हो।**
**जोति सरूपी हाकिमा, जिन्ह अमल पसारा हो॥**
**करम की बंसी लाय के, पकरो जग सारा हो।**
**अमल मिटावों तासु की, पठवौं भौ पारा हो॥**
**कहैं कबीर निरभै करों, परखो टकसारा हो।**

**टिप्पणी**—अजर-अमर एक वृक्ष है। यह भी पाठ है। सार सबद से बांचित हो, यह भी पाठ है।

**शब्दार्थ**—सत्त–सत्य, जो तीन काल में नाश को न प्राप्त हो, उसको सत्य शास्त्रों में और कोश ग्रन्थों में लिखा है, परमात्मा का नाम। सबद–शब्द, शब्द का अर्थ स्फोट, ध्वनि परमात्मा का मुख्य नाम ओऽम, आत्मा, व्याकरण जिसे शब्द ब्रह्म भी कहा है, 'मानक हिन्दी कोश' पृष्ठ १४४ 'संस्कृत हिन्दी कोश' लेखक-वामन शिवराय, आप्टे-पृष्ठ १००० दो कोश 'संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ' ११३६ में ब्रह्म जीव का ज्ञान, आध्यात्मिक ज्ञान तथा वाक्य, योजना आदि लिखा है। बांचिहो–बचोगे। मानहु–मानिये। इतबारा–एतवार, विश्वास। अछै मूल–वह वृक्ष जिसका नाश न हो। सत्पुरुष–सद् ब्रह्म, चेतन, निरंजन, कार्यब्रह्म, हिरण्यगर्भ। डारा–डाल, मुख्य शाखा। तिरदेवा–ब्रह्मा, विष्णु, महेश। साखा–स्कन्ध। पत्तो–पत्ता। बेस्नु–विष्णु। ई–यह। उरले–अपर, पिछला, पीछे का, निराला। बेवहारा–व्यवहार, चाल-चलन। तीन लोक–स्वर्ग, पाताल, मृत्यु लोक। दसहुँ दिसा–पूरब, पश्चिम उत्तर, दक्षिण, नैऋत्य, वायव्य, अग्नि, ईशान, अर्द्ध, ऊर्ध्व। जम–यम, मृत्यु। द्वारा–फाटक, द्वार। कीर–शुक, सुग्गा। जीअरा–जीव। विख–विष। चारा–भोजन, सांसारिक विषय। जोति–ज्योति, प्रकाश, स्वरूप। हाकिमा–हाकिम, हुक्म, आदेश करने वाला अधिकारी, माया। जिन्ह–जो। अमल–शासन, प्रभाव, असर, साधन, नशा। बंसी–मछली फँसाने वाली वह कटिया जो बाँस की एक छड़ी में रस्सी बांधकर रस्सी के मुख पर मछली फँसाने के लिए तार की टेढ़ी काँटी लगाते हैं जिसको 'कटिया' भी कहते हैं। मिटावो–समाप्त करो, दूर करो। तासु–उसकी माया की। पठवौं–भेजों। भौ–भव, संसार। टकसारा–टकसाल, ऊँची या प्रामाणिक वस्तु, असली चीज, आत्मस्वरूप, निजरूप, परमेश्वर तक। परखो–देखो।

**सम्बन्ध**—इसके पहले कहा गया है कि मेरी बात पर विश्वास करो। अन्यथा मन रूपी ठग से ठगा जाओगे क्योंकि सच्चे सद्गुरु से लोक सम्बन्ध न करके धूर्तों और पाखंडियों का दास बने हुए हैं परन्तु इन धूर्तों से

तुम्हारा कोई लाभ होने वाला नहीं है। अब तुझे बचने के लिए सच्ची बात कहता हूँ।

**मूलार्थ**—सद्गुरु देव कबीर स्वामी कहते हैं कि संसार और शास्त्र में तथा धर्म में अनेक प्रकार के शब्द हैं। जिनमें चार मुख्य शब्द सन्त मत में माने गये हैं। झाईं शब्द, सन्धि शब्द, काल शब्द और सार शब्द व सत्य शब्द ये चार शब्दों में सत्य शब्द जो है वह निरक्षर है अर्थात् जन्म-मरण से परे है। यह न कभी हुआ है न कभी होने वाला है। यह तीनों काल में एक समान रहने वाला है। सृष्टि की सारी रचना का जो सारभूत है उस सृष्टि रचयिता का भी वह आत्मा है। वह मात्र है। यहाँ सम्बोधन के लिए सत्य-शब्द कहा गया है। उसी से अर्थात् उसी सत्य शब्द से तुम्हारी रक्षा होगी। वही तुम्हें बचा सकता है। वह मूलतत्त्व है। तुम्हारे अन्दर में विराजमान है। इसके लिए मेरा विश्वास करो क्योंकि इस सृष्टि क्रम में वही सार शब्द अक्षय मूल के रूप में है जिसका कभी नाश नहीं होता है जो क्षय को प्राप्त नहीं होता है वह 'सत्पुरुष' है, वह सत्य है। वह चिति-स्वरूप वाला भूमा है, परब्रह्म है। उसकी मुख्य शाखा व डाल कार्यब्रह्म हिरण्यगर्भ के रूप में निरंजन है। यद्यपि 'निरंजन' का अर्थ शास्त्रों में या अन्यत्र सद्गुरु कबीर साहब ने निगुर्ण ब्रह्म से लिया है। जिसमें अंजन व कालिख न लगे अर्थात् जिसमें कभी माया का सम्प्रवेश न हो। वह शुक्ल ब्रह्म, शुद्ध ब्रह्म, निरंजन है परन्तु यहाँ पर सद्गुरु साहब उसके दो विभाग किये हैं। प्रथम तो उसको सत्य शब्द कहा फिर अक्षयमूल कहा, फिर सत्यपुरुष कहा परन्तु पश्चात् में जो अक्षयमूल रूपी सत्यपुरुष है उसकी डाल कहा अर्थात् प्रधान शाखा कहा। स्मरण रहे कि मूल में और प्रधान-शाखा में अन्तर नहीं है। दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है परन्तु पद का तुक न बिगड़ने के कारण हिरण्यगर्भ व कार्यब्रह्म न कह कर निरंजन कहा गया है। तो कोई आपत्ति नहीं है। जल, फेन, तरंग, बुद्बुदा सब एक ही होते हैं। वह मूलतत्त्व अनेक रूपों में परिभाषित होता है। इसलिए यहाँ पर निरंजन कहने से कोई अधिक आपत्ति नहीं है।

कुछ टीकाकारों ने और दक्षिणपंथी कबीरपंथियों के मत में निरंजन सत्य पुरुष के सोलह पुत्रों में से एक है। जो सृष्टि की सारी रचना करता है परन्तु यह कबीर साहब का मत नहीं है। बाद में लोगों की कल्पना का फल है। इसी प्रकार से कुछ बीजक के टीकाकारों ने निरंजन को काल पुरुष, यमराज व मन कहा है जो पूर्णरूपेण अर्थहीन है और त्याज्य है। क्योंकि उक्त प्रकार का अर्थ न किसी व्याकरण में किया गया है, न अन्य शास्त्रों में ऐसा सुना गया है। इसी प्रकार से कुछ ग्रंथकारों ने जो कबीर पंथ से सम्बन्धित हैं सार शब्द की अन्य व्याख्या करते हैं। वे कहते हैं कि—'सारशब्द निर्णय को नामा। जाते होय जीव का कामा॥

यह नासमझी में कहा गया है। जो सारशब्द का अर्थ न समझकर समाज में भ्रम फैलाया गया है। असल में सार सत्य का द्योतक है जिसे परमात्मा[1] कहते हैं। उसी के नाम के रूप में शब्द को 'प्रणव' व 'ओंकार' कहा गया है। 'ओऽम्' का अर्थ शास्त्रों में विभिन्न प्रकार से किया गया है। जिसका दिग्दर्शन 'ग्यान चौंतीसा' प्रकरण में किया जायेगा। क्योंकि नासमझी के कारण एवं अशिक्षा के कारण कबीर पंथ में 'ओऽम्' को लेकर और' 'राम' को लेकर बहुत बड़ा विवाद उठ खड़ा हुआ है। जिसके कारण परमात्मा के उक्त नामों को बड़ी तुच्छ दृष्टि से देखा जाता है और कहा जाता है कि सन्तमत इससे भी परे कोई चीज को मानता है जबकि इससे परे कोई चीज ही नहीं है। सद्गुरु कबीर कर्मकाण्ड के अतिरिक्त कहीं भी परमेश्वर के किसी भी नाम का और वेद के ज्ञानकाण्ड का कहीं किसी रूप में अवहेलना नहीं की है। जिसके लिए उनकी वाणी प्रमाण है और आगे अब प्रसंग पर आइये।

कार्य ब्रह्म से तीन देव उत्पन्न हुए अर्थात् तीन शाखायें उसमें से और निकलीं। प्रथम शाखा पितामह ब्रह्माजी, दूसरी शाखा भगवान विष्णु जी तीसरी शाखा देवन के देव महादेव जी हुए और उनके द्वारा पत्र स्वरूप में सारे स्थावर, जंगम, अण्डज, पिण्डज प्राणियों का प्रकटीकरण हुआ। जब सारा विश्व मानव और मानवेतर से पूर्ण हो गया तब

१. राम-नाम इहै निजु सारु, औरो झूठ सकल संसारु ॥

मार्ग प्रदर्शित करने के लिए अर्थात् मनुष्यों में ज्ञान ध्यान प्रचार करने के लिए उनकी मुक्ति के लिए, सत्य पुरुष तक पहुँचने के लिए पितामह ब्रह्मा ने चार वेदों को प्रकट किया। जो सही और सत्य हैं। पुनः मनुष्यों के उद्धार के लिए शंकर व शिव ने 'अष्टांग योग' का व हठयोग का प्रसार किया। जो विस्तार से योग ग्रंथ और तन्त्रग्रन्थ भगवान शंकर के नाम पर उपलब्ध हैं। ये भी सत्य पुरुष सद्ब्रह्म की प्राप्ति के लिए योग का आविष्कार किये। इनका 'नादयोग' प्रसिद्ध है। भगवान विष्णु ने एक दूसरे से लगाव के लिए आपस में प्रेम भाव उत्पन्न करने के लिए अर्थात् एक सूत्र में बाँधने के लिए 'माया' कहिये ममता की उत्पत्ति की।

यह 'उरले' कहिये निराला व्यवहार है। कुछ कहा नहीं जा सकता। यदि सद्मार्ग के ग्रंथ न होते वेद-शास्त्र व ज्ञान ग्रन्थ नहीं बने होते तो मानव अज्ञान में भटकता फिरता। सही रास्ता से वंचित रह जाता क्योंकि मनुष्यों के कर्मों के अनुसार सत्य शब्द तक पहुँचने में यमराज सभी दरवाजों को बन्द कर रखा है। वह सुषुम्ना का द्वार बंद किया है। 'आज्ञा चक्र' का द्वार बंद किया है। खेचरीमुद्रा' का मार्ग बंद किया है। 'कुण्डलनी' का मुख बंद किया है। यहाँ पर मनुष्यों का जो कर्म है वही 'यम' है। वह सत्य के सभी मार्ग को रोके हुए है। इसीलिए संसार का कोई भी प्राणी सत्य तक पहुँचने में समर्थ नहीं है। क्योंकि ये संसारी जीव कैसे हैं जैसे—सुग्गा व तोता ये सभी मनुष्य सुन्दर तोते की तरह दिखाई देते हैं और कर्मरूपी यम इनको मारने के लिए विषयरूपी विष का चारा खिला रहा है। जिसको खाकर ये जन्म-मरण को प्राप्त हो रहे हैं। स्त्री-पुत्र बहुत सुन्दर लगते हैं। बड़े आकर्षक होते हैं और सम्पत्तिरूपी लक्ष्मी बड़ी चमकीली होती है वही ज्योति स्वरूप माया है। लक्ष्मी ही सारे विश्व पर अधिकार किये हुए है। प्रशासक बनकर सभी पर शासन कर रही है जो माया का असली रूप स्त्री है और रुपया है वह जलती हुई ज्योति है। अज्ञान ही रात्रि है और ये सब जीव पतिंगे के समान है। उसी ज्योति रूपी दीपक 'हाकिमा' में भोगने के लिए सब जाकर गिरते हैं

और जलकर मर जाते हैं। स्त्री का सुख कभी हितकर एवं सुखकर नहीं होता है परन्तु ब्रह्माण्ड के सभी प्राणी मरने के लिए उसी की ओर अग्रसर हो गये हैं और क्या कहिये द्रव्य का ही सारा शासन है। सारा प्रशासन द्रव्य से भिन्न नहीं है। यह जो 'हाकिमा' महामाया है कर्मरूपी बंशी जलरूपी संसार में फेंककर मछली रूपी सारे प्राणियों को पकड़े हुए है और सबको पकड़कर नाना प्रकार के कष्टों को देकर अपने उदर में कर लेती है।

मैं तो कहूँगा कि स्त्री का भोग विलासरूपी कर्म जो बंशी का रूप है। उसमें फँसने से कभी कोई बच नहीं सकता। सद्गुरु कहते हैं कि हे संसार के प्राणियों ! यदि सही में आप लोगों को कष्ट है तो मेरी बात मानो। और विश्वास करो। यदि मेरी बात मानते हो तो हाकिमा रूपी भक्षिका का 'अमल' कहिये शासन जो तुम लोगों पर है उसको मैं समाप्त कर दूंगा और तुम लोगों को संसार से जन्म-मरण रूपी भवसागर से पार कर दूंगा। मैं कबीर कहता हूँ तुम्हें आत्मज्ञान देकर स्वरूप की प्राप्ति कराकर सच्चे सद्गुरु की भक्ति कराकर भय से मुक्त कर दूंगा और तुमको 'टकसार' जो सबका केन्द्र विन्दु है। जिससे सब उत्पन्न हुए हैं जो सबका आदि है उस परमतत्त्व को परीक्षण करके दिखा दूंगा अर्थात् प्राप्त करा दूंगा और सदा सर्वदा के लिए मुक्त हो जाओगे।

# सबद ११५

## जीव मूल प्रकरण

सन्तो ऐसी भूल जग माँहीं, जाते जिउ मिथ्या में जाँहीं ॥
पहिले भूले ब्रह्म अखंडित, झाँई आपुहिं मानी।
झाँई में भूलत इच्छा कीन्हीं, इच्छा ते अभिमानी ॥
अभिमानी करता होय बैठे, नाना पन्थ चलाया।
वोहि भूल मैं सभ जग भूला, भूल का मरम न पाया ॥

**लख चउरासी भूल ते कहिये, भूलते जग बिटमाया।**
**जो है सनातन सोई भूला, अब सो भूलहिं खाया॥**
**भूल मिटै गुरु मिलै पारखी, पारख देहि लखाई।**
**कहैं कबीर भूल की बोखद, पारख सभकी भाई॥**

**शब्दार्थ**—भूल–भ्रान्ति। जग–जगत में। जाते–जिससे। मिथ्या–असत्य में। जाँहीं–जाते हैं। पहिले–प्रथम। भूले–संसार के लोग। झाँई–प्रतिविम्ब, परछाँहीं, कृत्रिम। भूलत–भूल में ही। इच्छा–कामना। अभिमानी–अहंकारी। नाना–अनेक। पंथ–सम्प्रदाय व धर्म। वोहि–उसी में। भूल–भ्रम में। मरम–मर्म, रहस्य। बिटमाया–रचना, प्रसार। सनातन-जो अनादि काल से चला आ रहा है जीव। मिटै–समाप्त। पारखी-परीक्षक, ज्ञानी, विवेकी। बोखद–औषध। पारख–ज्ञान।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि सत्य शब्द के ज्ञान से ही बच सकते हो जो सबका केन्द्र बिन्दु है क्योंकि उसके बिना सारा संसार भ्रम में पड़ा हुआ है और भटक-भटक करके ठोकरें खा रहा है और भूलने का कारण भी बता दिया गया है कि श्री लक्ष्मी जी का दोनों रूप है। एक स्त्री रूप दूसरा द्रव्यरूप इसी को लक्ष्य लेकर कहा जा रहा है कि सारा संसार उसी में निमग्न है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु साहब सन्तों को सम्बोधित करके कह रहे हैं कि हे सन्तजन! इस जगत में किस प्रकार की भूल है उसको आप लोग ध्यान पूर्वक सुनें! जिसके कारण संसार के मनुष्यों को असत्य की प्राप्ति हो रही है अर्थात् कुसंस्कारों के कारण पहले भी सत्य से वंचित थे और आज भी सत्संग नहीं कर रहे हैं। इसलिए पुनः उसी पुत्र कलत्र धन-धान्य में जो मिथ्या है जो परिवर्तनशील है उसी में जा रहे हैं। ये संसारी मनुष्य सर्वप्रथम उस पराशक्ति अखंडित भूमा को ही भूल गये। क्योंकि भूले सप्तमी में बहुवचन है और ब्रह्म एक है और जीव बहुत हैं क्योंकि ब्रह्म अखंडित एकवचन है और पहले में भी सप्तमी है जिसका अर्थ होगा। सर्वप्रथम अखंडित ब्रह्म

को ही लोग भूल गये यह जीव शुद्ध स्वरूपचिति रूपा जो भूमा था उसको भूलकर कृत्रिम जो उसका बनाया हुआ जगत है। उसी में अपने आप भूल गया। अर्थात् इस प्रतिबिम्ब जगत की मान्यता कर लिया है कि यह जगत ही सत्य है। क्योंकि प्रत्यक्ष सुख जगत से ही होता है। पहले जगत दिखाई देता है इसलिये लोगों के मन में जगत का बोध हो जाता है। जब ये संसारी प्राणी झाँई में ही भूल गये। प्रतिबिम्ब को ही सत्य मान लिये तो उसी में पुनः संसार की प्राप्ति की इच्छा की कि हे भगवान ! पुनः मुझे धन्य-धान से युक्त कर संसार में ही भेजियेगा। यही इच्छा की और 'इच्छाते' कहिये जब इच्छा की पूर्ति हो गयी संसार की सब वस्तुएँ उपलब्ध हो गयीं तो स्वाभाविक है कि अभिमान में चूर्ण हो गया। जब अभिमानरूपी भूत मनुष्यों के ऊपर चढ़ा तो सर्वेसर्वा सभी का कर्ता-धर्ता अपने आप बन गया गीता के अनुसार—

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥४॥
(श्रीमद्भा० गीता अ० १६/४)

ये आसुरी प्रवृत्ति वाले संसार में सर्वे-सर्वा बन गये। अपने दर्प एवं अभिमान में जो नहीं करने का वह सब करने लगे। जब समझ गये कि हमही सब कुछ हैं तो अनेक पंथों को चलाये। पूजाने खाने के लिए अनेक मनमाना ग्रंथ और सम्प्रदाय बनाये। जब अगुवा ही आसुरी स्वभाव वाला हो गया तो उसके पीछे और उसी भूल में संसार के सभी मनुष्य भूल गये। भूल का व भ्रम का रहस्य किसी के समझ में नहीं आया। तत्पश्चात् चौरासी लाख योनियाँ भी उसी में भ्रमित हो गयीं। जो कर्म अज्ञान के कारण एवं भूल के कारण हुए तथा अज्ञान के कारण जगत का निर्माण हुआ।

अब कहते हैं कि जो सनातन यह जीव है वही भूला यहाँ पर सनातन जीव वाचक है। संसार की अन्य वस्तुओं की अपेक्षा जीव सनातन है

वही भूल गया। इसलिए अब उसको भूल खा रही है। इस जीव की भूल तभी दूर हो सकती है। जब इसको आत्मविद् गुरु मिल जाय। पारख कहिये आत्म ज्ञान दिखा दे अर्थात् आत्म ज्ञान की प्राप्ति करा दे।

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि इस भूल-भ्रान्ति की औषध व उपाय केवल ज्ञान ही है। हे भाई ! जब तक भूमा का ज्ञान तुझे नहीं होगा जब तक तेरा द्वैत भाव नहीं मिटेगा। तब तक, तूं भूल-भ्रम में फँसा रहेगा और स्त्री-पुत्र धन रूपी जगत का निर्माण करते रहोगे इसलिए गुरु, गोबिन्द एवं सन्तों की शरण में जाकर भूल को मिटाओ तभी तेरा कल्याण होगा।

## सबद प्रकरण समाप्ति पर मंगल

**छन्द** :—समाप्त शब्द सागरं, अनेक ज्ञान नागरं।
पढ़े लहे सुमोद हो, मिटे तभी कुबोध हो ॥
कबीर देव की दया, गया सुभेद भव मया।
न शेष दोष एक भी, सभी अविद्या जन्य भी ॥ १ ॥

ॐ सत्य कबीराय नमः

**तोटक छन्द**

ज्ञान महान सुजान भना, अब और नहीं जगमें रचना।
शुभ ज्ञान कहा चौंतीसन में, सब बोध लहा पैंतीसन में ॥
सु सुरम्य सुपाट सु डाट दिया, जमराज नहीं अब पास लिया।
जन 'गंग' कहे मन लाइ भना, नहिं रोग न दोष उदार मना ॥
सु कबीर वही कृपाल हरो, सब संशय शोकहिं दूर करी।
तव वन्दन मोर निरन्तर है, गुरुदेव सदा मम अन्तर है ॥
अब बारहिं बार परो चरणं, गुरुदेव कबीर हरो विघ्नं।
हम दास तुम्हारा उद्धार करो, शुभ अर्थं मुझे अब दान करो ॥

# ग्यान चौंतीसा

## स्पर्व्यंञ्जनार्थ आत्म प्रकरण

**ओंकार आदि जो जानै, लिखिकै मेटै ताहि सो मानै।**
**ओंकार कहैं सभ कोई, जिन यह लखा सो बिरला होई ॥**

**शब्दार्थ**—ओंकार–ईश्वर का नाम। आदि–जो सबका आदि है। जानै–पहचाने। लिखिकै–संसार को चित्रित कर अर्थात् निर्माण कर। मेटै–समाप्त करे। ताहि–उसी को। मानै–मानना चाहिए। बिरला–कोई-कोई। जिन–जो। लखा–देखा, साक्षात्कार किया।

**सम्बन्ध**—प्रथम शब्द प्रकरण समाप्त हुआ, दूसरा शब्द प्रकरण गुरु और हरि की कृपा से प्रारम्भ किया जा रहा है। अब 'द्वितीय शब्द प्रकरण के अन्त में बहुत अच्छी बात कही गयी है और कहा गया है कि मनुष्य संसार में भूल गया है जो उसका पारमार्थिक आत्म स्वरूप है। सर्वप्रथम उसी को भूलकर मायिक प्रपंच में अनुरक्त हो गया है।

फिर शब्दान्त में कहा गया है कि उक्त भूलें मिट सकती हैं। जबकि आत्मविद् या आत्मवेत्ता सद्गुरु मिल जाय। और नीचे 'ज्ञान चौंतीसा' जो ज्ञान को देने वाला है। उसमें सर्वप्रथम उपासना की ओर आकृष्ट

किया जा रहा है और कहा जा रहा है कि जब तक प्रभु की उपासना नहीं होगी तब तक न भूल मिटेगी न वृत्ति संसार से उपराम होगी न अपने को पहचान पायेगा।

**मूलार्थ**—उपदेशक वा गुरु जब मनुष्य का हित सोचता है तो पहले हित मार्ग का अन्वेषण करता है। जब वह हित मार्ग पा जाता है अर्थात् उसे जब सत्यानुभूति हो जाती है और जान जाता है कि मानव का कल्याण इसी में होगा। इसी प्रकार से सद्गुरु कबीर जो सत्यान्वेषी थे। उन्होंने धर्म और आध्यात्म के सभी पहलुओं पर अन्तर दृष्टि डाली और सभी की ओर ध्यान देकर अन्वेषण किया। उन्होंने 'योग मार्ग', 'उपासना मार्ग' सबको देखने के बाद अनुभव किया कि जीव का हित सर्वप्रथम साधन एवं उपासना से होगा। जिसके लिए उन्होंने प्रभु के दो नामों को जपने की विधि की। प्रथम में अर्थात् ग्रन्थ के आरम्भ में राम नाम को जानने की बात बताई और कहा कि बिना राम नाम के जाने बगैर सारा संसार डूब मरा। राम नाम जपने का फल श्रुति यह बताई कि जो राम नाम को जपता है उसके लिए यह अथाह और अपार भवसागर 'गोखुर वच्छ विस्तार, वाला हो जाता है अर्थात् गाय के सद्यः जन्मे बछड़े के खुर रखने से जितना बड़ा गढ्ढा होता है जो लाँघने में सबके लिए सुलभ है। उसी प्रकार से राम नाम के जपने से वा राम नाम की प्राप्ति से यह मानव तन का जीव सहज में ही भवसागर तर जायेगा। अर्थात् राम नाम के जपने से भवसागर बहुत छोटा हो जाता है। जिसके लिए जापक को भवसागर पार होने के लिए श्रम नहीं उठाना पड़ता है।

अब ग्रंथ के मध्य में सद्गुरु कबीर ओंकार की विधि करते हैं और ओम् जपने का निर्देश देते हैं। उनका तात्पर्य यह है कि इन दो नामों में से किसी एक को जपना सर्वश्रेष्ठ है। हला कुछ लोग ओंकार का महत्व अधिक देते हैं। उनके अनेक तर्क हैं। उस विवेचन मे मैं न जाकर अब मूल स्वरूप में आ रहा हूँ।

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि जो सबका आदि है, जो सबसे पहले हुआ था। उस ओंकार को जानो और उसका जप करो चाहे अहंग्रह उपासना के द्वारा जपो चाहे वाचिक जप करो, चाहे मानसिक जप करो किसी भी प्रकार से ओंकार को जानो क्योंकि ओंकार में बड़ी शक्ति है। शास्त्रों में यहाँ तक कहा गया है कि जो रास्ते में ओम्-ओम् जपते जाता

है तो उसके सारे विघ्न दूर से ही भाग जाते हैं और उसका सब कुछ मंगलमय हो जाता है इसलिए ओंकार को जपने के लिए कहा गया है।

ओंकार वह चीज है जो इस विश्व को चित्रित करता है, लिखता है अर्थात् निर्माण करता है। अखिल ब्रह्माण्ड की रचना करता है। यावत् भूत भौतिक सृष्टि सब ओंकार के ही द्वारा उद्‌भूत हुई है और वह ओंकार व्यापक तत्त्व है, पुनः प्रलयकाल में इस सृष्टि को 'मेटै' कहिये समाप्त कर देता है। बनाने और बिगाड़ने की सामर्थ्य जिस ओंकार में है उसी को मानना चाहिए अर्थात् वही मान्य होना चाहिए। ऐसे सद्‌गुरु कहते हैं कि ओंकार तो सब कोई कहते हैं, उनका कहना यह है कि ओंकार कहने से अधिक लाभ जो उसका साक्षात्कार कर लिया है। जो ओम् में एकाकार हो गया है, जो अभिन्न हो गया है वह कोई विरला ही मनुष्य है। क्योंकि महर्षि पतंजलि कहते हैं कि—'तस्य वाचकः प्रणवः। तज्जपस्तदर्थं भावनम्।' महर्षि कहते हैं कि परमेश्वर का वाचक प्रणव-ओंकार है उसका जप करना चाहिए और अर्थ की भावना भी करनी चाहिए अर्थात् जापक को ओम् के तीनों अक्षरों के जो अर्थ हैं और अपने स्व स्वरूप में एकत्त्व की भावना से चिन्तन करना चाहिए क्योंकि 'उपनिषद्' में उसी को—ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म अर्थात् यह एक अक्षर वाला जो ओम् है वह ब्रह्म है। वही सब कुछ है। यावत् चराचर जो सृष्टि है सब उसी से प्रतिभासित हो रही है।

कुछ लोग तर्क करते हैं कि जब सारी भूत-भौतिक ब्रह्माण्डीय सृष्टि ओम् से भिन्न नहीं है तो उसके जपने से लाभ क्या होगा ? फिर वह जपने वाला व ओंकार का उपासक जड़ बन जायेगा और बार-बार जन्मते-मरते रहेगा क्योंकि ओंकार ही जगत स्वरूप भी बना है परन्तु इन जड़मतियों को यत्किंचित् ज्ञान नहीं है कि भावना के अनुसार उपासना होती है। ओंकार के भी दो स्वरूप हैं। प्रथम तो सत्-चित्-आनन्द उसका स्वरूप है। दूसरा 'विवर्तवाद' उसका स्वरूप अखिल ब्रह्माण्ड है तो यह निश्चित है कि हम जिस स्वरूप की उपासना करेंगे उसकी प्राप्ति होगी। जब हम विवर्तित स्वरूप की उपासना करेंगे। तो अवश्य जड़-चेतन होंगे परन्तु जब हम उसके प्रथम स्वरूप सत्-चित् आनन्दघन की उपासना करेंगे तो हम उसी के रूप में हो जायेंगे। जब हम उसको प्राप्त हो जायेंगे तो फिर प्रश्न ही नहीं उठता है कि हम जन्म-मरण को ग्रहण करेंगे। इसलिए सद्‌गुरु कबीर की वाणी को सूक्ष्म बुद्धि के

साथ विवेचन करना चाहिए और उस विवेचना के अनुसार व्यवहार में उतारना चाहिए। जैसे अन्य वस्तु का अन्य रूप से ध्यान, चिन्तन किया जाता है जैसे शालिग्राम का ध्यान विष्णु के रूप में करते हैं। इसको प्रतीक ध्यान या उपासना कहते हैं। उस ईश्वर का वाचक प्रणव ओंकार है अर्थात् ओम् यह परमतत्त्व का अति उत्तम नाम है। केवल इस एक नाम लेने से परमेश्वर के सभी नामों और गुणों का ग्रहण हो जाता है। अ उ म यह तीन अक्षर मिलकर ओम् होता है। अकार से तात्पर्य विराट वैश्वानर व अग्नि, विष्णु इत्यादि अर्थ का वाचक है उकार से हिरण्यगर्भ, शंकर, तैजस् नामों का ग्रहण होता है और मकार से प्रभु के प्राज्ञ, प्रकृति आदि नामों का ग्रहण होता है। इसका तात्पर्य यह है कि ईश्वर विराट् है अर्थात् विविध प्रकार के जगत में वही एक तत्त्व शोभित और प्रकाशित है। अग्नि है अर्थात् वेद-शास्त्र ज्ञानवानों से सत्कार किया गया व पूजित है। विष्णु है अर्थात् सम्पूर्ण आकाश से पृथ्वी पर्यन्त भूतों में व्यापक है। 'हिरण्यगर्भ' अर्थात् सम्पूर्ण हिरण्य नाम तेजवान् पदार्थ सूर्य पर्यन्त जिसके गर्भ में वा अन्तर्गत प्राप्त हैं। ऐसा हिरण्यगर्भ ईश्वर है।

शंकर है अर्थात् कल्याण और आनन्द को करने वाला है। तैजस् है अर्थात् तेज स्वरूप है, प्रकाश रूप है। ईश्वर है अर्थात् सम्पूर्ण ऐश्वर्य को प्राप्त है, प्राज्ञ है अर्थात् ईश्वर अति उत्कृष्ट ज्ञान रूप है। प्रकृति है अर्थात् प्रकर्ष करके सब जगत का उत्पन्न करने वाला काल है। यह सब प्रशंसा वा स्तुति वाचक नाम और अर्थ का ग्रहण मात्र ओम् शब्द से होता है। यह संक्षेप में अर्थ है। इससे अधिक 'प्रणव' का अर्थ है। इसलिए ईश्वर के अनेक नामों में 'प्रणव' नाम सभी से उत्तम माना गया है। कुछ प्रणव का जप व अर्थ जो ईश्वर है उसका भाव है कि अर्थात् प्रणव का जप करते हुए ईश्वर की भावना करते हुए योगी का चित्त एकाग्रता को प्राप्त हो जाता है। एकाग्रता व उसका जप अभ्यास में प्राप्त चित्त में परमात्मा प्रकाशित होता है यह ऋषियों की कथित वाणी का आदेश है।

**टिप्पणी–ओंकार–ओम्**—ओंकार का नामांतर प्रणव है यह ईश्वर का वाचक है। ईश्वर के साथ ओंकार का वाच्य–वाचक भाव सम्बन्ध नित्य है, सांकेतिक नहीं संकेत नित्य या स्वाभाविक सम्बन्ध को प्रकट करता है। सृष्टि के आदि में सर्वप्रथम ओंकार रूपी प्रणव का ही स्फुरण

होता है। तदनंतर सात करोड़ मंत्रों का आविर्भाव होता है। इन मंत्रों के वाच्य आत्मा की देवता रूप से प्रसिद्धि है। ये देवता माया के ऊपर विद्यमान रहकर मायिक सृष्टि का नियंत्रण करते हैं। इनमें से आधे शुद्ध माया जगत में कार्य करते हैं और शेष आधे अशुद्ध या मलिन मायिक जगत में।

ब्रह्म प्राप्ति के लिये निर्दिष्ट विभिन्न साधनों में प्रणवोपासना मुख्य हैं। मुण्डकोपनिषद् में लिखा है—

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥

कठोपनिषद् में यह भी लिखा है कि आत्मा को अधर अरणि और ओंकार को उत्तर अरणि बनाकर मंथन रूप अभ्यास करने से दिव्य ज्ञान रूप ज्योति का आविर्भाव होता है। उसके आलोक से निगूढ आत्म तत्त्व का साक्षात्कार होता है। श्रीमद्‌भगवद् गीता में भी ओंकार को एकाक्षर ब्रह्म कहा है। मांडूक्योपनिषद् में भूत, भवत् या वर्तमान और भविष्य त्रिकाल–ओंकारात्मक ही कहा गया है। यहाँ त्रिकाल से अतीत तत्त्व भी ओंकार ही कहा गया है। आत्मा अक्षर की दृष्टि से ओंकार है और मात्रा की दृष्टि से अ उ म रूप है। चतुर्थ पाद में मात्रा नहीं है एवं वह व्यवहार से अतीत तथा प्रपंच शून्य अद्वैत है। इसका अभिप्राय यह है कि ओंकारात्मक शब्द ब्रह्म और उससे अतीत परब्रह्म दोनों अभिन्न तत्त्व हैं।

वैदिक वाङ्मय के सदृश्य धर्मशास्त्र पुराण तथा आगम साहित्य में भी ओंकार की महिमा सर्वत्र पायी जाती है। इसी प्रकार बौद्ध तथा जैन सम्प्रदाय में भी सर्वत्र ओंकार के प्रति श्रद्धा की अभिव्यक्ति देखी जाती है। 'प्रणव' शब्द का अर्थ है 'प्रकर्षेण नूयतेस्तूयते अनेन इति, नौति स्तौति वा प्रणवः।'' प्रणव का बोंध कराने के लिए उसका विश्लेषण आवश्यक है यहाँ प्रसिद्ध आगमों की प्रक्रिया के अनुसार विश्लेषण क्रिया का कुछ दिग्दर्शन कराया जाता है। ओंकार के अवयवों का नाम है अ उ म विन्दु, अर्द्धचन्द्र रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिनी या महाशून्य, समना तथा उन्मना इनमें से अकार, उकार और मकार ये तीन सृष्टि, स्थिति और संहार के सम्पादक ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र के वाचक हैं। प्रकारान्तर से ये जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तथा स्थूल, सूक्ष्म और कारण अवस्थाओं के भी वाचक हैं। विन्दु तुरीय दशा का द्योतक है। प्लुत तथा दीर्घ मात्राओं को स्थिति काल क्रमशः संक्षिप्त होकर अन्त में एक मात्रा

में पर्यवसित हो जाता है। यह ह्रस्व का उच्चारण काल माना जाता है। इसी एक मात्रा पर समग्र विश्व प्रतिष्ठित है। विक्षिप्त भूमि से एकाग्र भूमि में पहुँचने पर 'प्रणव' की इसी एक मात्रा में स्थिति होती है। एकाग्र से निरोध अवस्था में जाने के लिए इस एक मात्रा को भी भेदकर अर्द्धमात्रा में प्रविष्ट हुआ जाता है। तदुपरान्त क्रमशः सूक्ष्म और सूक्ष्मतर मात्राओं का भेद करना पड़ता है। 'विन्दु' अर्द्धमात्रा है। उसके अनन्तर प्रत्येक स्तर में मात्राओं का विभाग है। 'समना' भूमि में जाने के बाद मात्राएँ इतनी सूक्ष्म हो जाती हैं कि किसी योगी अथवा योगीश्वरों के लिए उसके आगे बढ़ना सम्भव नहीं होता। अर्थात् वहाँ की मात्रा वास्तव में अविभाज्य हो जाती है। आचार्यों का उपदेश है कि इसी स्थान में मात्राओं को समर्पित कर अमात्र भूमि में प्रवेश करना चाहिए। इसका थोड़ा सा आभास 'माण्डूक्य उपनिषद्' में मिलता है।

'विन्दु' मन का ही रूप है। मात्रा विभाग के साथ-साथ मन अधिकाधिक सूक्ष्म हो जाता है। अमात्र भूमि में मन, काल, कलना, देवता और प्रपंच ये कुछ भी नहीं रहते। इसी को 'उन्मुनि स्थिति' कहते हैं। वहाँ स्वयं प्रकाश ब्रह्म निरन्तर प्रकाशमान रहता है।

योगी सम्प्रदाय में 'स्वच्छन्द तन्त्र' के अनुसार ओंकार साधना का एक क्रम प्रचलित है। उसके अनुसार अ समग्र स्थूल जगत का द्योतक है और उ उसके ऊपर स्थित कारण जगत का वाचक है मकार। कारण सलिल में विधृत स्थूल आदि तीन जगतों के प्रतीक अ उ और म हैं। ऊर्ध्वगति के प्रभाव से शब्द मात्राओं का मकार में लय हो जाता है। तदन्तर मात्रातीत की ओर गति होती है। म पर्यन्त गति को 'अनुस्वार' गति कहते हैं अनुस्वार की प्रतिष्ठा अर्द्धमात्रा में विसर्ग रूप में होती है। इतना होने पर मात्रातीत में जाने के लिए द्वार खुल जाता है। वस्तुतः अमात्र की गति विन्दु से ही प्रारम्भ हो जाती है। 'तन्त्र शास्त्र' में इस प्रकार का मात्रा विभाग नौ नादों की 'सूक्ष्म योग' भूमियों के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रसंग में यह स्मरणीय है कि विन्दु अशेष वेद्यों के अभेद ज्ञान का ही नाम है और नाद अशेष वाचकों के विमर्शन का नाम है। इसका तात्पर्य यह है कि अ उ और म 'प्रणव' के इन तीन अवयवों का अतिक्रमण करने पर अर्थ तत्त्व का अवश्य ही भेद हो जाता है। उसका कारण यह है कि यहाँ योगी को सब पदार्थों के ज्ञान के लिए सर्वज्ञत्त्व प्राप्त हो जाता है एवं उसके बाद विन्दु भेद करने पर वह उस ज्ञान का भी अतिक्रमण कर लेता है। अर्थ और ज्ञान इन दोनों के ऊपर केवल

नाद ही अवशिष्ट रहता है एवं नाद की नादांत तक की गति में नाद का भी भेद हो जाता है। उस समय केवल कला या शक्ति ही विद्यमान रहती है। जहाँ शक्ति या चित् शक्ति प्राप्त हो गयी वहाँ ब्रह्म का प्रकाशमान होना स्वतः ही सिद्ध है। इस प्रकार प्रणव के सूक्ष्म उच्चारण द्वारा विश्व का भेद होने पर विश्वातीत तक सत्ता की प्राप्ति हो जाती है। 'स्वच्छन्द तन्त्र' में यह दिखाया गया है कि ऊर्ध्वगति में किस प्रकार कारणों का परित्याग होते-होते अखण्ड पूर्णतत्त्व में स्थित हो जाती है। 'अ' ब्रह्मा का वाचक है, उच्चारण द्वारा हृदय में उसका त्याग होता है। 'उ' विष्णु का वाचक है। उसका त्याग कण्ठ में होता है। तथा 'म' रुद्र का वाचक है और उसका त्याग तालु मध्य में होता है। इसी प्रणाली से ब्रह्मग्रंथि, विष्णुग्रंथि तथा रुद्रग्रंथि का छेदन हो जाता है। तदनंतर विन्दु है जो स्वयं ईश्वर रूप है अर्थात् विन्दु से क्रमशः ऊपर की ओर वाच्य, वाचक का भेद नहीं रहता। 'भ्रू' मध्य में विन्दु का त्याग होता है। 'नाद' सदा शिव रूपी है। ललाट से मूर्धा तक के स्थान में उसका त्याग करना पड़ता है। यहाँ तक का अनुभव स्थूल है। इसके आगे शक्ति का व्यापिनी तथा 'समना' भूमियों में सूक्ष्म अनुभव होने लगता है। इस भूमि के वाच्य शिव हैं। जो सदा शिव से ऊपर तथा परमशिव से नीचे रहते हैं। मूर्धा के ऊपर स्पर्शानुभूति के अनन्तर शक्ति का भी त्याग हो जाता है एवं उसके ऊपर व्यापिनी का भी त्याग हो जाता है। उस समय केवल मनन मात्र रूप का अनुभव होता है। यह 'समना भूमि' का परिचय है। इसके बाद ही मनन का त्याग हो जाता है। इसके उपरान्त कुछ समय तक मन के अतीत विशुद्ध आत्मस्वरूप की झलक दीख पड़ती है। इसके अनन्तर ही परमानुग्रह प्राप्त योगी का उन्मना शक्ति में प्रवेश होता है। इसी को परम पद या परम शिव की प्राप्ति समझना चाहिये और इसी को एक प्रकार से उन्मना का त्याग भी माना जा सकता है। इस प्रकार ब्रह्मा से शिव पर्यन्त छः कारणों का उल्लंघन हो जाने पर अखण्ड परिपूर्ण सत्ता में स्थिति हो जाती है।

(हिन्दी विश्वकोश पृ० २९० ना० प्र० स०, वाराणसी)

सृष्टि रचने के पहले सृष्टि उत्पत्ति के निमित्त जब ईश्वर में इच्छा उठती है तो एक बड़ा घोर शब्द अर्थ रहित गुंज के साथ निकलता है जैसे इंजन में होता है और वह बड़ी देर तक रहता है। उस शब्द को सुनकर जो 'जीवन मुक्त' ऋषि होते हैं वे ओम् अथवा अ उ म् में उसका आरोप कर लेते हैं और जब वह शब्द फट जाता है तब उसमें

से आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तत्त्व सूक्ष्म रूप से निकल आते हैं, फिर वह शब्द शान्त होकर लुप्त हो जाता है। इन आकाशादि पाँच तत्त्वों द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति होती है। इसलिए जो कुछ सृष्टि है, सब ओंकार रूप ही है। इस कारण ओंकार की उपासना अति श्रेष्ठ है।

जब ईश्वर ने जीवों के कर्म फल भोगार्थ रचने की इक्षण इच्छा की तो प्रथम शब्द ध्वन्यात्मक ओम् ऐसा निकला उसी से उसके पश्चात् वर्णनात्मक शब्द—'एकोऽहं बहुस्याम्' उत्पन्न हुआ। अर्थात् एक अद्वितीय ओंकार रूप ब्रह्म में मैं बहुत प्रकार से होऊँ यह इच्छा होते ही चराचर सृष्टि उत्पन्न हो गयी। इसलिए जितनी सृष्टि हैं चाहे प्रकट भाव से हो चाहे अप्रकट भाव से हो वह सब ब्रह्म ही है अथवा ओंकार रूप है। वेदों में जो ऋचा के पहले या पीछे ओम् का प्रयोग किया जाता है वह यह बताता है कि जो कुछ ओम् शब्द के पश्चात् कहा जायेगा या पीछे कहा गया है वह सब ओंकार रूप ही है। उससे पृथक कोई वस्तु नहीं है। ओंकार में तीन अक्षर हैं। 'अ + उ + म्' अ का अर्थ है जाग्रत, अभिमानी देवता, विश्व, उ का वाच्य है स्वप्न का अभिमानी, देवता, तैजस् तथा म से बोध्य है 'सुषुप्ति' का अभिमानी देवता प्राज्ञ। तात्पर्य यह है कि तीनों अवस्थाओं के जो पृथक-पृथक अभिमानी देवता हैं वे ओंकार रूप ही हैं। माया विशिष्ट ब्रह्म, ईश्वर, हिरण्यगर्भ और विराट् ये भी ओंकार रूप ही हैं। भाव यह है कि ईश्वर से लेकर तृण पर्यन्त सब ओंकार रूप ही हैं।

"कल्याण उपासना अंक" (वर्ष–४२० पृष्ठ–१८२ )

'ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम् इति (माण्डूक्य ॐ मन्त्र–१)

'ओम यह अक्षर ही यह सारा जगत है।'

**कका कंवल किरन मो पावै, ससि बिगसित संपुट नहिं आवै।**
**तहां कुसुम रंग जो पावै, औगह गहि के गगन रहावै॥**

**शब्दार्थ**—कका–ब्रह्म, आत्मा, प्रकाश। कंवल–कमल जो हृदय में रहता है। किरन–आत्मा का प्रकाश, सूर्य की किरणें। मो–में, मध्य में। पावै–प्राप्त करे। ससि–शशि चन्द्रमा, सोम, इडा नाड़ी,। बिगसित–प्रकाशित, खिला हुआ। संपुट–बिना खिली हुई कली, गर्व, गर्भवास। तहाँ–वहाँ। कुसुम–गुणाभाव, बर्रै का पुष्प, केसर, कुमकुम। रंग–प्रकार। औगह–अथाह।

**सम्बन्ध**—ओंकार के विषय में कहा गया है कि वह अनन्त सत्ता वाला

है तथा प्रकारान्तर से अपनी आत्मा भी है। उसकी प्राप्ति कैसे हो सकेगी ? अब सद्गुरु कबीर ज्ञान चौंतीसा व्यंजन से प्रारम्भ करते हैं।

**मूलार्थ**—का जो ब्रह्म का स्वरूप है। वही चेतन है आत्मा है वह हृदय के अन्दर जो कमल विकसित है उसी में विराजमान है। किरण कहिए जो उसका प्रकाश है। उस प्रकाश में उसका दर्शन होता है। अर्थात् हृदय रूपी कमल में आत्मा रूपी सूर्य जो प्रकाशमान है जहाँ पर उसकी किरणें चतुर्दिक अपनी छटा को बिखेरे हुए हैं। उसी दहराकाश में उसकी प्राप्ति होगी। जब उसकी प्राप्ति हो जायेगी तब शशि कहिये जो मन से उत्पन्न हुआ है जो सौम्य प्रकाश लिए हुए है ? आत्मा की प्राप्ति होने पर पुनः सम्पुट कहिये गर्भ में आने वाला नहीं है। यदि शशि शब्द त्याग कर मन अर्थ लिया जाय तो अर्थ होगा कि आत्मा की प्राप्ति होने पर वह मन पुनः गर्भ में नहीं जायेगा। वह जन्म-मरण से परे हो जायेगा। वह आत्मा कैसा है ? कुसुम रंग वाला है। बहुत माधुर्य लिए हुए है। जिसको हृदय कमल में प्राप्त किया जा सकता है। वहाँ पर जहाँ आत्मा का निवास है वह स्थान बहुत अथाह है। आत्मा रूपी जल से भरा हुआ है। जो उस कुसुम रंग वाले आत्मा में निवास करता है। उस अथाह सागर को ग्रहण करके गगन कहिए सहस्रार में अपना निवास स्थान बना लेता है। उसकी सुषुम्ना नाड़ी सदा विकसित रहती है। उसके द्वार खुले होते हैं। जिसके द्वारा चित्त सहस्रार में जाकर लय हो जाता है। इसकी तुलना छान्दोग्य के निम्न मंत्र से की जा सकती है। ॐअथयदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरेदहरंपुण्डरीकं वेश्म—तात्पर्य यह है कि हृदयरूपी दहराकाश में एक (वेश्म है) घर है, जिसमें कमल खिला हुआ है उस कमल में एक ज्योति जल रही है वही जो ब्रह्म जिसको ज्योति कहते हैं। उसी को चेतन ज्योति भी कहते हैं। उसी की प्राप्ति के लिए ज्ञान, ध्यान, जप, तप, भजन-भाव किये जाते हैं।

**टिप्पणी**—"कः प्रजापतिरूद्दिष्टः कोऽर्क वाप्वनलेषु च।
कश्चात्मनि मयूरे च कः प्रकाश उदाहृतः॥"

(इति एकाक्षर कोशः)

अर्थात्—प्रजापति, सूर्य, वायु, अग्नि, आत्मा, मयूर, प्रकाश पुल्लिग क शब्द है।

'देश बन्धश्चितस्य धारणा' अर्थात् चित्त को किसी देश में बांधना धारणा है।

**खखा चाहै खोरि मनावै, खसमहिं छांड़ि दोजग को धावै।**
**खसमहिं छांड़ि छिमा ह्वै रहिये, होय न खीन अछै पद लहिये ॥**

**शब्दार्थ**—खखा–ख का अर्थ स्वर्ग तथा इन्द्रिय है, आकाश भी है। खोरि–दोष। मनावै–निग्रह करे। खसमहिं–आत्मा। छांड़ि–छोड़कर। दोजग–नर्क, संसार के सुखों की ओर। खसमहिं–कार्यब्रह्म, मन, ब्रह्म। छिमा–क्षमा, सहिष्णुता, सहनशीलता, किसी के द्वारा पहुँचाये गये कष्ट सह लेना उससे बदला न लेने की भावना। खीन–उदास। अछै पद–शुद्ध अक्षय पद, स्वस्वरूप।

**मूलार्थ**—ऊपर की पंक्ति में ब्रह्म की प्राप्ति बताकर कहा गया है कि यदि कुशल चाहते हो तो अपनी जानकारी करने की यदि तुझे इच्छा है तो हे इन्द्रिय परायण मनुष्य ! खोरि जो दोष है उसके निवारण के लिए उपाय करो यदि उपरोक्त पद तुझे चाहिए तो इन्द्रियों को रोककर उनकी मलग्राही वृत्ति को सत्संग के द्वारा साफ करो। क्योंकि इन्द्रियाँ सदैव भोग परायण हैं। वे अपने स्वामी को छोड़कर नरक की ओर दौड़ती हैं अर्थात् इन्द्रियों का मुख्य प्रयोजन विषय भोग होता है। वे सदा पतनोन्मुख होती है।

अब यह कहा जा रहा है कि खसम को छोड़कर क्षमा को धारण करो अर्थात् खसम के भरोसे न रहो कि हमारी इन्द्रियों को निग्रह करा देगा क्योंकि खसम स्वयं आकाश के समान व्यापक है वह कर्तृत्व-भोक्तृत्व से परे है इसलिए वह तुम्हारी सहायता इसमें नहीं करेगा स्वस्वरूप की प्राप्ति के लिए तुझे स्वयं विघ्नों को सहने के लिए सहनशील बनना पड़ेगा। किसी भी प्रकार की आपत्ति आने पर जब तुम खिन्न नहीं होंगे अर्थात् शोकान्वित नहीं होगे तभी तुम अक्षय पद जो आत्म पद है। उसकी प्राप्ति कर सकते हो अक्षयपद उसको कहते हैं, जो कभी क्षय नहीं होता है।

**टिप्पणी**—'खमिन्द्रिये खमाकाशे ख स्वर्गेऽपि प्रकीर्तितः।
सामान्ये च तथा शून्ये ख शब्द परिकीर्तितः ॥'

अर्थात्—इन्द्रिय, आकाश, स्वर्ग, सामान्य, शून्य अर्थ के वाचक ख शब्द है।

**गगा गुरु के बचनहिं मान, दोसर सब्द करो नहिं कान।**
**तहां बिहंगम कबहुँ न जाई, औगह गहि के गगन रहाई ॥**

**शब्दार्थ**—ग-गणेश, गाथा, स्तुति, गन्धर्व, शब्द, वाक्य । कान-कर्ण, श्रवण करो । विहंगम-पक्षी, उड़ने वाला, मन । औगह-अथाह, आत्मा, परमतत्त्व । गगन-ब्रह्मरन्ध्र, सहस्रार, आकाश ।

**मूलार्थ**— ग जो है वह गणेश का वाचक है इसलिए ग का कहना है कि अक्षय पद को प्राप्ति के लिए उसके बचन का ही श्रवण, मनन करो । दूसरे अर्थ शब्द जो संसार की ओर प्रेरित करते हैं अर्थात् जो विषय-वासना की ओर प्रेरित करते हैं । उन शब्दों की ओर यत्किंचित भी ध्यान न दो । जब तू दूसरे का शब्द नहीं सुनेगा तब जो तुम्हारा उड़ने वाला मन है जो विषय-वासना पर चोट करता है यह जो सभी सिद्धियों को चाहता है मान बड़ाई चाहता है फिर वह उसको कभी नहीं चाहेगा तब वह बिहंगम रूपी मन हृदयस्थ जो अथाह जलराशि है जिसमें आत्मा का निवास है समाहित होकर ब्रह्मरन्ध्र में समाधिस्थ रहेगा । पुनः उसकी वृत्ति संसार की ओर उन्मुख नहीं होगी ।

**टिप्पणी**—'गो गणेश समुदिष्टो गन्धर्वो गः प्रतिष्ठितः ।
गीतं गा च गाथा स्याद् गौश्च धेनु सरस्वती ।।'

एकाक्षर कोश ।

अर्थात्—गणेश, गन्धर्व, गीत का वाचक ग शब्द और गा शब्द गाथा, गौ शब्द धेनु और सरस्वती के वाचक है ।

**घघा घट विनसे घट होई, घटहीं में घट राखु समोई ।**
**जो घट घटे घटहिं फिरि आवे, घटहिं मा फिर घटहिं समावै ।।**

**शब्दार्थ**—घ-का अधर्म व घण्टा दो अर्थ है । विनसे-विनास । घट-शरीर ।

**मूलार्थ**—जो व्यक्ति अधर्म नहीं करेगा । वह सदा स्थित प्रज्ञ होकर आत्मा में विचरण करेगा परन्तु जो अधर्म की ओर प्रवृत्त होगा तो घट रूपी शरीर नष्ट हो जायेगा और पुनः संस्कार वश दूसरे शरीर को धारण करेगा । इसलिए घट ही में अर्थात् शरीर के अन्दर में ही वृत्ति को समेट कर रखो और जो साधक साधना के द्वारा घटरूपी शरीर में घटे कहिये शरीर में ही पुनः फिर करके मन को घेर कर रखता है तो वह मन जो चारों ओर दौड़ता रहता है पुनः आकर इस शरीर रूपी घट ही में स्थिर हो जायेगा । अन्यत्र जाने की उसकी प्रवृत्ति नहीं रह जायेगी ।

**टिप्पणी**—घा घण्टास्थ समाख्याता घो घनश्च प्रकीर्तितः ।
घो घण्टा हननेऽधर्मे घुर्घोणा घूघ्वनावपि ॥
॥ एकाक्षर कोश ॥

अर्थात् घा घण्टा अर्थ में कहा गया है, घो मेघ व घण्टा बजाने तथा अधर्म अर्थ का वाचक है इत्यादि ।

**ङङा निरखत निसि दिन जाई, निरखत नैन रहे रतनाई ।**
**निमिख एक जउ निरखै पावै, ताहि-निमिख मों नैन छिपावै ॥**

**शब्दार्थ**—ङङा–ङङा का अर्थ भयानक होता है। निरखत–निरीक्षण । रतनाई–चमकाई । निमिख–क्षण, पल ।

**मूलार्थ**—जो भयानक विषय-वासना है उसका परित्याग करके ङङा कहता है कि उस चेतन तत्त्व की ओर ही जो निश दिन निरखते रहता है । अर्थात् साधना परायण योगी की वृत्तियाँ जब आत्मोन्मुख हो जाती हैं तो बाहर से घूमी हुई वृत्ति अन्दर में समाविष्ट होकर प्रतिदिन उसी को देखते रहती हैं। आत्मा को देखते-देखते अर्थात् अनुभव करते-करते उसके जो बाहर भीतर के भाव हैं वे रतन के समान चमकीले हो जाते हैं । जिसके कारण उक्त साधक में दिव्यता आ जाती है ।

सद्‌गुरु कहते हैं कि एक क्षण भी यदि आत्म अनुभव हो जाय तो उसको निरख लो ताहि कहिये वह साधक उसी परम तत्त्व में क्षण-क्षण नयन को छिपाने लगता है । अर्थात् बाहर की वृत्तियाँ अन्तरंग हो जाती हैं और आत्मा अनुभव करने लगती हैं ।

**टिप्पणी**—"ङकारो भैरवः ख्यातो ङाकारो विषय स्पृहा ॥"

अर्थात् 'ङ' वर्ण भैरव ( भयानक ) और 'ङा' विषय की इच्छा का वाचक है ।

**चचा चित्र रचो बड़ भारी, चित्र छोड़ि तैं चेत चित्रकारी ।**
**जिन्ह यह चित्र विचित्र होय खेला, चित्र छोड़ि तैं चेतु चितेला ॥**
**छछा आहि छत्रपति पासा, छकि किन रहहु मेटि सभ आसा ।**
**मैं तोहिं छिन्न-छिन्न समुझावा, खसम छाड़ि कस आपु बंधावा ॥**

**शब्दार्थ**—च–च का अर्थ, चन्द्रमा, सूर्य, चोर । चित्र–फोटो, तस्वीर संसार, शरीर । भारी–गुरुत्व । चित्र–संसार । छोड़ि–त्यागकर । तैं–तुम । चित्रकारी–कलाकारी, निर्माता, बनाने वाला । जिन्ह–जो । खेला–रचा ।

चितेला–चित्रकार। छछा–छ का अर्थ छेदन होता है। आहि–आया। छत्रपति–ब्रह्म, आत्मा। छ–अनुरक्ति, तल्लीनता। किन–क्यों। खसम–आत्मा, परमेश्वर। कस–कैसे।

**मूलार्थ**—च कहिये जिसका देवता चन्द्रमा है और चन्द्रमा का पिता मन है। उसको सबल ब्रह्म भी कहा जा सकता है जिसने संसार रूपी बड़ा भयानक और भारी चित्र को रचा है। नाना प्रकार की सृष्टियों का निर्माण किया है। इक्कीस ब्रह्माण्डों की रचना की है।

सद्गुरु कहते हैं कि इस भयानक दुःखद चित्र रूपी संसार का परित्याग कर तुम उस मूलतत्त्व को चेतो जो मन के अन्दर में छिपा है। जो मनों का मन है। जो नेत्रों का नेत्र है अर्थात् जो तुम्हारे हृदय में बैठा है। उसी की ओर ध्यावो। जो यह संसार रूपी विचित्र चित्र को बनाकर आश्चर्यमय खेल की रचना किया है। तुम उसके इस भयानक और भारी चित्र को छोड़कर उसी को चेतो उसी को खोजो जो चित्रकार है।

छ कहता है कि तुम अज्ञान का कुमार्ग का अवछेदन कर जो तेरे शरीर में छत्रपति बैठा हुआ है। उसी में छकि रहो। क्यों नहीं उसमें अनुरक्त हो रहे हो ?

मैं कबीर कहता हूँ कि सभी आशाओं का परित्याग कर व मेटकर उसी में लीन हो जाओ। मैं तो तुझे क्षण-क्षण समझाया। बहुत प्रकार से उपदेश दिया परन्तु तू मेरी बात को ध्यान में न रखकर खसम को त्यागकर अपने आप संसार के चक्र में बँध गया। संसार को ही सत्य मानने लगा। नाच में तमाशा में अपनी वृत्ति को गंदा कर दिया।

**टिप्पणी**—'चश्चन्द्रमाः समाख्यातो भास्करे तस्करे मतः' इति एकाक्षर कोष अर्थात् च का अर्थ चन्द्रमा, सूर्य और चोर कहा गया है। मन का देवता चन्द्रमा होने से च का अर्थ मान लिया गया है।

"निर्मलं छं समाख्यातं तरले छः प्रकीर्तितः।
छेदके छः समाख्यातो विद्वद्भिः शब्दकोविदैः॥"

इत्येकाक्षर। अर्थात् निर्मल, तरल ( चंचल ) छेदन कर्त्ता अर्थ का वाचक छ शब्द विद्वानों द्वारा कहा गया है

**जजा ई तन जियत न जारो, जौवन जारि जुगति तन पारो।**
**जो कछु जुगुति जान तन जरै, ई घट जोति उजिआरी करै॥**

**झझा अरुझि सरुझि कित जान, अरुझनि हींडत जाय परान।**
**कोटि सुमेर ढूंढि फिरि आवै, जो गढ़ गढ़े गढ़ैया सो पावै ॥**

**शब्दार्थ**—ज–गायक, भोजन, विजय कर्त्ता। जियत–जीवित। न जारो–नष्ट न करो। जौवन–जवानी, जीवन। जारि–तपाकर, साधन कर। पारो–करो, अन्त करो। उजिआरी–प्रकाश। झ–नष्ट, ख, ख, शब्द, नेपथ्य, वायु, अलंकार, शोभा, नाट्यशाला। अरुझि–अरुझाकर। सरुझि–सुरुझाकर, सुधारकर। कित–कहाँ। जान–जाओगे। अरुझनि–अरुझाकर। हींडत–खोजत, जल में माटी मिलाकर मथन करना। परान–प्राण, जीव, भागना। कोटि–करोड़ों। सुमेर–सुमेरुगिरि, मेरुदण्ड, मस्तक, भंवर गुफा, हिमालय। ढूंढि–अन्वेषण। गढ़–शरीर। गढ़ैया–गढ़ में रहने वाला राजा, आत्मा, परमतत्त्व।

**मूलार्थ**—ज का अर्थ विजय कर्ता भी कहा गया है। जिसका आशय है कि इस शरीर के जीते जी विषय भोगों में व घोर उग्र तपों में जलाओ नहीं। हठयोगी मत बनो। तांत्रिक मत बनो। इससे यह तन नष्ट हो जायेगा और तेरे हाथ कुछ नहीं लगेगा। यदि इस यौवन को जलाना ही तुझे है अर्थात् साधना ही करनी है तो युक्ति के साथ तन को साधो। सहजयोग के द्वारा वृत्तियों को रोको। संयम-नियम के द्वारा जो कुछ करोगे तुझे लाभ होगा और जो थौड़ी उक्ति जानकर अर्थात् साधना का सही मार्ग जानकर तू आगे बढ़ोंगे अर्थात् इस तन को जारो व तपाओगे तो उस युक्ति के द्वारा इस घट में ज्योति स्वरूप प्रकाश की प्राप्ति करोंगे। क्योंकि 'झ' कहता है कि तेरे शरीर में अनाहत नाद हो रहा है और बहुत प्रकार की नाट्य कला भी हो रही हैं। अनेक प्रकार की शोभा वाली यह शरीर बाहर की सारी वस्तुओं से अन्दर में परिपूर्ण है। इसलिए 'झ' कहता है कि उस नेपथ्य में मत भूलो। उसमें तुम अरुझाओ मत। तुझे अनेक सिद्धियों के साधना के दौरान दर्शन होंगे परन्तु उन सिद्धियों के जो दस प्रकार के बाजे हैं। ढोल, नगाड़े, मृदंग, पखावज, बंशी, वीणा। पहले तुझे बहुत भरमायेंगे। उनसे तुम सरुझो। अर्थात् रहित होकर कित कहिये कहाँ जाना चाहते हो अर्थात् उन तमाशों में मत जाओ। झ कहता है कि इस संसार में अरुझाकर जीवन को नष्ट मत करो। इसमें ढूढ़ने से या खोजने से तुझे कुछ नहीं मिलेगा। बल्कि तेरा प्राण चला जायेगा। अर्थात् मानव रूपी शरीर नष्ट हो जायेगा। मैं तो कहता हूँ करोड़ों सुमेरु की गुफाओं में कही भी तू ढूढ़-

फिर कर आवोगे परन्तु तुझे कुछ बाहर नहीं मिलेगा। जो कुछ मिलेगा जो कुछ की प्राप्ति होगी तो तेरे शरीर रूपी गढ़ में। गढ़वैया गढ़ में रहने वाला चेतन आत्मा बैठा हुआ है। उसको तुम इसी शरीर में पाओगे। अन्यत्र उसके दर्शन नहीं होंगे।

**टिप्पणी**—जकारो गायने प्रोक्तो जेमने जः प्रकीर्तितः।
जेता जश्च प्रकथितः सूरिभिः शब्द-शासने ॥

इत्येकाक्षर। अर्थात् गायक, भोजन, विजय कर्ता ज शब्द का अर्थ प्रसिद्ध है ऐसा पण्डितों ने शब्द शिक्षा में कहा है।

खो झकारः कथितो नष्टे झश्चोच्यते बुधैः।
झकारश्च तथा वायौ नेपथ्ये समुदाहृतः ॥

**इत्येकाक्षरकोशः**—अर्थात्-ख (शब्द) नष्ट, वायु नेपथ्य अर्थात् अलंकार कृत शोभा नाट्य शाला और देश भेद से झ शब्द के इतने अर्थ विद्वानों ने कहे हैं वृहस्पति, इन्द्र, मिलाप, स्थिति, झंकारादि अर्थ श्रीधर कोश कार ने कहा है।

**इआं निग्रह से करु नेहू, करु निरुवार छाड़ संदेहू।**
**नहिं देखे नहिं भाजिया, परम सयानप येहू ॥**
**जहां न देखि तहां आपु भजाऊँ, जहाँ नहि तहाँ तन मन लाऊ।**
**जहां नहीं तहां सभ कछु जानी, जहां है तहां ले पहिचानी ॥**

**शब्दार्थ**—इआं–ञञा का अर्थ हुआ वर्ण गायन, झर–झर, शयन। निग्रह–निवारण, रोको। नेहू–प्रेम। निरुवार–अच्छा को अलग कर, बूरा को अलग कर, निर्णय, विवेक। छाड़–त्याग। संदेहू–भ्रम। भाजिया–भागा, भाजा। परम–श्रेष्ठ। सयानप–सयानापन। येहू–यही। भजाऊँ–प्राप्त, भजो।

**मूलार्थ**—ञ कहता है कि संसार की गीत मत गाओ। मन सहित पंच ज्ञान इन्द्रियों के विषयों का निग्रह करो और उसी निग्रह से स्नेह करो। अर्थात् रुचि रखो। उसी में तेरा कल्याण है। यदि तू कल्याणकारी है तो जो सत्य में असत्य मिला हुआ है। अर्थात् जो तुम्हारी देह में आत्म बुद्धि हो गयी है। उसको अलग-अलग करो क्योंकि आत्मा अलग है और शरीर अलग है। विवेक करके जो तेरे को सन्देह उत्पन्न हुआ है उसको छोड़ दो। क्योंकि—"संशयाऽऽत्मा विनश्यति"

और विषय-वासना को ओर भूलकर भी मत देखो यदि तुम्हें संसार की विषय-वासनायें खींच रही हैं तो उधर भूलकर मत देखो और आत्मप्राप्ति को कठिन जानकर भाजिया कहिये भागो भी मत। जो विषय-वासना की ओर नहीं जाता है और अपने साधन मार्ग पर लगा रहता है। वही श्रेष्ठ ज्ञानी है, वह परम सयाना है। वही परमतत्त्व का जिज्ञासु है। जहाँ न देखो अर्थात् जहाँ पर सतसंग सदगुरु की संगति नहीं है। आत्मविचार नहीं है। वहाँ से तू दूर हट जाओ। अर्थात् अनात्म पदार्थों का परित्याग कर जहाँ यह अनात्म पदार्थ नहीं हैं वहीं पर मन लगाओ। अर्थात् अनात्म पदार्थों में लगने से कुछ लाभ होने वाला नहीं है। जहाँ पर विषय-विकार अर्थात् संसार नहीं है। वहीं पर सब कुछ जानो। क्योंकि जो आत्माचित्त में रहता है। जहाँ वह सत्-चित-आनन्द विराजमान है। उसी की पहचान कर लो अर्थात् बाहर से मुड़कर भीतर देखो।

**टिप्पणी**—"ञकारो गायने प्रोक्तो ञाकारो झर्झर ध्वनी।
ञकारः शयने प्रोक्तः"

इत्येकाक्षर, ञ वर्ण गायन, झर्झर, शयन अर्थ का वाचक है।

**टटा बिकट बाट मन माहीं, खोलि कपाट महल मों जाहीं।**
**रही लटापटि जुटि तेहि माही, होहि अटल तब कतहुं न जाही॥**
**ठठा ठउर दूरि ठग नियरे, नित के निठुर कीन्ह मन घेरे।**
**जे ठग ठगे सभ लोग सेआना, सो ठग चीन्हि ठौर पहिचाना॥**

**शब्दार्थ**—ट–पृथ्वी और ध्वनि वाचक। बिकट–कठिन। बाट–मार्ग। कपाट–हृदय में जो अन्तः पुर का द्वार बन्द है। महल–हृदय, भवन। लटापटि–लटपट, एक में मिल-जुलकर। जुटि–संयुक्त, एक साथ दो का रहना। तेहि–उसी में। माहीं–में। ठ–जन, समुदाय, शठ, महेश, शून्य, वृद्ध, ध्वनि, चन्द्र मंडल। ठग–मन। ठउर–ठौर, स्थान। निठुर–निष्ठुर कठोर, दयाहीन। कीन्ह–किया। सेआना–ज्ञानी, पंडित जन।

**मूलार्थ**—ट की ध्वनि के द्वारा सद्गुरु कबीर कहते हैं कि उस आत्म देश का जो मार्ग मन में है वह बड़ा विकट है, टेढ़ामेढ़ा है और सारा खेल मन का है मन इतना दुश्चल है कि सत्य तक पहुँचने में बड़ी कठिनाई उत्पन्न कर देता है। शास्त्र के अनुसार 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः' के अनुसार मन ही बन्धन एवं मोक्ष का कारण है।

सद्गुरु कहते हैं कि कितनी भी विकट बात हो परन्तु जो तेरे हृदय रूपी सदन में अज्ञान का कपाट लगा हुआ है, उसको ध्यान के द्वारा, नाम जप के द्वारा और गुरु ज्ञान के द्वारा खोलकर उस भवन में घुसो। जहाँ पर जीव और ब्रह्म एक साथ लटापटि अर्थात् संयुक्त होकर रहते हैं। अर्थात् दोनों एक ही कक्ष में रहते हैं। केवल मोह की यवनिका लगी है। उसको हटाकर उसमें प्रवेश कर लो जब तू ध्यान में सफल हो जाओगे तब तू अचल हो जायेगा अर्थात् अद्वैत भाव को प्राप्त हो जायेगा तब तू उससे कभी भी भिन्न नहीं होगा।

ठठा अर्थात जन समुदाय जिसका अर्थ है उसके द्वारा सद्गुरुदेव कहते हैं कि आत्म देश चतन्य पुरुष का स्थान बहुत दूरी पर है। वहाँ जाने के पहले ही मन रूपी ठग मिल जाता है क्योंकि वह मनरूपी ठग बहुत नज- दीक है अर्थात् जो संसार के वंचक गुरु हैं जिन्हें कुछ भी मालूम नहीं है। ये नाना लोक-लोकान्तर की बात करके जीवों को भरमा देते हैं। क्योंकि जनता के नजदीक यही हैं। संत सद्गुरु तक, आत्मज्ञानी गुरु तक पहुँचने में ये बड़े बाधक हैं और ये जो नजदीक के ठग हैं, नित्य के निष्ठुर हैं, जो मानव मन को घेरा देकर बैठे हैं। ये अपनी स्वार्थं की पूर्ति के लिए कभी भी सत्य की बात नहीं करते जिसको ये लोग ठग लेते हैं। वह सदा के लिए ठगा जाता है इसमें छोटे-मोटे लोग ही नहीं ठगाते हैं। शास्त्र के बड़े-बड़े पंडित, राजे-महाराजे, सेठ-साहूकार भी इन ठगों से बच नहीं पाते हैं। परन्तु सद्गुरुदेव कहते हैं कि हे संसार के लोगों ! मन और वंचक ठगों को चीन्ह लो। जब तक इनको नहीं पहचान पाओगे तब तक तुम तत्त्वान्वेषण से दूर रहोगे इसलिए इन ठगों को सद्-सद् विवेक करके परित्याग कर दो और जो तुम्हारा स्वतः पद है, आत्मपद है उस पद को पहचानो तभी तुम्हारा कल्याण होगा।

**टिप्पणी**—वामन शब्द, ध्वनि, चन्द्रमा, गान, रूद्र, अंकुश, वृद्धावस्था कीर्ति इत्यादि श्रीधर भाषा कोष।

"टो धरित्र्यां च करके टो ध्वनी च प्रकीर्तितः।"

इत्येकाक्षरकोष अर्थात् ट अक्षर पृथ्वी और करक यानी वर्षोपल तथा ध्वनि वाचक है।

"ठकारो जनतायां स्याट्ठो ध्वनौ च शठेऽपि च।
ठो महेशः समाख्यातष्ठश्च शून्ये प्रकीर्तितः॥
वृहद्ध्वनौ च ठः प्रोक्तास्तथा चन्द्रस्य मण्डले।"

इत्येकाक्षरः अर्थात् जनसमुदाय, ध्वनि, शठ, महेश, शून्य वृहद् ध्वनि चन्द्रमण्डल, अर्थ का वाचक 'ठ' अक्षर है।

**डडा डर उपजे डर होई, डरही में डर राखु समोई।**
**जो डर डरे डरहिं फिरि आवै, डरही में फिर डरहिं समावै॥**
**ढ़ढा हींडत ही कित जान, हींडत ढूढ़त जाई परान।**
**कोटि सुमेर ढूढ़ि फिर आवै, जेहि ढूढ़ा सो कतहुं न पावै॥**

**शब्दार्थ**—ड–डर, शिव, ध्वनि, भयंकर। डर–भय। उपजे–उत्पन्न। समोई–समेटकर, समाविष्ट, समा जाना। ढ–ढोल, निर्गुण, वस्तु तथा धन हीन। हींडत–मथत, खोजत। कित–कहाँ। परान–जीव, भागना।

**मूलार्थ**—जब तूं ठग को पहचान लेगा तो ठौर भी मिल जायेगा। ड जो भय का वाचक है उसके द्वारा सद्गुरु कहते हैं कि इन ठगों से डरो मत। इनकी जो रोचक, भयानक वाणी है उसमें भूलो मत क्योंकि एक बार डर जायेगा तो तुझे बार-बार भय उत्पन्न होता रहेगा और डर से कभी मुक्त नहीं हो पाओगे क्योंकि डर ऐसी चीज है कि यह मन जल्दी निडर नहीं होता है। एक बार के डर जाने पर उसमें डर समाया रहता है और जो एक बार डर जाता है तो उसके पास अनेक प्रकार के डर फिर-फिर कर आ जाते हैं और वह डर से कभी मुक्त नहीं हो पाता है। डरा हुआ व्यक्ति घूम फिर करके फिर डर ही में समा जाता है। इसलिए मानव को चाहिए कि सभी प्रकार के भय को त्यागकर डर के जो कारण हैं उनका त्याग कर दें। क्योंकि मनुष्य के लिये स्त्री, पुत्र, धन, सम्पत्ति और कुकर्म, हत्या, चोरी, सीनाजोरी, बलात्कारी, ठगी, विश्वासघात, परस्त्रीगमन ये सब डर के कारण हैं। इन सबका जब तक परित्याग नहीं किया जायेगा तब तक मनुष्य निर्भय नहीं हो सकेगा।

इसलिए 'ढ' के माध्यम से कहा जा रहा है कि परमतत्त्व को मंथन करते हुए व खोजते हुए किधर जा रहा है। वह तुझे बाहर मिलने का नहीं है। वह न तुझे वन में मिलेगा न करोड़ों सुमेर कहिए हिमालय की गुफाओं में मिलेगा। कहीं भी बाहर ढूँढ़ते फिरोगे जिसको ढूढ़ना है उसको बाहर कहीं पा नहीं सकते हो क्योंकि वह सत्य वस्तु तेरे हृदय रूपी गगन में विराजमान है। इसलिए बाहर का ढूढ़ना छोड़कर अंदर में ढूँढ़ो तभी उसकी प्राप्ति हो सकती है।

**टिप्पणी**—"डकारः शंकरेत्रासे ध्वनौ भीमे निरुच्यते"

इत्येकाक्षरः अर्थात् 'ड' वर्ण शिव, डर, ध्वनि भयंकर अर्थ का वाचक है।

"ढकारः कीर्तिता ढक्का निर्गुणेनिर्धने मतः"

इत्येकाक्षरः अर्थात् ढोल, निर्गुण वस्तु तथा धनहीन का वाचक ढ़ वर्ण है। बड़ा ढ़ोल, ध्वनि, कुत्ता, कुत्ते की पूंछ, सांप का वाचक 'ढ़' अक्षर है इति श्रीधर भाषा कोष।

**णणा दुइ बसाये गाऊँ, रेना ढूढ़े तेरी नाऊँ।**
**मुये एक जाय तजि घना, मरे इत्यादिक केते गना ॥**

**शब्दार्थ**—ण–का सूकर, ज्ञान, निश्चय, निर्णय। गाऊँ–ग्राम, शरीर। रेना–रेणु, बालू के कण। मुये–मृत्यु, जीवन का अभाव।

**मूलार्थ**—ण जो ज्ञान का वाचक है। वह जीव से कहता है कि दुई ग्राम को तूने बसा लिया है दो अर्थात् तू स्वर्ग को चाहता है और संसार के सुख को भी चाहता है तेरा मन दीन को भी चाहता है और दुनिया को भी चाहता है। भला कहो कि बालू में कहीं तेरे नाम की खोज की जाय तो कुछ प्राप्त हो सकता है? अर्थात् नाम रूप में तुझे सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती है। यदि तू संसार को सत्य मानता है जो बालू की तरह निःसार है तो वहाँ पर तेरा नाऊँ कहिये जो तेरा आत्म तत्त्व है उसमें तुझे खोजने से प्राप्त नहीं होगा। कितने लोग इस तरह से खोजते-खोजते मर गये। एक आदमी मरता है। सब धन सम्पत्ति को छोड़कर संसार से चला जाता है और सभी सम्बन्धों को त्याग कर चला जाता है। सद्गुरु कहते हैं कि बहुत से लोग इस प्रकार से मर गये। कितने की गिनती की जाय जो मूल तत्त्व तक नहीं पहुँच पाये। जो ईश्वर को चाहेगा और संसार को भी चाहेगा तो दोनों एक साथ नहीं होने वाला है। इसलिए सावधान होकर सत्य की खोज करो।

**टिप्पणी**—१–"णकारः सूकरे ज्ञाने निश्चये निर्णयेऽपि च"

इत्येकाक्षरः ण अक्षर सूकर, ज्ञान, निश्चय, निर्णय अर्थ वाचक है। "विन्दु देव, भूषण, गुण राहत, बुद्धि, हृदय, शिव, दान, अस्त्र, उपाय इत्यादि 'ण' का अर्थ श्रीधर कोषकार ने किया है।

**तत्ता अति तिरओ नहिं जाई, तन तिरभुवन में राखु छिपाई।**
**जो तन तिरभुवन माहि छिपावै, तत्त्वहि मिलि तत्त्वु सो पावै ॥**

**थथा अति अथाह थाहो नहिं जाई, ई थिर ऊ थिर नाहिं रहाई।**
**थोरे-थोरे थिर होउ भाई, बिनु थंभे जस मंदिल थंभाई ॥**

**शब्दार्थ**—त–चोर, सूकर का पूंछ। तिरभुवन–त्रिभुवन, तीनों लोक। राखु–राखो। तत्त्वहिं–आत्मतत्त्व। थ–समुदाय, नीति की रक्षा। ई–यह। थिर–स्थिर। ऊ–वह। थंभे–स्तम्भ। मंदिल–मंदिर, घट। थंभाई–रुक जाना, थम जाना।

**मूलार्थ**—त के माध्यम से कहा जा रहा है कि जो चोर का वाचक है, जिसका स्वामी मन है। वह कहता है कि त्रियो अतिशय सुन्दर स्त्री हो, बहुत आकर्षक हो। उसमें सुगन्धि नाना प्रकार की आती हो तो भी उसके पास मत जाओ। अर्थात् तुम्हारा निस्तरण तभी होगा जबकि तू स्त्री विषय व संसार विषयक सुखों का परित्याग करोगे अगर तू उससे बचना चाहता है तो त्रिभुवन में अपने तन को छिपाओ। त्रिभुवन में 'जहत्स्वार्था' है, त्रिभुवन माने उसका जो स्वामी है जो तीन लोकों का पति है। मनोवृत्ति को उसी में छिपाओ। अर्थात् जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों का परित्याग करो। अपने मन को तुरीयावस्था की ओर ले जाओ। जहाँ जगत का स्वामी निवास करता है। जो व्यक्ति पूर्ण वैराग्य के साथ, ब्रह्मचर्य के साथ अपने तन को त्रिभुवन पति में छिपावेगा व लगावेगा अर्थात् उसका जप सुमिरण करेगा तो निश्चित उसको तत्त्व के दर्शन होंगे और परम चेतन तत्त्व को पा जावेगा।

परन्तु 'थ' जो नीति रक्षक है उसके द्वारा कहा जा रहा है कि जो वह तत्त्व है, बहुत अथाह है, अर्थात् बहुत दूर है। उसमें कहीं भी थाह नहीं है। तात्पर्य वह परमतत्त्व सीमातीत है। देश काल से परे है और असीम है। उसकी प्राप्ति जब हो जाती है तो प्रापक भी अथाह में अथाह हो जाता है, परन्तु प्रतिज्ञा यह है कि जो हृदय में विराजमान है वह तो स्थिर है, अचल है, चलायमान नहीं है। परन्तु ऊ जो मन है वह स्थिर रहने वाला नहीं है। वह बड़ा चंचल है।

तो प्रश्न उठता है कि परमतत्त्व सर्व व्यापक होने के कारण स्थिर है और जीव अल्पज्ञ होने के कारण अनस्थिर है। तो ऐसी दशा में उस परम महिना भूमा की प्राप्ति कैसे सम्भव होगी ? तो इस पर कहा जा रहा है कि थोड़े-थोड़े अर्थात् शनैः-शनैः मन को रोको। साधना के द्वारा उसको स्थिर करो। तो अवश्य रुक जायेगा। जिस प्रकार से ईंट पर ईंट रखते–रखते और उन सभी ईंटों की दीवारों पर इधर से उधर

साज-सामान रखने से बिना स्तम्भ के ही रुक जाता है। अर्थात् मंदिर के अंदर का जो रिक्त स्थान है बिना स्तम्भ के रुका हुआ है। उसी प्रकार से तुम्हारा मन भी साधन भजन के द्वारा, विवेक, वैराग्य, त्याग के द्वारा, रुकते-रुकते रुक जायेगा। तब तुम उस स्थिर पद की प्राप्ति कर लोगे।

**टिप्पणी**—'तकारः कीर्तितश्चौरे क्रोडपुच्छे प्रकीर्तितः' इत्येकाक्षरः अर्थात् त वर्ण चोर, शूकर के पुच्छ अर्थ में कहा गया है। 'शिलोच्चये थकारः स्यात्थकारो नयरक्षणे' इत्येकाक्षरः अर्थात् पत्थर के समुदाय, नीति की रक्षा 'थ' वर्ण का अर्थ है।

**ददा देखहु बिनसनि हारा, जस देखहु तस करहु बिचारा।**
**दसहुँ दुआरे तारी लावै, तब दयाल के दरसन पावै॥**
**धधा अरध माँहि अंधिआरी, अरध छोड़ि उरध मन तारी।**
**अरध छोड़ि उरध मन लावे, आपा मेटि के प्रेम बढ़ावै॥**

**शब्दार्थ**—द-मेल, स्त्री, खण्डन, दान, दाता। बिनसनि-नाशमान। हारा-होने वाला। जस-जैसे। तस-तैसे। दसहुँ दुआरै-शरीर के दस छिद्रों का। तारी-समाधि, रुकावट, निग्रह। दयाल-परमेश्वर, चेतन, आत्मा। ध-धन, धनी, ब्रह्मा, मनु। अरध-अधः, नीचे, मूलाधार चक्र। अंधिआरी-अंधकारमय। उरध-ऊर्ध्व, हृदय, सहस्रार। तारी-समाधि लगावे, मुक्ति। आपा-अभिमान।

**मूलार्थ**—'द' जो खंडन का वाचक है, उसके माध्यम से कहा जा रहा है कि हे भाई! देखो यह सारा संसार विनशने वाला है। यह संसार ही नहीं जितने लोक-लोकान्तर हैं। जितने ब्रह्माण्ड हैं। वे सब जायमान हैं। प्रलयकाल में किसी की स्थिति नहीं रहती है। इसलिए जैसे देखो उस प्रकार से विचार करो। अर्थात् एक के बाद एक तुम्हारे सामने से अन्तर्ध्यान होते जा रहे हैं। इसलिए तू उपर्युक्त कथन को देखकर विचार करो और जिसका नाश नहीं होता है। उसकी प्राप्ति के लिए अपनी इन्द्रियों के दशों छिद्रों को रोको। अर्थात् उन दशों छिद्रों से किसी एक के भी द्वारा मन को बाहर न जाने दो। जब तुम्हारे इन्द्रियों के दशों द्वार निगृहीत हो जायेंगे तब तू अन्दर में ही दीनदयाल के दर्शन पाओगे। अपनी साधना के दौरान तुम्हें विचार करना होगा कि तुझे किस मार्ग से साधना करनी है।

'ध' जो ब्रह्मा का वाचक है। उसके माध्यम से गुरुदेव कहते हैं कि अधः अर्थात् मूलाधार चक्र जो है वह नीचे का भाग है। वहाँ अंधकारमय है। वहाँ से साधन प्रारम्भ करने पर तुझे जल्दी सफलता नहीं मिलेगी। इसलिए अरध कहिये मूलाधार चक्र को छोड़कर उरध जो आज्ञाचक्र है वहीं मन से ध्यान लगाओ अर्थात् आज्ञाचक्र से अपनी साधना का श्री गणेश करो। जो साधक मूलाधार अर्थात् कुण्डलिनी के जागरण के फेर में न पड़कर आज्ञाचक्र व सहस्रार में मन को रोककर स्थिर करता है और साथ ही आपा कहिये अहंकार का परित्याग करके साधना में प्रेम लगाता है अर्थात् प्रभु में प्रेम लगाता है। वह अवश्य परम भूम्नी भूतात्मा को प्राप्त कर लेता है।

**टिप्पणी**—'दकारोऽभ्रकलत्रे च छेदे दाने च दातरि' इत्येकाक्षरः। अर्थात् मेघ, स्त्रो, खण्डन, दाता का वाचक 'द' अक्षर है।

'धं धने सधने धः स्याद्विधातरि मनावपि, इत्येकाक्षरः। 'ध' वर्ण धन, धनी, ब्रह्मा, मनु अर्थ का वाचक है।

**नना वो चउथे महं जाई, राम का गदहा होय खर खाई।**
**आपा छोड़ो नरक बसेरा, अजहूँ मूढ़ चित चेतु सबेरा॥**

**शब्दार्थ**—न–नेता, नौका, बुद्धि, स्वागत। चउथे–चतुर्थ स्थान, तुरीय स्थान। गदहा–गर्दभ, विषयी मन। खर–तृण। बसेरा–निवास। अजहूँ–आज भी। मढ़–मूर्ख। चित–चित्त, मन। चेतु–सावधान। सबेरा–प्रातः बाल्यावस्था से ही, शीघ्र में ही।

**मूलार्थ**—'न' जो बुद्धि का वाचक है। उसके माध्यम से सद्गुरुदेव कहते हैं कि जो आपा और अहंकार का परित्याग कर देता है वह साधक व योगी चौथे स्थान तुरीयावस्था में पहुँच जाता है और अन्य जो इसके विपरीत हैं जो संसार के विषय-वासना में अनुरक्त हैं वे पापी मनुष्य भगवान का पशु बनकर अर्थात् चौरासी लाख योनियों में जाकर निवास करते हैं और तृण रूपी विषय को चरते हैं। जिसके बचने के लिए कहा जा रहा है कि रे पापात्मा ! रे पाप बुद्धि ! आपा को छोड़ो। नहीं तो निश्चय ही नरक में तेरा वास होना अवश्यम्भावी है।

रे मूढ़ ! मैं आज भी कहता हूँ कि तू मन से चेत जा चित्त को भगवान में लगा दो। वृद्धावस्था की आशा मत कर जवानो के पहले ही अर्थात् किशोरावस्था में ही प्रभु की ओर मुड़ जा तभी तू यम यातना से और नरक से बच सकते हो। अन्यथा कोई उपाय नहीं है।

**टिप्पणी**—"नेता नश्च समाख्यातस्तरणौ न प्रकीर्तितः।
नकारः सौगते बुद्धौस्तुतौ वृक्षे प्रकीर्तितः॥
न शब्द स्वागते बन्धौ वृक्षे सूर्ये न प्रकीर्तितः" इत्येकाक्षरः ! अर्थात् न वर्ण का अर्थ नेता, नौका, बुद्ध, बुद्धि, स्तुति, वृक्ष, स्वागत, बन्धु, चन्द्र और सूर्य है।

**पपा पाप करे सभ कोई, पाप के करे धरम नहिं होई।**
**पपा कहे सुनहु रे भाई, हमरे से इन किछुओ न पाई॥**
**फफा फर लागे बड़ दूरी, चाखै सतगुरु देइ न तूरी।**
**फफा कहे सुनउ रे भाई, सरग पताल की खबरि न पाई॥**

**शब्दार्थ**—प–कुबेर, पश्चिम, पवन, पीना, जीनेवाला। पाप–दुष्कर्म, अनात्म वस्तु का सेवन। फर–फल, मुक्ति। चाखै–प्राप्त करे, खावे। तूरी–तोड़कर।

**मूलार्थ**—पूर्व पंक्ति में शीघ्र चेतने की बात कही गयी है क्योंकि संसार के प्रायः अधिक मानव पाप कर्म में प्रवृत्त हैं। चोरी, बेईमानी, घूस खोरी, बलात्कार, विश्वासघात में लगे हैं तात्पर्य यह है कि अध्यात्म को छोड़ कर जितने भी कर्म हैं वे सब पाप कर्म कहे जाते हैं। प कुबेर का वाचक है। इसलिए कुबेर के माध्यम से कहा जा रहा है। जो धन का स्वामी है। हे मानव ! धन से ही धर्म और अधर्म दोनों होते हैं। आज लोक में जितने छोटे-बड़े राष्ट्र हैं जो जितना ही समृद्ध है। उतना ही एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को सताने के फेर में पड़े हुये हैं और पाप दृष्टि के कारण ही बड़े-बड़े शस्त्र बनाये जा रहे हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि संसार में इतने अस्त्र-शस्त्र बन गये हैं कि इस भूमण्डल को अर्थात् वर्तमान विश्व को लगातार सत्रह बार नष्ट किया जा सकता है। भला यह पाप कर्म है कि नहीं ? इसलिए सारी दुनियाँ के लोग पाप कर्म में लिप्त हैं। इसी प्रकार से धर्म का चोला पहनकर बड़े-बड़े पंडा, पुजारी, महन्त, धर्माचार्य भी पाप कर्म में लिप्त हैं। इसलिए प के माध्यम से कहा जा रहा है कि जब तक पाप करते रहोगे तब तक धर्मोपलब्धि और आत्मोपलब्धि सम्भव नहीं है।

इसलिए 'प' कहता है कि हे भाई ! मेरी सच्ची बात सुनो ! मुझ पापी से तुझे कुछ भी प्राप्त होने वाला नहीं है। अर्थात् तेरा जीवन अशान्त बना रहेगा क्योंकि 'फ' जो समुदाय का वाचक है वह संसार से कहता है कि शान्ति रूपी फल जिसको निर्वाण कहते हैं। वह है तो

लेकिन बहुत दूर पर लगा हुआ है एवं फला हुआ है। इसलिए जब तक, राग, द्वेष, ईर्ष्या, मान, मद, से परे नहीं होंगे। तब तक तीव्र वैराग्य नहीं होगा। उक्त आत्म जिज्ञासा भी नहीं होगी। तब तक वह मोक्ष फल भी तुझे प्राप्त नहीं होगा।

प्रश्न उठता है कि वह आत्म फल कहाँ है? किसमें है? तो कहा जा रहा है कि आत्मविद् सद्गुरु के पास में है। जिसको सद्गुरु चाखता है, आनन्द लेता है परन्तु दूसरे को तोड़कर देता नहीं है। अर्थात् बिना जिज्ञासु वा अधिकारी के अतिरिक्त अन्य को वह आत्म-उपदेश नहीं करता। इसलिए फ कहता है कि हे भाई! मेरी बात सुनो। जो लोग सद्गुरु से दूर रहते हैं। सरग कहिये आज्ञा चक्र व सहस्रार पाताल कहिये मूलाधार चक्र जहाँ काम-कला का निवास है। जहाँ तीन वलय में कुण्डलिनी लिपटी हुई है और सहस्रार से दूर है। उन अनाधिकारियों के लिए दोनों स्थानों की जानकारी होना दुर्लभ है।

**टिप्पणी**—"प कुबेरे समाख्यातः पश्चिमे च प्रकीर्तितः।
पवने पः समाख्यातः पः स्यात्पाने च पातरि॥"

इत्येकाक्षरः अर्थात् 'प' वर्ण का अर्थ कुबेर, पश्चिम, पवन, पीना और पीने वाला है।

"कफे वारे फकारः स्यात्तथाऽऽह्वाने प्रकीर्तितः।
फूत्कारेऽपि च फः प्रोक्तस्तथा निष्फल भाषणे॥"

इत्येकाक्षरः। अर्थात् 'फ' अक्षर का अर्थ कफवार यानी समुदाय वा दिन, पुकारना, फूकना तथा निष्फल बोलना है। श्रीधर कोषकार ने फ का अर्थ फक्कड़, फटकार, वृथा वार्ता, साधन, वायु का झकोरा लिखा है।

**बबा बरबर करे सभ कोई, बरबर करे काज नहीं होई।**
**बबा बात कहै अरथाई, फर का मरम न जानहु भाई॥**
**भभा भभरि रहा भरपूरी, भभरे ते है निअरे दूरी।**
**भभा कहै सुनहु रे भाई, भभरे आवै भभरे जाई।**

**शब्दार्थ**—ब—वरुण, क्लेश। बरबर—बकवास, आत्मचर्चा। काज—कार्य सिद्धि। फर—फल, मुक्ति। भ—भवन, दीप्ति। भभरि—भयभीत रहना। भरपूरी—पूर्ण। भभरे—भय से, रोमांच होना, रोंगटे खड़े हो जाना।

**मूलार्थ**—ब के माध्यम से कहा जा रहा है कि जिसका अर्थ वरुण है वह कहता है कि सभी लोग व सभी धर्म वाले वृथा ही बकवास करते रहते हैं। ईश्वर और ब्रह्म की चर्चा, जीव और चेतन की चर्चा, ज्ञान एवं कर्म-काण्ड की चर्चा, सभी लोग करते हैं परन्तु वरुण देव कहते हैं कि केवल बरबराने या चर्चा करने से कार्य की सिद्धि नहीं होगी। जब तक की मन में सत्यता का उदय नहीं होगा। बबा अपनी बात को सच्चाई के साथ अर्थ-पूर्ण कह रहा है और सबको अपना अर्थ समझा कर कह रहा है। क्या कह रहा है ? हे भाई ! निर्वाण रूपी फल को तुम लोग अर्थात् संसार के लोग कोई नहीं जानते हो।

केवल कथा वाचने और बड़े-बड़े लम्बे-चौड़े भाषणों के करने से मुक्ति रूपी फल का रहस्य नहीं जान पाओगे क्योंकि 'भ' कह रहा है कि सभी लोग भभरि कहिये रोमांचित हैं और सभी लोग पूर्ण रूप से भयभीत और भ्रम में पड़े हुये हैं। इसलिए भय और आलस्य के कारण इनको उसके दर्शन नहीं हो रहे हैं। क्योंकि आत्मपद बहुत नियरे कहिये बहुत निकट है परन्तु भभर जाने से व आलस्य करने से बहुत दूर हो गया है इसलिए भ कहता है कि हे संसार के लोग ! हे भाइयों ! मेरी बात सुनो ! जो भ्रम गये हैं। वे पुनः भ्रम में ही आते हैं और भ्रम के साथ ही जाते हैं। क्योंकि जो अन्दर के दोष हैं। मल, विक्षेप, आवरण, असूया, राग, द्वेषादि पंच क्लेश, अहंता, ममरादि जब तक अन्दर में विराजमान रहेंगे। तब तक यह जीव अज्ञान में आयेगा और अज्ञान के साथ ही चला जायेगा। बिना सद्गुरु सन्त के इसके पापों की निवृत्ति नहीं होगी। इसलिए यदि तुम भलाई चाहते हो तो सन्तों की संगति करो।

**टिप्पणी**—"बकारो वरुणः प्रोक्तः कलशे वः फलेऽपि च।
वक्षस्थले च व प्रोक्तो गदायां समुदाहृतः"॥

इत्येकाक्षर कोषः। अर्थात् 'ब' वर्ण का अर्थ वरुण, कलश, फल, वक्ष-स्थल और गदा है। श्रीधरकोषकार ने 'ब' अक्षर का अर्थ वरुण, घड़ा, समुद्र और पानी लिखा है।

"नक्षत्रे भं बुधाः प्राहुर्भवने भः प्रकीर्तितः, दीप्तिर्भास्याच्च", इत्ये-काक्षरः अर्थात् 'भ' अक्षर का नक्षत्र, भवन तथा भा का अर्थ दीप्ति प्रकाश है।

**ममा के सेये मरम नहिं पाई, हमरे से इन्ह मूल गमाइ।**
**माया मोह रहा जग पूरी, माया मोहहिं लखहु विचारी॥**

**शब्दार्थ**—म–का अर्थ शिव, चन्द्रमा, ब्रह्मा, बन्धन, लक्ष्मी, माता, मान। मूल–स्वपद, निजस्वरूप। माया–पुत्र, कलत्र, संसार का ऐश्वर्य। मोह–अनुरक्ति, स्नेह।

**मूलार्थ**—इसलिए म का अर्थ जो शिव है दूसरा अर्थ लक्ष्मी भी है। लक्ष्मी के माध्यम से सद्गुरु कहते हैं कि अर्थ के सेवन से तू सत्य का रहस्य नहीं प्राप्त कर सकेगा। जो भगवती नारायणी का मायामय रूप है। व भोग विलास वाला उसका स्वरूप है। उसके सेवन करने से भगवती लक्ष्मी कहती हैं तू उस मेरे परम सत्य का भेद नहीं जान सकेगा और हमारे सेवन करने से आत्मतत्त्व जो मूल है उसको भी खो देगा। क्योंकि मेरा जाल अर्थात् मुझ माया का जाल समस्त विश्व को आच्छादित किये हुए है और मैं सारे विश्व को मोह में रख्खी हूँ। तुम विचार करके देख लो। संसार के सारे प्राणी, कीट से मृग, हस्ती पर्यन्त, देव-दावन अर्थात् जड़, चेतन जो भी चराचर हैं वे सब हमारे मोह से ग्रसित हैं। इसलिए मेरा पति जो आत्मा है। उसकी ओर कोई नहीं जा पाता है। इसलिए हमसे नेह-नाता नहीं जोड़ो। तभी तेरा कल्याण होगा।

**टिप्पणी**—"मः शिवश्चन्द्रमा वेधा मा लक्ष्मीश्च प्रकीर्तिता।
माच मातरि माने च बन्धने मः प्रकीर्तितः" ॥

इत्येकाक्षर। अर्थात् 'म' अक्षर का अर्थ शिव, चन्द्रमा, ब्रह्मा, बन्धन है और लक्ष्मी, माता, मान, का वाचक मा वर्ण है तथा श्रीधरकोषकार ने म का अर्थ विष्णु, यम, समय, विष भी लिखा है।

**यया जगत रहा भरपूरी, जगतहूँ ते है जाना दूरी।**
**यया कहै सुनहु रे भाई, हमहीं ते इन जै-जै पाई॥**
**ररा रारि रहा अरुझाई, राम कहै दुख दारिद जाई।**
**ररा कहै सुनहु रे भाई, सतगुरु पूंछि के सेवहु आई॥**

**शब्दार्थ**—य–यश, वायु, जाना, जानने वाला, त्याग, भोग, ब्रह्म। जै–विजय। र–राम, वायु, अग्नि, पृथ्वी, धन, इन्द्रिय, जलावन रोग, संसार। रारि–झगड़ा, अरुझाहट, देहात्मवादी।

**मूलार्थ**—सारे जगत के प्राणी मोह माया में लिपटे हुए हैं। ऐसा कहा गया है परन्तु जो सबका नियन्ता है जो चेतनों का चेतन हैं। वह पूरे ब्रह्माण्ड में व्यापक और परिपूर्ण है 'य' जो वायु का द्योतक है। उसके माध्यम से कहा जा रहा है कि अर्थात् वायु देव कहते हैं कि तुझे जगत से

दूरी जाना होगा। अर्थात् जगत से तुम्हें अपनी प्रवृत्ति को अलग करना पड़ेगा। बिना जगत से विमुख हुए तुम उस परब्रह्म तक पहुँचने में समर्थ नहीं हो सकते। इसीलिए कहा गया है कि उसकी प्राप्ति के लिए तुझे सब कुछ छोड़ना पड़ेगा। तभी सत्य तक तुम पहुँच सकोगे। ब्रह्म कहता है कि हे भाई ! मेरे से सुनो ! मेरी प्राप्ति से ही तुझे माया से विजय मिलेगी। जब तक तुझे ब्रह्म ज्ञान नहीं होगा तब तक तू मेरी माया से वच नहीं पायेगा। वह तुझे नर मर्कट की तरह नचाती रहेगी।

र का अर्थ इन्द्रिय भी है। इसलिए र के माध्यम से कहा जा रहा है कि जीवात्मा इन्द्रियों के भोग के कारण रारि कर रहा है। झगड़ा में पड़ा हुआ है। जिसके कारण संसार की अरुझाहट में पड़ गया है। यदि यह इन्द्रियों के विषयों को त्यागकर राम नाम का जप करने लगे तो सारे दुःख-दारिद्रय इसके दूर हो जायेंगे। दुख से यहाँ दैहिक, दैविक, भौतिक और दारिद्रय से धन, बुद्धि, यश और ज्ञान का जो दारिद्र बना हुआ है। राम के कहने से सारे के सारे दोष समाप्त हो जायेंगे।

इसलिए र कहता है कि हे भाई ! मेरी बात सुनो ! राम पद क्या है ? उसको सद्गुरु से पूछकर सेवन करो। क्योंकि एक राम तो महाराजा दशरथ के पुत्र भी हैं जिनको लोग साकेतवासी मानते हैं और ईश्वर भी कहते हैं दूसरा राम मानव के हृदय में विराजमान है, जो सर्वव्यापी है। यह बात सद्गुरु से पूछो कि किस राम की सेवा करें, किस राम-नाम का जप करें। जब तक सद्गुरु नहीं मिलता है तब तक अन्धकार में कुछ मत करो क्योंकि कुछ हाथ लगने वाला नहीं है।

**टिप्पणी**—"यशो यः कथितप्राज्ञैर्यो वायुरिति शब्दितः।
याने यातरि यस्त्यागे कथितः शब्द वेदिभिः" ॥

इत्येकाक्षरकोषः। अर्थात् 'य' वर्ण का अर्थ यश, वायु, जाना, जानने वाला तथा त्याग है और श्रीधर कोषकार ने मेल, योग सवारी म का अर्थ अधिक लिखा है।

"रश्च रामेऽनिले वह्नौ भूमावपि धनेऽपि च।
इन्द्रियेन्धन रोगे च रुर्भवे च प्रकीर्तितः" ॥

इत्येकाक्षर कोषः अर्थात् राम, वायु, अग्नि, पृथ्वी, धन, इन्द्रिय, जलावन तथा रोग वाचक 'र' अक्षर संसार का वाचक रु शब्द है।

**लला तुतरे बात जनाई, तुतरे आय तुतुरे परचाई।**
**आप तुतरे अउर को कहई, एकै खेत दोनों निरबहई ॥**

**ववा वह-वह कहे सब कोई, वह-वह कहे काज नहिं होई।**
**वह तो कहै सुनै जो कोई, सरग पताल न देखै जोई ।।**

**शब्दार्थ**—ल-दीप्ति, स्वर्ग, भूमि, भय, आनन्द आदि। तुतरे-मिठास बालक के वचन जैसे जो मीठा लगे परन्तु जो स्पष्ट न हो। बात-आत्मवार्ता। व—जो परमेश्वर का वाचक है। इसके और कई अर्थ हैं।

**मूलार्थ**—ऊपर कहा गया है कि सद्गुरु से पूछकर ही कोई कार्य करना चाहिए। ल जो आनंद का वाचक है। वह बाल स्वर में सांकेतिक भाषा में अपनी बात को कह रहा है क्योंकि पहले किसी को सुधारना होता है। तो मधुर-मधुर बोलाने पर सुधरता है और सांकेतिक मीठी बोलियों में परिचय भी कराता है। अपने मीठा बोलता है औरों को भी मीठे बोलने का उपदेश देता है। अर्थात् गुरु चेला का यह एक प्रकार का लक्षण है।

ल कहता है कि गुरु सौम्य हो, मधुर भाषी हो और माधुर्य भाषा में ही लोगों से अपना परिचय देता हो और अपने जिस व्यवहार एवं आचरण का हो वही दूसरे के प्रति भी कहे तभी गुरु और चेला का एक साथ निर्वाह हो सकता है। एक ही क्षेत्र के शेष दोनों होंगे तब एक दूसरे की बात एक दूसरा समझेगा और तभी वह सच्चा उपदेश भी सुना सकता है। व जो परमेश्वर का वाचक है। कहता है कि वह परमेश्वर है और इस बात को एक ही नहीं सभी के सभी कहते हैं परन्तु केवल परमेश्वर परमेश्वर कहने से व परमतत्त्व कहने से कार्य की सिद्धि नहीं होगी। वह परमेश्वर कहता है कि मेरी बात को सब कोई सुनो। मात्र प्रवचन से स्वर्ग और पाताल को नहीं देख पाओगे। अर्थात् न मूलाधार का भेद पा सकोगे और नहीं सहस्रार का ही भेद पा सकोगे। केवल खानी-बानी में और शास्त्रों के चक्र में पड़े रहोगे। इसलिए सब छोड़कर सत्य को पहचानो।

**टिप्पणी**—"लोदीप्तौद्यांलश्च भूमौ भयेचाल्हादनेऽपि च।
लो बाते लवणे च स्याल्लो दाने च प्रकीर्तितः।।
लः श्लेषे चाशये चैव प्रलये साधनेऽपिलः।
मानसे वरुणे चैव लकारः सान्त्वनेऽपि च।।

ला लक्ष्मी प्रकीर्तिता"। इत्येकाक्षरः अर्थात् 'ल' वर्ण का अर्थ दीप्ति, स्वर्ग, भूमि, भय, आनन्द, वायु, लवण, दान, श्लेष, आशय, प्रलय, साधन, मानस, वरुण, सान्त्वना, इन्द्र, ब्रह्मा है तथा ला अक्षर का अर्थ लक्ष्मी भी है।

सात्वति वरुणेवति वकारः समुदाहृतः"। अर्थात् सात् यानी परमेश्वर जिसके उपास्य हैं सो भक्त रूप सात्वत, वरुण, वायु का अर्थ

वाचक 'व' अक्षर है और "हकाराद् व्योम संज्ञेश्च यकाराद्वायुरुच्यते। रकाराद् वन्हिस्तोयं तु वकारादिति सैववाक्"। अर्थात् ह, य, व, र वर्ण परमात्मा के वाचक भी है वहाँ हकार के वाच्य परमेश्वर से व्योम–आकाश नामक भूत की उत्पत्ति मानते हैं। यकार वाच्य से वायु की रकार वाच्य से अग्नि की तथा वकार वाच्य से जल की उत्पत्ति मानी गई है और वहीं वकार को वाक् तथा वागेन्द्रिय वाचक भी कहते हैं। इत्यादि कोश शास्त्रकारों का मत है।

**शशा सर नहिं देखै कोई, सर सीतलता एकै होई।**
**शशा कहै सुनहु रे भाई, सून्य समान चला जग जाई।।**
**षषा खर-खर करे सब कोई, खर-खर करे काज नहि होई।**
**षषा कहै सुनहु रे भाई, राम नाम ले जाहु पराई।।**

**शब्दार्थ**—श–जाने वाला, गतिशील, रेचक, वाण, जल, झील, सरोवर, हृदय। सर–सरोवर। सीतलता–शांति, शीत्व। सून्य–आकाश। छूछे हाथ। खर खर–तीक्ष्ण, अच्छा, अज्ञानी, गदहा।

**भावार्थ**—'श' का अर्थ शंकर, सुख, मोक्ष, सीमा, हिंसा, शेष शान्ति है। ऊपर की पंक्ति में परमेश्वर ने कहा कि केवल 'अहम् ब्रह्मास्मि—अहम ब्रह्मास्मि, कहने से कोई लाभ नहीं होगा। जब तक की तू अन्तः निवासी राम को नहीं जानेगा। यहाँ पर तालव्य 'श' है जिसका अर्थ शंकर भी है। 'श' के देवता शंकर होने के कारण उनके माध्यम से कहा जा रहा है कि केवल लोग वाचक ज्ञानी हैं परन्तु जहाँ परमेश्वर का निवास है उस स्थान को कोई देखता नहीं है। यह कहने वाले जो हृदय सरोवर में कमल खिला है। जिसके अन्दर ब्रह्म का निवास है। उस चेतन को बिना साधना से कोई देख नहीं सकता। यदि कोई देख लेता है तो उसी प्रकार से समरसता को प्राप्त हो जायेगा। जेसे सरोवर और सरोवर की तरलता दोनों दो वस्तु नहीं हैं।

इसी प्रकार से जीव और ब्रह्म की एकता साधना के द्वारा सम्भव है। अर्थात् जीव संज्ञा वाला चेतन और ब्रह्म संज्ञा वाला चेतन दोनों दो वस्तु नहीं हैं। केवल नाम मात्र का भेद है। इसीलिए 'शशा' के माध्यम से कहा जा रहा है कि हे भाई ! मेरी बात को श्रवण करो। क्योंकि साधनाहीन प्राणी के हाथ कुछ नहीं लगता है। वह शून्य हाथ बिना कुछ लिये दिये संसार से चला जाता है।

'ष' जो श्रेष्ठ और गम्भीर का वाचक है जो मूर्धन्नी है। उसके माध्यम से कहा जा रहा है कि 'खर-खर' सब कोई कहते हैं अर्थात् अच्छा उपदेश अच्छी बात सब कहते हैं पर केवल खर-खर कहने अर्थात् अच्छा-अच्छा कहने से कोई कार्य की सिद्धि नहीं होगी। केवल "ब्रह्म सत्यं जगन्न मिथ्या। जीवोब्रह्मैवऽनपरा" इसलिए श्रेष्ठ मूर्धन्नी ष कहता है कि हे भाई मेरी बात सुनो। मैं तुझे जो कहता हूँ उसको सुनो। तुम्हारा कल्याण तभी सम्भव है कि जब तुम राम-नाम लेकर इस संसार से भाग जाओगे। अर्थात् संसार से विमुख होकर हृदय निवासी प्रभु का जप करोगे। तभी तेरा बेड़ापार होगा। अन्यथा संशय शोक रूपी समुद्र में गोता खाते रहोगे और कथनी से कुछ होने जाने वाला नहीं है।

**टिप्पणी**—"शं सुखं शंकर श्रेयः शश्चसीम्नि निगद्यते।
शयने शः समाख्यातो हिंसायां शो निगद्यते ॥
वदन्ति शं बुधा शेषे शः शान्तश्च निगद्यते" ॥

इत्येकाक्षरः अर्थात् श वर्ण का अर्थ सुख, शंकर, मोक्ष, सीमा, शयन, हिंसा, शेष तथा शान्त है।

"ष प्रकीर्तितो बुधैः श्रेष्ठे षश्च गम्भीर लोचने।
उपसर्गे परोक्षे च षकारः परिकीर्तितः" ॥

अर्थात् श्रेष्ठ, गम्भीर, दृष्टि, उपसर्ग, आपत्ति और परोक्ष अप्रत्यक्ष वाचक 'ष' वर्ण है।

**ससा सरा रचो बरिआई, सर बेधे सब लोग तमाई।**
**ससा के घर सुन गुन होई, इतनी बात न जानै कोई ॥**
**हहा हाय-हाय में सब जग जाई, हरख सोग सब माहि समाई।**
**हंकरि हंकरि सब बड़-बड़ गयऊ, हाहा मरन न काहू पयऊ ॥**

**शब्दार्थ**—स–क्रोध, ईश्वर, शूलधारी आदि। बरिआई–बलात्कार। सरा–चित्ता। सर–बाण, तीर। बेधे–लागे। तमाई–मूढ़ भाव, दुःखी, शोक। हाय–शोक व्यक्त करना। हरख–हर्ष। सोग–चिंता, शोक। माहि–में, मध्य में। हंकरि–चिल्लाकर, अहंकार। गयऊ–गये। हाहा–तूफान, हाहाकार, अकाल। पयऊ–पाया, असमय।

**मूलार्थ**—मूर्धन्नी ष ने कहा राम नाम लेकर संसार से परे हो जाओ। अब दन्ती 'स' जो क्रोध का वाचक है और शूलधारी भी है वह कहता है कि यदि तू रामनाम नहीं जानेगा, राम की प्राप्ति नहीं करेगा,

अपने स्वरूप को नहीं जानेगा तो कालपुरूष जिसका नाम दूसरा रवि-तनय है वे भगवान यम तुझे जलाने के लिए बलात् चिता रचेंगे और तुम्हारा नाश कर देंगे। अर्थात् राम के अभाव में काम, क्रोध स्वयं तुझे जला देंगे। क्रोध रूपी शर वा तीर से जब तू विध जायेगा तो तेरा कुछ बसाने वाला व चलने वाला नहीं है क्योंकि सभी लोग क्रोध के कारण तमाये हुए हैं। अर्थात् व्याकुल होकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये हैं। जहाँ के तहाँ सब लोग खड़े हैं। क्योंकि क्रोध रूपी शर से संसार के सारे प्राणी विध गये हैं। स कहता है कि मेरे घर यह सुन-गुन होती है। अर्थात् यह सुना जाता है कि जो काम, क्रोध, लोभ के वशीभूत हैं वे थोड़ी सी भी सत्य की बात नहीं जान पाते हैं। अर्थात् इतनी बात भी नहीं जान सकते कि मैं काम, क्रोध के वशी न होऊँ क्योंकि मेरा सर्वनाश हो जायेगा।

इसलिए 'ह' जो निषेध का वाचक है जिसका देवता क्रोध है वह कहता है कि हे जगत के प्राणियों! काम, क्रोध, बहुत खतरनाक हैं, पर अनजान मनुष्य उनके वश में आकर काम्य कर्मों के करने के कारण सब हाय-हाय में चले गये, अर्थात् मेरी स्त्री मर गई मेरा पुत्र मर गया मेरा धन गायब हो गया, मेरा सम्मान चला गया, हमारी सम्पत्ति नष्ट हो गयी, मेरा मंत्री पद चला गया, हम अब राष्ट्रपति नहीं हैं, हम सम्राट् नहीं हैं, हम राजा नहीं हैं इत्यादि प्रकार के हाय-हाय करते हुए सारा संसार चला गया और सारे संसार के लोगों में हर्ष शोक व्याप्त है। कभी थोड़ी इच्छा की पूर्ति होने पर हर्षित हो जाते हैं तो कभी प्रिय-वियोग में शोक करने लगते हैं। इसी में सारा संसार समाविष्ट है। सभी लोग जो सत्य-परायण नहीं हैं, जो आत्मा व परमात्मा की परख नहीं कर सके वे हैरानी के साथ रोते चिल्लाते चले गये। साधारण लोगों की बात नहीं है। बड़े से बड़े लोग जो शूर थे, जो वीर थे, जो ज्ञानी थे, जो ध्यानी थे, जो सब कुछ करने में समर्थ थे वे सब बड़े लोग भी स्वस्वरूप की प्राप्ति के बिना क्रन्दन करते हुए दुःख के साथ चले गये।

'ह' कहता है 'हाहा' कहिये जो भयानक क्रोध है उसका रहस्य कोई नहीं जान पाया। अर्थात् इच्छा की आपूर्ति में क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध के चलते ही बड़े-बड़े लोग और बड़े-बड़े राष्ट्र नष्ट हो जाते हैं। इसलिए क्यों हाहाकार मचा है, इसका मर्म किसी के समझ में नहीं आया।

**टिप्पणी**—सः कोपे वरणे सः स्यात्तथा शूलिनि कीर्तितः।
सा च लक्ष्मीर्बुधैः प्रोक्ता गौरी सा च स ईश्वरः॥

इत्येकाक्षरः स परोक्षे समाख्यातः' अर्थात् क्रोध, स्वीकार, शूलधारी, ईश्वर, परोक्ष अर्थ का वाचक स तथा लक्ष्मी, गौरी अर्थ वाचक सा वर्ण है।

"हः कोपे वारणे हश्च तथा शूली प्रकीर्तिताः" इत्येकाक्षरः। अर्थात् 'ह' अक्षर का अर्थ क्रोध, शूली, निषेध है।

**क्षक्षा छिन में परलै सभ मिटि जाई, छेव परे तब को समुझाई।**
**छेव परे काहु अंति न पाया, कहैं कबीर अगमन गोहराया॥**

**शब्दार्थ**—क्ष–क्षेत्र, वक्षस्थल, शब्दोपदेश। परलै–प्रलय,मृत्यु, संसार का वह समय जब सारे जगत का अभाव हो जाता है। छिन्न–क्षण। छेव–मृत्यु, घाव। परे–होने पर। काहू–कोई। अगमन–अग्रगामी, आगे, पहले, प्रथम। गोहराया–पुकारा, चेताया।

**मूलार्थ**—'क्ष', जो क्षेत्र का बोधक है। वह कहता है कि हे भाई! जो यह प्रलय हो रहा है, जो सभी नाश को प्राप्त हो रहे हैं, यह तो क्षण मात्र में मिट सकता है। जो सभी प्रकारकी तुम्हारी क्षीणता है वह भी मिट जायेगी। प्रतिज्ञा यह है कि तुम काम, क्रोध, लोभ, मोह पर विजय पा लोगे तब अर्थात् शरीर रहते तुम समझ जाओगे कि सत्य क्या है? असत्य क्या है? मुझे क्या करना चाहिए? क्या नहीं करना चाहिए? जब ये सब तू जान जायेगा, शरीर रहते तब तू सभी प्रकार के शोक-मोह से मुक्त हो जायेगा। अन्यथा जब तेरा शरीर नहीं रहेगा 'छेव' कहिये जब तू मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा तब तुझे कौन समझायेगा? और तू क्या समझेगा? क्योंकि छेव पर जाने पर मृत्यु हो जाने पर किसी ने इसका अन्त नहीं पाया। अर्थात् मृत्यु से पार कोई नहीं गया।

यदि 'परे' का अर्थ मृत्यु से रहित किया जायेगा तो अर्थ होगा कि जो लोग स्वस्वरूप की प्राप्ति कर लिए हैं, आत्मा को जान गये हैं। ईश्वर में तल्लीन हो गये हैं। उनका अन्त किसी ने नहीं पाया।

अब सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि हे भाई! मैं तो तुम संसार के लोगों से बहुत पहले ही कह चुका हूँ कि यदि तुझे मृत्यु से बचना है तो उसके जगाने के पहले ही जाग जाओ। अर्थात् सत् कर्म में लग जाओ और अपने को पहचानो। अन्यथा किसी प्रकार से भगवान भास्कर के पुत्र से तुम लोग बच नहीं पाओगे। तुझे वह जबर्दस्ती नरक स्वरूप चौरासी लाख योनियों में डाल देगा, जहाँ से लौटना और आना सम्भव नहीं है। इसलिए अब से भी चेत जाओ। कुछ परमार्थ करो।

**टिप्पणी**—क्षः क्षेत्रे वक्षसि प्रोक्तो बुधैः क्षः शब्द शासने। इत्येकाक्षरः अर्थात् क्षेत्र, वक्षस्थल तथा शब्दोपदेश वाचक 'क्ष' वर्ण है।

**छन्द**—पैंतीस अक्षर ज्ञान का, बोले गुरु हैं ध्यान का।
उसको धरो मन में सदा, सब नाश होगा दुर्मदा॥
इसकी हुई यह इति श्री, सुन्दर सुभग मय जयश्री।
विनवों सदा मैं दास हो, कर मोह माया नाश हो॥

# सबद ३

## विप्रमतीसी प्रकरण

### ब्राह्मण विचार-विमर्श प्रकरण

**सवैया छन्द**

विप्रन की मति भूरि विलक्षण, चूर्ण हुआ संसार सदै से।
पाप अरु पुण्यहिं हाथ लिये हैं, लोगन को भरमाय कबै से॥
दूर हुआ पाखण्ड सभी, गुरुदेव कबीर जने हैं जबै से।
धूम मची जगती तल पै, अवतार कबीर हुआ है तबै से॥

**सुनहु सभन मिलि विप्रमतीसी, हरि बिनु बूड़ी नाउ भरीसी।**
**बांभन होय के ब्रह्म न जानै, घरमा जग्य प्रतिग्रह आनै॥**
**जिहिं सिरिजा तिहिं नहिं पहिचानै, करम धरम मति बैठि बखानै।**
**ग्रहण अमावस अउर दुईजा, सांति पांति प्रयोजन पूजा॥**

**शब्दार्थ**—सभन–सभी लोग। विप्रमतीसी–विप्रों की विचारधारा। भरीसी–भरी हुई। बांभन–ब्राह्मण। घरमा–घर में। जग्य–जो यज्ञ कई प्रकार के होते हैं। गोमेध, अश्वमेध, राजसूय, नरमेध इत्यादि। प्रतिग्रह–प्रतिग्रह, स्वीकार करना, ग्रहण, उस दान का लेना जो ब्राह्मणों को विधि पूर्वक दिया जाता है। आनै–ले आवे। जिहिं–जो। सिरिजा–जो जगत का सर्जन किया। तेहि–उसको। मति–भविष्य के लिए विचार करना होता है उस बुद्धि को मति कहते हैं। ग्रहण–जब सूर्य और चन्द्रमा पर राहु केतु का आक्रमण होता है तब उसको ग्रहण कहते हैं। अमावस–जिस दिन सूर्यास्त के साथ चन्द्रमा का उदय होता हो वह अमावस्या कहलाती है। दुईजा–दुईज, द्वितीय। पांति–पंक्ति बद्ध ब्राह्मणों की मण्डली जो पूजा कराने के लिए बैठती है, मंत्रों को पंक्ति। प्रयोजन–आवश्यकता,

जरूरत, स्वार्थ। पूजा–ग्रह शांति के लिए मंत्रों के द्वारा जो पूजा की जाती है।

**सम्बन्ध**—ज्ञान चौंतीसा में कहा गया है कि मनुष्य जब तक सच्चाई का परिपालन नहीं करेगा और जग स्रस्टा का अस्तित्व नहीं स्वीकार करेगा, तब तक भवदु:ख से छुटकारा नहीं पा सकता है अब नीचे शब्द तीन विप्रमतीसी के माध्यम से वर्तमान ब्राह्मणों की कर्म-प्रणाली का दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

इस प्रकरण में ज्ञान काण्ड का प्रतिपादन है और तीस चौपाइयों एवं एक दोहा के द्वारा ब्राह्मणों के कर्मकाण्ड पर प्रकाश डाला जा रहा है।

**मूलार्थ**—भगवान कबीर देव कहते हैं कि हे संसार के लोग ! सभी मिलकर विप्रों की मति को सुनो उनकी जो कर्म-प्रणाली है वह तीस चौपाई एवं एक दोहे के माध्यम से (उनके) विषय में मैं कहता हूँ। आप लोग श्रवण करें। विप्र लोग बड़े तपस्वी होते हैं, जिनका मुख्य कार्य कर्म काण्ड है। यहाँ पर प्रथम तो कहा गया है कि विप्रों की मति सब कोई सुन लीजिए। उनके कर्मों के अनुसार जो भवसागर पार होने के लिए कर्म रूपी नौका भरी थी। जिस पर कर्मकाण्डी ब्राह्मणों का समाज बैठा हुआ था वह नौका बिना हरि भजन के भवसागर रूपी समुद्र में डूब गयी।

तात्पर्य यह है कि कर्मकाण्ड से मुक्ति नहीं हो सकती है क्योंकि कर्मकाण्ड से जो फल उत्पन्न होते हैं, उन्हें भोगना पड़ता है। तो जब तक कर्मकाण्ड का आरम्भ होता रहेगा। तब तक जीवों का संसार में आना जाना भी बना रहेगा और बिना कामना के कर्म होते भी नहीं। इसलिए सद्गुरु कहते हैं कि जो लोग कर्मकाण्ड के भरोसे हैं ज्ञानकाण्ड का विरोध करते हैं और भक्ति-भाव एवं भजन का भी विरोध करते हैं, तो वे लोग मुक्त नहीं हो सकते। क्योंकि ब्राह्मण के घर जन्मने के कारण उन्हें ब्रह्म को जानना चाहिए था परन्तु जिस ब्रह्म-ज्ञान से मुक्ति सम्भव थी उसको विप्र बन्धु नहीं जान सके उस ब्रह्म ज्ञान का परित्याग कर प्रजा की प्रसन्नता के लिए अनेक घरों में, एवं ग्रामों में जाकर कर्म-काण्ड रूपी यज्ञों को आरम्भ किये और उसमें भी पशु आदि की बलि देकर पूर्णाहुति की। प्रतिग्रह कहिये जो यज्ञ पूर्ण होने पर यजमान के द्वारा दान दिया जाता है। उस दान को ग्रहण कर अपने घर में लाये। जीवन भर यज्ञ-याग का आरम्भ करते रहे परन्तु जिस परमात्मा ने इनको सिरजा-ब्राह्मण बनाया अर्थात् जिसने सृष्टि का सर्जन किया है उस परमतत्त्व को

व परमात्मा को नहीं पहचान पाये। केवल घर में बैठकर कर्म-धर्म की व्याख्या करते रहे। परिवार का भविष्य कैसे बीतेगा ? जीवन यापन कैसे होगा ? इसके लिए अग्रगामी मति से विचार करते रहे और सब जप-तप छोड़कर सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण व अमावस्या तथा द्वितीया के दिन यजमानों का स्पर्श किया हुआ अन्न व अन्य सामग्री को ग्रहण करते रहे। स्मरण रहे कि ग्रहण आदि अवसरों पर यजमान लोग अन्नदान करते हैं और उसमें संकल्प करते हैं कि हमारा जो पाप-ताप, रोग, बलाय है वह इस संकल्पित अन्न में समाविष्ट हो जाय ऐसा कहकर अलग रख देते हैं। दूसरे दिन प्रत्येक गृह में घुसकर ब्राह्मण देवता उक्त अन्न को ग्रहण करते हैं।

शांति के प्रयोजनार्थ मंत्रों के उच्चारण के साथ यजमानों के यहाँ बहुत से ब्राह्मणों की पंक्तियाँ पाठ करने के लिए बैठती हैं। जो चैत या आश्विन के नवरात्र के अवसर पर ब्राह्मणों की पंक्तियाँ यजमानों के यहाँ वा विन्ध्यक तीर्थादि क्षेत्रों में शांन्त्यर्थ पूजा करती है। इसको शांन्त्यर्थ-पंक्ति पूजा कहा है।

**प्रेत कनक मुख अंतर बासा, आहुति सत्त होम की आसा।**
**कुल उत्तिम जग माहिं कहावै, फिरि-फिरि मद्धिम करम करावै॥**
**सुत दारा मिलि जूठो खाई, हरि भगता को छूति लगाई।**
**कर्म असउच उचिस्टा खाई, मति भरिस्ट जम लोक सिधाई॥**

**शब्दार्थ**—भूत-प्रेत, प्रेत का अर्थ होता है मरा हुआ आदमी। जब मनुष्य मृत हो जाता है तो उसको प्रेत कहते हैं। दूसरा अर्थ प्रेत का शरीर से जब आत्मा निकल जाता है, और अच्छी गति प्राप्त न होने पर वह प्रेत योनि में जाता है उसको भी प्रेत कहते हैं। कनक–सोना। अंतर–भीतर। बासा–निवास रखना। आहुति–यज्ञ में साकला व हवन सामग्री को डालने को आहुति कहते हैं। सत्त–सत्य। होम–हवन। आसा–इच्छा। कुल–खानदान, जाति। उत्तिम–श्रेष्ठ। कहावै–कहलाता है। मद्धिम–निम्न, मध्यवर्गीय। सुत-पुत्र। दारा–स्त्री। जूठो–जूठा, भगता–भक्त, वैष्णव। असउच–अशुद्ध। उचिस्टा–उच्छिष्ठ, जूठा। भरिष्ट–भ्रष्ट।

**मूलार्थ**—इतनी ही पूजा नहीं है इसके आगे भी भूमि देवताओं की बात सुनिये। अपने खाने-पीने के लिए नाना प्रकार के जाल पसारे हुए हैं। चाहे वे हिन्दू पुरोहित हों, चाहे वे इस्लाम के पुरोहित हों। किसी

भी धर्म के पुरोहित हों वे जीविका चलाने के लिये अनेक प्रकार के व्यवसाय मनमाने तौर पर गढ़ रखे हैं।

अब सद्‌गुरु कहते हैं कि जब किसी यजमान की मृत्यु होने लगती है तो उसके यहाँ जाकर प्राणकंठगत होने पर मुख में तुलसी के पत्ते गंगा जल और सोना श्रद्धा के अनुसार छुड़वाते हैं और सारे शरीर में घी पुतवाते हैं। यह इसलिए करते हैं कि मृत आत्मा के अन्दर प्रेत न आकर घुस जाय। अर्थात् मृत व्यक्ति की आत्मा प्रेत लोक में न जाय। भला इनकी पोप लीला पर तर्क कीजिए। संसार के प्रायः सभी मनुष्य न जाने कितना गंगा जल तुलसी खाये होंगे और सोना धोकर पीये होंगे। क्या सबके सब स्वर्ग में चले जायेंगे अस्तु मृत आत्मा के मरने पर तुलसी और गंगा जल को तो नहीं लेते पर सोने को मुख में से निकालकर ले जाकर अपने कार्य में लगाते हैं और पुनः जहाँ चिता जलायी जाती है, मुर्दा जलाया जाता है। कुछ मिलने की इच्छा से वहाँ भी चिता में मृतक के ऊपर आहुति डालते हैं और कहते हैं कि यहाँ होम करना बहुत आवश्यक है। यदि यहाँ पर होम न की जायेगी तो मरा हुआ आत्मा प्रेत लोक में चला जायेगा। इसलिए शव-दहन स्थान का भी कर्म सत्य है। केवल उक्त क्रिया कराने की यहाँ भी वही आशा है कि यहाँ भी कुछ दान-दक्षिणा यजमान दें। अर्थात् सोना आदि डालने के पश्चात् मृतक जहाँ जलाया जाता है वहाँ भी कुछ मिलने की आशा से होम करना सत्य बताते हैं। इसलिए मृतक की चिता में आहुति देते हैं।

सद्‌गुरुदेव कहते हैं कि हे भाई! संसार में इनका कुल बड़ा उत्तम कहलाता है। ये ब्रह्मा की सन्तान हैं और ब्रह्मा के पवित्र मुख से इनको उत्पन्न माना जाता है। संसार के लोग इनका पैर पूजते हैं, समादर करते है परन्तु सब होने पर भी ये यजमानों से नीच कर्म करवाते हैं। जिस कर्म को करने का कोई प्रयोजन नहीं है वे सब कर्म कराते हैं। एक ओर इनकी नीचता को तो देखिये दसगात्र के दिन उस मृत आत्मा को घी और दूध का भाग लगाकर महापात्र लोग पीते हैं और यजमान से मनमाना धन ऐंठते हैं और ब्रह्म भोज के दिन किंवदन्ती है कि भण्डार की बनी हुई सामग्री पहले आकर मृत आत्मा सबमें से लेकर खाता है। अर्थात् सबको जूठा कर देता है। उसी जूठे पकवान को स्त्री-पुत्र व अन्य लोग मिलकर खाते हैं और कोई भगवान का भक्त आ जाय, वैष्णव आ जाय तो उससे पूछते हैं कि तू किस जाति का है? यदि ब्राह्मण नहीं है तो उसका

बनाया हुआ नहीं खाते हैं। उसमें छूति लगाते हैं कि यह शूद्र है व नीच जाति का है।

साहब कहते हैं कि हे भाई! इनका कर्म तो बहुत अशुद्ध है, अशौच्य है क्योंकि प्रेत का जूठा खाते हैं। अर्थात् दसगात्र के दिन प्रेत के मुख का घी पीते हैं दूध पीते हैं। जिसके कारण इनकी अग्रगामी मति भ्रष्ट हो गयी है और परिणाम स्वरूप बिना कहे सुने भगवान विभाकर के पुत्र अर्थात् यमलोक में चले जाते हैं। कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता है।

**नहाय खोरि उत्तिम ह्वै आये, विस्नु भगत देखे दुख पाये।**
**स्वारथ लागि रहे बेकाजा, नांउ लेत पावक जिमि डाजा॥**
**राम क्रिस्न की छोड़िन्हि आसा, पढ़ि गुनि भये क्रितम के दासा।**
**करम पढ़ैं अउ करम को धावैं, जे पूछै तेहि करम दिढावै॥**

**शब्दार्थ**—नहाय–स्नान। खोरि–तिलक, दोष, ऐव नुक्स। उत्तिम–श्रेष्ठ। ह्वै–बनकर। आये–आवै। विस्नु–विष्णु। बेकाजा–अर्थहीन जिससे कोई लाभ नहीं। जिमि–जैसे। डाजा–दहन होना, कुछ जलना। क्रिस्न–श्रीकृष्ण। छोड़िन्हि–त्याग दिया, छोड़ दिया। क्रितम–बनावटी एवं मिट्टी की मूर्ति, पत्थर की मूर्ति। जे–जो। पूछै–प्रश्न करे। दिढ़ावै–बतावै।

**मूलार्थ**—मति भ्रष्ट होने के कारण बिना परिश्रम के ही यम लोक में चले गये। अब जो बचे हैं जो शेष हैं वे निकृष्ट कर्मों के कराने पर उस खोरि कहिए उस पाप से स्नान करके मुक्ति मानते हैं। उत्तिम कहिए पवित्र बनकर आते हैं अर्थात् नहाय-धोकर तिलक मुद्रा लगाकर जनेऊ पहनकर अच्छे वेश में समाज के सम्मुख आते हैं परन्तु कहीं भगवत् भक्त किसी को उपदेश देता हो और पण्डित जी देख लें तो उनको महान कष्ट होता है। कारण कि गुरु का काम तो केवल ब्राह्मण का है और शाक्तों का है यह कहाँ से आ गया मेरी रोटी में खलल डालने के लिए। अपने स्वार्थ के कारण सदैव मनमाना अर्थहीन कार्य कराते रहते हैं। यदि कोई प्रश्न करता है कि पण्डित जी जो बेकार का क्रिया-कर्म कराते हों। इससे तो कुछ होने जाने वाला है नहीं अर्थात् इसका क्या फल है। उक्त नाम लेते ही अग्नि के समान प्रज्ज्वलित हो जाते हैं, क्रोध से जलने लगते हैं और उल्टे उसको डांटते हैं और कहते हैं कि रे मूर्ख! तू नास्तिक है तेरी वेद में श्रद्धा नहीं है, तू स्मृति ग्रंथों पर विश्वास नहीं करता, इसलिए तू

ब्राह्मण-कर्म की निन्दा करता है। भागो नहीं तो तुझे शाप दे दूँगा। भला ये अशौच्य कर्मी लोग भगवान राम और भगवान श्री कृष्णचन्द्र को भी आशा का परित्याग कर दिये अर्थात् कभी रामगीता और श्री कृष्णगीता को भी नही पढ़ेते हैं न उस पर विश्वास लाते हैं। जो अध्यात्म रामायण में भगवान राम ने कहा है और महाभारत, भागवत में श्री कृष्णचन्द्र ने कहा है वह सही है इनका उक्त महापुरुषों की वाणियों में न विश्वास है न उनके पवित्र नाम जपने में विश्वास है। इनका विश्वास कृत्रिम मिट्टी और पत्थर के देवताओं पर है। क्योंकि ये हीनकर्मी पढ़गुनकर वेद-शास्त्रों को समझकर जड़ मूर्तियों के दास बन गये हैं। अपने कर्मकाण्ड की मान्यता करते हैं और कर्मकाण्ड वाली संहिताओं को पढ़ते हैं उनसे सम्वन्धित स्मृतियों को पढ़ते हैं और उनके अनुसार ही अर्थात् जिस प्रकार के कर्मकाण्ड का ग्रन्थों में विधान है उसी बलिपूजा आदि को करने के लिए दौड़ते अथवा धावते हैं। ज्ञानकाण्ड का विरोध करते हैं और यदि इनसे कोई प्रश्न करता है कि हे पण्डित जी जो वेदों में ज्ञान काण्ड है उसको क्यों नहीं बताते ? तो कहते हैं कि बिना कर्मकाण्ड करने से ज्ञान नहीं होगा। इसलिए कर्मकाण्ड करना परमावश्यक है।

**निहकरमी की निन्दा कीजै, करम करै ताही चित दीजै।**
**भग्ति भगवान की हिदया लावै, हिरनाकुस को पंथ चलावै॥**
**देखहु सुम्रित केर परगासा, बिनु अभिअंतर भये क्रितम के दासा।**
**जाके पूजे पाप न ऊड़ै, नाम सुमरिनी भौ मा बड़ै॥**

**शब्दार्थ**—निहकरमी-जो वेद के और स्मृतियों के कर्मकाण्ड को नहीं मानते हैं। निन्दा-परिवाद, आलोचना। करम-कर्म, वही स्मृति का कर्मकाण्ड। ताही-उसी में। चित दीजै-उसी का अनुसरण। हिरनाकुस-हिरण्यकशिपु। पंथ-मार्ग, नास्तिक, अनीश्वरवादी, शाक्त। सुम्रित-स्मृति, धर्मशास्त्र। केर-का। परगासा-प्रकाश, आदेश। अभिअन्तर -हृदयान्तर। क्रितम-कृत्रिम, मूर्तिपूजा। दासा-सेवक, उपासक। जाके-जिसके। पूजै-उपासना। ऊड़ै-नष्ट हो, शुद्ध हो। नाम-उपासक का नाम। सुमरिनी-एक सौ आठ दाने की माला। भौ-संसार, हुआ।

**मूलार्थ**—जो कर्मकाण्ड को नहीं मानता है अर्थात् जो बलि-विधान, शाक्त-कर्म, होम आदि यज्ञों को नहीं मानता है, उसकी आलोचना और निन्दा करते हैं। लोगों को उपदेश करते हैं कि ज्ञान मार्गी की निन्दा

कीजै अर्थात् उसका बहिष्कार कीजिए और जो कर्मकाण्ड को स्वीकार करता है, यज्ञ–याग में विश्वास रखता है उसी में चित्त को लगाइये। अर्थात् उसी का अनुसरण करिये। क्योंकि **'दैवी हिंसा-हिंसा न भवति'** तात्पर्य यह है कि जो देवताओं के नाम पर बलि दी जाती है, जो पूर्व काल से ही विहित कर्म चला आ रहा है उसका विरोध मूढ़ लोग करते है परन्तु वह हिंसा-हिंसा नहीं है। यज्ञ में चढ़ा हुआ पशु यजमान के साथ स्वर्ग में जाता है। इसलिए इस यज्ञ से व कर्मकाण्ड से यजमान और बलिपशु दोनों को लाभ होता है। इसलिए उसको हिंसा कहना नास्तिकों का काम है।

साहब कहते हैं कि ब्राह्मण लोग भगवान की भक्ति हृदय में लाने को कहते हैं ऊपर से राम-राम व ओम्-ओम् जपते हैं परन्तु कर्मकाण्ड में निष्ठा रखते हैं। कर्मकाण्ड को त्यागकर भगवान की भक्ति का जब मैं उपदेश देता हूँ कि हे विप्र बन्धु! प्रभु की भक्ति को हृदय से ग्रहण करो। वह तुम्हारे हित साधन में उपकारी होगा परन्तु मेरी बात न मानकर हिरण्यकशिपु का पंथ चलाते हैं। अर्थात् भगवान विष्णु की भक्ति का बहिष्कार करते हैं और अनीश्वरवाद का आश्रय लेते हैं। भला देखिये इनके स्मृति ग्रन्थों में जो इनके धर्मशास्त्र हैं वे क्या प्रकाश करते हैं अर्थात् क्या उपदेश देते हैं तो वही कर्मकाण्ड की व्यवस्था देते हैं जिसके पीछे सारा समाज चल रहा है।

सद्‌गुरु कहते हैं कि बिना अभ्यन्तर के मल को धोये, चित्त की शुद्धि नहीं होती है। और बिना चित शुद्धि के आत्मज्ञान भी नहीं होता है। परन्तु ये कर्मकाण्डी लोग चित्त शुद्धि का उपाय नहीं करते और उस हृदय निवासी राम का परित्याग करके कृत्रिम मूर्तिओं के दास बने हुये हैं सद्‌गुरु कहते हैं कि जिसके नाम जप उपासना से कुछ होने वाला नहीं है उन्हीं जड़ मूर्तिओं के नामो का जप करते हैं। परिणामस्वरूप पाप नष्ट होना तो दूर रहा उल्टे उक्त नाम जप करते हुये सुमिरनी के सहित द्वैत भावना के कारण भवसागर में डूब मरे। अर्थात् ज्ञान के अभाव में जन्म-मरण का अन्त नहीं हुआ। बार-बार इसी संसार में चक्कर काटते रहे।

**पाप पुन्नि के हाथहिं पासा, मारि जगत का कीन्ह बिनासा।**
**ई बहनी कुल बहनि कहावैं, ई ग्रिह जारैं ऊ ग्रिह मारैं॥**
**बैठे ते घर साहु कहावैं, भीतर भेद मन मुखहिं लगावै।**
**ऐसी विधि सुर विप्र भनीजैं, नाम लेत पीचासन दीजै॥**

**शब्दार्थ**—पुन्नि–पुण्य। हाथहिं–हाथ में। पासा–पाशा, हाथी के दांत या किसी पशु हड्डी के अंगुली के बराबर पहलदार टुकड़े जिनके पहलों पर बिन्दियाँ बनी होती हैं और जिन्हें चौसर खेलने वाले खिलाड़ी बारी-बारी से फेंकते हैं जिस बलय में वे पाशे पड़ते हैं उसी के अनुसार बिसात पर गोटियाँ चली जाती हैं और अन्त में हार-जीत होती है। बहनी–अग्नि, पापाग्नि। ग्रिह–गृह, घर। ई ग्रिह–यह गृह, मानव जन्म। ऊ ग्रिह–वह गृह, परलोक। साहु–साधु सच्चा। लगावै–बतावै, आरोपित करे। पीचासन–पीठासन, उच्च आसन, पीढ़ा।

**मूलार्थ**—ऊपर कहा गया कि निरावयव पुरुष की उपासना के बिना सभी धर्म वालों का कर्म-धर्म नष्ट हो गया उसका कोई अच्छा परिणाम नहीं निकला।

अब सद्गुरु कहते हैं कि इन कर्मकाण्डियों के हाथ में ही पाप और पुण्य के पाशे रहते हैं। जिसको चाहते हैं पापी कह देते हैं जिसको चाहते हैं पुण्यात्मा बता देते हैं। प्रायः इनके हाथ में पाप-पुण्य रूपी पाशा के कारण सारा संसार त्रस्त है। हिंसा वाले धर्म को पुण्य वाला बता देना और बौद्ध जैन आदि सम्प्रदाय जो अहिंसक हैं उनको पापी बता देना, वैष्णवों को अवैदिक कह देना। ये वामपंथियों के हाथ का पाशा है। जिधर चाहे उधर फेंक सकते हैं। इस प्रकार के खेल से सारे संसार के प्राणियों को मारकर विनाश कर दिये और किसी को शान्ति तथा चैन से रहने नहीं दिये। यह जो इनकी प्रवृत्ति है, यह जो इनका ज्ञान है वह अग्नि के समान है। वह कुल को नाश करने वाला है। यह परम्परा इनके खानदान की जिलाई हुई अग्नि कही जाती है अर्थात् इनके पूर्वजों का चलाया मार्ग परम्परा से चला आ रहा है। इनका जो हिंसक कर्म रूपी अग्नि है वह इस मानव लोक को नष्ट करेगी और ऊपर जो परलोक है उसको भी समाप्त करके रहेगी। अर्थात् कर्मकाण्डी लोग इस लोक में भी अशान्त देखे जाते हैं। मरणान्त में भी उसी संस्कार के कारण परलोक में भी अशान्त रहेंगे। कोई अच्छा कर्म करते नहीं हैं। परोपकार नहीं करते हैं। घर में बैठे-बैठे साधु व सच्चा मानव कहलाते हैं। पर इनकी सच्चाई की बात भीतर से ही मुख के द्वारा प्रकट होने लगती है। अर्थात् ऊपर से तो एकता का और सत्य का उपदेश देते हैं परन्तु इनके भीतर भेद-भाव भरा हुआ है, जो इनके मन का व्यवहार है, वह मुख के द्वारा प्रकट हो जाता है।

दूसरा अर्थ यदि मनमुखी लगाया जाय तो अर्थ होगा कि ये मनमुखी

लोग तो अपने घर में बैठे-बैठे साधु कहलाते हैं परन्तु दूसरे के प्रति भेद-भाव लगाते हैं व रखते हैं।

अब सद्गुरु कहते हैं कि इस विधि का इनका व्यवहार है अर्थात् इस प्रकार के ये पृथ्वी के देवता हैं। जिनको मैंने सुना है। अर्थात् इस प्रकार से इन ब्राह्मणों को समझना चाहिए। यदि यजमान सुना गया कि पंडित जी द्वार पर आ गये हैं तो दौड़कर समाज के लोग उनको उच्चासन पीढ़ा आदि देते हैं परन्तु ये ब्राह्मण लोग पूजाने के लिए तो लालायित हैं पर अपने कर्तव्य से सदा विमुख रहते हैं।

**बूडि गये नहिं आप संभारा, ऊँच नीच कहु काहि जोहारा।**
**ऊँच नीच है मध्ध की बानी, एक पवन एक है पानी ॥**
**एकै मटिया एक कुम्हारा, एक सभन का सिरजनहारा।**
**एक चाक सभ चित्र बनाई, नाद विंद के मध्धि समाई ॥**

**शब्दार्थ**—जोहारा-प्रणाम, नमस्कार, प्रकार। मध्ध-बीच। बानी-वाणी, विचार, उपदेश। मटिया-पंचतत्त्व, मिट्टी, जल, वायु, आकाश, पृथ्वी, अग्नि, पवन। कुम्हारा-कुम्भकार, ब्रह्मा, ईश्वर। सिरजनहारा-बनाने वाला। चाक-जो गोलाकार ढ़ाई तीन हाथ का होता है जिस पर कुम्हार बर्तनों को बनाता है, चक्र। चित्र-प्राणियों के शरीर। नाद विंद-जो ब्रह्माण्ड के भीतर अव्यक्त स्पंदन होते रहता है। योग अवस्था में सुषुम्ना के भीतर जो अव्यक्त ध्वनि होती है उसे नाद कहते हैं। जब ब्रह्म का नाद घनीभूत होकर सृष्टि करने के लिए उन्मुख होता है तब उसे बिन्दु कहते हैं। इसका दूसरा अर्थ और भी है। पुरुष का वीर्य विन्दु है और स्त्री का रज नाद। नाद-शिष्य, पुत्र व दत्तक पुत्र। विन्द-औरस पुत्र, स्वजन्मा पुत्र, दोनों जो शास्त्र में प्रचलित हैं। मध्धि-बीच का।

**मूलार्थ**—ऊपर कहा गया है कि सभा सोसायटी व घर आने पर ब्राह्मणों को ऊँचा स्थान देना चाहिए परन्तु साहब कहते हैं कि ये कल-युगी कुकर्म के चलते अपने आप भगवसागर में डूब गये। पर अपने को बचा नहीं सके भला किसको ऊँच कहा जाय, किसको नीच कहा जाय, किसका प्रणाम किया जाय, किसको न किया जाय ? हम तो सबको एक जैसा देखते हैं। यह ऊँच और नीच बीच में हुआ है। यह बीच की ही बात है। यदि बाह्य अर्थ किया जाय तो विद्वानों के अनुसार वैदिक काल

में और प्राग् वैदिककाल में कोई वर्णाश्रम नहीं था। न कोई ऊँच था, न कोई नीच था। सब मानव माने जाते थे।

दूसरा अर्थ यह हुआ कि न कोई उत्तम है, न कोई मध्यम होता है। अपने कर्म के द्वारा ही मनुष्य ऊँच-नीच कहलाने लगता है। सद्गुरु कहते हैं कि जब एक पवन है, जब एक ही पानी है, एक ही मिट्टी है और एक ही अग्नि है, एक ही आकाश है और एक ही गढ़ने वाला कुम्हार है अर्थात् पंचतत्त्व रूपी मिट्टी का बनाया हुआ मानव का पुतला एक ही है। क्योंकि सभी मनुष्यों में पाँचों तत्त्व विद्यमान हैं। सभी जाति के मनुष्यों में उत्तम-मध्यम देखे जाते हैं। यह नहीं कि ब्राह्मण सब सात्त्विक विचार के होते हैं और यह भी नहीं कि क्षत्रिय सब सत और रज से संयुक्त होते हैं और न ही वैश्य वर्ण ही रज और तम से संयुक्त हैं। इसी प्रकार से जिसको शूद्र कहा जाता है। वही केवल तमगुण से आवृत्त नहीं है। बड़े-बड़े महापुरुष शूद्र वर्ण में भी हुए हैं।

पूर्वकाल में व्यास, वशिष्ठ, मतंग, विदुर आदि की कोई स्पष्ट जाति नहीं कही जा सकती और उत्तम कुल कहे जाने वाले रावण आदि ब्राह्मणों में ही बड़े-बड़े राक्षस और दैत्य सुने गये हैं। इसलिए किसी मनुष्य को ऊँच कहना, नीच कहना भ्रामक बुद्धि का द्योतक है। क्योंकि सबको रचने वाला एक ही है, एक ही सिरजनहार है। एक ही करतार है और एक ही चाक रूपी यन्त्र पर मानव रूपी चित्र को गढ़ा है और बन[illegible] है।

मनुष्यों में न किसी में शूद्र का चिह्न है न किसी में ब्राह्मण का चिह्न है। यह सब कल्पित बात है। वही एक तत्त्व पिता के वीर्य में है और वही एक तत्त्व माता के रज में है। अर्थात् स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण, शूद्र सब के मध्य में वह परम पुरुष विराजमान है।

**व्यापिक एक सकल की जोती, नाउ धरे का कहिये भोती।**
**राछस करनी देउ कहावैं, बाद करैं गोपाल न भावैं॥**
**हंस देह तजि न्यारा होई, ताकर जाति कहैं धौं कोई।**
**स्याह सफेद की राता पियरा, अबरन बरन की ताता सियरा॥**

**शब्दार्थ**—व्यापिक–व्यापक जो कण-कण में समाया हुआ है। जोती–ज्योति, प्रकाश, आतमा। भोति–भौतिक, शरीर सम्बन्धी, भूत योनि से सम्बन्ध रखने वाला, मानवेतर, अनेक। राछस–राक्षस, शाक्त।

करमी–कर्म । देउ–देवता, पवित्र । वाद–सिद्धान्त, बात । गोपाल–गोविन्द, भगवान कृष्ण, ईश्वर । हंस–जीवात्मा । न्यारा–अलग, पृथक् । ताकर–उसका । धौं–भला । स्याह–श्याम, काला । सफेद–श्वेत, गोरा । राता–लाल, रक्त, अनुरक्त । पियरा–पीला । अबरन–बिना किसी रंग का । बरन–रंग वाला । ताता–गर्म, तप्त । सियरा–शीतल, ठंढा ।

**मूलार्थ**—जो परम ज्योति स्वरूप सबके भीतर प्रकाशित है एवं जो सबको सत्ता-स्फूर्ति दे रहा है, वह व्यापक चेतन एक ही है । अनेक नाम रूप धारण करने से वह बहुत नहीं कहा जा सकता है । वह है एक परन्तु उस एक घनीभूत परब्रह्म को सबमें न जानकर ये भूमिसुर, ब्राह्मण लोग राक्षसों की करनी करते हैं और देव कहलाते हैं । अर्थात् अनेकता के बीज बोकर मानव-मानव में भेद लगाकर किसी को शूद्र किसी को महाशूद्र किसी को अन्त्यज आदि कहकर उसके दिल को दुखाना चाहते हैं यही राक्षस का स्वभाव है । जो साधु होता है, जो सज्जन होता है । वह किसी का दिल व हृदय नहीं दुखाता है । ये तो अनेक प्रकार की हिंसा करते हैं । अनेकों को दुःख देते हैं और परम साधु देवता भी कहलाने की चेष्टा करते हैं ।

साहब कहते हैं कि इनका सिद्धान्त, इनकी विचारधारा परमेश्वर को अच्छी नहीं लगती है । भला इनसे पूछिये कि हंस रूप जीवात्मा शरीर तजकर व शरीर छोड़कर उससे पृथक् हो जाता है तो उसकी जाति ये ढोंगी, पाखण्डी लोग क्या कहेंगे ? वह आत्मा किस वर्ण का है किस रूप का है ? वह श्याम वर्ण का है या वह गौरांग है । या वह गेहुवां रंग का है । जिसको लाल कहते हैं । या पीला कहिये चीन वालों के वर्ण का है । या सफेद रंग यूरोप वालों का है । क्या श्याम रंग अफ्रीकियों के रंग का है । क्या लाल वर्ण भारतीयों का है । अथवा किसी भी रंग का नहीं है । या अकथनीय है, या वह किस रंग वाला है ? या गर्म या शीतल है तो ये पाप स्वरूप राक्षस कर्मी लोग उत्तर देने में असमर्थ हो जाते हैं । तब व्यवहार की बात करने लगते हैं ।

**हिन्दू तुरक की बूढो वारा, नारि पुरख का करहु विचारा ।**
**कहिये काहि कहा नहिं माना, दास कबीर सोई पै जाना ॥**

**शब्दार्थ**—हिन्दू-आर्य । तुरक–तुर्कीदेश का निवासी मुसलमान । बूढ़ो–बूढ़ा, वृद्ध, जरा । बारा–बालक । नारि–स्त्री । पुरख–पुरुष । काहु–कहिये । विचारा–विवेक । काहि–किसको । पै–दोष, पाप ।

**मूलार्थ**—पुनः सद्गुरु कहते हैं कि उपर्युक्त रंग वाला नहीं है तो क्या उसको हिन्दू कहोगे व तुर्किस्तान वाला कहोगे या मुसलमान कहोगे या यहूदी कहोगे या बालक कहोगे या वृद्ध कहोगे, या वह स्त्री रूप वाला या पुरुष रूप वाला है। इसका विचार तो करो कि वह किस रंग रूप वाला है। मैं तो कहता हूँ कि "नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः। यद्यच्छरीरमादत्ते तेन-तेन स युज्यते।" जब मैं कहता हूँ कि न वह स्त्री है न वह पुरुष है न वह नपुंसक है तो मानता नहीं। भला किससे कहा जाय कोई मानने वाला है नहीं। यही दोष मैं कबीर सबमें पाया हूँ कि एक ही आत्मा को अनेकता में विभाजित कर दिया गया है जिसके कारण संसार में खलबली मची हुई है।

**बहा है बहि जात है, कर गहे चहुँ ओर।**
**जो कहा नहिं मानै, दै धक्का दुइ और॥**

**शब्दार्थ**—बहा है–नष्ट हो चुका है। वहि जात है–नष्ट हो रहा है। कर–हाथ। चहुँ–चारों ओर। गहे–पकड़े। धक्का–ठेलना। दुइ–दोबारा।

**मूलार्थ**—साखी के पूर्व में कहा गया है कि इन ब्राह्मणों को मैंने बहुत समझाया कि हे भाई! संसार के सारे मनुष्य एक ही हैं। उनमें किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं है सबमें प्रभु का वास है। इसलिए तुम किसी का तिरस्कार मत करो। किसी का हृदय न दुःखाओ परन्तु मेरी इस बात को इन भूमि के देवताओं ने एक भी नहीं सुनी। भला अब किससे कहूँ। यही इनका अपराध मैंने देखा है कि वे किसी की बात मानने को प्रस्तुत नहीं हैं। अपनी अनुत्तम बुद्धि के कारण इस भवसागर में बह गये हैं, नष्ट हो चुके हैं और जो बचे हैं वे भी उसी रास्ते पर बहे जा रहे हैं, नष्ट होते जा रहे हैं। बचने के लिए चारों ओर देख रहे हैं। कोई दिखाई नहीं दे रहा है। इसलिए बहाव चालू है। अर्थात् इनके बहने का कारण चतुर्दिक, माया-मोह को पकड़े हुए हैं। विषय-सुख के द्वारा सन्तुष्ट होना चाहते हैं। इसलिए इनका बहाव चालू है।

मैंने इनको बहुत समझाया परन्तु ये मेरी बात सुनने के लिए तैयार नहीं हैं। अर्थात् जो लोग कहा नहीं मानते हैं उनको दो बार और धक्का दो कि क्या जाने भवसागर का किनारा पकड़ लें, अच्छे मार्ग पर आ जायें। सत्य कर्म करने लगें। यही मेरी प्रबल इच्छा है कि सभी मनुष्यों का कल्याण हो।

**मंगलाचरण टीकाकार**

छन्दः—बरणन किया गुरु विप्रमति जो, जगत में व्यापी रही।
संत्रस्त सब जन लोक हैं, जिनसे धरा तप्ती रही॥
यह बात सब जग जानते, ए विप्र बड़ कांती[1] रहे।
यह दास गंगा कहत है, भू देव बड़ घाती रहे॥

# सबद ४

# कहरा प्रकरण

छन्दः—जन भीति निवारण नीति कही, गुरुदेव कबीर प्रकार कही।
कहरा जनगीति पुनीति कहे, सबके हित की तहँ बात रही॥
योग कि बात सुध्यान कि बात, सु और अनेकन भेद भना।
पद पंकज शीश धरो हमही, गुरु देव कबीर महा सुमना॥

## कहरा १

### सहज योग ध्यान तथा जीव उद्बोधन प्रकरण

**सहज ध्यान रहु सहज ध्यान रहु, गुर के बचन समाई हो।**
**मेली स्रिस्टि चरा चित राखहु, रहहु द्रिस्टि लउलाई हो॥**
**जस दुख देखि रहहु येहि ओसर, अस सुख होइहैं पाये हो।**
**जो खुटकार बेगि नहिं लागे, हिृदै निवारहु कोहू हो॥**

**कहरा**—'कहरा' एक ग्रामीण गीत है। जिसको कहार जाति के लोग अधिकतर गाते हैं। स्मरण रहे कि वे लोग बहगी ढ़ोते हैं। अधिकतर भू स्वामियों के यहाँ रहते हैं। जब वे बहँगी लेकर चलते हैं तब वे ताड़ी आदि का उपयोग करते हैं। उसी मस्ती में झूमते हुए 'कहरा गीत' को गाते चले जाते हैं। इसी जाति का साथी 'पितमा गीत' भी है। अर्थात् प्रियतमा जिसको ऊँटहेरा ऊँट लादने वाले और कहार दोनों गाते हैं। इन दोनों सहोदर गीतों में अश्लील शब्दों का ज्यादा प्रयोग होता है। पिंगल की दृष्टि से यह 'ताटंक छन्द' के अन्तर्गत आता है।

सद्गुरु कबीर जब रामधुन में मस्त होते हैं और ग्रामों का भ्रमण करते हैं और उन ग्रामीणों को समझाने की जो उनकी शैली है उसी ग्राम्य गिरा

---

१. कांती—कांता एक प्रकार का हथियार जो डोमों के यहाँ रहता है जिसके द्वारा बांस को काटते व चीरते हैं।

में गा करके समझाते हैं। मैं चालीस-पचास वर्ष पहले सुना था कि कहारों के स्वर में यह गीत बहुत सुन्दर गाया जाता था। उक्त गीतों का प्रचलन आज से चालीस-पचास वर्ष पहले बहुत था। प्रियतमा और कहरा को राह चलने वाले गाने वालों को गाँव के लोग रोककर सुनते थे और उसके उपलक्ष्य में कहारों को कुछ देते भी थे। वही यह अट्ठाइस मात्रा वाला ताटंक छन्द कहरा है।

सद्गुरु महाराज मस्ती में आकर इसका आरंभ करते हैं।

**शब्दार्थ**—सहज–सरल, प्राकृतिक, स्वाभाविक, जिसके सम्पादन में किसी प्रकार की कठिनाई न हो, जो अपने आप मनुष्यों के हृदय में उत्पन्न हो जाय। ध्यान–चित्त को एकाग्र कर अभीष्ट ( इष्ट ) में मन को लगाकर एकाग्र करना ध्यान कहलाता है। 'यथा अभिमत ध्यानाद्वा' ( पातंजलयोग दर्शन ) समाई–समाविष्ट होकर। मेली-मैली, गंदी। चरा–चंचल, चलायमान। द्रिस्टि–दृष्टि, नेत्र। रहहु–रहो। लउलाई-अनुरक्त, प्रेम करो। औसर–समय। खुटकार–खुटका, चिन्ता, शोक। वेगि–शीघ्र। निवारहु–निवारिये, दूर करिये। कोहू–काहे, क्रोध, कोई।

**सम्बन्ध**—इसके पूर्व 'विप्रमतीसी' में कहा गया है कि मनुष्य की उत्तमता उत्तम गुणों से होती है न कि किसी उत्तम वर्ग में जन्मने से श्रेष्ठ होता है और अन्त में यह भी कहा गया है कि लोगों को समझना चाहिए कि जो न मानता हो तो दो-चार बार सुधारने का प्रयत्न और करना चाहिए और सुधरने के बाद किस मार्ग पर चलना चाहिये। उसका दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

**मूलार्थ**—'कहरा' प्रकरण में सद्गुरु जिज्ञासुओं से कहते हैं कि हे संत भाइयों ! प्रभु-प्राप्ति वा आत्म-प्राप्ति के अनेक मार्ग हैं। जिसको पूर्व में भी कहा गया है परन्तु सबसे सुलभ सहज योग है। जिसमें बिना परिश्रम के अपने आप चित्त की वृत्ति आत्मा की ओर अग्रसर हो जाती है उसको सहज ध्यान कहते हैं। बात तो बड़ी सरल है परन्तु बिना अभ्यास के कभी सहज योग या सहज ध्यान लगता नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि इसके पूर्व अन्य प्रकरणों में बहुत सी अभ्यास की बातें बतायी गयी हैं। जिनका अभ्यास करते–करते वृत्ति शान्त हो जाती है। अब उसके पश्चात् कहते हैं कि सहज ध्यान रहो। अर्थात् स्थित प्रज्ञ होओ। स्थित प्रज्ञ होने में गुरु के उपदेश की आवश्यकता होती है। बिना गुरु के सहज

योग सुलभ नहीं होता है। इसलिए कहते हैं कि सद्गुरु के वचन में समाविष्ट होकर तन्मय होकर ध्यानस्थ हो जाओ।

इसकी विधि यह है कि सिद्धासन से बैठकर मेरुदण्ड को सीधा रखकर सहजरूप में बैठ जाय और जिह्वा को न तालु से सटने दें न दाँत से, बीचोबीच रखे। ऐसा करने पर वृत्तियाँ अपने आप सिमटने लग जाती हैं। चित्त एकाग्र हो जाता है। शीघ्रता के साथ सुरति आज्ञा चक्र में प्रवृष्ट होकर इष्ट ध्यान में लग जाती है। पश्चात् सहस्रार में जाकर सहज रूप से स्थिर हो जाती है। यही एक सहज योग की प्राविधि है।

दूसरी प्राविधि जिसका जो अत्यन्त प्रियतम इष्ट हो। उसी को दृष्टि के सामने रखे। उससे भी वृत्ति अन्तर्मुखी हो जाती है। 'यथा अभिमत ध्यानाद्वा' के अनुसार ऊपर बात उपलक्षित होती है। कहते हैं कि यदि तुम सहज ध्यान में नहीं अनुरक्त होंगे तो तुझे संसार में कहीं भी शांति के दर्शन नहीं होंगे क्योंकि यह जो सृष्टि है बड़ी मैली है, बड़ी दुर्गन्ध युक्त है और चलायमान है। इसलिए अपने चंचल चित्त को स्थिर रखो। जिससे तुझे कल्याण के मार्ग मिलें। इस सृष्टि को कहीं से भी शुद्ध मत समझो। यावत् चराचर सृष्टि दोषपूर्ण है। इसलिए इस गन्दी सृष्टि से मन को हटाकर अन्तर में जो विराजमान परमतत्त्व है उसी में अपनी दृष्टि को लगाओ। अर्थात् अन्तर की दृष्टि में लगाकर उस परम तत्त्व में लौ लगाकर अनुरक्त हो जाओ। क्योंकि लौ नाम प्रेम का है। लगन का है। इसलिए अन्तरात्मा से सम्बन्ध जोड़ने के विषय में कहा गया है।

कहते हैं कि प्रथम तो लौ लगाने में मन बहुत भागता है। शीघ्र एकाग्र नहीं होता है और साधक को बहुत कष्ट का अनुभव भी होता है परन्तु कहते हैं कि जिस प्रकार का दुःख इस समय तुझे दिखाई दे रहा है। उसी प्रकार का सुख तुम्हें आगे चलकर प्राप्त होगा। जब तुम्हारा उन्मत्त मन बाहर से घूमकर भीतर आ जावेगा और अपने से प्रेम करने लगेगा तब तुझे महान सुख का अनुभव होगा। अभी तो यह मन दूसरे से प्रेम कर रहा है। यह मन कभी-कभी साधना में विलम्ब होने पर शोकाकुल हो जाता है। उसके लिए कहते हैं कि उस शोक का निवारण करो। खुटका को वेगि हटाओ तुम्हारे पास चिन्ता न आने पाये। उसको हृदय से बाहर करो। अर्थात् अन्दर से निवारण करो। कोह जो क्रोध है उसको तो कभी भूलकर भी न आने दो। क्योंकि जब क्रोध आयेगा तब तो सर्वनाश कर देगा। इसलिए उसका निवारण अत्यन्त आवश्यक है।

**मुक्ति कि डोरि गाढ़ि जनि खैंचहु, तब बझिहैं बड़ रोहू हो।**
**मनुवहिं कहहु रहहु मन मारे, खिझुवा खीझि न बोले हो ॥**
**मनुआं मीत मितइओ न छोड़े, कमउं गांठि नहिं खोलै हो।**
**भोगहु भोग भुक्ति जनि भूलहु, जोग जुगुति तन साधहु हो ॥**

**शब्दार्थ**—डोरि–रस्सी, ध्यान, शम, दम आदि साधन। गाढ़ि–कठिन जल्दी, भारी, जोर से। जनि–नहीं। खैंचहु–खींचो। बझिहैं–फँसेगे, प्राप्त होगा। रोहू–साधन फल, एकाग्रता, रोहू मछली। मुक्ति–मुक्ति। मनुवहिं–मन को। मनमारे–उदास, शान्त। खिझुआँ–खींझना, क्रोधित होना, चिड़चिड़ाकर। खींझि–खीझकर। मनुआँ–मन। मीत–मित्र। मितइओ–मैत्री, मित्रता। कमऊं–काम, ब्रह्मचर्य। गांठि–गिरह, ग्रंथी। खोले–भंग न करो। भोगेहु–भोगो भोग सांसारिक वस्तुओं का उपभोग, सिद्धियों का आनंद। मान सम्मान। भुक्ति–भोग। जनि–नहिं। भूलहु–भूलो। जोग–योग मन को परमतत्त्व से जोड़ना। जुगुति–युक्ति, उपाय। तन–शरीर। साधहु–साधना करो।

**मूलार्थ**—ऊपर कहा गया है कि हृदय से जब क्रोध समाप्त हो जायेगा तब तुम मुक्ति के अधिकारी हो सकोगे। परन्तु कहते हैं कि उस मुक्ति की जो डोरि-रस्सी है। शम दमादि साधन हैं ध्यान धारणा आदि जो उसके द्वार हैं। उसमें दुःसाधना मत करो। अर्थात् बहुत कठोरता के साथ उस साधना को न करो। दूसरी बात जो सुरति है। जिसको परमतत्त्व में लगाया जाता है। जो संसार में आसक्त हो गयी है। उसको एकाएक न खींचो। नहीं तो पुनः वह टूट जायेगी इसलिए सुरति रूपी डोरि को बहुत शनैः-शनैः खींचो। तभी इस भगसागर में तुझे सफलता मिल सकती है और जो साधना का जाल भवसागर में तू फेंका है उसकी बड़ी सावधानो से तुझे निगरानी करनी होगी। क्योंकि जो रोहू रूपी मुक्ति है जो मछलियों में सबसे बड़ी होती है जिसे खाने वाले बहुत सुस्वादु बताते हैं। वह जाल में फँसने पर जल्द बाजी करने पर तोड़कर निकल जायेगी इसी प्रकार से मुक्ति रूपी रोहू को जिससे जन्म-मरण का अन्त हो जाता है। वह तुझे तभी प्राप्त होगी और तुम्हारी साधना रूपी जाल में तभी बझेगी। जब सावधानी पूर्वक साधन करोगे। तू अपने मन को समझाओ कि हे मन! तुम संसार से उदासीन हो जाओ। संसार को किन्हीं वस्तुओं

में सुरति को मत फँसाओ नहीं तो तेरी साधना का फल तुझे उपलब्ध नहीं होगा।

यदि तेरी साधना के सन्दर्भ में कोई खिझाने वाला, कोई विघ्न डालने वाला तेरा स्पर्धी या तेरा विधर्मी तुमको साधना से विरत करना चाहता है खीझा कर चाहता है कि तेरी साधना नष्ट हो जाय क्योंकि "श्रेयांसि बहु विघ्नानि" मंगल कार्यों में बहुत प्रकार के विघ्न आते हैं। तो तुम उसी तरह उससे खीझकर मत बोलो क्योंकि यदि तू खीझकर बोलेगा तो तेरा ही नुकसान होगा। तुम उस खीझाने वाले से व विघ्न डालने वाले से अपने मन से, अपने वचन से मित्र बना लो और उसकी मित्रता को छोड़ो मत अर्थात् संसार से बचने के लिए तू अपने कार्य साधने के लिए सबसे मैत्री भाव रखो और काम की जो गाँठ है अर्थात् तुम्हारा जो ब्रह्मचर्य है उसको खोलो मत अर्थात् वीर्यपात् को रोको। ऊर्ध्वरेता नैष्ठिक ब्रह्मचारी बनो। जब तक तू ब्रह्मचर्य को पूर्णरूपेण धारण नहीं करोगे। तब तक आत्मतत्त्व से वंचित रह जाओगे। क्योंकि "**ब्रह्मचर्यं प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः**" अर्थात् ब्रह्मचर्यं की प्रतिष्ठा से सामर्थ्य की शक्ति उत्पन्न होती है और जब तू सामर्थ्यवान होंगे तभी आत्मलाभ कर सकोगे। इसलिए तुम वीर्यवान बनो।

अब प्रश्न उठता है कि क्या सबके लिये ब्रह्मचर्यव्रत पालन करना सम्भव हो सकता है या पूर्णरूप से ब्रह्मचर्य सबके लिए विहित हैं तो कहते हैं कि नहीं। सद्गुरु का कहने का तात्पर्य यह है कि जो साधु जन हैं, जो संन्यासी हैं। उनके लिए तो पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्यं जरूरी है परन्तु जो सपत्नीक हैं, बाल-बच्चे वाले हैं। वे सन्तान उत्पत्ति के लिए स्त्री का सम्पर्क कर सकते हैं और संसार की वस्तुओं का उपभोग कर सकते हैं परन्तु युक्तिपूर्वक उस भोग को भोग सकते हो और उस भोग में भूलना नहीं चाहिए। उस भोग को भोगते हुए भूलने का निषेध किया गया है और नीचे की पंक्ति में कहा जा रहा है कि वे सद्गृहस्थ भी योग-युक्ति के अधिकारी हैं। उनको भी योग-युक्ति की साधना करनी चाहिए। अन्यथा योग-युक्ति नहीं साधोगे तो उसका परिणाम बड़ा भयंकर होगा।

**जो यहि भांति करहु मतवलिया, ता मत के चित्त बांधहु हो।**
**नहिं तो ठाकुर हैं अति दारुन, करिहैं चाल कुचाली हो॥**

**बांधी मारि डंड सभ लेहैं, छूटिहैं तब मतवाली हो।**
**जबही सावत आनि पहुँचे, पीठि सांटि भल टूटै हो॥**

**शब्दार्थ**—यहि–इस। भांति–प्रकार। मतवलिया–मतवालापन, उन्मत्तता। ता–उस। मत–अहंकार, विचार। चित्त–मन। बांधहु–बाँधो। ठाकुर–परमात्मा, ईश्वर कार्यब्रह्म, यमराज। दारुन–कठोर। करिहैं–करेंगे। चाल–पैतेरेवाजी, गति, आवाज, घोषणा। कुचाली–कुमार्गी, कुराही। बांधी–बाँधकर। डंड–दण्ड। लैहैं–लेंगे। छुटिहैं–छूटेंगे। मतवाली–मतवालापन। जबही–जब। सावत–समय, यमदूत, मृत्यु, संयोग। आनि–आकर। पीठि–पीठपर। सांटि-सांटा, बांस की मोटी पैन जिससे देहात में बदमाशों को पीटा जाता है। भल–अच्छी प्रकार से। टूटे–टूटेंगे।

**मूलार्थ**—जो मेरी बात पर विचार नहीं करोंगे उक्त भोग में ही उन्मत्त हो जाओगे जो इस प्रकार से मतवालीपन करोगे तो अच्छा नहीं होगा। मैं तो यही कहूँगा कि जो मतवालीपन का विचार है तो कहिये उस मत के विचार से चित्त को रोको। अर्थात् उक्त मतवालीपन में चित्त फँसने न पाये। उसको योग-युक्ति में बाँधो नहीं तो जो जगत का रचयिता है जिसने इस सृष्टि को बनाया है वह इसका ठाकुर है।

ध्यान रहे कि ठाकुर शब्द भयानक एवं कठोर है यह दंड देने के अवसर पर पहले प्रयुक्त होता था। तो यहाँ पर साहब कहते हैं कि जो चित्त को नहीं रोकोगे। मतवालीपन करोगे तो ठाकुर बड़ा कठोर है, अति दारुण है, तुम्हारी चाल से वह परिचित है। अगर तू उसकी सृष्टि में चाल-कुचाली करोंगे अर्थात् अपने आचरण को बिगाड़ दोगे तो वह सर्वज्ञ पुरुष तुझे बाँधकर मारेगा और जितना भी अपराध किये हो उन सब अपराधों का दंड तुझे चुकाना पड़ेगा। दंड स्वरूप चौरासी लाख योनियों में डालकर कुम्भी पाक, रौरव, महारौरव, आदि नरकों में भेज देगा। जहाँ जाने पर तेरी मतवालीपन अपने आप छूट जायेगी। आज जो तू छाती उतानकर चल रहे हो। अपने बल के मद से, धन के मद से, पद के मद से, विद्या के मद से, जवानी के मद से, बड़ों के साथ उन्मत्त व्यवहार कर रहे हो। गरीबों को सता रहे हो, चोरी डकैती कर रहे हो, बलात्कार कर रहे हो, निर्बल प्राणियों को बहुत कटवा रहे हो। इत्यादि प्रकार की तेरी सारी मतवालियाँ चूर-चूर हो जायेंगी। घबड़ाओ मत जबही समय आ जायेगा तब ही यमदूत आकर तेरे द्वार पर पहुँच जायेंगे और तेरी पीठ

पर तुझे निहुराकर बाँस के डंडे से खूब पीटेंगे। अर्थात् अच्छी प्रकार तेरी धुलाई करेंगे।

**ठाढ़े लोग कुटुम सभ देखै, कहे काहु के न छूटिहैं हो।**
**एक तो निहुरि पाँउ परि विनवे, बिनति किये नहि मानै हो ॥**
**अनचिन्हे रहेउ न किये चिन्हारी, सो कसे पहिचनबेऊ हो।**
**लीन्ह बुलाय बात नहिं पूछै, केवट गरभ तन बोलै हो ॥**

**शब्दार्थ**—कुटुम–परिवार के लोग। काहु–किसी के। निहुरि–झुककर। बिनति–बिनती, प्रार्थना। अनचिन्हे–अपरिचित। चिन्हारी–परिचय। लीन्ह–लिया। केवट–कैवर्त, नौका खेवनेवाला। गरभ–गर्व, घमंड। तन–मन।

**मूलार्थ**—जब भगवान रवितनय के दूत जीवात्मा की कुटाई करने लगते हैं तो यह जीवात्मा रोने-गाने लगता है। अर्थात् मृत्युकाल में अधिक मृतधर्मों को देखा जाता है कि उनके प्राण जल्दी निकलते नहीं हैं। कितने के तो चौबीस-चौबीस घंटे तक अविरल धारा आँखों से बहती रहती है और प्राण कंठ में ही फँसे रहते हैं। उसके कुटुम्बीजन खड़ा होकर सब देखते रहते हैं और वे लोग भी मरणधर्मा के कष्ट को देखकर रोते-कलपते हैं और भगवान से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु ! इसके कष्टों को दूर कर दो परन्तु कितना भी कोई कहे किसी के कहने पर यमकिंकर वक्शते नहीं हैं। घर के लोग जल्दी प्राण निकलने के लिए पुराणों का पाठ बैठाते हैं तथा गाय की बाछी की पूछ पकड़वाते हैं। नाना प्रकार के दान-दक्षिणा देते हैं और निहुरि कर पाँव पर पड़ते हैं। अर्थात् भगवान से विनय करते हैं कि हे प्रभो ! इस मरणधर्मा का प्राण इधर करें चाहे उधर करें परन्तु कितनी भी विनती की जाय जिसको यमकिंकर पकड़ लिये हैं। वे विनय करने पर भी नहीं सुनते हैं और न विनयी पुरुष की बात ही मानते हैं।

प्रश्न उठता है कि विनती और प्रार्थना से तो भगवान सुनते हैं परन्तु यहाँ क्यों नहीं सुन रहे हैं ? इस मरने वाले को क्यों नहीं छोड़ रहे हैं। तो सद्गुरु कहते हैं कि यावत् जीवन तुम लोग भगवान से अपरिचित रहे। कभी उनसे परिचय नहीं किया, कभी उनका भजन-भाव नहीं किया और परिचय होने वाले दान-पुण्य भी नहीं किया। किसी अकिंचन व्यक्ति का पेट भी नहीं भरा। किसी भूखे-दुःखे को वस्त्र नहीं दिया, साधु-सन्तों की

सेवा नहीं की और शम-दम साधनों की ओर ध्यान भी नहीं दिया। सो कहिये वह परमेश्वर कैसे और किस प्रकार से तुझे पहिचानेगा। यदि कभी उससे परिचय वाली बात किया होता तो कदापि तुझे नहीं भूलता। कभी किसी को श्राद्ध कर्म आदि में खिलाने के लिए बुलाया भी तो उसका उचित सत्कार भी नहीं किया और न उससे प्रेम से बात ही पूछी। कोई कभी कुछ मांगने गया अमुक चीज की मुझे जरूरत है तो केवट की तरह अलगर्जी होकर बोला।

तात्पर्य यह है कि शुभ आदि कर्म पहले न करने के कारण अन्तकाल में भगवान उसको अपने पास बुला लेते हैं और सत्कर्म आदि न रहने से उसके दुःखों की सुनवाई भी नहीं होती है। यदि यमलोक में वह यमराज से कुछ सहायता चाहता है तो यमराज उसी प्रकार से फटकारता है जैसे बिना पैसे वाले के साथ पार ले जाने के लिए मल्लाह बात करता है। जिसके पास पैसा नहीं रहता है। कदापि उसको वह नाव पर नहीं चढ़ाता है। बड़े ताव से उससे बोलता है। इसी प्रकार से सत्कर्म न होने से संसार से पार करने वाले परमेश्वर भी जीव के साथ ऐसा ही व्यवहार करता है।

**जाकी गांठि समर किछु नाहीं, सो निरधनिया होय डोलै हो।**
**जिन सम जुगुति आगमन कै राखिन, धरनि मच्छि भरि डेहरि हो॥**
**जेकरे हाथ पाउ किछु नाहीं, धरन लागु तेहि सोहरि हो।**
**पेलना अछत पेलि चलु बउरे, तीर-तीर का टोवहु हो॥**

**शब्दार्थ**—जाकी–जिसकी। गांठि–ग्रंथि, हृदय व घर में, पास में। समर–मार्ग, खर्च। सो–वह। निरधनिया–अकिंचन। जिन्ह–जो। सम जुगुति–समानों को युक्ति से। आगमन–पहले से हो। राखिन–रक्खा है। धरनि–धरा, संचित किया। मच्छि–मछली, पुण्य, सत्कर्म। डेहरि–कोठरी जो मिट्टी का बनाकर रखा जाता है जिसमें किसान लोग अनाज रखते हैं और मिथिला क्षेत्र में मैथिल लोग मछलियों को सुखाकर अन्य दिनों के लिए व खाने के लिए रखते हैं। जेकरे–जिसके। धरन–रखना, पकड़ना। लागु–लाग, लगा। तेहि–उसको। सोहरि–नाव की पाल खींचने वाली डोरी। पेलना–एक बांस का डंडा जिसको मल्लाह लोग लेकर किनारे में जमी हुई नाव को उस डंडे को लगाकर पानी की ओर ठेलते हैं, साधन। अछत–रहते हुए। पेलि–ठेलि। बउरे–रे गंवार। तीर-तीर–किनारे-किनारे। टोवहु–टोते क्या हो।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जिसकी गांठ में व पास कुछ मार्ग व्यय नहीं है वह दरिद्र दशा में इधर से उधर डोलते रहता है। अर्थात् जिसने मार्ग व्यय रूपी सुमिरन-भजन, योग-युक्ति कुछ नहीं राखा और राम का नाम नहीं लिया तो उस निर्धन पापात्मा को कौन पूछ सकता है? वह इधर से उधर डोलते रहता है। कभी कीट-पतंग आदि योनियों में जाता है। कभी पशु आदि योनियों में जाता है। घूम-घूमकर नाना कष्टों का भागी बना रहता है और जो व्यक्ति सत्कर्म रूपी धर्म रूपी सामान को युक्ति के साथ पहले से ही सुरक्षित करके रख देता है। अर्थात् जो पुण्य कर्मों को भवसागर पार होने के लिए पहले से ही संचय करता है। वह निःसन्देह भवसागर पार हो जाता है। जैसे मत्स्य व्यवसायी सूखा काल के लिए जब जीवित मछलियाँ उपलब्ध नहीं होती हैं तब के लिए पकड़कर मछलियों को सुखाकर कोठिला में भर देता है तो उसके लिए क्या चिन्ता है? इसी प्रकार से पुण्य और ज्ञान-ध्यान से दान-पुण्य से अपने हृदय रूपी कोठरी को जिसने भर लिया है। उसके लिए क्या चिन्ता है? वह भवसागर तुरन्त पार हो जायेगा। जिसके हाथ पांव नहीं हैं जो केवटों की तरह लोक का केवट नहीं है। वह **'अपाणि पादो यवनो गृहीता'** की तरह सत्पुरुष है। वह धर्मात्माओं को सत्य की नाव पर बैठाकर तुरन्त पाल की डोरी खींचता है और भवसागर को पार कर देता है। अर्थात् जो निर्गुण ब्रह्म है वह तुम्हारे सत्य कर्मों की नौका को भवसागर में पकड़ लेता है। बहने नहीं देता है और सत्कर्म रूपी डोरी को खींचकर वायु के अनुसार पाल को कर देता है। विना परिश्रम के ही जीव भवसागर से पार हो जाता है।

साहब कहते हैं कि रे मूर्ख मनुष्य! तुझे मानव तन मिला है। उसको तुम ही ठेलने वाला व भवसागर पार करने वाला पेलना कहिये ठेलना है। उसके रहते तू पार हो चलो। क्या किनारे-किनारे व तट के पास टो रहा है। किनारे खड़े होने से तुझे कुछ लाभ नहीं होगा। न वहाँ कुछ मिलने वाला है। अर्थात् प्रभु ने तुझे ज्ञान रूपी पेलना दिया है। जिससे माया-मोह काम-क्रोध आदि कुजन्तुओं को मारकर भगा दो और भवसागर को पार कर ले। केवल नदी के तट पर खड़े रहने से अर्थात् केवल धर्म की बात सुनने से कुछ नहीं होगा। उस पर आचरण करने से ही तुझे लाभ मिलेगा शरीर के रहते आत्मा की प्राप्ति कर ले। अपने

को जान ले। प्रभु का साक्षात्कार कर ले। जिससे कि तू भवसागर में डूबने से बच जायेगा।

**उथले रहहु परहु जनि गहिरे, मति हाथहु की खोवहु हो।**
**तड़के घाम ऊपर के भुभरी, छांह कतहुं नहिं पायहु हो॥**
**ऐसनि जानि पसीजहु सीझहु, कस न छतुरिया छायउ हो।**
**जो किछु खेड़ कियहु सो कीयहु, बहुरि खेड़ कस होई हो॥**
**सासु ननद दुइ देत उलाटन, रहउ लाज मुख गोई हो।**

**शब्दार्थ**—उथले–कम पानी में, प्रथम धीमी-धीमी साधना, हल्की साधना। गहिरे–अथाह, एकाएक, ब्रह्मज्ञान, मत पढ़ो। खोवहु–नष्ट न करो। तड़के–तेज घाम, कुआर व जेठ का उग्र घाम। छांह–छाया। ऐसनि–इस प्रकार। पसीजहु–पसीना से तरबतर। सीझहु–सुखाओ मत, शरीर को कष्ट न दो। कस–क्यों न। छतुरिया–छाता, मड़ई। छायउ–छाया क्यों नहीं। खेड़–भोग बिलास, अनाप-सनाप व्यवहार। कियहु–किये। सासु–माया। ननद–अविद्या। उलाटन–इधर से उधर पटककर लोटाना।

**मूलार्थ**—उथले कहिये प्रथम साधना हल्के से शुरू करो। अर्थात् मन को व पंचज्ञान इन्द्रियों को पहले धीरे-धीरे–शनैः शनैः रोको। एकाएक गहरे में गोता मत लगाओ। वेदान्त की बात न करो। पहले तू गुरु के पास जाकर भक्ति की जड़ जमाओ। बाहर भीतर की शुद्धि करो और गुरु के द्वारा बताये हुए मार्ग का अनुसरण करो। पहले नाम जप करो। निष्काम कर्म करो। तब गहिरे ज्ञान में गोता लगाओ। अन्यथा जो तेरी थोड़ी बहुत श्रद्धा है। वह भी नष्ट हो जायेगी। क्योंकि आत्मा की बात चेतन की और ब्रह्म की बात केवल करने से भक्तिहीन को कुछ हाथ लगने वाला नहीं है। जिस प्रकार से समुद्र में रत्न खोजने वाला पहले उथले जल में टटोलता है। पश्चात् गहरे गोता लगाकर रत्नों की उपलब्धि करता है। यदि एकाएक अथाह जल राशि में रत्न खोजने वाला कूद जायेगा तो स्वयं डूबकर मर जायेगा और पास का जो साधन है वह भी नष्ट हो जायेगा।

इसी प्रकार से जिज्ञासु को चाहिए की पहले श्रद्धा-भक्ति जमावे। फिर आगे की ओर बढ़े। क्योंकि संसार में बहुत घोर दुःख है। इसलिए

साधन भक्ति भजन करना नितान्त आवश्यक है। साहब कहते हैं कि यह संसार उसी प्रकार से है। जैसे जेठ के महीने का तड़का हुआ उग्र घाम उगता है तो भूभरी कहिये नीचे की धूलि स्वयं ताप के चलते क्रियाशील हो जाती है। उसमें किसी का पांव पड़ता है तो पैर उसके जल जाते हैं फफोले पड़ जाते हैं। इसी प्रकार से मनुष्य की जो विशाल तृष्णा है। वह उग्र घाम की तरह है। जिसके कारण मनुष्य अशान्त है और नीचे भी कुछ शीतल नहीं है। अर्थात् तृष्णा ही नहीं है। वासना भी भरी पड़ी है। जो भूभरी का काम कर रही है। तृष्णा और दुर्वासना के चलते मनुष्य बीच में ही भूना जा रहा है, तप रहा है।

सद्गुरु कहते हैं कि इसको कहीं भी छांह नहीं मिल रहा है अर्थात् तृष्णा और दुर्वासना के रहते ये कभी भी शान्ति नहीं पा सकता है। पुनः कहते हैं कि रे मूर्ख मनुष्य ! तू जिस प्रकार से दुःख पा रहा है। क्रोधाग्नि में जल रहा है। यह सब तू जान रहा है। तृष्णा की पूर्ति में पसीने-पसीने हो रहा है। क्रोधाग्नि में जल रहा है। तो क्यों नहीं उसका उपाय करता है ? अर्थात् उसके निवारण के लिए साधन रूपी, त्याग रूपी, वैराग्य रूपी छतरी को क्यों नहीं छाता है जिसकी छाया में तू रह सकता है ? जब तू त्याग, वैराग्य रूपो मड़ई को अपने लिए तैयार कर लेगा। तब तेरा तृष्णा रूपी उग्र घाम से बचाव हो जायेगा। छोड़ो अब तक जो कुछ तू खेल तमाशा किया सो किया। जो भवसागर के सुख को सत्य मानकर जीवन का अन्त किया सो किया, परन्तु हे भाई ! अब इस प्रकार नादानी का काम न करो। अर्थात् मोह, माया से रहित होकर कुछ परमार्थ करो। यदि ऐसा नहीं करोगे तो सासु, ननद कहिये अविद्या एवं माया के कारण तू उनमें फँस जायेगा और जब अविद्या रूपी ननद तूझे फँसा लेगी। माया तेरे को वश में कर लेगी तब तुझे वे दो उलाटन उस उग्र घाम में देंगी अर्थात् उस भयानक तृष्णा की गर्मी में दोनों मिलकर भूमि पर पटककर तुझे इधर से उधर लोटायेंगी। तब तू तृष्णा के कारण और अनेक दुःखों का भागी बनेगा और अपनी भूल को समझकर वृद्धावस्था आने पर अपनी भूलपर लज्जा से मुख गुरुजनों के समक्ष व ज्ञानियों के समक्ष छिपाओगे। गलती करने वाला मनुष्य जैसे बड़े लोगों के सामने नहीं होता है। वैसा ही पापी मनुष्य भी सत्पुरुषों के सामने जाने से लजाता है।

**गुर भौ ढील गोनि भइ लचपच, कहा न मानेहु मोरा हो।**
**ताजी तुरकी कबहुँ न साधेहु, चढ़ेउ काठ के घोरा हो॥**

**शब्दार्थ** – गुर–भेली, जोवात्मा। भव–हुआ। ढील–गीला, शक्ति हीन। गोनि–जिसमें गुड़ रखा जाता है। वह सुतली से बिना हुआ एक जाल होता है उसी का थैला बनाते हैं, शरीर। लचपच–गुड़ से लिपट गया; चुने लगा। ताजी–अरबी घोड़ा, विवेक। तुरकी–तुर्कीस्तान का घोड़ा, वैराग्य। साधहु–साधन। काठ–असत्य, विषय-वासना। घोरा–घोड़ा, अश्व।

**मूलार्थ**—असफलता में मुख को छिपाये रहा। सारा जीवन बीत गया। कुछ कर न सका। जीवात्मा की शक्ति क्षीण हो गयी। इन्द्रियाँ जब कमजोर हो जाती हैं तब आत्मा भी ठीक रूप से शक्ति संचालन नहीं कर सकता ढील कहिये उसमें शिथिलता आ जाती है, आलस्य आ जाता है। जिसके जलते गोनि जो शरीर है कमजोरी के कारण जीव उसी को अपना समझने लगता है। अर्थात् शरीर में तादात्म्यभाव हो जाता है। वृद्ध मनुष्य जरावस्था में अधिक से अधिक मोह–माया में लिपट जाता है। इस पर एक कथा है

एक गुड़ का व्यापारी गुड़ खरीदता था और मंडी में ले जाता था। बेचता था। नित्य किसानों के यहाँ से ले जाना–ले आना यही उसका काम था। आषाढ़ का महीना था। बीच रास्ते में ही वर्षा हो गयी। आज जैसे त्रिपाल आदि के प्रबन्ध नहीं थे। गुड़ भीग गया भेलियाँ पिघल गयीं और गोनि के बाहर सब बहने लगी।

उसी प्रकार से यह जोवात्मा सदा संसार का व्यवहार करते आ रहा है। करते-करते एक रोज आषाढ़ रूपी घनघोर बादलों से आच्छादित वृद्धावस्था आ गयी, इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं। आत्मा–जीवात्मा ढील हो गया। उसकी चुस्ती–चौकसी नष्ट हो गयीं। अब खाटपर ही मल मूत्र करने लगा। परिवार वाले उपेक्षा कर देते हैं। जिसको देखकर सद्गुरु साहब कहते हैं कि अरे मूर्ख ! बहुत पहले ही मैंने तुझे मना किया था कि संसार के धंधे में इतना आसक्त न हो अन्यथा तुम्हारा अन्त बुरा होगा। क्योंकि तुम्हारा विवेक जो बहुत शक्तिशाली है। जो सत्य असत्य का निर्णय करता है। उस पर सवार नहीं हुए। वैराग्य जो तुर्कीस्तान घोड़ा के समान सबसे बलवान था संसार की विषय-वासनाओं से जो दूर भगा देता है। तुम

उस विवेक वैराग्य की साधना नहीं की। जीते जी इन्द्रियों का निग्रह नहीं किया।

तू असत्य रूपी काठ के घोड़े पर चढ़ा। जो न कहीं डोलने वाला था न बोलने वाला था। अर्थात् जो लोक का धर्म था उसी में तू फंसा रहा और उसी को सत्य मानता रहा। इसलिए वास्तविकता की ओर नहीं बढ़ सका। अन्ततः तुझे यहाँ से जाना पड़ा।

**ताल झांझ भल बाजत आवै, कहरा सभ कोई नाचे हो।**
**जेहि रंग दूलहा व्याहन आये, दुलहिनि तेहि रंग राचल हो॥**
**नौका अछत खेवै नहि जानेहु, कैसे के लगबेहु तीरा हो।**
**कहैं कबीर राम रस माते, जोलहा दास कबीरा हो॥**

**शब्दार्थ**—ताल–हथेलियों की आवाज, ध्वनि संगीत की। झांझ–कांस के बने हुये वृत्ताकार एक प्रकार का बाजा जो हाथ से बजाया जाता है। कहरा–कहार लोग, कहरवा नाच। दूलहा–जिस प्रकार से जीवात्मा पहले उत्पन्न हुआ था। दुलहिनि–वही, जीवात्मा। राचल–अनुरक्त रहा, आसक्त हो गया। अछत–रहते हुये। नौका–नाव, मानव शरीर। खेवै–पार होने की कला। कैसे के–किस प्रकार से। लगबेहु–लगोगे। तीरा–तट।

**मूलार्थ**—जब प्राणी वृद्ध होकर मृत्यु को प्राप्त होता है तो गोरखपुर व भोजपुर आदि क्षेत्रों में उसकी मृत शरीर को खूब सजाते हैं और गांव में हल्ला करते हैं कि अमुक आदमी की बारात जा रही है। शव के साथ ताल–झाँझ अर्थात् तालियों और झांझों को बजाते जाते हैं। अब तो मृतक के साथ अंग्रेजी बाजे भी जा रहे हैं। वृद्ध के मरने पर बहुत सी खुशियां लोग मनाते हैं और कहरवा नाच भी नाचते हैं। अर्थात् तरह-तरह के लोग खुशी में मनोरंजन करते चले जाते हैं। द्रव्य भी लुटाते हैं। जिस प्रकार से दुल्हा व्याह के लिए जाता है। उसी प्रकार से शव के साथ लोग उसको दुल्हा बनाकर श्मशान घाट तक ले जाते हैं। यह जीवात्मा भी उसी प्रकार से राचते हुए चला जाता है। अर्थात् पुण्य हीन आत्मा छूछे हाथ मानवेतर योनियों में खुशी-खुशी से चला जाता है। तात्पर्य यह है कि मरने के पश्चात् जैसे दुल्हा-दुलहिन आपस में मिलकर अनेक तरह को खुशियां मनाते हैं। उसी प्रकार से मरणोपरान्त संसारी जोव भी दुल्हा-दुलहिन का पाठ अदा करते हैं। 'दशगात्र' आदि में बहुत प्रकार के दान आदि देते हैं। यही इनका राचना हुआ जो परम्परा से करते आ रहे हैं।

सद्गुरु कहते हैं कि यह जीवात्मा मानव तन पाया था। कुछ कर न सका। भवसागर को पार करने के लिए यह मानव तन नौका के समान था। तन रूपी नौका के रहते खेने की कला नहीं सीखी। भला किस प्रकार से पार लगेगा। अर्थात् भवसागर से कैसे पार जाओगे? तूने कुछ जप-तप नहीं किया। कोई परमार्थ नहीं किया। माता-पिता की सेवा नहीं की। बड़ों का आदर नहीं किया। गुरु से ज्ञान भी न सीखा अर्थात् तत्त्व ज्ञान को नहीं जाना। आत्मा का साक्षात्कार नहीं किया। तू निरन्तर मोह-माया में ही फंसा रहा। भला तू किस प्रकार से मुक्त होगा?

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि मैं कबीर जो जोलहा दास हूँ। अर्थात् जो मेरी जाति जोलाहे की है। मैं राम रस पीकर मतवाला हो गया हूँ। अब मुझे कोई चिन्ता नहीं है। मैं जीते जी तर चुका हूँ। क्योंकि मुझ जोलाहा दास कबीर को नौका खेने की कला गुरु के द्वारा प्राप्त हो गयी है इसलिए मैं पार हो जाऊँगा।

## कहरा २

### असावधानी विविध प्रकरण

**मति सुनु मानिक मति सुनु मानिक, हृदया बंद निवारहु हो।**
**अटपट कुम्हारा करे कुम्हरैया, चमरा गांवन बांचे हो॥**
**नित उठि कोरिया पेट भरतु है, छिपिया आंगन नाचे हो।**
**नित उठि नौवा नाव चढ़तु है, बेरहिं बेरा बोरे हो॥**

**शब्दार्थ**—मति-मति, बुद्धि, विचार, सिद्धान्त। मानिक-माणिक्य, नर जीव, मनुष्य तन। बंद-बंधन। निवारहु-निरुवार करो, खोलो। अटपट-उटपटांग, अव्यवस्थित, अक्रम से। कुम्हरा-कुम्भकार, जो संसार की वृद्धि का काम करने वाला रजोगुण युक्त होकर अनेक प्रकार के कार्य का आरम्भ करने वाला। कुम्हरैया-कुम्भकार पन। चमरा-चर्मकार, देह आत्मवादी विशेषकर जातिवादी ब्राह्मण। गांवन-वेद। बांचे-पढ़े। कोरिया-एक कपड़ा बुनने वाली जाति एक जंगली जाति, कोरी, जुलाहा, लकड़हारा, अज्ञानी। छिपिया-छर्णी, छिपी, रंगरेज, संग्रही, विषय वासना में अनुरक्त। आंगन-हृदय। नौवा-नापित, सबको मुड़ने वाला, मल्लाह। नाव-नौका, आत्म ज्ञान। बेरहिं बेरा-बार-बार, मानव शरीर बेरा-बेड़ा, नौका। बोरे-डुबाये।

**सम्बन्ध**—प्रथम कहरा में सहजयोग व सहज ध्यान की बात कही गयी है और उस प्रसंग में अनेक घटनाओं का उल्लेख भो किया गया है अन्त में कहा गया है कि मनुष्य शरीर पाने पर भी तरा नहीं जा सका। अब नीचे कहा जा रहा है कि मेरी विचारधारा और सिद्धान्त का श्रवण करो।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे जिज्ञासु जन—हे भाई जो तू माणिक्य को तरह प्रकाशमान नर तन पाया है। मेरी बात को सुनो! फर भी तुझे कहता हूँ कि ध्यान पूर्वक सुनो! मेरे सारे उपदेश का तात्पर्य क्या है और तुम्हारे हित के लिए मैं क्या सोच रहा हूँ इसको ध्यान पूर्वक सुनो। तुम्हारे हृदय में जो अज्ञान की ग्रन्थि है उस ग्रन्थि को निवारण करो अर्थात् खोलो। अन्यथा हृदय की ग्रन्थि ज्यों को त्यों रह जायेगी और आगे चलकर तुझे वास्तविक गुरु मिलने का आसार नहीं दीखता है क्योंकि आजकल के गुरु उसी प्रकार से है जैसे कुम्भकार संसार को बसाने की प्रक्रिया करता है और वह अटपट प्रक्रिया करता है अर्थात् एक क्रम से एवं उसके कार्य एक प्रकार के नहीं होते वह बड़ा बर्तन बनाता है और छोटा बर्तन भी बनाता है, छोटे से छोटा बनाता है अर्थात् मन रूपी कुम्हार संसार बढ़ाने की ही बात करता है। इसीलिए आजकल के गुरुओं का कार्य कुम्हारों जैसा ही है, सृष्टि बढ़ाने वाला है। जो पुत्र कलत्र जन्माने वाले हैं, वही लोग आत्मज्ञान के दाता बने हुये हैं। भला कहिये जो संसारी प्राणी है। जो संसार में आसक्त है वे किस प्रकार से आत्मज्ञान का उपदेश करेंगा और हृदय के बन्द कैसे खोल सकता है, इसलिए मेरी बात मानो क्योंकि जो चर्म बुद्धि के हैं, देह-आत्मवादी हैं। शास्त्र को रट लिये है जाति का अहंकार कर रहे हैं। वही लोग गावन कहिये, वेद का ज्ञान लोगों के बीच बांचकर सुना रहे हैं। जिन्हें वेद का ज्ञान अपने आप पर असर नहीं किया है। भला उनके ज्ञान से दूसरों पर क्या असर डालेगा, वे तो स्वयं चर्म बुद्धि के हैं। इसो प्रकार से नित उठकर जो जंगली लोग हैं लकड़हारे का काम करते हैं अर्थात् अज्ञानी जन है। वे भी अनाप-सनाप ज्ञान से दूसरे का पेट भरते हैं। यदि कोरिया का अर्थ कोरी, जुलाहा लिया जाय तो अर्थ यह होगा कि जो शरीर रूपी वस्त्र को बुनने का कार्य कर रहे हैं जो संसार बनाने का कार्य कर रहे हैं वे आत्मज्ञान से वंचित लोग आज गुरु बनकर मूर्ख मनुष्यों को ज्ञान से पेट भर रहे हैं। इसी प्रकार से जो दर्जी लोग हैं जो फटे हुए संसार

को सीते हैं। अर्थात् संसार को ही सत्य मानते हैं। संग्रह में लीन हैं ऐसे लोग भी हृदय रूपी संसार आगन में आनन्द विभोर हो रहे हैं। कहते हैं मैं आत्मज्ञानी हूँ आत्मा को जानता हूँ। अज्ञ मनुष्यों के सामने नाचते कूदते हैं। इसी प्रकार से पुनः सद्‌गुरु कहते हैं कि जो नापित का काम करते हैं लोगों को मूड़ते हैं ठगते हुये, नित्य उठिकर असत्य का व्यवहार कर रहे हैं। आज ऐसे लोग गुरु बने हैं और नाव रूपी आत्मज्ञान पर चढ़े हैं। लोगों से कहते हैं कि मेरा आत्मज्ञान तुझे भवसागर पार कर देगा। आज ऐसे लोग ही भवसागर पार करने के लिए सन्नद्ध हैं। ऐसे लोग मानव शरीर रूपी बेड़े को पार करने के लिए लोगों को भरोसा दे करके बार-बार इस भवसागर में मानव तन रूपी बेड़े को बोर रहे हैं। अर्थात् डूबा रहे हैं इसलिए मैं कबीर कहता हूँ कि तुम मेरी बात को सुनो मेरी बात पर विचार करो अन्यथा उक्त विचार वालों के फेर में पड़ने से तुम्हारा कल्याण होने वाला नहीं है।

**राउर की किछु खबरि न जानहु, कैसे कै झगरा निबेरहु हो।**
**एक गांव में पांच तरुनि बसे, जेहिमा जेठ जेठानी हो॥**
**आपन-आपन झगरा प्रगासिन। पिया सो प्रीति नसाइन हो।**
**भैंसिन मांहि रहत नित बगुला, तिकुला ताकिन लीन्हा हो॥**

**शब्दार्थ**—राउर–बड़ा, परमेश्वर आप, आत्मा। खबरि–पता। जानहु–जानते नहीं हो। कैसे–किस प्रकार से। झगरा–जो इन्द्रियों की लड़ाई है। निबेरहु–निवारण करोगे। गांव-ग्राम शरीर में। पांच–पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ। तरुनि-षोडश वर्ष की स्त्रियाँ। जेहिमा–जिसमें। जेठ–मन। जेठानी–दुर्बुद्धि। प्रगासिन–प्रकासिन, ब्यान करने लगी। पिया–प्रियतम, प्रभु से व चेतन से। नसाइन–नाश किया। भैंसिन–भैसा, भैंसिन–भैस, अविवेकी। मांहि–में। बगुला–वक, संसारी प्राणी, अज्ञानी मनुष्य। तिकुला-देखने योग्य, आत्मा। ताकि–देखि।

**मूलार्थ**—क्योंकि ये उपर्युक्त लोग राउर जो शरीर का राजा है जिसको आत्मा व परमेश्वर कहते हैं उसके विषय में इनको कुछ पता नहीं है कि वह कहाँ रहता है? उसको कैसे जाना जायेगा? उस परम तत्त्व से संसारी मनुष्य बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। भला ऐसे लोगों को गुरु करके उपदेष्टा बनाकर अपने अन्दर के झगरा को कैसे निवारण करोगे? जो मनुष्य अहर्निश काम, क्रोध, लोभ, मोह से स्वयं जूझ रहा हो, क्या वह अज्ञानी

गुरु उक्त झगरा निवारण में कुछ सहायता पहुँचा सकता है। तुम्हारे एक शरीर रूपी गाँव में पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ बसती हैं जिनका नाम, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध है जो नित्य अपने-अपने भोगों को चाहती हैं। उसी में इन तरुणियों के जेठउत भी रहता है। जिसको मन कहते हैं और जेठानी जो कुबुद्धि मन की पत्नी है वह भी साथ लगी हुई है। ये सब छवों सातों मिलकर अपना-अपना झगड़ा संसार में प्रकाश की हैं। अर्थात् कर्ण इन्द्रिय अच्छे-अच्छे शब्दों को सुनना चाहती है। नेत्र इन्द्रिय सुन्दर रूप निहारना चाहती है। जिह्वा अच्छे रसों का आस्वादन करना चाहती है। त्वचा मुलायम-मुलायम गद्दों पर सोना चाहती है और नासिका जो अच्छी सुगन्धियों की इच्छा करती है। जेठ जो मन है वह विषय भोग की ओर दौड़ता है जेठानी जो कुबुद्धि है वह सबको भ्रमा कर अपने-अपने विषय में अग्रसर कराती है। भला इन सातों का एक विषय नहीं है। एक चाहना नहीं है और आत्मा जो सब स्वामी एक है इन सातों की इच्छा पूर्ति कैसे कर सकता है? दूसरी बात ये सातों जहाँ से इनकी अग्नि शान्त होने वाली थी उस प्रियतम से कभी प्रीति नहीं की उस परम प्रभु सर्वेश्वर से जो अलग रहेगा तो भला इस तृष्णा से उस मनुष्य को शान्ति कैसे मिल सकती हैं क्योंकि यह पापात्मा मनुष्य अविवेकी भैंस बुद्धि वालों का साथ किया स्वयं वक विचार वाला है ऊपर से बहुत साफ-सुथरा है पर भीतर में चाहना का भंडार भरा पड़ा है दूसरे इसकी संगति अविवेकी भैंस रूप वाले मनुष्यों से रही, इसलिए तिकुला जो तत्त्व कुल था, आत्मज्ञान था, अपनी पहचान थी उसको कभी नहीं देखा, कभी नहीं ताका, उसको कभी नहीं झाका। जिससे इसका लाभ होने वाला था।

**गाइन मांहि बसेउ नहीं कबही, कैसे के पद पहिचनबे हो।**
**पंथी पंथ बूझ नहिं लीन्हा, मूढ़हि मूढ़ गंवारा हो॥**
**घाट छोड़ि कस औघट रेंगहु, कैसे कै लगबहु तीरा हो।**
**जतइत के धन हेरिन ललचिन, कोदइत के मन दौरा हो।**
**दुइ चकरी जनि दरर पसारेहु, तब पैहो ठिक ठौरा हो॥**

: ब्दार्थ—गाइन–गाय, ज्ञानी सद्गुरु। बसेउ–निवास। पद–परमतत्व। पंथी–सुमार्गगामी, धार्मिक व्यक्ति। पंथ–वर्ण धर्म मार्ग। बूझि–समझ। मूढ़हि–मूर्ख। गँवारा–अल्प बुद्धि। घाट–सदुपदेश अच्छे गुरु का स्थान।

औघट–जहाँ घाट नहीं है, अतत्त्वज्ञानी। तीरा–पार, मुक्त। जतइत–जाँत, वह व्यक्ति जो जाँता पीसकर अपनी जीविका का उपार्जन करता है अर्थात् स्वयं ब्रह्म विद्या से रहित। कोदइत–कोदव को दरर कर चावल निकालने वाला, ज्ञान दरिद्र। दुइ चकरी–कर्मकाण्ड और आत्मज्ञान। जनि–नहीं। दरर–दरना, चावल को निकालना। पैहो–पावोगे। ठिक–अच्छा। ठौरा–स्थान, आत्म प्रदेश में प्रवेश।

**मूलार्थ**—अब कहा जा रहा है कि यह संसारी जीव सद्‌गुरु तत्त्व ज्ञानी के पास कभी निवास नहीं किया। इसलिए परमतत्त्व को किस प्रकार पहचानेगा। पहले यह आत्म ज्ञान का पंथी उसकी प्राप्ति का मार्ग समझ नहीं सका। यह भी समझ नहीं पाया कि किस पंथ से मुझे चलना चाहिए अर्थात् आत्मविद् और अनात्मविद् दोनों में से यह किसी की पहचान नहीं कर सका इसलिए ऐसे स्थान पर पहुँचा, ऐसे व्यक्ति के पास गया जो स्वयं मूर्ख या आत्म विषयक बात नहीं जानता था और आत्म ज्ञान के चाहने वाला भी मूर्ख था इसलिए सजातिय होने से किसी को कुछ मिला नहीं। दोनों मूर्ख के मूर्ख ही रह गये। सद्‌गुरु कहते हैं कि हे भाई ! घाट छोड़कर औघट पर क्यों रेंग रहा है ? जहाँ तुझे डूबने का भय है। ऐसे वंचक ज्ञानियों के यहाँ जाने से तुझे क्या लाभ है। तुम उसी घाट से उतरो जिस घाट से बड़े-बड़े ज्ञानी बड़े-बड़े भक्त उतर चुके हैं। अर्थात् तुझे आत्म ज्ञान के द्वारा ही पार होना चाहिए। अन्यथा किसी प्रकार से तुम संसार रूपी सागर को पार नहीं कर सकेगा। जो स्वयं जाँता पीसकर मजदूरी ले रहे हैं। जो स्वयं दरिद्र हैं अर्थात् जो अल्पसिद्धि आदि प्राप्त कर लिये हैं। उनसे सिद्धि रूपी धन प्राप्त करने की लालच क्यों कर रहे हो ? इस जन्म में कर्मकाण्ड से तेरा उद्धार होने वाला नहीं है। सिद्धियाँ कदन्न अन्न के समान हैं। उनमें कोई सार वस्तु नहीं है। कोदव दरने वालों के पास क्यों अपने मन को दौड़ा रहे हो। तात्पर्य यह है कि सिद्धि आदि के फेर में लोग जन्म भर लगे रहते हैं। अन्त में किसी को थोड़ी सी चमत्कार या सिद्धि मिल गयी तो अज्ञानी मनुष्य उसी की प्राप्ति की लालच में दौड़ता है कि मुझे भी कुछ चमत्कार आ जाय। साहब कहते हैं कि दो चकरी न गाड़ो क्योंकि दुई चकरी में एक साथ एक आदमी कोदव को नहीं दर सकता है, दाल नहीं दर सकता है। इसलिए दुइ चकरी का पसारा मत करो। या तो कर्मकाण्ड और सिद्धि आदि के चक्र में पड़ो या तो आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए विचार रखो। तभी तुम अच्छे स्थान की प्राप्ति कर

सकते हो। तभी तुझे अच्छा जो आत्म पद रूपी ठौर है उसकी प्राप्ति हो जायेगी।

**प्रेमबान एक सतगुर दीन्हा, गाड़ो तीर कमाना हो।**
**दास कबीर कीन्ह यह कहरा, महरा माहिं समाना हो॥**

**शब्दार्थ**—बान–तीर, ज्ञान, उपदेश। दीन्हा–दिया। गाड़ो–गाढ़ो, पुष्ट। तीर–बाण, ज्ञान। कमाना–धनुष। कहरा–गीत। महरा–आत्म ज्ञान, श्रेष्ठ, एक जाति जो चमारों के आस-पास की होती है।

**मूलार्थ**—क्योंकि तुझे सद्गुरु प्रेम रूपी एक बान दिया है। अर्थात् परमेश्वर से या परमतत्त्व से प्रेम करने का मार्ग तुझे बताया है। वह तीर कमान बड़ा पुष्ट है। गुरु ज्ञान रूपी तीर उनकी वाणी रूपी धनुष से छुटेगा तो तेरे हृदय में गड़ जायेगा। वह कभी निकलने वाला नहीं है।

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि यह कहरा गीत जिसको लोक गीत भी कहते हैं मैं दास कबीर इसको गाया अर्थात् इसके माध्यम से सत्य प्राप्ति की बात कही जो श्रेष्ठ जिज्ञासु महरा है उसके अन्दर में समा गया है और इस मेरे ज्ञान से जन्म-मरण छूट जायेगा वह पुनः भवसागर में नहीं आयेगा।

## कहरा ३

### रामनाम महात्म्य प्रकरण

**राम नाम का सेवहु बीरा, हरि दूरि नहिं दूरि आसा हो।**
**अउर देउ का सेवहु बौरे, ई सभ झूठी आसा हो॥**
**ऊपर उजर काह भौ बौरे, भीतर अजहुँ कारो हो।**
**तन का ब्रिध कहां भौ बौरे, मनुवां अजहुं बारो हो॥**

**शब्दार्थ**—सेवहु–भजो, साक्षात्कार करो। बीरा–भाई। उजर–उज्ज्वल, श्वेत। भौ–हुआ। बौरे–बावले, पागल, मतिहीन। कारो–काला। अजहुँ–आज भी। मनुवां–मन। बारो–बालक।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मानव हृदय में जो ग्रन्थि पड़ गयी है। वह जड़ और चेतन की ग्रन्थि है उस जड़ चेतन की ग्रन्थि को अलग-अलग विभाजित करो। अपने को चेतन समझो और स्व शरीर से भिन्न समझो। अन्त में कहा गया कि सद्गुरु के द्वारा जो प्रेमवाण मिला है

उसी के द्वारा उक्त ग्रन्थि का छेदन करो और उसके छेदन के लिये अन्य उपाय भी बता रहे हैं।

**मूलार्थ**—अब सद्गुरु कहते हैं कि हे भाई ! उस हृदय ग्रन्थि को छेदन करने के लिए श्री राम-नाम का जप भी करो। क्योंकि बिना जप से अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होती है और न चित्त ही एकाग्र होता है। इसलिए श्री राम का नाम जपना अत्यधिक अनिवार्य है। जप के द्वारा चित्त को जो वृत्ति है। वह दूर देश में न जाकर अन्तर देश में लौट आती है। जब चित्त वृति अन्दर आ जाती है तब अपने स्वरूप का भान होने लगता है। तब जापक व्यक्ति आत्मज्ञान का अधिकारी हो जाता है।

अब प्रश्न उठता है कि वह राम किसी देश विशेष का निवासी है? वह कहीं दूर का रहने वाला है? कि नजदीक में है? तो सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि वह हरि दूर नहीं है। बल्कि लोगों की आशा दूर है। लोग समझते हैं कि प्रभु किसी लोक विशेष में रहता है परन्तु ऐसी बात नहीं है।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुनं तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

गीता अ० १८-श्लोक ६१

गीता के अनुसार वह परमेश्वर परम पिता अविनाशी देव जो चेतनों का चेतन है जो मनों का मन है जो वाणी का वाणी है वह तुम्हारे हृदय आकाश में निवास करता है। तुम उस राम को छोड़कर अन्य दूसरे देवता की सेवा उपासना न करो। हे पागल मानव ! अन्य देवताओं की सेवा करने से तेरे को क्या मिलेगा? उनकी सेवा करते हो और उनसे मुक्ति की चाहना करते हो। तो वह सब तेरी झूठी आशा है। ये देव तुच्छ फल को देने वाले हैं। पुत्र-कलत्र की वृद्धि करने वाले हैं। अपने लोकों में ले जाकर अपनी सेवा कराने वाले हैं परन्तु तुझे उनके द्वारा मुक्ति फल मिलने वाला नहीं है। हे बौरे ! तेरे ऊपर उज्ज्वल वेश धारण करने से क्या हुआ? स्वच्छ वस्त्र पहनने से क्या हुआ? क्योंकि मेरी दृष्टि में आज भी तेरे अन्दर कालापन है। अर्थात् द्वैतभाव भरा हुआ है। ग्राह रूपी राग-द्वेष का तू शिकार हो रहा है। छल प्रपंच कपट से तेरा हृदय मलिन हो गया है। हे पागल ! तू शरीर से तो वृद्ध हो गये हो पर तेरी शारीरिक वृद्धता से कोई शिथिलता मन में नहीं आयी। क्योंकि तेरा मन बालकों की तरह अनेक चेष्टाओं से ग्रसित है। इसलिए तू राम से दूर रहता है।

**मुख के दांत कहां गौ बौरे, भीतर दांत लोहे के हो।**
**फिर-फिर चना चबाउ विखै के, काम क्रोध मद लोभ के हो ।।**
**तन की सकल संग्या घटि गयउ, मनहिं दिलासा दूनी हो।**
**कहैं कबीर सुनो हो संतो, सकल सयानप ऊना हो ।।**

**शब्दार्थ**—लोहे के–तृष्णा के। विखै–विषय वासना। मद–अहंकार। संग्या–शक्ति, नाम रूप वाली। दिलासा–इच्छा। सयानप–बड़े लोग, शास्त्र पण्डित, धनवान्। ऊना–ऊन, तुच्छ, रूई, कम, घाटा। गौ–गाय।

**मूलार्थ**—तन के वृद्ध होने से क्या हो गया। जबकि मनुष्य की चेष्टाएँ दूर नहीं हुई। उसी प्रकार से मुख के दाँत टूट जाने से हे पागल मानव! क्या होता है क्योंकि तेरे भीतर तो अभी दाँत लोह रूपी तृष्णा के बहुत तगड़े हैं। जिनके द्वारा तू पुनः-पुनः विषय वासना के चना को चबाओगे अर्थात् उसका उपभोग करोगे। वे तेरे दाँत बहुत तगड़े हैं और ऊपर से काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार तेरे पर लदे हुए हैं। तेरे तन की सकल शक्ति-बल घट गयी है परन्तु तेरे मन की दिलासा दो गुनी हो गयी है। उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं आयी। इसलिए तेरा कल्याण होना सम्भव नहीं है।

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे सन्त सज्जनों! मेरी बात को श्रवण करो। यह दोष और कमी साधारण लोगों में ही नहीं है। बल्कि जितने भी बड़े-बड़े लोग दीखते हैं। चाहे वे धनी हो, चाहे वे राजे-महराजे हों, चाहे वे कवि हों, चाहे वे शास्त्रज्ञाता हों, चाहे वे शूर वीर हों। सभी में मुझे हल्कापन और कमी दीख रही है। क्योंकि उपर्युक्त दोष से कोई मुक्त नहीं है। इसलिए जब तक अन्दर साफ नहीं होगा, शुद्धता नहीं होगी तब तक वे राम-भजन के अधिकारी नहीं हो सकते लोगों को चाहिए कि अन्दर को बुराई को त्यागकर भगवान का भजन करें।

## कहरा ४

**ओढ़न मोरा राम नाम, मैं रामहिं के बनिजारा हो।**
**राम नाम का करहुं बनिजिया, हरि मोरा हटवाई हो ।।**
**सहस नाम का करौं पसारा, दिन-दिन होत सवाई हो।**
**जाके देउ वेद पछ राखा, ताके होत हटवाई (अढ़ाई) हो ।।**

**शब्दार्थ**—ओढ़न–चादर, ओढ़ना, जो शीतकाल में ओढ़ा जाता है, रक्षक। बनिजारा–व्यापारी। वनिजिया–वाणिज्य, व्यापार, विषय। हटवाई–जो बड़े लोगों का अनाज आदि का क्रय-विक्रय करता है अर्थात् सौदा बेचता है। सहस–सहस्त्र, हजार। पसारा–प्रचार। सवाई–सवा गुणा। पछ–पक्ष। अढ़ाई–अढ़ाई गुणा।

**सम्बन्ध**—ऊपर राम को सेवने को कहा गया है और अन्त में कहा गया है कि उस राम-नाम के भजन के विना बड़े से बड़े लोग निर्धन हैं। नीचे कहते हैं कि जो राम का आश्रय लेता है। उसको वड़ा लाभ होता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु साहब कहते हैं कि हे भाई! जो वह राम नाम है मेरा उसी प्रकार से रक्षक है जिस प्रकार से शीतकाल में ऊन के वस्त्रों को ओढ़कर जाड़ा से बचा जाता है। इसी प्रकार से सारे विघ्न बाधाओं से सारी आपत्तियों से बचने के लिए मैं रामरूपी कवच को धारण किया हूँ। क्योंकि मेरा कोई अन्य कार्य नहीं है। कपड़ा बुनने वाला मैं जरूर हूँ। लेकिन सारे जगत् के व्यवहार का परित्यागकर अब मैं राम-नाम का व्यापारी बना हुआ हूँ। उसी राम-नाम को आप लोगों को सुनाता हूँ और उसी राम-नाम की वाणिज्य मैं करता हूँ और जो राम-नाम रूपी सौदा है उसका क्रय-विक्रय करने वाला हटवई व वाया जिसको कहते हैं वह स्वयं हरि ही है जो अपने भक्तों को अपने नाम रूपी सौदे को क्रय करके बिना दाम के ही देता है। मैं उसमें कुछ नहीं हूँ। मेरी वाणिज्य का व मेरे व्यापार का अर्थात् मेरे क्रिया-कलाप का जो कार्य है वह भगवद्भक्ति का प्रचार ही है।

मैं उसी राम के नाम का जो उसके अनेक नाम हैं। अज्ञ मनुष्यों के बीच में प्रचार और प्रसार करता हूँ और दिनानुदिन उसमें वृद्धि ही करता हूँ। मेरा प्रचार कार्य बहुत पहले से आगे बढ़ता जा रहा है उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं आने देता हूँ। मेरे कार्य में प्रमाणस्वरूप उसी राम-नाम का पक्ष देवगण और वेद भी रखे हैं। उसी परमतत्त्व की व्याख्या रवितनय यम ने नचिकेता को सुनाया था। उसी राम-नाम की व्याख्या वेदज्ञ ऋषि याज्ञवल्क्य ने जनक और गार्गी को सुनाया था। जिसके कारण जो लोग सुने जिसने राम-नाम का महत्त्व जाना उसमें अढ़ाई गुना शक्ति की वृद्धि हुई। अर्थात् वह बहुत बड़ा सामर्थ्यवान् हो गया और आज भी संसार में जीवित हैं। अढ़ाई के स्थान पर "हटवाई" पाठ

रखा जाय तो अर्थ होगा कि जिस परमतत्त्व का समर्थन वेद और देवगण करते हैं तो उस वस्तु का मोल-चाल (क्रय-विक्रय) क्यों हो रहा है अर्थात् उस पर अविश्वास क्यों किया जा रहा है ? हटवाई और अढ़ाई दोनों पाठ हस्त लेखों में पाये जाते हैं। अर्थ की दृष्टि से अढ़ाई पाठ रखा गया है।

**कानि तराजू सेर तिनि पउवा, तोकिन ढोल बजाई हो ॥**
**सेर पसेरी पूरा कैले, पासंघ कतहुं न जाई हो ॥**
**कहैं कबीर सुनो हो संतो, जोर चला जहंराई हो ॥**

**शब्दार्थ**—कानि–पसंगा। तराजू–तुला, परीक्षा। सेर–चार पाव वाला, चतुष्ट अन्तःकरण। पउवा–सेर का १/४। तोकिन–तब क्यों। ढोल–ढोलक, उद्‌घोष। बजाई–वाद्य, वादन। सेर-परीक्षा। पसेरी–कमी वेशी का अंदाज चार सेर का। पासंघ–कमी। जोर–बलजोरी से, बलात्कार। जहंराई–ठगा गया। जहड़ाई भी पाठ है।

**मूलार्थ**—उसमें कानि कहिये थोड़ी भी कमी रहती है तो वह अपने आप पूरा हो जाता है अर्थात् तराजू में पसँगा भी हो और सेर भी तीन पौवा का हो अर्थात् अन्तःकरण में कितनी भी कमी हो परन्तु भजन प्रेम के साथ थोड़ा भी किया जाय तो वह उसी प्रकार से पूर्णत्व को प्राप्त हो जाता है जिस प्रकार से पसँगा वाली तराजू हो और तीन पाव का सेर हो। परन्तु चतुर तौलने वाला पसँगा को भी झींटी मारकर और घटिया सेर को भी चार पाव का दिखा देता है।

इसी प्रकार से मनुष्य में कितनी भी कमी क्यों न हो। कितना भी पापी क्यों न हो। वह राम नाम उसको पूरा बना देता है। तत्त्वज्ञ बना देता है। मैं ढोल बजाकर कहता हूँ जोर-जोर से पुकार कर कहता हूँ। तुम लोग क्यों नहीं इसकी परीक्षा कर लेते हो। अपने अन्तःकरण में जप करके देख लो। उसमें सेर-पसेरी अर्थात् किसी प्रकार का हानिकर नहीं है। तू पहले राम-नाम को भजो तो उसकी सच्चाई का स्वयं पता चल जायेगा।

मैं कहता हूँ कि उसके जपने से उसके ध्यान पूजा से पासँघ कहिये किसी प्रकार की कमी नहीं होगी। सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि हे सन्तों ! सुनो जो लोग मेरी बात को नहीं मानते। वे संसार के साथ में ही रह गये। जोर कहिये मेरे से छटकाकर चले गये। वही लोग संसार में ठगाते रहते हैं और जो लोग मेरे वचन पर अड़िग रहेंगे तो वे परमतत्त्व के भागी बनेंगे।

## कहरा ५

**राम नाम भजु राम नाम भजु, चेति देखु मनमाही हो।**
**लच्छ करोरि जोरि धन गाड़े, चलत डोलावत बांही हो॥**
**दादा बाबा अउ परपाजा, जिन्हके यह भुइं भांड़े हो।**
**आंधर भये हियहु की फूटी, तिन्ह काहे सभ छांड़े हो॥**

**शब्दार्थ**—लच्छ–लक्ष, लाख। करोरि–करोड़। जोरि–संग्रह करके। डोलावत–हिलावत। बांही–हाथ। दादा–पिता। बाबा–पितामह। परपाजा–परपितामह। भुइं–भूमि। भांड़े–भांडे, भण्ड जिसमें अनाज-पानी रखा जाता है बर्तन, वासन, पात्र। हियहु–हृदय।

**सम्बन्ध**—इसके पहले पद में बताया गया है कि राम ही सबका रक्षक है। उसका अवलम्बन लेना चाहिए। अन्त में कहा गया है कि जो लोग धन को जोड़कर चले जाते हैं वे ठगा जाते हैं। अब कहा जा रहा है कि यदि ठगाई से बचना है तो पुनः राम-नाम का ही अवलम्बन लो।

**मूलार्थ**—सद्गुरु साहब कहते हैं कि हे संसार के मनुष्यों! राम-नाम का भजन करो, रामनाम का भजन करो। 'भज्' धातु सेवायाम् के अनुसार भज् का अर्थ सेवा, उपासना, नाम, जप आदि होता है। इसके अनुसार यहाँ पर राम में लगने की बात है न कि अलग होने की क्योंकि—महर्षि पातंजलि जी भी इसकी पुष्टि करते हैं। 'तद्जपस्तदर्थं भावनम्' और कहते हैं कि 'तस्य वाचकः प्रणवः' महर्षि का आशय है कि यदि साधना मार्ग में विघ्न उपस्थित होते हैं। तो उनके निवारणार्थं प्रभु के नाम का जप करना चाहिए और उस नाम के अर्थ की भावना करनी चाहिए। उसी वस्तु को सद्गुरु देव जी भी कहते हैं कि हे मनुष्यों! राम को भजो। क्योंकि यदि राम को नहीं भजते हो। तो कभी शान्ति पूर्वक जीवन नहीं बीत सकते हो। चेत कहिये विचार कर सावधानीपूर्वक अपने मन में देखो कि जो लाख-करोड़ अर्थात् जो अरब पति थे धन का संग्रह करके भूमि के अंदर गाड़ दिये थे। वे सब बेचारे जाते समय एक पैसा भी साथ में नहीं ले गये। संसार से वे जाने लगे तो अपने हाथ को हिलाते गये अर्थात् डोलाते गये कि इस संसार में कुछ नहीं है। मैं छूछे हाथ जा रहा हूँ। मेरे पास बहुत भूमि थी जो तीन पुरखों से सुरक्षित थी। पिता जी और पितामह जी और परपितामह जिनके यह अथाह धन भूमि एवं भाड़े आदि भरे पड़े थे अनाज जो उनके कमाये हुए थे। उसको भी

वे सब छोड़कर चले गये। वे भी अपने साथ में कुछ नहीं ले गये। क्योंकि उनका जो हृदय था विवेक शून्य था। उनके हृदय की आँखें नहीं थीं। अर्थात् विवेक, वैराग्य के बिना मनुष्य अन्धा कहा गया है। इसलिए उनकी यदि सामर्थ्य होती तो ये सब कमाये हुए धन भूमि-भाड़े क्यों जोड़कर चले जाते। पर ये सब विवेक हीन थे। इसलिए इसी में पचते-मरते रह गये। यदि उनको कुछ भी विवेक होता तो वे राम-नाम भजकर संसार से पार हो गये होते।

**ई संसार असार को धंधा, अंतकाल कोइ नाही हो।**
**उपजत बिनसत बार न लागे, ज्यों बादर की छांही हो॥**
**नाता गोता कुल कुटुम सब, इन्ह कर कवन बड़ाई हो।**
**कहैं कबीर एक राम भजे बिनु, बूड़ी सब चतुराई हो॥**

**शब्दार्थ**—असार–सत्यहीन। अन्त–अन्तकाल, मरणकाल में। उपजत–जन्म लेते। बिनसत–मरते। बार–समय। छांही–परछाहीं। नाता–सम्बन्धी। गोता–अपने गोत्र वाला, कुलवंश परम्परा का। कुटुम–भाई, बन्धु। बड़ाई–महत्त्व।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि इस संसार का जो धंधा है जो कार्य है। वह पूर्णरूपेण सारहीन है। उसमें कोई सुखदाई वस्तु नहीं है। इसलिए इसका परित्याग करना चाहिए धन-दौलत, पुत्र-कलत्र ये सब जायमान हैं। इसलिए इनको असार कहा गया है। अन्तकाल में कोई साथ जाने वाला नहीं है। शरीर के निष्प्राण होने पर उसको श्मशान में ले जाकर जला देते हैं। आत्मा कहाँ गया इसकी खोज खबर किसी को नहीं रहती। मनुष्य को और संसार की सम्पत्ति को न उत्पन्न होते समय लगता है और न जाते समय कुछ ही क्षण लगते हैं। इनमें यत्किंचित भी स्थायित्व नहीं है जिस प्रकार बादल की छाया होती है। कड़ाके के घाम में आती है और चली जाती है। लोग बार-बार उसके आने की इच्छा करते हैं। उसी प्रकार से लोक का सुख है। वह क्षणभंगुर है। क्षण में आता है और क्षण ही में चला जाता है केवल मृग मरीचिका की भाँति दृष्टि-गोचर होता है। इसलिये बुद्धिमान् को इस पर विचार करना चाहिये कि हम इसमें क्यों लगे हैं क्योंकि इस संसार का व्यवहार सदैव सारहीन रहा है क्योंकि संसार का सुख उसी प्रकार से असत्य है जैसे मरुस्थल का पानी। लोग कहने लगे—महाराज आप संसार से छुड़ाना चाहते हैं।

हमारा सम्बन्ध बहुत दूर तक है। लम्बा खानदान है, कुल बड़ा पवित्र है, नाता गोता वाले और कुटुम्बीजन मुझे बहुत सम्मान देते हैं।

इस पर साहब कहते हैं कि इनकी कोई बड़ाई नहीं है। इनका कोई महत्त्व नहीं है। क्योंकि नाते-गोते तो त्रियक् योनियों में भी अपार हैं। इसलिए क्या उनको मुक्ति मिल जायेगी। मैं कबीर कहता हूँ कि एक राम के भजन के बिना सभी प्रकार की जो चतुराई है। वह नष्ट हो जायेगी। किसी काम में आने वाली नहीं है। वह तुम्हारे सारे समाज को लेकर डूब जायेगी। इसलिए राम को भजो।

## कहरा ६

**राम नाम बिनु राम नाम बिनु, मिथ्या जनम गमायो हो॥**
**सेमर सेइ सुवा ज्यों जहंडे, ऊन परे पछिताई हो।**
**जैसे मदपी गांठि अर्थ दे, घरहुँ कि अकिल गमाई हो॥**
**स्वादे वोद्र भरै धौं कैसे, ओसे प्यास न जाई हो।**
**दरब हीन जैसे पुरसारथ, मनहीं मांहि तंवाई हो॥**
**गांठी रतन मरम नहिं जाने, पारख लीन्हा छोरी हो।**
**कहैं कबीर यह औसर बीते, रतन न मिलै बहोरी हो॥**

**शब्दार्थ**—मिथ्या–व्यर्थ में। गमायो–नष्ट कर दिया। सेमर–सेमल, एक रुईदार वृक्ष जिसके फल-फूल बड़े सुहावने होते हैं। उसकी रूई तकिया के काम में आती है। सुवा–शुक पक्षी। जहंड़े–ठगे गये। ऊन–रूई। पछिताई–पश्चात्ताप। मदपी–शराबी। अर्थ–धन। अकिल–बुद्धि। गमाई–नष्ट किया। वोद्र–उदर। ओसे–ओसकण, सांसारिक सुख। प्यास–इच्छापूर्ति। दरब–धन। पुरसारथ–पुरुषार्थ। तंवाई–जहाँ का तहाँ खड़ा रहना, शोकाकुल। पछिताइ–पश्चाताप। रतन–रत्न आत्मतत्त्व। पारख–ज्ञान, विवेक। छोड़ि–छोड़ दिया। रतन–रत्न, मानव तन। बहोरी–पुनः।

**सम्बन्ध**—पहले जोर देकर राम भजन का निर्देश दिया गया है। अब सांसारिक सुख को हेय बताया गया और कहा गया कि कोई कितना भी चतुर है। चालाक है लेकिन जिसने राम को नहीं भजा। वह भवनिधि में गोता लगाते रहा। अब पुनः रामनाम के बिना सब कुछ मिथ्या कहा जा रहा है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु देव कहते हैं कि बिना राम के भजन और राम नाम जपे बिना संसार के सभी लोग सुर दुर्लभ मानवतन को नष्ट कर दिये। संसार का सुख उसी प्रकार से असत्य है, जैसे सेमल का फल। शुक पक्षी सेमल के फल को वहुत सुन्दर समझकर पकने तक आशा लगाकर बैठा रहता है परन्तु जब सेमल पकता है फूट जाता है तो शुक के मुख में निःसार रूई भर जाती है अर्थात् रूई को देखकर वहुत पश्चात्ताप करता है और उसी के फेर में वेचारा शुक ठगा गया। इसी प्रकार से संसार के सभी प्राणी पुत्र-कलत्र को अपना सुखदायी समझकर सेवा करते हैं जो भी कुछ करते हैं। जन्म भर परिवार के लिए करते हैं परन्तु अन्त में परिवार से उन्हें कोई सुख नहीं मिलता है। मरणकाल में निराश होकर पश्चात्ताप करते हैं। जैसे शराब पीने वाला गांठि का पैसा भी देकर शराब पी लेता है और घर की जो पहले की बुद्धि थी वह भी नष्ट हो जाती है। अर्थात् शराब पीने पर आदमी सुध-बुध खोकर अश्लील व्यवहार करता है। जिसके कारण वह संसार में निन्दित बना रहता है। इसी प्रकार से मानव रूपी मूल्यवान् तन तथा सारा जीवन परिवार में खपा देता है पर परिवार उसको उसी प्रकार से त्याग देता है जैसे शराब बेचने वाला पैसा लेकर और गंदा देकर शराबी को छोड़ देता है। जो शरीर रूपी घर में कुछ अच्छी बुद्धि भी थी वह भी संसार का साथ करने से नष्ट हो गयी। पुनः कहा जा रहा है कि थोड़े स्वाद से भला उदर कैसे भर सकता है ? अर्थात् संसार के क्षणिक सुख से कभी मानव मन को तृप्ति नहीं हो सकती है। क्योंकि सांसारिक सुख ओसकण के समान है। जैसे ओसकण के चाटने से प्यास की तृप्ति नहीं होती है। उसी प्रकार से मनुष्य सांसारिक सुख से कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकता है। अन्त में मनुष्य सब कुछ परिवार को दे देता है। संसार को दे देता है। पास में कुछ न रहने पर अन्त अवस्था में सोचता है कि कुछ पुण्य कर लें, कुछ परमार्थ कर लें, परन्तु द्रव्य की हीनता में उससे कोई भी पुरुषार्थ नहीं होते क्योंकि पुरुषार्थ तो द्रव्य से होता है। पास में कुछ न रहने के कारण मन ही मन किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है। जहाँ का तहाँ पड़ा रह जाता है। जीवन भर की कमाई और शरीर की शक्ति सब परिवार ले लिया यह अपने लिये कुछ भी नहीं रखा अब केवल हाथ ही मींजना है। धनहीन व्यक्ति क्या कर सकता है ? यह मूर्ख मानव समझ नहीं पाया। इसके हृदय में जो रत्नरूपी आत्मधन पड़ा हुआ था। परन्तु उसका रहस्य व भेद नहीं जान सका। जैसे—किसी की गांठि में स्वर्णमुद्रा बंधी

हो। उसको पता ही न हो परन्तु भोजन के बिना मर गया। इसी प्रकार से अनजान में इसने अपने को जान नहीं सका। क्योंकि जो जानने योग्य पारख व ज्ञान था उसको यह छोड़ दिया। उसका साथ नहीं किया।

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि यह सुन्दर अवसर बीतने पर जो मानव तन का चोला मिला है। इसके चले जाने पर राम नाम धनरूपी रत्न पुनः मिलने वाला नहीं है। इसलिए यावत् जीवन तावत् राम की प्राप्ति के लिए उपाय करो।

# कहरा ७

## वेश विचारविमर्श प्रकरण

**रहहु सँभारे राम विचारे, कहता हौं जो पुकारे हो ॥**
**मूड़ मुड़ाय फूलि के बैठे, मुद्रा पहिरि मंजूसा हो।**
**तेहिं ऊपर किछु छार लपेटे, भीतर-भीतर घर मूसा हो ॥**
**गांव बसतु है गरब भारती, बाम काम हंकारा हो।**
**मोहन जहां-तहां ले जई हैं, नहिं पति रहल तुम्हारा हो ॥**
**मांझ मंझरिया बसै सो जानै, जन होइहैं सो थीरा हो।**
**निरभै भये तंह गुरु कि नगरिया, सुख सोवै दास कबीरा हो ॥**

**शब्दार्थ**—रहहु–रहो। संभारे–सुरक्षित, संचन, संचय। बिचारे–विचार, असमर्थ। हौं–मैं। मुड़ाय–मुण्डन कर। फूलि–बन ठन कर। मुद्रा–गोरख पंथी साधुओं के पहनने का एक कर्ण भूषण जो प्रायः कांच या स्फटिक का होता है कोई कोई सोने का भी पहनते हैं। यह कान की ललरी के बीच में एक बड़ा छेदकर पहना जाता है। मंजूसा–पिटारी, पेटी, पत्थर की गुफा। बाम–वामपंथी, टेढ़ा। काम–वासना कार्य, विषय, इच्छा। मोहन–ईश्वर। पति–मर्यादा, इज्जत, सम्मान। मांझि–मध्य, बीच हृदय। मंझरिया–गलियारा, हृदय के बीच में कमल नाल के अन्दर सुरति का निवास। होइहैं–होंगे। थीरा–शान्त। नगरिया–नगर, समीप पास।

**सम्बन्ध**—पहले कहा गया है कि राम-नाम के बिना संसार का समस्त सुख तुच्छ है। अन्त में कहा गया है कि जो इस जीवन में सचेत नहीं होगा। उसको पुनः नर तन जो बहुत मूल्यवाद् है। वह मिलने वाला नहीं है। सातवें कहरा में कहा जा रहा है कि जो राम है वही सबका रक्षक है। उसी को संजोकर रखना चाहिए।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे भाई जिज्ञासु जन ! राम नाम रूपी गठरी को सम्भालो। उसको यत्न करके रखो और उस पर विचार करो। इसी के लिए मैं पुकार कर आप लोगों से कहता हूँ क्योंकि जो राम को नहीं भजता है। जो राम से दूर रहता है उनकी रक्षा राम कैसे कर सकता है अस्तु जो लोग राम नाम को छोड़कर केवल मूड़ मुड़ाय के बनठन कर फूलि के बैठते हैं। कानों में स्वर्ग की मुद्रा पहने रहते हैं और मंजूसा कहिये गुफा में भी निवास करते हैं और शरीर के ऊपर थोड़ी सी छार कहिये राख भी लपेटे रहते हैं, विभूति भी लपेटे रहते हैं। ऊपर से देखने में लगते हैं कि स्वामी जी बड़े ज्ञानी हैं। बड़े ध्यानी हैं। बड़ी-बड़ी ज्ञान की बातें करते हैं वेद-शास्त्र बाँचते हैं। गुफा में वास करते हैं और त्याग स्वरूप विभूति लगाते हैं परन्तु सद्‌गुरु कहते हैं कि इनके भीतर ही भीतर में इनका घर मूसा गया है। अर्थात् काम, क्रोध, लोभ मोह रूपी चोर इनको लूट चुके हैं। इनके पास आत्म-तत्त्व रूपी धन नहीं है। क्योंकि जिस ग्राम में ये बसते हैं। अपने को भारती कहकर, पर्वत कहकर, नाथ कहकर, शाक्त कहकर बड़ा गर्व करते हैं। इनके पास वाम पंथ का काम कहिये कार्य होता है। अर्थात् अघोर मंत्रों को सिद्ध करते हैं जिसका बहुत बड़ा अहंकार करते हैं। क्योंकि सिद्धि के बल पर लोगों को डरवाते रहते हैं, भयभीत करते रहते हैं और मीन, मांस, स्त्री आदि पाँचों मुद्राओं का सेवन करते रहते हैं। परिणाम स्वरूप स्वर्ग-नरक जाने के बजाय मोहन जो ईश्वर है। जहाँ-तहाँ इनको ले जायेगा। अर्थात् नीचे की योनियों में कुकर्म के चलते डाल देगा। तब इनको जो लोक में सम्मान था, जो बड़े प्रतिष्ठित रहे। एक भी उनकी प्रतिष्ठा नहीं रह जायेगी। इनकी सब मति खाक में मिल जायेगी।

सद्‌गुरु कहते हैं कि इन अहंकारियों के अन्दर हृदय के मध्य में जो परमतत्त्व बसा हुआ है और उस हृदय के कमल के गलियारे में जो रहता है। अर्थात् उसमें जो बसा हुआ है। उसी को जानना चाहिए। तात्पर्य यह कि सभी क्रिया-कलापों को त्यागकर मान सम्मान को फेंककर मनुष्य को चाहिए कि जो हृदय के मध्य में बसता है। उसी अष्ठ कमल निवासी को जाने। जो जन, जो भक्त उसको जान जायेंगे तो वहीं स्थिर होंगे। अर्थात् उन्हीं को शान्ति मिलेगी।

सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि मैं उसी हृदय निवासी राम को सद्‌गुरु के नगर में उनके समीप रहकर जान लिया है और निर्भय हो गया।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।

(गीता अध्याय–१६)

सद्गुरु कहते हैं कि गुरु के नगर में मैं निर्भय हो गया अब यह दास कबीर सुख की नींद में सोता है। अस्तु जिसको सुख की नींद में सोना हो वह मुझ कबीर का अनुसरण करें।

# कहरा ८

## संसार विनश्वर प्रकरण

**छेम कुसल औ सही सलामत, कहउ कवन को दीन्हा हो।**
**आवत जात दोऊ बिधि लूटे, सरब तंग हरि लीन्हा हो॥**
**सुर नर मुनि जति पीर अउलिया, मीरा पैदा कीन्हा हो।**
**कहँ लौं गनौं अनंत कोटि लौं, सकल पेयाना कीन्हा हो॥**

**शब्दार्थ**—छेम–खैरियत, ठीक ठाक। कुशल–अच्छा। सलामत–राज-काज, ठीक से चल रहा है की नहीं। कहउ–कहो। तंग–तग्य, ज्ञान, शक्ति। अउलिया--मुस्लिम गुरु, त्यागी संत, सिद्ध पुरुष। मीरा–सैयद, सरदार। पेयाना--यात्रा।

**सम्बन्ध**—ऊपर राम के द्वारा सब की रक्षा बताकर वास्तविक भक्ति न करने वालों का उल्लेख किया गया है। अंत में गुरु कृपा से मनुष्य निर्भय हो गया और जो रात-दिन अशान्त था। वह सुख की निद्रा में सोने लगा। अब नीचे कहते हैं कि यह छेम और कुशल कैसे प्राप्त हुआ किसको कौन दिया।

**मूलार्थ**—सद्गुरु साहब हिन्दुओं से पूछते हैं कि हे भाई! हे हिन्दू राम के भक्त आप लोग जो अशांति पूर्वक जीवन बिता रहे हैं और सबसे पूछते हैं कि क्षेम कुशल से हो न॥? तो केवल वाणी मात्र पूछने तक ही है कि आप लोग क्षेम कुशल से हैं। इसो प्रकार से इस्लामियों से पूछते हैं कि हे मुस्लिम भाई! आप लोग सही सलामत का जो समाचार पूछते हैं। यह केवल व्यवहारिक है कि आप लोग सही में सही सलामत से हैं। आप लोग कहें कि यह सही सलामत और क्षेम कुशल आप को पूछने को कौन सिखाया और आपको कौन दिया है, मैं तो देखता हूँ कि जो प्रभु भक्ति से और गुरु सेवा से वंचित हैं, न वे शांति से हैं, न वे कुशल क्षेम से हैं। यदि कुशल क्षेम और सही शान्ति से आप लोग होते तो परस्पर में राग-

द्वेष न करते और न ही एक दूसरे का अहित करते। इसलिए वास्त-विकता यह है कि आप लोग अशान्त हैं। क्योंकि मैं तो देखता हूँ कि जन्मते और मरते समय दोनों विधि में आप लोग लुटे जाते हैं। जन्म होता है तो पुरोहित लोग यजमान के यहाँ अनेक दान-दक्षिणा की लूट करते हैं और मरणोपरान्त भी उस आत्मा की शान्ति के लिए अनेक प्रकार के षट्कर्म कराकर दान-दक्षिणा लेकर लूट मचाते हैं।

इसी प्रकार से मौलवी भाई लोग जन्म और मरण के बाद चेहलुम आदि श्राद्ध करके इस्लामियों को लूटते हैं और शरीयत की दुहाई देते हैं। ये दोनों सम्प्रदाय के लोग यावत जीवन मनुष्यों को लूटते रहते हैं। पंडित जी कर्मकाण्ड का नाम लेकर लूटते हैं और मौलवी जी शरीयत का नाम लेकर लूटते हैं और कुछ परलोक की बात न बनने से अन्त में भगवान भास्कर के पुत्र भी लूटते हैं।

सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि इसलिए जो सभी प्रकार का तत्त्वज्ञान था। वह इन मायावियों के द्वारा हरणकर लिया गया अर्थात् लूट लिया गया और इस लूट में न देवता लोग बचे, न मनुष्य लोग बचे, न मुनि लोग बचे, न यति जो संन्यासी थे वे बचे और मुसलमानों के जो गुरु थे वे भी न बचे, औलिया जो त्यागी सन्त थे वे भी ठगा गये। क्योंकि सभी अपने में मीरापन पैदा किया। अर्थात् सभी को अपने बड़प्पन का अहंकार हो गया। सब अपने-अपने क्षेत्र में सरदार बनने लगे। देवता लोग अपनी उच्चता का अभिमान करने लगे। मनुष्य लोग अपनी दान-दक्षिणा का अहं कार करने लगे। शास्त्रज्ञ मुनि लोग शास्त्र ज्ञान का अहंकार करने लगे। संन्यासी लोग सबसे बड़े हम ही हैं। इसका अहंकार करने लगे। मुसल-मानों के गुरु इस्लाम को ही बड़ा कहकर अहंकार करने लगे। सभी लोग अपनी-अपनी सरदारी उत्पन्न करने लगे। जिसके कारण माया सबको धूल में मिला दिया।

सद्गुरु कहते हैं कि कहाँ तक गिनाऊँ अनन्त करोड़ लोग अर्थात् अरबों लोग सबके-सब यहाँ से यात्रा कर चुके हैं। यह संसार जो है, यहाँ पर किसी को रखता नहीं है अर्थात् जो मायामय जगत है। यहाँ से सभी को जाना है।

**पानी पौन अकास जायेंगे, चंद्र जायेंगे सूरा हो।**
**ये भी जायेंगे वो भी जायेंगे, परत न काहु के पूरा हो॥**

**कुसल कहत-कहत जग विनसै, कुसल काल की फांसी हो।**
**कहैं कबीर सारी दुनियां विनसे, रहल राम अभिनासी हो॥**

**शब्दार्थ**—सूरा-सूर्य। ये–यह, संसार के लोग। वो–वह, देवलोक आदि। विनसे–नष्ट हुए।

**मूलार्थ**—प्रथम पंक्तियों में कहा गया है कि जितने भी सयाने लोग थे वे सब यहाँ से पयान कर चुके हैं। तो प्रश्न उठा है कि ये पृथ्वी, आकाश आदि क्या रहेंगे तो कहा गया है कि नहीं। यह चन्द्रमा जो अमृत बरसाता है, मनुष्यों में जीवन का दान प्रदान करता है और सूर्य जो सबको प्रकाश देता है। जल जो सबका जीवनदाता है। आकाश जो सबको अवकाश देता है और सबको अवागमन का मार्ग प्रदान करता है। पावक जो जठराग्नि बन कर सबको सुख देता है। ये सबके सब एक दिन चले जायेंगे और चन्द्र सूर्य भी यहाँ से चले जायेंगे। अर्थात् प्रलय काल में इन सबों का अभाव हो जायेगा। जो इस संसार को देख रहे हो। यह भी रहने वाला नहीं है और इससे परे जो लोक हैं उनमें भी स्थायित्व नहीं है सबके सब यहाँ से जाने वालों में से हैं। क्योंकि किसी को पूरा पड़ने वाला नहीं है, कोई पूर्णत्व को प्राप्त नहीं है। अर्थात् जाना निश्चित है। इस प्रकार से मात्र कुशल पूछते-पूछते सारा जगत का विनाश हो गया और यह जो वाचिक कुशल है। मनुष्यों के लिए यही काल की फाँसी हो गया।

कहने का तात्पर्य यह हुआ कि केवल कुशल-कुशल पूछा जाता है पर कुशल का अर्थ क्या है? कुशल किसको कहते हैं? न जानने के कारण संसार काल की फाँसी में पड़ गया अर्थात् कुशल के जाने बिना ही यहाँ से रवाना हो गया। कबीर साहब कहते हैं कि इसी प्रकार से समस्त विश्व का विनाश हो गया परन्तु रहने वाला वही एक राम अविनाशी है। जो सबके हृदय में विराजमान है। उसी के जाने बिना सबका नाश हुआ है।

## कहरा ९

### शरीर निरर्थक प्रकरण

**ऐसनि देह निरालप बौरे, मुवले छुवै नहिं कोई हो।**
**डंडवा कि डोरिया तोरि लराइनि, जो कोटिन धन होई हो॥**
**उरध निस्वासा उपजी तरासा, हंकराइन परिवारा हो।**
**जो कोई आवै बेगि चलावै, पल इक रहन न पाई हो॥**

**चंदन चीर चतुर सब लेपै, गरे गजमुक्ता के हारा हो।**
**चौंसठि गीध मुये तन लूटैं, जंबुकन वोद्र विदारा हो।।**
**कहैं कबीर सुनो हो संतो, ग्यान हीन मति हीना हो।**
**एक एक दिन याही गति सबकी, कहा राव कहा दीना हो।।**

**शब्दार्थ**—ऐसनि–इस प्रकार की। निरालप–मलिन, दूषित, अपवित्र। मुवले–मरने पर। छुवे–स्पर्श। डंडवा–कटि भाग, करिहांव। डोरिया–करधनी, कटीधन। लराइनि–फेंक दिया। उरध निस्वासा–प्राण वायु मरण काल में ऊपर की ओर ही निकलता है। तरासा–कष्ट। हकराइन–रोवाइन, पुकार। बेगि–जल्दी। पल–क्षण। चीर–घिसकर। चतुर–चालाक लोग। गरे–गला में। गजमुक्ता–हाथियों के मस्तक में जो मुक्ता होता है उसको गजमुक्ता कहते हैं। हारा–हार, मुक्तामाला, मुक्तामाल। चौंसठि-चतुर्दिक। गीध–आकाशीय पक्षी जो मुर्दों को खाने के लिए जमीन पर उतरता है। मुये–मरने पर। जंबुकन–शृगाल, सियार। वोद्र–उदर। विदारा–फाड़ डाला। दिन–दिवस। राउ–राजा। दीना–दीन, गरीब।

**सम्बन्ध**—ऊपर के कहरा में कहा गया है कि संसार का कोई भी मनुष्य कोई भी प्राणी कुशल से नहीं है। चाहे वह बड़ा हो या छोटा हो परन्तु काल के मुख से कोई बचने वाला नहीं है। अंत में कहा गया कि समस्त ब्रह्माण्ड नष्ट होने वाला है। केवल ब्रह्माण्डों के गढ़ने वाला बचेगा।

**मूलार्थ**—अब कहा जा रहा है कि जिस शरीर का तू इतना अभिमान किये हुए हो। यह तो बहुत ही क्षणभंगुर है। इसका रहना तो स्वप्नवत है। सद्गुरु कहते हैं कि यह शरीर इस प्रकार से मलिन और अपवित्र है कि हे पागलों! जिसको तू इतना सँवार रखा है। मर जाने पर इस देह को कोई छूना नहीं चाहता है। जो कटि भाग में करधन होती है। उसको भी लोग खोल लेते हैं। उस मृतक के साथ वह भी नहीं जाने पाता है। कितना भी घर का प्रिय प्राणी हो। परिवार के लिए कुछ भी किया हो परन्तु मरने पर उसके साथ किसी प्रकार की दया नहीं की जाती। यहाँ तक की कटि भाग से करधन भी तोड़कर फेंक देते हैं। करोड़ों का धन वह क्यों न कमाया हो? पर उसके साथ कहाँ मोह, कैसी माया? घर के लोग दुश्मन समझकर उससे घृणा करते हैं। जाने वाला मनुष्य की श्वास ऊर्ध्वमुखी हो जाती है। प्राण जल्दी निकलता नहीं है। जिसके कारण

उसको महान त्रास होता है। पागलों की तरह अंड-बंड बोलता है। परिवार वालों को हकारता है पर उसकी पुकार को कोई समझ नहीं पाता। उसके हाथों का इशारा भी कोई समझ नहीं पाता। वह अंतिम तक परिवार से प्रेम करना चाहता है। परिवार के जो कोई उसको देखने आते हैं। वे कहते हैं कि जल्द से जल्द खाट से नीचे उतारो। यह क्षण मात्र का अतिथि है। कुछ ही पलों में शरीर से जीवात्मा निकल जाता है। पश्चात् शव दाह स्थान में ले जाकर शरीर में आग लगाकर भस्म कर देते हैं। सद्गुरु कहते हैं कि जिस शरीर में बड़े-बड़े चतुर लोग बुद्धिमान लोग इत्र फूलेल लगाते थे। चन्दन घिसकर लगाते थे। गले में गजमुक्ता की माला पहनते थे। अपने को बहुत शूरवीर कहते थे। आज मरने पर कोई पूछने वाला नहीं है। शरीर को चारों तरफ से मांस भक्षी पक्षी गीध लोग तन की मांस को लूटते हैं, खाते हैं और शृंगाल सीधे पेट को ही फाड़ देते हैं। मृतक की अंतड़ी लेकर भाग जाते हैं।

सद्गुरु कबीर सन्त सज्जनों से सुनाकर कहते हैं कि हे सन्त सज्जन! संसार का पापी मनुष्य आत्मज्ञान हीन, तत्त्वज्ञान हीन और भविष्य के परिणाम को सोचने वाली बुद्धि से हीन होते हैं। इसलिए एक-एक दिन उपर्युक्त गति को सभी प्राप्त होंगे। चाहे वे राजा हों, चाहे वे प्रजा हों। सबके सब अज्ञान के कारण मृत्यु के द्वारा मारे जाते हैं और मारे जाते रहेंगे। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि विचार पूर्वक संसार में रहें।

## कहरा १०

### अद्वैतवाद प्रकरण

**हो सबहिन में हौं मैं नाहीं, मोहि बिलग-बिलग बिलगाइल हो।**
**ओढ़न मोरा एक पिछौरा, लोग बोलै एकताई हो॥**
**एक निरन्तर अंतर नाहीं, ज्यौं ससि घट जल झांई हो।**
**एक समान कोई समुझत नाहीं, जाते जरा मरन भ्रम जाई हो॥**
**रैनि देवस ये तहवां नाहीं, नारि पुरुख समताई हो।**
**हौं मैं बालक बूढो नाहीं, ना मोरे चेलकाई हो॥**

**शब्दार्थ**—हो--हे, है। सबहिन--सभी, सम्बोधन। विलग बिलग--भिन्न-भिन्न। बिलगाइल–अलग कर दिया। हौं--हूँ। मोहि--मुझे। पिछौरा–आवरण, चादर, उत्तरीय, माया। एकताई--समानता, बराबरी। झाँई–छांहीं। जुरा--वृद्धत्व, भ्रम, अज्ञान। समताई–समान भाव। हौं–हूँ। चेलकाई--पच्चीस वर्ष की अवस्था वाला, किशोर अवस्था से थोड़ा आगे।

**सम्बन्ध**—ऊपर में शरीर की क्षणभंगुरता का दिग्दर्शन कराते हुए अन्त में कहा गया है कि सभी की यही गति है। चाहे कितना भी धनवान हो, बुद्धिमान हो। यहाँ से जाना ही है। अब उसके बचने के लिए उपाय बताया जा रहा है कि कैसे बचेगा।

**मूलार्थ**—बचने का उपाय सद्गुरु साहब बहुत पहले से कहते आ रहे हैं कि तुम संसार से विमुख होकर तत्त्वज्ञान की प्राप्ति कर और वह तत्त्वज्ञान जब तक तुम्हें प्राप्त नहीं होगा। तब तक तू संसार में जन्म-मरण के चक्कर में पड़े रहेगा। तो तत्त्व ज्ञान है क्या? यह विचारणीय विषय है। इसमें अनेक प्रकार की व्याख्याएँ की गयीं हैं। किसी ने आत्मा को तत्त्व माना है, किसी ने परमात्मा को तत्त्व माना है, किसी ने जीव को तत्त्व माना है, किसी ने ब्रह्म को तत्त्व माना है, किसी ने व्यापक माना है, किसी ने एक देशी माना है, किसी ने भिन्न-भिन्न माना है। नाना प्रकार की मान्यताएँ आध्यात्मिक जगत में हैं परन्तु सद्गुरु कबीर लोगों को सम्बोधित करके कहते हैं कि मैं आत्मा रूप से व ब्रह्म रूप से सभी में हूँ परन्तु मेरे में सब नहीं है। अर्थात् तू जो यह जगत देख रहा है। यह मेरा स्वरूप नहीं है। क्योंकि जगत परिवर्तनशील है। परिणामी होने के कारण मैं जगत रूप नहीं हूँ। यह जगत विवर्तवाद वाला है। परिवर्तनशील है परन्तु मैं अपरिवर्तित, अजन्मा हूँ। यद्यपि यह मेरे से ही उत्पन्न हुआ है, मुझसे भिन्न नहीं है परन्तु इसका जो स्वरूप दिखाई दे रहा है, यह नहीं है। जैसे हिम की शिला पिघलते-पिघलते जल हो जाती है। पुनः वायु के प्रभाव से आकार का रूप ले लेती है परन्तु उसका जो जल स्वरूप है वही स्थायी है। वही मूल कारण है। शिला के आकार में परिवर्तन होता रहता है। इसी प्रकार से यह दृश्यमान पदार्थं जो देख रहे हो जो यह भूत भौतिक सारी सृष्टि है, नहीं है, तुझे अज्ञान के कारण भास रही है। क्योंकि यदि इसका अस्तित्व वास्तविक रूप में होता तो इसको सुषुप्ति अवस्था में भी रहना चाहिए परन्त सुषुप्ति अवस्था में जगत के दर्शन नहीं होते और

ज्ञान दशा में जगत है ही नहीं। केवल अज्ञान दशा में जगत भासता है। इसलिए मैं जगत का रूप नहीं हूँ। मेरा स्वरूप सत चित आनन्द घन है जो विकारों से परे है वही है। उसी रूप में मैं सब में विराजमान रहता हूँ परन्तु जगत के विद्वान मुझे बिलग-बिलग विभाजित करते हैं। अर्थात् मुझे अपने मत-पथ के अनुसार देखते हैं। मुझे कोई जीव रूप में देखता है, तो कोई चेतन रूप में देखता है, कोई ईश्वर रूप में देखता है, कोई ब्रह्म रूप में देखता है। अपने दृष्टिकोण के अनुसार सभी लोग मुझे भिन्न-भिन्न देखते हैं। मेरा जो स्वरूप है। चर्म चक्षुओं से नहीं दिखाई पड़ता। क्योंकि मैं ऊपर से प्रकृति रूप एक पिछौरा व दुपट्टा ओढ़े हुए हूँ। अर्थात् प्रकृति ही मेरा उत्तरीय वस्त्र है। जिसमें मैं छिपा रहता हूँ परन्तु तत्त्वज्ञ लोग मुझे एक ही रूप में जानते हैं। विभिन्न रूपों को देखकर वे विभिन्न नहीं मानते। तत्त्वज्ञों की दृष्टि में मैं एक हूँ और अकेला हूँ। एक होने से मेरे में अन्तर नहीं है। मैं नित्य हूँ, निरन्तर हूँ। खण्ड-खण्ड नहीं हूँ। जैसे चन्द्रमा अरबों घटों में दिखाई पड़ता है। करोड़ों घटों में जल भर दीजिए और करोड़ों प्रकार का उसमें रंग डाल दीजिए। रंग के कारण चन्द्रमा विभिन्न रंगों में दिखाई देने लगता है परन्तु चिदाकाश में जो चन्द्रमा का रूप है। उसमें किसी प्रकार की विकृति नहीं दीखती।

इस प्रकार से यह अनन्त रूप वाली जो सृष्टि है जो करोड़ों रंगों में भासती है परन्तु जो चेतन आत्मा है। वह चन्द्रमा की भाँति एक है। केवल शरीर रूपी घट अनेक होने से अनेक भासता है। सद्गुरुदेव कहते हैं कि समस्त उपाधियों को हटाकर मुझे एक समान कोई नहीं समझ रहा है। अर्थात् यह आत्मा एक है, अखण्ड है। चन्द्रमा की भाँति सबमें अकेले ही विद्यमान है, व्यापक है। अपने सहित सम्पूर्ण एक है। ऐसा कोई नहीं समझ पा रहा है। यदि लोग इस प्रकार से समझ लें तो जो जरा, वृद्धावस्था होकर मर जाते हैं यह भ्रम खत्म हो जायेगा। क्योंकि— ब्रह्मविद ब्रह्मैव भवति', 'तद्पश्यति तद् भवति तदासीत्' यजुर्वेद इस प्रकार से सद्गुरु कबीर साहब का कहना है कि मुझे जानना चाहिए।

सद्गुरु कहते हैं मुझ आत्मा में रात-दिन का भेद नहीं है। अर्थात् आत्मा न रात्रि के अंधकार से प्रभावित होता है और न दिन के प्रकाश से प्रकाशित होता है। वह चन्द्र और सूर्य के प्रकाश से सदा भिन्न रहता है। जहाँ आत्मा रहता है। वहाँ रात्रि दिवस नहीं होते। अर्थात् वह

आत्मा सामान्य रूप से स्त्री-पुरुष में वर्तमान है। वह आत्मा न बालक है, न युवा है, न वृद्ध है और न उसमें चिलकाई कहिए किशोरापन है। वह आत्मा तीनों अवस्था में समान रूप से वर्तता है। व्यवहार करता है। उसमें बालकपन, जवानीपन, वृद्धापन नहीं होते।

**त्रिविध रहौं सभनि मा बरतों, नाम मोर रमुराई हो।**
**पठये न जावौ आने नहिं आवौ, सहज रहौ दुनियाई हो॥**
**जोलहा तान बान नहिं जानै, फाटि बिने दस ठांई हो।**
**गुर परताप जिन्हैं जस भास्यो, जन बिरले सो पाई हो॥**
**अनंत कोटि मन हीरा वेधा, फिटकी मोल न पाई हो।**
**सुर नर मुनि जाके खोज परे हैं, किछु-किछु कबिरा पाई हो॥**

**शब्दार्थ**—रमुराई–राम राय, रामराजा, परब्रह्म। पठये–भेजने से। जाऊं–नहीं जाता हूँ। आने–बुलाने से। आऊं–नहीं आता हूँ। सहज–सामान्य रूप से। दुनियाई–संसार में। जोलहा–कबीर साहब, जीवात्मा। तान बान–सृष्टि की प्रक्रिया आत्म-रहस्यवाद, तानबान--ताना बाना जिस प्रकार से वस्त्र बुनने के लिये सूतों को जुलाहे लोग ताना बाना तानते हैं वस्त्र बुनने की प्राविधि यह जीव रूपी जुलाहा नहीं जानता है। फाटि–वस्त्र, पट। दस–शरीर के दशों छिद्रों दसो इन्द्रियाँ। ठांई–स्थान। परताप–तेज, महत्त्व, प्रसाद, कृपा। जिन्हें--जिसको। जस–जैसे। भास्यो–कहा। जन--भक्त। बिरले–कोई-कोई। सो–वह। पाई–प्राप्त किया। कोटि–करोड़। हीरा–एक मूलवान रत्न, ब्रह्मतत्त्व। वेधा–समाविष्ट, प्रकाशित। फिटकी–नकली हीरा, छोटा वस्त्र का फूचड़ा, टुकड़ा। जाके–जिसके। किछु-किछु–थोड़ा-थोड़ा आभास। कबीरा--कबीर साहब।

**मूलार्थ**—और वह आत्मा नाम रूप से भिन्न है। सम्बोधन के लिए परमेश्वर कहता है कि मेरा नाम रामराजा है। अर्थात् मैं सबसे परे हूँ। सबका स्वामी हूँ। सबका नियन्ता हूँ। मुझसे परे कोई तत्त्व नहीं है। परमेश्वर कहता है कि मेरे पर किसी का आदेश नहीं चलता है सम्पूर्ण होने से, सर्वव्यापी होने से मैं किसी के भेजने पर अर्थात् लोक विशेष में नहीं जाता हूँ। इस प्रकार से किसी के बुलाने पर भी कहीं से आता नहीं हूँ। क्योंकि प्रत्येक कण में मेरा निवास है। प्रत्येक स्थानों में मैं विद्यमान हूँ। इसलिए मुझ आत्मा को कहीं से आने-जाने का प्रश्न ही नहीं

उठता। मैं सामान्य रूप से संसार में निवास करता हूँ। प्राणियों के हृदय में रहता हूँ। जोलाहा जो जीव है। मेरी प्राप्ति का ताना-बाना नहीं जानता है। मेरी उपलब्धि का भेद इसको मालूम नहीं है। परन्तु मुझसे भिन्न दस द्वार वाले शरीर रूपी पट को अज्ञान के कारण बिनते रहता है। यदि जोलाहा का अर्थ कबीर साहब लिया जाय तो अर्थ होगा कि मैं सांसारिक वस्तुओं का ताना-बाना निर्माण नहीं करता हूँ। मैं शरीर के दसों इन्द्रियों को निग्रह करने वाली उपाय जानता हूँ। अर्थात् दसों इन्द्रियों के द्वार पर निरोध रूपी ताला लगाकर चेतन देश में निवास करता हूँ। आत्मा की प्राप्ति गुरु प्रताप से हो सकती है। आत्म ज्ञान भी विभिन्न प्रकार का है। जिसका गुरु जिस प्रकार का उपदेश देता है। उसको उसी प्रकार से परमतत्त्व की प्राप्ति होती है। परन्तु बिना गुरु प्रताप से, बिना गुरु कृपा से प्रभु प्राप्ति दुर्लभ है। बहुत लोग इसको प्राप्त नहीं कर पाते। कोई प्रभु के जन गुरु के भक्त बिरले ही सो कहिये उसको प्राप्त करते हैं। वह प्रभु अपने से भिन्न नहीं है। वह अनन्त कोटान्त कोट मन कहिये मनुष्य के हृदय में हीरा के समान विधा है। हीरा कहिये वह प्रकाश स्वरूप हृदय में हीरा के समान जैसे जहाँ वह रहता है, प्रकाश करते रहता है। क्योंकि उसका गुण ही प्रकाश वाला है। उसी प्रकार से आत्मा चर-अचर सम्पूर्ण प्राणियों में प्रकाशित हो रहा है। सबको सत्ता-स्फूर्ति दे रहा है। परन्तु साधनहीन मनुष्य जो न भजन करता है जो न गुरु की सेवा करता है। जो न सत् संग करता है। जो न माता-पिता की सेवा करता है। जो न गुरुजनों का आदर करता है। वह कितना भी धनाढ्य हो चाहे कि हम द्रव्य के बल पर आत्मज्ञान को मोल ले लें तो फिटकी कहिये कणमात्र भी अर्थात् वस्त्र के एक सूत के बराबर भी उसको धन के बल पर वह आत्मा प्राप्त नहीं होगा। तात्पर्य यह है कि तत्त्व-ज्ञानियों की सेवा के बिना उनको द्रव्य दिखाकर जो आत्मतत्त्व की प्राप्ति करना चाहता है। वह भूल में है। भ्रम में है और आत्म-तत्त्व से बहुत दूर है।

सद्गुरु कहते हैं कि देवता लोग और मनुष्य लोग मनन शील मुनि लोग जिसकी खोज में पड़े हुए हैं। उस परमतत्त्व की थोड़ी-थोड़ी झांकी थोड़ा सा अंश मुझ कबीर को प्राप्त हुआ है। क्योंकि सम्पूर्ण रूप से उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। क्योंकि वह सीमातीत है। देश काल से परे है। इसलिए कुछ का अर्थ आभास मात्र है। अर्थात् उसकी जानकारी मुझ कबीरको सद्गुरु की कृपा से हो गयी है। जो सद्गुरु की सेवा करेगा। उसे भी उसकी जानकारी हो जायेगी।

# कहरा ११

## माया अविद्या प्रकरण

ननदी गे तैं विखम सोहागिनि, तैं निदले संसारा गे।
आवत देखि मैं एक संग सूती, तैं औ खसम हमारा गे।।
मोरे बाप कै दुइ मेहररुआ, मैं अरु मोर जेठानी गे।
जब हम रहलि रसिक के जग में, तबहिं बात जग जानी गे।।
माइ मोर मुवलि पिता के संगे, सरा रचि मुअल संघाती गे।
आपुहिं मुवलि अउर ले मुअली, लोग कुटुम संग साथी गे।।
जब लगि सांस रहे घट भीतर, तौ लौं कुशल परी हैं गे।
कहैं कबीर जब सांस निकरि गौ, मंदिल अनल जरी हैं गे।।

**शब्दार्थ**—ननदी–कुमति, अविद्या। गे–हे मगध में और मिथिला में 'हे' के जगह गे, लगाते हैं। सम्भव है यह पद मगध की यात्रा में मुखरित हुआ हो। तैं–तू। विखम–विषम सम नहीं बराबर नहीं। सोहागिनि–सुवासिनी, पतिव्रता। निदले–निद्रा में। आवति–आते समय। खसम–पति, परमेश्वर जीव। मोरे–मेरे। बाप–पिता, कार्यब्रह्म। दुइ–दो। मेहररुअवा–महिला, स्त्री। मैं–माया। जेठानी–सत्त्वगुणात्मिका ब्रह्म-शक्ति। रहलि–रही। रसिक–प्रेमी जन, परपति, अनात्म। तबहिं–तभी। बात–व्यभिचार, कुसंग। माई–माया का सात्विक अंश। मुवलि–मरी। पिता–परब्रह्म। सरा–चिता, वैराग्यग्नि। रचि–सजाकर। मुवल–मृत हुई। संघाती–संग में रहने वाले काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अविवेक, अशौच, अदाया। आपुहि–अपने आप, माया और तृष्णा आदि के साथ। कुटुम्ब–चतुष्टय अन्तःकरण साथ ही, पंचज्ञान इन्द्रियों के विषय। तौ लौ–तब लग। मंदिल–मंदिर शरीर। अनल–अग्नि।

**सम्बन्ध**—पहले कहा गया है कि परमात्मा सबमें निवास करता है। जिसमें घट पटादि के दृष्टान्तों द्वारा उसकी सिद्धि की गयी है और अन्त में कहा गया है कि उसकी प्राप्ति भी हो गयी। अब कहा जा रहा है कि यह जीव जो परमतत्त्व से दूर रहता है। उसका कारण माया, अविद्या और कुमति है। इस पर माया के माध्यम से सद्गुरु कहते हैं कि हे–कुमति!

तुम सारे संसार को कुमार्गगामी बना रही हो। जिसके कारण मनुष्य सत्य तक पहुँचने में नितान्त असमर्थ हो रहा है।

**मूलार्थ**—हे कुमते हे अविद्ये तुम विषम स्त्री व सुवासिन हो तुम पति व्रत धर्म को नहीं जानती हो पर अपने को परम सोहागिन कहती हो तुम समस्त संसार को मोह निद्रा में सुला दी हो। सृष्टि काल में ही जब मैं आयी तो देखा कि तुम और मेरा पति एक साथ में सूते हैं। तुम अर्थात् ब्रह्म का जो चतुर्थ पाद जीवात्मा है। हे कुमते ! तुम उसको विवश करके उस पर छा गयी हो। क्योंकि मेरे पति देव भी तेरे अधीन हो गये हैं। इतना ही नहीं मेरे पिता जो कार्यब्रह्म हैं उनकी भी दो पत्नियाँ हैं। अर्थात् उनके साथ भी उपाधि खड़ी हो गयी है। मैं माया और मेरी जेठानी जो है उसकी सत्वांश भागी है वह पिता की पत्नी बन चुकी है। अर्थात् चेतन आत्मा जो कार्यब्रह्म के रूप में है। वह भी उपाधि के घेरे में घिरा हुआ है। मैं माया उसी से उत्पन्न हुई हूँ। इसलिए उसकी पुत्री भी मैं कहलाती हूँ। पिता पुत्री के साथ नजायज सम्बन्ध हो गया है। परन्तु जो माया का सत्वांश सात्विक बुद्धि है। वही मेरी जेठानी है। वह भी पिता के साथ रमण करती है। तात्पर्य यह है कि माया और माया का सत्वांश सात्विक बुद्धि कार्यब्रह्म के साथ लगी रहती हैं। तभी वह जगत का निर्माण करता है और संसार के काम में तभी उसकी प्रवृत्ति होती है। परन्तु जब मैं रसिक के संग में रही अर्थात् परपति संसार की ओर मेरी वृत्ति लगी रही कार्यब्रह्म को छोड़कर ब्रह्म के चतुर्थांश पद जीव में अनुरक्ति जब हो गयी तो वहाँ मैं अविद्या के रूप में उसको वश में कर लिया जीव और अविद्या का संग अनादि काल से चला आ रहा है। यह बात संसार के प्रत्येक तत्त्व ज्ञानी जानते हैं। परन्तु जब जीव को अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाता है तो वह माया से और अविद्या से मुक्त हो जाता है। तब वह माया जो सद्गुण वाली है वह जाकर स्वस्वरूप में लीन हो जाती है। अर्थात् पिता का जो जीव नाम पाद वाला अंश है। उसके समाप्त होने पर अविद्या और माया स्वयं नष्ट हो जाती हैं। वैराग्य रूपी चिता, रचि कहिये तैयार कर सभी जो माया के संघाती थे वे सब जल मरे हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह कोई भी नहीं बच पाते। माया तो साथ ही साथ मरती ही है वह औरों को लेकर भी मरती है। जो पुराने संस्कार होते हैं। जो अन्तराय होते हैं वे सब के सब समाप्त हो जाते हैं और जो लोग कुटुम्ब साथ में रहते हैं

पंचज्ञान इन्द्रियों के विषय चतुष्टय अन्तःकरण जो जीवात्मा के साथ रहते थेवे तुरीय अवस्था में पहुँचते-पहुँचते समाप्त हो जाते हैं। यह स्थिति मनुष्य को तभी तक प्राप्त हो सकती है जब तक उसके शरीर में प्राणों का संचार होता रहता है। जब तक जीव आत्मा शरीर में विराजमान रहता है तभी तक कुशल हो सकता है। व आत्मतत्त्व को प्राप्त कर सकता है।

सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि जब तुम्हारे शरीर रूपी घट से श्वास के साथ जीवात्मा निकल जायेगा तब कुछ होने वाला नहीं है। शरीर रूपी मन्दिर अग्नि में डाल कर जला दिया जायेगा। इसलिए श्वास के रहते हुए यदि कोई जागना चाहता है एवं परमतत्त्व की प्राप्ति करना चाहता है तो वह कर ले। अन्यथा मानव योनि समाप्त होने के बाद उसके हाथ कुछ लगने वाला नहीं है।

**आशय**—तात्पर्य यह है कि जो अविद्या रूपी कुमति है वह बहुत विषम स्वरूप वाली है। स्त्री के समान है। कुमति एक प्रकार की धूर्तता है। धुर्त मनुष्य बाहर से बहुत साफ सुथरा दीखता है परन्तु अपने धूर्त जाल में सारे जगत को प्रभावित करना चाहता है और कर भो देता है। यह सारा संसार कुमति और अविद्या का कार्य है अपने मोह जाल में अपनी ममता में पड़ा होने के कारण सारा संसार परमार्थ की ओर से सोया हुआ है और यह अनादि काल से सोते आ रहा है। सद्‌गुरु साहब कहते हैं कि संसार का व्यवहार जो है बड़ा व्यभिचार युक्त है। आते समय में ही दिखाई देने लगता है कि कुमति जीवात्मा को घेरे हुए है। यह सभी विवेकी पुरुष देखते हैं कि मनुष्य दो तरफा से फँसा हुआ है। एक तो अपने से उत्पन्न मोह माया से फँसा हुआ है। दूसरा सत्त्वगुण वाली वृत्ति भी जीवों के लिए बाधक है। यदि जेठानी का अर्थ तृष्णा लिया जाय तो जो माया के बहुत निकट सम्पर्क में है। अर्थात् तृष्णा और माया से यह पिता स्वरूप जीवात्मा दोनों से घिरा हुआ है। जबतक जीवात्मा रसिक बना हुआ होता है और अपने से उत्पन्न दुर्बुद्धि के साथ ही निवास करने लगता है। तो इसकी और विषम स्थिति हो जाती है। तत्वज्ञ पुरुष दूर से ही समस्त व्यवहार को देखते रहते हैं। यदि कोई जिज्ञासु तत्त्वज्ञ का साथ करता है तो अविद्या जन्य कुमति और जीव का जो जोव स्वभाव है तत्त्वज्ञान प्राप्त होने पर दोनों का अभाव हो जाता है। वैराग्यरूपी चिता को रचकर ज्ञानाग्नि प्रकट कर अविद्या व कुमति के वर्ग के सभो लोग ज्ञानाग्नि में भस्म हो जाते हैं। माया तो स्वयं मर जाती है। तथा और भी दोष सिद्धि आदि जो उसके साथ रहती हैं। जिससे अहंकार एवं

काम, क्रोध उत्पन्न होते हैं वे सबके सब ज्ञानाग्नि में दग्ध हो जाते हैं। जो भी लोग कुटुम्ब कहिये चतुष्टय अन्तःकरण पंचज्ञान इन्द्रियों के जो विषय हैं जो साथी हैं। वे सबके सब तुरीया अवस्था में पहुँचते-पहुँचते योगी को छोड़ कर चले जाते हैं। अब केवल आत्मा बचता है। उसमें किसी प्रकार के दोष नहीं रह जाते। सद्गुरु कहते हैं कि उक्त स्थिति तभी प्राप्त होती है जबतक शरीर में आत्मा है। शरीर में आत्मा के रहते ही कुशल और क्षेम की प्राप्ति हो सकती है। अन्यथा शरीर से जब श्वास निकल जायेगा अर्थात् जीवात्मा बाहर हो जायेगा तब कुछ होने जाने वाला नहीं है। मृत शरीर को अग्नि में भस्मिभूत कर देंगे। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि शरीर के रहते तत्त्वज्ञान की प्राप्ति कर लें।

### कहरा ११ का वाक्यार्थ

**वाक्यार्थ**—मायारूपी भौजी कुमतिरूपी ननद से कहती है कि हे ननद! तैं बड़ी विषम स्त्री है। तू संसार को सुलाय रखा है। हम आती रही तो देखा कि मेरा खसम और तै एक साथ सोयी रही। मेरे पिता के दो स्त्री है। मैं और मेरी जेठानी जो है वह पिता की अर्द्धांगनी है। जब हम प्रियतम के घर व जार के घर रही। अर्थात् पितारूप पति को छोड़कर दूसरे से संगकर लिया था। मुझे लोग जान गये थे कि यह भ्रष्टा है। पिता के साथ ही मेरी माता भी मर गयी जो चिता रचकर संगी-साथियों के साथ जल मरी। माँ तो अपने आप मर ही गयी आसपास के दूसरे लोगों को भी लेकर जल मरी और जो लोग घर के कुल कुटुम्ब के थे। जो संग साथ में रहने वाले थे उनको भी भस्म कर डाला। जबतक शरीर में श्वास रहेगा तभी तक कुशल मंगल से रह पाओगे।

मैं कबीर कहता हूँ कि जब शरीर से श्वांस निकल जायेगा तब शरीर रूपी मन्दिर अग्नि में डालकर जला दिया जायेगा यही इस तन की अन्तिम परिणति है।

## कहरा १२

**ई माया रघुनाथ कि बौरी, खेलन चली अहेरा हो।**
**चतुर चिकनिया चुनि-चुनि मारे, कोइ न राखेउ न्यारा हो॥**
**मौनी वीर दिगंबर मारे, ध्यान धरन्ते जोगी हो।**
**जंगल में के जंगम मारे, माया किनहुँ न भोगी हो॥**
**बेद पढन्ते बेदुआ मारे, पूजा करन्ते स्वामी हो॥**

**शब्दार्थ**—ई–यह। रघुनाथ–ईश्वर, परमतत्व, कार्यब्रह्म। बौरी–बावली पगली उन्मत्त। अहेरा–आखेट, शिकार। चतुर–दक्ष, चालाक। चिकनिया–सुन्दर रूप वाले शौकीन। चुनि-चुनि–एक-एक करके, बीन-बीन करके। राखेउ–रखा। मौनी–जो बोलते नहीं, मौन होकर तप करते हैं। वीर–एक प्रकार के शैव संन्यासी, जो शैव साधु पाशुपत भी कहे जाते हैं। दिगंबर–जो वस्त्र नहीं पहनते नंगे घूमते हैं ध्यान धरने वाले योगी। जंगम–लिंगायत सम्प्रदाय के साधु जिनको वीर शैव भी कहते हैं जंगम जो एक संन्यासी होते हैं जो सदा चला करते हैं कहीं स्थायी मठ मकान नहीं बनाते हैं। बेदुआ–वेदज्ञ, जो वेद को जानता है। पढ़ा है। स्वामी–बड़े-बड़े मंडलेश्वर पूजाने वाले महन्त।

**सम्बन्ध**—इसके पहले पद में कुमति को ननद की संज्ञा देकर व्यंग्य किया गया है कि तू बड़ी विकराल है। तेरे में कभी समभाव नहीं रहते तू मनुष्यों को भ्रष्ट बनाने में प्रथम है। अन्त में कहा गया कि जो ननदी भौजिया के वश में नहीं होते। वही भवसागर से पार हो सकते हैं। अर्थात् जो सन्त-महापुरुष मोहमाया से विरत होते हैं। जिनके पास अच्छी बुद्धि है और अच्छे गुरु की संगत हो गयी है। वे भवसागर से पार हो जाते हैं। परन्तु नीचे पुनः माया की विकरालता को बताते हुए उसके द्वारा। जो हानिकर परिणाम होते हैं उन्हें अन्तिम कहरा में दर्शाया गया है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि यह जो माया हैं जो अनेक नाम रूप धारण करने वाली है। जो समय से ननद-भौजाई हो जाती है। अर्थात् अविद्या और माया हो जाती है। कभी कुमति बन जाती है। कभी सुमति बन जाती है। कभी पुत्र-कलत्र बन जाती है। कभी अथाह सम्पदा बन जाती है। कभी रिधि-सिद्धि का रूप धारण कर लेती है। कभी किसी को अकिंचन बना देती है। कभी किसी को महाराजाधिराज बना देती है। कभी किसी को भवसागर पार कर देती है। कभी किसी को नरक में ही डाल देती है।

अर्थात् इस माया के अनन्त कार्य हैं और इसके अनन्त रूप हैं और यह विचित्र विकराल रूपवाली माया परात्पर–रघुनाथ जी की माया है। जो बड़ी ही पगली, बवाल मचाने वाली है। यह उन्मत्त होकर संसार में विचरण करती है। संसार रूपी वन में यह आखेट खेलने जब निकलती है। तो इसके नयन बाण के लक्ष सबसे पहले जो चतुर हैं। वही लोग माया के शिकार होते हैं जो अपने को बहुत बुद्धिमान बनते हैं। जो जल्दी पकड़ में नहीं आते हैं। सबसे पहले

उन्हीं को नेत्रों से वेध डालती है। इसके बाद दूसरा नम्बर चिकनियों का आता है। जो बड़े छैल-छबीले हैं। जो बड़े सुन्दर हैं। शरीर को खूब सजाते हैं। उनको भी धर दबोचतो है। ऐसे लोगों को चुन-चुनकर मार डालती है। वह इनमें से किसी को संसार रूपी जंगल से बाहर नहीं निकल भागने देती है। सबके सबको निगल जाती है। जो मौनी हैं! जो कभी किसी से बोलते नहीं है और उनकी बड़ी प्रतिष्ठा होती है। उन मौनियों को भी वह रगड़ डालती है। इसी प्रकार से वीर सम्प्रदाय के शैव साधुओं को भी नहीं छोड़ती है। जो अपने को बहुत शूर वीर बनते हैं। समर विजयी बनते हैं। योद्धा बनते हैं। उनको भी पराभूत कर देती है। इसी प्रकार से जो दिगम्बर हैं, जो जैनमत के नागा हैं, जो शैवमत के नागा हैं। जिनकी दिशा ही अम्बर है। जो बहुत इन्द्रिय जीत कहे जाते हैं जिनके शिश्नों की पूजा होती है। ऐसे दिगम्बरों को भी महामाया छोड़ने वाली नहीं है। अपने अंचल में कर लेती है।

इसी प्रकार से गुफाओं में रहकर एकाकी रहकर जो ध्यान करते हैं। जो अपने को बड़े से बड़े योगीश्वर मानते हैं। जो भूत-भविष्य की बातें कहते हैं। आत्म ज्ञान के अभाव में संसार की मान बड़ाई में पड़ने के कारण अहमन्यता में वे योगी भी मारे जाते हैं। जो जंगल में विचरण करने वाले जंगम संन्यासी हैं। जो एक वृक्ष के नीचे केवल एक दिन रहते हैं। गिरा-पड़ा फल खाकर जीवन बिताते हैं। परन्तु त्याग का अभिमान होने से माया उन्हें भी भस्मीभूत कर देती है। उस माया को कोई भी भोग नहीं कर सका। अर्थात् अपने वश में करने में उपर्युक्त लोगों में कोई समर्थ नहीं हुआ।

अब प्रश्न उठता है कि जो लोग माया के द्वारा मारे गये हैं वे पढ़े-लिखे नहीं होंगे परन्तु गुरुदेव कहते हैं कि ऐसी बात नहीं है। वेद पढ़ने वाले वेदज्ञ पंडित भी माया के द्वारा छले गये हैं जो सदैव कर्मकाण्ड में ही लगे रहे। इसी प्रकार से पूजा करने वाले स्वामी लोग जो संन्यासी लोग हैं ये वे भी अपने अहंकार के कारण माया के दास बन गये हैं।

**अर्थ बिचारत पंडित मारे, बांधे सकल लगामी हो।**
**सिंगी रिखि बन भीतर मारे, सिर ब्रह्मा के फोरी हो॥**
**नाथ मछन्दर चले पीठ दै, सिंघलहु में बोरी हो।**
**सांकट के घर करता धरता, हरि भगता के चेरी हो॥**
**कहैं कबीर सुनो हो संतो, ज्यूं आवै त्यं फेरी हो॥**

**शब्दार्थ**—अर्थ–अर्थ, तत्त्व विचारक। पंडित–दार्शनिक विशेष पढ़ा लिखा। लगामी–लगाम, जो घोड़ों के मुंह में डालकर ले जाया जाता है। जो लोहे की होती है। सिंगी रिखि-श्रृंगि ऋषि, महर्षि, विभाण्ड के पुत्र। फोरी–काटी। मछेंदर–मत्स्येन्द्रनाथ, गुरु गोरखनाथ के गुरु। सिंघलहु–श्रीलंका में। बोरि–डुबा दी। सांकट–शाक्त। चेरी–दासी। ज्यूं–जैसे। त्यूं–तैसे। फेरी–लौट दो।

**मूलार्थ**—पूजा करने वाले स्वामी जी भी मारे गये। अब वे जो बड़े बड़े दार्शनिक थे। तत्त्व चिंतक थे। जो सूक्ष्म रीति से वेद-शास्त्रों पर भाष्य किये हैं। जिनकी बुद्धि का सभी लोग लोहा मानते हैं। वे लोग और कसकर बांध दिये गये हैं। उनके मुख में बहुत बड़ी लगाम लगा दी गयी। जो कभी इधर-उधर न हो सकते हैं। 'लगाम' में व्यंजना है और श्लेष अलंकार है। सचमुच तत्त्व चिंतक, विचारक लोग जिनको पंडित कहा जाता है। वे माया के लिए भी बड़े दुर्धर्ष बने रहे। उनके सामने माया की भी कुछ चलने वाली नहीं थी जिन्हें बड़ी कठिनाई से उसने लोह रूपी सम्मान से बांध रखा है। समाज उनका लोहा मानता था। उनके सामने सभी नतमस्तक होते रहते थे। इसलिए अपने को सर्वेसर्वा मान बैठे थे अपने को ब्रह्म कहने लगे। अपने से किसी दूसरी सत्ता को नहीं स्वीकार करते थे। इसी अभिमान रूपी लोहे से उनको भी परमतत्त्व तक नहीं पहुँचने दिया। इसी प्रकार से जो श्रृंगिऋषि थे। जो बाल ब्रह्मचारी थे। जिनकी रखवा ली सदा विभाण्डक ऋषि करते थे कि मेरे पुत्र को कोई छल न ले जाय। परन्तु माया रूपी अंगदेश की वेश्याएँ श्रृंगी ऋषि को छल ले गयीं। उनका ब्रह्मचर्य नष्ट कर दिया गया। इसी प्रकार से लोक पितामह प्रजापति ब्रह्मा का भी सिर भगवान शंकर जी के द्वारा काटा गया पुराणों में कथा आती है कि एक बार के अनैतिक कर्मों के कारण भगवान शंकर ब्रह्मा के शिर को काट लिया। अर्थात् वे भी माया से नहीं बच पाये। इसी प्रकार से हठयोग के नाथ योग प्रवर्तक स्वामी गुरु मत्स्येन्द्रनाथ भी एक सुन्दरी को देख कर योग ध्यान से पीठ देकर अर्थात् विमुख होकर सिंघलद्वीप में जा पहुँचे। जिन्होंने सिंघलद्वीप की राजा की पत्नी से बहुत दिन तक भोग-विलास किया था।

सद्गुरु कहते हैं कि शाक्तों के घर में तो यह माया स्वयं स्वामिनी बनकर बैठी है और वही उनका हरण करने वाली भी है। अर्थात् शाक्त लोग शक्ति की उपासना करते हैं। माता भी मानते हैं और सिद्धियों के लिए उसके साथ भोग विलास भी करते हैं। ये और संकट में फँस

गये हैं। क्योंकि इनके यहाँ माया ही सब कुछ है। जो सदा उसके पशु बने हुए हैं क्योंकि जैसे पतंग स्वयं ज्योति में पड़कर भस्म हो जाता है वैसे ही ये वामाचारी अघोर पंथी सिद्धि में जाकर नष्ट हो जाते हैं। इनके पूजा की विधि बहुत विचित्र हैं। ये स्त्री को नंगी करके उसके अंगों को पूजा करते हैं। इसलिए उस प्रसंग को आगे नहीं बढ़ाना है। अब कहा जा रहा है कि जो हरि भक्त हैं। जो प्रभु के सेवक हैं। उनके यहाँ भी वह पहुँच गयी है और दासी बनकर चेली बनकर साथ लगी हुई है और बाबा लोग भी खूब सेवा टहल कराते हैं। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे सन्त-सज्जनों ! मुझ कबीर की बात सुनो और समझो। यदि इस माया से तू बचना चाहता है और इसका दास नहीं बनना चाहता है तो जैसे ही तेरे पास आती है। वैसे ही तुरन्त उसको वापस कर दो। उसको पास में मत रुकने दो। चाहे वह भक्तिन बनकर आती हो, चाहे वह रुपया-पैसा बनकर आती हो, चाहे वह मान सम्मान बनकर आती हो, चाहे अपमान बन कर आती हो किसी भी प्रकार से यदि तुझे उससे भय उत्पन्न होता हो तो उसको पास में न रखो। तभी उस प्रमदा से बच सकते हो अन्यथा कोई मार्ग नहीं है। कोई उपाय नहीं है कि तू बच सकते हो।

**अन्तर्कथाएँ**—श्रृंगी ऋषि को कथा महाभारत वनपर्व अ० ११० में है कि—उर्वशी अप्सरा को देख कर जल में ही उनका वीर्यपात हो गया कोई मृगी पानी पीने आयी, तो वीर्य सहित पानी पी गई, फिर उस अमोघ वीर्य से ऋष्यश्रृंग हुए। वह मृगी प्रथम देव कन्या थी, उसे ब्रह्मा का शाप था कि मृगी होकर मुनि को पैदा करके शाप मुक्त होगी, उस मुनि के शिर में सींग भी थी, इसी से श्रृष्यश्रृंग ऋषि कहे जाते थे। वह मुनि पिता से अन्य किसी मनुष्य को नहीं देखे थे इसी से नित्य ब्रह्मचारी थे। इसी समय में दसरथ जी के मित्र अंगदेश के राजा लोमपाद के राज्य में अनावृष्टि हो गयी, पुरोहितों के साथ विरोध होने पर ब्राह्मण सब राजा को त्याग दिया। पूछने पर एक मुनि राजा को उपदेश दिया कि ब्राह्मण रुष्ट हो गये हैं, इसके लिए कुछ प्रायश्चित करो और वनवासी श्रृष्यश्रृंग ऋषि को स्त्रियों के द्वारा मँगवो यदि तेरे राज्य में वह आयेंगे तो अवश्य वर्षा होगी। अ० ११२–११३ में फिर राजा ने व्यश्याओं को धन देकर भेजा वह सब नैका पर मिष्टान्नादि लेकर गईं और मुनि के पिता की अनुपस्थिति काल में लुभा कर ऋषि को ले आईं, उनके आते ही वृष्टि हुई। राजा ने शान्ता नामक लड़की से उनका विवाह कर दिया और उनके पिता की शान्ति के लिए उनके मार्ग में

उचित व्यवस्था कर दिया जिससे वे भी शान्ति पूर्वक लौट आए और पुत्र से कह गये कि पुत्र हो जाने पर, राजा का हित करके फिर वापस जंगल में आना। वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड सर्ग दस में यह कथा कुछ विपरीत है। मुनि के शाप भय से मंत्री आदि ऋष्यशृंग को नहीं ला सके थे, तब राजा वेश्या द्वारा मँगवाया था।

ब्रह्मा जी के सिर फोड़ने की कथा कुर्म पु० उ० अ० ३१ में है कि एक बार ऋषियों ने ब्रह्मा से पूछा कि परतत्त्व क्या है, तब माया से मोहित होने के कारण शिव अपने को ही परमतत्त्व बताया लेकिन ब्रह्मा नहीं समझे और कहने लगे कि सदा स्त्री के साथ रहने वाला शिव परतत्व कैसे हो सकता है, इतने में अमूर्त प्रणव स्वरूप शिव प्रगट हो कर ब्रह्मा को समझाये कि देवी आगन्तुक है, भगवान अपने स्वरूप में सदा रहते हैं। तो भी नहीं मानने पर भैरव रुद्र प्रगट होकर ब्रह्मा के पंचम शिर काट लिये।

ब्रह्म पु० गौतमी का० अ० ४३ में कथा है कि—देवताओं से हार कर दैत्य सब भागे जाते थे, तब ब्रह्मा के पंचम गर्दभ का शिर बोला कि तुम सब कहाँ भागे जाते हो, जो देव सब आते हैं, उन्हें मैं क्षण मात्र में खा जाऊँगा, इस बात को सुन देव सब विष्णु भगवान से बोले कि, ब्रह्मा के इस नीच शिर को चक्र से काट दो, विष्णु ने कहा यह चक्र से कटने पर भी सभी को खा जायगा। शिव जी इसे काट कर धारण कर सकते हैं। फिर शिव ने उसे काट कर भूमि में धरना चाहे, तभी पृथ्वी बोली की इस पाप मय सिर को मेरे ऊपर रखोगे। तो मैं रसातल चली जाऊँगी। इससे शिव जी को हाथ में ही रखना पड़ा। इसी से शंकर जी कपाली कहलाते हैं।

### मंगला चरण समाप्ति पर

**छन्द**—सु समाप्त कहरा गीति जन की, भीति दूरहिं कर दिया।
गुरुदेव ने कृपा किया सब, भेद ब्रह्म बता दिया॥
महिमा महा गुरुराज की सब, ज्ञान ध्यान बखानते।
बन्दन करूँ पुनि-पुनि सदा, जो भेद भाव मिटावते॥

## बसंत प्रकरण सबद ५

### मंगला चरण टीकाकार कृत

**छन्द**—वसन्त सुसंत भने सुठि रूपहिं, योग अरु ज्ञान अनेकन वाता।
छुटी नहिं बात कोइ प्रसंग, सदा सत्संग महात्म राता॥
दीन दयालु कबीर कृपा निधि, मंगल रूप हमारे सुताता।
जासु कृपा सब सिद्ध सुकारज, ब्रह्म स्वरूप अनन्त विधाता॥

**छन्द**—भनत वसन्त वानीलोक गीति येहू मानी,
बहुत प्रकार ज्ञान कोश को बतायो हैं।
माया के प्रबल रूप राम कथा कही,
बहुत प्रकार से सु लोगन सुनायो हैं।
वेद को उलटि करि भेद सब भास्यो जन,
मन में समायो बात टारे नाहिं टारयो हैं।
ताते अति सुन्दर स्वरूप ज्ञान ग्रन्थ को,
बनाय कर लोक में जनायो भाव आपसु सुनायो हैं॥

## बसंत १

### सदा एक रस आत्मसुख प्रकरण

**जाके बारह मास वसंत होय, ताके परमारथ बूझै विरला कोय।**
**बरसे अगिनि अखंड धार, हरियर भौ बन अठारह भार।**
**पनिआ आदर धरिनि लोय, पौन गहै कसमलिन धोय॥**
**बिनु तरवर फूले आकास, सिउ विरंचि तहँ लेइ बास।**
**सनकादिक भूले भौंर बोय, लख चउरासी जोइनि जोय॥**
**जौ तोहिं सतगुरु सत लखाव, ताते न छूटे चरन भाव।**
**अमर लोक फल लावै चाव, कहैं कबीर बूझै सो पाव॥**

**शब्दार्थ**—जाके-जिसके। वसंत-वसंत ऋतु बड़ी सुहावनी आनन्द-प्रद होती है। लौकिक वसन्त जाड़ा के अन्त और ग्रीष्म के आगमन पर पड़ता है। अर्थात् माघ वसंत पंचमी से लेकर बैशाख तक वसंत का समय मापा गया है। जिसमें अति ललितोललास के साथ गाये जाने वाले

पदों को ही 'फागु' धमार, होली, वसंत कहा गया है परन्तु सद्गुरु कबीर अपने रुचि के अनुसार पद को बनाकर वसंत ऋतु का आध्यात्मिक रूप में वर्णन किया है। वसंत का एक अर्थ आत्मानुभूति भी है। ताके–उसके। परमारथ–परम अर्थ, श्रेष्ठ अर्थ, आत्मप्राप्ति अर्थ। बूझै–न समझे। बिरला–कोई-कोई। अगिनि–ज्ञानाग्नि, वैराग्य अग्नि। अखंड–जो खंडन न हो, निरन्तर धाराप्रवाह। हरियर–हरियाली। भो–हुआ। अठारह भार–पाँच करोड़ तीन लाख अट्ठासी हजार को दो गुणा करने से एक भार कहा जाता है। अठारह भार वनस्पतियाँ इस प्रकार हैं। चार भार फल वाली, चार भार लताएँ और छ भार फूलों वाली। चार भार कांटों वाली। पनिया–पानी, जल, सहस्रार से टपकता हुआ अमृत जल। आदर–प्रेम पूर्वक। धरिनि–रखा, सुरक्षित। लोय–विलोयकर, छानकर, लोग। पौन–प्राणायाम। गहे–ग्रहण करे, रोके। कसमलिन–पाप, प्रायश्चित, साफ करे। तरिवर–वृक्ष, आकाश, ब्रह्मरन्ध्र। शिव–मंगलमय शंकर जी। विरंचि–ब्रह्मा, रजोगुण। लेय–लेते हैं। वास–जो सुगन्ध, निवास। भंवर--भ्रमर। बोय--सुगन्ध। लख चौरासी योनि–चौरासी लाख योनियाँ ये हैं—नव लाख जीव, चौदह लाख पक्षी, सत्ताइस लाख कृमि, कीटादिक और पशु, तीस लाख उद्भिज और चार लाख मनुष्य जाति इन्हें मिलाकर चौरासी लाख योनियाँ कही गयी हैं। तोंहि-,तुझे। सतगुरु--तत्त्वज्ञ, आत्मवेत्ता। सत्–सत्य, आत्मा, ब्रह्म, भाव प्रेम। अमरलोक--आत्मलोक, सहस्रार। फर–फल, अमृतपद चाउ–प्रेम पूर्वक।

**सम्बन्ध**—ऊपर माया की विकरालता को 'कहरा' प्रकरण में कहकर बताया गया है कि जब तक अभिमान और मान-सम्मान रहेगा। तब तक मनुष्य कितना भी बड़ा हो जाय कितनी भी बुद्धि का प्रदर्शन करे किन्तु वास्तविकता तक पहुँचने में बड़ी कठिनाई है। अन्त में त्याग की महिमा बतायी गयी और कहा गया है कि सब वस्तुओं का त्याग करते जाओ। त्याग करते-करते शिव स्वरूप केवल तुम्हीं बचेगा। तभी तेरा कल्याण होगा। अब वसंत प्रकरण में उस परमानन्द की व्याख्या की जा रही है।

**मूलार्थ**—सदगुरु कहते हैं कि जिसको बारह मास वसंत की बहार रहती है। अर्थात् जो सदैव अपने अन्दर तत्त्वानुभूति करते रहता है। वही श्रेष्ठ अर्थ में है और उस परम अर्थ को जो प्राप्त कर लिया है। उसको कोई बिरला ही व्यक्ति समझना चाहिए। आत्म साक्षात्कार ही

परम अर्थ है। यही मानव का लक्ष्य है। यदि जीवन में किसी ने उसको प्राप्त कर लिया तो जैसे वसंत ऋतु में न सर्दी का असर होता है, न गर्मी का प्रभाव पड़ता है। समरस ऋतु बनी रहती है। उसी प्रकार आत्म साक्षात्कार करने वाले को न शोक होता है, न मोह होता है, न दुःख होता है, न सुख होता है। उसके यहाँ सदा वसंत ऋतु जैसा मौसम बना रहता है परन्तु आश्चर्य यह है कि उसी वसंत के बीच में अखण्ड अग्नि की धारा भी बरसती रहती है। अर्थात् आत्मज्ञानी को ज्ञानाग्नि का प्रवाह सतत् सहस्रार से बरसते रहती है। वह अग्नि तापदायक नहीं है। वह समरसत्ता को प्राप्त कराती है। उस ज्ञानाग्नि की वर्षा से अठारह भार रोम रूपी जो वनस्पतियाँ हैं, नस-नाड़ी हैं। शरीर के सारे अवयव प्रफुल्लित हो जाते हैं। हरे-भरे हो जाते हैं। मानव मन से मलिनता भाग जाती है। यह स्थिति उस साधक योगी की है जो ध्यान के द्वारा वृत्ति को प्रगाढ़कर लिया है।

सद्गुरु कहते हैं कि जब योगी को निर्विल्पक समाधि लग जाती है। तब सब तन मन हरे-मरे हो जाते हैं उदासी नाम की कोई चीज उसके मन में नहीं रहती है। तब योगी आदर पूर्वक चन्द्र निःश्रित जल को सेवन करता है। और उसको नाभि कमल में नहीं जाने देता है। दूसरा फल यह होता है कि जो पवन को अपने वश में कर लेता है अर्थात् जो प्राणायाम का नित्य अभ्यास करता है उसके पाप सब क्षय हो जाते हैं। जब योगी के पाप नष्ट हो जाते हैं तब यह मन सहस्रार में स्थिर हो जाता है। जहाँ बिना वृक्ष के ही ब्रह्मरन्ध्र रूपी आकाश में पुष्प फूलने लगते हैं और इस मार्ग का आविष्कार ब्रह्माजी और शिवजी जैसे योगियों के द्वारा हुआ है। वे भी सहस्रार में ब्रह्मरन्ध्र के पुष्प का वास लेते हैं। वे समाधि काल में निर्विकल्पक भाव से वहाँ स्थिर रहते हैं।

एक बात स्मरणीय है कि जब योगी सिद्धावस्था को पहुँचता है और भँवर गुफा में पहुँचकर सहस्रार में जा पहुँचता है तो वहाँ पर अनेक प्रकार के सुगन्धों की भरमार मची रहती है। अभी तक योगियों को निश्चित रूप से पता नहीं चला है कि यह सुगन्धि कहाँ से आती है और क्या है? कुछ योगियों का कहना है कि प्राणायाम से जब मन शुद्ध हो जाता है अन्तःकरण मलहीन हो जाता है तो उसमें अपने आप अनेक प्रकार की सुगन्धि होने लगती है। जिसको बड़े-बड़े योगियों ने सूंघा है। यहाँ तक कि सनकादिक जैसे ब्रह्मवेत्ता भी भ्रमर के समान उस आत्म सुगन्धि में विस्मृत हो गये। अर्थात् अपने आपको भूलकर उस परमतत्त्व में लयी.

करण हो गये न सनकादिक नाम रहा, न सनकादिक रूप रहा ये दोनों नाम रूपों को भूलकर उस परमतत्त्व को भ्रमर बनकर अर्थात् उसका जिज्ञासु बनकर प्राप्त कर लिया और उसी एक आत्मतत्त्व को अपने सहित लख चौरासी प्राणियों में भी देखा। यावत् चराचर में जोय कहिये जो है उन सभी योनियों में उन सभी देहधारियों में एक ही परमतत्त्व का दर्शन किया। किसी में घृणा का भाव न देखकर सबमें आत्म सुगन्धि के भाव देखे।

सद्गुरु कहते हैं कि जो सत्य मुझे सद्गुरु के द्वारा लखाया गया है अर्थात् उपर्युक्त परमपद की बात भी कही गयी है। वह तुझे सद्गुरु ने ही प्राप्त कराया है। इसलिए परमतत्त्व से प्रेम न हटाओ और कृतज्ञता स्वरूप सद्गुरु के चरणों की सेवा करो। जो आत्मलोक व हृदयाकाश में निवास करेगा वही सहस्रार के पुष्प की गन्ध ले सकता है। वही उसमें चाव रख सकता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि जो सहस्रार में निवास करेगा और वहाँ की बात समझेगा वही मुक्ति रूपी फल को प्राप्त कर सकता है। इस प्रथम वसंत में प्राणायाम पर बल दिया गया है। प्राणायाम का परिणाम-पवित्र उत्तम निकलता है। प्रथम तो मन में एकाग्रता आती है, दूसरे जो आत्मा पर अज्ञान रूपी पट पड़ा है उसका नाश प्राणायाम के ही द्वारा होता है क्यों महर्षि पतञ्जलि ने कहा कि "ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्" जो प्रकाशरूपी आत्मा पर आवरण पड़ा है वह प्राणायाम से नष्ट हो जाता है। प्राणायाम का अर्थ है प्राणवायु को रोकना, रेचक, पूरक, कुम्भक करना प्रथम वांये नाशा छिद्र से वायु को खींचकर रोके पुनः शनैः-शनैः में उतारे इसी प्रकार से दायें से भी मात्रा अनुसार खींच रोक कर छोड़ें यह क्रिया गुरु के द्वारा सीखनी चाहिए।

## वसंत २

### नाम जप योग प्रकरण

रसना पढ़ि लेहु स्री वसंत, बहुरि जाय परबेहु जम के फंद ॥
मेरुडंड परडंक दीन्ह, अस्ट कँवल परचारि लीन्ह ।
ब्रह्म अगिन कियो परगास, अरध उरध तहँ बहै बतास ॥
नउ नारी परिमल सो गांव, सखी पांच तहां देखन धाव ।
अनहद बाजा रहल पूरि, तहाँ पुरख बहत्तर खेलै धूरि ॥

**माया देखि कस रह्यो है भूलि, जस बनस्पति रही है फूलि।**
**कहैं कबीर यह हरि के दास, फगुआ मांगै बैकुंठ बास ॥**

**शब्दार्थ**—रसना–जिह्वा। पढ़ि–पढ़ो। लेहु–लीजै। स्त्री–श्री। वसंत –परमपद। बहुरि–पुनः। फंद–जाल में। मेरुदण्ड–जो कटिभाग से मस्तक तक हड्डी गयी है। जिससे अनेक हड्डियाँ पसलियाँ निकली हुई हैं वही मेरुदण्ड है जिसके अन्दर सुषुम्ना का निवास रहता है। डंक–डंका, एक प्रकार का बाजा चोट। अस्टकँवल–कमल, सुरति कमल। परचारि–परिजार, प्रज्ज्वलित, ब्रह्मअग्नि, तत्त्वज्ञान। परगास–प्रकाश। अरध–अर्द्ध, नीचे। उरध–ऊर्ध्वं, ऊपर। बतास–वायु। नौ नाड़ी–इडा, पिंगला, सुषुम्ना, गान्धारी, हस्तजिह्वा, पूषा, पयस्विनी, लकुहा, अलम्बुसा। परिमल–सुगन्ध। सखी–सखी, पाँच–पांच ज्ञानेन्द्रियाँ। धाव–दौड़ी। अनहद बाजा–अनाहतनाद। पुरख बहत्तर–शरीर में बहत्तर ग्रन्थियाँ, सोलह कन्डराएँ, सोलह जाल, चार रज्जु, सात सेंवनी, चौदह अस्थि संघात, चौदह सीमान्त, एक त्वचा इतने तन्तुओं से यह देह बँधा रहता है। धूरि–धूलि। फगुआ–उत्सव।

**सम्बन्ध**—ऊपर परमपद की व्याख्या योग के माध्यम से बताकर अब दूसरे वसंत में रसना से पढ़ने की बात कही जा रही है, अर्थात् पहले प्राणायाम के द्वारा, ध्यान के द्वारा और गुरु सतसंग के द्वारा उसकी प्राप्ति बतायी गयी अब नाम के द्वारा अर्थात् नाम जप के द्वारा प्राप्ति की ओर लक्षित किया जा रहा है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते है कि हे जिज्ञासु जनो ! अपनी जिह्वा से रामनाम को पढ़ो। जब तू रामनाम के द्वारा चंचल वृत्ति को निरोध करोगे तभी तुझे श्री वसन्त की प्राप्ति होगी। अर्थात् तभी परमपद के दर्शन कर पाओगे। अन्यथा जैसे पहले यम के फन्दे में पड़े रहते थे। यदि तुम रामनाम नहीं जपेगा और आत्मप्राप्ति नहीं कर सकेगा। तो पुनः तुम विवस्वान के पुत्र के फन्दे में पड़ेगा। अर्थात् लख चौरासी योनियों में तुझे डाल देगा।

अब साधना की रीति बताते हैं। और कहते हैं कि मेरुदंड को सीधा करके बैठो। एकदम सीधा कटि भाग से ग्रीवा तक सहज रूप से आसनासीन होकर जो मेरुदंड के अन्दर ब्रह्मनाड़ी में होते हुए नासिका में सुषुम्ना नाड़ी आयी है उस पर चोटकर। अर्थात् सुषुम्ना के उदय होने पर अपनी आध्यात्मिक क्रियाओं को प्रारम्भ कर क्योंकि सुषुम्ना का

सम्बन्ध कुण्डलिनी से है। जब योगी सुषुम्ना में स्थित होता है अर्थात् सुषुम्ना में जब ध्यान लगाता है तब उस ध्यान का असर वा चोट कुण्डलिनी के मुख पर पड़ता है तब अष्टकमल जो सुरति कमल है उसमें से अग्नि का प्रज्वलन होता है। अर्थात् जब सुषुम्ना का द्वार खुल जाता है तब सुरति उसमें प्रवेश कर ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाती है वहाँ पर एक प्रज्वलित अखंड प्रकाश का दर्शन होता है। अर्थात् जब सुषुम्ना खुली रहती है। परचारि कहिये उसमें सुरति प्रवेश कर आत्मा की अनुभूति करने लगती है। जब कुण्डलिनी का मुख जागृत हो जाता है तब ब्रह्म अग्नि का प्रकाश होता है और बहुत तेज प्रकाश होता है कि साधक कभी-कभी घबड़ाकर उन्मत्त हो जाता है। अरध जो अपान वायु उरध जो प्राण वायु है दोनों आपस में मिल जाते हैं। अर्थात् जब योगी अपान वायु को प्राण वायु में मिला देता है तो कुछ दिन के अभ्यास करने से बिना श्रम के ही प्राण, अपान वायु एक हो जाते हैं और तब ब्रह्माग्नि का प्रज्वलन होता है। पंक्ति ऊपर की नीचे हो गयी है। यह किसी लिपि कर्त्ता का दोष है या लेखन काल में ही भूल हुई हो क्योंकि पहले अरध-उरध वाली पंक्ति होनी चाहिए पश्चात् ब्रह्म अग्नि वाली होनी चाहिए। इसमें लिपि दोष लगता है। जब योगी का प्राण वायु और अपान वायु एक हो जाते हैं तो दोनों के संघर्ष से महाप्रकाश उत्पन्न होता है और अनेक प्रकार की सुगन्धियाँ परिमल रूप में प्रकट होने लगती हैं। तब नौ नाड़ियाँ परिमल स्वरूप उस आत्मा के गांव में जाने के लिए अग्रसर हो जाती हैं अर्थात् जो नाड़ियों का वहिर्मुख है, जो नाड़ियाँ बाहर के विषयों का रस ले रही हैं। वे आत्मज्ञान के उदय काल में स्वतः अन्तरंग हो जाती हैं और जो पाँच सखियाँ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध के रूप में हैं वे भी बाहर की ओर से मुड़कर अपने विषय का सेवन छोड़कर आत्म प्रदेश में जाकर लय हो जाती हैं। जहाँ पर अनाहत्-नाद रूपी बाजा भरपूर बाजते रहता है। अर्थात् जब कुण्डलिनी का मुख खुलता है तो उसमें से घोर गर्जना होती है। वह एक प्रकार के वाद्य के समान शरीर में गूंज उठता है। तहाँ कहिये उस स्थान पर जो शब्दार्थं में शरीर की संरचनाओं को बहत्तर हजार गिनाया गया है। अर्थात् अनाहत्-नाद के प्रकट होने पर पुरुष के बहत्तर ग्रन्थियाँ फाग खेलने लगती हैं। अर्थात् मस्त हो जाती है। आनन्द विभोर हो उठती है।

सद्गुरु कहते हैं कि हे संसारी लोग ! तुम इस संसार की मोह माया को देखकर क्यों भूला है ? क्यों नहीं इसको त्याग कर उपर्युक्त आनन्द

का अनुभव करता है। इस संसार की माया तो उसी प्रकार से निरर्थक है जैसे वनस्पति में फूल लगते हैं। दो-एक रोज में मुरझा कर गिर जाते हैं। उसी प्रकार से संसार का सुख क्षणिक है, मायिक है। इनमें न भूलो। मैं कबीर कहता हूँ कि यह जो भगवान के दास हैं। अर्थात् जो मैं भगवान का दास हूँ। उस आत्म अनुभव रूपी फाग की याचना श्रीहरि से करता हूँ। जिस फाग का दूसरा नाम बैकुण्ठ भी है। बैकुण्ठ का अर्थ होता है जहाँ कोई कुण्ठा न हो, जहाँ रुकावट न हो, अर्थात् पूर्ण चराचर में जहाँ तक सृष्टि का निवास है। उसके अन्तर्भूत में जो परमेश्वर है उसका जो निवास है। अर्थात् उस व्यापक चेतन तत्त्व का जो निवास हृदय में है। वही वैकुण्ठ मुझे चाहिए। बाहर के माया मोह रूपी फगुआ से मेरा सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। मेरा सम्बन्ध अन्तर के आत्म अनुभव रूपी फाग से होना चाहिए। यही मानव की याचना श्रीहरि से होनी चाहिए।

## बसन्त ३

**मैं आयों मेस्तर मिलन तोहिं, रितु बसंत पहिरावहु मोहिं।**
**लंबी पुरिया पाई छीन, सूत पुराना खूंटा तीन॥**
**सर लागे तेहि तीन सौ साठ, कसनी बहत्तर लागू गांठ।**
**खुर-खुर खुर खुर चलै नारि, बैठि जोलाहिन पलथी मारि॥**
**ऊपर नचनियां करत कोड़, करिगह मां दुइ चलत गोड़।**
**पांच पचीसो दमहुं द्वार, सखी पांच तहं रची धमार॥**
**रंग बिरंगी पहिरै चीर, हरि के चरन धै गावैं कबीर।**

**शब्दार्थ**—मैं–मैं कबीर, जिज्ञासु। मेस्तर–महत्तर, ईश्वर, सद्गुरु। रितु बसंत–परमात्मतत्त्व। पहिरावहु–बोध कराइये, सराबोर। लंबी पुरिया–तुरिया जो लम्बा पाट करघे के दोनों खूटों में लगा रहता है, जिस पर कपड़ा का थान लिपटा रहता है। मेरुदंड पृष्ठ भाग में जो मूल द्वार से अस्थि ब्रह्म कमान तक गई हैं जिसमें से अनेक अस्थियां निकल कर शरीर के प्रत्येक भाग में गयी हुई हैं। वह मेरुदण्ड कामना, शरीर के अंग, बहत्तर, हजार नाड़ियों का समूह। पाई–पतली छड़ियाँ। छीन–पुरिया जिसमें छेद रहता है जिसमें कील लगे रहते हैं। जो मेरुदण्ड से हड्डियाँ निकली हुई हैं सम्भवतः वही छिद्र। सूत पुराना–जो बहुत से छिद्र वाले सांचे के साज में सूत लगे रहते हैं जो बहुत काल तक नीचे से ऊपर टंगे रहते हैं। शरीर

के अवयव प्राण। खूंटा तीन–जो करिगह के पास अगल-बगल में लगे रहते हैं जिसमें पुरिया लगी रहती हैं जिसमें सूत पिरोया जाता है और हाथ से पकड़ कर चलाया जाता है ईंडा, पिंगला, सुषुम्ना। पाई–फन्नी बीनने के लिए जिसमें ३६० वय का ताना लगा रहता है। तीन सौ साठ। सर–पौसार जिसमें ३६० शरीर की हड्डियाँ। कसनी–बन्धन। बहत्तर–शरीर की ग्रंथियाँ। खुर-खुर चले नारि–नरी, जिसमें बुनाई वाला सूत लगा रहता है जो इधर से उधर चलता है। जोलाहिन–कपड़ा बुनने वाली, बुद्धि, जीवात्मा। पलथी–आसन लगाकर। ऊपर–सहस्रार। नचनियां–बांस की तीन इंच की लकड़ी जो करघे के ऊपर लगी रहती है, मन। कोड़–क्रीडा। करिगह–करघा, शरीर। गोड़–पैर, खम्भा, श्वांस-प्रश्वांस। पांच–पांच तत्त्व, क्षिति, जल, पावक, गगन, वायु। दसहुँद्वार–शरीर के दस द्वार। सखी पांच–पांच ज्ञानेन्द्रियों के विषय। तहां–हृदय स्थान व सहस्रार। धमार–हल्ला, उत्पात। रंग विरंगी–अनेक रूप वाले रंग विरंग, सप्तधातु। चीर–वस्त्र, शरीर। चरन–पाद, मूलतत्त्व, परमतत्त्व। पाई–पतली छड़ियाँ जो बेंत की बनी हुई होती हैं जुलाहे का एक ढांचा जिस पर सूत फैलाकर खूब माजा जाता है।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि रसना से श्री हरि का उच्चारण करना चाहिए। अन्त में कहा गया है कि निष्कामभाव से कर्त्तव्य करके जन्म-मरण से परे होने की बात सोचनी चाहिए। नीचे कहा जा रहा है कि प्रभु से मिलने की उत्कृष्ट जिज्ञासा होनी चाहिए।

**मूलार्थ**—संसार रूपी जंगल में सद्गुरु उपस्थित होकर जगतगुरू परमेश्वर से निवेदन करते हैं कि हे प्रभो ! मैं आप से मिलने आया हूँ। क्योंकि आपका मिलना, बहुत दुर्लभ है। मेरी प्रार्थना यही है कि आपसे ॠतु बसंत जो परमपद है जो परमतत्त्व है जो आत्मा की पहचान है वह मुझे पहिरावहु पहिराइये। अतः मेरे अन्तःपुर में प्रवेश कराइये। क्योंकि यह लम्बी अवधि से जीवात्मा चला आ रहा है। शरीर रूपी पुरिया के जो अवयव हैं। नस-नाड़ियाँ हैं। ये क्षीण होते जा रही है और जिन तत्त्वों के सूतों से यह शरीर बना है। ये प्राण भी पुराने हैं और इनके जो तीनों खूंटे हैं। ईडा, पिंगला, सुषुम्ना अर्थात् करिगह में तीन खूंटे लगे रहते हैं। जिनके आधार पर इस शरीर का संचालन होता है। सर कहिये शरीर में तीन सौ साठ अस्थियों का समूह लगा हुआ है। कसनी कहिये बहत्तर स्थानों पर बन्धन लगे हुये हैं। अर्थात् बहत्तर ग्रंथियाँ हैं और जो नाड़ी

समूह हैं। घरघराहट के साथ खुर-खुर के साथ सब धातुओं व रक्त को संचालित करते रहती हैं और जुलाहिन जो जीवात्मा व बुद्धि है। हृदय रूपी प्रकोष्ठ में शरीर के अन्दर पलथी जमाकर बैठी हुई है। ऊपर कहिये सहस्रार में नचनियाँ मन जो नट है वह क्रीड़ा कर रहा है और इस शरीर रूपी करिगह में जो दुई श्वांस-प्रश्वांस रूपी गोड़ा लगे हैं। जिनको पैर भी कहा जाता है। पांच तत्त्व से यह खड़ा किया गया है। विचार उत्पादक पचीस प्रकृतियाँ इसमें निवास करती हैं। इस शरीर में दस द्वार हैं। जिसके अन्दर पांच ज्ञानेन्द्रियों के विषय अपने-अपने भोगों को भोगने के लिए धमार कहिये उत्पात मचाये हुए हैं।

उपर्युक्त अनेक रंग-विरंग नस-नाड़ी हड्डी, रक्त, मज्जा, लार, पसेवा इन अनेक प्रकार के रंग-विरंगी शरीर रूपी चीर को जीवात्मा पहिरे हुए है। अर्थात् जो उपर्युक्त वस्तुओं से शरीर का निर्माण हुआ है। वही जीवात्मा का वस्त्र है। अनन्त काल से उसको धारण किये हुए है। सद्गुरु कहते हैं कि इस बहुआयामो, बहु वासनामयी बहु प्रकार के लोगों के साथ रहकर इस शरीर में मैं कबीर श्री हरि का चरण पकड़कर उनके नाम एवं यश को गा रहा हूँ। अर्थात् उनका जो तृतीय पाद गुप्त है। जो चिन्मय स्वरूप है, जो सब जगह व्यापक है। उस तुरीयावस्था वाले आपका चिन्तन करता हूँ।

**आशय**—मानव जीवन का लक्ष्य यह है कि जो सबसे महत्वपूर्ण कार्य है जिसकी परिणति अंतिम होती है। उसी को प्राप्त करना चाहिए। क्योंकि परम आनन्द का स्वरूप वही है। वासनाओं के कारण लम्बे काल से यह जीवन चला आ रहा है और जिन शरीरों को धारण करता है वे अन्त में क्षीण हो जाते हैं। अर्थात् वे चिरस्थायी नहीं हैं। क्योंकि इसका सूत बहुत पुराना है। जिन पंच तत्त्वों से यह शरीर बना हुआ है। वे भी अनादि काल से चले आ रहे हैं और जिन वस्तुओं पर यह अवस्थित है वे ईडा, पिंगला, सुषुम्ना भी इसमें अवस्थित हैं। जिनकी गति को जानकर योगी सहस्रार में पहुँच सकता है। हृदयाकाश में निवास कर सकता है। तीन सौ साठ दिन कितने बीत गये परन्तु आज तक यह सहस्त्रार पर सवार नहीं हुआ। इसको निर्विकल्पक समाधि प्राप्त करनी चाहिए थी क्योंकि इस जीवात्मा में अनेक बंधन लगे हुये हैं। अनेक ग्रंथियों से ग्रथित है। यह कठिनाई के साथ संसार में जीवन यापन करता है। इसको चाहिए कि दुःखों के निवारण के लिए आत्मा का अनुभव करे। केवल खुर-खुर और खट-खट करने से कोई लाभ नहीं है। अर्थात् सकाम कर्मों

से कोई प्रयोजन की सिद्धि होने वाली नहीं है। जो कि इस शरीर को बीनने वाला शरीर के मध्य में बैठा हुआ है। उसी की प्राप्ति मानव को करनी चाहिए। जब वह आत्मा प्राप्त हो जाता है तब सहस्रार में मन आनन्द से नाच उठता है। क्रीडा करने लगता है और करिगह रूपी शरीर में श्वांस-प्रश्वांस की गति कम हो जाती है। जब श्वांस नियंत्रित हो जाता है तब मानव की जीवनी शक्ति बढ़ जाती है। पाँच तत्त्व से उत्पन्न पचीस प्रकृतियाँ दसों द्वार के बाहर नहीं होतीं और ये पाँच ज्ञानेन्द्रियों के जो विषय हैं। उनका भी धमार समाप्त हो जाता है। अनेक तन्तुओं से जो अनेक प्रकार के हैं। उनसे बनी हुई शरीर जिसको यह जीवात्मा पहिरे हुए है उससे मुक्त हो जाता है और परमानन्द स्वरूप परमतत्त्व की गीत गाते रहता है। इसलिए सभी मनुष्यों को चाहिए कि वे सब कुछ तजकर प्रभु की उपासना करें।

## बसन्त ४

### माया बाल्यरंडा प्रकरण

**बुढ़िया हंसि बोली मैं नितही बारि, मोसे तरुनि कहु कवनि नारि।**
**दांत गये मोर पान खात, केस गये मोरे गंग नहात॥**
**नैन गये मोरे कजरा देत, वयस गये पर पुरख लेत।**
**जान पुरखवा मोर अहार, अनजाने का करौं सिंगार॥**
**कहैं कबीर बुढ़िया आनंद गाय, पूत भतारहिं बैठी खाय।**

**शब्दार्थ**—बुढ़िया–माया, वृद्धा। बारि–नयी किशोरी अवस्था वाली। मोसे–मेरे से। तरुनि–नयी यौवन वाली। नारि–स्त्री। दांत–मुख में ३२ दांत, काम, क्रोध, चूसने की शक्ति। पान–एक प्रकार का लता विषय भोग, ज्ञान। केस–बाल, सुन्दरता सांसारिक आकर्षण, अज्ञान। नहात–स्नान, सजाते हुए। नैन–नेत्र, अविवेक, अज्ञान, शक्ति, दृष्टि। कजरा–काजल, शृंगार। वयस–युवावस्था। पर पुरखवा–जीवात्मा, काम। जान–जौन, जो। पुरखा–पुरुष, अज्ञानी मनुष्य। अनजाने–अज्ञानियों के लिए करो। सिंगार–सजावट। बुढ़िया–माया, बृद्धा। पूत–पुत्र, जीवात्मा। भतारहिं–भरतार, सबल ब्रह्म।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि प्रभु से मिलने की जिज्ञासा होनी चाहिए क्योंकि यह शरीर निरर्थक है और जाने वाला है। इसलिए

उनके चरणों का ध्यान करना चाहिए। अन्यथा इससे कोई लाभ होने वाला नहीं है। जो प्रभु का भजन नहीं करेगा, जो आत्म चिंतन नहीं करेगा। जो व्यापक चेतन की उपासना नहीं करेगा उसको माया निगल जायेगी।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरुदेव कहते हैं कि देखो यह माया बड़ी विकराल है और मुझसे हंसकर बोल रही है। व संसार के मनुष्यों से विहंसकर मस्करी कर रही है। माया कहती है कि भला कहो हमसे कौन नयी स्त्री हैं जिसमें इतनी सुन्दरता हो? क्योंकि तीनों लोक के देव दानव मनुष्य मुझे ही देखकर आकर्षित होते हैं। इसलिए तिलोत्तमा मेरा ही नाम है। भला मुझसे तरुणी और कौन स्त्री है। जो विषय-भोग के लिए उपयुक्त है? क्योंकि संसार के विषयी पुरुषों को चूसते-चूसते खाते-खाते मेरे दांत चले गये, टूट गये। अर्थात् काम, क्रोध के वशी जो लोग थे। वे नष्ट हो गये, और तृष्णा रूपी गंगा नदी में स्नान करते-करते मेरे केश भी पक गये एवं झड़ गये। तृष्णा रूपी नदी में जो नहाता है। उसके जाने में ज्यादा समय नहीं लगता है। वह उसी में डूब मरता है। जो चमकीले मेरे नेत्र थे। लोगों को मोहने के लिए, वशी करने के लिये काजल देते-देते वे भी निस्तेज हो गये। मेरी जवानी इस जीवात्मा को भोगते-भोगते समाप्त हो गयी। जान पुरखवा मोर अहार जो पुरुष मेरा अहार है जिसको मैं भक्षण करती हूँ वह अनजान है और उसी अज्ञानी के लिए मेरे श्रृंगार कारण होते हैं। उन्हीं के छलने में मुझे सफलता मिलती है।

सद्‌गुरु कहते हैं कि जो सबसे पुरानी है सबसे बृद्धा है। बृद्धा में श्लेष है। बृद्धा का तात्पर्य जो अनादिकाल से चली आ रही है जो ईश्वर की अर्द्धांगिनी है। वह माया महादेवी बहुत सुन्दर आकर्षक आनन्द रूपी फाग गई है और जिसको सुनकर लोग विमुग्ध हो जाते हैं। वह बृद्धा किसी की नहीं है। पुत्र जो जीवात्मा है। उसको भी खाते रहती है और जो उसका भरण-पोषण करता है, जो उसका भर्ता है उसको भी तंग करते रहती है। कार्यब्रह्म के रूप में वह भी संसार बसाने और उजाड़ने में परेशान रहता है। ऐसी कर्कशा स्त्री जो है वह न तो बेटा को बकसती है न पति को छोड़ती है। तब साधारण लोगों की क्या बात है? ये कभी उससे बच सकते हैं? इसलिए मनुष्य को चाहिए कि सभी प्रकार से माया का परित्याग कर परमेश्वर का भजन करें और अपने को पहिचाने।

**आशय**—माया कहती है कि विषयी पुरुषों को भोगते-भोगते मैं बृद्धा हो गयी परन्तु विषयी पुरुष अहर्निश मेरे में ही लिपटे हुये हैं। मेरे ही

आकर्षण में लगे रहते हैं। स्त्री बड़ी सुन्दर है, पुत्र बड़ा सुन्दर है, पति बड़ा सुन्दर है, मकान बड़े अच्छे हैं मैं सांसारिक सुखों को ही भोगने के लिये मैं आया हूँ। विषय चूसते-चूसते भोगते-भोगते संसारियों के दाँत टूट जाते हैं, बृद्ध हो जाते है। तृष्णा में डूबे-डूबे शिर के बाल झड़ जाते हैं। तो भी इनको सन्तुष्टि नहीं होती है। स्त्रो भोगने के लिए शरीर को सजाते हैं? बालों में कालिख (खीजाब) लगाते हैं। नेत्र की ज्योति नष्ट हो गयी तो भी विषय से उपरामता नहीं हुई। विषय-भोग भोगते-भोगते युवावस्था का नाश हो गया। माया कहती है जो अज्ञानी मनुष्य हैं वही मुझे भोगते हैं। अर्थात् उन्हीं को मैं भोगती हूँ। क्योंकि विषय-भोग में जो अभिरुचि है। वह श्रृंगार का ही माध्यम है, माया रूपी बुढ़िया चौराहे पर खड़ी होकर आनन्द से फाग गा रही है। उसके आकर्षण में पिता पुत्र सभी भूले हुये हैं। इसलिए यदि कुशल चाहते हो तो उससे उपराम होकर गुरु कबीर के कहे हुए उपदेशों पर चलो।

## बसन्त ५

**तुम बुझ बुझ पंडित कौनि नारि, काहू न व्याहलि है कुमारि।**
**सभ देवन मिलि हरिहीं दीन्ह, चारिउ जुग हरि संगहि लीन्ह॥**
**परथम पदुमिनी रूप आहि, है सांपिनि जग खेदि खाहि।**
**ई बर जोवत ऊबर नाहिं, अति रे तेज त्रिया रैनि ताहि॥**
**कहैं कबीर ये जगत पिआरि, अपने बलकवहिं रहल मारि।**

**शब्दार्थ**—बुझ–समझ। पंडित–विद्वान, दार्शनिक। नारि–स्त्री, माया, सो स्त्री चार प्रकार की होती हैं। पद्मिनी, हस्तिनी, संखिनी, चित्रिणी। इनमें पद्मिनी सबसे श्रेष्ठ होती है। काहू–किसी से। व्याहलि–व्याही। कुमारि–अविवाहिता, कन्या। देवन–देवता लोग, आर्यजन। हरि–ईश्वर। पदुमिनी–श्रेष्ठ स्त्री। सांपिनि–सर्पिणी। खेदि–दौड़ाकर। बर–दुल्हा, श्रेष्ठ। त्रिया–स्त्री। रे–हे। रैनि–रात्रि, अन्धकार। पियारी–प्रिय। बलकवहिं–बच्चों को। जोवत–स्त्री, खोजना, सेवन, जोहना, अवलोक न करना।

**सम्बन्ध**—इसके प्रथम माया का चित्रण पुरानी व वृद्धा कहकर सम्बोधित किया गया और यह कहा गया है कि इस पर जय पाना कठिन काम है क्योंकि जिसकी पत्नी है। उसको भी परेशानी में डाले रहती

है, और पुत्र को मारकर खाने वाली कहा गया है । नीचे पुनः उसी प्रश्न को उठाया जा रहा है ।

**मूलार्थ**—सद्गुरु बड़े-बड़े पण्डितों से एवं दार्शनिकों से प्रश्न करते हैं कि हे पण्डित जी ! आप यह बतावें कि वह कौन-सी स्त्री है । जो पति को भी फेर में डाले हुए है और पुत्र को भी खा जाती है । आप लोग उसको विवेक पूर्वक समझने का प्रयत्न करें । क्योंकि वह सदा कुमारी रहने वाली है किसी से उसका विवाह नहीं हुआ है । आपके शास्त्रों में उसको बालरंडा कहा गया है । तात्पर्य यह है कि माया अनादि काल की होने से उसका भी अस्तित्व है । उस पर किसी की हुकुमत चलने वाली नहीं है । जब देवताओं और दानवों ने देखा कि यह स्त्री बहुत चंचल है । चपल है हम लोगों में से इसका कोई पति होने वाला नहीं है । क्योंकि यह आदि माता है । इसलिए सभी देवता, दानव मिलकर श्रीहरि अर्थात् विष्णु भगवान को समर्पित कर दिया । तात्पर्य यह है कि यह माया निष्प्राण होने के कारण स्वतः अस्तित्व वाली नहीं है । यह सदा चेतन के आश्रित रहने वाली है । इसलिए विचारक लोग उसे चेतन की पत्नी समझकर व आश्रिता समझकर दूर से ही उसको समर्पित कर दिये । जिसको चेतन स्वरूप श्रीहरि चारों युग में अपने साथ लिए रहते हैं । चेतन को छोड़कर अर्थात् विष्णु को छोड़कर इसको कोई बर्दास्त नहीं कर सकता । उनके संयोग से ही सृष्टि का सम्पादन होता है । जब चेतन की माया में छाप पड़ती है । तब माया में स्पन्दन होता है और स्पन्दन होने के बाद विस्फोट होता है । विस्फोट के साथ ही अनेक प्रकार की सृष्टि का उद्भव होता है । यह चेतन के सहयोग से सबसे प्रथम सुन्दरी जगत विमोहिनी पद्मिनी का रूप धारण की परन्तु रूप के अनुसार इसमें दया नहीं आयी । मृदुत्व नहीं आया । सर्पिणी का काम किया । अर्थात् सृष्टि के साथ ही सारे जगत को दौड़ाकर अपने में निहित करने लगी । जैसे—सर्पिणी अपने बच्चों को निर्दयता पूर्वक अण्डा से निकलते ही खा जाती है । इधर-उधर से जब कोई बच जाता है तो वही सर्प हो जाता है । इसी प्रकार से इस माया के खाने से जो बच जाता है । वही ज्ञानी और महात्मा होता है । यह माया बड़ी विचित्र है, बर कहिये श्रेष्ठ खोजते फिरती है । अर्थात् एक को त्यागकर दूसरे बर की ओर ध्यान लगाये रहती है । विष्णु के बराबर कोई दूसरा इसका बर नहीं है । केवल इसका वर पति चेतन पुरुष ही हो सकता है । यह अति तेज है, चमकीली है । यह स्त्री रैनि के समान अर्थात् रात्रि के समान अज्ञानियों के लिए

भयावनी है। यह अज्ञानी मनुष्यों को उसी प्रकार से भटकाते रहती है जिस प्रकार से अन्धकार में लोग मार्ग नहीं पाते।

सद्गुरुदेव कहते हैं कि संसार के लोगों के लिए बड़ी प्रिय हैं और इसी को लोग चाहते हैं। संसारी लोग पुत्र स्त्री और लक्ष्मी रूपी सम्पत्ति ये तीनों से आगे नहीं जा पाते इन्हीं में लगे रहते हैं। जो इस माया का असली रूप है उसको कहते हैं कि यह स्त्री ऐसी है, अपने बालकों को ही पकड़ कर मार डालती है अर्थात् चेतन के द्वारा प्रकृति में गर्भाधान होता है और यह प्रकृति एक-एक कर सम्पूर्ण विश्व को निगल जाती है। इसलिए हे संसार के मनुष्यों ! इससे सावधान हो जाओ और सत्य का अन्वेषण करो क्योंकि माया अनिर्वचनीय होते हुए भी सत्य नहीं है।

## बसन्त ६

**माइ मोर मनुसा अति रे सुजान, धंध कूटि-कूटि करत बिहान ॥**
**बड़े भोर उठि आंगन बाढु, बड़े खांच ले गोबर काढु।**
**बासी भात मनुसे लिहल खाय, बड़ा घैल लिये पानी को जाय ॥**
**अपने सैंया की मैं बांधुगी पाट, लै बेंचुगी हाटे हाट।**
**कहैं कबीर ये हरि के काज, जोइया के ढिग रहि कवनि लाज ॥**

**शब्दार्थ**—माइ–मध्यकाल में माई एक सम्बोधन था जो लोग के अर्थ में प्रयुक्त होता था। परन्तु इस सम्बोधन की न जानकारी में कुछ लोगों ने माया और अविद्या अर्थ किया है। परन्तु माई एक सम्बोधन है जिसका अर्थ होगा हे लोग। मोर–मेरा। मनुसा–मानुष्य, पति, चेतन, जागृत अवस्था वाला जीव। अतिरे- बहुत। सुजान–सज्जन, सौम्य। धंध–धन्धा, कार्य, धान, सकाम-कर्म जगत का व्यवहार। कूटि-कूटि–करते-करते। बिहान–दूसरा जन्म, अगला दिन। बड़े भोर–बाल्य अवस्था से ही। आंगन–संसार का कार्य। बाढू–बुहारता है, शुद्ध करता है। खांच–टोकरी, आशा-तृष्णा। गोबर–विषय-वासना। काढु–काढ़ता है, सम्पादन करता है। बासीभात–पहले का किया हुआ कर्म, पूर्वजन्म का प्रारब्ध। लीहल–लेकर। खाय–भोगता है। बड़ा घैल–घैला, गगरा, तृष्णा। पानी–सांसारिक भोगों का संग्रह। सैंया–जोवात्मा, स्वामी। की–को। मैं–पत्नी, माया। पाटि–खटिया की पाटी में, वस्त्र, रेशम कपड़ा इत्यादि। लै–लेकर। बेचूंगी–करूंगी,

भेजूंगी। हाटे हाट–अनेक योनियों में। जोइया–स्त्री, योइनि। ढिग–समीप। लाज–शर्म।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि हे विद्वद्जन ! यह कैसी स्त्री है जो सदा कुमारी रहती है और जिसको प्रसव करती है उसी को खा जाती है। उसी प्रसंग को फिर लेकर उस बिगड़ी हुई माया के मुख से ही कहलवाते हैं कि वह कैसी है।

**मूलार्थ**—संसार के प्राणियों को सम्बोधित कर माया स्त्री पुरुष के द्वारा अपना और जीवात्मा का सम्बन्ध बता रही है। लोगों से माया कह रही है कि हे संसार के लोग ! मेरा पति जो जीवात्मा है जो ब्रह्म का चतुर्थांश है। जो अविद्या से घिरा हुआ है। वह बहुत भोला-भाला और अच्छा जन है। क्योंकि जो कार्य हमारा था जो मुझे करना चाहिए था। वह कार्य मेरा पति ही कर देता है। अर्थात् संसार का सभी गृह कार्य मुझे करना चाहिए था पत्नी को करना चाहिए था परन्तु मेरा पति मुझे बहुत सुख देता है और सकाम कर्मरूपी धन्धे को कूटते-कूटते जीवन को बीता देता है और वृद्धावस्था आ जाती है। बिहान कहिये दूसरा जन्म को फिर ग्रहण कर लेता है। पुनः जन्म लेने के बाद—सचेत होते ही प्रारम्भ से ही आंगन जो संसार का कार्य पहले से करता था। फिर उसी की सफाई में लग गया। क्योंकि पूर्व के जैसे संस्कार थे। पुनः जन्म लेने पर उन संस्कारों के कारण उन्हीं कर्मों में फिर लग जाता है। आंगन में श्लेष है। जिसका अर्थ अन्तःकरण भी होगा। दूसरा अर्थ संसार का भीतरी भाग भी होगा। बाढ़ू का अर्थ होता है। झाड़ू लगाना। इसमें व्यंजना है। जो अन्तःकरण में अच्छे सद्‌गुण थे। आत्मचिंतन की भावना थी। उन सबको साफ करके बाहर कर दिया और जो कुकर्म थे, दुष्कर्म थे, बुराईयाँ थीं। उनको बटोरकर पुनः घर में रख दिया और बड़े खांच कहिये तृष्णारूपी विशाल टोकरी लेकर गोबर काढ़ने लगा। गोबर गन्दे के अर्थ में है। जो तृष्णारूपी टोकरी में संसार की वस्तुओं को भरने लगा। अर्थात् धन-जन, मान-सम्मान, राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोहरूपी गोबर को तृष्णारूपी खांची में समाविष्ट कर लिया और जो पहले का व पूर्वजन्म का कमाया हुआ रहा। उसी भात को उसी भोग को मन से कहिये जीवात्मा खा रहा है और भोग रहा है। बड़ा घैल बड़ी-बड़ी आशा लेकर पानी कहिये सांसारिक भोगों को भरने के लिये चल पड़ा। मेरा सैंया इतना मुझे प्रिय है। यह जीवात्मा माया में इतना लिपटा हुआ है कि माया इसे अपने भोग के लिए संसाररूपी खाट की

पाट में बांध दी है और उसको हाटे-हाट में ले जाकर बेचती है। इस योनि से उस योनि में, मानव से पशु में पशु से कीट-पतिगें में ले जाकर बेचते रहती है।

सद्गुरु कहते हैं कि यह कार्य तो कार्यब्रह्म का है। सबल ब्रह्म का है। जो संसार को रचता है और हरि का चतुर्थांश जीव जो अविद्या से ग्रसित है। वह इस स्त्री के सदा पास में रहता है। यत्किंचित इसको लज्जा नहीं आती है। कि ज्ञानी लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे। इसकी समझ में नहीं आता है। मैं आत्मा हूँ, मैं चेतन हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, इस नर्तकी की सेवा में क्यों पड़ा हूँ। बिना विचार के यह निर्लज्ज हुआ है। हरि काज में श्लेष है। सद्गुरु का कहना है कि उक्त माया की सेवा से अविद्या की अधीनता से भगवान ही बचा सकते हैं क्योंकि उन्हीं के बूते का यह कार्य है। दूसरे अन्य कोई जीव का कार्य नहीं है। जो माया की बेड़ी को काट सके।

**वाक्यार्थ**—लोगों से माया कहती है कि मेरा पति अति सज्जन है। मेरे सारे कार्य को रात भर करता है। अर्थात् रात्रि में ही कर देता है। वह सोता नहीं है करते-करते पुनः सबेरा हो जाता है। रात्रि के काम करने के बाद बड़े भोर उठकर घर आंगन में झाडू दे देता है और मेरे उठने के पहले ही वड़ा खांच लेकर गोबर भी काढ़ देता है। इतना भोलाभाला है कि बासी भात रखे रहती हूँ। वही खाकर दिन बिता देता है और जो मेरा पानी भरने का काम है। वह बड़ा घैला लेकर स्वयं पानी भरने को चला जाता है। ऐसे प्रियदर्शी अपने स्वामी को मैं पाट में बांधकर रखूंगी और इस हाट से ले जाकर उस हाट में बेचूंगी।

सद्गुरु कहते हैं कि यह भगवान को हो लीला है। उसकी महिमा है कि स्त्री का पति सदा उसके साथ में ही रहता है। इतना उसमें मोहित हो गया है कि सदा साथ रहने से लजाता भी नहीं है।

### इन्द्रिय भोग विलास प्रकरण

### (माया की प्रबलता)

## बसन्त ७

**घरहीं में बाबूल बाढ़लि रारि, उठि-उठि लागै चपल नारी।**
**एक बड़ी जाके पांच हाथ, पांचों के पचीस साथ॥**
**पचीस बतावैं अउर-अउर, अउर बतावें कईक ठौर।**
**अन्तर मध्ये अन्तर लेइ, झकझोरीक झोरा जीवहि देइ॥**

**आपन–आपन चाहे भोग, कहु कैसे कुसल परिहैं जोग।**
**बिवेक विचार न करै कोय, सभ खलक तमासा देखैं लोय॥**
**मुख फारि हँसे राउ रंक, ताते धरै न पावै एको अंक।**
**निअरे न खोजैं बतावै दूरि, चहुँदिसि बागुलि रहलि पूरि॥**
**लछ अहेरी एक जीउ, तातै पुकारे पीउ–पीउ।**
**अबकी बार जो होय चुकाव, कहैं कबीर ताको पूरि दाव॥**

**शब्दार्थ**—घरहीं–शरीर में। बाबू–हे प्रिय लोग जीवात्मा। बाढ़लि–बढ़ी हुई। रारि–झगड़ा। चपल–चंचल। नारि–स्त्री। एक बड़ी–माया। जाके–जिसके। पाँच हाथ–पांच तत्त्व। पांच तत्वों के पच्चीस साथ पच्चीस प्रकृति। आकाश का काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, वायु का, चलन-बल, धावन, प्रसारण-संकोचन, अग्नि का क्षुधा, पिपासा, आलस्य, मैथुन, जल का लार, रक्त, पसीना स्वेद मूत्र, वीर्य। पृथ्वी का–हाड़, मांस, त्वचा, नाड़ी, रोम। अउर–और भिन्न भिन्न गुण उस शब्द के प्रसंग की ओर इंगित करता जो शरीर के अन्य अन्तराय हैं। अन्तर–भीतर, मध्य, अन्तःकरण। झकझोरीक झोरा–ठेलम, ठेला, धक्का धुक्की, धर पकड़। जीवहि देहि–जीव को देता है बलि हो जाता है। जोग–योग, संयोग। खलक–संसार के लोग। तमासा–कौतुक। फारि–फैलाकर। राउ–राजा। रंक–गरीब। ताते–इसलिए। नियरे–निकट। बागुलि–जाल, फन्दा। लछ–लाख, ध्यान, कामना। अहेरी–आखेटक। दाव–होशियारी, समझदारी, बुद्धिमता।

**सम्बन्ध**—छठे बसन्त में जीव की दशा का वर्णन किया गया है और यह कहा गया है कि माया पूर्णरूपेण जीव एवं संसार पर आधिपत्य जमा लिया है। जिसके कारण यह जीव उससे परे नहीं हो पा रहा है। अब उसी का परिणाम यह है कि गृह कलह बढ़ गया है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर लोगों को सम्बोधित करके कहते हैं कि हे प्रिय जीवात्मा ! तुम्हारे शरीररूपी घर में अनेक प्रकार की झगड़ा बढ़ गयी है क्योंकि तुम्हारे हृदय में मायारूपी चुगलखोर घुस गया है। जो तुम्हारे अन्दर के परिवार में कलह कराते रहता है। जिसके कारण तुमसे उठ-उठकर तुम्हारी पत्नी जो माया है। वह लगी रहती है। वह चंचला स्त्री तुमसे झगड़ रही है। लागना यहाँ झगड़ा के अर्थ में है। जो भोजपुरी का शब्द है। हे प्रिय आत्मन् ! भला तुम्हारा सुखमय जीवन कैसे

बीतेगा तुम्हारी चंचल स्त्री तुमसे बार-बार झगड़ रही है। स्त्रियाँ तो तुम्हारे पास कई और हैं लेकिन उनमें एक बहुत बड़ी है। जिसको मूल प्रकृति कहा गया है। उस मूल प्रकृति के साथ हाथरूपी पाँच तत्त्व हैं और उन पाँचों तत्त्वों से उत्पन्न पाँच-पाँच करके पच्चीस प्रकृति बड़ी स्त्री के साथ में है। ये पच्चीस स्त्रियाँ तुम आत्मा को एक ही बात नहीं बताती हैं। एक ही ओर नहीं ले जाती हैं। विभिन्न स्थानों में तुम्हें भटकाते रहतो हैं और इन पच्चीस से भिन्न जो मद, मत्सर, तृष्णा आदि हैं वे भी तुझे एक स्थान पर नहीं रहने देते हैं। वे भी नाना सुखों की खोज में अनेक माध्यमों की ओर इंगित करते हैं। वे सब जो तुम्हारे साथ लगे हुये हैं। तुम्हारे भीतर की निर्बलता जान गये हैं। इसलिए तुम्हारे हृदय में कोई छिपी बात रहती है तो उसको वे सबके सामने प्रकट कर देते हैं और अन्तर ले लेते हैं। अर्थात् भीतर में जो सत्य, अहिंसा, सत्यता रहती है। इसको वे बाहर कर देते हैं और संसार के प्रपंच में सदा तुझे फँसाये रहते हैं। वे पाँचों पच्चीसों मिलकर तुम्हारे साथ झकझोरीक झोरा करते हैं। तुम्हारे साथ धक्का-मुक्की करते हैं। तुझे बलि दे देते हैं। तुझे मार डालते हैं। तुझे एक स्थान पर स्थिर नहीं रहने देते। कभी स्वर्ग में कभी नर्क में घुमाते रहते हैं। ये पचीसों स्त्रियाँ अपना-अपना भोग चाहती हैं और तुझे सब भोगों के पीछे परेशान करती रहती हैं। क्योंकि भोग का माध्यम तुम्हीं है। तुम इन अबलाओं में फँस गया है। इनका सुख चख लिया है। इसीलिए तू भी इनको छोड़ना नहीं चाहता है। भला जब ऐसी दशा है। तो तुम्हीं कहो तेरा कुशल का संयोग कैसे पड़ेगा। अर्थात् तू जो योग-ध्यान करता है और इन प्रकृतिरूपी स्त्रियों के भोग विलास में पड़े हो तब भला कैसे तुम्हारा योग सधेगा। संसार का कोई मनुष्य विवेक विचार नहीं करता है। क्या सत्य है ? क्या असत्य है ? क्या करणीय है ? क्या अकरणीय है ? इसपर कोई विचार नहीं करता। सभी संसारी लोग उल्टे संसार का तमाशा देखते रहते हैं। एक दुखी होता है। तो दूसरा सुखी होता है और हंसता है। थोड़ा जन-धन सम्पत्ति की प्राप्ति पर राजा से रंक तक मुख फार के हँसते हैं। जिसके कारण इस माया का एक अंक भी पकड़ नहीं पाते हैं। अर्थात् यत्किंचित भी माया को मन से निग्रह नहीं कर पाते। और एक अंक का अर्थ राम-नाम भी है। जिसको एकाक्षर भी कहते हैं। ओंम भी कहते हैं। मनुष्य संसार के सुख-सुविधा के पीछे पड़ जाने से प्रभु का भजन नहीं कर पाता है। एक जो

प्रणव है उसको धारण नहीं कर पाता है। यद्यपि वह एक अंक एक अक्षर हृदय में है। पास में बैठा हुआ है। उसको अपने से दूर बताया है, किसी लोक विशेष में बताया है। उस एक अक्षर के न पहचानने के कारण यह जीवात्मा माया में फंसा हुआ है। जिसका जाल चतुर्दिक भरिपूर है। और उसी माया के जाल में बंदर की भांति स्थान-स्थान पर दर-बदर का डंडे खाता रहता है। यह पापात्मा जीव एक है और इसके आखेटक मारने वाले व्याधा गण अनेक हैं जो इसी की ओर लक्ष्य लगाये हुए हैं। अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अविवेक, राग द्वेष आदि इसका आखेट करना चाहते हैं। यदि यह इन आखेटियों से बचना चाहता है तो उस एक अक्षर का जप करो एवं चिंतन करो। दूसरा अर्थ यह है कि जब पुत्र कलत्र से संसार की आपदाओं से घिर जाता है और अनेक प्रकार के दारुण कष्ट भोगने लगता है। तो उनसे बचने के लिए पीउ-पीउ की रट लगाता है। अर्थात् राम-राम पुकारता है। कहता है कि हे भग-वान ! मुझे बचा लो हम बहुत शोक सन्ताप में हैं। स्त्री पुत्र मुझे बहुत कष्ट दे रहे हैं। मेरी आज्ञा नहीं मानते हैं। हमारा धन दूसरा छीने जा रहा है। मुझे भू स्वामी सता रहा है। मेरे धन को डकैत लोग लूट रहे हैं। इसलिए यह पीउ-पीउ चिल्लाता है, न कि श्रद्धा से चिल्लाता है, न कि भक्ति से चिल्लाता है।

मैं तो कहता हूँ कि यदि इस मानव तन में अबकी बार यह सभी कार्यों को सभी भोगों का चुकाव कर देता है। समाप्त कर देता है, भोग भावनाओं की लिप्साओं को दूर कर देता है। इन्द्रियों को जीत लेता है। तो मैं कबीर कहता हूं कि यह काम वही कर सकता है जो माया को पछाड़ने के लिए पूरा दाव जानता होगा। जो माया से निपटने के लिए बहुत बुद्धिमान होगा चतुर होगा वही उससे पार पा सकता है। वही परमानंद की प्राप्ति कर सकता है।

## बसन्त ८

**कर पल्लव के वल खेले नारि, पंडित होय सो लेइ विचारि।**
**कपरा न पहिरे रहे उघारि, निर्जिउ से धनि अतिरे पिआरि॥**
**उलटी पलटी बाजू तार, काहू मारै काहू उबार।**
**कहैं कबीर दासन के दास, काहू सुख दे काहू निरास॥**

**शब्दार्थ**—कर पल्लव–हाथ की अंगुलियाँ। बल–सहारे, संकेत पर। नारि–माया। पंडित–बुद्धिमान, वेद वेत्ता। सो–वह। कपरा–कपड़ा, वस्त्र। उघारि–नंगी। निर्जिउ–निर्जीव, जढ़, मूर्ख, जड़। धनि–स्त्रो, धनियाँ, व्यक्ति। अति–बहुत, अधिक। पिआरि–प्रिय। उलटी–पलटी–उल्टा सीधा। राग–विराग। बाजू–बाजा, बजाना। तार–सितारे का तार। काहू–किसी को। मारे–जन्म-मरण देती है किसी को भव सागर पार कर देती है किसी को राजा वना देती है किसी को अकिञ्च बना देती है।

**सम्बन्ध**—जीवात्मा व संसार के प्राणियों को सम्बोधित करके कहा गया है कि अन्तःकरण में झगड़ा बढ़ गया है। कलह मची हुई है और एक पुरुष के साथ पच्चीस स्त्रियाँ हैं। जिसके कारण यह सदा दुःखी रहता है। अन्त में कहा गया कि उनसे बच निकलने की कला जो जानता होगा। वह मानव रूपी देव पाशा को जीत सकता है। अब पुनः कहा जा रहा है कि यह माया का बल क्या है? कैसे प्राणियों को नचाती है सो सुनें।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि स्त्रियों के हाथ चमकाने में बड़ी कला होती है। वे कटाक्षकर जिसकी ओर अंगुलियाँ घुमा दें नृत्य की मुद्रा दिखा दें। वह शिवजी ही क्यों न हों। वे भी उसके इशारा पर नाचने लगेंगे। कर पल्लव यहाँ पर विषय भोग से है। संसार का सुख है, इसी के बल पर यह स्त्री जो आदि माया है। लोगों को खेलाती है। और खेलती है जो कोई पंडित हो, वेद वेत्ता हो तो वह इस पर विचार कर सकता है। यद्यपि वह स्त्री वस्त्र को धारण नहीं करती है, नंगी रहती है इसलिए–जड़-चेतन धनी-गरीब इस स्त्री को अति प्यार देते हैं। और उसके साथ आसक्त रहते हैं। "कपरा न पहिरे रहे उधारि में, श्लेष है। जैसे चलचित्रों में नंगी स्त्रियों की ओर नंगे चित्रों की ओर लोग आसक्त हो जाते हैं ऐसे ही यह नंगापन जो विषय भोग है। वह खुले आम है उस पर रोक नहीं है। उस तत्त्व को पिता भी जानता है। पुत्र भी जानता है, पुत्री भी जानती है, माता भी जानती है, स्त्री भी जानती है। इस पर किसी प्रकार से परदा नहीं है। यही नंगापन है जो सबको प्रिय है। स्त्री इतनी आकर्षक होती है कि उसका स्वर ताल कैसा भी हो उसको बड़े चाव से लोग सुनते हैं। उसके हाथ के बीणे के तार चाहे उल्टे बचते हों, चाहे सीधे बजते हों, चाहे राग में हों, चाहे वेराग में हों। सभी लोग सुनने के लिए टूट पड़ते हैं। इसी प्रकार से माया का

भोग चाहे अनुकूल हो, चाहे प्रतिकूल हो, चाहे नरक में ले जाने वाला हो, चाहे स्वर्ग में ले जाने वाला हो। पर लोग उसी में लिप्त हैं। यह माया बड़ी विचित्र है। किसी को मार डालती है, किसी को कंगाल बना देती है, गरीब बना देती है, अंधा लंगड़-कोढ़ी कलंदर बना देती है, दर-दर की ठोकरें खिलाती है, किसी को भवसागर पार कर देती है, किसी को राजा बना देती है, किसी को सम्राट बना देती है। कोई कभी दुःख का अनुभव नहीं करता यह सब माया का खेल है।

कुछ विद्वानों का मत है कि माया जिस पर कुप्त होती है। वह जन्म मरण से परे नहीं हो सकता है और जिस पर प्रसन्न होती है। उसको जन्म-मरण से रहित कर देती है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि मैं तो इस माया की कला देखकर, संसार का कौतुक देखकर भगवान के दासों का दास बना हूँ। अर्थात् संतों की शरण में रहता हूँ। इस माया से दूर रहता हूँ। क्योंकि यह माया बड़ी पक्षपाती है। जो इसको सेवा सुविधा में रहता है उसको सुख देती है और जो इसको त्यागना चाहता है। उसके पीछे पड़ी रहती है। साधुओं को जंगल में कर देती है। चोरों को महल-अट्टालिका दे देती है। इसलिए मैं कबीर इसकी सेवा नहीं करना चाहता। मुझे सन्तन की सेवा में ही अति आनंद आता है।

## बसन्त १

### नर तन दुर्लभ एवं हरि भजन प्रकरण

**ऐसो दुरलभ जात सरीर, रामनाम भजु लागहु तीर ॥**
**गये बेनु बलि गये कंस, दुरयोधन को बूड़ो बंस।**
**प्रिथु गये प्रिथवी के राउ, तिरविकरम गये रहे नहिं काउ ॥**
**छौचक्कवे मंडलि के झारि, अजहुं हो नर देखु विचारि।**
**हनिवत कस्यप जनक बालि, ई सभ छेकल जमके दुआरि ॥**
**गोपीचंद भल कीन्ह जोग, जस रामन मारयो करत भोग।**
**ऐसोजात देखिनर सभहिं जान, कहैं कबीर भजु राम-नाम ॥**

**शब्दार्थ**—ऐसो–इस प्रकार। दुरलभ–न मिलने वाला शरीर। तीर–भवसागर पार। प्रिथवी–पृथ्वी। तिरविकरम–त्रिविक्रम वामन भगवान। चकवे–चक्रवती। मंडली–मंडलीक, छोटे-छोटे राजे-महराजे व समस्त

भूमण्डल। झारि–सबके सब। हनिवत–हनुमान जी। कस्यप–दसम प्रजापति। छेकल–घेरल।

**सम्बन्ध**—ऊपर माया अपने कर पल्लव के बल पर सबको नचाती है। अर्थात् उसके संकेत पर सारा संसार नाचता है और यह माया अश्लील रूप वाली है इसलिए सद्गुरू कहते हैं कि मैं उससे दूर रहता हूँ क्योंकि वह निष्पक्ष नहीं है। अब नीचे कहा जा रहा है कि उक्त माया के चक्र में पड़कर बड़े-बड़े सम्राट व चक्रवर्ती भी छूछे हाथ चले गये। कोई यहाँ स्थिर रहने वाला नहीं है सभी लोग यहाँ से जाने वालों में हैं। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि प्रभु का भजन करें।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि इस प्रकार का दुर्लभ मानव शरीर बिना भजन भाव के बिना, कुछ परमार्थ किए हुये चला जा रहा है। अर्थात् लोग महाकाल के मुख में जा रहे हैं। लोगों को चाहिए कि इस दुर्लभ नर तन पाकर राम-नाम का भजन करें। जिससे भवसागर से पार हो सकते हैं क्योंकि राम-नाम के भजन बिना बड़े-बड़े प्रतापी महाराजा बेनु जैसे भी यहाँ नहीं रहने पाये। पाताल के राजा दैत्यपति जो बड़े धर्मात्मा थे, वे बलि भी यहाँ नहीं रहने पाये और कंस जैसे दुराचारी तो यहाँ से चला हो गया। दुष्टों का अग्रगणी राजा दुर्योधन भी यहाँ नहीं रहने पाया। जिसके अत्याचार से उसका सम्पूर्ण वंश ही नष्ट हो गया। बुरे लोग तो चले हो गये परन्तु जो परम धर्मात्मा भगवत अवतार कहे जाते थे। जिन्होंने मानव जाति का बहुत बड़ा कल्याण किया था, जिन्होंने पृथ्वी को उर्वरक बनाया था, जिन्होंने प्रजाओं का पालन किया था, जो अनेक यज्ञ किये थे। जो सदा व्रतधारी थे। जो समूची पृथ्वी के महाराजा और सम्राट थे। वे भगवान पृथु भी सशरीर यहाँ नहीं रहने पाये। इसी प्रकार से भगवान के अवतार स्वरूप महापराक्रमी, महायशस्वी, महाप्रतापी, त्रिविक्रम भगवान बामन भी सशरीर यहाँ नहीं रहने पाये और जो छः चक्रवर्ती थे वे भी इस धरती पर नहीं रहने पाये। सबके सब यहाँ से झार कर चले गये। हे मनुष्यों! उपर्युक्त घटनाओं को देखते हुए आज भी विचार कर देखो कि क्या मैं रहने पाऊंगा? जो छोटे-छोटे मंडलाधीश राजा थे। जो बड़े-बड़े सम्राट थे। तेरे देखते-देखते सब यहाँ से चले गये। वे लोग भी नहीं रहे। जो बड़े-बड़े भक्त थे। जो प्रजापति थे। जो विदेह मुक्त थे। जो शूरवीर थे। अर्थात् महात्मा हनुमान जो जैसे भगवत भक्त जिनको आज भी लोग भगवत भक्त मानकर

भजते हैं। जिनसे अमित फल की प्राप्ति करते हैं और कामना करते हैं कि वे हनुमान जी मुझे आज भी निरोग रखें वे भी आज सशरीर नहीं दिखाई दे रहे हैं। इसी प्रकार से अंतिम प्रजापति भगवान कश्यप जिनकी सन्तान आज के संसार के सभी मनुष्य हैं। वे प्रभु स्वरूप महर्षि आज दर्शन के लिए नहीं मिल रहे हैं।

इसी प्रकार से महाराजा महात्मा जनक जो विदेही थे। जो जीवन मुक्त थे, जो ज्ञानियों में अग्रगण्य थे। जिनके यहाँ सदा ब्रह्मज्ञान की चर्चा होती थी। जो सदा तत्त्वज्ञान की बातें करते थे। वे ज्ञानी राजा भी आज दर्शन के लिए दुर्लभ हैं। इसी प्रकार से संसार का सबसे बली, बीर जिसने रावण जैसे बलियों को छह महीने तक अपने कांख में दबाये रखा था। वह प्रतापी शूरवीर वालि भी आज देखने में नहीं आते। जो किष्किन्धा के राजा थे, जो बड़े प्रतापी थे। इन सब अच्छे-बुरे लोगों की शरीर काल-कवलित हो गया। अर्थात् यम के द्वारा व रवितनय के द्वारा उनके शरीर को भी यहाँ से जाना पड़ा। छेकल में व्यंजना है यदि छेकल का अर्थ घेरा किया जाय तो साफ अर्थ होगा कि अज्ञानी लोग यम के द्वारा मारे गये परन्तु जो जनक आदि ज्ञानी थे। अपने लिए यम के द्वार पर फाटक लगा दिये अर्थात् ये लोग यमराज के वश में नहीं पड़े परन्तु यहाँ शरीर प्रकरण है। इसलिए सभी का शरीर मृत्यु को प्राप्त हुआ। इसलिए अज्ञानियों को अधिक चेतना चाहिए। सावधान होकर प्रभु का भजन करना चाहिए। क्योंकि 'गोपीचन्द भल कीन्हा जोग' अर्थात् गोपीचन्द जो बंगाल के राजा थे। जो योग में निपुण थे, जो सम्पूर्ण योग की कलाओं के ज्ञाता थे। वे भी योग करते-करते इस संसार से चले गये। आज दर्शन के लिए नहीं दिखाई दे रहे हैं। जिस प्रकार से लंका का राजा रावण भोग के कारण व भोग करते-करते मारा गया। अर्थात् महाप्रतापी रावण भी इस अनित्य संसार में आज नहीं दिखाई दे रहा है। हे संसार के मनुष्यों! इसी प्रकार से देखो सभी का जीवन यहाँ से चला गया। तू इस पर सोच विचार कर और इससे बचने के लिए उपाय कर।

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे संसार के मनुष्य! यदि तू सुख चाहता है तो राम-नाम का भजन करो। तभी काल से बच सकते हो अन्यथा—'नान्यपन्था विद्यते अनाय' (यजुर्वेद)।

**बसन्त के अन्तर्गत**—राजा वेन की कथा विष्णु पुराण अंश १ अ०

१२ में है कि वेन अपने मातामह के संग से दुष्ट चित्त वाला होकर, यज्ञादि सत्कर्मों को बन्द कर दिया। ऋषियों के समझाने पर भी नहीं माना, तब ऋषि सब मन्त्रयुक्त कुश से मार डाला। फिर राजा के बिना प्रजा में उत्पात देखकर वेन के बाये उरु (जंघा) को मथे, उससे पापमय निषाद के होने से वेन के दाहिने हाथ को मथे जिससे भगवत रूप दर्शक पृथु हुए और पृथ्वी तथा प्रजा का पालन किये, । पद्म पु० खं० २ अ० २८ आदि में पृथु की कथा है। हरिवंश १।५ में कथा है कि—वेन को शायादि से मार कर, ऋषियों ने प्रथम उसके वाम भुजा को मथा, उससे ह्रस्व कृष्ण वर्ण के पापमय निषादादि प्रगट हुए। फिर दाहिने भुजा के मथने पर पवित्र पृथु राजा उत्पन्न हुए, जिनकी पुत्री पृथिवी कहाई। वेन और पृथु की कथा श्रीमद्भागवत स्क० ४ अ० १४ आदि में विस्तार से है। वहाँ उरु मथने से निषाद की उत्पत्ति का वर्णन है और दोनों बाहु को मथने से पृथु और उनकी स्त्री अर्चि हुई है।

## बसन्त १०

### सात्विक अहं प्रकरण

**सबही मद माते कोई न जाग, संगहिं चोर घर मूसन लाग ॥**
**जोगी माते जोग धियान, पंडित माते पढ़ी पुरान।**
**तपसी माते तप के भेव, संन्यासी माते करि अहमेव ॥**
**मौलाना माते पढ़ि मुसाफ, काजी माते दै इनिसाफ।**
**संसारी माते माया की धार, राजा माते करि हंकार ॥**
**माते सुखदेव ऊधव अक्रुर, हनिवंत माते ले लंगूर।**
**सिउ माते हरि चरन सेव, कलि माते नामा जैदेव ॥**
**सत्त-सत्त कहै सुम्रिति वेद, जस-रावन मारेउ घर के भेद।**
**चंचल मन के अधम काम, कहैं कबीर भजु राम-नाम ॥**

**शब्दार्थ**—सबही–सभी। मद–अभिमान, अहंकार। चोर–मन, काम क्रोध, मान, सम्मान। पंडित–शास्त्रज्ञ। संन्यासी–शैव, संन्यासो, अहमेव–हमहीं हैं। मौलाना–मुसलमानों के धर्म गुरु जो व्यवस्था देते हैं। मुसाफ–मुस्हफ, वह किताब जिसमें रसाले और सहीफे जमा हों, कुरान सरीफ। काजी–न्यायकर्ता. जज। इनिसाफ–निर्णय, फैसला। धार–धन, दौलत

लार। सुखदेव–शुक, व्यासजी के पुत्र । ऊधव–भगवान श्री कृष्ण के सखा व भक्त । अक्रूर–ये भी भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के सम्बन्धी थे । हनिवंत–हनुमानजी । लंगूर–पूँछ, शक्ति । सिउ–शंकर जी । नामा–नामदेवजी पंडरपुरके निवासी जो महाराष्ट्र में पड़ता है । जयदेव–जो गीत गोविन्द के रचयिता थे ।

**सम्बन्ध**—इसके पहले कहा जा चुका है कि मानव तन बहुत दुर्लभ है जो सहज में ही चला जाता है । अन्त में सद्गुरु कहते हैं कि जाना तो सभी को है लेकिन राम-नाम भजकर जाना चाहिए । जो रामनाम भजकर जायेगा । वह पुनः मृत्यु को प्राप्त नहीं होगा और कहते हैं कि जो रामनाम नहीं भजेगा तो संसार की मोह माया में पड़कर नष्ट हो जायेगा क्योंकि जो राम-नाम नहीं भजता है उसकी मनोवृत्ति वहिर्मुखी हो जाती है और मान-सम्मान के चक्र में पड़कर अहंकारी हो जाता है । जिसका दिग्दर्शन नीचे के बसन्त में किया जा रहा है ।

**मूलार्थ**—इस असार संसार में झूठे मान-सम्मान में पड़कर संसार के मनुष्य सम्मान रूपी मद पीकर, धन-जन रूपी मद पीकर, बल रूपी मद पीकर सब मतवाले हो गये हैं । इन दोनों से कोई बचा नहीं है और जागि भी नहीं सका । इसलिए संग में जो मन रूपी चोर था वह शरीर रूपी घर में चोरी करना व मूसना आरंभ किया । अहंकार के चलते सत्य न्याय, विवेक, क्षमा, अहिंसा, आत्मज्ञान की जो बुद्धि थी उन सबको हरण कर लिया । योगियों में दो प्रकार के योगी होते हैं । एक जूनजान योगी होते हैं और दूसरे एक युक्त योगी होते हैं जो आत्मवेत्ता होते हैं वे कभी जन्म-मरण को प्राप्त नहीं होते वे सदा सर्वज्ञ होते हैं उन्हें कुछ जानने के लिए ध्यान नहीं धरना पड़ता है वे सहज में ही सब कुछ जान लेते हैं । जो जुन-जान योगी होते हैं वे ऋद्धि-सिद्धि के पुजारी होते हैं और अपनी सिद्धि का बड़ा अहंकार करते हैं । इसलिए ये लोग भी योग ध्यान का अहंकार सिद्धियों के चलते करते हैं वे बाह्य मान-सम्मान में मतवाले हो जाते हैं पंडित जो ब्राह्मण लोग हैं वे पुराणों को पढ़कर मतवाले हो गये हैं और रोचक भयानक, यथार्थ वाणियों को सुनकर जन सामान्य मतवाले बने रहे । तपसी लोग पंच अग्नि तापकर ठड़ेसरी बनकर ऊर्ध्वबाहु रखकर जिससे लोक में बड़ा सम्मान होता है । उस तत्त्व के मद में मतवाले हो गये । ये भी जाग नहीं सकें । भेव शब्द भेद व रहस्य है । भेव का मतलब यह हुआ कि यहाँ पर सात्विक तप नहीं किया गया यहाँ पर तामसी तप को करके तपसी लोग

भी मतवाले हो गये। जिसमें कृच्छ व्रत भी आता है। जिसको 'गीता में भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी तामस युक्त तप की संज्ञा दी है। इसी प्रकार से शैव संन्यासी 'अहं ब्रह्माऽस्मि' के अहंकार में मतवाले हो गये। वास्तविक ज्ञान न होने के कारण, आत्म साक्षात्कार न होने के कारण जो अहंकार उत्पन्न हुआ। उसमें शैव-शाक्त साधु लोग भी मतवाले हो गये। जितने भी अद्वैतवाद की डींग हाकते हैं। वे सबके सब इसी प्रकार से मतवाले हो गये। मुसलमानों के धर्मगुरु मौलाना साहब केवल कुरान-मुसाफ पढ़कर इस्लाम की डींग हाँकने लगे। खुदा से परिचय नहीं किये। केवल कुरान रटते रहे। इसी प्रकार से जो काजी लोग थे जो धर्म के न्यायाधीश होते थे, जो व्यवस्था देते थे, फतवा देते थे। उस निर्णय में ये भी मतवाले हो गये। सत्य-असत्य का विचार न कर सके। जो मन में आया वही व्यवस्था देते रहे।

संसारी लोग जो संसार की मोह माया में फँसे हुए हैं वे भी धन-जन एवं पुत्र-कलत्र सम्पत्ति के अम्बार की प्रवाह में मतवाले हो गये। वे भी नहींजाग सके। सदा माया के दास बने रहे। राजे-महाराजों को भी राज्य का बहुत बड़ा अहंकार हो गया कि हमारे अधीन बहुत से देश हैं। बहुत से गाँव हैं। करोड़ों प्रजा हैं। इसके अहंकार में राजा भी मतवाले हो गये। अब तक तो राजे-महाराजे, काजी-पंडित-मौलाना, योगी, तपसी, संन्यासी और संसारी ये सब मतवाले सिद्ध किये गये। अब संसार के जो विशिष्ट लोग हैं। जिनके विषय में किसी को अँगुली उठाने का साहस नहीं होता उनके बारे में भी इसी प्रकार की बात कही गयी है परन्तु तथ्य बड़ा विचारणीय है और देश काल व्यवस्था के अनुसार सत्य भी है। पुराणों के अनुसार—महर्षि शुकदेव जी भी जनक जी से जब मिलने गये तो वहाँ अपने त्याग का अभिमान दिखाया था। जिसकी परीक्षा महाराजा जनक के द्वारा हुई थी। आत्मज्ञान के पूर्व सूक्ष्म वासनाओं के कारण त्याग में दोष आ गया था। इसी प्रकार से उद्धव जी को भी भगवान के अधिक समीपी होने का अहंकार था। जिसके कारण भगवान अपने साथ न ले जाकर बद्रीका आश्रम में तप करने का आदेश दिया। जिससे उद्धवजी को बड़ा क्लेश हुआ था। अक्रूर जी भी भगवान के सजातीय थे वे बड़े निष्पक्ष थे परन्तु कंस के बहकावे में आकर नन्दजी को धोखा देकर बलराम और श्री कृष्णचन्द्र जी को मरवाने के ख्याल से अथवा मिलाने के ख्याल से कंस के यहाँ ले गये। ये भी अधिक सम्मान के कारण

भगवान को भूल गये थे। परम सन्त हनुमान जी भी लंका विजय के बाद अपने लंगूर पर बड़ा गौरव करते थे। यद्यपि हनुमानजी ज्ञानी भक्त थे परन्तु व्यवहार में थोड़ा सा दोष आ ही जाता है। जिसके कारण लव-कुश की लड़ाई में आप भी उनसे पराजित हुए थे। भगवान शंकर व शिवजी जो महादेव कहे जाते हैं। जिनकी भक्ति अपार मानी जाती है। वे श्री हरि के चरण की सेवा में मस्त रहे। एक बार बाणासुर के बहकावे में आकर भगवान श्री कृष्णचन्द्र से युद्ध किये थे। जिसमें पराजित हो गये थे। इसी प्रकार से कलियुग में श्री नामदेव जी जिन्हें भगवान का अट्ठाइस बार दर्शन हुआ था। जिसका अहंकार उन्हें बहुत हो गया था कि मेरे समान कोई भगवत भक्त नहीं है। उनके अभिमान का शमन गौरा कुम्हार ने किया था जो परमज्ञानी संत थे। श्री जयदेव जो बड़े कवि थे और अपनी कविता के बल पर बड़ा यश नाम कमाया था। जिसके कारण जगन्नाथ जी की यात्रा में चोरों के द्वारा उनके हाथ-पैर काट दिये गये थे। स्मृति और वेद यह बात सब सत्य ही कहते हैं कि जरा सा भी अभिमान मन में आया तो सभी किया-कराया मटिया मेंट हो जाता है जैसे—अहंकार के कारण घर के भेद से वा गुप्तचरी से रावण राजा भी मारा गया। तात्पर्य यह है कि मानव अपने दोषों के कारण ही नीचा होता है। समाज में अपमानित होता है।

सद्गुरु कहते हैं कि यह सब उपर्युक्त बातें चंचल मन के कारण होती हैं क्योंकि जो चंचल मन का कार्य है वह अधम है। चंचलता के कारण ही मनुष्य बहुत नीचे गिर जाता है। इसलिए सद्‌गुरुदेव कहते हैं कि यदि आप को उपर्युक्त दोषों से बचना है दुःख से बचना है तो श्री राम नाम का भजन कीजिए। जिससे आप नाश होने से बच जायेंगे। यही वसंत बनवारी दास के प्रति में निम्न प्रकार से आया है।

**सूचना**—इसी प्रकार से बनवारी दास जी की प्रति में कुछ पाठ भेद से लिखा गया है।

**सभै मदिमाते कोऊ न जाग, संगहि चोर घरु मूसन लाग।**
**जोगी माते धरि धियान, पंडित माते पढ़ि पुरान॥**
**तपा जु माते तपकै भेव, संन्यासी माते अहं मेव।**
**जागे सुखदेउ ऊधौ अक्रूरू, हणवंत जागे लै लंगूरू॥**

**संकर जागे चरन सेव, कलि जागे नामा जैदेव।**
**जागत सोवत बहु प्रकार, गुरु मुखि जागै सोई सार ॥**
**चंचल मन के अधम काम, कहैं कबीर भजि राम-नाम।**

मलूक दास की प्रति में भी थोड़ा हेर फेर लेकर यह पद निम्न प्रकार से आया है—

**सब मदि माते कोई न जाग, ताथैं संग हीं चोर घर मूसन लाग।**
**पंडित माते पढ़ि पुरान, जोगी माते धरि धियान ॥**
**संन्यासी माते अहं मेव, तपाजु माते तब कै भेव।**
**जागे सुक उधव अक्रूर, हणवंत जागे लै लंगूर ॥**
**संकर जागे चरन सेव, कलि जागे नामां जैदेव।**
**ए अभिमान सब मनके काम, ए अभिमान नही रहीं ठाम ॥**
**आतमां राम कौ मन विश्राम, कहिं कबीर भजि राँम-नाँम।**

इसी प्रकार से राजस्थान की कई प्रतियों में उक्त प्रकार के ही पाठ मिलते हैं। यह कहना कठिन है कि दोनों प्रकार के पाठो में किसमें हेर-फेर किया गया है। क्योंकि १० वें वसंत के पाठ में बहुत बड़ा अंतर हो गया है जिसके अर्थ भी बहुत भेद वाले हो गये हैं। इस बात को कबीर साहब ही जान सकते हैं कि कौन पाठ सही है। जो बदला होगा सही में बड़ा अपराधी होगा क्योंकि गुरु की वाणी में हेर-फेर करना महा अपराध है। सद्गुरु कबीर ही इसके साक्षी है। बस इसके आगे कुछ नहीं कहना है।

॥ काशी की दुर्दशा प्रकरण ॥

## बसन्त-११

**सिउ कासी कैसी भई तुम्हारि, अजहूँ हो सिउ लेहु विचारि।**
**चोवा चंदन अगर पान, घर-घर सुम्रिति होय पुरान ॥**
**बहुविधि भौने लागु भोग, ऐसो नग्र कोलाहल करत लोग।**
**बहु बिधि परजा लोग तोर, तेहि कारन चित ढ़ीठ मोर ॥**
**हमरे बलकवा के इहै ज्ञान, तोहरा को समुझावे आन।**
**जो जेहि मन से रहल आय, जिउ का मरन कहु कहाँ समाय ॥**

**ताकर जो कछु होय अकाज, ताहि दोख नहिं साहब लाज।**
**हर हरसित सो कहल भेव, जहाँ हम तहाँ दूसरा नहिं केव॥**
**दिना चारि मन धरहूँ धीर, जस देखै तस कहैं कबीर।**

**शब्दार्थ**—सिउ–शंकर जी। अजहूँ–आज भी। तुम्हारी–आप की। चोवा–कई सुगंधित पदार्थों को मिलाकर तैयार किया हुआ एक सुगंधित द्रव्य। अगर–धूप। पान–फल। सुम्रिति–स्मृति। भौने–भवन मंदिर। नग्र–नगर। कोलाहल–हलचल, अशान्त। परजा–प्रजा, शिष्य, शाखा, आपके उपासक। ढ़ीठ–धृष्ट, बिना डर का, निडर, साहसी हिम्मतवर। बलकवा–बालक, कम अवस्था वाला कम बुद्धिका। तोहरा–आपको। आन–दूसरा, और। ताकर–उसका, किसका। अकाज–अकार्य, कुगति। हर–शिवजी, हरसित–प्रसन्न होकर। कहल–कहा। केव–कोई।

**सम्बन्ध**— ऊपर कहा जा चुका है कि भगवान के भजन के विना मानव मन मतवाला हो जाता है। उसमें दोष आ जाते हैं। इसलिए अन्त में कहा गया है कि यदि सुख चाहते हो तो भगवान का भजन करो। सद्‌गुरु कबीर भगवान शंकर जी की ओर लक्ष्य करके कहते हैं कि हे भगवान शिव ! यह आपकी बसायी हुई काशी किस प्रकार की हो रही है ?

**मूलार्थ**—इसी सन्दर्भ में लोगों को अशान्त देखकर स्वयं काशी में ही सद्‌गुरु कबीर भगवान शंकर की ओर लक्ष्य करके कहते हैं कि हे भगवान शिव यह आप की बसायी हुई काशीपुरी किस प्रकार की हो गयी है। इस पर आज भी आप विचार कर देखें। पुराणों के अनुसार–काशी के जितने लोग हैं। वे सब भगवान के अंश होने से सब शिवस्वरूप माने जाते हैं। इसलिए शिव का अर्थ दोनों से है। लोगों से भी है और भगवान शंकर से भी है।

सद्‌गुरु कहते हैं कि हे शिवजी महाराज ! आपके जिस नगर में चोवा याने सुगन्धित द्रव्य चन्दन, धूप–दीप, पान-फूल से जहाँ आपकी पूजा होती थी तथा घर-घर में धर्मग्रंथों को और पुराणों को लोग पढ़ते थे। उस पर विचार करते थे। उसके अनुसार लोग चलते थे और आपके भवन कहिये मंदिर में बहुत प्रकार का चढ़ावा चढ़ता था। लोग भोग लगाते थे। जहाँ शान्ति की इतनी बड़ी छाया थी। सभी लोग सत्य कर्म करते थे। कोई किसी को सताता नहीं था। हे प्रभु ! इस प्रकार

आपके नगर में आज लोग कोलाहल मचा रहे हैं। अशान्त दीख रहे हैं। यह दूसरे लोग अशान्त करने वाले नहीं हैं। बहुत प्रकार की अशांति चोरी-ठगी, लूट-खसोट, हत्या, अपहरण, ढ़ोंग, धतूरा आदि जो हो रहा है। हे प्रभु ! आपके प्रजा लोग ही कर रहे हैं। अर्थात् आपके उपासक लोग ही ऐसा कर रहे हैं। इसी कारण से मेरा चित्त कहने का साहस कर बैठा है। जहाँ आप जैसे योगी, आत्मज्ञानी, सत्यपुरुष, ब्रह्मज्ञ, दयालु, भोले-भाले, सीधे-सपाटे, छल विहीन दोषों से मुक्त रहते हों और आप के मानने वाले व पूजने वाले लोग बिल्कुल आपसे विपरीत हों यह कैसी बात है ? हे प्रभु ! यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है क्योंकि मैं बालक हूँ। आपके सामने बच्चा हूँ। इसलिए मेरे पास यही ज्ञान है, यही समझ है। इसीलिए आपसे यह जानकारी करना चाहता हूँ कि यह आपकी कैसो लीला है ? आप तो ज्ञान के समुद्र हैं। त्रिलोकीनाथ हैं। आपको दूसरा क्या समझा सकता है ? जिसके मन में जो रहता है। जिसके पास जितनी समझ रहती है। वह उसी प्रकार की बात कहता है। जो मैं आप के नगर के बारे में आप लोगों के विषय में सोचा हूँ समझा हूँ वही आप से निवेदन किया हूँ। भला हे प्रभु ! आप कहिये जो लोग आप के नगर में ऊधम मचा रहे हैं, जो उत्पात कर रहे हैं। ऐसे जीव ऐसे प्राणी मरकर कहाँ जायेंगे ? कहाँ समायेंगे ? अर्थात् ये दुराचारी आप के लोक में जायेंगे की मार्तण्ड के पुत्र के नगर में जायेंगे। यही संशय मुझे हो रहा है। मुझे तो ज्ञात हो रहा है कि 'ताकर' कहिये उन जीवों का जो कुछ अकार्य हानि होगी वह दोष आप साहब को नहीं लगेगा। न आपको कोई इसकी लज्जा ही है। क्योंकि पापी मनुष्य अपने कर्मों का फल स्वयं भोगता है।

सद्गुरु कबीर के इस प्रकार के प्रश्न पर भगवान शंकर प्रसन्न होकर उक्त भेद को कह रहे हैं। वे कहते हैं कि—हे कबीर जी ! जहाँ मैं रहता हूँ अर्थात् जिस स्थिति में मैं रहता हूँ वहाँ दूसरा कोई नहीं है। तात्पर्य यह है कि मैं निर्विकल्पक भाव से 'निर्विकल्पक समाधि' में निवास करता हूँ। मुझे इन जीवों के कर्म का कोई असर नहीं पड़ने वाला है। मैं संसार के दुःख-सुख से परे हूँ। आप दो-चार दिन मन में धीरज रखिये। कुछ दिन शान्त रहिये। जिनका जेसा कर्म है वैसा फल पावेंगे। इस पर सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे महाराज ! मैं तो जिस प्रकार से आपकी पुरी के लोगों को देखा है। उसी प्रकार से आप से निवेदन किया है। आप

जाने और आपके लोग जाने। मैं तो आप से यही प्रार्थना करता हूँ कि इन अज्ञानियों का सुधार कोजिए।

**श्री तुलसीदास जी तुलनीय**

"गौरी नाथ भोलानाथ भवत भवानी नाथ।
विश्वनाथ-पुर फिरी आन कलिकाल की॥
संकर से नर गिरिजा सी नारी कासी बासी।
वेद कही सही •ससि सेखर कृपाल की॥
छ मुख गनेस से महेस के पियारे लोग।
विकल विलोकियत नगरी विहाल की॥
पुरी सुर-बेलि केलि काटत किरात कलि।
निठुर निहारिये उघारी डीढि भाल की॥१६९॥"

(कवितावली)

## बसन्त १२

### अविश्वास प्रकरण

**हमरे कहल के नहिं पतिआर, आप बूड़े नर सालिल धार॥**
**अंधा कहै अंधा पतिआय, जस बेस्या के लगन धराय।**
**सो तो कहिये ऐसो अबूझ, खसम ठाढ़ ढिग नाहीं सूझ॥**
**आपन आपन चाहैं मान, झूठ परपंच सांच करि जान।**
**झूठा कबहु न करिहैं काज, हौं बरजौं तोहिं सुनु निलाज॥**
**छाड़हु पाखंड मानहु बात, नहिं तो परबेहु जम के हाथ।**
**कहैं कबीर नर कियो न खोज, भटकि मुअल जस बन का रोझ॥**

**शब्दार्थ**—कहल-कहने से, कथन। पतिआर-विश्वास। सालिल-सलिल, जल, नदी, सरिता। अंधा-नेत्रहीन, अज्ञानी। वेस्या-जो देह विक्रय का व्यवसाय करतो है। लगन-विवाह का दिन, शुभ मुहूर्त। अबूझ-अज्ञ, मूर्ख, नासमझ। खसम-स्वामी, पति। ढ़िग-पास। सूझ-दिखाई। चाहै-चाहना है। मान-सम्मान, मान बड़ाई इज्जत। परपंच-जो दूसरे की बात को लेकर फैसला करते चले, मिथ्या वार्तालाप। कबहुं-कभी। हौं-मैं। बरजों-मना करता हूँ। तोहिं-तुझे। निलाज-निर्ल्लज। छाड़हु-छोड़ों, त्यागो। पाखंड-असत्य धर्म, धर्म का ढोंग, लोक में पूजा

कराने के लिए धर्म का ढ़ोंग रचने वाला आडम्बर युक्त धर्म। जम–यम, मृत्यु। रोज–नोल गाय। मुअल–मृत्यु हुई। जस–जैसे। बन–जंगल।

**सम्बन्ध**—पूर्व पद में कहा गया है कि हे शिव जी! आपकी काशी किस तरह से हो गयी है। जहाँ पर लोग तत्त्व-चिन्तन नहीं करते हैं। ब्रह्म की उपासना नहीं करते हैं। चेतन का चिन्तन नहीं करते हैं। प्रायः सभी लोग सकाम कर्मों में फँसे हुए हैं। कर्मकाण्ड के अतिरिक्त आपके बताये हुए आत्म चिन्तन रूपी भक्ति को नहीं करते और कहा गया कि ये लोग मृत्यु के पश्चात् कहाँ जायेंगे क्योंकि सबके सब सकाम कर्मी हैं। मैं जैसे देखा हूँ उसी प्रकार से आपसे निवेदन किया हूँ। आप अपनी प्रजा को सुधारें क्योंकि आपकी प्रजा मुझे बालक जानकर मेरी बात पर विश्वास नहीं करती है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि इस काशीपुरी के लोग तथा संसार के लोग मेरे कथन पर विश्वास नहीं करते हैं। मैं कहता हूँ कि—"बोलनहार जगत गुरु याही" की उपासना कीजिए। जो आपके अन्दर में विराजमान है। जो हृदय कमल में बैठा हुआ है। तो कोई मेरी बात पर विश्वास नहीं करता। इसलिए अपने आप स्वतः बिना किसी के डुबाये ये संसार के मनुष्य मोह-माया रूपी जल की धार में डूब जाते हैं। ये अज्ञानी लोग जिनकी विवेक की आँखें फूट गयी हैं। जो निरा अज्ञानी हैं। जो वंचक गुरु हैं। उन्हीं के कहे पर संसार के अन्धे अज्ञानी लोग विश्वास करते हैं व उनकी बात का प्रतिपालन करते हैं। जो बाह्याडम्बरों के उपासक हैं। तमाम लोक-लोकान्तरों की बात का उपदेश करते हैं। मरे पीछे मुक्ति मानते हैं। उन्हीं की बात का संसार के अधिक लोग अनुसरण करते हैं। इनकी बात कैसी है जैसे कोई कहे कि—अमुक पुरुष से अमुक दिन वेश्या का विवाह होने वाला है। भला जब वह वेश्या है तो उसका विवाह कैसा? उसका तो कोई एक पति होता नहीं तात्पर्य यह कि वेश्या के विवाह का लग्न ही नहीं रखा जाता है। जैसे—वेश्या के लग्न मात्र कहने से झूठ सिद्ध होता है उसी प्रकार से वंचक गुरु के उपदेश भी झूठे होते हैं। कोई अज्ञानी मनुष्य यह सुनकर कहे कि वेश्या का लग्न जो धरी हुई है सही है तो सो कहिये वह बिल्कुल अज्ञानी मनुष्य है। जो वंचक-गुरुओं की बात पर विश्वास किये हुए है। 'वेश्या' में व्यंजना है। जो नाना प्रकार के देवा-देवी, भूत-प्रेत, पिशाचों की उपासना करता है। वह वेश्या की तरह बहुसेवी है। यदि कोई कहता है कि प्रभु के साथ

उसका सम्बन्ध होने जा रहा है तो यह बिल्कुल निराधार है क्योंकि वह किसी एक से प्रेम नहीं करता है। उसका प्रेम तो बहुत से है। इसलिए प्रभु उस पर कैसे रीझेगा? जैसे—किसी वेश्या पर कोई सत्य पुरुष नहीं रीझता हो। उसी प्रकार से बहुसेवियों पर परमेश्वर नहीं रीझता है।

सद्गुरु कहते हैं कि—वह परमेश्वर रूपी 'खसम' अपने पास में ही खड़ा हुआ है। अर्थात् हृदय में विराजमान है परन्तु अज्ञानी मनुष्यों को दिखाई नहीं दे रहा है। कारण की अपना-अपना मान-सम्मान सब चाहते हैं। बड़ाई के कारण परमेश्वर, परमतत्त्व इन अज्ञानियां से बहुत दूर रहता है। ये संसार के मूर्ख मनुष्य! झूठे प्रपंच को सत्य मान लिये हैं। इनको ठगों की बात पर बड़ा विश्वास है। संसार के भुलावे में पड़ गये हैं परन्तु जो असत्यग्राही हैं। उनका कल्याण झूठ बोलने से और झूठ ज्ञान को ग्रहण करने से व अनात्म सेवन से कभी (कार्य) होने वाला नहीं है।

सद्गुरु कबीर इन अज्ञानियों की दुर्दशा देखकर दुःखी होकर मना करते हैं कि हे निर्लज्ज! मेरी बात को सुन। यदि तुम अपना कल्याण चाहता है तो पाखण्ड का परित्याग कर उसको छोड़ दे। मेरी जो सच्ची बात है, उसको मानो। यदि मेरी सच्ची बात को नहीं मानोगे तो निश्चय ही तू मृत्यु के हाथ में पड़ जाओगे। मैं कबीर कहता हूँ कि—हे संसार के मनुष्य! तू कभी सत्य का अन्वेषण नहीं किया। आत्मा को तू नहीं जाना। अनात्म वस्तु के पीछे तुम उसी प्रकार से भटकते रहा है जिस प्रकार से जंगल की नील गाय इधर से उधर भटकते हुए मर जाती है।

यह 'बसन्त प्रकरण' बसन्त ही जैसा है। इस 'बसन्त प्रकरण' को सद्गुरु देव ने बड़े ही मनोयोग से बाह्य वस्तुओं को आध्यात्मिक रूप में प्रस्तुत किया है, जो अति ही मनोहारी और मनोरंजन युक्त है। इसलिए गुरु की वाणी का बार-बार स्वाध्याय करना चाहिए। तभी कल्याण कामियों की कामना सिद्ध हो सकती है।

भु० छ०—समाप्तं वसंतं गुरूं ज्ञान रूपं, भना श्री कबीरं अखंड अनूपम्।
दया दीन बंधो उदारं अपारं, सुमाया विशालं स्वरूपं कथात्वम्॥
नहीं आदि अन्तं सुसंतं दयालूं, दयागार संसार पारं कृपालुम्।
सदा दास गंगा परा आस तेरे, करो नाथ दाया हरो सर्व घेरे॥

॥ इति श्री बसन्त प्रकरण समाप्त॥

# सबद ६

## चांचर

### चाचर प्रकरण आरम्भ

#### प्रमाणिका छन्द

नमो नमो कबीर को। अखण्ड ज्योति धीर को ॥
कहा जु गीति चाञ्चरी। महान मोह संचरी ॥
सभी जगत की नाशिका। महान रूप धारिका ॥
बचा न कोई आप से। ऋषी मुनी महान से ॥१॥
महान मोह मस्करी। समस्त विश्व जा परी ॥
रूप राशि भूरि-भूरि। है न कोई दूरि-दूरि ॥
प्रपंच विश्व सर्जिका। न शांतिभांति भक्षिका ॥
लता पता सुघेरि के। जो मारती है प्रेरि के ॥२॥
नहीं बचा सका कोइ। महान मृत्यु है सोई ॥
देखि देखि दौड़ते हैं। जाय के परतं कूप ॥
ऐसी चंडिका महान। कोई ना समान तासु के ॥
दास गंगा फंद लंद। जीव को महान गंद ॥३॥
भेदभाव डारिकासु। काल रूप मारिकासु ॥
विना सुध्यान योग के। बचे न कोइ भोग से ॥
मरा मरा सभी परा। भजना राम नाम को ॥
आनन्द पूरि पूरि है। जो दास गंगा दूरि है ॥४॥

**चांचर**—सं० (चरचरी) प्रा०–चच्चरी हिन्दी में चाचरी व चांचरी। यह चरचरी श्रृङ्गार प्रधान काव्य रूप है। जिसको साधारण जनता वसन्त ऋतु में नृत्य के साथ गाया करती थी। यह प्रचलित काव्य है। कालिदास और बाणभट्ट की रचनाओं में भी चरचरी गान का उल्लेख हुआ है। जैन साहित्य में चचरी का बहुत प्रयोग हुआ है इसलिए यह चरचरी गीत बहुत प्राचीन है। कभी यह प्रसिद्ध गीत के रूप में भारत के साहित्य में विख्यात थी परन्तु जैसे-जैसे साहित्य गगन का विकास होते गया वैसे-वैसे पुराने गीतों का गायन व लेखन भी कमजोर पड़ते गया। मध्यकाल तक लोक नृत्यों में चांचरी, फाग, के रूप में बसन्त, कहरा, बेली, बिरहुली, हिंडोला आदि गीतों का बाहुल्यरूपेण प्रचलन था। काल कर्म के अनुसार आज इन गायनों का मात्र कुछ स्थानों में विशेष कर

ग्रामीणों में पाया जाता है। अन्यत्र इनके अभाव ही हैं। अस्तु सद्गुरु कबीर चांचरी गीत के माध्यम से आध्यात्मिक उपदेश की भरमार लगा दी है।

## चांचर (१)

### सर्वविजयी प्रकरण

**खेलति माया मोहिनी, जिन्ह जेर कियो संसार।**
**कटि केहरि गजगामिनी, संसै कियो सिंगार॥**
**रचेउ रंग ते चूनरी, कोई सुन्दरि पहिरे आय।**
**सोभा अद्बुद रूप वाकी, महिमा बरनि न जाय॥**

**शब्दार्थ**—खेलति-खेलती है। मोहिनी-मोहने वाली। जिन्ह-जो। जेर-(फा०) परास्त, पराजित। कटि-कटि भाग पतला स्थान। केहरि-सिंह। गजगामिनी-हाथी की चाल वाली अर्थात् छाती उतानकर चलने वाली। संशय-संशय-सन्देह युक्त। सिंगार-शृंगार। रंग-लोभ मोहरूपी रंग। चूनरी-साड़ी, साटी। अद्बुद-अद्भुत, अभूतपूर्व। महिमा-महत्त्व। बरनि-कथन, बखान।

**सम्बन्ध**—पहले बसन्त प्रकरण में माया को अनेक रूपकों के द्वारा चित्रित किया गया है और कहा गया है कि सारा संसार माया के अंचल में है। अब नीचे दर्शाया जा रहा है कि माया बड़ी क्रीड़ा प्रिय है। जो क्रीड़ा में रत रहती है क्रीड़ा किसके साथ करती है स्त्रियाँ तो पुरुष के साथ करती हैं परन्तु यह माया जो है वह जीवात्मा के साथ खेल रचती रहती है। जिसको लोक में होली के अवसर पर फाग के रूप में खेला जाता है। एक ओर पुरुष रहते हैं और दूसरी ओर स्त्रियाँ रहती हैं। पिचकारी एवं डोलचियों से रंग छोड़ा जाता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्तो! हे समाज के लोगों! यह माया जो मोहिनी है। जो समस्त विश्व को विमोहित किये हुए हैं। वह संसार रूपी बसन्त के महीने में जगत जीवों से फाग खूब खेल रही है और वह जो खेल खेलती है, वह 'चौरस' जैसा होता है। संसार का जो भोग-विलास है। ऐसो-आराम है, वही उसका पाशा है। जो यावत् संसार की सुख-सुविधा है। उसी पाशा को फेंकती है। जिसमें खेलते-खेलते संसार को पराजित कर देती है। संसार का मानव माया के जाल में पड़कर मारा जाता है। वह माया कैसी है? उसका रूप कैसा है? तो बखान

करते हैं। उसका जो कटिभाग है। वह सिंहनी के समान है। जैसे सिंहनी का कटिभाग पतला होता है। सीना बहुत चौड़ा होता है, उसी प्रकार से यह माया रूपी स्त्री पतली कमरवाली है। हस्ती की तरह मस्त होकर चलती है। हंसिनी की तरह मन्द-मन्द-गति से पदार्पण करती है और अज्ञान का शृङ्गार किये हुए हैं। तात्पर्य यह है कि उस स्त्री का ऐसा रूप है जो संशयजनक है। न उसको सत्य कहा जा सकता है न उसे असत्य कहा जा सकता है। वह संसार रूपी अपनी चुनरी को बहुत सुन्दर रंगों में रंगी है। संसार को बहुत सजाया है। जिस तरह से वह संसार को सजायी है। उस तरह से कोई-कोई सुन्दरी ही वस्त्र को धारण करती हैं। कुछ कहते बनता नहीं है। इस स्त्री की शोभा अद्भुत है। अति सुन्दरी है। इसके नाक, कान बड़े-बड़े हैं। नासिका नोंकवाली है। नेत्र कमल के समान हैं। बाँह जो है वह हाथी के सूँड़ के समान है। मस्तक बहुत ऊँचा और चौड़ा है। कपोल वहुत गोल-गोल हैं। ग्रीवा इसकी बड़ी लम्बी है। बाल इसके सुनहले रंग में हैं। छाती बड़ी मनोरम है। कृशोदरी है। जंघे इसके कदली के खम्भे के समान हैं। पाद की बनावट कछुए के समान है। मुस्कान इसकी खिले कमल जैसी है और भी अंग-प्रत्यंग इसके बड़े लुभावने हैं। इसलिए इसकी शोभा और इसकी रूप की महिमा वर्णन में नहीं आ रहा है। कहा नहीं जा रहा है, तात्पर्य यह है कि जो संसार है, बिल्कुल एक सुन्दरी स्त्री का रूप है। जो बहुत मिठास लगता है। कोई भी मनुष्य संसार रूपी स्त्री को त्यागना नहीं चाहता है। यहाँ से जाना नहीं चाहता है, जिस प्रकार से एक सुन्दरी के पीछे बड़े से बड़े लोग लग जाते हैं, उसी प्रकार से यह संसार है। इसमें पड़कर लोग सत्य से वंचित हो जाते हैं। अपने स्वरूप को और अपने को माया की खेल में भूल जाते हैं और भूले हुए हैं।

**चन्द्र वदनि म्रिग लोचनी, माया बुन्दका दियो उघार।**
**जती सती सभ मोहिया, गजगति ऐसी जाकी चाल ॥**
**नारद कै मुख माड़ि के, लीन्हों बसन छोड़ाय।**
**गरभ गहेली गरभ ते, उलटि चली मुसुकाय ॥**

**शब्दार्थ**—चन्द्रवदनि–चन्द्रमा के समान आभा वाली जिसका मुख है। म्रिगलोचनी–हिरण अक्षि के समान चंचल नेत्र वाली। बुन्दका-टीका-टिकुली। उघार–घूँघट हटाकर दिखा दिया। जती–संन्यासी, साधु।

सती–पतिव्रता स्त्रियाँ । जाको–जिसकी । माड़िके–रचकर । बसन–वस्त्र । गरभ–गर्व । गहेली–गर्वीली । उलटि–देखकर पीछे की ओर मुड़ जाना ।

**मूलार्थ**—क्योंकि माया का जो मुख है, जो उसका मुखमंडल है। चन्द्रमा की आभा के समान शोभायमान है। मधुरिमा लिये हुए है। श्रुति सौम्यता के कारण आकर्षक हो गया है उस पर भी जो यह माया-रूपी स्त्री का लोचन है। मृग नेत्र के समान चंचल है। विषयी पुरुषों को देखकर चतुर्दिक अपने नेत्रों को घुमाती है। अब वह अपने मस्तक से घूँघट पट हटा लिया है। माया जो मस्तक पर बूँदा व टिकुली लगायी थी। उसको उघार कर दिखा दिया। उसके मस्तक मंडल को देखते ही सारा जगत विमोहित हो गया। चाहे वह तत्त्वज्ञ हों, चाहे वे जती हों, चाहे वे संन्यासी ही क्यों न हों, चाहे वह पति के साथ सती होने वाली पति-व्रता स्त्री ही क्यों न हो, माया सुन्दरी को देखकर सबके सब विमोहित हो गये क्योंकि उसकी चाल अथवा वह माया गजगति वाली है। गजगमिनी है। ऐसी जिसकी चाल है उसको देखकर देव ऋषि नारद भी विचलित हो गये। उसके पीछे पड़ गये, जिसके मुख की आकृति ही उसने बिगाड़ दी। नारद का जो सुन्दरता रूपी वसन था वह मुख मंडल की जो शोभा थी। उसको हटा कर कपि का स्वरूप कर दिया। बन्दर के मुख को देखकर वह नारद को बड़े घृणा से देखी। अपने सुन्दरता के गर्व से वह गर्वीली स्त्री सुन्दरता के अभिमान से नारद को देखकर घूम चली। चेहरा देखकर मुस्कुरा दिया। जिसके पीछे-पीछे महर्षि नारद जैसे लोग घूमने लगे, दौड़ने लगे।

**सिउसन ब्रह्मा दौरिके, दूनों पकरे जाय ।।**
**फगुआ लीन्ह छुड़ायके, बहुरि दियो छिटकाय ।**
**अनहद धुनि बाजा बजै, स्रवन सुनत भौ चाव ।।**
**खेलनिहारा खेलि हैं, जैसी वाकी दाउ ।**
**अज्ञान ढाल आगे दियो, टारे टरे न पाउ ।।**

**शब्दार्थ**—सिउसन–शिवजी तथा सनकसनन्दन–सनकादिक आदि। ब्रह्मा–ब्राह्मण, लोक पितामह ब्रह्मा। छिटकाय–फैलाय अनहद–अनाहत। धुनि–ध्वनि। स्रवन–श्रवण, कर्ण। चाव-प्रेम से। खेलनिहारा–खेलने वाला।

**मूलार्थ**—नारद जी जैसे ही नहीं शिव जी जैसे योगी, सनकादिक जी जैसे तत्त्वज्ञ, बाल ब्रह्मचारी, ऋषि और लोक पितामह ब्रह्मा जैसे सामर्थ्यवान् ये सबके सब श्रीहरि की माया को देखकर एवं दौड़कर पकड़ने के लिए जा पहुँचे। पुराणों में कथा है कि विश्वमोहिनी को देखकर भगवान शंकर भी विमोहित हो गये थे। इसी प्रकार से प्रजापति ब्रह्मा जी भी स्व पुत्री को ही देखकर कामातुर हो गये थे। यदि 'सिवसन' का अर्थ शिव के समान किया जायेगा तो सनकादिक छूट जायेंगे। 'सिवसन' समान अर्थ का सूचक है। इसलिए सनकादिक को यहाँ घसीटना अच्छा नहीं जचता क्योंकि निचली पंक्ति में दो अर्थ हैं जिसका अर्थ हुआ शिव जी के समान और ब्रह्मा जैसे दोनों माया रूपी स्त्री को दौड़कर पकड़ लिये और फगुआ जो हो रहा था। परस्पर आपस में उसको ये लोग छुड़ा लिये अर्थात् अपने मनमानो अपने मन से दोनों ओर होने लगी। बहुत कहिये पुनः उसी फगुआ खेल को छिटकाय, याने और आगे बढ़ा दिये। तात्पर्य यह है कि फागुन के महीने में 'चांचर' गीतों के साथ 'ढ़ोल' और 'डम्फ' बजाकर नृत्य होता है। जिसमें एक ओर से स्त्रियाँ होती हैं और दूसरी ओर से पुरुष होते हैं और रात-रात भर एक दूसरे को हराने के लिए फाग गीतों को गाते हैं। दिखावा के लिए जब पुरुष वर्ग हार जाता है तब स्त्रियाँ उनको पकड़कर फूल-मालाओं से व कच्चे सूत से उनके दोनों हाथ बाँध देती हैं और एक लघु जलाशय में खड़ा करके तरह-तरह के रंग छोड़ती हैं। पुरुष वर्ग चुपचाप खड़ा रहता है। अंग-प्रत्यंग में पिचकारियों से रंग स्त्रियाँ छोड़ती हैं। उपरान्त मुख में कालिख पोतकर उनको छोड़ देती हैं। मथुरा आदि क्षेत्रों में 'लट्ठमार' होली खेली जाती है। जो स्त्री वर्ग लाठी के द्वारा पुरुषों को पीटती है। पूरा फागुन का महीना काम-क्रीड़ा का मास माना जाता है। उक्त मास में सभी लाज-लिहाज छोड़कर बेटी-बहन, महतारी के सामने भी अश्लील-अश्लील 'जोगिड़े' गाये जाते हैं, फाग गाये जाते हैं और गुलाल-अबीर का छिड़काव होता है। कहीं-कहीं तो परस्पर में आपस में गुथ जाते हैं और एक दूसरेको रंगबाजी और कालिखबाजी करने लगते हैं हरक्कतबाजी दोनों ओर से होती है। अधिक हरक्कत स्त्रियाँ करती हैं पश्चात् पुरुष भी भिड़ जाते हैं। 'चांचर' गीत जो सोलह मात्राओं की होती है, वह बड़ी मधुर ध्वनि वाली सुहावनी होती है जिसको गा-गाकर एक दूसरे को रिझाते हैं। जो दल पराजित हो जाता है उसको फगुआ छुड़ाना मानते हैं। इसलिए फाग रूपी धमार इस संसार में खूब मची हुई है।

सद्गुरु कवीर साहब पूरे क्रमबद्ध इसका वर्णन करते हैं। वे कहते हैं कि फाग में 'अनहद' कहिये सीमातीत वाजे बजते हैं। बाजे की आवाज बेढ़ब होती है। कान फटने लगते हैं। परन्तु बड़े चाव से लोग सुनते हैं, बड़े प्रेम से स्वागत करते हैं। जो खेलने वाले हैं इस बसंत महीने का खेल जो फगुआ है वे माया के साथ खेलते ही रहेंगे। हार-जीत तो दांव पर निर्भर करता है। कभी पुरुष वर्ग जीतता है, कभी स्त्री वर्ग जीतता है। कभी कोई सात्विक पुरुष माया को जीतकर भवसागर पार हो जाता है और विषयी पुरुष खेलते रहते हैं क्योंकि अज्ञान रूपी ढाल माया सबके आगे खड़ा कर दी है। किसी को सत्य का ज्ञान नहीं हो पा रहा है कि यहाँ फगुआ यह चांचरी केवल मनोरंजक है। यह संसार का जो लुभावना रूप है, हितकर नहीं है। इसीलिए संसार रूपी फाग माया है। उसको परित्याग कर देना चाहिए परन्तु अज्ञान ढाल के कारण हृदय-पटल अन्धकार में पड़ा हुआ है। इसीलिए कोई पुरुष हटाने से भी अपना पैर नहीं हटा रहा है। फगुआ खेलने में ही मस्त है।

**खेलनिहारा खेलि हैं, बहुरि न ऐसो दाव।**
**सुर नर मुनि अउ देवता, गोरख दत्त अउ व्यास ॥**
**सनक सनन्दन हारिया, अउर की केतिक बात।**
**छिलकत थोथे प्रेम सो, मारे पिचकारी गात ॥**
**कै लीन्हों बसि आपने, फिरि-फिरि चितवत जात।**
**ग्यान डांग ले रोपिया, तिरगुन दियो है साथ ॥**
**सिवसन ब्रह्मा लेन कहो हैं, अउर की केतिक बात।**
**एक ओर सुर नर मुनि ठाढ़े, एक अकेली आप ॥**
**दृस्टि परे उन कोइ न छाड़े, कै लीन्हो एक धाप।**
**जेते थे तेते लिये, घूंघट माहि समोय ॥**

**शब्दार्थ**—दाव-पेंच, कला। केतिक-कितने। छिलकत-किलकारी मारना, छींटा-कसी, बात करना, छिड़कना, पानी या अन्य द्रव पदार्थ को इस प्रकार फेंकना की उसके महीन-महीन छींटे व कण फैलाकर इधर-उधर पड़े, न्योछावर करना। थोथे-झूठे, मिथ्या जिसके भीतर सार न हो, खोखला, खाली, पोल, खोला, जिसकी धार तेज न हो इत्यादि। गात-

शरीर। पिचकारी–लोहे एवं पीतल की लगभग चौदह इंच की होती है, जिससे पानी व रंग फेंका जाता है, संसार सुख। कै–कर लिया। चितवत–देखत। सिवसन–शिव जी, ब्रह्मा। डांगि–पहाड़ का किनारा और चोटी, पहाड़ी वन, जंगल, घना वनखण्ड, पैंर पाद। धाप–दौड़। समोय–समाय।

**मूलार्थ**—जिसका पैर अज्ञान रूपी कीचड़ में जम गया हो, उसको कितना भी हटाया जाय। वह मायामुखी ही रहता है जो खेलनेवाले हैं, जो विषयी पुरुष हैं जो संसार को सत्य समझ लिये हैं। वे संसार की माया के साथ भोग-विलास के साथ सदा क्रीड़ा रत रहेंगे और माया के खेल खेलते रहेंगे क्योंकि संसार रूपी फाग बड़ा रुचिकर होता है। अज्ञानी लोग कहते हैं कि पुनः ऐसा दाव नहीं मिलेगा, पुनः ऐसा समय नहीं आयेगा। यह मानव तन बड़े भाग्य से मिला है। इसलिए संसार का भोग भोग लो। कौन जाने अब मनुष्य योनि में आना है की नहीं ?

सद्गुरु कहते हैं कि यह संसारी जीव ही तक नहीं हैं कि वे माया से परास्त हैं और घूम-फिर कर उसी में रहना चाहते हैं। इस माया से हारने वालों में सूर भी हैं, नर भी हैं, मननशील मुनि भी हैं, देवता भी हैं, गोरखनाथ जैसे योगी भी हैं, गुरुदत्तात्रेय जैसे दिगम्बर भी हैं और महर्षि व्यास जैसे वेदवेत्ता भी हैं। सनक-सनन्दन जैसे बाल ब्रह्मचारी ऋषि भी हैं। ये सबके सब माया से पराजय स्वीकार कर चुके हैं। अर्थात् मायिक वस्तुओं को देखकर उपर्युक्त योगी और आत्मज्ञानी लोग भी बचने के लिए सावधान रहते हैं। इन लोगों को डर लगा रहता है कि यदि यत्किंचित् असावधानी हुई तो पराजय का मुख देखना पड़ेगा। जब ऐसे लोगों की इस प्रकार की बातें हैं तो अज्ञानी मनुष्यों की कितनी बात कही जाय ? यह माया का जो प्रेम है। संसार का जो ऐश्वर्य है। थोथा है, मिथ्या है। किसी काम का नहीं है, जो माया रूपी स्त्री, प्रेम का छिड़काव कर रही है। वह केवल ऊपरी भाव से है। केवल शरीर पर खुशी में आकर जो पिचकारी मार रही है। यह ठगने के लिए है। मनुष्यों को भ्रष्ट करने के लिए है अर्थात् स्त्री-पुत्र का और परिजन का जो प्रेम है वह स्वार्थमूलक है। स्वार्थ न सधने पर, खाट पर पड़ जाने पर कोई पास में पानी देने के लिए भी नहीं जाता है। यहाँ तक की कोई रोगी को देखना भी नहीं चाहता है परन्तु यह संसार रूपी माया झूठा प्रेम दिखा कर के सभी संसार को अपने वश में कर लिया है और फिर-फिर पुनः-पुनः देखते ज़ाती है कि कोई मेरे चंगुल से बाहर तो नहीं है। क्योंकि

इस प्रकार का ज्ञान मनुष्यों को दे दिया है अर्थात् इस प्रकार का सिखावन संसारी जनों को दे दिया है कि वह बहुत सघन है और ऊँचा है। अर्थात् ज्ञान के मार्ग में ऐसा सघन मोह रूपी जंगल खड़ा कर दिया है कि कोई मनुष्य मोह रूपी जंगल को पार करने में असमर्थ है। इतना ही नहीं तीन गुणों का फाँस दे दिया है जिसके साथ रहने से कोई माया को छोड़ नहीं सकता अर्थात् प्रत्येक मनुष्यों के हृदय पटल पर सत्वगुण, रजगुण, तमगुण का फाँस रख दिया है। जिससे ज्ञान पर अन्धकार पड़ गया है । कोई भी मानव, संसार का भोग नहीं त्यागना चाहता है, यहाँ तक की शिवजी जैसे लोग और लोक पितामह ब्रह्मा जैसे लोग मायिक वस्तुओं को ग्रहण करने की बात करते हैं तो और कितने की बात कही जाय। साधारण लोग उसमें सने ही हैं। जो रात-दिन चांचर गीत के साथ नाच रहे हैं, माया का रस ले रहे हैं, उनकी क्या कथा कहना है? माया का रस बहुत सरस, मधुर, रुचिकर, लुभावना है। जिसको ब्रह्मा जैसे ज्ञानी और शिवजी के समान योगी भी उक्त रस में पगा हुआ कहा जाता है। एक ओर अर्थात् एक पक्ष पर देव, दानव, मानव, ऋषि, मुनि लड़ने के लिए खड़े हैं और एक ओर अकेली महामाया आप जीवात्मा से लड़ने के लिए तैयार हैं। परन्तु सारा समाज त्रिभुवन के लोग माया की दृष्टि पड़ते ही अपने को नीचा खा जाते हैं और माया सब पर छा जाती है। जितने भी लोग दृष्टि के अन्दर आते हैं वे सब बचकर नहीं जा पाते हैं। वे सबके सब दृष्टिगत हो जाते हैं और एक ही दौड़ में, एक ही धाप में, सबको पकड़ लेती है। अपने कब्जे में कर लेती है। जितने भी थे। 'ते' 'ते', 'वे' 'वे' करके सबको पकड़ लिया, धर दबोचा। सभी माया रूपी स्त्री के घूंघट पट में समा गये। अर्थात् माया सबको अपने अन्दर निहित कर लिया। सभी लोग हार मान चुके हैं कोई भी उससे लड़ने के लिए पुनः साहस नहीं कर रहा है।

**कज्जल वाकी रेख है, अदग गया नहिं कोय।**
**इन्द्र क्रिस्न द्वारे खड़े, लोचनि ललिचि न जाय॥**
**कहैं कबीर ते ऊबरे, जाहि न मोह समाय।**

**शब्दार्थ**—कज्जल-आँख में दिया हुआ काजल, कालिख। वाको-उसकी। रेख-रेखा, चिन्ह, निशान, रूप। अदग-बिना दाग का, निर्दोष। द्वारे-दरवाजे पर, किनारे। लोचनि-नेत्रों, नेत्र। ललिचि-लालिच।

**मूलार्थ**—क्योंकि सद्गुरुदेव कहते हैं कि उसका जो भोग है उसका जो चिह्न है, रेख है। वह कालिख की है। इसलिए जो-जो संसार की माया से स्नेह किया, स्त्री से प्रेम किया। वह बिना दाग का, बिना कालिख लगे बाहर नहीं हो सका। स्वर्ग के प्रशासक व सम्राट इन्द्र और ब्रज के निवासी भगवान श्रीकृष्ण भी माया के द्वार पर खड़े हैं। जो इतने बड़े वीर हैं। जो इतने बड़े ज्ञानी हैं वे भी जगत में आने पर मायिक प्रपंच को देखकर, स्त्रियों को देखकर उनके भोग की इच्छा करने लगते हैं अर्थात् ऐसे लोग भी माया के द्वारा घसीटे जाते हैं।

सद्गुरुदेव कबीर कहते हैं कि इस दुर्जयी महान माया रूपी योद्धा से वही उबर, बच सकता है। वही भवसागर को पार कर सकता है जो माया को देखकर मोह को प्राप्त नहीं होता है तात्पर्य यह है कि जो पुरुष संसार की वस्तुओं में आसक्त नहीं होगा, जो अहर्निश भगवान का सुमिरन करेगा जो तत्त्व चिंतन करेगा वही बच सकना है। अन्य लोग उसके शिकार हुए हैं। वे होते रहेंगे इसलिए विवेकी पुरुषों को चाहिए की माया का त्याग कर रामनाम का अवलम्बन लें।

**आशय**—सद्गुरु साहब कहते हैं कि जो विश्व मोहनी माया है। वह चेतन पुरुष की अर्द्धांगिनी है। वह विचित्र रूप वाली, विचित्र चालवाली सुन्दरी है। उसकी शोभा अद्भुत है। वह अनिर्वचनीय है। मतवाली हाथी के समान है। चन्द्र जैसी लुभावनी है। मृग जैसी लोचनी है। जिसको देखकर सारा संसार अपने को भूल गया है उसी में लगा हुआ है जो वास्तविक तत्त्वज्ञ नहीं है, जो वास्तविक सती नहीं थी, जो अभिमानी तपस्वी थे, जो योगाभिमानी थे, जो कमजोर प्रजापति थे। वे सबके सब माया के अधीन हो जाते हैं। वे लोग सदा माया के चरित्र को सुनते है और उसी में रचते-पचते मरते रहते हैं। उसकी ध्वनि उन्हें बड़ी रुचिकर लगती है क्योंकि वे अज्ञानी हैं मूर्ख हैं। संसार में ही पैर जमाये हुए हैं। वे सब खेल खेल रहे हैं। चाहे वे देवता हो। चाहे वे सूर वीर हो चाहे वे ऋषि मुनि हों चाहे वह सनक-सनन्दन के समान ब्रह्मचारी ही क्यों न हों परन्तु जो अहंकार में डूबे हैं। जिन्हें तत्त्व का ज्ञान नहीं है वे सब माया के झूठे प्रेम में पड़ कर नष्ट हो रहे हैं क्योंकि सब त्रिगुणी हैं मिलाकर **"त्रैगुण्य विषया वेदाः"** के अनुसार सारा संसार कर्मकाण्ड में फँसा हुआ है। इसीलिए माया से पार नहीं पा रहा है परन्तु सद्गुरु कहते हैं कि संसार से वही तर सकता है जो तत्त्वज्ञ है। जो ब्रह्मवेत्ता है, वही मुक्त हो सकता है।

# चांचर २

## मनमत्त प्रकरण

जारो जग का नेहरा, मन बौरा हो।
जामे सोग संताप, समुझु मन बौरा हो ॥
तन धन से का गर्भसी मन बौरा हो।
भसम कीन्ह जाके साज समुझु मनबौरा हो ॥
बिना नेउ का देउघरा मन बौरा हो।
बिनु कहगिल की ईंट समुझु मन बौरा हो ॥
काल बूत की हस्तिनी मन बौरा हो।
चित्र रचो जगदीस समुझु मन बौरा हो ॥
काम अंध गज बसी परो मन बौरा हो।
अंकुस सहियो सीस समुझु मन बौरा हो।
मरकट मूठी स्वाद की मन बौरा हो।
लीन्हों भुजा पसारि समुझु मन बौरा हो ॥

**शब्दार्थ**—जारो–जला दो। नेहरा–नेह, प्रेम, आसक्ति। बौरा–बावला, पगला। जामे–जिसमें। गर्भसी–गर्व करते हो। साज–सम्पूर्ण, धन, जन, तन, मन। समुझु–समझ लो। नेउ–मूल, नींव। देउघरा–देवगृह, देवालय, शरीर। कहगिल–(फा०) गारा, ईंट की दीवाल, जोड़ने वाला गारा जो मिट्टी, चूना, सूरखी का बनता है। आज कल सीमेंट का भी बनता है। काल बूत–बनावटी, देखावटी। चित्र–संसार, शरीर। रचो–बनाया। अंकुस–अंकुशी, जिससे हस्ती को मार कर ठीक किया जाता है। बांस की लाठी में नोंकदार एक फीट का बल्लम तथा एक हाथ का कटियादार लोहे की बनी हुई नुकुली अंकुसी जिसको महावत लोग हाथी पर सवार होने पर सदा रखते हैं। मरकट–बंदर। मूठी–मुष्ठी।

**सम्बन्ध**—ऊपर के चांचर में व प्रथम चांचर में माया की महान प्रबलता दिखाते हुए कहा गया है कि वही उबर सकता है जो माया को देखकर विमोहित नहीं हो सकता है अर्थात् जो संसार में आसक्त नहीं

होगा। वही भवसागर पार कर सकता है। अब द्वितीय चांचर में कहा जा रहा है कि—हे मनुष्यों! जो तुम्हारा सम्बन्ध संसार से है उसको छोड़ो। तभी तुम्हारा कल्याण सम्भव है।

**मूलार्थ**—सद्गुरुदेव कहते हैं कि हे प्यारे नर तनधारी मानव जो तुम्हारा प्रेम संसार से लगा हुआ है वह बड़ा दुःखदायी है, बड़ा खतरनाक है। उसको मन से हटा दो। उस संसार के नेह को जला दो। हे बौरे मन! जिस संसार में शोक-सन्ताप व्याप्त है। कभी सुख की पूर्ति नहीं होती है। सदैव अशांति बनी रहती है। इसको तू समझो। हे उन्मत्त मन! तुम तन-धन में क्या गर्व कर रहे हो? यह तो क्षणिक है। इसकी प्राप्ति में किंचित सुख नहीं है। अप्राप्ति में महान् दुःख होता है। पुत्र के मर जाने पर हाहाकार मच जाता है। पत्नी से बिछोह होने पर बहुत से लोग आत्महत्या कर लेते हैं। हे परमत्त मन! ऐसे जायमान वस्तुओं में जो तुम स्नेह किया है। वह तेरे लिए हितकर नहीं है। जिस शरीर रूपी साज को मरणोपरान्त भस्म कर दिया जाता है, जला दिया जाता है। उसको समझ की वह कैसा है। जिसका कोई अस्तित्व नहीं है! हे बावले मन! इस पर विचार कर यह शरीर और संसार बिना नींव का है। बिना मूल का है। इसका कोई आधार नहीं है। यह निरन्तर चलायमान है। यह जो देव घर कहलाता है जिसमें आत्मा रूपी देवता रहता है। वह घर हे मूढ़मते मन! ढहोमान होने वाला है क्योंकि बिना गिलावा के, बिना गारा के ईंटों से जुड़ाई हुई है इसकी। इसलिए हे बौरे मन! इसको समझने की कोशिश कर। यह पाँच तत्त्व रूपी ईंटों से जोड़ दिया गया है। किसी से किसी का लगाव नहीं है। पृथ्वी अलग है, वायु अलग है, आकाश अलग है, अग्नि अलग है, पवन अलग है। इसलिए हे उन्मत्त मन! सोच ले, विचार ले। जिस पर तू इतना गौरव कर रहा है। वह अनित्य है। यह कालबूत की तरह बनावटी है। जैसे-जंगल में हस्तियों को फँसाने के लिए झूठा हस्ती का प्रतिबिम्ब बनाकर गड्ढ़े पर खड़ा कर दिया जाता है। जिसको जीवित हस्ती अपना परिवार जानकर, अपनी पत्नी जानकर आकर भिड़ता है और वह उस गड्ढ़े में गिर जाता है और वह बनावटी हस्ती नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार से यह संसार कालबूत की हस्तिनी है। तुम्हारी स्त्री कालबूत की है। तुम्हारा धन कालबूत का है। तुम्हारा पुत्र बनावटी है। इसमें तू सुख की इच्छा से जाता है, वहीं पर गिरकर संसार रूपी गड्ढ़े में

पड़ा रहता है और तरह-तरह के संकटों का सामना करता है। फँस जाने पर अनेक प्रकार की चूभन मन में होती है। हे उन्मत्त मन ! संसार रूपी चित्र को जगत गुरु ने रचा है। क्या इसको समझ नहीं रहा है। जिसमें तुम हस्ती की भाँति कामान्ध होकर पड़ जाते हो, विषय-भोग के लिए। उसी में डूब जाते हो। हे परमत्त मन ! अब खूब हस्तियों की भाँति अपने शिर पर अंकुश की मार सहो और संसार को समझो की यह कैसा है। सत्य है की असत्य है ? क्योंकि काम के उन्माद में, भोग के उन्माद में पड़कर नाना प्रकार के दुःखों को भोग रहा है। हे मूर्ख मन ! तुम उसी प्रकार से इस जगत में फँस गये हो, जिस प्रकार से स्वादी बन्दर संकीर्ण घट के मुख में चना की लोभ से हाथ डाल देता है और चना को लेकर मुट्ठी बाँध लेता है परन्तु घट का मुख अति संकर्ण होने के कारण मुट्ठी को छोड़ता नहीं है। तब तक काल रूपी मदारी आकर पकड़ लेता है। हे मूर्ख मनुष्य ! तुमने तो पहले भुजा पसार कर उसमें हाथ डाल दिया, पर प्रथम समझा नहीं। हे मूर्ख मन ! अब तो छूटने की संशय पड़ गयी है। अब तुझे काल रूपी मदारी छोड़ नहीं सकता है।

छूटन की संसै परी मन बौरा हो।<br>
घर-घर नाचे द्वार समुझु मन बौरा हो ॥<br>
ऊँच नीच समुझेउ नहीं मन बौरा हो।<br>
घर-घर खायेउ डांग समुझु मन बौरा हो ॥<br>
ज्यों सुवना नलनी गह्यो मन बौरा हो।<br>
ऐसो भरम विचार समुझु मन बौरा हो ॥<br>
पढ़े गुने का कीजिये मन बौरा हो।<br>
अंत बिलैया खाय समुझु मन बौरा हो ॥<br>
सूने घर का पाहुना मन बौरा हो।<br>
ज्यों आवे त्यों जाय समुझु मन बौरा हो ॥<br>
नहाने को तीरथ घना मन बौरा हो।<br>
पूजबे को बहु देउ समुझु मन बौरा हो ॥<br>
बिनु पानी नर बूड़हीं मन बौरा हो।<br>
तुम टेकहु राम जिहाज समुझु मन बौरा हो ॥

**कहैं कबीर जग भरमिया मन बौरा हो।**
**तुम छाड़ेहु हरि की सेउ सुमुझु मन बौरा हो॥**

**शब्दार्थ**—द्वार–द्वार, नाना प्रकार की योनियों का स्थान ऊँच नीच–मानव, पशु, तिर्यक। डांग–डंडा। सुवना–शुक। नलनी–बांस की नली जो पिंजरे में शुक को बैठने के लिए बीच में बंधी रहती है। बिलैया–बिलार, मृत्यु। पाहुँना–अतिथि, जीवात्मा, जीव। घना–बहुत। टेकहु–पकड़ो। सहारा लो।

**मूलार्थ**—प्रथम तो भुजा पसार कर घड़े में हाथ डाल दिया। अन्दर मुट्ठी बाँध ली। पर इस मूर्ख मनुष्य को जो नादानी में फँसा हुआ है न मुट्ठी खोलता है, न हाथ बाहर आता है कारण कि मुट्ठी खोल दे तो चना नहीं मिले और नहीं खोलता है तो माया के बन्धन में है। नट के बन्धन में है। जिसके कारण इस मूर्ख मन को नट घर-घर द्वार-द्वार ले जाकर नचाता है। जिसको यह समझ नहीं पा रहा है। ऊँची जाति के द्वार पर भी जाता है और नीची जाति के द्वार पर भी जाता है। अपनी मूर्खता के कारण पतित होने के कारण भला-बुरा ऊँच–नीच नहीं समझता है, जिसके कारण यह मूर्ख मन घर-घर जाकर डंडा खाता है। जब इसको नाचने का मन नहीं होता है। तब नट डंडा से मारकर समझाता है। तब इस परमत्त मन के समझ में आता है। इसी प्रकार से मनुष्य संसार की सुख की इच्छा को लेकर भोग रूपी घड़े में हाथ डाल देता है। पर थोड़ा सा भोग-भोग लेने पर नहीं छोड़ सकता है न ग्रहण कर सकता है। क्यों कि संशय ग्रसित हो जाता है। यदि संसार के सुख को छोड़ देता है तो फिर सुख मिलेगा की नहीं। इसी ऊहापोह में पड़ा रहता है। तब तक काल रूपी मदारी व नट इसको पकड़कर नाना योनियों में ले जाकर नचाता है, घुमाता है। कभी मानव योनि में डाल देता है। कभी कीट–पतंग, पशु-पक्षी में डाल देता है। प्रत्येक योनियों में जाकर घूमता है। न जाने की इच्छा होने पर भी भगवान भास्कर के पुत्र ऊपर से कोड़ा बरसाते हैं। तो भी यह ना समझ मन समझ नहीं रहा है। जिस प्रकार से शुक पिंजरे की नलिनी में नीचे लटक कर फँस जाता है। नलिनी का त्याग नहीं करता है। इसलिए कि छोड़ने पर मर जाऊँगा परन्तु स्वयं पकड़े–पकड़े मर जाता है। इसी प्रकार से यह मानव अनस्थिर भोग-विलास को पकड़े हुए है परन्तु अज्ञान के कारण छोड़ नहीं पाता है। सोचता है कि छोड़ दें तो फिर यह नहीं मिलेगा। पकड़े-पकड़े भगवान

विश्व चक्षु के तनय के हाथ में पड़ जाता है। यह पागल मन इस प्रकार के भ्रम पर विचार नहीं करता है न समझने का प्रयत्न करता है। संसार की आसक्ति के कारण इसका प्राण चला जाता है।

सद्गुरुदेव कहते हैं कि हे पापी ! अब भी तो समझ। साहब कहते हैं कि तुम पढ़ लिखकर क्या करेगा ? हे मूर्ख ! हे मतिविहीन पागल ! जब तू बुराईयों को तजा नहीं। जब तू आत्मा का कल्याण नहीं किया। जब तू प्रभु का भजन भाव नहीं किया। संसार को ठीक से समझ नहीं पाया। तो तेरे पढ़ने लिखने से क्या हुआ। शुक रटान रट लिया है। वेद विद्या के भाव को नहीं समझ सका। इसलिए इस गर्दभ मन को बिलैया कहिये काल झपट कर खा लिया। इसका पढ़ना-लिखना सब बेकार हो गया। यह मूर्ख मनुष्य उसी प्रकार से इस संसार से आकर लौट गया, घूम गया। कुछ हाथ नहीं लगा। जैसे—'सूने घर का कोई पाहुन आता है, पर घर के सभी लोग ताला बन्द कर कहीं बाहर चले जाते हैं। किसी से भेंट नहीं होती है। अन्ततः वापस चला जाता है। इसी प्रकार से यह मानव शरीर रूपी घर में आया और संसार के विषय-भोग में फँसे रहने के कारण जगदाधार आत्मा से भेंट नहीं हुई। पुनः जिन तिर्यक आदि योनियों से आया था। उसी में खाली हाथ लौट गया। जैसे आया था, वैसे चला गया। पर तब भी इसकी समझ सुधर नहीं रही है। यह मूर्ख मन बाहर की क्रिया-कलापों का अधिक आश्रयण लिया। बहुत से तीर्थों में जाकर स्नान किया। और बहुत से देवी-देवताओं की पूजा किया। जिसमें कि यह पागल मन कुछ पाया नहीं। तीर्थों में पानी-पानी रहा। पत्थर की मूर्तियों में कोई दम नहीं रहा। इसको कुछ मिला नहीं। सत्य की प्राप्ति नहीं हुई। इसलिए बिना पानी के ही नाल खोह में डूब मरा। पानी से तात्पर्य यहाँ परमात्मा का है, आत्मा का है। जिसको मनुष्य त्यागकर चल दिया।

सारांश यह कि तीर्थों के नहाने से, बहुदेव सेवा से इसको परमात्मा नहीं मिला। पुनः यह नीचे की योनियों में जा बसा। साहब कहते हैं कि हे बौरे मन ! तुम्हारा कल्याण तभी हो सकता है जब तू समझ बूझकर श्री-राम नाम रूपी जहाज पर बैठेगा। अर्थात् प्रभु का भजन करेगा। तभी तेराकल्याण हो सकता है। अन्यथा तू भवसागर में डूब जायेगा। मैं कबीर कहता हूँ कि यह सारा संसार उपर्युक्त विषयों में भ्रम गया है। इसलिए की इसने श्रीहरि की सेवा छोड़ दी। भगवान का त्याग कर दिया।

प्रत्यक् चेतन आत्मा को समझा नहीं। स्व-स्वरूप का ज्ञान नहीं किया। इसलिए यह वैतरणी नदी में फँस गया है। जो त्रियंक योनि स्वरूपा है। जिसमें बड़े-बड़े विषैले जन्तु निवास करते हैं। इस बौरे मन को चाहिए कि अब से भी समझे, अब से भी सँभले और अब से भी श्रीहरि का स्मरण करे। तभी इसकी भलाई है, अन्यथा कल्याण होनेवाला नहीं है।

समाप्त चांचरी हुई, जो गीति भीति कारणी।
समस्त लोक हारिया, जो शोक लाज कारणी ॥
मोह फन्द भूरि है, न बाचता कोई जना।
गंगादास शरण परन, हरण दुःख सर्व ना ॥

### बेलि प्रकरण

#### मंगलाचरण

बेइली बन्धन रूप अति, सबको लियो फंसाय।
छाई सब संसार पर, कोइ न बचिहैं भाय ॥१॥
श्रीहरि को सुमिरन करे, पार गये भवधार।
गुरु चरणों शिर नाइकर, गया सदा उस पार ॥२॥

# सबद् ७

# बेइली १

### अनित्य शरीर संसार प्रकरण

**हंसा सरवर सरीर में हो रमैया राम।**
**जागत चोर घर मूसहिं हो रमैया राम ॥**

**जो जागल सो भागल हो रमैया राम।**
**सोवत गैल विगोय हो रमैया राम ॥**

**आजु बसेरवा निअरे हो रमैया राम।**
**काल बसेरवा बड़ि दूरि हो रमैया राम ॥**

**जइहो बिराने देस हो रमैया राम।**
**नैन भरैंगे धूरि हो रमैया राम ॥**

**त्रास मथन दधि मथन कियो हो रमैया राम।**
**भौन मथेउ भरिपूरि हो रमैया राम ॥**
**फिरि के हंसा पाहुन भयो हो रमैया राम।**
**बेधिन पद निरबान हो रमैया राम ॥**

तुम हंसा मन मानिक हो रमैया राम ।
हटलो न मानेहु मोर हो रमैया राम ॥
जस रे कियहु तस पायेउ हो रमैया राम ॥

**शब्दार्थ**—हंस–हंस, जीवात्मा। सरवर–सरोवर मानव हृदय। रमैया राम–जो सबमें रमण करता है, जो सब जगह विराजमान है। राम–अय् प्रत्यय–राम चेतन आत्मा। चोर–मन, इंद्रियाँ। मूसहि–लूटहिं चुरावहिं। जागल–जागा। भागल–भागा। गयल–गया। विगोय–नर्क दुःख। बसेरवा–वास, निवास। नियरे–निकट। बिराने–यमलोक मानवेतर अन्य योनियों में। त्रास–कष्ट, दुःख। मथन–बहुत प्रकार से उसको संकट में डालना। मथेउ–मथा। पाहुन–अतिथि। बेधिन–छेदना, भेदना, प्रवेश करना, व्यापना। निरबान–निर्वाण, मुक्ति पद। हंसा–जीवात्मा। मनमानिक–मणिमाणिक्य, मनमुखी। हटलो–कहना, उपदेश। मानेहु–माना। जस–जैसे। कियहु–किये।

**सम्बन्ध**—प्रथम माया की प्रबलता बताकर और कहा गया है कि संसार से स्नेह न करो। संसार का स्नेह घातक होता है। बहुत आकर्षक होने से उसके परिणाम दुःखद होते हैं तुम जन्म भर संसार के व्यवहार में पड़ा रहा। भगवद् भजन नहीं किया। आत्मचिन्तन नहीं किया, न गुरु की सेवा की न माता-पिता की आराधना ही की बड़ों का समादर नहीं किया। इसलिए तुझे कुसंग मिला जिसके कारण अनेक योनियों में भटकना पड़ा। क्योंकि तूने श्रीहरि की सेवा छोड़ दी और अब नीचे कहा जा रहा है कि तेरा स्वरूप जो है वह पवित्र है यदि अब से भी जाग जाओगे तो तेरा बेड़ा भव सागर से पार हो जायेगा।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि हे हंस स्वरूप निर्मल आत्मा। तू तो मानव हृदय रूपी सरोवर में निवास करते हो। जो तेरे शरीर के अन्दर में ही है। तू ही सर्व प्राणियों में रमने वाला है। तू चेतन स्वरूप राम हो। इसलिए तुझे मैं कहता हूँ कि अपने राम स्वरूप का ध्यान-पूजन करो। परन्तु तू मेरी कही सुनी मानता नहीं है। जागृत रूपी तुम्हारे नर तन में काम क्रोध रूपी चोर घुसकर तुम्हारी दैवी सम्पत्ति को मूस रहे हैं। जो तुम्हारा दया का भाव है। अहिंसा का भाव है। क्षमा का भाव है, विवेक-विचार है और जो सुमति सद्बुद्धि है सद्गुण हैं। ईश्वरोपासना है। इन सब दैवी सम्पत्तियों को तेरे अन्दर के चोर चुरा लिये हैं। हे सब

प्राणियों में रमने वाले राम ! जो सद्बुद्धि संसार से जग जाता है। साव-धान हो जाता है। तो जो चोर काम, क्रोध आदि हैं। जगा हुआ देखकर भाग जाते हैं। तात्पर्य यह है कि जो मोह रात्रि से जाग जाता है वह स्वयं जागकर ईश्वर शरणापन्न हो जाता है और हे सब में रमने वाला राम ! जो व्यक्ति मोह निद्रा में सो जाता है। उसको यम किंकर नरक में ले जाकर डाल देते हैं। हे सब में रमने वाले राम आज जिस गाँव में, जिस देश में तू बसे हुए हो। वह आत्म नगर तुमसे बहुत नजदीक है। अर्थात् मानव देह रूपी देश में जहाँ तू बसे हो। तेरा स्वामी भी तेरे पास में बसा हुआ है। बहुत नजदीक है। यदि उत्कट जिज्ञासा हो तो उसके दर्शन कर सकते हो। अन्यथा हे सबमें रमने वाले जीवात्मा ! आज के बाद कल तेरा निवास व बसेरा बहुत दूर हो जायेगा। अर्थात् मानवेतर प्राणियों में जाने पर जो योनियाँ अन्धकारमय कही गयी हैं। तमोगुण से आच्छादित हैं। उन पशु-पक्षी रूपी अधः पतन अन्धकारमयी योनि में जाने पर परमेश्वर की प्राप्ति बहुत दूर हो जायेगी। अर्थात् उन योनियों में जाने पर तुम्हें ईश्वर के दर्शन नहीं हो सकेंगे। इसलिए हे चित्त स्वरूप आत्मा राम ! तुम राम के देश से बहुत दूर जाकर दूसरे देश में बसेगा। असुरों के देश में बसेगा। जहाँ केवल भोग विलास ही प्रधान हैं। उस देश में जाने पर तेरी सद्बुद्धि नष्ट हो जायेगी आत्माकार वृत्ति नहीं बनेगी। हे चित्त स्वरूप राम ! ऐसी दशा में तेरे विवेक वैराग्य रूपी नेत्रों में धूलि भर जायेगी। अर्थात् नेत्रों पर अज्ञान का परदा पड़ जायेगा। तुम उस राम को देख नहीं सकोगे। तुम्हें त्रास-दुःख उसी प्रकार से मंथन करेंगे। उसी प्रकार से व्यथित करेंगे। जिस प्रकार से लोग दधि को मथन करके उसकी नसें ढील कर देते हैं। जब तू पशु आदि योनियों में जाओगे तुझे सदा पराधीनता रहेगी। तेरे चाहने पर भी अन्न जल नहीं मिलेगा। तुम्हारा मंथन उसी प्रकार से होगा जैसे परवश मनुष्य पराये के हाथ में पड़कर व्यथित होता है। भवन कहिये जिस शरीर में तू रहोगे हे रमैया राम ! उस शरीर की भी मरम्मत होगी। तुझे हल में नांधकर कोल्हू में नांधकर भरपूर तेरी मथाई होगी। हे जीवात्मा ! पुनः तू मानव शरीर के लिए पाहुना बन जायेगा। अर्थात् तू मानव देह में कब आयेगा इसकी कोई अवधि नहीं है। इसकी कोई तिथि नहीं है। हे चित्ति आत्मने ! तुमको जो मानव तन में निर्वाण पद मिलने वाला था। उसकी प्राप्ति तू नहीं कर सका। उसका तू परित्याग कर दिया।

उसका तू छेदन बेधन कर दिया। इसलिए उस पद से तू वंचित रहा। हे जीवात्मा ! तू वहुत मूल्यवान था। तुम हंस का स्वरूप था। जो मानव शरीर में सत्य-असत्य का निर्णय कर सकता था। प्रभु को पहचान सकता था। और अपनी प्राप्ति कर सकता था। और तू मणि माणिक्य के समान था। तेरा मूल्य कोई चुकाने वाला नहीं था। हे चितात्मने ! मानव शरीर ही माणिक्य है। जब उसमें आत्मा निवास करता है। तभी वह हंस कहलाता है। क्योंकि हंस में श्लेष है। मानिक में व्यंजना है। अन्य योनि वाले को ना हंस कहा जाता है और न अन्य योनि को मानिक ही कहा जाता है। केवल मनुष्य को ही मानिक कहा जाता है। उसमें निवास करने वाले आत्मा को ही हंस कहा जाता है। तात्पर्यं यह है कि मानव शरीर ही अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है। इसलिए इसमें तू आकर दूसरे देश में चला गया। दूसरे शरीरों में बस गया। इसमें रहते हुए तुझे मैं मना किया था और उपदेश दिया था कि प्रभु को पहचान। आत्मा की प्राप्ति कर पर हे चित्त ! स्वरूप जीवात्मा राम मेरी एक बात भी तूने नहीं माना। इसलिए हे सब में रमने वाले जीवात्मा जैसे किये हो उसी प्रकार के फल की प्राप्ति होगी। इसमें मेरा कोई दोष नहीं।

हमरे दोस का देहु हो रमैया राम।
अगम काटि गम कियहु हो रमैया राम॥
सहज कियेहु बिसवास हो रमैया राम।
लादेउ वस्तु अमोल हो रमैया राम॥
पांच लदनुंवा लादि चले हो रमैया राम।
नौ बहिया दस गोनि हो रमैया राम॥
पांच लदनुवां खांगि परे हो रमैया राम।
खांखर डारिनि फोरि हो रमैया राम॥
सिर धुनि हंसा उड़ि चले हो रमैया राम।
सरवर मीत जोहारि हो रमैया राम॥
आगि जो लागी सरवर में हो रमैया राम।
सरवर जरि भौ धूरि हो रमैया राम॥

**कहैं कबीर सुनो संतो हो रमैया राम।**
**परखि लेहु खरा खोटि हो रमैया राम॥**

**शब्दार्थ**—दोस–उलाहना, आलोचना। अगम–जहाँ कोई प्रवेश न कर सके वा मन बुद्धि से परे, पहुँच के बाहर अथाह दुर्गम निर्गुण ब्रह्म। गम–कार्यं ब्रह्म, सगुण ब्रह्म, संसार। काटि–दूर कर, बाध्य कर। सहज–सरल में ही। विसवास–विश्वास। वनिज–वाणिज्य, व्यापार। अमोल–जिसका मूल्य नहीं हो। पांच लदनुवां–पांच तत्त्व। पंचज्ञानेन्द्रियां नौवहियां–चार अन्तःकरण पांच ज्ञानेन्द्रियाँ। दस गोनि–दस गज, दस दिशा। पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, वायव्य, अग्नि, ईशान, नैऋत्य, ऊपर, नीचे, दस द्वार। खांखरि-कच्चा कूप, भाड़, अनाज रखने वाला समान, शरीर मस्तक बहुत छेद वाला पात्र। डारिनि–कर दिये डार दिये, फेंक दिये। सिरधुनि–शिर पटक कर। सरवर मीत–जो शरीर रूपी भवन में मैत्री किया था। जोहारि–नमस्कार करके। खोटि–बुरा। खरा–उत्तम। खागि–चलने में असमर्थ होना। मीत-मित्र, सखा।

**मूलार्थ**—मनुष्य कर्मों के अनुसार फल पाता है इसलिये सद्गुरु कहते हैं कि हे सब में रमने वाले, आत्मा ! अब हमारा दोष नहीं देना क्योंकि मैं तुझे बहुत समझाया था। तू अपने मनमाना काम किया। इसलिए मेरा दोष ही क्या ? हे चित्त स्वरूप चेतन राम। तूने अगम जिसको गम करना चाहिए था। जिसकी प्राप्ति करनी चाहिए थी। उस परमतत्त्व को तूने त्यागकर, काटकर, गम कहिये संसार को जो सुगमता से मिल जाता है। उसी से प्रेम किया और बहुत कुछ किया तूने कामना से देवताओं की आराधना किया। मेरी बात को तूने तो काटि ही दिया और दूसरे वंचक गुरुओं का सहज में ही विश्वास कर लिया, जो वंचकों ने कहा उसको गाठि बाँध लिया। हे चिति आत्माराम ! तू धोखा में पड़कर ठगा गया। तूने वंचक गुरु बनकर राम नाम का व्यापार किया। अर्थात् हे चित्ति आत्मा। हे चेतन राम ! तैंने गुरुआई रूप व्यवसाय ठानकर राम नाम को बेंचकर धन ऐंठने लगा। राम मन्त्र सुनाकर तूने लोगों को ठगने लगा। हे सबमें रमने वाला जीवात्मा। तू तो जो अमोल वस्तु राम नाम था। उसकी लदनी तो अच्छी की थी, परन्तु तू सही रूप से उसका महत्त्व नहीं समझ पाया। पंचतत्त्वों से जो शरीर बना हुआ था वे पंचतत्त्व रूपी बैल जिनको लदनुवाँ कहा गया है, अर्थात् जिस पर बोझा लादा जाता है। उन अश्वों को, उन बैलों को, उन भैंसों को लदनुवाँ कहते हैं।

लोक में तो अन्न आदि लादते हैं। परन्तु यहाँ पर रामनाम रूपी अमोल-वस्तु इस शरीर पर लाद कर चल दिया जिसमें नौ वहन करने वाली, पकड़ने वाली व ग्रहण करने वाली नौ बाँहें थीं। चार अन्तःकरण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और पंचप्राण-प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान और दस द्वार वाले शरीर के साथ इस संसार से चल पड़ा, अर्थात् यह मानव के अन्दर रहने वाला जो परमतत्त्व राम नाम था। जिसको यह प्राप्त कर सकता था। जिसकी प्राप्ति में परम सुख होता है परन्तु यह बेचारा जीवन भर उसको लादे रहा। वह राम उसके ऊपर भार बना रहा। दूसरे को तो उपदेश देता था परन्तु अपने उससे वंचित रहा। अन्ततः उस अमूल्य वस्तु को लाद कर जो पंचतत्त्व से बना रहा। शरीर जिसमें नौ बाँहें थीं। दस द्वार रूपी झरोखे थे। वह अमूल्य मानव शरीर पंचतत्त्व वाला अन्त में रामनाम को लादकर साथ ही साथ 'खागि' पड़ा अर्थात् उसकी प्राप्ति में असमर्थ हो गया। क्योंकि वृद्धावस्था आ गयी। बहुत छिद्रवाली यह शरीर अर्थात् जिसमें खाने-पीने के अन्न-जल रखे जाते थे उसको यह रमैया राम, जीवात्मा फोड़ डाला। बेकाम कर दिया। जब शरीर फूट गया। मृत्यु को प्राप्त हो गया। तब यह हंस रूपी जीवात्मा छूछे हाथ शिर धुनकर, शिर पटक कर इसको छोड़ कर उड़ चला। और हे रमैया राम! जिस सरवर रूपी शरीर से तेरी बड़ी मैत्री थी। जिसमें तू रहता था। उसको नमस्कार करके चल दिया। इसके निकल जाने पर कुटुम्बीजन उक्त शरीर रूपी सरवर में अग्नि लगा दी और सरवर रूपी शरीर जलकर धूल व खाक हो गया।

सद्‌गुरु कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तजन! हे जीवात्मा! मेरी बात सुनो। जब तक तेरा शरीर स्वस्थ है। तब तक तू तप-भजन कर सकता है। तभी तक खरा खोट की एवं अच्छे-बुरे की परख कर सकते हो। तात्पर्य यह है कि मुझे क्या करना है क्या नहीं करना है? प्रभु-प्राप्ति करनी है कि नहीं। इन सबका जीते जी मानव जीवन में ही विचार कर लें। अन्यथा दूसरी योनियों में जाने पर कुछ होने-जाने वाला नहीं है।

# बेइलि २

## अन्धविश्वास प्रकरण

**भल सुम्रित जहंडायेउ हो रमैया राम।**
**धोखे कियहु विसवास हो रमैया राम॥**

सो तो है बंसीकसी, हो रमैया राम।
सो रे कियहु विस्वास हो रमैया राम ॥
ई तो हैं वेद सास्त्र, हो रमैया राम।
गुर दीहल मोहि थापि, हो रमैया राम ॥
गोबर कोट उठायेहु, हो रमैया राम।
परिहरि जैवहु खेत हो रमैया राम ॥

**शब्दार्थ**—सुम्रित–स्मृति, धर्मग्रन्थ। भल–अच्छ, सहज में ही। जहडायेउ–ठगा गया। कियहु–किया। बंसीकसी–वंशी के समान वंशी वह जिससे मछली मारने वाले जल में मछली पकड़ते हैं। वन–जंगल। सीकसी–ऊसर भूमि। ई–यह। थापि–स्थापन, उपदेश। स्मृति ग्रन्थ निःसार है। जैसे ऊसर भूमि। गोबर–दहनशील, काम, क्रोध, माया। कोट–गढ़। जैवहु–जाओगे। परिहरि–परित्याग करोगे, फेंक देंगे। खेत–अनेक प्रकार की योनियों में, क्षेत्र।

**सम्बन्ध**—प्रथम बेलि में कहा गया है कि हंस रूपी आत्मा मनुष्य के हृदय-सरोवर में निवास करता है परन्तु असावधानी के कारण उसके अन्दर के ही काम, क्रोध रूपी तस्कर उसको मूढ़ लेते हैं और जिसके कारण वह मानवेतर योनियों में जाकर निवास करने लगता है। अन्तिम पद में सद्गुरु कहते हैं कि यदि तुझे दुःख से बचना है तो जीते जी सत्या-सत्य का ज्ञान कर लो परन्तु गुरु की कही हुई एक भी नहीं सुनता है। जो पुरानी परम्परा चली आ रही है उसी में और जकड़ता जा रहा है।

**मूलार्थ**—साहब कहते हैं कि भल कहिए सहज में ही बिना सोचे-समझे धर्मग्रन्थों में फँस गया जिसको स्मृति ग्रन्थ कहते हैं जो धर्म की व्यवस्था देते हैं उन्हीं ग्रन्थों में यह जो रमैया राम चेतन आत्मा है। जँहड़ा गया। यह धोखे में पड़कर उन धर्मग्रन्थों में विश्वास कर लिया यह रमैया राम जीवात्मा यत्किंचित विचार नहीं किया कि इन स्मृति ग्रन्थों में नाना प्रकार के कर्मकाण्डों की चर्चा की गयी है। श्राद्धों की चर्चा की गयी है। पशु बलि की व्यवस्था दी गयी है। क्या इस पर यह विचार किया। यदि हिंसा आदि कर्मों का फल दुःखद समझता तो यह कभी भी विश्वास नहीं करता कि इनकी बातें सही हैं और मानव कल्याण के लिए हैं परन्तु साहब कहते हैं कि यह रमैया राम जीवात्मा की भूल से वंचकों के बहकावे में आकर उक्त व्यवस्था के ग्रन्थों पर विश्वास कर

लिया। ये व्यवस्थावादी ग्रन्थ किस प्रकार के हैं जैसे—मछली फँसाने वाली वंशी होती है। अर्थात् बनसी का अर्थ यह भी है कि जैसे जंगली भूमि जो ऊसर के समान होती है अथवा जैसे मरुभूमि में कोई बीज बोने पर उगता नहीं है उसी प्रकार से मानव का अविधि वाला सकाम कर्म है। जिससे की वास्तविक लाभ होने वाला नहीं है। अनेक प्रकार के स्वर्गादि उसमें दिखाये गये हैं। बहुत सी लोभ की बातें प्रदर्शित की गयी हैं। जैसे मत्स्य प्रथम चारे के लोभ में आकर चारा सहित वंशी को निगल जाती है। चारा तो खाती है परन्तु अंकुशी उसके मुख में फँस जाती है जिससे आखेटक उसे मार डालता है व पकड़ लेता है। इसी प्रकार से जो व्यवस्थावादी हैं। वे आखेटक हैं वे मनुष्यों का शोषण करने के लिए अनेक प्रकार के सुख-भोग का लोभ दिखाते हैं। स्वर्गादि का सुख वर्णन करते हैं। जिसके आड़ में नाना प्रकार के कर्म-काण्ड कराते हैं। इनका उपदेश ही वंशी है। जो मनुष्य इसमें एक बार फँस जायेगा वह फिर दूसरी बार उसमें से निकल नहीं पायेगा। यावत् जीवन वंचक गुरुओं के द्वारा इनका शोषण होता रहेगा। फिर भी किसी संत महात्मा की बातें इनको नहीं भाती हैं और उस पर चलने के लिए तत्पर नहीं होते हैं सो कहिए वे लोग पुनः उसी वंचकों की बात पर विश्वास करके अटल हो जाते हैं।

साहब कहते हैं कि हे रमैया राम जीवात्मा ! यह तो वेद-शास्त्र हैं जिसको तुम स्वयं नहीं पढ़ा है यदि स्वयं तुझको इनका ज्ञान होता तो उनकी अनर्थवादी, बातों को त्याग देता परन्तु हे जीवात्मा ! जिस रंग में जिस अर्थ को तुम्हारे गुरु ने तुम्हारे हृदय में स्थापित कर दिया है। उसी को तुम सच और सही मान लिया है कि हमारे गुरुदेव ने यह ज्ञान दिया है। भला मैं कैसे इसका त्याग करूँ। हे जीवात्मा ! ये सकाम कर्म उसी प्रकार से हैं जैसे—गोबर का कोट कोई उठा देवे और भूल से कहीं उसमें आग लग जाय तो वह गोबर का गढ़ भस्मीभूत हो जायेगा और अन्त में राख-पात को खेत में ले जाकर लोग फेंक देंगे। हे रमैया राम ! उसी प्रकार से जो सकाम कर्म हैं, संसार के विषय भोग हैं। जिसका तुम सृजन कर रहा है। जिसके पीछे मतवाला हुआ है। वे सबके सब फल नाशवान हैं। धूम्र के धौरहरा के समान है। उसमें कोई सत्यता नहीं है। यदि तुझे नरक और दुःख से भय है और बचना चाहता है तो संत सद्गुरु की बात मान अन्यथा ये तेरे सकाम कर्म उसी प्रकार से निरर्थक हो जायेंगे जसे—गोबर का कोट भस्मीभूत होकर खेत में परित्याग कर दिया जाता है।

**मन बुद्धि जहाँ न पहुंचै, हो रमैया राम।**
**तहां खोज कैसे होय, हो रमैमा राम॥**
**यह सुनि कै मन धीरज धरहु हो रमैया राम।**
**मन बढ़ि रहल लजाय, हो रमैया राम॥**
**फिर पाछे जनि हेरेहु हो, रमैया राम।**
**कालबूत सभ आहिं हो रमैया राम॥**
**कहैं कबीर सुनो सन्तो, हो रमैया राम।**
**मन बुद्धि ढिग फैलायहु, हो रमैया राम॥**

**शब्दार्थ**—बढ़ि–बढ़ा हुआ। हेरहु–खोज, अन्वेषण। कालबूत–बनाबटी, कृत्रिम। ढ़िग–पास। फैलायहु–रखो, पसारे, पसारना, फेंकना, फैलाना, करना।

**मूलार्थ**—अब कहते हैं कि तुम्हारे मन में सकाम कर्म करने की भावना बनी हुई है। वह बड़ी लम्बी चौड़ी है और स्वर्ग आदि की जो कल्पना है वह भी बड़ी दूर की है। सद्‌गुरु कहते हैं कि जो मन, बुद्धि से परे है, जहाँ मन, बुद्धि की पहुँच नहीं है भला उस अनन्त आकाश में तू हे रमैया राम कैसे उस राम की खोज कर सकेगा? वह अनन्त आकाश तो आकाश है। कोई द्रवीला पदार्थ नहीं है। वहाँ कोई खोज का विषय भी नहीं है। तुम मेरी बात को सुनकर हे रमैया राम! तूझे धैर्य (धीरज) धरना चाहिये। घबड़ाना नहीं चाहिए। तुझे स्वयं सोचना चाहिए जो वस्तुयें इन्द्रियातीत है वह कैसे प्राप्त कर सकते हो? उसकी प्राप्ति किसी सन्त सद्‌गुरु के द्वारा ही हो सकती है जो तुम्हारे पास दहराकाश में स्थित है।

उस परमतत्त्व की प्राप्ति बाहर की खोजों से मिलने वाली नहीं है। यह सद्‌गुरु का उपदेश सुनकर भूला हुआ मनुष्य का मन बहुत लजा गया। कुछ कहने में असमर्थ रहा। जो मन आकाश को बढ़कर छू रहा था। अब वह सिकुड़ कर अन्दर आ गया। साहब कहते हैं कि हे रमैया राम! तूझे जो कुछ करना-धरना है। अभी कर लो, अन्यथा इसके बाद अन्य योनियों में पड़ने से तुम फिर पाछे मुझे मत खोजना अर्थात् जब तू आत्मचिन्तन के योग्य नहीं रह जायेगा। तेरी इंद्रियाँ शिथिल हो जायेंगी। हे सबमें रमने वाले चित्ति आत्मने! तब मुझे हेरकर क्या करोगे? जब तेरे प्राण कंठगत हो जायेंगे। यह जो तू संसार का वैभव

देख रहा है वंचकों की वाणी सुन रहा है। ये सब कालबूत की हस्ती के समान हैं। जिसके नीचे बहुत बड़ा गड्ढा है। यदि तू वंचकों की बात पर विश्वास करोगे तो दुःख रूपी गड्ढे में गिर जाओगे। तुम्हारा शोषण हो जायेगा। इसलिए उनकी बात का परित्याग कर तुम अपने में रमन कर। अपने अन्दर ही उसकी खोजकर।

अन्त में सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्तो ! हे सज्जनों मेरी बात को सुनो। जो मन बुद्धि है उसको नजदीक में फैलाइये और अपने अन्दर में जो रमैया राम बैठा है। जो सबका स्वामी है, जो सबमें में विचरण करता है। उस परमतत्त्व अपरिच्छिन्न देवता की राह की खोज करो। ढिग में व्यंजना है। ढिग से तात्पर्य अपने हृदय में मन और बद्धि को लगाकर उस परमतत्त्व का अन्वेषण करो। जो तुम्हारी आत्मा है। जो तुमसे भिन्न नहीं है। जो तुरीय अवस्था में विद्यमान है। उसकी प्राप्ति करो। हे रमैया राम ! एक बात और समझ लो कि जो जागृत अवस्था वाला चेतन है। जो अविद्या से ग्रसित है। वह तू नहीं है। त केवल जीव भाव को प्राप्त हुआ है। तेरा स्वरूप तुरीयावस्था वाला चेतन है। जिसको प्रत्यक् चेतन आत्मा कहा जाता है। उस चेतन आत्मा कि प्राप्ति से ही तेरे भवबन्धन विच्छेदित हो सकते हैं। अब वेलि प्रकरण समाप्त हुआ। बेइलि बेलि का अपभ्रंश है और राजस्थानी में प्रबंधात्मक काव्य के रूप में बेलि को ग्रहण किया गया है। राजस्थानी और बेलि छन्द में कृष्ण और रुक्मिनी से सम्बन्ध भागवत की कथा को कवि पृथ्वीराज ने वर्णित किया है। यहाँ बेलि का अर्थ बल्ली लता ही लिया गया है मलूक दास जी की वाणी में जो कबीर साहब से सम्बंधित है उसमें भी दो रचनाएँ बेलि नाम से संग्रहीत है। मलूक दास के संग्रह में वाणी के अन्तर्गत बेलि को अंग नाम से संग्रहीत हैं। बेलि शब्द को यहाँ भी लता के अर्थ में प्रयोग किया गया है। मलूक दास जी की वाणी के संग्रह में १६३वें पद में राम गुण बेली का प्रयोग हुआ है। वहाँ भी उसका अर्थ लता ही है। किन्तु कबीर बीजक में स्वीकृत बेलियां बेइली काव्यरूप उपर्युक्त अर्थ एवं रूप से भिन्न हैं। जिसको पंथ के व बाहर के विद्वान् जो बीजक की टीका किये हैं वे लोग बेलि को माया के स्वरूप में वर्णन किये हैं। जो सम्पूर्ण विश्व पर छायी हुई हैं। इसलिए बीजक में बेलि के रूपक को प्रसारत्व का रूप दिया गया है। जो माया का विशाल और लुभावना स्वरूप है। बेलि के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

**मंगलाचरण**

**छन्द**—समाप्त बेइलि हो गई, गुरु कबीर कृपा भई।
दया दयाल की रही, शोक शाल सब गई॥
अनादि ब्रह्म को नमो कबीर देव को नमो।
सर्पिणी के अर्थ में कठोर श्रम जानिये॥१॥
गुरु गोविन्द की कृपा महान। पार किया बिरहुली ज्ञान॥२॥

# सबद ८

# बिरहुली प्रकरण

## मानव अज्ञान विषहरण प्रकरण

**आदि अंत नहिं होत बिरहुली, नहिं जर पल्लव डारि बिरहुली।**
**निसि बासुर नहिं होत बिरहुली, पौन पानि नहिं मूल बिरहुली।**
**ब्रह्मादिक सनकादि बिरहुली, कथि गये जोग अपार बिरहुली॥**

**शब्दार्थ**—बिरहुली-कबीर बीजक में बिरहुली नामक काव्य रूप भी प्राप्त होता है। आदि ग्रन्थ और ग्रन्थावली व बनवारी दास जी की प्रति में तथा अन्यान्य पुरानी प्रतियों में यह प्राप्त नहीं होती। बिरहुली तेरह पंक्तियों की एक रचना है जिसके प्रत्येक पंक्ति के अंत में बिरहुली शब्द आया है। कदाचित् इसी कारण इसका नाम बिरहुली रखा गया है। बिरहुली के शब्दार्थ के सम्बन्ध में विद्वानों में अनेक मतभेद है। स्वर्गीय श्री राजा विश्वनाथ सिंह जी जो रीवा राज्य मध्यप्रदेश के नरेश थे। उन्होंने बिरहुली का अर्थ अपनी बीजक की टीका में माया किया है। स्व०श्री शिवव्रत लाल महर्षि ने बिरहुली को पूर्व में गाया जाने वाला एक राग बताया है। स्वामी श्री हनुमानदास जी साहब ने अपनी बीजक की टीका में विरही जीव कहा है। श्री परशुराम चतुर्वेदी ने बिरहुली शब्द का अर्थ विरह वाली व विरहिणी कहते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने बिरहुली को साँप का विष उतारने का गाना लिखा है। कुछ अन्य विद्वान् जो कबीर पंथ से कम परिचित हैं ने कहा है कि बिरहुली पूर्वी उत्तर प्रदेश में गाये जाने वाले बिरहा का कोई एक रूप बताया है परन्तु 'मानक हिन्दी कोश' के अनुसार बिरहुली सर्पिणी के व नागिनी के अर्थं में आया है। बिरहुला—पु० लि० (प०) विरूलहक नाग (स्त्री०) बिरहुली

सर्प–साँप उदाहरण–बोइनि सातो बीज बिरहुली–कबीर। बिरहुली–स्त्री० (हि०) बिरहुला का अल्पा (स्त्री०) रूप एक सर्पिणी–साँप के काटने पर विष उतारने का मन्त्र किया गया है। **चौथा खण्ड पृष्ठ-१३७ मानक कोश।**

डॉ० नजीर मुहम्मद के अनुसार भी बिरहुली का अर्थ सर्पिणी होता है। डॉ० नजीर मुहम्मद का कहना है कि बिरहुली का अर्थ सर्पिणी है। यह शब्द बिरहुला से बना हुआ है। जिसका अर्थ सर्प होता है। सर्पिणी अर्थ का वाचक शब्द लोक में विष को दूर करने वाले गायन के लिए प्रयुक्त हुआ है। यह गरुड़ मंत्र का प्राकृत नाम है। झाड़-फूँककर विष उतारने वाले व्यक्ति इसका प्रयोग करते हैं व करते होंगे। गाँव में इस प्रकार की गीतों को विखरे, बिखहर, विखहरी या बिरहुली कहा जाता है। कबीर साहब की बिरहुली में भी विष और बिरहुली दोनों ही शब्द प्रयोग हुए हैं। विषहर मंत्र न मान बिरहुली गारुड़ बोले अपार बिरहुली। यह साँप के विष को उतारने का मंत्र है। 'कबीर साहब' नामक ग्रन्थ पृष्ठ–९५ डॉ० नजीर मुहम्मद अलीगढ़ विश्वविद्यालय।

दूसरी कथा बिरहुली शब्द की उत्पत्ति का यह है कि बंगाल में एक सती साध्वी बिहुला नाम की स्त्री हुई है। जिसके पति को सर्प काट लिया था। किंवदन्ती के अनुसार––अपने पति को जीवित करने के लिए सर्प की पत्नी को उसने बिरहुली शब्द से आह्वान किया था। तात्पर्य यह कि बिरहुली से कहना था अपने पति से तू कहो कि मेरे पति को जीवित करें अर्थात् अपने विष को खींचकर मेरे पति को जीवित करें। क्योंकि मैं पतिव्रता हूँ। इसलिए पति से पहले मुझे मरना नहीं है। उक्त बिहुला गायन एवं प्रार्थना से सर्प की पत्नी प्रसन्न होती है और पति को मनाकर बिहुला के पति का विष उतरवा देती है और उसका पति जीवित हो जाता है। यह बिहुला की लम्बी-चौड़ी कथा है। बंगाल में प्रायः सर्प के विष उतारने वाले इस गीत को गाते हैं।

इसी प्रकार से उत्तर प्रदेश एवं बिहार के गाँवों के ओझा लोग भूत उतारने के लिए 'पचरा गीत' गाते हैं और भूतों को उक्त गीत से रीझा कर मनाते हैं। अस्तु बिरहुली जो है सम्भव है कि स्त्री बिहुला के द्वारा गाया हुआ गीत है जो सर्पिणी के प्रार्थना के रूप में प्रयुक्त हुआ है। यह भी सम्भव है कि इस गीत का प्रवर्तिका बिहुला ही हो। क्योंकि अभी तक खोजों से अन्यत्र व अन्य भारत के प्रान्तों में पता नहीं चला है।

यदि कहीं से पता चला बिरहुली के उत्पत्ति के बारे में तो अन्य संस्करणों में दिया जा सकता है।

**शब्दार्थ**—आदि–आरम्भ। अन्त–समाप्ति व अवसान। होते–होता है। बिरहुली–सर्पिणी, तृष्णा, माया, कुबुद्धि। जर–मूल आदि। पल्लव–पत्ते, कलँगे। डारि–शाखा। निसि–रात्रि। वासुर–वासर, दिवस। पौन–पवन। पानी–जल। मूल–आधार, अधिष्ठान। ब्रह्मादिक–ब्रह्मा, विष्णु, शिव जी। सनकादिक–सनक-सनन्दन कुमार आदि। कथि–कहा। जोग–योग, ध्यान, समाधि। अपार–असीम, असंख्य।

**सम्बन्ध**—इसके प्रथम बेलि में पुरानो परम्परा के धर्म व्यवस्था में लगे लोगों को बताया गया है कि ये ठगा गये। क्यों ठगाये? धोखा से। मिथ्या विश्वास पर जिसका परिणाम बहुत दुःखदायी हुआ। कोई ठगता है तो गुरु बनकर ही ठगता है। अन्त में सद्गुरु कबीर ने कहा—ठगाया तो ठगाया अब मत ठगाओ और उस परमतत्त्व की प्राप्ति के लिए मन, बुद्धि को समीप में ही विस्तृत करो और अपने हृदयस्थ गृह में सत्य की खोज करो। अब बिरहुली में सद्गुरुदेव कहते हैं कि वह जो मूल तत्त्व है जिसको परमतत्त्व कहा जाता है, ब्रह्म कहा जाता है। चेतन कहा जाता है। ईश्वर कहा जाता है। वह आदि अन्त विहीन है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि वह परमतत्त्व अपरिणामी है, असीम है उसका कभी आरम्भ नहीं होता है और न उसका अन्त ही होता है। हे बिरहुली रूप सर्पिणी महा विष वाली माया तू भी अनादि है परन्तु उसकी अपेक्षाकृत सादि है। क्योंकि जिसका आरम्भ नहीं होता है और जिसका अवसान भी नहीं होता है। वह तुमसे श्रेष्ठ है और वह त्रिकालाबाध्य है। यद्यपि वह तुम्हें पत्नी के रूप में स्वीकार किया है परन्तु तुम उससे निम्न कोटि वाली है। उसमें न तो मूल होता है, न उस परमतत्त्व में पल्लव होते हैं। न डगालियाँ होती हैं—अर्थात् हे बिरहुली! उस परम शुद्ध चित्ति स्वरूप चेतन में जड़-शाखा पल्लव आदि विस्तार नहीं होते। हे बिरहुली सर्पिणी! हे कृष्णे व हे माये उसमें न रात्रि होती है, न दिवस होता है। वह एक रस होने के कारण सदा प्रकाश स्वरूप होने के कारण उसे रात-दिन प्रभावित नहीं कर सकते। हे सर्पिणी माया! इसी प्रकार से उसमें पवन पानी नहीं होते। अर्थात् पवन-जल आदि भी उसके मूल नहीं हैं प्रत्युत सबका मूल वहीं भूमा है। इसलिए

हे बिरहुली ! तुम्हारा जो पति है। वह सबसे विलक्षण है। जिसको तू भी नहीं जानती है। हे बिरहुली ! उसकी प्राप्ति के लिए, उसके साक्षात्कार के लिए लोक पितामह ब्रह्मा जी मंगलमय भगवान विष्णु देव सदा शिव स्वरूप शिवजी और नारद से लेकर सनकादिक चारों भाईयों तथा अनेक योगेश्वरों तत्त्व वेत्ताओं भक्तों ने उसकी प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार के योग, ध्यान, समाधि, कथि गये हैं। इसलिए हे सर्पिणी बिरहुली ! तुम्हारा जो पति देव है। वह बड़ा दुष्प्राप्य है। जल्दी प्राप्त नहीं होता है इसलिए जीवों को साक्षात्कार कराने में तुम सहायक बन। यदि तू जीवों को फँसाना छोड़ देगी तो ये जीव तुम्हारे पति के पास शीघ्र पहुँच जायेंगे। वहाँ पहुँचने में तुम्हीं बाधा है।

**मास असाढ़े सितल बिरहुली। बोइन सातों बीज बिरहुली।**
**नित गोड़े नित सिंचै बिरहुली। नित नउ पल्लव डारि बिरहुली॥**
**छिछिल बिरहुली छिछिलि बिरहुली। छिछिल रहल तिहुंलोक बिरहुली।**
**फूल एक भल फुलल बिरहुली। फूलि रहल संसार बिरहुली॥**

**शब्दार्थ**—मास–महीना। असाढ़े–अषाढ़, कृत युग भक्ति की प्रौढ़ अवस्था। सितल–सात्विक, शांति। बोइन–बोया गया। सातों बीज–सांवा, कोदो, अरहर, टांगुन, मकई, मडुआ, उड़द, दया, धर्म, अहिंसा, भक्ति, क्षमा, सत्य, धैर्य। नित गोड़े–नित्य उसका अभ्यास करे। नित सिंचै–सदा उसको सुरक्षित रखें। नउ–नया, नव। पल्लव–पत्ते। डारि–शाखा। छिछिल–फैलना। तिहुंलोक–सम्पूर्ण विश्व में। फूल–आत्म ज्ञान। भल–अच्छा। फुलल–उत्पन्न हुई। फूलि–प्रकाशित। रहल–रहा।

**मूलार्थ**—अब सद्गुरुदेव कहते हैं कि आषाढ़ मास में बहुत शीतलता हो गयी है। जेठ की तपन शान्त हो गई है। अर्थात् जिस काम, क्रोध, लोभ, मोह से लोग जलते रहते हैं। झूलस जाते हैं। वह सत्वगुण रूपी आषाढ़ के उदय होने पर हे बिरहुली ! सब शान्त हो जाते हैं। जो साधक हैं, जो प्रभु भक्त हैं। सात्विक गुण के उदय होने पर इनके स्वभाव में नरमी आ जाती है, स्थिरता आ जाती है। तब वे अपने अन्दर दया, धर्म, सत्य, अहिंसा, धैर्य, भक्ति, क्षमा ये सातों बीज हृदय में वपन होने लगते हैं। अर्थात् बो दिये जाते हैं। ये सातों मुक्ति के साधन हैं और आत्मज्ञान के साधन हैं। हे बिरहुली ! इन सातों को विकसित करने के लिए नित्य गोड़ना चाहिए, अभ्यास करना चाहिए। सत्संग से सींचना

चाहिए। ताकि ये सातों बीज विलुप्त न हों, सूख न सकें। जब ये सातों में से एक भी लुप्त हो जायेंगे तो साधना पूरी नहीं होगी। जब ये नित्य सत्संग और अभ्यास के द्वारा सिंचित होते रहेंगे। तब और इसमें से नित्य नये पल्लव रूपी भाव शाखा रूपी दृढ़ता उत्पन्न होते रहेंगे। हे बिरहुली ! नित्य के सींचने, गोड़ने से इसमें और नये-नये बुद्धि, विवेक, अपिशुनता, अक्रोधता, अलोभता, अमोहता, समता, सद्गुण, सहिष्णुता इत्यादि पल्लव और शाखायें उन सातों बीजों से हो जायेंगे। अन्त में ये इतना फैल जायेंगे, इतना छिछल जायेंगे कि हे बिरहुली ! ये छिछिलते ही जायेंगे। अर्थात् इनका विस्तार होता जायेगा। हे बिरहुली ये तीनों लोक में विस्तृत होते जायेंगे। अर्थात् भक्त की कीर्ति और उसके यश का विस्तार समूचे विश्व में फैल जायेगा। उन सातों बीजों के विस्तार होने पर एक बहुत सुन्दर आत्मज्ञान रूपी फूल उसमें से विकसित होगा और वह फूल खूब फूलते जायेगा। हे बिरहुली ! वह फूल सारे संसार को आच्छादित कर देगा। उसकी सुन्दरता देखकर संसार के सभी लोग उसकी ओर आकृष्ट हो जायेंगे।

**सो फूल लोरे संत जना बिरहुली, बंदि के राउर जाय बिरहुली ।**
**सो फूल बंदे भगत जना बिरहुली, डंसि गौ बैतर सांप बिरहुली ।।**
**विखहर मंत्र न मानै बिरहुली, गारुड़ बोले अपार बिरहुली ।**
**विख की क्यारी तुम बोयहु बिरहुली, अब लोढ़त का पछताहु बिरहुली।**
**जनम-जनम जम अंतरे बिरहुली, फर एक कनयर डारि बिरहुली ।**
**कहैं कबीर सच पाव बिरहुली, जो फर चाखहु मोर बिरहुली ।।**

**शब्दार्थ**—लोरे–लोढ़े, तोड़े। बंदे–बन्दना, स्तुति। राउर–आपकी। जाय–की जाय। सो–वह। फूल–आत्मज्ञान। बंदे–नमस्कार बंदा, भक्त, भगत जना–भक्त लोग। डंसिगौ–काट लिया। बैतर–बातल, पागल। सांप–सर्प, काम। बिखर–विषधर। गारुड़–गारुणी मन्त्र, झारने वाला। लहर–अपार, बहुत। विख–विष। क्यारी–कियारी, क्षेत्र, अन्तःकरण, दुर्बुद्धि। बोयेहु बिरहुली–माया, सर्पिणी। लोढ़त–तोड़ते हुए, भोगत। जम–यम। कनयर डारि–कनेर एक विषैला वृक्ष जिसका छाल बहुत तिक्त होता है फल बहुत कडुवे होते हैं, क्रोध। चाखहु–खाओ। सच पाव–सुख पावो। शान्ति मिले।

**मूलार्थ**—तथा हे बिरहुली ! आत्मज्ञान रूपी फूल को दूसरे पामर जीव नहीं पा सकेंगे। उस पुष्प की प्राप्ति केवल सन्त सज्जनों को ही होगी। क्योंकि वे सन्तजन परमतत्त्व की बन्दना करते हैं। नित्य आत्म चिंतन करते हैं। प्रभु का भजन करते हैं। इसलिए हे बिरहुली उस आत्म ज्ञान रूपी फूल को भक्तों ने नमस्कर किया है। विनम्रता से उसकी प्राप्ति किया है। इसलिए वह पुष्प, आत्मज्ञान भक्तों को प्राप्त हुआ है परन्तु हे बिरहुली ! जो तुम्हारा दूसरा पति कामदेव है। वह पागल रूप ही है। लोगों को दौड़कर काटता है। हे सर्पिणी जिसको वह काट लिया है, जिसको वह डस लिया है। वह विषधर कामदेव किसी का मंत्र किसी का झाड़ा-फूका, किसी का उपदेश, ज्ञान और सत्संग उस पर असर नहीं करता। जिस प्रकार से लाल रंग वाला सर्प पागल होकर किसी प्राणी को काट ले वह जीवित नहीं रह सकता उसको स्वयं धन्वतरी भी नहीं जीवित कर सकते हैं। इसी प्रकार से हे बिरहुली ! जिसको महा विषधर कामदेव और कामना ने काट लिया है वह विखहर अर्थात् विषधर कामदेव किसी ज्ञान व उपासना से आतम अभिमुख नहीं होता है। गारुणी रूप गुरु उसको अपार उपदेश देता है। बहुत कहता है परन्तु उस कामदेव में कितनी लहरें हैं। उनका अन्त नहीं है। अन्त में गारुणी गुरु का मन्त्र असफल हो जाता है और वह काम डसा हुआ मनुष्य मर ही जाता है। क्योंकि हे बिरहुली हे माये ! तुम एक विष की क्यारी बोये हुई हो। मनुष्यों के अंदर में ऐसी वासना और ऐसी आशा की और काम, क्रोध की, लोभ, मोह की क्यारी तुमने तैयार कर दी है अर्थात् यह जीव अपने अंदर विषय रूपी विष को सकाम कर्म रूपी वृक्ष को तैयार कर लिया है, संच कर रखा हुआ है।

कबीर साहब कहते हैं कि उसका परिणाम जो दुःख है। वह फूला हुआ है, पुष्पित हुआ है। प्रांगण रूपी तुम्हारे अन्तःपुर में प्रस्तुत है। अब तुम्हीं को लोढ़ना है। उस फूल को तुम्हीं को उतारना है। वह अज्ञान रूपी वृक्ष में फूला है। उसका संचयन तुम किया है। अब लोढ़ते हुए क्यों पश्चाताप कर रहे हो ? अब तुझे लोढ़ना ही है। हे बिरहुली ! तेरे पति कामदेव और काम, वासना से ग्रसित जीवों को जन्म-जन्म से यमराज पकड़ते आ रहे हैं। अर्थात् विषय-वासना और कामना के कारण यह विषय से मतवाला जीव भगवान भास्कर के पुत्र यमराज के मुख में पड़ रहा है। अन्तरे कहिये उससे यह अलग नहीं हो सकता है, उससे यह विपरीत नहीं जा सकता है क्योंकि यह एक और वृक्ष क्रोध रूपी

कनेर को लगा रखा है। जो बहुत कड़वा होता है। जिसके खाने से आदमी मर जाता है। सारे मनुष्यों का, सारे प्राणियों का काल क्रोध ही है इसलिए यहाँ पर क्रोध की संज्ञा कनेर से दी गयी है। यद्यपि कनेर में कई गुण हैं। उसके पुष्प पवित्र माने जाते हैं। देवताओं पर चढ़ाये जाते हैं परन्तु यह तमोगुणी प्रधान देवता शंकर जी को प्रिय है। पुत्र, शिष्य और भृत्तों को सुधारने के लिए क्रोध किया जाता है जो क्रोध वहाँ पर उत्तम उपदेश का काम करता है। उसमें दो में किसी की क्षति नहीं होती। इसलिए वहाँ क्रोध में उत्तम गुण है। वह क्रोध रूपी कन्नेर का पुष्प है परन्तु सर्वत्र क्रोध का होना अनिवार्य नहीं है। इसलिए मानव को क्रोध रूपी कनेर के वृक्ष से विषैला समाज उत्पन्न नहीं करना चाहिये तभी मानव का कल्याण हो सकता है। इसी पर सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे बिरहुली ! हे माये ! हे सर्पिणी ! तभी मनुष्य को सुख शान्ति मिल सकती है जो आत्मज्ञान रूपी पुष्प में मुक्ति रूप फल फला हुआ है। वह मेरा उत्पन्न किया हुआ है अर्थात् जिसको सन्तों ने उत्पन्न किया है। उसको चखो, खाओ। तब जन्म-जन्म यमराज के चक्र से बच सकोगे। अन्यथा कोई दूसरा उपाय नहीं है। इसलिए मुक्ति रूपी फल को चखो।

**आशय**—उस परमतत्त्व में आरम्भ और अवसान नहीं होते। सभी विकारों से परे है। उसमें संसार रूपी डार-पल्लव आदि नहीं होते और निशि-वासर का भी उस पर प्रभाव नहीं पड़ता है। पानी पवन के बिना भी वह जीवित है, चेतन स्वरूप है। सबका मूल है। उसकी प्राप्ति के लिए अनेक सत्कर्म रूपी योग, ध्यान, समाधि, आसन, प्राणायाम बताये गये हैं। जिसके फल का अन्वेषण महापुरुषों ने किया है। जब मानव में सत्वगुण का उदय होता है। तब प्रथम प्रभु-प्राप्ति का प्रथम मास आषाढ़ का स्वरूप होता है। सतोगुण के उदय होने पर स्वाभाविक है कि मनुष्यों को शांति मिलती है। सद्गुण के उदय होने से चंचल स्वरूप रजोगुण और विमूढ़ता स्वरूप तमोगुण छिप जाते हैं। जब तम और रजगुण का अभाव हो जाता है तब उसमें गुरु के द्वारा सत्य, अहिंसा, क्षमा, संतोष आदि सातों गुणों का वपन होता है और उत्तम जिज्ञासु उन सातों बोये हुए बीजों का नित्य गुरु-सेवा और सत्संग से सींचते रहते हैं। उसमें से और नये-नये सद्गुण रूपी डार पल्लव उत्पन्न होते रहते हैं। अर्थात् साधक की विकसित अवस्था शत प्रतिशत हो जाती है। उसका विस्तार चतुर्दिक् हो जाता है। वह तीनों लोकों में छा जाता है और आत्म-

ज्ञान रूपी पुष्प जो बहुत सुन्दर है वह विकसित हो जाता है और वह पुष्प सारे संसार में फैल जाता है परन्तु उसको अधिकारी पुरुष ही प्राप्त करते हैं जो श्रद्धा और विश्वास से रहित हैं, जो वैराग्य और विवेक से मुक्त हैं। जिनके अंदर सद्गुणों का अभाव है उन्हें वह पुष्प प्राप्त नहीं होता है। वह पुष्प जो नित्य सुमिरण सत्संग में लगा रहता है जो आत्मज्ञान का नमस्कार आदर पूर्वक करता है वही भक्त जन उसको प्राप्त करते हैं परन्तु जिन्हें काम-क्रोध रूपी विषधर डस लिया है, जो कामनाओं के वशीभूत हो गये हैं। उन्हें गुरु का उपदेश रूपी मंत्र कुछ काम नहीं कर पाता और न वे आत्म-ज्ञान रूपी पुष्प के अधिकारी ही हैं क्योंकि अज्ञानी मनुष्य अपने अन्तःकरण में विषय-वासना की क्यारी तैयार किया है। विषय रूपी वृक्ष बो दिया है और विषय रूपी विष अपनी चरमावस्था पर पहुंचता है तो यह जीव अशांत हो जाता है। आनंद की पूर्ति के लिए निराशा रूपी मरूमारीचिका में दौड़ता है उसके विछोह में रोता है, चिल्लाता है, कल्पता है।

सद्गुरु कहते हैं कि जैसा तू शुभाशुभ का बीज बोया है उसका फल-फूल तुझे ही लोढ़ना है। अब उसके परिणाम भोगते हुए क्यों पछता रहे हो। जिसके कारण जन्म-जन्म तू यमराज के अन्तर्गत होते रहते हो। तुमने क्रोध रूपी कनेर को बो दिया है। इसलिए उसके फल को तुझे ही खाना है। यदि कुछ लोगों के मत के अनुसार कनेर के छाल को और उसके बीज के फलों का अर्थ लिया जाय की वह सर्प विष उतारने के लिए कनेर महाओषधि है और कबीर साहब कहते हैं कि तुम तभी सुख पा सकते हो जो महाओषधि रूपी कनेर में फल लगा। उसको तुम चखोगे तभी तुम सुखी हो सकते हो। तो यह अर्थ उतना उपयुंक्त नहीं है। क्योंकि बिष की क्यारी बोई गयी है और लोढ़ने की बात आयी है। पश्चाताप भी है और यम का प्रसंग भी आया है और उसके बाद 'फल एक कनेर डार बिहुली' की बात भी आयी है। यदि 'घुनाक्षर न्याय' से कोई कहें कि सद्गुरु कबीर कहते हैं कि जो विषय-वासना रूपी विष की क्यारी तूने बोई है। यदि उससे तू बचना चाहता है। उसे भोगना नहीं चाहता है तो महाऔषधि रूप कनेर का वृक्ष मैं तैयार किया हूँ। उसका फल बहुत कड़ुवा होता है परन्तु काम रूपी विषधर के विष को दूर करने के लिए अमृत है। इसलिए उस मेरे महाऔषधि रूपी कनेर को जो चाखेगा वही मृत्यु के मुख से बच सकता है। तो यह

अर्थं भी उत्तम है। और युक्ति-संगत भी हैं परन्तु जो मेरे मन और विचार में प्रथम भाव उत्पन्न हुए हैं वही किया हूँ।

**मंगलाचरण**

परम पावन नाम है गुरुदेव-देव कबीर का।
जिनकी कृपा कटाक्ष बिनु कुछ काम हो सकता है का॥
आगे हिंडोला आ गया सबको झुलावन हार हो।
रूपक निरूपक देव मम करते हैं जन उद्धार हो॥१॥

# सबद ९

## हिंडोला प्रकरण १

### कर्मकाण्ड प्रकरण

**भरम हिंडोला झूले सभ जग आय।**
**पाप पुन्नि के खम्भा दोउ, मेरु माया मांहि॥**
**लोभ भौंरा बिखै मरुवा, काम कीला ठानि।**
**शुभ अशुभ बनाये डांडी, गहे दूनो पानि॥**
**करम पटरिया बैठि के, को-को न झूलै आनि।**
**झूलत गन गंधर्व मुनिवर, झूलत सुरपति इन्द्र॥**
**झूलत नारद सारदा, झूलत बेयास फनिंद्र।**
**झूलत विंरचि महेश सुखमुनि, झूलत सूरज चन्द॥**
**आप निरगुन सरगुन होय, झूलिया गोविन्द।**

**हिंडोला**—बीजक में हिंडोला के तीन पद आये हैं। जिनकी पंक्ति संख्या क्रमशः १८-८, ७ है। इन तीनों में २४ मात्रा वाले रूपमाला छन्दों का प्रयोग हुआ है। जिसमें क्रमशः १४ तथा १० पर यति लगती है। यह सावन के मास में झूले का रूपक लेकर खड़ा होता है। प्रसिद्ध मलूक दास जी की वाणी जो कबीर साहब का संग्रह है—उदाहरण-हिंडोलना तहाँ झूले आत्मराम। आया है। सावन के महीने में पेड़ पर पटरा डाल कर औरतें बैठती हैं और दोनों ओर से पुरुष पेंग मारते हैं

और महिलायें हिंडोला झूलती हैं और गीत भी गाती हैं। अनेक स्थानों पर इन गीतों को हिंडोले के नाम से ही पुकारा जाता है। सद्गुरु कबीर ने इसी जन प्रचलित रूपक को ज्ञान का साधन बनाया है।

कबीर साहब संसार को एक 'हिंडोला' मानते हैं। संसार भ्रम का हिंडोला बना हुआ है। पाप-पुण्य के दो खंभे इसमें लगे हुए हैं। माया ही मेरु है। लोभ ही मरुआ है। विषय का भौंरा, शुभ-अशुभ की रस्सी तथा कर्म की पटरी लगी हुई है। इस अद्भुत हिंडोले पर गण, गन्धर्व, मुनि, देव, दानव, सूर्य, चन्द्र इत्यादि झूलते रहते हैं। अर्थात् ये सभी शक्तियां आवागमन, उत्थान-पतन तथा परिवर्तन में पड़ी हुई हैं। इस प्रकार समस्त सृष्टि को हिंडोले पर झूलते दिखाया गया है।

**शब्दार्थ**—भरम–भ्रम भूल, अज्ञान। हिंडोला–झूलना जिसको बड़े-बड़े मेले में व्यवसायी लोग व नट लोग लोगों को चढ़ाकर झूलाते हैं। मेरु–सुमेरु जो हिंडोले के चक्र में लगा रहता है उसको मेरु कहते हैं। माहि–में। भौंरा–भौरा, हिंडोले के चक्र के डण्डे जो चक्राकार घूमता रहता है, आवंत। मरुवा–मण्ड व मेरु, हिंडोला में वह लकड़ी जिसमें हिंडोला लटकाया जाता है। वह हिंडोले की लकड़ी जड़ी व लगायी जाती है। कील–खूंटी, मेख, किल्ली। ठानि–उसमें लगाया। डांडी–कमर हिंडोले में लगी चार सीधी लकड़ियां या डोरी की लरें जिनमें बैठने के लिए लकड़ी लटकती रहती है। पटरी–बैठने का आसन। को–को। कौन–कौन। गन्धर्व–एक जो गाने-बजाने वाली जाति देव जाति में जिसको गिना गया है। शारदा–सरस्वती। फनिंद्र–शेषनाग। विरंचि–ब्रह्मा। सुखमुनि–शुकदेव जी। सूरज–सूर्य। चन्द्र–चंद्रमा। आप–स्वयं। निरगुन–निर्गुण। सरगुन–सगुन, कार्यब्रह्म। गोविन्द–परमेश्वर, श्री कृष्णचन्द्र। पानि–हाथ। झूलत–नीचे से ऊपर आना जाना, अनेक प्रकार की योनियों में चक्र काटना।

**सम्बन्ध**—बिरहुली में कहा गया है कि उस परमतत्त्व में न आदि होता है न अवसान होता है। आदि और अवसान सब उसके अन्दर हैं। वह सबसे परे बताया गया है उसमें देश काल नहीं होते हैं। यह भी बताया गया कि वह स्वतः एक जागृत चेतन स्वरूप तत्त्व है। जिसमें कभी असावधानी नहीं होती। अन्त में कहा गया कि उस चेतन रूपी फल को जो चखेगा अर्थात् जो उसका साक्षात्कार कर लेगा वही शान्ति लाभ कर सकता है। अन्य जो पामर प्राणी हैं। वे उससे बहुत दूर हो

जायेंगे। क्योंकि यह संसार जो है बड़ा विषम हैं और अनिर्वंचनीय है। यह परमेश्वर की कला है। इसमें जो फँस जाता है, वह कभी नहीं निकल पाता। पुत्र-कलत्र, धन-सम्पत्ति, मान-बड़ाई, मठ-मंदिर ये सब संसार के स्वरूप हैं। इसी में सारे जगत के जीव फँसे हुए हैं और फँसकर नाना प्रकार की ऊँची-नीची योनियों में आते जाते रहते हैं। जिसको नीचे दर्शाया जा रहा है।

**मूलार्थ**—सद्गुरुदेव कबीर कहते हैं कि हे जिज्ञासु जन। यह संसार भ्रम का, भूल का, अज्ञान का हिंडोला है। जिस पर बैठकर संसार के सभी लोग झूलते हैं। इस हिंडोले में दो खंभे होते हैं। उसके जगह पर पाप और पुण्य यही दो खंभे हैं। हिंडोले में माया का मेरु लगा हुआ है। लोभ जो है वह हिंडोला का भौंरा है। विषय-वासना जो है। वही उस हिंडोला में मरुआ लगा हुआ है। काम और कामना जो हैं। वही उसमें किल्ली लगी हुई है। अर्थात् कामदेव को ही उसमें किल्ली लगाकर ठाना है, आरम्भ किया है और शुभ-अशुभ जो है वही उसमें डांडी लगी हुई है, जिसको दोनों हाथ से पकड़कर लोग बैठते हैं। जो मानव का कर्म है। वही उसमें पटरी है। सभी उस कर्म-पटरी पर बैठकर शुभाशुभ कर्मों का फल भोग रहे हैं।

अब विचार करते हैं कि इस हिंडोले पर बैठकर कौन-कौन नहीं झूले हैं तो कहते हैं कि इस संसार रूपी हिंडोले पर बैठकर झूलने वाले में देवता, गंधर्व, मुनियों में श्रेष्ठ मुनि गण हैं। सुरपति इन्द्र भी आकर इस पर झूलते हैं। जो अहिल्या के फन्दे में पड़ गये थे। महर्षि नारद भी विश्व विमोहिनी के वश में आकर झूल रहे हैं। ब्रह्मा जी की अधिष्ठात्री देवी शारदा जी भी वीणा के साथ झूल रही हैं। महर्षि व्यास देव भी पुराणों को अलग-अलग करके कर्म अकर्म का निर्णय देकर झूल रहे हैं। फणीन्द्र जो शेषनाग हैं वे भी पृथ्वी का भार धारण करके झूल रहे हैं। लोक पितामह ब्रह्मा जी भी सृष्टि का भार लेकर झूल रहे हैं। भगवान शंकर संघार का भार लेकर झूल रहे हैं। महर्षि शुकदेव मुनि को भी जन्म लेकर झूलना पड़ा था। इस प्रकार से कर्म के अधीन सूर्य और चन्द्र ये दोनों रात्रि-दिन मिलकर झूलते हैं। सारा संसार तो झूल ही रहा है। जो संसार को बनाने वाला है, जिसके हाथ में सारी सृष्टि है, जो सबका प्रकाशक है, जो देश काल से परे हैं। जहाँ बुद्धि और मन की गति नहीं है। जिसके अन्दर आकाश जैसे विशाल शून्य पड़ा है। वह स्वयं आप

निर्गुण ब्रह्म सगुन कहिए कार्यब्रह्म बनकर आकर झूलता है। अर्थात् वह गोविन्द अवतार लेकर इस भूतल पर अनेक संकटों का सामना करता है। उसको भी संसार में आने पर संसार जैसा व्यवहार करना पड़ता है।

**छौ चारि चउदह सात एकइस, तीनिउ लोक बनाय।**
**खानि-बानि खोजि देखहु, अस्थिर कोई न रहाय॥**
**खंड ब्रह्मण्ड खोजि देखहु, छूटत कितहुँ नाहिं।**
**साधु संघति खोजि देखहु, जिउ निस्तरि कित जाहिं॥**
**ससि सूर रैनि सारदी, तहां तत्व पलौ नाहिं।**
**काल अकाल परलै नहीं, तहां संत विरले जाहिं॥**
**तहां के बिछुरे बहु कलप बीते, भूमि परे भुलाय।**
**साधु संघति खोजि देखहु, बहुरि न न उलटि समाय॥**
**ये झूलबे की भै नहीं, जउ होत संत सुजान।**
**कहैं कबीर सत सुक्रित मिलै तो, बहुरि न झूलै आनि॥**

**शब्दार्थ**—छौ–छः, छ दर्शन-सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त। चारि–चार वेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। चौदह–चौदह भुवन। सात–सात स्वर्ग भू, भूवः, स्व, जन, तप, मह, सत (ऊपर) ७ और पाताल, अतल, वितल, तल, सुतल, महातल, रसातल (ये सात नीचे के)। इकइस–१४ भुवन-क्रास-७ द्वीप जम्बू, पुष, पलाक्ष, क्रौंच, शाक, पुष्कर, सालमलय। तीन–तीन लोक, स्वर्ग, मृत्युलोक, पाताल लोक। खानि–उत्पत्ति स्थान-अण्डज, पिण्डज, स्वेदज, जरायुज योनि। वानी–वाणी, ग्रंथ, वाणी। खंड–अलग-अलग। ब्रह्माण्ड–सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड। कतहूँ–कहीं। नाहिं–नहीं। ससि–चन्द्रमा। सूर–सूर्य। रैनि–रात्रि। सारदी–सरस्वती। तहाँ–वहाँ। तत्व–तत्त्व। पांच तत्त्व–पृथ्वी, आकाश, जल, वायु, तेज। पल्लव–पत्र। काल–समय, मृत्यु। अकाल–अकाल मृत्यु भी नहीं समय भी नहीं। परलै–परलय भी नहीं। विरले–कोई-कोई। विछुरे–छुटने पर। भूमि–पुनः मृत्यु लोक। झूलबे–दुःख सुख भोगने की।

**टिप्पणी**—षट् दर्शन–योगी, जंगम, सेवरा, संन्यासी, दरवेश, ब्राह्मण। कल्प–काल का एक विभाग जिसे ब्रह्मा का एक दिन कहते हैं जिसमें १४

मन्वन्तर व ४३२००००००० वर्ष होते हैं। सतसुक्रित–सत्यपुरुष, ईश्वर, सत्कर्म।

**मूलार्थ**—इसी प्रकार से छः दर्शन वाले चार वेदों के ज्ञाता चौदह भुवनों के निवासी गण, सात द्वीपों के निवासी गण इन ब्रह्माण्ड के प्राणि-गण जिन्होंने तीनों लोकों को बनाया वे गोविन्द भी उनके सहित झूलने वालों में आ गये। तात्पर्य यह कि छः दर्शन के ऋषि भी संसार में ही हुए जो दुःख-सुख रूपी झूलना से नहीं बचे। चार वेदों के ऋषि अंगिरा आदि भी झूलने से नहीं बचे और चौदह, सात, इक्कीस वाले भी झूलने से नहीं बचे। तीनों लोकों के बनाने वाला सबल ब्रह्म भी आकर झूला। 'खानि' कहिये जो सबकी उत्पत्ति स्थान प्रकृति है वह भी आकर झूलती वाणी भी जो ग्रंथों का विस्तार करते हैं खानि जो बाल-बच्चे उत्पन्न करने वाले हैं। संसारी जीव हैं। अण्डज, पिण्डज, जरायुज, स्वेदज भी इस संसार में आकर नाना प्रकार के संकटों का सामना करते हैं अनेक प्रकार के कष्ट भोगते हैं।

सद्‌गुरु कहते हैं कि मैंने खानि और वाणी में बहुत खोजकर देखा परन्तु कोई मायिक झूलने से बचा नहीं है, कोई शान्त नहीं है। सारा संसार स्थिर नहीं है। किसी भी खंड के प्राणी हों अथवा किसी ब्रह्माण्ड में निवास करने वाले हों। मैंने उन खंडों और ब्रह्माण्डों में भी खोजकर देखा। माया रूपी झूलने से कहीं कोई बचा नहीं है, कहीं कोई छूटा नहीं है। अब प्रश्न उठता है कि जब सारी सृष्टि से लेकर निर्गुण ब्रह्म तक संसार रूपी चक्र में चक्र काट रहे हैं और दुःख-सुख झेल रहे हैं तो बचा कौन? तो उत्तर देते हैं कि कुछ लोग बचे हैं। जो साधु हैं, जो सन्त हैं, जो महात्मा हैं उनकी संगति खोज कर देखा। जो उनकी सेवा-पूजा किया है, जो संतों की उपासना किया है, जो गुरुओं का भक्त है। इस प्रकार से न जाने कितने जीव निस्तरित हुए हैं अर्थात् उपर्युक्त गुरुजनों की सेवा करके संसार के बहुत से जीव तर गये हैं और दिव्य लोकों में वे विचरण करते हैं जो आत्मा का प्रदेश हैं जहाँ पर 'भूमा' निवास करता है वहीं मुक्त होकर सभी सन्त और भक्त लोग गये हैं और जाते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि वह स्थान कैसा है? जहाँ पर सन्त लोग जाते हैं। तो कहते हैं कि उस आत्मप्रदेश में, उस परमतत्त्व के देश में न चन्द्रमा उगता है, न सूर्य उगता है। अर्थात् न वहाँ सूर्य की, न चन्द्र की ही गति है। वहाँ न रात्रि है, न दिवस है। 'सारदा' कहिये। सरस्वती की भी वहाँ पर बौद्धिक छटा नहीं है। उनकी गीतों की वहाँ कोई गति नहीं

हैं। उस दिव्यलोक आत्मदेश में पंचतत्त्व भी नहीं हैं। अर्थात् क्षिति, जल, वायु आदि भी वहाँ नहीं हैं। 'पल्लव विस्तार' जो कल्पवृक्ष है वह भी वहाँ पर नहीं है। उसके पत्ते भी वहाँ नहीं हैं। 'काल' कहिये वहाँ मृत्यु भी नहीं है। 'अकाल' कहिये असमय भी वहाँ नहीं है। किसी प्रकार का कष्ट भी वह नहीं है। वहाँ कभी प्रलय का भी प्रभाव नहीं पड़ता है। वह दिव्यलोक, आत्मदेश दुख-सुख से परे है। वहाँ पर कोई सन्त विरले ही जाते हैं अर्थात् इस संसार के झूलना से वही बच सकता है जो मोह-ममता में नहीं पड़ता है। जो स्त्री-पुत्र के, वित्त के मोह से बचेगा। वही संत उस लोक में जायेगा। अब कहते हैं कि जो उस लोक में नहीं जायेगा। मानव तन पाकर जो सच्ची कमाई नहीं करेगा। जो आत्मा को नहीं जानेगा। जो शुद्ध स्वरूप का ज्ञान नहीं प्राप्त करेगा, जो चिति ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं करेगा। जो सकाम कर्मी है। 'तहाँ' कहिये वहाँ से वह बिछुड़ जायेगा। वहाँ से जब बिछुड़ जायेगा। अनेक युग चल जायेंगे फिर वहाँ ये नहीं जा सकेंगे। वहाँ का बिछुड़ा हुआ प्राणी, साधक बहुत कल्पों तक इस भूमि पर आकर मोह-माया में भूल जायेगा। वह पुनः अनन्त काल तक इस संसार रूपी झूलने पर झूलते रहेगा।

परन्तु कहते हैं कि साधु संगति में जो रहेगा। जो साधुओं की संगति करेगा। उसमें खोजकर देखो। 'बहुरि' कहिये वह पुनः 'न' कहिये उलटि समाय जो आगे की ओर बढ़ेगा जो उस देश की ओर बढ़ेगा, आत्मदेश की ओर बढ़ेगा, जो नित्य सत्संग करेगा। पुनः वह माता के गर्भाशय में उलटकर नहीं जा सकेगा। सद्गुरु साहब कहते हैं कि इस झूलने की भय उन संतों को नहीं है 'जो होइहैं संत सुजान', जो अच्छे संत हैं, जो अच्छे सुजन हैं वे इस झूलने पर आकर न झूलेंगे। साहब कहते हैं कि जिसको सत सुकृत अच्छा कर्तव्य, अच्छी राह मिल जायेगी। अर्थात् जिसे सत्यपुरुष परमात्मा के दर्शन हो जायेंगे जो अपने हृदय स्थली में प्रभु का दर्शन कर लेगा, जो आत्मा का साक्षात्कार कर लेगा। उसे पुनः इस संसार में भूलना नहीं पड़ेगा। वह कभी भी आकर झूल नहीं सकेगा। अर्थात् पुनः उसका जन्म-मरण नहीं हो सकेगा।

**आशय**—यह संसार भ्रम रूपी हिंडोले पर झूल रहा है। इस पर झूलने का कारण पाप और पुण्य यही दो स्तम्भ हैं, यही दो कारण हैं। पाप करेगा तो भी झूलने से नहीं बचेगा। पुण्य करेगा तो भी झूलने से नहीं बचेगा। क्योंकि पुण्यात्मा ऊपर के लोकों में जाकर पुण्य फल भोगेगा। भोगान्त

में 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं वसन्ति' इसमें दुःख का मूल कारण मोह है, माया है, ममता है। लोभ है, विषय-वासना है, काम है, क्रोध है जिसको ये करने के लिए ठान लिया है। शुभ और अशुभ का जो मार्ग पकड़ लिया है। जिसको मन बुद्धि से कर रहा है। जो सकाम कर्म की पटरी पर बैठे हैं। वे जन्म-मरण के चक्र में पड़ेंगे। चाहे वे देवयोनि में जाँय, चाहे मनन शील मुनी हो जाँय, चाहे स्वर्ग के राजा इन्द्र हो जाँय, चाहे वे देव ऋषि नारद हो जाँय, चाह वे वाणी की अधिपति सरस्वती हो जाँय, चाहे वे व्यास देव हो क्यों न हो जाँय, शेष नाग ही क्यों न हो जाँय, चाहे वे महेश, ब्रह्मा, शुकदेव जो जैसे महर्षि क्यों न हो जाँय ? सूर्य के समान तेजस्वी क्यों न हो जाँय, चन्द्रमा के समान सौम्य अमृत वर्षाने वाले क्यों न हो जाँय ? कितना बड़ा भी कोई हो जाय जब तक मान-सम्मान, काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग-द्वेष, विषय-भोग अहंकार आदि रहेंगे, तब तक वे झूलते रहेंगे। तब तक वे जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहेंगे। जब तक की आत्मज्ञान उनको न हो जाय तब तक भ्रम हिंडोले से उनको बचा नहीं सकते। गुरुदेव कहते हैं कि जिसने स्वयं चौदह भुवनों का निर्माण किया। इक्क स ब्रह्माण्डों को बनाया। तीनों लोकों को बनाया है छ दर्शन के ऋषियों को उत्पन्न किया। चार वेद के अंगिरा, अग्नि आदि ऋषियों को उत्पन्न किया। जो तीनों गुणों से परे था। वह भी जब गुणों को धारण करता है। गुणों का अवलम्बन लेकर सृष्टि का सर्जन करता है। वह परमतत्त्व गोविन्द भी अवतार लेकर अनेक संकटों का सामना करता है। 'गोविन्द' में 'श्लेष' है। वह तो दुःख-सुख से परे है। योगदर्शन के अनुसार 'क्लेश कर्म विपाकाशयरापुरुषविशेष ईश्वरः' जिसका पंच क्लेशों से कभी सम्बन्ध नहीं हुआ है न होता है। जिसके पास पाँच क्लेश नहीं हैं जो कर्मों का फल नहीं भोगता है। जो कर्म करके अलिप्त रहता है। जिसके संचित कर्म नहीं होते हैं। भला उस परमेश्वर को दुःख-सुख कैसे हो सकता है परन्तु संसारी मनुष्यों को ज्ञान देने के लिए, दिखावा के लिए वह संसार में आकर नाना प्रकार का चरित करता है और नटों की भाँति संसार का नाटक रचता है। उसी में वह रोता-धोता है। मिलन-बिछुड़न से विक्षुब्ध होता है परन्तु अज्ञानी लोग समझते हैं कि वह दुःखी है। संसार में आने पर, देखने पर ऐसा हो भासता है। अर्थात् सगुण रूप धारण करने पर गुरुदेव कहते हैं कि गोविन्द को भी लोग ऐसे ही समझते हैं और उनको भी कष्ट उठाना पड़ता है। भौतिक सृष्टि में कितना भी बड़ा कोई प्राणी क्यों न हो,

वाणी का विज्ञाता कितना बड़ा क्यों न हो परन्तु परमतत्त्व के अभाव में उसको भी संसार के दुःखों से दुःखी होना पड़ता है। वह संसार का सुख-दुःख ब्रह्माण्ड में, स्वर्ग में, अन्यत्र कहीं जाने पर छूटने वाला नहीं है। जबतक की वह ब्रह्मविद् नहीं होता है। केवल साधु संगति से ही मनुष्य माया के फन्दे से बच सकता है और उस अनामो, अकह लोक में पहुँच सकता है जहाँ से कभी उसका आना-जाना नहीं होता। वहाँ जाने से जो बिछुड़ जायेगा। वह जन्म-जन्म इसी संसार में लटका रहेगा। धोखा खाते रहेगा। केवल साधु संगति वाला ही बच सकता है। वही माँ के गर्भाशय में नहीं जा सकता है और न उसको झूलने का भय ही है। जो सन्त हैं, अच्छे भक्त हैं। निर्दोष हैं जो सत्कर्म करते हैं। जिन्हें परमेश्वर का साक्षात्कार हो गया है वे भ्रम हिंडोले पर कभी झूलने वाले नहीं हैं। वे आत्म देश में जाकर सदा विराजेंगे जो माता-पिता, गुरुजनों की सेवा में रत हैं।

## हिंडोला २

बहु विधि चित्र बनाय के, हरि राचिन क्रीडा रास।  
जाहि न इच्छा झूलवे की, ऐसी बुधि केहि पास॥  
झुलत झुलत बहु कल्प बीते, मन नहिं छाड़े आस।  
रच्यो रहस हिंडोलवा, निसि चारिउ जुग चौमास॥  
कबहुँक ऊँचे कबहुँक नीचे, सर्ग भूतले जाय।  
अति भरमित भरम हिडोलवा, नेकु नाहिं ठहराय॥  
डरपत हौं यह झूलबे को, राखु जादौं राय।  
कहैं कबीर गोपाल विनती, सरन हरि तुम आय॥

**शब्दार्थ**—विधि-प्रकार। चित्र—रूप, मानव चित्र, पशु चित्र, पक्षी चित्र, कीट भृंग चित्र, स्थावर चित्र, जंगम चित्र। बनाय-बनाकर। हरि—कार्यब्रह्म, ईश्वर। राचिन—रचा। क्रीडा—केलि, खेल, तमाशा। रास—नृत्य, नाच, खेलना, कूदना हास—परिहास, रहस्य। जाहि—जिसको। झूलबे—झूलने, संसार सुख भोगने की इच्छा। स्त्री पुत्र धन-सम्पत्ति में आसक्ति। ऐसी—इस प्रकार की। केहि—किसके। झुलत झुलत-भोगत-भोगत। कल्प—युग, कई युगों को मिलाकर एक कल्प होता है। आस—

इच्छा, तृष्णा। रच्यो–रचो, रचा, निर्माण किया। रहस–रहस्य, भेद। हिंडोलवा–हिंडोला, झूलना जिस पर बैठकर नीचे से ऊपर झूला जाता है। निसि–रात्रि। चारि युग–सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग। चौमास–चतुर्थ मास, आषाढ़, सतयुग, श्रावण, त्रेता, भाद्र पद, द्वापर, क्वांर–आश्विन, कलियुग। कबहुंक–कभो-कभी। ऊँचे–आकाश में, देव आदि योनियों में। नीचे-पाताल में। भूमि पर, मानव से नीचली योनि, पशु–पक्षी, भूत–प्रेत, खग, मृग। सर्ग–स्वर्ग, इंन्द्र लोक, देव लोक। भूतले–भू लोक। मानव लोक। जाय–जाता है, जन्मता है। अति–बहुत, अत्यन्त। भरमिक–घूर्मित, भरमाने वाला, भूला हुआ, अज्ञानी बनाने वाला। भरम–भ्रम, अज्ञान, भूल। नेकू–रंचक, थोड़ा भी, किंचित। ठहराय–रुकना, स्थिर होना, शांति होना। डरपत–डर रहा हूँ। हौं–मैं, हूँ। झूलबे को–संसार के सुख से, बहुत भय लग रहा है। राखु–रक्षा कीजिए। जादौ–यादव, ईश्वर भगवान, श्रीकृष्ण, परमात्मा। गोपाल–भगवान श्रीकृष्ण ईश्वर, परमात्मा।

**सम्बन्ध**—प्रथम हिंडोला में संसार रूपी हिंडोले को भ्रामक बताया गया है और कहा गया है कि यह भ्रम हिंडोला, पाप और पुण्य दोनों के द्वारा बनाया गया है। अर्थात् पाप के अन्त में परिणाम स्वरूप अनेक दुःखों का सामना करना पड़ता है। पापी मनुष्य का उसी प्रकार से अधः पतन हो जाता है। जिस प्रकार से कंदुक छत की सीढ़ियों से गिरने पर प्रत्येक सीढ़ियों को लांघता हुआ, पतन होता हुआ समान भूमि पर कुछ दूर पर जाकर स्थिर हो जाता है उसी प्रकार से पापी मनुष्य मानव जीवन से पतन होने पर सब योनियों को लांघता हुआ कीट पतंगों में जाकर स्थिर हो जाता है। इसी प्रकार से पुण्यशील मनुष्य भी पुण्य के फल से देव लोकों में जाकर अनेक दिव्य भोगों को भोगता हुआ, अनेक सुखों का लाभ लेता है परन्तु जब पुण्य का क्षय हो जाता है तब वह देव लोक से नीचे गिरा दिया जाता है वह भी मानव योनि में आकर स्थिर होता है परन्तु पुण्यात्मा सब दिन मुक्ति लाभ से मुक्त रहता है। पुनः मानव होने पर जैसा कर्म करता है भविष्य में उसी प्रकार का परिणाम उसके सामने उपस्थित होते हैं। इसलिए पुण्य से भी विषय सुख की ही प्राप्ति होती है। पुण्यात्मा कभी आत्म साक्षात्कार का अधिकारी नहीं हो सकता है। इसलिए पाप और पुण्य दोनों को बंधन का हेतु बताया गया है। मनुष्य को चाहिए कि पाप–पुण्य दोनों का परित्याग

कर सम भाव में स्थिर रहे। जो पाप–पुण्य नहीं करता है वह न सुखी होता है न दुःखी होता है। वह व्यक्ति व पुरुष समसत्ता में विचरण करता है। अन्त में कहा गया है कि जिसको सत्य सुन्दर कृत्य मिल जायेगा वह फिर कभी संसार रूपी भ्रम झूलने पर नहीं झूल सकेगा। सत सुकृत, में व्यंजना है। जिसका अर्थ हुआ सत्कर्म अर्थात् निष्काम भाव, जिसको निष्काम कर्म प्राप्त हो जाता है। वह व्यक्ति और साधक संसार के भोग-विलास में कभी भी नहीं फंस सकता है और सदा माया कृत कच्चे सूत से बने पलने के झूले पर कभी झूल नहीं सकता है। वह सदा आत्म स्थित होकर जन्म-मरण से परे हो जाता है। इस झूलने में जीवों के फंसने का व झूलने का कारण दूसरे हिंडोला में बताया जा रहा है कि यह बहुआयामी संसार के चित्र को देखकर अज्ञानी जीव उसी में फंस जाता है, क्योंकि श्री हरि ने जो अनेक प्रकार का चित्र बनाया है उसका अवलोकन कर संसार के प्रत्येक अज्ञ जीव भूल जाते हैं। जिसका उल्लेख साहब ने बड़े मनोरम ढंग से प्रस्तुत किया है। जो मूलार्थं में देखें।

**मूलार्थ**—बहुत प्रकार से परमेश्वर ने संसार को चित्रित किया है। देखने में बहुत सुन्दर लग रहा है, जो अतिरंजनकारी है, जो दुःख और सुख से भरा–पूरा है, ऐसे संसार रूपी चित्र का निर्माण श्री हरि ने स्वयं किया है। इसको संसार न कहकर सद्गुरु ने क्रीडा रास की संज्ञा दी है। लोग इस रास को भगवान के द्वारा बनाया गया है ऐसा मानते हैं जिसकी रचना स्वयं कार्य ब्रह्म ने की है। यह रास लीला भगवान जीवों के साथ कर रहे हैं। यहां पर पुत्र-कलत्र, स्त्री-धन, मान-सम्मान, मान-बड़ाई यही क्रीडा रास है। इस भोग-विलास को सभी लोग भोग रहे हैं और उसी में हृदयस्थ बैठकर श्रीहरि भी सब नृत्य रास को देख रहे हैं कि लोग कैसे खेल रहे हैं वृन्दावन में स्वयं श्रीकृष्णचन्द्र और गोपी लोग रास रचाती थी। जिसको दूसरा कोई नहीं देख पाता था। वह गुप्त रास कृष्ण लीला थी परन्तु संसार रूपी रास लीला खुलेआम है सब जन के देख रहे हैं, नाच रहे हैं। सद्गुरु कहते हैं कि ऐसा कोई मनुष्य शुभ बुद्धि वाला नहीं दिखाई दे रहा है कि उक्त रास रूपी झूले को न झूलना चाहता हो। जिसको इच्छा नहीं झूलने की है इस प्रकार की बुद्धि संसार में किसी के पास नहीं दिखाई दे रही है। अर्थात् ऐसा कोई पुरुष नहीं दिखाई दे रहा है कि जिसको पतन रूपी झूलने को त्यागने की इच्छा हो। जो परमतत्त्व की जिज्ञासा करे क्योंकि झूलते-झूलते रास देखते-देखते बहुत कल्प बीत गये परन्तु यह रसिक मन उक्त

झूलने को छोड़ने को आशा नहीं कर रहा है। संसार के सुख को त्यागने की भावना नहीं कर रहा है। इसका कारण यह है कि यह जो हिंडोला है इसकी जो रचना है। वहुत रहस्यमय है जिसको संसार के प्राणी समझ नहीं पा रहे हैं। न यह सत्य प्रतीत होता है, न असत्य प्रतीत होता है। यह संसार रूपी झूलना अनिर्वचनीय और परम रहस्यमय बना हुआ है। इसकी रचना विचित्र है जिसका निर्माण स्वयं सबल ब्रह्म ने किया है। लौकिक झूलना और रास केवल श्रावण मास में रचा जाता है परन्तु यह झूलना सतयुग, द्वापर, त्रेता, कलियुग, रात-दिन और चार युग रूपी चौमास भर खेला जा रहा है। इस लोक में झूलना केवल श्रावण में एक मास झूलकर छोड़ दिया जाता है। उसी प्रकार रास भो श्रावण में एक मास तक नाचगान करके परित्याग कर दिया जाता है परन्तु संसार रूपी झूलना एक निमिष के लिए भी बन्द नहीं होता है। सतत् चलते रहता है। यह झूलना कभी ऊँचे चला जाता है। कभी नीचे चला जाता है, अर्थात् पुण्य कर्म करके ऊपर देव लोक में जोवों को ले जाता है और वहाँ के भोग समाप्त होने पर पुनः मनुष्य लोक में नीचे आ जाता है। इसी प्रकार से पाप कर्म करके जोव मानव से नीची योनियों में जा विराजता है यह झूलना ऐसा है जो कभो स्वर्ग में, कभी भू लोक में आता जाता रहता है अर्थात् जो संसार में रचते-पचते रहते हैं और सकाम कर्मों में लगे रहते हैं। वे देव लोक से भू लोक तक घूमते-फिरते रहते हैं। यही इस झूलना का रहस्य है। यह अति कहिये बहुत भ्रमित झूलना है। संसार के गुरु लोग सच्ची राह नहीं बताते हैं सदा शोषण जीवों का उनके द्वारा होते रहता है। क्षण मात्र भी कोई सुखी नहीं है। जिज्ञासु लोग, प्रभु भक्त लोग इस संसार से बहुत डरते हैं। भयभीत रहते हैं जिसके कारण सदा हरिनाम का कीर्तन करते हैं और उनकी विनती करते हैं कहते हैं कि हे प्रभु ! मैं आप के शरण में आया हूँ। मेरी रक्षा कीजिए अर्थात् इस झूलने से वही बच सकता है जो सदा सत्कर्म में लगा रहेगा, जो दूसरों की भलाई करेगा। जो कभी किसी से राग-द्वेष नहीं करेगा, जो मोह-ममता से परे रहेगा। उसको इस संसार का सुख-दुःख नहीं व्यापेगा।

सद्गुरु कहते हैं कि इस झूलने से इस संसार से मैं बहुत डर गया हूँ। इससे बहुत भयभीत हूँ इसलिए हे जगदीश्वर हे जगत गुरु मैं कबीर आप से विनती करता हूँ कि मेरी इससे रक्षा कीजिये इससे मुझे बचाइये। मैं आपके शरण में आया हूँ। हे गोपाल ! हे जगत के स्वामी ! हे हरि ! हे

भक्त वत्सल ! जो तुम्हारी शरण में हो जो तुम्हारे चरणों की सेवा-पूजा करता हो, उसको उपर्युक्त झूलने पर न झूलावो। क्योंकि यह झूलना बड़ा भयावह है, बड़ा दुःखदाई है। प्रथम तो बहुत मधुर लगता है परन्तु अन्त में जन्म-मरण देने वाला यह संसार रूपी झूलना और रास है इसलिए इससे बचाइये।

**आशय**—सद्गुरु कहते हैं कि बहुत विचित्र रास लीला श्री हरि ने रचा है जिसे देखने से कभी अरुचि नहीं होती है और न ऐसी बुद्धि ही किसी के पास है कि संसार के सुख का परित्याग कर श्री हरि के चरणों में लग जाय। अनादि काल से लोग संसार में रचने-पचते, मरते आ रहे हैं। दुःख सह रहे हैं इस पर भी त्याग की भावना किसी में नहीं है। रात-दिन उसी की चाहना में लोग चारों युगों से लगे हुये हैं कभी शुभ कर्म करके देवादि योनियों में जाते हैं कभी अशुभ कर्म करके कीट पतङ्गों की योनियों में जाते हैं। इन्द्रलोक से पृथ्वी लोक तक लोग घूमते-फिरते रहते हैं यह संसार बहुत भरमाने वाला है अर्थात संसार में बंचकों की भरमार है। सच्ची राह नहीं बताते हैं सदा शोषण उनके द्वारा जीवों का होते रहता है। क्षण मात्र भी कोई सुखी नहीं है। जिज्ञासु लोग प्रभु भक्त लोग इस संसार से बहुत डरते हैं, भयभीत रहते हैं जिसके कारण सदा हरिनाम का कीर्तन करते हैं और उनको विनती करते हैं कहते हैं कि हे प्रभु ! मैं आप की शरण में आया हूँ। मेरी रक्षा कीजिए अर्थात् इस झूलने से वही बच सकता है जो सदा सत्कर्म में लगा रहेगा जो दूसरों की भलाई करेगा, जो कभी किसी से राग-द्वेष नहीं करेगा, जो मोह-ममता से परे रहेगा। उसको इस संसार का सुख-दुःख नहीं व्यापेगा।

# हिंडोला ३

## लोभ-मोह प्रकरण

**लोभ मोह के खम्भा दोऊ, मनसे रच्यो हिंडोल।**
**झूलहिं जीव जहान जहां लगि, कितहुं न देखो थित ठौर॥**
**चतुर झूलहिं चतुराइया, झूलहि राजा सेस।**
**चांद सूरज दोउ झूलहीं, उनहुं न आग्या भेस॥**
**लख चौरासी जीव झूलहीं, रवि सुत धरिया ध्यान।**
**कोटि कल्प जुग बीतिया, अजहुं न माने हारि॥**

**धरति अकास दोउ झूलहीं, झूलहिं पौना नीर।**
**देह धरे हरि झूलहीं, (ठाढ़े) देखहिं हंस कबीर॥**

**शब्दार्थ**—खम्भा–स्तम्भ थुन्हीं। रच्यो–रचा। जहान–संसार। थित–स्थित, शान्ति। ठौर–स्थान। चतुर–दक्ष लोग। चतुराइया–चतुरता के साथ। राजा–सम्राट लोग। सेस–शेषनाग जो पृथ्वी को अपने फनों पर रोके हुए हैं। विशेषार्थ में सेस का अर्थ होता है जो बचा रहे सब कुछ नाश होने पर महाप्रलय में जो बच जाता है वही शेष कहलाता है। चांद–चन्द्रमा। सूरज–सूर्य। दोउ–दो उनहुँ–वे भी। आग्या–आदेश। भेस–नहीं, संकेत, पहिरावा, लीवास, वेश। रविसुत–यमराज, मृत्यु। कोटि–करोड़। अजहुँ–आज भी। धारिया–धरकर। हारि–थकान। पौना–पवन, वायु। नीर–जल। हरि–विष्णु। हंस–मुक्त आत्मा, जीव।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि संसार बहुत प्रकार व स्वरूप वाला है और रहस्यमय है जिसमें अनेक प्रकार की सुख-सुविधा रची गयी है। जिसके कारण संसार के जीव भ्रम में पड़े हुए हैं, भूल गये हैं परन्तु जिन्हें थोड़ा सा भी संसार के स्वरूप की परख है, वे लोग संसार के सुख-सुविधा से बहुत डरते हैं और परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! मुझे इस भयावह भूत भौतिक सृष्टि से बचाइए क्योंकि जो रास आपने रचा है, जो हिंडोला आपने बनाया है वह कर्मानुसार आपने बनाया है मुझे ऐसे कर्मों की ओर प्रवृत्त न कराइये कि मैं भी आपके रास और आपका हिंडोला देखने, झूलने की इच्छा करूँ अब तीसरे और अंतिम हिंडोले में कहा जा रहा है कि संसार रूपी हिंडोले का जो खम्भा है। वह लोभ और मोह का बना हुआ है। इसलिए सभी प्राणी आकर उसमें फँस जाते हैं।

**मूलार्थ**—हिंडोले में काष्ठ के दो खम्भे होते हैं जिस पर हिंडोला अवस्थित रहता है। यहाँ पर सद्‌गुरुदेव कहते हैं कि यह संसार रूपी हिंडोला किस पर स्थित है? तो इसमें लोभ और मोह के दो खम्भे लगे हुए है। जिस पर संसार रूपी हिंडोला अवस्थित है और यह भी कहा गया है कि सबल ब्रह्म ने इस हिंडोले को खूब मन लगा कर रचा है। जिस प्रकार से मय दानव ने पाण्डवों के लिये आवास बनाया था उसी प्रकार प्रभु ने इस विचित्र संसार रूपी हिंडोले का निर्माण किया है। उक्त हिंडोले पर जहाँ तक संसार है। वहाँ तक जीव इस पर आकर झूलते हैं।

अर्थात् संसार के सभी प्राणी भोग-विलास रूपी हिंडोले को अच्छी प्रकार से भोग रहे हैं जिसके अन्दर में विष भरा हुआ है। जो अन्ततः विनाश-कारी है। वह झूला सभी जीवों को प्रिय है। उक्त झूले को झूलते-झूलते सभी अशान्त हैं। कोई शान्त दिखाई नहीं दे रहा है। कहीं भी कोई की स्थिति अच्छी नहीं है और कोई का स्थिर स्थान भी नहीं है। उक्त झूले पर बड़े-बड़े चतुर जो शास्त्र के पंडित हैं, जो वेद के ज्ञानी हैं, जो शिल्प के ज्ञानी हैं, जो विज्ञानी हैं जो धनुर्वेदज्ञ हैं, जो आयुर्वेदज्ञ हैं जो नृत्यवेदज्ञ हैं, जो अश्ववेदज्ञ हैं, जो व्यवहार वेदज्ञ हैं, जो वाक्य वेदज्ञ हैं, जो कामशास्त्र के जानकार हैं, जो युद्ध कला में विशारद हैं, जो चतुर्दश विद्याओं में माहिर हैं, ये सब चतुर लोग हैं ये भी बड़ी चतुराई के साथ, बुद्धि के साथ उक्त झूले पर झूलते हैं, ये सभी झूलने के रहस्य को नहीं जानते हैं और आँख मूँदकर उक्त झूलने पर आरोहित रहते हैं इनके अतिरिक्त जो बड़े-बड़े राजे-महराजे हैं जो सम्राट हैं, जो संसार को अपने वश में किये हुए हैं, वे भी लोग काम, क्रोध, मोह रूपी झूलने पर खूब मन लगाकर झूल रहे हैं। तात्पर्य यह है कि संसार में जिस प्रकार से एक अज्ञानी का व्यवहार है जिस प्रकार से वह संसार में रचता पचता, मरता है उसी प्रकार से उपरोक्त चतुर लोग भी अपने गुण ज्ञान अभिमान में उन्मत्त होकर संसार का व्यवहार कर रहे हैं इस झूलने पर मृत्यु लोक के ही लोग नहीं झूल रहे हैं। पाताल लोक के रहने वाले भगवान शेषनाग जी समुचित पृथ्वी का भार धारण किये हुए हैं। वे भी अपने प्रजा के साथ कर्म के अधीन झूलने पर झूल रहे हैं। आजकल के अनुसार पाताल लोक के वे लोग हैं जो बहुत कला पूर्ण हैं। इस समय संसार में जिसकी कला कौशल की धाक है। वे दूसरे गोलार्द्ध वाले जिसमें अमेरिका आदि देश बसते हैं जो दूसरी दुनियाँ के नाम से विख्यात हैं। वे लोग शिक्षा-दीक्षा में आगे हैं वे लोग अपनी कला-कौशल पर उन्मत्त होकर काम, क्रोध रूपी झूलने पर झूल रहे हैं। जिसका परिणाम बड़ा भयावह है। इसी प्रकार से कर्माधीन चन्द्र से सम्बन्धित चन्द्र वंशी लोग सूर्य से सम्बन्धित सूर्य वंशी लोग जो बड़े सूर-वीर हैं जो बड़े प्रतापी हैं जो संसार को अपने वश में किये हुए हैं। वे दोनों भी संसार रूपी झूलने पर झूल रहे हैं। उनको भी संसार का ताप तपा रहा है। दूसरे चन्द्र-सूर्य जो ग्रह के रूप में हैं वे भी सदा गतिमान हैं। परमेश्वर की आज्ञा के अनुसार वे भी रात-दिन झूलते रहते हैं। अर्थात् भ्रमण करते रहते हैं। अपनी-अपनी परिधि में नव ग्रह भी चक्र काटते रहते हैं। उन महान ग्रहों में भी

परमेश्वर की आज्ञा टालने का साहस नहीं है। वे भी हरि आज्ञा से झूलने के लिए तेज रूपी वेश धारण किये हुए हैं। संसार को प्रकाश दे रहे हैं चन्द्रमा भी प्राणियों में जीवनी शक्ति डालने के लिए अमृत का वेश धारण किये हुए है। इन ग्रहों को भी चैन नहीं है, ये भी रात-दिन झूलते रहते हैं। इसी प्रकार से चौरासी लाख जीव भी काम, क्रोध के वश में झूल रहे हैं। अज्ञान रूपी मोह रात्रि में सो रहे हैं, जिसके कारण भगवान सूर्य के पुत्र यमराज ध्यान लगाकर बैठे हुए हैं कि कब हम इन लोगों को पकड़कर अपने लोक में ले चलें। जो संसार में दूसरे को दुःख दे रहे हैं और जो दूसरों का धन हड़प रहे हैं। जो दूसरों की बहु-बेटियों से बलात्कार कर रहे हैं, जो दूसरे राष्ट्रों की भूमि को हरण कर रहे हैं, जो दूसरों के सत्व को हरण करने के लिये बैठे हैं जिनके पास वैराग्य नहीं है, जिनके पास विवेक-ज्ञान नहीं है जो ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते हैं, जो आत्म चिन्तन नहीं करते हैं। जो परायी स्त्रियों के पीछे कुत्तों की भाँति दौड़ते-फिरते हैं जो सदा कटुवचन बोलते हैं, जो छली हैं, जो चुगलखोरी करते हैं, जो असूईया वाले हैं, जो राग-द्वेष में परायण हैं, जो पराये को दुःख देने के लिये सदा लगे रहते हैं, जो गुरुजनों का अपमान करते हैं, जो माता-पिता की सेवा नहीं करते हैं, जो सच्ची डांड़ी नहीं तौलते हैं, जो बहुत नफा लेते हैं, जो दूध में पानी मिलाकर बेचते हैं, जो तेल में मिलावट करते हैं, जो घी में मिलावट करते हैं, जो खाद्य वस्तुओं में हानिकारक पदार्थ डालते हैं, जो मन्त्री होकर प्रजा के लिए सच्चो राय नहीं देते हैं, जो प्रधानमन्त्री होकर प्रजा के साथ धोखा करते हैं, जोराष्ट्रपति होकर राष्ट्र का हित नहीं चाहते हैं, जो देश को खण्ड-खण्ड करना चाहते हैं, जो अपने देश का भेद दूसरे देश को देते हैं, जो अपनी भूमि की रक्षा नहीं करते हैं, जो अपने जनों के साथ एक समान बर्ताव नहीं करते हैं, जो गुरु होकर शिष्य को सच्ची शिक्षा नहीं देते हैं, जो माता-पिता होकर अपने वंश के लिए अभ्युदय की बात नहीं सोचते हैं, जो घूसखोर हैं, जो बेईमान हैं, जो वेधर्मी हैं, जो परस्पर में एक दूसरे को लड़ाते हैं और जो दूर से आनन्द लेते हैं और जो साधु-संन्यासी होकर अनाचार करते हैं, जो व्यभिचार करते हैं, जा भगवान का भजन नहीं करते, जो आत्म चिन्तन नहीं करते, जो शिष्य होकर गुरु की सेवा नहीं करते, उनकी आज्ञा का पालन नहीं करते हैं, जो पुत्र होकर पिता की आज्ञा नहीं मनाते, न उनकी सेवा करते हैं और जो पत्नी होकर पातिव्रत का पालन नहीं करती है और जो अभिभावक होकर अपना कर्त्तव्य नहीं निभाते हैं और जो आचार्य होकर

आचार्यत्त्व का पालन नहीं करते हैं, धर्म की अच्छी व्यवस्था नहीं देते हैं, जो मांस, मदिरा, गांजा, भांग, सिगरेट, बीड़ी, चरस आदि का सेवन करते हैं। उन्हीं के लिए यमराज ध्यान लगाकर बैठे रहते हैं कि कब मैं इन्हें पकड़ूँ और कब इन्हें मैं अपने लोक में ले चलूँ। उपर्युक्त झूलना झूलते हुए करोड़ों कल्प, करोड़ों युग बीत गये परन्तु आज भी कोई उपर्युक्त कुकर्म से विरत होने के लिए तैयार नहीं है और न किंचित थकान का अनुभव ही कर रहे हैं। इतना ही नहीं धरती आकाश भी इस हरि रचित झूलने पर झूल रहे हैं। पवन, पानी भी इस झूले पर झूल रहे हैं। ये लोग भी अहर्निश बेकल हैं, यहाँ तक तो सारा ब्रह्माण्ड झूल ही रहा था परन्तु जो श्रीहरि हैं, जो जगत के कारण हैं, जो भक्त वत्सल हैं वे भी अपने भक्तों के वारण के लिये देह-धरकर इस संसार में आकर झूलते हैं। उनकी भी भक्तों के पीछे परेशानी होते ही रहती है। इस बात को निर्मल, हंस स्वरूप मुक्तात्मा, सद्गुरु कबीर अपनी दिव्य दृष्टि से खड़े होकर देख रहे हैं। यदि किसी को इस झूलने से बचना है तो संत-सद्गुरु के सतसंग में जाना चाहिए और श्री हरि का सुमिरण करना चाहिए। तभी भव दुःख से बच सकता है।

**आशय**—यह संसार लोभ, मोह के दो खम्भों पर टिका हुआ है और यह बड़ा ही आकर्षक है जो बहुत मनोयोग से रचा हुआ है। जिसके कारण संसार के सभी प्राणी इसको देखकर विमोहित हो रहे हैं और मोह में पड़कर अशान्त हैं। छोटे-छोटे जीव ही नहीं, बड़े-बड़े चतुर जीव भी कनक-कामनी को देखकर उनके पीछे दौड़ पड़ते हैं। चाहे वे राजा हों, चाहे वे रंक हों, चाहे वे पूरी पृथ्वी को धारण क्यों न किये हुए हों परन्तु मोह-माया से ग्रसित अवश्य हैं। कर्म के ही अधीन ग्रह बनकर कोई चन्द्र के रूप में, कोई सूर्य के रूप में अहर्निश तप रहा है। वह कर्म की आज्ञा कभी मेट नहीं सकता है। चौरासी लाख योनि भी कर्मानुसार तप रही हैं। मर रही हैं। यमराज के फंदे में, मृत्यु राज के फंदे में मर रहे हैं। अनन्त काल से यह जीव संसार के भोगों को भोग रहा है परन्तु कभी भी उससे इसकी उपरति नहीं होती है। कभी भी उसको त्याग नहीं रहा है, कर्माधीन ही, पृथ्वी भी जड़त्व को प्राप्त होकर नाना प्रकार के संकट को भोग रही है। कर्माधीन ही आकाश भी शून्य होकर दुःख को सह रहा है। कर्माधीन ही यह जीव वायु बनकर नाना प्रकार के कष्टों को भोग रहा है। इसी प्रकार से जल भी कर्मानुसार ही दण्डित हो रहा है। परमेश्वर

भी संसार के पालन-पोषण में अशान्त रहता है। भक्तों के पीछे दौड़ता फिरता है। इसलिए सारा जगत, सारे प्राणी, जो संसार में आते हैं। कभी सुख शान्ति से नहीं रह सकते। इसलिए मनुष्यों को चाहिए की सभी भोगों को त्यागकर नारायण की शरण लें। तब दुःख के छूटकारा पा सकते हैं।

**टिप्पणी:**—(१) ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमिते ब्राह्माण्ड भाण्डोदरे।
विष्णुर्येन दशावतार गहने, क्षिप्तो महासंकटे॥
रुद्रो येने कपाल पाणिपुटके, भिक्षाटनं कारितः।
सूर्य्योभ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्म्मणे॥

(२) स्वतंत्र कर्ता यः कर्त्ता स एव भोक्ता।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥

(३) कर्माण्यत्र प्रधानानि सभ्यगृक्षे शुभे गृहे।
वसिष्ठकृत लग्नापि जानकी दुःख भाजनम्॥
(गरुड़ पुराण-आचार खण्ड, अध्याय ११३/२५)

हिंडोला–इतिशम्॥

छन्दः

सर्व को झूला झूलाकर जिसने झकझोर दिया है विश्व को।
वह हिंडोला समाप्त हुआ जो अखिल ब्रह्माण्ड को नचा दिया सो॥
सारे जगती तल पर विकल मानव मुनि देव दानव जन को।
कर दिया जिसने गंगाशरण दया इनमें नमो उस हरि गुरुदेव को॥

## टीकाकार कृत मंगलाचरण

### हरिगीतिका छन्द

साखी विभाषी ज्ञान की, उस देव का वन्दन करूँ।
जो नाम सत्य कबीर है, तिन पाद रज मस्तक धरूँ॥
सब वेद शास्त्र विचार करि, जो भाषता सद्ज्ञान को।
जेते जगत में पंथ मत, सब ज्ञान अरु अज्ञान को॥१॥
सो सो दिखाया आपने, उस भूल भर्म आचार को।
भाषा विभाषा गूढ़ अति, मति गति नहीं अधार को॥
तेहि अर्थ हित विनती करत, यह दास गंगा जानिये।
हे देवहरि गुरुदेव हे, मम विनय को प्रभु मानिये॥२॥

**दोहा**

अर्थ-भाव भासा सब, दीजै मोहि बताय ।
गुप्त अर्थ नहिं छूटहीं, सब मुझको समझाय ॥१॥
जितनी रीत सुअर्थ की, कहा शास्त्र मुनि संत ।
सो सब मुझमे आवई, भेद भाव सब अन्त ॥२॥
गंगाशरण अनाथ अहा, नाथ दया करि देव ।
बार-बार विनती करूँ, जय-जय हरि गुरु देव ॥३॥
श्रीगुरु राम बिलास प्रभु, नमो निरंतर सोय ।
जिनकी कृपा कटाक्ष बिन, कुछ भी लाभ न होय ॥४॥

# साखी (साक्षी) प्रकरण ११

## अनादि अज्ञान प्रकरण

**जहिया जन्म मुक्ता होता, तहिया होता न कोय ।**
**छठी तुम्हारी हौं जगा, तू कहं चला बिगोय ॥१॥**

**शब्दार्थ**—जहिया–जब, जिस समय । मुक्ता–मुक्त, जन्म-मरण से रहित । होता–था, होते । तहिया–तव, उस समय । कोय–कोई । छठी–मन, जन्म के छट्ठे दिन सूर्य षष्ठी । हौं–मैं, अहंकार । जगा–जाग, उत्पन्न हुआ । तू–तुम, जीवात्मा । कहं–कहाँ । बिगोय–नरक, दुःखालय नष्ट, पतनोन्मुख रसातल में जा रहा है । साखी–साक्षी दोहे की एक उपजाति व दोहा जिसमें तेरह-ग्यारह पर यति लगती है चौबीस मात्रा का दोहा छन्द होता है । साखी प्रकरण में आगे के पदों में कहीं-कहीं दूसरे छन्द भी हैं जैसे—दोहा छन्द, सार छन्द, सरसी छन्द, रूप माला छन्द, चौपाई छन्द भी दो तीन स्थानों में आ गये हैं ।

**सम्बन्ध**—इसके पहले हिंडोला प्रकरण में संसार रूपी झूले पर अखिल ब्रह्माण्ड के प्राणी झूल रहे हैं और जो झूलना बना है वह बड़ा ही विचित्र है । प्रथम तो कहा गया है कि उक्त झूलने में पाप-पुण्य के दो खम्भे लगे हुए हैं और दोनों के बीच में कड़ी का काम माया करती है । जिस पर झूलना अवस्थित है । अर्थात् माया के ऊपर स्तम्भित है । उसके पश्चात् कहा गया है कि इस संसार को केवल माया ने ही नहीं बसाया है इसका मूल उपादान कारण और मूलाधार परमेश्वर ही है और उसी को मानना चाहिए । क्योंकि दूसरे हिंडोले में कहा गया है कि बहुत प्रकार

के चित्रों को बनाकर परमेश्वर ने ही क्रीड़ा रास रचा है। अर्थात् संसार में अनेक प्रकार की सृष्टि करके उन जीवों से भूत भावन परमेश्वर स्वयं क्रीडा करता है। तदुपरान्त यह कहा गया है कि झूलने के दोनों खम्भे लोभ और मोह के लगे हैं और उक्त झूलना बडो चतुरता के साथ मनोयोग से निर्मित किया गया है। अर्थात् संसार लोभ, मोह पर ही अवस्थित है। संसार के समस्त प्राणी लोभ और मोह में सने हुये हैं और मोहित होकर संसार की सर्जना करते रहते हैं। इसलिए उन्हें आत्मज्ञान और प्रभु की प्राप्ति नहीं हो पातो है। अब नीचे साखी प्रकरण में कहा जा रहा है कि यह जीव अनादि काल से लोभ-मोह-क्रोध के कारण बन्धन में बँधा चला आ रहा है। जिस हेतु से निरन्तर जन्म और मरण का चक्र चालू रहता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर साक्षी नामक प्रकरण को बीजक के अन्त में रखा है। जिसका अर्थ होता है साखी। छन्द जिसका दोहा है और साखी छन्द की उत्पत्ति गुरुगोरखनाथ जी के द्वारा बताई जाती है उसके बाद नामदेव जी के ग्रन्थों में साखी पद के दर्शन होते हैं।

सद्गुरु कबीर साहब से साखी व दोहे छन्द का प्रकरण ही चल पड़ा है। अपने सभी प्रकार के उपदेशों को साखी के माध्यम में सन्तों ने आख्यायित किया है। चाहे वह आध्यात्मिक हो, चाहे वह सामाजिक हो, चाहे वह नीति विषयक हो साखी के माध्यम अनेक उपदेश से कहा गया है। इस साखी प्रकरण में और कई प्रकार के छन्द आये हैं जैसे सार छन्द, सरसी छन्द, रूप-माला छन्द, चौपाई छन्द भी आयी हैं परन्तु इनकी संख्या नगण्य है। साक्षी का अर्थ ग्राम्य भाषा में गवाह को कहते हैं। यद्यपि गवाह शब्द फारसी भाषा का है परन्तु लोक में साक्षी का गवाह के रूप में हो अधिक प्रसिद्धि हो गयी है। गवाही किसो वाद में व मुकदमें में ही दी जाती है। वादी व प्रतिवादी की ओर से तोसरा व्यक्ति गवाह होता है जो न्यायाधीश के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करता है। यहाँ पर जो विवाद है वह चेतन और माया का अर्थात् जीव जो अनेक सांसारिक झगड़ों में फंसा है। उसका निवारण कैसे होगा, जीव को अपने स्वरूप का ज्ञान कैसे होगा, सत्य की पहचान कैसे कर सकेगा, आत्मतत्त्व का साक्षात्कार कैसे कर सकेगा ब्रह्मविद् कैसे होगा, आत्मा को कैसे जानेगा इत्यादि सभी प्रश्नों का उत्तर साक्षी प्रकरण में दिया गया है और यह कहा गया है कि ब्रह्मज्ञान होने पर ही यह जन्म-मरण से परे हो सकता है। अन्य कोई दूसरा मार्ग नहीं है जिसको यह जीव अपना सके। यों तो यह साखी प्रकरण अनेक प्रकार के उपदेशों

की भरमार लगा दिया है। सामाजिक एवं नैतिक की कोई भी बात छूट नहीं पाई है।

**साखी का अर्थ**—अब सद्गुरु कहते हैं कि यदि यह जीवात्मा पहले से मुक्त होता तो पुनः इसका जन्म कैसे होता इसलिए यह अनादि काल से अज्ञान के कारण जन्मते मरते आ रहा है क्योंकि सद्गुरु कहते हैं कि 'जहिया जन्म मुक्ता होता तहिया होता न कोय' अर्थात् यह जब जन्म से मुक्त होता तब इसको जन्म लेने की कोई आवश्यकता नहीं होती इसलिए ये कभी मुक्त नहीं हुआ था। क्योंकि इसको आत्म ज्ञान कभी हुआ ही नहीं था। यदि आत्मज्ञान हुआ होता तो फिर यह बन्धन में नहीं पड़ता इसी से सिद्ध होता है कि यह जीव अनादि काल से अमुक्त है। यद्यपि कुछ टीकाकारों ने मुक्त का अर्थ स्वरूप से मुक्त माना है। परन्तु दूसरे टीकाकारों ने कहा है कि प्रलय काल आदि में ये जन्म से मुक्त था। इसके कोई सम्बन्धी नहीं थे इत्यादि प्रकार के अर्थ किये गये हैं। परन्तु मूल साखी के वाक्यों पर विचार करना चाहिए। 'होता' के स्थान पर कहीं-कहीं 'हता' शब्द भी पाठ उपलब्ध है। परन्तु अधिक पुरानी प्रतियों में जिनकी संख्या अधिक है 'होता' शब्द ही मिलता है लगता है कि छन्द में मात्रा की अधिकता के कारण 'ओ' को हटाकर 'हता' कर दिया गया है परन्तु 'ओ' को हटाने से साखी का सीधा अर्थ समाप्त हो गया है क्योंकि 'हता' भूतकाल का बोधक है जो सच्चे अर्थ को प्रकट करने में असमर्थ है इसलिए मैंने पुराने पाठ को ही रखा है। हमारे पास बीजक के बहुत से हस्तलेख हैं और मुद्रित पुस्तकें भी विद्यमान हैं। जिनमें 'होता' शब्द की अधिकता है यदि 'हता' के स्थान पर 'होता' शब्द प्रमाण स्वरूप मान लिया जाय तो अर्थ स्पष्ट रूप से मोति की भांति चमकने लगता है। 'हता' शब्द होने पर अर्थ भूतकाल का सूचक होने के कारण अर्थ में बहुत खींचा-तानी हो गयी है। जिससे अर्थ की सत्यता छिप जाती है। 'हता' के कारण ही श्रीपूरण साहब ने अर्थ की नयी सृष्टि की है। उनकी पक्की देह की विचित्र कल्पना है और उसी प्रकार की कच्ची देह की रचना भी है। जिन्होंने कल्पना की उड़ान में आकाश और पाताल को एक कर दिया है। जिसका उदाहरण अन्यत्र नहीं मिलेगा। इसी प्रकार से दूसरे टीकाकार महोदयों ने अपना मन चाहा अर्थ 'हता' के कारण किया है परन्तु प्रथम साखी का अर्थ स्पष्ट रूप से है कि यह जीवात्मा जब प्रथम शरीर से और अज्ञान से मुक्त होता तो यह पुनः शरीर धारण नहीं करता। इसलिए यह जीवात्मा अभी तक स्थूल और

सूक्ष्म शरीर से संयुक्त रूप से चला आ रहा है। ज्ञानाभाव में अभी तक मुक्त नहीं हुआ है।

सद्गुरु कहते हैं कि पंच ज्ञानेन्द्रियों का स्वामी जो मन है उसी में अहंकार जगा कि मैं शरीर हूँ, मन ने ही चेतन को भूलकर शरीर में तादात्म्य भाव उत्पन्न किया। यद्यपि मन जड़ है परन्तु चेतन के समीप होने से क्रियाशील होते रहता है। जिसके कारण जीव से संपृक्त होकर देह-आत्मवादी हो गया है इस पर सद्गुरु ने कहा कि तुम अहंकार वाला है और अहंकार के कारण तुम्हारी छठी इन्द्रियाँ में 'अहम्' शब्द जागृत हुआ। परन्तु अब तू चेतकर तू देह नहीं है, तू देह से भिन्न देही है, चेतन है, आत्मा है, सत्य है, चित्त है, आनन्द घन है इसलिए तुम अपने से शरीर को अलग कर, चेतन को अलग कर अपने स्वरूप का और इस शरीर को पृथक जानकर अलग हो जाओ और तुम अब 'विगोय' न जाओ अपने को नष्ट न करो। क्योंकि तुम मानव शरीर में आ गया है। इसलिए सत्य, असत्य का निर्णय करो। क्यों कर नष्ट हो रहा है। यह सहज उपर्युक्त साखी का अर्थ है इसमें कोई खींचा तानी नहीं की गयी है और अर्थ भी स्पष्ट है।

**सबद हमारा तू सबद का, सुनि मति जाहु सरकि।**
**जो चाहो निज तत्तु को, तो सबदहिं लेउ परखि ॥२॥**

**शब्दार्थ**—सबद–शब्द, पद, उपदेश, ओंकार–शब्द ब्रह्म, ध्वनि, आप्त वचन, आप्त पुरुष द्वारा व्यक्त ज्ञान, स्फोट। हमारा–मुझ कबीर का। तू–तुम जीव। मति–नहीं। जाहु–जाओ। सरकि-खिसक, चला जाना। निज–अपना। तत्तु–आत्म तत्त्व।

**सम्बन्ध**—पहली साखी में कहा गया है कि यह जीवात्मा अनादि काल से मुक्त नहीं है। इसलिए यह बार-बार नष्ट होते आ रहा है नीचे कहा जा रहा है कि यदि सत्य उपदेश ओंकार व आत्म उपदेश से सम्बन्ध करोगे तो तुम्हारा कल्याण सम्भव है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे मनुष्यो ! जो हमारा शब्द है, वह आत्मा को बताने वाला है वह सत्य को जनाने वाला है। उसमें किसी प्रकार का धोखा नहीं है, वह शब्द अर्थात् ज्ञान सत्य स्वरूप है, प्रणव स्वरूप है। जो चेतन का दूसरा पर्याय तू जीव भी उसी ओंकार रूपी शब्द का है जो तुझे मैं चेतन का उपदेश कर रहा हूँ इसलिए तुम उस शब्द को

सुनो। तू मेरे शब्द को सुनकर, मेरे उपदेश को सुनकर कहीं खिसको व सरको नहीं, कहीं भागो नहीं यदि तू अपना कल्याण चाहता है तो अपने निज तत्त्व को जो तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है तू उसको यदि चाह रहे हो; उसकी प्राप्ति की कामना कर रहे हो। यदि तुझे आत्म प्राप्ति की प्रबल इच्छा है तो मेरे शब्द को परख ले। विवेक कर ले कि मेरा शब्द सत्य है या असत्य है स्वयं तुम विचार करके देखो। तब तुम ग्रहण करो।

**सबद हमारा आदि का, सबदै पैठा जीउ।**
**फूल रहनि की टोकरी, घोरैं खाया घीउ ॥३॥**

**शब्दार्थ**—आदि–आरम्भ, सबका आदि। पैठा–निवास। जीउ–जागृत अवस्था वाला चेतन। फूल–पुष्प, सद्ज्ञान, सद्बुद्धि, शुद्ध स्वरूप, आत्मा। टोकरी–डलिया, शरीर। घोरैं–मट्ठा, छाछ, माया घोड़ा,। घीउ–आत्म विचार।

**सम्बन्ध**—प्रथम कहा गया है कि शब्द जो ओंकार स्वरूप चेतन है वह हमारा ध्येय है और तुम भी उसी चेतन ओंकार का है और अन्त में कहा गया कि उस ओंकार रूपी चेतन का पारख कर लो। अब उस सृष्टि कर्ता को कहा जा रहा है कि वह सबका आदि है। क्योंकि अमृत उपनिषद् में शब्द को ओंकार माना है और वह ओंकार चेतन स्वरूप ही है। ओंकार से बहुत से कबीर पंथी भिनकते हैं परन्तु सद्गुरु कबीर अपनी वाणी के अन्तर्गत कई स्थानों में ओंकार की चर्चा की है। एक अक्षर की चर्चा की है और ढ़ाई अक्षर की भी चर्चा की है और कहा है कि जो ढ़ाई अक्षर को जानता है। वही पंडित होता है और दूसरे में कहा है कि 'एकै आखर पीव का, पढ़ै सो पण्डित होय'। वेदों एवं उपनिषदों में ओंकार को ही एक और ढ़ाई अक्षर वाला कहा गया है चूंकि कबीर साहब परम्परागत नामों को ही अपनी वाणी में उल्लेख किया है। अनभिग्यता के कारण कुछ लोग ओंकार को माया व जाल बताते हैं परन्तु न उन्हें शास्त्र का ज्ञान है, न सन्त पुरुषों की सेवा की है इसलिए अनाप-सनाफ जन साधारण के सामने बोलते रहते हैं। क्योंकि ओंकार का अर्थ ही चेतन होता है और पर्यायवाची में उसी को राम कहते है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जिसके स्फोट होने से अखिल ब्रह्माण्ड का उद्भव होता है। जिससे सारी सृष्टि निःसृत होती है। वह 'स्फोट स्वरूप' वाला ओंकार जो चेतनों का चेतन है। वही सबका आदि है और उसी अनादि ब्रह्म में जो शब्द स्वरूप है। इस जागृत अवस्था वाले

चेतन का निवास है परन्तु यह जागृत अवस्था वाला चेतन उसके अंदर होते हुए भी अज्ञान के कारण उसको चीन्ह नहीं पा रहा है और जो यह मानव शरीर पाया था। जिसको टोकरी की संज्ञा दी गयी है। उसमें रखने के लिए पुष्प चाहिए था अर्थात् परमेश्वर ने सद्गुण के लिए, आत्मज्ञान के लिए मानव शरीर रूपी टोकरी की संरचना की थी, परन्तु सद्गुण के अतिरिक्त शरीर रूपी टोकरी में काम, क्रोध लोभ, मोह को रखने लगा। जिस प्रकार से दही के पात्र में व मक्खन के पात्र में अधिक दिन तक रहने से मक्खन के घृत को मट्ठा खा जाता है। जिस प्रकार से नवनीत में थोड़ा सा भी मट्ठा रहने पर घृत का नाश कर देता है। उसी प्रकार से शरीर रूपी पात्र में घृत रूपी आत्मा को माया मोह व तृष्णा का यत्किंचित् रहना भी खा गया, अर्थात् आत्मज्ञान के अभाव में इस जीवात्मा का अन्य योनियों में निवास हो गया।

**सबद बिना सुरति आंधरी, कहो कहां को जाय।**
**द्वार न पावै सबद का, फिर-फिर भटका खाय ॥४॥**

**शब्दार्थ**—सुरति–स्मृति, सुध. स्मरण, ध्यान, याद, मन की अग्रिम शक्ति, वृत्ति जिसके द्वारा योगी लोग अष्ट कमलों का वेधन करते हैं वह सुरति है। आंधरी–अंधी, विवेक हीन। द्वार–मार्ग। सबद–शब्द, परम-तत्त्व, आत्म उपदेश। भटका–यत्र-तत्र, अनावश्यक धक्का खाना, दूसरी योनियों में जाना।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि परम तत्त्व और जीव का लगाव नित्य समवेत की तरह है परन्तु उसको न जानने के कारण यह जीवात्मा जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा रहता है। नीचे कहा जा रहा है कि जो शब्दात्म परम तत्त्व है उसके बिना जीव की सुरति अंधकार में फंसी हुई है, गुरुदेव कहते हैं कि आत्म ज्ञान के बिना सुरति कुण्ठाग्रसित हो गयी है।

**मूलार्थ**—सत्य ज्ञान से वंचित मानव की स्मृति में सत्य का भास नहीं होता है जब तक सुरति में आत्मा का प्रकाश नहीं पड़ेगा तब तक भला शुद्ध मार्ग को कैसे प्राप्त कर सकती है जो आत्म प्रदेश में जाने का मार्ग है। उस प्रदेश का रास्ता पशु आदि योनियों में जाने से प्राप्त नहीं हो सकता। क्योंकि आत्म प्रदेश का द्वार मानव योनि में गुरु के उपदेश के द्वारा ही सम्भव है। सुरति जब अन्धकार में फँस जाती है। तब वह आत्मतत्त्व का मार्ग नहीं पा सकती है। जिसके कारण संसार में पुनः पुनः भटका खाते रहती है। अर्थात् जन्म-मरण के चक्र में निरन्तर घूमते

रहती है। इसलिए उस परम शब्द की उपासना शरीर स्वस्थ रहते करनी चाहिए और उसकी प्राप्ति करना ही मानव का परम कर्त्तव्य है।

**सबद-सबद बहु अन्तरे, सार सबद मथि लीजै।**
**कहैं कबीर जंह सार सबद नहिं, ध्रिग जीवन सो जीजै ॥५॥**

**शब्दार्थ**—अन्तरे–अन्तर, भेद, अलगाव। सार सबद–मूलतत्त्व का उपदेश ज्ञान, जिसका कभी नाश न हो, राम–नाम। मथि–विचार, विवेचन। जंह–जहाँ, जिसमें। ध्रिग–धिक्। जीजै–छीजै, दुखी हो, दीजै।

**सम्बन्ध**—प्रथम कहा गया कि आत्मा की प्राप्ति का मार्ग गुरु विमुख होने के कारण मनुष्य को नहीं मिलता है जिसके कारण बार-बार अनेक योनियों में भटकते रहता है नीचे कहा जा रहा है कि जन्म-मरण से बचने के लिए सार शब्द को ग्रहण करना चाहिए।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि शब्द-शब्द में बहुत अन्तर है, बहुत भेद है, कोई अनाहत शब्द को सत्य मानकर उपासना करता है कोई केवल 'ॐ' शब्द को सत्य मानकर उपासना करता है। कोई छाया शब्द को सिद्ध करता है। कोई ब्रह्म शब्द की उपासना करता है। कोई प्रतिबिम्ब शब्द की उपासना करता है कोई मन्त्र शब्द की उपासना करता है। कोई केवल उस नाद की उपासना करता है जो साधना की प्रथम अवस्था में सहस्रार में गूंजते रहता है। इस प्रकार से शब्दों में बहुत भेद है और अन्तर है परन्तु यहाँ पर सार शब्द पर विवेचन करने को कहा जा रहा है। रमैनी प्रकरण में सद्गुरु सार शब्द का उल्लेख किया है। वे कहते हैं कि 'राम-नाम इहै निजु सारु, औरो झूठ सकल संसारु ॥' कबीर साहब के मतानुसार सार शब्द राम-नाम आत्मतत्त्व, चेतन तत्त्व, ब्रह्म तत्त्व इत्यादि। वही सार शब्द है सद्गुरु कहते हैं कि मैं कबीर कहता हूँ कि जिस व्यक्ति में, जिस सम्प्रदाय में, जिस पंथ में, जिस सिद्धान्त में परमतत्त्व रूपी सार शब्द आत्मतत्त्व की अवधारणा नहीं है। व मान्यता नहीं है उस जीवन का और उस समाज को धिक्कार है। क्योंकि सार शब्द के बिना वह समाज वह व्यक्ति उस सम्प्रदाय के लोग वृथा में ही जीवन विकल कर रहे हैं और दुःख देते हैं। झूठे शब्दों में जड़ उपासनाओं में अकारण ही अपने जीवन को नष्ट कर रहे हैं। इसलिए जो सार शब्द है जो राम-नाम है, जो परमतत्त्व है उसी का चिन्तन मनन करना चाहिए।

**सबदै मारा गिर परा, सबदहिं छोड़ा राज।**
**जिन्ह-जिन्ह सबद विवेकिया, तिन्ह को सरिगौ काज ॥६॥**

**शब्दार्थ**—सबदै–शब्द, हितकारी वाक्य के शब्द द्वारा मर्माहत किया जाना। सबदहिं–शब्द, गुरु और सन्त के आध्यात्म विषयक शब्द। तिन्ह–तिन, वे लोग, वे। विवेकिया–शब्दों के विवेक करने वाले। सरिगौ–सफल। काज–कार्य।

**सम्बन्ध**—इसके पहले शब्द-शब्द में बहुत अन्तर बताया गया है और सार शब्द की महिमा बताई गयी है। अब कहा जा रहा है कि शब्द के द्वारा व्यक्ति मर्माहत भी हो जाता है। क्योंकि 'एक शब्द कर औषधि, एक शब्द कर घाव।' के अनुसार शब्दों में बड़ी शक्ति होती है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि शब्द में बड़ा बल होता है। संसार का व्यवहार शब्द के आदान-प्रदान से ही होता है। इसलिए शब्द का बहुत बड़ा महत्त्व है। सद्‌गुरु शब्द से मार कर जिज्ञासुओं को गिरा देता है, अर्थात् वह संसार की ओर से सद्‌गुरु के उपदेश के द्वारा मुड़कर आत्मा की ओर हो जाता है और कोई-कोई कुवाक्यरूपी शब्द के द्वारा प्राण तक त्याग देता है। शब्दों से मूर्छा भी आ जाती है, कोई लगने वाला शब्द सुनकर मनुष्य घर-द्वार भी त्याग देता है। इसी प्रकार से सद्‌गुरु के शब्द द्वारा बड़े-बड़े राजे-महराजे सम्राटों ने राज पाठ त्यागकर अध्यात्म चेता हो गये तात्पर्य यह है कि आत्मोपदेशात्मक शब्दों के द्वारा मानव सांसारिक हठ को त्याग देता है। सांसारिक विषय वासनाओं से और सांसारिक आसक्तियों से विरत हो जाता है। साथ ही संसार के समस्त सम्पदा को छोड़कर भगवान के शरणापन्न हो जाता है। सद्‌गुरु ने कहा है कि जो-जो शब्द का विवेक-किया कि क्या सत्य है क्या असत्य है। जो आत्मा और संसार में सम्पृक्तता हो गयी है। उस ग्रन्थि को विवेक के द्वारा जिन पुरुषों ने संसार को अलग कर दिया और आत्मा को अलग करके जान लिया, उनका सारा कार्य सफल हो गया। उन्होंने शम, दम उपरति, श्रद्धा, समाधान और तितिक्षा को स्वयं सिद्ध कर लिया, इसलिए सद्‌गुरु के शब्द को मनुष्यों को सदा ध्यान रखना चाहिए और उसका विवेक करना चाहिए।

**सबद हमारा आदि का, पल पल करहू यादि।**
**अंत फलैगी माहुली, ऊपर कै सब बादि ॥७॥**

**शब्दार्थ**—आदि–आरम्भ, पूर्व का। पल-पल–क्षण-क्षण। यादि–स्मरण। अंत–बाद में। फलैगी–परिणाम होगा। माहुली–महल का, महालय में रहने वाला, अन्तःपुर का सेवक जो राजा के महालय के अन्तःपुर में रानियों के सेवक के रूप में रहता है। जो बाहर-भीतर दोनों तरफ का कार्य करता है। नपुंसक पुरुष। जिज्ञासु, भगवद् भक्त, हृदय में बसने वाला तत्व। ऊपर–बाह्य, क्रिया कलाप, सेवा पूजा। वादि–बेकार, प्रमाणित हो जायेंगे, अनावश्यक हो जायेंगे।

**सम्बन्ध**—पहले कहा गया है कि जो शब्द का विवेक करता है। उसका कार्य सफल हो जाता है। अब कहा जा रहा है कि शब्द जो हमारा है। सबको आदि है। सबका आरम्भ है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जो प्रणवरूप, परमतत्त्व रूप शब्द है। वह आदि कहिये, अर्थात् जिसका उपदेश मैं कर रहा हूँ वह हमारा उपदेशात्मक सत्य प्रारम्भ से ही चला आ रहा है। उसका प्रत्येक क्षण स्मरण करना चाहिए, जो प्रत्येक क्षणों में उक्त शब्द में लगा रहता है। अन्ततोगत्वा उसका परिणाम सर्व सुखदायी होता है। वह हृदयरूपी महालय का सेवक हो जाता है। जो हृदय में स्वामी बसा हुआ है उसके समीप वह माहली का काम करता है। उस साधक के ऊपर के सभी क्रिया-कलाप, नहाना-धोना, पूजा-पाठ जो भी दिखावे के हैं वे निरर्थक हो जाते हैं। इसलिए हमारे शब्द को क्षण-क्षण पल-पल में स्मरण करो। किसी-किसी टीकाकार माहुली का अर्थ विष फल भी किया है जो प्रकरण के अनुसार अनुक्त है।

## परलोक परिगम प्रकरण

**जिन्ह-जिन्ह संबल ना कियो, असपुर पाटन पाय।**
**झालि परे दिन आथये, संबल कियो न जाय ॥८॥**

**शब्दार्थ**—जिन्ह–जो-जो। संबल–मार्ग व्यय, रास्ते का खर्च, परलोक का साधन, भजन। अस–इस प्रकार का। पुर–ग्राम्य, शरीर, मानव तन। पाटन–पत्तन, नगर, मृत्यु लोक। पाय–प्राप्त कर। झालि–सन्ध्या, अन्धकार, वृद्धावस्था। परे–आ जाने पर। दिन–जीवन। आथये–अस्त हो गया। संबल–व्यय। कियो–फिर नहीं कर सकता।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि जो मेरे शब्द का सदैव अभ्यास करता है, उसके कार्य सफल हो जाते हैं। वह आत्म प्रदेश में पहुँच जाता

है। अब कहते हैं कि जो मानव तन पाकर परलोक के लिए साधन नहीं किया है। उसका जीवन निरर्थक में ही गया।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जिन-जिन लोगों ने परलोक के लिए खर्च-वर्च नहीं लिया अर्थात् इस मानव शरीर में रहकर जिसने आत्म प्राप्ति का रास्ता नहीं अपनाया। इस मानव लोक जैसा सुन्दर पद तन में आकर मानव तन को प्राप्त कर बिना कुछ सत्कर्म किये रह गया। दिन कहिये जीवन भर इस मनुष्य लोक में व्यर्थ में ही भ्रमण करते रहा। तो जीवन के अन्तरूपी सन्ध्या आने पर अर्थात् वृद्धावस्था आने पर जीवनरूपी दिन का अस्त हो गया। मानव योनि से पशु आदि योनियों में चला गया। इस पर साहब कहते हैं कि क्रय-विक्रय मानव शरीर में ही हो सकता था, जो भी कुछ साधन भजन, तत्त्व चिन्तन होना था, तो यह मानव तन में ही हो सकता था। अब जीवन का अन्त हो गया, यह जीवात्मा पशु आदि योनियों में जाने पर न वहाँ परलोक का कुछ साधन कर सकता है। न किसी प्रकार का परलोक में जाने का व्यय स्वरूप सम्बल ही खरीद सकता है। क्योंकि जीवन का अन्त हो चुका है। अब अन्तकाल के लिए मानव लोक से परिगमन कर दिया।

**इहाँ ही संबल करिले, आगे विखमी बांट।**
**सरग बिसाहन सभ चले, जहाँ बनिया नहिं हाट ॥९॥**

**शब्दार्थ**—इहाँ ही–यहीं पर, मानव तन में, मानव लोक में। संबल–मार्ग व्यय। करिले–खरीद ले। आगे–मानवेत्तर योनियों में। विखयी–विषया ऊब्रड़ खाबड़, ऊँच नीच, विषम वाट, मार्ग। सरग–स्वर्ग, परलोक में, मरणान्त में। बिसाहन–क्रय, खरीदन। बनिया–वणिक, सद्गुरु। हाट–मंडी, बाजार।

**सम्बन्ध**—पहले कहा गया कि मानव चोला पाकर जो साधन भजन नहीं किया अपना परलोक नहीं बनाया वह मरने के बाद कुछ नहीं कर सकता है। अब कहा जा रहा है कि मानव तन में ही रहकर सुमिरन भजन रूपी संबल को खरीद लें।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि इस मानव तन में ही रहकर परलोक के लिए आत्म प्राप्ति के लिए साधन भजन रूपी संबल कर लो। मानव तन से आगे जाने पर दूसरी योनियों में व देवलोक में जाने पर बहुत कठिन रास्ता है। ऊँच-नीच है, देवलोक में विषय भोग ही प्रधान है।

इसलिए वहाँ की वार्ता ही नहीं है और मानवेत्तर योनियों में तत्त्व चिंतन का साधन ही नहीं है। संसार के लोग मरने के बाद स्वर्ग प्राप्ति करना चाहते हैं और कहते हैं कि वहीं चलकर मुक्ति रूपी सौदा खरीद लेंगे परन्तु सद्गुरु कहते हैं कि स्वर्ग में न सद्गुरु रूपी वणिक है, न वहां कोई हाट है जहाँ पर तुम मुक्ति की कामना करते हो। यह तुम्हारा विचार बिल्कुल उल्टा है जो कुछ होगा तो इसी मानव लोक में ही होगा।

## नर तन में जीव का महत्व प्रकरण

**जो जानहु जिउ आपना, करहु जीउ को सार।**
**जिअरा ऐसा पाहुना, मिलै न दूजी बार ॥१०॥**

**शब्दार्थ**—जिउ–जीव। आपना–निजी। सार–सार्थक, असली, उत्तम ब्रह्म। जिअरा-जीव। पाहुना–अतिथि। दूजी–दूसरी बार।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि मानव तन में ही सब कुछ होने वाला है मरणोपरान्त कोई साधन भजन नहीं बनेगा क्योंकि जिन लोकों की तुम आशा किये हो कि वहीं पर उन्हीं लोकों में जाने पर सुख मिलेगा तो वह सब तुम्हारी निराशा का द्योतक है। अब कहा जा रहा है कि जो तू अपने जीव से अपने स्वरूप से प्यार करना चाहता है तो उसके उद्धार के लिए प्रयत्न कर।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे मनुष्यों ! यदि तुम अपने जीवन को सुखमय बनाना चाहता है तो इसी मानव लोक में अपने जीव को ब्रह्म बना ले। परम तत्त्व की प्राप्ति कर लो। क्योंकि ऐसा मानव तन वाला जीव जो अतिथि के जैसा है वह फिर मिलने वाला नहीं है वह पाहुना दूसरी बार तुम्हारे घर नहीं आ सकता है इसलिए जो कुछ भी करना-धरना हो तो इसी मानव लोक में ही कर लें।

**जो जानहुँ जग जीवना, जो जानहुँ तो जीउ।**
**पानी पचावहुँ आपना, पनिया मांगी न पीउ ॥११॥**

**शब्दार्थ**—जो–यदि। जानहुँ–जानते हो। जग–संसार। जीव–जीवात्मा। पानी–जल, आत्मज्ञान। पचावहुं–पचाओ, अपने अन्दर में ही अपनी वस्तु को रखो। पनिया–पानी, किसी से आशा न करो। पीउ–पीना।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि जो अपने से तू प्रेम करना चाहता है तो अपने जीवन को उन्नत बनाओ, विकसित बनाओ, क्योंकि ऐसा मानव

जीवन पुनः मिलने वाला नहीं है मानव रूपी जीवन तुझे पुनः नहीं मिलेगा। अब नीचे कहा जा रहा है कि यदि तू जग में सुख से जीना चाहता है तो जीवन का महत्त्व दो।

**मूलार्थ**—गुरु महाराज कहते हैं कि यदि संसार में तू सुख पूर्वक निवास करना चाहता है तुम अपने जीवन को सुखी रखना चाहता है तो इस जीवात्मा का महत्व समझो और जानो क्योंकि इस समय यह मानव तन पाया है जो भी तू करना चाहोगे वह कर सकते हो जो तुम्हें गुरुओं के द्वारा यत्किंचित् पानी के समान शीतल करने वाला ज्ञान प्राप्त हुआ है जब तक तू स्वयं अपने समर्थ नहीं हुए हो तब तक अपनी साधना को अपने अन्दर ही पचाओ और अपनी साधना को पूरी कर लो और तेरे से ही सब कुछ होने वाला है। तू दूसरे की आशा मत कर कि तुझे कोई दूसरा अपना साधन दे देगा तू किसी दूसरे से अपेक्षा मत रख कि पानी रूपी शांति व मुक्ति कोई आकर दे देगा। वह तो स्वयं तुझे प्राप्त करना होगा। इसलिए अपनी साधना को पूरी करो।

**पानी पिआवत का फिरो, घर-घर सायर बारि।**
**त्रिखावंत जो होयगा, पीवेगा झख मारि ॥१२॥**

**शब्दार्थ**—पानी–उपदेश। पिआवत–करते, देते, पियावते। सायर–समुद्र, जल राशि। बारि–जल, आत्मा, जिज्ञासा। त्रिखावंत–जिज्ञासु, चाहने वाला। पीवेगा–ग्रहण करेगा। झख–हार कर, स्वयं जिज्ञासु बनकर, मछली। मारि–हार, दाव में।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि तुम अपने जीवन का महत्व देते हो तो तुम्हारे अन्दर जो शब्द विचार सदुपदेश है उसको अपने जीवन विकास में लगाओ दूसरे की अपेक्षा मत करो। तू स्वयं प्रयत्न करो।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे भला मनुष्य ! हे जिज्ञासु साधक ! तू जो घर-घर उपदेश रूपी जल पिलाते फिरते हो आत्म ज्ञान देते फिर रहे हो सभी को कह रहे हो कि सावधान हो जाओ चेत जाओ ज्ञान की राशि आत्म तत्त्व विषयक प्रत्येक व्यक्तियों के अन्दर है। अच्छा बुरा का ज्ञान सभी को है। सभी लोग अपने कल्याण की बात जानते हैं। इसलिए तुम दूसरे के फेर में मत पड़ो। पहले अपने आचरण में उतारो तब दूसरो को देने की बात करो। जो आत्म तत्त्व की प्राप्ति की जिज्ञासा करता होगा अर्थात् जो जिज्ञासु होगा वह झख मार कर अपने आप आकर तेरा उपदेशामृत पीवेगा इसलिए शांत चित्त रहो।

**हंसा मोति बिकानियाँ, कंचन थार भराय।**
**जो जाको मरम न जाने, ताको काह कराय ॥१३॥**

**शब्दार्थ**—हंसा-जीवात्मा, शुद्ध जीव का स्वरूप। मोति-जो शीशे की माला बनाई जाती है, दूसरी मोती जो समुद्र से प्राप्त की जाती है जिसकी कीमत बहुत है, मुक्ता। बिकानियाँ-बिक गया। कंचन थार-सोने की थाली, मानव शरीर। भराय-भरा, पुरा। जाको-जिसका। मरम-भेद, रहस्य। ताको-उसको। काह-क्या। कराय-किया जाय।

**सम्बन्ध**—ऊपर निषेध किया गया कि अनाधिकारी के प्रति तत्त्व चर्चा मत सुनाओ जिसकी इच्छा होगी वह आकर स्वयं तुमसे मांगकर ग्रहण करेगा अब कहा जा रहा है कि सद्ज्ञान की बिक्री हो रही है। अर्थात् सद्गुरु सद्ज्ञान दे रहे हैं उसको कोई लेने वाला चाहिए।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे जिज्ञासुओं! हे आत्म इच्छुकों आत्म ज्ञान रूपी मोती व मुक्ता की बिक्री सद्गुरु के द्वारा हो रही है अर्थात् सद्गुरु जिज्ञासुओं को आत्मज्ञान का वितरण कर रहे हैं। वह भी कंचन रूपी वाणी में मानव तन रूपी थाल में भरकर अर्थात् स्वयं जो अपने अन्तःकरण को कंचन के सदृश सब तरह से चमकीला बना लिए हैं वे गुरुदेव आत्म ज्ञान का उपदेश कर रहे हैं परन्तु जो अनभिज्ञ हैं सद्गुरु का भेदी नहीं है उस मोती के सदृश चमकता हुआ प्रकाश करता हुआ आत्मज्ञान को नहीं जान सकता है। आत्म-उपदेश को वही ग्रहण कर सकता है जिसका अन्तःकरण स्वच्छ हो गया है और जो मूर्ख है वह उसका भेद ही नहीं जान सकता है। इसलिए उस दिशा शून्य के लिए क्या किया जा सकता है? वह किसी प्रकार से आत्मज्ञान के योग्य नहीं है।

**हंसा तू सुबरन बरन, का बरनो मैं तोहि।**
**तरिवर पाय पहेलिहो, तबै सराहौं तोहि ॥१४॥**

**शब्दार्थ**—सुबरन-सुवर्ण, सोना। बरन-वर्ण, जाति। वरनों-बखानू। मैं-कबीर। तोहि-तुझको। तरिवर-वृक्ष, पेड़, मानव-शरीर। पाय-प्राप्त कर। पहेलिहो-तरोगे, ठेल जाओगे, अवहेलना करना, छोड़ना, त्यागना। सराहौं-तभी तुम्हारी प्रशंसा करूँगा।

**सम्बन्ध**—पहले कहा गया कि ज्ञान रूपी मोती की बिक्री हो रही है परन्तु जो उसका मर्म नहीं जानता है वह खरीद नहीं पाता है।

अब नीचे कहा जा रहा है कि मानव तन में आने से तुझे आत्मा का ज्ञान होना चाहिए था।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे जीवात्मा ! तू सुवर्ण जाति वाला है। तेरे में कोई विकार नहीं है तू मल से रहित है। तुम्हारा जो स्वरूप है वह सोने के समान चमकता हुआ एक समान रहने वाला है और उसमें किसी प्रकार की विकृति नहीं आती है मैं कहाँ तक तेरे स्वरूप का बखान करूँ। तेरे स्वरूप की महिमा अकथनीय है परन्तु प्रतिज्ञा यह है कि तरिवर रूपी मानव शरीर प्राप्त कर तू इस भव-बन्धन से तर जाओगे। तभी तुम्हारी सराहना मैं करूँगा। मानव शरीर को तरिवर की संज्ञा इसलिए दी गयी कि तरिवर में फल लगते हैं। यहाँ तरिवर से तात्पर्य आत्मवृक्ष से है और निगम से भी है। यह मानव शरीर का प्रतीक है इसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी चार फल लगते हैं। जिसमें काम, अर्थ, धर्म के अतिरिक्त मोक्ष को प्राप्त करने की ओर संकेत है और तीन को त्यागने की ओर संकेत है क्योंकि पहेली का अर्थ त्याग भी होता है। कहने का तात्पर्य यह हुआ कि तीन का परित्याग कर चतुर्थ को ग्रहण करके तू भव-सागर को तर जाओगे तभी तुम्हारी प्रशंसा करूँगा।

**हंसा तू तो सबल था, हलुकी अपनी चाल।**
**रंग कुरंगे रंगिया, किया अउर लगवार ॥१८॥**

**शब्दार्थ**—हंसा–हंस, जीवात्मा। सबल–समर्थ, बल बलवान। हलुकी–ओछी, निम्न। अपनी–तुम्हारी। चाल–रहन-सहन, व्यवहार। रंग–जो श्वेत से भिन्न हो। कुरंगे–कुरंग, काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णा। रंगिया–सराबोर हुआ। लगवार–परमात्मा को छोड़कर अन्य भूत, भैरव से प्रेम किया।

**सम्बन्ध**—ऊपर जीवात्मा की महिमा का दिग्दर्शन कराया गया है और भव-सागर से तरने के लिए संकेत किया गया है क्योंकि नीचे कहा जा रहा है कि तू तरने के योग्य था।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे जीवात्मा ! हंस स्वरूप तू स्वरूपतः सबल था, बलवान था। सरलता से जन्ममरण के चक्र को काट सकता था परन्तु जन्म-मरण को न काटने का कारण तुम्हारी ओछी चाल थी और बुरे कर्त्तव्य थे। क्योंकि तुम श्वेत स्वरूप था परन्तु काम, क्रोध, लोभ, मोह, कुरंग से अपने स्वरूप को रंग लिया। अज्ञान का चोला

पहन कर परमतत्त्व को छोड़ कर अन्य जड़ मूर्तियों को भूत भवानियों को अपना उपास्य बनाया। इसलिए तू संसार से तर नहीं सका।

**हंसा सरवर तजि चले, देही परि गौ सुन्न।**
**कहैं कबीर पुकारि के, तेही दर तेही थून ॥१६॥**

**शब्दार्थ**—सरवर–मानव तन, सरोवर, तालाब। देही–आत्मा, शरीर। परि गौ–हो गया। सुन्न–रहित, अभाव, ग्रसित। तेही-वही। दर–स्थान। थून–खम्भा।

**सम्बन्ध**—पहले कहा गया है कि तू शुद्ध होते हुए भी कुरंग रंग से अपने को रङ्ग लिया। परम-तत्त्व की उपासना न करके अन्य को प्रेमी बना लिया जिसका परिणाम यह हुआ कि अन्ततः मानव शरीर को तुझे छोड़कर जाना पड़ा।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे हंस रूप जीवात्मा! मानव तन में रहते-रहते तू स्वरूप की प्राप्ति नहीं किया। अब तो इस शरीर रूपी सरोवर को तज के जा रहे हो यह तुम्हारा शरीर जो उत्तम था मानव का तन था तेरे जाने से शून्न पड़ गया अर्थात् देही जो आत्मा है वह शरीर के बिना मानव तन के बिना कर्म-हीन हो गया। मानवेत्तर योनियों में चला गया जहाँ शून्य की प्राप्ति हुई कुछ हाथ नहीं लगा। मैं कबीर पुकार कर कहता हूँ कि तू उसी स्थान पर गया जहाँ से आया था अर्थात् जिस पशु योनि आदि से तू आया था जिस योनि रूपी खम्भे में तू बँधा था उसी स्थान पर उसी भूमि पर उसी योनि में फिर तू जा बिराजा अब क्या किया जा सकता है इसमें भूल तुम्हारी ही रही।

**हंस बगु देखा एक रंग, चरै हरियरे ताल।**
**हंस छीर ते जानिये, बकुहिं धरेंगे काल ॥१७॥**

**शब्दार्थ**—बगु–बक। एक रंग–एक रूप वाला। हरियरे–हरे भरे। ताल–सरोवर, संसार, मानव तन। छीर–दुग्ध। धरेंगे–पकड़ेंगे। काल–मृत्यु।

**सम्बन्ध**—बिना आत्मतत्त्व की प्राप्ति के शरीर रूपी सरोवर को मानव आत्मा छोड़कर चला गया। अब कहा जा रहा है कि हंस और बक दोनों एक रूप के होते हैं, एक रंग के होते हैं परन्तु गुण और धर्म से दोनों की अलग-अलग पहचान होती है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि मैंने हंस और बगुला अर्थात् सन्त और असन्त को संसार में विचरते हुए, निवास करते हुए एक ही प्रकार से देखा क्योंकि दोनों का स्वरूप मानव का है। दोनों में समान इन्द्रियाँ हैं दोनों की बोल चाल एक सी है, दोनों हरे-भरे संसार में उत्पन्न आहार ग्रहण कर रहे हैं। चर रहे हैं। परन्तु हंस सन्त की पहचान 'छीर' कहिये अच्छे गुणों के ग्रहण से होती है। शुद्ध व्यवहार से उनकी पहचान होती है। सन्त कभी हिंसा नहीं करते, अहिंसक होते हैं। वही मुक्ति के अधिकारी हैं परन्तु जो असन्त हैं। वे बक के समान हैं। वे दूसरे की हिंसा करते हैं। दूसरे को नुकसान पहुँचाते हैं। इसलिए उनकी भी पहचान हो जाती है। उदाहरण स्वरूप मानसरोवर में हंस और बगुले दोनों निवास करते हैं और दोनों के रंग रूप भी एक ही जैसा होता है। यह देखा गया है कि बगुला से हंस का पैर थोड़ा बड़ा होता है। अर्थात् बक से उनकी ऊँचाई दो-चार अंगुल बड़ी होती है। देखने पर लगेगा कि दोनों छोटे-बड़े बगुले हैं। दोनों श्वेत होते हैं। बकों की दो जाति हैं। एक श्वेत होते हैं। दूसरे लालिमा लिए होते हैं। यहाँ श्वेत बक की उपमा है। दोनों पानी में ठोर मारते हैं। दूर से पता नहीं चलेगा कि कौन हंस है, कौन बक है। समीप जाने पर पता चल जाता है कि कौन बक है, कौन हंस है। हंस जल में से जल के मूल तत्त्व को खींचता है और मोती चुनकर खा जाता है और बक मछलियों को पकड़ कर खाता है। इसी प्रकार से इस संसार रूपी सरोवर में सन्त-असन्त दोनों रहते व होते हैं। असन्त लोग भी सन्त का रूप बनाकर संसार में विचरण करते हैं। और सन्तजन भी विचरण करते हैं। प्रथम तो दोनों की पहचान नहीं होती है परन्तु चाल चलन और उनके व्यवहार से पता चल जाता है। किंवदन्तियों के असुसार हंस जल और दूध को एक कर देने पर दूध को अलग कर देता है और जल को भी अलग कर देता है।

**काहे हरनी दूबरी, एही हरियरे ताल।**
**लछ अहेरी एक म्रिग, केतिक टारै भाल ॥१८॥**

**शब्दार्थ**—काहे–क्यों। हरनी–हरिण, मृग, जीवात्मा, मानव। दूबरी–दुर्बल, दुःखी। एही–इसी। हरियरे–हरे भरे, परिपूर्ण। ताल–मानव शरीर, संसार। लछ–एक लाख। अहेरी–आखेटक, शिकारी। म्रिग–मृगा, जीवात्मा। केतिक–कितना। टारै–रोके, हटावे। भाल–तीर की नोक, बरछा।

**सम्बन्ध**—पहले कहा गया कि सन्त-असन्त दोनों की परीक्षा केवल व्यवहार से होती है। उनके विचार से होती है। अब कहा जा रहा है कि यह जीवात्मा क्यों दुबला है। यह मानव का चोला पाया था। इसको सुखी रहना चाहिए था, परन्तु उसके विपरीत देखा जा रहा है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे नरतन धारी मनुष्य ! हे जीवात्मे ! क्यों तू दुबला है, क्यों कृशकाय है, क्यों शोक में डूबा है। क्या कारण है ? कितना सुन्दर यह हरा-भरा ताल है, कितना सुन्दर तू मानव तन पाया है। इसमें तो तुझे सुखी रहना चाहिए था परन्तु तू बहुत शोकाकुल दिखायी पड़ रहा है क्या कारण है। हरिण का उत्तर है कि हे सद्गुरु, हे महाराज ! मैं एक हूँ, अकेला हूँ और मुझे मारने वाले शिकारी लाखों लगे हैं। मैं एक मृग किनकी-किनकी भाल को रोकूँ, किन-किन तीर से बचूँ। अर्थात् यह जीवात्मा अकेला है। इसके विरोधी बहुत हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अविवेक इत्यादि लाखों इसके वैरी हैं। लाखों इसकी दुर्वासनायें हैं, इसलिए यह बेचारा जीवात्मा क्या कर सकता है ? इसी से यह दूबर है, निर्बल है।

## पाप-पुण्य जाल प्रकरण

**तीन लोक भौ पींजरा, पाप पुन्नि भौ जाल।**
**सकल जीउ सावज भये, एक अहेरी काल ॥१९॥**

**शब्दार्थ**—पींजरा–पक्षियों के रहने का एक जालीदार लघु घर–घोसला, पात्र, जिसमें शुक आदि पक्षियों को पकड़ कर रखा जाता है, संसार, शरीर। जाल–जाल जो सूत का बनता है जिसमें मत्स्य एवं पक्षी दोनों को फँसाया जाता है, सकाम कर्म। भौ–हुआ। सावज–शिकार, मांस, आखेट, मृग आदि। अहेरी–आखेटक, शिकारी।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि काम, क्रोध से घिरा यह मानव दुःखी रहता है। निर्बल है जिसके कारण आत्मज्ञान की प्राप्ति न कर सका। अब कहा जा रहा है कि ऐसे जाल में यह फँस गया है, ऐसे कर्मों के बन्धन में पड़ गया है कि बिना सन्त, सद्गुरु के इसका छुटकारा हो पाना दुर्लभ है, या कठिन है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि इस जीव का छुटकारा इसलिए नहीं हो पा रहा है कि ये सदा सकाम कर्मों के बन्धन में पड़ा हुआ है। तीनों लोक के प्राणी सकाम कर्मरत हैं और पाप-पुण्य जो है वही जाल बना

हुआ है क्योंकि पाप-पुण्य दोनों जीवों के बन्धन हैं जिसमें पड़कर यह जीव तीन लोक रूपी पिंजरे में ही घूमता-फिरता रहता है। चौथा लोक जो आत्म लोक है वहाँ पाप-पुण्य के कारण नहीं जा पाता है। संसार के प्रत्येक मनुष्य पाप और पुण्य दो ही काम करते हैं। पाप का फल दुःख होता है और पुण्य का फल स्वर्गादि सुख होता है जिसके कारण संसार के सभी प्राणी सावज बने हुए हैं अर्थात् पाप-पुण्य में बँधे रहने के कारण मृत्यु जो है वह नित्य जीवों को मारने के लिए आखेटक का काम कर रही है। पाप-पुण्य के कारण ही ये जीव नित्य मरते जा रहे हैं क्योंकि चौथे लोक में जाने की गति इनमें नहीं है। अहर्निश सकाम कर्म में लगे रहते हैं।

**लोभै जनम गमाइया, पापै खाया पून।**
**साधी सो आधी कहे, तापर मेरा खून ॥२०॥**

**शब्दार्थ**—लोभै–लोभ। गमाइया–नष्ट कर दिया। साधी–सार्द्ध, अर्द्धाली, आधा, अंश। आधी–आधा, १/२। तापर–उसपर। खून–हत्या, त्याग।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि पाप-पुण्य के कारण यह मानव तनधारी जीवात्मा सदा काल के अधीन रहता है। अब कहा जा रहा है कि पाप-पुण्य वह लोभ के कारण करता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्तजन ! यह जो जीवात्मा है सदा काल के अधीन बना हुआ है। इसका कारण लोभ है। लोभ में पड़कर ही यह अपना नाश कर रहा है। यह बिना विचार का काम करता है। समझता है कि पुण्य कर रहा हूँ। ऊँचा कर्म कर रहा हूँ। परिवार का पोषण कर रहा हूँ। हिंसा-अहिंसा का विचार नहीं करता। अज्ञानी मनुष्य का सुकर्त्तव्य-कुकर्त्तव्य के समान है क्योंकि बिना विचारे ही सारा काम करता है। इसलिए संचित पुण्य भी उसके कुकर्म के चलते नष्ट हो जाते हैं। उसका भी फल उसको अच्छे नहीं मिलते क्योंकि जो साधी (को एक) जो एक अंश है, जो सत्य से बिल्कुल भिन्न है। उसको आधी कहता है यहाँ पर भाव यह है कि जो आदि वाली है जिसका विनाश होता है। जो अन्त वाली है उस माया को उस प्रपंच को आदि कहता है अर्थात् असत्य में सत्य की भावना करता है। उस पर मेरा नाम लेता है कि इस चीज को सन्त लोग भी कहते हैं। शास्त्र भी कहता है। अपने अज्ञान के कारण शास्त्र और गुरुजनों की हत्या कर रहा है क्योंकि

काम के लिए साक्षी स्वरूप सन्त-महात्मा और वेद शास्त्र की दुहाई मनुष्य देता है। भाव यह है कि जब पाप के कारण पुण्य का नाश हो जाता है जो साधी गयी है। जो प्राप्त कर ली गयी है। जिससे इसका काम चल जाता, परन्तु उससे भी उसका संतोष नहीं हुआ। उसको भी आधी एवं अपूर्ण ही मानता है। रात-दिन माया की प्राप्ति में लगा रहता है। कहता है कि अधिक सम्पत्ति होने से सत्य कर्म करूँगा। पुण्य का उपार्जन करूँगा। 'मेरा' में 'श्लेष' है। मेरा सत्य है, परमार्थ है। परमार्थ के नाम पर खून करता है। सत्य की हत्या करता है। विचार नहीं करता कि जो प्रभु कृपा से प्राप्त हो गया है वह बहुत है। उसी में सन्तोष करना चाहिए। परन्तु लोभ के कारण माया जोड़ने से विरत नहीं होता। जिसके कारण सब कुछ गवाँ बैठता है।

### अर्धवाक्य महत्व प्रकरण

**आधी साखी सिर खड़ी, जो निरुवारी जाय।**
**का पंडित की पोथिया, रात दिवस मिलि गाय ॥२१॥**

**शब्दार्थ**—आधी साखी—ॐ अथवा आधा दोहा। सिर खड़ी-सिर के ऊपर सबसे बड़ी है। निरूवारी–निर्णय। का–क्या। पंडित–शास्त्रज्ञ। पोथिया–पुस्तक।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि लोभ के कारण सत्य के दर्शन नहीं हुए झूठे ही शास्त्र की दोहाई देता है। अब कहा जा रहा है कि यदि मेरी साखी का आधा भाग ही ग्रहण कर लिया जाय तो मानव का सुधार हो सकता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जो मेरी आधी साखी ॐ है तथा जो मेरा आधा दोहा है वह सबका सिरोभाग है। सभी शास्त्रों का निचोड़ है। जिसमें मैं आत्मतत्त्व की व्याख्या किया हूँ आधी साखी जो ॐ कार की अर्ध मात्रा रूप मकार है वही विन्दु रूप से जैसे सर्व अक्षरों के ऊपर रहता है उसी प्रकार से मेरी आधी साखी प्रणव रूप मुक्ति देने में समर्थ है। उसी का मनन चिन्तन करना चाहिये। यदि उस मेरी आधी साखी के वाच्य का विचार किया जाय निरुवार कहहिं कबीर हरि शरण गहु, गोखुर वच्छ विस्तार किया जाय तो लोभ मोह एवं काल के फंदे से बचा जा सकता है। आत्मा की प्राप्ति हो सकती है। मेरी आधी साखी के समान क्या पंडित की पोथी हो सकती है? जो पंडित पोथी को पढ़कर रात दिन चिल्लाता है, गाता है परन्तु वह पोथी के रहस्य को नहीं

जानता है जिसको मैं आधी साखी भी कहा है। 'आधी साखी कबीर की, चार वेद का जीव।' वह है ॐ।' मैं सूक्ष्म रूप में समस्त शास्त्रों का समस्त ग्रन्थों का निचोड़ अपनी आधी साखी में रख दिया हूँ। अर्थात् 'पूरब दिशा हंस गति होई, है समीप सन्धि बूझै कोई।' इसी की प्राप्ति मनुष्यों को करनी चाहिए। अन्य शास्त्र के बखेड़े में पड़ने से कोई लाभ नहीं है।

## 'शब्द बड़ा की जीव' प्रकरण

**पांच तत्तु का पूतरा, जुगुति रची मैं कीउ।**
**मैं तोही पूछो पंडिता, सबद बड़ा की जीउ ॥२२॥**

**शब्दार्थ**—पाँच तत्तु–पाँच तत्त्व, आकाश, अग्नि, जल, पवन, पृथ्वी। पूतरा–पूतला, मानव शरीर। जुगुति–युक्ति, उपाय। रची–रचा। मैं–कबीर, जीवात्मा। कीउ–किया, करना संस्कृत में कृतम्। तोही–तुझसे। पूछो–प्रश्न करता हूँ। पंडिता–पंडित। सबद–शब्द, शास्त्र, प्रणव।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि सत्य वाक्य थोड़ा भी सुख देने वाला होता है परन्तु दुनिया की पोथी पन्नों से कोई लाभ नहीं है जिसका अर्थ न विचारा जाय। नीचे कहा जा रहा है कि पाँच तत्त्व से यह नर तन बनाया गया है। इसी में विचार करना चाहिए।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि यह मानव तन पाँच तत्त्व का पुतला है। इसी तन में आत्म प्राप्ति की युक्ति मैंने रची है। इसी तन में आत्मा की प्राप्ति की बात सम्भव है। कीउ कहिए इस पर विचार किया गया है परन्तु इसमें पण्डित भी बाधक हैं। वे सारी पोथियों की दुहाई देते हैं मैं आपसे पूछता हूँ कि हे पण्डित जी! यह शब्द शास्त्र बड़ा है कि जीव आत्मा बड़ा है। वा जीव के स्वरूप की प्राप्ति बड़ी है। तात्पर्य यह है कि मानव शरीर में ही आत्मा को और मुक्ति की युक्ति बताई गई है और उसी युक्ति को करना चाहिए। जब तक गुरु के शब्द को नहीं समझा जाएगा तब तक तो जीव को कुछ लाभ नहीं हो सकेगा। प्रश्न है कि शब्द ब्रह्म बड़ा है कि यह अविद्या ग्रसित चेतना जीव बड़ा है तो सर्वप्रथम प्रणव ही बड़ा है। क्योंकि जीव अज्ञान दशा में होने के कारण उससे छोटा हो गया है। इसलिए शब्द की साधना करनी चाहिए जिससे कि जीव का उद्धार हो सके। अन्यथा कोई मार्ग नहीं है जिससे कि यह मृत्यु से बच सके।

**पाँच तत्तु का पूतरा, मानुस धरिया नांउ।**
**एक कला के बीछुरे, बिकल भया सब ठांउ ॥२३॥**

**शब्दार्थ**—तत्तु–तत्त्व। पूतरा–पुतला, मानव तन। कला–किसी कार्य को भलीभांति करने का कौशल, चैतन्य आत्मा, चेतन, शक्ति, तत्त्व। बिकल–व्याकुल, दुःखी। ठांउ–स्थान, घर,।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि शब्द बड़ा है कि जीव अर्थात् ओंकार आत्मा बड़ा है कि अविद्या ग्रसित जीव व गुरु का उपदेश बड़ा है कि जीव बड़ा है। नीचे कहा जा रहा है कि यह मानव तन पाँच तत्त्व से बना हुआ है जो जीव को सही स्थिति का परिचय कराने वाला है।

**मूलार्थ**—अब कहा जा रहा है कि यह मानव (शरीर) रूपी पुतला पाँच तत्त्व से निर्मित किया गया है। जिसका मनुष्य नाम रखा गया है परन्तु यह बहुत नाजुक है, निर्बल है, अस्थायो है क्योंकि एक कला, कहिए प्राण किसी एक तत्त्व के खराब होने से, बिछुड़ने से यह सभी स्थानों में विकल हो उठता है जहाँ कहीं भो इसमें विकृति आयो कि वह उसी स्थान से इस मानव तन से निकल कर बाहर हो जाता है। इसका कोई भरोसा नहीं है, न स्थायी रहने वाला है। इसमें रहकर केवल परमतत्त्व को प्राप्ति करना ही श्रेष्ठ है। अन्य किसी काम का यह नहीं है।

## (प्रश्न वाचक) जोव स्वरूप कथन प्रकरण

**रंगहि ते रंग ऊपजे, सभ रंग देखा एक।**
**कवन रंग है जीउ का, ताकर करहु विवेक ॥२४॥**

**शब्दार्थ**—रंगहि–रंग, वर्ण, शरीर का ऊपरी वर्ण, क्रीडा कौतुक, खेल, आनन्द, उत्सव, मजा, स्वच्छन्द, प्रवृत्ति, प्रेम। रंग–मानव, देह। ताकर–उसका। करहु–करो। विवेक–विचार।

**सम्बन्ध**—ऊपर मानव तन को बहुत निर्बल बताया गया है और किंचित मात्र कमियों के कारण यह इस शरीर से निकल भागता है। अब नीचे कहा जा रहा है कि यावत् सृष्टि मानव से ही उत्पन्न हुई है। इसलिए सबकी गिनती एक जैसी ही है।

**मूलार्थ**—अब नीचे सद्गुरु कहते हैं कि एक ही वर्ण से एक ही मनुष्य से दूसरे रंग रूपी मनुष्य उपजे हैं अर्थात् माता के रज से, पिता के वीर्य से सृष्टि के समस्त प्राणियों का उत्पादन हुआ है। इसलिए सबका वर्ण व रंग एक ही जैसा है। सारी वस्तुएं एक जैसी दिखाई दे रही है। सम्पूर्ण शरीर धारियों में लगभग एक ही रूपता है परन्तु इस जोव का कौन सा रंग है? क्या रूप है? क्या वर्ण है? उसका विवेक करना चाहिए। क्योंकि

जीव तत्त्व बड़ा महत्वपूर्ण है इसलिए उस पर विचार करने को कहा जा रहा है ।

**जाग्रित रूपी जीउ है, सबद सोहागा सेत ।**
**जरद बुंद जल कुकुही, कहैं कबीर कोई देख ।।२५।।**

**शब्दार्थ**—जाग्रित-सावधान, चेतनता युक्त । सबद–शब्द, गुरु का उपदेश, ओंकार । सोहागा–सुहागा एक प्रकार का छार जो गर्म गंधक के स्रोतों से निकलता है यह सोना गलाने तथा सोना की मैल साफ करने के काम में आता है सार शब्द । सेत–उज्ज्वल । जरद–पीला । बुंद–माता का रज, पिता का वीर्य । जल–जो गर्भाशय के अन्दर माता-पिता का रज व वीर्य इकट्ठा होता है, वह जल, जीव । कुकुही–कुंकुम, बनमुर्गी, बुद-बुद, खौलाहट ।

**सम्बन्ध**—ऊपर बताया गया है कि हर एक वर्ण के लोग अपने-अपने वर्ण से उत्पन्न होते हैं । सारी सृष्टि इसी प्रकार से उत्पन्न हुई है परन्तु जो सृष्टि के अन्तःस्थल में विराजमान है उस जीव का क्या स्वरूप है, उसका कौन रंग है ? स्वेत रंग है कि हरा रंग है कि लाल रंग है कि पीला रंग है । इस पर विचार करना चाहिए । उत्तर में सद्गुरु ने इसको जाग्रित रूप बताया है ।

**मूलार्थ**—सद्गुरु स्वयं उक्त वाक्य का उत्तर दे रहे हैं । उनका कहना है कि यह जीव जागृत स्वरूप वाला है, क्रियाशील है,चैतन्य है,यह शब्द जो गुरु का उपदेश है, जो ओंकार है, वही जीव के स्वरूप को निर्मल करने के लिए, शुद्ध बनाने के लिए सोहागा का काम करता है । वही इस जीव को चैतन्य करता है । सेत कहिए उज्ज्वल करता है । जिस प्रकार से सोहागा सोने को गलाकर शुद्ध बनाता है और मल से दूर करता है । उसी प्रकार से जो प्रभु का नाम है, जो ओंकार है इस जीव को शुद्ध करता है । उसी का जगाया हुआ उसी से संचालित हुआ । यह चेतन आत्मा है । जब माता के गर्भाशय में माता का रज, पिता का वीर्य दोनों जल इकट्ठा होकर पहले उसमें पकते हैं । संयुक्त जल से बुद्बुदा उठती है । कुकुही कहिये उसमें खलल उत्पन्न होता है । उस दशा में परमेश्वर ने उस जल में जीव का संचार करता है और जब उस जल में चेतनता का बीजारोपण होता है तब वह पिण्डाकार होता है और माता के गर्भ से नवें महीना बीतते बाहर आता है । कुकुही का तात्पर्य बनमुर्गी से भी

है और खलल से भी है। जैसे—बन कुंकुट व जल कुंकुट जल में ही निवास करता है और उसी में रहकर अपनी सृष्टि का संपादन करता है। उसी प्रकार से परमात्मा भी माता-पिता के हृदय में बैठकर दोनों के रज-वीर्य को इकट्ठा कर मानव पिण्ड की सर्जना करता है। इसी प्रकार से सारी सृष्टि का निर्माण उसके द्वारा होता है। इसलिए इस जीव का योनि स्थान परमात्मा ही है। जहाँ से अखिल विश्व निःसृत हो रहा है। सद्गुरु कहते हैं कि इस रहस्य को कोई विरला ही देख सकता है और जान सकता है जो इसको जान लेता है वह न संसार में प्रवृत्त होता है और न उसकी बनावटी वस्तुओं में आसक्ति होती है।

**पांच तत्तु ले या तन कीन्हा, सो तन ले काहि ले दीन्हा।**
**करमहि के बस जीउ कहतु हैं, करमहि को जिउ दीन्हा ॥२६॥**

**शब्दार्थ**—तत्तु–तत्त्व, तन, शरीर। कीन्हा-किया। सो–वह। काहि–किसको। ले–लेकर। दीन्हा–दिया। करमहि–कर्म के। कहतु–कहते हैं।

**सम्बन्ध**—पहले कहा गया है कि यह जीवात्मा चेतन स्वरूप है और परमात्मा के द्वारा इसके रहने के स्थान स्वरूप पिण्ड को बनाया जाता है। अब कहते हैं कि जिस परमात्मा ने तुम्हारे इस पाँच तत्त्व से तन को निर्मित किया था वह तो बहुत मूल्यवान था उसको लेकर क्या किया?

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्त जन! पाँचों तत्त्वों को इकट्ठा कर प्रभु ने इस तन का निर्माण किया। सो उस तन को यह मानव किस कार्य में लगाया, किसको दिया अर्थात् इससे कोई उत्तम काम नहीं किया। इस मानव तन को पाकर इसका आत्म प्राप्ति करनी चाहिए थी। अपने स्वरूप को जानना चाहिए था परन्तु यह मनुष्य अज्ञानवश इस जीव को, अपने आप को कर्मकाण्ड के वश में कर दिया और कर्म के वशी होने से ही यह जीव कहलाता है, अल्पज्ञ कहलाता है, अन्यथा यह सर्वज्ञ था क्योंकि सर्वज्ञ से ही इसकी निष्पत्ति हुई है और प्रथम कर्म करके जीव हुआ। पुनः जन्म लेने पर कर्मकाण्ड में ही जीव को दे दिया। अर्थात् कर्म से विरत नहीं हुआ। संसार के कर्म में लगा रहा और मरणोपरान्त जन्म लेने पर भी उसी कर्म में इसका चित्त बंधा रहा। जब तक सकाम कर्मों से इसकी निवृत्ति नहीं होगी। तब तक यह जीव बना रहेगा।

**पांच तत्तु के भीतरे, गुपुत वस्तु अस्थान ।**
**विरलै मरम कोइ पाइहैं, गुरु के सबद प्रमान ।।२७।।**

**शब्दार्थ**—तत्तु–तत्त्व। भीतरे–हृदय में, अन्तःपुर में। गुपुत–गुप्त वस्तु, आत्मतत्त्व। अस्थान–स्थान, जगह। विरलै–बिरला। मरम–रहस्य, भेद। पाइहैं–पायेगा। सबद–उपदेश, ओंकार,

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मूल्यवान मानव तन था जिसको कर्म के अधीन कर दिया गया। जबकि इस पाँच तत्त्व के भीतर एक अमूल्य वस्तु छिपी हुई है। उसी को जानना अभीष्ट था परन्तु उसको उपेक्षा कर स्वयं कर्म के अधीन हो गया।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि यह जो पाँच तत्त्व का मानव का पुतला बना हुआ है। इसके भीतर में एक गुप्त स्थान है जिसमें एक वस्तु निवास करती है परन्तु उस गुप्त स्थान में रहने वाली वस्तु का चेतन तत्त्व का भेद कोई विरला ही मनुष्य पा सकता है। वह तभी पा सकता है, उस चेतन को प्राप्ति तभी कर सकता है जब उसको सद्गुरु का सच्चा उपदेश प्राप्त हो जाय। सच्चे गुरु मिल जाँय। जो प्रमाण स्वरूप हैं, जो आप्त पुरुष हैं, जो स्वयं आत्मविद् हैं। वही उस आत्म वस्तु को दिखला सकते हैं और वही प्रमाण हैं।

**असुन्न तखत अड़ि आसना, पिंड झरोखे नूर ।**
**जाके दिल में हौं बसौं, सेना लिये हजूर ।।२८।।**

**शब्दार्थ**—असुन्न–शून्य से रहित, हृदय, अन्तःकरण। तखत–तख्त, सिंहासन। अड़ि–ठहरना, स्थिर होना। आसना–आसन। पिंड–शरीर, देह, लोह पिण्ड। झरोखे–झरोखा, खिड़की। नूर–प्रकाश, चेतन तत्त्व। जाके–जिसके। दिल–हृदय। हौं–मैं, परमेश्वर। सेना–सद्गुण, दया, क्षमा, सत्य, सन्तोष, आदि। हजूर–सन्मुख स्थिति, समक्षता–नजर के सामने उपस्थित।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि मानव हृदय में एक गुप्त स्थान है जिसमें एक वस्तु रहती है वह गुरु कृपा से ही उपलब्ध हो सकती है। अब नीचे कहा जा रहा है कि वह हृदय में ही रहता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि असुन्न कहिए हृदय में एक सिंहासन है जिस पर आसन जमाकर वह तत्त्व स्थित है उसको चेतनता और उसका प्रकाश शरीर के इन्द्रियों के द्वारा दिखायी देता है। सद्गुरु कहते हैं कि

जिसके दिल में परमेश्वर का साक्षात्कार हो जाता है और वह अपने आकर स्वयं बस जाता है। तो उसके साथ उसकी सेना स्वरूप ऋद्धि, सिद्धि, दया, क्षमा, सद्विचार, त्याग, वैराग्य, इत्यादि उसके सन्मुख उपस्थित हो जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जब मानव के हृदय में प्रभु का साक्षात्कार हो जाता है तो सारी की सारी दैवी शक्तियों का उदय हो जाता है।

## आलस्य प्रकरण

**हिदया भीतर आरसी, मुख देखा नहिं जाय।**
**मुख तो तबहीं देखि हो, जब दिल की दुविधा जाय ॥२९॥**

**शब्दार्थ**—आरसी-दर्पण। मुख-चैतन्य स्वरूप, परमतत्त्व। दुविधा-सन्देह।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि हृदय में प्रभु के साक्षात्कार होने से साधक में समस्त दैवी शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। नीचे कहा जा रहा है कि वह प्रभु सभी के हृदय गुहा में बैठा हुआ है परन्तु चर्म चक्षुओं से दिखायी नहीं देता।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि परमतत्त्व को देखने के लिए मानव मात्र के हृदय में मन रूपी दर्पण विद्यमान है परन्तु जो सुख स्वरूप है, जो ज्ञान स्वरूप है उसके रहते भी मनुष्य निज मुख को नहीं देख पा रहा है क्योंकि मन की प्रवृत्तियाँ बहिरंग हैं। बाहर-बाहर देखती है। इसलिए अन्दर की बात नहीं देख पाती हैं। अन्दर को सद् वस्तु को तभी देखा जा सकता है जब दिल की व हृदय की सारी दुविधायें समाप्त हो जाँय। मन संशय रहित हो जाय। मनोवृत्ति अन्तरंग हो जाँय तभी वह परमतत्त्व का दर्शन कर सकता है।

**गाउ ऊंचे पहार पर, अउ मोटे की बांह।**
**कबीर अस ठाकुर सेइये, उबरिये जाकी छांह ॥३०॥**

**शब्दार्थ**—गाउ-ग्राम, आत्म प्रदेश। ऊँचे-उतंग। पहार-पर्वत, शिखर, सहस्रार। अउ-और। मोटे-बड़े, परमेश्वर, सद्गुरु। बांह-हाथ, भुजा, उपासना। अस-इस प्रकार का। ठाकुर-स्वामी, परमेश्वर। सेइये-सेवन करना चाहिए। जाकी-जिसकी। छांह-छत्रछाया में, शरण में।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि दिल की दुविधा जाने पर ही प्रभु की प्राप्ति हो सकती है। निचली साखी में कहा जा रहा है कि दुविधा दूर करने के लिए परमेश्वर की उपासना की बड़ी आवश्यकता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जिसका ग्राम बहुत ऊँचे शिखर पर बसा हुआ है। जो सहस्रार में दसवें द्वार में निवास करता है उस बड़े की बाँह कहिए उपासना करने पर ही कार्य की सिद्धि हो सकती है। कबीर साहब कहते हैं कि जिसका घर बहुत ऊँचे पर है जो सबसे बड़ा है इस प्रकार के ठाकुर की सेवा कीजिए तभी आप भवसागर से पार हो सकते हैं जो उस प्रभु की छत्रछाया में उसके शरण में निवास करेगा अर्थात् अहर्निश जो तत्त्व चिन्तन में लगा रहेगा वहीं अपने को जान सकता है और परमात्मा को समझ सकता है।

## राम तत्व में प्रवेश प्रकरण

**जेहि मारग गये पंडिता, तेहि गये बहीर।**
**ऊंची[1] घाटी राम की, तेहि चढ़ि रहा कबीर ।।२१।।**

**शब्दार्थ**—जेहि–जिस। मारग–मार्ग। पंडिता–पंडित, शास्त्रज्ञ। तहि–उसी। बहीर–भीर, जन समुदाय। ऊँची–उत्तंग सहस्रार, स्थान। घाटी–घाट, पर्वतों के बीच का सकरा मार्ग, भंवर–गुफा की गली। तेहि–तिसपर, उसपर। चढ़ि–आरूढ़।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि सेवा उसकी करनी चाहिए जो सब प्रकार से समर्थ हो तभी मनुष्यों की भलाई हो सकती है परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि मनुष्य विचार नहीं करता है जिस रास्ते से, जिस मार्ग से जन समूह जाता है उसी मार्ग से देखा-देखी दूसरा भी जाता है। अर्थात् जिन सकाम कर्मों में संसार के लोग लगे हैं उसी में एक दूसरा भी देखा-देखी लग जाता है इसलिए परमतत्त्व की प्राप्ति नहीं हो पाती है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे जिज्ञासुओं! जिस रास्ते से कर्मकाण्डी शास्त्रज्ञ पण्डित जाता है। उसी रास्ते से संसार के सभी जन समुदाय परिगमन करते हैं। अर्थात् पण्डित सकाम कर्मी है, अनुमान पर कल्पना करता है उसी की देखा-देखी समाज के सारे लोग करते हैं इसलिए परमतत्व से लाखों कोश दूर हो जाते हैं। जब तक सकाम कर्म नहीं छूटेगा तब तक कुशल क्षेम नहीं है। मैं कबीर उस ऊँचे स्थान पर स्थित हूँ जो सहस्रार में स्थित है। जो भँवर गुफा में घाटी है सूक्ष्म मार्ग

---

१ दशम द्वारा अगम अपारा परम पुरुष की घाटी, गुरु नानकदेव।

है जहाँ राम का निवास है जहाँ वह राम रहता है उसी पर मैं चढ़ गया राम से मिलन हो गया है। राम मुझे अपना लिया अब राम और मैं एक हो गया हूँ। अब दूसरा नहीं दिखाई दे रहा है। यहाँ तक की सारी सृष्टि गायब है न कहने के लिए राम है। न कहने के लिए कबीर है। अब दोनों नाम रूप का पता नहीं है परन्तु अज्ञानी जीव इससे बहुत दूर हैं।

**ये कबीर तै उतरि रहु, तेरो संबल परोहन साथ।**
**संबल घटे (न) पगु थके, जीउ बिराने हाथ ॥३२॥**

**शब्दार्थ**—ये–हे। तै–जीव। तेरो–तेरा, आपका। संबल–मार्ग व्यय। परोहन–प्ररोहण वह जिस पर सवार होकर यात्रा की जाय या कई वस्तु लादी जाय, घोड़ा, बैल आदि आ० विवेक। पगु-पैर। बिराने–दूसरे, मृत्यु।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि मैं कबीर राम की घाटी पकड़ कर राम तक चढ़ गया, राम तक पहुँच गया। नीचे कहा जा रहा है कि दूसरा व्यक्ति भी राम की उपासना करेगा तो वह भी राम तक पहुँच जायेगा।

**मूलार्थ**—अब सद्गुरु कहते हैं कि हे जिज्ञासु जीव ! तुम जो अहंकार रूपी पहाड़ पर चढ़ा हुआ है उस अहंकार पर से उतर आओ क्योंकि मानव रूपी तन तुझे प्राप्त हुआ है और विवेक रूपी सम्बल, सद्ज्ञान रूपी सम्बल जो प्ररोहण है जिस पर तू चढ़कर सवार होकर जा सकता है। वह तेरे साथ है अर्थात् तू सद्बुद्धि के द्वारा, त्याग, वैराग्य के द्वारा परमेश्वर तक पहुँच सकता है और अभी समय है तू अपने संबल के साथ सद्ज्ञान रूपी अश्व पर सवार होकर राम तक पहुँच जा। परमतत्व की प्राप्ति कर ले परन्तु जब तेरी शक्ति रूप संबल घट जायेगा, वृद्धावस्था आ जायेगी विवेक रूपी पग तेरे थक जायेंगे सद्ज्ञान रूपी सम्बल नहीं रह जायेगा तो कुछ विचार नहीं कर सकोगे। तब यह तेरा जीव और तू कुछ करने में समर्थ नहीं होगा। अन्ततः यह जीव बिराने कहिये दूसरे के सहारे पर हो जायेगा और मृत्यु के हाथ में पड़ जायेगा। तब कुछ होने जाने वाला नहीं रहेगा इसलिए अभी जवानी अवस्था में ही चेत कर लो।

**टिप्पणी**—यदि साखी के तीसरे पद पर ध्यान दिया जाय कि 'सम्बल घटे न पगु थके, जीव बिराने हाथ। तो अर्थ होगा कि जो सद् मार्ग रूपी

प्ररोहण अश्व पर सवार है उस प्रभु भक्त का कभी नाश नहीं होता है उसके सद् विवेक और पगु रूपी ज्ञान में कभी थकावट व कमी नहीं होती है पर पुराने पाठों में मेल नहीं है इसलिए न को कोष्टक में कोई का उसका अर्थ मिल गया।

**कबीर का घर सिखर पर, जहाँ सिलहली गैल।**
**पाउं न टिकै पपीलका, तहं खलकन लादै बैल॥३३॥**

**शब्दार्थ**—घर–निवास। सिखर–पर्वत की चोटी, सहस्रार। सिलहली–सील, शीड़, क्रास, हिला, कीचड़, सिलहला जिस पर पैर फिसले, रपटीलीराह, कोचड़ से चिकनी ब्रह्मरन्ध्र का मार्ग जो सुषुम्ना के रास्ते, जाया जाता है। गैल–गलियारा, गलो। टिकै–जमे। पपीलका–पिपीलका, चिउटी का, सुरति का, मन। तहं–तहाँ, उस स्थान पर। खलकन–संसारी लोग, विषयी पुरुष। बैल–पूरे परिवार के साथ गठरी मोटरी बाँध कर जाना।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि जो संबल नहीं किया है वृद्धावस्था आ गयी और जीव बिराने हाथ पड़ गया। वृद्धावस्था में ही लोग कर्म, धर्म करने की बात सोचते हैं और मुक्ति को तथा आत्म प्रदेश को बहुत नजदोक मानते हैं। नीचे कहा जा रहा है कि वह अज्ञानियों के लिए बहुत दूर है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि मेरी स्थिति को लोग पूछते हैं कि आप कहाँ रहते हैं तो लोगों को समझना चाहिए कि मेरा निवास सहस्रार में है। मैं निर्विकल्पक अवस्था में रहता हूँ। वहाँ जाने का जो मार्ग है वह बहुत सकरा है, बहुत चिकना है उस गैल पर चिउटी के भी पांव नहीं टिक पाते हैं। वहाँ शीघ्र में सुरति भी नहीं ठहरती है। बहुत कठिन मार्ग है परन्तु संसार के लोग सकाम कर्मी पुरुष उस स्थान पर घर-द्वार बैल पर लाद कर जाना चाहते हैं। अर्थात् बैल बुद्धि वाले मनुष्य थोड़े से भी सद्कर्म नहीं करते परन्तु बहुत लम्बी-चौड़ी बातें हाँकते हैं उनका वहाँ जाना और पहुँचना बहुत कठिन है क्योंकि आत्म लोक साधारण जनों के लिए नहीं है।

### कल्पना प्रकरण

**बिन देखे वह देस की, बात कहे सो कूर।**
**आपुहिं खारी खात हैं, बेंचत फिरें कपूर॥३४॥**

**शब्दार्थ**—कूर–क्रूर, कठोर। आपुहिं–अपने आप। खारी–विशेष प्रकार का एक नमक जो नोना के द्वारा बनाया जाता है वह दवा के काम में आता है, आ० विषय विकार। कपूर–कर्पूर, एक सुगन्धित द्रव, आत्मज्ञान।

**सम्बन्ध**—पहले कहा गया कि आत्म प्रदेश में जाने का मार्ग बहुत चीकना है साधारण पुरुषों की वहाँ गम नहीं है अब नीचे कहा जा रहा है कि बिना देखे उस प्रदेश की बात करना महा मूर्खता का चिह्न है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्त जन ! बिना देखे उस आत्म लोक की बात करना महा क्रूरता है, नीचता है क्योंकि अपने तो अज्ञानी पुरुष खारी स्वरूप विषय-वासना में लगा हुआ है उसको खाता है और दूसरे के लिए आत्मज्ञान रूपी कपूर बेच रहा है। इसलिए उस मूर्ख की बात को कोई ध्यान में न धरो। वहाँ केवल शास्त्र के बल से कोई नहीं जा सकता है। वहाँ साधन, भजन, योग, ध्यान के द्वारा ही जाया जा सकता है। अन्य कोई उपाय नहीं है।

## शब्द विदेह प्रकरण

**सबद सबद सभ कोई कहै, वो तो सबद विदेह।**
**जिभ्या पर आवे नहीं, निरखि परखि करि लेह ॥३५॥**

**शब्दार्थ**—विदेह–जिसको देह का भान न रहे, बिना शरीर का, पंच भौतिक से भिन्न। जिभ्या–जिह्वा। निरखि–देख सुनकर। परखि–परीक्षण करके।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि वंचक लोग केवल शास्त्र के बल पर आत्म लोक की बात करते हैं परन्तु उनकी बात सब निरर्थक है। पूछने पर कहते हैं कि वह शब्द स्वरूप है, ज्ञान स्वरूप है परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि शब्दों में तो बहुत भेद है। इसलिए वह कौन सा शब्द है जिसको तुम मानते हो।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि सब कोई कहता है कि वह शब्द स्वरूपी है, कोई उसको ओंकार कहता है, कोई राम कहता है, कोई शिव कहता है, कोई शक्ति कहता है, कोई अल्लाह कहता है परन्तु ये कहने वाले सब उसको देखे नहीं हैं। अनुमान पर ही सब कथन करते हैं। मैं तो कहता हूँ कि वह शब्द विदेह है, अवयव वाला नहीं है। वह अवयवी है, वह हाथ पैर वाला नहीं है। वह मुख माथा वाला नहीं है,

वह जिभ्या पर आने वाला नहीं है। वह अनिर्वचनोय है, वह केवल गुरु के द्वारा निरखा जा सकता है और परखा जा सकता है। जिज्ञासुओं को चाहिए कि सद्गुरु के द्वारा उसका निरीक्षण परीक्षण करके ही ग्रहण करें। क्योंकि वंचक लोग उसको बहुत दुरूह बना दिये हैं।

**परवत ऊपर हर बहै, घोरा चढ़ि बसे गांउ।**
**बिना फूल भौंरा रस चाहे, कहु बिरवा को नांउ ।।३६।।**

**शब्दार्थ**—परवत–उत्तुंग शिखर की चोटी, सहस्रार। हर–हल, क्रियाशीलता। घोरा–अश्व, मन। गांउ–ग्राम, निवास स्थान, आत्म-देश। भौंरा–भ्रमर, मन। बिरवा–वृक्ष, आत्मा, परमतत्त्व। नांउ–नाम।

**सम्बन्ध**—प्रथम कहा गया है कि वह परमतत्त्व विदेह है उसको निरख-परख करके ही ग्रहण करना चाहिए। अब कहा जा रहा है कि वह बहुत उत्तुंग स्थान में निवास करता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि शरोर के अन्तिम भाग ब्रह्माण्ड में जो ऊँचे पर्वत के समान है उसके ऊपर सहस्रार में पहुँचकर आत्म-चिन्तन करना चाहिए। आत्म-चिन्तन करना ही हल बहना है और अश्व रूपो मन पर चढ़कर उस सहस्रार में अपना ग्राम स्थापित करना है। सदैव सहस्रार स्थित होकर आत्म-चिन्तन करना चाहिये। जहाँ पर बिना फूल के ही मन रूपी भ्रमर परम रस की चाहना करता है। अर्थात् वहाँ कोई लौकिक पुष्प वृक्ष नहीं है। उस आत्म प्रदेश में, उस सहस्रार में स्वयमेव चतुर्दिक सुगन्ध फैल रही है। जिसमें चिन्तन करते-करते मन उसी आत्म सुख में निमग्न हो जाता है और आत्म रूपी जो वृक्ष है जिसमें सभी सुख निवास करते हैं। जो सभी प्रकार के सुख रूपी फल को देने वाला है। भला कहो उसका क्या नाम है ? अर्थात् वह आत्म पुरुष नाम, रूप दोनों से भिन्न है। उसी की प्राप्ति साधक को करनो चाहिये।

## अहिंसा प्रकरण

**चंदन बास निवारहू, तुझ कारन वन काटिया।**
**जिअत जीउ जनि मारहू, मुये सभै निपातिया ।।३७।।**

**शब्दार्थ**—चंदन–एक प्रकार का वृक्ष है जिसके घीसने पर सुगन्ध निकलती है (जीवात्मा) जो शीतल एवं बहुत ठंढ़ा होता है। वास–सुगन्ध। निवारहू–दूर करो। कारन–कारण, हेतु। वन–जंगल, संसार का सुख।

काटिया–काटा गया, दूर किया गया। जिअत–जीते जी। जीउ–जीव, प्राणी। मारहू–मारो। जनि–नहीं। मुये–मरने पर। निपातिया–नाश, निपातन।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि उस पुरुष का कोई नाम रूप नहीं है। वह संज्ञाओं से परे है उसकी प्राप्ति तभी हो सकती है जब संसार की सुगन्ध त्यागा जा सकता है। ऐसा निचली साखी में कहा जा रहा है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि उस परमतत्त्व की प्राप्ति तुझे तभी हो सकती है जब तू दुःख स्वरूप संसार के विषय कामनाओं से दूर हो जाओगे। क्योंकि संसार की विषय कामना बहुत मधुर लगती है। चंदन के समान उसकी सुगन्ध लगती है, इसलिए सारे प्राणी उसी की सुगन्ध में मस्त रहते हैं। मैं कबीर तेरे कारण विषय वासना रूपी वन का उच्छेद किया है अब तू सावधान हो जा। अपने जीवन को जीते जी नाश मत करो। जीते जी उसको मारो नहीं क्योंकि शरीर पात होने पर सभी प्राणियों का निपातन माना गया है। इसलिए तू अपने आपको सम्भालो, न अपने दुःखी हो, न दूसरे को दुःख दो। क्योंकि सारा संसार मरणशील है, मरणधर्मा है समय पाकर सब यहाँ से जाने वाले हैं।

## कुसंग प्रकरण

**चंदन सरप लपेटिया, चंदन काह कराय।**
**रोम-रोम विख भीनिया, अम्रित कहां समाय ॥३८॥**

**शब्दार्थ**—चंदन–जीवात्मा। सरप–काम, क्रोध। लपेटिया–लिपटा हुआ। काह–क्या। कराय–करेगा। रोम-रोम–प्रत्येक अंग में। विख–विषय–वासना। भीनिया–समा गया है। अम्रित–आत्मतत्त्व, सुधा, आत्मज्ञान। समाय–समाविष्ट, बोध।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि विषय वासना का निवारण करो और अपने जीवन को सार्थक बनाओ परन्तु मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया, क्योंकि काम, क्रोध से आवृत्त है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि चन्दन रूपी जीवात्मा में काम, क्रोध रूपी सर्प लिपटे हुए हैं। इसलिए चंदनवत आत्मा किसी चीज को ग्रहण करने में या पालन करने में असमर्थ हो रहा है। इसलिये कुछ कर पा नहीं रहा है क्योंकि अंग प्रत्यंग में विषय वासना रूपी विष भीन गया

है, समा गया है जिसके कारण अमृत रूपी आत्मज्ञान इसके अन्दर धँस नहीं रहा है ।

**ज्यों मोदादि समसान सिल, सभै रूप समसान ।**
**कहैं कबीर वोह सावज की गति, तबकी देखि भुकान ।।३९।।**

**शब्दार्थ**—ज्यों–जैसे । मोदादि–स्फटिक, स्याही । समसान–एक रूप । सिल–एक प्रकार का पत्थर जो पारदर्शी होता है, जिसमें अनेक रंग की वस्तुयें एक ही रूप में दिखायी देती हैं । सावज–शिकार, पशु, सावक । वह–उस । गति–दशा । तबकी–उसकी, उस समय की । भुकान–भूकने लगा ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि रोम-रोम में विषय वासना भर जाने के कारण सत्य का ज्ञान नहीं हो सका । जो भी उसको कहा जाय अच्छा हो चाहे बुरा हा सबको एक हो सा मान लेता है । नीचे के उदाहरण से समझा जा सकता है ।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि जैसे मोदादि स्फटिक शिला में जिसको समसान शिला भी कहते हैं जिसमें सभी प्रकार के रूपों का एक ही रूप दिखायी देता है । इसी प्रकार से जिसका मन विषय वासना में डूब गया है वह किसी भी बात को एक ही समझ लेता है । कबीर साहब कहते हैं कि उसकी वही (उस) सावज की तरह गति है जो शीशे में रखा जाय तो दूर से देखकर उसको पकड़ने के लिए कुत्ता भूँकता है । इसी प्रकार से विषयी पुरुष जो अहर्निश विषय भोग चाहने वाले हैं वह कुत्ता के समान हैं । यदि उनको कोई सच्ची बात कही जाती है, कोई सच्चा उपदेश सुनाया जाता है तो वह उसके मन में नहीं भाता है क्योंकि उसके लिए 'कामिनि रूपी सकल कबीरा' वाली बात होती है । जैसे मोदादि शिला में सभी रङ्ग की वस्तुयें समान रूप से भासती हैं । वैसा ही मन रूपी मोदादि शिला में अन्दर की वासनाओं के कारण सभी में समान दृष्टि रहती है । कबीर साहब सावज और कुत्ता का उदाहरण देकर कहते हैं कि यह तृष्णा निष्ठ मनुष्य जिसको अर्थात् उस आत्मतत्त्व को यह मानव प्राप्त नहीं कर सकता जो इससे बहुत दूर है उसकी भी प्राप्ति यह चाहता है । जैसे शीशे के घर में रखा हुआ शिकार को देखकर कुत्ता उसकी प्राप्ति करना चाहता है । उसी प्रकार से विषयी पुरुष की गति है । जिसको कभी विषय से संतुष्टि नहीं होती है । अहर्निश विषय के चाह में लगा रहता है ।

**आशय**—मोदादि एक प्रकार का स्फटिक शिला है जिसे समसान भी कहा जाता है। मोदादि को समसान इसलिये कहते हैं कि उसके सामने कोई भी वस्तु आती है तो वह मोदादि जैसा ही भासती है मोदादि हरी स्याही के रङ्ग को कहा गया है। फारसी में उसको स्याही भी कहते हैं। उसी प्रकार का विषयी पुरुषों का मन होता है। उनके समक्ष कोई भी बात कही जाती है तो सब का अर्थ वे विषय के अन्तर्गत मान लेते हैं। वे भली बुरी को अभेद करके समझते हैं। उनके मन में सभी वस्तु एक रंग की दिखायी देती है। इसी से उनके मन की उपमा मोदादि शिला से दी गयी है सद्गुरु कहते हैं कि विषयी पुरुषों की गति उस कुत्ते की जैसी है जो काँच के भीतर घुस जाने पर अपने प्रतिबिम्ब को दूसरा कुत्ता समझकर भूकते-भूकते मर जाता है। उसी प्रकार से अज्ञानी मनुष्य भी अपने से भिन्न वस्तु में सुख मानता है जिसके लिए रात-दिन उस बाह्य सुख के खोज में पड़ा रहता है। वास्तविक सुख तो उसके अन्दर आत्मा में है परन्तु आत्मा की उपेक्षा करके बाहर के विषय सुख की चाहना करता है जो उसकी बड़ी भूल है।

## दृढ़ प्रतिज्ञ प्रकरण

**गही टेंक छोड़ै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।**
**ऐसो तपत अंगार है, ताहि चकोर चबाय ॥४०॥**

**शब्दार्थ**—गही–ग्रहण, पकड़। टेक–प्रण प्रतिज्ञा। चोंच–मुख हार। तपत–जलता हुआ। अंगार–अग्नि। ताहि–उसको। चकोर–एक प्रकार का पक्षी, चक्रवाक, चकवा, एक प्रकार का बड़ा पहाड़ी 'तितर' जो नेपाल, नैनीताल आदि स्थानों में बहुत मिलता है। इसके ऊपर का रंग काला होता है। जिस पर सफेद चितियाँ होती हैं। पेट का रंग कुछ सफेद लिये होता है। चोंच और आँखें लाल होती हैं। भारतवर्ष में यह प्रसिद्ध है कि यह चन्द्रमा का बड़ा प्रेमी है और उसकी ओर एक टक देखते रहता है। यहाँ तक की वह आग की चिनगारी को भी चन्द्रमा की किरणें समझ कर निगल जाता है।

**सम्बन्ध**—ऊपर विषयी पुरुषों की उपमा मोदादि समसान शिला के रूप में बतायी गयी। अब नीचे दृढ़ प्रतिज्ञ निर्विषयी पुरुषों की बात कही जा रही है।

**मूलार्थ**—जैसे चकोर पक्षी अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा प्रणको त्याग नहीं कर सकता है। चन्द्रमा से जो उसका सम्बन्ध है उसको नहीं छोड़ता है। चन्द्रमा के समान तपता हुआ अंगार को भी चबा जाता है व निगल जाता है। उसी प्रकार से साधक पुरुष अपने गुरु का बताया हुआ मार्ग त्यागता नहीं है। करोड़ों विघ्न-बाधा आने पर भी वह उस मार्ग से नहीं हटता है। चाहे उसका प्राण ही क्यों न चला जाय। जो एक बार परमतत्त्व का दर्शन कर लेता है। तो वह सभी रूपों में, सर्प में, बिच्छु में, सिंह में, साधु में, असाधु में वही परम रूप को देखता है। वह अपनी प्रतिज्ञा से कभी अलग नहीं होता है चाहे उसके जीवन का ही अन्त क्यों न हो जाय। जिस प्रकार से चकोर चन्द्रमा समझकर अग्नि को निगल जाता है परन्तु जीभ, चोंच जरने का भय उसको नहीं रहता उसी प्रकार से जिसका मन भाव भजन में लग गया है। वह करोड़ों विघ्न बाधाओं को सहता हुआ आगे बढ़ता जाता है।

**चकोर भरोसे चंद के, निगले तपत अंगार।**
**कहैं कबीर डाहै नहीं, ऐसी वस्तु लगार ।।४१।।**

**शब्दार्थ**—चंद–चन्द्रमा, परमतत्त्व, परमेश्वर। अंगार–जलता हुआ अग्नि का गोला। तपत–जलता हुआ। भरोसे–सहारे, आश्रित, आशा। निगले–घोंट जाय। डाहै–जले। लगार–प्रेमिका, लगकर, ईश्वर।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि साधक पुरुष अपनी साधना को कभी छोड़ता नहीं है। इसी से उसको सफलता मिलती है। नीचे कहा जा रहा है कि उसको परमतत्त्व से बल मिलता है। इसलिए साधक में अपार बल आ जाता है जिसके कारण अनेक विघ्न-बाधाओं को सहता हुआ अपने गन्तव्य मार्ग तक पहुँच जाता है।

**मूलार्थ**—चकोर चन्द्रमा के भरोसे जलते हुए अंगार को जिस प्रकार से घोंट जाता है। समझता है कि वह हमारा प्रियतम उपास्य देव चन्द्रमा ही है। साहब कहते हैं कि वह चन्द्रमा में अग्नि का तादात्म्य भाव करने से जलने नहीं पाता है क्योंकि ऐसी वस्तु स्वामी के प्रेम की है। उसी प्रकार से जो साधक अपने उत्तम अवस्था तक पहुँच गया है। है। जिसको इष्ट का भान होने लगता है। जो सभी में इष्ट का दर्शन करता है। वह सारे भूतों मं परमतत्त्व की भावना करके विरोधी वस्तुओं को भी अपने में पचा लेता है। प्रभु बल होने से उसका कुछ नुकसान

नहीं होता है। वह चकोर की भाँति अपने स्वरूप में अपनी निष्ठा में निमग्न रहता है।

## नेत्र ज्योति उपासक प्रकरण

**झिलि मिलि झगरा झूलते, बाकी छूटि न काहु।**
**गोरख अटके कालपुर, कउन कहावै साहु ॥४२॥**

**शब्दार्थ**—झिलि मिलि-कांपती हुई, ज्योति। झगरा-हठता पूर्वक ज्योति की उपासना। झूलते-उसी में लगे रहना। बाकी-शेष। काहु-कुछ भी। गोरख-इन्द्रियों के रक्षक, इन्द्रियों के रखने वाले, गुरु गोरखनाथ। अटके-रुके। कालपुर-यम लोक में, मृत्यु लोक में। कउन-कौन। कहावै-कहा जायेगा। साहु-सच्चा, साधु।

**सम्बन्ध**—ऊपर प्रभु प्रेमी भक्तों की बात कही गयी जो अपने मार्ग से विचलित नहीं होते। अब नीचे भटके हुए लोगों के बारे में कहा जा रहा है जो धोखा में पड़कर सत्य से दूर हो गये हैं।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जो ज्योति उपासक हैं, जो ज्योति की उपासना में लगे रहते हैं। उसी की प्राप्ति के लिए जूझते रहते हैं। ध्यान लगाकर झूलते रहते हैं। तो उन लोगों के पास सच्ची बात भी कोई बचती नहीं। सारा जीवन ज्योति की उपासना में लगा देते हैं पर वह ज्योति प्रकृति के झिलमिले है। आँख मूंदकर नेत्रों के ऊपर कभी-कभी कुछ चिनगारियाँ दिखायी देती हैं, जिसमें एक चिनगारी से अनेक चिनगारियाँ प्रकट होती रहती हैं जो नेत्र की ज्योति से निकलती हैं। वह ब्रह्मरन्ध्र की आगे वाली सहस्रार की ज्योति नहीं होती। वह ज्योति नेत्रों की ज्योति की ज्योति है। उसी में लगे हुए कच्चे साधक लोग सब कुछ गंवा बैठते हैं। जीवन उसी ज्योति की उपासना में बीत जाता है और इन्द्रियों के भोग भी भोगते रहते हैं। ये कच्चे साधक इन्द्रियों के रखवाले हैं इसलिए मरणोपरान्त यमलोक में इनको पकड़कर ले जाया जाता है परन्तु कुछ लोगों का मत है कि गोरख से गोरखनाथ जी का अर्थ है यदि गोरख से गुरु गोरखनाथ का अर्थ लिया जाय तो किंवदन्तियों के अनुसार गुरु गोरखनाथ भी प्रथम अवस्था में काय सिद्धि में लगे रहे। प्रथम दशा में उनको आत्मज्ञान नहीं हुआ वे सिद्धि के बल पर परमधाम को उड़के जा रहे थे। जिन्हें भगवान यम ने रोक दिया। भगवान यम ने कहा

कि काय सिद्धि कोई सिद्धि नहीं है। यह नष्ट होने वाली है इसलिए आप पुनः जाकर अन्यमनस्क योग की सिद्धि कीजिए। पुनः आकर गुरु गोरखनाथ आत्म प्राप्ति की क्रिया सिखी, जो उनके बाद की वाणियों में झलकती है। साहब कहते हैं कि गोरखनाथ जैसे काय सिद्धि वाले योगी मृत्यु को पार नहीं कर सके। तब दूसरा झिल-मिल ज्योतियों के उपासकों को किस प्रकार से आत्मज्ञानी कहा जायेगा और भवसागर से कैसे पार हो जायेंगे। इसलिए नेत्र के आगे उड़ती हुई चिनगारियों की ज्योति छोड़-कर आत्म ज्योति की उपासना करनो चाहिए। तब मनुष्यों को सच्चा ज्ञान मिल सकता है। अन्यथा उनका जीवन निरर्थक में ही चला जायेगा। आगे के लिए उनके पास कुछ बचेगा नहीं।

**गोरख रसिया जोग के, मुये न जारी देह।**
**मासु गली माटी मिली, कोरो मांजी देह ॥४३॥**

**शब्दार्थ**—गोरख-गुरु गोरखनाथ। रसिया-रसिक, योग के प्रेमी। जोग–समाधि। मुये-मृत। जारी–जाली, जलाया। देह–शरीर। कोरो–ताजा, शुद्ध, ब्रह्मचर्य सहित। मांजो–माजा, धोया, नाड़ी शोधन।

**सम्बन्ध**—पहले कहा जा चुका है कि प्रथम अवस्था में गुरु गोरखनाथ जी भी काय सिद्धि में लगे रहे, जिसके कारण प्रथम उनको सफलता नहीं मिली, परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि वह समाधि के बड़े प्रेमी थे और हठयोग में पारंगत थे।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि श्री गुरु गोरखनाथ जो बड़े योग के प्रेमी थे। वे छः छः महीने तक, साल-साल भर तक समाधि लगाकर बैठे रहते थे। उनकी शरीर कभी पात नहीं हुई। कभी जली नहीं। वे कभी मरे नहीं अर्थात् अकाल मृत्यु को जीत लिया था। प्राणायाम के द्वारा नाड़ी शोधन कर लिया था। वे योग के बल से अपनी शरीर के माँस को सूखा डाले थे। उनके शरीर की माँस गल-गल कर धूल में मिल गयी थी। अर्थात् वैराग्य अग्नि में अपनी शरीर को खूब तपाया। 'कोरो' कहिये ज्यों का त्यों सदा वे सिद्धि के बल पर एक सा दिखाई देते थे। अपनी शरीर को अपने अन्तःकरण को खूब माँजा था, खूब धोया था, खूब शुद्ध क्रिया था जिसके बल पर उनका योग सिद्धि हुआ था। इस प्रकार के योगी हठयोग में देखने को नहीं मिलते हैं। उनके साथ एक किंवदन्ती जुड़ी हुई है कि जब शरीर वृद्धत्व को प्राप्त होता था तब वे ऐसो

जड़ियों का ज्ञान रखते थे जिनका सेवन करके शरीर के मांस को गला देते थे। माँस नीचे गिर जाता था और औषधि के बलपर उनके शरीर की अस्थियाँ एकदम नवीन हो जाती थी और नवीन माँस शरीर में ज्यों का त्यों भर जाता था। उनके मत वालों का कहना है कि आज भी गुरु गोरखनाथ मरे नहीं हैं। न वे कभी मरते हैं। वे सदा जीवित रहने वाले सिद्ध योगी हैं। इस प्रकार के चमत्कार की कथाएँ गुरु गोरखनाथ के साथ जुड़ी हुई हैं।

## विना गुरु साधन प्रकरण

**बनते भागी बेहड़े परा, करहा अपनी बान।**
**बेदन करहा कासो कहै, को करहा को जान ॥४४॥**

**शब्दार्थ**—बनते–घर से, जंगल से, आलय से, कपास, पानी आ० संसार, शरीर। बेहड़े–विकट प्र० बीहड़, विषम, कठिन, विशाल, उबड़-खाबड़, जंगल की वह भूमि जो पहाड़ी घाटी से कटी व टूटी-फूटी हो। करहा–सं० करहा, ऊँट, हाथी का बच्चा अ० हठयोगी। बान–स्वभाव, वाणी, वचन। बेदन–दुःख। कासो–किससे। जान–जानकारी।

**सम्बन्ध**—इसके पहले श्री गोरखनाथ के योग की महिमा बतायी गयी और उनको एक निपुण योगी के रूप में दर्शाया गया, परन्तु अब नं चे कच्चे योगियों की चर्चा की जा रही है। जिन्हें योग के बारे में और मनन के बारे में पूरी जानकारी नहीं है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जब मनुष्य चारों ओर से विपत्तियों से घिर जाता है। कहीं कोई आश्रय नहीं दिखाई देता है तो अन्ततोगत्वा ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करने की ओर प्रवृत्त होता है। पुत्र-कलत्र और घर-द्वार को त्यागकर जपतप करने के लिए पर्वतों की मालाओं में और जंगलों के घोर मैदानों में जाकर आसन जमाता है। जिस प्रकार से हस्ती मदान्ध होने पर मैदानी क्षेत्रों से भागकर जंगल की ओर जाता है जहाँ पर हस्तियों के फँसाने वाले, हस्ती के चित्र का कालबूत खड़ा किये रहते हैं जिसके नीचे भयानक गड्ढा होता है। 'करहा' कहिये हस्ती अपने मतवाले स्वभाव के कारण हस्तिनी समझकर उस कालबूत से जाकर भिड़ता है और पश्चात् गड्ढे में गिर जाता है परन्तु गड्ढे में गिरने के बाद जो कष्ट उसको होता है वह किससे कह सकता है। अर्थात् मन ही मन पश्चाताप करता है और उस करहे के दुःख को कौन

जान सकता है। उसी प्रकार से संसारी मनुष्य घर द्वार त्यागकर घर से भागकर पहाड़ों की गुफाओं में, जंगलों में जाकर कुछ दिन योगध्यान की साधना करता है। पश्चात् बहुत से शिष्य-शिष्याओं को इकट्ठा करके उसी में रम जाता है। जहाँ-तहाँ अपनी सिद्धियों का प्रदर्शन करता है परन्तु परमतत्त्व विहीन मनुष्य सदा अशान्त रहता है। बड़े-बड़े मठों का महन्त बन जाता है जो बवाल में था, वन में था, वह प्रपंच चेला-चेलियों के साथ उसे लग जाता है। अन्ततः आत्मज्ञान के न होने से पश्चाताप करता है। मन में बड़ी वेदना होती है। अपने दुःख को भला किससे कहूँ 'अपनी जाँघ उघारि के, अपनी कही न जाय। की चित जाने आपनो की मेरो जनगाय।'—के अनुसार यम राजा के फन्दे में पड़कर मानवेतर योनियों में जाना अवश्यम्भावी है। यम के द्वारा उसी तरह से पकड़ा जाता है जिस प्रकार से जोविकियों के द्वारा हस्ती पकड़कर ले जाया जाता है।

**बहुत दिवस ते हींडिया, सुन्नि समाधि लगाय।**
**करहा पड़ा गाड़ में, दूरि परा पछिताय ॥४५॥**

**शब्दार्थ**—दिवस–दिन। हींडिया–(दे० होड़त), अन्वेषण करना जाना, पहुँचना। सुन्नि–जड़। गाड़–गड्ढा, भ्रम। परा–पड़ा। पछिताय–पश्चाताप।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि अज्ञानी मनुष्य के घर द्वार छोड़ने से कोई लाभ नहीं होता है क्योंकि नीचे कहा जा रहा है कि बिना सन्त सद्गुरु के बहुत काल तक मनमुखी बनकर सोचते रहा परन्तु इष्ट की सिद्धि न होने पर पश्चाताप ही हाथ लगा।

**मूलार्थ**—गुरु विमुख मनुष्य जिसको सद्मार्ग का ज्ञान नहीं है। जो कभी सद्पुरुषों की संगति नहीं की है। जो केवल श्लोक पढ़कर, केवल वेदों का अध्ययन करके सत्य की प्राप्ति करना चाहता है तो सद्गुरु कहते हैं कि वह बिल्कुल मूर्ख है क्योंकि वह बहुत दिन तक खोजा, अन्वेषण किया। शून्य स्थानों पर जाकर समाधि लगाया। समाज से उसी प्रकार से कटा रहा जिस प्रकार से करहा व हस्ती विषय की चाट में कालबूत को पत्नी समझकर गड्ढे में जा गिरा परन्तु जिस झुण्ड की हस्ती था वह उससे बहुत दूर हो गया। पुनः अपने समाज में नहीं जा सका। उनसे दूर होकर पश्चाताप करने लगा। इसी प्रकार से वास्तविक तत्त्वज्ञान के बिना समाधि लगाने से कुछ नहीं हुआ। अन्ततोगत्वा जब

शरीर शक्तिहीन हो गया। जाने की तैयारी हो गयी। तब पश्चाताप करने लगा।

**कबीर भरम न भाजिया, बहु विधि धरिया भेख।**
**सांई के परचावते, अन्तर रहि गइ रेख ॥४६॥**

**शब्दार्थ**—भरम-भ्रम, अज्ञान, सन्देह। भाजिया-दूर हुआ, भागा। विधि-प्रकार। धरिया-धारण किया। भेख-लिबास, वेष। सांईं-स्वामी, परमतत्त्व। परचावते-परिचय करते। अन्तर-भीतर। रेख-चिह्न, निशान, वासना।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि शून्य में समाधि लगाकर कुछ पाया नहीं। हाथ मीजते रह गया।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि सत्य की प्राप्ति के लिए बहुत प्रकार का वेश धारण किया, बहुत प्रकार की उपासना की, बहुत प्रकार से जप-तप किया परन्तु गुरु विमुखता के कारण भ्रम का निवारण नहीं हो सका। क्योंकि जो अन्तस्तल में विराजमान स्वामी है उसका परिचय नहीं मिला। अर्थात् तत्त्वज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई। इसका कारण अन्तर में वासनारूपी रेख विराजमान थी। जब तक वासना का अन्त नहीं होगा तबतक तत्त्व की प्राप्ति होना सम्भव नहीं है।

**बिनु डांड़े जग डांड़िया, सोरठ परिया डांड़।**
**बाटनि हारे लोभिया, गुर ते मीठी खांड़ ॥४७॥**

**शब्दार्थ**—डांड़े-दण्डित। डांड़िया-दंड दिया गया। सोरठ-सोलह, सोलह जगह सं० स्त्री० (सोरही) जुआ खेलने के लिए सोलह चित्ती कौड़ियों का समूह। आ०-प्राणादिक सोलह बन्धन, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच कर्मेन्द्रिय, पंच प्राण-मन। जन्म से मरण तक के सोलह संस्कार। बाटनिहारे-बितरक। लोभिया-लोभी। गुर-मीठा, भेली। खांड़-चीनी, खाड़सारी।

**सम्बन्ध**—पहले कहा गया कि बहुत प्रकार का वेश धारण किया, परन्तु स्वामी से परिचय नहीं हुआ। अन्तर वासनाओं के कारण ज्यों का त्यों रह गया। नीचे कहा जा रहा है कि यह संसार बिना दंड के दण्डित होते रहता है। अज्ञानी मनुष्य को कहीं सुखशान्ति नहीं मिलती।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि ये कच्चे साधक लोग जो बिना सन्त सद्गुरु के परिचय किये बिना साधना में लग जाते हैं। अन्त में उनकी

साधना बिगड़ जाती है। अनेक प्रकार के रोगों मे ग्रसित हो जाते हैं बिना किसी दण्डदाता के ही अपने अज्ञान के कारण ये दंडित होते रहते हैं और इनके लिये महंगा सोलह प्रकार के संस्कार हैं वे जन्म से मरण तक झेलने पड़ते हैं। लोक में सोरठ का अर्थ उस बाँस के डंडे को भी कहते हैं जिसके बहुत छोटे-छोटे पोर होते हैं जो बड़ा मजबूत होता है। पहले राजपुरुष उसी डंडे से अपराधी आदमी को पीटा करते थे। जिसकी पीड़ा बड़ी भयानक होती है। प्राण तक भी चले जाते हैं। उसी प्रकार से साधना बिगड़ जाने पर योग भंग हो जाने पर जो शारीरिक रोग होते हैं। वह किसी औषधि आदि के द्वारा ठीक नहीं होते हैं। जिस प्रकार से सोरठ डंडे से पिटा हुआ आदमी कराहता रहता है। उसी प्रकार से योगभ्रष्ट पुरुष रोगों से ग्रसित होकर कराहते रहता है। क्योंकि जिसको गुरु बनाया, जो ज्ञान का वितरण करता था। वह बड़ा ही लोभी था। वह शिष्य शाखा तो बहुत मूड़ता था परन्तु उसके पास किसी योग साधना का ज्ञान नहीं था। अनभिज्ञ था। वह तो कहता था कि गुड़ रूपी माया से खांड़रूपी तत्त्व मीठा है, श्रेष्ठ है। माया का त्याग करना चाहिए। परमतत्त्व में लगना चाहिए क्योंकि परमतत्त्व बड़ी मीठी स्वादिष्ट वस्तु है परन्तु कहने मात्र ही रहा। ज्ञानदाता केवल जन-धन बटोरने के फेर में पड़ा रहा। इसलिए उसके बताये हुए मार्ग के मार्गी सब सोरठ से दंडित किये गये अर्थात् जन्म-मरण के चक्र में पड़े रह गये।

## हृदय निःसार प्रकरण

**मलयागिरि की बास में, बिछ रहे सभ गोय।**
**कहबे को चंदन भया, मलयागिर नहिं होय ।।४८।।**

**शब्दार्थ**--मलयागिरि--सं० (मलयागिरी) माल्यवन, सत्संग, मलय नामक पर्वत जो दक्षिण में है। वहाँ के चंदनादि उत्तम होते हैं। बास--सुगन्ध। कहबे को--कहने के लिए। गोय--गुप्त, मिलना।

**सम्बन्ध**--ऊपर कहा गया है कि अज्ञानी मनुष्य बिना दण्ड के दण्डित होते रहता है। क्योंकि सद्गुरु सत्संग का साथ नहीं किया। अब नीचे कहा जा रहा है कि किंचित सत्संग सद्गुरु का साथ भी किया कुछ सुधार भी हुआ परन्तु स्वयं सद्गुरु नहीं बना।

**मूलार्थ**--सद्गुरु कहते हैं कि मलय पर्वत के बास में उसके प्रभाव में उस पर उगने वाले वृक्ष सब गोय कहिये मिल गये। अर्थात् मलया-

गिरि के प्रभाव से वे सब चन्दन नामधारी हो गये। साहब कहते हैं कि कहने के लिये चन्दन हो गया परन्तु मलयागिरि नहीं हो सका। कारण कि उनमें सजाति गुण नहीं थे। बीजातिय गुण के कारण कुछ भेद रह गया। इसी प्रकार से मलय के समान संत सद्गुरुओं के समीप में आस-पास के लोग कुछ प्रभावित हुए। कुछ उनका सुधार हुआ। भगत कहलाने लगे अच्छे मानव में गिनती हो गयी परन्तु मलयरूपी सन्त सद्गुरु नहीं हो सके। तत्ववेत्ता नहीं हो सके। स्वस्वरूप के ज्ञान से वंचित रह गये।

**मलयागिर की बास में, बेधा ढ़ाक परास।**
**बेना कबहुँ न बेधिया, जुग-जुग रहिया पास ॥४९॥**

**शब्दार्थ**—बेधा–धसा। ढ़ाक–पलास, ढ़ाक एक प्रकार का जंगली पेड़ है जिसके पत्ते गोल-गोल होते हैं, जाड़े के महिने में पशु उसको चबाते हैं, ढ़ाक का दूसरा नाम टेसू भी है और भोजन खाने के लिए पत्तल भी उसका बनता है। बेना–बाँस। बेधिया–बेधा। जुग-जुग–सब दिन। पास–समीप।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि सन्त सद्गुरु के संगति से मानव में कुछ सुधार हो जाता है। मनुष्य बन जाता है परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि मूर्ख मनुष्य, हृदयहीन का कुछ भी सुधार नहीं होता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि मलयागिरि के बास में उसकी सुगन्धी में ढ़ाक पलास अर्थात् टेसू का वृक्ष भी विध जाता है। वह भी मलयागिरि के बास से विध कर चंदन हो जाता है परन्तु बेना जो बाँस है कभी भी मलयागिरि के असर में नहीं आता है। जो प्रतिदिन पास ही रहता है। इसी प्रकार से सन्त सद्गुरु के सत्संग में थोड़े गुण वाले मनुष्य भी थोड़ी सी श्रद्धा भक्ति से अच्छे मनुष्य बन जाते हैं परन्तु श्रद्धा भक्ति विहीन पापी मनुष्य जो मूर्खों का सरदार हैं। वे कभी सुधर नहीं पाते। क्योंकि सदा वह अहंकार में डूबे रहते हैं। अपने धन जन में उन्मत्त रहते हैं। वह अपने से किसी को बड़ा नहीं मानते। उस असुर प्रवृत्ति वाले पुरुष का कभी स्वभाव बदलता नहीं है। जिस प्रकार से बेनु बांस का।

## साधक अज्ञात मार्ग प्रकरण

**चलते चलते पगु थका, नग्र रहा नउ कोस।**
**बीचहिं में डेरा परा, कहहु कउन को दोस ॥५०॥**

**शब्दार्थ**—पगु–पैर। नग्र–नगर, आत्म प्रदेश। नउ कोस–पंच ज्ञानेन्द्रियों का विषय, चतुष्टय अन्तःकरण। बीचहिं–मध्य में ही, अवस्था के अन्त में। डेरा–शिविर, झोपड़ा, निवास। कहहु–कहा। कउन–कौन।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि आसुरी प्रवृत्ति वाला मनुष्य कितना भी सन्त सद्गुरु के पास रहे। आत्मज्ञानियों के पास रहे परन्तु अभिमान के कारण उसके हाथ कुछ लगता नहीं। अब नीचे कहा जा रहा है कि अपनी अनभिज्ञता और अभिमान के कारण सत्य नगर तक पहुँचने में वह समर्थ नहीं होता।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि मनुष्य संसार में चलते-चलते थक जाता है। मानव जीवन का अन्त कर देता है परन्तु जो उसकी अभीष्ट प्राप्ति है। जिसकी प्राप्ति के लिए मानव चोला मिला था। उसको पा नहीं सका और नगर बहुत नजदीक था। यहाँ तक कि नव कोस ही था परन्तु उन नौ कोसों को पार नहीं कर सका। बीच में ही डेरा पड़ गया। अर्थात् शरीर का अन्त हो गया। इसमें कहो किसका दोष है ? दोष उसी का है। जो पूरे नौ कोस तक नहीं पहुँच सका अर्थात् पंच ज्ञानेन्द्रियों के भोग में रह गया। चतुष्टय अन्तःकरण के फेर में रह गया। मीठे-मीठे शब्दों को सुनते रहा। अच्छे-अच्छे रूपों को देखते रहा। अच्छे-अच्छे गन्धों को सूंघता रहा। अच्छे-अच्छे रसों को जिह्वा से चूसते रहा। मुलायम, मुलायम वस्तुओं का लेपन करते रहा। उस पर भोग के लिए विश्राम करते रहा। मन जो चाहता था वही करता था। बुद्धि जो निश्चय करती है वही करता था। चित्त जिस विषय का चिन्तन करता था इसी में लगा रहता था। हम बहुत धन-जन वाले हैं। इसी अहंकार में मस्त रहता था। इन नौ कोसों को पार कर लिया होता। पंच विषयों को जीत लिया होता चतुष्टय अन्तःकरण को जीत लिया होता तो इसके बाद थोड़ी ही दूर पर तुरीयावस्था थी जहाँ स्वामी का निवास था। जहाँ प्रभु का वास है परन्तु संसार के भोग विलास में ही मस्ती मारते रहा। इसलिए कुछ हाथ नहीं लगा। अन्ततः बीच में ही भगवान रवितनय अपने पास बुला लिये। पूरी आयु तक सुख भी नहीं भोग सका। जवानी में ही यहां से रवाना हो गया।

**बहु देववाद निषेध प्रकरण**

**झालि परे दिन आथवे, अन्तर परिगइ सांझ।**
**बहुत रसिक के लागते, बेस्वा रहि गई बांझ।।८१।।**

**शब्दार्थ**—झालि–(हि०) झड़ा, पानी की झड़ी, अंधेरा आ० अज्ञान। आथवे–अस्त। दिन–सूर्य। सांझ–सन्ध्या। रसिक–प्रेमी। लागते–सम्बन्ध करते। वेस्वा–वेश्या, बहुदेववादी। बांझ–वन्ध्या, सन्तानहीन।

**सम्बन्ध**—इसके पहले कहा गया कि नगर बहुत करीब था। यदि ठीक से परिगमन किया गया होता तो शहर में पहुँच जाता। वस्तु खरीद सकता था परन्तु मिथ्या भोग विलास में पड़ा रहा आलसी बन गया। जिसके कारण नगर में पहुँच नहीं सका। आत्मा को जान नहीं सका। अब पुनः कहा जा रहा है कि दिन का अन्त हो गया। शरीर का अन्त हो गया। मानवेतर योनियों में चला गया। क्योंकि वैधव्यता की प्राप्ति हो गयी। प्रिय से मुलाकात नहीं हुई।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि जिस प्रकार से पानियों की झड़ी लग जाती है। चतुर्दिक बादल घिर व लग जाते हैं। दिनकर दिखायी नहीं पड़ते। ज्ञात होता है कि अस्त हो गये। अन्तर कहिये पश्चात् सन्ध्या हो जाती है। अर्थात् यावत जीवन सकाम कर्मों में लगा रहा। अन्त में वृद्धावस्था आ गयी। दिन रूपी जीवन का अन्त हो गया। वृद्धत्व के सामने ज्ञान लोप हो गया। अज्ञान रूपी सन्ध्या घेर ली। प्रभु प्राप्ति नहीं हो सकी। तब तक जीवन रूपी सूर्य अस्ताचल की ओर चल दिया। क्योंकि अनेक धन्धे में जीवन व्यतीत हो गया। बहुसेवी बना रहा। जिस प्रकार से वेश्या स्त्री बहुत पुरुषों से संगति करते-करते गर्भाधान की शक्ति से क्षीण हो जाती है। किसी बाल-बच्चे की प्राप्ति नहीं कर पाती। उसी प्रकार से तत्त्व वेत्ता गुरु-विमुख मनुष्य अनेक देवों की उपासना में लगा रहा। किसी एक में निष्ठा नहीं रही। अन्ततोगत्वा वेश्या स्त्री की भाँति बन्धत्व के समान परमतत्त्व से वंचित रह गया और बहुसेवी होने के कारण सेवा का कोई भी फल नहीं मिला। पश्चात् यमालय की शरण में गया। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि किसी एक ही इष्ट में निष्ठा करें और सच्चे सन्त सद्‌गुरु की देख-रेख में साधना करें।

**मन कहे कब जाइये, चित्तु कहे कब जांउ।**
**छौ मास के हीडते, आध कोस पर गांउ ॥५२॥**

**शब्दार्थ**—मन = ( स० मनस ) प्राणियों में वह शक्ति व कारण जिसमें, उसमें वेदना, संकल्प, इच्छा, द्वेष, प्रणयन बोध विचार आदि होते हैं। चित्तु–अन्तःकरण की चार वृत्तियों में से एक जिससे संकल्प विकल्प

होता है। जांउ–जाना। छौ मास–छः मास। होडते–खोजते, ढूढ़ते। आध कोस–मूलाधार से हृदय कमल तक आधा कोस, अर्द्ध मात्रा बिन्दु मूल तत्त्व। गांउ–ग्राम, प्रदेश।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि बहुत देवाराधना से कोई फल नहीं निकला परन्तु मन में बड़ी-बड़ी चाहनाओं का अम्बार लगा रहा। लोक-लोकान्तर की वासना दृढ़ होती गयी। अमुक देव के लोक में जायेंगे इस तरह की भावना क्रमशः अग्रगणी होती गयी। अब नीचे कहा जा रहा है कि वहाँ कब पहुँचूँगा मन में बड़ी शीघ्रता है। बड़ा प्रयत्न है।

**मूलार्थ**—सद्गुरू कहते हैं कि बहुदेववादियों के मन में देव लोक में जाने की बड़ी उतावली है। मन कहता है कि कब वहाँ चले जाँय। जल्दी से शरीर पहुँच जाय। देवलोक का भोग भोग लें। इस प्रकार का संकल्प विकल्प मन में अहर्निश उठते रहता है। चित्त से रात–दिन चिन्तन करता है। कब यह शरीर पात हो ? कब हम उन परम लोकों की प्राप्ति कर लें। दूर लोकों की आकाशीय नगरों को खोज को देखते हुए साहब कहते हैं कि यह मूर्ख मानव व्यर्थ का आकाशीय नगरों के खोज में पड़ा हुआ है। यदि गुरु के द्वारा समझा हुआ मार्ग होता तो छः मास के अभ्यास से ही गन्तव्य स्थान तक पहुँच जाता। इस बात को श्रुति आदि में दर्शाया गया है और सद्गुरु कबीर साहब भी रमैनी प्रकरण में कहा है कि "छठै मास दरस सो पावै" अर्थात् छः महीना तक लगातार निरन्तर जो साधना करता है। उसको आत्मा का व परमात्मा का भान होने लगता है। क्योंकि आत्मप्रदेश बहुत नजदीक है। मूलाधार से हृदय स्थान बहुत करीब है। जहाँ पर स्वामी का वास है। यदि ठीक से साधना की जाय तो छः महीने के अन्दर आधा कोस तय किया जा सकता है और आत्म लोक में पहुँचा जा सकता है कुछ तत्त्व दर्शियों का कहना है कि मूलाधार की ठीक से साधना की जाय तो चालीस दिन में ही हृदय स्थान में तुरीयावस्था में पहुँचा जा सकता है परन्तु चालीस दिन की साधना अनेक जन्मों के संस्कार से सिद्ध होती है इसलिए सद्गुरु ने छः मास के समय खोजने के लिए नियत किया है।

**ग्रिहि तेजि के भये उदासी, बनखंड तप को जाय।**
**चोली थाके मारिया, बेरई चुनि-चुनि खाय॥५३॥**

**शब्दार्थ**—ग्रिहि–का, गृह घर। तेजि–त्यागकर। उदासी–उदासीन। बनखंड-जंगल की पहाड़ियों में। तप–तपस्या, साधना। चोली–शरीर।

थाके–वृद्धत्त्व को प्राप्त हुई। मारिया–मार डाला, मृत्यु करीब आ गयी। बेरई–बिरई ( देशज ) औषधियों के छोटे-छोटे पौधे, वेर, कन्दमूल।

**सम्बन्ध**––ऊपर कहा गया है कि साधना थोड़े दिन को थी परन्तु बिना गुरु के मार्ग का पता नहीं चला इसलिए बहुत लम्बे नगर की तैयारी में जीव पड़ गया। नीचे कहा जा रहा है कि मुक्ति के लिए, प्रभु प्राप्ति के लिए घर-द्वार तो तज दिया परन्तु वास्तविक गुरु की शरण में नहीं गया।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि यत्र-तत्र कुछ शास्त्रों को पढ़ा कुछ साधु संतों की बात सुनो। मन में उदासी आ गयी। हरि प्राप्ति के लिए घर-द्वार छोड़कर घोर जंगलों में तप करने के लिए चल पड़ा। मनमुखी पुरुष उर्ध्व बाहु, खड़ेसरी, जलशय्या, चौरासी धुनियाँ आदि में तपते रहा। इस प्रकार के तप करते-करते सारा जोवन बिता दिया यहाँ तक कि अन्न-जल के अभाव में जंगल को जड़ी बूटी गिरी-पड़ी बेर आदि के फलों को चुन-चुन करके खाया परन्तु तो भी भगवत् दर्शन न हुए अन्त में चोली रूपी शरीर थक गया। वृद्धावस्था आ गयी। अब जो कुछ करता था। वह सब तप भी शक्ति के अभाव में छूट गया। अन्त में यह जीवात्मा अप्राप्ति की दशा में शरीर छोड़कर परलोक को चला गया। भाव यह है कि प्रभु प्राप्ति के लिए घर-द्वार त्यागकर जंगल में गया। तप करने लगा परन्तु सही रास्ता के न मिलने से अप्राप्ति दशा में ही जीवन का अन्त हो गया। मानव चाहे अन्न-जल छोड़ दें, चाहे उपवास करे, चाहे जंगली फलों को खाय लेकिन जब तक सच्चे संत सद्गुरु नहीं मिलेंगे। तब तक उसके हाथ कुछ लगने वाला नहीं है। इसलिए सच्चे सद्गुरु से सम्बन्ध करके तब साधना को आरम्भ करना चाहिए। तभी कुछ हाथ लग सकता है।

## हरि भक्त लक्षण प्रकरण

**राम नाम जिन्ह चीन्हिया, झीना पिंजर तासु।**
**नैन न आवै निंदरी, अंग न जामै मांसु॥५४॥**

**शब्दार्थ**—राम नाम–परमतत्त्व। चीन्हिया–चीन्ह लिया, पहचान गया। झीना–सूक्ष्म, क्षीण। पिंजर–शरीर। तासु–उसको। निंदरी–नींद। जामै–उपजे, विकसित, मोटापन।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि सद्‌गुरु के अभाव में कितना भी तप किया जाय परन्तु तत्त्व दर्शन नहीं होते। अब कहा जा रहा है कि जो प्रभु की पहचान कर लेता है उसके स्वरूप में परिवर्तन आ जाता है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि जो राम-नाम को समझ लिया है कि राम-नाम क्या चीज है जो चेतन को पहचान लिया है। जिसको वास्तविक प्रभु का साक्षात्कार हो गया है। उसका शरीर कृषित रहता है। मन में प्रफुल्लता रहती है। कृषकाय होने पर भी वह प्रफुल्लित रहता है। प्रसन्न रहता है परन्तु बाह्य नेत्रों में उसके निंदरी नहीं आती। अर्थात् वह कभी भ्रम में नहीं पड़ता भ्रम रूपी निद्रा उसको नहीं आती। सदा सावधान रहता है। सदा जागते रहता है काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि तजकर शरीर रूपी घर में बैठने नहीं पाते। उसका, खाना, पीना, भी अल्प हो जाता है। जो समाधिस्थ रहता है। जो सदा आत्माकार वृत्ति में लीन रहता है उसके खाने-पीने की सुधि नहीं रहती है। इसलिए शरीर में मांस नहीं बढ़ने पाता। यही प्रभु परिचय की पहचान है। परमतत्त्व जानने की पहचान है।

**जो जन भीजें राम रस, बिगसित कबहुं न रुख।**
**अनभौ भाउ न दरसै, तेंहि नर सूख न दूःख ॥५५॥**

**शब्दार्थ**—जन–भगवत् भक्त। भीजें–भीगें, सराबोर हो गये। रुख–मानव शरीर रूपी वृक्ष, शरीर। रस–रस, स्वाद। विगसित–विकसित। कबहुं–कभी। अनभौ–अनुभव। भाउ–भावना। दरसै–दीखैं। रूख–वृक्ष।

**सम्बन्ध**—इसके पहले कहा गया है कि जिसको प्रभु प्राप्ति हो जाती है जो परमतत्त्व को चीन्ह जाता है वह सदा संसार से सावधान रहता है। अब नीचे कहा जा रहा है कि जो प्रभु नाम में सदा निमग्न रहता है जो उनके नाम का रस पी लेता है उसके विषय में कुछ कहते नहीं बनता।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि जो भगवद् भक्त जो प्रभु का दास राम-नाम रूपी रस में सराबोर हो जाता है। ओत-प्रोत हो जाता है। जो प्रभु और अपने में तादात्म्य भाव कर लेता है। आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है। उसका बाह्य रूप अर्थात् शरीर अधिक विकसित नहीं होता है। वह बाहर से उदास रहता है। अन्दर से प्रसन्नचित रहता है। उसको सत्यात्मा राम-नाम का अनुभव होते रहता है। उसके मन में दूसरा भाव नहीं उदय होता। वह सदा भावातीत दशा में डूबा रहता है। उस

परम भक्त ज्ञानी साधक को न संसार का सुख सुखी कर सकता है न संसार का दुःख ही दुःखी कर सकता है। क्योंकि भगवद् भक्त भगवान से अभिन्न हो जाता है। दोनों के नाम रूप विलीन हो जाते हैं मात्र सत्य की प्रतीति होती है। उसकी दृष्टि के आगे से जगत लुप्त हो जाता है। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं का लय हो जाता है। सदा तुरीय ज्ञान अवस्था बनी रहती है।

**काटे आम न मउरसी, फाटे जुटे न कान।**
**गोरख पारस परसे बिना, कवने को नोकसान ॥५६॥**

**शब्दार्थ**—काटे–विच्छेद। आम–आम्र, एक मीठा फल, संसार का सुख। मउरसी–मोजर, फूल, बऊर। फाटे–फट जाय, एक-दूसरे से अलग हो जाय, दरार पड़ जाय। कान–कर्ण, मर्यादा, दाव, बदला। गोरख-गुरु गोरखनाथ, एक प्रकार का गोरख धन्धा जो बहुत जटिल जिसको सुलझाने में बड़ी कठिनाई पड़े, गोरख ककड़ी, गोरख डिब्बी, गोरख मुन्डी, एक प्रकार की जड़ी, तार कड़ियाँ आदि एक में जोड़कर अलग की जा सके, गोरख पंथी साधुओं के हाथ में रहने वाला डण्डा जिसमें बहुत सी कड़ियाँ जड़ी होती हैं, जल्दी समझ में न आने वाले चीज, पहेली, झमेला। पारस–एक प्रकार का धातु पत्थर जिसमें लोहा छुआने से सोना हो जाता है, सन्त सद्गुरु। कवने–कौन। नोकसान–हानि।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो परमतत्त्व में लीन है उसको संसार के दुःख-सुख प्रभावित नहीं कर सकते। अब कहा जा रहा है कि जिसके अज्ञान का मूलोच्छेदन हो गया है उसे फिर अज्ञान और भ्रम नहीं हो सकता।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जिस प्रकार से आम के वृक्ष की मूल काट दिया जाय और काटे हुए आम्र में कभी पुष्प नहीं लगते न वह कभी फल ही देता है। इसी प्रकार से जिसकी माया की जड़ कट गयी है जिसका अज्ञान नाश हो गया है वह कभी भी संसार के संवर्द्धन में नहीं लगता अर्थात् पुनः वह संसार की सृष्टि नहीं करता वह संसार से अलग हो जाता है। एकाकी हो जाता है और अपने आत्मचिन्तन में अहर्निश जुटा रहता है। जब वहाँ संसार की मर्यादा नष्ट हो गयी मन से फट गयी पुनः उस ज्ञानी पुरुष को उसके साथ जुटना और लगना सम्भव नहीं है। क्योंकि जब तक साधक के मन में संसार की कानि है, संसार

की मर्यादा है तब तक वह आगे नहीं बढ़ सकता है। जब उसके मन से लोक के व्यवहार समाप्त हो जाते हैं तब वह निर्द्वन्द्व हो जाता है। क्योंकि साहब कहते हैं कि—"लोक-लाज कुल को मर्यादा, यही गले की फाँसी, जब वह लोक-लाज की मर्यादा से दूर हो जाता है तब वह संसार के गोरख धन्धे में नहीं पड़ता। वह संसार के गोरख धन्धे से निराला हो जाता है और सद्‌गुरु रूपी पारस का परस उसको हो जाता है। जिससे कि वह स्वर्ण के समान चमकने लगता है अर्थात् वह भी सन्त सद्‌गुरु बन जाता है परन्तु सद्‌गुरु कहते हैं कि जो गोरख धन्धे में पड़ा है जो संसार के चक्र में पड़ा है। वह सन्त सद्‌गुरु रूपो पारस को परस नहीं सका। बिना परस का ही रह गया। भला जब सन्त सद्‌गुरु रूपी पारस से स्पर्श नहीं है तब इसमें किसका दोष है? इसमें तो दोष उसी का है जो सन्त सद्‌गुरु का साथ नहीं किया। अहर्निश संसार के गोरख धन्धे में पड़ा रहा। गोरख से कई टीकाकार गोरखनाथ अर्थ किये हैं। अपनी-अपनी समझ और दृष्टि है। किसी को रोका नहीं जा सकता। पर यह गोरखार्थ धन्धे से है।

**पारख रूपी जीऊ है, लोह रूप संसार।**
**पारस ते पारस भया, परख भया टकसार ॥५७॥**

**शब्दार्थ**—पारस–ज्ञान। लोह–संसार, संसारासक्त प्राणी। पारस–सद्‌गुरु, सन्त का ज्ञान। पारख–विवेक, सत्य-असत्य को अलग करने वाला ज्ञान। परख–स्पर्श। भया–हुआ। टकसार–टकशाल। ऊँची या प्रामाणिक वस्तु, असली चीज। निर्दोष वस्तु अ० आत्म स्वरूप चैतन्य, निजरूप।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि जिसका माया से सम्बन्ध नष्ट हो गया है। वह भले-बुरे से पार हो जाता है। अब नीचे दूसरा महत्त्व दर्शाया जा रहा है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि जो सद्‌गुरु ज्ञानरूपो पारस से स्पर्शित हो जाता है वह जोवात्मा भी सन्त सद्‌गुरु के समान हो जाता है। क्योंकि जोव में पारस होने के गुण थे। इसीलिए वह सद्‌गुरु के अरस-परस से पारस रूप ही हो गया और जिन लोगों से सद्‌गुरु का सम्बन्ध नहीं हुआ। उनको पारस रूपी सद्‌गुरु का ज्ञान नहीं हुआ। वे लोग लोहा के लोहा ही रह गये। जिन्हें माया रूपी मोरचा सदा खाते रहा और संसार में वे नष्ट हो गये और जो सद्‌गुरु ज्ञान रूपी पारस से

स्पर्शित हो गया वह सन्त सद्गुरु रूपी पारस के समान हो गया और ज्ञान रूपी पारस को स्पर्श करके 'टकसार' कहिये आत्म ज्ञानी हो गया उसकी अत्यन्त ऊँची स्थिति हो गयी। सत्य की परख गुरु कृपा से कर लिया। वह अपने स्वरूप का ज्ञान कर लिया। वह अहर्निश कल्याण कामी के रूप में सत्य का चिन्तन करने लगा। अब उसको पुनः संसार में आने का भय नहीं रहा।

**प्रेम पाट का चोलना, पहिर कबीरू नांच।**
**पानिप दीन्हों तासु को, जो तन मन बोले सांच ॥५८॥**

**शब्दार्थ**—प्रेम–अनुराग, प्रीति। पाट–पट, सबक, सीख, वस्त्र, कपड़ा, रेशमी वस्त्र, चौड़ाई, फैलाव, पाटी, पटिया; पट्टी अ० आत्म ज्ञान। चोलना–(सं०-चोल) एक प्रकार का बहुत लम्बा ढीला-ढाला कुर्त्ता। जो प्रायः साधु सन्त मुल्ला आदि पहनते हैं। अ०-शरीर। पहिर–पेह्नकर। कबीरू–सद्गुरु कबीर। नांच–नृत्य, निमग्न। पानिप–पानी। ओप, द्विति, कान्ति, चमक, आब, इज्जत, मर्यादा। तासु–उसको।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जीवात्मा पारस स्वरूप है। व ज्ञान स्वरूप है और अज्ञानी जीव लोहा के समान है और जो संत सद्गुरु से स्पर्श कर लिया वह ऊँचा हो गया। शेष लोहा के लोहा रह गये। नीचे सद्गुरु कहते हैं कि मैं प्रेम का पाट पहनकर परमतत्त्व की उपलब्धि कर खूब नृत्य कर रहा हूँ। मेरे आनन्द का कोई ठिकाना नहीं है।

**मूलार्थ**—जब साधक की साधना करते-करते अत्यधिक ऊँची स्थिति हो जाती है तब संसार से बिल्कुल उसकी उपरति हो जाती है। वह निश्चिन्त हो जाता है। प्रेमरूपी वस्त्र का चोला पहनकर अर्थात् आत्म-ज्ञान से सराबोर होकर अति निमग्न होकर मस्ती में झूमते रहता है। उसका शरीर उसके तन-मन सब निर्मल हो जाते हैं। प्रेम ही उसका वस्त्र हो जाता है। उसी प्रेम से सराबोर होकर वह प्रभु के सामने नृत्य करते रहता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि अब मैं प्रभु प्राप्ति कर लिया है। अब मैं और प्रभु एवं परमतत्त्व एक में एक हो गये हैं। अगर दूसरे को भी यह स्थिति चाहिए जो संसार में जल भुन रहा है। जो सदा कामाग्नि से दग्ध हो रहा है। तो प्रतिज्ञा यह है कि जो तन मन से साँच बोलेगा। सत्याचरण करेगा। जिसके व्यवहार में कहीं भी कोई कसर खोट नहीं रहेगी। उसी को शान्ति प्रदायक पानिप रूपी ज्ञान

आत्मतत्त्व में देने के लिए प्रस्तुत हूँ परन्तु जो तन-मन का कच्चा है जिसके पास प्रेम पाट का चोलना नहीं है। उसके लिए यह ज्ञान बहुत महँगा है। वह पानिप रूपी ज्ञान का अधिकारी नहीं है।

## भ्रमिक जीव प्रकरण

**दरपन केरी गुफा में, सोनहा पैठा धाय।**
**देखि परतिमा आपनी, भूंकि-भूंकि मरि जाय ॥५९॥**

**शब्दार्थ**--दरपन-शीश महालय। केरी-के। गुफा-गुहा, कमरा, संसार, मोह, मन्दिर। सोनहा-कुत्ता, अज्ञ प्राणी। पैठा-प्रवेश किया। धाय-दौड़कर। देखि-देखकर। परतिमा-प्रतिमा, प्रतिबिम्ब, अपनी छाया, नकल। भूंकि-भूंकि-चिल्ला-चिल्लाकर। मरि जाय-मर गया।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि जो तन मन से साँच बोलता है। जिसका व्यवहार सत्यमय है। उसी को गुरु का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। वही प्रभु दर्शन कर सकता है। नीचे कहा जा रहा है कि जो मोह माया में फँसा हुआ है। जो तन-मन वचन का कच्चा है। वह कभी भी ज्ञान का अधिकारी नहीं हो सकता।

**मूलार्थ**—संसार के सभी प्राणी मोह माया से आवृत्त हैं। वे कभी परमार्थ के विषय में सोच भी नहीं करते। अपने पुत्र-कलत्र में ही रचि-पचि कर मर जाते हैं। जिस प्रकार से शीशा की गुफा में काँच के महालय में दौड़कर कुत्ता पैठ जाता है और अपनी प्रतिछाया को काँच की भित्ति में देखता है तो अपना प्रतिद्वन्दी दूसरा कुत्ता समझकर भूंक भूंक कर प्राण गवाँ देता है। क्योंकि न वह कांच के महालय से बाहर निकलता है और न कुत्ते की छाया की इति श्री होती है। इसी प्रकार से संसार का मनुष्य मोह-माया के मन्दिर पुत्र-कलत्र धन के मोह में दौड़कर फंस जाता है और यावत् जीवन उसके संचयन में लगा रहता है। अनेक प्रकार के रख-रखाव की युक्ति करते रहता है। चोर और तस्करों से भयभीत रहता है कि कोई उसको उठा न ले जाय। यही उसका भूंकना है। इसी के रक्षण में जीवन को गवाँ देता है। जब तक वह माया-मन्दिर से मोह के महालय से बाहर नहीं होता है। तब तक संसार की वस्तुएँ सत्य भासती हैं। सही जँचती हैं। उन्हीं की रट लगाते-लगाते मर जाता है और जो उस मोह महालय से बाहर आ जाता है वह सच्चे सद्गुरु की पहचान कर लेता है और उनके ज्ञान से तर बतर हो जाता है।

**ज्यों दरपन प्रतिबिंब देखिये, आपु दुहुन मा सोय ।**
**यह तत्तु ते वह तत्तु है, ये ही से वह होय ।।६०।।**

**शब्दार्थ**—ज्यों–जैसे । दरपन–दर्पण मुख देखने का शीशा । प्रतिबिंब –परछाई, नकाप । आपु–अपना । दुहुन–दोनों, दो । मा–में । सोय–अपने आप । यह–इस । तत्तु–तत्त्व, मुख । वह–उस । तत्तु–तत्त्व मुख । ये ही-इसी से । होय–होता है ।

**सम्बन्ध**--ऊपर कहा गया कि संसारी मनुष्य मोह के महालय में, अज्ञान की गुफा में पड़कर भूँक-भूँक कर मर जाता है। जन्म भर फँसा रहता है । अब नीचे कहा जा रहा है कि जिस धन जन से वह मोहित रहा । वह उसी से हुआ था, परन्तु वह अपने से भिन्न मानकर उसके संरक्षण में लगा रहा ।

**मूलार्थ**—संसारी मनुष्य पुत्र कलत्र को संसार को वस्तुओं को अपने से भिन्न समझता है जो उसी की उपज है और उसो का प्रतिरूप भी है। जिस प्रकार से दर्पण में मनुष्य अपना मुख देखता है तो दो रूप दिखाई देता है, परन्तु दोनों तरफ स्वयं अपने होता है । आगे के मुख से इस पार के मुख से उस पार का मुख दिखाई देता है। एक मुख से दूसरा मुख शीशे के कारण भासता है, परन्तु दोनों एक ही हैं। इसी प्रकार से जो आत्मतत्त्व है, जो हृदय में बैठा हुआ है। जो अपने से ईश्वर के रूप में भिन्न भासता है। जो किसी लोक-लोकान्तर में निवास करते दिखाई देता है, जो सूर्य के रूप में दिखाई देता है, जो चन्द्र के रूप में दिखाई देता है। जो संसार के रूप में दिखाई देता है वह सब भ्रमवश दिखाई देता है, परन्तु जो साक्षी रूप से हृदय में निवास करता है उसो से सारे तत्त्व बने हैं। उसी के यह सारे प्रतिरूप हैं। उसी हृदयस्थ चेतन को माया की उपाधि में पड़ने से ईश्वर कहलाता है और अविद्या की उपाधि में होने से जीव कहलाता है और सभी उपाधियों में परे रहने से वही चिति कहलाता है । वही ब्रह्म कहलाता है परन्तु उपाधिवश कई एक रूपों में भासता है । उपाधि के समाप्त होने पर एक का एक है ।

## सद्गुरु सुगम मार्ग प्रकरण

**जोवन सायर मूझते, रसिया लाल कराय ।**
**अब कबीर पांजी परे, पंथी आवहि जाय ।।६१।।**

**शब्दार्थ**—जोवन–नर तन, युवावस्था, जिस वन में। सायर–समुद्र आ० संसार, शरीर। मूझते–प्रा० मुँह, मोह करना, घबराना, मुझसी। रसिया–रसिक, रस, ही (ईय) रस लेने वाला रसिक। लाल–लालसा, इच्छा, चाह, अभिलाषा, लालच, दुलार, लाड़, प्यार फा० मानिक नाम का रत्न। पांजी–सं० पदाति, हि० पादी, पैदल, मार्ग, रास्ता, किसी नदी का इतना सुख जाना कि लोग उसे तैर कर पार कर सके। अ० रूद।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि हृदयस्थ आत्मतत्त्व में ही जीव तत्त्व है। अब नीचे कहा जा रहा है कि जो साधक लोग संसार को भयानक समझकर पार हो जाने के लिये घबड़ा जाते हैं उनके लिए मार्ग प्रशस्त किया जा रहा है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि जो साधक संसार रूपी वन को महा समुद्र के सदृश समझ कर पार होने में घबड़ा जाते हैं और वह पार होना ही चाहते हैं, तो उनको दृढ़ता के साथ अपनी साधना में लगे रहना चाहिए। क्योंकि यह घबराहट तब तक रहेगी जब तक उन्हें माणिक्र रूपी आत्मज्ञान की प्राप्ति नहीं हो जावेगी जो आत्मा रसिक हैं, जो परमतत्त्व के चाहने वाले हैं। उनको चाहिए की लाल स्वरूप आत्म ज्ञान रूपी प्रकाश को प्रज्ज्वलित करें और प्रज्ज्वलित करके संसार वन को पार करने के लिए अग्रसर हो जाँय। क्योंकि अब कबीर साहब जो सद्‌गुरु के रूप में हैं वे संसार सासुर को सूखा दिये हैं। अर्थात् मुझ कबीर के ज्ञान से संसार अब समाप्त हो चुका है। वह जो समुद्र सा उमड़ा था उसकी लहरें खत्म हो गयी हैं। उसको पार करने के लिए पांजी कहिये रास्ता हो गया है। आत्म पथ के जो पथिक हैं अब उनको चिन्ता नहीं करनी चाहिए। अब संसार रूपी समुद्र को इस पार से उस पार आवें जावें कोई चिन्ता उनको नहीं करनी चाहिए।

**आशय**—जिस संसार रूपी सागर को देखकर मानव घबड़ाता है परन्तु वह आत्मज्ञान का रसिक भी है। तो उसको आत्मा की प्राप्ति का उपाय करना चाहिए जब आत्मज्ञान हो जायेगा। जब प्रभु-प्राप्ति हो जायेगी तो सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि उसके लिये स्वयं संसार रूपी सागर सूख जायेगा और वह जन्म-मरण से परे हो जायेगा। उसको पहले तत्त्व वेत्ता गुरु के पास जाकर तत्त्वज्ञान की सीख लेनी चाहिए। भाव यह हुआ कि जिस अन्धकार मय रात्रि को देखकर लोग घबड़ाते हैं। वे रसिक लोग प्रकाश करें। ज्ञान उजेला करें। तो स्वयं उनको रास्ता

मिल जायेगा। तब वे पंथी अपने आप इस पार से उस पार जाने लगेंगे। 'आवहिं जाय' में व्यंजना है तात्पर्य यह हुआ कि तत्त्ववेत्ता पुरुष चाहे वह संसार के व्यवहार में रहें, चाहे संसार से परे हो जाय, तत्त्वज्ञान होने पर उनको माया, मोह नहीं सताता है। इसलिए 'आवहिं जाय' पाठ में व्यंजना बतायी गयी है।

**दोहरा तो नौ तन भया, पदहिं न चीन्है कोय।**
**जिन्ह यह सबद विवेकिया, छत्र धनी है सोय ॥६२॥**

**शब्दार्थ**—दोहरा–दोहा, श्लोक, वाक्य अ०, आत्म उपदेश। नौ तन–नूतन। भया–हुआ। पदहिं–पद, शब्द, परमतत्त्व। सबद–सार शब्द, प्रणव। विवेकिया–विवेक करने वाला। छत्र धनी–राजा, सम्राट, आत्म ज्ञानी।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जिस भयानक समुद्र रूपी संसार को देखकर लोग घबड़ा रहे हैं परन्तु अब कबीर साहब कहते हैं कि मैंने आत्मज्ञान से संसार समुद्र को सुखा दिया है। जिसको उस पार जाना हो वह स्वयं सीधे आ जा सकता है। नीचे कहते हैं कि जो वाक्य और पद मैं कह रहा हूँ वह पुराना ही है परन्तु भाषा में होने के कारण लोगों को नया लग रहा है।

**मूलार्थ**—मनुष्य जिस चीज को नहीं जानता है। एकाएक उसके सामने कोई बात कही जाय तो भ्रम में पड़ जाता है। इसी प्रकार से सद्गुरु कहते हैं कि 'दोहरा' कहिये दोहा व श्लोक ये वही हैं। जिसमें ऋषि महर्षियों, मुनियों ने अपना उपदेश दिया था परन्तु मैं उस उपदेश को जन भाषा में कह रहा हूँ। जो उपदेश कभी लोग नहीं सुने थे। जिसको केवल संस्कृत वाले ही जानते थे। उस आत्मतत्त्व को कहता हूँ तो लोग कहते हैं कि कबीर नयी बात कह रहे हैं परन्तु मेरे पद को, मेरे द्वारा गाये हुए शब्दों को लोग चीन्ह नहीं पा रहे हैं, परख नहीं पा रहे हैं अर्थात् जिस आत्मतत्त्व रूपी पद का व्याख्यान दे रहा हूँ। उसको लोग समझते नहीं क्योंकि कभी सुने नहीं हैं। इसलिए उन्हें नया ज्ञात होता है। पर जो मेरे इस शब्द को, मेरे इस परमतत्त्व को विवेक करेगा और जो विवेक करता है वही छत्रधनी होगा अर्थात् वह ब्रह्म ज्ञानियों का सम्राट होगा। मैं किसी को भुलावा के लिए कोई नयी बात, कोई नया पद नहीं बतला रहा हूँ। बातें सब वही हैं केवल कहने का नया ढर्रा है। इसलिए कोई भ्रम में न पड़े। मेरे शब्द को पहचाने।

**कबीर जात पुकारिया, चढ़ि चंदन की डार।**
**बाट लगाये ना लगै, पुनि का लेत हमार ।।६३।।**

**शब्दार्थ**—कबीर–सद्गुरु कबीर। जात–परिगमन करते हुए। पुकारिया–उद्घोष कर, चिल्ला कर। चढ़ि–स्थिति। चंदन–आत्मतत्त्व में समाहित होकर। डार–आत्मज्ञान में स्थित होकर। बाट–आत्मज्ञान पर। लगाये–लगाने से। पुनि–पुनि, फिर। का–क्या। हमार–सन्तों का, मेरा।

**सम्बन्ध**—(क) पहले कहा गया कि आत्मतत्त्व विषयक उपदेश पुराना हैं परन्तु कथन शैली नयी होने के कारण लोग भ्रम में पड़ जाते है परन्तु जो मेरे वाक्य पर विवेक करता है, विचार करता है वह वास्तविकता तक पहुँच जाता है। उसी बात की नीचे पुष्टि की जा रही है। जो श्रवण देकर सुनिये

**मूलार्थ**—जो हितैषी होता है, जो परोपकारी होता है, जो दूसरों की भलाई चाहता है। वह सच्चे हृदय से बात करता है। उसी प्रकार से सद्गुरु कबीर स्वामी कह रहे हैं कि हे सन्त जन ! हे जिज्ञासु जन ! अब मैं स्वयं अपने सत् मार्ग पर जा रहा हूँ और मैं सत पंथ का पथिक भी हूँ। आप से भी पुकार कर कहता हूँ कि आप लोग भी उस मार्ग पर चलिये। मैं इस चंदन रूपी मानव तन में स्थित होकर आत्मज्ञान में समाहित होकर आप लोगों को सत्याचरण के लिए पुकार कर कहता हूँ कि आप लोग सत्याचरण करें। आत्मा को पहचानें, परमात्मा को पहचाने, सत को पहचाने परन्तु जो मेरी इस सत वाणी को, सदुपदेश को सुनकर अच्छे मार्ग का अवलम्बन नहीं करेगा, उस बाट पर नहीं चलेगा। तो मेरा उसमें कोई दोष नहीं होगा। मैं तो केवल कल्याण की दृष्टि से सबसे पुकार-पुकार कर कह रहा हूँ। चंदन में श्लेष है। चंदन मानव तन भी है और आत्मज्ञान की स्थिति भी है। क्योंकि उत्तम गुण को उपमा चंदन से या उत्तम पदार्थों से लोग देते हैं।

## सत्य भाषण प्रकरण

**सभ ते सांचा है भला, जउ सांचा दिल होय।**
**सांच बिना सुख नाहिना, कोटि करे जो कोय ।।६४।।**

**शब्दार्थ**—सांचा–सत्य वक्ता, सत्य। भला–सुन्दर। जउ–जो। दिल–हृदय। नाहिना–नहीं है।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मैं आत्म स्थित होकर ज्ञान की डाली पर खड़ा होकर लोगों को आत्म उपदेश करता हूँ। यदि उस पर जो चलेगा तो वह भी आत्म ज्ञानी हो जायेगा परन्तु नीचे प्रतिज्ञा यह बतायी जा रही है कि तन, मन और वचन से सत्य को ग्रहण करगा पड़ेगा। तभी आत्म ज्ञान का अधिकारी हो सकेगा।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे भाई ! हे जिज्ञासु लोग ! सबसे सुन्दर वही पुरुष है, जो सत्य बोलता है और जो सत्य है वही सुन्दर है और वह भी सुन्दर है जिसका हृदय भी सांचा है क्योंकि सांच के बिना सुख नहीं होता। चाहे कोई करोड़ों उपाय करे परन्तु जब तक तन, मन, वचन में एकरूपता नहीं आयेगी तब तक न मनुष्य को शांति मिलेगी न सुख मिलेगा। इसलिए सबसे उत्तम सत्य है और उसका पालन करने वाला हृदय भी सुन्दर है। इसलिए सत्य की अवधारणा कर्तव्य है।

**सांचा सउदा कीजिये, अपने मन मो जानि।**
**साचे हीरा पाइये, झूठे मूलहु हानि ॥६५॥**

**शब्दार्थ**—सउदा–सौदा, सामान। हीरा–आत्मज्ञान।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि बिना सत्य के धारण किये मनुष्य सुखी नहीं हो सकता है। अब कहा जा रहा है कि जो कुछ करो वह सत्य का ही व्यवहार करो।

**मूलार्थ**—मनुष्य संसार में बहुत सी वस्तुओं का क्रय-विक्रय करता है परन्तु सद्‌गुरु साहब कहते हैं कि हे भाई जिज्ञासुओं ! हे संसार के लोगों ! सत्य का सौदा कीजिए अर्थात् यह संसार अनित्य है। आत्मा सत्य है। ईश्वर सत्य है, परमतत्त्व सत्य है, उसी की उपासना कीजिये। उसी का चिन्तन कीजिये साथ ही अपने मन में विवेक करके जान लीजिये कि ब्रह्म सत्य है कि जगत सत्य है, इसमें सत्य जो आपको जान पड़े उसी का क्रय-विक्रय कीजिये। यदि सत्य का ग्रहण करते हैं तो प्रकाश स्वरूप आत्म ज्ञान रूपी हीरा को पाइयेगा। उसकी प्राप्ति हो जायेगी। इसके अतिरिक्त यदि झूठी वस्तुओं का क्रय-विक्रय कीजियेगा तो मूलहु कहिये जो मूल तत्त्व है, जो आत्मतत्त्व है उसकी बड़ी हानि होगी आप उससे वंचित रह जायेंगे। स्त्री-पुत्र, धन-कलत्र, मान-सम्मान, मान-बड़ाई यदि इसकी खरीद करियेगा तो परमतत्त्व की हानि होगी। वह आपके हाथ से निकल जायेगा। क्योंकि वह मानव तन में ही प्राप्त होने वाला है।

इसलिए सच्चे संत सद्गुरु से सम्पर्क करके सच्चा जो हीरा रूपी आत्म ज्ञान है उसी का सौदा कीजिए, उसी को खरीदिये।

**सुक्रित वचन मानै नहीं, आपु न करै विचार।**
**कहैं कबीर पुकारि कै, सपनेऊ गया संसार ॥६६॥**

**शब्दार्थ**—सुक्रित–पुण्य, सुन्दर कृत। सपनेऊ–सपने में।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि सत्य का सौदा करना चाहिए। तभी मानव का कल्याण हो सकता है परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि सुन्दर वचनों को लोग मानने के लिए तैयार नहीं हैं। झूठे संसार को ही सत्य मानकर चल रहे हैं।

**मूलार्थ**—संसार में बहुत थोड़े से लोग हैं जो उत्तम वचन का श्रवण करते हैं। किस्सा, कहानी, गाथा, ज्ञान, नाटक, रामलीला में लोग झुण्ड के झुण्ड जाते हैं। रात भर बैठकर सुनते हैं और देखते हैं परन्तु सद्गुरु कहते हैं कि इनको सत्य का सौदा करने के लिए कहता हूँ, इन्हें सुकृत करने को कहता हूँ तो उस वचन को संसार के लोग मानने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं और न अपने विचार ही करते हैं कि कबीर सत्य कह रहे हैं कि असत्य कह रहे हैं। सद्गुरु कहते हैं कि मैं पुकार कर कह रहा हूँ कि स्वप्न की तरह संसार के लोग चले जा रहे हैं और जाते रहेंगे और सन्त महात्मा इसी प्रकार से चिल्लाते रहेंगे।

## वैराग्याग्नि प्रकरण

**आगि जो लागि समुद्र में, धुवां न परगट होय।**
**की जाने जो जरि मुवा, कि जाकी लाई होय ॥६७॥**

**शब्दार्थ**—आगि–वैराग्य अग्नि। समुद्र–अन्तःकरण, संसार, शरीर। धुंवा–धूम्र। परगट–प्रकट। जाने–ज्ञात। मुवा–मृत। जाकी–जिसकी। लाई–लगायी।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि उत्तम वचनों को कोई नहीं मानता है न उस पर विचार करता है। खाते-पीते स्वप्न के जैसा संसार चला गया। अब कहा जा रहा है कि जो सन्त सद्गुरुओं की बात सुन लेता है तो वह संसार से तर जाता है और उसकी भलाई हो जाती है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जिसके अन्तःकरण में वैराग्य अग्नि लग गयी है। जो सन्तों के वचन सुनकर वैराग्य से युक्त हो गये हैं।

उनके सभी अन्दर के दोष जल रहे हैं परन्तु वैराग्य अग्नि का धूवां प्रकट नहीं हो रहा है अर्थात् जिसको वैराग्य हो जाता है वह भीतर ही भीतर दग्ध होते रहता है। इस अग्नि को बाहर के लोग नहीं जानते हैं। इसको वही जानता है जो इस वैराग्य अग्नि में जल मरता है कि जिन्ह सद्गुरु ने साधक के अन्दर में वैराग्य अग्नि को लगाया है कि वे जानते हैं। तात्पर्य यह है कि समुद्र रूपी अन्तःकरण में वैराग्य अग्नि उत्पन्न हो जाती है तो समस्त काम, क्रोध, लोभ, मोह भस्म हो जाते हैं। यह बात वैराग्यवान पुरुष ही जान सकते हैं कि उपदेष्टा गुरु ही जानते हैं। अन्य किसी को नहीं दिखाई देता।

**लाई लावनहार की, जाकी लाई पर जरैं।**
**बलिहारी लावनहार की, छप्पर बांचे घर जरै ॥६८॥**

**शब्दार्थ**—लाई-लगायी। लावनहार-सद्गुरु। जाकी-जिसकी। लाई-लगाई। पर-पंख, काम, क्रोध की शक्ति। जरै-जले। बलिहारी-धन्यवाद। छप्पर-छान, आ०-आत्मा। घर-शरीर के अन्दर के अन्तर कषाय, काम क्रोधादि।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि अन्तःकरण रूपी समुद्र में आग लगी है। धूवां नहीं दिखाई दे रहा है जिसके अन्दर में अग्नि लगी है वह जाने या लगाने वाला जाने। अब नीचे कहा जा रहा है कि उक्त अग्नि से काम, क्रोध रूपी गृह शत्रुरूप पक्षियों के पर जल जाते हैं तब साधक को शान्ति मिल जाती है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जो साधक के हृदय में वैराग्य अग्नि लगा दी गई है जिस अग्नि से काम, क्रोध, लोभ, मोह की शक्ति नष्ट हो गयी। और जिसका अज्ञान भस्म हो गया है वह कृत-कृत्य हो जाता है। वह संसार से परे हो जाता है। धन्यवाद उस अग्नि लगाने वाले की है जिसने ऐसी युक्ति से अग्नि लगायी की आत्मा बच गया। जो सबका रक्षक है जो सबके अन्दर छाया करता है। वह बच गया परन्तु अन्तःकरण के सारे विकार, सारे दोष जलकर भस्म हो गये। इसीलिए उस सद्गुरु को कोटिशः धन्यवाद है। जिसने साधक के अन्दर जिज्ञासु के भीतर ज्ञानाग्नि का प्रज्ज्वलन किया। उसकी सहस्रों मुख से प्रशंसा की जाय तो वह थोड़ी ही है।

## जीवतत्त्व में विकास प्रकरण

**बूंद जो परा समुद्र में, सो जानत सभ कोय।**
**समुद्र समाना बुंद में, सो जानै विरला कोय ।।६९।।**

**शब्दार्थ**—बूंद–जीव। समुद्र–परमतत्त्व, परब्रह्म।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि उस सद्गुरु को धन्यवाद है जिसने साधक के अन्दर ज्ञानाग्नि का प्रज्ज्वलन किया। उस अग्नि लगाने वाले की क्या प्रशंसा की जाय। जिसने शिष्य को आत्मज्ञान प्रदान किया नीचे कहा जा रहा है कि जो बूंद समुद्र में समा जाता है। अर्थात् जो जीव ब्रह्मतत्त्व को प्राप्त हो जाता है उसकी बात क्या कही जाय? वह अकथनीय है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जल की बूंदें व बारिस की बूंदें समुद्र में पड़ जाती हैं। यह तो सभी कोई जानते हैं परन्तु जब समुद्र बूंदों में समा जाता है। यह तो कोई विरला पुरुष ही जानता है। तात्पर्य यह है कि यह जीवात्मा समुद्रवत् ब्रह्म में समाविष्ट हो जाता है। तो इसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। यह सभी शास्त्र के ज्ञानी और तत्त्ववेत्ता जानते हैं कि जीव को ब्रह्मज्ञान होने पर उसका जीवत्व भाव नष्ट हो जाता है परन्तु जब समुद्र जीव में समाता है अर्थात् वह जीव अपने को ब्रह्माकार जब अनुभव कर लेता है। इस तत्त्व को, इस बात को कोई विरला ही तत्वदर्शी समझ सकता है। ज्ञानी दो प्रकार के होते हैं। प्रथम ज्ञानी ईश्वर व परमतत्त्व का चिन्तन करके उसके रूप को प्राप्त करता है और उत्कृष्ट ज्ञानी अपने को ही ब्रह्माकार बनाता है। प्रथम ज्ञानी अपने सहित सबमें प्रभु को देखता है और उत्कृष्ट ज्ञानी अपने को सबमें देखता है। जो तत्ववेत्ता अपनी आत्मा को ही सब में देखता है अर्थात् जिसमें समुद्रवत् ब्रह्म समाविष्ट हो जाता है जिसका विकास इतना हो जाता है कि अपने को कण-कण में देखता है। इस तत्त्व को विरले लोग ही जानते हैं क्योंकि एक ब्रह्म में समाहित होता है। दूसरे में ब्रह्म समाहित होता है जिसमें ब्रह्म समाहित होता है। वह कितना विकास अपने में किया अर्थात् जो स्वयं जगत का स्रष्टा बन जाता है। उसकी गति विलक्षण है वह अपने से भिन्न कुछ नहीं देखता सद्गुरु की दृष्टि में यद्यपि दोनों ज्ञानी श्रेष्ठ है परन्तु उनका इशारा उत्कृष्ट ज्ञानी की ओर है। जिसमें ब्रह्म स्वयं समा जाता है।

## कुसंस्कार प्रकरण

**जहर जिमी दै रोपिया, अमी सीचै सौ बार।**
**कबीर खलक नाही तजै, जामें जउन विचार ॥७०॥**

**शब्दार्थ**—जहर–विष, विषय–वासना, काम, क्रोध। जिमी–पृथ्वी, मानव अन्तःकरण। दै–देकर। रोपिया–रोपा, लगाया। अमी–अमृत, सदुपदेश। खलक–संसार, संसारी लोग, विषयी पामर। जउन–जो।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो अपने में ब्रह्म को समाहित कर लेता है। वही वास्तविक तत्त्वज्ञानी है परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि जिसका अन्तःकरण मलिन है वह उक्त ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकता।

**मूलार्थ**—कोई व्यक्ति किसी जाति के वृक्ष का भूमि में रोपण करे। जैसे—आम का वृक्ष, महुए का वृक्ष, कटहल का वृक्ष, नींबू का वृक्ष इत्यादि वृक्षों में किसी एक वृक्ष को लगाकर उसका सींचना पानी में जहर मिलाकर करे। अर्थात् जल में जहर घोलकर उक्त वृक्ष में डालकर वृक्ष को तैयार करे तो अन्त में वह युक्त जहर विष फल ही फलेगा। सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि जिनकी उत्पत्ति गन्दे संस्कारों के कारण हुई, जो सदा गन्दी संगतियों में पाला-पोसा गया है उन्हें कितना भी ज्ञान दिया जाय, कितनी भी सद्‌बुद्धि दी जाय, कितना भी अध्यात्म-विषयक उपदेश दिया जाय परन्तु उसका विचार बदलता नहीं। जिस प्रकार से विष उत्पन्न वृक्ष को कितनी बार भी अमृत से सींचा जाय। यह सोचकर की इसके फल मीठे हो जायेंगे परन्तु वह सैकड़ों बार अमृत डालने पर भी मीठा नहीं होता है। जहर का जहर ही रहता है उसी प्रकार से साहब कहते हैं कि संसारी जीव जिसमें प्रारम्भ से विकार भर गया है। वे कभी उसको तजते नहीं अर्थात् जो लोग जिस झूठे अन्ध विश्वास में फँस जाते हैं और वह झूठा विचार घर कर जाता है। तो बाद में उसमें सन्त महात्माओं के उत्तम विचार प्रवेश नहीं कर पाते। जब तक मनुष्य दुर्गुणों का त्याग नहीं करता है। तब तक सद्‌गुण का प्रवेश उसमें नहीं हो पाता है। इसलिए सर्वप्रथम बुराइयों का त्याग करना चाहिए।

**धौं की डाही लाकरी, वो भी करै पुकार।**
**अब जो जाय लोहार घर, डाहै दूजी बार ॥७१॥**

**शब्दार्थ**—धौं–दब, दावाग्नि, जंगल की अग्नि। डाहि–जली।

लाकरी–आत्मा, जीवात्मा, मानव तन। लोहार–संसारी जीव माता का गर्भाशय। लोहार–एक जाति जो लोहा का कार्य करती है। घर–माता का उदर। डाहै–जलावे।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि कुसंस्कार में जन्मा हुआ मानव जल्दी में अपने स्वभाव को नहीं बदलता। नीचे कहा जा रहा है कि जिसके कारण वह बार-बार माता के गर्भ में व जठरानल में तपते रहता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जंगल में आग लगी थी। सभी पेड़-पौधे जल रहे थे संयोग वश वर्षा होने लगी। वर्षा होने के कारण अग्नि समाप्त हो गयी। तब तक जले हुए वन को किसी लोहार ने खरीद लिया उक्त लोहार को देखकर जंगल की जली हुई लकड़ियाँ जिन्हें दावानल अर्ध जला कर दिया था। वे लोहार को देखकर चिल्लाना प्रारम्भ कीं हे प्रभु ! अब मुझे लोहार के घर जाने पर दूजी बार जलना पड़ेगा। इसलिए कृपा करो को मुझे पुनः लोहार के घर न जाना पड़े। इसी प्रकार से सद्बुद्धि वाला जिज्ञासु जो संसार के दुःख में तप चुका है, जो माता के गर्भ में जल चुका है वह परमेश्वर से और परम गुरु से प्रार्थना कर रहा है कि हे प्रभु ! अब मुझे पुनः लोहार रूपी संसार के घर में न डालो। फिर मुझे माता के गर्भ में न जाना पड़े। काम, क्रोध रूपी दावाग्नि से मुझे न जलना पड़े क्योंकि पहले मैं जल चुका हूँ। यदि पुनः आप मुझे संसार में डालेंगे तो माता के गर्भाशय में पुनः दूजी बार जलना पड़ेगा। इसलिए मुझे बचाइये।

**बिरह की ओदी लाकड़ी, सुपचे अउ धुधुवाय।**
**दुख ते तबहीं बांचिहो, जब सकलो जरि जाय ॥७२॥**

**शब्दार्थ**—विरह–वियोग की पीड़ा, प्रियतम से बिछुड़ा हुआ व्याकुल मनुष्य, उत्कट जिज्ञासा वाला साधक, किसी के वियोग में अत्यन्त व्याकुल हुई विरहिणी, जुदाई का दुख। ओदी–तुरन्त वृक्ष से कटी हुई हरी लकड़ी जो अभी पूर्णरूपेण ओदी है, गीली है, साधक। सुपचे–पानी छोड़ना बहुत धीमी गति से जलना, फरफराहट को ध्वनि निकलना। धुधुवाय–धू-धू शब्द करता हुआ। सकलो–सभी प्रकार के काम, क्रोध, लोभ, मोह आशा, तृष्णा यावत शारीरिक विकार।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि दुःख से कातर मनुष्य घबड़ा चुका है। शान्ति की खोज कर रहा है। प्रभु-मिलन की जिज्ञासा बलवती होती जा रही है। विरह वेदना अत्यन्त सता रही है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जंगल से काटकर लाई गयी लकड़ी अपने परिवार से दूर हो गयी है। जिसका वियोग अत्यधिक बढ़ गया है। अभी ताजा तुरन्त का बिछुड़न है। जलाने वालों ने आग लगा दी परन्तु हरी लकड़ी ठीक से जलती नहीं है। दो चार सूखी लकड़ियों के संयोग से बहुत धीमी आंच में जल रही है और धूँ-धूँ करके रोदन कर रही है। उक्त लकड़ी तभी इस दुःख से मुक्त हो सकती जब वह पूर्णरूपेण जल जाय। इसी प्रकार से जो नया साधक है जिसे अभी तत्त्व प्राप्ति नहीं हुई है। जिसमें तत्त्व वियोग की प्रभु वियोग की विरह अग्नि लगी हुई है। परन्तु साधना अभी गीली है, कमजोर है, प्रभु मिलन का मार्ग उसको अभी नहीं मिला है। अभी प्राप्ति अवस्था बहुत दूर है। इसलिए बहुत धीमी गति से वह साधना की ओर बढ़ रहा है। प्रभु वियोग में धूं-धूं करके रो रहा है। सद्गुरु कहते हैं कि इस वियोग जन्य दुःख से तभी बच सकते हो जब तेरे सभी अन्दर के मल साफ हो जायेंगे जो तुम्हारी मनोवृत्ति चारों तरफ विषयों को ग्रहण किये हुए हैं जब तक वह अर्न्तमुखी नहीं होगी, जब तक सारे मल अन्तःकरण के भस्म नहीं हो जायेंगे तब तक तुझे प्रभु मिलन नहीं होगा। जब समस्त विकारों से तू परे हो जायेगा। तभी तुझे प्रभु के दर्शन होंगे। तब तेरे ये कराहट के दुःख और विरह की वेदना जायेगी तभी इनसे बच सकते हो। अन्य कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

**विरह बान जेहि लागिया, औखद लगे न ताहि।**
**सुसुकि सुसुकि मरि मरि जिवे, उठे कराहि-कराहि ॥७२॥**

**शब्दार्थ**—बान–तीर, उत्कट जिज्ञासा। लागिया–लग गया। औखद –औषधि, वाह्यउपचार। ताहि–उसको। सुसुकि–सुस्की भरे रोना। कराहि–कलेजे के पीड़ा और अन्तर के भयानक दुःख।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जब तक साधक अपने को बिल्कुल सर्मपित नहीं कर देता है जब तक उसमें अपनापन है, अपना अस्तित्व रखता है तब तक वह दुखालय में पड़ा रहता है। जब सम्पूर्ण रूप से प्रियतम को सौंप देता है तब वह त्रयताप से बच सकता है। नीचे कहा जा रहा है कि जिसको प्रभु मिलन की उत्कट जिज्ञासा है, तद्जन्य पीड़ा है उसके लिए दूसरा कोई उपाय नहीं है। केवल उसके लिये विरह अग्नि में पूर्ण को जला देना ही है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं विरह वियोग जन्य व्याकुलता का बाण जिसको लग गया है, सद्गुरु का ज्ञान रूपी तीर जिसको चुभ गया है वह कलेजे को छेदते हुए अन्तःकरण में जा धँसा है। अब संसार की दूसरी औषधि उसको कुछ असर करने वाली नहीं है। वह विरह बाण विधा व्यक्ति अन्तर वेदना से सुसुक-सुसुक करके रोता है और बार-बार प्रभु अप्राप्ति दशा में मर-मर करके जी उठता है। अर्थात् प्रभु पीड़ा से मूर्छा आ जाती है। वह कभी मृतक के समान भासते रहता है। कभी जीवित मौन रहता है। कभी उन्मत्त की तरह इधर से उधर भागता है। कभी-कभी सचेत दशा में रोता है। प्रभु-वियोग जन्य दुःख बड़ा कठोर होता है। जब तक वह मिलता नहीं तब तक वह गिर के उठता है। कराह-कराह कर चिल्ला पड़ता है। हा मेरे प्रियतम हा मेरे प्रियपति तेरे दर्शन कब होंगे ? तू कहाँ है। तुझे मैं कहा ढूढ़ूँ। तू किस जंगल में है, किस खाड़ी में है, किस लोक में है, किस गुफा में है ? मैं तेरे बिना जी नहीं सकता। तू आ मुझे दर्शन दें। इस प्रकार की दशा उस बिरह बाण से विद्ध साधक की हो जाती है और अन्तिम क्षण में जब प्रभु समझ लेता है कि यह नहीं बचेगा तब अवश्य आकर दर्शन देता है। तब वह कृत-कृत्य हो जाता है।

**सांचा सबद कबीर का, हिदया देखु विचार।**
**चित्तु देके समुझे नहीं, मोहिं कहत भये जुग चार ॥७४॥**

**शब्दार्थ**--सबद-उपदेश, प्रणव। भये-हुआ। जुग चार-चार अवस्था, बाल, यौवन, मध्य, वृद्धा। सत्ययुग, द्वापर, त्रेता, कलियुग।

**सम्बन्ध**--ऊपर कहा गया है कि जो बिरह बाण से विध गया है। वह अन्य औषधि से, वाह्य उपचार से अच्छा नहीं हो सकता है। जिस वाण को सद्गुरु ने मारा है उसकी औषधि कोई नहीं जानता है। क्योंकि बिरह का घाव बहुत गम्भीर होता है। बहुत वेदनाशील होता है। नीचे कहा जा रहा है कि मैं कबीर सत्य कहता हूँ। इसमें रंचमात्र भी धोखा नहीं है।

**मूलार्थ**—भगवान कबीर कहते हैं कि मेरा उपदेश है, वह सही है, सत्य है जिसको लग जाता है वह संसार की मोह-माया को छोड़कर दर किनारा हो जाता है। मेरे उस सच्चे उपदेश को हृदय में देखो और विचार करो। कितना उपकारी है, कितना हितैषी है। इसको समझो

परन्तु अज्ञानी मनुष्य मेरी सच्ची बात पर न चित्त देता है—न मन लगा के सुनता है और न समझने की कोशिश करता है। मुझे कहते हुए, समझाते हुए चारों युग रूपी चारों अवस्था बीत रही है। अब मैं वृद्धत्व को प्राप्त हो गया हूँ परन्तु इस संसार के मनुष्य सत्य उपदेश को सुनने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं। मैं इस सच्चे उपदेश को चारों युगों से कहते आ रहा हूँ। अर्थात् सन्त महात्मा के रूप में सत्य बातें चारों युगों से कही जा रही हैं परन्तु बुद्धि रहित मानव ध्यान नहीं देता।

**जउ तू सांचा बानियां, सांची हाटि लगाउ।**
**अन्दर झारू देइ के, कूरा दूरि वहाउ ॥७५॥**

**शब्दार्थ**—जउ–जो। हाटि–बाजार, व्यवहार। कूरा–कूड़ा। वहाउ–फेको।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि चारों युगों में मैं कबीर कहते आ रहा हूँ परन्तु मेरी सच्ची बात को कोई सुनने के लिए तैयार नहीं दीखता। नीचे कहा जा रहा है कि अगर तुझे सही बात सुनना ही है। तो सच्चे मन से सुनो।

**मूलार्थ**—संसार में कोई अपने को झूठा नहीं बनता है। प्रत्येक मानव सत्य की दोहाई देता है। इस पर सद्‌गुरु कहते हैं कि जो तू सच्चा वणिक है, सच्चा सद्‌गुरु है। सत्य ज्ञान का उपदेश दे रहा है। तो वास्तविक रूप से तू सच्चे व्यवहार का बर्ताव करो। सत्य सौदा का हाट लगाओ। जीवों को अन्ध विश्वास में मत झोंको। लोगों को अन्ध विश्वास में प्रेरित न करो। अन्ध विश्वास से हटाओ। सच्चा उपदेश जनकल्याणार्थ दो परन्तु तू अपने भीतर विवेक, विचार रूपी झाड़ू से हृदय को साफ करो और छलधूर्त की, वंचकी रूप जो कूड़ा-करकट है उसको अन्दर से निकाल कर बहुत दूर फेंक दो। तभी तूझे मानूंगा कि तू सच्चा संत सद्‌गुरु हो। ज्ञान के व्यापारी हो, अन्यथा तेरे को मैं महत्त्व नहीं दे सकता। क्योंकि तू अन्दर विकार वाला दिखाई दे रहा है। इसलिए सावधान हो जाओ। बुराइयों से दूर रहो। तभी तेरे द्वारा किसी का कल्याण होगा।

**कोठी तो है काठ की, ढ़िग-ढ़िग दीन्हीं आग।**
**पंडित जरि झोली भये, सांकट उबरे भागि ॥७६॥**

**शब्दार्थ**--कोठी–राजभवन महालय, शरीर। काठ–काष्ठ, नाशवान, दहनशील। ढिग-ढिग–पास-पास, प्रत्येक अंगों में। आग–अग्नि। नाशक तत्त्व। वैराग्य अग्नि। झोली–राख। सांकट–शाक्त, निगुरा।

**सम्बन्ध**--ऊपर कहा गया कि यदि तू सच्चा वणिक है। तथा ज्ञान का क्रय-विक्रय करता है तो समाज के सामने वास्तविक बात रखो क्योंकि नीचे कहा जा रहा है कि जो बुद्धिमान होता है, जो पंडित होता है। वह अपने विकारों को, कूड़ा-करकट समझकर जला देता है।

**मूलार्थ**--सद्‌गुरु कहते हैं कि यह शरीर रूपी महालय काठ के समान दहनशील है, नाशवान है और इसके प्रत्येक अंगों में क्षरणशील पदार्थ भरे हैं। इसलिए इसका बचना कठिन है परन्तु उत्तम जिज्ञासु होने के कारण सद्‌गुरु ने वैराग्य रूपी ज्ञानाग्नि को इसके अन्तःकरण में प्रज्ज्वलित कर दिया है और उस ज्ञानाग्नि से पंडित कहिये विवेकी पुरुष जलकर झोली कहिये राख हो गया। अर्थात् उसके अन्दर के सारे मल, विक्षेप, आवरण भस्मीभूत हो गये और जो आशा-वासा, तृष्णा स्वरूप कूड़ा-करकट थे। वे भी जलकर नम् हो गये परन्तु विवेकी पुरुष तो मल रहित हो गया किन्तु जो गुरु ज्ञान पर ध्यान नहीं दिया, गुरु उपदेश को नहीं सुना वह निगुरा उस ब्रह्माग्नि से भागकर बच गया अर्थात् वह जन्म-मरण के चक्र में पड़ रहा। उसका निस्तार नहीं हो सका।

## परम्परागत विचार प्रकरण

**सावन केरा सेहरा, बुंद परी असमान।**
**सारी दुनिया वैस्नो भई, गुर नहिं लागा कान।।७७।।**

**शब्दार्थ**—सावन–श्रावण। केरा–का। सेहरा–गाना, वर्षा की बूंदों की झड़िया, मेघमाला। बुंद–जलकण। परी–पड़ा। असमान–आकाश से। सारी–सभी। दुनिया–संसार, वैस्नो–वैष्णों, सन्त भक्त। लागा–गुरु का वचन नहीं सुना।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि शाक्त निगुरा भाग गया गुरु का उपदेश नहीं सुना। आत्मविषयक ज्ञान की ओर ध्यान नहीं दिया। इसी प्रकार से नीचे कहा जा रहा है कि ऐसे लोग प्रायः देखने में आ रहे हैं।

**मूलार्थ**—जैसे श्रावण के महीने में मेघमालाओं का उमड़ आना और बारीक बूंदों की झड़ी लग जाना। आकाश से इतनी बूंदें गिरती हैं कि उनकी गिनती करना मस्तिष्क के बाहर की है। इसी प्रकार से आजकल

सद्‌गुरु कबीर कालीन सभी लोग अपने को वैष्णव कहते थे अर्थात् इतने मन्त्रदाता हो गये थे, इतने गुरु हो गये थे कि घर-घर घूम-घूमकर मन्त्र उपदेश करते थे। साहब कहते हैं कि सारा संसार अपने को वैष्णव भक्त कहता है परन्तु मेरी समझ में किसी एक ने भी गुरु का ज्ञान ग्रहण नहीं किया। क्योंकि—

'गुरु लोभी सिख लालची दोनों खेलैं दाँव।
दोनों बपुरे बूड़ही चढ़ि पत्थर की नाव॥'

के अनुसार गुरु भी लोभी, शिष्य भी लोभी इसलिए लोभी गुरु का उपदेश लोभी शिष्य को असर नहीं किया। वंचक गुरु शिष्य इसलिए बनाता है कि मुझे अधिक से अधिक धन की प्राप्ति हो और धूर्त मनुष्य शिष्य इसलिए बनता है कि मैं बहुत थोड़े खर्चे में भवसागर पार कर लूँ। इसलिए दोनों में से किसी का उपकार नहीं हुआ। दोनों के दोनों रसातल में गये।

**ढ़िग बूडा उतरा नहीं, याहिं अंदेसा मोहिं।**
**सलिल मोह की धार में, का निदरि आई तोहिं॥७८॥**

**शब्दार्थ**—ढ़िग–समीप। उतरा–उतराया। पार जाना। याहि–यही। अंदेसा–शंका। सलिल–जल। निदरि–नींद।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि तमाम लोग अपने को वैष्णव कहते हैं परन्तु गुरु का शब्द किसी के कान में नहीं लगा इसलिए मुझे शंका है कि यह संसार रूपी नदी में डूब जायेंगे क्योंकि इनको शब्द ज्ञान का बोध नहीं हुआ।

**मूलार्थ**—मानव शरीर रूपी नौका संसार रूपी सागर के बहुत पास में थी परन्तु अज्ञानी मनुष्य उस मानव शरीर को पाकर संसार से पार होने की कोई बात नहीं सोचा। एकदम किनारे ही डूब मरा। मानव रूपी उत्तम नौका पाकर उतर नहीं सका। सद्‌गुरु कहते हैं कि यही शंका मेरे मन में साल रही है क्योंकि संसार रूपो नदी में, मोह रूपी जल की धारा में प्रत्येक लोग डूब रहे हैं और सब असावधान होकर डूब रहे हैं। साहब कहते हैं कि ऐ मूर्ख मनुष्य तुझे कहाँ से नींद आ गयी। तू जाग नहीं सका। यदि मोहरात्रि से तू जागा होता तो डूब नहीं सकता। तुझे सद्‌गुरु बचा लिये होते। परन्तु तू कुल, परिवार के मोह में मान-बड़ाई के मोह में डूब मरा। यह कितने आश्चर्य की बात है कि तू मानव शरीर

पाया था जो ज्ञान, ध्यान का अधिकारी था परन्तु तू मानव शरीर पाकर तर न सका ।

**साखी कहै गहै नहीं, चाल चली नहिं जाय ।**
**सलिल धार नदिया बहै, पांउ कहां ठहराय ।।७९।।**

**शब्दार्थ**—साखी–श्लोक, दोहा । गहै–ग्रहण । चाल–आचरण ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि पास में ही बूड़ गया । जबकि इसको पार हो जाना चाहिए था । अब कहा जा रहा है कि जब स्वस्थ था, जवान था तो खूब ज्ञान छाटता था परन्तु उसके अनुसार आचरण नहीं किया ।

**मूलार्थ**—संसार में बहुत लोग ऐसे हैं जो अपने को बहुत चतुर बनते हैं, बुद्धिमान बनते हैं । सद्गुरु कहते हैं कि बहुधा लोग साखी, शब्द, श्लोक, ज्ञान, ध्यान की बातें दूसरों को बहुत सुनाते हैं परन्तु अपने रंच-मात्र भी ग्रहण नहीं करते उन वाणी वचनों पर चलने का प्रयत्न भी नहीं करते । इसलिए भयानक मोह की धारा रूपी नदी बह रही है । जिसमें पाँव कहीं रुकता नहीं है । उसी नदी की सलिल धारा में ये सबके सब वंचक लोग अज्ञानी कथनी वाले डूब कर मर जाते हैं । पार नहीं हो पाते हैं ।

**कहंता तो बहुते मिला, गहंता मिला न कोय ।**
**सो कहंता बहि जान दे, जो न गहंता होय ।।८०।।**

**शब्दार्थ**—कहंता–कहने वाला । गहंता–ग्रहण करने वाला । बहि–बहने दो ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि दोहा, चौपाई, श्लोक, भजन, गा-गाकर लोगों को सुनाया जाता है परन्तु उस पर ध्यान नहीं दिया जाता है । इसलिए मोह माया का अन्त नहीं होता है । नीचे कहा जा रहा है कि ऐसे तो बहुत लोग हैं जो एक दूसरे को सुनाते फिरते हैं और दीप तले अँधेरा रहता है ।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि मेरे जीवन में दूसरों को उपदेश देने वाले, कथनी करने वाले बहुत से लोग मिले परन्तु स्वयं उस पर चलने वाले नहीं मिले । साहब कहते हैं कि ऐसे ज्ञान कहने वालों को, शास्त्रों की बात करने वालों को छोड़ दो । कहने दो । ये व्यावसायिक हैं, कमाने खाने वाले हैं । दूसरे को खानि-बानि में पड़ा बतलाते हैं ।

अपने स्वयं वाणी के बड़े-बड़े पुस्तक छापते हैं। खानि स्त्री को शिष्या बनाते हैं। उपदेश की झाड़ी लगा देते हैं। अपने समान किसी को समझते नहीं। कहते हैं कि हमी सच्चे सद्‌गुरु पारखी हैं। अन्य भ्रामिक हैं, जीव है। अज्ञानी हैं। दूसरे का इस प्रकार तिरस्कार करते हैं परन्तु स्वयं अपने गुरु-उपदेश को ग्रहण नहीं करते सद्‌गुरु कहते हैं कि ऐसे लोगों को छोड़ों जो केवल बकवास करते हैं।

## दो मुखी विचार प्रकरण

**एक एक निरुवारिये, जो निरुवारी जाय।**
**दोय मूख का बोलना, घना तमाचा खाय ॥८१॥**

**शब्दार्थ**—निरुवारिये-निवारण, सुलझाउ। जऊ–जो। दोय–दो। घना-बहुत, अधिक। तमाचा–हस्त-घात, हाथों से पीटना।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि कहने वाले बहुत हैं करने वाले कम हैं नीचे कहा जा रहा है कि एक एक क्रम से साधना कीजिये तभी सब सध जायेंगे।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे जिज्ञासुओं! सत्संग में एक एक बातों का निरुवार कीजिये। पहले मन को साधिये तब समूची इन्द्रियाँ आपके बस में हो जायेंगी। यदि एक ही साथ सबको पकड़ना चाहेंगे तो कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। दूसरी बात यह है कि दो मुखी बातें मत बोलिये कभी कहिये कि ईश्वर सत्य है। कभी कहिये जीव जगत सत्य है या कभी कुछ कहना कभी कुछ कहना ऐसी बातों के बोलने से लोग आपकी बहुत निन्दा करेंगे। आपका कोई विश्वास नहीं करेगा। ऊपर से छींटा-कसी होगी इसलिये समझ बूझ कर मुख खोलिये अन्यथा समाज के लोग पकड़कर दोनों कपोलों पर तमाचे से पीटेंगे।

**जिभ्या को तो बन्द दे, बहु बोलन निरुवार।**
**सारथी से संग करु, गुरु मुख सबद बिचार ॥८२॥**

**शब्दार्थ**—जिभ्या–जीभ। निरुवार–निरुद्ध करो, रोको। सारथी–आत्मा, परमतत्त्व, सच्चा सद्‌गुरु, मन।

**सम्बन्ध**—प्रथम कहा गया है कि एक-एक का निरुवार करना चाहिए। यदि एक ही बार बहुत काम उठाया जाय तो एक भी सिद्ध नहीं होगा इसलिए क्रमशः एक-एक बातों पर विचार करना चाहिए।

यह भी कहा गया है कि दो मुखी बातें नहीं होनी चाहिए कभी हाँ कभी नहीं करने से उसका महत्त्व घट जाता है। इसलिए वाणी पर संयम करना चाहिए। जिसका निर्देश नीचे दिया जा रहा है।

**मूलार्थ**—बहुत से लोग ऐसे हैं जो बिना काम के, बिना प्रयोजन के बक-बक बोलते रहते हैं। इस पर गुरु महाराज कहते हैं कि बहुत बोलने से जिभ्या को रोको, उसमें ताला लगाओ, संयम से बोलो। अधिक बोलने वाला झूठ भी बोलता है क्योंकि सत्य बात बहुत थोड़ी होती है। इसलिए अधिक बोलने पर मिथ्या बोलना ही पड़ जायेगा। अधिकतर मौन होकर आत्मचिन्तन करो। सच्चे सन्त सद्गुरु का संग करो और जो गुरु मुख से शब्द निकला है। जो गुरु मन्त्र है। जो आत्म विषयक उपदेश है। उस पर विचार करो और शब्द स्वरूपी प्रणव का जप करो। यह स्वाभाविक है कि जापक मनुष्य कम बोलता है इसलिये वाणी को कम करने के लिए प्रभु का नाम गुरु का शब्द सदा जपना चाहिए।

**टिप्पणी**—सबसे पुराने हस्तलेख में अर्थात् 'क' प्रति में सारथी शब्द है और 'ख' प्रति में साखो है। तथा 'ग' प्रति में स्वारथी हैं और 'च' प्रति में पारखी है। इसलिए प्राचीन पाठ समझकर सारथी दिया गया है। जिसका अर्थ भी उत्तम है।

**जाके जिभ्या बन्द नहीं, हिदया नाहीं सांच।**
**ताके संग न लागिये, घाले बटिया मांझ ॥८३॥**

**शब्दार्थ**--घाले-छोड़ना, मारेगा, हत्या कर देवेगा। मांझ-बीच। वटिया-मार्ग।

**सम्बन्ध**—प्रथम कहा गया है कि गुरु के शब्द पर विचार करना चाहिए और वाणी पर नियंत्रण लगाना चाहिए और नीचे कहा जा रहा है कि जो बहुत बोलता है उसका हृदय झूठ से भरा होता है।

**मूलार्थ**—गुरुदेव कबीर कहते हैं कि जिसकी वाणी नियन्त्रित नहीं है। जिसके जिभ्या पर लगाम नहीं है जो बहुत बोलता है वह सच्चे हृदय का मनुष्य नहीं होता। वह कपट खोट से भरा रहता है। बहुत बोलने वाले में छल-छिद्र बहुत होता है इसलिए उस बहु विवादी का संग छोड़ देना चाहिए। क्योंकि वह तुझे बीच रास्ते में ही छोड़ देगा अर्थात् वह तुम्हारा पूरा साथ नहीं देगा। यहाँ पर वंचक गुरु की ओर संकेत है जो लोग बहुत कथा कीर्तन करते हैं। वाणी को विश्राम नहीं देते वे दूसरों के लिए कहते हैं परन्तु अपने लिए कुछ करते नहीं। अधिक झूठ बोलने

वाले की संगत का परित्याग करना चाहिए क्योंकि न जाने कब वह धोखा दे जाय अर्थात् धोखा देने वाला बीच मार्ग में ही तुम्हारी हत्या कर देगा इसलिये उस वाचाल व्यक्ति का साथ न करो।

**प्रानी तो जिभ्या डिगै, छिन-छिन बोल कुबोल।**
**मन के घाले भरमत फिरै, कालहिं देत हिंडोल ॥८४॥**

**शब्दार्थ**—प्रानी-प्राणी। डिगै–नजदीक, गिर जाना, पतित होना, पास। छिन-छिन–क्षण-क्षण। कुबोल–कुवाक्य। घाले–चलते, मारे। कालहिं–मृत्यु, यमराज। हिंडोल–झूला।

**सम्बन्ध**—इसके पहले वाली 'साखी' में कहा गया है कि बहुत बोलने वाला का हृदय सांच नहीं होता। इसलिए वह विश्वास करने योग्य नहीं है। नीचे कहा जा रहा है कि जिसकी वाणी नियंत्रित नहीं है। उसका पतन अवश्यम्भावी है।

**मूलार्थ**—गुरु महाराज कहते हैं कि हे प्राणी! जिसकी वाणी डिग गयी है। सत्य नहीं बोल रही है। बहुत बकबासी हो गयी है। वह पुरुष प्रत्येक क्षण कुवाक्य बोलता है। जो दूसरे को अप्रिय लगे। कुबोल से यहाँ तात्पर्य संसार की सत्यता से भी है। बहुत बोलने वाला यहाँ संसार को ही सत्य मानता है और कहते हैं कि वह बिगड़े हुए मन के 'घाले' कहिये कारण यत्र-तत्र भ्रमते फिरता है। कहीं स्थिर नहीं रहता है। सदा अशान्त दशा में पड़े रहता है, जिसके कारण काल भगवान-मृत्यु देवता संसार को सत्य मानने वाले को, अपशब्द बोलने वाले को, जन्म-मरण के झूले पर झुलाते रहते हैं। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि कम बोले। क्षमाशील बने और गम को खाय।

**हिलगई भाल शरीर में, तीर रहा है टूट।**
**चुंबक बिना न नीकरै, कोटि पाहन गये छूट ॥८५॥**

**शब्दार्थ**—हिलगई–धंस गई, समा गयी। भाल–तीर, बरछा। तीर–वाण। चुंबक–जो लोहा को उठा लेता है, आत्मज्ञान। पाहन–पत्थर, नकली चुंबक, वास्तविक वचन जो नहीं बोलता है, असद्ज्ञान।

**सम्बन्ध**—पहले कहा गया है कि जिसकी वाणी अस्थिर है, और जो झूठ बोलने वाला है। सत्यवक्ता नहीं है वह सदैव जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहता है। अब कहा जा रहा है कि वासना रूपी, तृष्णा रूपी, अज्ञान रूपी तीर जिसके शरीर में समा गया है। वह निकलता नहीं अर्थात् कुवाक्य

से जो बिध जाता है। वह घायल होकर गिर जाता है। इसलिए कुवाक्य नहीं बोलना चाहिए।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि कुवाक्य रूपी भाल, अज्ञान रूपी भाल अन्तःकरण में धँस जाने पर टूट जाता है। जब किसी की वाणी से कोई घायल हो जाता है तो उसके हृदय के दो टुकड़े हो जाते हैं और जीवन भर उसको याद रखता है। वह भाल, वह वाणी रूपी बाण बिना सच्चे हितैषी सद्गुरु के निकल नहीं सकता क्योंकि किसी टूटे हुए हृदय को जोड़ने के लिए बहुत हितैषी प्रेमी व्यक्ति ही जोड़ सकता है। दूसरे करोड़ों पाहन के सदृश चुम्बक लोहा और पत्थर मिले हुए अर्थात् ज्ञान अज्ञान से सने हुए व्यक्तियों के द्वारा वह अन्दर की गांस नहीं निकल पाती। इसलिए अज्ञान एवं बुरी वासनाओं को, तथा प्रबल तृष्णा को शरीर से, मन से दूर करना सच्चे सद्गुरु का काम है। अन्य वंचक गुरुओं के सामर्थ्य से बाहर है। इसलिए मनुष्य को सच्चे सन्त सद्गुरु की पहचान करनी चाहिए।

## दुर्लभ मार्ग प्रकरण

**आगे सेरी सांकरी, पीछे चकना चूर।**
**परदा तर कि सुंदरी, रही धका से दूर ।।८६।।**

**शब्दार्थ**—सेरी–(गुजराती) सीढ़ी, गली। सांकरी–संकीर्ण, सकिस्त। पीछे–पाछे। चकनाचूर–धूर-धूर। परदा–यवनिका, पट, आवरण, अज्ञान। तरकी–भीतर की। सुंदरी–स्त्री, मुक्ति, सुषुम्ना, कुण्डलिनी। धका–धक्का, स्पर्श।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि सच्चे सद्गुरु के बिना वासना रूपी तीर बाहर नहीं हो सकती क्योंकि वह हृदयस्थल में धँस गयी है और नीचे कहा जा रहा है कि हृदय व सहस्रार का रास्ता बहुत बड़ा सँकरा है। बिना पहुँचे हुए गुरु के बताये बिना वहाँ कोई जा नहीं सकता।

**मूलार्थ**—किसी महालय के भीतर कामिनी सुन्दर स्त्री रहती हो और रहने वाले कमरे में परदा लगा हो और उसके पहुँचने तक मार्ग व गली बहुत क्रमशः सांकरी हो वहाँ जाने के लिए प्राणों की मोह छोड़कर जो जाता है वही पहुँच सकता है। अन्य दूसरे लोग जो ऊपर नहीं जा सकते तो गिरने पर चकनाचूर हो जाते हैं। और वह पर्दा के भीतर की सुन्दरी उसके स्पर्श से बहुत दूर रह जाती है। इसी प्रकार से सद्गुरु

कहते हैं कि जो हृदय में विराजमान है। जिसके चारों ओर से आवरण के पर्दे लगे हैं। वह बहुत सुदूर है और जानकार के लिए बहुत नजदीक भी है। परन्तु उसके पास पहुँचने तक सुषुम्ना मार्ग होकर जाना पड़ता है। सुषुम्ना क्रमशः संकीर्ण होती जाती है। यदि कोई साहसी पुरुष गुरु के बताये हुए मार्ग पर चलकर साहस के साथ सुषुम्ना में प्रवेश कर कुण्डलिनी को जगा लेता है तब तो वह आत्म प्रदेश का दर्शन कर लेता है। यदि साधना में साधक सफल नहीं हुआ। तो स्मरण रहे कि सुषुम्ना बहुत लम्बी नाड़ी है। जब उसमें सुरति प्रवेश करती है तो लगता है कि पहुँचने में कितनी दूरी है। कोई-कोई साधक घबड़ा जाते हैं और वापस लौटने लगते हैं परन्तु जब सुरति-निरति में प्रवेश कर सुषुम्ना में बहुत दूर तक चढ़ जाती है और ऐसी दशा में उसको नीचे से वापस बुलाने में साधक का बहुत बड़ा नुकसान हो जाता है। वह साधक पागल हो जाता है। विक्षिप्त हो जाता है। ऐसी दशा में जो सप्त आवरण के बीच में सुन्दरी रूपी मुक्ति बैठी हुई है। वह उक्त भ्रष्ट साधक से बहुत दूर हो जाती है। स्पर्श तक नहीं करती क्योंकि अधूरी साधना में सुन्दरी की प्राप्ति नहीं होती है। इसलिए किसी भी साधना को पूरे गुरु के संरक्षण में करना चाहिए। अन्यथा हित के बजाय अहित हो जायेगा।

**संसारी समै विचारी, कोई गिरही कोइ जोग।**
**अउसर मारे जात हैं, तै चेत बिराने लोग ।।८७।।**

**शब्दार्थ**—संसारी–संसार के लोग। गिरही- घर में रहनेवाले।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि कच्चे साधक जिनको सच्चा सद्‌गुरु नहीं मिला वे मार्ग भ्रष्ट हो जाते हैं। अब कहा जा रहा है कि इस परमार्थ की ओर जाने के लिये संसारी लोग भी जाने का विचार करते हैं।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे संसार में रहने वाले, हे बाल-बच्चो वाले, हे योगी जन आपको भी समय के अनुसार विचार करना चाहिए। चाहे आप बाल-बच्चों में रहते हों, चाहे आप संसार का कोई व्यवहार करते हों। चाहे आप योगी हो, समयानुसार कार्य करें। यदि आप गृही हैं। घर में रहने वाले हैं। तो तीन अवस्था के बाद आपको अवश्य चेत जाना चाहिए। या घर में रहते हुए भगवत् भक्ति और आत्मतत्त्व की चर्चा आपको अवश्य करनी चाहिए। क्योंकि मानव तन पाने का यही फल है। यदि आप योगी हैं, साधक हैं। सन्त हैं, महात्मा हैं तो आप सच्चे रूप में अपनी साधना को करें। सच्चे सन्त सद्‌गुरु का सम्पर्क करें। आप

बिलासी न बनें। संसारियों जैसे भोग न भोगें। अपने सद्ज्ञान का गृही जनों में प्रचार करें। उपकार की भावना रखें। जो मार्ग आपके लिए विहित है उस पर चलते रहें। यदि आप लोग अपने कर्तव्य का निर्वाह नहीं करेंगे तो यह मानव तन का जो, अवसर प्राप्त है जो कर्तव्य करने का लिए मिला है, वह नष्ट हो जायगा। मानव तन से आप चले जायेंगे और पश्चाताप करेंगे इसलिए हे बिराने लोग ! आप लोग सावधान हो जाँय। चेतकर लें और अपने कर्तव्य पर डट जाँय क्योंकि आप बिराने हैं। यह मृत्यु लोक आपका नहीं है। यहाँ सदा रहने के लिये नहीं आये हो यहाँ से आपको जाना है। इसलिए आप लोग चेतिये, सावधान होइये।

**संसै सभ जग खंडिया, संसै खंडे न कोय।**
**संसै खंडे सो जना, जो सबद विवेकी होय ॥८८॥**

**शब्दार्थ**—संसै–अज्ञान। खंडिया–खण्डन, नष्ट, खा गयी। खंडे–खण्डन, विनाश। सबद–सार शब्द, आत्मतत्त्व, प्रणव।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मनुष्य को अपने-अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। चाहे वह साधु हो, चाहे वह गृहस्थ हो, जहाँ कही जो भी हो जिसका जो कर्म, धर्म है, उस पर डट जाय। नीचे कहा जा रहा है कि जो अपने कर्तव्य का निर्वाह नहीं करता है। निर्दयी बनकर काल भगवान उसको नष्ट कर देते हैं।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि बड़े आश्चर्य की बात है कि संशय सारे संसार के मनुष्यों को नष्ट कर रहा है। सबको तिरोहित कर रहा है परन्तु इस संशय रूपी अज्ञान को कोई नष्ट करने वाला नहीं मिला सभी लोग मोह, ममता में पड़े हुए हैं। इस संशय रूपी रात्रि का विनाश नहीं कर सकते हैं। जो सद्गुरु के शब्द का विवेकी होगा, जो उसका विवेक करेगा। अर्थात् शब्द स्वरूपी परमेश्वर का भजन करेगा। जो आत्म चिन्तन करेगा वही व्यक्ति संशय का नाशकर सकता है अन्य लोग जो प्रभु-सेवा से वंचित हैं गुरु सेवा से रहित हैं सबके सब संशय के शिकार हो जायेंगे। इसलिए येन-केन प्रकारेण संशय के निवारण के लिये सद्गुरु देव के शब्द का विचार करना चाहिए।

## विवेकयुत वक्तव्य प्रकरण

**बोलन है बहु भाँति का, तेरे नैनन किछउ न सूझ।**
**कहैं कबीर विचारि के, तैं अकिल कला ले बूझ ॥८९॥**

**शब्दार्थ**—बोलन–बहुत प्रकार की बोली है, वक्तव्य देना। भाँति–प्रकार। नैनन–दृष्टि, अन्तःपुर की दृष्टि। किछउ–कुछ भी। सूझ–दिखाई दिया। तै–तुम, जिज्ञासु। अकिल–बुद्धि के साथ। कला-कौशल, चतुराई। बूझ–समझ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि संशय सारे संसार को शिकार बनाया है परन्तु उस अज्ञान रूपी संशय को किसी ने शिकार नहीं बनाया। नीचे कहा जा रहा है कि संशय नाश करने के लिये बहुत प्रकार के उपदेश दिये जाते हैं, उस पर विचार करना चाहिए।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि इस संसार में बहुत बड़े-बड़े उपदेशदाता हैं। बहुत-बड़े-बड़े शास्त्र के ज्ञाता हैं और उनकी वाणी-बोली वचन भी अनेक प्रकार के हैं। कोई बौद्धी हैं, कोई जैनी है, कोई वैष्णव है, कोई शाक्त हैं, कोई वाममार्गी हैं इस प्रकार के अनेक लोग और उक्त लोगों के अनेक प्रकार के उपदेश हैं अनेक प्रकार के मुक्ति के मार्ग भो हैं परन्तु हे संसारी मनुष्य इन अनेक प्रकार की बोलियों को समझने के लिये तेरी अन्तर्दृष्टि कमजोर हो गई है इसलिए तुझे उनकी कुछ भी बातें दिखाई नहीं दे रही हैं। उनके आचरण और विचार क्या सही हैं क्या गलत है? तूं नहीं देख पा रहे हो। जहाँ होता है वहीं से दीक्षा ले लेते हो। मैं कबीर विचार कर कहता हूँ कि यदि तुझे आत्म कल्याण की बात लेनी है और किसी को सन्त सद्गुरु बनाना है और सच्चे सद्गुरु की पहचान करनी है तो तू बुद्धिपूर्ण कौशल के साथ इन उपर्युक्त लोगों की बातों को बूझो तभी तेरा कल्याण होगा। अन्यथा तू भ्रम में फँस जायेगा। जब तक तेरी बुद्धि सूक्ष्म बातों को नहीं समझेगी। सूक्ष्म सिद्धान्तों को नहीं समझ सकेगी तब तक तू भ्रमेगा। इसलिए अकिल के साथ उपर्युक्त उपदेष्टाओं की बात को समझकर किसी के शरणापन्न हो जाओ।

**मूल गहे ते काम है, तैं मत भरम भुलाव।**
**मन सायर मनसा लहरि, बहे कतहुँ मत जाव ॥९०॥**

**शब्दार्थ**—मूल–आत्मतत्त्व, परमेश्वर। गहे–ग्रहण करो। काम–कर्तव्य। तैं–तुम। मत–नहीं। भुलाव–भूलो। सायर–समुद्र। मनसा–कामना, इच्छा। कतहुँ–कहीं। जाव–जाओ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि किसी के भी ज्ञान को यदि ग्रहण करना है, किसी की दासता स्वीकार करनी है तो बुद्धिपूर्ण सूझ-बूझ करके

ही किसी की शरण में जाओ। अन्यथा हानि होगी। नीचे कहा जा रहा है कि जो वास्तविक तत्त्व है उसी को ग्रहण करना चाहिए। अन्य बकवास से दूर रहना चाहिये।

**मूलार्थ**—हे जिज्ञासुओं! हे सद्पात्रों! तुम्हारा मूलतत्व को ग्रहण करना ही काम है। अर्थात् जो सबका मूल है सबका उपादान कारण है। वह आत्मा है, आत्मतत्त्व है, उसी का अन्वेषण करो। उसी की खोज करो। अन्य दूसरे मार्ग के भ्रम में पड़कर मत भूलो। अर्थात् इस संसार के चक्र में मत पड़ो। यह भ्रमाने वाला है क्योंकि मन जो है समुद्र के समान है। संकल्प-विकल्प करने वाला है। आकाश पाताल एक करने वाला है। इसकी जो मनसा है वही लहर के समान है। इसलिए मन रूपी समुद्र के मनसा रूपी लहर में बहकर कहीं मत जाओ। तुम केवल उस परमतत्त्व को पकड़ लो। उसी से तेरा उद्धार हो जायेगा।

## विषयभोग-विलास प्रकरण

**भौर विलंबे बाग में, बहु फूलन की बास।**
**ऐसे जीउ बिलंबे बिखै मैं, अन्तहुँ चले निरास ॥९१॥**

**शब्दार्थ**—भौर–भ्रमर, अज्ञ जीव। विलंबे–बिलमें। बाग–पुष्पवाटिका। फूलन–पुष्प, भवभोग। ऐसे–इस प्रकार। बिखै–विषय। विलंब–फँस गये, रुक गये।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मन जो है वह समुद्र के समान है। उसकी इच्छाएँ बहुत लम्बी-चौड़ी हैं। उनका परित्याग करना चाहिए और अब कहा जा रहा है कि जो मन के अधीन होते हैं। वे संसार के भोगों में ही रह जाते हैं।

**मूलार्थ**—जिस प्रकार से पुष्प गन्ध का लोभी भ्रमर पुष्पवाटिका में पुष्पों की गन्ध लेने के लिए भूल जाता है। अपने परिवार की ओर से विस्मृत हो जाता है। पुनः घर नहीं लौटता अन्ततः उसी प्रकार से पुष्प गन्ध लेते-लेते उसका जीवन उसी पुष्पवाटिका में अन्त हो जाता है। सद्गुरु कहते हैं कि इसी प्रकार से जो संसार में आसक्त हैं। जो संसार को ही सत्य मान रहे हैं। वे जीव विषयभोग में ही बिलम्ब जाते हैं। मूलतत्त्व की ओर ध्यान नहीं देते हैं। अपने कर्तव्य की पहचान नहीं करते। संग्रह त्याग का ध्यान नहीं रखते। इसलिए वृद्धावस्था आने पर इस संसार से निराश होकर छूछे हाथ चले जाते हैं और जन्म-जन्म भर पश्चाताप करके जन्मते-मरते रहते हैं।

**भौर जाल बगु जाल है, बूड़े बहुत अचेत।**
**कहैं कबीर ते बाचिहैं, जाके हिृदया मांहि विवेक ॥९२॥**

**शब्दार्थ**—भौर जाल–भ्रम जाल संसार और सांसारिक झगड़े, बखेड़े, भ्रमजाल, आवर्त, चक्रावात, नदियों के बहुत अथाह जल में चक्राकार को भौरी भी कहते हैं। उसमें पड़ जाने पर छोटी मोटी नौकायें डूब जाती हैं और मनुष्य, पशु आदि भी उसके नीचे चले जाते हैं। वह भँवर सबको खींच लेता है। बगुजाल–रस्सी का जाल। जिसका उपयोग पानी में किया जाता है उसके ऊपरी भाग में लौकिया बंधी रहती है। जिसको मछलियाँ खाद्य पदार्थ समझकर आकर है फँस जाती हैं। अचेत–असावधान।

**सम्बन्ध**—ऊपर की साखी में कहा गया है उसमें कि जिस प्रकार से भ्रमर पुष्प गन्ध में भूल जाता है। उसी प्रकार से संसार के लोग विषय वासना में लिप्त हो जाते हैं। नीचे कहा जा रहा कि जो सांसारिक सुख है वह बड़ा कठिन जाल है। उसमें फँसा हुआ मनुष्य कभी बाहर नहीं निकल पाता।

**मूलार्थ**—जिस प्रकार से नदियों के अथाह जल में स्थान-स्थान पर भौरियाँ उठती रहती हैं। उनके सामने कोई भी जीव-जन्तु जो जल के मर्म को नहीं जानते हैं। कैवर्तकों को छोड़कर सब आकर फंस जाते हैं। जहाँ तक कि छोटी-छोटी नौकायें भी बड़े-बड़े भंवर में फंसकर जल के नीचे चली जाती हैं। जो एक बार उस भँवर के धोखा (जाल) में फंस गया तो उसको निकलना नहीं है। इसी प्रकार से एक बगु जाल होता है जो रस्सियों के द्वारा निर्मित किया जाता है और उसके प्रत्येक मुखों पर लौकी की तुम्बियाँ बँधी रहती हैं। जिसको कैवर्त लोग बड़ी-बड़ी नदियों में ले जाकर छोड़ते हैं। मछलियाँ उस तुम्बे को खाद्य पदार्थ जानकर उसकी ओर दौड़-दौड़ कर आती हैं और उस जाल में फँस जाती हैं जो लोभ के कारण सबके सब मारी जाती हैं इसी प्रकार से सद्गुरु साहब कहते हैं कि जो संसार है यह अथाह नदी है। पुत्र-कलत्र, धन-सम्पति यही उस नदी में भँवर है। मान-बड़ाई, राग-द्वेष, ईर्ष्या, सम्मान उक्त संसार रूपी नदी में ये सब भँवर हैं। जो उक्त भँवर में फँस जायेंगे। वे यावत् जीवन निकलने में असमर्थ रहेंगे और अन्ततः प्राणान्त हो जायेगा। उसी जाल के सदृश्य बगु जाल है और वह भी संसार रूपी सागर में कैवर्तकों के द्वारा छोड़ा जाता है। अर्थात् मन के द्वारा संसार

में लोभ की इच्छा जगती है। बगु जाल में तुम्बे जो हैं। वही संसार के भोग हैं। मछली रूपी मनुष्य खाने के लोभ से जाता है और फँस जाता है। कैवर्त रूपी काल अन्त में पकड़कर अपना ग्रास बना लेता है। जिसमें बहुत से अचेत आकर जो सावधान नहीं है। डूब जाते हैं और डूबकर सदा सर्वदा के लिये प्राणों से वंचित हो जाते हैं। इस भँवर और बगु जाल से वही लोग बच सकते हैं जो सावधान रहेंगे। जो सदा भगवान की शरण में रहेंगे। जो सत्संग करेंगे। मैं कबीर कहता हूँ कि जिसके हृदय में सत्य का विवेक होगा, वहीं बचेगा। जो विवेक करके जाल को धोखा जानकर परित्याग कर देगा और सत्य को जीवनदाता जानकर उसको ग्रहण करेगा वही बच सकता है शेष जितने असावधान हैं, अचेत हैं वे सब डूब मरेंगे।

**तीन लोक तीड़ी भये, उड़े जो मन के साथ।**
**हरिजन हरि जाने बिना, परे सो जम के हाथ ॥९३॥**

**शब्दार्थ**—तीड़ी-टिड्डी एक प्रकार की पहाड़ी मक्खी जो कभी-कभी पहाड़ों और जंगलों से उड़कर आकर कृषि को खा जाती हैं। पहले समय में बहुत ज्यादा उड़कर आती थी जिससे आसमान लाल हो जाता था जिसके आने पर कृषक लोग घबड़ा जाते थे। जिसको भगाने के लिए किसान लोग पीतल की थाली व टीना आदि बजाकर भगाने का प्रयत्न करते थे।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि यह संसार भँवरजाल व बगु जाल के समान है। जिसमें अज्ञानी मनुष्य डूब मरता है परन्तु जिसके हृदय में विवेक है। कहा गया कि वह बच जायेगा नीचे कहा जा रहा है कि जो मन के बहाव में नहीं आयेगा वह भी बच जायेगा।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरुदेव कहते हैं कि यह सारा ब्रह्माण्ड जिसको तीन लोक कहते हैं वह टिड्डी के समान हो गया है और मन रूपी पक्षी के साथ उड़ रहा है। अर्थात् जो पंच ज्ञान इन्द्रियाँ हैं चतुष्टय अन्तःकरण हैं ये सब मन के वशीभूत होकर मन के बहकावे में पड़ गये हैं। जहाँ-जहाँ मन ले जाता है वहाँ-वहाँ ये सब जाते हैं। जिन-जिन भोगों को मन भोगने की इच्छा करता है उन-उन भोगों में ये इन्द्रियाँ भी प्रवृत्त हो जाती हैं। अन्ततोगत्वा भोग भोगते-भोगते मन उपराम नहीं होता और अधिक अशान्त हो जाता है और अशान्त होकर नाना क्लेशों को भोगने

वाला बन जाता है। क्योंकि न हरिजन का संग किया और न हरि को जाना। यदि भगवत् भक्तों का साथ किया होता और प्रभु का स्मरण करता तो बच जाता परन्तु दोनों में से किसी एक का साथ नहीं किया। अन्ततः वृद्धावस्था आने पर प्राण कंठगत होने पर भगवान भास्कर के पुत्र के हाथ में पड़ गया। अर्थात् यम रूपी मृत्यु धरकर दबोच लिया।

**नाना रंग तरंग है, मन मकरंद असूझ।**
**कहैं कबीर पुकारि के, तैं अकिल कला ले बूझ ॥९४॥**

**शब्दार्थ**—रंग–रूप, वरण, मन के मनोरथ। तरंग–लहर। मकरंद–पुष्प, गंध, फूलों का रस। असूझ–दिखायी न देना। कला–कौशल, हुनर, चेतन, आत्मा, शक्ति। बूझ–समझ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो लोग भगवान और भगवत भक्तों का साथ नहीं किये वह यम के हाथ में पड़ गये और नीचे कहा जा रहा है कि इस मन के अनेक स्वरूप हैं अनेक मनोरथ हैं।

**मूलार्थ**—जिस प्रकार से संसार अनेक रूप में भासता है और अनेक उसके वर्ण होते हैं उसी प्रकार से इस मन के नाना रंग तरंग हैं। अनेक प्रकार की इच्छाएँ हैं ये तरंगें कभी राजगद्दी में जाती है, कभी लोक सभा में उमड़ती है, कभी इन्द्र लोक तक जाती हैं और भ्रमर की तरह यह मन संसार रूपी पुष्प के रस को खूब चूसने की इच्छा करता है, अहर्निश चूसते रहता है। कभी इसकी भोग से उपरामता नहीं होती है और उपर्युक्त मन के हाथ में पड़ने से उसको यह सूझता नहीं है तथा दिखाई नहीं देता है मैं कबीर पुकारकर कहता हूँ कि हे संसार के मानव! बुद्धि पूर्ण बुद्धि कौशल के साथ इस संसार को समझो की यह संसार कैसा है। इसमें पड़े रहने से हमारी क्या दशा होगी और मनकी तरंगों में तरंगित होने से मैं कहाँ जाकर पड़ूंगा। इत्यादि बातों को बुद्धि बल से समझने का प्रयत्न करो। अन्यथा यमराज महाराज तुझे पकड़ लेंगे और अपने नगर में ले जायेंगे।

**बाजीगर का बाँदरा, ऐसा जीउ मन के साथ।**
**नाना नाच नचाय के, राखे अपने हाथ ॥९५॥**

**शब्दार्थ**—बाजीगर–नट, मन। बांदरा–बंदर, जीव। ऐसा–जैसा। इस प्रकार का।

**सम्बन्ध**—ऊपरी साखी में कहा गया है कि मन के अनेक रंग होते

रहते हैं जिसकी तरंगें आकाश को छूती हैं। ये सदा संसार सुख को ही चाहता है। अब नीचे कहा जा रहा है कि यह मन नट के समान है। जीव सब मरकट के समान है जो सदा मन के वश में होकर नाचते हैं।

**मूलार्थ**—जिस प्रकार से बाजीगर बन्दर को अपने वश में करके गांव-गांव, नगर-नगर, द्वार-द्वार पर ले जाकर नचाता है। उसके द्वारा भीख मँगवाता है। पेट का पालन करवाता है। उसी प्रकार से यह मन बाजीगर के समान है और जीव जो है वह मरकट के समान है, यह जीव अपने को न समझकर मन के साथ लग गया है। यह मन अनेक प्रकार के नाच नचाकर के इस जीवात्मा को अपने हाथ में रखता है। अर्थात् अनेक कष्टों को देकर अनेक योनियों में ले जाकर इस जीव को अनेक दुःखों को दिलवाकर कर्मरूपी डण्डों से पीटकर फिर भी अपने हाथ में रखता है। इस जीव को यह मन कभी परित्याग नहीं करता यद्यपि मन से जीव सबल है। चेतन है मन उसी की चेतनता से चेतन है, परन्तु यह जीवात्मा अपने को भूल गया है। अपनी शक्ति को जानता नहीं है, मिथ्या व्यवहार में पड़कर अपने नौकर के अधीन हो गया है जिसके कारण अनेक प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता है।

## मन ठग प्रकरण

**ई मन चंचल ई मन चोर, ई मन शुद्ध ठगहार।**
**मन मन करते सुर नर मुनि जहंड़े, मन के लक्ष दुआर ॥९६॥**

**शब्दार्थ**—लक्ष-लाख। दुआर-द्वार, निकलने का मार्ग।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि इस जीवात्मा को मन बहुत तरह से तंग करता है, परेशान करता है और सदा अपने हाथ में रखता है। नीचे कहा जा रहा है कि यह बड़ा चपल और तस्कर भी है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु साहब कहते हैं कि यह मन बहुत चंचल है। बहुत बड़ा चोर है और बहुत बड़ा शुद्ध निपुण ठगहार है। इसकी चंचलता इतनी विचित्र है कि जीवात्मा को सदा धोखा देते रहता है। सदा उसके साथ चोरी करते रहता है। बिना जनाये कहीं निकल जाता है इस जीवात्मा को ठगने के लिए यह बहुत बड़ा ठग है। इसको भुलावा देते रहता है जिसके कारण संसार के मनुष्य सभी दुःखी हैं। परेशान हैं और इसी मन के फेर में बड़े-बड़े देवता और बड़े-बड़े मनुष्य जहंड़ गये। ठगा

गये इस मन के निरोध के लिए, इस मन को रोकने के लिए अनेक प्रकार की साधनाएँ बतायी गयी है, अनेक प्रकार के ध्यान किये गये, अनेक प्रकार के जप-तप किये गये। शरीर को दण्ड दिया गया, शरीर को सुखाया गया परन्तु तब भी यह मन वश में नहीं हुआ। पकड़ में नहीं आया, निग्रह नहीं हो सका क्योंकि इस शरीर से इसको भागने के लिए लाखों द्वार हैं। अनेकों मार्ग हैं, इसलिए यह आज तक पकड़ा नहीं जा सका। जिसके चलते बड़े-बड़े लोग आश्चर्य में पड़े हुए हैं।

## तीव्र विरह वैराग्य प्रकरण

**बिरह भुवंगम तन डंसा, मंत्र न मानै कोय।**
**राम वियोगी ना जिये, जिये तो बाउर होय ॥९७॥**

**शब्दार्थ**—भुवंगम–सर्प, वैराग्य। तन–शरीर, अन्तःकरण। डसा–काटा। मंत्र–उपचार। वियोगी–जुदा, उत्कट जिज्ञासु। बाउर–पागल, मूर्ख, बेकूफ। जिये–जीवित।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मन बड़ा चंचल है। जिसके कारण सभी लोग अशान्त रहते हैं। अब कहा जा रहा है कि इस मन से तभी बचा जा सकता है। जब प्रबल प्रभु-प्राप्ति की भावना हो और यह प्रश्न भी उठता है कि क्या इस मन को अधीन किया जा सकता है कि नहीं! क्या इस मन को निग्रह नहीं किया जा सकता है? तो नीचे उत्तर दिया जा रहा है कि किया जा सकता है। ऊपर के कथन केवल शुष्क भक्ति के कारण मन वश में नहीं हो पाता। तात्पर्य यह है कि जो केवल यज्ञ कर्मकाण्ड आदि सकाम कर्मों में लगे रहते हैं तब तक मन वश में नहीं होता जब तक लोग केवल कथनी में पड़े रहते हैं। तब तक यह मन निग्रह नहीं होता। यह मन तभी निग्रह होता है जब उत्कट तत्त्व प्राप्ति की जिज्ञासा हो और सम्पूर्ण रूप से प्रभु समर्पण हो। तब यह मन मर सकता है और निरुद्ध हो सकता है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि विरह वेदना रूपी सर्प जिस साधक को डस लिया है अर्थात् प्रभु प्राप्ति की अत्यन्त जिसको व्याकुलता हो गयी है जो अहर्निश विकल होकर तत्त्व प्राप्ति के लिए न्योछावर हो जाता है। उसको पुनः संसार में लाने के लिए, संसार के बन्धन में पकड़ने के लिए कोई उपाय नहीं है। एक बार जिसके अन्दर में वैराग्य अग्नि लग जाती है उसके बुझाने के लिए न कोई पानी है, न कोई मन्त्र है।

जिसको विरह भुवंगम डस लेता है वह मर जाता है अर्थात् संसार से उसकी वृत्तियाँ निष्प्राण हो जाती हैं। जो राम वियोगी हैं जो राम की चाहना में डूबा हुआ है। उसकी संसार में जाने वाली वृत्तियाँ मर जाती हैं और वे पुनः राम वियोगी साधकों की वृत्तियाँ जीवित नहीं होती हैं। क्योंकि उनके जीने की शक्ति नष्ट हो चुकी है और मन मर चुका है। साधक प्रभु को समर्पित हो चुका है, इसलिए उसका जीना अब सम्भव नहीं है। संसार में उसको लगना, संसार विमुख होना उसके वश का काम नहीं है। यदि फिर भी उसकी वृत्तियाँ संसार की ओर जाती हैं और जीवित रहती हैं तो वह साधक, वह व्यक्ति पागल जैसा बना रहता है। संसार की आँखों से वह बाहर हो जाता है। संसार के काबिल नहीं रह जाता है यदि 'जिये' का अर्थ पुनः संसार में प्रवृत्त किया जाय तो 'बाउर' का अर्थ होगा कि जो प्रभु प्राप्ति पाकर पुनः उसको विस्मृत कर देता है तो वह मूर्ख है, पागल है परन्तु ऐसा सम्भव नहीं है।

**राम वियोगी विकल तन, इन दुखवो मति कोय।**
**छूवतहीं मरि जायेंगे, ताला बेली होय ॥९८॥**

**शब्दार्थ**—ताला बेली–सं०–(व्यग्रता) व्याकुलता, घबराहट, ताला वेली, छुई मुई, लजौनी घास।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि राम वियोगी संसार के लिए जीवित नहीं रहता है और जीवित रहने पर भी पागल जैसा रहता है। नीचे कहा जा रहा है कि उसमें इतनी व्याकुलता रहती है कि जरा सा स्पर्श होने से दुःखी हो जाता है।

**मूलार्थ**—गुरुदेव कबीर कहते हैं कि हे जिज्ञासुओं ! हे शुभमते ! हे भद्रपुरुषों ! जो राम वियोगी होता है, जो राम को चाहने वाला होता है। जिसमें अत्यन्त उत्कण्ठा होती है, वह तन मन से बहुत व्याकुल हो जाता है। उसको कुवाक्य आदि बोलकर दुखाओ मत। यदि इन राम वियोगियों को व्यंग्य आदि वचनों से और अपने व्यवहार से कुछ कष्ट दोगे तो ये छुवत ही निष्प्राण हो जायेंगे, मर जायेंगे। जैसे लोक में ताला वेली या छुई मुई नामक तृण होती है यदि आप उसको छू देंगे तो वह तुरन्त मुरझा जायेगी इसी प्रकार से भगवत भक्तों को कुछ छेड़-छाड़ मत करो नहीं तो वे छुई-मुई घास की तरह व्याकुल हो जायेंगे। अर्थात् संसार से शून्य हो जायेंगे और उनकी ताला बेली कहिये व्यग्रता और बढ जायेगी। उसके दुःख का ठिकाना नहीं रहेगा इसलिए हो सके तो

उसकी साधना में सहायता करो। उसकी सेवा करो तो तेरे अन्तःकरण भी शुद्ध हो जायेंगे।

**बिरह भुवंगम पैठि के, कीन्ह करेजे घाउ।**
**साधु अंग न मोरिहैं, ज्यों भावे त्यों खाउ ॥९९॥**

**शब्दार्थ**—मोरिहैं–विचलित। त्यों–तैसे, उसी प्रकार।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया हैं कि जो भगवत वियोगी हैं जो प्रभुको चाहने वाले हैं। वे उनको पाने के लिए व्याकुल रहते हैं। अब नीचे कहा जा रहा है कि उनके कलेजे में उनके अन्तःपुर में ऐसे भाव प्रभु के हो जाते हैं कि फिर वह संसार की तरफ नहीं झांकते हैं।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि जो प्रभु का सच्चा साधक है, जो परम-तत्त्व का उपासक है जिसमें अति बिरह उत्पन्न हो गयी है वह बिरह भुवंगम बनकर उसके हृदय में बैठकर साधक के कलेजे में घाव कर दिया है। जिसके कारण वह कराहते रहता है। जब तक प्रभु प्राप्ति नहीं होती है। तब तक उसके वह घाव नहीं मिटते हैं। कितना भी कष्ट हो प्रभु प्राप्ति में, कितना भी दुःख दिया जाय। संसार के लोग कितना भी ऐंठ बाजियां उसके साथ करें परन्तु जो साधन करके साधु हो गया है वह कभी भी अपने अंग को और मन को साधना की ओर से विमुख नहीं करता। साधना की ओर से नहीं मोड़ता। लोगों को जैसे भावे उसको तैसे दुखावे, कष्ट दें उसकी वस्तुएँ छीन लें परन्तु वह उत्तम साधक अपने मार्ग से कभी विचलित नहीं होता है।

**करक करेजे गड़ि रहा, बचन ब्रिछ की फांस।**
**निकसाये निकसे नहीं, रही सो काहू गांस ॥१००॥**

**शब्दार्थ**—करक–बांस आदि की बहुत छोटी फांस, रुक-रुक कर होने वाली पीड़ा, कसक। गांस–गांठ, हथियार व कांटा की नोंक, वैर, द्वेष।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि साधु पुरुषों को कोई कितना भी तक-लीफ दे। कितना भी उनके मन को दुखावे परन्तु वे अपने मार्ग पर अडिग रहते हैं।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि बिरह रूपी करक प्रभु प्राप्ति की पीड़ा कलेजे में गड़ गयी है, धँस गयी है और सद्‌गुरु के वचन वृक्ष रूपी फाँस में हृदय फँस चुका है। अब वह किसी प्रकार से निकालने पर निकलने

के मान का नहीं है। क्योंकि 'रही सो कांहू गांस' किसी ने अर्थात् सद्गुरु ने संसार से ऐसी बैर बुद्धि कर दिया है। विषय से इतना द्वेष हो गया है कि अब मन संसार की ओर नहीं जा रहा है वह उनके वचन रूपी वृक्ष में फँस गया है। उनके बताये हुए तत्त्व उपदेश में लग गया है इस मूल-तत्त्व को जिस प्रियतम को गुरु ने बता चुके हैं। अब यह मन उसी की प्राप्ति के लिये अनेक प्रकार के रोगों को सह रहा है। वेदना को सह रहा है। वह उनकी वाणी रूपी करक हृदय में धँस चुकी है। अब वह किसी भी प्रकार से बाहर होने वाली नहीं है। क्योंकि वह सद्गुरु की धँसाई हुई गांस है। बाहर से मन मुड़ चुका है। इसलिए अब मन की वृत्तियाँ बाहर से घूमकर अंदर की ओर चली गयी हैं।

## कामना प्रकरण

**काला सरप सरीर में, खाइनि सभ जगझारि।**
**बिरले ते जन बाचिहैं, जो रामहिं भजे विचारि ॥१०१॥**

**शब्दार्थ**—काला सरप–कामना, क्रोध। खाइनि–खाया। झारि–सम्पूर्ण।

**सम्बन्ध**—ऊपर की साखी में कहा गया है कि सद्गुरु के वचन रूपी वृक्ष में यह मन फँस गया। अब बाहर नहीं जा सकता है नीचे कहा जा रहा है कि जो सद्गुरु विमुख हैं उनको शरीरस्थ बैरी लोग बहुत कष्ट देते हैं। इसलिए सद्गुरु के शरण में जाना अवश्य चाहिए।

**मूलार्थ**—मनुष्य कामनाओं का शिकार हो जाता है। सदा कामना के वश में पड़कर अपने मूलतत्त्व को खो देता है। सद्गुरु कहते हैं कि कामना रूपी काला सर्प सबके शरीर में समाविष्ट है। समाया हुआ है। सारे संसार के मनुष्यों को खा डाला। उससे कोई बच नहीं सका। इस कामना रूपी सर्प से कोई विरले संत, प्रभु के जन बच सकते हैं जो श्रीहरि को विचार के साथ भजते हैं। 'विचारि' में श्लेष है। जो अपने मन को संसार की सभी प्रवृतियों से, संसार के सभी भोगों से निवृत्त होकर प्रभु का भजन करता है। वह काले सर्प वाले कामना से बिना काटे बच जाता है और जो प्रभु को नहीं भजता है और भजता है तो सकाम भावना से भजता है तो काले सर्प से बच नहीं सकता है। उसको वह-काट खायेगा। और उसके जीवन का अन्त कर देगा।

**काल खड़ा सिर ऊपरे, तैं जाग बिराने मीत ।**
**जाका घर है गैल मे, सो कस सोवे निचिंत ।।१०२।।**

**शब्दार्थ**—काल–मृत्यु। तैं–तुम। बिराने–यहाँ न रहने वाला। जाग–सावधान हो। मीत–मित्र, साथी। जाका–जिसका। गैल–गली, मार्ग। कस–क्यों, कैसे। निचिंत–निश्चित।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि कोई विरला ही मनुष्य संसार के फाँस से बचते हैं जो भगवान को विचार पूर्वक भजते हैं। अब प्रश्न उठता है कि भगवान को क्यों भजा जाय क्या उनसे कुछ मिलना-जुलना है। तो नीचे कहा जा रहा है कि सम्पूर्ण प्राणियों के सिर पर मृत्यु मड़रा रही है। जो दुःख के समुद्र में जीवों को डाल देती है श्रीराम नाम के भजने से वह मृत्यु टल जाती है। अर्थात् मृत्यु का क्लेश प्राणियों को नहीं होता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि प्रत्येक मानव के सिर पर काल मँडरा रहा है। मनुष्य को काल से बचने के लिए सावधान होना चाहिए, जग जाना चाहिए क्योंकि यह मानव लोक में यहाँ रहने वाला नहीं है। वह दूसरे देश से आया है। इसलिए साहब कहते हैं कि हे मित्र! तू सोओ नहीं असावधान मत हो और सावधान होकर भगवत् आराधना करो। क्योंकि जिसका घर उस गली में हो, उस मार्ग में हो जिस मार्ग से मृत्यु आ रही हो तो उसका कुशल कहाँ तक होगा अर्थात् नहीं होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि प्राणिमात्र का घर मृत्यु के रास्ते में है। वहाँ मृत्यु को जाना ही है। इसलिए उस पुरुष को क्यों निश्चित सोना चाहिए। सावधान क्यों नहीं होता है प्रभु का सुमिरन क्यों नहीं करता है?

**कलकाठी कालू घुना, जतन जतन घुन खाय ।**
**काया मधे काल बसत है, मरम न काहू पाय ।।१०३।।**

**शब्दार्थ**—कल–अगले पिछले दिन, आगे चलकर, पीछे, कलंकित, चैन, आरम्भ, शांति, कौशल। काठी–वह जिन, जिसमें नीचे काठ होता है, अंग्रेजी ढंग की जिन, देह की गठन, काष्ठ शरीर। कालू–काल। घुना–घुन लकड़ी के अन्दर घुसकर जो कीटाणु लकड़ी को खाने वाले होते हैं वह घुन। जतन-जतन–भीतर-भीतर, प्रयत्नपूर्वक। काया–शरीर। मधे–बीच। काल–मृत्यु। मरम–भेद। काहू–कोई, किसी ने।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मनुष्य को इस संसार में अचेत नहीं

होना चाहिए। क्योंकि उसके लिए सदा मृत्यु का भय बना हुआ है। इस लिए सावधानी पूर्वक आत्म चिन्तन करना चाहिए। नीचे कहा जा रहा है कि जिस प्रकार से काष्ठ के अन्दर उसका नाश करने वाला घुन बैठा हुआ है। उसी प्रकार से प्राणियों के अन्दर उसके विनाशक तत्त्व छिपे हुये हैं।

**मूलार्थ**—जिस प्रकार से मनुष्य में बुराईयाँ घर कर जाती हैं और बढ़ते-बढ़ते उसके विनाश का कारण बनती हैं। उसी प्रकार से यह मानव जीवन सदा कलंकित रहता है एवं कलह पूर्ण है। कहीं-कहीं पाठ कलि भी है। इसलिए कलि का अर्थ कलह होता है। जिस समय लोग अनेक प्रकार के संकटों से घिर जाँय उसको कलियुग कहते हैं और उसी में उनको कलंक भी लगता है। काठी जो मानव शरीर है। उस शरीर के अन्दर उसी प्रकार से आधि-व्याधि रूपी काल का द्योतक घुन लगे हैं। जिस प्रकार से काष्ठ को भीतर ही भीतर यत्नपूर्वक घुन खा जाता है। अन्दर-अन्दर काष्ठ को खोखला कर देता है। वह काष्ठ किसी काम का नहीं रह जाता है। उसी प्रकार से मानव के अन्तःकरण में अनेक प्रकार की जो बुराईयाँ हैं। अनेक प्रकार के जो दोष हैं वे सब उसके अन्दर घुन का काम करते हैं। मनुष्य को इतना कमजोर बना देते हैं कि वह किसी अर्थ का नहीं रह जाता है। यदि कोई एक बुराई मनुष्य के अन्दर घुसती है तो दूसरी बुराई भी जतन-जतन करके घुस जाती है। सद्‌गुरु देव कहते हैं कि मानव के शरीर के बीच में अर्थात् अन्तःपुर में बुराई रूपी काल बसता है परन्तु उस काल का कोई भेद नहीं जानता है। न आज तक कोई जान पाया।

**मन माया की कोठरी, तन संसै का कोट।**
**बिखहर मंत्र माने नहीं, काल सरप की चोट ॥१०४॥**

**शब्दार्थ**—संसै–संशय। कोट–गढ़, खजाना, राशि। बिखहर–विषहर, बिषधर। चोट–घाव।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि शरीर में घुनरूपी काल बसता है। यह शरीर बुराईयों का भण्डार है परन्तु लोग ऊपर से बहुत ताम-झाम से रहते हैं। अन्दर की ओर नहीं देखते कि मैं अच्छा हूँ कि बुरा हूँ। लोगों पर मन इतना छा गया है कि वे उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकते।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु देव कहते हैं कि संसार के सभी प्राणी मन से

अशान्त हैं और व्याकुल हैं क्योंकि मन जो है माया के रहने की कोठरी है और यह नर तन जो है। वह संशय का कोट है। जिसके अन्दर माया निवास करती है। जिसमें संशय भरा हो वह क्या कभी सुख से सो सकता है। माया 'मि' धातु से बनी है जिसका अर्थ होता है, जाल, फौरेब, धुर्तई, कपट, खोट अस्तु सांसारिक वस्तु जो है वह सब माया है। उसका निवास मन में ही रहता है और संशय कहिये अज्ञान, भ्रान्ति, विस्मृति जो है वह मन में बैठ गयी है और तन उस माया का बहुत बड़ा केन्द्र है। संशय का दूसरा नाम अज्ञान भी है। अज्ञान रूपी सर्प जिसको डस लिया है अर्थात् अज्ञान जिसके अन्दर घर कर गया है वह कभी सुखी नहीं रहता है। उसके आसपास चतुर्दिक दुःख मड़राते रहते हैं। चक्कर लगाते रहते हैं। पूर्ण अज्ञानी को मूर्ख भी कहते हैं जो पूर्णरूपेण अज्ञान से आवृत्त है। उसको दिशा शून्य भी कहते हैं। वह सभी प्रकार के ज्ञान से वंचित रहता है। पूर्णरूपेण शून्य रहता है। उस शून्य मनुष्य को जिसको अज्ञान रूपी विषधर काट लिया है। उसको सद्गुरु रूपी गारुड़ी कितनी भी औषधि दें। कितना भी ज्ञानरूपी मंत्र से झाड़े। परन्तु संशय रूपी सर्प का विष गुरु उपदेश से भी नहीं मानता है। नहीं उतरता है, अज्ञान मानव को नष्ट कर देता है। संशय काला सर्प के समान है जो संशय का शिकार हो जाता है। जिस पर संशय सवार है जिसको संशय रूपी चोट लग गयी है। जो संशय से घायल है। वह कभी सुधर नहीं सकता, उसका कभी उद्धार नहीं हो सकता। भगवान श्रीकृष्ण के शब्दों में—'संशयात्माविनश्यति' इसलिए सद्गुरुदेव ने संशय की संज्ञा काले सर्प से दी है। जो बड़ा भयानक, मृत्युकारक विषधर है। मनुष्यों को चाहिए कि संशय से परे हो जाँय। जिस प्रकार से संशय की निवृति हो उसी प्रकार की उपाय करें।

## मनमाया अभेद प्रकरण

**मन माया तो एक है, माया मनहिं समाय।**
**तीन लोक संस परी, [मैं] काहि कहूँ समुझाय ॥१०५॥**

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि संशय विषधर के समान है जिस पुरुष को संशय हो जाता है उसका नाश अवश्यम्भावी है। नीचे कहा जा रहा है कि संशय माया के कारण होता है। भ्रम के कारण होता है।

**मूलार्थ**—यह मन और माया दोनों एक हैं। मन में माया समायी हुई है। जिसके कारण तीनों लोक में संशय हो गया है। गुरुदेव कबीर

कहते हैं कि सारे संसार के लोग संशय से ग्रसित हैं। इसलिए मैं कबीर क्या कहकर लोगों को समझाऊँ। जो संशय से रहित हैं। उनका विनाश नहीं होता है। संशय वाले नाश को प्राप्त हो रहे हैं उनका बचाव कैसे होगा मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है। न लोग कुछ मानने के लिए तैयार हैं। जो जिस वृत्ति में लगा है उसी को सही मान लिया है।

**बेरा दिन्हों खेत को, बेरा खेतहिं खाय।**
**तीन लोक संसै परी, (मैं) काहि कहूँ समुझाय ॥१०६॥**

**शब्दार्थ**—बेरा–बेढ़ा, घेरा, टाटी का घेरा, पहरेदार, वंचकगुरु। खेत–क्षेत्र, प्रजा जन।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि माया और मन दोनों एक हैं। इनमें कोई भिन्नता नहीं है। क्योंकि मन से ही माया का उद्भव बताया गया है। इसलिए मन को मायाबी भी कहा जाता है। माया का जन्मदाता मन ही है क्योंकि मन के अंश से ही माया बनी है। मन का अर्थ होता है संकल्प विकल्प करने वाला। संसार की जितनी भी कल्पनाएँ होती हैं वे मन से ही होती हैं।

इसलिए समस्त मनुष्यों के मन में माया समाविष्ट है। पूर्व किये अर्थ के अनुसार छल दंभ भरा मन माया से सम्पृक्त हो जाता है। इसलिए लोग संशय के शिकार होते रहते हैं और मायाबी मन वाले लोग जो गुरु लोग हैं। वह भी जीवों के मन में तरह-तरह के भेद उत्पन्न करते रहते हैं जो संसार के रक्षक माने गये हैं। वे गुरु लोग अज्ञान छोड़ाने के अतिरिक्त प्रजा जन के धन को ऐंठते हैं। उनके कुशल क्षेम के लिए अनेक भ्रान्ति युक्त बातें करते हैं। इसलिए नीचे कहा जा रहा है कि रक्षक ही भक्षक है। किसको समझाया जाय। यहाँ भक्षक को ही रक्षक माना गया है, यदि दोनों में बड़ी मैत्री हो तो बीच में भेद डालकर कौन बैरी बने।

**मूलार्थ**—गुरुदेव कबीर कहते हैं कि संसार में एक बहुत बड़ा आश्चर्य दिखायी दे रहा है। वह क्या है मैं देखता हूँ कि किसान लोग कृषि की रक्षा के लिए खेतों के चतुर्दिक बेरा लगाये हैं। बाह्य पशुओं के चरने के भय से टाटी से घेर दिये हैं परन्तु आश्चर्य इस बात का है कि बाहर के पशु के बजाय जो रक्षा के निमित्त टाटी का घेरा है। वही खेत को खा रहा है। वही खेत को चर रहा है। भला अब कौन उपाय कियाजाय कि खेत की रक्षा हो, अर्थात् जिनको मैं अपना रक्षक समझता हूँ। जिनको हम लोग अपना गुरु समझते हैं। जिसको हम पिता समझते हैं। जिनको

हम देश का रक्षक समझते हैं, जिनको हम देश का स्वामी समझते हैं। राजा समझते हैं जो देश के रक्षक कहे जाते हैं। जो प्रजा पालक कहे जाते हैं। वही लोग प्रजा का शोषण कर रहे हैं, वही लोग जनता को उत्पीड़ित कर रहे हैं। अब भला इस देश की गरीब जनता का किसके द्वारा रक्षा की जाय। इस बात को लेकर तीन लोक में संशय हो गया है। कि बाप ही पुत्र को मार रहा है। गुरु ही शिष्य को आत्म कल्याण से वंचित कर रहा है तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त लोग प्रजा जन को आत्मीय जन को सत उपदेश नहीं करते। सत्य मार्ग पर नहीं ले चलते। सही मार्ग प्रभु भजन है आत्म चिन्तन है। इसको नहीं बताते। सकाम कर्मों की ओर जनता को उन्मुख करते हैं। जो उसका सही अधिकार है। जो उसका स्वरूप है, उसको चुराये रहते हैं। उसका अपहरण कर लेते हैं। भला मैं कबीर पिता-पुत्र राजा-प्रजा जहाँ इस प्रकार से राजी हों। जो अपना बैरी नहीं समझ रहे हों। बैरी को ही मित्र मानकर एक साथ में रहते हों। उनमें कैसे भेद डाला जाय और भेद डालकर कैसे समझावें। कौन दोनों का बैरी बने, कौन उन दोनों से शत्रुता मोल ले, यह बड़ा कठिन काम है।

**मन सायर मनसा लहरि, बूड़े बहुत अचेत।**
**कहैं कबीर ते बांचि हैं, जिनके हिरदै विवेक ॥१०७॥**

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि रक्षा करने वाला ही भक्षण कर रहा है। लोग शत्रु को ही मित्र मान बैठे हैं। इसलिए कुछ कहते बनता नहीं। क्योंकि मन में माया समायी हुई है। जिसके कारण सारी भ्रान्तियां फैली हुई हैं।

**मूलार्थ**—यह मन ही समुद्र है और माया का जनक है। जिसके कारण उपरोक्त घटनाएं घट रही हैं। इसकी मनसा ही लहर है जिसमें बहुत से असावधान लोग डूब जाते हैं, बह जाते हैं। जो लोग मन के उताल तरंग में तरंगित हो मन रूपी समुद्र के साथ बहते रहते हैं। नीचे ऊपर जाते रहते हैं वे कभी बच नहीं सकते। वे मन के कारण ही डूब मरते हैं। मैं कबीर कहता हूँ कि वही लोग बच सकेंगे। जिनके हृदय में विवेक बसता है। अन्य कोई दूसरा मनुष्य मन माया की चपेट से बच नहीं सकता सदा डूबते मरते रहेगा।

**सायर बुधि बनाय के, बाय बिछछन चोर।**
**सारी दुनिया जहंड़ि गई, कोइ न लागा ठौर ॥१०८॥**

**शब्दार्थ**—सायर–समुद्र। बाय–है, फैला, फैलाव, बिस्तार। विछछन–विलक्षण, चतुर। जहंड़ि–ठगी।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मन के बहकाव से कोई बच नहीं सकता है। जो मनसा लहर में नहीं पड़ता है। जो मन की इच्छाओं को देता है जो मन की गति को विवेक करके जान लेता है वही बच सकता मार है। अन्य जो लोग अविवेको हैं वे बच नहीं सकेंगे।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि यह मन के वशीभूत मानव अपनी बुद्धि को समुद्र के समान बनाकर सबके ऊपर प्रभाव डालना चाहता है। सब पर शासन करना चाहता है परन्तु मानव मन बड़ा विलक्षण चोर है। कितना भी बड़ा विशाल मनुष्य हो वह मन के द्वारा ठगा जाता है। इसलिए दंभी मनुष्य अपने को बुद्धि का सागर मानने वाला। क्या इससे कभी बच सकता है? इस मन के वशीभूत सारा संसार जहड़ गया है मन की ठगी में पड़ गया है एक भी पुरुष कोई सुठौर पर नहीं लगा अर्थात् परमतत्त्व रूपी ठौर को नहीं पहचान सका। उसका ग्रहण नहीं कर सका। मन के अधीन मनुष्य अपने को बड़ा चतुर मानता है। बड़ा बुद्धिमान मानता है। इसलिए किसी संत सद्गुरु को शरण में नहीं गया। जिसके कारण आत्म प्रदेश में ठोर नहीं पा सका। न आतमा को जान सका।

**मानुख होइके ना मुआ, मुआ सो डांगर ढोर।**
**एकउ जीउ ठउर नहिं लागा, भया सो हाथी घोर ॥१०९॥**

**शब्दार्थ**—डांगर–चौपाया, पशु। ढोर–गाय, बैल, भैंस।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि आदमी अभिमान के कारण अपनी विशाल बुद्धि व गौरव के कारण सँभल नहीं सका। क्योंकि अभिमान में डूबा रहा। नीचे कहा जा रहा है कि इसलिए उसको मानव बुद्धि भी नहीं प्राप्त हुई।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि अभिमानी मनुष्य-मानव होकर के संसार से नहीं मरा। अर्थात् शास्त्रों के अनुसार मानव का अर्थ होता है कि जो अन्तरात्मा को जान जाय, जो अपने को पहचान जाय। जो परमात्मा के भजन में अनुरक्त हो जाय। वही मानव है। परन्तु ऐसा मानव बनकर कोई नहीं मरा। पशु के जैसा खाया-कमाया और पशु जैसा ही डांगर ढोर के रूप में मर गया। जैसे–पशु के निर्बल होने पर उसकी उपेक्षा हो जाती है। पशु स्वामी न उसकी सेवा करता है, न घास डालता है, इसी प्रकार से जन्म भर जो झूठ-साँच बोलकर परिवार का

पोषण किया कुबेर का खजाना भरा। तब तक वाह-वाही में रहा। पुत्र-कलत्र बड़े प्रेम से मिलते थे। हृदय से लगाते थे परन्तु जब संयोग वश किसी भयानक व्याधि से ग्रसित हो गया। अब कुछ करने के योग्य नहीं रहा है। तो उसकी ओर लोग देखना भी नहीं चाहते। उसके प्रति उपेक्षा हो गयी। चारपाई पर पैर घिसते-घिसते पशुओं की तरह मर गया इसी प्रकार से एक भी संसार का मानव अच्छे ठौर नहीं लगा। अर्थात् एक भी मनुष्य आत्मोन्मुख नहीं हुआ। सभी लोग हाथी की तरह शरीर को बढ़ाकर घोड़ा को तरह शरीर को सँवारकर रखा। अर्थात् शरीर के ही पालन-पोषण में रह गया। जो अनित्य है, जो नाशवान है, उसी शरीर के पोषण में लगा रहा। अन्त में परिणाम बुरा निकला। हाथी और घोड़ा में व्यंजना और श्लेष भी है। तात्पर्य यह है कि माया सब पर सवार रही सब माया के दास बने रहे। हाथी माया का द्योतक है। घोड़ा मन का द्योतक है जिसके अधीन सारे संसार का मानव पड़ा हुआ है।

## कृतघ्न मनुष्य प्रकरण

**मानुख तै बड़ पापिया, आखर गुरहि न मान।**
**बार-बार बन कुकूही, गरब धरे अउ ध्यान ॥११०॥**

**सम्बन्ध**—बन–जल, जंगल। कुकूही–बनमुर्गी, एक बारह इंच का वक्र आकृति का वाद्ययन्त्र, जिसको किंगिरीही लोग बजाते हैं, कुरुकम किंगिरीही उस जाति के लोगों को कहते हैं जो उक्त बाजे को बजाकर भीख माँगते हैं वे वेन जीवी जाति होते हैं अधिक उसमें मुसलमान ही हैं। आखर–अक्षर। गरब–गर्व, अहंकार।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि एक भी मनुष्य अच्छी राह वाला नहीं दिखाई देता। सभी लोग खाने कमाने में लगे हुए हैं। पेट पूजा में लगे हुए हैं। हाथी-घोड़ा के समान शरीर को सजाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ नहीं जानते। नीचे कहा जा रहा है कि मानव बड़ा पातकी होता है। समझाने पर भी समझता नहीं है।

**मूलार्थ**—गुरुदेव कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य! तू बड़ा पापी है। पापी इसलिए कहा कि जो संसार को सत्य मानता है। परलोक को नहीं मानता। जो नास्तिक हैं। जो ईश्वर को सत्ता को नहीं स्वीकार करते, वे पापी हैं। वे सभी प्रकार के कुकर्म करते हैं और वे अक्षर

स्वरूप आत्मपद विषयक उपदेश गुरु के द्वारा दिया हुआ नहीं मानते। अर्थात् जिस एक अक्षर का उपदेश गुरु करते हैं उस अविनाशी तत्त्व को नहीं मानते। वे कहते हैं, न कोई एक तत्त्व अक्षर है, न कोई ईश्वर है, न कोई परमात्मा है। यह संसार अनादि है, अकृत्य है, इस प्रकार के विचार से युक्त मानव गुरु के उपदेश का और गुरु के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता, जिसके कारण बार-बार बन कुकूही की भाँति इधर से उधर भ्रमते रहता है अर्थात् जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहता है। जिस प्रकार से वन कुकूही कहीं अच्छे स्थान पर नहीं रहती। कीचड़ में ही अपना निवास बनाती है और अपने अण्डों का भी स्थान उसी गन्दे स्थानों में रखती है। यह मानव क्यों बन कुकूही जैसा हुआ। क्योंकि अहंकार पूर्ण ध्यान द्वारा अर्थात् जिस तरह से बन कुकूही चारों तरफ विचरण करते हुए भी अपने अण्डों को ध्यान से नहीं उतारती है उसी प्रकार से यह मानव अगर कहे सुने रास्ते पर आ भी गया। कुछ ध्यान पूजन करने भी लग गया। तो भी इसका अहंकार नहीं गया।

**आशय**—मानव बड़ा ही पापी है। क्योंकि सद्गुरु का सदुपदेश नहीं मानता। बार-बार माता के गर्भाशय में आते जाते रहता है। बन कुकूही कहिये माता का रज पिता का बिन्दु एक स्थान पर होने से गर्भाशय में पकता है। पकते समय उसमें बड़ा उफान आता है और खलल उत्पन्न होता है। बुद-बुद जिसको कहते हैं अर्थात् बन कुकूही का यहाँ उदाहरण देने का तात्पर्य यह है कि गुरु का उपदेश नहीं मानने से बार-बार माता के गर्भाशय में यह जीव रज-वीर्य के साथ होकर पकता है। उसी को जठरानल में जलना कहा है।

**मानुख विचारा का करे, कहे न खुले कपाट।**
**सोनहा चौक बैठाइ के, फिर-फिर ऐपन चाट ॥१११॥**

**शब्दार्थ**—कपाट–किवाड़, हृदय का अज्ञान पट। सोनहा–सुनहा, कुत्ता, श्वान, कुगुरु, मन। चौक–वेदी, जहाँ कोई मांगलिक कार्य होता हो, चौका, देवादि की पूजा का स्थान। ऐपन–(प्रलेप) एक मांगलिक द्रव्य जो चावल और हल्दी को एक साथ मिलाकर पीसने से बनता है, देवताओं की पूजा में इससे थापा लगाया जाता है।

**सम्बन्ध**—ऊपर की 'साखी' में कहा गया है कि मनुष्य बड़ा पापी है क्योंकि बात को नहीं मानता है और समझाने पर बड़े गर्व के साथ ध्यान

धरता है अर्थात् अपने किये हुए पर बड़ा नाज रखता है। नीचे कहा जा रहा है कि यह मनुष्य पाप करने के कारण असमर्थ हो गया है।

**मूलार्थ**—मानव में बहुत सी कमजोरियाँ होती हैं। जिनके कारण सत्कर्म में वह प्रवृत नहीं हो पाता है। गुरुदेव कहते हैं कि यह मानव विचारा क्या कर सकता है। या क्या करे ? इसको कितना भी समझाता हूँ परन्तु इसकी समझ में मेरी बात नहीं आ रही है और न इसके अज्ञान का किवाड़ ही खुल रहा है जब तक इसके अज्ञान का कपाट नहीं खुलेगा तब तक यह सुखी नहीं हो सकता है। जैसे देवपूजन की सामग्री को असावधानी के कारण कहीं से आकर कुत्ता चाट या खा जाय और पूजाने वाला देव उक्त सामग्री से वंचित रह जाय। उसी प्रकार से इस मानव मन ने हृदय रूपी चौका की सारी शुद्ध भावना को संसार के भोगों में नष्ट कर दिया। उन अच्छे विचारों से आत्मा रूपी देवता की पूजा नहीं हो सकी। मन ने ही समस्त सद्‌भावना को खा गया। इसलिए असमर्थ मनुष्य कुछ नहीं कर सका। मनके वश में सदा पड़ा रहा। व्यर्थ में मानव तन चला गया। जिसको यह जीव प्रभु प्राप्ति के लिए पाया था। उसको सहज में ही गँवा दिया।

**आशय**—जिस प्रकार से देव पूजा के सामग्री को रखाने के लिए पालतू कुत्ते को चौका में रखाने के लिये बैठाया जाय और अपने किसी दूसरे कार्य में लग जाय इधर रक्षक कुत्ता उक्त सामग्री को अपने ही चट कर जाय। इसी प्रकार से प्रभु ने इस जीव को तन रूपी सामग्री आत्मतत्त्व की प्राप्ति के लिए दिया था परन्तु यह मन के वशी जीव आत्मतत्त्व की उपासना मानव तन में नहीं किया। उल्टे भोग-वासना में तन को खपा दिया। देव पूजा से वंचित रहा।

**मानुख विचारा का करे, जाके सुन्न सरीर।**
**जो जिउ झांकि न उबरे, तो काह पुकार कबीर ॥११२॥**

**शब्दार्थ**—सुन्न–ज्ञान हीन। झांकि–देखकर, झरोखे से निहार कर। तो–भला। काह–क्या। कबीर–कबीर साहब।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि यह मानव असमर्थ है अपनी कमजोरियों के कारण माया का दास बना हुआ है। इसलिए इसके अन्तःपटल के खुलने में कठिनाई होती है जिस प्रकार से सोनहा कहिये कुत्ता चौका में बैठा के उसके द्वारा रक्षा की कामना करे परन्तु वह चौका की वस्तुओं

को चाट जाय। पूजा की वस्तुओं को अशुद्ध कर दे। तो उस कुत्ते से लाभ ही क्या है। मानव विचारहीन प्राणी जब हो जाता है तब वह जहाँ-तहाँ जिस किसी को अपना रक्षक समझने लगता है। जिस किसी को गुरु बना लेता है। यदि अच्छा कोई सद्गुरु न मिला कहीं कोई वंचक मिल गया तो वंचक गुरु ज्ञान के बदले अज्ञान ही प्रदान करेगा। इसलिए नीचे कहा जा रहा है कि यह मानव तन धारी असमर्थ है। विवेकहीन होने पर यह क्या कर सकता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु देव कहते हैं कि हे सन्तों! हे सद्मते! हे सद्-जिज्ञासुओं! यह संसार का मनुष्य माया का दास होने के कारण निर्बल बना हुआ है। यह कुछ करने में असमर्थ है। इसका अन्तःकरण सद्विवेक आदि से शून्य है। जिसका शरीर ही शून्य है। वह कौन सी अच्छी बात सोच सकता है। जो जीव अच्छे सन्त सद्गुरु को झांक कर न देखे अर्थात् आत्मा को अन्दर में न परखे प्रभु का भजन न करे। तो मैं कबीर पुकार कर उसको क्या कह सकता हूँ। क्योंकि वह तो दिशा शून्य है। कोई बात समझने का अधिकारी ही नहीं है। शून्य हृदय मनुष्य के लिये वृहस्पति और ब्रह्मा जैसे गुरु भी कुछ करने के लिये असमर्थ हैं। क्योंकि वह दिग् भ्रमित मनुष्य विवेक से रहित है।

**मानुख जनम नर पाय के, चूके अबकी घात।**
**जाय परे भौ चक्र में, सहे घनेरी लात ॥११३॥**

**शब्दार्थ**—घात-दांव, अवसर, समय, मौका, बार। भौ-संसार, दूसरा भँवर। चक्र-चक्रावात, जल भौरो। घनेरी-बहुत। भौ चक्र-संसार की उलझनें।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जिसका शून्य शरीर है जो सत्य असत्य का विचार भी नहीं कर सकता। उसके लिए कोई उपदेश काम नहीं करता। नीचे कहा जा रहा है कि इतना सुन्दर मानव तन पाकर मनुष्य चेत नहीं रहा है।

**मूलार्थ**—संसार में मनुष्य का तन मिलना बड़ा दुर्लभ है। शीघ्र मानव तन की प्राप्ति नहीं हो पाती है। चौरासी लाख योनियों में भटकते-भटकते यह जीव प्रभु कृपा से कभी मानव शरीर पा जाता है। सद्गुरु कहते हैं कि मानव जन्म पा करके यह नर यदि अबकी बार चुक गया। अबकी बार दांव नहीं लहा तो निश्चित ही संसार के चक्र में जाकर

पड़ जायेगा। उपरान्त माया का बहुत थपेड़ा सहेगा। संसार का लात सहेगा। अर्थात् संसार में आने पर मनुष्य अनेक प्रकार की विपत्तियों का शिकार होता है, अनेक प्रकार के दुःख, अनेक प्रकार के क्लेश, इस जीव को संसार में आने पर घेरते हैं। बाल–अवस्था से वृद्धावस्था तक इसको कभी शान्त नहीं पाया गया क्योंकि इसके अन्दर विचार रूपी दर्पण नहीं है। इसलिए घने दुःखों का भागी बना हुआ है।

**रतन का तू जतन कर, माटी का सिंगार।**
**आया कबीरा फिरि गया, झूठा है संसार ॥११४॥**

**शब्दार्थ**—रतन–रत्न, नरतन, आत्मज्ञान। माटी–मिट्टी, पंचतत्त्व का। सिंगार–शोभायुक्त, साज, समान। कबीरा–सद्गुरु कबीर।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो मानव तन पाकर भाव भजन से चूक जायेगा। प्रभु का स्मरण नहीं करेगा। तो इस संसार जनों का स्वजनों का बहुत झमेला सहेगा बहुत लात खायेगा। नीचे कहा जा रहा है कि इस मनुष्य को चाहिए सावधान हो जाय जो प्रभु के द्वारा रत्न रूपी नर तन मिला है। उसकी सावधानी से रक्षा करे।

**मूलार्थ**—यह मानव तन रत्न के समान है। इसी में आत्मज्ञान व आत्मतत्त्व की प्राप्ति हो सकती है। अन्य दूसरी योनि में तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होना कठिन है। इसलिए इस मानव शरीर को बहुत यत्न करके विवेक के साथ रखो। क्योंकि यह क्षण भंगुर है और माटी का व पंच-तत्त्वों का बना हुआ, सजाया हुआ यह मानव शरीर है। सद्गुरु कहते हैं कि यह आता है पुनः फिर के चला जाता है। यह यहाँ स्थायी रहने वाला नहीं है। क्योंकि यह संसार झूठा है। इसमें कोई वस्तु स्थायी रहने वाली नहीं है। मनुष्य मुट्ठी बांध के आता है। हाथ पसार कर चला जाता है परन्तु यहाँ से कुछ लेकर जाना चाहिए। अर्थात् जीवन को सफल बनाकर जाना चाहिए। तभी इस मनुष्य शरीर की सफ-लता है।

**मानुख जनम दुरलभ है, बहुरि न दूजी बार।**
**पक्का फर जो गिरी परा, बहुरि न लागे डार ॥११५॥**

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि नर तन रूपी रत्न को प्रयत्न पूर्वक सुरक्षित रखा जाय। क्योंकि इसी से अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की सिद्धि होती है। नीचे कहा जा रहा है कि यह नर तन शीघ्र में मिलने वाला नहीं है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु साहब कहते हैं कि हे सन्त जन ! यह मनुष्य जन्म दुर्लभ है। यदि इससे जीवात्मा बाहर हो जाता है तो यह दूसरी बार फिर मिलता नहीं जिस प्रकार से किसी वृक्ष के फल पक जाने पर उसके नीचे गिर जाने पर पुनः वह पका हुआ फल डालियों में नहीं लगता। तात्पर्य यह है कि मनुष्य जन्म इतना मूल्यवान है कि बार-बार नहीं मिलता है। कर्मानुसार इसको अनेक योनियों में जाना पड़ता है। कितनी ऐसी योनियाँ हैं जिसमें यह जीव हजार-हजार वर्ष तक रहता है। इस प्रकार चौरासी लाख योनियों में इसको परिगमन करना पड़ता है। पुनः लाखों वर्ष इसको घूमने में लग जाते हैं कदाचित् पुनः इसको नर तन मिल भी जाय तो भी यह सुधरने वाला नहीं दीखता।

**बांह मरोरे जात हो, मोहिं सोवत लिये जगाय।**
**कहैं कबीर पुकारि के, इहि पिंडे होहु कि जाहु ॥११६॥**

**शब्दार्थ**—मरोरे–ऐंठकर, घुमाकर। मोहिं–जिज्ञासु को। पिंडे–पिण्ड, शरीर, लोह पिण्ड।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि यह मानव तन शीघ्र नहीं मिलता क्योंकि यह बहुत दुर्लभ है। अब नीचे कहा जा रहा है कि अति गुरु कृपा होती है तभी यह जीव सत मार्ग पर लगता है और चौरासी से बच जाता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु का कोई भक्त जो उनका प्रेमी है। उनकी वाणी सुनकर चौंक गया। उसका मोह भंग हो गया सद्गुरु से प्रश्न करता है कि हे प्रभु ! हे गुरुदेव ! मुझे सत्य मार्ग बताइये। क्योंकि यह तन निरर्थक में जा रहा है, क्योंकि आप मेरे बांह को पकड़ लिये हैं। मेरे मन को ऐंठकर धर लिये हो। मैं सोता था, मैं मोह निद्रा में अचेत था, आपने मुझे बांह मरोर कर शक्ति के साथ उठा लिया। सोने से जगा दिया। इस पर सद्गुरु कबीर पुकार कर कहते हैं कि हे भाई ! यह जो तेरा पिण्ड मानव तन है। इसमें होकर अर्थात् इसमें प्रवेश होकर तू कहीं जा सकते हो अर्थात् इसी मानव पिण्ड में तुझे प्रभु प्राप्ति हो सकती है। इसी में तू कोई भी साधना साध सकते हो, इसी मानव तन से समाज की सेवा कर सकते हो। देश की रक्षा कर सकते हो, भले-बुरे का ज्ञान कर सकते हो। इसलिए तुझे जो मानव तन मिला है, अच्छे कर्मों

के लिये मिला है। इसलिए इस पिण्ड में प्रवेश कर संसार से जाओ और कुछ करके जाओ।

**साखि पुलिंदर ढहि परे, बिबि आखर जुग चार।**
**कबीर रसना रंभन होत है, कोई कै न सके निरवार ॥११७॥**

**शब्दार्थ**—साखि–साक्षी। पुलिंदर–पुरन्दर, सुरपति, इन्द्र। ढहि–गिर पड़े, पतित। बिबि–दो। आखर–अक्षर, राम नाम।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि इस मानव तन में ही जो कुछ करना चाहते हो, कर सकते हो। मैं कबीर पुकार कर कहता हूँ कि इस मानव शरीर के समान कोई दूसरा शरीर नहीं है। इससे पतित होने पर कहीं तुझे शरण नहीं मिलेगी। क्योंकि नीचे उसका दिग्दर्शन किया जा रहा है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु देव कहते हैं कि वेद-शास्त्र साक्षी हैं। उनमें जो कथानक आये हैं। उनसे विदित होता है कि बड़ा से बड़ा मनुष्य कुकर्म करने पर ऊँचे से ऊँचे पद से ढह जाता है, पतित हो जाता है, उसका कहीं ठौर-ठिकाना नहीं लगता है। जो हो दो अक्षर राम नाम को इस मानव शरीर में नहीं जपा उसे बिबि अक्षर की प्राप्ति नहीं हुई। जिसका चारों युगों से निर्देशन होते आया है। सभी सन्त महात्मा भी उस बिबि अक्षर की बड़ाई करते आ रहे हैं और उसी का भजन करने का उपदेश भी देते हैं, परन्तु कबीर साहब कहते हैं कि संसार के लोग केवल वेद-शास्त्रों में लगे रहते हैं, और जिह्वा से रंभन कहिए केवल शास्त्रों का बखान करते हैं। शास्त्रों की बड़ाई करते हैं, परन्तु जो वह दुइ अक्षर चारों युग का महात्म्य है। उसको कोई विचार नहीं किया न कोई निर्णय कर सका। कि राम नाम को भजना चाहिए कि संसार को ही ग्रहण करना चाहिये। यह शास्त्रों में जो अनेक मत हैं, अनेक विचार हैं, अनेक सिद्धान्त हैं। उसमें कौन सा सही है, कौन सा गलत है उस पर निर्णय करके कोई चलने में समर्थ नहीं हुआ। सभी लोग शास्त्रों के ऊहा-पोह में रह गये। जब पुरन्दर जैसे लोग नीच कर्मों में पड़कर कुकर्मों के कारण स्वर्ग से ढ़ह गये। जिसकी साक्षी शास्त्र, पुराण हैं, अन्य जीव जो किसी पद पर नहीं हैं उनमें कोई सामर्थ्य नहीं है। क्या वे कभी कुकर्म करके बच सकते हैं ? अर्थात् नहीं। इसलिए मनुष्य को हिताहित सोचकर अच्छे कर्मों को करना चाहिए।

## कुमार्ग ग्रहण प्रकरण

**बेड़ा बांधिन सरप का, भौ सागर के मांहि।**
**जो छोड़े सो बूड़ि है, गहे सो डांसे बांहि ॥११८॥**

**शब्दार्थ**—बेड़ा–नौका, शरीर। सरप–सर्प, काम्य, कर्म, काम, क्रोध, लोभ, मोह। भौसागर–संसार। मांहि–में। डांसै–काटे। बांहि–हाथ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो दो अक्षर है जिसका चारों युगों में विचार हुआ है उसको त्यागकर जो लोग शास्त्र के रसना रंभन में पड़े रहते हैं उनके लिए नीचे कहा जा रहा है कि वे सकामी पुरुष काम्य कर्म से ग्रसित रहते हैं इसलिए उनकी भलाई होना कठिन है।

**मूलार्थ**—नदी में या समुद्र में बड़ी-बड़ी नौकाएं होती हैं जिनके प्रत्येक जोड़ पर लोहे के कांटे से जड़े होते हैं और कहीं-कहीं पर रस्सीयों से बंधे होते हैं परन्तु किसी अज्ञानी कैवर्त-मल्लाह अपने बेड़ों को सर्प की रस्सी बनाकर बांधे अर्थात् उसमें सर्प लपेट दे इस संसार रूपी सागर में तैरा दे पश्चात् उसको भान हो कि यह सर्प काट लेगा तो बीच सागर में यदि छोड़ता है तो नौका डूब जायेगी यदि रस्सी के स्थान पर सर्प को पकड़ता है तो सर्प खा जायेगा, सर्प काट लेगा इसी प्रकार से यह पापी मनुष्य मूर्ख शरीर रूपी बेड़े को काम्य कर्मों से बांध दिया है सर्प रूपी काम, क्रोध, तृष्णा आदि से इस शरीर रूपी नौका में लपेट दिया है समाविष्ट कर दिया है और इन्हीं के साथ संसार रूपी सागर से तैरना चाहता है अब जीवन का अंतिम समय आ गया है वृद्धावस्था होने पर ज्ञान हुआ ये काम्य कर्म मेरे बंधन के हेतु हैं ये काम्य कर्म के ही कारण मुझे दुःख होता है नर्क-स्वर्ग होता है इतना ज्ञात होने पर इनका साथ छोड़ने कि इच्छा करे। इनसे निरत होना चाहिए तो भला प्राण कंठगत होने पर वह क्या कर सकता है। फिर भी छोड़ने पर वह डूब ही जायेगा यदि इनका साथ करता है काम्य कर्मों सहित काम-क्रोध को साथ में रखता है तो ये सर्प रूपी महापिशाच काट खायेंगे। इनसे किसी प्रकार से बचना दुर्लभ है। इसलिए मनुष्य को जीवन के आरम्भ में ही विचार करना चाहिए कि मुझे क्या करना है? मेरा क्या कर्तव्य है? कर्तव्याकर्तव्य पर विचार करके ही कुछ करना चाहिए अन्यथा सर्प से बंधी नौका की ही दशा आरूढ़ार्थियों की होगी।

**हाथ कटोरा खोआ भरा, मग जोवत दिन जाय ।**
**कबीर उतरा चितु ते, छांछ दिया नहि जाय ॥११९॥**

**शब्दार्थ**—मग–मार्ग । जोवत–देखत, खोजत । दिन–समय । कबीर–कबीर साहब । छांछ–मट्ठा । चितुते–चित्त से । कटोरा–भोजन रखने का पात्र ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि इस अज्ञानी मनुष्य का प्रत्येक कार्य अज्ञान मूलक होता है जिसके कारण सतत् यह विपत्ति का भागी बना रहता है । नीचे कहा जा रहा है कि इसके दुःख को दूर करने के लिए मैंने इसको बहुत समझाया और इसकी राह देखता था कि यह अब मेरे पास आवे इसको अच्छी सिख दूं परन्तु यह मेरी ओर यत्किंचित भी ध्यान नहीं दिया ।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि मैं हाथ में कटोरा लेकर अर्थात् सच्चे हृदय से खोवा रूपी आत्मज्ञान को सद्विचार को हृदय रूपी कटोरे में भरकर रास्ते में खड़ा था यह उपर्युक्त मनुष्य कब आवे । इसको मैं सद्उपदेशरूपी खोवा खिला दूं । प्रभु से प्रेम करा दूं परन्तु यावत जीवन मेरे पास आया नहीं मेरी ओर ताक कर चला गया । इसलिए मुझ कबीर के चित्त से उतर गया कि जाने दो । कहने दो जब यह स्वयं हितेक्षु नहीं है तब क्या किया जा सकता है परन्तु जब यह वृद्ध हो गया । इसकी इन्द्रियाँ काम नहीं कर पा रही हैं जब संसार के लोग इसका परित्याग कर दिये । तब यह मेरे पास आया है । भला अब आके क्या करेगा । अब तो यह किसी काम का नहीं है इसलिए मुझ कबीर के चित्त से यह उतर गया है । अब खोवा के अतिरिक्त मट्ठा भी देने का मन नहीं कर रहा है । अर्थात् अब सामान्य उपदेश देने का भी मन नहीं करता क्योंकि अब यह किसी अर्थ का नहीं रहा ।

## समसत्ता प्रकरण

**एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि ।**
**है जैसा रहै तैसा, कहैं कबीर विचारि ॥१२०॥**

**शब्दार्थ**—एक–अद्वैत । दोय–द्वैत । कहौं–कहूँ । तो–तब । गारि–दोष ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मैं चाहता था कि कोई आवे । मैं अपना सत्य उपदेश उसको बता दूं परन्तु एक भी ज्ञान का अधिकारी

नहीं मिला। एक भी जिज्ञासु नहीं दिखाई दिया। कुछ लोग मेरी बात सुनकर आये और परमतत्त्व के बारे में पूछताछ किये। कोई कहता है कि अद्वैत सही है कि द्वैत सही है। वह ईश्वर एक है कि अनेक है? इस प्रकार के बहुत से प्रश्न लोग किये हैं। जिसका उत्तर नीचे दिया जा रहा है।

**मूलार्थ**—गुरुदेव कबीर कहते हैं कि यदि मैं कहूँ कि अद्वैत ही सत्य है तो यह भी कहना कठिन है। यदि मैं कहूँ कि द्वैत से ही मुक्ति मिलेगी तो भी कहते नहीं बनता क्योंकि बहुत से ईश्वर भक्त संसार सागर से पार हो गये हैं, यदि मैं कहूँ कि द्वैत ही सत्य है तो यह भी कहते नहीं बनता क्योंकि किसी एक में उस परमतत्त्व को बाँधना 'गारि' कहिये दोष लगेगा और अन्याय होगा। इसलिए वह परमतत्त्व, परमप्रभु जैसा है वैसा ही है। वह अनुपम है अद्वितीय है। अन्य किसी प्रमाण से प्रमाणित नहीं किया जा सकता, न उसमें कोई वाद-विवाद बनाते हैं। यह मैं कबीर निश्चित विचार करके कह रहा हूँ कि उस परमतत्त्व के विषय में कुछ कहना अन्याय और अनुचित है। क्योंकि वह सीमातीत है अनन्त है, अपार है।

## सुजिज्ञासु प्रकरण

**अम्रित केरी पूरिया, बहुबिध दीन्हा छोरि।**
**आप सरीखा जो मिलै, ताहि पियाऊं घोरि ॥१२१॥**

**शब्दार्थ**—अम्रित-अमृत, आत्मज्ञान। केरी-की। पूरिया-पुड़िया पोटरी, गठरी। आप-मेरे जैसे शुद्ध हृदय वाला। सरीखा-समान। ताहि-उसको। घोरि-घोलि।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि हे जिज्ञासु! वह परमतत्त्व जिस प्रकार का है। उसी प्रकार का है। उसमें कोई उपमा, उपमेय बनता नहीं है। नीचे कहा जा रहा है कि उक्त प्रकार के जो प्रश्न करते हैं उनसे मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है।

**मूलार्थ**—गुरुदेव कबीर सद्भक्तों से एवं जिज्ञासुओं से कहते हैं कि हे जिज्ञासुजन! मैं कबीर अमृतरूपी आत्मज्ञान की पुड़िया लेकर बहुत प्रकार से समाज के सामने, आत्म जिज्ञासुओं के सामने खोलकर रख दिया हूँ। फैला दिया हूँ। आप लोग देख लें। उस पर विचार कर लें। मेरे विचारों को सुनकर मनन-चिन्तन कर लें। तो इसमें से जो कोई मेरे समान सब कुछ छोड़कर, सब कुछ त्याग कर मेरे पास में आयेगा

मुझसे मिलेगा उसी को मैं तत्त्व ज्ञान रूपी अमृत घोलकर पिला दूँगा और वह अमर हो जायेगा। उसके सारे कल्मस नष्ट हो जायेंगे। जन्म-मरण से परे हो जायेगा। शोक उसका भाग जायेगा। सदा सर्वदा के लिए सुखी हो जायेगा।

**अम्रित केरी मोटरी, सिर से धरी उतार।**
**जाहि कहौं मैं एक है, सो मोहिं कहै दुई चार ॥१२२॥**

**शब्दार्थ**—अम्रित–अमृत, आत्मज्ञान। केरी–की। मोटगरी–गठरी। जाहि–जिसको।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अमृतरूपी आत्मा का उपदेश मैंने सबको सुनाया था परन्तु आत्म उपदेश केवल जिज्ञासुओं के लिए लाभदायक होता है। जिसका अन्तःकरण मल, विक्षेप, आवरण से रहित होता है। अब कहा जा रहा है कि सिर रूपी मस्तिष्क से उक्त ज्ञान के थैले को मैंने समाज के सम्मुख रख दिया। जो इसका ग्राहक हो ले सकता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु देव कहते हैं कि अमृत की मोटरी जो मैं सिर पर ढोये चलता था। उसको उतार कर रख दिया हूँ। अर्थात् जो मैं साधना के द्वारा अमृत तत्त्व की प्राप्ति की थी। उस अमृत तत्त्व को संसार के सामने कह रहा हूँ जो उसके जिज्ञासु हों। उस परम तत्त्व को ले सकते हैं परन्तु जिस अमृत तत्त्व को मैं कहता हूँ। कि वह एक है। जिस परमात्मा को मैं कहता हूँ। कि वह एक है। उसमें द्वैत नहीं बनता परन्तु उसी को संसार के लोग दो-चार नामों से मेरे सामने आकर समझाते हैं। तो लोग कहते हैं कि ब्रह्मा भी एक हैं। वह भी ईश्वर हैं। विष्णु जी भी अलग हैं। वे भी ईश्वर हैं। शिव जी अलग हैं। वे भी ईश्वर हैं। दुर्गा जी अलग हैं। वे भी ईश्वर हैं और अल्लाह भी अलग है। वह भी ईश्वर है। अर्थात् बहुदेव वादियों का जो विचार है वह मेरे विचार से मेल नहीं खाता, क्योंकि जिस तत्त्व को मैं एक समझता हूँ। वह अद्वितीय है। उसी को संसारी लोग अनेक बताते हैं परन्तु ऐसी बात नहीं है।

## परम तत्त्व निदर्शन प्रकरण

**जाके मुनिवर तप करैं, वेद थके गुण गाय ॥**
**सोई देउं सिखापना, कोइ नहिं पतिआय ॥१२३॥**

**शब्दार्थ**—जाके-जिसका। तप-तपश्चर्या, उपासना। सिखापना-शिक्षा, बताना, उपदेश। पतिआय-विश्वास।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जिस तत्त्व का मैंने अनुभव किया है जो परोक्ष में सत्य है। उस पर लोग विश्वास नहीं करते। दो चार की रट लगाते हैं परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि जो बात प्रथम के मनीषियों के मुख से निकली है वही बात आप लोगों से कह रहा हूँ।

**मूलार्थ**—जिस तत्त्व को जिस वस्तु की प्राप्ति के लिये श्रेष्ठ मुनिजन तपश्चर्या में रत रहते हैं। जिस तत्त्व का वेद गण गुणानुवाद गाते-गाते थक जाते हैं। उसी परमतत्त्व का मैं भी उपदेश करता हूँ। लोगों को शिक्षा देता हूँ। लेकिन ये संसार के अज्ञानी मनुष्य मेरी बात पर विश्वास नहीं करते। तात्पर्य यह कि जो तत्त्वोपदेश पुरातन से चला आ रहा है। जिसके बारे में वेद-शास्त्र व्याख्या करते आ रहे हैं। जो सभी सयाने लोगों का अनुभव है। वही अनुभव उसी परमतत्त्व के विषय में मैं भी लोगों को सीख देता हूँ परन्तु मुझ कबीर की बात पर लोग विश्वास इसलिए नहीं करते कि प्रथम तो मैं ब्राह्मण नहीं हूँ इसलिये इस प्रकार की भावना है। दूसरे मैं भाषा में कहता हूँ। जिस भाषा का पंडित अनादर करता है और संस्कृत को महत्त्व देता है। पंडित की बात पर लोग विश्वास करते हैं। क्योंकि वह संस्कृत के माध्यम से लोगों को समझाता है और संस्कृत का बहुत बड़ा महत्त्व बताया जा चुका है।

**एक ते अनंत भौ, अनंत एक होय आया।**
**परचै भया जब एक ते, (तब) अनंतौ एकै माहि समाया ॥१२४॥**

**शब्दार्थ**—एक-एक ईश्वर, ब्रह्म तत्त्व। अनन्त-सीमातीत, अनेक। होय-होकर। परचै-प्राप्ति, जानकारी। माहि-में।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जिस तत्त्व को पूर्व के मनीषी लोग और वेद शास्त्र गान किये हैं उसी तत्त्व का मैं भी कहता हूँ। अब कहा जा रहा है कि वास्तव में वह तत्त्व एक ही है। उसमें द्वैत का भाव नहीं है।

**मूलार्थ**—'एकोऽहम् बहुस्याम प्रजायते" वह परमतत्त्व परम पुरुष सर्वात्मा राम एक होते हुए भी उपाधियों से अनेक भासता है परन्तु उपाधियों को हटा दीजिये तो वह एक ही हो जाता है उसमें द्वैत का भाव नहीं रहता। जिस अनुभूति कर्ता को, जिस साधक को यह जानने में आ जाता है कि घड़े अनेक हैं। आकाश एक है परन्तु आकाश का

चन्द्रमा घड़े में अनेक रूप भासता है परन्तु चन्द्रमा है एक उपाधि दोष से अनेक दीखता है। जब सब घड़ों को हटा दीजिए तब अनन्त चन्द्रमा एक घट में एक ही दीखता है। अर्थात् अनेक एक में समा जाता है। इसी प्रकार से जीवात्मा एक है। शरीर भेद से अनेक होकर उत्पन्न होता है परन्तु यह तत्त्व दृष्टि से सब में एक ही दीखता है। जब यह चिन्तन करता है कि मैं एक हूँ। तब इस जीवात्मा की अन्तर्दृष्टि में एक ही भासने लगता है और अनेकत्व की भावना एक में समाविष्ट हो जाती है। इसीलिए अनेक होते हुए भी एक है। एक होते हुये भी अनेक हैं। केवल अज्ञान में अनेक की सिद्धि होती है। ज्ञान होने पर सब समाप्त हो जाता है।

**एक सबद गुरुदेव का, ताका अनन्त विचार।**
**थाके मुनिजन पंडिता, वेद न पावै पार ॥१२५॥**

**शब्दार्थ**—सबद–परमात्म तत्त्व, आत्म विषयक। ताका–उसका। पण्डिता–पंडित, शास्त्रज्ञ। स्त्री–पंडिता-पढ़ी लिखी स्त्री पंडिताइन।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि भ्रान्ति वश और अज्ञानता के कारण परमतत्त्व अनेक रूपों में भासता है, परन्तु वह एक है। नीचे कहा जा रहा है कि मेरे गुरु रामानन्द जी का भी यही अभिमत है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरुदेव कहते हैं कि मेरे गुरुदेव स्वामी रामानन्द जी का एक शब्द है। जिसको 'प्रणव' कहा जाय, ओंकार कहा जाय, जिसको ब्रह्म कहा जाय, जिसको परमतत्त्व कहा जाय, वह एक ही है और उस परमतत्त्व का अनन्त विचार है। उस पर अनेक ऋषि-मुनियों ने अनेक प्रकार से विचार किया है और अनेक सिद्धान्त खड़ा किया है और विचार करते-करते मुनिजन, ऋषिजन, वेदज्ञ पंडितजन हार गये एवं थक गये और जो वेद ज्ञान का भंडार माना जाता है जिसका अर्थ ही ज्ञान होता है। वह भी उस परमतत्त्व का गुणानुवाद करते-करते थक गया। पार नहीं पाया। तात्पर्य यह कि जो अनन्त है, जो सीमातीत है उस परमतत्त्व को मुनिजन और पंडितजन कैसे जान सकते हैं ? कैसे वह यह कह सकते हैं कि इतना ही है जब की वेद एक सीमा वाले हैं। एक परिधि में हैं। वेद का ज्ञान सीमित है। इसलिए उस असीमित सत्ता को वेद सांगोपांग कैसे बखान कर सकते हैं क्योंकि वेद में भी कहा गया है कि—"तृणि पदा निहिता गुहास्य" अर्थात् उसके चार पाद में चार भाग में तीन भाग विचार और दृष्टि से ओझल है, गुप्त है। एक भाग

में ही सारी सृष्टि का विस्तार है। समस्त ब्रह्माण्ड एक ही पाद में अवस्थित है। इसलिए वेद भी एक ही पाद की व्याख्या करते हैं। तीन भाग उसके वेद से भी परे हैं।

**राउर के पिछवारे, गावैं चारिउ सैन।**
**जीउ परा बहु लूट में, ना कछु लेन न देन ॥१२६॥**

**सम्बन्ध**—राउर–सर्व० प्र० राय + उर, आर। अ०–जीवात्मा, आत्म तत्त्व, परमब्रह्म। पिछवारे–पृष्ठभाग में, पीछे से। चारिउ–चार वेद। सैन–संकेत।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि गुरुदेव का एक ही शब्द है जिसमें अनेक सिद्धान्त भरे पड़े हैं। नीचे कहा जा रहा है कि चार वेद भी उसके पीछे ही रहते हैं।

**मूलार्थ**—गुरुदेव कबीर कहते हैं कि 'राउर' कहिये जो सबके ऊपर शासन करता है, जो सबका स्वामी है, जो सबकी आत्मा है। उस परब्रह्म के पृष्ठ भाग में चारों वेद यह संकेत करते हैं और गाकर बतलाते हैं कि यह वही परमतत्त्व है जो सबके हृदय में रहता है। जो सबके हृदय गुफा में छिपा हुआ है। उसी को पहचानो और उसी की प्राप्ति करो परन्तु यह अज्ञानी जीव उसको पहचान नहीं पा रहा है। जिसको वेद भी गाकर समझाते हैं, संकेत करते हैं। क्योंकि यह जीव बहुत लूट में पड़ गया है। बहुतों के फेर में पड़ गया है। मन अपनी ओर खींचता है। बुद्धि अपनी ओर खींचती है। चित्त अपनी ओर खींचता है। अहंकार अपनी ओर लूटता है। पंच ज्ञानेन्द्रियों के विषय अपने-अपने विषय के लिए खींचते हैं। संसार के बन्धु-बान्धव अपने-अपने स्वार्थ के लिए लूटते हैं। पुत्र-कलत्रादि साथी, संगी सब अपने-अपने स्वार्थ के लिए लूटते हैं। इस मूर्ख मनुष्य की इस पामर जीव की चारों ओर से लूट हो रही है। जबकि इसका कुछ किसी से लेना देना नहीं है न किसी से इसका स्वार्थ है। क्योंकि यह दिव्यात्मा है एवं ब्रह्म सत्ता है। स्वयं सत्य है। उपर्युक्त लूटने वालों से भिन्न है। सबका द्रष्टा है परन्तु अपनी अज्ञानता के कारण चारों तरफ से लूटा जा रहा है और अपने मूलतत्त्व को पहचान नहीं पा रहा है।

**चउगोरा के देखते, व्याधा भागा जाय।**
**अचरज एक देखो हो संतो, मुआ कालहिं खाय ॥१२७॥**

**शब्दार्थ**—चउगोरा–वि० हि० चउ + गोड़–पैर, चार पैर वाला सं० पु० खरहा, खरगोश, चौपाया, पशु, जीवात्मा, तत्त्वज्ञानी, साधन चतुष्टय । व्याधा–आखेटक, मृत्यु, काल । अजरज–आश्चर्य । मुआ–मृत्यु, इन्द्रियजित । कालहि–मृत्यु को ।

**सम्बन्ध**—ऊपर की साखी में कहा गया है कि परमतत्त्व के लिए वेद इशारा करते हैं कि उसकी प्राप्ति करो परन्तु संसार के सुख में फँसा हुआ प्राणी इन्द्रियों के वशीभूत मनुष्य वेद की भी बात को नहीं माना अब नीचे कहा जा रहा है कि जो साधन चतुष्टय आदि करके उस परमतत्त्व की प्राप्ति कर लिये हैं । उनको मृत्यु के मुख में नहीं जाना है ।

**मूलार्थ**—गुरुदेव कबीर कहते हैं कि हे सन्त जन ! एक विचित्र बात देखो । जो सबको विस्मय करने वाली है । मैं प्रतिदिन देखता था कि चार पैर वाला पशु व खरगोश व्याधा को देखकर भागते थे परन्तु आज देख रहा हूँ कि खरगोश को ही देखकर व्याधा भागा जा रहा है और दूसरा आश्चर्य यह भी है कि मृत व्यक्ति मृत्यु का ही भक्षण कर रहा है । तात्पर्य यह कि यह चार पाद वाला जो सबमें व्यापक है, जो परम तत्त्व है । जो जीव भाव को प्राप्त हुआ है । वह अपने अज्ञान के कारण मृत्यु के द्वारा मारा जाता था परन्तु अब उसे अपने स्वरूप का भान हो गया है कि सबसे बड़ा शक्तिमान मैं ही हूँ । मेरा नाश नहीं होता हैं । 'शोकं तरति आत्मवित' के अनुसार मैं शोक वाला नहीं हूँ । यह जीवात्मा जब अपनी पहचान करने लगा तो भय से दूर हो गया । उस ज्ञानी पुरुष को देखकर व्याधा रूपी मृत्यु पलायित हो गयी । यही आश्चर्य है कि यह नित्य मृत्यु का ग्रास बनता था परन्तु अब स्वयं मृत्यु को खा रहा है । 'मुआ' में श्लेष है । मुआ का तात्पर्य होता है जिसकी इन्द्रियाँ वश में हो गयी हों । विपरीत दिशा में न जाती हों । आत्मा की ओर उन्मुख हो गयी हों । चेष्टा से रहित हो गयी हो । वही मुआ है । क्योंकि उसमें अब किसी प्रकार की चेष्टा नहीं रह गयी है । उस चेष्टा हीन ब्रह्म ज्ञानी को देखकर जीवित मृत्यु भी पलायित हो गयी । अर्थात् वह ब्रह्म ज्ञानी मृत्यु को चट कर गया । मनुष्य तभी तक जीवित रहता है । जब तक उसकी इन्द्रियाँ जीवित रहती हैं । जब तक उसका मन वश में नहीं रहता है मरने जीने वाली इन्द्रियाँ हैं । आत्मा न कभी मरता है, न जीता है । वह सदा सर्वदा एक रस रहने वाला है । यहाँ इन्द्रियों के मरने से ही मुआ माना गया है । अब इन्द्रियाँ उसके वश में हो गयी हैं इसलिए सारा संसार उस के वश में हो गया है । सबको वह अपने में आत्मसात

कर लिया है। अपने से कुछ भिन्न रहा ही नहीं। 'जित देखूँ जित तू' के अनुसार मरना-जीना, खाना-पीना द्वैत में ही होता है। जब वह अपने को एक अनुभव कर लिया तो एक हो गया। मरना-जीना समाप्त हो गया। सारी सृष्टि उसी में समाविष्ट हो गयी।

## मनतस्कर प्रकरण

**तीन लोक चोरी भई, सभ का सरबस लीन्ह।**
**बिना मूंड का चोरवा, परा न काहू चीन्ह ॥१२८॥**

**शब्दार्थ**—चोरवा–चोर, मन। मूंड–रूपरेखा, सिर।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जिसको परमतत्त्व की प्राप्ति हो गयी। वह मृत्यु को भक्षण कर लिया और जन्म मरण से परे हो गया परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि जो लोग परमतत्त्व की प्राप्ति नहीं कर सके हैं, जो परमसत्ता को पहचान नहीं पाये हैं। उनका सर्वस्व हरण कर लिया गया।

**मूलार्थ**—लोक में किसी चोर के द्वारा, तस्करों के द्वारा किसी एक घर की चोरी होती है। किसी एक गांव की चोरी होती है परन्तु यहाँ सद्गुरु कहते हैं कि तीनों लोकों की चोरी हो गयी है। यह बड़ी विचित्र बात है। मानव का सर्वस्व हरण हो गया है और वह चोर भी बड़ा विचित्र है। जिसके न सिर हैं, न पैर हैं अर्थात् धड़, ध्वज कुछ भी नहीं है। बिना शरीर का है। 'चोरवा' कहिये चोर मन उसको कोई पहचान नहीं पाया। वह सारे संसार को चुरा लिया। तात्पर्य यह है कि मन रूपी तस्कर अखिल ब्रह्माण्ड को जहाँ तक देहधारी जीव हैं, जहाँ तक बस्तियाँ बसायी गयी हैं। वहाँ तक के लोगों को चुरा लिया है। सभी का सत्य, धर्म, क्षमा, दया, सन्तोष, विवेक मन के द्वारा हरण हो गया है। वह मन बिना रूप रेखा का चोर है। इसलिए किसी को दिखाई नहीं पड़ा। न उसको कोई पहचान पाया। जो लोग उस मन के वश में हैं। वह सब चुराये गये हैं। जो मन को वश में किये हैं, वे सब उससे परे हैं।

**चक्की चलती देखिके, (मेरे) नैनन आया रोय।**
**दुई पट भीतर आय के, साबुत गया न कोय ॥१२९॥**

**शब्दार्थ**—चक्की–आटा पीसने वाली यन्त्र, माया और अविद्या काम, क्रोध, लोभ, मोह की चक्की। मेरे–मुझ कबीर के। नैनन–आँखों में। आया–आई। रोय–रुलाई। दुई पट–दो पटरी, तल्ली, उपल्ली, माया, अविद्या। साबुत–साबित, पूर्णरूप, ज्यों का त्यों।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा है कि तीनों लोक के लोग चुरा लिये गये हैं। उनके स्वत्व का अपहरण हो गया है अब कहा जा रहा है कि चोरी होने के कारण सभी लोग निर्धन हो गये हैं। किसी कुछ पास में है नहीं। इसलिए अनेक प्रकार के दुःखों की चक्की में पीसे जा रहे हैं।

**मूलार्थ**—सद्गुरुदेव कहते हैं कि हे सन्तजन! हे भक्तजन! इस संसार में माया, अविद्या की चक्की, लोभ, मोह की चक्की देखकर मुझे रुलाई आ रही है। मेरे नयनों में अविरल अश्रुधारा वह रही है। उक्त चक्की को देखकर मैं बहुत दुःखी हूँ, चिन्तित हूँ कि इस लोभ, मोह के भीतर माया और अविद्या के भीतर पड़ने पर एक भी जीव साबित ज्यों का त्यों बचकर नहीं गया। सभी का विनाश हो गया। सभी पिस गये। क्योंकि लोभ, मोह की चक्की बड़ी दुखद है, सबको नाश करने वाली है। इसमें पड़कर सभी लोग पीसे जा रहे हैं। यह देखकर मेरा मन अशान्त हो गया है कि किस प्रकार से लोगों को समझाऊँ कि उक्त चक्की से बचाया जाय। न पिसें परन्तु मुझ कबीर की बात कोई मानने वाला नहीं है।

**आशय**—माया के द्वारा स्वर्ग और नरक के बीच में सारा संसार पीसा जा रहा है। स्वर्ग और नरक वास्तविक में दो चक्की हैं। पाप-पुण्य ही दो चक्की है। जिसके परिणाम स्वर्ग नरक होते हैं। सद्गुरुदेव का कहना है कि यह जीव पाप कर्मों के द्वारा दुःख भोगता है और पुण्य कर्मों के द्वारा सुख भोगता है। जब तक यह पाप-पुण्य के अन्दर पीसा जाता रहेगा तब तक इसको शान्ति नहीं है, न यह सुख का भागी हो सकता है। मुझे इस चेतन आत्मा को देखकर रुलाई आती है कि सब पर शासन करने वाला होते हुए भी अपनी इन्द्रियों के द्वारा शासित हो रहा है। भला किस प्रकार से इसका बचाव किया जाय। इस समय तो यह इन्द्रियों के वश में पड़ा हुआ है। उनको अपना हितैषी मान बैठा है। जिसके कारण हितकर बातें उसको अच्छी नहीं लगती हैं।

**चार चोर चोरी चले, पगु पनही उतार।**
**चारिउ दर थूनी हनी, पंडित करहु विचार ॥१३०॥**

**शब्दार्थ**—चोर–चोरी करने वाले। पगु–पैर। पनही–जूता, पदत्राण, विवेक, वैराग्य, दया, क्षमा। चारिउ–चारो, दया, क्षमा, सत्य, धैर्य। दर–स्थान। थूनी–स्तम्भ, बड़ा खूटा। हनी–गाड़ा। पंडित–बुद्धिमान।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि पाप-पुण्य रूपी चक्की में सभी लोग पीसे जा रहे हैं। क्योंकि माया और अविद्या का बड़ा जोर है। यही पीसने वाली दो स्त्रियाँ हैं। अब नीचे कहा जा रहा है कि इस जोव के और भी बहुत से ग्राहक हैं जिसको क्रय करते रहते हैं।

**मूलार्थ**—किसी ग्राम से चार चोर चोरी करने हेतु चल पड़े। पैर की चलने की ध्वनि कोई सुन न सके। इसलिए पैर से पदत्राण भी उतार दिये और जहाँ चोरी करने गये थे। उस भवन में चार द्वार थे। चारों का पट बन्दकर ऊपर से चार कील एवं कपाट गाड़ दिये व लगा दिये। मोटे खूँटे गाड़ दिये। बाहर से कोई किवाड़ को खोल न सके। इसी प्रकार से सद्‌गुरुदेव कहते हैं कि काम, क्रोध, लोभ, मोह ये चारों बड़े चतुर चोर हैं। जब ये अन्तःकरण के दया, क्षमा, सत्य, धैर्य को लूटने के लिए चलते हैं तो पनही स्वरूप विवेक, वैराग्य को नष्ट कर देते हैं। उतार कर रख देते हैं अर्थात् जब काम, क्रोध का उद्‌वेग होता है तब वहाँ से वैराग्य लापता हो जाता है, अर्न्तध्यान हो जाता है। दया, क्षमा, सत्य, धैर्य के स्थान पर खूंटी स्वरूपी मोह, माया का आवरण हो जाता है इसलिए आत्मा को कुछ पता नहीं लगता क्योंकि उसका विवेक गायब हो जाता है। वैराग्य चला जाता है। अन्तःकरण के चारों साधन चोरों से मिल जाते हैं इसलिए शरीर रूपी गढ़ में मनमाना चोरी होती है। समस्त दैवी सम्पदा लूटी जाती है। गुरुदेव कबीर विवेकी पंडितों से कहते हैं कि हे पण्डितजन ! उपर्युक्त विषय पर विचार करें कि चोरी कैसे बन्द होगी, चोर कैसे पकड़े जायेंगे ? दैवो सम्पत्ति की रक्षा कैसे होगी ? जिसके द्वारा आत्मा की रक्षा होतो है। जिन सद्‌गुणों से आत्म-ज्ञान होता है वे आत्म धन का काम आदि चोरों के द्वारा हरण हो रहा है। उनसे बचाने के लिए कुछ उपाय सोचिये और विवेक वैराग्य को जगाइये। उनको भागने मत दीजिए। ब्रह्मचर्य का पालन करिये। कामनाओं को मारिये। लोभ पर अंकुश लगाईये। क्रोध को जोतिये। तृष्णा को परास्त कीजिये। तभी आपकी भलाई हो सकती है। तभी समाज का उद्धार हो सकता है। अन्यथा कोई उपाय नहीं है।

## उत्तम जिज्ञासु प्रकरण

**बलिहारी वहि दूध की, जामें निकले घीउ।**
**आधी साखी कबीर की, चारि वेद का जीउ ॥१३१॥**

**शब्दार्थ**—बलिहारी–प्रशंसा, धन्यवाद, बड़ाई। वहि–उस। दूध–ज्ञान और मानव तन, सद्गुरु की। जामें–जिसमें। घीउ–घीव, मूल तत्त्व, आत्मज्ञान। आधी–अर्ध। साखी–दोहा। जीउ–सार तत्त्व।

**सम्बन्ध**—इसके पहले कहा गया है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह ये चार चोर चोरी करने के लिये निकले तथा समस्त संसार को लूट-लूट कर अपना घर भर दिये अब नीचे कहा जा रहा है कि उस पुरुष की मैं महिमा गा रहा हूँ। जो इन उपर्युक्त चोरों से सावधान होकर बच गया हो व बच जाय।

**मूलार्थ**—संसार में वही व्यक्ति प्रशंसनीय होता है। जो कोई महान कार्य करता है और अपने संयम द्वारा भीतर के शत्रुओं पर विजय पा लेता है। सद्गुरुदेव कहते हैं कि उस मानव तन की प्रशंसा करता हूँ जिसने घृत स्वरूप आत्मज्ञान को प्राप्त कर लिया है। अर्थात् जिस दूध रूपी मानव में प्रभु का प्रकाश हो गया है। अन्तःपुर में उजाला हो गया परमात्म तत्त्व से परिपूर्ण हो गया है वह प्रशंसनीय है। जिसने भवसागर को पार कर लिया है क्योंकि मुझ कबीर के आधे दोहे में चारों वेद का सारतत्त्व भरा पड़ा है। उदाहरण स्वरूप 'यह तत्त्व से वह तत्त्व है' इत्यादि प्रकार की अनेक अर्द्धालियाँ भरी पड़ी हैं। जिसमें समस्त शास्त्रों के सार-भूत आत्मतत्त्व को व्यक्त किया गया है। जिनके अनुपालन से मानव भयावह भवसागर को पार कर सकता है।

**बलिहारी तेहि पुरख की, जो परचित परखनिहार।**
**सांई दीन्ही खांड को, खारी बुझै गंवार ॥१३२॥**

**शब्दार्थ**—सांई–स्वामी, ईश्वर, गुरु। दीन्ही–दिया। खांड–शक्कर, चीनी। खारी–एक प्रकार का नमक जो कृषि में पहले छोड़ा जाता था रोगी पशुओं को भी खिलाया जाता था, खार पदार्थ। बुझै–समझे। गंवार–मूर्ख।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मेरा आधा दोहा चार वेदों का जीव है। अर्थात् मेरी आधी साखी के बिना वेद निष्प्राण है। आधी साखी क्या है? आत्मा है, ब्रह्म तत्त्व है जिसके बिना वेद में कुछ भी नहीं है। इसलिए मेरी आधी साखी कहिये आत्मा का अन्वेषण करना चाहिए। अब कहा जा रहा है कि वह जिज्ञासु धन्यवाद का पात्र है जो उस आधी साखी से परिचित है। जिसने आत्मा को जान लिया है जो परमात्म तत्त्व में डूब गया है वही वास्तविक पुरुष है।

**मूलार्थ**—किसी की प्रशंसा की जाती है और धन्यवाद दिया जाता है। जबकि वह कोई महान कार्य किया हो और बहुत बड़ा पुरुषार्थ करता है। उसी की लोक में बड़ाई होती है उसी का लोग अनुसरण करते हैं। यहाँ पर सद्गुरु कबीर का कहना है कि मैं कबीर उसी को धन्यवाद देता हूँ जो चार वेदों के जीव स्वरूप आत्मा से परिचय कर लिया है। जिसने सत्य और असत्य का परख कर लिया है। क्या सत्य है ? क्या असत्य है ? इसका निरीक्षण जिसने किया है उसी पुरुष की बलिहारी होती है। अन्य जो अपरिचित पुरुष हैं जो मूल तत्त्व से वंचित हैं जिन्हें आत्म-अनात्म का ज्ञान नहीं है। उनको लोक में कभी भी प्रशस्ति नहीं सुनी गयी है क्योंकि सांई रूपी सद्गुरु ने खांड रूपी आत्मतत्त्व को अनधिकारी को दिया। परीक्षण करने के लिए दिया कि शायद यह भी परमतत्त्व से परिचित हो जाय परन्तु वह अज्ञानी पुरुष खांड रूपी आत्मा को खारी-नमक समझने लगा उस मूर्ख-गंवार को सत्य का ज्ञान नहीं हो सका वह खारी स्वरूप संसार को ही अपनाये रहा तात्पर्य यह कि जैसे किसी को कोई दयालु पुरुष जल पीने के लिये शक्कर देंवे। जो कभी शक्कर देखा नहीं, कभी खाया नहीं और रात-दिन खारी को खाया है, खारी को देखा है। दोनों एक रूप होने के कारण गंवार ने समझा कि यह भी खारी है। उसको कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया ज्यों का त्यों धर दिया। इसी प्रकार सन्त महात्मा दया से द्रवीभूत होकर विषयी पुरुषों को खांड रूपी अमृत तत्त्व का उपदेश दिये परन्तु जो आत्मतत्त्व की गति नहीं जानता है कभी आत्म प्रदेश में नहीं पहुँचा है। वह मूर्ख मानव उस आत्मतत्त्व को खारी स्वरूप विषय वासना ही समझ लिया। इसलिए अनधिकारी को ज्ञान देना निरर्थक है।

**टिप्पणी**—साखी संख्या एक सौ बत्तीस के द्वितीय पंक्ति में 'सांई' शब्द है। जो 'बीजक' की पाण्डुलिपि 'क' प्रति में और बीजक की पाण्डुलिपि 'ख' प्रति में और बीजक की पाण्डुलिपि 'ग' प्रति में 'सांई' शब्द है और अन्य छपी पोथियों में प्रायः सभी में 'साई' शब्द है जो अर्थहीन है, प्रसंग के अनुसार उसका अर्थ भी उत्तम नहीं है और 'साई' पाठ प्रामाणिक भी नहीं है जिसका अन्धानुकरण सभी ने किया है।

**विख के बिरवे घर किया, रहा सरप लपटाय।**
**ताते जिअरहिं डर भया, जागत रयनि बिहाय ॥१३३॥**

**शब्दार्थ**—विख–विष, जहर, तृष्णा, कामना। बिरवै–वृक्ष, शरीर।

सरप–सर्प क्रोध। ताते–इसलिए। जियरहिं–जीव को। भया–हुआ। रयनि–रात्रि। विहाय–त्याग। दे० विहानी, बिरह, रस निधि, व्यतीत।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि किसी मूर्ख को कितना भी समझाया जाय, कितनो भी अच्छी बात कही जाय परन्तु वह अज्ञानवश उसको महत्त्व नहीं देता है और नीचे कहा जा रहा है कि उस अज्ञ का निवास भी काल के घर में रहता है। जिसके कारण बार-बार जन्मते-मरते रहता है।

**मूलार्थ**—बड़ी विचित्र बात यह है कि अज्ञानी मनुष्य बिना सोचे समझे विष के वृक्ष के नीचे घर बनाता है। एक तो वह विष का वृक्ष है दूसरे उसमें सर्प लपटाये हुए हैं। पहले तो वह देखा नहीं, समझा नहीं। जब कुछ समझ लिया कि यह विष का वृक्ष है और ऊपर से सर्प भी लिपटे हुए हैं। यही मेरा घर है तो उसके जी में बड़ा डर उत्पन्न हो गया। अब मारे भय के सर्प के डर से जागते हुए रात्रि बिताया व बीताता है। इसी प्रकार से अज्ञ मनुष्य का जो शरीर है वह पाप-पुण्य से उत्पन्न हुआ है और पाप-पुण्य दोनों को विष ही मानना चाहिए क्योंकि दोनों में सुख नहीं होता है। उस पर भी कामना रूपी वृक्ष शरीर में लिपटा हुआ है। जो मनुष्यों को बार-बार जन्म-मरण देते रहता है परन्तु जब सन्त सद्गुरु के संगति से विष वृक्ष रूपी शरीर का और उसमें लिपटी हुई कामना का ज्ञान हुआ तो उसमें निवास करने वाला जीवात्मा जो अब जिज्ञासु बन चुका है। मारे डर के भयभीत हो गया। इसलिए अब गुरु कृपा से मोह रूपी रात्रि में अर्थात् संसार में सावधान होकर समय को व्यतीत करने लगा और भय निवारण के लिए निष्काम कर्म में प्रवृत्त हो गया और सन्त सद्गुरु की शरण में चला गया।

**जो घर है सरप का, सो घर साध न होय।**
**सकल संप्रदा ले गया, विसहर लागा सोय ॥१३४॥**

**शब्दार्थ**—घर–निवास, शरीर। सरप–सर्प, कामना। सो–वह। साध–साधन, साधु। संप्रदा–सम्पत्ति, दैवीगुण, दया, क्षमा, मृदुलता, विवेक, विचार इत्यादि। विसहर–विषधर, सर्प, कामना। लागा–लगकर, साथ में।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जब मनुष्य को सत्य-असत्य की जानकारी हो जाती है। शत्रु और मित्र का ज्ञान हो जाता है। तब वह

सावधान हो जाता है। नीचे कहा जा रहा है कि जो उक्त ज्ञान से विहीन हैं, वह कभी सुख शान्ति से नहीं रह सकता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि जिसके घर में सर्प का निवास हो भला उस घर में बैठकर कोई साधना कर सकता है? रात्रि का समय हो, सर्प का भय लगा हो। कोई चाहे बैठकर की हम राम-राम कहें। यह बड़ा कठिन काम है। सर्प के भय से मनुष्य घर छोड़कर भाग जाता है। इसी बीच में चोरों को ज्ञात होता है कि इस घर में कोई नहीं है। वे सभी सम्पत्ति को चुरा ले जाते हैं और वह मनुष्य सर्प के साथ गला में लगाकर सो जाता है। तात्पर्य यह है कि जिसके घर रूपी शरीर में सर्प-रूपी कामना घर कर लिया है। जो विषय वासना का आखेट हो चुका है। जिसको संसार का रस भीन गया है। अब उस मनुष्य के शरीर से साधना और भजन होना दुर्लभ है। क्योंकि कामना रूपी तस्कर उसकी सारी दैवी सम्पत्ति विवेक, विचार, ज्ञान, वैराग्य को चुरा ले गये, उठा ले गये। क्योंकि कामना रूपी विषधर को वह गले लगाकर सोये रहा अर्थात् असावधान रहा। असावधानी में जीवन का अन्त हो गया और हाथ कुछ लगा भी नहीं। इसलिए जाते समय हाथ डुलाते चला गया।

## वास्तविक उपदेश प्रकरण

**घुघुंची भर के बोइये, उपजे पसेरी आठ।**
**डेरा परा काल का, सांझ सकारे जात ॥१३५॥**

**शब्दार्थ**—घुघुंची–गुंजा, एक प्रकार के छोटे-छोटे लाल व सफेद बीज फलता है। इनका सारा अंग लाल व सफेद होता है। केवल मुँह थोड़ा काला होता है। पसेरी–पंच सेरी। आठ–आठ गुणा, अष्ट गुणा। डेरा–निवास, तम्बू। परा–पड़ा। काल–मृत्यु। सांझ–सन्ध्या। सकारे–प्रातः।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जिसके घर में जिसके शरीर में अनेक प्रकार की कामना वसी हुई है। वह कभी सुख से नहीं रह सकता। उसके सभी प्रकार के सद्गुण नष्ट हो जाते हैं। अब नीचे कहा जा रहा है कि जो वहुत सोच-समझकर, सद्गुरु के द्वारा जान-बूझकर थोड़ा भी शुद्ध निष्काम कर्म करते हैं। सच्चे हृदय से थोड़ी भी भक्ति करते हैं। उसमें वहुत बढ़ोत्तरी होती जाती है।

**मूलार्थ**—सद्गुरुदेव कहते हैं कि हे मनुष्यों! जो जिज्ञासु सन्त

सद्गुरु के द्वारा शुद्ध हृदय में गुञ्जा के बराबर भी सत्य का उपदेश ग्रहण कर लेता है तो वह साधक उसका बहुत बड़ा विस्तार कर लेता है। जिसके कारण वह संसार से तर जाता है परन्तु जो लोग बिना सोचे विचारे कर्म करते हैं। सद्गुरु से सम्पर्क नहीं करते उनके लिए काल भगवान ले जाने के लिए डेरा डाल रखा है और तम्बू गाड़ कर बैठा हुआ है और अज्ञ प्राणियों को पकड़कर प्रातः से सायं तक ले जाते रहता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि सोच-समझकर कोई भी कर्म करे। कोई भी रास्ता अपनायें। कुछ विद्वानों ने उक्त साखी का अर्थ वासना से किया है कि थोड़ी सी वासना मनुष्य के अन्दर होने से उसमें अष्टगुणा की वृद्धि करती है। जिसके कारण उसको पकड़ने के लिए यमराज का डेरा उसके घर पर पड़ा रहता है और ऐसे लोगों को काल धरते पकड़ते रहता है परन्तु 'घुघुंची' और 'उपजे पसेरी आठ' की बात सन्त सद्गुरु से जुड़ी लगती है। जिसके कारण उपर्युक्त अर्थ लिया गया है। दोनों अर्थ अपने-अपने स्थान पर समीचीन हैं परन्तु जिस पंक्ति का जो अर्थ है वही इस टीका में किया जा रहा है।

## वंचनीय उपदेश प्रकरण

**मन भर के बोइये, घुघुंची भर नहिं होय।**
**कहा हमार माने नहीं, अंतऊ चले विगोय ॥१३६॥**

**शब्दार्थ**—मन–आठ पसेरी का एक मन होता है। बोइये–बीजा-रोपण कीजिये, सकाम कर्म कीजिये। घुघुँची–गुँजा। अंतऊ–अन्तावस्था। विगोय–नष्ट।

**सम्बन्ध**—ऊपर सद्गुरु ने कहा कि थोड़ा भी सत्कर्म बहुत बड़ा फलीभूत होता है। जो सोच समझकर अपने हृदय में बोता है अर्थात् संजोय कर रखता है। नीचे कहा जा रहा है कि अज्ञ मनुष्य कितना भी जप, तप करे। कितना भी होम, यज्ञ करे। कितना भी तीर्थ-व्रत करे परन्तु अविधि के कारण उसको कोई फल नहीं मिलता।

**मूलार्थ**—सद्गुरु ने ऊपर कहा है कि थोड़ा भी उत्तम बीज अच्छे खेतों में बोइये तो आठ गुणा की वृद्धि होती है और जो बिना विचारे घुना-सड़ा कीड़ा-मकोड़ा लगे हुए एक मन के बीघा भी बीज बोइये तो जमता ही नहीं और घुघुंचो के समान थोड़ा भी उत्तम बीज बोइये तो काफी फल देता है। तात्पर्य यह है कि जो बिना सन्त सद्गुरु के बिना गुरुमुख

जाने बिना जो भावभक्ति में लगते हैं और बहुत बड़ा ताम-झाम दिखाते हैं। रात-दिन भक्तिभाव का अम्बार लगाये रहते हैं परन्तु विधि विहीन भक्ति किसी काम की नहीं होती है, न वह कोई फल देती है और मैं कहता हूँ कि सच्चे सन्त सद्गुरु से मिलकर कोई साधन-वाधन करो तो मेरी बात मानता नहीं है। मेरे सुझाव की ओर ध्यान नहीं देता है। इसलिए वृद्धावस्था आने पर नरक की तैयारी करके चला जाता है।

## सुसाधु सन्त लक्षण प्रकरण

**आपा तजै हरि भजै, नख सिख तजै विकार।**
**सभ जिवन ते निरबैर रहे, साधु मता है सार ॥१३७॥**

**शब्दार्थ**—आपा–अहंकार। नख सिख–पैर से सिर तक के दोष। छोटे से छोटे बड़े से बड़े। विकार–दोष।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अज्ञानी का कर्म बहुत भयानक होता है और जन्म-जन्म उसको दुःख देता है। सदैव काल भगवान उसको मारते पीटते रहते हैं। अब कहा जा रहा है कि जो मनुष्य सन्त सद्गुरु के द्वारा मंत्र उपदेश लेकर प्रभु की उपासना करता है। वही वास्तविक सन्त है।

**मूलार्थ**— संसार में आपा जो है जिसका दूसरा नाम अभिमान है वह कितना दुःख देता है। जिसके कारण बड़े-बड़े राजा, बड़े-बड़े शूर वीर नष्ट को प्राप्त हुए। आपा के चलते कोई यश नहीं मिला। सदैव अपयश के भागी बने रहे। इसलिए सद्गुरुदेव कहते हैं कि जो व्यक्ति अहंकार को त्यागकर श्री हरि का भजन करता है और छोटे से बड़े किसी भी प्रकार के अपराध को नहीं करता है। जो सभी विकारों का त्याग कर देता है और सभी प्राणियों से निरबैर रहता है। अहर्निश सत्कर्मों में लगा रहता है।

"समः शत्रौ च मित्रो च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥१२।१८॥"

के अनुसार जो सभी प्राणियों से निरबैर रहता है। तटस्थ भाव से सबके साथ बर्ताव रखता है। जिसमें किसी प्रकार का कलंक नहीं है, दोष नहीं है, वही साधु है, वही साधु का मत सार है। वही हरि के भजने वालों में से है।

**पखापखी के कारने, सभ जग रहा भुलान।**
**निरपख होय के हरि भजे, सोई सन्त सुजान ।।१३८।।**

**शब्दार्थ**—पखापखी-पक्षपात, पक्षपाती, पक्ष विपक्ष से मुक्त। निरपख-निरपक्ष। सोई-वही।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो पूर्णरूपेण हिंसा का त्याग किया है, अहिंसक हो गया है। वही साधु है और उसी का विचार सत्य है। नीचे कहा जा रहा है कि जो सभी प्रकार के पक्ष विपक्ष से भिन्न रहता है। वही उत्तम पुरुष है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि सारा संसार मोर तोर के पक्ष में और विपक्ष में भूला हुआ है। अपना व्यक्ति, अपना पुत्र, अपना अनुयायी कितनी बड़ी भी भूल करें। कितना बड़ा भी अपराध करें परन्तु उसके अपराधों पर ध्यान न देकर उसमें अपनत्व की भावना रखकर उलाहना आने पर भी उसका पक्ष ले लेता है और उलाहना दाता को उलटे डाटे यही पक्षपात है और दूसरा व्यक्ति कितना भी शुद्ध हो, कितना भी सत्य हो, कितना भी अच्छा हो, निर्दोष हो परन्तु उसमें दोष निकालना उसको अपराधी ठहराना यही सबसे बड़ा खतरनाक विचार है। इसी के कारण समस्त दुःख और अपयश मनुष्यों को झेलने पड़ते हैं। सारा संसार इसी पक्षपात में लगा हुआ है। सद्गुरुदेव पुनः कहते हैं जो बुराई रूप पक्षपात को त्यागकर निष्पक्ष हो जाते हैं और श्रद्धा के साथ भावना के साथ श्री हरि को भजते हैं वही सच्चे सन्त हैं, सुजान हैं क्योंकि उनमें अपना पराया नहीं होता है। वे सबके होते हैं। उनके सब हैं। इसलिए ऐसे सन्तों की सदा उपासना करनी चाहिए।

## अहंकारी पुरुष प्रकरण

**बड़े गये बड़ापने, रोम-रोम हंकार।**
**सद्गुरु के परचै बिना, चारिऊ बरन चमार।।१३९।।**

**शब्दार्थ**—रोम-रोम-बाल-बाल। चारिउ-चारों। बरन-वर्ण, जाति। चमार-चर्मकार।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो निष्पक्ष होकर प्रभु का सुमिरण भजन करता है। वही उत्तम सन्त है। नीचे कहा जा रहा है कि जो पक्ष पाती है और अपने को बहुत बड़ा न्याय कर्त्ता मानता है। वह भद्र पुरुष नहीं है।

**मूलार्थ**—संसार में कोई अपने को छोटा नहीं मानते। केवल प्रभु भक्त अपने को छोटा मानते हैं परन्तु अन्य लोग जो धनी-मानी हैं। पूँजीवादी हैं जो बहुत पढ़े-लिखे हैं। जो शरीर से हृष्ट-पुष्ट हैं, जो गोलबन्द हैं। जिनका बहुत बड़ा समाज है। ऐसे लोग अपने बड़प्पन के बड़ाई में चले गये। जो उपर्युक्त रूप से रोम-रोम में अहंकार से भरे हुए हैं। जो अपने समान दूसरे को नहीं समझते हैं। जिनको सद्गुरु से परिचय नहीं हुआ है। जो बिना सद्गुरु के परिचय के हैं। वे चारों वर्णों में चाहे ब्राह्मण हों, चाहे क्षत्रिय हों, चाहे वैश्य हों, चाहे शूद्र हों वे सबके सब आत्मज्ञान के बिना चर्मकार हैं। अर्थात् शूद्र हैं। अहंकारियों को नीच पुरुषों में गिनना चाहिए।

**माया तेजे का भया, (जो) मान तेजा नहि जाय।**
**जेहि माने मुनिवर ठगे, (सो) मान सभन को खाय ॥१४०॥**

**शब्दार्थ**—तेजे–त्यागे। भया–हुआ। तेजा–तजा, त्यागा। जेहि–जिस। माने–मान, सम्मान में। सभन–सभी।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि सद्गुरु के परिचय बिना चारों वरण के लोग निम्न श्रेणी के हैं क्योंकि उनमें अनेक प्रकार का अभिमान घर कर लिया है। नीचे कहा जा रहा है कि कुछ लोग देखावटी रूप से कहते हैं कि हमारे अन्दर अभिमान नहीं है। हम माया से परे हैं परन्तु यह सब कोरी बकवास है।

**मूलार्थ**—गुरुदेव कहते हैं कि माया के त्यागने से क्या हुआ ? यदि मोटी-मोटी माया, स्त्री, पुत्र, धन-जन पद का त्यागकर दिया गया तो इससे क्या हुआ ? क्योंकि जो सूक्ष्म माया के रूप हैं। सूक्ष्म मान-सम्मान की वासनायें हैं। हम बहुत बड़े साधु हैं। हम बहुत बड़े पंडित हैं, हम बहुत बड़े विद्वान हैं, हम बहुत बड़े गुणज्ञ हैं। इनके कारण जो मन में सम्मान की मान-मर्यादा की भावना लगी है। वह तो त्यागी नहीं जा सकी। जिस मान-बड़ाई के कारण बड़े-बड़े मुनीश्वर लोग, ऋषि लोग ठगा गये। जिन्हें माया धर के रगड़ दिया। उनकी कुछ रह नहीं गयी। क्योंकि यह मान-सम्मान जो है। इसी प्रकार से सभी को खा गया। सभी लोग उसके आखेट हुए। चाहे वे पंडित हों, चाहे वे मौलाना हों, चाहे वे गुरु हों, चाहे वे जगत् गुरु हों, जो लोग मान-सम्मान को लेकर गुरु से बड़े बनते हैं। गुरुद्वारे से बड़े बनते हैं। ऐसे लोगों का क्या कभी उद्धार हो सकता है ?

**माया के झग जग जरे, कनक कामिनी लाग ।**
**कहैं कबीर कस बांचि हो, रुई लपेटी आग ॥१४१॥**

**शब्दार्थ**—माया–प्रकृति। झग–झक, धुन, सनक, लहर, मौन, आँच। कनक–सोना, धतूरा। कामिनी–कमनीय, सुन्दर स्त्री। कस–कैसे। बांचिहो–बचोगे। रूई–कामना रूपी अग्नि।

**सम्बन्ध**—ऊपर की साखी में कहा गया है कि ऊपर के त्याग से कुछ नहीं होता है। अन्दर का त्याग होना चाहिए। नीचे कहा जा रहा है कि सूक्ष्म माया के रहते लोग सुखी नहीं हो सकते।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि माया की आँच से समस्त विश्व जल रहा है क्योंकि माया का जो असली रूप है वह कनक, कामिनी है, अस्तु मैं कबीर जहाँ देखता हूँ वहाँ तक सभी लोग इसी कनक और कामिनी स्त्रियों में ही पड़कर शिर कटा रहे हैं। एक इंच भूमि के कारण एक रुपये के कारण लोगों में कतल खून हो जाया करता है। जिसके पास अपार सम्पदा है वह कितना अनर्थ कर सकता है। सारे अनर्थों का कारण अर्थ है इसी सोना, चाँदी के लिए लोग लूटे जाते हैं। प्राण से वंचित कर दिये जाते हैं इसी प्रकार बड़े-बड़े राजे-महाराजे एवं सम्राटों के धन-जन के लिए लड़ाईयाँ होती रहती हैं और इसी धन के लिए परस्पर कट मर जाते हैं। कामिनी का मोह कम हानिकर नहीं है वह तो और बड़े-बड़े युद्ध करा चुकी है। राम रावण का युद्ध, कौरव पाण्डव का युद्ध, पद्मिनी के लिए अलाउद्दीन का युद्ध इत्यादि लड़ाईयाँ इतिहास के पन्नों पर अंकित हैं और इन लड़ाईयों के कितने भयंकर परिणाम हुए हैं। जिसको आज तक समाज भूल नहीं रहा है जिसके कारण बड़े-बड़े राष्ट्र जन-धन के साथ नष्ट हो गये। सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि इन कनक कामिनी रूपी माया की अग्नि से कैसे और किस प्रकार बचोगे क्योंकि जिस प्रकार से रूई शरीर में लपेट कर अग्नि धरा दी जाय तो कौन व्यक्ति बच सकता है? क्योंकि रूई बहुत दहनशील पदार्थ है धरते विलम्ब नहीं लगता है। इसी प्रकार रूई के समान कनक, कामिनी रूपी माया समस्त प्राणियों के देह में लिपटी हुई है और तृष्णा रूपी अग्नि सबके शरीर में माया लगा चुकी है। 'माया' 'मी' धातु से बनती है जिसका अर्थ छल, प्रपंच, कपट, खोट, धोखा होता है। भला कहो इन विकारों में समस्त जगत सना हुआ है की नहीं। सभी लोग उपर्युक्त दोषों से जल नहीं रहे हैं क्या? अर्थात् सभी लोग इन्हीं के पीछे दिवाने हुए हैं। जब तक

इनका त्याग नहीं होगा तब तक कोई बच नहीं सकता है। सब के सब मायाग्नि में जलकर मर जायेंगे इसलिए मन से माया का त्याग करो।

**माया जग सांपिनि भई, विख ले पयेठि पताल।**
**सभ जग फंदे फंदिया, चला कबीरु काछ ॥१४२॥**

**शब्दार्थ**—सांपिनि–सर्पिणी, तृष्णा। भई–हुई। विख–विष, जहर, कामना। पताल–बहुत दूर तक, शेष भगवान के निवास तक। फंदे–फंदा में। फंदिया–फंस गया। कबीरु–कबीर साहब। काछ–हटाकर, काट, त्यागकर।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि कनक, कामिनी रूपी अग्नि से सारा संसार तपायमान हो रहा है। उसकी आँच से सभी लोग झुलस रहे हैं अब नीचे कहा जा रहा है कि यह माया बड़ी विकराल है। भयंकर सर्पिणी के समान है जो अपने बाल-बच्चा को ही खा जाती है। इसी प्रकार से माया अपने पुत्र को एक-एक करके खा जाती है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे सन्त जन ! यह जो जगत की मोह, माया है। यह सर्पिणी के समान है समस्त भूत प्राणियों को खाने के लिए यह माया भयंकर विषधर हो गयी है और यह इसी मृत्यु लोक ही तक नहीं है। पाताल लोक तक विष लेकर मारने के लिए बैठी हुई है। भगवान शेषनाग भी इस माया से काँपते हैं। सारा संसार इसके फँदे में फँस गया है। धन से धरती तक, पुत्र से कलत्र तक, मान से सम्मान तक, पद से प्रतिष्ठा तक सब माया हो है। इससे कोई जीव बचा नहीं है। सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि इस विकराल सर्पिणी रूपी माया को देखकर मैं कबीर हटाकर, त्यागकर इससे किनारा हो गया। मैं कबीर कभी इसके वश में नहीं हुआ क्योंकि इसके छल-बल को मैं जान रहा हूँ। यह भयंकर सर्पिणी है। संसार को जना है (प्रकट किया) है। पुनः उसको अपना ग्रास बनाते रहती है परन्तु जो योगीजन हैं, जो सन्तजन हैं, जो आत्मज्ञजन हैं। इससे छटक कर निकल जाते हैं। यहाँ विशेषकर कामिनी प्रसंग चल रहा है। अधिक अर्थ यहाँ माया का सुन्दर स्त्री से ही है।

**सांप बिछू का मंत्र है, माहुरहु झारा जाय।**
**विकट नारि के पाले परे, काढ़ि करेजा खाय ॥१४३॥**

**शब्दार्थ**—सांप–सर्प। माहुरहु–विष का भी। झारा–उतारा, दूर। विकट–कठोर, कठिन, कर्कश। काढ़ि–निकालकर। करेजा–यकृत, जो

सीने के बाँयें भाग व बाजू में रहता है। अन्न पाचन क्रिया में इसका बड़ा योगदान रहता है, आत्मा।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि स्त्री रूपी माया से और पुरुष रूपी माया से स्त्री-पुरुष दोनों आवृत्त हैं दोनों-दोनोंके फँदे में हैं क्योंकि माया का जो छटा रूप है वह सुन्दरता है। सुन्दर स्त्री और सुन्दर पुरुष सब माया के रूप हैं। इसलिए दोनों एक दूसरे के छलने में, ठगने में दक्ष हैं। नीचे कहा जा रहा है कि प्राकृतिक विषैले जन्तुओं के काटने से उनके विष उतारने के लिए बहुत से मन्त्र हैं और बहुत सी औषधियाँ भी हैं परन्तु जो माया का डसा हुआ है जिसको सुन्दर कामिनी छू दी है। जिस कमनीय पुरुष ने स्त्री को छू दिया है। उन दोनों में कोई नहीं बचता है। उनके लिए संसार में कोई उपाय नहीं है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि सर्प काट लेता है तथा बिच्छू डंक मार देता है तो उसके लिए मंत्र शास्त्र में सावर मंत्रों से विष उतारने का विधान है। इसी प्रकार से अनेक प्रकार की औषधियाँ भी विष उतारने के लिए आयुर्वेद में लिखी गयी हैं। फिर कहते हैं कि यदि कोई जहर खा ले, माहुर खा ले तो उसके उतारने के लिए भी विधान है। बहुत से सावर मंत्र विष उतारने के लिए भी हैं परन्तु गुरुदेव महाराज कहते हैं कि जो पुरुष विकट नारी कर्कशा स्त्री के पाले पड जाय तो उस पुरुष के कलेजे को वह निकालकर खा जाती है। अर्थात् जिसके द्वारा अन्न पाचन होता है। उस वाम भाग के यकृत को निकाल कर खा जाती है। जिसके कारण पुरुष के जीवन का अन्त हो जाता है। अर्थात् यकृत के रूप में जो जीवात्मा है स्त्री कलह से, पुत्र कलह से शरीर छोड़कर अन्यत्र चला जाता है। इसलिए स्त्री-पुरुष को चाहिए कि एक दूसरे से सावधान रहें। अपने ब्रह्मचर्य का पालन करें और आत्मतत्त्व की प्राप्ति के लिए उपाय करें।

## कुसंग मोह माया प्रकरण

**तामस केरे तीन गुन, भौंर लेइ तहं बास।**
**एकै डारी तीन फल, भांटा ऊँख कपास ॥१४४॥**

**शब्दार्थ**—तामस–तमः, अन्धकार, तमगुण, तीनों गुणों में से एक। भौंर–भ्रमर, मन, जीवात्मा। बास–गन्ध, निवास। भांटा–बैगन। ऊंख–ईख। कपास–रूई का वृक्ष, रूई।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि विकट नारी के पाले पड़ने पर मनुष्य बच नहीं सकता है। इसी प्रकार से विकट पुरुष हो तो उससे स्त्री भी नहीं बच सकती। एक दूसरे का कलेजा खाने वाले हैं। क्योंकि तमोगुण के कारण ही लोगों में अन्धकार छाया रहता है। ज्ञान का अभाव रहता है। इसलिए एक दूसरे का प्राण घातक बने हुए हैं। अब नीचे कहा जा रहा है कि उक्त तामस की भी तीन अवस्थायें हैं।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे सन्तजन ! हे जिज्ञासु मुनिजन, महात्माजन। सारा संसार अधिकतर तमोगुण से आवृत्त है। जिसके कारण मानव में भेद बुद्धि बनी हुई है। क्योंकि तामस अज्ञान का द्योतक है। अन्धकार का चिह्न है नासमझी में ही मनुष्य अपने-पराये का ज्ञान रखता है। इसलिए कि तमोगुण से आवृत्त है। पुनः गुरुदेव कहते हैं कि इस तमगुण को तीन अवस्थाएँ होती हैं। प्रथम तो बिल्कुल तमाच्छादित जिसमें यत्किंचित भी सत्त्वगुण का लेश नहीं रहता है। दूसरी तामस की अवस्था 'रासपञ्चाध्यायी' के अनुसार कुछ सात्विक तामस लिये होता है और तीसरी तामस की अवस्था रजगुण और सतगुण से अधिक स्थित होने के कारण उसको श्रेष्ठ तामस कहते हैं। जो पूर्ण तामस के वशीभूत हैं ऐसे पुरुष संसार में बहुत कम हैं जिनको दिशा शून्य भी कही जाती है। जिस पुरुष को दिक् का ज्ञान नहीं है वह पूर्ण तामस से घिरा हुआ है। उसको कुछ दिखाई नहीं देता है और थोड़ा सा सद्गुण के लिये हुए सामान्य तामस में वे पुरुष सामान्य रीति से दूसरे के संकेत समझ जाते हैं और कुछ अपना खाने-पीने का कार्य कर लेते हैं। तामस की तीसरी अवस्था जो सात्विक् है वे पुरुष सामान्य रीति से उठकर अपने समाज के साथ गुजर-बसर कर लेते हैं, जीवन यापन कर लेते हैं परन्तु आश्चर्य यह है कि इस तामस के तीन गुण हैं १. पूर्ण तामस २. सामान्य तामस ३. सात्विक तामस। यहाँ मन रूपी भ्रमर घूम-फिर करके वास कर लेता है, निवास कर लेता है क्योंकि मन का बहाव नीचे की ओर होता है। तमगुण भी नीचा होता है। इसलिए नीची योनियाँ तमोगुण से आवृत्त हैं। उनमें भोग भावना ज्यादा है। सदा मन उधर ही उत्प्रेरित होते रहता है। पुनः कहते हैं कि तामस रूपी वृक्ष की एक डाली में ही ये तीन फल लगते हैं। भांटा जो पूर्ण तामस है। 'ईख जो रज तम से सना हुआ है। रजोगुण तामस बिल्कुल तमोगुण का न्यूनीकरण सतोगुण रूपी कपास तामस। इसी प्रकार से तीनों गुणों में तीन श्रेणियाँ होती हैं और संसार में भी तीन श्रेणी के लोग होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि तामस

से सारा संसार आवृत्त है परन्तु उसमें उत्तम, मध्यम, निकृष्ट विद्यमान रहता हैं। बिल्कुल तमोगुण से सना हुआ पुरुष माया के बहुत नजदीक रहता है। थोड़ा कम तमोगुण वाला पुरुष जिसमें रजोगुण है, सत्त्वगुण की प्रधानता है। वह माया से अलग रहता है और बिल्कुल तमोगुण के न्यूनीकरण में सतोगुण की अधिकता में लोग कुछ परमार्थ की ओर उन्मुख होते हैं। वे माया को लाँघ सकते हैं। इस प्रकार की व्याख्या इस तमगुण की है और 'रास पञ्चाध्यायो' में इसका उल्लेख भी है।

**मन मतंग गइयर हने, मनसा भई सचान।**
**जंत्र मंत्र माने नहीं, लागी उड़ि उड़ि खान ॥१४५॥**

**शब्दार्थ**—मतंग–हाथी। गइयर–गाय+अरि–सिंह, महावत, नीलगाय, जीवात्मा। हने–मारे। मनसा–मन की इच्छा, भावना। सचान–बाज पक्षी, मनोवृत्ति। जंत्र-मंत्र–जंत्र मंत्र, उपाय।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि तामस में तीन गुण होते हैं। उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ जिसके अनुसार पुरुष अपना आचरण करता है। अब नीचे कहा जा रहा है कि भ्रमर रूपी मन गुणों की न्यूनाधिकता के अनुसार व्यक्ति अपने-अपने गुण के द्वारा अपने कार्य का सम्पादन करता है।

**मूलार्थ**—यह मन जो है मतवाले हाथी के समान है परन्तु विचित्र बात यह है कि इस मतवाले हस्ती रूपी मन को जीवात्मा रूपी सिंह मारता था, वश में करता था परन्तु बातें उल्टी हो गयी हैं। हस्ती ही सिंह को मार रहा है मन ही आत्मा का नाश कर रहा है और मन की मनसा बाज पक्षी के समान निर्बल लोगों को उड़-उड़कर झपट्टा मार रहा है। अल्प बुद्धि वालों को मारकर धराशायी कर रहा है। सबकी कलेजी निकालकर खा रहा है। इस सचान रूपी मन को मनाने के लिए, मन को वश में करने के लिए न कोई मंत्र है, न कोई जंत्र ही काम कर रहा है। जिससे मन मान जाय। यह मन बड़ा प्रबल तत्त्व है। गइयर रूपी सीधे-सादे जोवात्मा को दुःखा रहा है। दुःख दे रहा है और सचान कहिये काल बनकर खा भी रहा है।

**मन गयंद माने नहीं, चले सुरति के साथ।**
**महावत विचारा का करै, अंकुस नाहीं हाथ ॥१४६॥**

**शब्दार्थ**—गयंद–हस्ती, सुरति, मनोवृत्ति। महावत–पिलवान,

जीवात्मा। विचारा–असमर्थ। अंकुस–तत्त्वज्ञान। नाहीं–नहीं। हाथ–पास।

**सम्बन्ध**—ऊपर की साखी में कहा गया है कि हस्ती जो है, वह सिंह को ही खा रहा है। अर्थात् उसको पछाड़ रहा है। अब नीचे कहा जा रहा है कि समय उल्टा हो गया है। कहा तो सिंह को हस्ती को मारना चाहिये परन्तु बात उल्टे हो गई है क्योंकि हस्ती ही सिंह को मार रहा है। यह किसी प्रकार से सुलझने वाला झगड़ा नहीं है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्त जन ! यह मन मतवाले हाथी के समान है, अर्थात् जो लोग मन के वशीभूत हैं। वे उन्मत्त हो गये हैं किसी प्रकार की शिक्षा को मानने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं। इन लोगों की मनोवृत्ति जिस ओर चलती है उसी के साथ मन रूपी हाथी भी चलता है। हस्ती का वश करने वाला, मन को वश करने वाला महावत रूपी जीवात्मा असमर्थ हो रहा है। वह क्या कर सकता है क्योंकि अंकुश रूपी तत्त्व-ज्ञान उसके हाथ में नहीं है। इसलिए यह मतवाला मन जो हस्ती के समान है। जिधर चाहता है उधर ही जा रहा है तात्पर्य यह है कि जिसकी इन्द्रियाँ मनमानी हैं। अपने विषय की ओर आसक्त हैं वह पुरुष कुछ करने में असमर्थ है।

**ई माया है चूहड़ी, अउ चूहड़ों की जोय।**
**बाप पूत अरुझाय के, संघ न काहू के होय ॥१४७॥**

**शब्दार्थ**—ई–यह। चूहड़ी–मेहतरानी, भंगी की स्त्री, माया। चूहड़ों–भंगियों की। जोय–स्त्री, पत्नी। बाप–ईश्वर। पूत–जीव।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि निर्बल पुरुषों के लिए आत्मज्ञान नहीं है। क्योंकि श्रुति में कहा गया है कि बलहीन पुरुष आत्मा की प्राप्ति नहीं कर सकता है क्योंकि उसके अन्दर तमोगुण की प्रधानता है जिसके कारण माया के अधीन बना रहता है नीचे कहा जा रहा है कि यह माया अच्छी नहीं है। सभ्य नहीं है भद्र स्त्री नहीं है जिसके कारण सबके साथ दुराचार कराते फिरती है।

**मूलार्थ**—अब सद्गुरु कहते हैं कि हे जिज्ञासुओं ! यह माया चूहड़ों की स्त्री के समान है। जो सदा यह गन्दे स्थानों में ही रहती है और चूहड़ियों की तरह बड़े सबेरे ही उठकर चूहड़ों से लड़ती है क्योंकि यह उन चूहड़ों की ही जोय है। चूहड़ों में व्यंजना है तात्पर्य यह है कि इस चूहड़ी माया में निम्न स्तर के पुरुष ही फँसते हैं और वही अपनी

अर्द्धांगिनी बनाते हैं परन्तु यह इतनी नीच है, इतनी गन्दी चाल वाली है कि बाप-बेटे में ही झगड़ा लगा देती है। पुत्र रूप जीव को अविद्या में फँसा देती है और बाप रूपी ईश्वर से स्वतः अपने फँसी रहती है। माया के द्वारा ही अविद्या उत्पन्न होती है। इसलिए अविद्या ही माया का रूप है उधर बाप की पत्नी है इधर पुत्र की पत्नी है। दोनों को अलग करके फँसा करके मार डालती है। पुत्र से कहती है कि मैं तेरी रक्षा करूँगी तेरा पालन करूँगी। बाप से कहती है कि मैं तेरी पत्नी हूँ पुत्र से अधिक तू प्यारे हो। मैं तेरे संग जलने वाली हूँ। सती होने वाली हूँ परन्तु यह चूहड़ी स्वरूपा माया न पुत्र के संग रहती है, न बाप के संग रहती है। इसलिए हे प्यारे! जिज्ञासुओं! उक्त माया के कर्मों से दूर रहने का प्रयत्न करो एवं प्रभु का चिन्तन करो।

**कनक कामिनी देखि के, तू मत भूल सुरंग।**
**मिलन बिछुरन दुहेलरा, (जस) केंचुलि तजत भोवंग ॥१४८॥**

**शब्दार्थ**—सुरंग-सुन्दर रूपवाला, जिज्ञासु, आत्महितेक्षु। दुहेलरा-दुर्लभ, कठिन, दुःख। जस-जैसे। केंचुलि-कंचुकी, ऊपर का मरा हुआ चमड़ा। तजत-त्यागत। भोवंग-भुजंग, सर्प।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि यह माया बड़ी नीच है। न पुत्र का साथ देती है न पिता का साथ देती है यह किसी की भी हितैषिनी नहीं है। यह धोखा देने वाली है इसलिए इससे सावधान रहो नीचे कहा जा रहा है कि इसको देखकर मत भूलों, नहीं तो तुमको भी चौपट कर देगी।

**मूलार्थ**—संसार में प्रायः सभी लोग 'कनक' कहिये सम्पत्ति, कामिनी कहिये सुन्दर स्त्री इसी में फँसे रहते हैं। क्योंकि माया का असली यही रूप है इससे परे रहना बड़े पुरुषों का काम है। तत्त्वज्ञों का काम है अन्य पामर विषयी जीव जो इसके शिकारी हैं उनसे यह छूट नहीं सकती। सद्गुरुदेव कहते हैं कि हे सुन्दर बुद्धि वाले जिज्ञासुजन! आप लोग कनक और कामिनी को देखकर उसी में आसक्त न हो जाँय। उसकी प्राप्ति होने पर उसी में भूल न जाय चाहे देव वश आपको प्राप्ति भी हो जाय। तो उसमें आसक्त न होवे। त्याग भाव से रहें क्योंकि मिलने पर बड़ा सुख उपजता है। बहुत आनन्द होता है और बिछुड़ने पर बहुत दुःखदायी कष्ट होता है। वह कहने योग्य नहीं है इस माया का मिलना भी दुर्लभ है और बिछुड़ना भी दुर्लभ है। एक तो जल्दी प्राप्त नहीं होती और प्राप्त होती है तो बिछुड़ भी जाती है इसलिए दोनों दुलंभ हैं और मिलने-

बिछुड़ने में कष्ट कैसा होता है। जिस प्रकार से सर्प केंचुली से मात जाता है ऊपर की चमड़ी शरीर छोड़ देती है परन्तु शरीर में लगी रहती है। जो शीघ्र शरीर से बाहर नहीं निकलती बहुत कठिनाई के साथ उसका त्याग करता है। कई एक टुकड़ों में टूट-टूटकर शरीर छोड़ती है यह है मोह। इसी प्रकार से धन मिलकर बिछुड़ जाय, कामिनी सुन्दर स्त्री प्राप्त होकर किसी दूसरे के साथ चली जाय तो भला कैसी दशा होती होगी जो इसके प्यारे हैं जो इसके चहेते हैं ?

**माया के बसि में परे, ब्रह्मा बेस्नु महेस।**
**नारद सारद सनक सनंदन, गऊरी पूत गनेस ।।१४९।।**

**शब्दार्थ**—बसि–वश में। सारद–शारदा। सनक सनंदन–सनक सनदंन आदि चारों भाई जो ऋषि थे। गऊरी–गौरी, पार्वती। पूत–पुत्र। गनेस–गणेश, गणों के स्वामी।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि कनक कामिनी को देखकर अच्छे लोगों को नहीं भूलना चाहिए। क्योंकि मिलन बिछुड़न दोनों में दुःख है नीचे यह कहा जा रहा है कि इस माया के वश में साधारण लोग ही नहीं फँसे हैं बड़े-से-बड़े देव दानव, ऋषि, मुनि, राजा, महराजा, पदाधिकारी सबके सब फँसे हुए हैं और सभी माया से कुछ चाहते हैं।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे सन्त जन छोटे लोग तो माया में फँसे ही थे अब बड़े लोग भी उससे नहीं बचे हैं। क्योंकि माया के बहुत रूप हैं माया का अर्थ बहुत बड़ा विस्तार है। किसी-न-किसी माया के कण से किसी का लगाव अवश्य है। इस माया के वश में लोक पितामह ब्रह्मा जी भी पड़ गये हैं। सावित्री होकर पत्नी के रूप में उनके पास निवास करती है। कार्यब्रह्म के स्वरूप में भगवान विष्णु के यहाँ भी महारानी लक्ष्मी के रूप में विद्यमान है। इसी प्रकार से भूत भावन भगवान शंकर जी के पास में भी माँ पार्वती बनकर विराजमान हैं। महर्षि नारद भी उस महारानी के चक्र से नहीं बचे। शीलनिधिपुर में जाकर बंदर का रूप बना आये। इस प्रकार से माँ शारदा भी गायकों के द्वारा ठगी जाती हैं। सदा गाने वालों की वाणी को सुन्दर रखना पड़ता है। इसी प्रकार से सनक सनंदन चारों भातृगण, मान-सम्मान के चलते जय-विजय को शाप देकर नीचे गिरा दिया था। इसी प्रकार से महारानी पार्वती भी एक बार सीता का रूप धारण करने पर भगवान राम के द्वारा छली गयी थीं और

माता पार्वती के मानस पुत्र भगवान गज-मुख गणेश जी भी पूजा के लिये व पूज्य होने के लिए परेशान हुए थे। उपर्युक्त सब बातें माया के ही रूप हैं। जिसके द्वारा सभी लोग परेशान होते हैं और हो रहे हैं।

छन्द, चौपाई—**पीपरि एक जो महागभानी,**

**ताकर मरम कोई नहीं जानी।**

**डार लभाय फल कोइ न पाय,**

**खसम अछत बहु पिपरी जाय ॥१५०॥**

**शब्दार्थ**—पीपरि-(सं० पीप्पल) पीपल का पेड़, अश्वस्थ, आ० माया। गभानी-पल्लवित होना, गाभ निकलना, फैलना, सुगंधित। ताकर-उसका। मरम- रहस्य, भेद। डार-शाखा, अवयव। लभाय-नवा कर। फल-माया का फल, विषय भोग। खसम-ईश्वर, परमात्मा, आत्म तत्त्व। अछत-रहते हुए।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि इस माया के वश में छोटे बड़े सभी लोग पड़ गये हैं। किसी न किसी रूप में यह अनेक रूप वाली माया पहुँच ही जाती है। क्योंकि नीचे कहा जा रहा है कि इसका विस्तार बहुत बड़ा है। यह सारे संसार में फैली हुई है।

**मूलार्थ**—सद्गुरुदेव सन्त एवं जिज्ञासुओं से कहते हैं कि हे सन्त जन ! हे जिज्ञासु जन ! यह माया बड़ी विचित्र है। देखने में बहुत सुन्दर है, बहुत कमनीय है और यह पीपल वृक्ष के समान चपल है, जैसे-पीपल के पत्ते बिना हवा के ही फर-फर करते हैं। उसी प्रकार से यह पीपल स्वरूपा माया महा गभानी कहिये बहुत शाखाओं वाली है। बहुत फैली हुई है। यहं सारे विश्व को आच्छादित किये हुए हैं। इसलिए इस माया का मरम कहिये भेद कोई नहीं जान सका। उसके रहस्य को जानने में सभी लोग असमर्थ हैं। डार कहिये उसके किसी अंश को कामिनी के रूप में कनक के रूप में सभी लोग पीपल रूपी माया के शाखा रूपी कनक कामिनी को नवा कर उसको अपने वश में करना चाहते हैं। उसके फल को भोगना चाहते हैं परन्तु यह विलक्षणा माया को कोई पा नहीं सका। कोई इसको वश में नहीं कर सका। यह क्षणिक सुख देकर सबका साथ छोड़ देती है परन्तु यह संसारी मनुष्य जो विषय का कीड़ा है, वह सदा माया के पीछे पड़ा रहता है। इसके हृदय में जो खसम है, स्वामी है जो आकाश के समान व्यापक है। अछत कहिये उसके रहते हुए बहुत

पीपरि कहिये माया के अनेक फलों को प्राप्त करने के लिये जाता है। अर्थात्-प्रभु को छोड़कर माया के पीछे दौड़ता है। यह माया, यह पीपरि बादल की छाया के समान है। ओस कण के समान है। इससे कभी कोई सुखी नहीं हुआ है। यह आदि कुमारी है। किसी के वश में रहने वाली नहीं है। इसलिए हे सन्त-जन हृदय निवासी प्रभु को पकड़िये जो सुखों का सार है।

**टिप्पणी**—यद्यपि इस साखी का अर्थ लिखा जा चुका है परन्तु इसमें एक अर्थ और झलकने लगा। उसको भी नीचे टिप्पणी के रूप में दिया जा रहा है।

परमात्मा का रूप एक पीपल का वृक्ष है। जो बहुत फैला हुआ है। अर्थात् व्यापक है। जिसका मर्म व भेद कोई जानता नहीं है। जो साधन सम्पन्न हैं। उसको तो उसकी अनुभूति होती है परन्तु जो साधन हीन हैं वह उससे बहुत दूर रहते हैं। वह बहुत गम्भीर तत्त्व है। डार स्वरूप उसके नाम को जप कर लोग उसके आनन्द रूपी फल को पाना चाहते हैं परन्तु मनुष्यों का सम्बन्ध उस एक परमात्मा के हृदय में रहते हुए बहुत पीपरि कहिये बहुत ईश्वर की ओर उस परमात्मा को छोड़कर बहुदेव वाद में लग जाते हैं। इसलिए डार नवा कर मोक्ष रूप फल प्राप्त नहीं होता। क्योंकि अनेकों उपास्य मन में जमे हुए रहते हैं जब तक मनुष्य एक की उपासना नहीं करेगा। तब तक परमात्म प्राप्ति रूपी अमृत फल से बहुत दूर रहेगा। इसीलिए बहुदेव वाद का परित्याग कर एक परमतत्त्व स्वरूप परमात्मा की उपासना करनी चाहिये।

**साहू से भौ चोरवा, चोरहू से भौ हीत।**
**तब जानहुगे जीयरा, जब मार परेगी तूझ ॥१५१॥**

**शब्दार्थ**—साहु–साधु, सन्तजन, आत्मतत्त्व। चोरवा–चोर, दुष्टलोग मन। हीत–हितैषी। जीयरा–जीव। तूझ–तुझे, तुमको।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि हृदय में रहते हुए उस परमपिता परमात्मा की उपेक्षा कर संसार की माया के पीछे यह अज्ञानी पामर विषयी जीव दौड़ता रहता है नीचे कहा जा रहा है कि यह अज्ञ मनुष्य द्वै चित्त वाला है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे सन्तो! हे भक्त जन! यह संसारी जीव साधु सन्तों से छिपते रहता है मन कहिये उनके सामने नहीं आना चाहता है चोरवा कहिये छिपा रहता है और जो चोर हैं, दुष्ट हैं उनका

हितैषी बना हुआ है साधु सन्तों की उपेक्षा कर दुष्टों का साथ करता है परन्तु तब इसको पता चलेगी तब यह जीवात्मा जानेगा जब इसके कुकर्मों के चलते भगवान भाष्कर के सुपुत्र पकड़कर पीटेंगे और मार-मारकर इसके दोषों को कबूलायेंगे तभी यह दुष्टात्मा समझेगा परन्तु मेरी बात को कोई सुनने के लिए राजी नहीं है मैं कबीर करता हूँ कि हे पामर जीव अभी मेरे समझाने पर नहीं समझा लेकिन तेरे समझ में आ जायेगा जब यमराज तेरे सिर पर गदा लेकर गड़गड़ायेगा इसलिए आज से तू चेतकर दुष्ट आत्माओं की उपेक्षा कर अच्छे सन्तों की संगत कर तभी तू यमराज के चोट से बच सकते हो अन्यथा कोई दूसरा उपाय नहीं है।

## विना गुरुमुख प्रकरण

**ताकी पूरी क्यों परे, जाके गुर न लखाई बाट।**
**ताके बेरा बूड़ि हैं, फिरि फिरि अउघट घाट ॥१८२॥**

**शब्दार्थ**—बेरा-बेड़ा, नौका। अउघट-औघट जहाँ घाट नहीं है अर्थात् पशु आदि योनियों में उसका परिगमन हो जायेगा।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि तू अच्छे पुरुषों का साथ नहीं किया। अच्छी संगति नहीं की। इसीलिए तेरी बहुत बड़ी हानि होगी। नीचे कहा जा रहा है कि वह कभी सुखी नहीं रहता जो गुरुजनों से विमुख रहता है।

**मूलार्थ**—गुरुवर कबीर साहब कहते हैं कि जो भद्र पुरुषों की संगति में नहीं जाता। अच्छे लोगों की संगति में नहीं बैठता है। जो समाज के सन्मुख जाने से डरते रहता है। उस पतित पामर मनुष्य की पूरी नहीं पड़ सकती। अर्थात् उसके किसी कार्य में न उसको सफलता मिल सकती है और न संसार में सुख शान्ति से निवास कर सकता है क्योंकि जिसके गुरु ने सत्यमार्ग का दर्शन नहीं दिखाया है। वह कभी भी गन्तव्य स्थान तक नहीं पहुँच पाता है। जैसे—किसी नदी में नया मल्लाह अपनी बेड़ा को डाल दे और उसे जल के चक्रावातों का ज्ञान न हो तो उसकी नौका जलावर्त में डूब जाती है क्योंकि किसी को वह अपना मार्गदर्शक नहीं बनाया और न नाव खेने की कला ही किसी से सीखी। इसी प्रकार से आत्म प्रदेश की बात जिसका गुरु जिस साधक को नहीं बताया है। सप्त आवरणों के भेदन की गति जिसको नहीं ज्ञात है उसके जीवन रूपी

नौका इस घोर भयावही भवसागर में डूब जायेगी। कहाँ डूबेगी ? ऐसे जगह डूबेगी जहाँ न घाट है न बाट है। अथाह जल में जलमग्न हो जायेगी। अर्थात् आत्मा की प्राप्ति न करके बहुत से ऋद्धियों, सिद्धियों की प्राप्ति करके मात्र संसार में अपनी शक्ति का प्रदर्शन करेगा और मात्र सम्मान के पीछे दौड़ते फिरेगा। घाट तो हृदय कमल था। जहाँ पर जाने से स्वामी की प्राप्ति होती परन्तु कुघाट रूपी सिद्धियों में पड़कर जीवन को बर्बाद कर दिया।

**जाना नहिं बूझा नहीं, समुझि न कियो गवन।**
**अंधे को अंधा मिला, राह बतावै कौन ॥१५३॥**

**शब्दार्थ**—बूझा–समझा नहीं। अन्धे–अज्ञानी। अन्धा–अज्ञानी गुरु, बिना नेत्र का। राह–आत्म प्रदेश का मार्ग।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जिसको गुरु नहीं मिला। किसी भी विषय का शिक्षक जिसको नहीं मिला। उसको कभी भी सफलता नहीं मिल सकती और जीवन के सारे परिश्रम निरर्थक होंगे। क्योंकि नीचे कहा जा रहा है कि समझ बूझकर, विवेक पूर्ण विचार करके किसी पन्थ को नहीं अपनाया।

**मूलार्थ**—बुद्धिमान मनुष्य कुछ भी करता है तो वह पहले बहुत सोचता है विचारता है। कार्यों का परिणाम भी देखता है परन्तु अज्ञ मनुष्य न तो कुछ विचार किया और न किसी जानकार समझदार व्यक्ति से सम्पर्क किया। गुरु महाराज कहते हैं कि एक तो वस्तु को जाना नहीं न समझने की कोशिश ही की। न किसी मार्ग पर समझकर गमन किया। कारण कि अपने तो स्वयं अज्ञानी था। विवेक विचार की आँखों से रहित था और जो रास्ता बताने वाला मिला वह भी नेत्रहीन अज्ञ मनुष्य था। इसलिए गन्तव्य स्थान के मार्ग को कौन उसको बताने वाला था ? कौन उसको बताता क्योंकि बीहड़ में दो अन्धों की भेंट हुई। तीसरा कोई नहीं था, सिद्धान्त पक्ष में जब तक आत्मविद् गुरु नहीं मिलता तब तक अज्ञ साधक को कोई लाभ नहीं होता है। किसी मूर्ख की सुनी-सुनायी बात पर साधना करने लगा परन्तु आत्मलोक में जाने का मार्ग ही उसको नहीं मिला।

**जाका गुर है आंधरा, चेला काह कराय।**
**अंधे अन्धा पेलिया, दोऊ कूप पराय ॥१५४॥**

**शब्दार्थ**—आँधे–अन्धा, अज्ञानी। पेलिया–चल पड़े, ठेलिया, ठेला–ठेली। पराय–पड़े, गिरे।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अज्ञानी को अज्ञानी मिला इसलिए वास्तविक गन्तव्य स्थान के मार्ग से वंचित रहा। नीचे कहते हैं कि बताने वाला ही अदूरदर्शी था तो मार्ग कैसे मिलता।

**मूलार्थ**—गुरुदेव कबीर कहते हैं कि जिसका गुरु अन्धा है। ज्ञानहीन है। जो स्वयं वास्तविकता से परे है, जो अपने आत्मज्ञानो नहीं है। तो उसका चेला उसका अनुगमन क्या कर सकता है? गलत शिक्षा के साथ और गलत उपदेश ग्रहण के साथ दोनों गुरु चेले थे। अज्ञान से ढके थे। दोनों अज्ञात मार्ग पर चल पड़े। अन्दाज से रास्ता पकड़ लिये। पेलिया कहिये कुछ चलने में हठ भी किये। जबर्दस्ती बलात्कार भी किये। क्योंकि किसी आँख वाले को साथ नहीं लिये। इसलिए रास्ते में कूप रहा। दोनों गुरु चेला उसी कूप में गिर पड़े। समाज की आज भी ऐसी दशा है कि दूसरे से अच्छी बात सीखना नहीं चाहता है। विद्या के अभिमान में, धन मद के अभिमान में, बुद्धि का तिरस्कार किया जा रहा है। विद्या के अभिमान में अक्लमन्दों से द्वेष किया जा रहा है। जो अध्यात्म के नेता हैं, जो समाज के नेता हैं, जो राष्ट्र के नेता हैं। वे सबके सब ऐसे परामर्शदाता रहे हैं कि मनुष्य को गलत नीति के दर्शन कराते हैं। इसलिए पूर्णरूपेण किसी को सफलता नहीं मिलती और अन्त में असफलता रूपी कूप में सब गिरकर हाथ मींजते हैं।

## प्रपंच त्याग प्रकरण

**लोगों केरि अथाइया, मत कोइ पैठो धाय।**
**एकै खेत चरत हैं, बाघ गधारा गाय ॥१५५॥**

**शब्दार्थ**—लोगों–सामूहिक समाज की। केरि–की। अथाइया–जो पंचायती भवन होता है, जो ग्राम के चौक या प्रत्येक के घरों से अलग बनाया जाता है। जिसमें गाँव के सभी लोग आकर बैठते हैं। ग्रामसभा भवन। मत–नहीं। पैठो–प्रवेश। धाय–दौड़कर। एकै खेत–एक स्थान पर। बाघ–व्याघ्र। गधारा–गदहा, गर्दभ। गाय–गो।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अशिक्षित को अशिक्षित मिला इसलिए किसी विषय में पारंगत नहीं हुआ। नीचे कहा जा रहा है कि इसकी संगति जो हुई वह अच्छे लोगों से नहीं हुई।

**मूलार्थ**—अब सद्गुरुदेव कहते हैं कि हे सन्तजन ! हे भद्रपुरुष ! जिस स्थान पर अच्छे लोग न बैठते हों उस अथाइया और सभागृह में मत जाओ। क्योंकि उसमें कुछ अच्छे लोग आते हैं। बहुत से कुत्सित विचार के आते हैं। बहुत से मध्यवर्ग के आते हैं। किसी ग्राम के सभा-भवन में जाने से पहले उसमें दौड़कर प्रवेश मत करो क्योंकि बिना बुलाये बिना लोगों के स्वभाव गुण जाने यदि तू जाता है तो वहाँ तेरा अपमान होगा। तुझे कोई बैठने के लिए नहीं कहेगा क्योंकि ऐसे घरों में अधिक गन्दे विचार के लोग ही बैठते हैं। जिस प्रकार से एक ही खेत में व्याघ्र, गदहा, गाय मिलकर चरते हों तो भला उसमें कब तक गाय और गदहा का हित होगा। क्योंकि व्याघ्र जो है गाय और गदहा दोनों को खाने वाला है। गर्दभ जो है गाय को दोलची चलाकर पीटने वाला है। कहने का तात्पर्य यह कि जिस सभागृह में व्याघ्र रूपी सबके शोषक लोग बैठे हों। जो केवल प्रजाजनों से कर को वसूलते हों। अपनी धाक जमाकर सबको भयभीत करते हों। जहाँ न्याय का नाम नहीं हो। इसी प्रकार से जिस सभाभवन में जुत्तम-जूती वाले हों। बात-बात पर गाली-गल्लम करते हों। जहाँ सभ्यता का कोई नामोनिशान न हो। सभी लोग उदण्ड हों और जिस सभाकक्ष में गाय के समान बुजदिल हों और कुछ करने में समर्थ न हों। केवल बात की पूड़ी पकाने और बात से ही आकाश-पाताल एक करते हों। कर्त्तव्य से हीन कर्त्तव्य का उपदेश देते हों। इसी प्रकार से उन गुरुद्वारों में, उन आश्रमों में, उन मठों में जहाँ पर धर्म का चोला पहनकर अधर्म का काम करते हों। सद्गुरु कहते हैं कि हे जिज्ञासु जन ! ऐसे स्थानों पर नहीं जाना चाहिए। क्योंकि सफलता के स्थान पर असफलता ही हाथ लगेगी।

## मूर्ख मानव प्रकरण

**चारि मास घन बरसिया, अति अपूर सर नीर।**
**पहिरे जड़ तन बखतरी, चुभै न एकौ तीर ॥१५६॥**

**शब्दार्थ**—चारि मास–चार अवस्था, बाल, किशोर, जवानी, वृद्ध। घन–बादल। बरसिया–बरसा। अति–बहुत अधिक। अपूर–अपूर्व, पहले ऐसा कभी नहीं। सर–शरीर। जल–पानी अ०-आत्मज्ञान। नीर–पानी, आत्म विषयक उपदेश। बखतरी–बखतर, कवच, अज्ञान।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि बिना बुलाये किसी की सभा में नहीं

जाना चाहिए। जिसका परिणाम अच्छा नहीं होता है परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि कितना भी सीख किसी को दें, वह अपना मत कुछ रखता ही है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्त जन! चार मास आषाढ़, श्रावण, भादो, क्वार में बड़ी घनघोर वृष्टि हुई। जो बहुत अपूर्व थी। ऐसी जल की वर्षा कभी नहीं हुई थी परन्तु जहाँ वर्षा हो रही थी। वे सब बखतरी कहिये कवच पहने थे। इसीलिए एक भी जल की बूंद उन लोगों पर नहीं पड़ी। भावार्थ यह कि इस संसार में मैंने प्रारम्भ से ही मनुष्यों को उपदेश की झड़ी लगा दी। सभी प्रकार का उपदेश दिया। समाज सुधार के लिए कहा, राज्य सुधार के लिए कहा, धर्म सुधार के लिए कहा, आध्यात्मिक चेतना के लिए कहा, समाज को एक होने के लिए कहा, जाति-पाँति तोड़ने के लिए कहा, छूआछूत भगाने के लिए कहा, अखण्ड देश होने के लिए कहा, एक भाषा होने के लिए कहा, राष्ट्र पर अच्छे लोग शासन करें ऐसा कहा। जिस प्रकार से देश की उन्नति हो वह सब कार्य करना चाहिए। ऐसा भी कहा, परन्तु सभी लोग अज्ञान रूपी बखतर तन पर पहने हुए हैं। सबके अन्तःकरण मलिन हैं। किसी की नियत शुद्ध नहीं है। किसी का मानस साफ नहीं है और कोई ऊँची बात सुनने के लिए तत्पर नहीं है। इसलिए वर्षा रूपी मेरे उपदेश सब निष्फल हो गये। क्योंकि समाज के लोग सच्चाई से विमुख हैं।

**गुर की भेली जीउ डरे, काया सींचनहार।**
**कुमति कमाई मन बसे, लागि जुवाकी लार ॥१५७॥**

**शब्दार्थ**—गुर–गुरु, गुनरखा, मातुल, नाव का वह मस्तूल जिसमें गोद ( रस्सी ) बांधकर उसको खींचते हैं। आ० मेरुदण्ड। भेली–साथ, भईली, होना। जीउ–संसारी मनुष्य, साधक जोवात्मा,। काया–शरीर, अन्तःकरण। सींचनहार–पालन-पोषण करने वाला। लार–साथ, रास्ता, कतार, पंक्ति। ( लौं पीछे ) साथी, पाछे।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अज्ञानता के कारण एक भी उपदेश रूपी तीर मनुष्य के शरीर में नहीं चुभा। क्योंकि अज्ञान रूप जड़वत बखतर पहने हुए था। इसलिए गुरु के वाक्य रूपी तीर अन्तःकरण में चुभ नहीं सके। अब कहा जा रहा है कि यह अज्ञानी मनुष्य संसार की भली संगति में जाने का प्रयत्न नहीं करता।

**मूलार्थ**—मनुष्य का सुधार तभी होता है। जब वह भद्र पुरुषों का एवं शिष्ट जनों का साथ करता है। उनकी सीख को माने तभी उसमें सुधार आ सकता है। गुरु कबीर देव कहते हैं कि हे सन्त जन ! यह संसार का जीव हितैषी गुरुदेव के साथ में भेली कहिए उनके पास जाने से डरता है। यह संसारी मनुष्य देह आत्मवादी हो चुका है। देह को ही आत्मा मान लिया है। इसलिए काया के पोषण में ही लगा रहता है और इसके मन में कुमति कहिये कुबुद्धि की कमाई गलत रास्ते से धनार्जन उत्कोच लेना, बेईमानी करना, नियामत में खियामत करना अर्थात् गलत तरीके से धन कमाने की इसके मन में बुद्धि बसती है। क्योंकि ऐसे लोगों का साथ कर लिया है। बाकी कहिये ऐसे लोगों के साथ लग गया है। लार कहिये ऐसी पंक्ति में जाकर खड़ा हुआ है। जहाँ सबके सब गलत धन्धे में लगे हुए हैं। चार सौ बोस करके कमा रहे हैं और घर भर रहे हैं। इसलिए सद्गुरु का साथ यह करना नहीं चाहता अर्थात् अच्छे कर्मों से डरते रहता है। सत्य मार्ग पर इसका भरोसा नहीं है। इसलिए इसको सत्य मार्ग से वंचित रहना पड़ता है।

**तन ससै मन सोनहा, काल अहेरी नित्त।**
**एकै डांग बसेरवा, कुसल पुछो का मित्त ॥१५८॥**

**शब्दार्थ**—ससै–खरगोश। सोनहा–कुत्ता। अहेरी–आखेटक। डांग–जंगल का वह स्थान जहाँ पर बहुत से जाति व विजातिय के जीव-जन्तु आकर विश्राम करते हों व निवास करते हैं, पहाड़ का किनारा, चोटी, पहाड़ो वन, जंगल, घना वन खण्ड, पैर-चरण।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जिसको बूरी लगन लग जाती है वह छूटती नहीं है। नीचे उसके कारण बताये जा रहे हैं।

**मूलार्थ**—गुरुदेव कबीर कहते हैं कि हे सन्त जन ! बड़े आश्चर्य की बात है कि यह मानव तन ससै खरगोश के समान है। मन सोनहा कुत्ता के समान है और मृत्यु जो है वह आखेटक है जो नित्य जीवों को मार कर खा रही है। इन मनुष्यों का संसार रूपी वृक्ष के नीचे एक ही जगह सबका बसेरा है। जिसमें अनेक प्रकार के लोग, अनेक विचार के लोग हैं। सबकी अलग-अलग विचारधारा है और उसी में मैं भी रहता हूँ। हे मित्र ! ऐसे स्थान पर निवास करने के नाते क्या कुशल पूछते हो वहाँ किस प्रकार की कुशलता है तात्पर्य यह कि यह मानव शरीर शिकार है और मन ही कुत्ता बनकर इस तन को अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा भोग-

भोगने के लिए इस तन का उपयोग कर रहा है और अपने को न जानने वाला जीवात्मा इसकी पकड़ में आ गया है। यावत् जीवन यह मनुष्य मन के पीछे आशा-बासा में लगा रहता है। अन्ततोगत्वा मृत्यु इसका अहेर कर लेती है। क्योंकि काल का नित्य यही काम है कि जो उसके शिकार हैं उनका वह शिकार करें। कारण कि शिकार करने में उसे इसलिए भी सफलता मिलती है कि डांग कहिये ऐसे घोर जंगलों से सब घिरे रहते हैं। जहाँ अपना बसेरा बनाये रहते हैं उस जंगल से कोई भाग नहीं सकता। सबको शिकारी रूपी काल मार डालता है इसलिए उस पहाड़तल्ली निवासियों का कुशल पूछना बेकार है अर्थात् वहाँ किसी का कुशल नहीं है। हे सन्त जन ! इस संसार में सभी अकुशल से हैं सभी अशान्त हैं, सभी अज्ञान के कारण मृत्यु से भयभीत हैं और सभी मरण-धर्मा हैं। इसलिए किसी की कुशलता मत समझो सब अकुशल से हैं।

**साहु चोर चीन्है नहीं, अंधा मति का हीन।**
**पारख बिना विनास है, कर विचार होहु भीन ॥१५९॥**

**शब्दार्थ**—पारख–विवेक। विनास–नाश, हानि। भीन–भिन्न, पृथक, अलग।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि इस संसार रूपी घोर जंगल में कोई अच्छे से नहीं हैं। सब अशान्त हैं क्योंकि अज्ञानी हैं नीचे कहा जा रहा है कि अच्छे-बुरे की परख इन संसारी जोवों को नहीं है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्तों ! इन संसारियों का नाश क्यों होता है, काल क्यों सताता है ? तो इन्हें साधु चोर की पहचान नहीं है। हितैषी-अनहितैषी की परख नहीं है। क्योंकि सब अन्धे हैं, अज्ञानी हैं, बुद्धिहीन हैं। इसलिए न सन्तों की जानकारी है न असन्तों की क्योंकि इनके पास पारख रूपी विवेक नहीं है। जिसके कारण इनका विनाश हो रहा है। भद्र पुरुषों को चाहिए कि अच्छे-बुरे की पहचान करके उनका साथ छोड़ दें। अच्छे का साथ करें। बुरे का परित्याग करें। जब तक सच्चे सन्त गुरु नहीं मिलेंगे तब तक कुशल होने वाला नहीं है।

## सुयोग्य ग्रहण प्रकरण

**गुर सिगलीगर कीजिये, मनहिं मसकला देय।**
**सबद छोलना छोलिके, चित्त दरपन करि लेय ॥१६०॥**

**शब्दार्थ**—सिगलीगर–आ० सैकल+फा० गर–तलवार और छूरी आदि पर बाढ़ रखने वाला, सान धरने वाला, चमका देने वाला आ० विकारों को दूर करने वाला सद्गुरु। मसखला–सिगलीगरों का एक औजार जो हँसिया के आकार का होता है जिसमें काठ का एक दस्ता लगा रहता है। जिससे रगड़ने से धातुओं पर चमक आ जाती है। प्राय: तलवार आदि इसी से साफ की जाती हैं। सैकल और सिगलीगर करने की क्रिया आ०–साधना। छोलना–जंग छुड़ाने का एक यन्त्र। छोलिके–छोलने वाला, छोलकर, साफकर। चित्तु–चित्त। दरपन–दर्पण, मुख देखने का शीशा।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अज्ञानी मनुष्य को शुभाशुभ का ज्ञान नहीं होता जिसके कारण वह हानि उठाता है। नीचे कहा जा रहा है कि यदि अज्ञ व्यक्ति भी सत्यपुरुषों का साथ करे तो निश्चित उसको भी सफलता मिल सकती है।

**मूलार्थ**—सद्गुरुदेव कहते हैं कि हे भद्र जिज्ञासुओं! यदि आपको सत्य मार्ग का पथिक बनना हो है तो इस प्रकार का गुरु कीजिए जो सिकलीगर के समान हो। जिस प्रकार से सिकलीगर तलवार, छूरी आदि के मुरचों को छुड़ाता है, साफ करता है। टूटे-फूटे हथियारों को जोड़ता है। इसी प्रकार से सद्गुरु को भी चाहिए कि तुम्हारे मन को मसकला दे अर्थात् ज्ञान रूपी मसकला से तुम्हारे मन को शुद्ध करें और शब्द रूपी छोलना से तुम्हारे में जो विकार लगे हैं उन विकार रूपी मोरचों को उपदेश रूपी छोलना से छोल-छोलकर साफ कर दें। जिससे कि तुम्हारा चित्त रूपी दर्पण मन निर्मल हो जाय। मन के निर्मल होने पर तू अपने स्वरूप को देख सकता है, सच्चाई को जान सकता है। भले-बुरे की परख कर सकता है। इसलिए तू गुरु करो और उस शिल्पी के समान गुरु हो जो अच्छे हथियारों को बनाता है। उसी प्रकार से गुरु भी अच्छे उपदेशों के द्वारा मन को निर्मल कर दें तब तुझे सत्य के दर्शन हो जायेंगे और वास्तविकता पहचान जाओगे।

## दिशा शून्य प्रकरण

**मूरख के सिखलावते, ग्यांन गांठि का जाय।**
**कोइला होय न ऊजरा, जो सउ मन साबुन लाय ॥१६१॥**

**शब्दार्थ**—मूरख–दिशा शून्य, अज्ञानी। ग्यांन–उपदेश। गांठि–

पास का। कोइला–पत्थर व लकड़ी का वह पदार्थ जो दहनशील और काले रंग का होता है। ऊजरा–उज्ज्वल।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि ऐसा शिल्पी गुरु कीजिए कि जो मन को साफ कर दे और जब मन साफ हो जायेगा तब परमतत्त्व दरसने लगेगा परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि गुरु का उपदेश भी उसी को लगता है जिसमें कुछ चेतनता होती है, कुछ समझने की शक्ति होती है यदि बिल्कुल दिशा शून्य है। पूर्णरूपेण तमोगुण से आवृत्त है तो उसको कितना भी शिल्पी आत्मज्ञानी गुरु हो परन्तु उनको वह सन्मार्ग पर नहीं ला सकता।

**मूलार्थ**—जिसके पास समझ है, जिसकी प्रज्ञा कुछ जग गयी है वह तो भली-बुरी बातों को समझ लेता है और मान लेता है परन्तु सद्गुरु देव कहते हैं कि मूरख को समझाते-समझाते हृदय रूपी गठरी का ज्ञान नष्ट हो गया। अनधिकारी के प्रति जो उपदेश दिया गया वह पूर्ण रूपेण निष्फल गया। उसी प्रकार से जिस प्रकार से काले कोयला को सैकड़ों मन सैकड़ों बार साबुन से साफ करिये परन्तु वह लाहल कोयला कभी उज्ज्वल नहीं होता। इसी प्रकार से बिल्कुल अनधिकारी जो संज्ञा शून्य है वह कभी नहीं चेत सकता है इसलिए उसके प्रति ज्ञान कहना, उपदेश करना बिल्कुल निरर्थक है।

**मूढ़ करमिया मानवा, नख सिख पाखर आहि।**
**बाहन हारा का करे, (जो) वान न लागे ताहिं॥१६२॥**

**शब्दार्थ**—मूढ़–मूढ़ उसको कहते हैं जो मूर्ख से थोड़ा बुद्धिमान होता है परन्तु वह भी कुण्ठा ग्रसित होता है। करमिया–कर्म करने वाला, कर्म। मानवा–मनुष्य। पाखर–सं० (प्रक्षर, प्रखर) लोहे की वह झूल जो लड़ाई के समय में रक्षा के लिये हाथी व घोड़ों पर डाली जाती है। आ० जर। बाहनहारा–बाहने वाला, चलाने वाला, मारने वाला, फेंकने वाला, सद्गुरु,

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो मनुष्य बिल्कुल संज्ञा शून्य है, जो किसी प्रकार से वस्तु स्थिति को समझने में असमर्थ है। उस पुरुष के प्रति कुछ न कहना चाहिए। स्मरण रहे कि पूर्व काल में भी ऐसे ही लोगों को शूद्र कहा गया है और इनके लिए वेद-शास्त्र पढ़ने पर निषेध किया गया है। आखिर मूर्ख माने शूद्र ही होता है और क्या होगा?

नीचे कहा जा रहा है कि मूर्ख के जितने कृत्य होते हैं वे सब बेकार होते हैं। उनका फल कुछ भी नहीं होता है।

**मूलार्थ**—संसार में यह देखा गया है कि परिश्रम सभी लोग करते हैं, सभी लोग आगे बढ़ने की कोशिश करते हैं परन्तु सब बढ़ नहीं पाते। क्योंकि सबके कर्म समान नहीं होते और सबकी सूझ-बूझ भी एक सी नहीं है। कोई बहुत तीव्र बुद्धि का पुरुष है, कोई सामान्य बुद्धि का पुरुष है। कोई बिल्कुल मंद बुद्धि का पुरुष है। यह प्रकृति का नियम है कि बिल्कुल मन्द बुद्धि वाला पुरुष पशु के समान है और उसका कर्म भी पशुवत होता है। वह जड़ता से अपना ही संकेत इशारा समझता है। दूसरे की ओर ध्यान नहीं देता। ऐसे मनुष्यों के लिए सद्‌गुरु कबीर साहब ने मूढ़ शब्द का प्रयोग किया है और उस मूढ़ के कर्म करने वाली बात पर कहते हैं कि वह मूढ़ मनुष्य कैसा कर्म करने वाला है। पैर से सिर तक दुष्कर्म से उसी प्रकार से ढँका हुआ है। जिस प्रकार से युद्ध के प्रांगण में हाथी और घोड़ों को कवच पहनाकर उनके सारे अंगों को ढंक दिया जाता है। अब दुश्मन कितना भी बाण उन सवारियों पर, उन हस्तियों पर चलावे परन्तु सब झटककर वापस आ जाते हैं। आखिर वाण चलाने वाला कर ही क्या सकता है? क्योंकि वह लोहे का प्रस्तर पहना हुआ है। जिसके कारण वाण उसको नहीं लगता है। इसी प्रकार से जो बिल्कुल अनधिकारी है, जो केवल शोक करता है। कभी जीवन में सुख के दर्शन नहीं किया। सुख प्राप्ति के लिए जिसके पास कोई सत् कर्म नहीं हैं, न सद्‌बुद्धि है। जो बिल्कुल संज्ञा शून्य है उसको सद्‌गुरु क्या कर सकता है? क्योंकि सद्‌गुरु का ज्ञान रूपी वाण अज्ञानता के कारण उसको नहीं लगता है। इसलिए अनधिकारी को उपदेश देना पूर्णरूपेण निषिद्ध है।

**सेमर केरा सूवना, छिवले बैठा जाय।**
**चोंच संवारे सिर धुने, ई उसहीं को भाय ॥१६३॥**

**शब्दार्थ**—सेमर–सेमल, एक प्रकार का बहुत बड़ा वृक्ष जिसके पुष्प लाल-लाल होते हैं और फल प्रथम अवस्था में बेर के फल के आकार का होता है। थोड़ा उससे बड़ा भी होता है जिसके फल को रूई की तकिया बनती है। केरा–केला, कदली। सूवना–शुक, सुगा, (आ०) अज्ञानी मनुष्य। छिवले–पलास छिउल, ढाक, टेसू, निःसार वस्तु। चोंच–मुख, ठोर। संवारे–ठीक, शुद्ध। ई उसहीं–उसी का, तद्‌रूप।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अनधिकारी के प्रति कहते-कहते जीवन का अन्त हो जाय परन्तु वह अपने स्वभाव में परिवर्तन नहीं लाता हैं। नीचे उसकी मूर्खता पर कहा जा रहा है कि वह उस शुक का भाई है जो झूठी आशाओं में पड़ा रहता है।

**मूलार्थ**—एक समय की वात है कि एक शुक सेमल के अच्छे फलों को देखकर फूलों को देखकर आशा लगाकर उक्त पेड़ पर तब तक बैठा रहा जब तक सेमल का फल पका नहीं। जब सेमल के फल पक गये तब उसने फलों को फोड़ कर खाना चाहा परन्तु जैसे ही उसने ठोर (चोंच) मारा। वैसे ही उसमें से केवल रूआ और फल के बीज निकले और उसके मुख में रूई भर गयी। रूई की गर्दा आँखों में पड़ गयी। अब वह व्याकुल हो गया। सारा उसका परिश्रम, सारा उसका कर्म निष्फल हो गया। किसी तरह से चोंच को शुद्ध किया। सँवारा तो पलाश का वृक्ष सामने दिखाई दिया। जो खूब सुन्दर पुष्पों से पुष्पित था। शुक ने सोचा कि वह इससे बढ़िया होगा। सेमल से उड़कर टेसु पर जा बैठा। फूल बड़े सुन्दर थे, बहुत सुहावने लग रहे थे परन्तु बहुत काल तक पलाश पर बैठा रहा। स्मरण रहे कि पलाश में जो फल लगते हैं वे किसी काम के नहीं होते हैं। उसमें केवल फूल ही फूल होते हैं। पहले तो उसे सेमल में असफलता मिली। अब पलाश में भी असफलता मिली। पलाश में चोंच मारा कुछ नहीं मिला। सिर धुनने लगा, पश्चाताप के समुद्र में डूब गया। बोला हाय अब क्या करूँ किंशुक भी उसी सेमल का भाई है। न उसमें कुछ फल मिला, न इसमें कुछ खाने की वस्तु मिली। दोनों मुझे निराश किये इसी प्रकार से संसारी मनुष्य बहुत काल तक संसार में रहता है पुत्र पौत्र की सेवा करता है। संसार से कुछ मिलेगा संसार के सुख से हम तृप्त होंगे परन्तु देखते-देखते तीसरा पन बीत गया। संसार के सुख उसको संतुष्ट नहीं कर सके। संसार से उसको कुछ मिला नहीं तब विचार किया कि छोड़ो घर-द्वार को अब किसी सन्त महात्मा किसो धार्मिक के पास चलें। घर का त्याग कर धार्मिकों के यहाँ गया। धार्मिक लोग तीरथ सेवन, मूर्ति पूजन में लगा दिये॥ 'इदं तीर्थमिदं तोर्थं भ्रमन्ति तामसो जनाः' के अनुसार जब तक शरीर रही। तब तक पत्थर पानी को पूजता रहा। बहुदेववाद की उपासना करता रहा। अन्त में शरीर छूटते-छूटते इन कर्मों से भी कुछ नहीं मिला। पश्चात् मरण काल में दोनों स्थानों की बात सोचकर सिर धुनने लगा। न घर का हुआ, न घाट का हुआ। न इधर कुछ मिला, न उधर

कुछ मिला अर्थात् न सत्य की प्राप्ति संसार में हुई, न सत्य की प्राप्ति किसी धार्मिक से हुई। अन्त में पश्चाताप करके सिर धुन-धुन कर संसार से बिदा हो गया और कहते गया कि जिस प्रकार से संसार के लोग बाल-बच्चों में संसार के सुख में भूले हुए हैं उसी प्रकार से तथाकथित आध्यात्मिक गुरु भी प्रपंच के सागर में गोता लगा रहे हैं। ये भी संसारियों के भाई ही हैं। वहाँ भी माया ठग रही है, यहाँ भी माया ठग रही है। वे बाल-बच्चे में फँसे हैं, ये लोग चेला-चेली में फँसे हुए है कहीं भी शांति की सम्भावना नहीं है। इसलिए मनुष्य को मूढ़ कर्म नहीं करना चाहिए। बहुत सोच-समझ कर घर-द्वार का त्याग करना चाहिए, बहुत सोच समझकर सत्कर्म करना चाहिए। अन्यथा 'कर्मर्णो गहनागति' के अनुसार अच्छे के बजाय बुरे में फँस जायेंगे।

**सेमर सुवना बेगि तजु, तेरी घनी बिगुरचनि पाँख।**
**ऐसा सेमर जो सेवे, जाके हृदया नाहीं आँख ॥१६४॥**

**शब्दार्थ**—सेमर–संसार का सुख। सुवना–मूर्ख मनुष्य। बेगि–शीघ्र। तजु–त्यागि। घनी–बहुत। बिगुरचनि–अझुराहट, फँसाव। पाँख–पंख। आँख–नेत्र, विवेक।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि आजकल जिस प्रकार से संसार सच्चाई से दूर हो गया। उसी प्रकार से संसार के आध्यात्मिक गुरु लोग सत्य से लाखों कोस परे हो गये हैं। नीचे उसका त्याग बतलाया जा रहा है।

**मूलार्थ**—अब सद्गुरुदेव कहते हैं कि हे सुन्दर मनुष्य! हे विवेकी पुरुष! सेमर रूपी संसार के सुख को जल्द से जल्द त्याग दें क्योंकि सेमर रूपी संसार में जो उसके फल हैं। उसमें कुछ है नहीं। केवल मिथ्यात्व है यदि तू उसको खाना चाहोगे उसको, भोगना चाहोगे। उसमें बड़ी बिगुरचनि है, बड़ो अझूराहट है। तेरा मुख निःसार वस्तु से भर जायेगा। क्षणिक-मायिक सुखों से भर जायेगा चोंच रूपी तुम्हारी शक्ति क्षीण हो जायेगी और किसी काम का तू नहीं रहेगा। तुम्हारी शक्ति को संसार पुत्र बनकर खा लेगा स्त्री बनकर फँसा लेगी। धन, मान-सम्मान ये सब तेरे जीवन में लासा के समान हैं जीवन भर तुझे फँसाये रहेंगे। कभी तूझे सत्य तक पहुँचने नहीं देंगे। इसी प्रकार यदि तुझे कुछ विवेक बुद्धि हो गयी है तो वंचक गुरुओं का भी त्यागकर, अन्ध विश्वास का त्यागकर। क्योंकि वहाँ भी कुछ नहीं है। इस प्रकार के सेमल रूपी संसार का जो मनुष्य सेवन करते हैं, जो सेते हैं वे वही लोग हैं जिसके हृदय में

आँख रूपी विवेक नहीं है। प्रज्ञा शक्ति नहीं है क्योंकि विवेक और प्रज्ञा के द्वारा ही भले-बुरे की पहचान की जाती है। इसलिए अन्धानुकरण न करो। जान बूझकर अच्छे-बुरे विचारों का अनुसरण करो। अन्यथा उस मूर्ख तोते की जैसी बात होगी। 'न इत का भया न उत का, चला सो बाजी हार' संसार में फँसे रहने से प्रपंच में लगे रहने से न संसार का सुख मिला न परलोक का सुख मिला। इसलिए दोनों का परित्याग करो।

**सेमर सुवना सेइया, दुइ ढ़ेंढ़ी की आस।**
**ढ़ेंढ़ी फूटि चनाक दे, सुवना चला निरास ॥१६५॥**

**शब्दार्थ**—सेमर–संसार। सुवना–अविवेकी मनुष्य। ढ़ेंढ़ी–फल छीमी, ढ़ोढ़ा। दुइ–लोक, परलोक। चनाक–शीघ्र में छितरा जाना, फैल जाना।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि सेमल रूपी संसार का सेवन वही लोग करते हैं अर्थात् असत्य वस्तु में निरर्थक कार्यों में वही लोग लगे रहते हैं। जिनके हृदय में विवेक विचार नहीं है। अब नीचे कहा जा रहा है कि ये अविवेकी लोग बड़े चमर चतुर होते हैं। वे संसार को शीघ्र में समझने की कोशिश नहीं करते। इसलिए धोखा में पड़े रहते हैं।

**मूलार्थ**—यह संसारी मनुष्य सेमल रूपी संसार के अकर्म का सेवन दो फलों की आशा लेकर करता है प्रथम तो आशा करता है कि मुझे संसार का भी सुख मिल जायेगा। अर्थात् हम संसार में भी सुख से रहेंगे और संसार का सुख भोगते-भोगते अन्त में परलोक का भी सुख प्राप्त कर लेंगे। यही दोनों आशाएँ इसकी दो ढ़ेढ़ी है, दो फल है परन्तु अन्ततोगत्वा ये दोनों ढ़ेढ़ियाँ निराश कर देती हैं। चनाक से छितरा जाती हैं। एक भी हाथ नहीं लगती। भला प्रपंची मनुष्य जो प्रपंच का व्यापार किया है। उसको जीवन में कभी शांति से देखा नहीं गया। अहर्निश परेशान रहता है। तो भला वह मरणोपरान्त परलोक रूपी फल को कैसे प्राप्त कर सकेगा ? अन्त में छूछे हाथ कर मीजते हुए। उभय सुख की अप्राप्ति की दशा में सेमल रूपी संसार वृक्ष से शुक रूपी जीवात्मा उड़कर यमालय में चला गया।

## पर आश प्रकरण

**लोग भरोसे कौन के, बैठ रहे अरगाय।**
**ऐसे जियरहिं जम लूटे, (जस) मेढ़िया लूटै कसाय ॥१६६॥**

**शब्दार्थ**—अरगाय-अलग होना, मौन होना, चुप्पी साधना। मेढ़िया-मेढ़ा, भेड़ा, अज्ञानी मनुष्य। कसाय-कसाई, गवासा, कसैला, पशुहन्ता।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि फोकट में व सेत-मेत में लोग दोनों ओर का सुख चाहते हैं परन्तु न इधर का सुख मिलता है न उधर का मिलता है और नीचे कहा जा रहा है कि संसार के लोग जो निकम्मे हैं, कर्म-हीन हैं। वे आस लगाकर बैठे रहते हैं कि जो भाग्य में होगा वह भाग्य पूरा कर देगी क्योंकि प्रारब्ध बलवान होता है।

**मूलार्थ**—परन्तु सदगुरु कहते हैं कि हे मूर्ख मनुष्य ! तू किस भाग्य और प्रारब्ध के फेर में पड़ा है। भाग्य कहीं से बनता नहीं, प्रारब्ध कहीं से निर्मित नहीं होता। रे संसार के लोग किस भाग्य के आसरे चुप-चाप बैठा है। क्यों अकर्मण्य हो रहा है ? यदि तू अकर्मण्य रहा, कर्त्तव्य नहीं किया तो तूझे अर्थात् तेरे जीवात्मा को भगवान भाष्कर के पुत्र उसी प्रकार से लूटेंगे, उसी प्रकार से पकड़कर ले जायेंगे, जिस प्रकार से मांस खाने के लोभी और मांस बेचने के लोभी कसाई लोग भेंड़े को व पशुओं को पकड़कर ले जाते हैं। इसलिए हे संसार के मनुष्य ! मुझ कबीर की बात पर ध्यान दो। भाग्य का भरोसा और प्रभु का भरोसा दोनों को त्यागकर सत्कर्म करो। कर्मयोग का अवलम्बन लो। क्योंकि 'गीता' भी कर्मयोग की ओर अधिक संकेत की है। इसलिए कर्मयोगी बनो। अकर्मण्य होकर संसार में न रहो।

## पूर्णत्व प्राप्त प्रकरण

**समुझि बूझि जड़ हो रहे, बल तजि निरबल होय।**
**कहहिं कबीर ता संत का, पला न पकरे कोय ॥१६७॥**

**शब्दार्थ**—जड़-निश्चेष्ट, शान्तभाव। निरबल-निरहंकार, बल रहित। पला-आयत, आँचल, पल्ला, कोई कलंक, दोष।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो भाग्य के भरोसे बैठे रहते हैं वे अन्त में धोखा खाते हैं। अब नीचे ज्ञानी पुरुषों का लक्षण कहा जा रहा है।

**मूलार्थ**—जो व्यक्ति संसार को समझ लिया है और परमतत्त्व को बूझ लिया है वह शान्त हो जाता है। जड़वत्, निश्चेष्ट हो जाता है। बल का अभिमान त्याग देता है। अर्थात् अपनी शक्ति का प्रदर्शन नहीं

करता है । कोई सिद्धियों के चमत्कार का प्रदर्शन नहीं करता है । निर्बल कहिये दीन भाव में निरहंकार होकर समभाव में स्थितप्रज्ञ होकर बैठा रहता है । सद्गुरु कबीर कहते हैं कि 'ता' कहिए उस सन्त का कोई पल्ला नहीं पकड़ सकता है । अर्थात् उसको कोई दोष में नहीं पकड़ सकता है । तात्पर्य यह कि ज्ञानी पुरुष समस्त चेष्टाओं से रहित होता है । जो वेद-शास्त्रों का मंथन कर उसको समझ लिया, विवेक कर संसार को समझ लिया है जिसको कुछ समझना शेष नहीं है । वह निःसन्देह होकर, संशय रहित होकर, शान्त भाव से बैठ जाता है । सभी विकारों से परे जाता है ।

## जिज्ञासु परीक्षण प्रकरण

**हीरा सोइ सराहिये, सहै घनन की चोट ।**
**कपट कुरंगी मानवा, परखत निकरा खोट ।।१६८।।**

**शब्दार्थ**—हीरा-आत्मज्ञ पुरुष, सच्चा ज्ञानी, एक प्रकार का रत्न जो प्रकाशमान होता है । सोइ–उसी को । घनन–घन, लोहार का वह घन जिसके द्वारा लोहा को पीटकर घटाया-बढ़ाया जाता है । कुरंगी–कुरूप, खोटा ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि आत्मज्ञानी सभी चेष्टाओं से परे हो जाता है । उसमें कोई विकार नहीं होता । अब नीचे उसी आत्मज्ञानी का लक्षण कहा जा रहा है ।

**मूलार्थ**—जौहरियों के यहाँ व रत्न पारखियों के यहाँ हीरा खरीदते समय उसकी परीक्षा की जाती है । परीक्षा भी विचित्र तरह की होती है नीचे निहाय पर रखकर ऊपर से घन के द्वारा पीटा जाता है । जो हीरा नहीं फूटता है । उसको तो रतन पारखी लोग क्रय कर लेते हैं । लेकिन जो टूट जाता है उसको नकली साबित करके छोड़ देते हैं । इसी प्रकार से लोक में बहुत लोग अपने को आत्मज्ञानी कहते हैं, आत्मवेत्ता कहते हैं । 'अहं ब्रह्मास्मि' का रट लगाते हैं परन्तु सद्गुरु कहते हैं कि जिस प्रकार से हीरा की कसौटी होती है उसी प्रकार से आत्मज्ञानी की भी कसौटी होनी चाहिए । तभी वे परख में आ सकते हैं । उनकी कसौटी, उनका रहन-सहन, उनका विवेक, वैराग्य उनके अन्दर काम, क्रोध की चेष्टाओं का होना, न होना, दूसरे के कुवचनों से दुःखी-सुखी होना ये सब उनकी परख है । दुःख-सुख सहना अर्थात् जो सभी प्रकार के झंझावातों

से प्रभावित नहीं होते वही पक्के हीरा की भाँति सन्त जन हैं। ज्ञानी जन हैं परन्तु जो कपटी है, बने हुए ज्ञानी हैं। नकली हीरा के समान हैं, कुकर्मी है। ऐसे मनुष्य, ऐसे सच्चे बनने वाले लोग परख करने पर खोटा निकल जाते हैं और ज्ञानियों की कसौटी में ज्ञानी लोगों में और निखार आ जाता है और चमकदार हो जाते हैं। उनमें और सच्चाई भासने लगती है परन्तु बनावटियों में खोटापन साबित हो जाता है।

**हरि हीराजन जौहरी, सभन पसारी हाट।**
**जब आवे जन जौहरी, तब हीरों की साटि ॥१६९॥**

**शब्दार्थ**—जौहरी-रतन पारखी। पसारी-फैलाकर, विस्तार कर। हाट-बाजार। साटि-साट, बाजार, मूल, क्रय-विक्रय, लेन-देन।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि कपटी मनुष्य जो अपने को ज्ञानी बनता है। वह परख करने पर खोटा साबित हो ही जाता है। नीचे की साखी में भी परीक्षा की ही बात चल रही है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्तजन ! हे जिज्ञासु लोग ! हीरा रूपी हरि का बाजार लगाकर जन कहिये भक्त लोग जो अपने को रतन पारखी कहते हैं। सबके सब फैलाकर हाट लगाकर बैठे हुए हैं परन्तु बहुत लोग आते-जाते रहते हैं। न जानकारी के कारण साधारण पत्थर समझकर चले जाते हैं परन्तु जो हरि को समझने वाले हैं जब वे जन, भक्त जौहरी व रतन पारखी आते हैं तब हीरों की क्रय-विक्रय की बात चलती है। तात्पर्य यह कि संसार के सभी धर्मावलम्बी अपने-अपने धर्मों के उपासक हीरा रूपी परमतत्व का अपने-अपने आश्रमों में क्रय-विक्रय के लिए बैठे हैं परन्तु सामान्य लोग उसको नहीं खरीद सकते। जो तत्त्ववेत्ता हैं, जो भगवद् भक्त हैं, जो परमतत्त्व के जिज्ञासु हैं। वही हरि रूपी हीरे की खरीदगी करते हैं।

**हीरा तहाँ न खोलिये, जहाँ कुजरों की हाटि।**
**सहजै गांठी बांधि के, लगिये अपनी बाट ॥१७०॥**

**शब्दार्थ**—कुजरों-कुँजरा, साग-सब्जी बेचने वाला, कुजड़ा।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि प्रभुभक्त लोग भगवान के नामों का आदान-प्रदान करते हैं परन्तु प्रभुतत्त्व की प्राप्ति सब नहीं कर पाते। जो परमतत्त्व के जिज्ञासु हैं वही उसको ग्रहण करते हैं। अन्य उससे दूर ही

रहते हैं। नीचे कहा जा रहा है कि अनधिकारियों के प्रति, अभक्तों के प्रति प्रभु की बात मत करो। अन्यथा वे तिरस्कार करेंगे।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हरि रूपी हीरे की चर्चा वहाँ न करिये, ज्ञान रूपी गठरी को अनधिकारियों के सामने मत खोलिये। उनके सामने हरितत्त्व की चर्चा मत करिये नहीं तो अनादर होगा, अपमान होगा। जिस प्रकार से साग-सब्जियों के बेचने वाले बाजार में हीरा भी बेचने के लिए जाय तो वहाँ साग-सब्जियों के बेचने वाले और खरीदने वाले रहते हैं। वे हीरे को कीमत क्या समझेंगे? इसी प्रकार से जो कामी है, कामना के वशीभूत है। पुत्र-कलत्र, धन-दौलत चाहने वाले हैं, जो लोक-परलोक के जिज्ञासु हैं। उनके सामने प्रभु की चर्चा मत करो। सहज में ही हृदय रूपी गठरी में बाँधकर अपने रास्ता को पकड़ो। अर्थात् सन्त समाज में चले जाओ। भक्तों में जाकर प्रचार करो। निष्कामियों को प्रभु नाम का वितरण करो। अन्यथा उसका अपमान होगा।

**हीरा परा बाजार में, रहा छार लपटाय।**
**केतेहिं मूरख पचि मुये, कोई पारखि लिया उठाय॥१७१॥**

**शब्दार्थ**—हीरा–आत्मज्ञ, पहुँचा हुआ महात्मा, योगी। बाजार–संसार। छार–राख ऊपर से मैला कुचैला। केतेहिं कितने ही। पचि–हार गये।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि हीरा को कुजड़ों की हाट में न खोलो। अर्थात् आत्मज्ञान को अनभिज्ञ मनुष्यों के सामने मत कहो वे समझेंगे नहीं और तुम्हारा कहना व्यर्थ होगा, निष्फल जायेगा। नीचे कहा जा रहा है कि संसार में तत्त्ववेत्ता हैं परन्तु अनधिकारी उनको पहचान नहीं सकेंगे।

**मूलार्थ**—सन्त महात्मा रूपी हीरा, आत्म ज्ञानी रूपी हीरा संसार रूपी बाजार में पड़ा हुआ है। जो पहुँचे हुए महात्मा होते हैं, जो तत्त्वज्ञ होते हैं। वे छिपे रूप में रहते हैं। अपने ज्ञान को किसी के पास प्रगट नहीं करते। शरीर पर मैला-कुचैला कपड़ा लपेटे रहते हैं। कभी धूल ही पोत लिए। कभी पागल की तरह हो गये। उनके पास कोई टीम-टाम नहीं होता है। कोई प्रचार के लिए संस्था नहीं होती है। इसलिए उनके पास जाने पर भी कितने अनभिज्ञ लोग पहचानने की कोशिश किया परन्तु आत्मज्ञानो के व्यवहार से वे हैरान रहे। हारकर थक गये। पहचान नहीं पाये। आत्मज्ञानी को तो कोई विवेकी पुरुष ही पहचान सकता है और

पहचान कर उनका शिष्य बन जाता है और उनसे आत्मज्ञान का लाभ लेता है। जिस प्रकार से हीरा बाजार में गिर गया हो ऊपर धूल-धक्कड़ लिपटा गया हो कितने ही गंवार गुजरे। पर उसको पत्थर समझकर तिरस्कार कर दिये परन्तु विवेकी पुरुष समझ लिया कि यह हीरा है है। इसलिए उसको उठा लिया और कृतकृत्य हो गया। उसकी सारी दरिद्रता भाग गयी। तद्वत आत्मज्ञ पुरुष को जो पहचान लेता है, जो जान जाता है उसके ज्ञान की गरीबता भाग जाती है। वह सद्गुरु पाकर कृतकृत्य हो जाता है और जन्म-मरण से परे हो जाता है।

### रत्न अल्पता प्रकरण

**हीरो की बोरिया नहीं, मलयागिर नहिं पांति।**
**सिंघों के लेहड़ा नहीं, साधु न चले जमाति ॥१७२॥**

**शब्दार्थ**—बोरिया–टाट का बोरा। पांति–पक्ति। लेहड़ा–झुण्ड। जमाति–मण्डली।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि तत्त्वज्ञ पुरुष को जल्दी कोई पहचान नहीं सकता है। केवल जिज्ञासु विवेकी पुरुष ही उनकी पहचान कर सकते हैं। नीचे कहा जा रहा है कि संसार में तत्त्वज्ञ बहुत कम होते हैं।

**मूलार्थ**—जिस प्रकार से हीरा रत्न बोरा भर कर कहीं नहीं रखा होता है और न मलयागिर पहाड़ ही बहुत होता है और न सिंहों का झुण्ड ही बहुत होता है और साधुओं की मंडली भी नहीं होती है। जिस प्रकार से हीरा बोरी भरकर नहीं होता है एक होता है और मलयागिर पर्वत भी एक ही है। इसी प्रकार से सिंहों का झुण्ड नहीं होता है वह केवल अकेला ही रहता है। इसी प्रकार से तत्त्वज्ञ साधु भी मंडली बांधकर नहीं चलते। वे भी उपर्युक्त लोगों की भाँति एकाकी रमते हैं और विविक्त-सेवी होते हैं। क्योंकि सन्त घीसा साहब ने कहा है—

साधुन की फौजे फिरे, साधु न पाया एक।
लाखन मध्ये को कहै, कोटिन मध्ये एक॥

### मान-सम्मान प्रकरण

**अपने-अपने सिरन का, सभन लिया है मान।**
**हरि की बात दुरंतरी, परी न काहू जानि ॥१७३॥**

**शब्दार्थ**—सिरन–शिर पैं। दुरंतरी–दुर्गम, दुस्तर, कठिन जिसका पार या अन्त पाना कठिन हो, दूर।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि तत्त्वज्ञानी अकेले रहता है। नीचे कहा जा रहा है कि उसकी पहचान इसलिए नहीं हो पाती है कि सभी अपने-अपने स्वयं तत्त्वज्ञ बने हुए हैं।

**मूलार्थ**—सद्गुरुदेव कहते हैं कि इस संसार के मनुष्य बड़े दंभी और अभिमानी हैं। इसलिए सन्त सद्गुरु की पहचान नहीं कर पाते और वंचकों के हाथ पड़कर अपना सारा जीवन बेकार कर देते हैं। सभी लोग अपने को बड़ा समझकर किसी साधु सन्त के सामने नतमस्तक नहीं होते। क्योंकि सभी लोग अपने को तत्त्वज्ञ ही मानते हैं। किसी से कोई कम नहीं है। इसकी अवधारणा शास्त्रज्ञ पण्डितों के मन में अधिक रहती है परन्तु सद्गुरु कहते हैं कि हे भाई ! श्री हरि को प्राप्ति की बात बड़ी दूर है और दुर्गम है, अप्राप्य है क्योंकि जब तक आप अपने मान, मर्यादा को अपने सिरों से नहीं फेंकियेगा। तब तक उस परम प्रभु की बात जानने में आप असमर्थ रहेंगे। इसलिए निराभिमान होकर प्रभु का भजन करना चाहिए। मान-सम्मान को गंदे की टोकरी में फेंक देना चाहिए। तभी आप हरि से भेंट कर सकते हैं। जैसे किसी राजा से मिलने कोई गरीब जाय तो वह जब तक दीनभाव से और कुछ हार फूल लेकर नहीं जाता है। तब तक स्वयं राजा के कर्मचारी उससे मिलने नहीं देते हैं। इसी प्रकार से जब तक मानव मन में दैन्यभाव नहीं उत्पन्न होगा। प्रभु मिलन की तीव्र आकांक्षा नहीं होगी तब तक प्रभु उससे बहुत दूर होगा।

## शरीर अनित्य प्रकरण

**हाड़ जरै जस लाकड़ी, बार जरै जस घास।**
**कबीरा जरै राम रस, (जस) कोठिन जरै कपास ॥१७४॥**

**शब्दार्थ**—जस–जैसे। कबीरा–सद्गुरु कबीर, साधक। कोठिन–कोठी, कोठा, बड़ा पक्का मकान, महालय–आ० शरीर।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मानव जब तक निराभिमानी नहीं होगा तब तक प्रभु भक्त नहीं हो सकता। जिसका दृष्टान्त नीचे दिया जा रहा है और जिज्ञासुओं को समझना चाहिए।

**मूलार्थ**—जिस प्रकार से मृतक होने पर शवदाह में शरीर को रख देने पर उसकी अस्थियाँ लकड़ी के समान जलने लगती है। सिर के बाल

घास के समान जलने लगते हैं और जिस प्रकार से बड़े-बड़े महालय में रखा हुआ कपास धीरे-धीरे जलते रहता है उसी प्रकार से प्रभु प्रेमी। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे सन्त भाइयों ! मैं रामरस में जल रहा हूँ। अर्थात् जो मेरा मन है। मेरे जो कुछ विकार था वे रामरस की प्राप्ति के पश्चात् भस्म हो गया। मैं राम की प्रेमाग्नि में सुलग रहा हूँ। जल रहा हूँ। जब तक मैं और राम अभेद नहीं हो जायेंगे तब तक यह जलना चालू रहेगा। तात्पर्य यह है कि अज्ञानी मनुष्य मृत होने पर घास-फूँस व लकड़ी की तरह उसका शरीर भस्म हो जाता है। जिस प्रकार से बड़े-बड़े कोठियों में कपास के गट्ठर अग्नि लगने से जल जाते हैं उसी प्रकार से मैं कबीर कहता हूँ कि जो भगवद् भक्त हैं जो प्रभु प्रेमी हैं। उनका बौद्धिक नाश नहीं होता है और चैतन्य का नाश नहीं होता है। वे राम-रस में निमग्न रहते हैं। रामरस की प्राप्ति में विरह अग्नि में अपने विकारों को जला देते हैं।

**घाट भुलाना बाट बिनु, भेख भुलाना कान।**
**जाकी मांडी जगत में, सो न परा पहिचान ॥१७५॥**

**शब्दार्थ**—घाट–आत्म प्रदेश। बाट–मार्ग, सतपंथ। भेख–वेश, साधु-सन्त। कान–मर्यादा, कर्ण। मांडो–रचना, सवारना, निर्माण करना, दूसरी मांड़ी जो कपड़े में लगायी जाती है। जिससे कपड़ा उज्ज्वल व कड़ा रहता है, सजाना।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि संसारी लोग घास-फूस की तरह जलते हैं। क्योंकि वे काम, क्रोध के वशीभूत रहते हैं। ज्ञानी पुरुष रामनाम में जलते हैं। नीचे कहा जा रहा है कि जब तक सच्चे सन्त सद्गुरु के दर्शन नहीं होते तब तक सतपंथ का मार्ग नहीं मिलता।

**मूलार्थ**—सद्गुरुदेव कहते हैं कि साधना के लिए, प्रभु प्राप्ति के लिए बहुत लोग निकल पड़ते हैं परन्तु गुरु के अभाव में सतपंथ नहीं मिलता। जिसके कारण आत्म प्रदेश का मार्ग लोग भूल जाते हैं क्योंकि मार्ग दर्शक से लोग अजान रहते हैं। शंका उठती है कि क्या ये साधु-सन्त नहीं जानते जो बहुत से वेश धारण कर जगतीतल में घूम रहे हैं तो गुरु महाराज कहते हैं कि ये वेशधारी भी प्रभु मिलन का मार्ग नहीं जानते। क्योंकि अपने-अपने वर्णाश्रम की मर्यादा, पंथ की मर्यादा में भूले हुए हैं। इसलिए जिस जगतगुरु परमात्मा ने जगत की रचना

की है और 'माड़ी' कहिये जगत को सवारा है। वह प्रभु इन वेशधारियों से पहचाना नहीं जा सका अर्थात् इनके पहचान में नहीं आया। ये भी केवल वेश बनाकर खाने-कमाने के फेर में पड़े रहते हैं।

## अनधिकारी प्रकरण

**मूरख सों का कहिये, सठ सों काह बसाय।**
**पाहन में का मारिये, चोखा तीर नसाय ॥१७६॥**

**शब्दार्थ**—सों–से। सठ–हठी। बसाय–कुछ करवाना नहीं, विवशता, उपाय।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अभिमान के कारण पंथ के मर्यादा के कारण जगतकर्ता पहचान में नहीं आया। अब नीचे कहा जा रहा है कि उक्त वार्ता को अज्ञ पुरुषों से कहने में कोई लाभ नहीं है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे भाई जिज्ञासु सन्तजन ! प्रभु पहचान की बात मूर्खों से क्या कहियेगा ? क्योंकि मूर्ख समझेगा नहीं। इसी प्रकार से शठ जो अनधिकारी हैं जो जान बूझकर बातों का परित्याग करते हैं उससे तो और कुछ बसाने वाला नहीं है। अर्थात् कुछ चलने वाला नहीं है। शठ दूसरे की बात को नहीं सुनता है। अपनी ही बात को दुहराते रहता है। इसलिए उसके सामने 'बसाय' कहिये दूसरे की कुछ भी चलती नहीं। जिस प्रकार से पाहन में मारने पर अति चोखातीर भी नसाय कहिये टूट जाता है। उसी प्रकार से उत्तम से उत्तम उपदेश, उत्तम से उत्तम बात मूर्खों और शठों से कहने पर कोई लाभ नहीं होता है। क्योंकि वे सुनने वाले नहीं हैं। इसलिए अनधिकारी के प्रति मौन रहना चाहिए।

**जैसे गोली गुमज की, नींच परी ढहराय।**
**तैसा हृदया मूरख का, सब्द नही ठहराय ॥१७७॥**

**शब्दार्थ**—गुमज–मन्दिर का शिखर। ढ़हराय–ढगर जाना, गिर जाना। तैसा–उसी प्रकार का। सब्द–आत्मज्ञान। ठहराय–रुकना।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अनधिकारी के प्रति कुछ भी कहना निष्फल जाता है और नीचे भी उसी का निषेध किया जा रहा है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरुदेव कबीर कहते हैं कि हे भाई सन्तजन ! जिस प्रकार से गोली को मन्दिर के शिखर पर रखिये तो वह रुकती नहीं।

डगरकर नीचे आकर गिर जाती है। उसी प्रकार से मूर्ख मनुष्य का हृदय होता है। उसके हृदय में सदुपदेश रूपी शब्द रुकते नहीं है। वह एक कान से सुनता है, दूसरे कान से निकाल देता है। इसलिए उसके प्रति कुछ कहना-सुनना निरर्थक है।

**ऊपर की दोऊ गई, हिंयहु की गई हिराय।**
**कहहिं कबीर जाकी चारिउ गई, ताको काह कराय ॥१७८॥**

**शब्दार्थ**—ऊपर–बाहर की। दोऊ–दोनों नेत्र। गई–फूट गयी। हिंयहु–हृदय की भी। हिराय–समाप्त, खो गयी। चारिउ–हृदय का विवेक, वैराग्य व विचार और ऊपर के दोनों नेत्र।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जिस प्रकार से मन्दिर के शिखर पर व गुब्बज पर गोली नहीं रुकती है। उसी प्रकार से मूर्ख के हृदय में गुरु का शब्द नहीं रुकता। अब कहा जा रहा है कि जिसके विवेक, विचार नष्ट हो गये हैं और बाहर के दोनों चर्म चक्षु भी समाप्त हो गये हैं। उसके लिए कोई उपाय नहीं है कि वह किस मार्ग का दर्शन करे।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे भद्र पुरुष सन्तजन ! जिस मनुष्य का ऊपरी दोनों नेत्र गायब हो जाँय और हृदय के विवेक विचार भी समाप्त हो जाँय। मैं कबीर कहता हूँ कि जिसकी ये चारों आँखें चली गयी, नष्ट हो गयी। उसके लिए क्या उपाय है कि वह सत्यमार्ग पर आये। अर्थात् जिसमें बाहर भीतर की शुद्धि नहीं है, जो चतुष्टय साधनों से रहित है, जिसमें विवेक, वैराग्य नहीं है, जो सन्त महापुरुषों की सेवा नहीं किया है, जो बड़ों का अनादर किया है और उसके पास अच्छी बात समझने की शक्ति भी नहीं है तो क्या उसके सुधरने का कोई उपाय है अर्थात् कुछ भी नहीं।

**केते दिन ऐसे गये, अनरुचे का नेह।**
**ऊसर बोय न ऊपजे, (जो)अति घन बरसे मेह ॥१७९॥**

**शब्दार्थ**—केते–कितने। अनरुचे–बिना रुचि का। ऊसर–मरुभूमि, शुष्क, हृदय। बोय–बीज गिराकर। घन–बादल, सद्गुरु। मेह–वर्षा, पानी, आत्मज्ञान, सदुपदेश।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जिसकी चारों दृष्टि चली गयी। उसके सुधरने की कोई आशा नहीं है। क्योंकि नीचे कहा जा रहा है कि

उस शुष्क हृदय के लिये बहुत दिन कहते-कहते बीत गये परन्तु वह एक भी नहीं सुना।

**मूलार्थ**—अनधिकारी मनुष्यों के प्रति कितने दिन अच्छी बातों को कहते-कहते बीत गये परन्तु वह सतमार्ग का गामी नहीं हुआ। उसी प्रकार से जैसे किसी व्यक्ति के प्रति बहुत प्रेम किया जाय। उसके सुधरने के लिये, उसके हित के लिये अच्छी से अच्छी बातें कही जाँय परन्तु उसको रुचिकर न लगे। केवल ऊपरी भाव से प्रेम दिखाता हो तो सब कहना सुनना बेकार हो जाता है। जिस प्रकार से ऊसर भूमि में कितना भी उन्नत बीज बोइये परन्तु वह उपजता नहीं है। चाहे बलाहक लोग व बादल लोग कितनी भी वर्षा बरसावें, कितना भी अमृत पानी गिरावें परन्तु ऊसर भूमि में बीज कभी उग नहीं सकता। उसी प्रकार से जिसका हृदय सरस नहीं है अत्यन्त शुष्क है, विवेक, विचार से रहित है। जिसमें श्रद्धाभक्ति का अभाव है। यत्किंचित उसके हृदय में प्रेम की भावना नहीं है। तो बादल रूपी सद्‌गुरु अमृत रूपी ज्ञान की वर्षा कितना भी बरसावें, कितना भी कहें पर उस मूर्ख को, उस हृदय-हीन को कोई लाभ नहीं होगा। क्योंकि उसमें ग्रहण करने की शक्ति ही नहीं है।

**मैं रोवौं यहि जगत को, मोको रो वैन कोय।**
**मोको रोवै सो जना, (जो) सबद विवेकी होय ॥१८०॥**

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि शुष्क हृदय में कुछ कहना ऊसर भूमि के समान है परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि लोगों को देखकर बहुत तरस आ रही है। उसके दुःख सहन नहीं हो रहे हैं। इसलिए कुछ कहना पड़ता है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि हे मंगलमय सन्तजन ! इस जगत के लोगों को देखकर मुझे बड़ी रुलाई आ रही है। क्योंकि सभी लोग आधि-व्याधी से पीड़ित हैं, दुःखी हैं। संसार में रहने वाले किसी को भी सुख नहीं है। उसके अशान्त जीवन को देखकर मेरा मन कम्पायमान हो रहा है। मैं दुःख से कातर हो रहा हूँ। मैं सोचता हूँ सभी सुखी हो जाँय, सब आनन्द की नींद में सोवै। सच्चाई के साथ संसार में रहे। हे भाई सन्तजन ! इन दुःखी मनुष्यों की देखकर मेरा हृदय कराह रहा है, झटपटा रहा है। पर ये जगत के मनुष्य मेरे लिए रोने को तैयार नहीं हैं। मेरी दुःख वेदना को ये समझ नहीं रहे हैं। मेरी

ओर आ नहीं रहे हैं। न मेरी बात सुन रहे हैं। जिससे की ये संसारी जन सुखी हो जाँय। दुःख से परे हो जाँय। मेरे बिछुड़ने का पश्चाताप वही करता है, मेरे लिए वही मनुष्य रोता है जो मेरे उपदेशों का, मेरे शब्दों का विवेक करता है कि कबीर बहुत बड़ी बात कह रहे हैं, मानव हित के लिये कह रहे हैं, देश हित के लिए कह रहे हैं, समाज हित के लिये कह रहे हैं इसलिए इनकी बात पर संसार को विचार करना चाहिए।

**साहब-साहब सब कहैं, मोहि अंदेसा और।**
**साहब से परचै नहीं, बैठोगे केहि ठौर ॥१८१॥**

**शब्दार्थ**—साहब–परमात्मा, ईश्वर, सद्गुरु। अंदेसा–संशय, शंका। परचै–जान पहचान, प्राप्ति।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मैं सारे संसार के लिए चिन्तित हूँ। पर संसार के लोग मेरी चिन्ता पर ध्यान नहीं दे रहे हैं। अब नीचे कहा जा रहा है कि 'गतानुगति लोकः' ईश्वर का नाम लेते हैं, प्रभु को भजते हैं परन्तु भजने का मार्ग नहीं जानते।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि सभी लोग साहब साहब कहते हैं। राम-राम कहते हैं, ओंऽम-ओंऽम कहते हैं परन्तु हे भाई सन्त जन! इस प्रकार कहने में मुझे शंका हो रही है। केवल वाणी से लोग राम नाम का उच्चारण करते हैं। इनका मन संसार के कार्यों में लगा हुआ है इसलिए ये लोग 'साहब' कहिये उस महान् से बहुत दूर हैं क्योंकि वह साहब कैसा है? उसका परिचय व जानकारी इनको नहीं हुई है जब तक साहब से परिचय नहीं होगी तब तक साहब की प्राप्ति नहीं होगी। तब तक केवल नाम लेने से धर्म कथा सुनने से कोई लाभ नहीं होगा। इसलिए साहब कहते हैं कि बिना परिचय के तुम लोग कहाँ बैठोगे और कहाँ निवास बनाओगे? यदि परिचय हुआ होता तो आत्मपद रूपी ठौर पर तू पहुँच जाता परन्तु परिचय के बिना तुझे आत्म स्थिति होने को नहीं है। इसलिए संसार से विमुख होकर प्रभु से परिचय करो तब तेरा कल्याण हो सकता है।

## अहिंसा कारुण्य प्रकरण

**जीउ बिना जिउ बांचे नहीं, जिउ का जीउ अधार।**
**जीउ दया करि पालिये, पंडित करो विचार ॥१८२॥**

**सम्बन्ध**—ऊपर की साखी में कहा गया है कि प्रभु से परिचय नहीं हुआ केवल राम-राम रटते रहा। जब तक नामी को नहीं जानेगा तब तक नाम से कुछ नहीं होने का है। नीचे कहा जा रहा है कि यदि तूझे नामी को पकड़ना है तो जीव पर दया भी रखो। बिना दया के प्रभु अन्दर नहीं आता है।

**मूलार्थ**—संसार में देखा जाता है कि एक मनुष्य दूसरे का सहायक होता है और दूसरे, तीसरे का सहायक होता है। सद्गुरु का तात्पर्य यहाँ पर यह है कि मानव सामाजिक प्राणी है। बिना समाज के वह जी ही नहीं सकता है। यदि उसको समाज से अलग कर दिया जाय तो अविकसित दशा में पशुवत् आचरण करेगा। इसलिए समाज में ही रहकर आगे बढ़ सकता है जिसके कारण मनुष्य को सामाजिक प्राणी कहा गया है। इसलिए साहब कहते हैं कि एक जीव के बिना दूसरा जीव बच नहीं सकता है। एक दूसरे की सहायता आवश्यक है क्योंकि जीव का आधार जीव ही है। पशु आदि योनियाँ अधिकतर मनुष्य के अधीन हैं और मनुष्य के द्वारा उनका पालन-पोषण होता है। इसलिए मनुष्येतर जितने प्राणी हैं वे और जितने मनुष्य हैं वे भी एक दूसरे के सहारे जीते हैं। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि दया कहिये करुणा के साथ प्राणियों का पालन करें, उनकी रक्षा करें उनकी हिंसा न करें। क्योंकि हिंसा से हृदय क्रूर हो जाता है, मन अशान्त हो जाता है। इसलिए बलि आदि करते समय पण्डित जन को इस पर विचार करना चाहिए। बिना विचार के जो कार्य होंगे वे बाद में दुःख देंगे। इसलिए कार्य आरम्भ के प्रथम परिणाम का भी ध्यान रखना परमावश्यक है।

**हम तो सबही की कही, मोको कोइ न जान।**
**तब भी अछा अब भी अछा, जुग जुग होउँ न आन ॥१८३॥**

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मानव के लिए दया सबसे प्रधान दैवी गुण है। इसलिए मनुष्य में दया होना बहुत जरूरी है अब नीचे कहा जा रहा है कि इस विषय में मैंने सभी से कहा कि मानव को अहिंसक होना चाहिए, प्राणियों का नाश नहीं करना चाहिए। क्योंकि कोई प्राणी मरना नहीं चाहता।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सद्मते सन्त जन! दया के विषय में मैंने सबसे ही कहा। हिन्दू से भी कहा, मुसलमानों से भी कहा। जो

सबमें भूलें थीं, अन्धविश्वास था धर्म के नाम पर अधर्म हो रहे थे। उन सभी धर्मावलम्बियों की बात मैंने कहा परन्तु मोको कहिए मुझको कोई जान न सका कि कबोर क्या कह रहे हैं ? किस स्थिति में कह रहे हैं ? अर्थात् हिंसा से राग-द्वेष बढ़ता है। आत्म प्राप्ति से मनुष्य वंचित हो जाता है। इस भावना को लेकर मैंने कहा कि आप लोग हिंसा न करें। यदि आप लोग मेरो बात को मान जाते हैं तो तब भी अच्छा रहेगा और नहीं मानते हैं तब भी मेरे लिए अच्छा है। मेरी तो उससे कोई हानि होने वाली नहीं है मैं तो सबमें प्रभु की पहचान कर लिया हूँ। सारे संसार को प्रभु मय देखता हूँ इसलिए मैं प्रत्येक युगों में दूसरा होने वाला नहीं हूँ। अब मैं आत्मा के तद्रूप हूँ, आत्मा हूँ इसलिए मेरे लिए तीनों काल अच्छा है। अब एक समान आत्मा में विचरण करने वाला हूँ आन कहिये अब इसमें द्वैतभाव उत्पन्न होने वाला नहीं है।

**प्रगट कहौं तो मारिया, परदा लखै न कोय।**
**सहना छिपा पोवार तर, को कहि बैरी होय ॥१८४॥**

**शब्दार्थ**—मारिया–मारता है, अपमान करता है। परदा–आवरण, अज्ञान। सहना–खेत का रक्षक, वह खेत जो सरकार की तरफ से नीलाम किया गया हो और दो पक्षों के बीच में झगड़ा हो जिस पर रिसीवर बैठा हो, सहना उस अधिकारी का नाम है जो दोनों ओर से देखभाल करता है। पहले उसको कोतवाल भी कहते थे, काल। पोवार–पुआल, पैरा, अज्ञान। तर–नीचे, आड़ में।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि यदि मनुष्य अपनी भूल को स्वीकार कर ले तो उसका सुधार हो सकता है और वह सुधर जाने पर सन्तत सुखी रहता है परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि जब तक मनुष्य हित की बात नहीं समझता है तब तक हितैषी को शत्रु मानता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्त जन ! मैं जो कुछ कहता हूँ। स्पष्ट कहता हूँ कोई बात छिपाकर नहीं कहता हूँ। किसी के हित के बारे में कहना हो तो साफ-साफ कहना चाहिए परन्तु जब तक मनुष्य हितैषी को हितैषी नहीं समझता है। तब तक उसको शत्रु मानकर प्रताड़ित करने की भावना रखता है। अज्ञान से आवृत मनुष्य जो परदा-रूपी अज्ञान उसके अन्दर है, जो बुद्धि के अन्दर आवरण पड़ गया है। उस पर विचार नहीं करता है न उसको देख सकता है। यदि मनुष्य अपने

दोष को देख ले, अपने अज्ञान को समझ जाय। अपनी भूल मान ले तो हितैषी की वह उपासना करता है परन्तु संसार में भूले हुए मनुष्य शीघ्र सुधरते नहीं। जिस प्रकार से खेत रक्षक स्वयं चोर हो जाय। रक्षा के स्थान पर स्वयं भक्षक का काम करे और पोवार कहिये किसी वस्तु की ओट लेकर वह छिपकर पाप करता है, खेतीहर के साथ धोखा करता है तो भला खेत वाले से कहकर कि सहना तुम्हारे खेत का अनाज स्वयं चुरा लेता है। इस प्रकार को बात कहकर उस रक्षक कोतवाल का बैरी कौन हो ? इसी प्रकार से प्रकट रूप से यदि मैं कहता हूँ कि एक ईश्वर सत्य है। जो सर्व का साक्षी है वह अज्ञान के कारण दिखाई नहीं देता है। जो तू बहुत देव-देवियों की उपासना कर रहा है यह उत्तम नहीं है। तू आत्मा की प्राप्ति कर और एक ईश्वर की उपासना कर ऐसा कहने पर लोग मुझे अज्ञानो समझते हैं, पागल मानते हैं। इसी प्रकार से इनका सहना स्वरूप जो उपासक है वही इनका भक्षक है। अर्थात् जिन आशा, वासा, तृष्णा के अभिभूत होकर संसार को अपना मानते हैं। वह संसार इनका रक्षक न होकर अज्ञान के ओट में, आवरण के ओट में काल स्वरूप है परन्तु उसका विरोध करने पर सच्चो बात बताने पर ये संसार के लोग बैरी समझते हैं। हिताहित का ज्ञान नहीं रखते हैं इसलिए सांसारियों के सामने चुपचाप रहना चाहिए नहीं तो वे अकारण बैर करेंगे।

**आशय**—यदि सच्ची बात को परदा हटाकर कहा जाय तो लोग बुरा मानते हैं। उनके चालू कर्म का विरोध किया जाय तो भो शत्रु समझते हैं। सबके अन्दर एक अद्वितीय परब्रह्म छिपा हुआ है परन्तु उस पर माया का आवरण लगा है। उसको कोई उघार कर देखता नहीं है जो सत्य दिखाई देवे। जिस प्रकार से खेत का रक्षक कोतवाल स्वयं खेत की चोरी कर रहा हो और खेत स्वामो के आने पर पुआल के ओट में छिप जाया करता है परन्तु कोई तीसरा व्यक्ति देखता हो कि कोतवाल ही चुरा रहा है और छिपा भी है और खेत स्वामी चोर को पकड़ने में हैरान है। उसकी विकलता को कोई देख रहा हो परन्तु भयवश कोतवाल को चोरी को नहीं कह रहा है क्योंकि भूमि स्वामी किञ्चित उसकी बात पर विश्वास नहीं करे तो उलटे कोतवाल बताने व पकड़वाने वाले पर ही बरस जाय।

इस प्रकार से जो कर्मकाण्डी गुरुजन हैं, जो द्वैतवादी हैं। वे ही समाज के रक्षक हैं परन्तु द्वैत बुद्धि और कर्मकाण्ड के कारण समाज का अहित हो रहा है। इस बात को सन्त सद्गुरु जानते और देखते हैं परन्तु वे इस

सच्ची बात को कहीं कह नहीं पा रहे हैं कि हे मानव ! तुम्हारे अधिकार का वंचन तो तुम्हारे रक्षक गुरु ही कर रहे हैं। यदि यह बात तीसरा व्यक्ति कहता है तो वंचक गुरुओं से उसके प्राण जाने का भय है। क्योंकि सर्वसाक्षी, सर्वात्मा सबके हृदय मन्दिर में विराजमान हैं। उसी की प्राप्ति से मानव के दुःखों का अन्त हो सकेगा अन्यथा पुआल स्वरूप ओट व आवरण कर्मकाण्ड के आड़ में ये गुरु लोग तीर चलाते रहेंगे। चोरी करते रहेंगे और समाज का नुकसान होते रहेगा।

## मुमुक्षु अभाव प्रकरण

**देस बिदेसे हौं फिरा, मनहिं भरा सुकाल।**
**जाको ढूढ़त हौं फिरौं, ताका परा दुकाल ॥१८५॥**

**शब्दार्थ**—सुकाल–सुलभ। भरा–भरपूर। जाको–जिसको। ताका–उसका। परा–हुआ। दुकाल–अकाल पर अकाल पड़ना।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि कोई बात सच्ची कहने पर लोग मानते नहीं। उल्टे मारने के लिए दौड़ते हैं परन्तु पर्दा स्वरूप अपनी भूल को नहीं देखते। जिनको अपना रक्षक मानते हैं वही छिपे रूप में इनका शत्रु है। पर इस बात को कहकर कौन बैरी हो ? अब कहा जा रहा है कि इस भारत में और भारत के बाहर के देशों में मैं घूम फिर कर देखा परन्तु सर्वत्र जिज्ञासुओं का अभाव था।

**मूलार्थ**—गुरुदेव कबीर कहते हैं कि हे विमलमति के सन्तजन ! देश से विदेश तक मैं फिरा। अच्छे लोगों की खोज किया परन्तु जहाँ जाता था सभी लोग वैसे ही मिलते थे। जैसे पहले लोग मिल चुके थे। जो मारने के लिए दौड़ते थे। मनहि कहिये पूर्णरूप से जो अपनी विचारधारा को ही उत्तम मानते हैं। दूसरे की बात सुनते ही नहीं। इनका तो सुकाल है। ये तो बहुत प्राप्त हैं। इनके लिए अच्छा समय है। जो गलत काम में ही लगे रहते हैं, जो गलत व्यवहार से भरपूर हैं। इनका मिलना कुछ भी कठिन नहीं है परन्तु जिनको मैं खोजता हूँ, ढूढ़ते फिरता हूँ। उन सत्यकाम जिज्ञासुओं का दुकाल पड़ा है अर्थात् उनका अभाव है। जो मेरी बात सुनें। सत्य पर चलने के लिए तत्पर हों, बुराईयों का त्याग करें, सत्य बोलें, इन्द्रियों का निग्रह करें। ऐसे लोगों का अभाव है, कहीं मिल नहीं रहे हैं।

**कलि खोंटा जग आँधरा, सब्द न मानै कोय।**
**जाहि कहौं हित आपना, सो उठि बैरी होय ॥१८६॥**

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अच्छे लोगों का दुकाल है। बुरे लोगों की भरमार है। नीचे कहा जा रहा है कि यह समय ही खराब है। यह समय ही अच्छा नहीं है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सत्य के उपासक सन्तजन! यह कलियुग का समय बहुत खोटा है। अविवेकियों की भरमार है। संसार के सभी लोग विचार विवेक से शून्य हैं। अज्ञान रूपी अन्धकार से आवृत हैं। क्योंकि सत्य उपदेशक के शब्द को कोई मानने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं। जिसको मैं अपना हितैषी समझता हूँ, जिज्ञासु मानता हूँ। यदि उसके हित में कुछ कहता हूँ तो वही उठकर बैरी बन जाता है। क्योंकि सभी लोग ज्ञान के अन्धे हैं। सत्य-असत्य उनकी दृष्टि में दिखाई नहीं दे रहा है। सभी की विपरीत बुद्धि हो गयी है। असत्य में हो सत्य भास रहा है।

## स्वानुभूति प्रकरण

**मसी कागद छूवों नहीं, कलम गही नहिं हाथ।**
**चारिउ जुग के महातम, (कबीर) मुखहि जनाई बात ॥१८७॥**

**शब्दार्थ**—मसी–स्याही। कलम–लेखनी। गही–ग्रहण।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि इस कलि के लोग बड़े खोटे हैं। विवेक, विचार से हीन हैं। हिताहित का ज्ञान नहीं रखते हैं। अब कहा जा रहा है इन लोगों के समक्ष कि जो कुछ मैंने कहा मौखिक कहा। उपदेश देकर कहा परन्तु तो भी ये अपना समझने के लिए तैयार नहीं हैं।

**मूलार्थ**—आजकल के प्रत्येक लोगों की अवधारणा हो गयी है कि कबीर साहब पढ़े-लिखे नहीं थे। उदाहरण स्वरूप इसी 'साखी' को कहते हैं परन्तु यत्किंचित विचार नहीं करते कि ऊपर के प्रसंग क्या हैं और क्या कबीर साहब कहते आ रहे हैं? यदि इस साखी से मान लिया जाय कि वे पढ़े-लिखे नहीं थे। तो अब कहते हैं कि—

सात समुद्र की मसि करूँ, लेखनि सब बनराय।
सब धरती कागद करूँ, हरि गुन लिखा न जाय॥

इसके अनुसार अपठित आदमी लिखने की बात नहीं कर सकता।

जो लिखने में सक्षम होगा वही कागज की बात करता है। वही कलम की बात करता है। इतना विस्तृत विचार वाला व्यक्ति कम ही मिलेंगे जो परमेश्वर को इतनी बड़ी अनुभूति किया हो। जो गुरु का महान ज्ञान देख चुका हो वही मंत्र की महिमा का आकलन कर सकता है। दूसरी बात यदि सद्‌गुरु कबीर पढ़े-लिखे न होते। साक्षर न होते, अक्षर के ज्ञानी न होते तो 'बीजक' में जो 'ज्ञानचौंतोसा' आया है, जो प्रत्येक अक्षरों पर चौपाई बनायी गयी है और उनके माध्यम से महानतम ज्ञान कहा गया है। भला पढ़ा-लिखा न होते तो प्रत्येक अक्षर पर पद बनाना और उस पर उपदेश देना कैसे सम्भव था? यह बात उसी प्रकार से है जिस प्रकार से कालिदास ने भी अपने को विद्या और बुद्धि से हीन कहा है? क्या कोई आज कालिदास जी को विद्या, बुद्धि हीन कह सकता है। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि—

'कवित विवेक एक नहिं मोरे, सत्य कहहूँ लिखि कागद कोरे।'

क्या उन्हें कविता का विवेक नहीं था। इत्यादि बातें विचारणीय हैं। सद्‌गुरु कबीर साहब के बारे में लोगों की एक विचित्र मानसिकता बन गयी है कि वे पढ़े-लिखे नहीं थे। यह पता नहीं कि पढ़े-लिखे का क्या अर्थ होता है? पढ़ने का एक अर्थ श्रुतिग्रहण भी होता है। संसार के जितने विद्यार्थी पढ़ते हैं। वे गुरु के द्वारा सुनते हैं तब लिखते और बोलते हैं। यदि कबीर साहब किसी पाठशाला में पढ़ने न गये होते तो ज्ञान चौतीसा जैसे प्रकरण को कैसे बनाते? क्या आज की तरह उस समय भी पाठशालाओं का सुनियोजित ढंग था। जब उन्होंने उनचास वर्ष तक लगातार स्वामी रामानन्द के सानिध्य में रहे और देश-विदेश के तमाम विचारकों, विद्वानों से सम्पर्क किये। कुछ सुना समझा होगा कि नहीं। श्रुति का अर्थ सुनना होता है पहले शिक्षा सुनी जाती थी, ज्ञान सुना जाता था। कण्ठाग्र रखा जाता था। आज की तरह कागज की कम्पनियाँ नहीं खुली थी और स्याहियों के कार्यशाला नहीं बने थे। उन दिनों के साधन लेखन के भोजपत्र और ताड़पत्र ही थे। यद्यपि कबीर साहब के काल में कागज के आविष्कार की आरम्भिक दशा थी परन्तु वे भी कागज केवल हाथ से बनाये जाते थे उनके लिए यन्त्र नहीं बन पाये थे। इसलिए वह समय कंठस्थ का काल था, श्रवण का काल था, लेखन का काल नहीं था। लिखे कम जाते थे। मौखिक वक्तव्य अधिक दिये जाते थे। उसी को ध्यान में रखकर इस 'साखी' का अर्थ समझना चाहिए।

सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्तजन ! लोगों को समझाने के लिए मैं कबीर मसि और कागज हाथ में नहीं रखा। उसका स्पर्श नहीं किया और प्राकृत मनुष्यों की तरह हाथ से लेखनी पकड़कर बड़े-बड़े पोथे, नहीं रचा। मैं जो सत्य समझता हूँ और जिस सत्य का अनुभव किया हूँ। वह चारों युगों का माहात्म्य है, वह परमतत्त्व है, वह सत्य है। क्योंकि सत्य की महिमा सब काल में होती है। इसलिए मैं कबीर जो कुछ कहता हूँ वह मुख से ही जनाकर अपनी बात कहता हूँ। वह है सत्य।

## आत्मबोध ज्ञान प्रकरण

**फहम आगे फहम पाछे, फहम दहिने डेरी।**
**फहम पर जो फहम करै, सो फहम है मेरी ॥१८८॥**

**शब्दार्थ**—फहम-ज्ञान, समझ, विवेक, आत्मतत्त्व। डेरी-बाँया, ढ़ेरी, राशि, पुन्ज।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अपनी शिक्षा को मैं स्वयं मौखिक कहकर सुनाया। किसी के आश्रय नहीं छोड़ा। मेरी शिक्षा, मेरा ज्ञान लौकिक नहीं है, अलौकिक है, परमतत्त्व है, आत्मज्ञान है। जिसकी महिमा चारों युगों में विद्यमान है।

**मूलार्थ**—अब नीचे कहा जा रहा है कि वह आत्मज्ञान व आत्मतत्त्व चतुर्दिक दशों दिशाओं में व्याप्त है। वह परमब्रह्म व्यापक है। वह आगे भी है, पीछे भी है और मध्य में भी है, बायें भी है। डेरी कहिये पुंज स्वरूप चतुर्दिक है। उस आत्मतत्त्व पर जो विचार करता है। उस परमतत्त्व की जो प्राप्ति चाहता है। अर्थात् जो फहम पर फहम करता है। जो ज्ञान पर ज्ञान करता है। जो नित्य परमतत्त्व की चर्चा करता है। वही परमतत्त्व मेरा सिद्धान्त है। उसी परमतत्त्व की मैं उपासना करता हूँ। वही मुझे प्राप्त है। उसी की प्राप्ति सभी के लिये उत्तम है।

**हद चले सो मानवा, बेहद चले सो साध।**
**हद बेहद दोउ तजै, ताकर मता अगाध ॥१८९॥**

**शब्दार्थ**—हद-सीमा, लोक मर्यादा। बेहद-असीम, सीमा से रहित, लोक मर्यादा को त्यागकर आगे बढ़ना। ताकर-उसका। अगाध-अथाह, अगम।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि परमब्रह्म, परमतत्त्व व्यापक है। उसके बिना कहीं रिक्तता नहीं है। वह पूर्ण है। अब नीचे कहा जा रहा है कि उसकी प्राप्ति वाला पुरुष लोक व्यवहार से परे होता है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे सन्तजन ! हे शील सम्पन्न जिज्ञासु-जन ! जो लोक लाज की मर्यादा में रहता है। जो वेद-शास्त्र धर्मग्रन्थों के अनुसार चलता है। वह तो सहज रूप से मनुष्य है। उसको मानव समझना चाहिए। यही मानव को सीमा है और जो सभी लोक कानि को त्यागकर आगे बढ़ जाता है। सभी वर्णाश्रम का त्याग कर देता है वह साधु सन्त कहलाता है परन्तु इस प्रकार की सीमा और असीमा दोनों को जो तज देता है, जो दोनों के मध्य में रहता है। उसका मता अगाध है, अथाह है। भाव यह हुआ कि जो मूलाधार की साधना को छोड़ देता है और जो सहस्रार की साधना को छोड़ देता है। जो लोक की मान्यताओं को अमान्य कर देता है जो परलोक की मान्यताओं को अमान्य कर देता है जो हृदयस्थ शरीर के मध्य में विराजमान होता है उसका विचार अथाह हो जाता है। अर्थात् गहरे समुद्र में गोता लगाते रहता है। इस मध्य में रहने की बात बहुत लोगों ने कही है। भगवान बुद्ध ने अपने 'मंझिम निकाय' में मध्य का बहुत महत्त्व दिया है। इसी प्रकार से उपनिषदों में भी हृदय निवासी को महत्त्व दिया गया है।

**समुझे की गति एक है, जिन समुझा सब ठौर।**
**कहैं कबीर ये बीच के, बलकहिं और कि और ॥१९०॥**

**शब्दार्थ**—गति–ज्ञान, मति, स्थिति, पहुँच, प्राप्ति। बीच–अधकचरे, अपूर्ण ज्ञानी, मध्य। बलकहि–बलकना, उबलना, आवेश में आकर कुछ का कुछ बकना, उमड़ना।

**सम्बन्ध**—ऊपर की साखी में अतिवादी का विरोध किया गया है इसलिए कि अतिवाद में अस्तित्व समाप्त हो जाता है और सीमावादी को भी उत्तम नहीं कहा गया है। क्योंकि वह एक बन्धन में है। मध्य मार्ग में रमने वाले को उत्तम कहा गया है। इसलिए हृदय स्थित परम-तत्त्व की उपासना करना ही श्रेष्ठ है। अब नीचे कहा जा रहा है कि उक्त वस्तु की जानकारी कर लेने पर सभी प्रकार के भेदभाव समाप्त हो जाते हैं।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि हे सद्‌बुद्धि के सन्तजन ! जो

आत्मज्ञानी हैं, जो आत्मवेत्ता हैं। जो सभी पदार्थों में एक तत्त्व को समझ लिये हैं। जिस प्रकार से किसी भी देशकाल में आकाश एक ही है। इसी प्रकार से जिन महापुरुषों ने, महाज्ञानियों ने एक आत्मा का दर्शन, एक परमतत्त्व की प्राप्ति परमतत्त्व का साक्षात्कार प्राणिमात्र की योनियों में कर लिया है कि सभी धर्मों में एक ही तत्त्व है। सभी महापुरुषों की एक पहुँच है। उन करोड़ों ज्ञानियों का एक ही विचार एक ही कथन होता है। जिन लोगों ने सभी स्थानों में उस परमतत्त्व को समान रूप से समझा है। उन सैकड़ों महापुरुषों में कोई अन्तर नहीं होता है परन्तु मैं कबीर कहता हूँ कि वे अधकचरे में हैं, वे बीच के हैं जो दूसरे को नीच बतलाते हैं। अपने को उत्तम बनते हैं। अपने धर्म को, अपने सिद्धान्त को सर्वश्रेष्ठ मानकर बलकने लगते हैं। रोष में आकर और की और कहने लगते हैं क्योंकि ऐसे लोग अज्ञानी हैं। जो कहते हैं कि जोववाद ही श्रेष्ठ है। जो कहते हैं कि ब्रह्मवाद ही श्रेष्ठ है। जो अनेक प्रकार के वादों में लटके हुये हैं वही बीच के हैं, वही अधकचरे में हैं उन्हें आत्मज्ञान होना सम्भव नहीं है। क्योंकि अनाथदास जी कहते हैं कि—

'अनाथ सुज्ञानी कोटि का, निश्चय निज मति एक।
एक अज्ञानी के हिये, बरतत मता अनेक॥'

इसी प्रकार से एक 'सूक्ति' और है—'सौसयाने एक मता।'

## भटकाव प्रकरण

**राह विचारी का करे, जो पंथि न चले विचार।**
**अपना मारग छोड़ि के, फिरे उजार-उजार॥१९१॥**

**शब्दार्थ**—राह–मार्ग, सत्पंथ। विचारी–सरल, सीधा, असमर्थ। पंथि–पंथ पर चलने वाला, किसी धर्म का अनुयायी। अपना–निजात्म प्रदेश का। उजार–जंगल, वन।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि सभी ज्ञानियों का एक ही विचार है, एक पहुँच है। नीचे कहा जा रहा है कि वे अधकचरे हैं जो ज्ञानियों के रास्ते पर नहीं चलते।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे बुद्धिमान जिज्ञासुजन! राह विचारी क्या कर सकती है? वह तो जड़ है। उस पर चलने वाला पंथी विवेक,

विचार कर न चले। कुरास्ता पर चले तो काँटा, कुश गड़ ही जायेगा। जिस मार्ग पर चलना है। वह अपना मार्ग है। अपने गन्तव्य मार्ग को छोड़कर बीजावान के जंगलों में घुस जाय तो उसको कहाँ से रास्ता मिलेगा? वहाँ तो उलझ-पुलझ कर मर जायेगा। इसी प्रकार से जो आत्मप्रदेश का मार्ग है, एकता का उपदेश है। उस एकात्म पंथ पर जो पंथी कहिए साधक है, धर्मावलम्बी है। विवेकपूर्ण विचार से नहीं चलता है तो इसमें गुरु के सदुपदेश का क्या दोष है? ज्ञानियों के विचार का क्या दोष है? वे तो रास्ता का निर्माण कर दिये हैं। आत्मलोक में जाने का पंथ गढ़ दिये हैं परन्तु समुदाय के बन्धन में जो अपना आत्मकल्याण का मार्ग है उसका परित्याग करके जो लोग अनेक प्रकार के काम्य कर्मों में फिरते हैं। नाना प्रकार की उपासनाओं में उलझे हुए हैं। उनमें एकता थोड़े ही आ सकती है। वे सदा भवचक्र में ही पड़े रहेंगे।

**मूवा है मरि जाहुगे, मुये की बाजी ढोल।**
**सपन सनेही जग भया, सहिदानी रहिगौं बोल ॥१९२॥**

**शब्दार्थ**—मुवा है–मर चुका है। सपन–स्वप्न। सनेही–स्नेही, प्रेमी, प्रेम करने वाला, चाहने वाला, प्रियतम, समान। सहिदानी–(सं॰ संज्ञान), चिह्न, पहचान, निशान।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो साम्प्रदायिक होते हैं, जो कौवा की तरह चोंच मारते हैं। अपनी बात का हठ नहीं छोड़ते। उन्हें सत्य मार्ग का दर्शन नहीं होता और बार-बार जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहते हैं। नीचे कहा जा रहा है कि ऐसे लोग जन्मते-मरते रहते हैं और संसार रूपी जंगल मे बार-बार भ्रमते रहते हैं

**मूलार्थ**—गुरुदेव कबीर कहते हैं कि संसार के अज्ञानी मनुष्य जिन्हें कभी आत्मज्ञान नहीं हुआ है वे तत्त्वज्ञान के अभाव में पहले भी मर चुके है और पुनः आत्मज्ञान न होने पर मरेंगे। क्योंकि अज्ञानियों के मरने की यमराज ने ढोल बजा रखी है। वे अज्ञानी मनुष्य स्वप्न की वस्तु से स्नेह करने वाले हैं। यह संसार जो स्वप्न के समान है। उसी में उनकी निष्ठा है। सारे संसार के मनुष्य संसार को ही श्रेष्ठ मान बैठे हैं परन्तु ये मरने वालों में हैं, मर जायेंगे। क्योंकि इनकी बोली चिह्न मात्र रह जायेगी कि अमुक वंश में अमुक पुरुष उत्पन्न हुआ था। केवल कागज पत्रों में नाम रह जायेगा। संसार में इनकी कुछ देन नहीं होगी। न ये संसार का उपकार करने वाले हैं।

**मुवा है मरि जाहुगे, बिन सर थोथी भाल।**
**परेहु कराहल ब्रिछ तर, आज मरहु कि काल ।।१९३।।**

**शब्दार्थ**—सर–वाण। थोथी–मुड़ा हुआ, जिसमें धार न हो, भोथर, धारविहीन। भाल–तीर। कराहल–व्यथा सूचक शब्द, आह भरना। ब्रिछ–संसार वृक्ष। तर–नीचे।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अज्ञानी लोग मर जाते हैं। तो प्रश्न उठता है कि क्या ज्ञानी नहीं मरते। उनका शरीर पात नहीं होता क्या ? तो यहाँ मरने से तात्पर्य बार-बार जन्म लेकर शरीर के अभाव से है और इस प्रकार की दशा अज्ञानी की ही होती है और ज्ञानी की एक बार शरीर पात होने पर पुनः उसको पात नहीं होना पड़ता है। नीचे कहा जा रहा है कि अज्ञानी बिना मौत का मर जाता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरुदेव कहते हैं कि हे संसार के अज्ञ मनुष्यों ! पहले तो तुम मर चुका है और आत्मज्ञान के अभाव में पुनः तुम मर जाओगे और निरर्थक में तुम मरोगे। तुम्हें यमराज के दूत बड़े बुरे तरीके से मारेंगे। तुम्हें कैसे मारेंगे ? सुन लो। तुझे उस तीर से मारेंगे जिसका नोक, जिसकी धार मुड़ी होगी, जो थोथी हो गयी होगी। जिस भाल में तीक्ष्णता नहीं होगी। अर्थात् तुम्हें धीरे-धीरे मारेंगे। सता के मारेंगे, सड़ा के मारेंगे। शीघ्र मरने से, धारदार हथियार से काट देने से मृत्यु का दुःख तुरन्त शान्त हो जाता है परन्तु जिसको धीरे-धीरे रेता जाय। बिना धार के हथियार से काटा जाय तो मृत्यु का दुःख उसको बहुत सताता है। क्योंकि हे वंचक हे अज्ञानी पापात्मा ! इस संसार वृक्ष के नीचे दुःख ही दुःख है। जिसके नीचे जाने पर लोग आह भरने लगते हैं। वह यह है संसार रूपी वृक्ष। तुझ अधम आत्मा को मरना है। उस वृक्ष के नीचे तुम्हारा नाश होना है। आज हो चाहे कल हो। क्योंकि तू सदा संसार की ही उपासना किया है। तू सदा कर्म, सुकर्म से वंचित रहा। सदा लोगों को सताते रहा। सदा अपनी वाणियों से लोगों को वेधते रहा। चोरी, डकैती में लिप्त था। परस्त्रीगमन में दक्ष था। दूसरे की सम्पत्ति हरण करने में चतुर था। सन्त महात्मा एवं बड़े पुरुषों का अपमान किया। तुझे वेद-शास्त्र का बहुत अभिमान था। इसलिए तुम अज्ञान दशा में मरोगे और बिना धारदार हथियार से तेरे सर काटे जायेंगे। घिस-घिस कर मरोगे। क्योंकि तू मेरी बात पर ध्यान नहीं दे रहा है।

## सनातन सत्य प्रकरण

**बोली हमारी पूरब की, हमै लखै नहिं कोय ।**
**हमको तो सोई लखै, जो धुर पूरब का होय ॥१९४॥**

**शब्दार्थ**—बोली–भाषा, सत्य वाक्य । पूरब-प्रथम । सोई–वही, आत्मज्ञ । लखै–पहचाने । धुर–बिल्कुल ठीक, ध्रुव, पक्का ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि यह मानव ऐसे वृक्ष के नीचे पड़ा हुआ है । जो वृक्ष शोक और सन्ताप का फल देता है और इसलिए यह मानव बहुत शीघ्र में दो-चार दिन में मर जाता है । अर्थात् अल्प आयु में ही यहाँ से चला जाता है । नीचे कहा जा रहा है कि यह मानव इसलिए जल्दी मर जाता है कि साधु पुरुषों के बताये हुए मार्ग से वंचित रहता है ।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर स्वामी कहते हैं कि हे सन्तजन ! हे महात्माजन ! जो हमारी बोली है, जो हमारी भाषा है वह पूरब देश की है । अर्थात् आत्मलोक की है । क्योंकि आत्मा ही सबसे पूरब था । इसलिए हमें कहिये उस हमारे द्वारा कथित आत्मतत्त्व को कोई लख नहीं पा रहा है, कोई समझ नहीं पा रहा है । इसलिए मनुष्यों का बार-बार विनाश हो रहा है । हमको तो वही लखेगा जो निश्चित रूप से ठीक होगा । वह भी पूरब का होगा । अर्थात् जिज्ञासु होगा । आत्मप्रदेश की खोज करता होगा, तत्त्वज्ञ होगा । तत्त्व के लिए आतुर होगा । वही मुझे पहचान सकेगा कि कबीर कौन है ? कबीर में क्या है ? कबीर क्या कहते हैं ? अन्य अनार्य लोग मेरे भाव को नहीं समझ सकेंगे ।

## बलशाली मान-मर्दन प्रकरण

**जाके चलते रौंदें परा, धरती होय बेहाल ।**
**सो सावज घामें जरे, पंडित करहु विचार ॥१९५॥**

**शब्दार्थ**—रौंदें–तेज धूप, रौंदना, रगड़, मर्दन, कीचड़ । बेहाल–व्याकुल । सावज–शिकार, सावक, पशु, वह व्यक्ति, सावत, सामन्त, वीर, योद्धा । घामें–धूप । जरे–जले । पंडित–शास्त्रज्ञ, वेदवेत्ता । विचार–विवेक ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि आत्मज्ञानी को सब नहीं समझ सकता है । क्योंकि उसके व्यवहार संसार से बिल्कुल उल्टे होते हैं । नीचे कहा

जा रहा है कि बड़े से बड़े वीर, बड़े से बड़े धर्मावलम्बी भी आत्मज्ञ को समझने में असमर्थ रहे हैं।

**मूलार्थ**—संसार में एक से एक तेजवन्त पुरुष हुए हैं। जिनकी धाक से संसार आतंकित रहा है। जिनके चलने से संसार गर्दा हो जाता था। ज्ञात होता था कि सूर्य की किरणें बहुत प्रखर हो गयी हैं। अर्थात् सूर्य की तरह यहीं वीर तप रहा है। जिससे यह पृथ्वी व्याकुल हो उठती थी। संसार के लोग जिसको देखकर कम्पित हो जाते थे। उस रावण आदि सामन्त आज मृत्यु के शिकार हो गये। इस कड़ाके की तेज धूप में उनकी लाश जल रही है। कोई उनको पूछने वाला नहीं है। तात्पर्य यह कि जिनमें असुर स्वभाव अधिक था। शरीर की शक्ति बहुत थी। धन का घमंड बहुत था। बल के अभिमान में चूर्ण थे। वे सब मेरी पूरब की बात को नहीं समझे। आत्मलोक का ज्ञान नहीं माना। अब वे लोग सत्य के अभाव में स्वयं यमराज के तेज से जल रहे हैं। रवितनय अब उन्हें संकट में डाल दिया है। हे शास्त्र के पंडितों! हे वेदज्ञ ऋषियों! इस पर विचार करो कि इस अनित्य संसार में क्या चीज सत्य है? क्या असत्य है? आसुरी सम्पदा सत्य है कि दैवी सम्पदा सत्य है? किसके द्वारा मनुष्यों का कल्याण होगा? यह सब विचार आप को करना चाहिए।

**पावन पुहुमी नापते, दरिया करते फाल।**
**हाथन परबत तौलते, तेहि धरि खायो काल ॥१९६॥**

**शब्दार्थ**—पावन–पैरों से। पुहुमी–पृथ्वी। दरिया–नदी, समुद्र। फाल–फर्लांग, एक कदम, डेंग, डांग। हाथन–हाथों से।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि जिसके चलने मात्र से धूल उड़ती थी और तेज घाम की तरह उसके चलने से आंच लगती थी। जिसने धरती के लोगों को व्याकुल कर दिया था। वे सबके सब खाक मिट्टी में मिल गये। अब उसी बात की पुष्टि नीचे की जा रही कि यह पंचभौतिक शरीर किसी की भी संसार में रहने वाली नहीं है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर सन्त जनों से कहते हैं कि हे उज्ज्वल मति के महात्मा जन! इस संसार में जो आता है। उसको संसार अपने पास में नहीं रखता है। सबको यहाँ से हटाते रहता है क्योंकि न हटावे तो पृथ्वी पर रहने के लिए स्थान नहीं मिलेगा। इसलिए यह संसार मरण-धर्मा है, जायमान है। कितना भी वीर हो। कितना भी बलवान हो।

किसी के लिए काल भगवान के यहाँ से पक्षपात नहीं होता है। वे सबके साथ समान न्याय करते हैं। इसलिए उन्हे धर्मराज भी कहा जाता है। जिन भगवान त्रिविक्रम श्री हनुमान जी ने समुद्र को एक ही डेंग में नाप लिया था और जो हाथों से पर्वत तौलते थे। उन रावण आदि को भी काल भगवान रवितनय या समय ने यहाँ से लुप्त कर दिया। अर्थात् ये महापुरुष भी समय पाकर यहाँ से अन्तर्धान हो गये तो छोटे-छोटे जीवों की क्या दशा होगी और इनकी चर्चा ही क्या है जो दिन भर में कई-कई बार मरते हैं? इसलिए संसार को अनित्य कहा है। यह नित्य नहीं है। मनुष्य को मिथ्या अभिमान नहीं करना चाहिए। धोखे में नहीं फँसना चाहिए। क्योंकि बड़े से बड़े सन्त, महात्मा, पीर, पैगम्बर, अवतार आदि कोई यहाँ रहने नहीं पाये। इसलिए छोटे जीवों को और सावधान हो जाना चाहिए। प्रभु की भक्ति करनी चाहिए। तभी उसके लिए कुशल हो सकता है। अन्यथा मृत्यु सबको निगल जायेगी।

## ज्ञान विनाश प्रकरण

**नौ मन दूध बटोरि के, टिपकै किया विनास।**
**दूध फाटि कांजी भया, हुवा घ्रित का नास ।।१९७।।**

**शब्दार्थ**—बटोरि–संग्रह। टिपकै–टपका, बूंद। सिरका बूंद, तीव्र खटाई। कांजी–(सं० कंजिय) फटे हुए दूध का पानी जो खटाई के द्वारा फट जाने पर दो भाग में बँट जाता है। एक निरा पानी हो जाता है दूसरा उसमें से लासेदार स्थूल पदार्थ बनकर उसमें तैरते रहता है वह कांजी है। घ्रित–घृत, आत्मज्ञान, सदाचरण।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि संसार में कोई रहनेवाला नही है। नीचे कहा जा रहा है कि कितना भी आदमी संयम, नियम करे परन्तु यत्किंचित असावधानी में काल का आखेट बन जाता है।

**मूलार्थ**—जिस प्रकार से नौ मन दूध संग्रह करके उसमें एक बूंद सिरका छोड़ दिया जाय तो उक्त दूध का विनाश हो जाता है। दूध फटकर काजी हो जाता है और घृत का नाश हो जाता है। उसी प्रकार से गुरु महाराज कहते हैं कि जो संत महापुरुष अष्ट सिद्धि नवनिधि को तपश्चर्या से संग्रह किये और नवधा भक्ति के द्वारा आत्मशुद्धि किये परन्तु थोड़ी सी असावधानी में सबका विनाश हो जाता

है। जरा सा मन में अहंकार हुआ, और कामना जगी । कामिनी का संग हो गया तो दूध स्वरूपी अष्ट सिद्धियां नवनिधियाँ और नवधाभक्ति फट गयी । किसी भी काम की न रह गयी और भक्ति के द्वारा घृत स्वरूप जो आत्मज्ञान होने वाला था। जो दूध रूपी भक्ति का मूल तत्त्व था उसका भी सर्वथा नाश हो गया।

अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा प्राप्तिः।
प्राकत्म्यमिशित्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः॥

**अर्थ**—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व वशित्व ये आठ प्रकार की सिद्धियाँ हैं। इसी प्रकार से—

महापद्मश्च पद्मश्च शंखो मकरकच्छपौ।
मुकुन्द कुन्दं नीलश्च खर्वश्च निद्धयो नव॥

अर्थात् महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील, खर्व नव सिद्धियां हैं। नवधाभक्ति अन्यत्र गिना आये हैं इसलिए यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है। प्रसंगवश समझ लेंगे।

**केतनो मनाऊँ पाव परि, केतना मनाऊँ रोय।**
**हिन्दू पूजै देवता, तुरक न काहु के हाय ॥१९८॥**

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि किंचित् मात्र भी दुर्वासिना, सारी शक्ति-भक्ति को नष्ट कर देती है जिसके लिये नीचे कहा जा रहा है कि लोगों से कहता हूँ कि विषय-वासना से दूर रहो पर कोई सुनने वाला नहीं है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्त जन! जिसका जो स्वभाव रहता है, जिसकी जो आदत रहती है। वह कभी छोड़ नहीं सकता। मानव अपनी इन कमजोरियों के कारण बड़ा उद्धत हो गया है जिसके कारण सदा दुःखी रहता है। वह अपने धर्म को बड़ा मानता है। जिसके कारण सदैव संघर्ष होते रहते हैं। वृथा में जाने जाती हैं। पर लोग चेतते नहीं हैं। मैं कबीर कितना भी इन हिन्दू मुसलमानों के पांव पड़कर विनती करता हूँ। इन हिन्दू-मुसलमानों के समाने रोता हूँ और रोकर मनाता भी हूँ परन्तु ये लोग एक भी सुनने वाले नहीं हैं क्योंकि हिन्दू लोग बहुदेव-वाद में फँसे हैं नाना प्रकार की उपासनाओं में लगे हुये हैं अर्थात् ईश्वर को छोड़कर देवताओं को पूजते हैं और जो तुरक मुसलमान लोग हैं। वे काहू कहिये किसी का भी नहीं होते। वे किसी की पूजा-पाजा नहीं करते हैं

न किसी को मानते हैं। ईश्वर के नामों को लेकर चिल्लाते हैं पर ये मुस्लिम विरादरी ईश्वर को भी नहीं मानती क्योंकि ईश्वर तो सभी के अन्दर छिपा हुआ है। सभी के अन्दर बास करता है परन्तु ये मुसलमान लोग, तुरक लोग प्राणियों की हत्या करते हैं और शरीर से ईश्वर को पृथक कर देते हैं इसलिए ये किसी के नहीं होते।

## मानव तन महत्व प्रकरण

**मानुख तेरा गुन बड़ा, मासु न आवै काज।**
**हाड़ न होते आभरन, तुचा न बाजन बाज ॥१९९॥**

**शब्दार्थ**—गुन-ज्ञान। मासु-मांस। काज-कार्य, काम, हित में। आभरन-आभूषण, गहना। तुचा-त्वचा, चमड़ा। बाजन-वाद्ययन्त्र, बाजा। बाज-आवाज, ध्वनि।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि इन मजहबियों को वहुत समझाया, बहुत बुझाया। इनके आगे बहुत रोया-गाया कि हे हिन्दू, हे मुसलमान भाई दंगा न करो। धर्म के नाम पर मनुष्यों का सिर न काटो। किसी धर्म का ईश्वर ऐसा नहीं कहता है कि मेरे नाम पर अत्याचार करो परन्तु ये हिन्दू और मुसलमान मेरी बात को एक भी सुनने के लिए राजी नहीं हैं नीचे कहा जा रहा है कि केवल मनुष्य शरीर धारण करने से ही तेरा महत्त्व नहीं है। जब तक तू बुराईयों का त्याग नहीं करता है तब तक तू पशु से कम नहीं है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरुदेव कहते हैं कि हे हिन्दूओं! हे मुसलमानों! तुम्हारे में जो दया, क्षमा, सत्य, अहिंसा, संतोष, मैत्री, सद्भाव ये गुण हैं। इनको यदि धारण करता है तभी तूँ बड़ा हो सकता है। क्योंकि ये गुण ही तेरे बड़े हैं और तेरे में जो शिल्पकला है, नाना प्रकार के आभूषणों के बनाने की कला है, दूसरे का उपकार करने की भावना है। दूसरे का दुःख दर्द दूर करने की जो कला है। यही सबसे बड़े हैं अन्यथा तेरे में कोई बड़ाई नहीं है। पशुओं के मांस को लोग रुचिकर जानकर खाते हैं परन्तु तेरे मांस को कोई नहीं खाता है। हाथी के दांतों के, मृग पशु आदि के दातों एवं हड्डियों के आभूषण आदि बनते हैं। पर तेरी अस्थियों के कोई गहने भी नहीं होते इसो प्रकार से तेरी त्वचा भी किसी काम की नहीं है। उसका कोई वाद्ययन्त्र भी नहीं बनता जो बजाने के काम में आवे। गोह के और पशुओं के चमड़ों का बड़ा उपयोग होता है। वे बड़े काम के होते हैं अनेक प्रकार के बाजे बनते हैं। अनेक प्रकार की पेटियाँ भी बनती

हैं और भी अनेक प्रकार के काम में आते हैं। उनकी अस्थियों के खाद बनते हैं उनके बालों के शीत निवारण के लिए वस्त्र बनते हैं। तात्पर्य यह है कि यदि तू सद्गुणों से रहित है तो तुम पशुओं से भी बुरे हो। तेरा कुछ उपयोग इस संसार में नहीं है। इसलिए अपना-अपना अवगुण छोड़कर सत्यग्राही बनो। गुण को पहचानो और सद्धर्म का पालन करो। वंचकों के बहकावे में न आवो सच्चे सन्त सद्गुरु की सेवा करो।

**चौपाई : जो मोहि जानै ताहि मैं जानौं।**
**लोक वेद का कहा न मानौं ॥२००॥**

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मानव तेरा गुण ही बड़ा है। अन्य तेरे साज-सामान किसी काम के नहीं हैं। नीचे कहा जा रहा है कि जो मेरे विचार को समझेगा, मुझे जानेगा मैं भी उसके हित के लिए सोचूंगा।

**मूलार्थ**—सद्गुरुदेव कहते हैं कि हे सन्त जन ! जो मुझे जानता है। उसी को मैं भी जानता हूँ अर्थात् जो मेरे कहे हुए उपदेशों पर चलता है। जो मेरी वाणियों को समझकर उस पर आचरण करता है। जो मेरी बातों को समझने का सामर्थ्य रखता है मैं भो उसी को अपना सिखापन देता हूँ। उसी के हित की बात करता हूँ चाहे लोग मुझे कुछ भी कहें। यदि लोक, वेद का कहना कुछ भी हो मैं इन दोनों की बात नहीं मानता। जो मानव सदाचारी हो, सद्विचार वाला हो, जो परोपकारी हो वह किसी भी जाति का हो, किसी भी वर्ण का हो लोक वेद द्वारा क्यों न बहिष्कृत किया गया हो। वही मेरा जन है उसी को हम मानते हैं और जिसका लोक वेद ने बहिष्कार किया हो। ज्ञान देने का निषेध किया हो। मैं इस चीज को मानने वाला नहीं हूँ। भावार्थ यह कि जो मुझ सद्गुरु परमेश्वर का भजन करता है तो परमेश्वर कहता है कि मैं भी उसका भजन करता हूँ। उसका योग क्षेम करता हूँ चाहे वह शूद्र क्यों न हो। चाहे वह पाप योनि क्यों न हो, स्त्री ही क्यों न हो। चाहे लोक वेद उसको अधिकार ही न दिया हो। मैं अपने भक्त का सुनने वाला हूँ अन्य लोक वेद की बात नहीं मानता।

## गुरु लक्षण क्षमा प्रकरण

**सबकी उतपति धरती, सब जीवन प्रतिपाल।**
**धरती न जाने आप गुन, ऐसा गुरु विचार ॥२०१॥**

**शब्दार्थ**—गुन–महत्त्व ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि किसी भी जाति का हो, किसी भी वर्ण का हो यदि वह प्रभु को जानता है तो प्रभु भी उसी का होता है अब नीचे गुरु तत्त्व पर विचार किया जा रहा है। जो महत्त्वपूर्ण विषय है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरुदेव कहते हैं कि हे भद्र बुद्धि के सन्त जन ! गुरु किस प्रकार का होना चाहिए। इस पर विचार कीजिये देखिये यह पृथ्वी माता सभी की उत्पत्ति का कारण है। सभी को जन्म देती है क्योंकि जन्म धारण करने वाला स्थूल शरीर पृथ्वी का ही अंश है। इसलिए सारे प्राणियों की उत्पत्तिदात्री धरती ही है और सारे प्राणियों का जीवन-दाता प्रतिपालक पृथ्वी ही है। कोई भी ऐसा प्राणी नहीं है जिसका चारा, जिसकी खाद्य सामग्री पृथ्वी से न मिलती हो। जो भी खाद्य-अखाद्य पदार्थ हैं अन्न से लेकर फल तक अन्य जो जल चर के खाद्यादि हैं। दूसरे भी जो प्राणधारी खाद्य के रूप में हैं वे सब भी इस पृथ्वी के ही रूप हैं। इसलिए पृथ्वी को रत्नगर्भा एवं बसुन्धरा भी कहा गया है। पाँच तत्त्वों में प्राणियों के लिए महत्त्व भूमिका निभाने वाली पृथ्वी ही है। इसलिए सद्‌गुरुदेव ने पृथ्वी का नाम बड़े गौरव के साथ लिया है। तात्पर्य यह कि सारे वस्तुओं को धारण करने वाली और सबको पालन करने वाली होने पर भी इस पृथ्वी का खोद-खाद, चीर-फार होता है परन्तु सबको अपना पुत्र जानकर क्षमा कर देती है। किसी के अपराध को ध्यान में नहीं देती और जो नाना रत्नों से भरी हुई है। उस महत्त्व को भी यह अपने अन्दर स्थान नहीं देती अर्थात् उसका अहंकार नहीं करती है। सद्‌गुरु कहते हैं कि हे सन्त जन ! इस पृथ्वी के समान गुरु को क्षमाशील होना चाहिए और महान गुण होने पर भी उसका अहंकार नहीं करना चाहिए। जो सब तरह से पूर्ण हो, क्षमाशील हो, आत्मविद् हो, जिसमें किसी प्रकार का विकार न हो, इस प्रकार का गुरु करने का विचार करना चाहिये।

**धरती जानती आप गुन, कधी न होती डोल।**
**तिल-तिल गरवी होती, रहति ठिकों की मोल ॥२०२॥**

**शब्दार्थ**—गुन–महत्त्व, ज्ञान। कधी–कभी, किसी समय। गरवी–भारी। तिल-तिल–थोड़ा-थोड़ा, सवर्ण, गुरुत्व वाली। ठिकों–टुकड़ा, ठिकरा, सिटकी, बिना मूल्य की।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि पृथ्वी के समान सामर्थ्य, क्षमावान, धैर्यशाली गुरु करना चाहिए। नीचे कहा जा रहा है कि इसलिए पृथ्वी की उपमा दी गयी है कि उसमें कभी भी अभिमान नहीं होता। यदि पृथ्वी अभिमान करती तो अब तक कभी समाप्त हो गयी होती।

**मूलार्थ**—गुरुदेव कबीर कहते हैं कि यह धरती इतना महत्त्व पूर्ण होने पर भी अपने महत्त्व का कुछ भी ध्यान देती कि हमारे में अमुक गुण है तो अब तक कभी ये डोल गयी होती अर्थात् समाप्त हो गई होती और तिल-तिल, थोड़ा-थोड़ा अभिमान से और भारी हो जाती। जो आज इसका महत्त्व है वह एक ठिकरे के मूल्य से बिकती। अर्थात् ठिकरों के समान इसका मूल्य हो जाता परन्तु यह अपने महत्त्व को जानते हुए भी कभी डोलायमान नहीं होती, कभी चलायमान नहीं होती महाधैर्य को धारण करती है। इसलिए ज्यों का त्यों इसका मूल्य बना हुआ है इसी प्रकार से गुरु को चाहिए की सब तरह से सम्पन्न होते हुए भी उसमें राग-द्वेष उत्पन्न न हो। तभी वह गुरु है, तभी वह सन्त है अन्यथा वह शास्त्रों का ज्ञान रखकर गुरुअई करता है तो वह बेकार है। महत्त्व-हीन है इसलिए गुरुओं को पृथ्वी से सीख लेनी चाहिए और उसी के समान रहना चाहिए। धरती अपने गुण को खूब अच्छी प्रकार से जानती है कि सारा विश्व मेरे ही आधार पर है। इसलिए कभी चलती फिरती नहीं है।

**आशय**—गुरुदेव कबीर कहते हैं कि हे महामनीषी सन्त जन ! यह पृथ्वी अपने गुण गौरव को जानते हुए भी अपने क्षमा स्वभाव के कारण कभी डोलायमान नहीं होती है। इसी प्रकार से जो महापुरुष गुरुजन लोग हैं, जिनकी आत्मा अपने आप में आप्तकाम है। वे महापुरुष भी अपनी महिमा के कारण कभी चलायमान नहीं होते हैं।

**जहिया किरतम ना होता, धरती होती न नीर।**
**उतपति परलै ना होती, तबकी कहें कबीर ।।२०३।।**

**शब्दार्थ**—जहिया–जब। किरतम–कृत्रिम, संसार, बनावटी, नकली, लोक। होता–था, रहा। नीर–जल। तबकी–उस समय की।

**सम्बन्ध**—इसके पूर्व में कहा गया है कि गुरु में यत्किंचित अभिमान नहीं होना चाहिए। अन्यथा वह बिना मूल्य का हो जायेगा। उसकी कीमत मात्र ठिकरों की हो जायेगी अब नीचे कहा जा रहा है कि यह

बात हम आप से नयी नहीं कह रहा हूँ। यह क्षमा गुण पुरातन है, सबसे पहला है और क्षमा का स्वरूप ही ब्रह्म है।

**मूलार्थ**—जब यह कृत्रिम संसार नहीं था, जब यह कृत्रिम धरती नहीं थी। जब जल की भी उत्पत्ति नहीं हुई थी, जब अखिल ब्रह्माण्ड के सारे प्राणियों की उत्पत्ति ही नहीं थी तो प्रलय कहाँ से होता अर्थात् जब सारे तत्त्वों का अभाव था। केवल एक सत् चित आनन्द घन चित् स्वरूप ब्रह्मात्मा था और उस ब्रह्म में क्षमा के गुण थे। वह महान होते हुए भी अपने गुण का कभी अभिमान नहीं करता इसलिए वह सबसे बड़ा है। आज तक उसका कोई सहधर्मी नहीं हुआ। केवल क्षमा के कारण मैं कबीर उस पुरातन ब्रह्म की बात करता हूँ। पुरातन ब्रह्म क्षमा स्वरूप है इसलिये उसकी बात करता हूँ उसी को धारण करना चाहिए। उसी पुरातन तत्त्व की प्राप्ति करनी चाहिए। जब तक चिद् ब्रह्म को प्राप्ति नहीं होगी तब तक जन्म-मरण का अन्त नहीं होगा।

### चौपाई

**जहाँ बोल तहं अक्षर आया, जहं अक्षर तहं मनहिं दिढ़ाया।**
**बोल अबोल एक होई जाई, जिन यह लखा सो बिरला होई ।।२०४।।**

**शब्दार्थ**—अक्षर–अक्षर, वर्ण, ब्रह्म, वाक्य, जीवात्मा। दिढ़ाया–निश्चय किया।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि उस पुरातन तत्त्व की बात मैं करता हूँ जो क्षमा का स्वरूप है। तो किसी शास्त्राभिमानी ने सद्गुरु से पूछा कि जो वाणी का विषय नहीं है, जिसको इन्द्रियाँ नहीं जान सकती हैं तो आप उसको व्यक्त कैसे करेंगे ?

**मूलार्थ**—इस पर सद्गुरु कहते हैं कि हे भाई पण्डित जन, हे शास्त्र के विद्वान ! जो कुछ भी तू कहोगे, जहाँ कुछ बोलोगे, जिस किसी भी विषय में वक्तव्य दोगे। वहाँ पर अक्षर कहिये वर्णों का आना आवश्यक है। वाणी के द्वारा तू किसी को समझा सकते हो। यदि किसी अवस्था में मौनता है तो वह वाणी का विषय नहीं है। अन्य व्यवहार की बातें उसमें बन नहीं सकती। क्योंकि जहाँ अक्षर होते हैं, जहाँ वाक्य होते हैं, जहाँ कि कोई दृश्य होता है। वहाँ पर मन भी उसी का निश्चय करता है, उसी को दृढ़ाता है। अदृश्य में कुछ बनता नहीं है। जब बोल कहिये अक्षर अबोल कहिये निरक्षर तात्पर्य जीवात्मा और ब्रह्मात्मा दोनों जब एक हो जाते हैं। तब वहाँ वाणी का विषय नहीं रहता है। तब वहाँ मौनता

आ जाती है और क्षर कहिये शरीर अस्तु उस शरीर से रहित होकर और अक्षर कहिये जीवात्मा से रहित होकर उस निरक्षर परम-तत्त्व को जो लख लिया है, प्राप्ति कर लिया है वह कोई विरला ही है। यह भाव सबमें नहीं आता। इसलिए साधक को चाहिए कि जहाँ जीवात्मा का भाव है और जहाँ ईश्वर का भाव है। दोनों के मध्य में निरक्षर का दर्शन करें। तभी वह गन्तव्य स्थान तक पहुँच सकता है परन्तु वैसा कोई विरला ही पुरुष होता है।

## आत्म अनुपलब्धि प्रकरण

**तौ लौं तारा जगमगे, जौ लौ उगे न सूर।**
**तौ लौं जीउ करम बस डोलै, जौ लौं ग्यांन न पूर ॥२०५॥**

**शब्दार्थ**—तौ लौं–तब तक। तारा–उड़िगण। जगमगे–दिखाई देते हैं। जौ लौं–जब तक। उगे–उदय। सूर–सूर्य, आत्मज्ञान। डोलै–जन्मे, मरे। पूर–सम्पूर्ण।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो क्षर और अक्षर से न्यारा हो जाता है। निरक्षर सम्यक परमतत्त्व की प्राप्ति कर लेता है और सारे प्राणियों के मध्य में उस केवल एक तत्त्व को ही देखता है। वहीं दुर्लभ पुरुष है। अब नीचे कहा जा रहा है कि जब तक उस निरक्षर का ज्ञान मनुष्य को नहीं होगा। तब तक वह जन्म-मरण से परे नहीं हो सकता है।

**मूलार्थ**—अब सद्गुरु सन्तों से कहते हैं कि हे सन्त जन! तब तक तारा मण्डल आकाश में जगमगाते रहते हैं, दिखाई देते रहते हैं। जब तक भगवान भास्कर का उदय आकाश मण्डल में नहीं होता है अर्थात् जिस प्रकार से सूर्य उदय के पूर्व अन्धकारमय रात्रि में तारों की जगमगाहट रहती है। उसी प्रकार से तब तक यह जीव सकाम कर्मों के कारण बार-बार संसार में जन्मते-मरते रहता है। जब तक की इसे पूर्ण रूप से आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान न हो जाय। तब तक इस जीव को शान्ति नहीं मिलती है।

**नांव न जाने गांव का, भूला मारग जाय।**
**काल गड़ेगा कांटा, अगमन खसी कराय ॥२०६॥**

**शब्दार्थ**—नांव–नाम, संज्ञा। गांव–ग्राम, आ०–आत्म प्रदेश। काल–दूसरे दिन, आये दिन। गड़ेगा–चुभेगा। कांटा–कंटक, मृत्यु। अगमन–

प्रथम, पहले। खसी–पतन, गिरना, वह पशु जिसके अंडकोश निकाल लिये गये हों। बधिया, हिजड़ा, बकरी का नर बच्चा, स्त्री का कसा हुआ छोटा स्तन। कराय–कराया, किया।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि तब तक गगन मंडल में तारे जगमगाते रहते हैं। जब तक विवस्वान उदित नहीं होते। इसी प्रकार से यह जीवात्मा तब तक संसार में डोलते रहता है, जन्मते-मरते रहता है। जब तक कि सकाम कर्म करते रहता है और कर्मकाण्ड के लिए प्रतिबद्ध रहता है। कर्मकांड में यज्ञ-याग जिसमें पशु-बलि, नर-बलि आदि प्रकार के यज्ञ किये जाते हैं और भी बहुत से कर्मकांड के अंग हैं। जो कृच्छ व्रतों के नाम से विख्यात हैं। जिसमें चन्द्रायण व्रत प्रधान है। इन कर्मकाण्डों को स्वर्ग आदि लोकों की प्राप्ति के लिए जब तक यह जीव करता रहेगा तब तक इसको ज्ञान के दर्शन नहीं होंगे। जब यह कर्मकाण्ड से विरत होगा और आत्मतत्त्व का चिन्तन करेगा तभी इसको पूर्ण ज्ञान होगा और जन्म-मरण के चक्र में जो डोलता है वह डोलना बन्द हो जायेगा। सद्गुरु का तात्पर्य यहाँ यह है कि लोगों को कर्मकांड का बहिष्कार करना चाहिए। विशेष रूप से जो सकाम कर्म हैं, हिंसक कर्म हैं। उन बलि आदि कर्मों से विरत होकर आत्मा की प्राप्ति के लिए उपाय करना चाहिए। जो बिना सच्चे संत सद्गुरु के प्राप्त होने वाला नहीं है। अब नीचे कहा जा रहा है कि जो लोग सत्य का मार्ग नहीं जानते कि सत्य की प्राप्ति कैसे होगी वे लोग अवश्य ही भ्रम में पड़े रहेंगे ?

**मूलार्थ**—जब तक मनुष्य गन्तव्य स्थान का मार्ग नहीं जानता है। जहाँ जाना है। उस ग्राम का नाम ही नहीं जानता है। तो भला वह कहाँ जायेगा, किस-किस दिशा में जायेगा, क्या करेगा ? वह भूला हुआ मनुष्य किस मार्ग का अनुसरण करेगा ? जो बिना पता-ठिकाना के चलते हैं। उनको उबड़-खाबड़ भूमि, कटीली भूमि, जंगली भूमि सब मिलेगी। इसलिए कुछ दिन के बाद उनको अनजान मार्ग में जाने से पैरों में कंटक आदि चुभ जायेंगे। सद्गुरु कहते हैं कि जाने वाले पंथी को पहले ही कुछ सोचना चाहिए था। पर सोचा नहीं इसलिए खंदक आदि में गिर गया। इसी प्रकार से जो लोग आत्मलोक का पता नहीं जानते। जिस ग्राम में परमतत्त्व निवास करता है। उस ग्राम में जिन्हें जाने के लिए मार्ग का ज्ञान नहीं है। जो बिना गुरु के साधना में लग जाते हैं। प्राणायाम आदि करने लगते हैं। जिन्हें मूलाधार का ज्ञान नहीं

है। जिन्हें कुंडलिनी जगाने का ज्ञान नहीं है, जो सुषुम्ना के बारे में कुछ भी नहीं जानते हैं, जो सहस्रार के बारे में कुछ नहीं जानते हैं वे साधक कहाँ जायेंगे ? प्राणवायु को कहाँ ले जायेंगे ? वे किसका ध्यान करेंगे ? जिसको अपने इष्ट के बारे में जानकारी नहीं है वह कौन सा कर्म करेगा ? कौन सा मार्ग अपनायेगा ? अर्थात् वह जीवन भर भटकता रहेगा। आत्म प्रदेश का रास्ता नहीं पा सकेगा अन्त में काल कहिये दूसरे दिन काँटा रूपी मृत्यु आकर गड़ जायेगी और प्राण को हर ले जायेगी। इस मनुष्य को मार्ग चलने के पहले ही विचार करना चाहिए था। हमारा मार्ग क्या है ? हमारा रास्ता क्या है ? हमें कहाँ जाना है ? इस पर विचार नहीं किया। इसलिए 'प्रथम ग्रासे मच्छिका पातः' के अनुसार सर्वप्रथम ही यह कुराह पर चल पड़ा। अर्थात् संसार में विचरण करने लगा। संसारी सुखों में ही जाकर पतित हो गया, जाकर गिर गया। जहाँ से इसको निकलना बड़ा कठिन है। क्योंकि वह सर्वप्रथम ही पतन होने का कार्य किया। सत्यमार्ग का अन्वेषण नहीं किया। इसी संसार में इत-उत भटकते रहा। जिसका परिणाम अन्ततः मृत्यु रूपी कांटा मिला। वह गड़ गया। वह प्राण ले गया।

## सुसंगति महिमा प्रकरण

**संगति कीजै साधु की, हरै और की व्याधि।**
**ओछी संगति कूर की, आठौ पहर उपाधि ॥२०७॥**

**शब्दार्थ**—ओछी–बुरी, हलकी, नीचों की। पहर–प्रहर, सदैव। उपाधि–अशान्ति। कूर–क्रूर, कठिन।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो मनुष्य पहले ही सोच समझकर किसी मार्ग को नहीं पकड़ता है। अपने हित की बात नहीं सोचता है तो वह अन्त में धोखा खा जाता है अब नीचे कहा जा रहा है कि उस मार्ग को बताने वाले सन्तजन हैं। जो शेष लोग बचे हैं। उनको सन्तों की संगति करनी चाहिए।

**मूलार्थ**—संगति बहुत प्रकार की होती है परन्तु यहाँ कहा जा रहा है कि साधु की संगति कीजिए। तो सबसे पहले विचारिये कि साधु किसे कहते हैं ? दो वाक्य में इसका अर्थ समझना चाहिए। साधु पुरुष वह है जो साधन करके अपने को साध लिया हो। जिसकी इन्द्रियाँ कुमार्ग से लौट आयी हो। आत्म प्रदेश की ओर घूम गयी हों। जो स्वयं भवसागर तर गया हो और जिसमें तरने का सामर्थ्य हो और दूसरों को

भी लेकर पार हो सकता हो। वही साधु है। सद्गुरुदेव कहते हैं कि हे सन्तजन! हे उत्तम जिज्ञासुओं! मनुष्यों को चाहिए कि अच्छे साधुओं की संगति करे। जो दूसरे की व्याधि को हर लेते हैं जो दूसरे के दुःखों को दूर कर देते हैं। यहाँ पर व्याधि जन्म-मरण से है। वे साधु जन अपने तो जन्म-मरण से परे हो जाते हैं और दूसरे को भी जन्म-मरण से परे कर देते हैं। इसलिए उन साधुओं की संगति करनी चाहिए। यदि उन साधुओं की संगति नहीं करेंगे। ओछे आदमियों की संगति करेंगे, जिन्हें सत्यासत्य का ज्ञान नहीं है। जो सभी प्रकार के दुर्वासनाअ में लिप्त हैं। जो वड़े क्रूर हैं, कठोर हैं। जो मनसा, वाचा, कर्मणा से प्रहार करते रहते हैं, जो दूसरों का दिल दुखाते रहते हैं, जो सदा अप्रिय बातों को सोचते रहते हैं। ऐसे दुष्टों की संगति से तुझे आठों पहर, चौबोसों घण्टा अशांति बनी रहेगी।

**संगति से सुख ऊपजे, कुसंगति से दुःख होय।**
**कहैं कबीर तहाँ जाइये, जहाँ अपनी संगति होय ॥२०८॥**

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि साधुओं की संगति कीजिए। नीचे कहा जा रहा है कि सत्पुरुषों की संगति से हो सुख उपजता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरुदेव कवीर कहते हैं कि हे संसार के मनीषियों! हे भक्तजनों! अच्छी संगति से सुख उपजता है और दुष्ट की संगति से दुःख उपजता है। इसलिए मैं कबीर कहता हूँ कि वहाँ जाइये जहाँ अपनी संगति हो। तात्पर्य यह कि जहाँ अपने विचार के लोग हों, जहाँ अपना विचार मिलता हो, जो साधु हों, जो सन्त हों, जो कुमार्ग का त्याग कर चुके हों, जो सुमार्ग के पथिक हों ऐसे लोगों के यहाँ जाने से तुझे शान्ति मिलेगी।

## आरम्भ अवसान प्रकरण

**जैसी लागी वोर की, वैसे निवहे छोर।**
**कौड़ी-कौड़ी जोरि के, पूँजी लक्ष करोर ॥२०९॥**

**शब्दार्थ**—लागी–पकड़ी, आरम्भ की, लगन। वोर–प्रथम की, शुरू की। वैसे–उसी प्रकार। छोर–अन्त तक। कौड़ी-कौड़ी–थोड़ा-थोड़ा। जोरि के–संग्रह करके। पूँजी–सम्पति, सद्गुण। लक्ष–लाख। करोर–कोटि।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मनुष्यों को अपनी विचारधारा और अपनी संस्कृति के लोगों से साथ करना चाहिए। अब नीचे कहा जा रहा है कि जिस प्रकार से भक्ति को प्रारम्भ में आरम्भ की गयी। उसी प्रकार से जीवन पर्यन्त उसका निर्वाह करना चाहिए।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि प्रायः लोग सत्संगति के प्रभाव से, वेदशास्त्र सुनकर भाव-भक्ति से प्रभावित हो जाते हैं। परन्तु जब तक कच्चा मन रहता है। तब तक उसकी भक्ति पूरी नहीं हो पाती। बीच में ही छोड़ छाड़कर ज्यों का त्यों संसार का आचरण करने लगता है। उन्होंने कहा 'थोड़ी भक्ति बहुत हंकारा, ऐसे भक्ता मिले अपारा'— 'कबीर ग्रन्थावली' के अनुसार थोड़ी भक्ति से अहंकार उत्पन्न होता है। वे किधर के भी नहीं होते, इसलिए सन्त सद्गुरु की संगति करो। जिस प्रकार से शुरु में भक्तिमार्ग, सत्संग अपनाया गया। उसी लगन से अन्त तक निर्वाह करना चाहिए। निश्चित रूप से मानव कृत-कृत्य हो जायेगा और सभी प्रकार के दुःखों से, सभी प्रकार की व्याधियों से मुक्त हो जायेगा। जिस प्रकार से चतुर व्यक्ति, बुद्धिमान वणिक एक-एक पैसा संग्रह करके अपनी पूँजी को करोड़ तक पहुँचा देता है। उसी प्रकार से जो प्रभु-सुमिरन में, गुरु-भक्ति में लग जाते हैं। वे शनैः-शनै अन्त तक अपने लक्ष्य तक पहुँच जाते हैं और लक्ष्य की पूर्ति करके जन्म-मरण से मुक्त हो जाते हैं।

## क्षणभंगुर देह प्रकरण

**आजु काल दिन कईक में, अस्थिर नाहिं सरीर।**
**कहैं कबीर कस राखि हो, कांचे बासन नीर ॥२१०॥**

**शब्दार्थ**—कस–कैसे। कईक–कितने। बासन–बर्तन। घड़ा, शरीर। नीर–जल, जीवात्मा।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि भक्ति को आद्योपान्त छोड़ना नहीं चाहिए। क्योंकि नीचे कहा जा रहा है कि इस मानव जीवन का कोई ठिकाना नहीं है। इसलिए जब तक शरीर रहे तब तक अच्छे गुणों का अनुकरण करना चाहिए।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्तजन ! इस मानव देह का कोई ठीक-ठिकाना नहीं है। क्योंकि किसी को पता नहीं है कि हम इसमें से कब चले जायेंगे ? आज निकल जाय की कल निकल जाय। की कई

एक दिनों के वाद निकल जाँय। ये शरीर स्थिर नहीं है। इसलिए मैं कबीर कहता हूँ कि जो स्थिर नहीं है। उसको किस प्रकार से इस अनस्थिर शरीर में अपने को रख सकोंगे। जिस प्रकार कच्चे घड़े में मिट्टी के कच्चे पात्र में जल अधिक समय तक नहीं रुकता है पल क्षण में जल डालने से वह गलकर धराशायी हो जाता है। उसी प्रकार से यह मानव तन मिट्टी का कच्चा पात्र है। आत्मा रूपी जल इसमें कब तक रहेगा। समझ सकते हो। इसलिए इस शरीर को क्षणभंगुर कहा है। अनित्य कहा है। नाशवान कहा है। इसलिए जितनी देर तक शरीर तुम्हारे साथ है उतनी देर तक भलाई कर लो, प्रभु की उपासना कर लो। सन्त सद्‌गुरुओं की सेवा कर लो। परमार्थ कर लो, दुष्कर्मों से दूर हो जाओ। अन्यथा यह क्षणिक वपुस में कोई ठीक ठिकाना नहीं कि कब तक रहोंगे।

## बहुबन्धन प्रकरण

**वहु बंधन से बांधिया, एक विचारा जीउ।**
**की छूटै वल आपने, की रे छुड़ावे पीउ ।।२११।।**

**शब्दार्थ**—वहु–वहुत। बांधिया–बांधा हुआ। विचारा–गरीब, बलहीन, निर्वल, असमर्थ। वल–शक्ति उपाय। पीउ–परमात्मा, ईश्वर, सन्त, सद्‌गुरु।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि यह शरीर बिल्कुल अस्थिर है, क्षणभंगुर है यह कब तक साथ देगा कहना ठीक नहीं है, अब कहा जा रहा है कि यह जीवात्मा बहुत प्रकार के बन्धनों में जकड़ा हुआ है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरुदेव कहते हैं कि हे उत्तम बुद्धि के सन्तजन ! यह जीव वड़ा निर्बल है, बड़ा गरीब है, बड़ा अकिंचन है, कुछ करने में असमर्थ है। पहले तो इसके रहने का जो आलय है वह बहुत ही कमजोर है। अतिशीघ्र नाशशील है और दूसरे यह अनेक प्रकार के बन्धनों से बंधा हुआ है। अनेक प्रकार की मोह, माया इसको घेरे हुए हैं। स्त्री से बंधा हुआ है, पुत्र से वंधा हुआ है, माता-पिता से बंधा हुआ है, सगे-सम्बन्धियों से बंधा हुआ है, भाई-वन्धुओं से वंधा हुआ है, लोक-लाज से बंधा हुआ है, धर्म-कर्म से वंधा हुआ है। मान-सम्मान से वंधा हुआ है, और पाप-पुण्य से भी बंधा हुआ है इत्यादि प्रकार के वंधनों से बंधा है। भला इस बंधन को कौन

छुड़ा सकता है ? या तो स्वयं अपने भूलों का अनुभव करें। अपने दुष्कर्मों पर चिन्तन करें और अपने को जाने तब छूट सकता है दूसरे में प्रभु की उपासना करे। गुरु की सेवा करे, सन्त की संगति करे, या तो पीउ स्वरूप परमात्मा ही छुड़ा सकता है। अन्य कोई तीसरा उपाय छूटने की नहीं है।

## हिंसा विरोध प्रकरण

**जिव मत मारो बापुरा, सबका एकै प्रान।**
**हत्या कबहुँ न छूटिहैं, कोटिन सुनो पुरान ॥२१२॥**

**शब्दार्थ**—जिव–जीव। मत–नहीं। बापुरा–बावरा, बावला, तुच्छ, विचारा, गरीब। प्रान–प्राण, जीव।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि यह जीव अनेक बन्धनों से बंधा हुआ है। या तो अपने सामर्थ्य और विवेक बल से छूट सकता है या परम प्रभु ही छुड़ा सकते हैं। नीचे कहा जा रहा है कि यह बड़ा मूल्यवान मानव तन है। यह शीघ्र मिलता नहीं है। इसलिये इसको शरीर से विच्छेद न करो।

**मूलार्थ**—सन्त लोग बड़े दयालु होते हैं किसी को दुःखी नहीं देखना चाहते। वे किसी दूसरे के दुःख से दुःखी हो जाते हैं। दूसरे के सुख से प्रसन्न हो जाते हैं। इसलिए सद्गुरु कहते हैं कि हे वापुरा ! हे बुद्धिहीन ! हे उन्मत्त मनुष्य ! किसी प्राणी की हत्या मत करो। क्योंकि यह प्राण सबको अत्यन्त प्रिय है। इसलिए वह अपने शरीर को छोड़ना नहीं चाहता है। जिसमें मानव तन अति मूल्यवान है। संसार का बहुत उपकार मानव जाति ने किया है। इसलिए मानव तन की कीमत सारी सृष्टि के कीमत को लगा दो तो भी मानव तन महंगा पड़ेगा। कोई मूल्यवान मानव मर जाता है फिर वह संसार में नहीं आता है। उसके दर्शन कभी नहीं होते हैं। इसलिए इसको अमूल्य कहा गया है। दूसरी बात यह है कि जो तू समझ रहा है कि यह दूसरा है। इसके मारने से कोई नुकसान नहीं है, कोई हानि नहीं है। यह समझ लो प्राण स्वरूपी सभी के जीव एक ही हैं। यदि तू हत्या करते हो तो उसका जो पाप होता है, उसका जो प्रायश्चित होता है उससे कभी तू छूट नहीं सकता है। हत्या का पाप छुड़ाने के लिये चाहे तू करोड़ों पुराण सुनो, करोड़ों यज्ञ करो, करोड़ों दान करो परन्तु हत्या जन्य दोष से तू मुक्त नहीं हो

सकता है इसलिए किसी प्राणी का वध न करो। सब पर दया रखो। यदि तू अपनी भलाई चाहता है तो निरबैर रहो।

**जीउ घात ना कीजिए, बहुरी लेत वै कान।**
**तीरथ गये न बांचि हो। कोटि हीरा देहु दान ॥२१३॥**

**शब्दार्थ**—घात–धोखा, हत्या। बहुरी–पुनः, अन्य जन्मों में। कान–बदला, मर्यादा। हीरा–रत्न।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जीव हत्या का पाप प्रवल होता है। वह किसी भी प्रकार से छुटता नहीं है। इसलिये नीचे कहा जा रहा है कि किसी प्राणी के साथ धोखा मत करो। यहाँ हत्या के कई अर्थ होते हैं। किसी के आचरण की हत्या, किसी से विश्वास की हत्या, किसी की सामाजिक हत्या, किसी की राजनीतिक हत्या, किसी की जीवन हत्या ये बहुत प्रकार की हत्यायें हैं।

**मूलार्थ**—इसलिए गुरु महाराज कहते हैं कि हे भाईयों ! हे संसार के मनुष्यों ! इस जीव की किसी भी प्रकार की हत्या न कीजिये इसके साथ किसी भी प्रकार का छल-छद्म न करो। यदि उसको छल-छद्म से मारते हो। यदि उसके साथ धोखाधड़ी करते हो तो वह भी अवसर पाकर समय मिलने पर वैसा ही करेगा और शास्त्र के अनुसार यदि इस जन्म में आप किसी प्रकार से बच गये तो दूसरे जन्म में आप से वह बदला लेकर रहेगा। आप किसी निर्दोष व्यक्ति की हत्या करके चाहें कि तीर्थ करके हम इस हत्या से बच जायेंगे यह बात मन से निकाल दो। मन से हटा दो। तीर्थ जाने से भी हत्या के पाप से आप नहीं बचोगे। यदि आप चाहें कि हत्या छुड़ाने के लिये अनेक प्रकार के रत्नों का ब्राह्मणों को दान दें और उस पाप से हम छूट जाँय। जो हत्या का दोष है तो कभी ऐसा नहीं हो सकता है। आप कोटि रत्न, कोटि, वसन, कोटि मन अन्न हत्या रूपी पाप से छूटने के लिये ब्राह्मण देवताओं को दे डालें। परन्तु ये ब्राह्मण देवता दान खा जायेंगे। आप का पाप नहीं छूटेगा। इसलिए कुशल चाहते हो तो किसी की हत्या मत करो।

**तीरथ गये तीनि जना, चित चंचल मन चोर।**
**एकौ पाप न काटिया, लादिनि मन दस और ॥२१४॥**

**शब्दार्थ**—तीनि–तिनि। वे लोग, चित चंचल वाले, चोर मन वाले। एकौ–एक भी। काटिया–काटा।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि किसी प्राणी का घात न करो क्योंकि हिंसा के समान दूसरा पाप नहीं है। नीचे कहा जा रहा है कि जो लोग तीर्थों में पाप धोने के लिये जाते हैं उनका पाप धुलता नहीं है। प्रत्युत उसमें और बढ़ोत्तरी हो जाती है।

**मूलार्थ**—संसार के पापी मनुष्य एवं तमोगुण से आवृत्त लोग तीर्थ करने जाते हैं जिनमें अधिकतर दूषित और चंचल चित्त वाले तथा उसी प्रकार से विचलित मन वाले एवं चोर स्वभाव वाले लोग तीर्थ नहाने जाते हैं जो तीर्थों में पाप कृत करते हैं वहाँ भी उचक्के की तरह कार्य करते हैं। किसी की बहू-बेटी किसी की स्त्री किसी के धन पर ही हाथ फेरते हैं अर्थात् तीर्थ में जाकर अनेक प्रकार से कुकृत्य करके और दस मन पाप अपने ऊपर लाद कर घर आते हैं। अच्छा होने के अतिरिक्त बुरा बन कर आते हैं अस्तु शंका उठती है कि क्या तीर्थ पूर्णरूपेण निरर्थक है। उसमें तो अच्छे-अच्छे लोग भी जाते हैं क्या वे लोग भी दस मन पाप लादकर व लेकर आते हैं। जी नहीं जो उच्च विचार से श्रद्धा से शुद्ध मन में तीर्थों में जाते हैं उनको अवश्य लाभ होता है क्योंकि तीर्थों में जाने से स्वभाव में परिवर्तन हो जाता है। तीर्थों में अच्छे-अच्छे संत महात्माओं के कथा कीर्तन होते हैं विद्वानों के भाषण होते हैं जो सुन कर बहुत लोगों के मन बदल जाते हैं। पाप-कर्म करना छोड़ देते हैं इसलिये उक्त प्रकार के लोगों के लिये तीर्थ में जाने से लाभ होता है उनका पाप कट कर आता है। वे लोग ज्ञान, ध्यान पुण्य लेकर आते हैं परन्तु जो चोर स्वभाव वाले हैं और जो चंचल चित्त मन वाले लोग जाते हैं उन लोग को लाभ के बजाय अलाभ होता है। उन्हीं के लिये सद्गुरु देव कबीर कहते हैं कि पापी लोग दस मन पाप और बढ़ोत्तरी करके तीर्थों से लाते हैं अन्य लोग नहीं।

**तीरथ गये ते बहि मुये, जूड़े पानि नहाय।**
**कहैं कबीर सुनो हो संतो, राक्षस होय पछिताय ॥२१५॥**

**शब्दार्थ**—जूड़े–ठंडे। बहि–निरर्थक में जा चुके। राछस–राक्षस, म्लेक्ष, दुष्कर्मी। पछिताय–पश्चाताप। मुये–मर गये।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि चंचल चित्त वाले विचलित मन वाले, चोर स्वभाव वाले लोग तीरथों में गये जिनको कुछ लाभ नहीं हुआ। अब नीचे कहा जा रहा है कि जब तक मनुष्य का दुष्कर्म नहीं छूटता है तब तक किसी पवित्र तीर्थ में जाने से भी कोई लाभ नहीं होता है।

**मूलार्थ**—अब सद्‌गुरु कहते हैं कि हे विमल मति के सन्त जन जो उपर्युक्त प्रकार के लोग तीर्थों में गये थे वे बेकार हो गये। झूठे जाकर और परेशान हुए। बहि मुये में श्लेष है, अधिक संकट उठाये। एक तो बहुत से तीरथों के पानी बहुत ठंडे होते हैं जिनमें नहाने से कितने प्रकार के रोग धर लेते हैं और दूसरे जिनका चित्त शुद्ध नहीं है। जिनका अन्तः-करण मलिन हैं तो कहिये वे लोग अनावश्यक तीर्थों में गये। क्योंकि जब तक मन शान्त चित्त न हो बुद्धि स्थिर न हो तब तक सत्‌कर्मों के कोई फल नहीं होते इसलिए हे सन्त जन! आप सुन लीजिए मैं कबीर कहता हूँ कि जो लोग तीर्थ के अधिकारी नहीं हैं और वहाँ पर जाकर दुष्कर्म करते हैं वे राक्षस के समान होते हैं और पश्चाताप करके दुःखो होते हैं तात्पर्य यह है कि तीर्थ का अर्थ होता है भवसागर से पार हो जाना व तरना। इस-लिए प्रत्येक मनुष्यों को चाहिये कि संत महात्मा रूपी तीर्थों में स्नान करें और उनके बताये हुए मार्ग पर चलें उसी से लाभ हो सकता है अन्यथा तीर्थ में जाकर और अशांति ही मिलती है।

**तीरथ भई बिख वेलरी, रही जुगन जुग छाय।**
**कबीर मूल निकंदिया, कौन हलाहल खाय ॥२१६॥**

**शब्दार्थ**—भई–हुई। बिख–विष। बेलरी–बेली, लता, माया। मूल–आत्मतत्त्व। निकंदिया–वध कर दिया, नाश कर दिया। कबीर–कबीर साहब। हलाहल–विष, जहर।

**सम्बन्ध**—ऊपर की साखी में कहा गया है कि तीर्थ में जाने से अज्ञा-नियों के लिये कोई लाभ नहीं है। दुष्टचित वालों के लिए कोई लाभ नहीं है। नीचे कहा जा रहा है कि दुष्कर्म के कारण ही तीर्थ विष की बेलरी हो गयी है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि हे मननशील महात्मा जन! ये संसार की तीर्थें अब सारहीन हो गयी हैं। वहाँ पर कोई सत्य कर्म नहीं होते। तीर्थों में दुष्कर्मियों का निवास हो गया है। पापात्माओं का वहाँ पर बोलबाला हो गया है। तीर्थ के पंडा-पुजारी लोग पाप कर्म में लिप्त हो गये हैं। उच्चकों की भाँति श्रद्धालु भक्तों से छीना–झपटी करते हैं उनके सामान को ले लेते हैं यदि किसी के पास बहुत से द्रव्य का पता लग जाय तो तीर्थ के पुजारी लोग द्रव्य वाले का कत्ल करके द्रव्य को ले लेते हैं। इस प्रकार से अनेक प्रकार की बातें तीर्थों में हो रही हैं जो

तीर्थ कभी अमृत की लता थी। जहाँ सोमपान किया जाता था। आज वहीं मद्यपान हो रहा है इसलिए अब यह तीर्थ विष की बेलरी हो गयी है और युगों युग से तीर्थों में छा गयी है। इस प्रकार के तीर्थों में जाने से जो आत्मतत्त्व है जो अपने अन्दर सत्य विचार, है जो मन में श्रद्धा है उसका भी नाश हो जाता है इसलिए मैं कबीर कहता हूँ कि इन तीर्थों में जाकर पाप रूपी हलाहल कौन खाय। क्योंकि अब तीर्थों में माया का बोलबाला हो गया है और बहुत काल से यह माया तीर्थों में जाकर निवास कर रही है। जिन तीर्थों में रामकथा होती थी। जिन तीर्थों में तत्त्वज्ञान दिया जाता था। अब उन तीर्थों में जाने से जहर दिया जाता है। इस-लिए अब उन तीर्थों में जाना श्रेयष्कर नहीं है।

## माया भ्रम प्रकरण

**ये गुनवन्ती बेलरी तुव गुन बरनी न जाय।**
**जर काटे ते हरियरी, सीचे ते कुँभिलाय ॥२१७॥**

**शब्दार्थ**—ये–हे। गुनवन्ती–गुण वाली। बेलरी–बेली माया। तुव–तुम्हारा। बरनी–कहा। जर–मूल। हरियरी–हरीयाली कुँभिलाय–सुखाय।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि संसार की तीर्थे विष बल्ली के समान हो गयी हैं। वहाँ जाने पर सत् कर्मों का नाश हो जाता है। नीचे कहा जा रहा है कि वर्तमान में तीर्थ रूपी माया के अनन्त गुण हैं। जो अकथनीय हैं।

**मूलार्थ**—गुरु देव कबीर कहते हैं कि हे बहुत गुणवाली बेलरी माया ! तेरा इतना गुण है, तेरे में इतनी आकर्षण शक्ति है जो वर्णन करने में नहीं आ रहा है। तुम जहाँ-जहाँ पर हो, जहाँ-जहाँ पर तीर्थे बनी हैं वहाँ-वहाँ पर बहुत सी अन्ध कथाएँ तैयार की गयी हैं। बहुत ताम-झाम है। बहुत आकर्षक बना दिया गया है। कितना भी कोई सावधान हो परन्तु वहाँ जाने पर ठगा ही जाता है। क्योंकि यह माया रूपी बेलरी जो तीर्थ का रूप ले लिया है। वह सारे संसार को भर्मा रही है। क्योंकि इसमें अनन्त गुण हैं। अनन्त कला है। अनेक रूप हैं, एक न एक गुण से संसारी मानव भूल ही जाता है परन्तु कहा जा रहा है कि यदि कोई विवेकी पुरुष इस माया रूपी बेली का जर काट दे अर्थात् जहाँ से मोह उत्पन्न होता है उसका परित्याग कर दें। संसार की किसी वस्तुओं में मोहित न हो वही पुरुष हरा-भरा रह सकता है। वही सुख पूर्वक जीवन

यापन कर सकता है और जो इस माया का सेवन करता है उसकी जड़ में पानी डालना है। तो उस संसारी जीव को माया सूखा देती है और नष्ट कर देती है।

**वाक्यार्थ**—हे गुण वाली बेलरी तेरा अनन्त गुण है। जो कथन करने में नहीं आता है। जो तुम्हारी जड़ काट दे तो तू हरी-भरी हो जाती है। यदि तुम्हारी जड़ में पानी डाले तो कुम्हला जाती है। यह तेरे में विचित्र गुण है। तात्पर्य यह है कि काटने से यह हरियर होती है। सींचने से कुम्हला जाती है। अर्थात् इस माया का त्याग जो केवल ऊपर से किया जाता है। वही जड़ काटना हुआ। ऊपर के त्याग से माया अन्दर में बहुत हरी-भरी और ठगने वाली हो जाती है। इसलिए इसको खोदकर बिल्कुल पृथ्वी से सोर-शाखा सहित उखाड़कर फेंक देना चाहिए। अर्थात् किसी प्रकार से इससे लगाव नहीं होना चाहिए। तभी इससे बचा जा सकता है। सींचने का तात्पर्य यह हुआ कि इस माया को अधिक ऊपर से त्याग दिखाने पर तथा अन्दर से चाहना करने पर ये दूर भागती है। सींचने का तात्पर्य यह है कि माया की चाहना। जब चाहने वाले को चाह होती है तो चाहने वाले के सामने अभाव ग्रसित दीखती है। इसलिए न इसको काटना चाहिए, न सींचना चाहिए। इस माया को जड़-मूल से खनकर निकाल फेंक देना चाहिए। ताकि यह पुनः पनप न सके। तात्पर्य यह कि जो साधक यत्किंचित इस माया से लगाव रखेगा। किसी न किसी रूप में यह उसको ठगेगी और संसार में डाका डालेगी। इसलिए इसका पूर्णरूपेण त्याग करना ही उत्तम है।

**बेलि कुढंगी फल बुरा, फलवा कुबुधि बसाय।**
**वार विनस्टी तूमरी, तेरा सरो पात करुवाय ॥२१८॥**

**शब्दार्थ**—कुढंगी–कुरूप, टेढ़ी-मेढ़ी, जो ढंग की न हो। फुलवा–पुष्प, फूल। कुबुधि–दुर्बुद्धि। बसाय–बसती है, दुर्गन्ध। वोर–जड़, मूल और फूल। विनस्टी–नष्ट होने वाली। तूमरी–तितलौकी के समान। तेरो–तेरा। सरो–सारा, सभी, सड़ा हुआ। पात–पत्र। करुवाय–कड़ुवा, तिक्त।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि यह माया विचित्र स्वभाव वाली है। इसके अनन्त गुण हैं। जो दुर्गुणों के समान हैं। नीचे कहा जा रहा है कि यह किसी प्रकार से अच्छी नहीं है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरुदेव कहते हैं कि हे बेली रूपा माया ! तू बड़ी वेढ़ंगी है। वड़ी टेढ़ी है और जो तुम्हारे फल हैं वे भी बुरे हैं और जो तेरा फूल लगता है उसमें कुबुद्धि का वास होता है इसलिये तू नाश करने वाली है। तू तितलौकी के समान है। तू ग्रहण करने योग्य नहीं है। तेरे सभी पत्तों में करुवाहट है। कडुवापन है। किसी प्रकार से ग्रहणीय नहीं है। तात्पर्य यह हुआ कि एक तो यह माया अच्छी नहीं है। क्योंकि सबको ठगते-फिरती है। मानव जीवन को संकट में डालने वाली है। इसके जो फल हैं वे पंच विषय के स्वरूप हैं, जो विषय भोग है, जिसमें यह जीव सदा लगा रहता है। वे अत्यन्त बुरे हैं। क्योंकि परमात्मा की ओर जाने से मना करते हैं। जो एक बार माया का फल खा लेता है। वह किसी काम का नहीं रह जाता है। क्योंकि जो इसके फूल स्वरूप आकर्षण हैं, पुत्र, धन-धाम इनमें अहंकार सहित कुबुद्धि बसती है। और कहिये मूल तत्व को विनष्ट करने वाली यह तूमरी है अर्थात् जो तित-लौकी का साग खा ले तो वह पागल हो जाय। अथवा रक्त वमन कर के मर जाय। इसी प्रकार से यह माया मूल तत्त्व को नाश करने वाली है और सभी जो संसार के सुख हैं नाती-पोता, पत्ता स्वरूप में सब कड़ुवाहट लिये हुये हैं। वे सुख नहीं देते हैं। जिन पुत्र-पौत्रों को देखने के लिए वृद्धावस्था तक यह जीव आश लगाकर बैठा रहता है। वे सब किसी काम के नहीं हैं। वे सब दुःख के हेतु हैं। इसलिए इन सबका परित्याग करना चाहिए।

## सूक्ष्म प्रकरण

**पानी ते अति पातला, धूंवा ते अति झीन।**
**पौनहुँ ते ऊतावला, सो दोस्त कबीर न कीन्ह ॥२१९॥**

**शब्दार्थ**—धूंवा-धूम्र, सूक्ष्म। झीन-सूक्ष्म। पौनहुं-वायु से भी। ऊतावला-शीघ्रगामी। सो-वह। दोस्त-मित्र। कबीर-कबीर साहब।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि माया रूपी बेलि बड़ी कुढ़ंगी है। वह सर्वांग दुर्गन्ध से पूर्ण है। इसलिए उसका त्याज्य बतलाया गया है अब नीचे कहा जा रहा है कि जो मनुष्य माया का त्याग करके परमतत्त्व की उपासना करता है। वह उत्तम गति को प्राप्त होता है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्त जन ! वह परम-

तत्त्व पानी से भी बारीक है, धुंवा से भी बारीक है। सूक्ष्म है और वायु से भी उसका वेग शीघ्रगामी है परन्तु दुर्भाग्य है कि उस परमतत्त्व को जो सब जगह व्याप्त है किसी ने मित्र नहीं बनाया। कबीर साहब कहते हैं कि माया का त्याग करके उसी को मित्र बनाना चाहिए। कुछ टीकाकार महापुरुषों ने उक्त साखी को मन से घटाया है उनका कहना है कि यह मन पानी से भी पतला है। धूंवा से भी झोन है और पवन से भी द्रुतगामी है परन्तु उससे कोई दोस्ती नहीं किया। न निषेध वाचक होने से 'न कीन्ह' पंक्ति में कहते हैं कि उससे दोस्ती कोई नहीं किया। तो मन से तो दोस्तो सब कोई करते हैं। उस मन के अधीन ही सारा संसार है यदि 'कबिरन' कर दिया जाय तो अरबी का शब्द होने से बहुवचन नहीं बनता है। इसलिए यहाँ किसी प्रकार से मन का अर्थ करना उत्तम नहीं जँच रहा है परन्तु जिसको जो भाता है वही करता है।

## त्याग प्रकरण

**सतगुरु वचन सुनो हो संतो, मत लेहो सिर भार।**
**हो हजूर ठाढ़ कहत हौं, अब तै संभार संभार ॥२२०॥**

**शब्दार्थ**—लेहो-लेवो, लीजै। भार-उत्तरदायित्व, जिम्मेदारी। हजूर-सन्मुख, स्थित, समक्ष नजर के सामने, स्वयं। ठाढ़-खड़ा। कहत हौं-कहता हूँ। हौं-मैं। संभार संभार-संभालो, संभालो।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि परमतत्त्व बहुत सूक्ष्म है बहुत बारीक है। सर्वत्र व्यापक है परन्तु उसको कोई मित्र नहीं बनाता। अब नीचे कहा जा रहा है कि सद्गुरु की बात सुनों।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे जिज्ञासु सन्त जन ! जो सद्गुरु ने कहा है उनका वचन सुनो। जो संसार के प्रति और जो मेरे प्रति उनका उपदेश है उसको श्रवण करो। यदि तू अपना हित चाहता है, अपनी भलाई चाहता है तो किसी प्रकार का उत्तरदायित्व और जिम्मेदारी किसी को मत लो। क्योंकि दूसरे का बोझा ढ़ोते-ढ़ोते, भार वहन करते-करते तू बेकार हो जायेगा। किसी काम का नहीं रहेगा और भगवद् स्नेह छूट जायेगा। हे भाई मैं सबके समक्ष खड़ा होकर कहता हूँ कि अब से भी तू अपने को संभालो। अपनी मन, इन्द्रियों को वश में रखो संसार की विषय-वासना से बचो। किसी प्रकार से संसार का भार मत लो

सब कुछ तजकर, सबको छोड़कर प्रभु के शरणापन्न हो जाओ। इसी में तेरा कल्याण है।

## कच्चा साधक प्रकरण

**वो करुवाई बेलरी, औ करुवा फल तोर।**
**सिंधु नाम जब पाइये, बेलि बिछुआ होय ॥२२१॥**

**शब्दार्थ**—वो–वह, माया। करुवाई–करुवा, कड़ु, करुआपन, कालापन, काला। बेलरी–बेलि, माया। औ–और। करुवा–कड़ु, स्वाद में उग्र और अप्रिय, तीक्ष्ण, करुआ। सिंधु–समुद्र बड़ा, सिद्ध, महान। बिछुआ–बिछोह, त्याग।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अपने को संभालो। अब से भी प्रभु का सुमिरन करो। अब नीचे कहा जा रहा है कि यदि प्रभु का सुमिरन नहीं करेगा, अपने को संभाल नहीं पायेगा तो माया का दाग तुझे अवश्य लगेगा।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरुदेव कहते हैं कि हे सन्तजन ! जो माया है वह बड़ी कालिख वाली है। वह बेलि रूपी माया करुवाई लिये हुए है। उसका हृदय साफ नहीं है। भीतर में कालापन है। उसमें जहर भरा हुआ है और उसका जो फल है वह भी कटु है, तिक्त है। इसलिए उससे स्नेह न करो। क्योंकि जब तू माया का स्वामी बनेगा। तुमको वह समुद्र के समान फुला देगी। तुम्हारा चारों तरफ नाम, गाँव फैल जायेगा, अब फिर तुमको माया बढ़ाकर तुमसे अलग हो जायेगी। फिर वह तुझे त्याग देगी। इस प्रकार से यह माया किसी की होती नहीं है। आकाश तक बढ़ाकर फिर उसका साथ छोड़ देती है, वह मनुष्य पाताल में जा धँसता है, अर्थात् यह कभी बहुत जन-धन, राज्य काज देकर महाशक्ति वाला बना देती है। फिर उसका हरण करके गरीब बना देती है। दर-दर की ठोंकरें खिलाती है। इसलिए इसका त्याग कर देना चाहिए। क्योंकि इसका जो भी फल है वे सब तिक्त हैं। खाने के काबिल नहीं हैं। अर्थात् माया के सभी प्रकार के सुखों का त्याग करना ही उत्तम है। नहीं तो ये कालिख वाली है, दाग वाली है। दाग लगाकर छोड़ेगी।

**सिध हुआ तो का हुवा, चहुं दिसि फूटि वास।**
**अंतर वाके बीज है, फिर जामन की आस ॥२२२॥**

**शब्दार्थ**—सिध–सिद्ध, अणिमा, लघिमा आदि सिद्धियों से युक्त। फूटी–स्फुटित। वास–सुगन्ध, प्रकाश। अंतर–भीतर। वाके–उसके। बीज–वासना, अंकुरण।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि यह माया पहले किसी को बढ़ाती है और सिन्धु के समान महान बना देती है परन्तु जब उस मनुष्य में अहंकार आ जाता है। माया का दुरुपयोग करने लगता है। अपनी शक्ति से दूसरे का नुकसान करने लगता है तो माया भी समझती है कि यह अब मेरे योग्य नहीं है। इसलिए उसको छोड़कर चल देती है। पहले तो नव निधियों का वर्णन किया गया जो सिन्धु के समान अपार हैं। अब अष्ट सिद्धि से युक्त सिद्धों का वर्णन किया जा रहा है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्तजन ! सिद्ध और सन्त में बड़ा अन्तर होता है। सन्त के पास अहंकार नहीं होता है परन्तु सिद्धों के पास अपनी सिद्धियों का बड़ा घमण्ड होता है जिसके बल पर अन्य लोगों का अपमान करते हैं। इसलिए यदि कोई सिद्ध हो जाय तो क्या हुआ? यही हुआ कि चारों ओर उसका प्रकाश हो गया। उसके प्रचारक बहुत हो गये। स्वार्थ सिद्धि के चलते बहुत से चेला, सेवक बनने लगे परन्तु उस सिद्धि से उसको कोई लाभ नहीं होता है क्योंकि आत्म ज्ञान के अभाव में अन्दर वासना रूपी बीज विद्यमान रहता है जो पुनः जन्म-मरण का हेतु बनता है। तात्पर्य यह है कि सिद्ध अवस्था कुछ साधना के बाद आ जाती है परन्तु सिद्ध को आत्मज्ञान नहीं होता है। उसमें अनेक कला और अनेक चमत्कार आ जाते हैं। वह अलग की बात है परन्तु आत्मतत्त्व से भेंट नहीं होती है। निम्न प्रकार की सिद्धियों के बल पर संसार में पूजाता है—१. अणिमा २. महिमा ३. गरिमा ४. लघिमा ५. प्राप्ति ६. प्राकाम्य ७. ईशित्व ८. वशित्व ये आठ प्रकार की सिद्धियाँ हैं परन्तु ये केवल बाह्य चमत्कार के लिए हैं। जो योगी इनके फेर में पड़ा रहता है। वह अन्त में कुछ पाता नहीं। आत्मज्ञान से वंचित होकर पुनः-पुनः जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहता है।

**परदे पानी ढ़ारिया, संतो करो विचार।**
**सरमा सरमी पचि मुआ, काल घसीटन हार ॥२२३॥**

**शब्दार्थ**—परदे–आवरण, अज्ञान। पानी–जल, आत्मज्ञान। ढ़ारिया–ढ़ारा, छोड़, उपदेश दिया। सरमा सरमी–लाजे-लाजे। पचि–पककर, जलकर। मुआ–मर गया। काल–मृत्यु। घसीटनहार–घसीटते खींचते ले गया।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि सिद्ध को आत्मज्ञान के अभाव में मुक्ति नहीं मिलती। नीचे कहा जा रहा है कि अनधिकारी को आत्मज्ञान दिया गया परन्तु उसको आत्मज्ञान नहीं हुआ। इसलिए जन्म-मरण से रहित नहीं हुआ।

**मूलार्थ**—जो अज्ञान से आवृत है। उस अज्ञानी पुरुष को आत्मज्ञान रूपी जल पिलाया जाता है। सन्तजन! विचार करो कि जिसको जो वस्तु समझ में नहीं आती है। उसको वह वस्तु (आत्मज्ञान) देने से क्या लाभ हो सकता है? अर्थात् उसको आत्मज्ञान रूपी लाभ तो हुआ नहीं, उल्टे महा अहंकारी हो गया परन्तु अन्दर-अन्दर अपनी खोखलापन को समझकर लज्जा के कारण किसी से कहता नहीं है। भीतर ही भीतर पचते रहा। केवल शास्त्र के ज्ञान का उपदेश करते रहा। अपने चेला-चेलियों को भी वही ज्ञान देता रहा। ऊपर से सिद्ध बना रहा। चेलियों के साथ परदे के ओट में व्यभिचार भी करते रहा परन्तु शर्म के मारे उसकी बुराई को किसी से कोई कह नहीं रहा है। लज्जा में पड़कर सब पच मरे और अन्त में काल भगवान गुरु-चेला दोनों को अपने यमालय में ले जाकर घोर नरक में डाल दिया। बार-बार जन्म-मरणके चक्र में पड़े रहा।

**आस्ति कहौं तो कोई न पतीजे, बिना आस्ति का सिधा।**
**कहैं कबीर सुनो हो सन्तो, हीरी हीरा वेधा ॥२२४॥**

**शब्दार्थ**—आस्ति–है, सत्य। कहौं–कहूँ। पतीजे–विश्वास। सिधा–सिद्ध, कच्चा योगी। हीरी–हीरा की पत्नी, माया, कनी। हीरा–जीवात्मा। वेधा–समाया।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अनधिकारी के प्रति उपदेश देने वाले जो स्वयं आत्मज्ञान से रहित हैं। भूल में पड़े हुए हैं। नीचे कहा जा रहा है कि यदि इन लोगों को सत्य बात का उपदेश करता हूँ तो ये संसार के मानव उस पर विश्वास नहीं करते और जहाँ अंधविश्वास का बोलबाला है, ढ़ोगियों का समाज है वहीं सब जाते हैं। ढ़ोगियों को सिद्ध समझ कर उनके पास जाकर नाना प्रकार की माँगें माँगते हैं और ढ़ोगी भी किसी को निराश नहीं करता। सभी को आशा में फँसाकर जीवन भर अपनी सेवा करवाते रहता है।

**मूलार्थ**—गुरुदेव कहते हैं कि जब मैं लोगों को दु:खी देखकर उनके हित की बात कहता हूँ कि परमेश्वर तत्त्व तेरे अन्दर में विराजमान है।

उसकी उपासना करो। इन तथाकथित नकली सिद्धों के फेर में नहीं पड़ो परन्तु अज्ञ मनुष्य सर्वजनीन हितैषी बात को मानने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं और जिन सिद्धों के बहकावे में पड़ा है। वे सिद्धगण बिना अस्तित्व के हैं उनके पास आत्मज्ञान और परमेश्वर का ज्ञान नहीं है। इसलिए कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तजन ! मेरी बात को सुनो। इन सिद्ध लोगों के अन्दर माया उसी प्रकार से धँसी हुई है। जिस प्रकार से हीरी-हीरा के अन्दर बिंध जाती है अर्थात् जिस प्रकार से वज्र हीरा को हीरी बेध देती है। उसी प्रकार से इन बड़े-बड़े सिद्धों को माया अपना दास बनाये हुए है। इसलिए ये सिद्धजन मुझ कबीर की बात पर विश्वास नहीं करते। अपनी सिद्धि के बल पर नाना प्रकार के अत्याचार करते हैं किसी को शाप देते हैं, किसी को आशीर्वाद देते हैं ये ज्ञानविहीन सिद्ध जन अपनी सिद्धि के बल पर दूसरे साधु-सन्तों को कुछ नहीं समझते। इसलिए इनका साथ छोड़ना चाहिए और सच्चे सन्त-सद्गुरु की सेवा करनी चाहिए।

## सज्जन दुर्जन प्रकरण

**सोना सज्जन साधु जन, टूटि जुरैं सौ बार।**
**दुर्जन कूंभ कुंभार का, एकै धका दरार ॥२२५॥**

**शब्दार्थ**—जुरैं-जुटे। सौ बार-अनेक बार। दुर्जन-बुरे लोग। कुंभ-घड़ा। कुंभार-कुम्हार। एकै-एक ही। दरार-चेहरा जाना, फट जाना, फूट जाना।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि सिद्धि मिल गयी परन्तु आत्मज्ञान नहीं हुआ। सिद्धि भी एक प्रकार की माया है जिन लोगों के अन्दर सिद्धि आ जाती है। वे साधक परमतत्त्व से विमुख हो जाते हैं हीरी-हीरा की कथा यह है कि हीरी-हीरा की पत्नी मानी जाती है। हीरा वज्र कठोर और उग्र होता है कितना भी उस पर वज्र प्रहार कीजिये पर वह फूटता नहीं है परन्तु जो हीरा घन आदि के ठोकर से नहीं फूटता है वह उसकी पत्नी हीरी को हीरे में जरा से छुआइये तो वह उसके अन्दर तक घुस जाती है। इसी प्रकार से जो सन्त साधक किसी प्रकार से संसार के बन्धन से नहीं बँधते हैं। उनके अन्दर जरा सी सिद्धियाँ आ जाने पर माया के वश में हो जाते हैं। फिर किसी की सुनते नहीं अन्य साधु, सन्तों से अपने को बड़ा मानते हैं क्योंकि लोक में सिद्धों की बड़ी मान्यता

है और पूजा है परन्तु पश्चात् में सिद्धों की बड़ी दुर्दशा होती है। ऐसा देखा भी गया है नीचे कहा जा रहा है कि सज्जनों में मतभेद नहीं होता है। यदि हो भी जाय तो उनमें राग-द्वेष का अभाव होता है।

**मूलार्थ**—अज्ञानी पुरुषों में मतभेद होने पर वे सदा के लिए टूट जाते हैं। फिर दूसरी बार नहीं मिलते परन्तु सज्जन लोग जो साधु स्वभाव के होते हैं। जन कहिये जो भगवद् भक्त हैं उनमें आपस में कितना भी मतभेद हो, कितनी भी लड़ाई हो पर वे जल कमलवत् की भाँति उस मतभेद में न पड़कर पुनः परस्पर एक हो जाते हैं। जिस प्रकार से सोना को अनेकों बार तोड़िये और आँच दिखाने पर जोड़ते जाइये वह जुटते जायेगा। उसमें सन्धि नहीं पड़ती है, गांठ नहीं पड़ती है। इसी प्रकार से सन्त लोग बिना गांठ के, बिना संधि के, बिना मतभेद के होने पर पुनः-पुनः मिलते रहते हैं परन्तु दुर्जन लोग उसी प्रकार से मतभेद होने पर नहीं मिलते हैं। जिस प्रकार से कुम्हार के घड़े को एक धक्का लग जाने पर चूर-चूर हो जाता है। छितरा जाता है उसमें दरार पड़ जाती है वह पुनः नहीं मिलता है तद्वत सज्जन और दुर्जन का स्वभाव कुम्हार के घट के समान होता है।

## उत्तम साधक प्रकरण

**काजर केरी कोठरी, बूड़त है संसार।**
**बलिहारी तेहि पुरुख की, जो पैठि के निकरनहार ॥२२६॥**

**शब्दार्थ**—काजर–माया, काला। केरी–की। कोठरी–छोटा कमरा शरीर, संसार। बूड़त–डूबता। बलिहारी–धन्यवाद। पैठि–प्रवेश। निकरनहार–निकलने वाला।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि सज्जन और दुर्जन में बड़ा अन्तर होता है। नीचे कहा जा रहा है कि यह संसार कलंक का घर है। जो इसमें संभलकर नहीं रहेगा, वह बिना कलंक के बच नहीं सकेगा।

**मूलार्थ**—यह संसार काजर की कोठरी के समान है। जो इस संसार में आसक्त होता है उसको कालिख लग जाती है। इस छोटी सी कोठरी में प्रवेश करने पर सभी डूब जाते हैं। जो-जो संसार के सुख को सत्य मान लिये हैं जो स्त्री के सुख को सत्य मान लिये हैं। वे इसी में डूबकर मर जाते हैं उससे निकल नहीं पाते हैं परन्तु सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्त-जन! उस पुरुष की प्रशंसा की जा सकती है और वे धन्यवाद के पात्र हैं। जो संसार में, बाल-बच्चों में, स्त्री, पुत्र में रहते हुए निष्कलंक निकल

जाय अर्थात् जो संसार में जन्म लेकर संसार की वस्तुओं में निरासक्त रहता है और प्रभु प्राप्ति करके भवसागर को पार कर लेता है वह बलिहारी के योग्य है, अन्य नहीं।

**काजर केरी कोठरी, काजर ही का कोट।**
**तौंदी कारी ना भई, रहा सो ओटहिं ओट ॥२२७॥**

**शब्दार्थ**—काजर–कालिख, वह अंजन जिसको स्त्रियाँ घी अथवा सरसो के तेल में दीपक जलाकर कजरोटे में पारती हैं वह एक प्रकार का अंजन हो जाता है जो बच्चों की आँखों में तथा माता अपने आँख में भी लगाती हैं, माया। कोट–गढ़, महालय, शरीर, संसार। तौंदी–अंगुली का पोर, शरीर का यत्किंचित भाग। कारी–काली, स्पर्श। ओटहिं ओट–आड़ में, परदा के अन्दर।

**टिप्पणी**—तौंद का बढ़ा हुआ पेट भी अर्थ होता है, नाभि भी अर्थ होता है।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो इस संसार में जन्म लेकर ज्यों का त्यों निष्कलंक पुनः संसार से चला जाता है। वही महापुरुष है अब कहा जा रहा है कि यह संसार सभी प्रकार से माया से ढ़का हुआ है इसलिए इससे बचना बड़ा कठिन काम है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कबीर साहब सन्तों से कहते हैं कि यह काजर स्वरूपा माया शरीर रूपी कोठरी में पूर्ण रूप से व्याप्त है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, मान-सम्मान, स्त्री, पुत्र ये सब काजल के स्वरूप ही हैं और यह कोट स्वरूप जो संसार है जो विराट स्वरूप वाला है। यह भी माया से आवृत है अस्तु शरीर और संसार दोनों एक रूप वाले हैं। इनमें रहकर बचना बड़ा दुर्लभ काम है इनमें उसी की अँगुली में दाग नहीं लग सकता है। कालिख नहीं लग सकता है वही बेदाग हो सकता है जो परमतत्त्व की ओट ही ओट में रहता है अर्थात् जो प्रभु का भजन सुमिरन करता है। राम नाम का जप करता है। सच्चे सन्त सद्‌गुरु की सेवा करता है। सदा परमार्थ करता है जिनकी वृत्ति आत्माकार हो गयी है, जो आत्मा को साक्षात्कार कर लिया है, जो सदा सर्वदा सत्य की ओट में रहता है उस पर यत्किंचित माया का प्रभाव नहीं पड़ता।

## भक्ति माहात्म्य प्रकरण

**अरब खरब लौं दरब है, उदै अस्तु लौं राज।**
**भगति महातम ना तुले, ई सब कौने काज ॥२२८॥**

**शब्दार्थ**—अरब–सौ करोड़ का एक अरब होता है। खरब–सौ अरब का एक खरब होता है। लौं–लग। दरब–द्रव्य। उदै–अस्त, आदि से अन्त तक। महातम–माहात्म्य, महिमा। तुले–बराबरी, तुलनात्मक।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो प्रभु के ओट में रहता है। जिसे आत्मतत्त्व प्राप्त हो जाता है। उसका माया कुछ भी नहीं कर सकती नीचे कहा जा रहा है कि हरि भक्ति के समान कोई दूसरा धन नहीं है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरुदेव कहते हैं कि किसी मनुष्य के पास किसी व्यक्ति के पास अरब और खर्व तक द्रव्य हो, सम्पत्ति हो और पृथ्वी के इस छोर से उस छोर तक राज्य हो अर्थात् तीनों लोक में जिसका शासन हो वह व्यक्ति और जो प्रभु का भक्त है, जो अकिंचन है। जिसके पास संसार की कोई मोह माया नहीं है परन्तु हरि भक्ति उसके पास में है तो उसकी तुलना में, उसके समकक्ष में विश्व का सम्राट कुछ भी नहीं है इसलिए मनुष्यों को चाहिए की जब भक्ति श्रेष्ठ है तो उसी का अवलंबन लें। क्योंकि ये सब राज-काज किसी काम के नहीं हैं। भक्ति हीन मनुष्य इनसे (धन-जन से) भवसागर पार नहीं हो सकता है।

## प्रतारक (धोखा) प्रकरण

**मच्छ बिकाने सब चले, धीमर के दरबार।**
**अँखिया तेरी रतनारी, तू क्यों पहिरो जाल ॥२२९॥**

**शब्दार्थ**—मच्छ–मछली, मनुष्य। बिकाने–बिकने के लिए, धर्म उपदेश ग्रहण करने के लिये। धीमर–मछली मारने वाला। दरबार–सभा भवन। अँखिया–आँखें, विवेक वैराग्य। रतनारी–रत्न के समान चमकीली, विवेक करने वाली। तू–संसारी लोग। पहिरा–पेहना। जाल–सकाम कर्म, संसार की मोह माया।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि भक्ति के बराबर संसार की कोई भी वस्तु नहीं है। नीचे कहा जा रहा है कि बहुत से लोग देखा-देखी भक्ति करने के लिये घर से निकल पड़ते हैं परन्तु भक्ति नहीं कर पाते।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे सन्त जन संसार के मनुष्य बराबर ठगाते रहते हैं और ठगने वाले उनके पीछे घूमते रहते हैं। जब संसारी लोग संसार की मोह, माया से उपराम होते हैं तो तीर्थ आदि में जाकर

गुरु खोजते हैं। गुरु मुख होते हैं। खूब धन-जन लूटाते हैं सो तो ठीक है परन्तु जो लोग मनुष्य का क्रय-विक्रय करते हैं वे लोग धीमर के समान हैं। जैसे धीमर नदियों में जाल फेंककर मछलियों को फंसाता है उसी प्रकार से वंचक गुरु लोग संसार भर में अपनी जाल पसार रखा है। स्वर्ग आदि लोकों की लालच दिखाकर सबको मूड़ते हैं और यह मच्छ स्वरूप नर तन धारी मानव वंचक गुरुओं की सभा में जाकर मुड़ा लेता है, और खूब मूड़ाते हैं। धन जन से भी जाते हैं और सद्ज्ञान से भी जाते हैं। क्योंकि वंचक गुरु यही उपदेश देता है कि खूब दान करो, खूब भोज-भंडारा करो, खूब गुरुओं को खिलाओ बस तू संसार से तर जायेगा। सद्गुरु कबीर विवेकी हैं। वे ठगाने वालों से कहते हैं कि तेरे पास तो विवेक-वैराग्य की आँखें थी जो विवेक कर सकती थी। उनमें रत्न की तरह प्रकाश था परन्तु विवेक बुद्धि रहते हुए तू क्यों इन वंचक धीमर स्वरूप गुरुओं के जाल में फंस गया ? ये तो तेरे को जन्म भर इसी जाल फंसा-फंसा कर खा जायेंगे। तू परमतत्त्व से वंचित रह जायेगा।

**पानी भीतर घर किया, सेज्या किया पताल।**
**पासा परा करीम का, तो मैं पहिरा जाल ॥२३०॥**

**शब्दार्थ**—सेज्या–शेज, शयनकक्ष। पताल–शेषनाग का लोक, मूलाधार। पासा–फंदा, बन्धन। परा–डाला। करीम का–यमराज का, ईश्वर का। तो–तब, पानी, संसार, विषय-वासना, भोग-विलास।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि विवेक बुद्धि रहते हुए तू क्यों सकाम कर्म रूपी जाल में पड़ गया। वंचक गुरुओं के जाल में फंस गया। तो नीचे सकाम कर्मी उत्तर दे रहा है कि मैं काल के भय से, मृत्यु के भय से बचने के लिये उक्त जाल पहना है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि यह मच्छ रूप मानव संसार रूपी जल के भीतर घर किया है और कर्म रूपी बहुत गहराई तक अपना आसन जमा रखा है अर्थात् स्वर्गादि लोकों में शयन करता है, ध्यान लगाता है परन्तु कहता है कि मैं इसलिए स्वर्गादि लोकों में जाने की बात सोचा कि वहाँ जाने से मृत्यु से बच जायेंगे। कारण की सारी सृष्टि में यमराज का पासा पड़ा हुआ है। जीवों को फंसाने के लिए यमराज दौड़ रहा है। इसलिए मैं गुरुओं के बताये हुए कर्म रूपी जाल को पहना है। क्योंकि

बिना गुरु के, बिना दान-सम्मान के, बिना तटस्थ देव की उपासना के, करीम के पासा से, बचना बड़ा कठिन है। इसलिए मे भगवान से कामना करता हूँ कि मुझे संसार से पार कर दें।

**मच्छ होय नहिं बांचिहो, धीमर तेरो काल।**
**जेहि-जेहि डाबर तुम फिरो, तहं-तहं मेलै जाल ॥२३१॥**

**शब्दार्थ**—डाबर–संग, द्रभ, समुद्र (झील) गढही, पोखरी, तलैया गड्ढ़ा जिसमें बरसाती पानी जमा होता है।

**सम्बन्ध**—ऊपर की साखी में मच्छ रूपी मानव सकाम कर्मों में क्यों फँसा हुआ है ? उत्तर दिया कि मैं यमराज के भय से बचने के लिए जाल पहना हूँ। नीचे कहा जा रहा है कि तू मच्छ होने से सकाम कर्मी होने से बच नहीं सकता है। क्योंकि कर्म रूपी वंशी में जो फल रूपी चारे लगे हुए हैं। उनको तू निगल जायेगा तो स्वयं मृत्यु के मुख में चला जायेगा। इसलिए सकाम कर्मों को छोड़ दो।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सकामी भाई ! तू मच्छ हो करके नहीं वच सकते हो। चाहे कितना भी तू सकाम कर्म कर। कितना भी सकाम उपासना कर कितनी भी तीर्थं-मूर्ति में घूम परन्तु उससे कुछ होने जाने वाला नहीं है। क्योंकि धीमर स्वरूपी तेरा उपदेष्टा वंचक गुरु स्वयं तेरा काल है। जो भी तू रक्षा की उपाय करोंगे। वे सब निष्फल हो जायेंगे। डाबर स्वरूप किसी भी लोक-लोकान्तर में जाओगे। गो लोक में जाओगे, इन्द्र लोक में जाओगे, शिव लोक में जाओगे। जहाँ-जहाँ भी जाओगे, वहाँ-वहाँ काल तेरे साथ चलेगा। तूझे धर दबोचेगा और वहाँ-वहाँ अपने जाल में तुझे फंसाने के लिये मृत्यु वहाँ-वहाँ पहुँचते रहेगी। तात्पर्य यह है कि जो भी लोक में छिपने के स्थान हैं। वे सीमित हैं सीमा के अन्तर्गत रहने वाले हैं। काल पाकर वे सब नष्ट होने वाले हैं। इसलिए सकाम कर्मों का त्याग करना चाहिए और लोक-लोकान्तरों की भी आशा छोड़नी चाहिए। सच्चे संत-सद्गुरु की शरण लेकर आत्मतत्त्व की प्राप्ति करनी चाहिए। वही एक बचने का उपाय है। अन्य कोई दूसरा उपाय नहीं है।

**बिनु रसरी गर सकलो बंधा, ताते बंधा अलेख।**
**दीन्हा दरपन हस्त में, चस्म बिना का देख ॥२३२॥**

**शब्दार्थ**—अलेख–आत्मा, परमतत्त्व। दरपन–आत्मज्ञान। चस्म–चश्मा, आँख, विवेक।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जब तक आत्मतत्त्व की प्राप्ति नहीं होगी तब तक धीमर रूपी काल तेरे गले की फाँसी बना रहेगा। तू कितना भी दिखावटी धर्म-कर्म करोगे और बचने के लिए धर्म की ओट लोगे परन्तु बच नहीं सकोगे। नीचे कहा जा रहा है कि यह संसार का मानव कर्म करने में स्वतन्त्र है। इसकी कोई परतन्त्रता नहीं है। अपने आप परतन्त्र हुआ है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्त जन ! ये संसार के मनुष्य बिना रस्सी के सभी लोग अपने गला को फँसाये हुए हैं अर्थात् झूठी मान्यताओं एवं लोक मर्यादा में अपने गले को आशा रूपी रस्सी से लोक-लाज रूपी रस्सी से बाँध रखा है। इसलिए जो अन्दर में विराजमान परमब्रह्म है, परमतत्त्व है। वह भी एक सीमा में बँधा हुआ है अर्थात् पड़ा हुआ है। ये अज्ञानी लोग उसको देख नहीं पा रहे हैं। मैं तो विवेक रूपी दर्पण, आत्मज्ञान रूपी दर्पण इन मूर्खों के हाथ में दिया था। हृदयंगम कराया था परन्तु विवेक रूपी नेत्र इनके पास न होने से उस परमतत्त्व अपने स्वरूप को देख नहीं पाये। वह भी इनके अन्दर पड़ा हुआ है। उससे ये कोई लाभ न ले सके। भला कहो इनका निस्तार कैसे हो सकेगा ?

**समुझाये समुझे नहीं, परहाथ आपु बिकाय।**
**मैं खैंचत हौं आप को, चला सो जमपुर जाय ॥२३३॥**

**शब्दार्थ**—परहाथ–परहस्त, अनहितैषी, यमराज।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मैंने आत्मज्ञान रूपी दर्पण दिया था परन्तु अनधिकारी पुरुष के पास विवेक रूपी नेत्र न होने से अपने स्वरूप को देख नहीं सका 'चश्म' में व्यंजना है। चश्मा का नाम उपनेत्र भी है। इसलिए चश्मा का नाम यहाँ लिया गया है। ऊपर बाहर दो नेत्र तो रहे ही हैं। उपनेत्र जो विवेक-वैराग्य होता है उसके अभाव में मेरी वाणी को समझ नहीं सका। इसलिए जीव का कोई लाभ नहीं हुआ।

**मूलार्थ**—शंका उठती है कि महाराज आप जैसे महात्मा चाहे होते तो वह समझ जाता क्योंकि आप समर्थ पुरुष हैं। इस पर सद्गुरु कहते हैं कि हे भाई जिज्ञासु। मैं उसको बहुत समझाया। बहुत बार कहा परन्तु मेरी बात समझ नहीं सका। प्रत्युत मेरा साथ भी छोड़

दिया और मेरे यहाँ से जाकर अहितैषी वंचकों के हाथ ढ़ोंगी गुरुओं के हाथ बिका गया, वंध गया। ऐसा वँधा, ऐसा बिका कि उसका साथ छोड़ा नहीं। मैं वहाँ जाकर उसको खींचता रहा। कहता रहा कि भाई वंचक के पास से भागो। वह तेरा हितैषी नहीं है। वह तुझे धोखा देगा। ऐसा कहकर मैं अपनी ओर घसीटने लगा, खींचने लगा, बुलाने लगा। कहते रहा कि तेरा कल्याण बिना सच्चे सन्त सद्गुरु के नहीं होगा। और वही सच्चे संत सद्गुरु मृत्यु के मुख से बचा सकते हैं। अन्य वंचक लोग तुझे यमलोक में लेकर चले जायेंगे। अर्थात् यमलोक में भेज देंगे परन्तु इस संसार का विषयी पामर मनुष्य मोह ममता से ग्रसित मेरी बात को नहीं सुना। वह यमलोक को चला ही गया।

## नित्य सत्संग प्रकरण

**चौपाई : नित खरसान लोह घुन छूटै।**
**नित की गोष्टि माया मोह टूटै ॥२३४॥**

**शब्दार्थ**—नित–प्रतिदिन। खरसान–हि० खर + सान–एक प्रकार की सान जो अधिक तीक्ष्ण होती है। इस पर तलवार की धार उतारी जाती है। जिसको सांग सान दोनों कहते हैं। गोष्टि–गुष्टि, सत्संग। टूटै–छूटे।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि संसार के दुःखी मनुष्यों को हम अपनी ओर आकृष्ट करता रहा कि आओ तुझे सत्य के दर्शन करायें। अमर लोक ले चलें परन्तु अज्ञानी मनुष्य संसार की सुख-सुविधा को छोड़ नहीं सका। शंका उठती है कि क्या आपके उपदेश बिल्कुल निरर्थक हैं ? कोई सुन नहीं सका। किसी का सुधार नहीं हुआ तो उत्तर स्वरूप वक्तव्य नीचे दिये जाते हैं कि नहीं सुधार हो सकता है यदि प्रतिदिन रगड़ किया जाय तो मानव स्वभाव में परिवर्तन आ सकता है।

**मूलार्थ**—जिस प्रकार से खरसान के ऊपर छुआने से लोह व तलवार के घुन स्वरूपी मोरचे छूट जाते हैं। बिल्कुल धारदार हो जाते हैं। उसी प्रकार से जो मनुष्य प्रतिदिन साधु सन्तों की गुष्टि में जायेगा। उनका प्रवचन सुनेगा। अवश्यमेव माया मोह रूपी घुन से उसका छुटकारा हो जायेगा। संसार से माया मोह के सम्बन्ध छूट जायेंगे परन्तु जब जाय तब न। 'घुन' में श्लेष है। जिस प्रकार से अन्न के ऊपरी भाग ज्यों के त्यों बने रहते हैं। भीतर-भीतर कीटाणु घुन जो उसकी एक जाति है। अन्न को खोखला कर देता है। इसी प्रकार से मानव बाहर से तो बहुत

धार्मिक जैसा दीखता है, हृष्ट-पुष्ट दीखता है परन्तु भीतर ही भीतर माया मोह घुन के समान उसके अन्तःकरण को चलनी बना देते हैं। इसलिए इस माया रूपी व्याधि से बचने के लिए सन्तों की संगति में अवश्य जाना चाहिए।

## पापी प्रकरण

**लोहा केरी नावरी, पाहन गरुवा भार।**
**सिर पर विख की मोटरी, चाहै उतरन पार ।।२३५।।**

**शब्दार्थ**—लोहा–सकाम कर्म, वंचक गुरु। केरी–की। नावरी–नौका। वंचक गुरु का ज्ञान। पाहन–आशा तृष्णा, पाप कर्म, बड़ी-बड़ी चाहनाएँ। गरुवा–गुरु, भारी वज़न, बहुत भार वाला, भार, अतिभार। बहंगी, दो मन। विख–विष, जहर, लोक तृष्णा। मोटरी–गठरी। पार–भवसागर, उतरना चाहता है।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि नित्य के सत्संग से माया मोह में कमी आती है और परमतत्त्व की ओर मन अग्रसर होता है परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि बिना सत्संग बिना हरि भजन के ही लोग भव-सागर पार उतरना चाहते हैं।

**मूलार्थ**–इस संसार का मानव कितना अपने को चतुर समझता है मानता है। बहुत थोड़े से परिश्रम में चाहता है कि मुझे अपार सफलता मिल जाय। मुझे कोई भी कर्म करने पड़े। करूं और अन्ततः मरण काल में सुकर्म करके भव से पार हो जायेंगे। इस पर गुरुदेव कबीर कहते हैं कि यह संसार का पामर मनुष्य जो रात-दिन पाप कर्म में लिप्त रहता है और वंचक गुरुओं के उपदेश पर विश्वास करता है। भला जो लोहा के समान पाप-कर्म से स्वयं लदा हुआ है, भारी हुआ है। उस लोह रूपी सकाम कर्म रूपी वंचक गुरु को नौका बनाया है और उसके ज्ञान से भवसागर पार करने की तैयारी करता है और पाहन स्वरूप पाप कर्म गरुवा कहिये जो बहुत वजनी होता है, बहुत भारी होता है। वह तो उस नाव पर भार लादा है और सिर पर लोकेषणा, वित्तेषणा, पुत्रेषणा की मोटरी भी बाँधी है और ये सब लेकर संसार सागर से पार उतरना चाहता है। तात्पर्य यह है कि यह अविवेकी मनुष्य लोह पिण्ड का नौका बनाया है और पत्थर स्वरूप पाप को उस पर लादा है तथा नष्ट करने

वाली विषय-वासना कुकर्म की मोटरी सिर पर रखा है। इतना बड़ा भार वंचक के ज्ञान पर लदा है। भला कहो हे सन्त जन! ऐसे लोग मुक्त हो सकते हैं जो धर्म को और भगवान को सबको ठगना चाहते हैं?

## अबोध प्रकरण

**क्रिस्न समीपी पांडवा, गले हिंमाले जाय।**
**लोहा को पारस मिले, तो काहे को काई खाय ॥२३६॥**

**शब्दार्थ**—क्रिस्न–श्रीकृष्ण। समीपी–निकट के। पांडवा–पांडव, युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई। गले–पिघले। लोहा–अज्ञानी मनुष्य। पारस–एक प्रकार का पत्थर जिसके छुआने से लोहा सोना हो जाता है, आत्मज्ञान। काई–अज्ञान, मृत्यु।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि पापी मनुष्य पापियों के साथ होकर मुक्त होना चाहता है। नीचे कहा जा रहा है कि पार तो आत्मज्ञान से उतरा जाता है। प्रभु भजन से उतरा जाता है इसके विपरीत पार उतरना सम्भव नहीं है।

**मूलार्थ**—गुरु महाराज कहते हैं कि हे आत्मज्ञानी सन्तजन! भला कहिये कि कितना आश्चर्य है कि भगवान श्री कृष्ण के समीप में निवास करने वाले पाण्डव लोग हिमालय क्यों गलने गये? यदि लोहा स्वरूप पाण्डव लोगों को पारस स्वरूप भगवान श्रीकृष्णचन्द्र का ज्ञान असर किया होता और उस ज्ञान का प्रभाव पाण्डव जन पर पड़ा होता तो हिमालय जाने की क्या जरूरत थी, अर्थात् लोहा को जब पारस मिल जाता है तो वह सोना हो जाता है। पुनः उस सोने में जंग स्वरूप काई नहीं लगती है। इसी प्रकार से कितना बड़ा भी आत्मज्ञानी गुरु हो चाहे वह भगवान श्रीकृष्ण ही क्यों न हों और उनका ज्ञान मुक्तिदाता ही क्यों न हो? फिर भी पाण्डव सरीखे अधिकारी पुरुष ही क्यों न हों परन्तु भगवान श्रीकृष्ण के ज्ञान को सुनकर धारण न किया जाय तो उससे लाभ क्या हो सकता है? अज्ञान के कारण ही मनुष्य आत्महत्या करता है फाँसी लगाता है। इसी प्रकार से यदि पाण्डव लोगों को श्रीकृष्ण वाले उपदेश से ज्ञान हुआ होता तो मृत्यु स्वरूप काई क्यों कर खाती? इसी-लिए आत्मज्ञान सुनकर उसको जीवन में उतारना चाहिए था तभी उससे कुछ लाभ हो सकता था।

## मृत्यु प्राबल्य प्रकरण

**पूरब उगै पछिम अथवै, भखै पौन के फूल।**
**ताहू को राहु ग्रसै, मानुख काहे को भूल ।।२३७।।**

**शब्दार्थ**—पौन–पवन की गति से, प्राणवायु, वायु अ० प्राण श्वांसा। फूल–पुष्प। ताहू–उसको भी। राहु–नवग्रहों में एक ग्रह जो बिना धड़ का रहता है यह आकाशीय ग्रह है। पृथ्वी की गति के अनुसार सूर्य में जो छाया पड़ती है। जहाँ तक सूर्य काला हो जाता है। उसको भी राहु कहते हैं। ग्रसै–ग्रहण करे, निगल जाय। काहे–क्यों कर।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जब तक अज्ञानी मनुष्य को सच्चा आत्मज्ञान नहीं होता है। तब तक वह जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहता है। अब नीचे कहा जा रहा है कि कितना कोई भी शक्तिशाली हो, कितना भी बड़ा हो परन्तु उसको भी संकट का सामना करना ही पड़ता है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे भाई देखो जो सूर्य पूर्व दिशा में उदय होता है और पश्चिम दिशा में अथवै कहिये अस्त हो जाता है और वह सूर्य अन्नाहार भी नहीं करता है अर्थात् आकाश में स्वयं अपनी परिधि में निराधार रहता है उसका आहार जीवन का साधन वायु का पुष्प कहिये स्तंभन क्रिया है अर्थात् यह सूर्य और जितने नौ ग्रह हैं एक दूसरे के आकर्षण से सब स्थित हैं। आधुनिक विद्वानों का मत है कि सूर्य स्थिर रहता है। इससे भी सिद्ध होता है कि सूर्य में बहुत बड़ा वायु बल है। उसके अन्त:करण में वायु की स्तंभन क्रिया है जिसके कारण वह सूर्य टस से मस नहीं होता है। जिस प्रकार से प्राणायाम करने वाला साधक, योगी अपने अन्दर में वायु को पचा लेता है तो वह टस से मस नहीं होता है। आकाश में भी स्थिर हो जाता है और पाताल में भी धँस जाता है। गुरु महाराज का कहना है कि जो सूर्य सभी लोकों का अधिपति है। सबको प्रकाश देता है और पवन के बल पर उसकी गति स्थिर रहती है, और वह सूर्य अचल रहता है। उस सूर्य को भी जो उसका सजातीय ग्रह राहु है। समय-समय से निगलते रहता है अर्थात् सूर्य भी प्रलय कालादि में अभाव को प्राप्त हो जाता है। तब भला कहो ये मानव जिसके अन्दर अज्ञान भरा हुआ है। पाप कर्म में रत है। जिसकी शरीर मल-मूत्र की है। जो अन्न आहार करता है। जिसकी आयु बहुत अल्प है। वह इस संसार में क्यों भूला हुआ है? जब सूर्य का कभी अस्त नहीं होता है। उस पर

भी उसको प्रलय रूपी काल नहीं छोड़ता जो सदा सावधान रहता है तो यह मानव क्यों भूल रहा है ? इसको तो जागना ही चाहिए।

**नैनन आगे मन बसे, पलक-पलक करै दौर।**
**तीन लोक मन भूप है, मन पूजा सब ठौर ॥२३८॥**

**शब्दार्थ**—पलक-क्षण-क्षण, उन्निमेष, उन्मेष, आँख की पुतली का नीचे गिरना।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि कितना भी समर्थ पुरुष हो उस पर भी संकट की घड़ी आती है। नीचे कहा जा रहा है कि मानव मन की गति बड़ी विलक्षण है। सारा संसार, सारे भूतगण इस मन के फेर में पड़े हुए हैं।

**मूलार्थ**—यह मन जागृत अवस्था में नेत्रों के अग्रभाग में बसता है अर्थात् दृष्टि जहाँ नहीं पहुँचती वहाँ मन पहुँच जाता है इसलिए यह देखने में नेत्रों से आगे है। जागृत अवस्था और स्वप्न अवस्था में क्षण-क्षण पलक मारते-मारते यह दौड़ करते रहता है। तीनों लोक में जहाँ तक प्राणियों की सृष्टि है। वहाँ तक का मन ही भूप है अर्थात् आत्म-ज्ञानियों को छोड़कर पूरे समाज पर मन का शासन है। मन ही के अनु-सार मानव गमन प्रतिगमन करता है और सभी जगह मन ही पूजायमान हो रहा है। सभी इसी को श्रेष्ठ मान बैठे हैं अर्थात् जो मन कृत कार्य हैं उन्हीं में मानव की निष्ठा हो गयी है।

**मन स्वारथी आप रस, विखै लहर फहराय।**
**मन के चलाये तन चले, जाते सरबस जाय ॥२३९॥**

**शब्दार्थ**—मन–पु० सं० मनस्–प्राणियों में वह शक्ति वह कारण जिससे उसमें वेदना, संकल्प, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न बोध और विचार आदि उत्पन्न होते हैं। अन्तःकरण की चार वृत्तियों में से एक जिससे संकल्प-विकल्प होता है वह मन।

उदाहरण—ऊधो ! मन न होय दस बीस। (सूर)

स्वारथी–स्वार्थी, अपने पक्ष की बात करना। आप–स्वयं। रस–स्वाद। विखै–विषय, वासना। लहर–तरंग। फहराय–डोले। चले–हवा में उड़े। सरबस–सब कुछ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि सारा संसार मन को ही गुरु मान बैठा

है और अब नीचे कहा जा रहा है कि मन के वशीभूत प्राणी बड़ा स्वार्थी होता है।

**मूलार्थ**—यह मन बड़ा स्वार्थी है और सभी वस्तुओं का रस स्वयं चखना चाहता है। जितने प्रकार के भोग हैं उन सब भोगों का रस स्वयं अपने लेना चाहता है। विषय-वासना रूपी समुद्र में उताल तरंगों की भाँति तरंगित होते रहता है। समुद्र में जब हवा का वेग बढ़ता है तब तरंगों में और फरफराहट अर्थात् गति बढ़ जाती है। उसी प्रकार से विषयी मनुष्यों का मन जितना ही विषय रस पाता है उतना ही चलायमान होते रहता है। इसी मन के चलाने से सभी इन्द्रियों के साथ शरीर भी चलायमान हो जाता है। जब दुष्कर्मों में ले जाकर शरीर को मन ढ़केल देता है तब उसके साथ सब कुछ जाते रहता है। अर्थात् दैवी सम्पदा का नाश हो जाता है और उसमें विवेक-विचार, दया, क्षमा, अहिंसा, लोक-लाज, मैत्री-भाव, अपना-पराया सब कुछ नष्ट हो जाता है। जैसे—विषयी पुरुष विषय की तीव्रता में भगिनी, पुत्री, माता तक को विषय का आखेट बनाता है उसी प्रकार से यह मन गमनागमन सब कुछ करता है। इसलिए मन से सदा सावधान रहना चाहिए।

## अन्ध परम्परा प्रकरण

**कैसी गति संसार की, ज्यों गाडर की ठाट।**
**एक परा जो गाड़ में, सबै गाड़ में जात ॥२४०॥**

**शब्दार्थ**—गति–चाल। गाडर–भेड़, अज्ञानी मनुष्य। ठाट–समूह, झुण्ड। गाड़–गड्ढा, कुँआ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि यह मन बड़ा स्वार्थी है। यदि स्वार्थी का अर्थ स्व रथी स्वयं रथ हाँकने वाला शरीर रूपी रथ का स्वामी किया जाय तो वह अर्थ उपर्युक्त ही होगा उसमें कोई अन्तर नहीं होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य मन के आगे कुछ नहीं है क्योंकि मन इसको जीत लिया है। नीचे कहा जा रहा है कि इस मन के चक्र में पड़कर संसार के सभी मनुष्य लगभग एक गति वाले हो गये हैं।

**मूलार्थ**—संसार की गति किस प्रकार की है, संसारी मनुष्य किस प्रकार से चलते हैं? क्या करते हैं? तो सद्गुरु कहते हैं कि इन संसारी मनुष्यों की चाल जैसे भेड़ियों के समूह की चाल होती है उसी प्रकार से इनकी भी चाल है। यदि एक भेड़ कुँआ में गिर गयी अथवा गड्ढे में गिर

गयी तो सभी भेंड़े देखा-देखी उसी गाड़ में चली जाती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अज्ञानी मनुष्य जो होते हैं उन सबों की एक ही चाल है जो एक अज्ञानी करता है वही दूसरा अज्ञानी भी देखा-देखी करने लगता है जैसे पहले काशी में काशी करवट था। अभी भी उसका कुछ भग्नावशेष है। पहले बहुत बड़ा गहरा कुँआ था। तीर्थ के धर्मगुरु लोग ऐसा शोर मचा दिये थे कि जो उस कुँए में जीते जी चला जायेगा वह सशरीर स्वर्गलोक में चला जायेगा। भोला-भाला युग था। लोग धर्म और धर्मगुरुओं में बड़ी अटूट आस्था रखते थे। पण्डों के बहकावे पर लाखों की जानें उस कूप में गयी होगी। कोई विचारता नहीं था, कोई विवेक नहीं करता था कि इस कुँए में कहा से स्वर्ग की सीढ़ी आ गई है? कैसे इसमें से स्वर्ग जायेंगे? कोई भी अपने में तर्क नहीं करता था उल्टे तीर्थ-पुजारियों को लाख-पचास हजार, मान-सम्मान देकर लोग आँख मूँदकर काशी के उस कूप में कूद पड़ते थे। नीचे बहुत से धारदार हथियार गड़े रहते थे जिसमें फँसकर लोग कट मरते थे। कुछ लोगों का मत है कि उस कुँए का सम्बन्ध गंगा जी से था। बरसात के महीने में जब गंगा में बाढ़ आती थी तो उस कुयें में पानी भर जाता था तथा सभी लाशें अपने आप गंगा जी में विर्सजित हो जाती थी। ऐसे ही ये संसार के लोग हैं। किसी झूठी बात को भी कोई धर्म बना दिया हो। कोई विषय-भोग को ही धर्म मान लिया हो। कोई पाप कर्म को ही धर्म मान लिया हो तो सब उसी के पीछे चल पड़ते हैं। यह है संसार की गति।

**मारग तो वह कठिन है, वहां कोई मति जाय।**
**गये ते बहुरे नहीं, कुशल कहे को आय ॥२४१॥**

**शब्दार्थ**—मारग–मार्ग, रास्ता, मुक्ति–मार्ग। कठिन–कठोर दुःसाध्य। वहाँ–उस करवटादि में। बहुरे–लौटकर। कुशल–आनन्द, विघ्न रहित।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अज्ञानियों का मार्ग एक होता है। एक मूर्ख जिस भेड़िया धसान में पड़ा उसी में देखा-देखी सब मूर्ख जा पड़ते हैं। नीचे कहा जा रहा है कि जो मूर्खों की गति वाला मार्ग है वह बड़ा कठोर है। बड़ा दुःखप्रद है। उस रास्ते से कोई मत जाओ।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर बन्दीछोड़ कहते हैं कि हे भाई सन्तो! हे संसार के मनुष्यों! जिस रास्ते से अज्ञानी लोग जा रहे हैं। जिस मार्ग से मूर्ख

लोग परिगमन कर रहे हैं, उस कामना वाले मार्ग पर तू मत जाओ। उस स्वर्गादि मार्ग के लालच में मत पड़ो। कामना का मार्ग वहुत कठिन है। मन की कामनाएं अपार होती हैं, असंख्य होती हैं। वे पूर्ण होने वाली नहीं हैं। इसलिए जहाँ मन जाता है, जिस सुख को मन चाहता है, जिस सुख को मन भोगना चाहता है, वहाँ मत जाओ। जिन तीर्थ-मूर्तों में, जिन काशी करवटादि में लोग जाकर मरते हैं, वहाँ जाकर मृत्यु के मुख में ना पड़ो। क्योंकि जो लोग यहाँ से गये वे पुनः लौट कर नहीं आये कि वहाँ आनन्द का घर है। वहाँ सुख है। ऐसा कुशल कहने के लिये कोई आया नहीं। इसलिए उस अनजान मार्ग का त्याग करो। सच्चे संत सद्गुरु के वताये हुए रास्ते पर चलो। अन्यथा कल्याण के वजाय अकल्याण हो जायेगा।

## कुसंग रूपक प्रकरण

**मारी मरे कुसंग की, केरा साथे बेर।**
**वै हालै वै चीरबै, विधिना संग निवेर ॥२४२॥**

**शब्दार्थ**—मारी–मारे हुए। मरे–मर जाय। कुसंग–दुष्ट संग। केरा–केला, कदली फल, भला मनुष्य। साथे–संग। बेर–एक प्रकार का फल जिसका पेड़ काँटेदार होता है जो फाल्गुन-चैत में पकता है, कुसंग वै–केला, भला मनुष्य। हाले–डोले, आस-पास निवास करे, हिले। वैं–बैर, दुष्टात्मा। चीरबै–चीरे, केले के पत्तों को फाड़ दे। विधिना–विधाता, ईश्वर। निवेर–निवारण, निर्वाह, कुशल से रखे, निर्णय, सुलझाना।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि दुष्टों के संगत में पड़कर अच्छे मनुष्य का भी विनाश हो जाता है। इसलिए नीचे कहा जा रहा है कि किसी की संगति बहुत सोच समझ कर करनी चाहिए। किसी को गुरु बनाना हो, किसी को शिष्य बनाना हो, किसी को मित्र बनाना हो तो बहुत सोच समझकर बनाना चाहिए अन्यथा जीवन की हानि होती है।

**मूलार्थ**—गुरु महाराज कहते हैं कि कुसंगति का मारा हुआ व्यक्ति कभी जीता नहीं है। वह कुसंग के मारे मर ही जाता है। दुष्टात्मा से कभी किसी का लाभ नहीं हुआ है। जिस प्रकार से केला और बेर के वृक्ष एक साथ हों बहुत सन्निकट हों तो केला की भलाई नहीं हो सकती क्योंकि केला बहुत चिकना होता है। बड़ा मुलायम होता है। बाहर भीतर भोला-भाला होता है। फल मीठा होता है। बेर का पेड़

काँटेदार होता है। छोटी-छोटी चैलियों से भरा पड़ा रहता है। केवल उसके फल ऊपर से चिकने दीखते हैं पर भीतर में उसका बीज बड़ा कठोर होता है। जब वह केले के पत्ते पर डोलता है अर्थात् उसकी ओर झुकता है तो बेर के कांटे उसको चीर-फाड देते हैं। इसी प्रकार से भले मनुष्यों को सज्जन स्वभाव को कभी भी दुष्ट पुरुषों का साथ नहीं करना चाहिए। क्योंकि दुष्ट लोगों का दो स्वभाव होता है। बाहर से चिकना-चाकना और अन्दर में कपट लिये होता है। सज्जन बाहर भीतर साफ होते हैं। इसलिए उनका कुशल दुष्ट के साथ में होने वाला नहीं है। यदि दोनों का साथ संयोग वश हो गया हो तो भगवान ही संग छुड़ा सकते हैं। निर्वैर कर सकते हैं, निवारण कर सकते हैं। अन्यथा बेर रूपी दुष्ट के साथ में पड़कर जन्म भर दुःख ही भोगना पड़ेगा।

**केरा तबहिं न चेतिया, जब ढ़िग लागी बेर।**
**अब के चेते का भया, जो काटन लीन्हा घेर ॥२४३॥**

**शब्दार्थ**—चेतिया–सावधान। ढ़िग–समीप। लागी–आरोपित हुई। काटन–कांटा, दुष्टन। घेर–चारों तरफ से अपने अन्दर कर लिया।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि दुष्ट की संगति से कभी लाभ नहीं होता है। दुःख ही दुःख होता है परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि केला रूपी सज्जन पुरुष को दुष्ट की संगति से पहले ही सावधान होना चाहिए था परन्तु हुआ नहीं।

**मूलार्थ**—यह मनुष्य सहज स्वभाव का होता है। पहले तो सावधान नहीं होता है। जब विपत्तियाँ घेर लेती हैं, जब दुष्ट लोग उस पर पूरा जम जाते हैं। अपने प्रभाव में कर लेते हैं। तब सावधान होने से क्या हुआ ? जब कि दुर्गुणों का घेरा मानव के जीवन पर चारों ओर से पड़ गया। यह रूपक अलंकार है। केरा तब नहीं चेता जब उसके पास में बेर के पेड़ लग रहे थे। तब उसको निषेध करना चाहिये था, मना करना चाहिये था। तब तो वह असावधान रहा, लापरवाह रहा। भला अब चेतने से क्या हुआ ? जब केले के चतुर्दिक बेर के कांटे घेर लिये। इस प्रकार से मनुष्य को पहले ही चेतना चाहिए था, विचारना चाहिए था। प्राण कंठ-गत होने पर विचारने से क्या होगा ? जब चारों ओर से व्याधियाँ घेर लेती हैं तब वैद्य के आने से क्या होगा ?

**जीव मरम जाने नहीं, अंध भया सब जाय।**
**बादी द्वारे दाद न पावे, जनम-जनम पछिताय ।।२४४।।**

**शब्दार्थ**—मरम–रहस्य, असली भेद। बादी–जो वाद को उपस्थित करता है बादी उसको कहते हैं, जो किसी न्यायालय या सरपंच के यहाँ अपने विवाद सुलझाने के लिये ले जाता है, साधक। दाद–न्याय।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि पहले तो सावधान नहीं हुआ जब चर्तुदिक आपत्तियों का घेरा पड़ गया। तब हाय तोवा मचाने लगा। बचाओ मुझे बचाओ मुझे की गोहार लगाने लगा परन्तु अब क्या हो सकता है। मरने के बाद जैसे बैद्य आकर कुछ नहीं कर सकता है। उसी प्रकार से जिसका सर्वस्व चला जाय। उसका सद्गुरु क्या कर सकता है? वह न्याय पाने का अधिकारी भी नहीं है। क्योंकि न्यायाधीश समयानुसार न्यायालय छोड़कर चला गया था। तात्पर्य यह को जब प्राण कंठगत हो जाते हैं। तब कोई सुनने वाला नहीं होता है। नीचे कहा जा रहा है कि यह अज्ञ प्राणी जो मानव देहधारी है वह सत्यता को नहीं पहचानता है।

**मूलार्थ**—कोई भी मनुष्य कितना भी बुद्धिमान क्यों न हो बहुत योग्य बनता हो परन्तु जब तक वास्तविकता को नहीं समझ पाता है तब तक वह सत्य से बहुत दूर रहता है। सद्गुरुदेव कहते हैं कि हे सन्त जन! यह जोव आत्मतत्त्व की प्राप्ति का भेद नहीं जानता। यदि आत्म तत्त्व की प्राप्ति का भेद जानता तो इसके नेत्र विमल हो जाते परन्तु विवेक रूपी नेत्रों का अभाव होने के कारण सभी लोग अन्धा बनकर आँख मूँदकर चले गये। जो उनका वाद था, जो उनका न्याय था। वह मानव तन रूपी द्वार में ही प्राप्त होने वाला था परन्तु समय के रहते अपना वाद प्रस्तुत नहीं किये। प्रभु की पुकार नहीं लगाये। भजन-भाव कुछ नहीं किये। सच्चे संत सद्गुरु के पास नहीं गये इसलिए मुक्ति रूपी न्याय उसको नहीं मिली। क्योंकि तब तक न्यायाधीश परमात्मा इनकी पहुँच से दूर जा चुका था। अर्थात् शरीर के जर्जर होने पर इन्द्रियों के शिथिल होने पर क्या कोई आत्मा की प्राप्ति कर सकता है? तब तो मनुष्य परवश हो जाता है। कुछ करने में असमर्थ रहता है। इसलिए उसकी गोहार कोई नहीं सुनता। न उसको दाद मिलती है। अन्ततः मानव योनि से परे होने पर जन्म-जन्म पश्चाताप करता है।

**जाको सतगुर ना मिला, व्याकुल दहुं दिसि धाय ।**
**आंखि न सूझै बाउरा, घर जरे घूर बुताय ॥२४५॥**

**शब्दार्थ**—जाको–जिसको । दहुँ–दसों । बाउरा–बावला, पगला । घर–शरीर । घूर–जिसमें कूड़ा करकट फेंका जाता है, निरर्थक कर्म ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो बहुत वाद-विवाद करता है । जो जन्म भर शास्त्रों के चक्र में पड़ा रहता है । उसको ईश्वर के यहाँ न्याय नहीं मिलता है क्योंकि वह विवाद के अन्दर बहुत सी झूठ बात बोलता है । अपना पक्ष सिद्ध करने के लिए बहुत से तर्कों को प्रस्तुत करता है इसलिए सत्य आत्मा से वंचित रहता है । अन्ततोगत्वा अपने किये गये पर पश्चाताप करता है । नीचे कहा जा रहा है कि सद्गुरु विहीन मनुष्य न्याय से वंचित रहता है ।

**मूलार्थ**—जिस व्यक्ति को सद्गुरु न मिला हो तो उसको सत्य मार्ग भी नहीं मिलता । मार्ग विहीन मनुष्य दशों दिशा में व्याकुल होकर दौड़ता है, धावता है क्योंकि उसकी आँखों से कुछ दिखाई नहीं दे रहा है । विवेक, बुद्धि कुछ काम नहीं कर रही है वह बावला ज्ञानहीन विवेक को खो दिया है । जन्म भर तो शास्त्रार्थ करते रहा । वाद-विवाद करते रहा और अपना घर रूपी शरीर के अन्दर काम क्रोध से जलते रहा । अपने सत्य की प्राप्ति न कर दूसरे का घूर बुझा रहा था अर्थात् दूसरे को शांति का उपदेश देता रहा । यह कितनी बड़ी अज्ञानता की बात है ? अपने स्वयं सत्य से वंचित है और दूसरे को सत्य शान्ति का उपदेश देता है । विवेक की आँखों से देख नहीं पा रहा है कि पहले हम आत्मज्ञ हो जाँय तब दूसरे के लिए कुछ कहें परन्तु ऐसा न करके जन्म भर दूसरे को शास्त्रों की बात सुनाते रहा ।

**वस्तु अंतै खोजै अंतै, क्योंकर आवे हाथ ।**
**ग्यांनी सोई सराहिये, जो पारख राखै साथ ॥२४६॥**

**शब्दार्थ**—पारख–विवेक, ज्ञान । वस्तु–आत्मज्ञान ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि शास्त्र के झमेले में पड़कर प्रभु प्राप्ति से वंचित रहा क्योंकि नीचे कहा जा रहा है कि वह वस्तु, वह सत्य आत्मा शास्त्रों में नहीं है । शास्त्र तो केवल उसकी ओर संकेत करते हैं । उसकी प्राप्ति तो सद्गुरु से होती है ।

**मूलार्थ**—वस्तु कहीं अन्यत्र है । खोजने कहीं अन्यत्र जाता है ।

भला क्योंकर वह हाथ में आ सकती है। हाथ में तो उसी को प्राप्त होती है जो वस्तु का ज्ञान रखता है कि वह वस्तु कहाँ है? और उसी की सराहना भी होती है जो अपने हाथ में विवेक रखता है। इसी प्रकार से आत्मतत्त्व रूपी वस्तु हृदय में है, गुरु के वचन में है परन्तु यह भटकता हुआ मानव उस आत्मतत्त्व को, उस परमतत्त्व को शास्त्रों में खोजता है। तीर्थों में खोजता है, मूर्तियों में खोजता है, वंचकों के यहाँ खोजता है, संसारी सुखों में खोजता है, पुत्र-कलत्र में खोजता है, धन-सम्पत्ति में खोजता है जहाँ वह वस्तु नहीं है। जहाँ आत्मज्ञान नहीं है। वहाँ क्योंकर पावेगा? मैं कबीर कहता हूँ कि सोई ज्ञानी सराहनीय है जो अपने साथ पारख रखता है। उस वस्तु की पहचान जानता है। अन्य सब गैर पारखी उससे परे हैं।

## स्वविवेक प्रकरण

**सुनिये सबकी, करिये अपनी।**
**सेन्दुर का सिंधौरा, झपनी की झपनी ॥२४७॥**

**शब्दार्थ**—सेन्दुर–सिन्दूर वह शृंगार की वस्तु है, जिसको सुहागिन स्त्रियाँ अपने लिलार पर लगाती हैं, पतिव्रताओं का चिह्न है। आत्म-तत्त्व। सिंधौरा–जिसमें सिन्दूर रखा जाता है। झपनी–शीशेदार सिंधौरा का ढक्कन, पिटारी, आवरण।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि ज्ञानी सराहनीय है। वही शास्त्रवेत्ता प्रशंसा का पात्र है जो शास्त्रज्ञान के साथ-साथ विवेक भी रखता हो। नीचे कहा जा रहा है कि कथन से ज्यादा सुनना चाहिए। क्योंकि ज्यादा बोलने से तत्त्व का ह्रास होता है। वाणी का क्षय होता है। वाद-विवाद भी बढ़ता है।

**मूलार्थ**—गुरुदेव कबीर कहते हैं कि हे भाई सन्तजन! बुद्धिमानों को चाहिए कि सबकी बात सुने। सबका सिद्धान्त देखें परन्तु जो अपने कल्याण की बात है, जो अपना सत्य सिद्धान्त है, जिसमें आत्मतत्त्व की प्राप्ति होनेवाली है। उसी बात को करना चाहिए। अन्य संसारी बातों का परित्याग कर देना चाहिए। क्योंकि जिस प्रकार से पतिव्रता स्त्रियाँ पति के प्रतीक रूप सिन्दुर माँग में लगाती हैं और सिंधौरा में सिन्दुर रखा रहता है। उसमें एक ढक्कन भी होता है। जिसमें दर्पण लगा रहता है। सिन्दुर लगाने के बाद मातायें उसी में अपना मुख भी देखती हैं और सिन्दुर को संवारती भी हैं। वह ढक्कन सिंधौरा को ढकने का

भी काम करता है और मुख देखने का भी काम करता है। इसी प्रकार से सिंधौरा रूपी शरीर में सिन्दुर रूपी आत्मा विराजमान है और जब तक वह शरीर में रहता है तब तक मनुष्यों को जीने का प्रमाण मिलता है। यह मानव शरीर रूपी सिंधौरा का जो ढक्कन स्वरूप विवेक है वह सत्य असत्य का निर्णय भी करता है और शरीर की रक्षा के लिए ढक्कन का भी काम करता है। क्योंकि विवेकहीन मनुष्य असुरक्षित रहता है। जो विवेक ज्ञान है वही उसका रक्षक है। इसलिए अपने अन्दर जो विवेक है वह दोनों का काम करता है। उसके द्वारा आत्मा को भी जाना जा सकता है और शरीर रूपी सिंधौरे की रक्षा भी हो सकती है।

**बाजन दे बाजंतरी, तुं कलकुकही मति छेड़।**
**तुझे बिरानी का परी, तुं अपनी आप निबेर ॥२४८॥**

**शब्दार्थ**—बाजन–बाजने वाला। बाजंतरी–वाद्य यंत्र, अच्छी सितार, वार्तालाप, सत्संग। कलकुकही–एक प्रकार का छोटा बाजा जो अवध क्षेत्र में किंगिरिया लोग बजाते हैं। किंगिरिया एक प्रकार की बैनजीवी जाति है। कलकुकही बाजा लगभग एक फुट का होता है। वह धनुषाकार होता है। उसमें एक या दो तार लगे होते हैं और उसके किनारे दो-चार घुंघुरू लगे होते हैं। उसी का नाम कलकुकही है, वाद-विवाद, विघ्न। बिरानी–दूसरे की। निबेर–निवार, निर्णयकर।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि विवेक एक ऐसी वस्तु है जो आँख का काम करता है और जीवन के रक्षा का भी काम करता है। नीचे कहा जा रहा है कि यदि कहीं अच्छी बातें होती हों, सत्संग होता हो। आत्मकथा होती हो उसमें विघ्न न डालो।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सन्तजन ! मनुष्यों को चाहिए कि यदि कहीं पर श्रेष्ठ वाद्य सितार बजाया जाता हो तो उसमें छोटा बाजा बेसुर ताल वाली, कलकुकही को नहीं बजाना चाहिए। अन्यथा दोनों की आवाज अलग-अलग होगी। श्रोता गण को न सितार की आवाज अच्छी लगेगी, न कलकुकही की ही आवाज अच्छी लगेगी। अर्थात् ताल में बेताल नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार से जहाँ पर अच्छे सन्त महात्मा लोग, विद्वान लोग अच्छी बातें करते हों, कल्याण की चर्चा करते हों, आत्मकथा करते हों। तो उसमें संसारी बातों को नहीं छेड़ना चाहिए क्योंकि सत्यकथा में विघ्न पड़ेगा। यदि तुझे अपनी ही बात सही जान पड़ रही है कि जो मैं कह रहा हूँ वही सत्य है तो दूसरे के फेर में तू क्यों

पड़ रहा है। पहले तू अपने आप निबेर। पहले अपने दुःख का अन्त कर। तब दूसरे के लिए हल्ला मचाओ। अपने तू खारी खा रहा है। दूसरे के लिए कपूर की बात कर रहा हैं। तू मूर्ख है, अज्ञ है। तुझे चुपचाप रहना चाहिए।

**गावै कथै बिचारै नाहीं, अनजाने का दोहा।**
**कहैं कबीर पारस परसे बिन, जस पाहन भीतर लोहा ॥२४९॥**

**शब्दार्थ**—दोहा–श्लोक, पद्य। जस–जैसे।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अच्छी बातों में भी लोग विघ्न डालते हैं। अपनी तो देखते नहीं। दूसरे के ही दोष निकालने में दक्ष रहते हैं। नीचे कहा जा रहा है कि मात्र कथनी से कुछ होने वाला नहीं है। साथ में करनी भी चाहिए।

**मूलार्थ**—संसार को रिझाने के लिए, प्रतिष्ठा कमाने के लिए, मान-सम्मान बढ़ाने के लिये, अर्थ कमाने के लिए जो लोग कलाकार हैं। बहुत अच्छे-अच्छे स्वरों में, सुन्दर रागों में अच्छी-अच्छी गीतों को गाते हैं और शास्त्र की बातों का कथन करते हैं। आत्मा-परमात्मा की बातें करते हैं परन्तु उस गाने के अर्थ और कथन के अर्थ पर स्वयं अपने विचारते नहीं कि मुझे भी उस पर चलना चाहिए की नहीं। उसके विपरीत बहुत अनर्थ का काम करते हैं। वे उसी प्रकार से अजान हैं जैसे बिना पढ़ा-लिखा मनुष्य किसी श्लोक या दोहे का अर्थ ही न जानता हो। मैं कबीर कहता हूँ कि यदि इन गाने-बजाने वाले को पारस रूपी ज्ञान थोड़ा भी परसा होता तो ये कुकर्म नहीं करते परन्तु जिस प्रकार से लोहा पत्थर संयुक्त लोह पिंड को पारस में छुआइये तो वह कदापि सोना नहीं हो सकता। इसी प्रकार से ये गाने-बजाने को ये कथा करने वालों के अन्दर जब तक अज्ञान का परदा पड़ा हुआ है। कुमति की कमाई करते हैं। राग-द्वेष, आशा, तृष्णा से व्याप्त हैं। विषय-भोग में चित्त दिये हैं। ऐसे लोह रूपी मनुष्य पाहन रूपी अज्ञान से जो आवृत हैं उनको गुरु पारस रूपी ज्ञान कभी स्पर्श नहीं कर सकता है। कभी उनका सुधार नहीं हो सकता है। जब तक दुर्मति का परित्याग नहीं करेंगे। केवल गाने-बजाने से कुछ नहीं होता।

## वंचक भक्त प्रकरण

**प्रथम एक जो हौं किया, भया सो बारह बान।**
**कसत कसौटी न टिका, पीतर भया निदान ॥२५०॥**

**शब्दार्थ**—हौं–मैं कबीर, परमात्मा। भया–हुआ। बारह बान–अनेक, विखर गया, फैल गया, तितर-वितर, छिन्न-भिन्न, नष्ट-भ्रष्ट। एक प्रकार का बहुत अच्छा सोना। कसत कसौटी–परीक्षा, कसनी, परखने में। पीतर–पीतल, नकली। निदान–अन्त में, निश्चित।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा है गया कि जिस प्रकार से पारस के बिना परस से पत्थर सहित लोह पिंड सोना नहीं हो सका। उसी प्रकार से मलिन आत्मा का सुधार नहीं होता है। चाहे कितना भी उसको शिक्षा घोर-कर पिलायी जाय। जब तक वह अपना कुअभ्यास को नहीं छोड़ता है। अभ्यास को नहीं बदलता है। तब तक शास्त्र और सद्गुरु कुछ नहीं कर सकते। नीचे कहा जा रहा है कि प्रथम एक ही सत्य बात कही गयी थी, एक ही सत्य सिद्धान्त था परन्तु पश्चात् अनेक हो गये।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि मुझ महात्माओं के द्वारा, ऋषि मुनियों के द्वारा, सत्यपुरुषों के द्वारा सर्वप्रथम एक ही उपदेश किया गया था। वह था आत्मतत्त्व का उपदेश। परमतत्व की प्राप्ति का उपदेश। परन्तु जैसे-जैसे सृष्टि में विकास होते गया। जैसे-जैसे विद्यायें बढ़ती गयी। मानव मस्तिष्क खोज-विनोद करने लगा। कल्पनाओं की छलागों में उड़ानें भरने लगा। वैसे-वैसे शनैः-शनैः अनेक सिद्धान्त होते गये। अनेक विचार-धारायें बनती गयी परन्तु उस एक को छोड़कर उस सत्य सिद्धान्त को त्यागकर जब लोग अन्धविश्वासों में फँस गये, नाना प्रकार के ढोंग-ढकोसला में फँस गये, कर्मवाद में फँस गये, तब उनकी जब पह-चान होने लगी। कसकर कसौटी की गयी, तो सत्य सिद्धान्त पर कोई नहीं टिका। अर्थात् कोई सोना साबित नहीं हुआ। सब पीतल के समान नकली, अज्ञानी अन्त में सिद्ध हुए। कुछ का मत यह है कि इस 'साखी' का अर्थ प्रथम एक ही तत्त्व था। उसने इच्छा किया कि हम बहुत हो जाँय। बहुत हो गया जिससे कि निर्बल होकर बर्बाद हो गया। परन्तु प्रसंगानुसार उक्त अर्थ समीचीन नहीं जंचता है। कुछ लोगों का मत है कि कबीर साहब का पंथ इतना बढ़ गया था कि उनके सामने ही उनके अनुयायी इतने हो गये थे कि स्वयं उनसे बाहर हो गये और बारह पंथ चला डाले। परन्तु कबीर साहब ने जब देखा कि हमारे नाम पर बारह पंथ चल रहा है तो सबकी कसौटी किया, परीक्षण किया। तो कोई भी कबीर साहब के सिद्धान्त पर नहीं टिका। सभी लोग नकली निकले। परन्तु यह अर्थ कल्पना प्रसूत है। इसलिये इसकी सत्यता पर सन्देह होता है।

**कबीर (न) भक्ति बिगारिया, कंकर पत्थर धोय ।**
**अंतर में विख राखि के, अम्रित डारिनि खोय ।।२५१।।**

**शब्दार्थ**—बिगारिया–नष्ट कर दिया । कंकर–शालिग्राम की गुटिया, मस्जिद । पत्थर–देवमूर्ति । धोय–स्नान कराकर । अंतर–भीतर । विख–विष, अज्ञान । अम्रित–अमृत आत्मा, आत्मतत्त्व । डारिनि–फेंकिन, फेंका, डाल दिया, अलग कर दिया ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो बहुत से सिद्धान्त चल पड़े हैं । वे परीक्षण करने पर एक भी खरे नहीं उतरे । सभी नकली और कृत्रिम पाये गये । अब नीचे कहा जा रहा है कि ये बहुपंथियों ने भक्ति के स्वरूप को बिगाड़ दिया ।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि इन अज्ञानी मनुष्यों को चाहिए था कि परमात्मा की भक्ति करते । साधु सन्तों की सेवा करते । परन्तु उन्होंने प्रभु-भक्ति को नष्ट कर दिये । शालिग्राम की पूजा में और पत्थरों की मूर्तियों में जल चढ़ा-चढ़ाकर मूर्तियों को नहवा-नहवाकर सच्ची भक्ति को रसातल में भेज दिया । प्रश्न उठता है कि जब परमेश्वर सर्वज्ञ हैं, सर्वगत हैं, सर्व व्यापक हैं तो उनकी किसी भी प्रकार से भक्ति की जाय । किसी माध्यम से सेवा किया जाय । वह तो जानता ही है कि किसी भी माध्यम से मेरा भक्त मेरी ही उपासना करता है सो तो ठीक है परन्तु इन तथाकथित भक्तों के अन्दर में तो अविश्वास रूपी, अज्ञान रूपी भयंकर विष भीतर में भरा पड़ा है । इस अविश्वास को अन्दर में रखकर उन लोगों ने परमतत्त्व की प्राप्ति की जो भक्ति की थी उसको खो डाला, नष्ट कर डाला । तात्पर्य यह है कि उक्त पत्थर की मूर्तियों में इनका तादात्म्यभाव नहीं है । न ईश्वर की भावना है । यदि इनका अटल विश्वास ईश्वर पर होता और इन मूर्तियों में भी होता तो ये लोग मन्दिरों के पास, मन्दिरों में मूर्तियों के सामने कोई अनाचार नहीं करते । ये तो मन से स्वयं जानते हैं कि यह पत्थर है, कंकर है, ईश्वर नहीं है । यदि मूर्तियों में ईश्वर को मानते तो ईश्वर के सामने अत्याचार कैसे कर सकते ? परन्तु सब कुछ विपरीत है । सच्ची भक्ति को इन्होंने दफना दिया । इसलिए 'इत का भया न उत का, चला सो बाजीहार' ।

**रही एक की भई अनेक की, वेस्वा बहुत भतारी ।**
**कहहिं कबीर काके संग जरिहैं, बहु पुरखन की नारि ।।२५२।।**

**शब्दार्थ**—वेस्वा–वेश्या, बहु सेवी। पुरुखन–पुरुषन, अनेक देव।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अज्ञानी मनुष्य बिना विश्वास की भक्ति किया। भक्ति में आस्था नहीं रखो। कंकड़ पत्थर धोकर उत्तम भक्ति को नाश कर दिया नीचे कहा जा रहा है कि उस पर भी एक की सेवा नहीं किया। अनेकों की आराधना में लगा रहा।

**मूलार्थ**—यह संसार का मनुष्य प्रथम तो एक ही का रहा अर्थात् कृत युग में एक परमेश्वर की उपासना होती थी। उसी एक देवता की मान्यता थी परन्तु जैसे-जैसे मनुष्यों में कमजोरियाँ आती गयीं। एक से विश्वास हटते गया। तो अपने को यह अनेकों से फँसा दिया। अनेक देव-वादी बन गया। तैंतीस करोड़ देवताओं की कल्पना कर डाली। जिस प्रकार से वेश्या एक पति को छोड़कर बहुत भर्तार वाली हो जाती है। बहुतों के साथ परिगमन करने लगती है। इस पर कबीर साहब कहते हैं कि वह स्त्री भला सती होने के समय में काके कहिये किसके-किसके संग जलेगी। क्योंकि वह एक है। उसके लगवार अनेक हैं। इसी प्रकार से बहुदेववादी किसको-किसको खुश रखेंगे। एक न एक देवता पूजा से छूट ही जायेंगे। जिस प्रकार से वेश्या सबका मन नहीं रख सकती है जो बहुत पुरुषों की स्त्री है। उसी प्रकार से ये अज्ञानी मनुष्य अन्त में किसके साथ इनकी भक्ति बनेगी, कौन इनको अपने लोक में ले जायेगा, कौन भवसागर से पार कर सकेगा? क्योंकि उपास्य अनेक हैं। बूड़ते हुए वैतरणी में वह देवता देखेगा कि वह ले जाय, वह सोचे कि वह पार करें। इसी देखा-देखी में यह भव नदी में डूब मरेगा।

## मनवशी जीव प्रकरण

**तन बोहित मन काग है, लख जोजन उड़ि जाय।**
**कबहिं के भरमे अगम दरिया, कबहिं के गगन रहाय ॥२५३॥**

**शब्दार्थ**—तन–शरीर। बोहित–जलपोत। लख–लाख। जोजन–चार कोश का एक योजन होता है। इस प्रकार से लक्ष योजन।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मनुष्य को चाहिए की एक ही की सेवा करे और एक ही के आस विश्वास पर रहे। तभी वह भवसागर से पार हो सकता है परन्तु मानव मन बड़ा चंचल है कुग्राही है। जैसा की नीचे कहा जा रहा है।

**मूलार्थ**—यह शरीर जलपोत है। इस पर बैठा मन काग के समान है और विषय चाट में यह शरीर छोड़कर चार सौ कोश अर्थात् लाखों

योजन उड़ जाता है। छोड़कर चला जाता है। यह मन कभी तो अगम दरिया कहिये। संसार रूपी समुद्र में भ्रमता है। जहाँ किसी की गम नहीं है। वहाँ भी भ्रमण करता है और कभी-कभी यह मन ऊँचे स्तर पर निवास करने लगता है। अच्छी-अच्छी बात सोचने लगता है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार समुद्र में बड़े-बड़े जलपोत पड़े रहते हैं। संयोग वश उस पर काग बैठ जाय तो वह उस पर से स्थल पर जाना चाहे परन्तु समुद्र से स्थल बहुत दूर होता है। इसलिए लाखों योजन उड़ने पर भी स्थल नहीं पाता। पुनः घूम फिर कर उसी अगम दरिया में नौका पर आ बैठता है। कभी आकाश की ओर उड़कर देखता है बादलों को पहाड़ समझकर उस पर बैठना चाहता है परन्तु वह भी असत्य साबित हुआ। तात्पर्य यह है कि यह मन बहुत दूरगामी है। अपने भोग के लिए शरीर छोड़कर आकाश, पाताल एक करते रहता है। इसलिए जिज्ञासुओं को चाहिए की इस मन के फेर में न पड़े।

## अधिकारी प्रकरण

**ग्यांन रतन की कोठरी, चुंबक दियो है ताल।**
**पारखि आगे खोलिये, कूंजी वचन रिसाल ॥२५४॥**

**शब्दार्थ**—कोठरी–छोटी कुटी, शाला। चुंबक–एक प्रकार का लोहा जिसमें पकड़ने की शक्ति होती है जो चुंबक विहीन लोहा को अपने में सटा लेता है। ताल–ताला। पारिख–पारखी, विवेकी, जिज्ञासु। कूंजी–जिससे ताला खुलता हो, ज्ञान। रिसाल–रसाल, आम्र, मीठा, ज्ञान, सदुपदेश।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि यह मन जो है बड़ा विलक्षण है। यह सारे प्राणियों को भरमाने में बड़ा तेज है और ज्ञान ध्यान होने नहीं देता है। आत्मचिंतन, भजन-भाव में कभी नहीं लगता है। सदैव नीचे की ओर ही लुढ़कते रहता है। नीचे कहा जा रहा है कि जो मन के अधीन हैं, जिनका मन वश में नहीं है। उनके प्रति अमृत तत्त्व की बात नहीं कहनी चाहिए।

**मूलार्थ**—सद्गुरुदेव कबीर कहते हैं कि रत्न रूपी ज्ञान की जो कोठरी है। उसको शरीर रूपी महालय की कोठरी बन्द करके चुम्बक का ताला लगा दो। जब तक कोई उतम जिज्ञासु ज्ञान रत्न का पारखी न मिले।

तब तक उस रत्न की कोठरी को मत खोलो। यदि खोलना ही है तो विवेकियों के सामने खोलो। जो रत्न की परख करते हैं और वचन रूपी कुंजी से मीठे स्वर में विनम्र भाव से उपदेश करते हैं। तात्पर्य यह है कि सभी मनुष्य के अन्दर ज्ञान स्वरूप रत्न के समान चमकता हुआ आत्मा शरीर रूपी कोठरी में विराजमान है और उसमें चुम्बक रूपी ज्ञान का ताला लगा है। सद्गुरु कबीर कहते हैं की उसी विवेकी पुरुष को उसके भीतर का ज्ञान खोलकर दिखाओ, उसी की समाधि लगाओ। जो परम-तत्त्व की पहचान कर सकें। अनधिकारी के सामने कहने से कोई लाभ नहीं होगा। क्योंकि जब तक जिस वस्तु का जिज्ञासु नहीं मिलता है तब तक उस वस्तु का अनादर होता है। यदि जिज्ञासु मिल जाते हैं तो प्रेमपूर्वक मीठे स्वर से कुंजी रूपी वचन से उनके अन्दर प्रकाश कर दो। जो शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपरति, तितिक्षा आदि से युक्त हैं। उन्हीं के सामने तत्वज्ञान कहना चाहिए। अन्यथा निष्फल हो जायेगा।

## लख चौरासी सिद्ध प्रकरण

**सरग पताल के बीच में, दुई तुमरिया बीध।**
**खट दरसन संसै परी, लख चौरासी सीध ॥२५५॥**

**शब्दार्थ**—सरग–स्वर्ग, देवलोक। पताल–नागलोक। दुई–दो। तुमरिया–तुंमरी, लौका की दो तुंमरी, मोह और ममता। बीध–धँस जाना। खट दरसन–योगी, जंगम, सेवरा, संन्यासी, दरवेश, ब्राह्मण अथवा सांख्य,न्याय, मीमांसा वैशेषिक, योग, वेदान्त। संसै–संश, संदेह, भ्रम, अज्ञान। लख चौरासी–लाख चौरासी, समूह, मनुष्य, अण्डज, पिण्डज, उष्मज। सीध–सिद्ध चोरासी। चौरासी सिद्ध निम्नांकित हैं—१.लुहिपा, २. लिलापा, ३. विरूपा, ४. दुम्भिपा, ५. पर्बारिपा, ६. सारहपा ७. कंकालिपा, ८. मीनापा, ९. गोरक्षपा, १०. चोंगगिपा, ११. बिनपा, १२. शान्तिपा, १३. तत्ततिपा, १४. चमरिपा, १५. नागार्जुन, १६. करहपा, १७. कर्णरिपा, १८. थगनपा, १९. तारापो, २०. शालिपा, २१. तिलोपा, २२. छत्रपा, २३. भद्रपा, २४. दोखदीपा, २५. अजागिपा, २६. कालपा, २७. धोकिपा, २८. कंकणपा, २९. कमरिपा, ३०. डेगिम्पा, ३१. भदेपा, ३२. तंघेपा, ३३. कुकुरिपा, ३४. कुसुलिपा, ३५. धर्मप्पा, ३६. महिपा, ३७. अचिंतिपा, ३८. भलहपा, ३९. नलिनिपा, ४०. मुसुकुपा, ४१. इन्द्र-भूतिपा, ४२. नेकोपा, ४३. कुठालिपा, ४४. कमरिपा, ४५. जलन्धरपा,

४६. राहुलपा, ४७. घवरिपा, ४८. मेदनिपा, ४९. पंकजपा, ५०. घंटापा, ५१. जोगिपा, ५२. चेलुकपा, ५३. गुणडरिपा, ५४. लुचिकपा, ५५. निर्गुनापा, ५६. जयाननपा, ५७. चर्षटिपा, ५८. चस्कपा, ५९. भिकन्नपा, ६०. भलिपा, ६१ कुम्मरिपा, ६२. जवरिपा, ६३. मणिभद्रपा, ६४. मखलपा, ६५. कनखलपा, ६६. कलकलपा, ६७. कन्तलिपा, ६८. धहुलिपा, ६९. ७०. कपलपा, ७१. कमालिपा, ७२. किलपा, ७३. सागरपा, ७४. सर्वभक्ष्पा, ७५. नागबोधिपा, ७६. दारिका, ७७. पुतुलिपा, ७८. पनहपा, ७९ कोकलिपा, ८० अनंगपा, ८१. लक्ष्मीकरापा, ८२. समुद्रपा, ८३. भलिपा, ८४. खंगपा, ये चौरासी सिद्ध तांत्रिकों के यहाँ एवं हठयोगियों के यहाँ प्रसिद्ध हैं। कहीं-कहीं दूसरे नामों से भो कुछ अन्य सिद्धों की गिनती की गयी है। जो इस सूचो में नहीं दी गई है।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि ज्ञानरत्न की कोठरी को जिज्ञासुओं के आगे खोलना चाहिए जो उसका महत्व समझते हों। क्योंकि नीचे कहा जा रहा है कि अखिल ब्रह्माण्ड के लोग मोह ममता में फँसे हुए हैं। इसलिए तुम्हारे आत्मज्ञान को कौन सुन सकता है ?

**मूलार्थ**—यह संसार स्वर्ग से पाताल पर्यन्त अर्थात् देवलोक से लेकर नागलोक तक जहाँ तक मानव बसते हैं। जहाँ तक प्राणियों की सृष्टि है। वे सभी लोग दो तुमरी स्वरूपा मोह, ममता से विधे हुए हैं। जब तक मोह, ममता से रहित नहीं होंगे। तब तक वे अनधिकारी ही रहेंगे और केवल साधारण जन ही मोह, ममता से नहीं बिधे हुए हैं। षड्दर्शन वाले भी मोह ममता के कारण संशय के शिकार हुए हैं। उन पर भी अज्ञान का दौरा पड़ा है। ये षड्दर्शनी भी भ्रम से परे नहीं हैं। इसी प्रकार से लक्ष चौरासी योनियाँ भी मोह माया से बँधी हुई हैं। इनसे विशिष्ट जो चौरासी सिद्ध हुए हैं वे भी सिद्धियों के चक्र में पड़कर आत्मज्ञान की उपेक्षा कर दिये हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि मोह, ममता से रहित होना अज्ञान से परे होना बड़ी दुर्लभ बात है। लोग तुमरी स्वरूपा मोह, ममता को ही भवसागर पार करने के लिए नौका बना लिये हैं। भला जहाँ पर बड़ी-बड़ी नौकायें असफल हो जाती हैं वहाँ ये तितलौकियाँ क्या पार कर सकती हैं ? ऊपर से तो बहुत चिकनी-चाकनी हैं। भीतर में कटुता भरी पड़ी है। इसी प्रकार से संसार का सम्बन्ध ऊपर से तो बहुत मीठा लगता है पर उसके अन्दर में बड़ो कडुवाहट है। इसलिए उसका त्याग होना चाहिए।

## सदुपदेश प्रकरण

**सकलो दुरमति दूर करु, अच्छा जनम बनाव।**
**काग गौन गति छाड़ि के, हंस गौन चलि आव ॥२५६॥**

**शब्दार्थ**—काग–काक, दुर्बुद्धि, विषयोजीव, कुकर्मी। हंस–शुद्धात्मा, बाहर-भीतर से एक रस।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अखिल ब्रह्माण्ड मोह और ममता में फँसा हुआ है। नीचे कहा जा रहा है कि उसका परित्याग करो। तभी ज्ञान रत्न की कोठरी तेरे लिए खुलेगी।

**मूलार्थ**—मनुष्य को चाहिए कि सभी प्रकार की दुर्बुद्धि को दूर कर दे और अपने जन्म को अच्छा बनावें। सुकर्म करें सत्य को आचरण में लावें। जो काग की चाल है, जो कौवा की तरह दुर्गन्ध ग्रहण करने के लिए उड़ता है। उस गति को छोड़ दो। जिस गति से हंस स्वरूप सन्त, महात्मा अच्छे पुरुष चलते हैं उसी गति से चलना चाहिए। जब तक तू बाहर-भीतर से शुद्ध नहीं होगा। हँस की चाल वाला नहीं होगा तब तक तेरा कल्याण नहीं होगा।

**जैसी कहै करै जो तैसी, राग दोख निरुवारै।**
**तामें घटे बढ़ै रतियो नहिं, यहि विधि आपु सँवारै ॥२५७॥**

**शब्दार्थ**—राग–किसी के प्रति प्रेम करना। दोख–द्वेष, किसी के प्रति द्वेष करना। निरुवारै–दूर करे, निर्णय करे, रहित हो। तामे–उसमें। रतियो–रत्ती भर, गुँजा भर। संवारै–पालन करे, सँभारे।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि दुर्बुद्धि को त्यागकर सुबुद्धि को ग्रहण करना चाहिए। नीचे कहा जा रहा है कि कथनी-करनी में समानता होनी चाहिए।

**मूलार्थ**—लोग कहते कुछ और हैं करते कुछ और हैं। बाहर बोलते कुछ और हैं, भीतर कुछ और रहता है। परन्तु सद्गुरु कबीर कहते हैं कि मनुष्य को चाहिए कि जिस प्रकार का कथन करे। उसी प्रकार का कर्त्तव्य भी करे और किसी से राग-द्वेष न करे। सभी प्राणियों को सम भाव में देखे। किसी मामले-मुकदमें में न पड़े। सम स्थित प्रज्ञ होकर स्थिर रहे। उसमें यत्किंचित भी घटने बढ़ने न दे। जो इस प्रकार से सबमें विचरण करता है वह पुरुष इसी विधि को अपने आप पालन करे। तात्पर्य यह कि ज्ञानी

पुरुष का लक्षण यही होता है कि जो वे कहते हैं वही वे करते हैं। किसी से राग-द्वेष नहीं करते हैं। उनके आचरण में घटोत्तरी-बढ़ोत्तरी नहीं होती है रत्ती भर भो अपने सिद्धान्त से विचलित नहीं होते। इसी प्रकार से ज्ञानी लोग अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहते हैं।

**द्वारे तेरे राम जी, मिलहु कबीरा मोहिं।**
**तैं तो सब में मिलि रहा, मैं न मिलूंगा तोहि ॥२५८॥**

**शब्दार्थ**—तैं–तुम।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि समभाव से विचरण करना चाहिए। यही ज्ञानी का लक्षण है। नीचे कहा जा रहा है कि वह परमतत्त्व अपने से दूर नहीं है। जो ज्ञानियों को प्राप्त होता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे राम जी! मैं मिलने के लिए आपके दरवाजे पर खड़ा हूँ। अब अपना जन जानकर मुझे दर्शन दीजिए। क्योंकि आप सर्व व्यापक हैं। सभी भूतों में मिले हुए हैं परन्तु यह जीव एकदेशी होने से आप से मिल नहीं पाता है। क्योंकि आप हृदय रूपी गुहा द्वार में बैठे हुए हैं। आपके उपासक लोग आपको खोजते-फिरते हैं परन्तु आप पास में रहते हुए, निकट में बैठे हुए भी शीघ्र में प्राप्त नहीं होते। क्योंकि यह जीव संसार में मिला हुआ है और आप कहते हैं कि इसलिए मैं तुमसे नहीं मिलूँगा। तात्पर्य यह है कि जब तक संसार का त्याग नहीं होगा। तब तक समीप होते हुए भी रामजी मिलने की स्थिति में नहीं हैं। इस पर किसी सूफी ने कहा है, 'अगर तू दीन को चाहता है तो दुनी से दिल हटा ले। बैठा इलाही पास में जब चाहो तब मिल ले।' तात्पर्य यह है कि संसार और सारंगपानि दोनों में बड़ा विरोध है। जो संसार को चाहेगा वह सारंगपानि को नहीं पायेगा। जो सारंगपानि को चाहेगा उसको संसार से नाता तोड़ना ही पड़ेगा।

**भरम बड़ा तिहुँ लोक में, भरम मंडा सब ठांव।**
**कहैं कबीर पुकारि के, तुम बसेउ भरम के गांव ॥२५९॥**

**शब्दार्थ**—भरम–भ्रम, भ्रान्ति, सन्देह, धोखा, (भेद, रहस्य) किसी पदार्थ को और का और समझना, मिथ्याज्ञान, संशय, शंका। मंडा–फैलाव, विस्तार। ठांव–स्थान। बसेउ–बसा। गांव–ग्राम।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि भगवान बहुत नजदीक हैं। एकदम

पास में हैं। परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि भ्रान्ति के कारण वे दिखाई नहीं पड़ते हैं।

**मूलार्थ**—भ्रम का विस्तार, अज्ञान का फैलाव सभी स्थानों में विराजमान है। यहाँ तक कि यह भ्रम तीनों लोक में बढ़कर फैल गया है। सबको ढँक लिया है। देवलोक, नरलोक, नागलोक कोई भी इस भ्रम से रहित नहीं है। यह अज्ञान सर्प की भाँति चतुर्दिक कुण्डलिनी मारकर सारे संसार को अपने घेरे में करके बैठा हुआ है। सद्गुरु कबीर पुकारकर कहते हैं कि हे संसार के मनुष्यों ! तुम सबके सब भ्रम के एवं भूल ग्राम में निवास करते हो। अर्थात् शरीर रूपी गाँव में एक भी दैवी गुण तेरे अन्दर नहीं हैं। भ्रम के कारण आसुरी सम्पदा से तुम सब लदे हुए हो। इसलिए निकट में रहते हुए रामजी तुम लोगों से लाखों कोस दूर हो जाते हैं।

**रतन अड़ाइनि रेत में, कंकर चुनि-चुनि खाय।**
**कहैं कबीर पुकारि के, ई पिंडे होय कि जाय ॥२६०॥**

**शब्दार्थ**—रतन–रत्न, ब्रह्मचर्य, विन्दु, वीर्य, सद्बुद्धि, सद्ज्ञान, दैवी सम्पदा, आत्मज्ञान। अड़ाइनि–गिरा दिया। रेत–बलुआही भूमि में, निरर्थक में, विषय भोग में। कंकर–कंकड़, निःसार, विषय भोग, सांसारिक सुख। चुनि-चुनि–उठा-उठा। खाय–खाया, ग्रहण किया। ई–इस। पिंडे–शरीर में। होय–होंगे, रहोंगे।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि सृष्टि के सभी लोग अज्ञान में फँसे हुए हैं। जिसके कारण सतपंथ से वंचित रहते हैं ! नीचे कहा जा रहा है कि जो घर का मूलतत्त्व है, जो हीरा है उसको निरर्थक में फेंक दिया और कंकड़-पत्थर से घर भर दिया।

**मूलार्थ**—यह मानव अपनी दुर्बुद्धि के कारण जो इसके अन्दर में मूलतत्त्व था। जिस बिन्दु से आत्मा सबल होता है, जिस वीर्य से तेज बढ़ता है। उसको बालू स्वरूपी विषय भोग में गिरा दिया और जो निःसार सुख है, जो ओसकण के समान क्षणिक है। उसको चुनि-चुनि कर खाने लगा। सद्गुरु कबीर पुकार कर कहते हैं कि हे विषयी पुरुषों अधिक वीर्यपात होने से यह शरीर रूपी पिंड बहुत काल तक नहीं रहेगा। नष्ट हो जायेगा। जो तू अमृत त्याग कर विषय-वासना रूपी कंकड़ भक्षण कर रहा है। उससे तेरा नुकसान ही हो रहा है। इसलिए तुझे ब्रह्मचर्य का

पालन करना चाहिए। स्त्री का साथ कम करना चाहिए। स्त्री सुख कंकड़ के समान है। केवल भोगने में स्वादिष्ट लगता होगा परन्तु उदर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करता है। इसी प्रकार से वीर्य के अधिक पात से यह तेरा शरीर बहुत जल्द विनष्ट हो जायेगा। तू सावधान क्यों नहीं होता ?

**विशेषार्थ**—आत्मज्ञान रूपी रत्न को रेत रूपी संसार में त्याग कर दिये हो और विषय-वासना रूपी कंकड़ को ग्रहण कर रहे हो भला तुम्हारा कल्याण कैसे होगा ?

## अनन्त वाणी प्रकरण

**जेते पत्र वनसपती, औ गंगा की रेन।**
**पंडित विचारा का कहै, कबीर कही मुख बैन ॥२६१॥**

**शब्दार्थ**—बनसपती–वनस्पति, पेड़ पौधे। रैन–रेणु, बालूकण। वैन–वचन, वाक्य, उपदेश।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मानव सत्य को त्याग देता है और असत्य को ग्रहण करता है। नीचे कहा जा रहा है कि जब कि उसके लिए बहुत प्रकार का उपदेश दिया गया है परन्तु हृदयंगम नहीं कर सका।

**मूलार्थ**—सत्य पुरुष सन्त महात्मा जो होते हैं वे जीवों के कल्याणार्थ बहुत उपदेश देते हैं। बहुत प्रकार से समझाते हैं। इसी प्रकार से सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि जितने पेड़-पौधों में पत्ते होते हैं और गंगा जी में जितनी बालू की कणें हैं मैं कबीर अपने मुख से उतनी ही बात, उतना ही उपदेश जीवों को सुधारने के लिए कहा। जितनी बात मैं कहा हूँ यह पंडित विचारा जो असमर्थ है क्या कभी कह सकता है ? तात्पर्य यह है कि मैं कबीर जीवों के कल्याणार्थ बहुत सा उपदेश दिया। इसी प्रकार से संसार के सभी महापुरुषों ने उपकारार्थ अनेक वाणियाँ कहीं, अनेक वचन कहें परन्तु यह जीव टस से मस नहीं हुआ।

## विश्वास प्रकरण

**हौं जाना कुल हंस हैं, ताते कीन्हा संग।**
**जो जानत बग बाउरे, तो छुवे न देतेउँ अंग ॥२६२॥**

**शब्दार्थ**—हौं–मैं। कुल–सब। हंस–शुद्धात्मा। ताते–इसलिए। कीन्हा–किया। बग–बक। बाउरे–पागल, मूर्ख, अज्ञानी, अपवित्र। तो–तब। छुवे–स्पर्श। देतेउँ–देता। अंग–शरीर।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि संसार को जीवों के सुधारने के लिये मुझ सहित अनेक संत महात्माओं के द्वारा बहुत सी बातें कही गयी हैं परन्तु जितना सुधार होना चाहिए उतना सुधार हुआ नहीं। नीचे कहा जा रहा है कि सन्त महात्मा तो अधिकारी ही समझकर उपदेश करते हैं। कोई सुने न सुने।

**मूलार्थ**—संसार के मनुष्य बड़े कपटी होते हैं, बड़े छली होते हैं। ये पहले जानने में नहीं आते हैं। मैं तो समझा था कि ये सभी मनुष्य हंस के समान शुद्ध हैं, ज्ञान के अधिकारी हैं। इसलिए इनका साथ किया। यदि मैं समझता कि ये बग हैं, हिंसक हैं, विषयी एवं पामर हैं, दुरग्राही हैं, अनजान हैं, तो मैं इनसे कदापि अपने शरीर को स्पर्श करने नहीं देता। परन्तु जाँच-पड़ताल करने पर, परीक्षण करने पर सब हंस नहीं निकले। सब शुद्धात्मा नहीं निकले। उसमें अधिकतर बकबावरे ही निकले। इसलिए सन्त महात्माओं को सावधान होकर किसी का संग-साथ करना चाहिए।

## अज्ञ प्रकरण

**गुनिया तो गुनही कहै, निरगुनिया गुनहिं घिनाय।**
**बैलहिं दीजै जायफर, का बूझै का खाय ॥२६३॥**

**शब्दार्थ**—गुनिया–गुण वाला, भद्रपुरुष। गुन–सद्ज्ञान, गुण। निरगुनिया–गुण रहित, दुर्बुद्धि, अनधिकारी। घिनाय–घृणा करता है। बैलहिं–बैल को, मूर्ख को। जायफर–जायफल, एक प्रकार का पुष्ट और सुगंधित औषधि व फल होता है, जो वायुनाशक होता है जिसको घिसकर माताएँ बालकों को पिलाती हैं और भोज-भंडारे में घिसकर तसमई–पायस में भी डाला जाता है, आत्मज्ञान। का–क्या। बूझै–समझे।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मैं तो सभी को हंस समझकर साथ किया था। समझा था कि सभी अधिकारी हैं परन्तु समझ में कुछ भूल हुई। उसमें से बहुत अनधिकारी भी थे।

**मूलार्थ**—संसार में बहुत प्रकार के मनुष्य होते हैं जिनमें ज्ञानी, ध्यानी, गुणी, शूर वीर, कवि सब होते हैं और उसी में पंडित एवं मूर्ख भी होते हैं। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि जो हंस के समान शुद्ध और गुणज्ञ

होते हैं। वे अपने गुण को ही कहते हैं। अच्छी बात को ही सुनाते हैं। उनके मुख से कभी गन्दी बातें नहीं निकलती हैं परन्तु बक सदृश जो गुण विहीन होते हैं, गुण के अधिकारी नहीं होते हैं। वे किसी की प्रशंसा, किसी का गुण, किसी का कौशल सुनकर घृणा करते हैं। उनसे राग-द्वेष करते हैं, वे अनजान मनुष्य बैल के समान हैं। यदि सुखकर समझकर बैल को जायफल का घोल दिया जाय तो क्या समझेगा कि यह जायफल है, हितैषी है, वह तो जो भी दोंगे घास-भूसा समझकर खा जायेगा और कडुवा लगेगा तो सूँघकर छोड़ देगा। इसी प्रकार से अज्ञानी मनुष्य को सद्ज्ञान दोंगे तो उसका कोई फल नहीं होगा। क्योंकि जब उसके समझ में आयेगा ही नहीं तो ग्रहण क्या करेगा।

## स्वस्वार्थ प्रकरण

**अहिरहु तजि खसमहुं तजी, बिना दांत की ढ़ोर।**
**मुक्ति परे बिललात हैं, ब्रिदावन की खोर ॥२६४॥**

**शब्दार्थ**—अहिरहु–अहीर भी, चरवाहा, पशु चराने वाला भी। तजि–छोड़ दिया। खसमहु–स्वामी भी। ढ़ोर–पशु। मुक्ति–खुलेयाम, स्वतंत्र। बिललात–बिलाप, बिलख-बिलख कर रोना, विलाप करना, यत्र-तत्र घूमना। ब्रिदाबन–तुलसी का वन। खोर–सांकरी गली। ऊँची, बस्तियों की तंग गली, पशुओं को चारा देने की नाद।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अनधिकारी के प्रति जो बैल के समान है, उनके लिये कुछ कहना अनावश्यक है। नीचे कहा जा रहा है कि मूर्ख मनुष्य का सब कोई त्याग कर देते हैं।

**मूलार्थ**—किसी गृह स्वामी की गाय थी व बैल था यहाँ प्रसंग अधिक गाय का है, क्योंकि चरवाहे का प्रसंग है जब तक वह गाय दूध देती रही। बच्चा देती रही। तव तक तो गृहस्वामी उसकी बड़ी आवभगत करता रहा। दोनों समय बढ़िया-बढ़िया घास खिलाता था। खरी-खुदी खूब खिलाता था। ऊपर से जौ का पिसान भी चलाता था। बढ़िया हरी घास चराने के लिए चरवाहे को नियुक्त किया था। परन्तु जब गर्भाधान से रहित हो गयी, दूध देना बन्द कर दी, दांत सब टूट गये, निकम्मी हो गयी, तब सब कुछ बन्द हो गया। रस्सी खोल कर पगहा से मुक्त कर जंगल में खेद दी गयी। ऐसी दशा में जो चराने वाला अहीर था अब वह क्यों कर चराता ? स्वामी से अब कुछ मिलने वाला

नहीं था। वह भी छोड़ दिया। स्वामी तो छोड़ ही चुका था। इस पर भी बिना दांत की वह गाय हो गयी थी। इसी से मुक्त होकर चारों तरफ बिलाप कर रही थी। यत्र-तत्र से घूमते-घूमते तुलसी के वन में आ गयी। जिस मैदान में, जिस खोर में तुलसी के पौधे लगे थे। वहीं खोलकर खेदा गया था। भला तुलसी को पशु कभी खा सकते हैं ? इसी प्रकार से जब तक मनुष्य पुत्र-कलत्र के स्वार्थ की पूर्ति करते रहता है। खूब कमा-कमाकर घर वालों को देते रहता है, घर वालों की स्वार्थ की पूर्ति जब तक होते रहती है। तब तक मेरा बेटा है, मेरा पुत्र है, मेरा पति है, मेरा भाई है, मेरा बाप है। उसके साथ बहुत लाड़-प्यार किया जाता है परन्तु जब वह वृद्ध हो जाता है। किसी काम का नहीं रहता है। सभी लोग उसका परित्याग कर देते हैं। घर के पीछे मड़ई छाकर रख देते है, एक खाट पर कर देते हैं। वह वृद्ध मनुष्य उसी खाट पर चारों ओर ताकते रहता है। लोगों को देखकर रोता बिलखता है। घर वालों को हो सका तो चना और मटर आगे रख देते हैं। जो दाँत विहीन के मुख में न टूटने वाला है, न फटने वाला है। अन्त में रोता है, बिलखता है। लोगों को अपना दुःख सुनाता है परन्तु अब कोई सुनने वाला नहीं होता है। तात्पर्य यह है कि जब तक यह मानव शरीर से कुछ मिलते-जुलते रहता है तभी तक उसके संगी-साथी होते हैं। जब स्वयं असमर्थ हो जाता है, निर्धन हो जाता है तो कोई पूछने वाला नहीं होता है।

**आशय**—जो मनुष्य भक्ति भाव से रहित होता है। कभी सुमार्ग नहीं अपनाता उसका मरण काल में परमेश्वर भी त्याग कर देता है।

## छल प्रकरण

**मुख की मीठी जो कहै, हिदया है मति आन।**
**कहैं कबीर सुनो हो संतो, तैसेहिं राम सयान ॥२६५॥**

**शब्दार्थ**—मीठी—मधुर। हिदया—हृदय। आन—दूसरा। तैसेहिं—उसी प्रकार। सयान—सज्ञान।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जिस प्रकार से निकम्मे पशु को चरवाहा और स्वामी दोनों त्याग देते हैं। उसी प्रकार से जो लोग प्रभु के भजन से और दैवी गुण से रहित हैं उनको परमात्मा भी उसी प्रकार से त्याग देता है। अब नीचे कहा जा रहा है कि केवल मीठी-मीठी कथा कहने से कोई लाभ होने वाला नहीं है।

**मूलार्थ**—जो लोग मीठी-मीठी बातें करते हैं। शास्त्र की बहुत मधुर श्लोके सुनाते हैं, आत्मा परमात्मा की एकता की बात करते हैं। कहते हैं कुछ और हृदय में कुछ दूसरी ही बात रखते हैं। अर्थात् कहे अनुसार पालन नहीं करते। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे सन्त जन ! मेरी बातों को सुनो। जिस प्रकार से लोग मुख से कुछ और कहते हैं। राम-राम कहते हैं, राम को स्तुति करते हैं और उनका हृदय काला है, उसी प्रकार से श्री राम जी भी उस मनुष्य से सावधान रहते हैं। अर्थात् उसके वश में नहीं होते। क्योंकि 'वंचक भक्त कहाय राम के, कंचन किंकिन कौन काम के।' ( रामायण )। जो लोग ऊपर से राम-राम कहते हैं, भीतर में कनक कामिनी की भावना बनी रहती है। ऐसे वंचक प्रभु भक्तों को प्रभु कभी पूछता नहीं है। उनकी ओर ध्यान भी नहीं देता है, ताकता भी नहीं है।

## अनिश्चय प्रकरण

**इतते सब कोइ गये, भार लदाय लदाय।**
**उत ते कोई न आइया, जासों पुछिये धाय ॥२६६॥**

**शब्दार्थ**—इत–इधर से। मृत्यु लोक से। भार–दान-पुण्य। लदाय–लादकर। उत ते–उधर से, स्वर्गादि से। जासों–जिससे। धाय–दौड़कर।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मुख से राम-राम कहता है। मीठी-मीठी वाणी बोलता है पर भीतर में कठोरता भरी हुई है। नीचे कहा जा रहा है कि थोथे कर्मों से भार लदाकर स्वर्गादि लोकों की आशा से बहुत से लोग जाते हैं।

**मूलार्थ**—अधिकतर संसार में देखा जाता है कि अपने-अपने धर्म के अनुसार सबका अपना-अपना लोक है। सनातनी हिन्दुओं का लोक स्वर्गलोक है, वैकुण्ठलोक है और गोलोक है। इसी प्रकार से मुसलमानों का लोक जन्नत है। ईसाईयों का भी अपना चौथा लोक है और बहुत से कबीर पंथियों का अपना लोक है। वे भी सत्य लोक में जाते हैं। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक धर्मावलम्बियों के अलग-अलग लोक हैं। सभी लोग इधर से धर्म-कर्म करके उसके फलों को लाद-लादकर बहुत भारी पुण्य कमाकर तत्-तत् लोकों में जाते हैं। सद्गुरु कहते हैं कि इधर से तो सब लोग गये हैं पर उधर से कोई लौटकर नहीं आया। जिनसे दौड़कर पूछूँ कि वहाँ पर किस प्रकार का रहन-सहन है ? वहाँ के लोग कैसे हैं ? क्या राग-द्वेष

से रहित हैं ? क्या सबको समान आनन्द है ? परन्तु उधर से कोई आया ही नहीं है तो पूछा किससे जाय ? इसलिए ऊपर आकाश में लोक हैं या नहीं। इसकी सत्यता में मुझे सन्देह हो रहा है। इसलिए मनुष्यों को लोक आदि की आशा छोड़कर भगवद् भक्ति करके गुरु के द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त करके यहीं पर मुक्त हो जाना चाहिए।

## प्रिय भक्ति प्रकरण

**भगति पियारी राम की, जैसी पियारी आग।**
**सारा पाटन जरि मुवा, बहुरि ले आवे मांगि ॥२६७॥**

**शब्दार्थ**—पियारी–प्यारी, प्रिय। आग–अग्नि, वैराग्य अग्नि। सारा–सभी। पाटन–नगर, शहर। जरि–जला। बहुरि–पुनः।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मनुष्य को इस मृत्यु लोक में ही अज्ञान से रहित हो जाना चाहिए। मरणोपरान्त मुक्ति की आशा छोड़ देनी चाहिए। क्योंकि नीचे भक्ति की महत्ता पर बल दिया जा रहा है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे पुनीत बुद्धि के सन्त जन ! अन्य कर्मों के अतिरिक्त राम की भक्ति ही प्रिय होती है। ईश्वर भक्ति से विमुख मनुष्य बेकार है। जिस प्रकार से शीतकाल में अग्नि बहुत प्यारी लगती है। यदि उस अग्नि से सारा नगर जल के मर जाय तो भी शीत निवारण के लिये लोग अग्नि को पुनः मांग कर लाते हैं। इसी प्रकार से राम की भक्ति सबसे प्रिय है। यदि उससे संसार का सब सम्बन्ध नष्ट हो जाय तो भी भक्त लोग उस भक्ति का त्याग नहीं करते। क्योंकि भक्ति में शांति है, आनन्द है। जैसे वैराग्य अग्नि बहुत प्रिय होती है शरीर के अन्तःकरण में जिसके लग जाती है। उस नगर के बसने वाले सभी काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अहंकारादि ( उसमें ) जल मरते हैं। इसीलिए दूसरे भगवद् भक्त भी वैराग्य स्वरूपी अग्नि को भक्ति के साथ पुनः पुनः सच्चे संत सद्गुरुओं से मांगते हैं जब मानव के हृदय में वैराग्य अग्नि लग जाती है तब सारा संसार उसके लिये निराश दिखाई देता है। वैराग्य की अवस्था में वह प्रभु के अतिरिक्त कोई दूसरे को देखना नहीं चाहता है। इसलिए वैराग्य अग्नि की बड़ी आवश्यकता है।

## वंचक भक्त प्रकरण

**नारि कहावे पीउ की, रहे और संग सोय।**
**जार मीत हिदया बसे, खसम खुसी क्यों होय ॥२६८॥**

**शब्दार्थ**—नारि–पत्नी। कहावे–कहलाती है। पीउ–प्रियतम की। जार मीत–प्रेमी, दूसरा पति। खसम–स्वामी, स्वपति। खुसी–प्रसन्न।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मनुष्यों को चाहिए था कि केवल प्रभु की भक्ति करते। केवल उस एक परमतत्त्व की उपासना करते। परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि उस एक ईश्वर से लोग सम्बन्ध न जोड़-कर बहुदेववाद में फँस गये हैं।

**मूलार्थ**—स्त्री तो कहलाती है अपने पति की और दूसरे के संग में सोने के लिये चली जाती है। मन में तो प्रेमी बसता है, दूसरा लगवार बसता है इसलिए उसका जो स्व स्वामी है वह कैसे प्रसन्न हो सकता है? इसी प्रकार से भक्त प्रभु का कहलाता है। उपासना माया की करता है। बहुत से देव-देवियों की सेवा करता है। तो ये सब जो पर पति के समान हैं। उनको हृदय में बसाता है और नाम राम का लेता है। तो भला ऐसी दशा में वह खसम स्वरूपी परमेश्वर उस भक्त पर कैसे प्रसन्न होगा जो नाना प्रकार के भूत-भवानियों की उपासना करता है जो मरी मशान की सेवा करता है। उससे कभी भी परमेश्वर खुश नहीं हो सकता है?

**सज्जन से दुरजन भया, सुनि काहु के बोल।**
**कांसा तामा होय रहा, हता ठिकों का मोल ॥२६९॥**

**शब्दार्थ**—भया–हुआ। काहु–किसी की। बोल–उपदेश, वाणी। कांसा तामा–एक प्रकार का धातु होता है। कांसा के बटलोई लोटा आदि बनते हैं। तांबा के अधिकतर गगरे, बड़े-बड़े थाल, परात बनते हैं। लोटा भी बनता है जो सोना से कम कीमत का है। हता–होना का (भूतकाल) था। ठिकों–हि० (टुकड़ा, ठिकरा, सीटकी)। मोल–मूल्य।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि एक परमात्मा की भक्ति न करके बहुत से उपास्य को हृदय में बसा लिया। नीचे कहा जा रहा है कि इस प्रकार की बुद्धि वंचकों की संगति से हुई है।

**मूलार्थ**—पहले तो सज्जन था अच्छी प्रकार से भजन भाव करता था। निष्काम भाव से कर्म करता था, एक ही की उपासना करता था परन्तु वंचक गुरुओं का साथ करके दुर्जन हो गया, बहुदेववादी हो गया। क्यों हुआ? किसी का बोल सुनकर हुआ, किसी का उपदेश सुनकर हुआ। वंचक लोग सदा सकाम कर्म करने का उपदेश करते हैं। जिस

काम्य कर्म में अपने बंधे रहते हैं। वही उपदेश दूसरे को भी देते हैं। जब सज्जन से दुर्जन हो गया तो वेमूल्य का हो गया। उसकी कीमत घट गयी। पहले सोना के भाव विकता था। भद्र पुरुषों के साथ में सम्मान पाता था। अब कांसा तामा के समान तुच्छ हो गया। जो बहुत कीमती था। अब वह ठिकरों का कंकड़ का झिटका के मूल्य में विकने लगा। अर्थात् एक दमडी का भी महंगा हो गया। अब उसको कोई पूछने वाला नहीं है। इसलिए मनुष्य को चाहिए की बुरी संगत न करें। दुर्जन का साथ न करें। सकाम कर्मी गुरु न करें। वहुत सोच समझकर अध्यात्म को पकड़े।

## विरह वैराग्य प्रकरण

**बिरहिन साजो आरतो, दरसन दीजै राम।**
**मूये दरसन देहुगे, आवै कौने काम ॥२७०॥**

**शब्दार्थ**—बिरहिन-वियोगिनी, हरि से बिछुरी हुई। साजी-तैयार की गई। आरती-एक थाली में बहुत से रुई की वत्तियाँ बनाकर उनको जलाकर बड़े पुरुषों की व परमात्मा की आरती जो की जाती है उसके माध्यम से जो आराधना की जाती है वह आरती है। मूये-मरणोपरान्त।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि किसी वंचक के द्वारा भ्रामक उपदेश सुनकर एकदेववादी बहुदेववादी बन गया परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि जो प्रभु के अटल भक्त होते हैं, जिनमें प्रभु के प्रति सच्ची निष्ठा होती है वे किसी के बहकाने पर बहकते नहीं।

**मूलार्थ**—बिरहिन जो अध्यात्म का साधक है। वह हाथ में आरती साजकर प्रभु की आरती करती है और कह रही है कि हे प्रभु राम ! जीते जी दर्शन दीजिए। यदि आप मरणोपरान्त दर्शन देंगे तो वह किस काम का होगा जब मैं रहूँगी ही नहीं ? तब आकर आप क्या करेंगे ? इसलिए मेरे जीवन में ही प्रकट होकर दर्शन देवें। भावार्थ यह हुआ कि मनुष्य व साधक को चाहिए कि भक्ति भाव के द्वारा, सत्संग के द्वारा जीते जी प्रभु का साक्षात्कार करें हृदय में दर्शन कर लें। जीते जी प्रभु की प्राप्ति नहीं हुई तो फिर कौन जाने मरने के बाद यह आत्मा कहाँ जायेगा ? किस योनि में जायेगा ? तब तो प्रभु मिलन दुर्लभ हो जायेगा।

आत्मतत्त्व की प्राप्ति समाप्त हो जायेगी। इसलिए जीते जी परमतत्त्व की प्राप्ति और साक्षात्कार कर लेना चाहिए।

## प्रलय प्रकरण

**पल में परलै बीतिया, लोगहिं लागु तमारि।**
**आगल सोच निवारि के, पाछल करहु गोहारि ॥२७१॥**

**शब्दार्थ**—पल–क्षण। परलै–प्रलय, नाश। बीतिया–बीत गया। तमारि–रुकावट, जहाँ-तहाँ शोकाकुल होकर बैठे रहना खड़े रहना, अचेत अवस्था में पड़ जाना, जो कुछ सोच न सकना, सूर्य, ज्ञान, सिर में चक्र आना, घूमना। आगल–आगे की, भविष्य की। पाछल–पीछे की। करहु–करो। गोहारि–पुकार, दोहाई, रक्षा के लिए चिल्लाना।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि हे प्रभु ! जीते जी दर्शन दीजिए मरने के बाद दर्शन देंगे तो उससे कोई लाभ नहीं होगा आपकी बिरह में, व्याकुलता में यदि आपके दर्शन नहीं पाऊँगी तो इसी बिरह व्यथा में मैं अपने प्राण को त्याग दूँगी और उसके बाद आप सुनकर आयेंगे कि प्रियतमा मर गयी, मेरा भक्त शांत हो गया। मेरे मर जाने पर आपके आने से क्या लाभ होगा ? क्योंकि नीचे कहा जा रहा है कि यह संसार पलक मारते-मारते नष्ट हो जाता है। मानव जीवन का कोई भरोसा नहीं है। यह कच्चे घड़ा के समान है। जरा से ठोकर लगने पर चकनाचूर होने वाला है। इसलिए जीते जी आपकी प्राप्ति होना बहुत लाभदायक होगी।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि हे निर्मल हृदय के सन्त जन ! संसार के लोग बहुत बड़े-बड़े मनसूबे बाँधते हैं, बड़ी-बड़ी महत्वाकांक्षा करते हैं। बड़े-बड़े कार्यक्रम बनाते हैं परन्तु इस जीवन की कितनी स्थिरता है इसका पता किसी को नहीं है। यह संसार क्षण मारते-मारते प्रलय होने वाला है अर्थात् क्षण में ही प्रलय हो जाता है। लोग मर जाते हैं। समस्त कार्य कलाप यहीं रह जाता है। जब इस प्रकार की बात है तो संसार के लोगों को सावधान हो जाना चाहिए। सोये से जग जाना चाहिए। वृथा में ही जहाँ तहाँ तमा रहे हैं। किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहे हैं। इनको चाहिए की अज्ञान के पर्दा को हटाकर अपने हृदय के विवेक को जगाकर जो भविष्य के लिए मनसूबे बाँधे हैं, सोच रहे हैं उसका परित्याग करके, उसका निवारण करके जो वर्तमान में दुःख है, जो वर्तमान में अनात्म ज्ञान है, जो पीछे से चला आ रहा है,

जो अनेक जन्मों से साथ लगा हुआ है। उस दुःख के लिये गुरुजनों से सच्चे सन्त सद्गुरु से और परमेश्वर से प्रार्थना रूपी गोहार लगाना चाहिए। अन्यथा भूत-भविष्य के बारे में सोचना निरर्थक है। सोचना बेकार है। क्योंकि क्षण मात्र में ही संसार का नाश होने वाला है। मानव का जीवन बहुत अल्प है। इसलिए जीते जी वर्तमान दशा में सत्य की प्राप्ति कर लेनी चाहिए इसके लिए समय का निर्धारण नहीं करना चाहिए 'जब से सूझे, तब से बूझे' वाली कहावत चरितार्थ करनी चाहिए।

## आत्मसमाहित प्रकरण

**एक समाना सकल में, सकल समाना ताहि।**
**कबीर समाना बूझ में, जहाँ दूतिया नाहिं ॥२७२॥**

**शब्दार्थ**—एक–सच्चिदानन्द परब्रह्म। समाना–समाविष्ट, प्रवेश। सकल–सभी प्राणियों में, सभी प्राणिगण। ताहि–उस परब्रह्म में। कबीर–कबीर साहब। बूझ–समझ, ज्ञान में। दूतिया–दूसरा।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मनुष्य को चाहिए कि वर्तमान स्थिति पर विचार करें और तन-मन से उपस्थित दुःख के निवारण के लिए परमेश्वर की उपासना करें। निचिली साखी में कहा जा रहा है कि वह परमात्मा सर्वव्यापी है और सर्व की आत्मा भी है।

**मूलार्थ**—वह एक अद्वितीय सच्चिदानन्द घन चिति स्वरूपा परब्रह्म परमभूम्नो समस्त विश्व में व्याप्त है। उस प्रत्यक्चेतन आत्मा से कोई स्थान रिक्त नहीं है। उसी में समस्त प्राणिगण समाविष्ट हैं। सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि मैं आत्मज्ञानी उस चिन्निष्ठ ज्ञानस्वरूप में समा गया हूँ। जिसमें समाविष्ट होने के पश्चात् द्वैत भाव नष्ट हो जाता है। अर्थात् उस परमतत्त्व में दूसरा नहीं है। उसी एक अद्वितीय तत्त्व में जो ज्ञानस्वरूप है। मैं कबीर समा गया अब कबीर नाम की संज्ञा और रूप दोनों समाप्त हो गये। अब न कबीर हैं न राम हैं दोनों की संज्ञायें समाप्त हो गई हैं, विलुप्त हो गई हैं। अब

'रामकबीरा एक है, दूजा कहा न जाय।
दूजा तो सोई कहै, सतगुरु मिला न ताहि ॥'

**एक साधे सब सधिया, सब साधे एक जाय।**
**जैसे सींचे मूल को, फूले फले अघाय ॥२७३॥**

**शब्दार्थ**—एक–उस परमतत्त्व को। साधे–सिद्ध करने से, साधिया–सब सिद्ध हो जाता है। अघाय–सन्तुष्ट।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि उस एक चिन्निष्ठ भूमा में सारा विश्व समाया हुआ है। नीचे कहा जा रहा है कि वही एक परमतत्त्व की सिद्धि करनी चाहिए। उसी की प्राप्ति करनी चाहिए।

**मूलार्थ**—जब वह एक तत्त्व सिद्ध हो जायेगा तो सारे पुरुषार्थ सिद्ध हो जायेंगे। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष सबकी प्राप्ति हो जायेगी। यदि उस एक तत्त्व को छोड़कर अन्य पुरुषार्थ आदि के चक्र में पड़ जाओगे तो वह एक जाता रहेगा। अर्थात् उसकी प्राप्ति नहीं हो सकेगी। इसलिए उस एक अद्वितीय तत्त्व को ही साधो। उसी को सिद्ध करो। जिस प्रकार से वृक्ष के मूल में जल सींचने से सभी शाखा-पत्र फूलने-फलने लगते हैं अर्थात वे अघाय एवं सन्तुष्ट हो जाते हैं। उसी प्रकार से जब तू एक परमतत्त्व परमात्मा को साध लेगा, प्राप्त कर लेगा। तो सभी प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष अपने आप तुम्हारे पास चले आयेंगे। जिनसे तू कृतकृत्य हो जायेगा।

**विशेष**—यदि एक ही मन को साध लिया जाय तो सभी इन्द्रियाँ मनुष्य के वश में हो जायेंगो यदि मन को छोड़कर अन्य वाक्य आदि के वश में करने की बात की जायगी तो मन के स्वतंत्र रहने पर अन्य इन्द्रियाँ नहीं वश में की जा सकती हैं कारण कि मन सभी इन्द्रियों का राजा व स्वामी है इसलिये सद्गुरु कहते हैं कि हे भाई सन्तजन सर्वप्रथम मन रूपी दैत्य को वश में करने की चेष्टा करो। जिस प्रकार से मूल तत्त्व आत्मा की उपासना करने से साधक को परम सुख की प्राप्ति होती है और वह साधक खूब फूलता फलता है अर्थात् उसका परम विकास हो जाता है। अपनी अज्ञात शक्ति को प्राप्त कर लेता है इसलिये मुमुक्षुओं को चाहिये कि साधन काल में अपने मन पर निगरानी रखें तभी साधना सफलीभूत हो पायगी अन्यथा कार्य सिद्धि में कठिनाई का सामना करना पड़ेगा और आत्म दर्शन भी नहीं हो सकेगा।

## शून्य साधना प्रकरण

**जेहि बन सिंघ न संचरे, पंछी ना उड़ि जाय।**
**सो वन कबीर हींड़िया, सुन्न समाधि लगाय ॥२७४॥**

**शब्दार्थ**—जेहि–जिस। संचरे-क्री० अ० सं० (संचरण) घूमना-

फिरना, चलना। हींड़िया–हिण्डल, अन्वेषण, खोजना, जाना, पहुँचना। सुन्न–शून्य, निर्जन, जहाँ सभी का अभाव हो, अकेला।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि साधक को चाहिए कि सर्वप्रथम एक चेतन तत्त्व की ही सिद्धि करे। जब वह सिद्ध हो जायेगा, तब सब कुछ प्राप्त हो जायेगा। नीचे कहा जा रहा है कि उस एक की सिद्धि में बहुत प्रयत्न करना पड़ता है, बहुत अन्वेषण करना पड़ता है तब वह प्राप्त होता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि मैं एक ऐसे घोर वन में जा पहुँचा। ऐसे भयानक बीजावान के जंगल में पहुँचा। जंगल इतना सघन था कि उसमें हिंसक पशु सिंह भी घूम-फिर नहीं सकता था। उसको भी शिकारियों से भय था। इतना सकरा, वनस्पतियों से आच्छादित वन था कि उसमें पक्षीगण भी उड़ नहीं सकते थे। उनका भी गमनागमन नहीं हो सकता था। मैं कबीर सो कहिये उस वन में वा वैसे वनों में आत्मतत्त्व का अन्वेषण किया, खोजा और अकेले समाधिस्थ रहता था, बहुत ध्यानस्थ होने के बाद तब तत्त्व की प्राप्ति हुई। तात्पर्य यह है कि साधना एकान्त में करनी चाहिए, सुन-सान में करनी चाहिए। जहाँ भीड़-भाड़ न हो, जहाँ लोगों का आवागमन कम हो। तब साधना में सफलता मिल सकती है। क्योंकि मन बड़ा चंचल है। जरा सी खुर-खुराहट में इधर से उधर भागने लगता है। इसलिए साधक को चाहिए कि एकान्त में भजन-भाव करें।

## अन्य देववाद प्रकरण

**सांच कहौं तो है नहीं, झूठहिं लागू पियार।**
**मो सिर ढ़ारे ढ़ेंकुली, सींचै और कि कियारि ॥२७५॥**

**शब्दार्थ**—सांच–सच। कहौं–कहूँ। पियार–प्रिय। मो–मेरे। सिर–ऊपर। ढ़ारे–डाले। ढ़ेंकुली–जलपात्र, ढ़ेकुली वह पात्र है जो खम्भा गाड़-कर कुएँ के ऊपर बाँस के लट्ठे में लगाई जाती है। पहले समय में उसी से कृषि की सिंचाई की जाती थी, स्नान लोग करते थे, पानी पीते थे, मेरे प्रति मेरे पक्ष में बातें करना। और–दूसरा। कियारि–क्यारी, क्यारी उसको कहते हैं जो छोटे-छोटे घेरे खेत में बनाकर उसमे पानी दिया जाता है, उसको कहते हैं क्यारी। कहीं-कहीं कूला भी कहते हैं।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि साधन, भजन एकान्त में करना चाहिए। तभी परमतत्त्व की प्राप्ति हो सकती है। नीचे कहा जा रहा है कि यदि किसी से सच्ची बात कही जाय तो कोई मानने के लिए प्रस्तुत नहीं है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि संसार में किसी से सत्य बात कहता हूँ तो कोई दिखाई नहीं देता है। न कोई सत्य मानने के लिये तैयार है। यदि मै कहता हूँ कि परमेश्वर परब्रह्म सत्य है तो किसी को भाता नहीं है झूठी मोह माया ही लोगों को प्रिय लगती है। अर्थात् संसार का सुख ही मनुष्यों को अधिक भाता है। जिस प्रकार से मेरा नाम लेकर मेरे सिर पर लोग पानी ढारते हैं। मेरा खेत कह करके कि कबीर के खेत में पानी जा रहा है। परन्तु खेत सिंचते हैं दूसरे का इसी प्रकार से बहुत से लोग मेरा नाम लेकर मेरी बात का प्रमाण देकर उपदेश करते हैं। परन्तु सिद्धान्त सुनाते हैं दूसरे का अर्थात् नाम लोग परमेश्वर का लेते हैं। आत्मतत्त्व का लेते हैं। और सेवा माया की करते हैं। इसलिए प्रभु प्राप्ति से वंचित रह जाते हैं। और इस संसार में कोई सच्चा हरि भक्त नहीं मिलता है। सभी माया के मित्र मिलते हैं जिसके कारण नाना प्रकार के दुःखों का सामना करना पड़ता है। इसलिए मनुष्यों को चाहिये कि कथनी और करनी में अन्तर न करें। अन्यथा कोई फल मिलने वाला नहीं है।

## बोली अनमोल प्रकरण

**बोली तो अनमोल है, जो कोइ बोले जान।**
**हिये तराजू तौलि के, तब मुख बाहर आन ॥२७६॥**

**शब्दार्थ**—अनमोल-अमूल्य। जान-जाने। हिये-हृदय। तराजू-तुला, तौलने का यंत्र, तकड़ी। अ०-विवेक। आन-लाओ, निकालो।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि साँच बोलने वाले एवं सत्यवक्ता खोजने पर भी नहीं मिलते हैं। असत्य वादियों की भरमार है। नीचे कहा जा रहा है कि वाक्य का बड़ा महत्व है। इसलिए वाणी को बहुत सोच-बूझकर निकालना चाहिए।

**मूलार्थ**—यदि मनुष्य जन्म से गूंगा हो, या बाद में बोली बन्द हो जाय तो उसका जीना संसार में किसी अर्थ का नहीं होता है। गूंगा मनुष्य सबसे अधिक दुःखी होता है। इसलिए कहा गया है कि जो बोली है,

जो वाणी है। जो आत्मज्ञान है वह बहुत मूल्यवान है। संसार में उसका कोई मूल्य नहीं है, परन्तु उस वाणी को कोई बोलना जानता है तो वही बोल सकता है क्योंकि कुछ बोली ऐसी होती हैं जो हृदय में छेद कर जाती हैं और मनुष्य का प्राणान्त भी हो जाता है और कुछ बोली ऐसी होती हैं कि मनुष्य सुनकर घर द्वार त्याग देता है। कुछ बोली ऐसी होती हैं जो मरते हुए आदमी को जिन्दा कर देती है। बोली ही आत्मज्ञान भी है। जो मनुष्य को जन्म-मरण से मुक्त कर देती है। इसलिए सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि जब तुझे बोली बोलना हो तो हृदय रूपी तराजू में तौल करके पूर्ण विवेक करके, समझ बूझकर सोच समझ करके तब मुख कमल से बाहर निकालो अन्यथा तुम्हारी बोली का कोई महत्व नहीं होगा। अर्थात् जब तू बोलो तो सत्य से सनी हुई वाणी बोलो। प्रिय बोलो। मीठा बोलो। किसी को दुःख न लगे। ऐसा बोलो। तब हरि का नाम बोलो। गुरु का ज्ञान बोलो। अप्रिय कभी न बोलो।

## स्वालम्बी प्रकरण

**करु बहियाँ बल आपनी, छाड़ु बिरानी आस।**
**जाके अँगना नदी बहै, सो कस मरे पियास ॥२७७॥**

**शब्दार्थ**—करु-करो। बहियाँ-बाँह, भुजा। बल-शक्ति, भरोसा। बिरानी-दूसरे की। आस-आशा-भरोसा। जाके-जिसके। अँगना-प्रांगण, आगन वह जो बखरी के अन्दर का मैदान होता है जो द्वार के सामने बहुत बड़ा प्रांगण होता है वह है आँगन हृदय। नदी-निम्नगा, जलवाह।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि संसार में आत्मज्ञान का बहुत बड़ा महत्त्व है। जो उसको जानता है वही विवेकी पुरुष है। नीचे कहा जा रहा है कि वह आत्मज्ञान अपने प्रयत्न से ही प्राप्त होगा।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरुदेव कहते हैं कि हे सत्यकाम सन्तजन ! आत्मप्राप्ति के लिए प्रभु प्राप्ति के लिए अपने स्वयं प्रयत्न करना चाहिए। किसी की कमाई पर भरोसा नहीं करना चाहिए। अपने स्वयं कमाकर खाना चाहिए। दूसरा मुझे कमाकर देगा। मैं बैठे-बैठे खाऊँगा। इस प्रकार की भावना का त्याग कर देना चाहिए। क्योंकि जिसके आँगन में, जिसमें दरवाजे पर नदी बहती हो। जल स्वच्छ हो तो उस मनुष्य को क्योंकर प्यासे मरना चाहिए। इसी प्रकार से जिसका स्वयं सत्य विवेक है। सद्‌बुद्धि है वह अपनी मुक्ति के लिए, अपने कल्याण के लिए स्वयं प्रयत्न करके जन्म-मरण से रहित हो जाय। उसको दूसरे की आशा पर नहीं बैठे

रहना चाहिए। दूसरा जो सद्गुरु हैं, सन्त हैं, वे केवल उपदेश ही दे सकते हैं। मार्ग बतला सकते हैं। पर चलना और करना अपना काम है। जिसके हृदयरूपी आँगन में ज्ञान गंगा स्वयं प्रवाहित होती है। वह मनुष्य क्यों नहीं उसी में स्नान करता है। क्यों नहीं उसी में तृप्त हो रहा है। भला वह कैसे प्यासे मर रहा है। उसको तो सदा अपने अन्दर का जल पीना चाहिए। आत्मज्ञान में ही तृप्त रहना चाहिए।

**वो तो वैसाही हुआ, तू मति होहु अयान।**
**वै निरगुनियां तै गुनवंता, मत एकहिं में सान ॥२७८॥**

**शब्दार्थ**—वो–वह। वैसाही–उसी प्रकार का। तू–तुम। अयान–अज्ञान, अज्ञानी। होहु–होओ। निरगुनियां–बिना गुण वाला, मूर्ख, अज्ञानी। तैं–तुम आप। गुनवंता–अच्छे गुण वाले हैं, सद्गुण। सान–मिलाओ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मनुष्य को स्वयं अपने कल्याण के लिए प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि पुरुषार्थ से ही सारे कार्य सिद्ध होते हैं। मनुष्य पुरुषार्थ के बल पर ही आकाश-पाताल एक कर देता है। इसीलिए पुरुषार्थ का बड़ा महत्त्व है मानव को चाहिये कि पुरुषार्थ करके अर्थ, काम, मोक्ष धर्म, की प्राप्ति करे और अपने पुरुषार्थ से ही अपना भोजन-छाजन जुटावे निरुद्यमी होकर संसार में जीना मृतक के समान है। नीचे कहा जा रहा है कि यदि कोई आलसी है। विवेकहीन है। दूसरे के भरोसे जीवनयापन कर रहा है तो तुम ऐसा मत करो।

**मूलार्थ**—सद्गुरुदेव कहते हैं कि इस संसार में अधिक लोग आलसी हैं। विवेक हीन हैं। मूर्ख हैं। दूसरे के भरोसे जीना चाहते हैं कर्म नहीं करते। भाग्य के भरोसे और प्रारब्ध के भरोसे खाट पर पड़े-पड़े शोकाकुल होते रहते हैं। सोचते हैं कहीं से गड़ा धन मिल जायगा। किसी की ठगी कर लेंगे। माँग कर खा लेंगे। इस पर गुरु महाराज कहते हैं कि हे विवेकी भाई! उसका अनुकरण मत करो जो पुरुषार्थहीन है। जो आलसी है। किंकर्तव्यविमूढ़ है। वह तो उसी प्रकार का हो गया है परन्तु तुम अज्ञानी मत बनो। निरुद्यमी मत बनो क्योंकि वह तो बिना गुण वाला है। उसके पास कोई दैवी सम्पत्ति नहीं है। पशु के समान है। बैल तुल्य है। आत्म-विमुख है। तुम श्रेष्ठ बुद्धि वाला है। तेरे में सद्गुण विराजते हैं। तुम आत्मा को जानता है इसलिए मूर्ख को और अपने को एक बराबरी न समझो अर्थात् उसके जैसा व्यवहार न करो। उसकी प्रकृति का अनुसरण मत करो। तुम सच्चे सन्त-सद्गुरु का अनुसरण करो।

## रामभक्त प्रकरण

**जो मतवारे राम के, मगन होहिं मन मांहि।**
**ज्यों दरपन की सुंदरी, गहे न आवे बाहिं ।।२७९।।**

**शब्दार्थ**—मतवारे-नशा में चूर्ण, जो मद्य पीकर निमग्न रहते हैं, इच्छुक। मगन-मग्न। दरपन-दर्पण। सुन्दरी-कामिनी। गहे-ग्रहण, पकड़न। बाहि-बाँह। भुजा-हाथ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि विवेकी पुरुष को चाहिए कि वह अविवेकियों का साथ न करें। न उनका अनुसरण करें क्योंकि नीचे कहा जा रहा है कि जो परमतत्त्व रूपी मदिरा को पी लिया है। वह स्वयं उन्मत्त रहता है। वह किसी की अपेक्षा नहीं रखता। किसी की आशा नहीं करता।

**मूलार्थ**—नशा तो अनेक प्रकार की होती हैं और उन्मत्त लोग भी अनेक प्रकार के होते हैं। कोई शरीर के वल में उन्मत्त है। कोई धन से उन्मत्त है। कोई पुत्र के मद से उन्मत्त है। कोई सुन्दर स्त्री प्राप्त करके उन्मत्त है। कोई बड़ा पद पाकर उन्मत्त है। कोई विद्या पाकर उन्मत्त है। कोई समाज का नेता होकर उन्मत्त है। इस प्रकार से अनेक प्रकार के उन्मत्त हैं, परन्तु सद्‌गुरु कहते हैं कि हे सन्तजन ! हे जिज्ञासुजन ! जो लोग राम नाम में उन्मत्त हैं जो परमतत्त्व की नशा में मतवाले हुए हैं। वे दूसरे का कुछ बिगाड़ते नहीं। वे अपने आप में स्वयं मग्न रहते हैं वे अपने मन में ही प्रभु प्राप्ति की मस्ती में आनन्दविभोर रहते हैं। वे किसी प्रकार से मोह-माया में नहीं फँसते हैं। किसी के बहकावे में नहीं आते हैं। जिस प्रकार से दर्पण के अन्दर किसी सुन्दरी को ग्रहण नहीं किया जा सकता है। उसकी बाँह नहीं पकड़ी जा सकती है क्योंकि दर्पण में मात्र सुन्दरी की छाया है इसलिए उसको कोई प्राप्त नहीं कर सकता। इसी प्रकार से जो श्रीराम के स्वरूप में तल्लीन हैं उनकी गति कोई नहीं जान सकता। संसार में मात्र उनका शरीर रहता है। परन्तु उनका मन परम-तत्त्व में विलीन रहता है। आत्माराम में निमग्न रहता है, उनको गति को संसारी लोग नहीं जान सकते हैं।।

**साधु होना चाहिए, पका होय के खेल।**
**कांची सरसों पेरि के, खरी भई नहिं तेल ।।२८०।।**

**शब्दार्थ**—साधु-जो साधता है, जो अपने मन इन्द्रियों को वश में

करता है, जो महान कर्म करता है वह साधु है। खेल–क्रीड़ा, विचरण, खूब सोच समझकर। कांची–कच्ची, बिना पकी हुई। सरसों–तेलहन। खरी–खल्ली।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो प्रभु तत्त्व में निमग्न हैं जो मस्त हैं उनकी गति विलक्षण होती है। वे मानव बुद्धि की पकड़ से बाहर रहते हैं। नीचे कहा जा रहा है कि उसी प्रकार का सन्त होना चाहिए जिस प्रकार का ऊपर बताया गया है।

**मूलार्थ**—किसी भी काम को आरम्भ करने के पहले खूब सोचना समझना चाहिए। खूब विवेक करना चाहिए। तब उस मार्ग पर पदार्पण करना चाहिए। सद्गुरु कहते हैं कि उपर्युक्त प्रकार का सन्त होना चाहिए परन्तु खूब पक्का मन को करके अत्यन्त दृढ़ निश्चयी होकर तब साधु वाला खेल खेलना चाहिए। यदि माया को जीतने की कला नहीं जानेगा मन विजय करने का पेंच नहीं जानेगा। इन्द्रियों के दमन की कला नहीं सीखेगा तो साधुओं की खेल में पराजित हो जायगा अर्थात् सच्चा साधु नहीं बन पायेगा। जिस प्रकार से कच्ची सरसों को कितना भी पेरा जाय कितना भी निचोड़ा जाय न उसमें से तेल निकलेगा न कच्ची सरसों की खल्ली होगी। तात्पर्य यह है कि जो बुद्धि के परिपक्व नहीं हैं, जो साधना में खरे नहीं हैं, जो मन से साधु नहीं हुए हैं, जो सच्चे संत सद्गुरुओं के द्वारा ज्ञान नहीं प्राप्त किये हैं तो उनमें खोजने से न तो आत्मतत्त्व मिलेगा न आत्मतत्त्वरूपी तेल निकलेगा। न रहनी करनीरूपी खल्ली मिलेगी। ये केवल जीवनयापन के लिये वेश को धारण करते हैं अर्थात् जो आत्मतत्त्व से विहीन हैं जिनकी रहनी गहनी उत्तम नहीं है। न वे साधु हैं, न वे सन्त हैं।

### कच्चा वेश प्रकरण

**सिंघों केरी खोलरी, मेढ़ा पैठा धाय।**
**बानी ते पहिचानिये, सब्दहिं देत लखाय ॥२८१॥**

**शब्दार्थ**—सिंघों–सिंह। खोलरी–चमड़ी, ढांचा, वेश, पहिरावा। मेढ़ा–मेष, सींग वाला एक चौपाया जानवर जिसको भेड़ा कहते हैं। पैठा–प्रवेश किया। धाय–दौड़कर। बानी–बोली। सब्दहिं–ध्वनि, आवाज, बात चीत। लखाय–दिखाय, देखने में।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि साधु होना चाहिए, परन्तु सच्चा

साधु होना चाहिए। नीचे सन्त वेश धारण करने का निषेध किया जा रहा है जब तक उसमें सच्चाई न आ जाय।

**मूलार्थ**—जिस प्रकार से किसी भेड़ा ने जंगल में जाकर रहने लगा और हिंसक जन्तुओं से भयभीत रहने लगा तो सोचा कि सभी हिंसक पशु सिंह से डरते हैं। कहीं से किसी प्रकार से सिंह की खोलरी प्राप्त कर लिया और सिंह के आकार का सिलाकर उसी में समा गया। जिसको देखकर उसके खाने वाले जीव जन्तु तो प्रथम डरने लगे परन्तु जब कुछ सन्देह हुआ तो उस भेड़े से बातचीत करने लगे तो बातचीत के दौरान ही वह भेड़ा पकड़ा गया और समझ में आ गया कि यह सिंह नहीं है। यह है भेड़ा। तदुपरान्त सभी जंगली जन्तु उसको मिलकर खा गये। इसी प्रकार से सिंहरूपी सन्तों का वेश आत्मज्ञ पुरुषों का बाना वंचक धूर्त कोई जीने-खाने के लिए जीविकायापन के लिए पहन लिया तुरन्त घर द्वार त्याग कर किसी चेला मुड़ने वाले के यहाँ आ गया। वह चेला का भूखा गुरु जो स्वयं अज्ञानी है। वंचक है। बिना समझे-बूझे प्रातः सायं के अंदर ही उसको चेला मुड़ लिया! साधु का वेश दे दिया परन्तु कुछ सिखाया नहीं। सच्चे तत्त्व की परिचय नहीं कराया। अध्यात्म का रहस्य नहीं बताया। कह दिया कि जाओ। चेताओ। मागो खाओ। परन्तु रहनी-गहनी से विहीन जहाँ जाता था लोग उसके व्यवहार से उसकी वाणी वचन से उसको पकड़ लेते थे और तिरस्कार करते थे। अन्त में कहीं सुरा-सुन्दरी पाकर फंस गया। पश्चात् यमरूपी आखेटक अपने लोक में ले गया।

**टिप्पणी**—आय कशाई घुरी हाथा। कैसो आवे काटों माथा॥

## तटस्थ देव उपासना प्रकण

**जेहि खोजत कल्पौ गये, घटहिं माहिं सो मूर।**
**बाढी गरब गुमान ते, ताते परि गई दूर॥२८२॥**

**शब्दार्थ**—जेहि–जिसके। कल्पौ–अनेक युग बीत गये, अनेक युग। घटहिं–घट में ही, हृदय में ही। माहिं–में। सो–वह। मूर–मूल, वनौषधि, मूल, मूल नक्षत्र, आत्मतत्त्व? ब्रह्मतत्त्व। बाढी–बढ़ी। गरब–गर्व, अभिमान। गुमान–घमंड। ताते–इसलिए। परि–हो।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि खूब सोचसमझ कर साधु, सन्त बनना चाहिए। अन्यथा कोई लाभ नहीं होगा क्योंकि सच्चा साधु के न बनने से परमतत्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। केवल इस तीर्थ से उस तीर्थं तक, इस कर्मं से उस कर्मं तक अर्थात् सकामकर्मों में ही पड़ा

रहेगा। स्वर्गादि लोकों की भोगेच्छा के फेर में सत्य से दूर हो जायेगा क्योंकि नीचे कहा जा रहा है कि जिस परमतत्त्व को तू बाहर खोजता है। किसी लोक लोकान्तर में खोजता है। वह तत्त्व तो तेरे भीतर में ही विराजमान है।

**मूलार्थ**—जिस परमवस्तु को वेशधारियों को अज्ञानी मनुष्यों को, सकाम कर्मियों को अन्वेषण करते-करते अनेकों कल्प बीत गये। अनन्त युग चले गये। इसी सन्दर्भ में अनन्तों बार अज्ञानी मनुष्य जन्म-मरण को धारण करते रहा परन्तु वह परमतत्त्व की प्राप्ति नहीं कर सका। क्योंकि उसको बाहर खोजता था दूर खोजता था। जिसको दूर खोजता था वह तो घटरूपी शरीर में ही विराजमान था। हृदय कमल में ही उस मूल तत्त्व का निवास था परन्तु इतना अभिमान बढ़ गया। इतना गुमान हो गया। उसको पहचान न सका। मैं ब्राह्मण हूँ। मैं क्षत्रिय हूँ। मैं शरीर वाला हूँ। मैं बहुत से यज्ञ किया हूँ। बहुत प्रकार का तप किया हूँ। बहुत धनाढ्य हूँ। बहुत विद्वान हूँ। चारों वेद, छः शास्त्र, चतुर्दश विद्याओं का ज्ञाता हूँ। मैं धन-जन से पूर्ण हूँ। इस प्रकार के अभिमान में डूबा रहा। इस प्रकार का गर्व बढ़ाते रहा। इसलिए वह प्रभुतत्त्व प्राप्ति से बहुत दूर हो गया। क्योंकि वह प्रभुतत्त्व सकामना से बहुत दूर रहता है और यह जीव सकामना वाला है। घमण्ड वाला है। अहंकार वाला है। इसलिए उस परमतत्त्व को प्राप्त नहीं कर सका।

**दस द्वारे का पींजरा, तामें पंछी पौन।**
**रहिवे को अचरज है, जात अचंभौ कौन ॥२८३॥**

**शब्दार्थ**—पींजरा–पक्षियों के रहने का घर जो चपटे लोहे के चादरों से बनाया जाता है, एक फुट के अन्तर्गत ही होता है, वह पींजरा, शरीर। तामें–उसमें। पंछी–पक्षी। डैने वाला, उड़ने वाला जन्तु जीवात्मा। पौन–पवन, प्राण वायु के समान। रहिवे–रहने का। अचरज –आश्चर्य। अचंभौ–अचम्भा।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मनुष्यों को अभिमान के कारण सत्य का पता नहीं चला नीचे कहा जा रहा है कि यह मानव शरीर बहुत अल्प आयु वाला है और बहुत ही कमजोर एवं निर्बल नाजुक है।

**मूलार्थ**—किसी महालय में किसी भवन में एक से दो दरवाजे तक होते हैं परन्तु सद्गुरु देव कहते हैं कि जिस महालय में जिस प्रकोष्ठ में यह जीवात्मा रहता है। उस शरीर में दश दरवाजे हैं और पवन रूपी

जीवात्मा पक्षी के समान उड़ने वाला है। इसलिए रहने के लिए इसमें आश्चर्य है। चला जाता है तो कोई आश्चर्य नहीं। भावार्थ यह है कि जिस महालय में एक दो दरवाजे होते हैं। उसमें से तो लोग निकल ही जाते हैं। इस जीवात्मा के घर में तो दश दरवाजे हैं। इसमें से निकल भागना आसान है। बहुत सरल है कोई रुकावट नहीं है। दूसरे यह पवन के समान पक्षी है। पक्षी और पवन दोनों में श्लेष है। पक्षी उड़ने वाला होता है। पवन बिना रूप का होता है। स्थूल काय नहीं होता। इसी प्रकार से यह जीवात्मा कोई द्रव्य नहीं है। कोई रूप वाला नहीं है। कथन मात्र के लिए द्रव्य है परन्तु यह विलक्षण है। वह नीचे ऊपर जो मध्य में ग्रहण नहीं किया जा सकता है इसलिए इसके उड़ने में कोई देर नहीं है। इस शरीर में जब तक है तभी तक आश्चर्य है। इसमें से चले जाने का कोई आश्चर्य नहीं है इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि जितनी शीघ्रता हो सके उतनी शीघ्रता से परमतत्त्व की प्राप्ति कर ले। त्रय प्रकार के दुःखों से रहित होने का उपाय कर ले। जितना जल्दी हो सके अपने को सुधार ले। अन्यथा इसमें से प्राण पक्षी कब उड़ जायेगा कहना कठिन है। क्योंकि इसमें दस दरवाजे हैं। दूसरे उड़ भागने वाला है और रूप विहीन भी है। शरीर रूपी पिंजरे से निकलने में कोई कठिनाई नहीं है।

## तम गुणी प्रकरण

**रामहिं सुमिरे रन भिरे, फिरे और की गैल।**
**मानुख केरी खोलरी, ओढ़े फिरत हैं बैल ॥२८४॥**

**शब्दार्थ**—रामहिं–राम को। रन–युद्ध, लड़ाई-झगड़ा, इन्द्रियों का भोग। गैल–गली, मार्ग अन्य सकामकर्म आदि की धारणा। मानुख–मनुष्य। केरी–की। खोलरी–चमड़ी, वेश, पोशाक, लिवाश, ढाँचा। फिरत–फिरता है। बैल–चार पैर वाला पशु। अज्ञानी। भिरे–करे, लड़े।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि यह शरीर बहुत नाजुक है, निर्बल है। इसमें रहने वाला बहुत शीघ्र निकल जाता है। नीचे कहा जा रहा है कि तो भी मनुष्य चेतता नहीं।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि मनुष्य बड़ा छली होता है। धूर्त होता है। कपटी होता है। क्योंकि ऊपर कुछ रहता है। भीतर कुछ रहता है। मुख से राम-राम सुमिरता है और लोगों से लड़ाई करते फिरता है और नाम तो राम का लेता है। परन्तु रास्ता चोरों की पकड़ता

है। असाधुओं की गली में घूमता है। मनुष्य है नहीं। मात्र मनुष्य का वेश धारण किये हुए हैं। मानव का ढाँचा ओढ़े फिरता है परन्तु भीतर से बैल बुद्धि वाला है। बैल जैसा, पशु जैसा विवेकहीन व्यवहार करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कहता है कि एक रामनाम को छोड़कर अन्य किसी दूसरे को नहीं मानता हूँ, परन्तु इन्द्रियों की लड़ाई में, इन्द्रियों के भोग में पड़ा हुआ है। सत्यकर्म की दुहाई देता है कि मैं सत्यकर्म करने वाला हूँ। परन्तु असत्य कर्मियों की गली में घूमते रहता है अर्थात् नोच कर्म से ही प्रेम करता है। ऊपर से बड़ा भला मानव दीखता है। भीतर से बड़ा निर्वुद्धि है। पूर्णरूपेण विवेक से रहित है। यत्किंचित सद्-असद् का ज्ञान नहीं है। इसलिए ऐसे मनुष्यों का कोई महत्त्व नहीं होता है जो विवेक से हीन हैं। 'भिरे' में श्लेष है। तात्पर्य यह है कि ऊपर से राम-राम कहता है और भीतर से बकवास व शास्त्रार्थ के लिए भिड़ते फिरता है। अपने जीतने की भावना और दूसरे को हराने की भावना बनाये रहता है।

**खेत भला औ बीज भला, बोये मुठी का फेर।**
**काहे बिरवा रूखरा, ये गुन खेतहिं केर ॥२८५॥**

**शब्दार्थ**—खेत-क्षेत्र, अन्तःकरण। भला-अच्छा। औ-और। बीज-बीज, बीया, आत्मोपदेश। बोये-बोये, बुना। मुठी-मुट्ठी, गुरुमुख कथन। काहे-क्यों। बिरवा-साधक, शरीर, वृक्ष पौधा। रूखरा-रूखर, सूखा, निरस। ये-यह। गुन-गुण, ज्ञान। खेत-क्षेत, शरीर। केर-का।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया कि है श्रीराम नाम का सुमिरन करता है परन्तु वाद-विवाद करने के लिए भी भीड़ जाता है नीचे कहा जा रहा है कि गुरु का उपदेश तो एक सा होता है। परन्तु अनेक अन्तःकरण के कारण उसका असर विभिन्न रूपों में होता है।

**मूलार्थ**—खेत भी उत्तम है। बीज भी उत्तम है। बोने में मुट्ठी का फेर है। स्मरण रहे कि पहले कृषक लोग हल के पीछे-पीछे मुट्ठी में बीज लेकर बुनते चले जाते थे। आज कल तो डिबलर आदि यन्त्रों से बुनाई हो रही है तो मुट्ठी का फेर होने से उगने में बराबर नहीं उगा। कहीं अनाज गड्ढे में पड़ा कहीं ऊसर पड़ा। काहे को विरवा रूखरा हो गया। यह गुण खेत का ही हो सकता है। खेत बढ़िया से नहीं जोता गया। ओदी व नमी कम रहने के कारण या खेत में कीटाणु होंगे। सद्गुरु कहते हैं कि हे सत्य प्रतिष्ठित सन्तजन! साधना सब तो एक सा

करते हैं। गुरु का उपदेश एक सा होता है। हृदय भी सबका साफ रहता है। गुरु का उपदेश भी उत्तम रहता है। तो क्यों नहीं एक सा विचार, समझ एवं सब एक साथ सिद्ध हो जाँय। सबको एक ही साथ आत्मतत्त्व प्राप्त हो जाय। सब कुछ ऐसा होने पर भी समान ज्ञान नहीं होता है। इस पर सद्गुरु कहते हैं कि बात तो ठीक है परन्तु उपदेश देने में, ज्ञान रूपी बीज डालने में कुछ फेर पड़ जाता है। कुछ तरीकायें बदल जाती हैं। प्रकार भिन्न हो जाता है। इसलिए बिरवारूपी साधक शुष्क रहता है। शोकाकुल रहता है। उसके भीतर अन्तःकरण में ज्ञानरूपी बीज ठीक से नहीं पड़े। अथवा शुष्क होने का कारण अन्तःकरण है। क्योंकि यत्किंचित अन्तःकरण मलीन रहेगा तो बीज ठीक से जमेगा नहीं और कहीं अगल-बगल जाने पर भी जामने पर शुष्क होगा अर्थात् ओदी व नमी रूपी सरसता अन्तःकरण में न होने से बीज ज्यों का त्यों पड़ा रहता है। अधिक दोष अन्तःकरण का ही दीखता है। यदि अन्तःकरण भला होता, उत्तम होता तो साधक मन से प्रसन्न रहता। प्रफुल्लित रहता। न उपदेश देने में भूल हुई। न बीज में कोई दोष है। केवल अन्तःकरण में दोष है। इसलिए ऊपर से राम-राम कहता है। अन्दर में उग्र भावनाएँ बैठी हुई हैं जिसके कारण उत्तम ज्ञान मनुष्यों को नहीं होता है।

## गुरु विमुख प्रकरण

**गुर सीढ़ी ते ऊतरे, सब्द विमुखा होय।**
**ताको काल घसीटिहैं, राखि सकै नहिं कोय ॥२८६॥**

**शब्दार्थ**—सीढ़ी–गुरु का उपदेश रूपी मार्ग, श्रेणी। विमुखा–विमुख, रहित, अलग, दूर।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अन्तःकरण भी शुद्ध था। और बीज भी उत्तम था। परन्तु साधक में कुछ नासमझी थी। इसलिए उसको वास्तविक ज्ञान नहीं हुआ अब नीचे कहा जा रहा है कि अपनी नासमझी के कारण गुरु के उपदेश रूपी सीढ़ी से नीचे आ गया। जो ऊँचा उपदेश था। उसका परित्याग कर दिया।

**मूलार्थ**—गुरु ज्ञानरूपी सीढ़ी से जो उतर जाता है, जो गुरु का मंत्र त्याग देता है। गुरु के शब्दरूपी उपदेश से रहित हो जाता है। उसको मृत्यु घसीटते हुए अपने लोक में ले जायेगी। गुरु के अतिरिक्त कोई

व्यक्ति समर्थ नहीं है कि मृत्यु से उसको छुड़ा सके और उसकी रक्षा कर सके।

**चौपाई : भुंभरी घाम बसे घट माहीं।**
**सब कोइ बसे सोग की छाहीं ॥२८७॥**

**शब्दार्थ**—भुँभरी-सं० भू-भुञ्ज (भुभल गरम रेत, गरम राख, धूल) उसको भी भुभरी कहते हैं जो तेज घाम में अपने आप भूरभूराहट होते रहता है। घाम–धूप। घट–शरीर। माहीं–में। सोग–शोक। छाहीं–छाया। नकल, अनुकृति।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो गुरु के उपदेशों का अनसुनी कर देता है। दूसरा मार्ग पकड़ लेता है तो परिणाम स्वरूप उसका जीवन सुखमय नहीं बीतता नीचे कहा जा रहा है कि वह उसी तरह से तपायमान होता है। जिस प्रकार से तेज धूप 'घाम' में बिना जूता के खाली पैर चलने वाला बटोही तपता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे सद्मति के सन्तजन यह संसार काम, क्रोध, लोभ, मोह से उसी प्रकार से दग्ध हो रहा है। जिस प्रकार से कोई पथिक भूभरी में पड़ जाय और उसके पैरों में फफोले पड़ जाँय। संसार के सभी मनुष्यों के शरीर रूपी घट में आशा, तृष्णा काम-कोध, लोभ, मोह रूपी भूभरी घाम निवास करते हैं। इसलिए समस्त मनुष्य विपति की छाया में निवास करते हैं। जिन्हें शोक होते रहता है। और शोक के नीचे लोग कभी सुख से नहीं रहते हैं। इसलिए योग्य मनुष्य को चाहिए कि गुरु की शिक्षा का भली प्रकार से पालन करे। और गुरु विमुख न हो। अन्यथा कल्याण होने वाला नहीं है।

**जो मिला सो गुर मिला, (शिष्य) सिख न मिलिया कोय।**
**छौ लाख छानवे सहस, रमैनी एक जीउ पर होय ॥२८८॥**

**शब्दार्थ**—सिख–शिष्य, चेला। मिलिया–मिला।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि तृष्णा रूपी भूमरी वाले घाम से सारा संसार तपायमान हो रहा है और उसके दुःख एवं ताप से सभी लोग शोकाकुल हो गये हैं। उसी शोक की छाया में सबका निवास है। नीचे कहा जा रहा है कि दुख कारण गुरु विमुखता है और अपने श्रेष्ठता का प्रलाप है। जो भी मिलते हैं वे सभी एक दूसरे को ही समझाने की कोशिश करते हैं जबकि अपने स्वयं नहीं समझे हैं।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे कष्मल रहित श्रेष्ठ मेधा वाले सन्त जन ! यह संसार गुरुवों का देश है। एक दूसरा सबको अपने से मूर्ख समझता है। अच्छी बात नहीं सुनता दूसरे का उत्तम ज्ञान नहीं सुनना चाहता है। केवल अपना लम्बा-चौड़ा भाषण लच्छेदार भाषा में सुनाना चाहता है। मैं कबीर इस संसार में बहुत घूम फिर कर शिष्य खोजा, ज्ञान का अधिकारी खोजा परन्तु मुझे कोई एक भी शिष्य नहीं मिला जो मिला वह गुरु ही मिला। मेरे से भी बड़ा बनने की कोशिश किया। मेरे ज्ञान से अपने ज्ञान को श्रेष्ठ मानने को जोर देता रहा। परन्तु एक भी ऐसा शिष्य नहीं मिला। जो मेरी वात को प्रेम पूर्वक सुनता और उस पर चलने का प्रयत्न करता। मैंने बहुत से उपदेश, बहुत से पद इन संसारियों को सुनाया यहाँ तक की छः लाख छियानवे हजार केवल रमैनियों का निर्माण किया। लोगों का कल्याण हो। इसके लिए मैं सहस्रों वाणियाँ बोल गया।

एक ग्रन्थ में लिखा है कि—

सहस छियानबे औ छौ लाखा।
युग प्रमाण रमैनी भाखा॥

कहने का तात्पर्य यह हुआ कि आत्मज्ञानी पुरुष बहुत से होते हुए एक होते हैं। यहाँ सद्गुरु कबीर का आशय छः लाख छियानबे से अनन्त उपदेश से है। १२० वर्ष के जीवन में कितनी वाणी कहे होंगे। जिसकी संख्या नहीं होगी। जब महर्षि व्यास के नाम पर लाखों-लाख श्लोक हैं। पद हैं। तो कबीर साहब इतने पद न कहे हों। यह शंका भी निर्मूल है। परन्तु आज चौरासी रमैनियों के अतिरिक्त शेष रमैनियाँ प्राप्त नहीं हैं। परम्परा से ज्ञात होता है कि विरोधियों ने कबीर साहब की कितनी ही वाणियाँ नष्ट कर दीं। उन वाणियों में उनके विरोध के उपदेश थे। इसलिए उनका सुरक्षित रहना। वे अपने धर्म के हित में नहीं समझते थे। क्योंकि कबीर साहब ने कहा है कि—

जेते तारा रैन के, तेते बैरी मुझ्झ।
सिर सूली धड़ कांगुरे, ताऊ न बिसारो तुझ्झ॥

भला जब इतने बैरी थे, इतने शत्रु थे तो क्या कबीर साहब कभी चैन से रहे होंगे। वे तो कहते हैं कि—मैं इस एक जीव के उद्धार के लिए अनन्तों वाणी कहा पर यह नादान जीव अपनी गुरूरता के कारण मेरे उपदेश को श्रवण नहीं किया अपनी ही बात अपनी ही धर्म की प्रशंसा मेरे आगे करते रहा।

**जहँ गाहक तहँ हौं नहीं, हौं तहँ गाहक नाहिं ।**
**बिना विवेक भटकत फिरे, पकरि सब्द की छांहिं ॥२८९॥**

**शब्दार्थ**—हौं–मैं । गाहक–ग्राहक हितैषी, हित चाहने वाला, आत्मज्ञान इच्छुक । हौं–मैं कबीर, आत्मज्ञानी गुरु । छांहीं–छाया वह स्थान जहाँ ओट रहने के कारण धूप न पड़ती हो ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मैंने एक जीव के लिए अनन्त वाणियों के माध्यम से मानव हितैषी उपदेश दिया परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि जिस देश काल में मैं उपदेश दिया । वहां एक भी ग्राहक नहीं मिले । एक भी ज्ञान चाहने वाले नहीं रहे ।

**मूलार्थ**—यह प्रकृति की विडम्बना है कि जहाँ सम्पत्ति होती है वहाँ कोई खाने वाला नहीं है, और जहाँ खाने वाले हैं । बहुत से बाल-बच्चे जिसके पास हैं उसके लड़के भूखे मरते हैं । इसी प्रकार से जहाँ ज्ञान के ग्राहक हैं इच्छुक हैं उनको शीघ्र सद्गुरु नहीं मिलते और जहाँ सद्गुरु हैं वहाँ ज्ञान ग्रहक नहीं मिलते । वहाँ के लोग अपनी मूढ़ता के कारण बिना विवेक यत्र-तत्र भटकते फिरते हैं । सही बोध न होने से वे जहाँ-तहाँ शब्दों के द्वारा पकड़ लिये जाते हैं । लोग समझ जाते हैं कि इनको सही उपदेश नहीं मिला है इनका ज्ञान नकली हैं ये अज्ञानी हैं । कभी गुरु से ज्ञान ग्रहण नहीं किये इसलिए शब्द की छाया में शब्द बोलने पर सत्य-असत्य की पहचान हो जाती है तात्पर्य यह है कि जहाँ पर साधक है, संत हैं । वहाँ अहंकार का अभाव रहता है । सरलता और नम्रता रहती है और जहाँ अहंकार है वास्तविक में वे लोग ज्ञान ग्राहक नहीं होते हैं । उनको ज्ञान हो भी नहीं सकता । वे जहाँ-तहाँ भटकते फिरते हैं अपने अभिमान के कारण बहुत सी आलोचना सन्तों की करते हैं और दूसरे धर्मों की निन्दा भी करते हैं । इसलिए बुद्धगण उनको पकड़ लेते हैं कि यह दम्भी हैं, पाखण्डी हैं । इसका उपदेश नकली है अग्रहणीय है त्याज्य है ।

## कुगुरु प्रकरण

**नग पखान जग सकल है, पारखि बिरला कोय ।**
**नगते उतिम पारखी, जग में बिरला होय ॥२९०॥**

**शब्दार्थ**—नग–एक प्रकार का रत्न जिसको धनी मानी लोग अँगूठी में लगा कर पहनते हैं, सद्ज्ञान, सन्तजन ! पखान–पत्थर, नकली वेशधारी साधु, जो रत्न नहीं है । पारखी–ज्ञानी, विवेकी ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया हैकि जहाँ संत पुरुष रहते हैं वहाँ हित चाहने वाले की कमी रहती है। और जहाँ हितैषी लोग होते हैं। दैव योग से वहाँ सद्‌गुरु नहीं पहुँच पाते। अर्थात् जहाँ सद्‌गुरु होते हैं। वहाँ उनको कोई पहचान ही नहीं पाता नीचे कहा जा रहा है कि इस संसार में भले बुरे सभी लोग रहते हैं। परन्तु अज्ञानी उनको समझ नहीं सकता।

**मूलार्थ**—इस संसार में गुरु और कुगुरु सन्त और असंत दोनों निवास करते हैं। पर साधारण लोग उनकी परख नहीं कर पाते। उनकी परख पारखी करता है। विवेकी करता है। जो बिरला ही होता है। जो जिज्ञासु होता है। जो आत्म पिपासु होता है। नग रूपी संत। सद्‌गुरु को पहचान लेता है इसलिए साधारण संत से उत्तम पारखी सन्त हैं। जो उनको पहचान लिये। वे लोग संसार में बिरला ही हुआ करते हैं। तात्पर्य यह हुआ कि सारे संसार में संत-असंत विराजमान हैं। उनकी पहचान उनको परखने वाला पारखी संत ही करता है। जिस प्रकार से रत्न को कोई पहचान नहीं पाता। जब तक रत्न बिना पहचान का है। तब तक उसका महत्व कुछ नहीं है। वह भी पत्थर के समान ही है। उस नग से उत्तम पारखी इसलिए है कि उसको पहचान कर उसके महत्व को बढ़ा देता है। जिससे उसका वास्तविक मूल्य मिलता है, और सही मूल्य पर बिकने लगता है। इसी प्रकार से आत्मज्ञानी श्रेष्ठ होते हुए भी श्रेष्ठ नहीं हैं क्योंकि बिना पहचान के संसार रूपी बाजार में घूम रहे है। उनकी भाषा कोई समझ नहीं पा रहा है। न उनको कोई समझ पा रहा है। इसलिए उस आत्मज्ञ को पहचानने वाला पारखी ही श्रेष्ठ है। जिसने आत्मज्ञ को पहचान लिया और संसार में उसके महत्व को बढ़ा दिया फिर संसार को उससे लाभ भी बहुत हुआ। जब भक्त ही नहीं रहेंगे। तब भगवान कहाँ रहेंगे। इसलिए मानस के अनुसार—

राम से अधिक राम कर दासा।
मोरे मन प्रभु अस विश्वासा ॥ (रामायण)

इसी प्रकार से पारखी संत का महत्व बहुत ज्यादा है, अधिक है, परन्तु ऐसे पारखी होते बहुत कम हैं।

## अनावश्यक व्यवहार प्रकरण

**सपने सोया मानवा, खोलि जो देखे नैन।**
**जीउ परा बहु लूट में, ना कछु लेन न देन ॥२९१॥**

**शब्दार्थ**—मानवा–मानव। सपने–स्वप्न में। जीउ–जीव। लूट-लूटि छीना-झपटी।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि संसार में सभी प्रकार के लोग रहते हैं। उसी में सन्त-असन्त भी रहते हैं। पर उनकी पहचान करने वाला कोई विरला ही होता है। नीचे कहा गया है कि लोग पहचान इसलिए नहीं कर पाते कि विक्षिप्त मुद्रा में सब सो रहे हैं।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे सन्त जन! यह संसार का मनुष्य स्वप्न में सोया है। अर्थात् संसारी मनुष्य अर्द्ध सावधान रहता है। पूरा सावधान नहीं है। यदि यह सावधान हो जाय। स्वप्न से जग जाय तो नेत्रों को खोलकर देख सकता है कि यह जीव कितनी बड़ी लूट में पड़ा हुआ है। न इसका किसी से कुछ लेना है न किसी को कुछ देना है। अर्थात् यह पूर्ण चेतन रूप है। स्वरूप से शुद्ध है। इसको किसी से कुछ लेना देना नहीं है परन्तु इसके लुटने वाले बहुत प्रकार के इसके सम्बन्धी हैं। यदि यह सोया हुआ मानव जगकर देखे तब यह समझ सकता है। जब तक यह विवेक रूपी नेत्रों से अपनी भूल को नहीं पहचानेगा। जब तक यह सावधान नहीं होगा। तब तक यह बाहर भीतर के डकैतों से सदा लूटा जायेगा और लुटते आ रहा है। स्त्री लूट रही है, पुत्र लूट रहा है। माँ-बाप लूट रहे हैं। भाई-बन्धु लूट रहे हैं। सगे सम्बन्धी लूट रहे हैं। इसकी शक्ति को पंच ज्ञानेन्द्रियाँ छिन्न-भिन्न कर रही हैं। इसके सहयोग से इसको लूट रही हैं। मन भी अन्तःकरण में धूम मचाये हुये है। तथा काम-क्रोध, लोभ, मोह आदि के द्वारा भी लूटा जा रहा है। इस मनुष्य को बचना चाहिए और सावधान होना चाहिए। अपने स्वरूप की पहचान करनी चाहिए कि मैं क्या हूँ। मैं सिंह हूँ। मुझे इन शावकों से क्या भय है। तभी यह बच सकता है। अन्यथा कोई बचने की उपाय नहीं है।

## मनो राज्य प्रकरण

**नस्टहिं का यह राज है, नफर का बरते तेज।**
**सार सब्द टकसार है, कोई हिदया मांहि विवेक॥२९२॥**

**शब्दार्थ**—नस्टहिं–नष्ट। राज–संसार, माया। नफर–फादास, गुलाम, मन। बरते–जलते तेज प्रकाश, आदेश हुकूमत। सार–सत्य। सब्द–प्रणव, ओंम, आत्म उपदेश। टकसार–असली वस्तु सत्यात्मा।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि व्यर्थ में ही यह जीव असावधानी में अपने को लूटा रहा है। नीचे कहा जा रहा है कि इसकी लूट माया मोह में पड़कर हो रही है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे निष्काम सन्त जन! यह संसार जो माया का राज्य है। वह जायमान है। नष्ट होने वाला है। अर्थात् यह शरीर स्थिर नहीं है इस मानव तन को पाकर इसका मूल्य समझो। संसार के विषय भोग में भूलो मत। क्योंकि तुम भोंदू राजा है। अपने ऊपर स्वयं तू राज्य नहीं कर रहा है। तेरे पर तेरा सेवक तेरा गुलाम शासन कर रहा है। उसी मन का ही चतुर्दिक धाक जम रही है। तेरे अन्तः के लोग मन को सब कुछ मानते हैं। तू किंकर्त्तव्य विमूढ़ बैठा हुआ है। अचेत है। असावधान है। इसलिए तेरे को कोई जानता नहीं, पहचानता नहीं तेरे गुलाम के मूत्र से ही दिया जल रहा है। चतुर्दिक उसी की हुकूमत है। उसी का आदेश चलता है। यदि तू सार शब्द जो सत्य आत्मा का बोधक है। जो प्रणव स्वरूप है। जो सबका टकसार है। जो सबका केन्द्र है। उसको यदि तू पहचान जाता है। उसको ग्रहण कर लेता है। तो गुलाम को तू कैद कर सकता है। बंदी बना सकता है परन्तु ऐसा वही कर सकता है जिसके हृदय में विवेक होगा। विचार होगा। अपनी और नौकर की पहचान होगी। अपने अधिकार को समझता होगा अन्यथा निर्बलों पर नफर का शासन चलता रहेगा और तू उसका स्वामी होकर उससे प्रताड़ित होते रहोगे। इसीलिए यदि तुझे जागना हो तो जाग जाओ। नहीं तो तेरी बड़ी हानि होगी।

**जब लग डोला तब लग बोला, तौं लौं धन व्यवहार।**
**ढ़ोला फूटा बोला गया, कोई न झांके द्वार ॥२९३॥**

**शदार्थ**—डोला-डोल, शरीर। बोला-बोल, जीवात्मा। तौं लौं-तब-तक। ढ़ोला-शरीर, ढ़ोल। फूटा-नष्ट हुआ। बोला-जीवात्मा।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि यह संसार नष्ट होने वाला है। इसलिए यह चिरस्थायी नहीं है। मनुष्य को सावधान होकर रहना चाहिए क्योंकि वह अपने अधिकार को समझे कि हमारा क्या कर्तव्य है? अब नीचे कहा जा रहा है कि शरीर के रहते ही सब कुछ हो सकता है। शरीरपात होनेपर एक भी पुरुषार्थ होने वाले नहीं हैं। इसलिए उठो, जागो! कर्तव्य परायण हो जाओ।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि जब तक यहशरीर सुरक्षित है। तभी तक यह जीवात्मा इसमें डोलता है। तभी तक यह बोलने वाला इसमें रहता है और तभी तक संसार के सभी धन सम्पत्ति के व्यवहार होते हैं। क्रय-विक्रय, लेन-देन, दान-पुण्य, सन्त, सद्गुरु की संगति, त्याग, वैराग्य, आत्मा की पहचान ये सब तभी हो सकते हैं जब तक शरीर निरोग और जीवित है। जब यह ढ़ोल रूपी शरीर फूट जायेगा। नष्ट हो जायेगा और जो यह बोला है यह जो जीवात्मा है। इसमें से निकल जायेगा। अर्थात् जब यह शरीर से निकल जायेगा। तब इसके पास कोई झांकने के लिए भी इसके द्वार पर नहीं जायेगा। क्योंकि जिससे लेन-देन होता था। सब व्यवहार होते थे। वह तो इसमें से निकल भागा। अब उक्त व्यवहार कौन करेगा ?

## वंचक सेवा निषेध प्रकरण

**कर बंदगी विवेक की, भेख धरे सब कोय।**
**सो वंदगी बहि जान दे, जहं सब्द विवेक न होय ॥२९४॥**

**शब्दार्थ**—कर–करौ, हाथ। बंदगी–सेवा, प्रणाम, नमस्कार। विवेक की–जिसमें विवेक हो, वैराग्य हो। बहि–वहन।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जब तक इस शरीर में जीवात्मा है। तभी तक कुछ पुरुषार्थ कर सकते हो। आत्मा की प्राप्ति कर सकते हो। ईश्वर का भजन कर सकते हो। तभी तक इन्द्रियों पर नियंत्रण भी कर सकते हो परन्तु इस जीवात्मा के शरीर से निकल जाने पर दूसरी योनियों में चले जाने पर कुछ होने वाला नहीं है और जन्म, जन्मान्तर के लिए परतन्त्रता की बेड़ी पड़ जायेगी। नीचे कहा जा रहा है कि यदि तुझे अपने को सुधारना है। किसी को सन्त सद्गुरु बनाना है तो सोच समझ कर बनाओ।

**मूलार्थ**—किसी ने कहा महाराज आप कहते हैं कि साधु सन्तों की कमी हो गयी है। परन्तु ऋषिकेश, हरिद्वार, वृन्दावन, काशी जी, प्रयागराज, अयोध्या जी आदि तीर्थों में सन्तों की भरमार मची है। इस पर गुरु महाराज कहते हैं कि बात तो तू सही कहता है। पर सब सन्त नहीं हैं। उसमें कुछ खाने कमाने वाले हैं। कुछ घुमक्कड़ हैं। कुछ आलसी हैं। कुछ वैसे ही हैं। इसलिए तुझे यदि सेवा ही करनी है। किसी को गुरु ही बनाना है तो कुछ दिन रहकर उसकी परीक्षा कर लो। उसका विवेक

वैराग्य देख लो। तब उस विवेकी की बंदगी करो। उसी के शरणापन्न हो जाओ। उसी के द्वारा तेरा कल्याण होगा। वेश तो साधु का सभी धारण किये हुये हैं। उन वेशधारियों को त्याग दो। उनकी वंदगी को वहने दे। जाने दे। अर्थात् उनकी सेवा न करो। उनके शरणापन्न न होओ। जहाँ शब्द विवेक न हो। जहाँ शब्द की पहचान करने वाला कोई न हो। जहाँ आत्मज्ञान न हो। जहाँ भगवान का भजन न हो। ऐसे लोगों को दूर ही से नमस्कार कर लो और विवेकियों की खोज करो।

## सकलसृष्टि दुःख प्रकरण

**सुर नर मुनि औ देवता, सात दीप नौ खंड।**
**कहहिं कबीर सब भोगिया, देह धरे का दंड ॥२०५॥**

**शब्दार्थ**—सुर–भूसुर, ब्राह्मण। औ–और। देवता–स्वर्गलोक में रहने वाले इन्द्रादि, विद्वान। सात दीप–जम्बू, कुश, पलाक्ष, क्रौंच, शाक, पुष्कर, शाल्यमल्य ये सात द्वीप हैं। नौ खंड–भारत, इलावर्त, रम्यक, कुरु, हरिवर्त, किम्पुरुष, केतुमाल भद्रासव, हिरण्य ये नौ खंड हैं।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि विवेकी पुरुष की शरण में जाना चाहिए। ऊपर के ताम-झाम से जो वेश बनाते हैं। जटा मुकुट रखाते हैं। राख-पात लपेटते हैं। खड़ेसरी रहते हैं। ऊर्ध्वबाहु रहते हैं। उन्हें देखकर मत भूलो। उनमें अधिक बनावटी हैं। मान-मर्यादा चाहने वाले हैं। सम्मान के भूखे हैं। इसलिए उनका परित्याग कर सच्चे सन्त सद्गुरु की शरण में जाओ। नीचे कहा जा रहा है कि इस संसार में तुम्हीं नहीं दुःखी हो। तुम्हीं नहीं रोगी हो जो जन्म लेता है। इस भूतल पर जो आता है वह कोई भी सुखी नहीं रहता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे आत्मज्ञ सन्तजन! हे सत्य संकल्प महात्मन! इस संसार में जो जन्म लेता है। वह सबके सब दुःखी देखे गये हैं, अशान्त देखे गये हैं। चाहे इस पृथ्वी के भूसुर भूमि के देवतागण हों। चाहे यहाँ के प्रतापी मनुष्य हों। चाहे बड़े-बड़े मननशील मुनि हों। चाहे स्वर्गीय देवगण हों। इस पृथ्वी के सात द्वीप और नौ खंडों में सभी लोग संकट ग्रसित हुए हैं। मैं कबीर कहता हूँ कि सबके सब दुःख भोगा है। और देह धरने का दंड भी मिला है। इसलिए मनुष्य को घबड़ाना नहीं चाहिए। व्याकुल न होना चाहिए संयम-नियम से जीवन यापन करे। प्रभु का भजन करे। माता-पिता गुरुजनों का आदर करे। तब दुःखों के वेग कुछ कम हो जायेंगे।

## तन मन एक रूपता प्रकरण

**जब लग दिल पर दिल नहीं, तब लौ सब सुख नाहिं।**
**चारिउ जुगन पुकारिया, सो संसे दिल माहिं ॥२९६॥**

**शब्दार्थ**—दिल–हि० मन, चित, हृदय। तब लौं–तब, तक। चारिउ–चारों। युगन–सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग। पुकारिया–कहा। सो–वह। संसे–संशय शंका, सन्देह।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि कोई भी शरीर धारी संसार में सुख से नहीं रह सकता। नीचे कहा जा रहा है कि यदि दुःख की निवृत्ति चाहते हो तो प्रभु प्रेम में तादात्म्य हो जाओ। जब तक मन संसार में विचरण करता है तब तक दुःख सुख भासते हैं।

**मूलार्थ**—मनुष्य बहुत चंचल मन वाला है। जब तक चंचलता रहती है। तब तक वह अनेक अकार्य करते रहता है। सद्गुरु कहते हैं कि इस मन को संसार की ओर से बटोरना चाहिए और कहते हैं कि जब तक दिल पर दिल नहीं होगा तब तक मनुष्यों को सभी प्रकार का सुख नहीं मिलेगा। इस बात के लिए मैं चारों युगों से हम सन्त महात्मा पुकारते आ रहे हैं। लोगों से कहते आ रहे हैं। परन्तु सन्त-सज्जनों की बात कोई सुनने वाला नहीं है मनुष्य क्यों नहीं सुनता है। यही संशय, शंका मन में हो रही है।

**विशेष**—यहाँ पर दो दिल का वर्णन किया गया है तो विचारणीय विषय यह है कि मनुष्यों का दिल तो एक ही होता है। जब एक हृदय है तो अपने हृदय या हृदय को कहाँ रखेगा। इसका तात्पर्य यह है कि यहाँ दो हृदय क्या है? एक हृदय अपना है दूसरा हृदय प्रभु का है व परमेश्वर का है। यहाँ पर सगुण-भक्ति का उल्लेख है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब तक यह मनुष्य अपने मन को व अपने हृदय को प्रभु के हृदय में नहीं बसा देगा। उनके भजन में तल्लीन नहीं हो जाएगा। जब तक संसार से नाता गोता नहीं तोड़ लेगा जब तक सम्पूर्ण रूप से प्रभु के शरणापन्न नहीं हो जाएगा तब तक इसके दुःख की निवृत्ति होनेवाली नहीं है और न सम्पूर्ण सुखानुभूति ही इसको होगी सम्पूर्ण सुखानुभूति तब होती है। जब परमतत्त्व की अनुभूति होती है। मैं इसी सुखानुभूति के लिए संसार के प्राणियों के सामने पुकारि-पुकारि के कहता हूँ। परन्तु मेरी बात कोई सुनने वाला नहीं दीखता। मेरे मन में यही संदेह

उत्पन्न हो रहा है कि आखिर सत्य बात को लोग क्यों नहीं सुनते। दुःख दुःख तो सभी चिल्लाते हैं। दुःख से बचने के लिए गोहार सभी लगाते हैं परन्तु उसकी निवृत्ति के लिए कोई उपाय नहीं करते इसलिए मुझे शंका है कि यह मानव का मन प्रभु के मन पर नहीं है।

**जंत्र बजावत हौं सुना, टूटि गये सब तार।**
**जंत्र बिचारा का करे, जब गया बजावनि हार ॥२९७॥**

**शब्दार्थ**—जंत्र–जन्त्री, सितारा, अनाहत् नाद। तार–ईंडा–पिंगला पंच प्राण।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जब यह मन परमतत्त्व से जुट जाता है। तब इसको पूर्ण सुखानुभूति होती है। नीचे कहा जा रहा है कि यह शरीर यह मानव जीवन क्षणभंगुर है। जब तक आत्मा इसमें रहता है, तब तक यह शरीर सक्रिय रहता है।

**मूलार्थ**—इस शरीर में बहुत प्रकार के वाद्ययंत्र बजते रहते हैं। सहस्रार में दस प्रकार के बाजा-बजते हैं। जिनको बाजते हुए मैं सुना है। परन्तु जब तार स्वरूप पंच-प्राण इसमें से निकल जाते हैं तब इस यंत्र का बाजना बन्द हो जाता है। यह यंत्र विचारा क्या कर सकता है। यह तो जड़ है। जब इसमें से बजाने वाला जीवात्मा चला गया। बाहर हो गया। सद्गुरु कहते हैं कि हे पवित्र मन के सन्त जन ! इस शरीर में जब तक यह आत्मा विराजमान रहता है। तभी तक इसके सारे व्यवहार होते हैं। तभी तक इसमें अनाहत नाद सुना जा सकता है। तभी तक दुःख निवृत्ति के लिये आत्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। आत्मा के रहते ही सभी प्रकार के पुरुषार्थ सिद्ध हो सकते हैं। इसलिए जब तक यह जीवात्मा शरीर में है तब तक सम्भल जाओ। परमेश्वर के दिल पर दिल रख लो। परमेश्वर के हृदय में हृदय मिला लो गुरु के हृदय में हृदय मिला लो। उनके उपदेश का पालन कर लो। क्योंकि यंत्र रूपी शरीर तभी तक सक्रिय है। जब तक तू इसमें है। इसमें रहते-रहते इससे अपने को अलग कर लो। और परमतत्त्व को प्राप्त कर लो। जो तेरा स्वरूप है।

**जो तू चाहे मूझको, छाड़ सकल की आस।**
**मुझेही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास ॥२९८॥**

**शब्दार्थ**—मूझको–मुझको मेरे को। छाड़–त्याग। होय–होओ। चाहे–चाहना, इच्छा।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जब तक शरीर स्वस्थ्य है। जब तक इसमें आत्मा विराजमान है। तभी तक कुछ कर सकते हो। नीचे कहा जा रहा है कि यदि तू परमतत्त्व को चाहते हो उसकी प्राप्ति की इच्छा करते हो। तो तुझे संसार का परित्याग करना पड़ेगा।

**मूलार्थ**—सद्गुरु देव कहते हैं कि हे सन्त जन ! हे जिज्ञासु जन ! यदि आप लोग मुझको कहिये मेरे स्वरूप रूपी परमात्मा को चाहते हो। अर्थात् परमतत्त्व को जानना चाहते हो। आत्मा की प्राप्ति करना चाहते हो तो तुझे संसार के उन सभी श्रोतों का त्याग करना पड़ेगा। जिन-जिन श्रोतों से सुख की आशा लगाये बैठे हो। उन सभी संसार की वस्तुओं को जिनसे तू सुख की कामना करता है। उन सबको तुझे छोड़ना पड़ेगा। जैसे-मैं कबीर सब कुछ छोड़कर दर किनारा हो गया हूँ। तटस्थ हो गया हूँ। उसी प्रकार से तू भी सभी मोह ममता से जब परे हो जाओगे। जब परमतत्त्व को पहचान लोगे। जो तेरे हृदय में विराजमान है उसकी प्राप्ति कर लोगे। तब सभी प्रकार के सुख तेरे पास हो जायेंगे और चले आयेंगे। जो तुम्हें सदा दुःख देते हैं वे सुख के रूप में परिवर्तित हो जायेंगे।

## साधु हिंसक प्रकरण

**साधु भया तो का भया, बोले नाहिं बिचार।**
**हते पराई आतमा, जीभ बांधि तरवार ॥२९९॥**

**शब्दार्थ**—भया-हुआ। हते-मारे।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि यदि तू मुझ कबीर को चाहते हो। मुझे अपना गुरु बनाना चाहते हो मेरी संगति करना चाहते हो तो सारे संसार की आशाओं का परित्याग कर मेरे पास आ जाओ जब तू ऐसा करके आओगे। तभी तुझे शांति के अनुभव होंगे। नीचे कहा जा रहा है कि साधु तो हुआ। परन्तु हिंसक वृत्ति का त्याग नहीं किया।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे भाई जिज्ञासुजन, साधु होना लोग बड़ा सरल समझते हैं झटपट साधु का वेश बना लेते हैं। तो भला इससे क्या हुआ। क्योंकि उनकी बोली, उनके वचन बिना बिचारे हुए ही निकलते हैं। अपनी वाणी से दूसरे की आत्मा को इस प्रकार से दुखाते हैं। इस प्रकार से उसकी हत्या कर देते हैं। जैसे कोई जीभ में तलवार बांध कर किसी की हत्या कर दे। अर्थात् इनको जीभ जो है। जीभ नहीं है। वह तलवार के समान है। जिसके द्वारा अन्य लोगों को मारते फिरते

हैं और ऊपर से साधु भी बने हैं। यदि साधु बनना ही है तो हिंसक वृत्ति का त्याग करना परम अनिवार्य है। अपशब्द, गाली-गलौज तथा दूसरे के दुखा देने वाली बातों को न निकाले। पहले विचार कर लें कि जिस प्रकार से दूसरे के वाक्य से मुझे दुःख होता है। उसी प्रकार से मेरे कुवाक्य से दूसरा भी मर्माहत होगा। इसलिए मनुष्य को वाणी पर संयम करने के लिए कहा गया है।

**हंसा के घट भीतरे, बसे सरोवर खोट।**
**चले गांव जहंवा नहीं, तहां उठावन कोट ॥३००॥**

**शब्दार्थ**—हंसा–जोवात्मा। घट–मानव शरीर, घड़ा। बसे–बसता है। सरोवर–तालाब, हृदय का विचार प्रवाह। खोट–खोटा, गलत। गांव–ग्राम निवास स्थान आकाशादि में। जहंवा–जहाँ शून्य, निराधार। उठावन–उठाने। कोट–प्रकोष्ठ भवन, महालय।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि वाणी पर सयंम करना चाहिए। क्योंकि वाणी बड़ी मूल्यवान होती है। वाणी के द्वारा ही संसार के सभी प्रकार के व्यवहार होते हैं इसलिए उस पर संयम रखना परम अनिवार्य है। नीचे कहा जा रहा है कि मानव में अन्दर के कुविचार के कारण गंदी भावनाएं उठती रहती हैं जिससे अनाप-सनाप बोलते रहता है।

**मूलार्थ**—मनुष्य के अन्दर अच्छी और बुरी भावनाओं का प्रवाह प्रवाहित होते रहता है। उसी के अनुसार उसके फल भी होते हैं। सद्गुरु कहते हैं कि अनादिकाल से इस मानव शरीर के भीतर में गंदे सरोवर का प्रवाह बसता है। अर्थात् हृदय रूपी सरोवर में खोटे विचार प्रवाहित होते रहते हैं। जो बहुत विपरीत भावना वाले हैं ये विचार, ये मन की लहरें वहाँ चली जाती हैं। जहाँ कोई ग्राम नहीं है। आकाश मंडल में विचरण करती हैं। वहाँ कोई लोक समझ कर आशा लगाये रहती हैं। उस शून्य में महालय उठाना चाहती है। अपना लोक बनाना चाहती है। हृदय के गन्दे प्रवाह से प्रवाहित यह जीवात्मा सदैव जहाँ जिस वस्तु में सुख की आशा नहीं है। उसी सांसारिक वस्तुओं में विषय भोग में सुख की आशा लगाता है और सदा-सर्वदा इसी संसार में अपना निवास बनाना चाहता है अर्थात् कभी यह विपरीत भावना को छोड़ना नहीं चाहता है। निवास तो इसका होना चाहिए था परमतत्त्व में स्वस्वरूप में जहाँ इसको सुख मिलता परन्तु सदा के लिये उधर से मुख

मोड़ लिया है। इसलिए सदैव शून्य नगर की ओर कोट बनाने के लिये चल पड़ता है। जहाँ इसको कुछ मिलने-जुलने वाला नहीं है।

**मधुर वचन है औखदी, कटुक वचन है तीर।**
**स्रवन द्वार होइ संचरे, साले सकल सरीर ॥३०१॥**

**शब्दार्थ**—साले–सालता है, बेधता है, गड़ता है। संचरे–घूमना, विचरना।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि इस हंस स्वरूप जीवात्मा के हृदय सरोवर में खोटापन बसता है। जिसके कारण जो नहीं कहने का जो नहीं करने का वही कहता है। और वही करता है। नीचे कहा जा रहा है कि वाणी का चोर नहीं बनना चाहिए। क्योंकि कहा गया है कि "वचने का दरिद्रता" के अनुसार वाणी सुधार कर बोलना चाहिए।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि मधुर वचन औषधि का काम करती है। मीठा बोलिये तो दूसरे को सुख उपजता है। उसकी आत्मा खिल जाती है और आयु में बढ़ोत्तरी होती है। अनुकूल वातावरण से मनुष्य लम्बी आयु तक जीता है। इसी प्रकार से विपरीत वातावरण हो और प्रतिदिन तीर स्वरूपी कटुवचन सुनने को मिलते हों। और वे कटुवचन श्रवण के द्वारा अन्दर जाकर विचरने लगते हैं। घुसकर घूमने लगते हैं। जिससे पूरे शरीर में शालते हैं। चूभते हैं। गड़ने लगते हैं। इसलिए जहाँ विपरीत वातावरण होता है। वहाँ सदा शोक का समुद्र उमड़ते रहता है। कलह का प्रवाह बहते रहता है। चिन्ता में मनुष्य डूबा रहता है। और थोड़े ही दिन में शोक के मारे प्राण त्याग देता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि औषधि स्वरूपी मीठी वाणी का उच्चारण करे।

## दृढ़ साधक प्रकरण

**ढ़ाढ़स देखो मरजीवा को, धंय जुरि पैठि पताल।**
**जीउ अटक माने नहीं, ले गहि निकरा लाल ॥३०२॥**

**शब्दार्थ**—ढाढ़स–साहस, हिम्मत। मरजीवा–पानी के भीतर घुसकर वस्तुओं को निकालने वाला, समुद्र में डूबकर मोती आदि निकालने वाला। मरजीवा, गोताखोर, पनडुब्बा। धँय–दौड़कर। जुरि–पहुँचा, ठंढा, जुटना जूड़ना, किसी कार्य में योग देने के लिए उपस्थित होना। पैठि–प्रवेश। पताल–समुद्र के अन्तस्तल में, हृदयस्थल में। अटक–गहि, पकड़ कर। लाल–रत्न, हीरक।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मीठे वचन को बोलना चाहिए जिससे सभी प्राणियों को सुख पहुँचे। नीचे कहा जा रहा है कि मनुष्य का साधन यदि अच्छी भाँति का हो तो वह परमतत्त्व की प्राप्ति कर सकता है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि भला इन समुद्र के गोताखोरों को देखो तो। कितने साहसी हैं। कितने धीरज वाले हैं। कितने हिम्मती हैं। जो दौड़कर समुद्र के अंतस्थल में प्रवेश कर जाते हैं। किसी मगर, जल हिंसक जन्तुओं का अटक नहीं मानते। भय नहीं मानते। अन्दर जाकर लाल को हीरक को पकड़कर (लेकर) चले ही आते हैं।

**भावार्थ**—मानव यदि साहसी है। साहस से काम लेना चाहता है तो जिस प्रकार से गोताखोर समुद्र से हीरक निकाल ले आता है। लाल निकाल ले आता है। उसी प्रकार से साहस के साथ साधक आत्म जिज्ञासु को चाहिए कि हृदयरूपी पाताल में दौड़कर शीघ्र में बैठकर पहुँच जाय और संसार की किसी विघ्न बाधा की परवाह न करे। आत्मतत्त्व रूपी मुक्तिस्वरूपी लाल को हृदय से निकाल ले अर्थात् श्रवण, मनन, निदि-ध्यासन के द्वारा जीते जी आत्मसाक्षात्कार कर ले। तब सभी दुःखों से बच जायेगा। अन्यथा भय करेगा। डरपोक बनेगा तो समुद्र में न कूदेगा न हृदय में प्रवेश करेगा न लाल पायेगा। सदा आत्मज्ञान का गरीब बना रहेगा। कभी सुख से भेंट नहीं होगी। इसलिए साहसी बनो। हिम्मती बनो। सिद्ध बनो साधक बनो। सुजान बनो। तभी कल्याण होगा।

## निःसार ग्रहण प्रकरण

**ई जग तो जहड़े गया, भया जोग न भोग।**
**तिल झारि कबिरा लिया, तिलैठी झारे लोग ॥२०३॥**

**शब्दार्थ**—ई–यह। जँहड़े–ठगी में। भया–हुआ। जोग–योग, समाधि, आत्म प्राप्ति। भोग–संसार का सुख। तिल–एक प्रकार का तेलहन के अन्तर्गत आने वाला जो बहुत छोटा पतला होता है। काला भी होता है। सफेद भी होता है। हौंन सामग्री में मिलाकर हवन भी किया जाता है। अ०–सत्य आत्मा। कबिरा–मैं कबीर, कबीर साहब। तिलैठी–तिल का डंठल, जिसमें से तिल झाड़ लिया जाता है। संसार का असार सुख।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि साहसी पुरुष ही मोक्षरूप पुरुषार्थ को प्राप्त कर सकता है। अन्य जो निरुद्यमी हैं। बिना पुरुषार्थ के हैं। उनके

हाथ कुछ लगने वाला नहीं है। नीचे कहा जा रहा है कि साहस एवं ज्ञान हीनता के कारण ही संसार के लोग ठगे जाते हैं।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि इस जगत के लोग निरर्थक में ही बिना माने मतलब के ठगा गये। अकार्य में लगे रहे। संसार के धन्धे में पड़े रहे। इसलिए इनसे न योग ही हुआ न समाधि ही लगी। न आत्मतत्त्व की प्राप्ति ही हुई और अल्पायु के कारण संसार का पूरा भोग भी नहीं भोग सके। व्यर्थ में ही जीवन बीता दिया। मैं कबीर इस संसार रूपी तिल के पौधे से तिलत्व को निकाल लिया। झाड़ लिया। परमतत्त्व को प्राप्त कर लिया। परन्तु ये अज्ञ मनुष्य तिलैठी झाड़े हुए डंठल को झाड़ रहे हैं। भला इससे क्या मिलने वाला है। तात्पर्य यह है कि सन्त पुरुष, आत्मज्ञानी तो परमतत्त्व को इसी संसार में रहकर प्राप्त कर लेते हैं और असार संसार को त्याग देते हैं और विषयी पामर लोग उसी निःसार त्यागे हुए संसार में श्वानवत निःसार हड्डी को चिचोरते व चूसते रहते हैं। जिसमें कुछ है नहीं।

**ये मरजीवा अम्रित पीवा, का धसि मरसि पतार।**
**गुरु की दया साधु की संगति, निकरि आव यहि द्वार ॥२०४॥**

**शब्दार्थ**—ये–हे ! मरजीवा–मरजीया, गोताखोर, संसार रूपी समुद्र में धँसने वाला। अम्रित–अमृत, आत्मतत्त्व, अमरवारुणी। पीवा–पियो। धंसि–प्रवेश। मरसि–मरते हो। पतार–पाताल संसार के सुख समुद्र में। यहि–इस। आव–आओ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि इस जगत में जो सार तत्त्व था। उसको तो ज्ञानी पुरुष ले लिये और असार में अज्ञ लोग लगे हुए हैं। नीचे कहा जा रहा है कि हे पामर प्राणी ! तू क्या विषय-वासना के फेर में पड़ा है। उससे रहित क्यों नहीं होता।

**मूलार्थ**—जो अपने तृप्त हो जाता है। जो अपने सुखानुभूति कर लेता है। वह चाहता है कि दूसरे भी इसी प्रकार के हो जाँय तो सन्त महात्मा जो होते हैं। अपने तो सन्तुष्ट हो जाते हैं पर दुःखी मनुष्यों को देखकर दुःख से कातर होकर उसको भी खींचना चाहते हैं। इसी प्रकार से सद्गुरु कबीर संसार के प्राणियों को सम्बोधित करके कहते हैं कि हे विषय के कीड़े मानव ! संसार के सुख रूपी पाताल से निकल आओ। जहाँ से निकलना कठिन है, परन्तु साहस करके निकल आओ। अमृत-

तत्त्व को पीओ जिससे कि तूँ सन्तुष्ट हो जा। क्योंकर विषय समुद्र में धँसकर मर रहे हो। वह तो क्षणिक है। उससे तू कभी सन्तुष्ट नहीं होगा वह ओस कण के समान है। वह कभी किसी को सन्तुष्ट नहीं कर सका है। इसलिए तू विषय रूपी रसातल के महासमुद्र से गुरु की दया और साधुओं की संगत से निकल आओ और निकलने का द्वार सद्गुरु और साधुजन ही हैं। उनका उपदेश निकलने का दरवाजा है अन्यथा विषय सुख रूपी पाताल में धंसा हुआ किसी प्रकार से बाहर नहीं आ सकता है। तात्पर्य यह है कि सन्त गुरुजन लोग जीवों के उद्धारक हैं। इनकी संगत करने से अवश्यमेव मनुष्य का जीवन सफल हो सकता है।

## प्रिय वियोग प्रकरण

**केतिहिं बुंद हलफों गये, केतिहिं गये बिगोय।**
**एक बूंद के कारने, मानुख काहेक रोय ॥३०५॥**

**शब्दार्थ**—केतिहिं–कितने। बूंद–वीर्य, पुत्र। हलफों–अमू० सच्चा, हल-हल (अमू सहित) हलफ, हिलोर, लहर, तरंग, प्रवाहित, उबान पुत्र रूप में, पिण्ड रूप में। बिगोय–नष्ट। मानुख–मनुष्य। काहेक–क्योंकर। रोय–रोता है।

**सम्बन्ध**—पहले तो कहा गया है कि संसार सागर से व संसार रूपी महालय से निकलने का रास्ता साधु सन्तों का उपदेश है नीचे कहा जा रहा है कि यह मनुष्य निरर्थक शोक-संताप करता है।

**मूलार्थ**—संसार का मनुष्य जो अज्ञ है, जो अविवेकी है। वह पुत्रादि के मरने पर किसी परिजन के चले जाने पर अर्थात् विपत्ति आने पर रोता है। कलपता है, परन्तु सद्गुरुदेव कहते हैं कि हे संसार में भूले हुए मनुष्यों ! यह आत्मा कभी नाश नहीं होता। यह सदा अमर रहने वाला है केवल शरीर में परिवर्तन होते रहता है। जिससे यह शरीर बनता है वह वीर्य व बूंद कितनी बार तरंगित होते रहता है। शरीर को मथते रहता है स्त्री संयोग से पुत्रादि उत्पन्न हो जाते हैं और कितने ही वीर्य के बूंद स्वप्न आदि में स्वप्न दोष के रूप में नष्ट हो जाते हैं। रे भला मानव ! एक बूंद के लिए क्यों रो रहा है। गर्भाधान तो एक ही बूंद से होता है और उसी एक बूंद से साढ़े तीन हाथ का पिण्ड बन जाता है। इस प्रकार से कितने बूंद उबलकर गिर जाते हैं। कितने जन्मकर मर जाते हैं

कितने ही गर्भ में सड़-गल जाते हैं। उनके लिए तो तू नहीं रो रहा है और एक बूंद के लिए रो रहा है। यह तेरी बड़ी मूर्खता है तात्पर्य यह कि संसार की कितनी सम्पत्ति नष्ट हो जाती हैं। रंडी भडुवे खा जाते हैं। केश-मुकदमे में समाप्त हो जाती है। ठग-चोर बटमार लूट खाते हैं परन्तु एक इंच जमीन के लिए एक पैसा के लिए आन-बना लेता है। उसके हाथ से निकल जाने पर शोक करता है पश्चाताप करता है। जो इसको नहीं करना चाहिए था।

**आगि जो लागि समुद्र में, टूटि-टूटि खसे झोल।**
**रोवै कबीरा डंफिया, मोर हीरा जरे अमोल ॥३०६॥**

**शब्दार्थ**—आगि–अग्नि। समुद्र–संसार, शरीर के अन्तःपुर में। खसे–गिरे। झोल–राख, ज्वाला, झाला, भस्म, कुकुढ़ी। रौवै–रुदन। कबीरा–कबीर साहब। डंफिया–डंफराना, चिल्लाना, दहाड़ मारना जोर-जोर से रोना। मोर–मेरा। हीरा–हीरक जीवात्मा। जरै–जले। अमोल–अमूल्य।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि संसार में संसारी मनुष्यों को कितनी बार वीर्यस्खलित हो गये। लेकिन एक बूंद से जो शरीर रूपी पिण्ड बनता है। उस एक पुत्रादि के मरने पर बड़ा शोक करने लगा। नीचे कहा जा रहा है कि काम, क्रोध रूपी अग्नि इस संसार में प्रज्ज्वलित है।

**मूलार्थ**—अनादि काल से संसार समुद्र में अविद्यारूपी और काम, क्रोध रूपी अग्नि प्रज्जवलित है। और उस अग्नि में संसार के समस्त प्राणी टूट-टूट कर खसे कहिये गिर कर राख हो रहे हैं। जिसके लिए सद्गुरु कबीर जोर-जोर से रोकर पुकार रहे हैं। कि मेरा जो हीरक स्वरूप जीवात्मा है। जो अमूल्य है। यह शरीर संघात से जल रहा है। इसका नाश हो रहा है। तात्पर्य यह कि मानव शरीर में भयंकर काम, क्रोधरूपी अग्नि लगी है। जबकि समुद्र में आग नहीं लगनी चाहिए क्योंकि समुद्र में अथाह पानी है। अर्बोखर्ब अग्नि के लोह पिंड समुद्र में शांत हो जाते हैं। समुद्र का कुछ बिगड़ नहीं सकता। परन्तु यहाँ उल्टी बात हो रही है। समुद्र को ही अग्नि जला रही है और समुद्र के टुकड़े-टुकड़े जल कर गिर रहे हैं। सद्गुरु कबीर देखकर पश्चाताप कर रहे हैं। अर्थ यह है कि समुद्र के समान जो आतमा है। जो व्यापक तत्त्व है।

जो महान है, जो अनन्त है। जिसकी सीमा नहीं है। जो परिपूर्ण है। जो स्वयं अपने में सन्तुष्ट है। वह प्राणियों के हृदय में सूक्ष्म रूप से विराजमान है। आश्चर्य इस बात का है कि उसके रहते हुए। सामान्य जीव जो तुच्छ हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि जो अग्नि के रूप हैं। उनको उस समुद्र में शांत हो जाना चाहिए था। परन्तु समुद्र को ही जला रहे हैं। और समुद्ररूपी आत्मा के ही दैवी गुण जल कर टुकड़े-टुकड़े खाक बनकर गिर रहे हैं। अर्थात् काम, क्रोध के चलते अहिंसा दया, क्षमा, करुणा, मैत्री, जो जल रूप हैं इनका प्रवेश समुद्र में नहीं हो पा रहा है। जो आत्मा के संगी हैं। जो समुद्र से जीवित होते हैं। वे सब असमर्थ हो रहे हैं। कामना ही सब पर आधिपत्य किये हुए है। इसलिए सद्गुरु कबीर जोर-जोर से चिल्ला रहे हैं। कह रहे हैं कि हे मनुष्यों। इस कामना रूपी अग्नि से दूर भागो। जल जाओगे। वह तुम्हारे अन्तःपुर में लग गयी है। जो तुम हमारे हंस हो, हीरक के समान अमूल्य हो। तुम जल रहे हो। तेरे दुख को देखकर मुझे सहन नहीं हो रहा है। इसलिए जितना शीघ्र हो सके इस कामना रूपी पिचासिनी अग्नि को निकाल फेंको। अपने को बचाओ। अन्यथा मानव शरीर पुनः मिलने वाला नहीं है। यदि इससे बिछुड़ जायेगा तो अनन्त दुःख के सागर में डूब जावोगे।

## षट्दर्शन प्रमाणतत्त्व प्रकरण

**छौ दरसन में जो परवाना, तासु नाम बनवारी।**
**कहैं कबीर सब खलक सयाना, इनमें हमहिं अनारी ॥३०७॥**

**शब्दार्थ**—छौ दरसन–योगी, जंगम, सेवरा, सन्यासी, दरवेश, ब्राह्मण। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा, योग दर्शन। परवाना–प्रामाणिक, प्रमाण स्वरूप। तासु–उनका, उसका नाम (संज्ञा) बनवारी–वन + अरि–जो ईश्वर का एक नाम है, इस नाम को श्रीकृष्ण भी कहते हैं। परमतत्त्व भी कहते हैं, परब्रह्म भी कहते हैं। खलक–संसार के लोग। सयाना–सज्ञान, बुद्धिमान। हमहिं–हमहीं। अनारी–अनार्य, अज्ञानी, असभ्य।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जिस समुद्र रूपी आत्मा में अग्नि लग गयी है। जो नहीं लगना चाहिए था। क्योंकि यह विपरीत बात है। नीचे कहा जा रहा है कि उस अग्नि से बचा जा सकता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सत्य संकल्प सन्तजन ! मैं कोई नयी बात कल्पना करके नहीं कहता हूँ। छौ दर्शनों में जिस प्रामाणिक तत्त्व का उल्लेख किया गया है। जिसकी व्याख्या उपर्युक्त दर्शन करते हैं। उस परमतत्त्व का नाम बनवारी है। वही कामाग्नि रूपी वन को नाश करने वाला है। यदि उसका सुमिरन-भजन किया जाय। उसका साक्षात्कार किया जाय। उसमें तादात्म्य स्थापित किया जाय तो उपर्युक्त जो अग्नि लगी है। उससे बचा जा सकता है। परन्तु खेद का विषय है कि इन सब छौ दर्शनों का सत्यपुरुषों का उपदेश कोई पालन नहीं कर पा रहा है। कोई मानने के लिए प्रस्तुत नहीं है। मैं कबीर कहता हूँ कि ये सब संसार के लोग अपने को स्वयं बुद्धिमान मानते हैं। ये संसारी लोग उल्टे ही हम सन्त सद्गुरुओं को अज्ञानी कहते हैं। हमारी बात पर विश्वास नहीं करते हैं। इन बहु संख्यक अज्ञानियों में हमहीं सन्त महात्मा लोग अज्ञानी हैं, अनार्य हैं, असभ्य हैं। क्योंकि इन सांसारियों के सामने कहते-कहते हम हार गये। हमने कहा कामना का परित्याग करो सकामकर्म न करो। यह कामना और सकामकर्म तुझे अग्नि बनकर भस्मकर देंगे। तुम निष्काम हो। तीनों गुणों से परे हो। काम्यकर्म का त्याग करो परन्तु सुनने के लिए संसारी लोग राजी नहीं हैं।

## सत्यपालक फल प्रकरण

**सांचे स्राप न लागिहैं, सांचे काल न खाय।**
**सांचहिं सांचा जो चलै, ताको काह नसाय ॥३०८॥**

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि परमतत्त्व विषयक उपदेश कोई मानने के लिए प्रस्तुत नहीं है। सच्ची बात कहने पर वंचक गुरु लोग शाप देते हैं। कहते हैं मैं ब्राह्मण हूँ। मेरा अपमान न करो। नहीं तो तेरा नाश हो जायेगा। इस पर नीचे कहा जा रहा है कि जो पूर्णरूपेण मन, वचन कर्म से सत्य का परिपालन करता है। उसको कुछ शाप से होने वाला नहीं है।

**मूलार्थ**—बहुत से लोग अनेक प्रकार की सिद्धियों का प्राप्तकर जन साधारण को भयभीत करते रहते हैं और सिद्धि का भय दिखला कर अपना स्वार्थ सामान्य लोगों से गांठते रहते हैं। इस पर सद्गुरु कहते हैं कि हे संसार के मनुष्यों। तू क्यों किसी सिद्ध से डर रहे हो। यदि तू झूठा नहीं है। सत्यवक्ता है, सत्यरूपी परमेश्वर का उपासक है तो तुम

सत्य उपासक को न किसी का शाप लगेगा। न मृत्यु ही कुछ बिगाड़ सकेगी परन्तु प्रतिज्ञा यह है कि पूर्णरूप से जो सच्चा होगा और सच्ची चाल चलेगा। सत्य का परिपालन करेगा और सत्यरूप परमेश्वर की उपासना करेगा तो उसका कभी कुछ नाश होने वाला नहीं है। तुम डरो मत।

## ईश्वर उपासना प्रकरण

**पूरा साहब सेइये, सब विधि पूरा होय।**
**वोछे (से) नेह लगाय के, मूलहु आवै खोय ॥३०९॥**

**शब्दार्थ**—पूरा–पूर्ण। साहब–प्रभु, स्वामी, परब्रह्म, सद्‌गुरु। सब विधि सब प्रकार से। ओछे–तुच्छ, हलके, अल्प शक्ति वाले। नेह–स्नेह, प्रेम। मूलहु–आत्मतत्त्व, मूलतत्त्व खोय–नष्ट

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥ (वेद मंत्र)

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो सत्य का उपासक है। जो सत्य आत्मा की प्राप्ति कर लिया है। उसका कुछ बिगड़ने वाला नहीं है परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि उस चित्तिस्वरूप परम भूमा की उपासना से ही लाभ हो सकता है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि हे सत्य प्रतिज्ञ सन्तजन ! संसार में बहुत प्रकार की उपासनायें हैं। बहुत से इष्टों की सेवायें हैं। इस समय संसार में गुरुडमता की भरमार हो गयी है। ईश्वर की उपासना छोड़कर अब गुरु बनकर लोग अपनी ही उपासना, अपनी ही पूजा कराने पर तुले हुए हैं। जो अनिवार्य नहीं है अर्थात् सर्वशक्तिमान् की उपासना छोड़कर अनेक देववाद में लोग लगे हुए हैं। अनेक शक्तियों की उपासना करते हैं इनकी उपासना से मानव काल से नहीं बच सकेगा क्योंकि यह उपास्य स्वयं काल के द्वारा मारा जायेगा। वह अपने उपासकों की कैसे रक्षा कर सकता है इसलिए मैं कहता हूँ कि पूरा अर्थात् सभी प्रकार से जो पूर्ण हो। जिसमें कोई कमी न हो ऐसे साहब की, ऐसे प्रभु की उपासना करो। तभी मृत्यु से बच सकते हो, यदि तू छोटे-छोटे देवियों की देवताओं की, भूत-प्रेतों की, अज्ञानी गुरुओं की सेवा करोगे तो मूलतत्त्व जो तेरा है वह प्राप्ति के बजाय अप्राप्त हो जायेगा, अर्थात् ओछे लोगों की सेवा से तुच्छ लोगों की उपासना से कुछ होने जाने वाला नहीं है। क्योंकि उनमें अनेक कमियाँ

हैं इसलिए जो सभी प्रकार से समर्थ है। सर्वव्यापी है। उस प्रभु की उपासना करो।

**जाहु बैद घर आपने, इहां बात न पूछे कोय।**
**जिन यह भार लदाइयां, निरबाहेगा सोय ॥३१०॥**

**शब्दार्थ**—जाहु–जाओ। बैद–वैद्य, चिकित्सक, उपदेशक, वंचक जन।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि ओछे की सेवा नहीं करनी चाहिए। नीचे कहा जा रहा है कि ओछे का परित्याग करो अन्यथा हानि होगी।

**मूलार्थ**—संसार के मनुष्य का जो भ्रम है वही रोग है, जो आशा, तृष्णा है। वही व्याधि है जो शोक चिन्ता है वही दुःखदायी है। उसका निवारक जो है वही वैद्य है वही सद्गुरु है। वही शुभ चिन्तक है परन्तु केवल वैद्यक की पुस्तकें बांध लें। वैद्य का वेश बना लें किन्तु निदान का ज्ञान न हो तो उत्तम जिज्ञासु कहता है कि हे जन्म मृत्यु रोग के नाशक वैद्य जी ! हे झाड़ फूंक करने वाले बाबा जी आप अपने घर चले जाओ। यहाँ आपको कोई पूछने वाला नहीं है। आप से कोई बात नहीं करेगा क्योंकि आप में आत्मज्ञान का निदान नहीं है। जो मुझमें रोग है, जो मुझमें वासना है, आप उसको हटा नहीं सकते क्योंकि आप उससे स्वयं ग्रसित हैं और शारीरिक दुःख-सुख प्रारब्धानुसार होते रहते हैं। इसलिए आपको यहाँ जरूरत नहीं है जिन प्रभु ने मेरे कर्मों का फल मेरे ऊपर लादा है अर्थात् जिन मेरे कर्मों का परिणाम उपस्थित हुआ है। उसका निवारण और निर्वाह वही करेगा जो साक्षी स्वरूप है जो कर्मानुसार जीवों को दुःख-सुख देता है। मैं उसी की उपासना में सेवा-पूजा में लगा हूँ। आप से कोई जरूरत नहीं है तात्पर्य यह है कि प्राकृतिक देवी-देवताओं की उपासना छोड़कर उस एक पर ब्रह्म पर ही मनुष्यों को अवलम्बित होना चाहिए।

## पर उपदेश प्रकरण

**औरन के सिखलावते, मोहड़े परिगौ रेत।**
**रासि बिरानी राखते, खाइनि घर का खेत ॥३११॥**

**शब्दार्थ**—औरन–दूसरे को। सिखलावते–उपदेश करते। मोहड़े–मुँह, मुख। परिगौ–पड़ गया। रेत–गड्ठा छाला, रगड़। सं०–(रेतजा, बालु)

अ०–भ्रम। रासि–अन्न की ढ़ेरी, खजाना। राखते–रखवाते। खाइनि–खाया।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि हे वैद्यजी ! हे वंचक गुरु हे लम्बी-चौड़ी बकने वाले ! आप अपने घर जाइये। इससे इस समाज में इस भक्त मण्डली में आपकी आवश्यकता नहीं है। मेरा निर्वाह वही करेगा मेरा पालन वही करेगा जो संसार में मुझे भेजा है। नीचे कहा जा रहा है कि उपर्युक्त वंचक लोग दूसरे को बहुत शिक्षा देते हैं। अपने उससे स्वयं मुक्त रहते हैं।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सत्यनिश्चय वाले सन्तजन ! अज्ञानी मनुष्य जिसको आत्मा का ज्ञान नहीं है। जो वेद-शास्त्र, पुराण, कुरान को रट लिया है पढ़ लिया है। वह पण्डित और मौलाना बनकर दूसरों को बहुत शिक्षा देता है। बहुत ज्ञान देता है इतना बोलता है। इतना बकवाश करता है कि बोलते-बोलते उसके मुख में छाला पड़ गया। जीभ में घाव हो गया अर्थात् दूसरों को बढ़िया शिक्षा देता है अपने उस पर कभी नहीं चलता। इसलिए उसके मुख में विषय वासनारूपी स्वार्थ रूपी रेत कहिये बालू पड़ जाता है दूसरे को अमृत पिलाता है। इसी प्रकार से वह वेद-कुरान वक्ता है दूसरे की रखवाली करता है। जिस प्रकार से कोई अज्ञानी मनुष्य दूसरे के अन्न की ढ़ेरी, रुपये-पैसे के खजाने की रखवाली करता हो और उसके घर का जो खेत ऊपजा हुआ है जंगली पशु आकर चर जाते हों, अर्थात् दूसरे से तो कहता है कि तू काम, क्रोध, लोभ, मोह से बचो। बुराइयों से बचो लेकिन उसका स्वयं जो अन्तःपुर है जिसमें सद्गुण रहते हैं। अन्तःकरण रूपी खेत में सद्गुण रूपी कृषि को स्वयं काम, क्रोध रूपी मृग चर जाते हैं। इसलिए पहले अपनी रखवाली करनी चाहिए। अपना सुधार करना चाहिए तब दूसरे को शिक्षा देनी चाहिए।

**मैं चितवत हौं तोहि को, तू चितवत है वोहि।**
**कहैं कबीर कैसे बनिहैं, मोहि तोहि औ वाहि।।३१२।।**

**शब्दार्थ**—मैं–सन्त सद्गुरु। तोहि–तुझ संसारी जीव को। चितवत–देखत। वोहि–उसको, संसार को, मोह-ममता को। कैसे–किस प्रकार से। बनिहें–बनेगा। मोहि–सद्गुरु रूप मुझ कबीर से।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि दूसरों को घी का लड्डू खिलाते-खिलाते खिला डाला। और अपने अन्त में मरने लगा तो गंगा जी की

बालू फाँकने लगा। तात्पर्य यह है कि दूसरे को कहता रहा। अपने आचरण में नहीं उतारा। नीचे कहा जा रहा है कि मैं कबीर इसको सोचा कि यह सुधर जाय परन्तु वेद-पुराण की बातें बकता रहा और उन्हीं का नाम लेकर मुझको भी समझाते रहा।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि मैं कबीर इन वेद वक्ताओं को और कुरान, पुराण के पंडितों को देखता रहा। आस लगाये बैठा था कि ये आवें। इनको मैं अपनी अनुभूति व सत्यज्ञान सिखला दूँ, बता दूँ परन्तु ये संसारी जन वेद-शास्त्र की बात बघारते रहे और संसार की मोह, ममता में विचूर्ण रहे। तो कहो मैं कबीर कहता हूँ कि मेरे से, इन वेद वक्ताओं से, इन कुरान वक्ताओं से, इन वेद-शास्त्रज्ञों से ओर इन मोह-ममता वालों से कैसे मेल हो सकता है? मुझमें और तुझमें और उस मोह, माया से ग्रसित में, कैसे मेल खा सकता है? तात्पर्य यह है कि अज्ञानी मनुष्य सत्पुरुषों की उपेक्षा कर देता है। सत्पुरुष उसकी भलाई चाहते हैं परन्तु वह अपने ज्ञान को ही महान मानता है। जो वेद शास्त्र में पढ़ लिया है। उसी पर उतारू रहता है। इस पर कबोर साहत्र कहते हैं कि मेरे अनुभव में और तेरी कथनी में वही कहिये उन वेद-शास्त्र की बात में एकता नहीं हो सकती है। क्योंकि—'मैं कहता आँखिन की देखी, तू कहता कागद की लेखी।'

**तकत तकावत तकि रहा, सके न बेझा मार।**
**सबं तीर खाली परा, चला कमानहिं डार ॥३१३॥**

**शब्दार्थ**—तकत–देखत, स्वयं देखते हुए। तकावत–दीखावत, दूसरों को दिखाते हुए। तकि रहा–ताकते रहा, देखते रहा। सके–शक्य, कर। बेझा–शिकार, वेध, निशाना, लक्ष्य। तीर–बाण। कमानहिं–धनुष, शरीर। डार–फेंक।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मनुष्य को जो पहले अभ्यास हो जाता है, जिस ज्ञान को पहले पढ़ लेता है, देख लेता है उसी में आस्था रखने लगता है। नीचे कहा जा रहा है कि यह अज्ञानी जीव उक्त प्रकार की बात पर ही अड़ा रहता है इसलिए असफल रहता है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि यह संसारी मनुष्य जो वेद-कुरान को रट लिया है। अपने भी उसी को देखता है और दूसरे को भी उसी ज्ञान को दिखाते रहता है और पुनः-पुनः उसी को देखते रहता है। इसी प्रकार से देखते-देखते सारा समय बीत जाता है परन्तु काल रूपी शिकार के

ऊपर ज्ञान रूपी तीर नहीं चला सका अन्ततः वृद्धावस्था आ गयी। तब बड़ी उपाय सोचने लगा कि किस प्रकार से अब लक्ष्य को बेधा जाय, मृत्यु को जीता जाय परन्तु समय बीतने पर मृत्यु लेकर चली गयी। सभी ज्ञान रूपी तीर रिक्त ही पड़े रहे। जो शास्त्र रटा था, जो कुरान रटा था, जो धर्म की पोथियों की दुहाई देता था वे एक भी काम नहीं आये। अन्त में शरीर रूपी धनुष को छोड़कर, फेंककर यहाँ से चल बसा। तात्पर्य यह है कि दूसरों को सिखाते, सिखावते अपने लक्ष्य की पूर्ति न हो सकी। जिन शास्त्रों के ज्ञान से अपना कल्याण चाहता था वे सब निरर्थक हो गये। पश्चात् मृत्यु का शिकार बन गया। कारण कि शास्त्र बौद्धिक होते हैं। बुद्धि के द्वारा रचे गये हैं। वे अनुभूति ज्ञान वाले नहीं हैं और सद्गुरु का ज्ञान अनुभूत होता है। स्वयं देखा हुआ होता है। इसलिए दोनों में बड़ा अन्तर है। सद्गुरु चाहता है कि मेरा ज्ञान लेकर पंडित पार हो जाय, मौलवी मुक्त हो जाय परन्तु ये दोनों सदा सद्गुरु की उपेक्षा करते रहते हैं।

**जस कथनी तस करनी, जस चुम्बक तस ग्यान।**
**कहैं कबीर चुम्बक बिना, क्यूं जीते संग्राम ॥२१४॥**

**शब्दार्थ**—जस–जिस प्रकार की। कथनी–कथन, निरूपण। तस–उसी प्रकार के। करनी–कर्त्तव्य, आचरण। चुम्बक–एक प्रकार का लोह तत्त्व जो दूसरे लोहे को पकड़ लेता है। क्यूं–कैसे। संग्राम–युद्ध।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि केवल रट्टू ज्ञान से आत्म सन्तुष्टि नहीं होती है। उसके लिए आचरण करना चाहिए। नीचे कहा जा रहा है कि कथन और आचरण में अन्तर नहीं होना चाहिए।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जिस प्रकार से शास्त्रों के ज्ञान को कहा जाता है। जिस प्रकार से शास्त्र निर्देश देते हैं उसी प्रकार का कर्त्तव्य भी करना चाहिए। जैसे चुम्बक लोहे को पकड़ लेता है। उसी प्रकार ज्ञान वही सही है जो आचरण वाला, कर्त्तव्य वाला होता है वही दूसरे के अन्दर व जिज्ञासु के अन्तःकरण में प्रबोध करा सकता है। कबीर साहब कहते हैं कि जिस प्रकार से बिना चुम्बक का ढाल हो तो संग्राम में लड़ने वाला योद्धा कैसे विजय प्राप्त कर सकता है? अर्थात् जिसके ज्ञान में सत्यता नहीं है, चुम्बक के सदृश पकड़ नहीं है। वह अपना और जिज्ञासु का किस प्रकार से उद्धार कर सकता है? काम, क्रोध रूपी कंटक को कैसे खींच सकता है? जिस प्रकार से मध्यकाल में भाले और तलवारों से

लड़ाईयाँ होतो थी। उसमें अपनी रक्षा के लिए तलवार से बचने के लिए योद्धा लोग व सैनिक लोग एक ढाल रखते थे। उस पर चुम्बक रहता था जिससे कि वैरी का अस्त्र ढाल को न काट सके। दूसरी बात यह थी कि किसी योद्धा के अन्दर लड़ाई में तीर के नोंक टूट जाते थे, भाले शरीर में धंसकर टूट जाते थे तो बड़े-बड़े चुम्बकों के गोले से तीर व भालों को निकाल कर बाहर किया जाता था। तत्पश्चात दवाई लगाई जाती थी तब घाव अच्छे होते थे। इसी प्रकार से जिस सन्त सद्गुरु का ज्ञान सच्चा है, स्वयं अनुभूत है। वही अज्ञान रूपी कंटक को खींच सकता है। उसी के द्वारा मनुष्य की रक्षा हो सकती है। अन्य थोथे ज्ञान से कोई लाभ नहीं हो सकता है। जिस प्रकार से बिना चुम्बक के अस्त्रों से संग्राम जीता नहीं जा सकता।

**अपनी कहै मेरी सुनै, सुनि मिलि एकै होय।**
**हमरे देखत जग जात है, ऐसा मिला ना कोय ॥३१५॥**

**शब्दार्थ**—मेरी–मुझ सद्गुरु की। ऐसा–इस प्रकार का। कोय–कोई।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि बिना अनुभूति ज्ञान के मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता है। चाहे वह अपने लिए हो चाहे वह दूसरे के लिये हो। नीचे कहा जा रहा है कि श्रोता-वक्ता समझदार होना चाहिए।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि जिज्ञासु ऐसा होना चाहिए। ज्ञान का अधिकारी ऐसा होना चाहिए कि अपनी शंकाओं को कहे। मेरे सद्ज्ञान को सुने और सुनकर उस सद्ज्ञान में तादात्म्य हो जाय। मेरे ज्ञान में उसकी आत्मा में एकता हो जाय। तभी उसका कल्याण हो सकता है परन्तु ऐसे जिज्ञासु संसार में मिलते ही नहीं यह संसार हम सद्गुरुओं के देखते-देखते चला जा रहा है। लोग मर रहे हैं, नष्ट हो रहे हैं। परन्तु उपर्युक्त प्रकार के लोग नहीं मिले जो गुरु के ज्ञान में समाहित होकर विचरण करे। केवल विवादी मिले। सत्य के सुनने वालों का अभाव रहा। इसलिए जीवों का कल्याण नहीं हुआ।

**देस बिदेसे हौं फिरा, गाँव-गाँव की खोरि।**
**ऐसा जियरा ना मिला, लेवे फटक पछोरि ॥३१६॥**

**शब्दार्थ**—खोरि–गली, वह खोर जो गाँव में जाने के लिए बाहर से होती है, दोष। जियरा–जीव। फटक पछोरि–जांच, पड़ताल, परीक्षण।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि ऐसा कोई व्यक्ति न मिला जो गुरु के उपदेशों को सुनकर आत्म समाहित हो जाय। नीचे कहा जा रहा है कि जिज्ञासुओं का मैं बहुत अन्वेषण किया परन्तु कोई भी आत्महितैक्षु नहीं मिला।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे परम पावन विचार के सन्त जन! मैं देश-विदेश में बहुत फिरा, बहुत घूमा, यहाँ तक कि संसार के गाँव की गलियों में घूमा परन्तु एक भी जीव ऐसा न मिला जिसको आत्मज्ञान देने के लिये जांच पड़ताल कर लूँ। अर्थात् मेरी परीक्षा में सच्चा निकल जाय अपना अमूल्य ज्ञान रूपी अमृत उसको पिला दूँ। 'फटक पछोरि' में श्लेष है। जिस प्रकार सूप के द्वारा अन्न को और मिट्टी भूषा को अलग किया जाता है। अन्न को ग्रहण कर लिया जाता है। मिट्टी और भूषा को फेंक दिया जाता है। उसी प्रकार से मैंने मनुष्यों का बहुत सर्वेक्षण किया पर सबके सब मिट्टी ही मिले। एक भी विवेकी नहीं मिला जिसको अपना ज्ञान, अपनी अनुभूति जो प्राप्त है उसको दे देता क्योंकि देश-विदेशों में जाने का यही आशय था।

**मैं चितवत हौं तोहिं को, तू चितवत किछु और।**
**लानत ऐसे चित्तु पर, एक चित्तु दुइ ठौर ॥२१७॥**

**शब्दार्थ**—मैं-कबीर। तोहिं-जिज्ञासु को। लानत-धिक्कार, निन्दनीय। चित्तु-चित्त। दुइ-दो, धर्म और अधर्म।

**सम्बन्ध**—प्रथम कहा गया है कि भारत से लेकर, कावुल, कन्धार, मक्का, मदीना, नेपाल, भूटान आदि देशों में गया, खोजा कि अच्छा व्यक्ति मिल जाय जो मेरा ज्ञान प्राप्त कर अपना और लोकहित करे परन्तु ऐसा कोई मिला नहीं। नीचे कहा जा रहा है कि मैं जिज्ञासु व्यक्ति का खोज कर रहा हूँ पर जिसको जिज्ञासु समझता हूँ वह वंचक निकलता है, मूर्ख दीखता है।

**मूलार्थ**—कल्याण करने वाले सन्त महात्माजन दुःखी मानव को देखकर द्रवित हो जाते हैं और उसकी ओर इशारा करते हैं कि हे भाई सद्मार्ग पर आओ, सत्य का सौदा करो परन्तु सद्गुरु कहते हैं कि मैं तो उसको देखता रहा किन्तु वह मुझे न देखकर, मेरी ओर न निहार कर कुछ और ही देख रहा है। मैं तो चाहता था कि तेरा उपकार हो पर तेरी इन्द्रियाँ बहिर्मुखी हो गयी हैं। वे संसार की ओर लगी हैं ऐसे मन को, ऐसे चित्त को धिक्कार है, ऐसे लोगों पर धिक्कार है जो मन को

एक जगह नहीं रखते हैं। एक तत्त्व में नहीं लगाते हैं। चित्त एक है परन्तु दो स्थानों में लगाये हुए हैं। चाहते हैं माया भी मिल जाय और राम भी मिल जाँय तो भला कैसे सम्भव है? जब तू माया को चाहेगा, जब तू संसार के सुख को चाहेगा, जब तू संसार की प्राप्ति चाहेगा। तो तुझे राम कभी नहीं मिलेंगे राम तो तभी मिलेंगे जब तू माया से स्नेह कम करोगे।

## सार शब्द प्रकरण

**चुम्बक लोहे प्रीति है, लोहे लेत उठाय।**
**ऐसा सब्द कबीर का, काल से लेत छुड़ाय ॥३१८॥**

**शब्दार्थ**—चुम्बक–एक प्रकार का पत्थर व धातु, वह धातु जिसमें लोहा को अपनी ओर आकर्षित करने की शक्ति होती है। चुम्बक दो प्रकार के होते हैं, एक प्राकृतिक काले रंग का जो लोहा के सदृश्य होता है। दूसरा कृत्रिम। आ० गुरुपद, सार शब्द। लोहे–जिज्ञासु, लोहा, अयस्क। सब्द–तत्त्व उपदेश, प्रणव।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मैं तो तेरी ओर देखता रहा। तेरा हित चाहता था, तुझे परमतत्त्व की ओर लगाना चाहता था। जन्म-मरण के दुःखों से रहित करना चाहता था पर तू दुविधा में पड़ गया परन्तु मेरी ओर देखा तक नहीं नीचे कहा जा रहा है कि मेरा ज्ञान चुम्बक के समान है लेकिन जो उसका जिज्ञासु होगा उसी को पकड़ सकता है।

**मूलार्थ**—लोहा और चुम्बक में बड़ी प्रीति होती है। छोटा सा चुम्बक बड़े लोहे को भी उठा लेता है। तात्पर्य यह है कि यत्किंचित जिज्ञासुओं को सद्गुरु का ज्ञान अपनी ओर खींच लेता है। क्योंकि सद्गुरु कहते हैं कि मुझ कबीर का सार शब्द, सत्य उपदेश चुम्बक के समान है। जो उसका ग्रहण करेगा, जो उस पर चलेगा वह मेरा सार शब्द मृत्यु के मुख से उसको छुड़ा लेगा। अर्थात् बार-बार उसको जन्मना-मरना नहीं पड़ेगा। वह सदा सर्वदा के लिए अमर हो जायेगा।

**भूला तो भूला, बहुरि के चेतना।**
**विस्मै की छूरी संसै को रेतना ॥३१९॥**

**शब्दार्थ**—भूला–विस्मृत, बिसरा। बहुरि–घूमकर, लौटकर, पुनः। चेतना–सावधान, सतर्क। विस्मै–विस्मय, आश्चर्य, अचम्भा। छूरी–

जिससे साग-सब्जी सुधारा जाता है वह छूरी, छूर्प। संसै-संशय, अज्ञान। रेतना-काटना।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मुझ कबीर का शब्द चुम्बक के समान है। यदि उसको कोई ग्रहण करता है तो आत्मज्ञानी हो जायेगा और तीनों तापों से मुक्त हो जायेगा। नीचे कहा जा रहा है कि यदि तू किसी कारण से अज्ञान वश अब तक सन्त महात्माओं के शब्दों को भूला रहा, उस पर ध्यान नहीं दिया तो अब से भी सार शब्द पर विचार करो।

**मूलार्थ**—'कहहिं कबीर जान दो वही। जब से चेते तब से सही॥'

कहने का तात्पर्य यह है कि यह जीव अनादिकाल से सत्य शब्द से वंचित रहा है। माया के चक्र में पड़कर परमतत्त्व को भूल गया है, इस पर सद्‌गुरुदेव कहते हैं कि हे भाई! संसार के लोग मानव तन धारी जीव अरे जब तक भूला रहा। तब तक भूला रहा। भूल में कोई दोष नहीं होता है। भूल एक स्वाभाविक गुण है परन्तु तू अब से भी पुनः चेत करो। संसार से लौटकर उलटकर अपनी ओर देखो कि मैं कहाँ फँसा हूँ? जब तक तू संसार से घूमकर व बहुरि कर इधर मेरी ओर नहीं देखेगा। तब तक तेरा कल्याण नहीं होगा। जो आश्चर्य मय मेरा ज्ञान है, मेरा शब्द है उसी को ग्रहण कर उसी की छूरी बना और तेरा जो अज्ञान है, तेरी जो शंका है उस मेरे अद्‌भुत ज्ञान से छेदन कर। तभी तेरा कल्याण हो सकता है, तभी तू सत्य तक पहुँच सकते हो।

**दोहरा कथि कहैं कबीर, प्रतिदिन समय जो देखि।**
**मुये गये नहिं बाहुरे, बहुरि न आये फेरि॥३२०॥**

**शब्दार्थ**—दोहरा-संग० पू० हि० दो + हरा (प्रत्य०) दोहा। नामक छन्द, श्लोक, पद।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि किसो कारण वश तू भूला रहा। तो अब भूलो मत उस भूल का परित्याग कर मेरे पास आकर ज्ञान सुनो और चेत जाओ। नीचे कहते हैं कि तेरे हित के लिए ही उपदेश कहता हूँ जिससे तुझ मानव का कल्याण हो।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि मैं कबीर छोटे-छोटे सरल पदों में, दोहा छन्दों में अपनी बातों को कहा है और कहता हूँ ताकि लोगों को समझने में कठिनाई न पड़े। क्योंकि प्रतिदिन समय को देखकर कहा

हूँ कि सारा संसार अज्ञान दशा में मर रहा है, बिलख रहा है, रो रहा है, कराह रहा है, छटपटा रहा है और मर कर जा रहा है। पशु आदि योनियों में जा रहा है। जहाँ से बहुर ना, जहाँ से लौटना नहीं हो रहा है और न कोई बहुर कर, घूमकर उधर से आ ही रहा है। यदि मेरे ज्ञान को ग्रहण कर लेगा जो मैं समयानुसार कह रहा हूँ तो इस संसार में वह पुनः नहीं आयेगा, सदा सर्वदा के लिए मुक्त हो जायेगा।

**गुरु विचारा का करे। सिखहिं माहैं चूक।**
**भावे त्यूं परबोधिये, बांस बजाई फूके ॥३२१॥**

**शब्दार्थ**—गुरु–सद्गुरु। विचारा–विवश, असमर्थ। का–क्या। माहैं–में। चूक–कमी। भावे–मन चाहे। त्यूं–तैसे। परबोधिये–प्रबोधिये, उपदेश दें। बांस–बांसुरी, फोंफी। बजाई–बजावे। फूंक–फूंकना।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मैं कबीर देखता हूँ कि प्रतिदिन लोग संसार से उठकर चले जा रहे हैं परन्तु उधर से कोई आ नहीं रहा है और न उधर से आने की कोई आशा ही है कि वह फिर आता होगा। क्योंकि ज्ञानाभाव में उसकी मृत्यु हुई है इसलिए कहाँ जायेगा, किस योनि में पड़ेगा कुछ कहना कठिन है, नीचे कहा जा रहा है कि हितैषी व्यक्ति क्या कर सकता है जब उसकी बात ही कोई न सुने ?

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि इन मरने वालों को बहुत समझाया बुझाया गया परन्तु एक भी सत्य वाक्य को श्रवण मनन नहीं किया। गुरुओं की बात को सुनकर अनसुनी कर दिया। इस पर सद्गुरु विचारा क्या कर सकता है ? सद्गुरु का तो कोई दोष नहीं है। इसमें शिष्य का ही दोष है। अर्थात् शिष्य के अन्दर ही भूल चूक है, कमी है। गुरु तो अनेक प्रकार से, अनेक भाव से जैसे चाहिए था वैसे प्रबोधा, उपदेश दिया परन्तु गुरु का उपदेश उसी प्रकार से बेअसर रहा जिस प्रकार से बांस की फोंफी को फूकिये तो वायु रुकती नहीं। फूंकने पर इस पार से उस पार निकल जाती है इसी प्रकार से जिसके पास धारणा शक्ति नहीं है उसको कितना भी प्रबोधा जाय, कितना भी उपदेश दिया जाय, एक भी उसके अन्दर रुकता नहीं है। सब बाहर हो जाते हैं।

## मानव जन्म सफल प्रकरण

**दादा भाई बाप के लेखो, चरनन होइहैं वंदा।**
**अबकी पुरिया जो निरुवारै, सो जन सदा अनंदा ॥३२२॥**

**शब्दार्थ**—दादा-पितामह। भाई-स्वभ्राता। बाप-पिता। लेखो-समान, उसके सदृश। चरनन-चरणों का। होइ हैं-होंगे, होगे। बंदा-सेवक, दास। अबकी-इस बार। पुरिया-हि० (पूरना) पुड़िया, वह नड़ी जिस पर जुलाहे बाने को बुनने के लिए पहले फैलाते हैं, तानी सं० पु० घर, भण्डार, अ०-शरीर नरतन। निरुवारै-स्त्री० सं० संग (निवारण) सुलझना, उलझन मिटाना, निबटाना, निर्णय करना, गांठ आदि छुड़ाना। सो-वह। अनंदा-आनन्द।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि यदि वह उत्तम अधिकारी नहीं है जिसमें धारणा शक्ति नहीं है। उसको कितना भी कहा जाय परन्तु उसको कोई लाभ नहीं होता है। नीचे कहा जा रहा है कि यदि वह व्यक्ति गुरु का उपदेश ग्रहण कर ले, अपने जीवन में उतार ले तो उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की जायेगी।

**मूलार्थ**—कोई बड़ा व्यक्ति, बड़ा मनुष्य जो विकास की चरमावस्था तक पहुँच गया हो, जो एक भाव में सबको देखता हो, जो संसार का हितैषी हो, जो मानव के हित के लिए सत्य अन्वेषक हो, वह पुरुष चाहता हो कि संसार के लोगों का किसी प्रकार से उपकार हो। कभी-कभी बड़े लोग परोपकार में अपना बलिदान भी कर देते हैं। पुराणों में दधीचि, शिवि, हरिश्चन्द्र की कथा विदित है। उदाहरण स्वरूप अभी ग्रामों में बालक के रूठने पर मातायें मनाती हैं कि भैया हमार बाबू हैं हमार दादा है। आवो खा लो। आवो पी लो इत्यादि। इसी प्रकार से सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि जो व्यक्ति, जो जिज्ञासु इस मानव तन को प्राप्त कर लिया है। उसकी जो अज्ञान की ग्रथियाँ हैं और कुसंस्कार रूपी सूत की पुड़िया में लिपटे हुए हैं। उन कुसंस्कारों का जो निरुवार करता है। उनको जो सुलझा लेता है। अर्थात् जो नरतन की अज्ञान मूलक बातें हैं। उनको नष्ट कर देता है। गुरु कृपा से आत्म प्राप्ति करके जन्म-मरण से रहित हो जाता है। वह भक्त सदा आनन्दमय लोक में विचरण करता है। क्योंकि जो इन्द्रियों की अरुझाहट थीं। जो इन्द्रियाँ अपने विषय में चतुर्दिक फंसी हुई थी। उन सबों को विषयों से छुड़ाकर आत्मोन्मुख कर लिया और हृदय ग्रंथि को निरुवार कर लिया। ऐसे पुरुष की भूरि-भूरि प्रशंसा है। मैं उसको बड़े लोगों के समान मान्यता देता हूँ। जैसे हमारे परिजनों में पितामह होते हैं। श्रेष्ठ भाई होते हैं। पिता होते हैं। इनके समकक्ष में उस आत्मविद् की गणना की जा सकती है और उसके चरणों

की सेवा भी हो सकती है। अर्थात् आत्मविद् पुरुष में और गुरु में एकीकृत भाव हो जाते हैं। दोनों की आत्मा-आत्मा हो जाती है। दोनों ब्रह्मज्ञानी हो जाते हैं। दोनों अपने को पहचाने होते हैं। इसलिए उसमें लघुत्व दीर्घत्व का भेद नहीं रहता है। क्योंकि आत्मा पितामहों का पितामह है। बड़े भाईयों का बड़ा भाई है। पिता से भी बड़ा है। इसलिए यहाँ आत्मविद को लक्ष्य लेकर उपर्युक्त बात सद्गुरु ने कही है। यह बड़े लोगों की विनम्रता की चरम सीमा है। जो अपने लक्ष्य की पूर्ति में सफल होते हैं वे इस प्रकार का वक्तव्य देते हैं।

## विनम्रता प्रकरण

**सब ते लघुता भली, लघुता ते सब होय।**
**जस दुतिया को चन्द्रमा, सीस नवै सब कोय ॥३२३॥**

**शब्दार्थ**—लघुता-विनम्रता। भली-अच्छी। दुतिया-द्वितीय, दूज का चन्द्रमा, चन्द्र। सीस-मस्तक। नवै-झुकावे।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि यदि मानव सद्गुरु के कहे अनुसार अपने को बना ले। अपने जीवन में आमूल चूल परिवर्तन कर ले तो उसको हम अपने से अधिक महत्व देता हूँ। नीचे कहा जा रहा है कि जो लोग अपने को बड़ा मानते हैं वे बड़ा नहीं होते। बड़ा तो मनुष्य विनम्रता से बनता है सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हम किसी को अपना पितामह, भ्राता, पिता व सेव्य मानता हूँ। इसलिए कि वह सुधर जाय। तो लोग समझते हैं कि कबीर बहुत गिर कर बात करते हैं। अपने सिद्धान्त का प्रचार करने के लिए वे लोगों का सेवक बनने के लिए प्रस्तुत हैं। इस पर साहब कहते हैं कि बड़े लोग ही तो समाज के सेवक होते हैं। इसलिए जितने भी महापुरुष हुए हैं। वे समाज की सेवा किये हैं क्योंकि समाज ही भगवान का रूप है। रोगी की सेवा जिस प्रकार से चिकित्सक करता है और उसका मल भी साफ करता है पीव भी साफ करता है। घाव पर मरहम पट्टी भी बाँधता है। वह सेवा की भावना से एवं मानव कल्याण की भावना से करता है। उस कार्य से उसको कोई मेस्तर व भंगी नहीं कहता। प्रत्युत वह और महत्व को प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार से उपर्युक्त गुरु के वचन को समझना चाहिए।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि संसार में यदि तुझे रहना है। सुखमय जीवन बिताना है तो लघुत्व को धारण करो। वही अच्छी बात है और उसी विनम्रता से सब गुण तेरे पास आ जायेंगे। बड़े से बड़े लोग तेरे वश

में हो जायेंगे जिस प्रकार से दूइज के चन्द्रमा को सब कोई नमस्कार करते हैं। सम्पूर्ण चन्द्रमा का नमस्कार नहीं होता है। भावार्थ यह है कि सर्वत्र विनम्रता की पूजा होती है। अहंकार और घमण्ड का तिरस्कार होता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए की अहंकार का परित्याग करें विनम्र भाव को धारण करें तभी बड़ा हो सकता है।

## शरीर असारता प्रकरण

**मरते-मरते जग मुवा, मुये न जाना कोय।**
**ऐसा होय के ना मुवा, बहुरि न मरना होय ॥३२४॥**

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि विनम्रता को धारण करना चाहिए क्योंकि संसार में विनयी पुरुष को ही लोग श्रेष्ठ मानते हैं। नीचे कहा जा रहा है कि विनम्रता का त्यागकर लोग अहंकारी हो गये हैं। अनात्मज्ञानी हो गये हैं। इसलिए संसार से जाते रहे।

**मूलार्थ**—संसार के लोग मरते-मरते मर गये। सभी मर गये। सभी मर चुके हैं परन्तु कैसे मरना चाहिए इसकी कला कोई नहीं जाना। ऐसा होकर न मुआ कि उसको पुनः मरने की आवश्यकता न पड़े। भावार्थ मरने का तात्पर्य यह है कि दो प्रकार से लोग मरते हैं। एक बार-बार मरता है दूसरा एक हो बार मरता है। संसारी जीव, अज्ञानी मनुष्य जो अहंकार से लदा हुआ है। अपने को बहुत बड़ा मानता है। जिसके पास आसुरी सम्पदा का भंडार है। जो आत्मतत्त्व का बहिष्कार किया है वह बार-बार मरता जन्मता रहा। वह मरने की कला नहीं जानता। यदि जानता की मुझे एक ही बार मरना पड़े तो वह चितघन स्वरूप परमतत्त्व को प्राप्त कर लेता परन्तु कर नहीं सका। सद्‌गुरु कहते हैं कि आत्मज्ञानी होकर यदि मरा होता तो एक ही बार मरना पड़ता परन्तु ऐसा नहीं किया।

**मरते-मरते जग मुवा, बहुरि न किया विचार।**
**एक सयानी आपनी, परबस मुवा संसार ॥३२५॥**

**शब्दार्थ**—सयानी—बड़प्पन, बुद्धिमानी।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि आत्मज्ञानी होकर यदि मुआ होता तो दूसरी बार मरना न होता। नीचे कहा जा रहा है कि मरने के बाद जन्म लिया परन्तु पुनः मरने के पहले विचार नहीं किया कि अबकी मरने के बाद पुनः मरना न पड़े।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे भाई ! उत्तम विचार के सन्तजन ! संसार के लोग सदैव मरते रहे हैं। मरणकाल का दुःख सहते रहते हैं। परन्तु संसार के लोग यह विचार नहीं किये कि हम बार-बार क्यों मर रहे हैं। यदि दूसरी बार विचार किये होते तो कदाचित कोई मार्ग निकल गया होता और पुनः मरना न पड़ता। परन्तु ये संसारी जीव पढ़ने-लिखने के बाद, धन कमाने के बाद अपने को बहुत बुद्धिमान समझने लगे। बहुत ज्ञानवान समझने लगे। इसलिए सद्गुरु की बातों पर विचार न कर सके और न सतत मृत्यु पर विचार कर सके। इसी अपनी एक सयानीपना के कारण यह अज्ञानी जीव परवश कहिये मृत्यु के वश में होकर मरते रहा। जबतक अहंकार को नहीं त्यागेगा तब तक मरते रहेगा।

## अधिकारी अभाव प्रकरण

**सब्द अहै गाहक नहीं, वस्तु है महंगे मोल।**
**बिना दाम काम नहिं आवे, फिरे सो डामा डोल ॥३२६॥**

**शब्दार्थ**—सब्द–आत्मतत्व का उपदेश, प्रणव, आत्मतत्त्व। गाहक–ग्राहक, जिज्ञासु। महंगे-मंहंगी। मोल–मूल्य। दाम–रुपये। डावाडोल–इधर से उधर दौड़ते रहना। अनस्थिर चित, संशय ग्रसित, चंचल, विचलित।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मनुष्य की मृत्यु अहंकार के कारण बार-बार होती है। नीचे कहा जा रहा है कि मृत्यु से बचने के लिए उपाय भी है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे आत्मज्ञ सन्तजन ! जो लोग बार-बार मरते जा रहे हैं। उसके रोकने का उपाय मेरे पास है। यदि संसार के लोग मेरे सत्य शब्द को ग्रहण कर ले तो मृत्यु से बच सकते हैं। परन्तु सत्य शब्द के कोई ग्राहक नहीं हैं। कोई उसका चाहने वाला नहीं है। कारण कि वह सत्य वस्तु बड़ी महंगी है। उसका बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता है अर्थात् उसमें बड़े साधन करने पड़ते हैं। शम, दम करने पड़ते हैं। संसार से उपरति करनी पड़ती है। दूसरे उस वस्तु में श्रद्धा होनी चाहिए और उस वस्तु को सुनकर समाधान करना चाहिए। उसके लिए मुमुक्षता और अधिकारीपन भी होना चाहिए और दुःख-सुख, आपत्ति-विपत्ति सहने की शक्ति होनी चाहिए। संसार के विषयों से चित्त को निग्रह करना चाहिए। ये उपर्युक्त मूल्य बिना चुकाये वह वस्तु संजीवनी

विद्या प्राप्त होने वाली नहीं है। जिसके पीने से बार-बार का मरना छूट जाय। जब तक उपर्युक्त दाम देकर वस्तु नहीं खरीदी जायेगी। तब तक वह किसी काम की नहीं होगी। तात्पर्य यह है कि जब तक मनुष्य उपर्युक्त साधन से हीन होगा। विषय वस्तु का त्याग नहीं करेगा तब तक उसको वह वस्तु प्राप्त नहीं होगी। अनधिकार चेष्टा करके प्राप्त करने पर उससे कोई लाभ नहीं होगा। जब तक शुद्ध अन्तःकरण में आत्मज्ञान नहीं दिया जायेगा। तब तक उसको शान्ति नहीं मिलेगी। ऐसे सुनकर और डाँवाडोल हो जायेगा। अपने ग्रहण नहीं करेगा। अनस्थिर चित्त होकर दूसरों को सुनाने की चेष्टा करेगा।

इसलिए जब तक उपर्युक्त मूल्य न चुकावेगा तब तक उसको आत्मज्ञान नहीं देना चाहिए।

**ग्रिह तजि के जोगी भये, जोगी के ग्रिह नाहिं।**
**बिन विवेक भटकत फिरै, पकरि सब्द की छाहिं ॥३२७॥**

**शब्दार्थ**—ग्रिह–गृह, घर। तज–त्यागकर। जोगी–योगी साधु। भये–हुए। सब्द–तर्क, उपदेश। छाहिं–छाया, साया।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि आत्मतत्त्व बड़ा मूल्यवान है। बिना गुरु सेवा और बिना इन्द्रिय निग्रह के बिना प्रभु भजन के बिना अभिमान त्याग के वह प्राप्त नहीं हो सकता है। नीचे कहा जा रहा है कि उस परमतत्त्व की प्राप्ति के लिए बहुत लोग घर-बार त्याग कर चल देते हैं।

**मूलार्थ**—संसार में देखा गया है कि जब मनुष्य संसार के दुःखों से, आपत्तियों से अत्यन्त घबड़ा जाता है तो गृह त्यागकर शान्ति की खोज में बाहर निकल पड़ता है परन्तु सद्गुरु कहते हैं कि वह परत्व वैराग्य है, कच्चा वैराग्य है। किसी भौतिक सुख के अभाव में वह वैराग्य उत्पन्न हुआ है। क्योंकि घर छोड़कर जो साधु हुआ है वह तो ठीक हुआ परन्तु साधु का घर नहीं होता है और यह साधु एक घर छोड़कर दूसरा घर बना लिया। एक जगह से नेह नाता को छोड़कर दूसरे जगह जाकर बहुत बड़ा आश्रम, बहुत बड़ी कुटिया बना ली। वहाँ भी संसार का बवाल फैला दिया। साहब कहते हैं कि हे भाई साधु तो हुआ, घर द्वार छोड़ दिया। पुनः उसको घर नहीं बनाना चाहिये था परन्तु वह पुनः घर द्वार बना लिया है। पुत्र-पौत्र के स्थान पर शिष्य प्रशिष्य कर लिया। अर्थात् फिर उसी माया में यह योगी बँध गया जिसमें पहले बँधा था। बिना

विवेक का चतुर्दिक भटकते फिर रहा है। अर्थात् इसकी इन्द्रियाँ पुनः चारों दिशा में घूम रही हैं। क्योंकि यह विचार नहीं किया कि जिस चीज का त्याग करके मैं साधु हुआ था, योगी हुआ था। रूपान्तर में पुनः उसी वस्तु को ग्रहण कर रहा हूँ। इस विचार के बिना इसकी अशान्ति नहीं गयी और तर्क करने पर वस्तु स्थिति पर विचार करने पर यह पकड़ में आ रहा है। शब्द की छाया में तर्क के अन्तर्गत यह साधु नहीं है अर्थात् तर्क करेंगे पर यह पकड़ में आ रहा है और न यह पुनः मरने से बचने के लिए कोई उपाय ही सोच रहा है। इसलिए इसका पुनः मरण अवश्यम्भावी है।

### अपने समान सबको परिज्ञान प्रकरण

**सिंघ अकेला बन रमे, पलक पलक करै दौर।**
**जैसा वन है आपना, वैसा वन है और ॥३२८॥**

**शब्दार्थ**—सिंघ–सिंह, व्याघ्र, साधु, योगी। अकेला–एकाकी। बन–जंगल, संसार। जैसा–जिस प्रकार का। अपना–निज। वैसा–उसी प्रकार का। और–दूसरे का।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो सन्त-महात्मा होते हैं। वे पुनः घर नहीं बसाते। क्योंकि नीचे कहा जा रहा है कि वे एकाकी विचरण करते हैं।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे आप्त सन्तजन! जिस प्रकार से सिंह दो के साथ नहीं चलता। अकेले ही वन में विचरण करता है और वह समझता है कि जिस प्रकार से मैं अकेला वन में विचरण करता हूँ उसी प्रकार से दूसरा भी वन में विचरण करता होगा और वह किसी की मोह-माया में नहीं फँसता है। क्षण-क्षण एक दूसरी वस्तु को त्यागते रहता है। एक दूसरे स्थान को छोड़ते रहता है, उसे काल रूपी आखेटक से भय बना रहता है। इसी प्रकार से जो सन्त-महात्मा हुए हैं जो ऋषि-मुनि हुए हैं जो त्यागी-वैरागी हुए हैं। वे अनासक्त भाव से संसार में विचरण करते हैं, ममता से बचने के लिये किसी को साथ में नहीं रखते हैं प्रत्येक पल मृत्यु से बचने के लिये आत्मतत्त्व में विचरण करते हैं। दौड़ लगाते रहते हैं अपने स्वरूप में ही घूम-फिरकर रहते हैं। प्रभु चरण में ही उनका मन रमता है जिस प्रकार की उनकी स्थिति है। उनके रहने का संसार है, वे समझते हैं कि दूसरा सन्त, महात्मा जो पूर्ण योगी होगा उसका भी रहने का निवास स्थान मेरा ही जैसा होगा। अर्थात् अपनी स्थिति के अनुसार दूसरे की स्थिति को समझते हैं।

## हृदयस्थ हरि प्रकरण

**पैठा है घट भीतरें, बैठा है साचेत।**
**जब जैसी बुधि चाहत है, तब तैसी बुधि देत ॥३२१॥**

**शब्दार्थ**—पैठा–घुसना, प्रविष्ठ करना। घट–शरीर, कण्ठ। साचेत–सावधान जागता हुआ। बुधि–बुद्धि, मति, प्रेरणा। चाहत–चाहता, इच्छा करता। तैसी–वैसी।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जिस प्रकार सिंह एकाकी विचरण करता है। उसी प्रकार से पहुँचे हुए सन्त महात्मा भी विविक्त सेवी होते हैं। तथा वे अपने समकक्ष ही दूसरे को भी समझते हैं नीचे कहा जा रहा है कि उन सन्त महात्माओं के अन्दर एक सावधान तत्त्व प्रविष्ट किया है। 'तदैव साधु कर्म कार्यति, यमुन्ननिनिष्यति।' जिसकी उन्नति कराने की इच्छा हरि को होती है उससे अच्छे कर्म कराता है।

**मूलार्थ**—बहुधा लोग परमात्मा की खोज बाहर करते हैं परन्तु वह बाहर भीतर दोनों में है। अधिकतर उसका निवास घट ही में है सद्गुरु कहते हैं कि हे आत्म वेत्ता सन्तजन ! सभी प्राणियों के घट रूपी शरीर के भीतर में परमतत्त्व का प्रवेश है और प्राणियों के हृदय में वह सचेत होकर बैठा हुआ है। वह गति प्रेरक प्रभु जब जैसी आवश्यकता समझता है। किस बुद्धि, की, किस मति की कब आवश्यकता है, वैसा ही समझकर वह मनुष्यों को उत्प्रेरित करता है। उसी प्रकार की विचारधारा वह देते रहता है। तात्पर्य यह है कि परब्रह्म परमेश्वर समस्त प्राणियों के भीतर विराजमान है परन्तु विशेष कर सन्त महात्मा उसको साक्षात्कार करते हैं। जब उन सन्त महात्माओं की जैसी इच्छा होती है जो करना चाहते हैं। उस प्रकार की मति वह प्रभु प्रदान करता है, यदि कहा जाय कि यह बात क्यों कही गयी। तो इसका उत्तर उपनिषदों में आया है, एक मन्त्र में आया है कि—न वह परमतत्त्व शास्त्र के अध्ययन से प्राप्त होता है। न किसी के चाहने से प्राप्त होता है न बहुत जप-तप करने से प्राप्त होता है। वह जिस पर प्रसन्न होता है स्वयं उसके अन्दर प्रवेश होकर गति प्रदान करता है और उस व्यक्ति को संसार से पार कर देता है। क्यों किसी पर प्रसन्न होता है, यह उत्तर बहुत कठिन है परन्तु प्रसन्न होने का कोई कारण अवश्य होगा। अन्यत्र शास्त्रों में लिखा है कि जो अपने को प्रभु को समर्पण कर देता है। उसको प्रभु भी स्वयं को समर्पण कर देता है। इसलिए समर्पण करना बहुत आवश्यक है।

## दम्भी प्रकरण

**बोलत ही पहिचानिये, साहु चोर की घात ।**
**अंतर घट की करनी, निकरे मुख की बाट ॥३३०॥**

**शब्दार्थ**—पहिचानिये-जानिये। साहु-साधु। घात-दांव, अवसर, समय, मौका, विचार, बात। बाट-मार्ग।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि वह परम प्रभु सबके अन्दर विराजमान है और सचेत होकर विराजमान है। जब जैसी सुगति कुगति चाहता है, तब उसी प्रकार की बुद्धि प्रदान करता है। नीचे कहा जा रहा है कि सच्चे बुरे की पहचान उसके विचार से ही प्रकट होते हैं।

**मूलार्थ**—बहुत लोग कहते हैं अमुक साधु है, अमुक चोर है। अमुक घटिया किस्म का है परन्तु अवसर उपस्थित होने पर मनुष्यों के व्यवहार से उनके साहु और चोर होने का प्रमाण मिल जाता है। कितना भी दुष्ट आदमी बनावटी व्यवहार करे। लेकिन कहीं न कहीं उसके व्यवहार में खोटापन हो जाता है। जिससे वह पहचान में आ जाता है, इसी प्रकार साधु पुरुष से कहीं भूल भी होती है तो उनके अन्य विचारों से साधुपन का भाव प्रकट होने लगता है। अपने अन्दर की करनी को कोई छिपा नहीं सकता है। जिसके जो भाव अन्दर रहते हैं, वे मुख मार्ग से निकल ही जाते हैं। इसलिए पाप बड़ा प्रत्यक्ष है वह कभी छिपकर नहीं रहता है। मानव को उससे सावधान रहना चाहिए।

**दिल का महरम कोई ना मिलिया, जो मिलिया सो गरजी ।**
**कहैं कबीर असमानहिं फाटे, क्यों कर सीवे दरजी ॥३३१॥**

**शब्दार्थ**—दिल-हृदय। महरम-अन्दर का भेदिया, हार्दिक भाव जानने वाला। मिलिया-मिला। गरजी-स्वार्थी लोग। असमानहिं-आकाश, मूल भावना। फाटे-फट जाय। अनात्मबुद्धि हो जाय। दरजी-आत्मज्ञानी, सत्यपुरुष परमेश्वर।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि आतमविद् और अनातमविद् पुरुष पहचान में आ जाते हैं। नीचे कहा जा रहा है कि दिल का भेदिया कोई ना मिला।

**मूलार्थ**—मानव के रहस्य बहुत प्रकार के होते हैं। वह उनके निकट रहने से पता चल जाता है परन्तु हृदय का मर्म जानने वाला कोई नहीं मिलता। यह नहीं जानता की महात्मा लोग क्या मुझे देना चाहते हैं ?

किधर ले जाना चाहते हैं ? हमारे जीवन का क्या मूल्य है ? इस महरम को जानने वाला कोई भी पुरुष सामने नहीं आया और जो मिलता भी है सो गरजी कहिये स्वार्थी मतलब रखने वाला मिलता है अर्थात् आत्मतत्त्व का जिज्ञासु कोई नहीं मिलता। जो मिलता है भौतिक सुख की कामना से ही मिलता है। सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि जब आसमान ही फट जायेगा तो किस प्रकार से दर्जी उसको सीयेगा ? अर्थात् मानव की मूल भावना ही स्वार्थी हो जायेगी तो उसको सद्‌गुरु रूपी दर्जी किस प्रकार से सी सकता है। 'मूलो नास्ति कुतो शाखा' के अनुसार जिसका मूल ही खराब है तो उसकी शाखायें अच्छी होने से क्या हो सकता है।

**ई जग जरता देखिया, अपनी अपनी आगि।**
**ऐसा कोई ना मिला, जासो रहिये लागि ॥३३२॥**

**शब्दार्थ**—आगि–कामाग्नि, स्वार्थ अग्नि। जासो–जिससे। लागि–मिली, साथ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि कोई हार्दिक मनुष्य नहीं मिला जिसे सत्य का उपदेश दिया जाय। आत्मा की पहचान करायी जाय बहुत खोजा, बूझा गया तो संसार के सुख चाहने वाले ही अधिक मिले। इसलिए सद्‌गुरु कुछ नहीं कर सके। नीचे कहा जा रहा है कि यह सारा संसार स्वार्थ अग्नि में दग्ध हो रहा है और सभी को अपना-अपना स्वार्थ है। सभी लोग स्वार्थ की अग्नि में जल रहे हैं और स्वार्थ लेकर ही किसी सन्त महात्माओं के पास जाते हैं। सुनाते हैं कि मैं बीमार हूँ मेरा पुत्र बीमार है। मुझे नौकरी नहीं मिलती इत्यादि बातें सन्तों से सुनाते हैं।

**मूलार्थ**—अब सद्‌गुरु कहते हैं कि हे विज्ञ सन्तजन ! मैंने सारे संसार को कामाग्नि की अग्नि में जलते देख रहा हूँ और सबकी अपनी-अपनी कामाग्नि है। जहाँ जाता हूँ जिससे मिलता हूँ सभी स्वार्थी तत्त्व मिलते हैं। सभी कुछ चाहने वाले मिलते हैं परन्तु ऐसा कोई नहीं मिला जिससे मिलकर प्रेम किया जाय। उसको साथ लगाया जाय और उससे कुछ विशेष बात बताई जाय। किन्तु उन आत्म जिज्ञासुओं का सर्व देशकाल में अभाव ही दीख रहा है। इसलिए चुप रहना ही उत्तम है।

**बना बनाया मानवा, बिना बुद्धि बेतूल।**
**कहा लाल ले कीजिए, बिना बास का फूल ॥३३३॥**

**शब्दार्थ**—बना–कृत्रिम। बनाया–निर्मित। मानवा–मनुष्य। बेतूल–

तुच्छ, हल्का, रूई। काह–क्या। लाल–किंसुक, टेशू का फूल, आत्मज्ञान, परमतत्त्व। बिना–रहित। बास–सुगन्ध। फूल–पुष्प, तुच्छ मनुष्य।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि संसार के प्रायः सभी लोग स्वार्थी जन हैं। नीचे कहा जा रहा है कि देखने में तो मनुष्य लगते हैं परन्तु ये असली मनुष्य नहीं हैं। ये सब कृत्रिम हैं केवल मानव का चोला पहने हुए हैं।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे तत्त्ववेत्ता सन्तजन ! मैंने मनुष्यों को देखकर साथ करके, बड़ा प्रयत्न किया कि इनको सद्मार्ग पर लाया जाय परन्तु जब बहुत निकट से देखा तो एक भी मनुष्य मुझे नहीं मिले। क्योंकि ये सब बना बनाया दिखावटी कृत्रिम मनुष्य लगते हैं। जैसे—किसान लोग खेत की रखवाली के लिए एक मानव आकृति खड़ी कर देते हैं कि जंगली पशु आदि देखकर भाग जायेंगे। परन्तु ये पशु भी दो-चार दिन में पहचान जाते हैं कि ये बनावटी (मनुष्य) हैं। इसी प्रकार से संसार के मानव बिना श्वांस-प्राण के हैं, इनमें यत्किंचित जीव नहीं है। ये बिना बुद्धि के रूई के समान हल्के हैं, तुच्छ हैं। भला इनको लाल रूपी आत्मज्ञान देकर क्या किया जायेगा ? ये तो उसको पत्थर ही समझेंगे, कोरी बकवास समझेंगे। जैसे कोई मूर्ख को कोई धनी मानी व्यक्ति उसकी गरीबता दूर करने के लिए लाल दे दे। हीरक दे दे, तो वह मूर्ख व्यक्ति पत्थर जानकर ही फेंक देगा। क्योंकि लाल की परख जौहरी करता है। इसी प्रकार से अनाधिकारियों को अन्तःकरण हीनों को उत्तम ज्ञान सुनाने से कोई लाभ नहीं है। क्योंकि ये संसारी मनुष्य जड मति वाले उसी प्रकार से निरर्थक हैं जिस प्रकार से किंसुक व पलाश का लाल फूल बिना गन्ध का होता है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार से पलाश का पुष्प लाल एवं सुन्दर देखकर लोग मोहित हो जाते हैं परन्तु उसमें यत्किंचि सुगन्ध नहीं होती वह निरा बेकार है इसी प्रकार से देखने में अत्यन्त सुन्दर मनुष्य लगता है परन्तु उसमें कोई गुण कोई अच्छी विचारधारा नहीं होती तो उसको साथ लगाकर क्या करोगे। इसलिए जिज्ञासु को ही ज्ञान सुनाना उत्तम है। दूसरा अर्थ यह है कि ऊँची-नीची जाति भी लोगों के द्वारा बनायी गयी है। यह चारों वर्ण भी कल्पना प्रसूत हैं।

### सत्य वक्तव्य प्रकरण

**सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।**
**जाके हिदया सांच है, ताके हिदया आप ॥३३४॥**

**शब्दार्थ**—सांच–सत्य । बराबर–समान । तप–तपस्या, जप, तप । झूठ–असत्य । पाप–दुष्कृत । जाके–जिसके । ताके–उसके । हिदया–हृदय में । आप–परमेश्वर ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अनधिकारी के प्रति कुछ कहना सुनना निरर्थक है । अब नीचे कहा जा रहा है कि सत्य वक्ता के समान कोई दूसरी तपसचर्या नहीं है ।

**मूलार्थ**—ऊपर सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे बुद्धिवर सन्तजन ! सत्य के समान दूसरा कोई तप नहीं है । न जप है, न उपवास है । न तीर्थाटन है जो सदैव सत्य बोलता है । वह सभी पापों से रहित हो जाता है और स्वयं सत्य स्वरूप हो जाता है । इसी प्रकार से जो झूठ बोलता है झूठा का आश्रयण लेता है । उसके समान कोई पापी भी नहीं है। इसलिए जिसके हृदय में सदा सत्य बोलने की बात बसती है । उस निर्मल हृदय वाले के अन्दर में स्वयं प्रभु आकर निवास करता है । भावार्थ यह कि सत्य परमेश्वर है, सत्य आत्मा है । जो उसकी उपासना करता है वह सबसे पुण्यशाली है और जो मिथ्या संसार की उपासना करता है । उसके समान कोई दुष्कर्मी भी नहीं है । क्योंकि झूठ की उपासना करने से आत्मा का नाश होता है । इसलिए सद्गुरु कहते हैं कि जिसके हृदय में सदैव तत्त्व चिंतन होते रहता है । प्रभु का भजन होते रहता है उसके हृदय में स्वयं हरि आकर बसते हैं ।

### निरर्थक जन्म प्रकरण

**कारे बड़े कुल ऊपजे, जोरे बड़ो बुधि नाहिं ।**
**जैसे फूल उजारि का, मिथ्या लगि झरि जाहि ॥३३५॥**

**शब्दार्थ**—का–क्या । रे–हे । कुल–खानदान, वंश । ऊपजे–उत्पन्न । बड़ी–विशाल । उजारि–जंगल, निर्जन शून्य स्थान । पलास का वृक्ष । मिथ्या–झूठे ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो सत्य वक्ता है । जो कभी झूठ नहीं बोलता है । उसके हृदय में आप कहिये स्वयं परमेश्वर का निवास

रहता है। नीचे कहा जा रहा है कि जो सत्य का उपासक नहीं है। वह कितना भी बड़ा क्यों न हो बेकार है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे आत्म चिन्तक सन्तजन! जिसके पास विशाल बुद्धि नहीं है। जिसमें आत्मतत्त्व चिन्तन की मति नहीं हैं। वह कितना भी बड़े कुल में उत्पन्न हो। बड़ी जाति में उत्पन्न हो, ब्राह्मण, क्षत्रिय कहलाता हो। धनाढ्य सेठ कहलाता हो, उससे कुछ होने वाला नहीं है। वह उसी प्रकार से है जैसे घने जंगलों में पुष्प लगते हैं। किसी देव आदि के काम में नहीं आते। झूठहिं लगते हैं, उगते हैं और फिर झड़ जाते हैं। उन पुष्पों से कोई सुगन्धित तेलादि भी नहीं बनते हैं। न किसी के सूँघने के काम में ही आते हैं, इसी प्रकार से जिसकी बुद्धि सर्व हितैषी नहीं है। समाज का कल्याण करने वाली नहीं है जिसका धन परमार्थ में खरचा होने वाला नहीं है। जिसके द्रव्य से कोई धार्मिक स्थल नहीं बन रहे हैं सार्वजनिक सेवा नहीं हो रही है। ऐसे लोग मात्र दिखावे के लिए बड़े हैं व उच्च हैं। न वे अपना उपकार कर सके। न आत्म कल्याण कर सके। किंसुक के वृक्ष की तरह निरर्थक ही संसार में जन्म लेता है। जो केवल देखने में सुन्दर लगता है पर उसके फल बड़े तिक्त होते हैं। पुष्प में कोई गन्ध नहीं होती है।

## निर्गुण ब्रह्म प्रकरण

**करते किया न विधि किया, रवि ससि परी न द्रिस्टि।**
**तीन लोक मों है नहिं, जानै सकलो स्रिस्टि ॥२३६॥**

**शब्दार्थ**—करते-कर्ता कार्य ब्रह्म। विधि-ब्रह्मा, हिरण्यगर्भ। रवि-सूर्य। ससि-शशि, चन्द्रमा। परी-पड़ी। द्रिस्टि-दृष्टि, नेत्रों में। सकलो-सभी। स्रिस्टि-सृष्टि, संसार।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि कोई बहुत लम्बा हो जाय बहुत ऊँचा हो जाय। बहुत धनी मानी हो जाय परन्तु उससे बड़ा नहीं कहलाता। बड़ा तो वही है जिसके पास विशाल बुद्धि है। परोपकारी मनुष्य है। नीचे कहा जा रहा है कि जो परम सत्ता है। जो चिति स्वरूपा है वह सर्वज्ञ है सर्वगत है। सबसे ऊपर वही है उसको कोई प्राप्त करता है तो केवल श्रद्धा भक्ति से, दीन गरोबी से और उसकी कृपा से।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे सर्व उपकारी सन्तजन! उस परम-तत्त्व को न किसी कर्त्ता ने बनाया है न कार्य ब्रह्म रचा है और न ब्रह्मा

ही उसको बनाया है। अर्थात् वह हिरण्यगर्भ से भी पूर्व रहा। वह रवि और चन्द्रमा की दृष्टि से भी ओझल है। वह इतना महान है वह इतना सूक्ष्म है कि न उसके तक सूर्य की पहुँच है। न चन्द्रमा की पहुँच है और वह तीन लोक में भी नहीं है अर्थात् वह तीन लोक से परे है। वह सुरलोक का इन्द्र नहीं है। वह नर लोक का कोई सम्राट नहीं है। वह नागलोक का भगवान शेषनाग भी नहीं है। इन सबों से वह ऊपर है परन्तु सुनी-सुनायी सारी सृष्टि उसका अनुभव करती है कि इन सारे प्रपंचों से परे कोई तत्त्व है अर्थात् भयानक समुद्र की लहरों से, भयानक झंझावातों से भयंकर सूर्य की किरणों से भयंकर और विशाल हिमालय से भी कोई विशाल तत्त्व है। जिसके कारण से सारे ग्रह-उपग्रह संचालित होते हैं। जिसके कारण सारी सृष्टि बनती बिगड़ती है, वह इन सब प्रपंचों से सब विस्तारों से परे है। उसी की उपासना, उसी का चिन्तन मानव को करना चाहिए। जो महान होते हुए भी सूक्ष्म रूप से मानव हृदय में बैठा हुआ है।

**वेद-मंत्रः—**

ऐषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अंतः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनास्तिष्ठतिसर्वतोमुखः प्रत्याङ्॥

(यजुर्वेद के मंत्र)

न तद् भासते सूर्यो न शशांको न पावकः। (कठ)
न तत्र सूर्यो भांति न चन्द्रतारकः।
यदगत्वा निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥६॥

( श्रीमद्भगवद्गीता )

**सुरहुर पेड़ अगाध फल, पंछी मरिया झूर।**
**बहुत जतन कै खोजिया, फल मीठा पै दूर ॥३३७॥**

**शब्दार्थ**—सुरहुर–लम्बा, चिकना जिसमें बहुत दूर तक डालियाँ न हों कोई पकड़ने का साधन न हो उसे सुरहुर कहते हैं मोक्ष फल, आत्मज्ञान परमेश्वर, परमतत्त्व। अगाध–अथाह। फल–मोक्ष। पंछी–पक्षी, साधक, जिज्ञासु। मरिया–मरा, मृत हुआ। झूरि–शुष्क, झूलकर। जतन–यत्न। खोजिया–खोजा।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि उस परमतत्त्व को कोई बनाया नहीं न किसी के द्वारा वह उत्पन्न किया गया। वह तीन लोक की पहुँच से परे है परन्तु सारी सृष्टि यह अनुभव करती है कि इस अखिल ब्रह्माण्ड

का कोई संचालक सत्ता अवश्य है और यह भी संकेत किया गया है कि उसी की प्राप्ति से जीव सुखी हो सकता है। परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि वह बहुत दुष्प्राप्य है उसकी प्राप्ति बहुत दूर है। वहाँ तक कोई पहुँच नहीं पाता। जब तक की सद्गुरु और उसकी कृपा न हो।

**मूलार्थ**—वह परमतत्त्व सुरहुर पेड़ के समान बहुत लम्बा है और चिकना है। उसमें किसी प्रकार का विकार नहीं है वह वृक्ष अगाध है। अथाह है वहाँ तक किसी की पहुँच नहीं है और उसी में मुक्तिरूपी फल लगता है। कितने पक्षी रूप साधक उस फल के चाहने वाले मर गये। उस पेड़ पर झूल गये परन्तु उनके हाथ शुष्कता ही लगी। सद्गुरु कहते हैं कि बहुत यत्न करने पर उस मोक्ष फल का अन्वेषण किया गया। फल मिला। फल बहुत मीठा है अति स्वादिष्ट है। तृप्ति करने वाला है परन्तु बहुत दूर है। तात्पर्य यह हुआ कि जिस प्रकार से सुरहुर पेड़ चिकना और लम्बा होता है। उसमें डाल पल्लव नीचे नहीं होते उसी प्रकार से परब्रह्म, परमात्मा रूपी वृक्ष पाताल से आकाश तक फैला हुआ है। और वह बहुत उत्तम रूप मोक्ष फल भी देता है। जिसकी प्राप्ति के लिए अनेक लोग उस वृक्ष में लटके रहते हैं। उसकी उपासना करते रहते हैं अनेकों जन्म बीत जाते हैं तो भी शीघ्र प्राप्त होने वाला वह नहीं है। जो अनेक जन्मों से उसकी तलाश में लगे रहते हैं। जिनके संस्कार अनेक जन्मों से शुद्ध हैं वे बहुत यत्नपूर्वक उस परमतत्त्व रूपी आत्मज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं। उक्त स्वादिष्ट, माधुर्य फल की प्राप्ति से समस्त भव दुःख समाप्त हो जाते हैं। पुनः जन्म-मरण नहीं होता परन्तु उस परमतत्त्व रूपी फल की प्राप्ति बहुत दूर है। उसके लिए बहुत कठोर साधना करनी पड़ती है। मन, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना पड़ता है उसकी प्राप्ति के लिए जीवन के समस्त मूल्यों को चुकाना पड़ता है। अपने को बलिदान करना पड़ता है। जब तक हम नहीं मिटेंगे तब तक वह परमतत्त्व रूपी फल हमको नहीं मिलेगा। इसलिए उस अमृत फल के लिए सब प्रकार से अपना न्योछावर कर देना चाहिए। तभी वह मिल सकता है।

## तमोगुणी तप प्रकरण

**बैठा रहे सो बानिया, ठाढ़ रहे सो ग्वाल।**
**जागत रहे सो पाहरू, तेहि धरि खायो काल ॥२३८॥**

**शब्दार्थ**—बानिया–वणिक, क्रय-विक्रय करने वाला व्यापारी। ठाढ़–खड़ा। ग्वाल–गोप, गोपाल, चरवाहा। पाहरू–प्रहरी, चौकीदार, कोतवाल, खड़ेसरी, साधु। तेहि–उसको भी।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि वह अमर फल आत्मतत्त्व बहुत कठिनाई से प्राप्त होता है। नीचे कहा जा रहा है कि बहुत लोग उसकी प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार की साधना में लगे हुए हैं।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर से किसी ने कहा महाराज मैं तो रात भर बैठा रहता हूँ। भजन भाव करते रहता हूँ। पर अभी उसकी प्राप्ति नहीं हुई। किसी ने कहा महाराज हम खड़े-खड़े साधना करते हैं। बहुत घोर तप करता हूँ। देखिये मेरे हाथ-पैर सूज गये हैं। मैं ऊर्ध्वबाहु रहता हूँ। उस पर भी मुझे आपके कहे हुए तत्त्व के दर्शन नहीं हुए। किसी ने कहा महाराज मैं रात भर जागता हूँ। और मन इन्द्रियों को रोकने के लिए पहरा देता हूँ कि शरीर से मन, इन्द्रियाँ बाहर न निकल जाँय। ध्यानस्थ रहता हूँ। परन्तु अभी तक प्रभु के दर्शन नहीं हुए। इस पर सद्गुरु ने कहा—देखो भाई जिस प्रकार से तू बैठा है। जिस प्रकार से तू चेला शिष्य बनाता है। और ज्ञान का क्रय विक्रय करता है। उसी प्रकार से वणिक भी बैठकर ही सारे व्यापार करता है। परन्तु वह तत्त्वदर्शी नहीं हो पाता। इसलिए बिना जाने हुए बिना गुरु के द्वारा मार्ग बताये हुए मनमुखी होकर बैठे रहने से क्या होता है? इसी प्रकार से कोई खड़ा होने की बात करता है। खड़ेसरी बना है। जिसको मार्ग नहीं मिला है। जिसे सद्गुरु की उपलब्धि नहीं हुई है। उसको भी खड़ा होने से क्या लाभ होता है? क्योंकि खड़ा होकर ग्वाला भी गाय चराते रहता है। क्या उसको तत्त्व के दर्शन हो जाते हैं। इसी प्रकार से जो रात भर जागते रहता है। परन्तु उसको भी कोई गुरु नहीं मिला। सही मार्ग नहीं मिला। तो रात भर जागने से क्या लाभ होगा? रात्रि भर तो नगर का कोतवाल जागकर नगर की परिक्रमा करता है। नगर की रक्षा करता है। क्या उसे प्रभु के दर्शन हो जायेंगे। जिस प्रकार से वणिकों को, ग्वालों को, पहरेदारों को काल धर कर खा जाता है। उसी प्रकार से मनमुखियों को जिन्होंने बिना गुरु सेवा के बिना गुरु के बताये हुए मार्ग से ईश्वर की प्राप्ति करना चाहते हैं। उनको भी सफलता नहीं मिलेगी। अन्ततः अज्ञान की दशा में मरकर यमालय में चले जायेंगे।

## माया विच्छिन्न प्रकरण

**आगे आगे दौं जरे, पाछे हरियर होय।**
**बलिहारी तेहि ब्रिछ की, जर काटे फल होय ॥२३९॥**

**शब्दार्थ**—दौं–दावाग्नि, जंगल की अग्नि। जरे–जले। पाछे–पीछे। बलिहारी–धन्यवाद। ब्रिछ–वृक्ष साधक, संसार। जर–मूल। फल–लाभ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अविवेकी मनुष्य कितना भी जप-तप करे। कितना भी साधना उपासना करे। परन्तु जब तक आत्मज्ञ गुरु नहीं मिलेगा तब तक वह जन्म-मरण के चक्र में पड़ा ही रहेगा। नीचे कहा जा रहा है कि जब तत्त्वदर्शी गुरु मिल जाता है तभी कुछ लाभ हो सकता है।

**मूलार्थ**—किसी जंगल में अग्नि लगी थी। आगे-आगे दावाग्नि जंगल को जलाते जा रही थी और पीछे से समस्त जंगल भी हरा-भरा होते जा रहा था सद्गुरु कहते हैं कि उस वृक्ष व साधक को धन्यवाद है। जिसकी जड़ काट देने से फल लगते हैं। और लाभ होता है। भावार्थ यह है कि जब मानव के हृदय में साधक के अन्तःकरण में वैराग्य अग्नि लग जाती है और लगकर समस्त अन्तः विकारो को आगे-आगे भस्म करते जाती है। उसमें मानव के जन्म देने वाले, उगने वाले वे सभी वृक्ष जल जाते हैं। जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अविवेक आदि के रूप में अन्तः में उपस्थित थे। इनके जलने से साधक पश्चात में प्रफुल्लित हो जाता है। उसके तन-मन में हरियाली छा जाती है। सद्गुरु कहते हैं कि उस साधक रूपी वृक्ष को मैं धन्यवाद दूँगा। उसकी प्रशंसा करूँगा जो संसार रूपी वृक्ष का मूलोच्छेद कर दिया है। क्योंकि लोभ रूपी, काम रूपी इस संसार रूपी वृक्ष की जड़ काट देने पर ही उत्तम मोक्ष रूपी फल की प्राप्ति होती है। जब तक संसार वृक्ष और कामना रूपी वृक्ष की जड़ नहीं काटी जायेगी। जब तक मनुष्य निष्काम भाव नहीं होगा तब तक उत्तम फल का अधिकारी नहीं हो सकता है। इसलिए संसार का त्याग करना चाहिये। तब वैराग्य जगेगा। जब वैराग्य जगेगा। तब कामना रूपी वृक्ष अपने आप वैराग्य अग्नि में स्वाहा हो जायेगा। पश्चात ज्ञानाग्नि से सभी कुसंस्कार वा कर्म दग्ध हो जायेंगे। तब अपने आप आत्मा की प्राप्ति हो जायेगी।

## अकस्मात मृत्यु प्रकरण

**जनम मरन बालापना, चौथे ब्रिध अवस्था आय ।**
**जस मूसा को तके बिलाई, अस जम (जीव) घात लगाय ।।३४०।।**

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जब तक कामना रूपी वृक्ष का नाश नहीं होगा । जब तक वैराग्याग्नि प्रज्ज्वलित नहीं होगी । तब तक मानव को शान्ति मिलने वाली नहीं है । नीचे कहा जा रहा है कि कामना के वशीभूत यह जीव जन्म-मरण ग्रहण करते रहता है ।

**मूलार्थ**—मनुष्य कामना के अनुसार जन्म लेता है। पुनः अन्त में मर जाता है। जन्म के पश्चात् बाल्यावस्था होती है। पुनः किशोरावस्था आती है। चौथे में वृद्धावस्था आती है। इस प्रकार से बाल अवस्था से वृद्ध अवस्था तक अनेक प्रकार की कामना के उत्ताल तरंगों में तरंगित होते रहता है मन की लहरें इच्छाओं की लहरें आकाश पाताल की वस्तुओं को प्राप्त करना चाहती है। कामना करता है कि मैं बहुत बाल बच्चे वाला हो जाऊँ। बहुत धन वाला हो जाऊँ। बहुत विद्या वाला हो जाऊँ। बहुत वड़ा पद मिल जाय। यहाँ तक की देश का शासक बन जाऊँ। इस प्रकार से अनेक प्रकार की कामनाओं में जीवन को बीता देता है। कभी भूलकर भी परमात्मा की ओर ध्यान नहीं करता। सुमिरन-भजन नहीं करता। परोपकार का कोई काम नहीं करता। कोई पुण्य का कार्य नहीं करता। आत्म प्राप्ति का कोई उपाय नहीं करता तो अन्त में इस भूले हुए मनुष्य को मृत्यु उसी प्रकार से घात लगाये बैठी रहती है। जिस प्रकार से मुसा को पकड़ने के लिए घर के कोने में बिल्ली छिपी रहती है। और अन्त में इस बहुकामना वाले पुरुष को पकड़कर यमलोक में ले जाती है। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि जो सुन्दर नर तन पाया है। उसको वृथा में न गवावें। इस नरतन से कुछ उत्तम काम करें।

## अनादि अज्ञान प्रकरण

**है बिगरायल वोर का, बिगरो नाहिं बिगारो ।**
**घाव काहि पर घालौं, जित देखौं तित प्रान हमारो ।।३४१।।**

**शब्दार्थ**—बिगरायल–बिगड़ा हुआ कुमार्ग पर चलने वाला यह जीवात्मा। वोर–आदि का, प्रारम्भ से। बिगरो–बिगड़ा। नाहिं–नहीं।

बिगारो–बिगाड़ने से। घाव–दोष, व्रण, चोट। जित–जिधर। तित–उधर। प्रान–प्राण, जीवात्मा। हमारो–हमारा।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि इस बहु कामना वाले पुरुष को यमराज पकड़ ले जाता है। नरक स्वरूप अनेक योनियों में भ्रमाते रहता है। नीचे कहा जा रहा है कि यह त्रियक आदि योनियों में भ्रमते रहता है।

**मूलार्थ**—यह जीव अनादिकाल से बिगड़ा हुआ है। प्रथम से ही बहुकामना वाला है। इसको कोई बिगाड़ने वाला दूसरा नहीं है। यह स्वयं बिगड़ा हुआ है। स्वयं सद्ज्ञान से वंचित है। इसलिए इसको बीच में कोई नहीं बिगाड़ा है। ऐसा कहने से किसी को अपराध लगेगा दोष लगेगा। उक्त वचन कहकर किसी को घायल न करो। इसको कोई बिगाड़ दिया। ऐसी बात नहीं है ऐसा कहकर किसका जान मारोगे। किसको दोषी ठहराओगे। क्योंकि जिधर देखता हूँ। उधर ही सब जीवात्मा हमारे ही हैं। इसलिए अब इसके सुधारने की कोशिश होनी चाहिए। क्योंकि यह बिगड़ चुका है अब दुर्वचन कहकर इसको और बिगाड़ना अच्छा नहीं है। इसको दूषण देकर और घाव नहीं करना है। यह जिस प्रकार से हो सके उसी प्रकार से सुधरे क्योंकि सर्वत्र हमारा ही स्वरूप है। आत्मा रूप में सबमें मैं ही विराजमान हूँ। इसलिए इसके सुधार के लिए उपाय होनी चाहिए।

## सत्संग सुधार प्रकरण

**पारस परसे कंचन भौ, पारस कधी न होय।**
**पारस के अरस परस ते, सुबरन कहावै सोय ॥३४२॥**

**शब्दार्थ**—पारस–एक प्रकार का पत्थर जिसमें लोहा स्पर्श करने पर सोना हो जाता है उसे पारस कहते हैं, तत्त्व वेत्ता। परसे–स्पर्श। कंचन–स्वर्ण, उत्तम जिज्ञासु, अधिकारी पुरुष। भौ–हुआ। पारस–आत्मज्ञानी। कधी–कभी। अरस–परस स्पर्शन दर्शन देखना, छूना, परिचय करना। सुबरन–स्वर्ण, सोना उत्तम, मनुष्य। कहावै–कहलायेगा। सोय–वह बिगड़ा हुआ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि यह जीवात्मा का स्वभाव प्रथम से ही बर्हिमुख है। शुरु से ही बहुकामना वाला है। इसलिए आज तक बिगड़ा हुआ आ रहा है। नीचे कहा जा रहा है कि यह प्रयत्न करने पर उत्तम जिज्ञासु बन सकता है।

**मूलार्थ**—शंका, अब प्रश्न यह उठता है कि जो अनादिकाल से बिगड़ा हुआ है। क्या वह कभी सुधर नहीं सकता। इस पर सद्गुरु कहते हैं कि सुधर सकता है। लोहा एक द्रव्य है। जो बिगड़ा हुआ है परन्तु पारस के छुआने पर लोहत्व को त्याग कर कंचन हो जाता है। किन्तु पारस कभी नहीं होता है। पारस के दर्शन-पर्शन से केवल सोना तक उसकी संज्ञा रहती है।

**भावार्थ**—भावार्थ यह है कि यह बिगड़ा हुआ मानव सद्गुरु के अरस परस से उनके उपदेश से उत्तम जिज्ञासु बन जाता है। वह सुसंस्कार वाला हो जाता है परन्तु प्रथमतयः वह आत्मज्ञानी नहीं हो सकता। क्योंकि आत्म ज्ञान होने में उसको एक सीढ़ी और तय करना पड़ता है। इसलिए सद्गुरु के अरस परस से उपदेश वार्ता से वह सुधर कर, उसके सब मल विक्षेप भस्म हो जाते हैं। तब वह सुवर्ण के समान चमकने लगता है और वह लोहा सोना कहलाने लगता है। 'कंचन' में व्यंजना है। यह समझना चाहिए कि जब लोहा से कंचन हो जाता है तो उसमें जंग नहीं लगता। अनन्त काल तक वैसे पड़ा रहता है इसी प्रकार से जो सद्गुरु के दरस-परस व सेवा, सुश्रुषा से उत्तम मानव बन जाता है। जिनके संस्कार श्रेष्ठ हो जाते हैं। वह पुनः दुर्गति में नहीं जाता। पश्चात् दूसरी बार उत्तम संस्कारों से उत्पन्न होकर गुरु के द्वारा आत्म-ज्ञान प्राप्तकर सदा सर्वदा के लिए निर्मल होकर जन्म मरण से परे हो जाता है और आत्म प्रदेश में व आत्म लोक में विचरण करने लगता है। इसलिए बिगड़े हुए मनुष्यों को सद्गुरु की खोज करनी चाहिए और अपना सुधार करना चाहिए।

## तत्त्वान्वेषण प्रकरण

**ढूंढ़त-ढूंढ़त ढूंढ़िया, भया सो गुना-गुन।**
**ढूंढ़त-ढूंढ़त ना मिला, तब हारि कहा बेचून ॥३४३॥**

**शब्दार्थ**—ढूंढ़त–खोजत, अन्वेषण। भया–हुआ। गुना गुन–गुण से निर्गुण अत्यन्त गुप्त, प्रच्छन्न, लापता, अन्तर्ध्यान। मिला–प्राप्त। हारि–थककर। बेचून–फा॰ (उपमा रहित)।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मानव का सुधार सत्पुरुषों के साथ से हो जाता है। तत्पश्चात् वह मुक्ति का अधिकारी हो जाता है और आत्म अन्वेषण करने पर आत्मतत्त्व को प्राप्त कर लेता है। नीचे उसी का संकेत है।

**मूलार्थ**—संसार में या संसार से परे जब किसी वस्तु का अस्तित्व है तो वह कभी न कभी अन्वेषण करते-करते प्राप्त हो जाती है। सद्गुरु कहते हैं कि जब सत् पुरुषों की संगति से मनुष्य शुद्ध अन्तःकरण वाला हो जाता है। तब उस परम तत्त्व को अन्वेषण करते-करते ढूढ़ते-ढूढ़ते ढूढ़ लेता है। जान जाता है। समझ लेता है। जब पा जाता है। उस परमतत्त्व की जानकारी हो जाती है। वह अनुभव में उसको ज्ञात हो जाता है। जिसको मैं गुण वाला समझता था। जिसको हम हस्त पाद वाला समझता था। जिसको हम तीन गुण वाला समझता था। उससे वह परे अगुण है। उसमें रज, तम और सत्व का भाव नहीं है। वह सम सत्ता वाला है। वह समान रूप से अनुभूत होता है परन्तु कोई रूप रेखा वाला नहीं है। उसकी सीमा उसका सम्पूर्ण खोज करना बिल्कुल मिथ्या है क्योंकि उसकी सीमा ढ़ूढ़ते-ढूढ़ते नहीं मिली वह कहाँ तक है। ऐसा पता नहीं चला, वह असीम है, देश काल की परिधि से परे है। यह मानव, यह आत्मज्ञ योगी बहुत पता लगाया। पता लगाने पर सीमातीत मालूम हुआ और उसके मन, बुद्धि थक गये वहाँ तक नहीं पहुँच सके। क्योंकि जो अनुभूत हुआ उसमें यही लगा कि वह बेचून है। उपमा से रहित है कोई उपमा उसमें दी नहीं जा सकती है। न इति न इति इसी में चरितार्थ होती है।

**बे चूने जग चूनिया, सांई नूर निनार।**
**आखिर ताके बखत में, किसका करों दिदार ॥३४४॥**

**शब्दार्थ**—बे चूने–उपमा रहित, व्यापक तत्त्व। जग–संसार। चुनिया –सं० ( चैन ) चुनना, बनाना, चुना रचना किया। सांई–स्वामी, परमेश्वर। नूर–प्रकाश, आभा, ज्योति, श्री, कान्ति, शोभा। निनार–न्यारा, जूदा, अलग दूर, भिन्न। आखिर–अन्त में, ताके–देखे उसके। बखत–समय, काल। दिदार–दर्शन।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि अन्वेषण करने पर पता चला कि परमतत्त्व असीम है। अनन्त है। उपमा रहित है परन्तु नीचे कहा जा रहा है कि वही उपमा रहित जिसको कोई बनाया नहीं है। जिसका कोई जन्मदाता नहीं है। वही परम प्रभु इस जगत का निर्माण किया है।

**मूलार्थ**—बहुत से लोगों का, बहुत से शास्त्रों का मत है कि संसार को माया बनाती है। मायिक ब्रह्म बनाता है परन्तु सद्गुरु कहते

हैं कि हे सन्तजन ! माया भी स्वतन्त्र रूप से जग का निर्माण नहीं कर सकती । क्योंकि वह चेतनाहीन है और कार्य ब्रह्म भी उसी परमभून्नी का अंश मात्र है । इसलिए जगत का मूल उपादान कारण स्वयं परमप्रभु ही है । जिसको साहब हरि भी कहते हैं । उनका कहना है कि इस जगत का निर्माता वही उपमा रहित तत्त्व है जो सबका स्वामी है । जो सबका कर्त्ता-धर्त्ता है परन्तु वह प्रकाश स्वरूप परमतत्त्व परमेश्वर इस जगत से भिन्न है। सबसे पृथक है । यह नहीं कि जगत उससे उत्पन्न नहीं हुआ है। यदि जगत उससे उत्पन्न हुआ है तो वह भी जगत के जैसा ही होगा । यह कहना अलीक होगा । वह सबसे भिन्न है अन्त में देखने पर, विचारने पर, अन्तिम समय में उसके अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है । जिसका दर्शन किया जाय । जिसकी प्राप्ति की जाय । उसके अतिरिक्त दूसरा है ही नहीं । अन्ततः किसका दर्शन करोगे । दूसरा मायामय होगा । दूसरा जगत होगा भावार्थ यह हुआ कि जिस परमतत्त्व ने इस जगत का निर्माण किया है । जीवों के कर्मानुसार सृष्टि की रचना की है। वही दर्शनीय है । वही पर्शनीय है । उसके अतिरिक्त कोई दूसरा तत्त्व दर्शन के लिए एवं प्राप्ति के लिए नहीं है । क्योंकि सभी प्रकार से वही महिमा मंडित है । सारी कला और सारी शक्ति भी उसी में सन्निहित है । इसलिए अन्त समय में तू देख सकते हो वही एक अद्वितीय सबके लिए उपास्य है और उसी की उपासना अनिवार्य भी है उससे भिन्न किसी देवी-देवता की उपासना नहीं करनी चाहिए क्योंकि देवी-देवता भी उसी एक प्रभु से आश लगाये रहते हैं तो क्यों न उसी को भजा जाय । जो सबका स्वामी है, जो सबका पिता है । जो पिताओं का पिता है ।

**सोई नूर दिल पाक है, सोई नूर पहिचान ।**
**जाके किये जग हुवा, सो बेचून क्यूं जान ॥२४८॥**

**शब्दार्थ**—सोई–वही । नूर–प्रकाश । दिल–हृदय । पाक–पवित्र । पहिचान–प्राप्तकर । जाके–जिसके । किये–करने से, बनाने से । हुवा–उत्पन्न । सो–वह । बेचून–उपमा रहित । क्यूं–कैसे ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो जगत का निर्माण किया है । जो प्राणियों की सृष्टि की है । सब कुछ त्यागकर उसी की प्राप्ति करनी चाहिए । अब नीचे कहा जा रहा है कि वही एक अद्वितीय तत्त्व उपासनीय है ।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे परमतत्त्व के उपासक सन्तजन ! वही प्रकाश स्वरूप परब्रह्म का हृदय पवित्र है अर्थात् उसी की उपासना से तुझ मानव का दिल पवित्र हो सकता है। इसलिए उसी प्रकाश स्वरूप परमतत्त्व की पहचान करो। क्योंकि जिसके द्वारा यह संसार उत्पन्न हुआ है। वही सर्व-समर्थ है। उसके समान कोई दूसरा नहीं है। उस उपमा रहित अनुपमतत्त्व को कैसे जान सकते हो। कैसे उसकी पहचान कर सकते हो। क्योंकि वह इन्द्रियातीत है। मन बुद्धि से परे है। वह अनुभवगम्य है। जिसके लिए, जिसकी प्राप्ति की विधि नीचे की साखी में कही जा रही है। तात्पर्य यह है कि मानव परमतत्त्व को छोड़कर जो भी कुछ प्राप्त करेगा वह क्षणिक होगा। अस्थायी होगा। इसलिए सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति की चेष्टा मानव को नहीं करनी चाहिए। जिससे कोई लाभ होने वाला नहीं है।

## प्रश्नोत्तर ब्रह्मज्ञान प्रकरण

**ब्रह्मा पूछे जननी से, कर जोरि सीस नवाय।**
**कौन बरन वह पुरख है, माता कहु समुझाय ॥३४६॥**

**शब्दार्थ**—ब्रह्मा–लोकपितामह, हिन्दू शास्त्र के अनुसार वह मूल पुरुष जिसने सृष्टि का आरम्भ किया। जननी–आद्या अष्टांगी। जोरि–बद्ध। नवाय–झुकाकर। कौन–किस। बरन–रूप। पुरुख–पुरुष।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि वही परमेश्वर जो पवित्र स्वरूप वाला है। जिसके किये से यह जग हुआ है। उसी की पहिचान करनी चाहिए। नीचे लोक पितामह ब्रह्मा के द्वारा माता आद्या से उस पुरुष के विषय में प्रश्न किया जा रहा है।

**मूलार्थ**—सद्‌गुरु कहते हैं कि हे रामतत्त्व के जानने वाले सन्तजन ! उस परमपुरुष की जानकारी के लिए एवं उसकी प्राप्ति के लिए लोक पितामह ब्रह्माजी ने माता से प्रश्न किया। कर जोरकर एवं शीश नवा-कर कहा हे माता। वह जो आदि पुरुष जो आपका पति है। जो मेरा पिता है। हे जगदम्बे ! वह किस रूप का एवं किस रंग का है। मुझे समझाकर आप कहें। भावार्थ यह है कि आत्मतत्त्व की जिज्ञासा से लोक पितामह चतुर्मुख ब्रह्मा जी ने करबद्ध शीश झुकाकर माता अष्टांगिनी से जानने की जिज्ञासा किया कि वह परमतत्त्व, आत्मतत्त्व किस वर्ण का है ? तद् विषयक वार्ता मैं जानना चाहता हूँ।

**रेख रूप वह है नहीं, अधर धरी नहिं देह ।**
**गगन मंडिल के मध्य में, निरखो पुरख विदेह ।।३४७।।**

**शब्दार्थ**—रेख–रेखा, चिह्न, निशान। अधर–आकाश, निरालम्ब, आश्रयहीन, स्वतः। धरी–धारण। देह–शरीर। गगन–सहस्रार। मंडिल–मंडल। मध्य–बीच। निरखो–देखो। पुरुख–पुरुष, परमात्मा। विदेह–बिना देह का।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि लोक पितामह ब्रह्माजी ने परमतत्त्व की जिज्ञासा के लिए माता से कहा कि मुझे समझाकर कहो कि वह परमपुरुष किस प्रकार का है। नीचे माता कहती है। व उत्तर देती है कि हे पुत्र ! वह पुरुष सबसे परे है।

**मूलार्थ**—माता अष्टांगी कहती हैं कि हे ब्रह्मा ! जिसको तू जानना चाहता है। जो सबको जानता है। जिसको कोई नहीं जानता। उस पुरुष का कोई चिह्न बताने के लिए नहीं है कि इस प्रकार का है। वह अप्रतिम पुरुष कोई रूपवाला नहीं है न उसके समान कोई ऐसी वस्तु है जिसकी उपमा दी जाय कि इस प्रकार का है। वह पुरुष अखिल ब्रह्माण्ड का आश्रयदाता है परन्तु उसका कोई आश्रय नहीं है। वह बिना अवलम्बन का अवस्थित है। वह कभी देह को धारण नहीं किया। वह मुझ माया से बहुत परे है। मैं भी उसको सांगोपांग नहीं जान सकती। परन्तु तुम ब्रह्मा और तेरे भ्रातृगण गगन मंडल जो सहस्रार है। उसके मध्य में ध्यानस्थ होकर देखे। वह पुरुष बिना देह का है वह विदेही है। तात्पर्य यह है कि यदि माता उसको रूपवाला कहती तो वह पुरुष मायिक होता। इसलिए जिस प्रकार का वह पुरुष है। माता के द्वारा उसी प्रकार का वर्णन किया गया है क्योंकि माता उसके बहुत अंश को जानती है।

**धरे ध्यान गगन के मांही, लाये बजर किंवार ।**
**देखि प्रतिमा आपनी, तीनूं भये निहाल ।।३४८।।**

**शब्दार्थ**—बजर–वज्र, इन्द्रिय निरोध। लाये–लगाये। किंवार–कपाट, फाटक। प्रतिमा–अनुकृति, छाया, दर्पण, परछाहीं, जिसका आभास मिलता है। संस्कृत शब्दार्थ (कौस्तुभ कोश) (संस्कृत-हिन्दी कोश) किसी की वास्तविक अथवा कल्पित आकृति के अनुसार बनायी मूर्ति, चित्र, प्रतिबिम्ब (हिन्दी मानक कोश) दर्पण–मूर्ति (राष्ट्र भाषा कोश) मस्तिष्क

का प्रकाश (शब्द कोश सन्तमत वाणी) प्रतिच्छाया प्रतिमूर्ति। ईश्वर का प्रतिबिम्ब, मानने का सिद्धान्त (वेदान्त) (ज्ञान शब्द कोश) स्वस्वरूप।

**मूलार्थ**—ऊपर कहा गया है कि वह रेख रूप वाला नहीं है। उसको अचिन्त्य रूप में चिन्तन करो। तब ब्रह्मा, विष्णु आदि तीनों भाईयों ने माता के उपदेशानुसार सहस्रार के गगन मंडल में शम-दम के द्वारा ध्यान को धारण किया और दशों इन्द्रियों के द्वार को वज्रवत् बन्द कर दिया अर्थात् इन्द्रियों को खींचकर अन्तर्मुखी किया। बहुत काल तक साधना करते-करते तब उस पुरुष का गगन मंडल में प्रतिभान हुआ। जब तीनों भाईयों को उसकी प्राप्ति हो गयी। जब वे तीनों आत्मतत्त्व को जान गये। ब्रह्मतत्त्व को समझ गये। तब वे निहाल हो गये। अर्थात् सन्तुष्ट हो गये। तात्पर्य यह है कि माता के उपदेशानुसार ब्रह्मा, विष्णु एवं भगवान शंकर घोर तपस्या की और तप करके इन्द्रियों का संयम किया। सभी प्रकार से अन्तःकरण को निर्मल किया। तब परमात्मा के दर्शन पाये। दर्शनोपरान्त तीनों सन्तुष्ट हो गये। जन्म-मरण से निवृत हो गये।

**ये मन तो सीतल भया, जब उपजा ब्रह्म ग्यांन।**
**जेहि बसन्दर जग जरे, सो पुनि उदक समान॥३४९॥**

**शब्दार्थ**—ये–ई। भया–हुआ। जेहि–जिसको। बसन्दर–अग्नि, कामाग्नि, क्रोधाग्नि। उदक–जल।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि तीनों भाइयों ने परमतत्त्व की प्राप्ति कर ली। नीचे कहा जा रहा है कि जब परमतत्त्व प्राप्त हो गया तो पूर्णरूप से चित्त शान्त हो गया।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे अचिन्त्य चिन्तक सन्तजन! जब ब्रह्मादिकों ने सत्य आत्मा की प्राप्ति कर लिया। जब उन्हें स्व-स्वरूप की प्राप्ति हो गयी। तब जो ई मन अन्दर रहने वाला है। शीतल हो गया। यह मन शीतल तब हुआ। जब ब्रह्म ज्ञान उत्पन्न हो गया। ब्रह्म-ज्ञान के पहले यह मन शोक-संतप्त अशान्त था। जिस अग्नि से सारा संसार जल रहा था। लोग भस्म हो रहे थे। वह ब्रह्मज्ञान होने पर शान्त हो गया। उदक के समान, जल के समान मन में शीतलता आ गयी। समस्त कामाग्नि बुझ गयी। अब कुछ जानने को न रहा।

भावार्थ यह कि परमतत्त्व की प्राप्ति होने पर मानव शीतलता का अनुभव करता है और अनन्त सुख को प्राप्त होता है।

## आत्मविस्मृति प्रकरण

**जासो नाता आदि का, बिसरि गया सो ठौर।**
**चौरासी की बसि परे, कहे और की और ॥३५०॥**

**शब्दार्थ**—जासो–जिससे। नाता–सम्बन्ध। आदि–आरम्भ का। बिसरि–विस्मृत। ठौर–स्थान। चौरासी–८४ लाख योनियाँ। अण्डज, पिण्डज उखमज, स्थावर, और अन्य।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि परमतत्त्व की प्राप्ति के पश्चात् मन शान्त हो गया। अनन्त शीतलता आ गयी। अब किसी प्रकार का शोक मोह मन में नहीं रहा। नीचे कहा जा रहा है कि यह जीव उस तत्त्व को जब नहीं प्राप्त करता है। जिसको ब्रह्मादिकों ने प्राप्त किया है। तो यह जीव चौरासी लाख योनियों में भ्रमते रहता है।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कहते हैं कि हे प्रबुद्ध सन्तजन ! जिस परम पुरुष से, परमतत्त्व से अनादि काल का सम्बन्ध था। जिसने इन मानवों की सृष्टि की जो इनका पिता था। जो इनका जन्मदाता था, जो इनका भरण-पोषण करने वाला था। उसको ये संसार के जीव विस्मृत हो गये और जहाँ से जिस ब्रह्म योनि से ये उत्पन्न हुए थे। जो सबका प्रकट स्थान है उस ठौर को भी ये भुला दिया। उस परम प्रभु के भूलने के कारण ही यह जीव चौरासी लाख योनियों के वश में पड़ गया। और समझाता हूँ कि हे जीव तुम्हारा चौरासी लाख योनियों से तभी छुटकारा होगा जब तू उस अनादि पुरुष को जानोगे तो यह जीव और की और ही कहने लगता है। अर्थात् जिस वस्तु से 'इसको सम्बन्ध करना चाहिए था जो इसे सत्ता स्फूर्ति दे रहा है। जो आदि तत्त्व है, उसके निवास स्थान को अर्थात् सहस्त्रार में जहाँ वह विराजता है। वहाँ जाने का यह मार्ग ही भूल गया। वहाँ न जाने के कारण तिर्यक आदि योनियों में इसको जाना पड़ा। अब माया मोह से इतना ग्रसित हो चुका है कि मैं कहता हूँ कि तू उस परमतत्त्व की प्राप्ति कर जिसको ब्रह्मादिक और सनकादिकों ने प्राप्त किया। तो यह मुझे संसार की कथा सुनाने लगता है। अपने सांसारिक दुःखों का ही वर्णन करता है और मेरी बात को नहीं सुनता है।

## समालोचना प्रकरण

**अलख लखौं अलखे लखौं, लखौं निरंजन तोहिं ।**
**हौं कबीर सबको लखौं, मोको लखे न कोइ ॥३५१॥**

**शब्दार्थ**—अलख–अदृश्य, जो देखने में न आवे । लखौं–देखो प्राप्त किया । अलखे–जो दिखाई न दे, अलखिया, जोगी, नाथपंथी, साधु । निरंजन–निः+अंजन, परमतत्त्व, निरंजनी, सम्प्रदाय का व्यक्ति । हौं–मैं । कबीर–कबीर साहब । मोको–मुझको । लखे–देखे ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जिस परमतत्त्व से इस जीव का अनादिकाल से सम्बन्ध था । उसको तो यह विस्मृत हो गया और उसके विषय में कहता है कि वह प्राप्त होने वाला नहीं है । वह अलक्ष है, दृष्टि से परे है तो भला उसको कैसे जाना जा सकता है जिसका उत्तर नीचे सद्गुरु दे रहे हैं ।

**मूलार्थ**—सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे मानद सन्तजन ! ये अलखिया लोग उस प्रभु को उस परमात्मा को अलख-अलख चिल्लाते हैं । ये नाथपंथी योगी कहते हैं कि वह दृष्टिगत नहीं होता । इसी प्रकार से निरंजनी सम्प्रदाय वाले भी कहते हैं कि वह तो निरंजन है । वह माया से परे है । उसकी प्राप्ति दुर्लभ है केवल निरंजन अलख-अलख कहने से मोक्ष मिल जायेगा । इस पर सद्गुरु कहते हैं कि अरे अलख-अलख, निरंजन-निरंजन ! चिल्लाने वाले मैं कबीर तुझ अलखियों को भी देखता हूँ कि क्या तुम कर रहे हो ? क्या तुम्हारे साधन-बाधन हैं और इसी प्रकार से जो इन्द्रियातीत है, जो देखने में नहीं आता जो तुम्हारे सहित सारे भूमण्डल का स्वामी है । उसको भी मैं देखा हूँ । उसकी प्राप्ति कर लिया हूँ । तुम भूल न कर क्योंकि उसकी प्राप्ति की विधि तू नहीं जानता । इसी प्रकार से निरंजनी सम्प्रदाय वालों से भी कहते हैं कि हे निरंजनियों ! तुझे मैं देख रहा हूँ । तुम लोग उस परमतत्त्व निरंजन से बहुत दूर हो गये हो क्योंकि तुम तमोगुणी हो गये हो । इसलिए उस प्रभु निरंजन को तू नहीं जान सका । जिसकी प्राप्ति मैं कर लिया हूँ और जिसकी प्राप्ति के लिए तुमसे कहता हूँ । मैं कबीर सबको लखा, सबका परीक्षण किया, सभी सम्प्रदायों में गया, सबका क्रिया-कलाप देखा केवल खाने-पीने के लिये लोग लड़ते हैं । ऊँच-नीच पीढ़ा के लिये लड़ते हैं । दायें से बायें बैठने के लिए लड़ते हैं । सम्प्रदाय के विमोह में एक

दूसरे सम्प्रदाय को गाली देते हैं। इसलिए आप लोगों से वह प्रभु बहुत दूर हो गया है अवश्य आपके लिये अलभ्य है। मैं सबको देखा विचारा परन्तु मैं जिस आत्मप्रदेश में विचरण करता हूँ। जिस आत्म लोक में निवास करता हूँ। वहाँ मुझको कोई देख नहीं रहा है।

**हम तो लखा तिहुँ लोक में, तू क्यों कहे अलेख।**
**सार सब्द जाने नहीं, धोखे पहिरा भेख ॥३५२॥**

**शब्दार्थ**—हम–सन्त महात्मा, कबीर। तिहुँ–तीनों। सार सब्द–सत्य शब्द, प्रणव, ओंकार, आत्म प्रदेश का मार्ग। पहिरा–पहना। भेख–वेश, साधु बाना।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि मैं कबीर जिस आत्म स्थिति में हूँ। उस स्थिति को कोई समझ नहीं पा रहा है। मैं उस परमतत्त्व में एकी भाव होकर जगत का द्रष्टा हो गया हूँ। अब मैं अचिन्त्य रूप में विचरण करता हूँ इसलिए वह स्थिति सबकी समझ में नहीं आ रही है। नीचे कहते हैं कि उसकी प्राप्ति उसका अनुभव मैं सांगोपांग कर लिया हूँ। इसलिए आप मेरी स्थिति को समझो।

**मूलार्थ**—जो तत्त्व दुष्प्राप्य है जिसको कोई पुरुष नहीं जानता है। उसको संत महात्मा तीनों लोक में व्यापक रूप से अनुभव करते हैं। जिसको तू कहता है कि वह अलक्ष्य है। अप्राप्य है। मैं कबीर ऐसा नहीं मानता। तू उसको इसलिए नहीं जानता कि तू सार शब्द को नहीं जानता। जिसके द्वारा स्वस्वरूप की जानकारी होती है, जिसके द्वारा का अलख पुरुष को जाना जाता है। उस परम तत्व को न तेरे गुरु जानते हैं, न तू जानता है। तू भ्रम वश धोखे में केवल साधु और आत्मज्ञानी का वेश बना लिया है। भावार्थ यह है कि मैं कबीर उस परम तत्त्व का अनुभव सारे भूमण्डल में किया है। अखिल ब्रह्माण्ड में किया कि वह एक सत्य सम्पूर्ण जगत् में विराजमान है और उसकी प्राप्ति हो सकती है। तू उसको क्यों अलेख कहता है ? वह अलेख होते हुए भी देखा जा सकता है। उसको देखने की विधि मैं और मेरे गुरुदेव रामानन्द स्वामी जानते हैं। तू इसलिए नहीं जान सकता कि तू सार शब्द नहीं पाया। तू (सत्य) सदुपदेश किसी से नहीं लिया। बेकार धोखे में पड़कर भगवान के दास का बाना पहन लिया है। यह तुझे शोभा नहीं देता है। क्योंकि यह बाना, यह वेश ब्रह्मज्ञानियों के हैं, आत्मज्ञानियों के हैं जिसको तू धारण किया है।

## उपसंहार साक्षी प्रकरण

**साखी आंखी ग्यांन की, समुझि देखु मन मांहि ।**
**बिनु साखी संसार का, झगरा छूटत नाहिं ॥३५३॥**

**शब्दार्थ**—साखी-साक्षी, फा०-गवाह, आत्मतत्त्व । आँखि-अक्षी, नेत्र, आँख, ज्ञान, आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान समाज ज्ञान । समुझि-समझो । देखु-देखो । मांहि-में । बिनु-बिना । नांहि-नहीं । झगरा-जन्म मरण से छुटकारा । वाद-विवाद ।

**सम्बन्ध**—ऊपर कहा गया है कि जो लोग सम्प्रदाय के घेरे में बंधे हुए हैं। जो लोग लीक पर चलने वाले हैं वे सार शब्द को नहीं जानते मात्र दिखावटी वेश धारण किये हुये हैं परन्तु जो सबका साक्षी है। जो साक्षी स्वरूप है। उस परम भूमा को नहीं जानते। नीचे कहते हैं कि अब मैं कहते-कहते थक गया। सभी प्रकार की बातें समझाया सब कुछ कह दिया परन्तु ये संसारी जीव, ये साम्प्रदायिक लोग, ये फिरकेपरस्त आदमी मेरी बात को समझे नहीं न समझने की कोशिश करते हैं। क्योंकि बिना मेरी बात समझे हुए संसार में शांति नहीं आ सकती है। इसलिए मेरी बात को समझने की कोशिश करो।

**मूलार्थ**—सद्गुरुदेव कबीर जिज्ञासु संतों से कहते हैं कि हे परम तत्त्व के जानने वाले संत जन! जो मैं ऊपर साखी दोहे कह आया हूँ। ये सब आत्म ज्ञान की आँखें हैं। जो इन साखियों का जो इस बीजक का नित्य प्रणयन करेगा। उसकों साक्षी स्वरूप का ज्ञान अवश्य हो जायेगा। आप लोग निश्चित रूप से अपने मन में समझकर देख लें। साक्षी स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति के बिना, जो संसार का झगड़ा है। जो नित्य का रगड़ा है। जो वाद-विवाद है। जो जन्म मरण है। वह छूट नहीं सकता है। जब तक साक्षी स्वरूप परम तत्त्व की प्राप्ति नहीं करोगे। तब तक कुशल नहीं है। क्योंकि वह परमात्मा सबके कर्मों को देखने वाला साक्षी है। उससे तू कोई सुकर्म, कुकर्म छिपा नहीं सकते हो। इसलिए जितने काम्य-कर्म हैं उन काम्य कर्मों का परित्याग कर इस बीजक को पढ़कर साक्षी (साखी) प्रकरण का अध्ययन करके उस सर्व साक्षी स्वरूप परम तत्त्व की प्राप्ति करो। तभी सभी विवादों से और जन्म मरण से रहित हो जाओगे। इसलिए मैं बार-बार कहता हूँ

कि उस परम प्रभु की प्राप्ति करो। जो संसार सागर से तुझे पार करने वाला है और गुरु के द्वारा उपर्युक्त मेरे पदों को मेरे दोहों को समझने का प्रयत्न करो। उसके भीतर जो आख्यायित है। उसकी प्राप्ति करो।

ॐ इति शम्

आचार्य गंगाशरण शास्त्री कृत बीजक टीका मनोरमा समाप्त।
सद्‌गुरु कबीर मंदिर, कबीरचौरा मठ, वाराणसी।

## बीजक माहात्म्य

**बीजक कहिये साखि धन, धन का कहै संदेस।**
**आतम धन जेहि ठौर है, वचन कबीर उपदेश ॥१॥**

**शब्दार्थ**—बीजक-एक प्रकार की बही होती है जिसमें व्यापारियों के लेन-देन के सांकेतिक लेख रहते हैं इस प्रकार से बीजक के दो अर्थ होते हैं। व्यापारी लोग जो ग्राहकों के यहाँ समान भेजते हैं। उनके मूल्य या व्यय इत्यादि की सूची साथ में भेजते हैं उसको भी 'बीजक' कहा जाता है। दूसरा 'बीजक' सांकेतिक लिखा जाता है। पुराने समय में जो लोग धन को गाड़ कर रखते थे तो उसकी एक सूची बनाते थे। जो सांकेतिक सूची होती थी। उस 'बीजक' की सूची को और उस अनुलेख को केवल उनके परिवार वाले या उनकी जाति वाले ही समझते थे। यहाँ पर बीजक का तात्पर्य वही सांकेतिक सूची है जो गुरु के अतिरिक्त दूसरा नहीं समझ सकता। साखि–साक्षी। आतम धन–आत्मतत्त्व, सन्देश, संवाद। आतम–आत्मा, परब्रह्म। जेहि–जिस। ठौर–स्थान।

**मूलार्थ**—इस सद्‌गुरु कबीर बीजक में केवल साक्षी रूपी धन का सन्देश कहा गया है। सन्देश बहुत प्रकार के होते हैं परन्तु यह बीजक उस ठौर को बताता है जहाँ पर आत्मा रूपी धन विराजमान है और सद्‌गुरु कबीर का वचन उसके लिए मात्र उपदेश है। तात्पर्य यह कि इस बीजक को साक्षी धन कहना चाहिए और ऊपर साक्षी रूपी धन का यह बीजक सन्देश देता है। जिस हृदय स्थली में आत्मा रूपी धन विराजमान है। उसी को बताने के लिए कबीर साहब का वचन और उपदेश है।

**देखे बीजक हाथ ले, पावै धन तेहि सोध।**
**याते बीजक नाम भौ, माया मन को बोध ॥२॥**

**शब्दार्थ**—ले-लेकर। पावै-प्राप्त। सोध-खोजकर। यातें-इसलिए। बीजक-बीजक ग्रन्थ इसका नाम पड़ा है।

**मूलार्थ**—जो इस बीजक ग्रंथ को जो सद्गुरु कबीर का बनाया हुआ है। हाथ में लेकर देखता है। मन लगाकर मनन चिन्तन करता है। तो वह पुरुष आत्म रूपी धन को इस बीजक के द्वारा अन्वेषण करके प्राप्त कर लेता है। आत्मा रूपी धन बताने के कारण ही इस ग्रंथ का नाम सद्गुरु वाणी वचनों का नाम बीजक हुआ है। जो माया मन को बोध कराने वाला है। अर्थात् माया क्या है मन क्या है? आत्मा क्या है? परमात्मा क्या है? परब्रह्म क्या है? जीव क्या है? इन सबकी जानकारी यह बीजक ग्रंथ देता है।

**आस्ति आत्मा राम है, माया मन क्रित नास्ति।**
**याकी पारख लहै जथा, बीजक गुरुमुख आस्ति ॥३॥**

**शब्दार्थ**—आस्ति-सं० ( भाव, सत्ता, विद्यमानता ) मन-चित्त, चार अन्तःकरण में एक। माया-छल छदम्म जो है भी नहीं है भी, जिसका अस्तित्व मध्य में है। क्रित-किया। नास्ति-नहीं, असत्य, शून्य। जथा-यथा, जैसे, जिस प्रकार।

**मूलार्थ**—यह बीजक सत्य और असत्य का ज्ञान कराने की कुंजी है और इस बीजक ग्रंथ में आत्माराम की विद्यमानता और उपस्थिति मानी गयी है। अर्थात् इस बीजक ग्रंथ का प्रतिपाद्य विषय आत्मतत्त्व है व राम तत्त्व है जो प्रत्येक मनुष्यों के हृदय में विराजमान है। जो व्यापक तत्त्व है। वह है आत्माराम और मन और माया जो है। इनसे आत्मा राम भिन्न है। तथा वह आत्मा माया मन के द्वारा भी निर्मित नहीं हुआ है। वह अकृत्रिम तत्त्व है। यथा आत्मा के समक्ष माया मन मिथ्या हैं। कुछ नहीं है। इस आत्मा की जानकारी। पारख कहिये विवेक के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। जैसे-पारख करके हीरा को समझा जा सकता है उसी प्रकार से पारख के द्वारा व विवेक के द्वारा हृदयस्थ आत्मा राम को जाना जा सकता है परन्तु प्रतिज्ञा यह है कि इस बीजक ग्रंथ को गुरु मुख द्वारा समझना चाहिए। क्योंकि यह बीजक वाणी गुरु मुख की वाणी है। अर्थात् कबीर साहब के मुख की वाणी है। इसलिए यह गुरु गम्य है। अनभिज्ञ आदमी इसको समझ नहीं सकता।

**पढ़े गुने अतिप्रिति जुत, ठहरि के करै विचार।**
**थिरता बुधि पावै सही, वचन कबीर निरधार ॥४॥**

**शब्दार्थ**—अति–अत्यन्त, विशेष। जुत–सहित। ठहरि–स्थिर होकर, शांत मन से। विचारि–चिन्तन, विवेक। थिरता–स्थिरता शांति। बुधि–प्रज्ञा। सही–वास्तव में, सत्य निश्चय। वचन–वाणी। कबीर–कबीर साहब। निरधार–निराधार अवलम्बन वा आश्रय रहित जिसे सहारा न हो या जो सहारे पर न हो। बिना अवलम्बन या सहारे का। अ० चेतन, आत्मा, ब्रह्म।

**मूलार्थ**—इसलिए इस गुरुवाणी को अत्यन्त प्रेम के साथ पढ़ना-गुनना चाहिए। वा अध्ययन अध्यापन करना चाहिए। तथा इसके समझने के लिए जल्दी वाजी न करके स्थिर भाव से चिन्तन-मनन व विचार करना चाहिए। जब इस ग्रंथ को स्थिर चित्त से विचार करेगा तब जिज्ञासु पुरुष को फल स्वरूप स्थितप्रज्ञ बुद्धि उत्पन्न होगी। जव इसको स्थित-प्रज्ञा हो जायेगी तो यह सही में परमतत्त्व को पहचान सकेगा अर्थात् बीजक को ठोक से अध्ययन करने पर इसकी बुद्धि में स्थायित्व ठीक से आ जायेगा। मन, बुद्धि बाह्य विषयों का परित्याग कर आत्मा की ओर उन्मुख हो जायेंगे। यह सद्गुरु का वचन निराधार है। निश्चयात्मक है। इसमें किसी प्रकार का लाग-लपेट नहीं है। अर्थात् निराधार जो आत्मतत्त्व है। उसका यह 'बीजक' ग्रंथ बोधक है इसलिए पूर्णरूपेण शुद्ध मन से इस 'बीजक' ग्रंथ का मनन-चिन्तन करना चाहिए।

**सार शब्द टकसार है, बीजक जाको नाम।**
**गुर की दया से परख भई, वचन कबीर तमाम ॥५॥**

**शब्दार्थ**—सारशब्द–सत्य शब्द, आत्मबोधक उपदेश। सार–उत्तम, श्रेष्ठ। शब्द–उपदेश, प्रणव, ओंकार। टकसार–हि० (ऊँची या प्रामाणिक वस्तु) सत्य वस्तु निर्दोष वस्तु अ० आत्मा, स्वरूप, चेतन, निजरूप। याको–इसका। तमाम–सम्पूर्ण, पूरा, सब, समाप्त।

**मूलार्थ**—इस 'बीजक' ग्रंथ का जो निरूपित तत्त्व है। वह आत्म-तत्त्व है। परमतत्त्व है जो अवलम्बन हीन है। जो स्वयं अपने में आप है। यह बीजक ग्रन्थ सार शब्द का टकशाल है, खजाना है, राशि है। इसमें आत्म विषयक एवं आत्मा को निर्देश करने वाले सब उपदेश भरे पड़े हुए हैं। जिसके कारण इस ग्रन्थ की बीजक नामक संज्ञा पड़ी है। और यह श्रीसद्गुरु की कृपा से गुरुवाणी परख में आयी है। इसका रहस्य जाना गया है। इस बीजक ग्रन्थ में जितनी वाणियाँ हैं। उन सम्पूर्ण वाणियों को गुरु कृपा से समझा गया है।

**पारख बिनु परिचय नहीं, बिनु सतसंग न जान।**
**दुविधा तजि निरभै रहे, सोई संत सुजान ।।६।।**

**शब्दार्थ**—दुविधा-दो विधा, दो तरफ का, दो चित्त, भ्रम द्विचित्त।

**मूलार्थ**—यह बीजक ग्रन्थ बिना विवेक के परिचित नहीं होगा साथ ही इसको समझने के लिए सन्त गुरुओं का संग करना चाहिए। बिना सन्त सद्गुरु के संगत से इसके रहस्य को जाना नहीं जा सकता। इसको समझने के लिए पूर्ण विवेक होना चाहिए। जबतक ठीक से इसकी पारख नहीं करेगा तब तक इसके भाव से परिचित नहीं होगा। इसलिए दुविधा को त्यागकर निर्भय हो जाना चाहिए। अर्थात् जो दो तरफ बुद्धि है माया को भी चाहती है और परमतत्त्व को भी चाहती है परन्तु दो में कुछ भी नहीं मिल रहा है। जिसके कारण मन में भ्रम हो गया है। उस भ्रम को त्यागकर परमतत्त्व पर पूर्णरूपेण निर्भय हो जाना चाहिए और जो निर्भय हो जाता है वही सन्त, वही महात्मा सुजान कहिये अच्छा व्यक्ति बन जाता है, सज्जन हो जाता है।

**नीर छीर निरनै करे, हंस लछ सहिदान।**
**दया रूप थिर पद रहै, सो पारख पहिचान ।।७।।**

**शब्दार्थ**—नीर-जल, जड़, माया। छीर-दुग्ध, आत्मा। निरनै-विवेक, वास्तविक निचोड़, फैसला। हंस-संत महात्मा। लक्ष-लक्षण। सहिदान-चिह्न, पहिचान। थिर-स्थित। पद-स्व स्वरूप, आत्मतत्त्व गुरु वाक्य। सो-वह। पारख-ज्ञान, विवेक, पहिचान-चिह्न।

**मूलार्थ**—सत्संग करके सब प्रकार से इस बीजक ग्रन्थ को समझकर आत्मा, अनमत्ना का निर्णय करो। क्या सत्य है? क्या असत्य है? क्या आत्मा है? क्या अनात्मा है? इसको बीजक ग्रन्थ से विवेक करके दुर्बुद्धि निकाल कर अन्तःकरण में दृढ़ निश्चय करो। अर्थात् माया को और ब्रह्म को अलग-अलग करो। यही हंस स्वरूप आत्मज्ञानी का लक्षण है। और उसी को पहचानना चाहिए और प्रमाण मानना चाहिए अर्थात् हंस का लक्षण पहचानना चाहिए। पश्चात् सभी प्राणियों पर दया का भाव रखना चाहिये। हिंसा का त्याग करें। पूर्णरूप से अहिंसक वृत्ति धारण कर रागद्वेष से निवृत्त होकर जो आत्मपद है, जो परमपद है। जो परमतत्त्व है उसमें स्थिर भाव से आरुढ़ रहें। सोई वही पारख की पहचान है। वही आत्मज्ञान का लक्षण है क्योंकि—

आपा तजे हरि भजे, नख सिख तजै विकार ।
सब जीवन से निरबेर रहे, साधु मता है सार ॥

इसी के अनुसार जीवन यापन करे और आचरण व्यवहार करें ।

**देह मान अभिमान के, निरहंकारी होय ।**
**बर्न कर्म कुल जाति ते, हंस निनारा होय ॥८॥**

**शब्दार्थ**—देह-शरीर। मान-सम्मान, मान्यता । निरहंकारी-अहंकार रहित । बर्न-रंग, चार वर्णों में एक वर्ण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र । इनमें एक । कर्म-उत्तम कर्म । कुल-अच्छे वंश का, खान दानी । जाति-ब्राह्मणादि । हंस-हंस एक प्रकार का पक्षी जो दूध और जल को अलग अलग करता है । संत महात्मा । निनारा-पृथक अलग भिन्न ।

**मूलार्थ**—ऊपर कहे हुए अर्थ के अनुसार निर्वैर, निष्काम होकर, स्व स्वरूप में विचरण करे। और जो देह का धर्म, मान सम्मान है। मान मर्यादा आदि का अभिमान है। उन सभी प्रकार के देह सम्बन्धी दोषों से एकदम मुक्त होकर विनम्र भाव से रहे। पूर्ण रूप से सभी प्रकार के अहंकारों का त्याग कर दें। वर्ण का अभिमान न करें। मैं ब्राह्मण हूँ, क्षत्रिय हूँ, मेरा कर्म उत्तम है, मेरा कुल श्रेष्ठ है। मेरी जाति सर्व पूज्य है। इत्यादि जो वर्णाश्रम का धर्म है। उन सबों को त्याग कर हंस के समान निर्मल महात्मा के समान सबसे पृथक हो जाना चाहिए।

**जग विलास है देह को, साधु करो विचार ।**
**सेवा साधन मन कर्म ते, जथा भक्ति उर धार ॥९॥**

**शब्दार्थ**—जग-संसार। विलास-विलसन, विलसना भोग विलास करना, भोगना। साधु-सन्तों, साधुजन। विचार-विवेक, निर्णय। सेवा-संत, गुरु, माता-पिता आदि की सेवा। साधन-चतुष्टय साधन, शम, दम, श्रद्धा आदि। मन-मन से। कर्म-कर्म से। यथा-जैसे हो। उर धार-हृदय में धारणा करें।

**मूलार्थ**—ऊपर कहा गया है कि सभी प्रकार के विकारों को त्याग कर एकदम निराला हो जाना चाहिए। हंस की भाँति विविक्त सेवी बनकर हृदय रूपी सरोवर में विचरण करना चाहिए क्योंकि जो संसार का भोग विलास है। यह केवल शरीर तक है यह स्थायी नहीं है। यह क्षणिक है। स्त्री सुख चालीस वर्ष तक, पुत्र सुख १२ वर्ष तक, धन

जब तक पास में रहे तब तक ये तीनों सुख अस्थायी हैं। इसलिए इसका परित्याग कर हे साधुजन ! आप लोग विचार करके देख ले। वास्तविक रूप में संसार का सुख नाशवान है। इसलिए सबका परित्याग कर सामाजिक सेवा, सन्त सेवा, माता-पिता, गुरु को सेवा, बड़ों की सेवा एवं बड़ों का आदर। शम, दम रूप साधनों को मन से, कर्त्तव्य से, वचन से पालन करें और साधें। यथाशक्ति, यथामति परमात्मा की भक्ति को, गुरु की भक्ति को अपने निर्मल हृदय रूपी महालय में धारण करें। तभी इस 'बीजक' ग्रन्थ का, इस 'बीजक' ग्रन्थ के प्रणयन का फल उपलब्ध होगा। वह फल आत्मज्ञान होगा। वह फल स्वरूप की प्राप्ति होगी। इसलिए जब तक शरीर है तब तक इसको सत्कर्म में लगाओ और निष्काम भाव से भजन संकीर्तन, प्रभु उपासना, गुरु पूजा करो। इसी में जीवों का कल्याण है।

## हरि गीतिका

गुरु ग्रन्थ ज्ञान महान, बीजक परम पावन जानिये।
सुविचार करि सुविवेक करि, अति कथन मन से मानिये॥
करि भाष्य लह मन मोद अति, गति परम श्रेष्ठ बखानिये।
सु समाप्त यह टीका हुई, मद मोह सबही हानिये॥१॥

**दोहा**—शनि दिन बहुत पुनीत है, पंचम तिथि शुभ मान।
माघ सुदी शुभ पक्ष में, विक्रम सम्वत जान॥१॥
दो सहस्र चौवालिस में, पूर्ण सुटीका भान।
सद्गुरु कबीर भवन में, जानत सकल जहान॥२॥
चौरा सत्य कबोर की, मध्य बनारस जान।
तेहि मध्ये हम बैठ के, टीका लिखा सुजान॥३॥
श्री हरि सत्य कबीर गुरु, सद्गुरु रामबिलास।
जिनकी कृपा कटाक्ष से, सफल मनोरथ भास॥४॥
श्री आचार्य वर बाइस के, परम दयालु स्वभाव।
जिनकी कृपा अगाध थी, ताते सुन्दर दाव॥५॥
परम दयालु सु संत थे, मनहु दया अवतार।
ते प्रेरित बहुतै किये, ताते शरम अपार॥६॥
बहुत विचार विमर्श दिये, अश्वासन भी दीन्ह।
गुरु सम मम शुभ चितका विद्या भी कुछ दीन्ह॥

श्री स्वामी शुभ नाम है, रामेश्वर आनन्द।
तिनके रिणी अनन्त हम, दिये सो परमानन्द ॥८॥

दिये सुझाव बहु भाँति सो, टीका माहि अपार।
बार बार वन्दन किये, जाय न यमके द्वार ॥९॥

श्री गुर्जर प्रदेश में, नगर बड़ौदा मांहि।
श्री कबीर मंदिर जहाँ, उदक द्वार सो आंहि ॥१०॥

श्री महन्त तेहि भवन के जानत सकल जहान।
बुद्धि विवेक वैराग्य युत, पंडित बड़े महान ॥११॥

कबीर चौरा धाम का, शाखा परम ललाम।
तहाँ जाय दर्शन किये जनपावत विश्राम ॥१२॥

नमो गुरु माता पिता, जिनकी यह है देह।
तिनके पुण्य प्रभाव से, मन में उपजा नेह ॥१३॥

जो पढ़ि है इस तिलक को, सो भव सागर पार।
जन्म मरण होवे नहिं, सद्‌गुरु कृपा अपार ॥१४॥

गंगा शरण विनीत अति, सब सन्तन के पास।
आश्रम वासिन की कृपा, पूर्ण हुई सब आस ॥१५॥

और हमारे गुरु जन जु, मुझ पर करते प्रेम।
तिन सबकी अति कृपा से, विघ्न हुआ सब क्षेम ॥१६॥

जेते जीव जहान में, सो सब भय अनुकूल।
तिनका मैं वन्दन करूँ, बैठि निम्नगा[1] कूल ॥१७॥

सबकी जो है आतमा, निर्गुण ब्रह्म महान।
जिसमें निष्ठा अधिक मन, सो मेरो भगवान ॥१८॥

ताकी प्राप्ति सुहेतु से, टीका लिखा बनाय।
सो स्वामी कृपा किया, मुझ पर रीझा आय ॥१९॥

करता उसकी बन्दना, अहि निश बारम्बार।
जेहि समान नहीं दूसरा, सद्‌गुरु अपरम्पार ॥२०॥

अब हृदय में बैठि कर, दीजै शांति सु चैन।
वाणी लेत विराम अब, आगे नहिं कछु बैन ॥२१॥

---

१. गंगाजी के तट पर

श्री गुरु त्रिवेणी नमो, दिये जो अक्षर ज्ञान।
कान कुब्ज उपध्याय हैं, जो अतिसय मति मान ॥२२॥

आचार्य गंगाशरण शास्त्री कृत बीजक टीका मनोरमा समाप्त।

सद्‌गुरु कबीर और निज गुरु श्री आचार्य रामबिलास साहब की एवं आचार्य श्री अमृत साहब की कृपा से एवं परम प्रभु परमात्मा की कृपा से आज तिथि माघ शुक्ल पक्ष पंचमी विक्रम संवत् २०४४ दिन शनिवार तदनुसार दिनांक २२-१-१९८८ ई० को यह टीका सवा आठ बजे प्रातः दिन में समाप्त हुई।

ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।



# शुद्धि-पत्र

| पृ० | पं०सं० | अशुद्ध | शुद्ध | पृ० | पं०सं० | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | ४ | कहुँ | कहूँ | २७ | २२ | हा | हो |
| २ | १५ | मूलहीं | मूलहिं | २८ | २० | वह | उस |
| ४ | ४ | भाईयों | भाइयों | २९ | १२ | किया था | की थी |
| ४ | १२ | ढ़के | ढके | २९ | २५ | वह मैं ही हूँ | वह तुम ही हो |
| ७ | ६ | उसको | उसका | २९ | २५ | समीप– | समीप में बैठना |
| ७ | १७ | व्रह्मण्ड | व्रह्मण्डा | ३० | १ | निश्चय | निहचै |
| ,, | ,, | व्रह्माण्डा | बह्माण्ड | ३३ | २ | होता | होते |
| ,, | २१ | षटाश्रमों | षडाश्रमों | ३३ | १० | हाकर | होकर |
| ८ | ११ | खण्डपरसू | खण्डपरशु | ३४ | १ | उसा | उसी |
| १२ | २० | ऊवार | उबार | ३४ | ६ | स | से |
| १३ | १७ | गायत्री | गाइत्री | ,, | २३ | प्रवृत | प्रवृत्त |
| १४ | २३ | चैतन | चेतन | ३६ | १३ | सहस्त्रार्जुन | सहस्रार्जुन |
| १५ | १ | को | का | ३९ | २१ | निवृत | निवृत्त |
| ,, | ३ | हूँ | हैं। | ,, | २२ | निवृति | निवृत्ति |
| ,, | ७ | प्रत्येगात्मा | प्रत्यगात्मा | ,, | २३ | ,, | ,, |
| १६ | २० | नीचली | निचली | ४० | २२ | ईशत्व | ईशित्व |
| १७ | १४ | पृथ्वी (प्रथम) | पृथ्वी | ४१ | २ | वाहन | बाहन |
| १९ | १८ | भक्ति | भगति | ,, | १० | निद्धियों | निधियों |
| २२ | १६ | होता है | होते हैं | ,, | २३ | दुर | दूर |
| ,, | १९ | को | का | ४२ | २४ | वही | बही |
| २४ | १० | गिलकर | मिलकर | ४३ | ९ | सकामी | सकाम |
| २४ | २३ | कहुँ | कहूँ | ४४ | ९ | अधिष्ठात्री | अधिष्ठाता |
| २५ | ७ | उसका | उसकी | ,, | १५ | नहीं जाते | नहीं जानते |
| ,, | ,, | कहा जा सकता | कही जा सकती | ४८ | १७ | का पहचान | की पहचान |
| २६ | २६ | विद्या– | विद्यामूला | ५१ | ८ | व्यवसायिक | व्यावसायिक |
| २७ | ७ | दुसाध्य | दुस्साध्य | ,, | ,, | शृंगाल | शृगाल |
| २७ | ८ | छट्ठी | छठो | ५१ | १८ | बंचक | वञ्चक |
| ,, | १० | काई | कोई | ५२ | १६ | कह | काहू |

| पृ० | पं०सं० | अशुद्ध | शुद्ध | पृ० | पं०सं० | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ५३ | १५ | पशुयोनी | पशुयोनि | ६८ | २ | भींगती | भींगता |
| ५४ | १७ | जगन्नियत्ता | जगन्नियन्ता | ,, | ८ | धधे | धंधे |
| ,, | १९ | मैंथन | मैथुन | ६८ | २२ | अपने | अपनी |
| ,, | २१ | तितीक्षा | तितिक्षा | ७१ | ३ | होइ | होई |
| ५५ | ४ | लगा | लगी | ,, | ९ | गड़ासा | गँवासा |
| ,, | १० | जोव | जीव | ,, | १० | गरु | गुरु |
| ,, | ११ | ऊबर | उबर | ७२ | १० | टोकाकारों | टीकाकारों |
| ५५ | १३ | हो जाय | हो जाँय। | ७७ | ८ | जुवारि | जुआरि |
| ,, | १८ | झार | झारि | ,, | १९ | खल | खेल |
| ,, | २५ | उसी | उन्हीं | ,, | २६ | अवेद्ध | अविद्ध |
| ५७ | १६ | ये छढी | इन छली | ७८ | १४ | प्राप्ती | प्राप्ति |
| ५८ | ४ | नालकण्ठ पक्षा | नीलकण्ठ पक्षी | ७९ | ६ | कुडलिनी | कुण्डलिनी |
| ,, | १९ | ब्रह्मण का | ब्राह्मण से | ,, | २० | इनकी | इनका |
| ,, | २१ | जीह्वा | जिह्वा | ,, | २० | शून्न | शून्य |
| ,, | २४ | ,, | ,, | ,, | २१ | ,, | ,, |
| ५९ | १३ | छूवा | छुवा | ८१ | २ | किया है | किये हैं |
| ,, | ,, | मरते हो | मरते ही | ,, | ७ | मैं | में |
| ,, | १४ | वाल्मीकी | वाल्मीकि | ,, | २३ | किया है | किये हैं |
| ६० | १३ | पूजाने | पुजाने | ८२ | ४ | तहं | तहँ |
| ६१ | १८ | हिन्दूओं | हिन्दुओं | ,, | १६ | गूरुत्ववाला | गुरुत्ववाला |
| ,, | २२ | जिनका कोई सिंग पूँछ | जिनकी कोई सींग पूँछ | ,, | १८ | बार | वार |
| | | | | ८४ | २ | भष्म | भस्म |
| ,, | २६ | धर्मां | धर्मों | ,, | ५ | ,, | ,, |
| ६२ | ३ | नहाँ | नहीं | ,, | १० | भ्राग | भृङ्ग |
| ६३ | १७ | किया है | की है | ,, | १२ | तद्भवत | तद्भवति |
| ६४ | २ | झूट्ठों | झुट्ठों | ८५ | १० | उसकी | उनकी |
| ,, | १६ | वाष्कलिवामा | वाष्कलि नामक | ,, | १२ | आया है | आये हैं |
| ,, | १७ | वलात् | बलात् | ८६ | १९ | दू:ख | दु:ख |
| ,, | १८ | जो | जी | ८७ | २४ | यमलाक | यमलोक |
| ,, | २५ | वाष्कली | वाष्कलि | ८८ | ११ | बड़ा | बड़ी |
| ६५ | १० | बामन | वामन | ,, | ,, | इकठ्ठा किया | इकट्ठी की |
| ६६ | १६ | पिऊ | पिअ | ८८ | १४ | बढ़ते गया | बढ़ता गया |

| पृ० | पं०सं० | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ८८ | १५ | का अपेक्षा | की अपेक्षा |
| ८९ | ३ | धर्मधीश्वर | धर्माधीश्वर |
| ९० | ३ | दुरान्वयी | दूरान्वयी |
| ९२ | ६ | कीज | कीजै |
| ,, | १० | इन | उन |
| ,, | २२ | कणादि | कणाद् |
| ९४ | १० | अग्निसीखा | अग्निशिखा |
| ९५ | २३ | धर्माविली | धर्मवाली |
| ९६ | १७ | मिथा | मिथ्या |
| ,, | २१ | मिथा | मिथ्या, |
| ९७ | १२ | झूठी | झूठे |
| ,, | ,, | आशापासों | आशापाशों |
| ९८ | ३० | मानुसी | मानुषी |
| ९९ | ७ | शरार | शरीर |
| ,, | १६ | अक्षरो | अक्षरों |
| ,, | २१ | हा जाय | हो जाय |
| १०१ | २३ | नहाँ | नहीं |
| १०२ | ७ | वाद | बाद |
| ,, | २१ | उपासक | उपास्य |
| ,, | २६ | पूत्र | पुत्र |
| १०३ | ८ | मानना | माननी |
| ,, | १२ | दीवाना | दीवाने |
| १०४ | ८ | लगा | लगी |
| १०५ | ७ | स्वय | स्वयं |
| ,, | २७ | वह | उस |
| १०६ | १ | किया | की |
| ,, | ११ | जव | जब |
| १०७ | १० | अडं | अण्ड |
| ,, | २० | कभा | कभी |
| १०८ | २ | कथा | कथायें |
| १०९ | ११ | मारकंडे | मारकण्डेय |
| ११० | ४ | स्कन्धपुराण | स्कन्दपुराण |
| १११ | १४ | पीराया | पिरोया |
| ,, | १५ | को संचालन | का संचालन |
| ,, | १८ | स्थापना किया | स्थापना की। |
| ११२ | ८ | वज्रहु | बज्रहु |
| ,, | ९ | नीझर | निर्झर |
| ११३ | ४ | यावद् जीवन | यावज्जीवन |
| ११६ | १९ | जा | जो |
| ११८ | २१ | बाध | बाँध |
| ११९ | १ | तुरीय वस्था | तुरीयावस्था |
| १२० | ८ | हरित स्मृति | हारीत स्मृति |
| १२८ | १२ | चिउटी | चिउँटी |
| ,, | १४ | पिपिलीका | पिपीलिका |
| १२९ | १ | पक्ति | पंक्ति |
| ,, | २० | पंड़ित | पण्डित |
| १३० | २ | षटकर्म | षट्कर्म |
| ,, | ४ | उञ्न्छवृत्ति | उञ्छवृत्ति |
| ,, | ६ | उञ्न्छदान | उञ्छदान |
| १३० | ८ | इग | इस |
| १३१ | १३ | अपनी | अपना |
| १३१ | १४ | देती | देता |
| १३२ | १९ | बासना | वासना |
| १३३ | १७ | पालरैनि | परलैरैनि |
| १३४ | ३ | प्राणिधान | प्रणिधान |
| ,, | ,, | आचार | आचार्य |
| १३५ | ५ | त्राला | वाला |
| ,, | १५ | कहो | कहो |
| ,, | १७ | घोंटि | घोंटि |
| ,, | २२ | जात | जाते |
| १३६ | ८ | की | कि |
| १३७ | १ | उसकी | उनकी |

| पृ० | पं०सं० | अशुद्ध | शुद्ध | पृ० | पं०सं० | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १३७ | ९ | सत्त्बापति | सत्त्वापत्ति | ,, | २३ | करेंगे | करोगे |
| ,, | १३ | विशद्धि | विशुद्धि | १६७ | ११ | उनके | उनकी |
| ,, | १४ | असनशक्ति | असंसक्ति | ,, | २३ | भा | भी |
| ,, | १५ | ,, | ,, | १६८ | १ | विरान | वीरान |
| १३९ | ५ | खादुका | खादुकों | ,, | ७ | वोजन | वजन |
| १३९ | ५ | बसूल | वसूल | ,, | ८ | पारतोजिक | पारतोषिक |
| ,, | १८ | का | को | १७० | १६ | के जान गये | की जानें गयीं |
| ,, | २३ | असनशक्ति | असंसक्ति | ,, | २६ | डूब जाता | डूब जाती |
| ,, | ,, | ,, | ,, | १७२ | ९ | दैवताओं | देवताओं |
| १४० | ८ | को भेदन | का भेदन | १७४ | १ | सच्चिद | सच्चित् |
| १४१ | १४ | सतमार्ग | सन्मार्ग | १७६ | १७ | दैह्य | हैहय |
| ,, | २८ | रूपो | रूपी | ,, | २४ | अन्तर्ध्यान | अन्तर्धान |
| १४२ | २ | हल्का होता | हल्की होती | १८२ | ८ | सात्वना | सान्त्वना |
| १४३ | ९ | तयी | तभी | ,, | ११ | पूजा | पूज्य |
| ,, | १० | सत्यो | सत्य | १८५ | २५ | ब्रह्मवेवर्त | ब्रह्मवैवर्त |
| १४४ | ११ | से ड़ | से जड़ी | १८७ | १ | उसके | उसका |
| १४५ | ११ | आश्चर्यकारों | आश्चर्यकारी | ,, | १५ | द्रोपदी | द्रौपदी |
| १४६ | ११ | अथं | अर्थ | ,, | १६ | ,, | ,, |
| १४७ | ११ | व्यवस्था किया | व्यवस्था की | १९० | २३ | शेखतकी प्रशंसा | शेखतकी की प्रशंसा |
| ,, | १२ | काा | का | १९३ | २६ | ये सभी | इन सभी |
| ,, | २७ | रचना किया है | रचना की है | १९६ | २५ | कहाँ | कहा |
| | | | | १९९ | २ | वैंभिन्न | वैभिन्य |
| १५३ | ७ | का | की | २०१ | २५ | पुर सेते | पुरि सेते |
| १५६ | ४ | स्वरूपी | स्वरूपा | २०३ | ३ | कहा है | कही है |
| १५९ | १८ | लाग | लोग | ,, | २४ | निर्वाच्य | अनिर्वाच्य |
| १६० | १२ | सांझा | साँझ | २०८ | १८ | ब्रह्मविद ब्रह्मैभवति | ब्रह्मविद् ब्रह्मैवभवति |
| ,, | २६ | रवितनय के पुत्र | रवितनय | | | | |
| १६१ | ७ | कमकाण्ड | कर्मकाण्ड | २०९ | ३ | अजहद | अजहत् |
| ,, | २० | थली | थैली | २१० | १४ | में दोष | के दोष |
| १६४ | १५ | गँवा दिया | गँवा दिये। | ,, | २५ | की लीन | को लीन |

| पृ० | पं०सं० | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| २११ | २० | आस्ति | अस्ति |
| २१२ | १० | चरम | चर्म |
| २१३ | २ | छूट | छूटे |
| २१५ | १९ | उनकी | उनका |
| ,, | २० | हो चुकी | हो चुका |
| २१८ | ५ | पातिव्रत | पतिव्रता |
| ,, | २४ | मृतलोक | मृत्युलोक |
| २१९ | २ | पापात्मे | पापात्मा |
| ,, | १२ | गीनी | गिनी |
| ,, | २३ | भू | भूः |
| ,, | २५ | विशश्रवा | विश्रवस् |
| २२० | १५ | सेमुशि | शेमुषी |
| २२१ | ४ | रामन | रामना |
| २२३ | २ | मुहुर्त | मुहूर्त्त |
| ,, | २७ | मुज्ज | मुञ्ज |
| २२५ | १९ | पंचभौतिक | पाञ्चभौतिक |
| २२६ | ५ | अजिगर्त | अजीगर्त |
| २२७ | १४ | झटित | झटिति |
| २३१ | १५ | शाक्य द्विपीय | शाकद्वीपीय |
| २३३ | १९ | जहद | जहत् |
| २४० | २५ | बहुव्यजना | बहुव्यञ्जना |
| २४२ | ११ | स्वत्व का | स्वत्व की |
| २४३ | २३ | मिल गयी | मिल गया |
| २४४ | १९ | उसकी | उसका |
| ,, | ,, | चिदाघन | चिद्घन |
| २४६ | १३ | पोड्स | षोडश |
| २५१ | ११ | भिज्ञवान | अभिज्ञ |
| २५२ | २३ | कंचन | कञ्चन |
| २५४ | १५ | तहं | तहँ |
| २५८ | ५ | स्वांति | स्वाति |
| २६१ | १३ | का जान गया | की जान गयी |
| २६४ | २२ | भुलता | भूलवा |
| २७३ | २० | स्वानुभूत | स्वानुभूति |
| २७४ | ८ | जुज | युज् |
| २७८ | ४-५ | (पूर्ण श्लोक अशुद्ध) | |
| २८५ | २२ | बाह्यमुख | बहिर्मुखी |
| २८७ | ६ | अछूता | अछूती |
| ,, | १८ | षोड्स | षोडश |
| २८९ | ११ | सारविहिना | सारविहीना |
| २९१ | ११ | पुरे सेते | पुरि शेते |
| ३०० | २४ | पद्मपत्र मिमांभषाः | पद्मपत्रमिवा-म्भसा |
| ३०२ | ७ | प्रभोपासकों | प्रभूपासकों |
| ३०३ | २ | हिरण्याक्ष.... | (इत्यादि पूरा अर्थ बदला जाय |
| ३०५ | १८ | हिरण्याक्ष | हिरण्यकशिपु |
| ३०८ | ५ | लोकिक | लोकों की |
| ३१२ | १९ | ह्यग्रीव | हयग्रीव |
| ३१४ | ३ | मृत्यु | मर्त्य |
| ३१६ | २ | पवन | पावन |
| ३१९ | १९ | सरो | शरो |
| ३२१ | ११ | करे | को |
| ३२२ | ३ | न हो | नहीं |
| ३२३ | ९ | अन्नतोगत्वा | अन्ततोगत्वा |
| ,, | १७ | मानुम | मानुस |
| ,, | २२ | व्याघ्रिनी | व्याघ्री |
| ३३३ | २६ | अर्द्धांगिनी | अर्द्धांगिनीं |
| ३३४ | ३ | कुमारावस्था | कौमारावस्था |
| ,, | २३ | सतपथ | शतपथ |
| ३३५ | २७ | पूरुष | पुरुष |
| २३६ | ८ | सावित्रि | सावित्री |
| ,, | ९ | प्रथंना | प्रार्थना |
| ,, | १७ | सें | में |
| ,, | २१ | तात्प्रर्य | तात्पर्य |

| पृ० | पं०सं० | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ३३९ | ६ | कुन्ती भोज | कुन्तिभोज |
| ,, | २३ | क्षत्रायते इति क्षत्री | क्षतात् त्रायते इति क्षत्रिय |
| ३४४ | १० | आवर्णों | आवरणों |
| ,, | ११ | प्रभुपासना | प्रभूपासना |
| ३४५ | २ | स्कन्द | स्कन्ध |
| ३४९ | २० | पैशून्यता | पैशुन्य |
| ,, | २४ | बहुबेटी | बहू-बेटी |
| ३५१ | ३ | पातंजलि | पातञ्जल |
| ३५९ | २२ | अन्तराओं | अन्तरायों |
| ३६० | ९ | पन्थः विद्य-तेऽयेनाय | पन्था विद्य-तेऽयनाय |
| ३६३ | १ | मच्छिका | मक्षिका |
| ३६८ | ६ | (ल्यूट्) | (ल्युट्) |
| ,, | २६ | सख्य | सखा |
| ३७० | ५ | अहेतुकी | अहैतुकी |
| ,, | २२ | मनवन्तरों | मन्वन्तरों |
| ३७२ | ८ | भूषुण्डि | भुशुण्डि |
| ,, | १८ | स्वरूपीनो | स्वरूपिणी |
| ३७८ | ८ | चरमचक्षु | चर्मचक्षु |
| ३८१ | ८ | बस | वश |
| ३८४ | २६ | तस्वी | तस्बीह |
| ३८७ | १ | देवान्काष्टादि | देवान्काष्ठादि |
| ,, | ४ | मात्मतीर्थं | आत्मतीर्थं |
| ,, | ६ | सुराभाण्ड-मिवासुचि | सुराभाण्ड-मिवा शुचि |
| ,, | ७ | बिसुवायन-कालेषु | विषुवायन-कालेषु |
| ३८८ | १६ | साक्षात्मत्वा | साक्षान्मत्वा |
| ,, | १८ | ब्राह्मणो | ब्रह्मणो |
| ४०२ | ८ | पैशुन्यता | पैशुन्य |
| ,, | २४ | ब्राह | वाराह |
| ४०३ | ८ | जगद्नियन्ता | जगन्नियन्ता |
| ४०८ | १९ | अनसूइया | अनसूया |
| ४०९ | १२ | देव्र | दव |
| ४१२ | ४ | बर | वर |
| ४१३ | २० | कवाचन | कदाचित् |
| ४१४ | १६ | मुक्त | युक्त |
| ४१६ | १७ | अमुख | अमुक |
| ४१८ | २५ | वीबीयों | बीबियों |
| ४२२ | २ | मुरगी | कुक्कुटी |
| ४२५ | २१ | लगी हुयी | लगा हुआ |
| ,, | २२ | करेगी | करेगा |
| ,, | २५ | हिन्दूओं | हिन्दुओं |
| ४२९ | २४ | ऐ | ये |
| ,, | २७ | बूरे | बुरे |
| ४३१ | ४ | पूर्वांगत | पूर्वागत |
| ,, | ११ | परमत्त | प्रमत्त |
| ,, | २४ | बक्र | वक्र |
| ४३२ | ८ | अशौच्यता | अशुचिताया अशौच्य |
| ,, | १४ | मन्द | मुन्द (मुँद) |
| ४३३ | ८ | फिर रही | फिर रहा |
| ,, | १६ | वैवस्त | वैवस्वत |
| ,, | १७ | नभाग | नाभाग |
| ४३४ | ७ | सन्यासी | संन्यासी |
| ,, | २३ | (ब्रह्मवर्षिणी) वाक्य | वाणी |
| ४३६ | ७ | सानिध्य | सान्निध्य |
| ,, | १२ | जहद स्वार्थी | जहत्स्वार्था |
| ,, | १६ | नान्योश्रित | अन्योन्याश्रित |
| ,, | १८ | बना लिया | बना लिये |
| ४३८ | ३ | जगतगुरु | जगद्गुरु |
| ,, | १७ | स्कन्द | स्कन्ध |

| पृ० | पं०सं० | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ४४० | २ | चरणार्विन्दों | चरणारविन्दों |
| ४४५ | ११ | नववधु | नववधू |
| ४४६ | ११ | सेम | सेमल |
| ४४८ | २० | त्रीतियांश | तृतीयांश |
| ४५२ | १३ | करने | कराने |
| ५५४ | १० | सभा | सभी |
| ४५५ | ११ | कुक्षी | कुक्षि |
| ४५८ | ११ | व्युहृतियाँ | व्याहृतियाँ |
| ४६१ | १२ | विषयाशक्त | विषयासक्त |
| ४६२ | ३ | वृद्धा हो चली | वृद्ध हो चला |
| ४६२ | २५ | घूस नुसकर | घुस-घुसकर |
| ४६३ | ९ | सत्मार्ग | सन्मार्ग |
| ४६५ | १७ | आरण्य | अरण्य |
| ४६५ | २५ | व्राह | वाराह |
| ४६६ | ९ | सन्यासी | संन्यासी |
| ४६६ | १६ | आरण्य | अरण्य |
| ४६७ | २० | डोर | डोरे |
| ४६९ | १ | आता | आती |
| ४६९ | २४ | अन्तरमुख | अन्तर्मुख |
| ४७० | २१ | नाभी | नाभि |
| ४७१ | १ | पापार्धि | पापर्धि |
| ४७४ | १६ | उन्मादता | उन्मादकता |
| ४७४ | १७ | दुर्गन्धी | दुर्गन्धि |
| ४७६ | १० | मुमुक्षता | मुमुक्षा |
| ४७९ | १४ | मूड़ाकर | मुड़ाकर |
| ४८२ | १५ | मीदंतीथं | मिदंतीथं |
| ४८३ | २७ | रात्याभिमानी | रात्र्यभिमानी |
| ४८७ | ९ | कुद्रत | कुदरत |
| ४८७ | २२ | कौतुहल | कौतूहल |
| ४८८ | २६ | महिमामान | महिमावान् |
| ४८९ | ९ | कौतुहल | कौतूहल |
| ४९१ | २० | पंकि | पंछि |
| ४९२ | १ | गूदा | गुदा |
| ,, | ५ | षोडस | षोडश |
| ४९३ | १२ | स्कन्द | स्कन्ध |
| ४९४ | ११ | का कोई | की कोई |
| ४९५ | २ | पिपील | पिपीलिका |
| ,, | १९ | उड्डीयान | उड्डीयान |
| ,, | २५ | झटित | झटिति |
| ५०० | ९ | गरियसी | गरीयसी |
| ५०६ | १३ | तुम्हारे | तुम्हारी |
| ५०८ | १८ | संहारन | संहार |
| ५१० | ३ | भगवतनामों | भगवन्नामों |
| ५११ | ७ | प्रगाढ्य | प्रगाढ |
| ५१२ | १७ | दबरि | दँबरि |
| ५१३ | १ | उड्डियान | उड्डीयान |
| ५१४ | ३ | सुसुगन्धि | सुगन्धि |
| ,, | ८ | तृष्णाग्रि | तृष्णाग्नि |
| ५१६ | २५ | तनमात्राओं | तन्मात्राओं |
| ,, | ,, | चतुष्ट अन्तः-करणों | चतुरन्तः-करणों |
| ५१७ | ३ | सतत् | सतत |
| ,, | ८ | सुषम्ना | सुषुम्ना |
| ५१८ | १ | भुर्लोक | भूर्लोक |
| ,, | ७ | लाव | लावै |
| ५२२ | ११ | केसी | केशी |
| ५२५ | २१ | पापार्घी | पापर्द्धि |
| ५२६ | १९ | दुघ | (दूध) दुग्ध |
| ५२८ | १ | पापार्घी | पापर्द्धि |
| ५२९ | १० | समन | (शमन)शमित |
| ,, | १३ | अभिसिक्त | अभिषिक्त |
| ५३४ | १८ | उसकी आभा-मयी | उसका आभामय |
| ५३५ | २३ | सूर | सुर |

| पृ० | पं०सं० | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ५३७ | १९ | धुनि | धुनी |
| ५३८ | ६ | वधु | वधू |
| ५४४ | २१ | की | कि |
| ५४५ | १५ | वाली | वाला |
| ५४६ | ९ | त्रयकालदर्शी | त्रिकालदर्शी |
| ,, | २२ | का प्राप्ति | की प्राप्ति |
| ५४९ | २४ | श्रृंगाल | श्रृगाल |
| ५५० | १९ | जिनकी | जिनका |
| ,, | २० | छुटी | छूटा |
| ५५१ | ६ | मूसा | (मूस) मूषक |
| ,, | ८ | बिली | बिल्ली |
| ,, | ११ | श्रृंगाल | श्रृगाल |
| ५५२ | २० | प्रतीज्ञा | प्रतिज्ञा |
| ५५९ | ११ | पराभव | पराभूत |
| ५६२ | २२ | सिरसनहारा | सिरजनहारा |
| ५७१ | १३-१४ | पंचभौतिक | पाञ्चभौतिक |
| ,, | २४ | अनजनी | अञ्जनी |
| ५७२ | १४ | निरोग | नीरोग |
| ५७४ | ७ | कार्त्तिवीर्य | कार्त्तवीर्य |
| ,, | ८ | यमदग्नि | जमदग्नि |
| ५७९ | २ | कसाईयों | कसाइयों |
| ,, | ७ | बिरले | विरला |
| ५८५ | २ | लिंगवाली | लिंगवाला |
| ५८६ | ९ | बदन्ति | वदन्ति |
| ५८८ | ३ | हृदिया | ह्रिदया या हृदया |
| ५९१ | १ | चतुष्ट अन्तः-करण | चतुरन्तःकरण (चतुष्टक) या अन्तःकरण (चतुष्टय) |
| ५९२ | २ | उष्मज | ऊष्मज |
| ५९४ | ७ | सुर्जन | सृजन या सर्जन |
| ,, | २० | प्रजन | प्रजनन |
| ५९५ | ९ | चिद्दिदात्मक | चिदचिदात्मक |
| ,, | १५ | संख्यायित | संख्यात |
| ५९८ | २४ | मैत्री | मैत्रेयी |
| ६०० | १३ | असुइया | असूया |
| ६०२ | १२ | सूर्यंकारश्चन्द्र | सूर्यष्ठ-कारश्चन्द्र |
| ६०३ | १३ | जाग्रित | जागृत |
| ६०६ | २५ | सामिप्य | सामीप्य |
| ,, | ,, | शायुज्य | सायुज्य |
| ,, | ,, | शालोक्य | सालोक्य |
| ,, | ,, | सानिध्य | सान्निध्य |
| ६०८ | ३ | श्वसुराल | ससुराल या श्वसुरालय |
| ,, | ११ | षोड्सो प्रकार | षोडशोपचार |
| ,, | १३ | सदोपदेशक | सदुपदेशक |
| ६११ | ९ | वैधब्यता | वैधव्य |
| ६१३ | ३ | कसकी | इसकी |
| ६१९ | ६ | दुख | दुःख |
| ६२१ | ७ | सहस्त्राब्दियों | सहस्राब्दियों |
| ६२३ | २ | चतुर्थ | चतुर् |
| ६२४ | २६ | आरम्भण | आरम्भ (शुरुआत) (आरम्भण = वश में करना) |
| ६२७ | ७ | शम्भू | शम्भु |
| ६३० | ११ | आकर्षणीय | आकर्षिकी |
| ,, | २४ | सम्प्रदायिक | साम्प्रदायिक |
| ६३२ | ६ | मूर्दा | मुर्दा |
| ,, | ,, | ,, | ,, |
| ,, | ७ | मूर्दे | मुर्दे |
| ६३४ | १८ | द्वेत | द्वैत |

| पृ० | पं०सं० | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ६३४ | २० | साम्यकता | साम्य |
| ,, | २२ | वैधव्यता | वैधव्य |
| ६३८ | १७ | स्कन्द | स्कन्ध |
| ६४१ | १९ | तुम्हारी | तुम्हारा |
| ६४१ | १९ | की····को | का····का |
| ६४२ | ५ | भत | भूत |
| ,, | ९ | इंडा | इडा |
| ६४२ | २० | कारगाह | कारागृह या कारागाह |
| ६४६ | १० | निरावयव | निरवयव |
| ,, | २५ | भगवतभवत | भगवद्भक्त |
| ६४७ | ५ | जीवन मुक्त | जीवन्मुक्त |
| ,, | १९ | अन्तर भाव | अन्तर्भाव |
| ६४८ | १४ | ग्रन्थी | ग्रन्थि |
| ६५० | ३ | अप्रमाणिक | अप्रामाणिक |
| ६५२ | १५ | आवागवन | आवागमन |
| ६५३ | २ | सुष्ठ | सुष्ठु |
| ६५४ | २७ | सुश्रुषा | शुश्रूषा |
| ६५५ | २४ | जिह्वामूलाश्च | जिह्वामूलञ्च |
| ,, | ,, | नासिकोष्ठो | नासिकौष्ठौ |
| ६५६ | १० | तुबां | तुम्बा या तुंबी |
| ६५७ | २० | वीणे | वीणा |
| ६५८ | ६ | वाधक | वादक |
| ६६० | ११ | की मांस | का मांस |
| ६६५ | ७ | मूर्दाखोर | मुर्दाखोर |
| ६७३ | १६ | औसध | ओषधि |
| ६७४ | २२ | पृथकता | पृथक्ता |
| ६७५ | ४ | अनुशरण | अनुसरण |
| ६८० | २५ | ब्याधा | व्याध |
| ६८३ | २३ | दुस्यन्य | दुस्त्याज्य |
| ,, | २५ | देखाती | दिखाती |
| ६८५ | ७ | चातुर्यंता | चातुर्यं |
| ६८६ | १० | तूझ | तुझ |
| ६९० | २ | योगीराज | योगिराज |
| ६९१ | १६ | तादात्म्यता | तादात्म्य |
| ६९३ | १० | बाल्मीकि | वल्मीक (बाँबी या दीमक का घर) |
| ६९४ | २४ | भृकुटी | भृकुटि |
| ,, | २५ | वृषम | वृषभ |
| ६९६ | २५ | बसरने | बरसने |
| ६९७ | २ | बलित पलित | वली पलित (वलित एवं पलित) |
| ,, | ४ | ग्रन्थी | ग्रन्थि |
| ६९८ | १८ | पिवेदऽमर | पिवेदमर |
| ६९९ | २ | विदुजयोऽनि | विन्दुजयोऽग्निः |
| ,, | ,, | नाडीविशुद्धि-हठ | नाडीविशुद्धिः हंठ |
| ,, | ९ | वहिनोत्पादितः | वह्निरुत्पादित |
| ७०० | २१ | सतकर्मं | सत्कर्मं |
| ७०४ | १४ | असतुरे | उस्तरे (उस्तरा-छुरा) |
| ,, | २१ | की आघी | का आधा |
| ७०५ | १ | त्रैय | त्रयी |
| ,, | २ | शूद्रा | शूद्रः |
| ,, | ३ | संस्कारात | संस्काराद् |
| ७०८ | ९ | चतुस्थ | चतुर् |
| ७०९ | १८ | सिर्जन | सृजन |
| ७११ | ३ | अनाधिकारी | अनधिकारी |
| ,, | २५ | कामनी | कामिनी |
| ,, | ,, | ,, | ,, |

| पृ० | पं०सं० | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ७११ | २७ | कामनी | कामिनी |
| ७१३ | १० | अद्भूत | अद्भुत् |
| ७१५ | २० | रहता है | रहती है |
| ७१८ | २१ | स्वधिष्ठान | स्वाधिष्ठान |
| ७२० | २ | बध | बन्ध |
| ,, | २६ | स्मिता | अस्मिता |
| ७२२ | २० | कुम्मक | कुम्भक |
| ७२५ | १ | निरावयव | निरवयव |
| ,, | १२ | खुशी की | खुशी का |
| ७३१ | २५ | गृहस्थी | गृहस्थ |
| ७३२ | १ | शुक्राचार्य | शुकाचार्य |
| ७३४ | १७ | भाईयों | भाइयों |
| ७३५ | ७ | योगीराज | योगिराज |
| ,, | ११ | निरविकल्पक | निर्विकल्पक |
| ७३७ | १६ | हिन्दूओं | हिन्दुओं |
| ७४१ | ११ | विधुतो····कुतो भान्ति | |
| ,, | १३ | न | (नहीं रहेगा) |
| ७४३ | १६ | मंजार | मार्जार |
| ,, | २६ | ,, | ,, |
| ७४४ | २४ | हिंसकी | हिंसक |
| ७४७ | १७ | तारतम्यवा | तादात्म्य [तारतम्य = तर और तम (उससे अधिक और सबसे अधिक) का भाव] |
| ,, | २५ | अहेतुकी | अहैतुकी |
| ७५१ | २२ | इंजिल | इंजील |
| ७५५ | १० | (कुकरी-कुरटी | वनमुरगी |
| ७५६ | २६ | निराभिमान | निरभिमान |
| ७५० | ८ | भ्रमिक | भ्रमित या भ्रान्त |
| ७६० | २२ | दारी | दारिका-अघबनदारा |
| ,, | ,, | कुल्टा | कुलटा |
| ,, | २३ | दारीका | दारिका |
| ७६७ | २७ | के पुजने | को पूजने |
| ७७१ | २० | चूभने | चुभने |
| ७७५ | ९ | साधुनां | साधूनाम् |
| ७७६ | १७ | दिग्दर्शन | दर्शन |
| ७७७ | १९ | तड़फना | तड़पना |
| ७७८ | १२ | की कल्पना | का कलपना |
| ,, | ,, | हो सकती | हो सकता |
| ७७९ | २५ | सतपुरुष | सत्पुरुष |
| ७८१ | १२ | कर्मणा | कर्मणां |
| ,, | १९ | वृथाभिमाना | वृथाभिमान···· |
| ,, | ,, | सूत्रग्रथितो | सूत्रग्रथितो |
| ,, | २२ | तस्माविमुच्यते | तस्माद्वि-मुच्यते |
| ७८२ | ८ | सुशयमित | सुसंयमित |
| ,, | ११ | नंदनी | नन्दिनी |
| ७८४ | १६ | हतास | हताश |
| ७८५ | ३ | अंहतुकी | अहैतुकी |
| ,, | १० | सौन्दर्यता | सौन्दर्य या सुन्दरता |
| ७८८ | २७ | वहिर्मुखता | बहिर्मुखता |
| ७९१ | ७ | पराङ्ममुख | पराङ्मुख |
| ७९६ | ११ | बंदन | वन्दन |
| ७९७ | १४ | अर्द्ध | अधः |
| ८०५ | १२ | स्वव्यंजनार्थ | स्वरव्यञ्जनार्थ |
| ८०९ | २१ | सदृश्य | सदृश |
| ८११ | ३० | गुंज | गूँज |

| पृ० | पं०सं० | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ८१७ | १५ | अवछेदन | अवच्छेदन |
| ८१९ | १९ | व्रआ | व्र |
| ८२१ | ३२ | प्रोक्तास्तथा | प्रोक्तस्तथा |
| ८२८ | १२ | अनाधिकारियों | अनधि-कारियों |
| ८३१ | १२ | दारिद्रय | दारिद्र्य |
| ,, | १३ | ,, | ,, |
| ,, | ,, | दारिद्र | दरिद्र |
| ८३२ | १२ | माधुर्य | मधुर |
| ,, | २४ | चाल्हादनेऽपि | चाह्लादनेऽपि |
| ,, | २५ | बाते | वाते |
| ८३३ | १ | संज्ञेश्च | संज्ञश्च |
| ,, | ६ | वागेन्द्रिय | वागिन्द्रिय |
| ,, | १३ | शीत्व | शैत्य या शीवलता |
| ८३४ | १ | मूर्धन्नो | मूर्धन्य |
| ,, | ४ | जगन्न | जगन् |
| ,, | ५ | जीवो ब्रहमैव-ऽनपरा | जीवोब्रह्मैव नापरः |
| ८३८ | ४ | सृष्टा | स्रष्टा |
| ८३९ | २८ | उच्छिष्ठ | उच्छिष्ट |
| ८६६ | १४ | सजातिय | सजातीय |
| ८६७ | १८ | महात्म्य | माहात्म्य |
| ८७२ | १८ | तद्जपस्त···· | तज्जपस्त···· |
| ,, | २४ | बीत | बिता |
| ,, | ३० | परपितामह | प्रपितामह |
| ८७६ | २८ | मूल्यवाद् | मूल्यवान् |
| ८७७ | २९ | अष्ठ | अष्ट |
| ८७८ | १९ | छेम | क्षेम |
| ८८१ | ३१ | वाला | वाले |
| ८८२ | १३ | शृंगाल | शृगाल |
| ८८४ | २७ | ब्रह्मविद | ब्रह्मविद् |
| ८८६ | २२ | चतुष्ट अन्तः करण | अन्तःकरण चतुष्टय |
| ८८८ | १ | सुवासिन | सुवासिनी |
| ८८८ | ३-४ | पतिव्रत | पातिव्रत |
| ,, | १५ | नजायज | नाजायज |
| ८९० | ९ | भस्मिभूत | भस्मीभूत |
| ८९२ | १७ | अहमन्यता | अहम्मन्यता |
| ८९३ | १३ | दुर्धष | दुर्धर्ष |
| ,, | १९ | शृगिऋषि | शृंगीऋषि |
| ८९४ | २८ | मँगवो | मँगाओ |
| ,, | २० | व्यश्याओं | वेश्याओं |
| ,, | ,, | मिष्टान्नादि | मिष्ठानादि |
| ८९५ | ६ | कुर्म | कूर्म |
| ८९६ | १२ | टारयो | टरायो |
| ,, | २७ | ललितोललास | ललितोल्लास |
| ८९७ | ३० | सदेव | सदैव |
| ९०० | २६ | विवश्वान | विवस्वान |
| ९०४ | २९ | सहस्त्रार | सहस्रार |
| ९०६ | ७ | मस्करी | मसखरी |
| ,, | १८ | अहार | आहार |
| ९०८ | ९ | हुकुमत | हुकूमत |
| ९१२ | २० | बुद्धिमता | बुद्धिमत्ता |
| ९१६ | ८ | कुप्त | कुपित |
| ,, | १३ | पक्षपाती | पक्षपातिनी |
| ९१७ | १७ | अग्रगणी | अग्रणी |
| ९१८ | ३१ | नान्यपन्था अनन्य | नान्यः पन्था अयनाय |
| ९२१ | २८ | वद्रीका आश्रम | बदरिकाश्रम |
| ९२९ | ३० | बाहुल्यरूपेण | बहुलरूपेण |
| ९३१ | १ | सिहनी | सिंहिनी |
| ,, | २ | ,, | ,, |

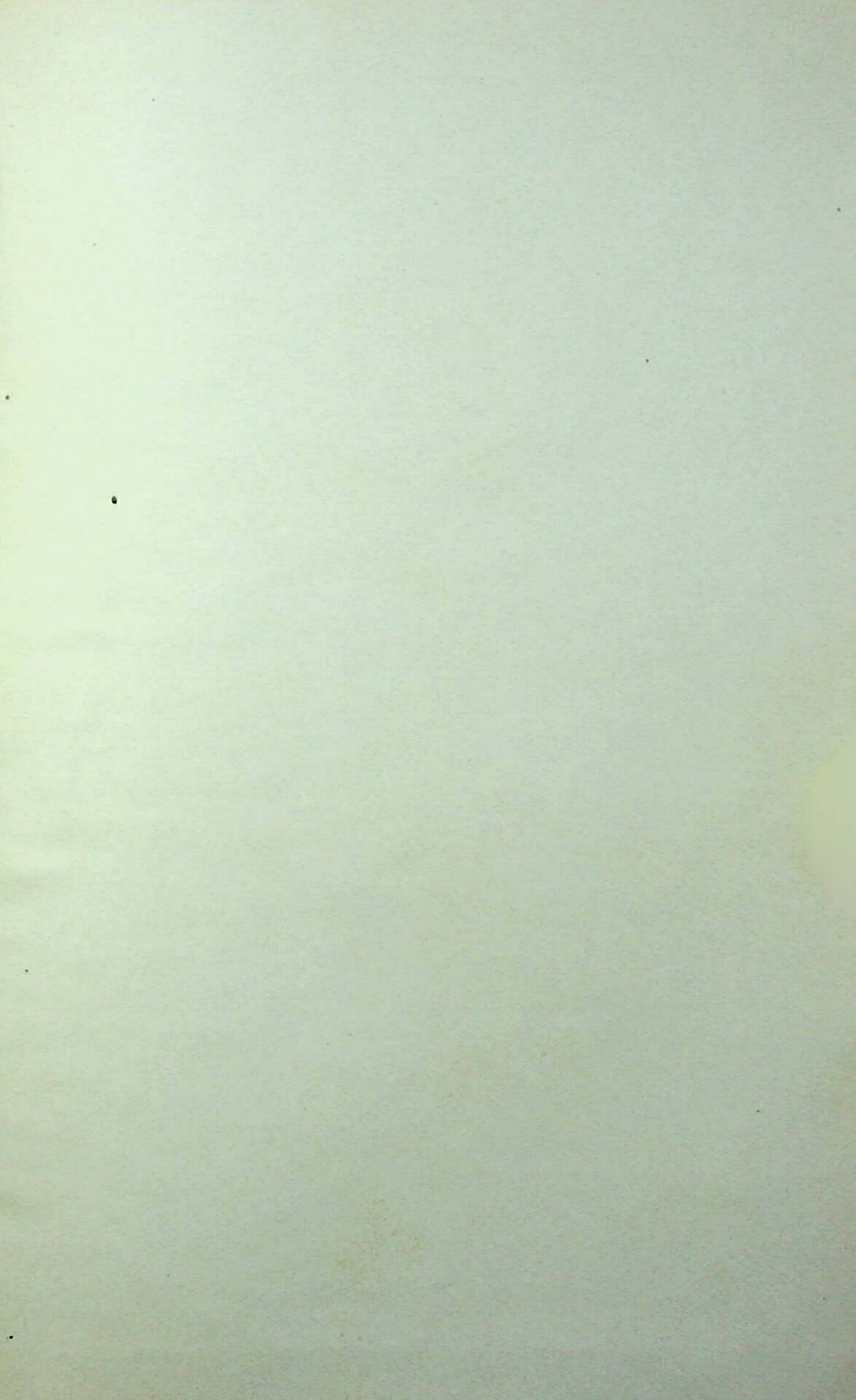
| पृ० | पं०सं० | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ९३३ | १५ | डम्फ | डफ |
| ९३६ | ३१ | लालिच | लालच |
| ९३७ | १६ | माहेनी | मोहिनी |
| ,, | १८ | मतवाली | मतवाले |
| ९३८ | २३ | नुकुली अंकुसी | नुकीला अंकुश |
| ९३९ | १९ | ढहोमान होने | ढहने |
| ९४० | २ | चूभन | चुभन |
| ९४१ | ३० | अनस्थिर | अस्थिर |
| ९५१ | १७ | द्रवीला | द्रव या तरल |
| ९५२ | ११ | बद्धि | बुद्धि |
| ९५४ | २८ | रीझा | रिझा |
| ,, | ३१ | गीत का | गीत की |
| ९५७ | २८ | जिसका.... होता है | जिसकी.... होती है |
| ९५९ | ६ | भृत्तों | भृत्यों |
| ९६० | १३ | मरुमारी-चिका | मरुमरी-चिका |
| ९६२ | १५ | आवंत | आवर्त |
| ९६४ | १७-२१ | ,, | ,, |
| ९६७ | १६ | इक्कस | इक्कीस |
| ,, | २२ | विपाकाशयरा- | विपाकाशयैर-परामृष्टः |
| ९६८ | २८ | भोगत भोगत | भोगते-भोगते |
| ९६९ | ४ | क्वांर | क्वार |
| ,, | ९ | घुर्मित | घूर्णित |
| ,, | २० | पतन | पतित |
| ९७० | २३ | बैठकर | होकर |
| ९७४ | ५ | कोई का | किसी का |
| ,, | २० | समुचित | समूची या सम्पूर्ण |
| ९७४ | २८ | सूर-वीर | शूर-वीर |
| ९७५ | ९ | बहु | वहू |
| ,, | २७ | बेधर्मी | विधर्मी |
| ९७७ | ४ | के छूटकारा | से छुटकारा |
| ,, | ८ | येने | येन |
| ,, | १२ | सम्यगृक्षे | सम्यगृक्षे |
| ९८१ | ८ | इन्द्रियाँ | इन्द्रिय |
| ९८२ | २५ | अनभिग्यता | अनभिज्ञता |
| ९८८ | १ | मानवेत्तर | मानवेतर |
| ९८९ | ३ | जीवन का | जीवन को |
| ९९४ | ५ | जीवात्मे | जीवात्मन् |
| ,, | ११ | किनकी..भाल | किनके..भाले |
| ,, | ,, | किन-किन | किनके-किनके |
| ९९७ | १० | पूतला | पुतला |
| ९९९ | १७ | जाग्रित | जागृत |
| १००२ | ८ | हृदया | ह्रिदया |
| १००३ | १६ | उत्तंग | उत्तुंग |
| १००४ | ९ | कई वस्तु | कोई वस्तु |
| १००५ | १० | पिपीलका | पिपीलिका |
| १००५ | २६ | सद्कर्म | सत्कर्म |
| १०१३ | ३ | सिखी | सीखी |
| ,, | २४ | सूखा | सुखा |
| १०१६ | २३ | संकार | संस्कार |
| ,, | २७ | अन्तर वासनाओं या | अन्तर्वासनाओं अन्तःस्थ वासनाओं |
| १०१८ | ३ | बीजातिय | विजातीय |
| ,, | १२ | महिने | महीने |
| ,, | १९ | सुगन्धी | सुगन्धि |
| १०२० | ९ | वैधव्यता | वैधव्य |
| ,, | २२ | बन्धत्व | वन्ध्यात्व |
| १०२५ | २० | टकशाल | टकसाल |

| पृ० | पं०सं० | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १०२६ | १२ | पेन्हकर | पहनकर |
| १०२९ | ६ | सुख | सूख |
| ,, | १९ | सूखा | सुखा |
| १०३४ | १ | धूवाँ | धुआँ या धूम्र |
| ,, | १७ | ,, | ,, |
| १०३८ | २८ | त्रयक्तय | तापत्रय |
| ,, | २९ | तद्जन्य | तज्जन्य |
| १०३९ | १ | बाण | वाण |
| ,, | ४ | ,, | ,, |
| ,, | ५ | सुसुक-२ | सिसक-२ |
| १०४० | १४ | विरह | विरह |
| ,, | ११ | वासा | वासना |
| ,, | २४ | वैष्णों | वैष्णव |
| १०४४ | ३ | भ्रामिक | भ्रामक या भ्रमित |
| १०४७ | २८ | साँकरी | सँकरी |
| १०५० | २३ | अकिल | अवल |
| १०५६ | १३ | बेकूफ | बेवकूफ |
| १०६० | २७ | जिन | जीन |
| १०६३ | १२ | मायाबी | मायावी |
| ,, | १८ | ,, | ,, |
| ,, | २० | छोड़ाने | छुड़ाने |
| १०६९ | २१ | चक्रावात | चक्रवात |
| १०७३ | १२ | रस्सीयों | रस्सियों |
| ,, | ,, | किसी | कोई |
| १०७६ | २ | कल्मस | कल्मष |
| ,, | ७ | मोटगरी | मोटरी |
| ,, | ३१ | सिखापना | सिखावना ? |
| १०७७ | २४ | बहुस्याम प्रजायते | बहुस्याम् प्रजायेय |
| १०७८ | ३० | तृणि पदा निहिता गुहास्य | त्रीणिपदानि |
| १०८० | ४ | इन्द्रियजित | इन्द्रियजित् |
| ,, | १९ | आत्मवित | आत्मवित् |
| १०८१ | २८ | वाली यन्त्र | वाला यन्त्र |
| १०८२ | १७ | वास्तविक में | वास्तव में |
| १०८३ | १८ | मनमाना | मनमानी |
| १०८६ | १३ | बीताता | बिताता |
| १०८९ | २५ | मित्रो | मित्रे |
| १०९२ | १३ | कतल | कत्ल |
| ,, | ३२ | दिवाने | दीवाने |
| १०९३ | ७ | कबोर | कबीर |
| ,, | १० | तपायमान | तप्यमान |
| ,, | २२ | किनारा | किनारे |
| १०९५ | १७-१८ | कही जाती | कहा जाता |
| १०९९ | ३० | पार्वती | सती |
| ११०० | ८ | पीप्पल | पिप्पल |
| ११०२ | ३ | भाष्कर | भास्कर |
| ११०३ | १ | भयावही | भयावह |
| ११०७ | २२ | बूरी | बुरी |
| ११०८ | २२ | अनहितैषी | अहितैषी |
| १११२ | २८ | तामसो | तामसाः |
| १११३ | १० | गहनागति | गहनागतिः |
| ,, | २५ | अझूराहट | अझुराहट |
| ,, | ३० | तूझे | तुझे |
| १११९ | ७ | गरीबता | गरीबी या निर्धनता |
| ,, | १८ | मलयागिर पहाड़ | मलयगिरि |
| ११२० | १५ | निराभिमान | निरभिमान |
| ,, | २७ | निराभिमानी | निरभिमानी |
| ११२१ | २१ | वशाभूत | वशीभूत |
| ,, | २३ | सतपंथ का मार्ग | सतपंथ या सत्पथ |

| पृ० | पं०सं० | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ११२२ | १० | जगतकर्त्ता | जगत्कर्त्ता |
| ११२४ | ४ | सतमार्ग | सन्मार्ग |
| ,, | २६ | व्याधी | व्याधि |
| ,, | २८ | कम्पायमान | कम्पित |
| ११२५ | १४ | गतानुगति | गतानुगतिको |
| ,, | १७ | ओंऽम | ओऽम् |
| ,, | २२ | नहीं होगी | नहीं होगा |
| ११२६ | ३० | सद्मते | सन्मते |
| ११२७ | ९ | युगां | युग |
| ११२८ | ५ | खेतीहर | खेतिहर |
| ११३१ | २ | मिलेंगे | मिलेगा |
| ,, | ७ | अक्षरों | अक्षर |
| ,, | १३ | कहहूँ | कहहुँ |
| ,, | २१ | उन्होंने | वे |
| ,, | २६ | के····बने थे | की····बनी थी। |
| ,, | ३० | कंठस्थ का | कण्ठस्थ करने का |
| ११३६ | १० | पात | पतित |
| ११३७ | २९-३० | सकता है | सकते हैं |
| ११३८ | ७ | उस | वह |
| ११४० | ७ | प्राकत्स्य-मिशित्व | प्राकाम्य-मीशित्वं |
| ,, | ११ | निद्धयो | निधयो |
| ११४१ | १ | ये | यह |
| ,, | ३ | बास | वास |
| ,, | २० | हिन्दूओं | हिन्दुओं |
| ११४३-४४ | १० | जीवनदाल प्रतिपालक | जीवनदात्री प्रतिपालिका |
| ११४६ | ३ | प्राप्ति | प्राप्त |
| ,, | १० | ग्यांन | ग्यान |
| ,, | ११ | उड्गिण | उडुगण |
| ११४७ | ५ | विवश्वान | विवस्वान |
| ,, | ९ | कृच्छ | कृच्छ्र |
| ,, | १० | चन्द्रायण | चान्द्रायण |
| ११४९ | ८ | दुर्वासनाअ | दुर्वासनाओं |
| ,, | ९ | कर्मना से | कर्मणा |
| ११५० | ३ | प्रारम्भ में आरम्भ की गयी | प्रारम्भ किया गया |
| ११५१ | ११ | वपुस | वपु |
| ११५२ | १४ | इसको | इसका |
| ११५४ | ८ | पापकृत | पापकृत्य |
| ,, | १९ | तोरथों | तीर्थों |
| ११५५ | २२ | वेलरी | वल्लरी |
| ११५६ | ३१ | वस्तुओं | वस्तु |
| ११५७ | २२ | फलवा | फुलवा |
| ११६४ | ७ | कमलवत् | कमल |
| ११६७ | ३ | धीमर | धीवर |
| ,, | २२ | मैं | मैंने |
| ,, | ३० | मैं····है | मैं····हूँ या मैंने····है। |
| ११७० | १६ | गुष्टि | गोष्ठी या गोष्ठि |
| ११७१ | २७ | लोकेषणा-वित्तेषणा पुत्रेषणा | लोकैषणा, वित्तैषणा पुत्रैषणा |
| ११७४ | १७ | पूजायमान | पूजित |
| ११८१ | २९ | सिन्दुर | सिन्दूर |
| ११८३ | १४ | अच्छी-अच्छी | अच्छे-अच्छे |
| ११८८ | २२ | उष्मज | ऊष्मज |
| ११९३ | २० | की कणें | के कण |
| ११९५ | १५ | खुलेयाम | खुलेआम |

| पृ० | पं०सं० | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १२०० | १३ | बिछुरी | बिछुड़ी |
| १२०४ | ९ | बीजावान | बियाबान |
| १२०६ | १६ | कम | कस |
| १२१० | ३ | किसी भेड़ाने | कोई भेड़ (भेड़ा) |
| ,, | २१ | घुटी | छुटी |
| १२१२ | २४ | लिवाश | लिबास |
| १२१३ | २६ | बुनते | बोते |
| ,, | ३० | ओदी व नमी | ओदी या नमी |
| १२१४ | ६ | तरीकायें | तरीके |
| ,, | ६ | जाती | जाते |
| १२१५ | १३ | तपायमान | तप्यमान या तप्त |
| ,, | १९ | विपति | विपत्ति |
| १२१६ | १ | कष्मल | कश्मल |
| ,, | ३१ | गुरुरता | गुरुता या (गुरुर) |
| १२१७ | १४ | ग्रहक | ग्राहक या ग्रहीत् |
| १२२० | ९ | मन काही | मन की ही |
| १२२१ | ६ | निरोग | नीरोग |
| १२२२ | १३ | शाल्यमल्य | शाल्मल्य |
| ,, | १४ | भद्रासव | भद्राश्व |
| १२२५ | ११ | दरकिनारा | दरकिनार |
| १२२७ | ९ | चूमते | चुभते |
| १२२८ | २७ | हौंन | हवन |
| ,, | ३१ | पुरुषर्था | पुरुषार्थ |
| १२३१ | २१ | प्रज्जवलित | प्रज्ज्वलित |
| १२३२ | १५ | पिचासिनी | पिशाचिनी |
| १२३३ | ६ | उसमें | उससे |
| १२३६ | १३ | बकवाश | बकवास |
| १२३६ | १९ | ऊपजा | उपजा |
| १२३८ | १८ | लोह | लौह |
| १२४० | ३ | आत्महितैक्षु | आत्महितेच्छु |
| १२३५ | ४ | दीर्घत्व | गुरुत्व |
| १२४६ | २१ | चितघन | चिद्घन |
| १२४७ | १७ | अनस्थिर | अस्थिर |
| ,, | ३० | मुमुक्षवा | मुमुक्षुता |
| १२४८ | ८ | अनस्थिर | अस्थिर |
| १२५० | ११ | तदैव..कार्यंति | तेनैव.... कारयति |
| १२५३ | १ | किंसुक | किंशुक |
| ,, | ,, | टेशू | टेसू |
| ,, | ८ | सद्मार्ग | सन्मार्ग |
| ,, | १८ | गरीबता | गरीबी |
| ,, | २० | अनाधि-कारियों | अनधि-कारियों |
| ,, | २५ | यत्किंचि | यत्किञ्चित् |
| १२५४ | ९ | तपसचर्या | तपश्चर्या |
| ,, | १४ | झूठा....लेता | झूठे....करता |
| १२५५ | ९ | तेलादि | तैलादि |
| १२५६ | १९ | न तद् | न तत्र |
| ,, | २० | भाँति | भाति |
| ,, | २१ | यदगन्वा निवर्तन्ते | यं प्राथ न निवर्तन्ते |
| १२५७ | ११ | तृप्ति | तृप्त |
| ,, | २० | माधुर्य | मधुर |
| १२६१ | ५ | त्रियक | तिर्यक |
| १२६२ | ९ | प्रथमतयः | प्रथमतः |
| ,, | १६ | सुश्रुषा | शुश्रूषा |
| १२६३ | ७ | हम | मैं |
| ,, | २४ | जूदा | जुदा |

| पृ० | पं०सं० | अशुद्ध | शुद्ध | पृ० | पं०सं० | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १२६४ | १५ | पर्शनीय | स्पृश्य | १२७१ | ४ | अक्षी | अक्षि |
| ,, | २९ | अष्टमंगिनी | अष्टांगिनी | १२७५ | ७ | जरख | परख |
| १२६८ | ७ | उखमज | ऊष्मज | १२७५ | २२ | अनमत्वा | अनात्मा |
| ,, | १९ | दिया | दिये | १२७७ | ३१ | मन | मम |
| १२६९ | १० | अकिल | अलक्ष्य | | | | |








कबीर कंवल प्रकाशिया, ब्रह्म वास तहं होय।
मन भंवरा तहं लुब्धिया, जानेगा जन सोय॥